महर्षिपाणिनिविरचिता

अष्टाध्यायी

'चन्द्रलेखा' - हिन्दीव्याख्योपेता अनेकोपयोगिविषयैरुपबृंहिता

सूत्रपाठ - सूत्रवार्त्तिकोदाहरणानां सूच्या चान्विता

(द्वितीय भाग)

व्याख्याकार :

प. ईश्वरचन्द्रः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

83

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

242 (51)

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.....
पु०सं०.1583
भारती पुस्तकालय
1/0

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

१०३

महर्षिपाणिनिविरचिता

अष्टाध्यायी

'चन्द्रलेखा' - हिन्दीव्याख्यायुताऽनेकोपयोगिविषयैरुपबृंहिता

सूत्रपाठ - सूत्रवार्त्तिकोदाहरणानां सूच्या चान्विता

व्याख्याकारः

प० ईश्वरचन्द्रः

अध्यक्षः, संस्कृतविभागस्य

भिवानीनगरस्थराजकीयस्नातकोत्तरमहाविद्यालयीयस्य

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

38 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो०बा० नं० 2113

दिल्ली 110007

फोन : 23956391

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2004

मूल्य 1500.00 (सम्पूर्ण : 1-2 भाग)

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० 37/117, गोपालमन्दिर लेन

पो०बा०नं० 1129, वाराणसी 221001

फोन : 2335263, 2333371

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक आफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो०बा० नं० 1069, वाराणसी 221001

फोन : 2420404

कम्प्यूटर टाइप सेटर्स :
चित्तरञ्जन कम्प्यूटर वर्क्स
नई दिल्ली

मुद्रक :
ए०के० लिथोग्राफर्स
दिल्ली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE
VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA
103

Astadhyayi

AṢṬĀDHYĀYĪ

OF

MAHARṢI PĀṆINI

Edited With 'Chandralekhā' Hindi Commentary, and other valuable explanations and various indices i.e. Sūtrapāṭha, Index of Sūtras, Vārtikas and examples.

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी.....
पु०सं०...15.83
आर्ष पुस्तकालय

By
Pt. ISHWAR CHANDRA
Head, Dept. of Sanskrit,
Govt. (P. G.) College, Bhiwani (Haryana)

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
☎ : *23956391*

All Rights Reserved

Also can be had from
© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37 / 117, Gopal Mandir Lane
Post Box No.1129
VARANASI 221001
☎ : *2335263, 2333371*

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
☎ : *2420404*

Computer Type Setters
Chittaranjan Computer Works
New Delhi

Printers
A.K. Lithographers
Delhi

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमाऽध्यायस्य

प्रथमः पादः

प्राक् क्रीताच्छः 5.1.1

पद.—प्राक्-अव्य०, क्रीतात् 5.1, छः 1.1

अनु.—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च आ पञ्चमाऽध्याय परिसमाप्तेः एते चत्वारोऽधिकाराः। अग्रे विस्तार भिया प्रतिसूत्रं न दर्शिताः।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। 'तेन क्रीतम्' (पा० 5.1.36) से पहले तक यह अधिकार चलता है अर्थात् 'तेन क्रीतम्' सूत्र से पहले-पहले जितने अर्थों में प्रत्यय का विधान किया गया है, उन सब अर्थों में छ प्रत्यय होगा।

जहाँ-जहाँ प्रत्यय का निर्देश है, वहाँ 'छ' नहीं होगा। चूँकि 'प्राग्वतेष्ठञ्' पा० 5.1.18 के द्वारा प्रत्यय विशेष (ठञ्) का उल्लेख है। अतः प्रकृतसूत्र का अधिकार पा० 5.1.17 तक जानना चाहिए।

उगवादिभ्यो यत् 5.1.2

पद.—उगवादिभ्यः 5.3, यत् 1.1

अनु.—प्राक्, क्रीतात्।

अर्थ—उवर्णान्त प्रातिपदिक तथा गवादिगण में पठित प्रातिपदिकों से परे प्राक्क्रीतीय अर्थों में यत् प्रत्यय होता है।

'प्राक्क्रीतीय' का अर्थ है—क्रीत अर्थ से पूर्व कथित जो-जो अर्थ।

उदा.—(1) शङ्कवे हितम्-शङ्कु यत्-शङ्को य-शङ्क व्य सु- शङ्कव्यम् (=शंकु के लिए उपयुक्त, लकड़ी आदि)।

(2) पिचवे हितः—पिचव्यः (कार्पासः)।

(3) कमण्डलवे हिता—कमण्डलव्या (मृत्तिका)।

(4) चरुभ्यो हिताः—चरव्याः (तण्डुलाः)।

(5) गोभ्यो हितम्—गव्यम् (शष्पम्)।

(6) हविषे हितम्—हविष्यम् (आज्यम्)।

(7) मेधायै हितम्—मेध्यम् (चूर्णम्)।

(8) नाभये हितम्—नभ्यः[1] (अक्षः) = रथ चक्र की नाभि के लिए उपयुक्त।

नाभि शब्द के दो अर्थ हैं—

(क) शरीरस्थ नाभि—इस गणसूत्र में इस अर्थ में नाभि शब्द का ग्रहण नहीं है। कारण कि इस अर्थ में 'शरीरावयवाद् यत्' से यत् होता है। यथा—नाभ्यः।

(ख) छिद्र सहित रथनाभि—यहाँ इसी अर्थ में 'नाभि' शब्द का ग्रहण है। इस नाभि में जो काष्ठविशेष डाला जाता है, उसे अक्ष कहते हैं।

(9) शुने हितम् - शुन्यम्, शून्यम् (= कुत्ते के लिए हितकर)। श्वन् शब्द को सम्प्रसारण होता है तथा पाक्षिक दीर्घादेश होता है।[2]

(10) ऊधसे हितम्—ऊधन्यम् (=आपीन के लिए हितकर वस्तु)। ऊधस् शब्द को नकार अन्तादेश होता है।[3]

कम्बलाच्च संज्ञायाम् 5.1.3

पद.—कम्बलात् 5.1, च-अव्य०, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—यत्, प्राक्, क्रीतात्।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो तो प्राक्क्रीतीय अर्थों में कम्बल प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है।

उदा.—कम्बलाय हितम् - कम्बल्यम् ऊर्णापलशतम्।

विशेष—संज्ञा गम्यमान न हो तो कम्बल शब्द से उक्त प्रत्यय नहीं होता है।

कम्बल छ-कम्बली टाप्-कम्बलीया जस्-कम्बलीया ऊर्णाः। यहाँ संज्ञा नहीं है, सामान्य प्रयोग है।

---

1. द्र०—नाभि नभं च (गण सूत्र)—काशि०—5.1.2
2. द्र०—शुनः सम्प्रसारणं वा दीर्घत्वं च (गणसूत्र) काशि०—5.1.2
3. द्र०—ऊधसोऽनङ् च (गणसूत्र)—काशि०—5.1.2

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाषा हविरपूपादिभ्यः 5.1.4

पद.—विभाषा 1.1, हवि ... ... भ्यः 5.3

अनु.—यत्, प्राक्, क्रीतात् ।

अर्थ—प्राक्क्रीतीय अर्थों में हवि विशेषवाची तथा अपूप आदि प्रातिपदिकों से विकल्प से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) आमिक्षा यत्—आमिक्ष्यम् (दधि) ।
(2) आमिक्षा छ—आमिक्षीयम् (दधि) ।
(3) पुरोडाश्यः, पुरोडाशीयः ।
(4) अपूप यत्—अपूप्यम् ।
(5) अपूप छ—अपूपीयम् ।
(6) तण्डुल यत्—तण्डुल्यम् ।
(7) तण्डुल छ—तण्डुलीयम् ।

तस्मै हितम् 5.1.5

पद.—तस्मै 4.1, हितम् 1.1

अनु.—पूर्ववत् ।

अर्थ—चतुर्थ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से हित अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ।

शरीरावयवाद्यत् 5.1.6

पद.—शरीरावयवात् 5.1, यत् 1.1

अनु.—तस्मै, हितम् ।

अर्थ—चतुर्थ्यन्त समर्थ शरीर के अवयववाची प्रातिपदिक से हित अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) दन्तेभ्यो हितम्–दन्त यत्–दन्त्य सु–दन्त्यम् ।
(2) कण्ठाय हितम् – कण्ठ्यम् (औषधम्) ।
(3) नाभये हितम् – नाभ्यम् (तैलम्) ।
(4) नासिकायै हितम् – नासिका यत् – नस् यत्
(नस् नासिकाया यत् तस् क्षुद्रेषु०—पा० 6.1.61 वा०)
नस्य सु – नस्यम् ।
भसंज्ञा न होने से रुत्व नहीं हुआ ।

खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च 5.1.7

पद.—खल ... ह्मणः 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—यत्, तस्मै, हितम् ।

अर्थ—हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त समर्थ खल, यव, माष, तिल, वृष तथा ब्रह्मन् प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—खलाय हितम्–खल यत्–खल्य सु–खल्यम् ।
यव यत्–यव्यम् ।
माष यत्–माष्यम् ।
ब्रह्मन् यत्–ब्रह्मण्यम् ।

सूत्रस्थ 'चकार' के द्वारा अनुक्त समुच्चय का ग्रहण होता है । यथा—
रथाय हिता—रथ्या ।

अजाविभ्यां थ्यन् 5.1.8

पद.—अजाविभ्याम् 5.2, थ्यन् 1.1

अनु.—तस्मै, हितम् ।

अर्थ—हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त समर्थ अज तथा अवि प्रातिपदिकों से थ्यन् प्रत्यय होता है । नकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—अजाय हिता–अज थ्यन्–अजथ्य टाप्–अजथ्या सु –अजथ्या ।
अवि थ्यन् – अविथ्या ।

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः 5.1.9

पद.—आत्म .... त् 5.1 खः 1.1

अनु.—तस्मै, हितम् ।

अर्थ—हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त समर्थ आत्मन्, विश्वजन तथा भोगोत्तरपद (अर्थात् भोग शब्द है जिस के उत्तर पद में) प्रातिपदिकों से ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) आत्मने हितम् – आत्मन् ख – आत्मन् ईन (भसंज्ञा, 'नस्तद्धिते' से टिलोप प्राप्त हुआ । 'आत्माऽध्वानौ खे' पा० 6.4.169 से प्रकृति भाव हुआ) – आत्मनीन सु – आत्मनीनम् (शि० 5.44, कि० 13.69) ।

(2) विश्वजनेभ्यो हितम् – विश्वजनीनम् (शि० 1.41, भट्टि० 2.48) विश्वे जनाः–विश्वजनाः—इस प्रकार कर्मधारय हुआ है । प्रकृत सूत्र के द्वारा विहित ख प्रत्यय कर्मधारय समास से उपपन्न 'विश्वजन' समस्त पद से ही होता है ।[1] फलतः विश्वस्य जनः–विश्वजनः (ष० तत्पु०) की दशा में 'ख' न होकर 'छ' होता है—विश्वजनीयम् ।

इसी प्रकार—विश्वो जनो यस्य सः विश्वजनः (बहु० समास) की दशा में भी 'छ' होगा—

1. षष्ठीसमासाद् बहुव्रीहेश्च छ एव भवति—
काशि०—5.1.9

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वजनीयम् ।

(3) मातृ भोगाय हितः—मातृभोगीणः ।

(4) इसी प्रकार—पितृभोगीणः ।

सर्वभोगीणः (भट्टि० 6.97) ।

विशेष—1. सूत्रस्थ 'आत्मन्' पद के नकार का लोप नहीं हुआ है । काशिकाकार के अनुसार ऐसा आचार्य ने स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए किया है 7।[1]

2. पंचजन शब्द से भी उक्त प्रत्यय होता है ।[2] यथा—

पंचजन ख—पंचजनीनम् ।

3. सर्वजन शब्द से पूर्वोक्त ख प्रत्यय तथा ठञ् प्रत्यय होते हैं ।[3] यथा—

सर्वजनाय हितम्–सर्वजनीनम् (ख) ।
सर्वजन ठञ्–सार्वजनिकम् ।

4. महाजन शब्द से नित्य ठञ् होता है ।[4] यथा—

महाजनाय हितम्–माहाजनिकम् ।

5. राजन् तथा आचार्य पूर्वक भोग शब्द से नित्य ख प्रत्यय होता है ।[5] यथा—

राजभोगाय हितः–राजभोगीनः ।

आचार्यभोगाय हितः–आचार्य भोग ख–आचार्य भोग ईन (अब प्राप्त णत्व का वार्तिक आचार्यादणत्वं च–पा० 5.1.9 से निषेध हुआ । आचार्यभोगीनः ।

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ 5.1.10

पद.—सर्वपुरुषाभ्याम् 5.2, णढञौ 1.2

अनु.—तस्मै, हितम् ।

अर्थ—हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त समर्थ सर्व तथा पुरुष प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ण तथा ढञ् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—(1) सर्वस्मै हितम्–सर्व ण–सार्वम् ।

(2) पुरुषाय हितम्–पुरुष ढञ्–पौरुषेयम् ।

1. आत्मन् इति नलोपो न कृतः प्रकृतिपरिमाणज्ञापनार्थम् —काशि०—5.1.9 ।
2. काशि०—5.1.9 (वा०) पञ्चजनादुपसंख्यानम् ।
3. सर्वजनाट् ठञ् खश्च—वा० ।
4. महाजनान्नित्यं ठञ् वक्तव्यः—वा० ।
5. राजाचार्याभ्यां तु नित्यम्—वा० ।

विशेष—1. सर्व शब्द से विकल्प से ण प्रत्यय होता है ।[6] पक्ष में औत्सर्गिक छ प्रत्यय होता है । यथा—

सर्वस्मै हितः—सर्व ण–सार्वः ।

सर्व छ–सर्वीयः ।

2. वध, विकार, समूह, तेन कृत; (=उसके द्वारा किया गया) अर्थों में पुरुष शब्द से छ प्रत्यय होता है ।[7] यथा—

पुरुषस्य वधः, विकारः, समूहः—पौरुषयः ।

पुरुषेण कृतः–पौरुषेयः ।

माणवचरकाभ्यां खञ् 5.1.11

पद.—माण .... भ्याम् 5.2, खञ् 1.1

अनु.—तस्मै, हितम् ।

अर्थ—हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त समर्थ माणव तथा चरक प्रातिपदिकों से खञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) माणवाय हितम्—माणवीनम् ।

(2) चरकाय हितम्—चारकीणम् ।

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ 5.1.12

पद.—तदर्थम् 1.1 विकृतेः 5.1 प्रकृतौ 7.1

अनु.—तस्मै हितम् ।

अर्थ—हित अर्थ में प्रकृति अर्थ अभिधेय हो तो चतुर्थ्यन्त विकृतिवाची प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि वह प्रकृति विकृति के लिए हो ।

कारण को प्रकृति तथा विकार को विकृति कहते हैं ।

उदा.—(1) अङ्गारेभ्यो हितानि इमानि काष्ठानि—अङ्गार छ–अङ्गारीय जस्–अङ्गारीयाणि । अङ्गार विकृति है तथा काष्ठ प्रकृति है । यहाँ काष्ठ (प्रकृति) अंगार (विकृति) के लिए है । अतः छ प्रत्यय हुआ ।

(2) प्रकाराय इष्टकाः—प्राकारीयाः ।

विशेष—1. सूत्रस्थ 'तदर्थम्' पद का अर्थ है कि यदि प्रकृति विकृति के लिए हो तो छ प्रत्यय होता है ।

यवानां धानाः, धानानां सक्तवः–यहाँ प्रत्यय नहीं हुआ है ।

2. उक्त प्रत्यय विकृतिवाची शब्द से होता है । अतः 'उदकार्थः कूपः' यहाँ प्रत्यय न हुआ । जल कूप की विकृति नहीं है ।

6. काशि० 5.1.10 (वा०) सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम् ।
7. काशि० 5.1.10 (वा०) पुरुषाद् वधविकारसमूहतेन कृतेष्विति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. प्रकृति अर्थ गम्यमान हो तो उक्त प्रत्यय होता है। अतः 'अस्यर्था कोशी' (= तलवार के लिए म्यान) में उक्त प्रत्यय नहीं होता है। कारण कि तलवार विकृति है जिसकी प्रकृति लोहा होता है, म्यान नहीं।

छदिरुपधिबलेर्ढञ् 5.1.13

पद.—छदिरुपधिबलेः 5.1. ढञ् 1.1

अनु.—तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृतौ, तस्मै, हितम्।

अर्थ—हित अर्थ में प्रकृति अर्थ अभिधेय हो तो चतुर्थ्यन्त विकृतिवाची छदिस्, उपधि और बलि प्रातिपदिकों से ढञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रकृति विकृति के लिए हो।

उदा.—(1) छदिर्भ्यो हितानि इमानि तृणानि—छदिस् ढञ्—छादिषेय जस्-छादिषेयाणि।

(2) उपधि ढञ्-औपधेयम्।

(3) बलि ढञ्-बालेयम्।

ऋषभोपानहोर्व्यः 5.1.14

पद.—ऋषभोपानहोः 6.2 व्यः 1.1

अनु.—तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृतौ, तस्मै, हितम्।

अर्थ—हित अर्थ में प्रकृति अर्थ अभिधेय हो तो चतुर्थ्यन्त विकृतिवाची ऋषभ और उपानह् प्रातिपदिकों से व्य प्रत्यय होता है, यदि वह प्रकृति विकृति के लिए हो।

उदा.—(1) ऋषभाय हितम्-ऋषभ व्य-आर्षभ्य सु-आर्षभ्यम्।

(2) उपानह् व्य-औपान ह्य सु-औपानह्यः।

चर्मणोऽञ् 5.1.15

पद.—चर्मणः 6.1 अञ् 1.1

अनु.—तस्मै, हितम्, तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृतौ।

अर्थ—हित अर्थ में प्रकृति अर्थ अभिधेय हो तो चतुर्थ्यन्त समर्थ चर्म निर्मित विकृतिवाची शब्द से अञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रकृति विकृति के लिए हो।

उदा.—वरत्राय (=चमड़े से बना दस्ताना) हितम्-वरत्र अञ्-वारत्रम् (चर्म)।

वरत्र अञ्-वारत्रम् (चर्म)।

हाथी के वक्षःस्थल पर बाँधी जाने वाली चर्म की पट्टी को वरत्र कहते हैं।

तदस्य तदस्मिन् स्यादिति 5.1.16

पद.—तत् 1.1, अस्य 6.1 तत् 1.1 अस्मिन् 7.1 स्यात् - क्रिया०, इति-अव्य०।

अनु.—चत्वारोऽधिकाराः पूर्ववत्।

अर्थ—यदि प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक 'स्यात्' क्रिया के साथ समानाधिकरण वाला हो तो उस शब्द से षष्ठ्यर्थ तथा सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) प्राकार आसाम् इष्टकानां स्यात् - प्राकार छ - प्राकारीय जस् - प्राकारीयाः (इष्टकाः)।

(2) प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात् - प्राकार छ - प्राकारीय टाप् सु - प्राकारीया (भूमिः)।

परिखाया ढञ् 5.1.17

पद.—परिखायाः 5.1, ढञ् 1.1

अनु.—तदस्य, तदस्मिन्, स्याद् इति।

अर्थ—'स्यात्' क्रिया के साथ समानाधिकरण वाले प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ तथा सप्तम्यर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—परिखा स्याद् अस्यां भूम्याम्-परिखा ढञ् पारिखेय ङीप् सु-पारिखेयी (भूमिः)।

प्राग्वतेष्ठञ् 5.1.18

पद.—प्राक् अव्य० 1.1 वतेः 5.1 ठञ् 1.1

अनु.—चत्वारोऽधिकाराः।

अर्थ—'तेन तुल्यं क्रिया—' पा० 5.1.114 के द्वारा 'वति' प्रत्यय का विधान किया गया है। प्रकृतसूत्र का अर्थ है कि उक्त 'वति' विधायक सूत्र से पूर्व तक ठञ् प्रत्यय का अधिकार है अर्थात् 'वति' प्रत्यय से पूर्व जो-जो अर्थ कहे हैं, उन-उन में ठञ् प्रत्यय होता है।

आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट् ठक् 5.1.19

पद.—आ-अव्य०, अर्हात् 5.1, अगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणात् 5.1, ठक् 1.1

अनु.—चत्वारोऽधिकाराः।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। 'आर्हात्' पद में अभिविधि अर्थ में आङ् का प्रयोग है (यथा—आ अर्हात्)। 'अर्ह' पद का अर्थ है—अर्हति अर्थ, जो 'तद् अर्हति' पा० 5.1.62 के द्वारा कहा गया है। 'आर्हात्' पद का अर्थ हुआ—'तद्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1583

अर्हति' अर्थ पर्यन्त । तब सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है—

यहाँ से लेकर 'अर्हति' अर्थ पर्यन्त जो-जो अर्थ कहे जायेंगे उन-उन अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है, गोपुच्छ, संख्या तथा परिमाणवाची शब्दों को छोड़ कर । गोपुच्छ आदि में ठञ् ही होता है ।

यथा—गोपुच्छेन क्रीतम्—गोपुच्छ ठञ्–गोपुच्छिकः । यह पूर्व विहित ठञ् का अपवाद है ।

असमासे निष्कादिभ्यः 5.1.20

पद.—असमासे 7.1, निष्कादिभ्यः 5.3

अनु.—आर्हात्, ठक् ।

अर्थ—'तद् अर्हति' अर्थ पर्यन्त सभी अर्थों में निष्क आदि प्रातिपदिकों, यदि वे समास में न हों, से ठक् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) निष्केण क्रीतम्–नैष्किकम् ।
(2) पणेन क्रीतम्–पाणिकम् ।

विशेष—यदि निष्क आदि प्रातिपदिक संमास में हों तो उक्त ठक् प्रत्यय नहीं होता है—परमनिष्क ठञ्–परमनैष्किकम्।

शताच्च ठन्यतावशते 5.1.21

पद.—शतात् 5.1, च–अव्य०, ठन्यतौ 1.2 अशते 7.1

अनु.—आर्हात् ।

अर्थ—यदि 'सौ' अर्थ अभिधेय न हो तो अर्हति पर्यन्त सभी अर्थों में शत प्रातिपदिक से ठन् और यत् प्रातिपदिक होते हैं ।

उदा.—शतेन क्रीतम्–शत ठन्–शतिकम् ।
शत यत्–शत्यम् ।

विशेष—यदि शत (=सौ) अर्थ अभिधेय होगा तो शत शब्द से पा० 5.1.22 के द्वारा कन् होता है ।

शतं परिमाणम् अस्य–शत कन्–शतकम् ।

सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन् 5.1.22

पद.—सङ्ख्यायाः 5.1, अतिशदन्तायाः 5.1 कन् 1.1

अनु.—आर्हात् ।

अर्थ—'ति' शब्द अन्त वाली और शत् शब्द अन्त वाली संख्या को छोड़कर शेष संख्यावाची प्रातिपदिक से अर्हति पर्यन्त अर्थों में कन् होता है ।

'बहुगणवतुडति संख्या' से 'बहु' तथा 'गण' की संख्या संज्ञा होती है । यहाँ लौकिक व पारिभाषिक दोनों प्रकार की संख्याओं का ग्रहण होता है ।

उदा.—पञ्चभिः क्रीतः–पञ्चन् कन्–पञ्चक सु – पञ्चकः
बहु कन्–बहुकः ।
गण कन्–गणकः ।

विशेष—1. 'ति' तथा 'शत्' अन्त वाले संख्यावाची प्रातिपदिक से कन् न होकर सामान्य ठञ् होता है । ठञ् को 'इसुसुक्तान्तात्कः' से 'क' होता है ।

सप्तत्या क्रीतः—सप्तति ठञ्–साप्ततिकः ।
चत्वारिंशत् ठञ्–चात्वारिंशत्कः ।

2. प्रकृतसूत्र में अर्थवान् 'ति' शब्द का पर्युदास निषेध है । अतः अनर्थक 'तिः (डति प्रत्यय) का पर्युदास निषेध नहीं होता है । यथा—

कतिभिः क्रीतः–कति कन्–कतिकः ।

वतोरिड् वा 5.1.23

पद.—वतोः 5.1, इट् 1.1 वा–अव्य० ।

अनु.—आर्हात्, कन् ।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में 'वतु' अन्त वाले संख्यावाची प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है तथा उस कन् को विकल्प से इट् आगम होता है ।

उदा.—तावता क्रीतः–तावत् कन्–तावत् इट् क–तावतिक सु–तावतिकः ।

पक्ष में इट् न होगा–तावत्कः ।

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् 5.1.24

पद.—विंशतित्रिंशद्भ्याम् 5.2, ड्वुन् 1.1, असंज्ञायाम् 7.1

अनु.—आर्हात् ।

अर्थ—आर्हीय अर्थों में संज्ञा विषय को छोड़कर अन्यत्र विंशति और त्रिंशत् शब्दों से ड्वुन् प्रत्यय होता है ।

ड्वुन् के डकार व नकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) विंशत्या क्रीतः–विंशति ड्वुन्–विंश वु (ति विंशतेर्डिनि)–विंश क सु–विंशकः ।

(2) त्रिंशत् ड्वुन्–त्रिंशत् डु (टेः)–त्रिंश् क–त्रिंशः । संज्ञा गम्यमान होने पर उक्त ड्वुन् प्रत्यय नहीं होता है—

विंशतिकः—यहाँ ड्वुन् न होकर कन् हुआ है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—महाभाष्यकार ने प्रस्तुत सूत्र के योग विभाग का सुझाव दिया है।[1] योगविभाग करने पर कन् हो जाता है:—

क) विंशति त्रिंशद्भ्याम्–अर्थात् विंशति तथा त्रिंशत् शब्दों से कन् होता है, 'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में।

ख) ड्वुन्नसंज्ञायाम् अर्थात् संज्ञा गम्यमान न हो तो विंशति तथा त्रिंशत् शब्दों से उक्त अर्थों में ड्वुन् हो जाता है।

कंसाट् टिठन् 5.1.25

पद.—कंसात् 5.1, टिठन् 1.1

अनु.—आर्हात्।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में कंस प्रातिपदिक से टिठन् प्रत्यय होता है।

टिठन् के टकार, इकार व नकार की इत्संज्ञा होती है। ठकार को इक होता है। टित्करण स्त्रीत्व में ङीप् (टिड्ढाऽण्०) के लिए हैं। नकार अनुबन्ध स्वरविधान के लिए है। इकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—कंसेन क्रीतः–कंस टिठन्–कंस ठ–कंसिक सु–कंसिकः।

विशेष—1. अर्द्ध शब्द से 'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में टिठन् होता है।[2] अर्द्ध टिठन्–अर्द्धिकः।

2. कार्षापण शब्द से भी टिठन् होता है।[3]
कार्षपणिकः।

3. कार्षापण शब्द को 'प्रति' आदेश होता है।[4]
कार्षापण टिठन्–प्रति ठ–प्रति इक–प्रत् इक सु–प्रतिकः।

शूर्पादञन्यतरस्याम् 5.1.26

पद.—शूर्पात् 5.1, अञ् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—आर्हात्।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में शूर्प प्रातिपदिक से विकल्प से अञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) शूर्पेण क्रीतम्–शूर्प अञ्–शौर्प् अ–शौर्प सु–शौर्पम्।

(2) शूर्प शब्द के परिमाणवाची होने से 'आर्हादगोपुच्छ०' से निषेध होने से पक्ष में ठक् न होकर ठञ् होता है।

शूर्प ठञ्–शौर्पिकम्।

शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् 5.1.27

पद.—शत ... नात् 5.1, अण् 1.1

अनु.—आर्हात्।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में शतमान, विंशतिक, सहस्र तथा वसन प्रातिपदिकों से अण् होता है।

उदा.—(1) शतमान अण्–शातमानम्।

(2) विंशतिक अण्–वैंशतिकम्।

(3) सहस्र अण्–साहस्रम्।

(4) वसन अण्–वासनम्। यहाँ ठक् प्राप्त था। उसका निषेध हो गया।

अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् 5.1.28

पद.—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः 5.1, लुक् 1.1, असंज्ञायाम् 7.1

अनु.—आर्हात्।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में यदि संज्ञा गम्यमान न हो तो अध्यर्ध शब्द पूर्वक प्रातिपदिक से और द्विगु संज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का लोप होता है।

जिसमें आधा भाग अतिरिक्त हो, उसे 'अध्यर्ध' कहा जाता है।

उदा.—(1) अध्यर्धकंसेन क्रीतम्–(तद्धितार्थोत्तरपद. से समास। कंसाट् टिठन्–से टिठन् हुआ)—प्रकृतसूत्र से लुक् हुआ। सु आया–अध्यर्धकंसम्।

(2) अध्यर्ध शूर्प अञ् (शूर्पादञन्यतरस्याम्)—लुक्, सु–अध्यर्धशूर्पम्।

(3) द्विकंसम्–संख्यापूर्वो द्विगुः से द्विगु संज्ञा, प्रत्यय, उसका लुक् तथा सु।

विशेष—संज्ञा अर्थ गम्यमान हो तो पूर्वोक्त दशा में प्रत्यय का लुक् नहीं होता है—

पञ्चलोहिन्यः परिमाणम् अस्य–पञ्चलोहिनी ठञ् (यहाँ तद्धितार्थ में समास हुआ। प्रत्यय हुआ। भस्याढे तद्धिते से पुँवद्भाव हुआ। पञ्चलोहित ठञ्। सु। संज्ञा गम्यमान होने से लुक् न हुआ। पाञ्चलौहितिकम्।

---

1. महा० 5.1.24।
2. महा० 5.1.25 (वा०) अर्द्धाच्चेति वक्तव्यम्।
3. महा० 5.1.25 (वा०) कार्षापणाट् टिठन् वक्तव्यः।
4. महा० 5.1.25 (वा०) प्रतिशब्दश्चाऽस्याऽऽदेशो वा वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाषाकार्षापणसहस्राभ्याम् 5.1.29

पद.—विभाषा 1.1, कार्षा .... भ्याम् 5.2

अनु.—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः, लुक्, आर्हात् ।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में अध्यर्द्धशब्द पूर्वक 'कार्षापण' व 'सहस्र' प्रातिपदिकों से और द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ।

पक्ष में लुक् नहीं होता है ।

उदा.—(1) अध्यर्द्धकार्षापण टिठन् (कार्षापणाट् टिठन् –वा०)—

अध्यर्द्धकार्षापण सु (लुक्, सु)—अध्यर्द्धकार्षापणम् ।

पक्ष में—अध्यर्द्धकार्षापणिकम् ।

(2) अध्यर्द्धसहस्र अण्–अध्यर्द्धसाहस्रम् ।

पक्ष में लुक् न हुआ—

अध्यर्द्धसहस्रम् (पा० 7.3.15) ।

(3) द्विकार्षापण सु–(प्रत्यय का लुक्)–द्विकार्षापणम् ।

पक्ष में—द्विकार्षापणिकम् ।

विशेष—अध्यर्द्ध पूर्वक सुवर्ण और शतमान शब्दों से विहित आर्हीय प्रत्ययों का विकल्प से लुक् होता है ।[1]

अध्यर्द्ध सुवर्ण (प्रत्यय का लुक् हुआ)—अध्यर्द्धसुवर्णम् ।

पक्ष में—अध्यर्द्धसौवर्णिकम्

अध्यर्द्धशतमानम् (प्रत्यय का लुक् हुआ) ।

पक्ष में—अध्यर्द्धशातमानम् (परिमाणान्तस्य० पा० 7.3.17 से उत्तरपदवृद्धि) ।

द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् 5.1.30

पद.—द्वित्रिपूर्वात् 5.1, निष्कात् 5.1

अनु.—विभाषा, द्विगोः, लुक् ।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में 'द्वि' व 'त्रि' शब्दपूर्वक निष्कशब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ।

अर्थात् जिस द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक के पूर्वपद में द्वि तथा त्रि शब्द हों तथा अन्त में निष्क शब्द हो तो उससे विहित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ।

उदा.—(1) द्विनिष्क ठञ् (प्राग्वतेष्ठञ्)–द्विनिष्क सु–द्विनिष्कम् ।

पक्ष में लुक् न हुआ–द्विनैष्किकम् ।

(2) त्रिनिष्क सु–त्रिनिष्कम् ।

त्रिनिष्क ठञ्–त्रिनैष्किकम् ।

बहु शब्दपूर्वक 'निष्क' प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ।[2] यथा—

बहुनिष्क सु–बहुनिष्कम् ।

बहुनिष्क (लुक् न होने पर)–बहुनैष्किकम् ।

बिस्ताच्च 5.1.31

पद.—बिस्तात् 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—द्वित्रिपूर्वात्, विभाषा, द्विगोः, लुक् ।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में 'द्वि' व 'त्रि' शब्दपूर्वक बिस्त शब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ।

उदा.—(1) द्वौ बिस्तौ परिमाणम् अस्य–(तद्धितार्थ में समास हुआ)–द्विबिस्त ठञ्–द्विबिस्त सु–द्विबिस्तम् ।

पक्ष में—द्विबिस्त ठञ्–द्विबैस्तिक सु–द्विबैस्तिकम् ।

(यहाँ अध्यर्द्ध-पूर्वद्विग० से नित्यलुक् प्राप्त था) ।

विंशतिकात् खः 5.1.32

पद.—विंशतिकात् 5.1, खः 1.1

अनु.—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः ।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में अध्यर्द्धपूर्वक विंशतिक शब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) अध्यर्द्धविंशतिक ख–अध्यर्द्धविंशतिकीन सु–अध्यर्द्धविंशतिकीनम् ।

अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुक्० से प्राप्त लुक् की यहाँ विधान सामर्थ्य से प्रवृत्ति नहीं होती है ।

खार्या ईकन् 5.1.33

पद.—खार्याः 5.1, ईकन् 1.1

अनु.—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः ।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में अध्यर्द्धपूर्वक खारी

---

1. महा० 5.1.29 (वा०) सुवर्णशतमानयोरुपसंख्यानम् ।

2. महा० 5.1.30 (वा०) बहुपूर्वाच्चेति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से ईकन् प्रत्यय होता है। नकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—अध्यर्द्धखारी ईकन्-अध्यर्द्धखार् ईक-अध्यर्द्धखारीक सु-अध्यर्द्धखारीकम्। यस्ये ति च।

विशेष—1. केवल खारी शब्द से भी उक्त ईकन् प्रत्यय होता है।[1]—

खारी ईकन्—खारीक सु-खारीकम्।

2. अध्यर्द्धपूर्वक द्विगुसंज्ञक काकिणी शब्द से ईकन् प्रत्यय होता है।[2]—

अध्यर्द्धकाकिणी ख-अध्यर्द्धकाकिणीकम्।

इसी प्रकार—द्विकाकिणीकम्।

3. केवल काकिणी शब्द से भी ईकन् प्रत्यय होता है।[3]

काकिणी ईकन्—काकिणीकम्।

पणपादमाषशताद् यत् 5.1.34

पद.—पण ... शतात् 5.1, यत् 1.1

अनु.—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में अध्यर्द्ध शब्दपूर्वक तथा द्विगुसंज्ञक पण, पाद, माष और शत अन्त वाले प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) अध्यर्द्धपण यत्-अध्यर्द्धपण य-अध्यर्द्धपण्य सु-अध्यर्द्धपण्यम्।

(2) द्विपण यत्-द्विपण्यम्।

(3) अध्यर्द्धपाद यत्-अध्यर्द्धपाद्यम्।

(4) द्विपाद यत्-द्विपाद्यम्।

(5) अध्यर्द्धमाष यत्-अध्यर्द्धमाष्यम्।

(6) द्विमाष यत्-द्विमाष्यम्।

(7) अध्यर्द्धशत यत्-अध्यर्द्धशत्यम्।

(8) द्विशत यत्-द्विशत्यम्।

शाणाद्वा 5.1.35

पद.—शाणात् 5.1, वा- अव्य०।

अनु.—अध्यर्द्ध द्विगोः, यत्।

अर्थ—'अर्हति' पर्यन्त अर्थों में अध्यर्द्ध शब्दपूर्वक तथा द्विगुसंज्ञक शाण शब्दान्त प्रातिपदिक से विकल्प से यत् होता है।

परिमाणवाची होने से यहाँ ठञ् की प्राप्ति थी। अतः पक्ष में ठञ् होता है।

उदा.—(1) अध्यर्द्धशाण यत्-अध्यर्द्धशाण्यम्।

पक्ष में ठञ् हुआ। अध्यर्द्धपूर्व द्विगो० से लुक् हुआ। अध्यर्द्धशाणम्।

(2) द्विशाण यत्-द्विशाण्यम्।

पक्ष में पूर्ववत् लुक्। द्विशाणम्।

वचन सामर्थ्य से यत् का लुक् न हुआ।

विशेष—1. अध्यर्द्धपूर्वक तथा द्विगसंज्ञक शत शब्दान्त प्रातिपदिक से भी विकल्प से यत् प्रत्यय होता है।[4]—

अध्यर्द्धशत्यम्।

पक्षे—अध्यर्द्धशतम् (लुक्)।

द्विशत्यम्, द्विशतम्।

2. द्वि व त्रि शब्दपूर्वक तथा द्विगुसंज्ञक शाण अन्त वाले प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय विकल्प से होता है। पक्ष में विकल्प से यत् होता है।[5]

द्विशाण अण्-द्वैशाणम्।

पक्ष में यत् होकर—द्विशाण्यम्।

यत् के अभाव में ठञ्, उसका लुक्-द्विशाणम्।

इसी प्रकार—त्रैशाणम्, त्रिशाण्यम्, त्रिशाणम्।

तेन क्रीतम् 5.1.36

पद.—तेन 3.1, क्रीतम् 1.1

अनु.—पूर्ववत् चत्वारोऽधिकाराः।

अर्थ—'उसके द्वारा खरीदा गया'—इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।

'प्राग्वतेष्ठञ्' (पा० 5.1.18) से वति प्रत्ययपर्यन्त ठञ् प्रत्यय का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत 'आर्हाद-गोपुच्छ—' (पा० 5.1.19) से 'तदर्हति' (पा० 5.1.62) पर्यन्त ठक् का अधिकार चलता है। प्रस्तुत सूत्र ठक् प्रत्यय के अधिकार में पड़ता है। कौन प्रत्यय किस समर्थ विभक्ति से तथा किस अर्थ में होंगे—यह प्रकृतसूत्र के द्वारा कहा गया है।

1. महा० 5.1.33 (वा०)—केवलायाश्चेति वक्तव्यम्।
2. महा० 5.1.33 (वा०)—काकिण्याश्चोपसंख्यानम्।
3. महा० 5.1.33 (वा०)—केवलायाश्च।
4. महा० 5.1.35 (वा०)—शताच्चेति वक्तव्यम्।
5. महा० 5.1.35 (वा०)—द्वित्रिपूर्वादण् च।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशिका में इन तेरह प्रत्ययों (ठञ्, ठक्, ठन्, यत्, अण् आदि) की चर्चा है।

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ 5.1.37

पद.—तस्य 6.2, निमित्तम् 1.1, संयोगोत्पातौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—यदि निमित्त संयोग व उत्पात (=विवाद) हो तो 'कारण' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से यथोक्त प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) शतस्य निमित्तं धनपतिना संयोगः—शत यत् (शताच्च ठन्य०)-शत्य सु-शत्यः।

शत् ठन्-शतिकः।
सहस्र अण्-साहस्रः।

(2) शतस्य निमित्तम् उत्पातः-शत यत्-शत्यः।
शत ठन्-शतिकः।
सहस्र अण्-साहस्रः।

विशेष—इस प्रकरण में शमन और कोपन अर्थों में वात, पित्त तथा श्लेष्मा शब्दों से यथोक्त प्रत्यय होते हैं।[1]

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् 5.1.38

पद.—गोद्व्यचः 5.1 असंख्यापरिमाणाश्वादेः 5.1, यत् 1.1

अनु.—तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ।

अर्थ—यदि निमित्त संयोग व उत्पात हो तो 'निमित्त' अर्थ में संख्यावाची, परिमाणवाची तथा अश्व आदि प्रातिपदिकों को छोड़कर षष्ठ्यन्त समर्थ गो तथा द्व्यच् (अर्थात् दो अच् वाला) प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) गोर्निमित्तं संयोगः।
गोर्निमित्तम् उत्पातः। गो यत्-गव्यः। वान्तो यि—

(2) स्वर्गस्य निमित्तं संयोगः।
स्वर्गस्य निमित्तम् उत्पातः। स्वर्ग यत्-स्वर्ग्यम्।

(1) संख्यावाची प्रातिपदिक से यत् न होगा—
पञ्चानां निमित्तम्-पञ्चकम् (कन्)।

(2) परिमाणवाची प्रातिपदिक से यत् न होगा
प्रस्थ ठक्-प्रास्थिकम्।

(3) अश्व आदि प्रातिपदिकों से यत् न होगा—
अश्व ठक्-आश्विकः।

विशेष— ब्रह्मवर्चस् शब्द से यत् होता है।[2]

ब्रह्मवर्चसस्य निमित्तं गुरुणा संयोगः—ब्रह्मवर्चस्यम्।

पुत्राच्छ च 5.1.39

पद.—पुत्रात् 5.1, छ-लुप्तप्रथमान्त निर्देशः, च-अव्य०।

अनु.—तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ यत्।

अर्थ—यदि निमित्त संयोग और उत्पात हो तो 'निमित्त' अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ पुत्र शब्द से छ तथा यत् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा-पुत्र यत्-

पुत्र्य सु-पुत्र्यः।
पुत्र छ-पुत्रीयः।

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ 5.1.40

पद.—सर्व .... भ्याम् 5.2 अणञौ 1.2

अनु.—तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ।

अर्थ—यदि निमित्त संयोग और उत्पात हो तो 'निमित्त' अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्दों से यथा-संख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—(1) सर्वभूमेर्निमित्तम्-सर्वभूमि अण्-सार्वभौमः। अनुशतिकादीना० से उभयपदवृद्धि।

पृथिवी अञ्-पार्थिवः।

तस्येश्वरः 5.1.41

पद.—तस्य 6.1, ईश्वरः 1.1

अनु.—सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्, अणञौ।

अर्थ—ईश्वर अर्थात् स्वामी—इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ सर्वभूमि तथा पृथिवी प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके अण् व अञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—सर्वभूमेरीश्वरः—सर्वभूमि अण्-सार्वभौम सु-सार्वभौमः। पृथिव्या ईश्वरः-पार्थिव् अञ्-पार्थिव सु-पार्थिवः।

तत्र विदित इति च 5.1.42

पद.—तत्र-अव्य०, विदितः 1.1, इति-अव्य०।

1. महा० 5.1.37 (वा०)—तस्य निमित्तं प्रकरणे....।
2. महा० 5.1.38 (वा०)—ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—सर्वभूमिपृथिवीभ्याम् अणञौ ।

अर्थ—विख्यात है—इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—(1) सर्वभूमौ विदितः–सर्वभूमि अण्–सार्वभौमः ।
(2) पृथिव्यां विहितः–पृथिवी अञ्–पार्थिवः ।

लोकसर्वलोकाट्ठञ् 5.1.43

पद.—लोकसर्वलोकात् 5.1, ठञ् 1.1

अनु.—तत्र विदितः ।

अर्थ—प्रसिद्ध है—इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ लोक तथा सर्वलोक प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—लोके विदितः–लोक ठञ्–लौकिक सु–लौकिकः । सर्व लोक ठञ्–सार्वलौकिकः (अनुशतिकादीनाम्०) ।

तस्य वापः 5.1.44

पद.—तस्य 6.1, वापः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—'खेत' अर्थ गम्यमान हो तो षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से यथोक्त प्रत्यय होता है ।

उदा.—प्रस्थस्य वापः क्षेत्रं–प्रस्थ ठञ्–प्रास्थिकम् ।

पात्रात् ष्ठन् 5.1.45

पद.—पात्रात् 5.1, ष्ठन् 1.1

अनु.—तस्य वापः ।

अर्थ—'खेत' अर्थ गम्यमान हो तो षष्ठ्यन्त समर्थ पात्र शब्द से ष्ठन् प्रत्यय होता है ।

ष्ठन् के षकार व नकार की इत्संज्ञा है ।

षित् होने से स्त्रीत्व में ङीष् होता है ।

उदा.—पात्रस्य वापः क्षेत्रम्–पात्र ष्ठन्–पात्रिकम् ।

तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते 5.1.46

पद.—तत् 1.1 अस्मिन् 7.1, वृद्ध्याय .... पदाः 1.3, दीयते-क्रिया० ।

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—यदि वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क तथा उपदा—ये 'दिया जाता है'—इस क्रिया के कर्मवाच्य हों तो सप्तम्यर्थ में प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से यथोक्त प्रत्यय होता है ।

जो द्रव्य मूलधन से अतिरिक्त अर्थात् ब्याज के रूप में दिया जाता है, उसे 'वृद्धि' कहते हैं ।

ग्राम प्रधान के द्वारा ग्राह्य भाग 'आय' कहलाता है ।

वस्तु की लागत से अतिरिक्त द्रव्य 'लाभ' कहलाता है ।

राजा के भाग को 'शुल्क' कहते हैं ।

उत्कोच (=घूस) 'उपदा' कहलाता है ।

उदा.— पञ्चाऽस्मिन् वृद्धिः दीयते,
पञ्चाऽस्मिन् आयः दीयते,
पञ्चाऽस्मिन् लाभः दीयते,
पञ्चाऽस्मिन् शुल्कः दीयते,
पञ्चाऽस्मिन् उपदा दीयते,

यहाँ 'पञ्चन्' से 'कन्' प्रत्यय तथा सु विभक्ति हुई । पञ्च क सु–पञ्चकः ।

विशेष—सम्प्रदान के अर्थ में भी उपर्युक्त दशा में यथाविहित प्रत्यय होता है ।[1] यथा—

पञ्चाऽस्मै वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा शुल्को वोपदा वा दीयते—पञ्चकः ।

पूरणार्द्धाट् ठन् 5.1.47

पद.—पूरणार्द्धात् 5.1, ठन् 1.1

अनु.—तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ।

अर्थ—यदि वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क तथा उपदा— ये 'दिया जाता है'—इस क्रिया के कर्मवाच्य हों तो सप्तम्यर्थ में प्रथमान्त समर्थ पूर्णवाची प्रातिपदिक से तथा अर्द्ध शब्द से ठन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—पञ्चमो वृद्धिर्दीयतेऽस्मिन्–पञ्चम ठन्–पञ्चमिकः ।

भागाद्यच्च 5.1.48

पद.—भागात् 5.1, यत् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—तद् अस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ।

अर्थ—यदि वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा—ये 'दिया जाता है'—इस क्रिया के कर्मवाच्य हों तो सप्तमी के अर्थ में प्रथमान्त समर्थ भाग प्रातिपदिक से यत् तथा ठन् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—भागो वृद्धिरस्मिन् दीयते–भाग यत्–भाग्यम् ।
भाग ठन्–भागिकम् ।

1. महा० 5.1.46 (वा०)—चतुर्थ्यर्थ उपसख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः 5.1.49

पद.—तद् 2.1 हरति-क्रिया०। वहति-क्रिया०। आवहति -क्रिया० । भारात् 5.1, वंशादिभ्यः 5.3

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—हरण करता है, वहन करता है तथा उत्पन्न करता है—

इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ व वंशादि गण पठित शब्द से परे विद्यमान 'भार' प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है ।

उदा.— वंशभारं हरति ।
वंशभारं वहति ।
वंशभारम् आवहति
वंशभार ठक् – वांशभारिकः ।

विशेष—1. सूत्र की शर्त के अनुसार—

क) वंशादिगण पठित शब्द से परे विद्यमान **'भार'** प्रातिपदिक से ही पूर्वोक्त अर्थों में प्रत्यय होते हैं ।

वंशं हरति-यहाँ प्रत्यय न हुआ ।

ख) **वंशादिगण पठित** शब्द से परे विद्यमान 'भार' शब्द से पूर्वोक्त अर्थों में प्रत्यय होते हैं ।

व्रीहिभारं वहति-यहाँ प्रत्यय न हुआ ।

2. काशिकाकार ने प्रकृतसूत्र की दो प्रकार से व्याख्या की है । प्रथम व्याख्या ऊपर दिखाई जा चुकी है । द्वितीय व्याख्या इस प्रकार है—

हरण करता है, वहन करता है तथा उत्पन्न करता—इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ व भारभूत वंशादिगणपठित प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है ।[1] यथा—

भारभूतान् वंशान् हरति—वांशिकः ।

वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ 5.1.50

पद.—वस्नद्रव्याभ्याम् 5.2, ठन्कनौ 1.2

अनु.—तद्धरतिवहत्यावहति ।

अर्थ—हरण करता है, वहन करता है तथा उत्पन्न करता है—इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ वस्न और द्रव्य प्रातिपदिकों से क्रमशः ठन् और कन् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—वस्नं हरति, वहति, आवहति-वस्न ठन् –
वस्निक सु-वस्निकः ।
द्रव्य कन्-द्रव्यकः ।

सम्भवत्यवहरति पचति 5.1.51

पद.—संभवति क्रिया० । अवहरति क्रिया० । पचति क्रिया० ।

अनु.—तत् ।

अर्थ.—सम्भव है, अवहरण करता है तथा पकाता है—इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है ।

प्रस्थं सम्भवति—प्रस्थ ठक्-प्रास्थिकः ।

इसी प्रकार-अवहरति व पचति अर्थों में होता है ।

उसे पकाता है—इस अर्थ में द्रोण शब्द से अण् तथा ठक् होते हैं ।

उदा.—द्रोणं पचति-द्रोण अण्-द्रौण सु-द्रौणः ।

द्रोण ठक्-द्रौणिकः ।

आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् 5.1.52

पद.—आढकाचितपात्रात् 5.1, खः 1.1 अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—सम्भवत्यवहरति पचति तत् ।

अर्थ—सम्भव है, अवहरण करता है तथा पकाता है—इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ आढक, आचित तथा पात्र प्रातिपदिकों से विकल्प से ख प्रत्यय होता है ।

पक्ष में परिमाणवाची होने से ठञ् होता है ।

उदा.—आढकं सम्भवति, अवहरति, पचति—आढक ख-आढकीनः ।

आढक ठञ्-आढकिकः ।

इसी प्रकार—आचितीनः, आचितिकः, पात्रीणः, पात्रिकः ।

द्विगोः ष्ठंश्च 5.1.53

पद.—द्विगोः 5.1, ष्ठन् 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—आढकाचितपात्रात्, खः, अन्यतरस्याम्, सम्भवत्यवहरति पचति तत् ।

1. काशि० 5.1.50 अपरा वृत्तिः ... सूत्रार्थद्वयमपि चैतदाचार्येण शिष्याः प्रतिपादिताः । तदुभयमपि ग्राह्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—सम्भव है, अवहरण करता है तथा पकाता है—इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ द्विगुसंज्ञक आढक, आचित तथा पात्रान्त प्रातिपदिकों से ष्ठन् प्रत्यय होता है तथा ख प्रत्यय विकल्प से होता है। ख के अभाव पक्ष में सामान्य प्रत्यय ठञ् होता है। जिसका लुक् हो जाता है। परन्तु विधान सामर्थ्य से ष्ठन् व ख का लुक् नहीं होता है।

उदा.—द्व्याढक ष्ठन्-द्व्याढकिक ङीष् सु-द्व्याढकिकी।

द्व्याढक ख-द्व्याढकीना (टाप्)।

द्व्याढक ठञ् (लुक्)-द्व्याढकी (ङीप्)।

इसी प्रकार—

द्व्याचितिकी, द्व्याचितीना, द्व्याचिता (टाप्)।
द्विपात्रिकी, द्विपात्रीणा, द्विपात्रा।

कुलिजाल्लुक् खौ च 5.1.54

पद.—कुलिजात् 5.1, लुक् खौ 1.2, च-अव्य०।

अनु.—द्विगोः, ष्ठन्, सम्भवत्यवहरतिपचति, ठञ्।

अर्थ—सम्भव है, अवहरण करता है तथा पकाता है—इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ, द्विगुसंज्ञक कुलिज शब्दान्त प्रातिपदिक से 'ख' तथा 'ष्ठन्' प्रत्यय होते हैं और प्रत्यय का लुक् होता है।

विधान सामर्थ्य के कारण ख तथा ष्ठन् प्रत्ययों का लुक् नहीं होता है। सूत्र के द्वारा कहा गया लुक् सामान्य प्रत्यय ठञ् का ही होता है।

उदा.—(1) द्वे कुलिजे सम्भवति, अवहरति, पचति—द्विकुलिज ठञ् (लुक् टाप् सु)—द्विकुलिजा।

द्विकुलिज ख-द्विकुलिजीना (टाप्, सु)।

द्विकुलिज ष्ठन्-द्विकुलिजिकी (ङीष्, सु)।

सोऽस्यांशवस्नभृतयः 5.1.55

पद.—सः 1.1, अस्य 6.1, अंशवस्नभृतयः 1.3

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—यदि प्रथमा समर्थ अंश (=भाग), वस्न (=मूल्य) तथा भृति (=वेतन) समानाधिकरण वाला हों तो षष्ठी के अर्थ में प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।

उदा.—पञ्च अंशो अस्य-पञ्चन् कन् (पा० 5.1.22)-पञ्चक सु-पञ्चकः।

पञ्च वस्नः, भृतिः-पञ्चकः।

तदस्य परिमाणम् 5.1.56

पद.—तद् 1.1, अस्य 6.1, परिमाणम् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—यदि प्रथमा समर्थ परिमाण समानाधिकरण वाला हो तो षष्ठी के अर्थ में प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।

उदा.—प्रस्थः परिमाणम् अस्य-प्रस्थ ठक्-प्रास्थिकः।

सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु 5.1.57

पद.—सङ्ख्यायाः 5.1 संज्ञा .... नेषु 7.3

अनु.—तदस्य, परिमाणम्।

अर्थ—यदि प्रथमान्त समर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक परिमाण समानाधिकरण वाला हो तथा संज्ञा, संघ, सूत्र, अध्ययन अर्थ गम्यमान हो तो षष्ठी विभक्ति के अर्थ में उक्त प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) संज्ञा-पञ्चेव पञ्चकाः। यहाँ कन् हुआ।

(2) सङ्घ-पञ्च परिमाणम् अस्य-पञ्चकः।

(3) सूत्र-अष्टावध्यायाः परिमाणम् अस्य सूत्रस्य-अष्टकम्।

(4) अध्ययन-पञ्च परिमाणम् अस्याऽध्ययनस्य-पञ्चकम्।

विशेष—1. स्तोम अर्थ में पंचदश आदि के लिए 'ड' प्रत्यय होता है।[1] यथा—

पंचदश मन्त्राः परिमाणम् अस्य-पंचदशः स्तोमः (पंचदशन् ड)।

2. शन् व शत् अन्त वाले संख्यावाची शब्दों से वेद के विषय में डिनि प्रत्यय होता है।[2]

पंचदश अहानि परिमाणम् अस्य-पंचदशन् डिनि-पंचदशिन् जस्-पंचदशिनः (तै०सं० 7.5.20.1)।

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टि-सप्तत्यशीतिनवतिशतम् 5.1.58

पद.—पङ्क्ति .... शतम् 1.1

अनु.—तद् अस्य परिमाणम्।

अर्थ—'परिमाण है इसका'—इस अर्थ में पंक्ति, विंशति,

1. महा० 5.1.58 (वा०)—स्तोमे डविधिः पञ्चदशाद्यर्थः।
2. शन् शतोर्डिनिश्छन्दसि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिंशत् चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति और शत–रूढ शब्द निपातन सिद्ध हैं। निपातन का अर्थ है कि ये निपातित शब्द में जो-जो प्रकृति, प्रत्यय तथा अन्य प्राप्त वा अप्राप्त कार्य हों, उनका विधान जानना चाहिए।

उदा.—(1) पंच (पादाः) परिमाणम् अस्य–पञ्चन् ति–पञ्च् ति (टि लोप)–पञ्च् क् ति (चोः कुः)–पञ्च् क् ति (निमित्ताऽपाये नैमित्तिकस्या०)–पंक्ति (नश्चा पदान्तस्य०)–पङ्क्ति (अनुस्वारस्य ययि०)–पङ्क्ति सु–पङ्क्तिः (= एक वैदिक छन्द)।

(2) द्वौ दशतौ परिमाणम् अस्य–द्वि दशत् शति च्–विन् शति (सर्वादेश)—विंशति सु–विंशतिः।

(3) त्रयो दशतः परिमाणम् अस्य–त्रि दशत् शत् त्रिन् शत्–त्रिंशत् सु–त्रिंशत्।

(4) चत्वारो दशतः परिमाणम् अस्य–चतुर्दशत् शत् चत्वारिन् शत्–चत्वारिंशत् सु–चत्वारिंशत्।

(5) पञ्च दशतः परिमाणम् अस्य–पञ्च दशत् शत्–पञ्चाशत् सु–पञ्चाशत्।

(6) षड् दशतः परिमाणम् अस्य–षड् दशत् ति–षष् ति (सर्वादेश, पदत्व का अभाव, जश्त्व न हुआ)–षष् टि (ष्टुना ष्टुः)–षष्टि सु–षष्टिः।

(7) सप्त दशतः परिमाणम् अस्य–सप्त दशत् ति–सप्त ति सु–सप्ततिः।

(8) अष्ट दशतः परिमाणम् अस्य–अष्ट दशत् ति अशी ति–अशीति सु–अशीतिः।

(9) नव दशतः परिमाणम् अस्य–नव दशत् ति–नव ति सु–नवति।

(10) दश दशतः परिमाणम् अस्य–दश दशत् त–शत सु–शतम्।

पञ्चद्दशतौ वर्गे वा 5.1.59

पद.—पञ्चद्दशतौ 1.2, वर्गे 7.1, वा–अव्य०।

अनु.—तदस्य, परिमाणम्।

अर्थ—'यह है परिमाण इसका'—इस विषय में वर्ग अभिधेय हो तो पञ्चत् व दशत् शब्दों का विकल्प से निपातन किया जाता है।

पञ्चन् व दशन् के संख्यावाची होने से पक्ष में (पा० 5.1.22) से कन् होता है।

उदा.—(1) पञ्चन् इति–पञ्च् अत्–पञ्चत्।

(2) इसी प्रकार–दशत्।

पक्ष में—पञ्चकः, दशकः।

सप्तनोऽञ् छन्दसि 5.1.60

पद.—सप्तनः 5.1, अञ् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—वर्गे, तद्, अस्य, परिमाणम्।

अर्थ—वेद के विषय में 'यह है परिमाण इसका' इस अर्थ में 'वर्ग' अभिधेय हो तो सप्तन् प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—सप्त परिमाणम् अस्य वर्गस्य–साप्तः।

द्र०—सप्त साप्तान्य सृजन् (तै० सं० 5.4.7.5)।

त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण् 5.1.61

पद.—त्रिंश ... शतोः 6.2 ब्राह्मणे 7.1 संज्ञायां 7.1 डण् 1.1

अनु.—तद् अस्य परिमाणम्।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो तो 'यह है परिमाण इसका' इस अर्थ में त्रिंशत् तथा चत्वारिंशत् प्रातिपदिकों से डण् प्रत्यय होता है, ब्राह्मण ग्रन्थ अभिधेय हो तो।

उदा.—(1) त्रिंशद् अध्यायाः परिमाणम् एषां ब्राह्मणानाम् –त्रिंशद् डण्–त्रिंश् अ–त्रैंश जस्–त्रैंशानि ब्राह्मणानि।

(2) इसी प्रकार—चात्वारिंशानि ब्राह्मणानि।

तदर्हति 5.1.62

पद.—तद् 2.1, अर्हति–तिङन्तपदम्।

अनु.—पूर्ववत्।

अर्थ—'अर्हति' इस अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।

श्वेतच्छत्रम् अर्हति – श्वैतच्छत्रिकः (ठक्)।

छेदादिभ्यो नित्यम् 5.1.63

पद.—छेदादिभ्यः 5.3, नित्यम् 1.1

अनु.—तदर्हति।

अर्थ—'पाने के योग्य है'—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ छेदादि प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय होता है।

उदा.—छेदं नित्यम् अर्हति–छेद ठक्–छैदिकः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—'विराग' को 'विरङ्ग' आदेश भी होता है ।[1] यथा—विरागम् अर्हति—विरङ्ग ठक्—वैरङ्गिकः ।

शीर्षच्छेदाद् यच्च 5.1.64

पद.—शीर्षच्छेदाद् 5.1, यत् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—तदर्हति ।

अर्थ—'पाने के योग्य है'—इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ शीर्षच्छेद प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है तथा यथाविहित प्रत्यय भी होता है ।

यहाँ प्रत्यय के सन्नियोग से 'शिरस्' के स्थान पर 'शीर्ष' आदेश निपातन से किया गया है ।

उदा.—शिरश्छेदम् अर्हति–शीर्षच्छेद्यः (यत्) ।
शैर्षच्छेदिकः (ठक्) ।

दण्डादिभ्यः 5.1.65

पद.—दण्डादिभ्यः 5.3

अनु.—तदर्हति, यत् ।

अर्थ—पाने के योग्य है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ दण्ड आदि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—दण्डम् अर्हति–दण्ड्यः ।

विशेष—काशिकाकार ने प्रकृतसूत्र में 'यत्' का अनुवर्त्तन न करके 'य' प्रत्यय स्वीकार करते हुए सूत्र का स्वरूप 'दण्डादिभ्यो यः' इस प्रकार माना है ।[2] परन्तु महाभाष्यकार के अनुसार 'य' प्रत्यय मानना अनुपयुक्त प्रतीत होता है ।[3]

लघुसिद्धान्तकौमुदीकार श्री वरदराज ने पूर्वसूत्र से 'यत्' प्रत्यय का अनुवर्त्तन न करके सूत्र में इसका योग कर दिया है ।[4] परन्तु स्वयं इनके गुरु भट्टोजि दीक्षित को यह अभिप्रेत नहीं है ।[5] नागेश कैयट व हरदत्त भी यहाँ 'यत्' का अनुवर्त्तन करने के पक्षधर हैं ।[6]

छन्दसि च 5.1.66

पद.—छन्दसि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—यत्, तदर्हति ।

अर्थ—वेद के विशय में 'अर्हति' अर्थ में द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—उदक्या वृत्तयः । गत्यों देशः ।

पात्राद् घंश्च 5.1.67

पद.—पात्रात् 5.1, घन् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—यत्, तदर्हति ।

अर्थ—पाने के योग्य है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ पात्र शब्द से घन् तथा यत् प्रत्यय होते हैं ।

पात्र शब्द के परिमाणवाची होने से ठञ् व ठक् दोनों की प्राप्ति थी ।

उदा.—पात्रम् अर्हति—पात्र घन्–पात्रियः । पात्र यत्–पात्र्यः ।

कडङ्करदक्षिणाच्छ च 5.1.68

पद.—कडङ्करदक्षिणात् 5.1, छ–लुप्तविभक्तिकनिर्देशः, च–अव्य० ।

अनु.—यत् तद् अर्हति ।

अर्थ—पाने के योग्य है—इस अर्थ में कडङ्कर और दक्षिणा प्रातिपदिकों से छ और यत् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.— कडङ्करम् अर्हति–कडङ्कर छ–कडङ्करीयः,
कडङ्कर यत्–कडङ्कर्यः ।
दक्षिणा छ–दक्षिणीयः ।
दक्षिणा यत्–दक्षिण्यः । (भट्टि० 2.29)।

स्थालीबिलात् 5.1.69

पद.—स्थालीबिलात् 5.1,

अनु.—यत्, छ, तदर्हति ।

अर्थ—पाने के योग्य है—इस अर्थ में स्थालीबिल द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से छ तथा यत् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—स्थालीबिलम् अर्हन्ति–स्थालीबिल छ–स्थालीबिलीय जस्–स्थालीबिलीयाः तण्डुलाः ।
स्थालीबिल यत्–स्थालीबिल्याः ।

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ 5.1.70

पद.—यज्ञर्त्विग्भ्याम् 5.2, घखञौ 1.2

अनु.—तद् अर्हति ।

1. विरागो विरङ्गं च—ग०सू० (काशि०) ।
2. काशि०—5.1.66 ।
3. महा० 3.1.97—अचो यत् ।
4. लघु सि०कौ०—सूत्र 1149
5. वै०सि०
6. काशि० (पद०) 5.1.66 इह 'दण्डादिभ्य' इत्येतावत् सूत्रम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'अर्हति' अर्थ में द्वितीया समर्थ यज्ञ तथा ऋत्विज् प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके घ तथा खञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—यज्ञम् अर्हति–यज्ञ घ–यज्ञिय सु–यज्ञियः।

ऋत्विज् खञ्–आर्त्विज् ईन सु–आर्त्विजीनः। (भट्टि० 2.29)।

विशेष—यज्ञ कर्म और ऋत्विज् कर्म के योग्य है—इस अर्थ में भी यज्ञ व ऋत्विज् शब्दों से पूर्वोक्त प्रत्यय होते हैं।[1] यथा—यज्ञ घ–यज्ञियः।

ऋत्विज् खञ्–आर्त्विजीनम्।

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति 5.1.71

पद.—पारायण .... णम् 2.1, वर्त्तयति–क्रिया०।

अनु.—तद्, ठञ्।

अर्थ—बरतता है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ पारायण, तुरायण तथा चान्द्रायण प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होता है।

पा० 5.1.70 पर 'अर्हति' का अधिकार समाप्त हो चुका है। इसके साथ 'आर्हादगो०' पा० 5.1.19 वाला ठक् का अधिकार भी समाप्त हुआ। अतः प्रकृतसूत्र से लेकर आगे सामान्य प्रत्यय ठञ् का अधिकार चलेगा।

उदा.—पारायणं वर्त्तयति–पारायणिकः।

तुरायण (= वर्ष पर्यन्त चलने वाली इष्टि) ठञ्–तौरायणिकः।

चान्द्रायण ठञ्–चान्द्रायणिकः।

संशयमापन्नः 5.1.72

पद.—संशयम् 2.1, आपन्नः 1.1

अनु.—तत्, ठञ्।

अर्थ—प्राप्त–इस अर्थ में द्वितीया समर्थ संशय प्रातिपदिक से ठञ् होता है।

उदा.—संशयम् आपन्नः–सांशयिकः।

योजनं गच्छति 5.1.73

पद.—योजनम् 2.1, गच्छति–क्रिया०।

अनु.—तद्, ठञ्।

अर्थ—जाता है—अर्थ में द्वितीया समर्थ योजन प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—योजनं गच्छति–यौजनिकः।

विशेष—क्रोशशत व योजनशत शब्दों से 'गच्छति' अर्थ में ठञ् होता है।[2] यथा—क्रोशशत ठञ्–क्रौशशतिकः।

योजनशत ठञ्–यौजनशतिकः।

पथः ष्कन् 5.1.74

पद.—पथः 5.1, ष्कन् 1.1

अनु.—तद्, गच्छति।

अर्थ—जाता है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ पथिन् प्रातिपदिक से ष्कन् प्रत्यय होता है। षकार व नकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—पन्थानं गच्छति–पथिन् ष्कन्–पथिन् क–पथिक (पा० 8.2.7)—पथिकः।

पन्थो ण नित्यम् 5.1.75

पद.—पन्थः 1.1, ण–लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, नित्यम् 1.1

अनु.—पथः, गच्छति, तद्।

अर्थ—नित्य जाता है—इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ पथिन् प्रातिपदिक के स्थान पर पन्थ आदेश होता है तथा ण प्रत्यय होता है।

उदा.—पन्थानं नित्यं गच्छति–पथिन् ण–पन्थ ण–पान्थ अ–पान्थ् अ–पान्थः।

उत्तरपथेनाहृतं च 5.1.76

पद.—उत्तरपथेन 3.1, आहृतम् 1.1 च–अव्य०।

अनु.—गच्छति, ठञ्।

अर्थ—लाया हुआ—इस अर्थ में तथा 'जाता है'—इस अर्थ में तृतीयासमर्थ उत्तरपथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—उत्तरपथेन आहृतम्–औत्तरपथिकम्।

उत्तरपथेन गच्छति–औत्तरपथिकः।

विशेष—1. 'आहृत' व गच्छति के अर्थ में वारि, जंगल, स्थल और कान्तार पूर्वक तृतीया समर्थ पथिन् शब्द से ठञ् होता है।[3] यथा—

---

1. महा० 5.1.71 (वा०)—यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम्।
2. महा० 5.1.74 (वा०)—क्रोशशत योजनशतयोरुपसंख्यानम्।
3. महा० 5.1.77 (वा०)—आहृतप्रकरणे वारिजंगलस्थलकान्तारपूर्वपदादुपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारिपथेन आहृतम्–वारिपथिकम् ।
जंगलपथेन आहृतम्–जांगलपथिकम् ।
स्थलपथेन आहृतम्–स्थलपथिकम् ।
कान्तारपथेन आहृतम्–कान्तारपथिकम् ।

इसी प्रकार 'गच्छति' के पक्ष में रूप बनेंगे ।

2. 'आहृत' व 'गच्छति' के अर्थ में अजपथ और शङ्कुपथ शब्दों से ठञ् प्रत्यय होता है ।[1]

अजपथेन आहृतम्, गच्छति वा—
आजपथिकः ।

इसी प्रकार—शाङ्कुपथिकः ।

3. मधुक और मरिच–इन अर्थों में स्थल पूर्वक पथिन् शब्द से अण् होता है ।[2]—

स्थलपथेन आहृतम्—स्थालपथं मधुकम् ।
स्थालपथं मारीचम् ।

कालात् 5.1.77

पद.—कालात् 5.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—यह अधिकार है । पा० 5.1.96 तक इसका अधिकार जाता है ।

इसका अर्थ है कि प्रकृतसूत्र से लेकर 'व्युष्टादिभ्यो' पा० 5.1.96 तक जो-जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे सभी कालवाची प्रातिपदिकों से होते हैं ।

तेन निर्वृत्तम् 5.1.78

पद.—तेन 3.1, निर्वृत्तम् 1.1

अनु.—कालात्, ठञ् ।

अर्थ—बनाया हुआ—अर्थ में तृतीया समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् होता है ।

उदा.—अह्ना निर्वृत्तम्—आह्निकम् ।

इसी प्रकार—सांवत्सरिकम् ।

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी 5.1.79

पद.—तम् 2.1, अधीष्टः 1.1, भृतः 1.1, भूतः 1.1, भावी 1.1

अनु.—कालात्, ठञ् ।

अर्थ—सत्कारपूर्वक व्यापार, खरीदा हुआ, हो चुका तथा होने वाला—इन अर्थों में द्वितीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—मासम् अधीष्टः—मासिकः (आचार्यः) = वह अध्यापक जिसे सत्कारपूर्वक महीने भर के लिए रखा है ।

इसी प्रकार—मासिकः (भृतः) = वह नौकर जो मास भर के लिए रखा गया है ।

मासिकः (व्याधिः) = वह रोग जो मास भर चला है ।

मासिकः (उत्सवः) = वह उत्सव जो मास भर चलता है ।

मासाद्वयसि यत्खञौ 5.1.80

पद.—मासात् 5.1, वयसि 7.1, यत्खञौ 1.2

अनु.—भूतः, कालात् ।

अर्थ—अवस्था गम्यमान हो तो 'भूत' अर्थ में 'मास' प्रातिपदिक से यत् और खञ् प्रातिपदिक होते हैं । यद्यपि यहाँ 'अधीष्ट' आदि चारों पदों का अनुवर्त्तन होता है, तथापि अर्थ की योग्यतावशात् केल 'भूत' अर्थ की संगति होती है ।

उदा.—मासं भूतः–मास यत्–मास्य सु–मास्यः । मास ख–मासीनः ।

जो (शिशु आदि) मास भर का हो गया हो, उसे 'मास्य' या 'मासीन' कहा जायेगा ।

विशेष—शरीर की अवस्था वाच्य हो तो पूर्वोक्त प्रत्यय होता है—मास ठञ्–मासिकं कृत्यम् ।

यहाँ सामान्य ठञ् हुआ है । कारण कि 'अवस्था' गम्यमान नहीं है ।

द्विगोर्यप् 5.1.81

पद.—द्विगोः 5.1, यप् 1.1

अनु.—मासात्, वयसि, भूतः ।

अर्थ—'अवस्था' गम्यमान हो तो 'भूत' अर्थ में द्विगुसंज्ञक मासान्त प्रातिपदिक से यप् प्रत्यय होता है ।

उदा.—द्वौ मासौ भूतः–द्विमास यप्–द्विमास्यः ।

षण्मासाण्ण्यच्च 5.1.82

पद.—षण्मासात् 5.1, ण्यत् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—यप्, वयसि, भूतः ।

1. महा० 5.1.77 (वा०)—अजपथ शंकुपथाभ्यां चोपसंख्यानम् ।
2. महा० 5.1.77 (वा०)—मधुकमरिचयोरण् स्थलात् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'अवस्था' गम्यमान हो तो 'भूत' अर्थ में षण्मास प्रातिपदिक से ण्यत् तथा यप् प्रत्यय होता है। सामान्य ठञ् प्रत्यय भी होता है।

उदा.—षण्मास ण्यत्-षाण्मास्यः।
षण्मास यप्-षण्मास्यः।
षण्मास ठञ्-षाण्मासिकः।

अवयसि ठंश्च 5.1.83

पद.—अवयसि 7.1, ठन् 1.1, च-अव्य०।

अनु.—षण्मासात्, ण्यत्, भूतः।

अर्थ—यदि अवस्था गम्यमान न हो तो भूत अर्थ में षण्मास प्रातिपदिक से ठन् तथा ण्यत् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—षण्मास ठन्-षण्मासिकः।
षण्मास ण्यत्-षाण्मास्यः।

समायाः खः 5.1.84

पद.—समायाः 5.1, खः 1.1

अनु.—तम् अधीष्टः, भृतः, भूतः भावी।

अर्थ—अधीष्ट, भृत, भूत तथा भावी—इन अर्थों में द्वितीया समर्थ समा प्रापिदिक से ख प्रत्यय होता है।

उदा.—समा ख-समीन सु-समीनः।

द्विगोर्वा 5.1.85

पद.—द्विगोः 5.1, वा-अव्य०।

अनु.—समायाः, खः, अधीष्टो, भृतो, भूतो, भावी।

अर्थ—अधीष्ट, भृत, भूत तथा भावी—इन अर्थों में द्वितीयासमर्थ समा शब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विकल्प से ख प्रत्यय होता है।

पक्ष में सामान्य प्रत्यय ठञ् भी होता है।

उदा.—द्विसम ख-द्विसमीनः।
द्विसम ठञ्-द्वैसमिकः।

रात्र्यहःसंवत्सराच्च 5.1.86

पद.—रात्र्यहःसंवत्सरात् 5.1, च-अव्य०।

अनु.—द्विगोः, वा, खः, तमधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी।

अर्थ—अधीष्ट आदि अर्थों में रात्रि, अहन् तथा संवत्सर—ये शब्द हैं जिसके अन्त में, ऐसे द्वितीया समर्थ व द्विगु-संज्ञक प्रातिपदिक से विकल्प से ख प्रत्यय होता है।

पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् भी होता है।

उदा.—द्विरात्र ख-द्विरात्रीणः।
द्वि रात्र ठञ्-द्वैरात्रिकः।
त्र्यह ख-त्र्यहीणः।
त्र्यह ठञ्-त्रैयह्निकः।
द्विसंवत्सर ख-द्विसंवत्सरीणः।
द्विसंवत्सर ठञ्-द्विसांवत्सरिकः।

वर्षाल्लुक् च 5.1.87

पद.—वर्षात् 5.1, लुक् 1.1, च-अव्य०।

अनु.—द्विगोः, वा, खः, तमधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी।

अर्थ—'वर्ष' शब्द है अन्त में जिसके ऐसे द्विगुसंज्ञक, द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से अधीष्टादि अर्थों में विकल्प करके ख प्रत्यय होता है तथा विकल्पेन प्रत्यय का लुक् होता है।

यहाँ तीन रूप बनेंगे।

उदा.—(1) त्रि वर्ष ख-त्रिवर्षीणः। (ख)
(2) त्रिवर्ष ठञ्-त्रिवार्षिकः। (ठञ्)
(3) त्रिवर्ष सु-त्रिवर्षः। (ख लुक्। ठञ् लुक्)

अन्य उदाहरण—पूर्वपद वृद्धि होकर—त्रैवार्षिकम् (मनु० 11.6)।

चित्तवति नित्यम् 5.1.88

पद.—चित्तवति 7.1, नित्यम् 1.1

अनु.—वर्षात्, द्विगोः, तमधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी।

अर्थ—यदि 'चेतन' प्रत्ययार्थ गम्यमान हो तो अधीष्ट आदि अर्थों में वर्ष शब्दान्त द्विगुसंज्ञक द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का नित्य लुक् होता है।

उदा.—द्विवर्ष सु-द्विवर्षः (प्रत्यय का लुक् हुआ)। साहित्य गत आर्ष प्रयोग—द्र० दशवर्षीयः (वि०पु० 5.12.17)। द्वादशवार्षिकी (मनु० 9.94)।

विशेष—'चेतन' अर्थ गम्यमान न हो तो सूत्रोक्त लुक् नहीं होता है—

द्विवर्षीणो व्याधिः—यहाँ 'चेतन' अर्थ वाच्य नहीं है। अतः ख प्रत्यय का लुक् न हुआ।

षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते 5.1.89

पद.—षष्टिकाः 1.3, षष्टिरात्रेण 3.1, पच्यन्ते-कर्मवाच्ये बहुवचनान्तक्रियारूपम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः ।

अर्थ—पकाया जाता है—इस अर्थ में 'षष्टिक' शब्द निपातन सिद्ध है । अष्टाध्यायी में बहुवचनान्त निपातन अनेकत्र प्राप्त होता है —

षष्टिकाः (पा० 5.1.89) ।

कुस्तुम्बुरूणि (पा० 6.1.138) ।

वृत्तिकार ऐसे पाठों को अनुचित ठहराते हैं । द्र०—

बहुवचनम् अतन्त्रम् महा० (प्रदी०) 5.1.89 ।

बहुवचनमपि अतन्त्रमत्र सूत्रे काशि० (न्यास०) 6.1.143

उदा.—षष्टिरात्रेण पच्यन्ते—इस दशा में तृतीया समर्थ षष्टिरात्र शब्द से कन् प्रत्यय तथा 'रात्रि' पद का लोप होकर—

षष्टि कन् जस्–षष्टिकाः (=धान्य विशेष जो दो महीनों में पकते हैं) ।

वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि 5.1.90

पद.—वत्सरान्तात् 5.1, छः 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—तमधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी ।

अर्थ—अधीष्ट आदि अर्थों में वेद के विषय में वत्सर शब्दान्त द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है ।

उदा.—इदावत्सरीय (काठ० 13.15) ।

सम्परिपूर्वात् ख च 5.1.91

पद.—सम्परिपूर्वात् 5.1, ख–लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, च–अव्य० ।

अनु.—छन्दसि, वत्सरान्तात्, छः, तमधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी ।

अर्थ—छन्दस् अर्थात् वेद के विषय में अधीष्टादि अर्थों में सम्, परि शब्द हैं पूर्व में जिसके ऐसे वत्सर अन्त वाले द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से ख तथा छ प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—संवत्सर ख–संवत्सरीणः (तै० सं० 4.3.13.4) ।

संवत्सर छ–संवत्सरीयः ।

परिवत्सर ख–परिवत्सरीणः (ऋ० 7.10.3.8) ।

परिवत्सर छ–परिवत्सरीयः

(काठ० सं० 13.15.71)

तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् 5.1.92

पद.—तेन 3.1, परि .... सुकरम् 1.1

अनु.—कालात्, ठञ् ।

अर्थ—जीता जा सकता है, प्राप्त करने योग्य है, किया जा सके तथा सुगमता से किया जा सके—इन अर्थों में तृतीया समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) मासेन परिजय्यः–मासिकः ।

(2) मासेन लभ्यः–मासिकः ।

(3) मासेन कार्यम्–मासिकम् ।

(4) मासेन सुकरः–मासिकः ।

तदस्य ब्रह्मचर्यम् 5.1.93

पद.—तद् 1.1, अस्य 6.1, ब्रह्मचर्यम् 1.1

अनु.—कालात् 5.1, ठञ् 1.1

अर्थ—ब्रह्मचर्य अर्थ गम्यमान हो तो षष्ठी के अर्थ में प्रथमा समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है ।

सूत्रस्थ 'तद्' पद में प्रथमा व द्वितीया—दोनों विभक्तियों का योग सम्भव है । अतःकुछ विद्वान् द्वितीया समर्थ से उक्त प्रत्यय का विधान मानते हैं ।

उदा.—(1) मासोऽस्य ब्रह्मचर्यस्य—यहाँ प्रथमा समर्थ 'मास' शब्द से ठञ् होकर 'मासिकः' बनता है । इस पक्ष में मासिक शब्द ब्रह्मचर्य का विशेषण होगा–मासिकं ब्रह्मचर्यम् ।

(2) मासं ब्रह्मचर्यस्य—यहाँ द्वितीया समर्थ 'मास' शब्द से ठञ् होकर 'मासिक' शब्द बनता है । इस पक्ष में 'मासिक' शब्द ब्रह्मचारी का वाचक होगा ।

यथा—मासिको ब्रह्मचारी ।

विशेष—1. 'तदस्य ब्रह्मचर्यम्' इस अर्थ में षष्ठी समर्थ महानाम्नी आदि से ठञ् होता है ।[1]—

महानाम्निकम् ।

2. उसका आचरण करता है—इस अर्थ में ठञ् होता है ।[2]—

महानाम्नीः चरति–माहानामिकः ।

3. अवान्तरदीक्षा आदि शब्दों से 'डिनि' प्रत्यय होता है ।[3]

---

1. महा० 5.1.94 (वा०)—महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्य उपसंख्यानम् ।
2. महा० 5.1.94 (वा०)—तच्चरतीति च ।
3. महा० 5.1.94 (वा०)—अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिर्वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—अवान्तदीक्षां चरति–अवान्तर डिनि–अवान्तर दीक्षिन् सु–अवान्तरदीक्षी ।

4. अष्टाचत्वारिंशत् शब्द से ड्वुन् और डिनि प्रत्यय होते हैं ।[1]

अष्टाचत्वारिंशत् ड्वुन्–अष्टाचत्वारिंशकः ।
अष्टाचत्वारिंशत् डिनि–अष्टाचत्वारिंशी ।

5. चातुर्मास्यों का य लोप होता है तथा ड्वुन् व डिनि प्रत्यय होते हैं ।[2]—

चातुर्मास्यानि चरति–चातुर्मास्य ड्वुन्–चातुर्मास् अक–चातुर्मासकः ।

चातुर्मास्य डिनि–चातुर्मासी ।

6. 'यज्ञ में वहाँ होने वाला'—इस अर्थ में चतुर्मास शब्द से ण्य प्रत्यय होता है ।[3]—

चतुर्षु भासेषु भवानि—

चतुर्मास ण्य–चातुर्मास्य जस्–चातुर्मास्यानि ।

7. संज्ञा अर्थ में चतुर्मास शब्द से अण् होता है ।[4]—

चतुर्षु मासेषु भवा–चतुर्मास अण्–चातुर्मास ङीप् सु–चातुर्मासी ।

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः 5.1.94

पद.—तस्य 6.1, च–अव्य०, दक्षिणा 1.1, यज्ञाख्येभ्यः 5.3

अनु.—ठञ् ।

अर्थ—'दक्षिणा' इस अर्थ में षष्ठी समर्थ यज्ञ की आख्या वाले प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—अग्निष्टोमस्य दक्षिणा–अग्निष्टोम ठञ्–आग्निष्टोमिकी (ङीप्, सु) ।

तत्र च दीयते कार्यं भववत् 5.1.95

पद.—तत्र–अव्य०, च–अव्य०, दीयते–क्रिया०, कार्यम् 1.1, भववत्–अव्य० ।

अनु.—कालात् ।

अर्थ—दिया जाता है, कार्य—इन अर्थों में सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से भव अर्थ के समान प्रत्यय होता है ।

उदा.—मासे दीयते–मासिकम् ।
मासे कार्यम्–मासिकम् ।
प्रवृषि दीयते–प्रावृषेण्यम् ।
प्रवृषि कार्यम्–प्रावृषेण्यम् ।

व्युष्टादिभ्योऽण् 5.1.96

पद.—व्युष्टादिभ्यः 5.3, अण् 1.1

अनु.—तत्र, दीयते, कार्यम् ।

अर्थ—दिया जाता है, कार्य—इन अर्थों में सप्तमी समर्थ व्युष्टादि प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होता है ।

उदा.—व्युष्टे दीयते (कार्यं वा)–व्युष्ट अण् (न यवाभ्यां पदान्ता०)–वैयुष्टम् ।

नित्य अण्–नैत्य कन्–नैत्यक सु–नैत्यकम् (मनु० 2.104)।

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ 5.1.97

पद.—तेन 3.1, यथाकथाचहस्ताभ्याम् 5.2, णयतौ 1.2

अनु.—दीयते, कार्यम् ।

अर्थ—दिया जाता है तथा कार्य—इन दो अर्थों में तृतीयासमर्थ यथाकथा च और हस्त प्रातिपदिकों से क्रमशः ण तथा यत् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—यथाकथाच दीयते—यथाकथा च ण–याथा-कथाच अ–याथाकथाचम् । सु ।

हस्तेन दीयते–हस्त यत्–हस्त्यम् (सु) ।

सम्पादिनि 5.1.98

पद.—सम्पादिनि 7.1

अनु.—तेन ठञ् ।

अर्थ—शोभित किया—इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से ठञ् होता है ।

उदा.—कर्ण वेष्टकाभ्यां सम्पादि मुखम्–कार्णवेष्टकिकं (मुखम्) ।

इसी प्रकार—वास्त्रयुगिकं (शरीरम्) ।

---

1. महा० 5.1.94 (वा०)—अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुंश्च वक्तव्यः ।
2. महा० 5.1.94 (वा०)—चातुर्मास्यानां यलोपश्च ड्वुँश्च डिनिश्च वक्तव्यः ।
3. महा० 5.1.94 (वा०)—चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भवे ।
4. महा० 5.1.94 (वा०)—संज्ञायामण्वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मवेषाद्यत् 5.1.99

पद.—कर्मवेषात् 5.1, यत् 1.1

अनु.—तेन सम्पादिनि ।

अर्थ—शोभित किया—इस अर्थ में कर्मन् तथा वेष तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—कर्मणा सम्पद्यते—कर्मन् यत्-कर्मण्य सु-कर्मण्यम् । वेषेण सम्पद्यते-वेष्यः ।

तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः 5.1.100

पद.—तस्मै 4.1, प्रभवति-क्रिया०, सन्तापादिभ्यः 5.3

अनु.—ठञ् ।

अर्थ—समर्थ है—इस अर्थ में चतुर्थी समर्थ सन्तापादि प्रातिपदिकों से ठञ् होता है ।

उदा.—सन्तापाय प्रभवति—सान्तापिकः ।

योगाद्यच्च 5.1.101

पद.—योगात् 5.1, यत् 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—तस्मै, प्रभवति, ठञ् ।

अर्थ—समर्थ है—इस अर्थ में चतुर्थी समर्थ योग प्रातिपदिक से यत् तथा ठञ् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—योगाय प्रभवति-
योग्यः, यौगिकः ।

कर्मण उकञ् 5.1.102

पद.—कर्मणः 5.1, उकञ् 1.1

अनु.—तस्मै, प्रभवति ।

अर्थ—समर्थ है—इस अर्थ में चतुर्थी समर्थ कर्मन् प्रातिपदिक से उकञ् होता है ।

उदा.—कर्मणे प्रभवति—कर्मन् उकञ्-कार्मन् उक-कार्मुक सु-कार्मुकम् (धनुः) ।

समयस्तदस्य प्राप्तम् 5.1.103

पद.—समयः 1.1, तद् 1.1, अस्य 6.1, प्राप्तम् 1.1

अनु.—ठञ् ।

अर्थ—यदि प्रथमा समर्थ 'समय' प्रातिपदिक 'प्राप्त' समानाधिकरण वाला हो तो उस प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् होता है ।

उदा.—समयः प्राप्तोऽस्य-समय ठञ्-सामयिक सु-सामयिकं (कार्यम्) ।

ऋतोरण् 5.1.104

पद.—ऋतोः 5.1, अण् 1.1

अनु.—तद् अस्य प्राप्तम् ।

अर्थ—यदि ऋतु शब्द प्राप्त समानाधिकरण वाला हो तो षष्ठी के अर्थ में प्रथमा समर्थ ऋतु प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है ।

उदा.—ऋतुः प्राप्तोऽस्य-ऋतु अण्-आर्तव सु-आर्तवम् (पुष्पम्) ।

छन्दसि घस् 5.1.105

पद.—छन्दसि 7.1, घस् 1.1

अनु.—ऋतोः, तदस्य, प्राप्तम् ।

अर्थ—वेद के विषय में 'तदस्य प्राप्तम्' इस अर्थ में ऋतु शब्द से घस् प्रत्यय होता है ।

उदा.—ऋतु घस्-ऋतु इय-ऋत्विय सु-ऋत्वियः ('सिति च' पद संज्ञा । 'ओर्गुणः' की प्रवृत्ति नहीं होती है) ।

अयं ते योनिर्ऋत्वियः (ऋ० 3.29.10) ।

कालाद्यत् 5.1.106

पद.—कालात् 5.1, यत् 1.1

अनु.—तदस्य, प्राप्तम् ।

अर्थ—'तदस्य प्राप्तम्' इस अर्थ में काल प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—कालः प्राप्तोऽस्य-काल्यः ।

प्रकृष्टे ठञ् 5.1.107

पद.—प्रकृष्टे 7.1, ठञ् 1.1

अनु.—कालात्, तदस्य ।

अर्थ—प्रकर्ष अर्थ में वर्त्तमान काल शब्द जो प्रथमासमर्थ उससे षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—प्रकृष्टो (दीर्घः) कालोऽस्य-कालिकम् (वैरम्) = वह वैर जो दीर्घकाल तक चलता है ।

प्रकृतसूत्र में यद्यपि सामान्य प्रत्यय ठञ् की अनुवृत्ति स्वतः सिद्ध है, तदपि सूत्र में पुनः ठञ् का ग्रहण स्पष्टता के लिए है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोजनम् 5.1.108

पद.—प्रयोजनम् 1.1

अनु.—तदस्य, ठञ् ।

अर्थ—प्रयोजन समानाधिकरण वाले प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) धर्मः प्रयोजनम् अस्य–धार्मिकः (धार्मिकी–रा० 1.8.13) ।

(2) वितण्डा ठञ्–वैतण्डिकः ।

(3) सन्तान प्रयोजनम् अस्य–सान्तानिकम् (मनु० 11.01) ।

विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः 5.1.109

पद.—विशाखाषाढात् 5.1, अण् 1.1, मन्थदण्डयोः 7.2

अनु.—प्रयोजनम्, तदस्य ।

अर्थ—प्रयोजन समानाधिकरण वाले प्रथमासमर्थ विशाखा तथा अषाढ शब्दों से क्रमशः मन्थ तथा दण्ड वाच्य हो तो अण् प्रत्यय होता है ।

उदा.—विशाखा प्रयोजनम् अस्य मन्थस्य–वैशाखो मन्थः।

अषाढः—प्रयोजनम् अस्य दण्डस्य—आषाढो दण्डः ।

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः 5.1.110

पद.—अनुप्रवचनादिभ्यः 5.3, छः 1.1

अनु.—तदस्य, प्रयोजनम् ।

अर्थ—प्रयोजन समानाधिकरण वाले प्रथमा समर्थ अनुप्रवचनादि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय होता है ।

उदा.—अनुप्रवचनं प्रयोजनम् अस्य—अनुप्रवचनीयम् ।

विशेष—1. विश, पूरी, यत् और रुह—ये चार धातुएँ जिसकी प्रकृति हैं, ऐसा जो 'यु' (=अन) उससे पूर्व में स्थित पद से छप्रत्यय होता है ।[1] —

गृहप्रवेशनं प्रयोजनम् अस्य–गृहप्रवेशनीयम् ।
प्रपापूरणं प्रयोजनम् अस्य–प्रपापूरणीयम् ।
अश्वप्रपतनं प्रयोजनम् अस्य–अश्वप्रपतनीयम् ।
प्रासादारोहणं प्रयोजनम् अस्य–प्रासादारोहणीयम् ।

2. स्वर्ग आदि से यत् प्रत्यय होता है ।[2]—

स्वर्गः प्रयोजनम् अस्य–स्वर्ग्यम् (मनु० 3.106) । आयुष्यम् ।

3. पुण्याहवाचन आदि शब्दों से प्रत्यय कालुक् होता है ।[3]—

पुण्याहवाचनं प्रयोजनम् अस्य–पुण्याहवाचनम् ।

समापनात् सपूर्वपदात् 5.1.111

पद.—समापनात् 5.1, सपूर्वपदात् 5.1

अनु.—तदस्य, प्रयोजनम्, छः ।

अर्थ—जिसका पूर्वपद विद्यमान है, ऐसे समापन प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है, 'तदस्य प्रयोजनम्' विषय में ।

उदा.—छन्दस्समापनं प्रयोजनम् अस्य–छन्दस्समापनीयम् ।

ऐकागारिकट् चौरे 5.1.112

पद.—ऐकागारिकट् 1.1, चौरे 7.1

अनु.—तदस्य, प्रयोजनम् ।

अर्थ—'तदस्य प्रयोजनम्' इस अर्थ में 'चौर' अभिधेय हो तो ऐकागारिकट् शब्द निपातनसिद्ध है ।

उदा.—एकागार इकट् – ऐकागारिकः (चौरः) ।

इसे टित् करने का प्रयोजन स्त्रीत्व में ङीप् करना है ।

आकालिकडाद्यन्तवचने 5.1.113

पद.—आकालिकट् 1.1, आद्यन्तवचने 7.1

अनु.—तदस्य, प्रयोजनम् ।

अर्थ—'तदस्य प्रयोजनम्' विषय में आद्यन्त विशेषण हो तो आकालिकट् शब्द निपातन सिद्ध है ।

यहाँ ठञ् का अधिकार समाप्त हो गया है ।

उदा.—समान कालः प्रयोजनम् अस्य–समानकाल इकट् —आकाल इकट् (सर्वादेश)–आकालिक सु–आकालिकः । आकालिकः स्तनयित्नुः = बिजली की कौंध, जिसके आदि व अन्त का पता न हो अर्थात् कब उत्पन्न हुई और कब समाप्त हो गई ।

---

1. महा० 5.1.111 (वा०)—विशिपूरिपतिरुहि प्रकृतेरनात्सपूर्वपदादुपसंख्यानम् ।
2. महा० 5.1.111 (वा०)—स्वर्गादिभ्यो यद् वक्तव्यः ।
3. महा० 5.1.111 (वा०)—पुण्याहवाचनादिभ्यो लुग्वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाल शब्द से ठन् भी होता है ।[1]—

विशेष—1. आकाल ठन्—आकालिकः ।

ठन् और ठञ्–दोनों प्रत्ययों में शब्द के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता है । केवल स्त्रीप्रत्यय में भेद है । ठञ् प्रत्ययान्त से ङीप् (आकालिकी) होता है तथा ठन् प्रत्ययान्त से टाप् (आकालिका) होता है ।

2. वार्तिककार ने प्रकृतसूत्र में गौरव माना है । वे इसके स्थान पर 'आकालाट् ठंश्च' ऐसा वार्त्तिक का पाठ करते हैं—

वार्तिककारो मन्यते । ..... । आकालाट् ठंश्चेति सूत्रं कर्त्तव्यम् ।[2]

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः 5.1.114

पद.—तेन 3.1, तुल्यम् 1.1, क्रिया 1.1, चेत्–अव्य०, वतिः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—'तुल्य' अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होता है, परन्तु जो तुल्य हो वह क्रिया ही हो ।

वति के इकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते (अथवा–ब्राह्मणेन तुल्यं क्रिया)—इस दशा में वति होकर 'ब्राह्मणवत्' बनता है । 'तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः' से अव्यय संज्ञा । अव्ययादाप् सुपः से 'सु' का लुक् ।

विशेष—1. सूत्र की शर्त के अनुसार—

जहाँ क्रिया की तुल्यता नहीं होती है, अपितु गुण या द्रव्य की तुल्यता होती है, वहाँ उक्त वति प्रत्यय नहीं होता है—

पुत्रेण तुल्यः स्थूलो देवः—यहाँ स्थूलत्व अर्थात् गुण की तुल्यता है । अतः प्रत्यय न हुआ ।

इसी प्रकार—'गवा तुल्यो गवयः' यहाँ द्रव्य की तुल्यता दर्शाई गई है । अतः वति प्रत्यय नहीं होता है ।

2. स्त्रिया तुल्यं वर्तते—स्त्रीवद् तथा पुंसा तुल्यं वर्त्तते—पुंवद् इन स्थलों पर 'स्त्रीपुंसाभ्या नञ्स्नञौ भवनात्', से वति के विषय में नञ् व स्नञ् प्रत्ययों की प्रवृत्ति नहीं होती है । 'स्त्री पुंवच्च' तथा 'स्त्रियाः पुँवद्भाषित०' ये सूत्र ज्ञापक हैं । यदि वति के विषय में नञ् व स्नञ् प्रत्यय होते तो आचार्य 'पुंवद्' ऐसा प्रयोग न करते ।

अन्य प्रयोग—मातृवत्, लोष्ठवत्, आत्मवत् (हितो० 1.14) । पूर्ववत् सनः (पा० 1.3.62) ।

... पुत्रं मित्रवद् आचरेत् (चाण०)। राजवत् (महाभा० 14.127.1)।

तत्र तस्येव 5.1.115

पद.—तत्र–अव्य०, तस्य 6.1, इव–अव्य० ।

अनु.—वतिः ।

अर्थ—'इव' के अर्थ में सप्तम्यन्त तथा षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होता है ।

इव का अर्थ है—सदृश ।

उदा.—(1) मथुरायाम् इव–मथुरावत् यहाँ सप्तम्यन्त से सदृश अर्थ में वति हुआ है । 'मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः' यहाँ द्रव्य की तुल्यता है । इसका अर्थ है—मथुरा में जिस प्रकार के प्राकार हैं उसी तरह के प्राकार स्रघ्न में हैं । 'मथुरा की तरह' अर्थ करना अशुद्ध है । कारण कि मथुरा तथा स्रुघ्न की तुल्यता नहीं बताई जा रही है ।

(2) देवस्येव—देववत् । यहाँ षष्ठ्यन्त से सदृश अर्थ में वति हुआ है । 'देववद् कृष्णस्य गावः' यहाँ भी द्रव्य की तुल्यता है। इसका 'देव की तरह' ऐसा अर्थ करना अशुद्ध है। अपितु देव (की गायों) के समान कृष्ण की गाएँ—ऐसा अर्थ होता है। कारण कि यहाँ देव तथा कृष्ण का सादृश्य नहीं बताया जा रहा है ।

'इव' शब्द का प्रयोग होने पर उपमान व उपमेय में एक समान विभक्तियाँ होती हैं—

राम इव देवो गच्छति ।
गाम् इव सूकरं मन्यते स्थितप्रज्ञः ।
भीमेन इव देवेन गदायुद्धं कृतम् ।
अद्यत्वे जनाः शत्रवे इव भ्रात्रे दुह्यन्ति ।
आकाशाद् इव प्रासादात् पतति ।
देवस्य इव कृष्णस्य गावः ।
मथुरायाम् इव स्रुघ्ने प्राकारः ।
कक्षे इव–कक्षवत् ।

तदर्हम् 5.1.116

पद.—तद् 2.1, अर्हम् 1.1

1. महा० 5.1.114 (वा०)—आकलाट् ठंश्च ।
2. काशि० (पद०)—5.1.114

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—वतिः ।

अर्थ—अर्हण विशिष्ट क्रिया के वाच्य रहते द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होता है ।

उदा.—राजानम् अर्हति—राजवत् (लालनम्) ।

इसी प्रकार—ऋषिवत्, क्षत्रियवत् ।

उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे 5.1.117

पद.—उपसर्गात् 5.1, छन्दसि 7.1, धात्वर्थे 7.1

अनु.—वतिः ।

अर्थ—वेद के विषय में धात्वर्थ में विद्यमान उपसर्ग से स्वार्थ में वति प्रत्यय होता है ।

उदा.—यद् उद्वतो निवतो यासि वप्सद् ।
(ऋ० 10.142.4) ।

यहाँ उद् तथा नि उपसर्ग उद्गत तथा निगत अर्थ में वर्त्तमान हैं ।

तस्य भावस्त्वतलौ 5.1.118

पद.—तस्य 6.1, भावः 1.1, त्वतलौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—भाव अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से त्व तथा तल् प्रत्यय होते हैं ।

तल् को लित् स्वरार्थ किया गया है । तलन्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है । द्र० तलन्तः (लिङ्ग० 17) । त्व प्रत्ययान्त शब्द नपुँसक लिङ्ग में होते हैं । द्र०—त्वष्यञौ तद्धितौ (लिङ्ग० 120) । प्रकृति जन्य बोधे प्रकारो भावः—प्रकृतिजनित ज्ञान में विशेषणतया जिसका आभास होता है, वह 'भाव' कहलाता है । यथा—

1. 'गो' प्रकृति है । इस शब्द के श्रवण होने पर गोत्व युक्त व्यक्ति का ज्ञान होता है । यह भाव हुआ ।

2. जाति शब्द में जाति को 'भाव' कहते हैं ।

3. कृदन्त, तद्धितान्त व समास में जो सम्बन्ध होता है, उसे 'भाव कहते हैं । यथा—

'हारकत्वम्'—यहाँ हरण क्रिया के साथ कर्तृत्व सम्बन्ध ही भाव है ।

'वासुदेवत्वम्' यहाँ वसुदेव के साथ पुत्रत्व सम्बन्ध ही भाव है ।

'दशरथपुत्रत्वम्' यहाँ 'दशरथ' के साथ 'पुत्र' का जन्य जनक सम्बन्ध ही भाव है ।

4. 'कृष्ण' आदि के गुणवाचक होने पर तद्गत जाति को भाव कहते हैं ।

'कृष्ण' आदि के गुणिवाचक होने पर उनका गुण ही भाव कहलाता है ।

उदा.—गुरोर्भावः—गुरुत्वम्, गुरुता ।

आ च त्वात् 5.1.119

पद.—आ-अव्य०, च-अव्य०, त्वात् 5.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है । यहाँ से लेकर 'ब्रह्मणस्त्वः' (पा० 5.1.135) के द्वारा विहित त्व पर्यन्त त्व तथा तल् प्रत्यय होते हैं ।

भाव यह है कि मध्य में जो इमनिच् आदि अपवाद रूप प्रत्यय कहे हैं, उनके साथ त्व तथा तल् का भी समावेश होता है । इस प्रकार अपवाद सूत्रों के द्वारा त्व तथा तल् का बाध न हो सकेगा ।

सूत्रस्थ 'च' पद का प्रयोजन है कि नञ् व स्नञ् प्रत्ययों के साथ भी उक्त (त्व तथा तल्) प्रत्यय हो जाते हैं । 'च' का प्रयोग समुच्चय ग्रहण के लिए है । 'त्वात्' पद के द्वारा 'ब्रह्मणस्त्वः' सूत्र का निर्देश है ।

उदा.—(1) पृथुता, पृथुत्वम्, प्रथिमा-पृथोर्भावः इस दशा में प्रकृतसूत्र से 'तल्' व 'त्व' हुआ । 'पृथ्वादिभ्य इम-निज्वा' से 'इमनिच्' भी हुआ ।

(2) स्त्रिया भावः—भाव अर्थ की विवक्षा में 'स्त्री पुंसा—' से नञ् होकर 'स्त्रैणम्' (अट्कुप्वाङ्नुम्०) बना । 'आ च त्वात्' से 'त्व' तथा 'तल्' होकर 'स्त्रीत्वम्' तथा 'स्त्रीता' भी बनेंगे ।

(3) पुंसो भावः—पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता । पुंस् स्नञ् पौंस्स्न (तद्धितेष्व०) । स्वादिष्वसर्व० से पदसंज्ञा, अनुस्वार की गणना हल् में होने से 'हलोऽनन्तराः संयोगः' से संयोग संज्ञा, 'संयोगान्तस्य लोपः' से संयोगान्त सकार का लोप । पौं स्न । निमित्तापाये नैमि० । पौम् स्न । नश्चाऽपदा० । पौंस्न सु । पौंस्नम् । 'आ च त्वात्' से पुंस् त्व-पुं त्व (संयोगान्त-लोप)-पुम् त्व-पुरु त्व (पुमः खय्यम्परे)-पूर्व को अनुनासिक आदेश, अनुस्वार आगम, रेफ को विसर्गादेश तथा सकारादेश (सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः) होकर—पुँस्त्वम्, पुंस्त्वम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुंस् तल्-पूर्ववत् कार्य होकर पुँस्ता, पुंस्ता ।

न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसंगतलवण-वटयुधकतरसलसेभ्यः 5.1.120

पद.—न-अव्य०, नञ्पूर्वात् 5.1, तत्पुरुषात् 5.1 अचतुर ... सेभ्यः 5.3

अनु.—तस्य भावः त्वतलौ ।

अर्थ—चतुर, मंगल, लवण, युध, कत, रस तथा लस प्रातिपदिकों को छोड़कर नञ् पूर्व वाले तत्पुरुषसंज्ञक प्रातिपदिक से भाव अर्थ में इससे आगे विहित प्रत्यय नहीं होंगे ।

यह अधिकार सूत्र है । सूत्र की शर्तों के अनुसार —

क) नञ् पूर्व वाले तत्पुरुष से आगे कहे जाने वाले भाव प्रत्यय नहीं होते हैं,

ख) सूत्रोक्त चतुर आदि शब्द यदि नञ्पूर्व तत्पुरुष में होंगे तो आगे कहे जाने वाले भाव प्रत्यय हो जाते हैं ।

'पत्यन्त पुरोहितादिभ्यो यक्' (पा० 5.1.127) के द्वारा पत्यन्त व पुरोहित आदि प्रातिपदिकों से यक् होता है । प्रकृतसूत्र के अधिकार से उक्त यक् प्रत्यय नञ् तत्पुरुष से न होगा । यथा—

अपतित्वम्, अपतिता—यहाँ त्व तथा तल् हुआ है ।

1. **'नञ्पूर्वात्'** अर्थात् नञ् पूर्व शब्द से आगे कहे गये भाव प्रत्यय न होंगे—

प्रजापतेर्भावः-प्राजापत्यम् (नञ् पूर्व न होने से त्यक् हो गया । इसका निषेध न हुआ) ।

2. **'तत्पुरुषात्'** अर्थात् तत्पुरुष संज्ञक प्रातिपदिक से आगे कहे गये भाव प्रत्यय न होंगे—

न अस्य पटवः सन्ति—अपटुः । तस्य भावः-आपटवम् यहाँ नञ् पूर्व है परन्तु बहुव्रीहि है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध न हुआ । अण् हुआ ।

3. **'अचतुरादिभ्यः'** का अर्थ है कि चतुर आदि शब्द हों तो पूर्वोक्त निषेध नहीं होता है अर्थात् आगे जो-जो प्रत्यय कहे जायेंगे, वे होंगे ही—अचतुर ष्यञ्—आचतुर्यम् । यहाँ ष्यञ् हुआ । इसका निषेध न हुआ ।

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा 5.1.121

पद.—पृथ्वादिभ्यः 5.3, इमनिच् 1.1, वा-अव्य० ।

अनु.—तस्य, भावः, त्वतलौ ।

अर्थ—भाव अर्थ में पृथ्वादि प्रातिपदिकों से विकल्प से इमनिच् प्रत्यय होता है ।

नकारोत्तरवर्त्ती इकार व अन्त्य चकार की इत्संज्ञा होती है । चित्करण स्वरार्थ है ।

इमनिच् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिंग होता है । यहाँ अधिकार होने से त्व तथा तल् भी होते हैं । सूत्रोक्त 'वा' पद अण् आदि प्रत्ययों के समावेश के लिए हैं अर्थात् इमनिच् के अभाव पक्ष में अण् आदि भी होंगे ।

उदा.—गणान्तर्गत कुछ शब्दों के रूप नीचे दर्शाये जा रहे हैं ।

शब्द	इमनिच्	त्व	तल्	अन्य	
पृथु	प्रथिमा	पृथुत्वम्	पृथुता	पार्थवम्	अण्
मृदु	म्रदिमा	मृदुत्वम्	मृदुता	मार्दवम्	अण्
पटु	पटिमा	पटुत्वम्	पटुता	पाटवम्	अण्
चण्ड	चण्डिमा	चण्डत्वम्	चण्डता	चाण्ड्यम्	ष्यञ्
खण्ड	खण्डिमा	खण्डत्वम्	खण्डता	खाण्ड्यम्	ष्यञ्
बाल	बालिमा	बालत्वम्	बालता	बालम्	अञ्
वत्स	वत्सिमा	वत्सत्वम्	वत्सता	वात्सम्	अञ्
गुरु	गरिमा	गुरुत्वम्	गुरुता	गौरवम्	अण्
लघु	लघिमा	लघुत्वम्	लघुता	लाघवम्	अण्

पृथु इमनिच्-पृथु इमन्-प्रथु इमन् (र ऋतो हलादेर्लघोः)-प्रथ् इमन् (भसंज्ञा, टेः)-प्रथिमन् सु-प्रथिमा ।

पृथु अण् (इमनिच् अभाव पक्षे इगन्ताच्च लघुपूर्वात्)-पार्थो अ-पार्थव सु-पार्थवम् ।

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च 5.1.122

पद.—वर्णदृढादिभ्यः 5.3, ष्यञ् 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—तस्य, भावः, त्वतलौ, इमनिच् ।

अर्थ—वर्णवाची तथा दृढादिगणपठित षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में ष्यञ् तथा इमनिच् प्रत्यय होते हैं । ष्यञ् के ञकार व षकार की इत्संज्ञा होती है । ञित्करण आदि वृद्धि के लिए हैं । षित्करण स्त्रीत्व में ङीष् के लिए है ।

त्व तथा ष्यञ् प्रत्ययान्त शब्द नपुँसक में होता है । द्र०—त्वष्यञौ तद्धितौ (लिङ्गा० 120) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्यञ् को षित् करने के द्वारा ज्ञापित होता है कि भावार्थक ष्यञ् प्रत्ययान्त शब्द लक्ष्यानुरोधेन कहीं कहीं स्त्रीलिंग में भी प्रयुक्त होता है।

उदा.—शौक्ल्यम्, शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता, दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता, कृष्णिमा।

(1) शुक्ल ष्यञ्–शौक्ल य–शौक्ल्य सु–शौक्ल्यम्।
(2) शुक्ल इमनिच्–शुक्लिमन् सु–शुक्लिमा।
(3) शुक्ल त्व–शुक्लत्वम्।
(4) शुक्ल तल्–शुक्ल त टाप् सु–शुक्लता।

'आ च त्वात्' के द्वारा त्व तथा तल् भी होते हैं।

(5) दृढ ष्यञ्–दार्ढ य–दार्ढ्य सु–दार्ढ्यम्।
(6) दृढ इमनिच्–द्रढिमन् (र ऋतो हलादे—) द्रढिमा।
(7) दृढत्वम्।
(8) दृढता।
(9) कृष्ण इमनिच् – कृष्णिमा (भट्टि. 5.88)

ष्यञन्त से स्त्रीत्व में ङीष् होने पर 'यस्येति च' से भसंज्ञक अकार का लोप होता है—

चतुरस्य भावः–चातुर्य ङीष्–चातुर्य् ई।

'हलस्तद्धितस्य' से उपधाभूत यकार का लोप–चातुर् ई सु–चातुरी।

इसी प्रकार—माधुरी, नैपुणी, वैशारदी, मैत्री तथा शैली आदि रूप बनते हैं।

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च 5.1.123

पद.—गुण .... भ्यः 5.3, कर्मणि 7.1

अनु.—ष्यञ्, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव और कर्म अर्थों में षष्ठ्यन्त गुणवाचक व ब्राह्मणादिगण पठित प्रातिपदिकों से ष्यञ् होता है।

जो शब्द पहले गुण अर्थ में प्रवृत्त होकर पश्चात् गुणगुणी के अभेदोपचार (अथवा मतुप् के लुक्) के कारण तद् गुण से युक्त द्रव्य का वाचक हो जाता है, उसे गुणवचन कहते हैं।

ब्राह्मणादिगण एक आकृतिगण है।

'आ च त्वात्' का अधिकार होने से त्व तथा तल् भी होते हैं। ये दोनों भी भाव व कर्म में होंगे।

उदा.—(1) जडस्य भावः (कर्म वा)–जड ष्यञ्–जाड्यम्, जडत्वम्, जडता।

जड शब्द का दृढादिगण में भी पाठ है। अतः इमनिच् भी होता है, परन्तु यहाँ केवल भाव अर्थ में होगा—जडस्य भावः–जडिमा।

कृश ष्यञ्–कार्श्यम् (मे० 30)।

सुभग ष्यञ्–सौभाग्यम् (मे० 30)। सौक्ष्म्यम् (भाग० 3.11.3)। स्थौल्य (भाग० 3.11.3)।

(2) ब्राह्मणस्य भावः (कर्म वा)–ब्राह्मण्यम्, ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता।

ईश्वरस्य कर्म–ऐश्वर्यम् (रा० 5.20.31)।

तस्करस्य कर्म–तास्कर्यम् (मनु० 9.222)।

विशेष–1. चतुर्वर्ण आदि शब्दों से स्वार्थ में ष्यञ् होता है।[1]

चत्वार एव वर्णाः–चतुर्वर्ण ष्यञ्–चातुर्वर्ण्यम्।

स्तेनाद्यन्नलोपश्च 5.1.124

पद.—स्तेनात् 5.1, यत् 1.1, न लोपः 1.1, च–अव्य०।

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव और कर्म अर्थों में षष्ठ्यन्त स्तेन प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है तथा स्तेन के नकार का लोप होता है।

उदा.—स्तेनस्य भावः–स्तेन यत्–स्ते य सु–स्तेयम्।

सख्युर्यः 5.1.125

पद.—सख्युः 5.1, यः 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव और कर्म अर्थों में सखि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से य प्रत्यय होता है।

उदा.—सखि य–सख्य सु–सख्यम्।

विशेष—दूत और वणिज् शब्दों से य प्रत्यय होता है—

दूत य–दूत्य सु–दूत्यम्।
वणिज् य–वणिज्यम्।

वणिज् शब्द का ब्राह्मणादिगण में पाठ होने से ष्यञ् भी होता है—वणिज् ष्यञ्–वाणिज्यम्।

कपिज्ञात्योर्ढक् 5.1.126

पद.—कपिज्ञात्योः 6.2, ढक् 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

1. महा० 5.1.124 (वा०)—चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—भाव तथा कर्म अर्थों में कपि तथा ज्ञाति षष्ठ्यन्त प्रातिपादिकों से ढक् होता है।

उदा.—कपेर्भावः कर्म वा–कापेयम्।

ज्ञाति ढक्—ज्ञातेयम् (भट्टि० 5.54)।

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् 5.1.127

पद.—पत्यन्तपुरोहितादिभ्यः 5.3, यक् 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव तथा कर्म अर्थों में षष्ठी समर्थ पति अन्त वाले तथा पुरोहित आदि प्रातिपदिकों से यक् होता है।

उदा.—प्रजापतेर्भावः कर्म वा–प्रजापति यक्–प्राजापत्यम्। पुरोहित यक्–पौरोहित्यम् (पञ्च० 2.70)।

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् 5.1.128

पद.—प्राणभृ ... भ्यः 5.3, अञ् 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव और कर्म अर्थों में षष्ठी समर्थ जीवधारी जाति-वाचक प्रातिपदिक से, अवस्थावाची प्रातिपदिक से तथा उद्गात्रादि प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) अश्वस्य भावः (कर्म वा)—अश्व अञ्–आश्व् अ सु–आश्वम्।

अश्वत्वम्, अश्वता भी।

(2) कुमारस्य भावः (कर्म वा)–कौमारम्, कुमारत्वम्, कुमारता।

(3) उद्गातुर्भावः (कर्म वा)–औद्गात्रम्।

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् 5.1.129

पद.—हायनान्तयुवादिभ्यः 5.3, अण् 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव और कर्म अर्थों में षष्ठी समर्थ हायन अन्त वाले तथा युवादि प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होता है।

उदा.—द्विहायनस्य भावः (कर्म वा)–

द्विहायन अण्–द्वैहायनम्।

युवन् अण्–यौवनम्। (मे० 70)।

विशेष—भाव तथा कर्म अर्थों में श्रोत्रिय शब्द से अण् प्रत्यय होता है तथा 'य' का लोप होता है।[1]

श्रौत्रिय अण्–श्रौत्रिय् अ–श्रौत्र् अ–श्रौत्र सु–श्रौत्रम्।

पदमञ्जरीकार के अनुसार 'घ' प्रत्यय का लोप होता है।[2] श्रोत्रिय अण्–श्रौत्रिय् अ–श्रौत्र सु–श्रौत्रम्।

इगन्ताच्च लघुपूर्वात् 5.1.130

पद.—इगन्तात् 5.1, च–अव्य०, लघुपूर्वात् 5.1

अनु.—अण्, कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव और कर्म अर्थों में लघु वर्ण पूर्व में है जिसके ऐसे इक् अन्त वाले षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से अण् होता है। 'आ च त्वात्' का अधिकार होने से त्व तथा तल् भी होते हैं।

उदा.—मृदोर्भावः (कर्म वा)–मृदु अण् मृदो अ–मार्दो अ–मार्दव सु–मार्दवम्। मृदुत्व–मृदुत्वम्।

मृदु तल्–मृदु ता सु–मृदुता।

विशेष—1. सूत्र की शर्त के अनुसार—

क) इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) अन्त वाले प्रातिपदिक से ही सूत्रोक्त अण् होता है—

घट त्व–घटत्वम्। घट शब्द इगन्त नहीं है। लघुपूर्व तो है। अतः अण् न हुआ।

ख) इगन्त व **लघुपूर्व** शब्द से ही अण् होता है—पाण्डुत्वम्। पाण्डु शब्द इगन्त तो है, परन्तु इससे पूर्व लघु वर्ण नहीं है। अतः अण् न हुआ।

2. कवि शब्द इगन्त है तथा इससे पूर्व लघु वर्ण है। अतः प्रकृतसूत्र से अण् प्राप्त है, परन्तु कवि शब्द का पाठ ब्राह्मणादीगण में है। अतः ष्यञ् होता है—कवेर्भावः (कर्म वा)–काव्यम्।

योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ् 5.1.131

पद.—योपधात् 5.1, गुरूपोत्तमात् 5.1, वुञ् 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ।

अर्थ—भाव तथा कर्म अर्थों में यकार उपधा वाले तथा गुरु उपोत्तम वाले षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—रमणीयस्य भावः कर्म वा–रमणीय वुञ्–रमणीय अक–रमणीय् अक सु–रमणीयकम्। रमणीय शब्द की उपधा में यकार है। 'य' उत्तम है। अतः 'णी' उपोत्तम हुआ। 'दीर्घश्च' से दीर्घसंज्ञा हुई। तब वुञ् हुआ।

1. महा० 5.1.130 (वा०)—श्रोत्रियस्य यलोपश्च वाच्यः।

2. काशि० (पद०)—5.1.130

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. सूत्र की शर्त के अनुसार—

क) यकार उपधा वाले शब्द से सूत्रोक्त वुञ् होता है—

विमान त्व–विमानत्वम् ।

विमान शब्द में 'मा' उपोत्तम है जो गुरु संज्ञक है । परन्तु यकारोपध न होने से वुञ् न हुआ ।

ख) गुरु उपोत्तम वाले शब्द से उक्त वुञ् प्रत्यय होता है—

क्षत्रिय त्व–क्षत्रियत्वम् । क्षत्रिय शब्द यकार उपधा वाला है परन्तु उपोत्तम (त्रि) लघुसंज्ञक है । अतः वुञ् न हुआ ।

2. सहाय शब्द से सूत्रोक्त प्रत्यय विकल्प से होता है[1]—

सहायस्य भावः—सहाय वुञ्—साहायकम् । पक्ष में ष्यञ् होता है—साहाय्यम् ।

'आ च त्वात्' का अधिकार होने के कारण—सहायत्वम् तथा सहायता भी होते हैं ।

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च 5.1.132

पद.—द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः 5.3, च–अव्य० ।

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ, वुञ् ।

अर्थ—भाव तथा कर्म अर्थों में द्वन्द्व संज्ञक तथा मनोज्ञ आदि षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होता है । 'आ च त्वात्' से त्व तथा तल् भी होते हैं ।

उदा.—गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा—गोपालपशुपाल वुञ्–गौपालपशुपालिका ।

मनोज्ञ वुञ्–मानोज्ञकम् ।

वृद्ध वुञ्–वार्द्धकम् (रघु० 1.8, भट्टि० 12.55, कु० 5.44) ।

गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु 5.1.133

पद.—गोत्रचरणात् 5.1, श्लाघा ... तेषु 7.3

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ, वुञ् ।

अर्थ—भाव तथा कर्म अर्थों में प्रशंसा, अपमान तथा उससे युक्त–इन विषयों में गोत्रवाची तथा चरणवाची षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से वुञ् होता है ।

उदा.—गार्गिकया श्लाघते ।
गार्गिकया अत्याकुरुते ।
गार्गिकाम् अवेतः ।

होत्राभ्यश्छः 5.1.134

पद.—होत्राभ्यः 5.3, छः 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ ।

अर्थ—भाव व कर्म अर्थों में षष्ठी समर्थ ऋत्विग् विशेष वाची प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है ।

उदा.—अच्छावाकस्य भावः कर्म वा–अच्छावाकीयम् ।

ब्रह्मणस्त्वः 5.1.135

पद.—ब्रह्मणः 5.1, त्वः 1.1

अनु.—कर्मणि, तस्य, भावः, त्वतलौ, होत्राभ्यः ।

अर्थ—भाव और कर्म अर्थों में होत्रवाची षष्ठीसमर्थ ब्रह्मन् प्रातिपदिक से त्व प्रत्यय होता है ।

उदा.—ब्रह्मणो भावः कर्म वा—ब्रह्मत्वम् ।

1. महा० 5.1.132 (वा०)—सहायाद् वेति वक्तव्यम् ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां पञ्चमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी.....
पु०सं०...1583
भारती पुस्तकालय

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमाध्यायस्य

द्वितीयः पादः

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् 5.2.1

पद.—धान्यानाम् 6.3, भवने 7.1, क्षेत्रे 7.1, खञ् 1.1

अनु.—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इत्येते चत्वारोऽधिकारा आ पादपरिसमाप्तेरिति बोध्यम् । विस्तारभिया प्रत्येकं सूत्रे न प्रदर्शिताः ।

अर्थ—उत्पत्ति स्थान खेत अर्थ में धान्यविशेषवाची षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय होता है । खञ् के ञकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्-मुद्ग खञ्-मौद्ग ईन-मौद्गीन सु-मौद्गीनम् ।

विशेष—1. सूत्रस्थ 'धान्यानाम्' पद में बहुवचन निर्देश के द्वारा सूचित होता है कि धान्य शब्द के द्वारा स्वरूप का ग्रहण न होकर धान्यवाचक शब्द का ग्रहण होता है । 'धान्यानाम्' पद का फल है कि तृणानां भवनं क्षेत्रम् यहाँ प्रत्यय नहीं होता है ।

द्र० काशि० — 5.2.1

2. सूत्रस्थ 'भवने' शब्द का अर्थ उत्पत्तिस्थान है । 'भवन' शब्द में भू धातु उत्पत्ति अर्थ में है । अतः मुद्गानां भवनं कुसूलम् (=मूँग को रखने का कोठा) इस अर्थ में प्रत्यय न हुआ ।

व्रीहिशाल्योर्ढक् 5.2.2

पद.—व्रीहिशाल्योः 6.2, ढक् 1.1

अनु.—धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे ।

अर्थ—उत्पत्ति स्थान खेत वाच्य हो तो षष्ठी समर्थ धान्य विशेषवाची व्रीहि तथा शालि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होता है ।

उदा.—व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्-व्रीहि ढक्-व्रैहेयम् । 'किति च' के द्वारा आदिवृद्धि ।

शालीनां भवनं क्षेत्रम्-शालेयम् ।

यवयवकषष्टिकाद् यत् 5.2.3

पद.—यवयवकषष्टिकात् 5.1, यत् 1.1

अनु.—धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे ।

अर्थ—उत्पत्ति स्थान खेत वाच्य हो तो षष्ठी समर्थ धान्यविशेषवाची यव, यवक व षष्टिक प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—यवानां भवनं क्षेत्रम्-यव यत्-यव्य सु-यव्यम् । इसी प्रकार-यवक्यम्, षष्टिक्यम् ।

विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः 5.2.4

पद.—विभाषा 1.1, तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः 5.3

अनु.—धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे, यत् ।

अर्थ—यदि उत्पत्ति स्थान खेत वाच्य हो तो षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची तिल, माष, उमा, भङ्गा और अणु प्रातिपदिकों से विकल्प से यत् होता है ।

पक्ष में खञ् होता है ।

उदा.— तिलानां भवनं क्षेत्रं-तिल यत्-तिल्यम् ।
तिल खञ्-तैलीनम्
माष यत्-माष्यम् ।
माष खञ्-माषीणम् ।
उमा यत्-उम्यम् ।
उमा खञ्-औमीनम् ।
भङ्गा यत्-भङ्ग्यम् ।
भङ्गा खञ्-भाङ्गीनम् ।
अणु यत्-अणव्यम् ।
अणु खञ्-आणवीनम् ।

सर्वचर्मणः कृतः खखञौ 5.2.5

पद.—सर्वचर्मणः 5.1, कृतः 1.1, खखञौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—किया हुआ—इस अर्थ में तृतीयासमर्थ सर्वचर्मन् प्रातिपदिक से ख और खञ् प्रत्यय होते हैं । खञ् में ञकार की इत्संज्ञा होती है । ञित् करने का फल आदिवृद्धि है ।

उदा.—सर्वचर्मणा कृतः—सर्वचर्मन् ख-सर्वचर्मन् ईन-सर्वचर्म् ईन-सर्वचर्मिन सु-सर्वचर्मीणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व चर्मन् खञ्-सार्वचार्मीणः ।

यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः 5.2.6

पद.—यथामुखसम्मुखस्य 6.1, दर्शनः 1.1, खः1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—दर्शन अर्थ में षष्ठीसमर्थ यथामुख तथा सम्मुख प्रातिपदिकों से ख प्रत्यय होता है ।

'दर्शन' का अर्थ है—दर्पण ।

उदा.—मुखेन सदृशम्-यथामुखम्-निपातन से अव्ययीभाव ।

यथामुखं दर्शनः-यथामुख ख-यथामुखीनः ।
समानस्य मुखस्य दर्शनः-सम्मुखीनः ।

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति 5.2.7

पद.—तत् 2.1, सर्वादेः 5.1, पथ्य ... पात्रम् 2.1 व्याप्नोति-क्रिया० ।

अनु.—खः ।

अर्थ—व्याप्त होता है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ सर्व शब्द वाले पथिन्, अङ्ग, कर्म, पत्र तथा पात्र प्रातिपदिकों से ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—सर्वपथं व्याप्नोति (= सभी मार्गों पर चलने वाला) - सर्वपथ ख-सर्वपथीन सु-सर्वपथीनः ।
सर्वाङ्गं व्याप्नोति-सर्वाङ्गीणः ।
सर्वकर्म ख-सर्वकर्मीणः ।
सर्वपत्र ख-सर्वपत्रीणः ।
सर्वपात्र ख-सर्वपात्रीणः ।

आप्रपदं प्राप्नोति 5.2.8

पद.—आप्रपदम्-अव्य०, प्राप्नोति-क्रिया० ।

अनु.—तत्, खः ।

अर्थ—प्राप्त होता है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ आप्रपद प्रातिपदिक से ख प्रत्यय होता है ।

'प्रपद' का अर्थ है—पैर का अग्रभाग । प्रपदात् आ-आप्रपदम् । मर्यादा अर्थ में आङ् का प्रयोग है ।

उदा.—आप्रपदं प्राप्नोति = आप्रपदीनः पटः = वह वस्त्र जो टखने तक पहुँचे ।

अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु 5.2.9

पद.—अनु ... नयम् 2.1, बद्धा .... नेयेषु 7.3

अनु.—तत्, खः ।

अर्थ—बद्ध (=सम्बद्ध), खाता है तथा ले जाने योग्य-इन अर्थों में क्रमशः अनुपद, सर्वान्न तथा अयानय द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—अनुपदं बद्धा—अनुपद ख-अनुपदीन टाप् सु-अनुपदीना (उपानद्) = पैर के साथ पूर्णतः सम्बद्ध जूता ।

सर्वान्नानि भक्षयति-सर्वान्नीनः (भिक्षुः) ।
अयानयं नेयः-अयानयीनः (शारः) ।

परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति 5.2.10

पद.—परोव ... पौत्रम् 2.1, अनुभवति-क्रिया० ।

अनु.—तत्, खः ।

अर्थ—अनुभव करता है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ परोवर, परम्पर तथा पुत्रपौत्र प्रातिपदिकों से ख प्रत्यय होता है।

उदा.—परांश्चाऽवरांश्चाऽनुभवति—परोवर ख (निपातनाद् उत्वम्)-परोवरीण सु-परोवरीणः (=जो पर तथा अवर का अनुभव करे) ।

परम्पर ख-परम्परीणः ।
पुत्र पौत्र ख-पुत्रपौत्रीणः (भट्टि० 5.15) ।

अवारपारात्यन्तानुकामं गामी 5.2.11

पद.—अवार ... कामम् 2.1 गामी 1.1

अनु.—तत्, खः ।

अर्थ—भविष्य में जाने वाला अर्थ में द्वितीया समर्थ अवारपार, अत्यन्त तथा अनुकाम प्रातिपदिकों से ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—अवारपारं गामी-अवारपार ख-अवारपारीण सु-अवारपारीणः ।

विशेष—यहाँ पृथक् पृथक् दोनों पदों से भी ख प्रत्यय होता है ।[1] यथा—

अवारं गामी-अवारीणः ।
पारं गामी-पारीणः ।

विपरीत क्रम की दशा में भी प्रत्यय होता है ।[2] यथा—

पारावारं गामी-पारावारीणः ।
अत्यन्तं गामी-अत्यन्तीनः ।
अनुकामं गामी-अनुकामीनः ।

---

1. महा० 5.2.11 (वा०)—विगृहीतादपीष्यते ।
2. महा० 5.2.11 (वा०)—विपरीताच्च ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समां समां विजायते 5.2.12

पद.—समां समाम् 2.1 विजायते-क्रिया० ।

अनु.—तत्, खः ।

अर्थ—बच्चा जनती है—इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ समांसमां प्रातिपदिक से ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—समां समां विजायते-समांसमाम् ख-समांसमीन टाप् सु-समासमीना (गौः) = गाय जो हर वर्ष बच्चा जनती है ।

विशेष—यदि ख प्रत्यय नहीं होता है तो उत्तरपद का और पूर्वपद का 'य' विकल्प से लुप्त होता है ।[1]

अद्यश्वीनाऽवष्टब्धे 5.12.13

पद.—अद्यश्वीन-लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, अवष्टब्धे 7.1

अनु.—विजायते, तत्, खः ।

अर्थ—आसन्न प्रसव वाच्य हो तो 'अद्यश्वीन' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—अद्यश्वस् ख-अद्यश्व् ईन (टिलोप)—अद्यश्वीन टाप् सु-अद्यश्वीना (गौः) = गाय जो आजकल में ब्याने वाली है ।

आगवीनः 5.2.14

पद.—आगवीनः 1.1

अनु.—खः ।

अर्थ—सेवक अर्थ में 'आगवीन' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—आङ् गो ख-आगवीनः (कर्मकरः) = गाय के बदले रखा गया नौकर ।

अनुग्वलंगामी 5.2.15

पद.—अनुगु-अव्य०, अलङ्गामी 1.1

अनु.—तद्, खः ।

अर्थ—पर्याप्त जाता है—इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ अनुगु प्रातिपदिक से ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—गोः पश्चात्—अनुगु । तद् अलं गच्छति-अनुगवीनः (ओर्गुणः । एचोऽयवायावः) = वह जो गाय के पीछे-पीछे चले ।

1. महा० 5.2.12 (वा०)—अनुत्पत्तावुत्तरपदस्य च वा यलोपो वक्तव्यः ।

अध्वनो यत्खौ 5.2.16

पद.—अध्वनः 5.1, यत् खौ 1.2

अनु.—तद्, अलङ्गामी ।

अर्थ—पर्याप्त जाता है—इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ अध्वन् प्रातिपदिक से यत् तथा ख प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—अध्वानम् अलङ्गामी-अध्वन् यत् सु-अध्वन्यः । अध्वन् ख-अध्वनीनः ।

अभ्यमित्राच्छ च 5.2.17

पद.—अभ्यमित्रात् 5.1, छ-लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः च-अव्य० ।

अनु.—अलङ्गामी, यत्खौ ।

अर्थ—पर्याप्त जाता है—इस अर्थ में द्वितीया समर्थ अभ्यमित्र प्रातिपदिक से छ, यत् तथा ख प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—अभ्यमित्रम् अलङ्गामी—

(1) अभ्यमित्र छ-अभ्यमित्रीयः ।

(2) अभ्यमित्र यत्-अभ्यमित्र्यः।

अभ्यमित्र ख-अभ्यमित्रीणः ।

गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे 5.2.18

पद.—गोष्ठात् 5.1, खञ् 1.1, भूतपूर्वे 7.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—भूतपूर्व अर्थ में वर्त्तमान गोष्ठ प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—भूतपूर्वः गोष्ठः-गोष्ठीनः (= जहाँ पहले गायें बैठती थी) ।

'भूतपूर्व' पद के ग्रहण का प्रयोजन है कि 'गोष्ठः वर्तते' यहाँ प्रत्यय नहीं होता है । कारण कि यहाँ वर्त्तमानकाल का प्रयोग है ।

अश्वस्यैकाहगमः 5.2.19

पद.—अश्वस्य 6.1, एकाहगमः 1.1

अनु.—खञ् ।

अर्थ—एकाहगम—इस अर्थ में षष्ठी समर्थ अश्व प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय होता है ।

उदा.—एकाहेन गम्यते-एकाहगमः (= जितना एक दिन में पार किया जा सके) । अश्वस्य एकाहगमः अध्वा-अश्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खञ्-आश्वीनः (= वह मार्ग जितना एक दिन में घोड़ा पार कर सके)।

शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः 5.2.20

पद.—शालीनकौपीने 1.2 अधृष्टाकार्ययोः 7.2

अनु.—खञ्।

अर्थ—अधृष्ट तथा अकार्य अर्थों में क्रमशः शालीन तथा कौपीन शब्दों का निपातन किया जाता है। अधृष्ट = भीरु। अकार्य = जो करने योग्य न हो।

उदा.—शालाप्रवेशनम् अर्हति-शाला खञ् (उत्तरपद लोप)—शालीन सु-शालीनः।

कूपावतारम् अर्हति-कूप खञ् (उत्तरपदलोप)—कौपीन सु-कौपीनम् (=पाप)।

व्रातेन जीवति 5.2.21

पद.—व्रातेन 3.1, जीवति-क्रियापदम्।

अनु.—खञ्।

अर्थ—जीता है—इस अर्थ में तृतीयासमर्थ व्रात प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम-घूम कर विभिन्न वृत्तियों वाले मनुष्यों के समुदाय को 'व्रात' कहा जाता है। उनकी आजीविका को भी 'व्रात' कहते हैं।

उदा.—व्रातेन जीवति—व्रात खञ्-व्रातीनः।

साप्तपदीनं सख्यम् 5.2.22

पद.—साप्तपदीनम् 1.1 सख्यम् 1.1

अनु.—खञ्।

अर्थ—'मित्रता' अर्थ वाच्य हो तो 'साप्तपदीन' शब्द का निपातन किया जाता है।

उदा.—सप्तपद खञ्—साप्तपदीनम् (सप्तभिः पदैरवाप्यते यत् सख्यम्)।

द्र० कु० 5.39 सतां सङ्गतं साप्तपदीनमुच्यते।

हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् 5.2.23

पद.—हैयङ्गवीनम् 1.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—खञ्।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो तो हैयङ्गवीन शब्द निपातन सिद्ध है, विकार अर्थ में।

उदा.—ह्योगोदोह खञ् (विकारार्थे)—हियङ्गु ईन—हैयङ्गवीन सु-हैयङ्गवीनम् (=घी)। द्र० रघु० 1.45. ह्योगोदोह = कल का दुहा दूध।

आवश्यक सूत्र—आयनेयीनी० से ईन् आदेश। तद्धितेष्वचामादे० से आदि वृद्धि। भसंज्ञा। ओर्गुणः से गुण एचोऽयवायावः से अवादेश।

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ 5.2.24

पद.—तस्य 6.1, पाकमूले 7.1, पील्वादिकर्णादिभ्यः 5.3, कुणब्जाहचौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—पाक तथा मूल अर्थ वाच्य हों तो क्रमशः षष्ठी समर्थ पील्वादि तथा कर्णादि प्रातिपदिकों से (क्रमशः) कुणप् तथा जाहच् प्रत्यय होते हैं।

यहाँ अर्थ, प्रकृति तथा प्रत्यय-तीनों में यथासंख्य नियम लागू होता है।

उदा.—पीलूनां पाकः—पीलू कुणप्-पीलूकुणः (=पीलू फलों का पकना)—पीलू प्रातिपदिक से पाक अर्थ में कुणप् प्रत्यय हुआ है।

कर्णस्य मूलम्-कर्ण जाहच्-कर्णजाहः (भट्टि० 4.16)। (= कान का मूल)-कर्ण प्रातिपदिक से मूल अर्थ में जाहच् प्रत्यय हुआ है।

पक्षात्तिः 5.2.25

पद.—पक्षात् 5.1, तिः 1.1

अनु.—तस्य, मूले।

अर्थ—मूल—इस अर्थ में षष्ठी समर्थ पक्ष प्रातिपदिक से ति प्रत्यय होता है।

उदा.—पक्षस्य मूलम्-पक्षतिः (प्रतिपद्) = पक्ष की पहली तिथि। (भट्टि० 4.16)।

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ 5.2.26

पद.—तेन 3.1, वित्तः 1.1, चुञ्चुप्चणपौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—प्रतीत या ज्ञात-अर्थ में तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से चुञ्चुप् व चणप् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—विद्यया वित्तः-विद्याचुञ्चुः, विद्याचणः (जो विद्या के द्वारा जाना जाये)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार—केशचुञ्चुः, केशचणः ।

विनञ्भ्यां नानाञौ न सह 5.2.27

पद.—विनञ्भ्याम् 5.2, नानाञौ 1.2, न सह–अव्य० ।

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—पृथग् भाव अर्थ में वि तथा नञ् प्रातिपदिकों से क्रमशः ना तथा नाञ् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—वि ना–विना सु–विना ।

नञ् नाञ्–नाना सु–नाना ।

वेः शालच्छङ्कटचौ 5.2.28

पद.—वेः 5.1, शालच्छङ्कटचौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—वि उपसर्ग प्रातिपदिक से शालच् तथा शङ्कटच् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—विगते शृङ्गे–वि शालच्–विशाल औ–विशाले (शृङ्गे) = दो विशाल सींग ।

वि शङ्कटच्–विशङ्कट सु–विशङ्कटः (= विशाल) ।

सम्प्रोदश्च कटच् 5.2.29

पद.—सम्प्रोदः 5.1, च–अव्य०, कटच् 1.1

अनु.—वेः ।

अर्थ—सम्, प्र, उद् तथा वि–इन उपसर्ग प्रातिपदिकों से कटच् प्रत्यय होता है ।

चकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—सम् कटच्–सम् कट–संकट–सङ्कट सु–सङ्कटम् ।

प्र कटच्–प्रकट सु–प्रकटम् ।

उद् कटच्–उत्कट सु–उत्कटम् ।

वि कटच्–विकटम् ।

विशेष—1. कटच् प्रकरण में अलाबू, तिल, उमा और भङ्गा शब्दों से कटच् होता है 'धूलि' अर्थ वाच्य हो तो ।[1]—

अलाबूनां रजः—अवयव अर्थ में 'ओरञ्' से अञ् प्राप्त था ।

अलाबू कटच्–अलाबूकटम् ।

तिलां रजः–'अनु-दात्तादेश्च' से अञ् प्राप्त था । तिल कटच् तिलकट सु–तिलकटम् ।

उमायाः रजः–पूर्ववत् अञ् प्राप्त था । उमाकटम् ।

भङ्गायाः रजः–'तृण धान्यानों द्व्येषाम्' (फि सू० 27) से अण् प्राप्त था ।

भङ्गाकटम् ।

2. स्थान आदि अर्थों में पशुवाची शब्द से गोष्ठच् होता है ।[1]—

गवां स्थानम्–गो गोष्ठच्–गोगोष्ठ सु–गोगोष्ठम्।

3. समूह अर्थ में कटच् होता है ।[2]—

अवीनां सङ्घातः–अविकटम् ।

4. विस्तार अर्थ में पटच् प्रत्यय होता है [3]—

अवीनां विस्तारः—अविपटः ।

5. द्वित्व की प्रतीति में गोयुगच् प्रत्यय होता है ।[4]—

द्वौ उष्ट्रौ–उष्ट्र गो युगच्–उष्ट्रगोयुग सु–उष्ट्रगोयुगम् ।

6. प्रकृत्यर्थ का षट्त्व वाच्य रहने पर षड्गवच् प्रत्यय होता है ।[5]—

षड् हस्तिनः–हस्तिन् षड्गवच्–हस्तिषड्गव सु–हस्तिषड्गवम् ।

7. विकार यदि 'स्नेह' हो तो तैलच् प्रत्यय होता है ।[6]

तिलानां विकारः स्नेहः—तिल तैलच्–तिलतैलम् ।

8. उत्पत्ति स्थान यदि खेत हो तो 'इक्षु' आदि शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय होते हैं ।[7]

इक्षूणां भवनं क्षेत्रम्–इक्षु शाकट–इक्षुशाकटम्; इक्षु शाकिन–इक्षुशाकिनम् ।

अवात् कुटारच्च 5.2.30

पद.—अवात् 5.1, कुटारच् 1.1, च–अव्य० ।

---

1. काशि० 5.2.29 (वा०) कटच्प्रकरणेऽलाबू—।
1. महा० 5.2.29 (वा०)—गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्य उपसंख्यानम् ।
2. महा० 5.2.29 (वा०)—सङ्घाते कटच् वक्तव्यः ।
3. महा० 5.2.29 (वा०)—विस्तारे पटच् वक्तव्यः ।
4. महा० 5.2.29 (वा०)—द्वित्वे गोयुगच् ।
5. काशि०—5.2.29 (वा०) प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवच् ।
6. महा० 5.2.29 (वा०)—विकारे स्नेहे तैलच् ।
7. महा० 5.2.29 (वा०)—भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—कटच् ।

अर्थ—अव उपसर्ग प्रातिपदिक से कुटारच् तथा कटच् प्रत्यय होते हैं ।

कुटारच् तथा कटच् के चकार की इत् संज्ञा होती है ।

उदा.—अव कुटारच्-अवकुटार सु-अवकुटारम् (= निम्न भू भाग) ।

अव कटच्-अवकटम् ।

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः 5.2.31

पद.—नते 7.1, नासिकायाः 6.1, संज्ञायाम् 7.1, टीटञ्नाटज्भ्रटचः 1.3

अनु.—अवात् ।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो और 'नासिका का झुकाव'—अर्थ वाच्य हो तो अव उपसर्ग प्रातिपदिक से टीटच्, नाटच् तथा भ्रटच् प्रत्यय होते हैं ।

तीनों प्रत्ययों के चकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—अव टीटच्-अवटीट सु-अवटीटम् ।

अव नाटच्-अवनाटम् ।

अव भ्रटच्-अवभ्रटम् ।

नेर्बिडज्बिरीसचौ 5.2.32

पद.—नेः 5.1, बिडज्बिरीसचौ 1.2

अनु.—नते, नासिकायाः, संज्ञायाम् ।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो और 'नासिका का झुकाव'—अर्थ वाच्य हो तो नि उपसर्ग प्रातिपदिक से बिडच् और बिरीसच् प्रत्यय होते हैं ।

बिडच् तथा बिरीसच् के चकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—नि बिडच्-निबिड सु-निबिडम् (=झुकी नासिका, झुकी नासिका वाला) ।

इसी प्रकार-निबिरीसम् ।

इनच्पिटच्चिकचि च 5.2.33

पद.—इनच्पिटच् 1.1, चिकचि-लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः च-अव्य० ।

अनु.—नेः, नते, नासिकायाः, संज्ञायाम् ।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो और 'नासिका का झुकाव' अर्थ वाच्य हो तो नि उपसर्ग प्रातिपदिक से इनच् तथा पिटच् प्रत्यय होते हैं तथा नि शब्द को प्रत्यय के क्रम से चिक तथा चि आदेश होते हैं ।

उदा.—नि इनच्-नि इन-चिक इन (यस्येति च)-चिक् इन-चिकिन सु-चिकिनः ।

नि पिटच्-नि पिट-चि पिट सु-चिपिटः ।

विशेष—1. नि उपसर्ग से 'क' प्रत्यय और प्रकृति को चिक् आदेश होता है ।[1]—

नि क-चिक् क-चिक्कसु-चिक्कः ।

2. इसकी आँखें गीली हैं—इस अर्थ में क्लिन्न शब्द से 'ल' प्रत्यय होता है और प्रकृति को चिल् तथा पिल् आदेश होते हैं ।[2]—

क्लिन्नेऽस्य चक्षुषी-क्लिन्न ल-चिल् ल-चिल्ल सु-चिल्लः ।

पिल् ल-पिल्ल सु-पिल्लः ।

3. पूर्वोक्त अर्थ में 'ल' प्रत्यय और प्रकृति को चुल् आदेश होता है ।[3]—

क्लिन्नेऽस्य चक्षुषी-क्लिन्न ल-चुल् ल सु-चुल्लः ।

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः 5.2.34

पद.—उपाधिभ्याम् 5.2, त्यकन् 1.1, आसन्नारूढयोः 7.2

अनु.—संज्ञायाम् ।

अर्थ—आसन्न और आरूढ अर्थों में यथासंख्य करके उप तथा अधि उपसर्ग प्रातिपदिकों से त्यकन् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में ।

त्यकन् के नकार की इत् संज्ञा होती है ।

उदा.—पर्वतस्य आसन्नम्-उप त्यकन्-उपत्यक टाप् सु-उपत्यका (=पहाड़ की तराई) ।

पर्वतस्य अधिरूढम्-अधि त्यकन् टाप् सु-अधित्यका (= पर्वत का पठार) ।

---

1. महा० 5.2.33 (वा०)—ककारः प्रत्ययो वक्तव्यश्चिक् च प्रकृत्यादेशः ।
2. महा० 5.2.33 (वा०)—क्लिन्नस्य चिल् पिल्लश्चास्य चक्षुषी ।
3. महा० 5.2.33 (वा०)—चुल्लादेशो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मणि घटोऽठच् 5.2.35

पद.—कर्मणि 7.1, घटः 1.1, अठच् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—चेष्टा करने वाला–इस अर्थ में सप्तमी समर्थ कर्मन प्रातिपदिक से अठच् प्रत्यय होता है ।

'अठच्' के 'च्' की इत्संज्ञा है ।

उदा.—कर्मणि घटते–कर्मन् अठच्–कर्म् अठ–कर्मठ सु–कर्मठः ।

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् 5.2.36

पद.—तत् 1.1, अस्य 6.1, संजातम् 1.1, तारकादिभ्यः 5.3, इतच् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—षष्ठी के अर्थ में संजात समानाधिकरण वाले प्रथमा समर्थ तारक आदि प्रातिपदिकों से इतच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—तारकाः संजाता अस्य–तारक इतच्–तारकित सु–तारकितम् । यचि भम् । यस्येति च ।

पण्डा (सदसद् विवेकशालिनी बुद्धिः) सञ्जाता अस्य–पण्डितः । विघ्नाः सञ्जाता अस्य–विघ्नितः (रघु० 12.53) ।

गर्वः सञ्जातोऽस्य–गर्वितः (हितो० 2.153) ।

पुलकितम् (मे० 26) ।

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः 5.2.37

पद.—प्रमाणे 7.1, द्वयसज् ..... मात्रचः 1.3

अनु.—तद्, अस्य ।

अर्थ—प्रथमा समर्थ प्रमाण समानाधिकरणवाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में द्वयसच्, दघ्नच् तथा मात्रच् प्रत्यय होते हैं ।

तीनों प्रत्ययों के चकार की इत्संज्ञा होती है ।

द्वयसच् और दघ्नच् प्रत्ययों का प्रयोग ऊँचाई के नाप में होता है ।

मात्रच् का प्रयोग ऊँचाई व लम्बाई दोनों नापों में होता है ।

उदा.—ऊरू प्रमाणम् अस्य–ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम् (= घुटनों तक) ।

जानुद्वयसम्, जानुदघ्नम्, जानुमात्रम् ।

विशेष—1. ऊँचाई के विषय में केवल द्वयसच् व दघ्नञ् का प्रयोग होता है ।

जानुद्वयसम्, जानुदघ्नम् जलम् (=घुटनों तक जल) ।

नाभिद्वयसम्, नाभिदघ्नम् जलम् (=नाभि पर्यन्त जल) ।

प्रासादद्वयसः, प्रासाददघ्नः आम्रवृक्षः (=महल जितना ऊँचा आम का पेड़) ।

2. मात्रच् सभी प्रकार के मानों में प्रयुक्त होता है ।

जानुमात्रम् जलम् ।

नाभिमात्रम् जलम् ।

प्रासादमात्रः आम्रवृक्षः ।

हस्तमात्रः पटः परन्तु 'हस्तद्वयसः पटः' प्रयोग अशुद्ध है ।

3. स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाऽण्० से ङीप् होता है । यथा—

जानुमात्री, जानुद्वयसी, जानुदघ्नी ।

पुरुषहस्तिभ्यामण् च 5.2.38

पद.—पुरुषहस्तिभ्याम् 5.2, अण् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—प्रमाणे, तदस्य, द्वयसज्दघ्नञ् मात्रचः ।

अर्थ—प्रथमा समर्थ प्रमाण समानाधिकरण वाले पुरुष व हस्तिन् प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में अण्, द्वयसच्, दघ्नच् तथा मात्रच् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—पुरुषः प्रमाणम् अस्य–पुरुष अण्–पौरुष सु–पौरुषम् ।

पुरुष द्वयसच्–पुरुषद्वयसम् ।

पुरुष दघ्नच्–पुरुषदघ्नम् ।

पुरुष मात्रच्–पुरुषमात्रम् ।

हस्ती प्रमाणम् अस्य–हस्तिन् अण्–हास्तिन सु–हास्तिनम् ।

हस्तिद्वयसम्, हस्तिदघ्नम्, हस्तिमात्रम् ।

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् 5.2.39

पद.—यत्तदेतेभ्यः 5.3, परिमाणे 7.1, वतुप् 1.1

अनु.—तदस्य ।

अर्थ—प्रथमा समर्थ परिमाण समानाधिकरणवाची यद्, तद् और एतद् प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है । उकार व पकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—यत् परिमाणम् अस्य–यत् वतुप् य आ वत् –

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यावत् (अकः सवर्णे०)—यावत् सु-यावान् (गी० 2.46, कु० 2.33)। नुम्, संयोगान्त लोप, दीर्घ, हल्ङ्या-दिलोप। आ सर्वनाम्नः तद् वतुप्-तावान्।

एतद् वतुप्-एतावान् (रघु०2.51)।

किमिदम्भ्यां वो घः 5.2.40

पद.—किमिदम्भ्यां 5.2, वः 6.1, घः 1.1

अनु.—तदस्य।

अर्थ—परिमाण में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ किम् और इदम् प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है तथा प्रत्यय के वकार के स्थान पर घकार आदेश होता है।

उदा.—किम् परिमाणम् अस्य-किम् वतुप्-किम् घत् किम् इयत् (आयनेयीनीयि०)—की इयत् (एकदेशविकृतमनन्यवत्। इदं किमोरीश् की)—

क् इयत् (यस्येति च)—कियत् सु—कियान् (नै० 1.130)।

इदम् वतुप् इदम् घत्-इदम् इयत्-ईश् इयत्-ई इयत्-(यस्येति च)-इयत् सु-इयान्। इयान् (इदं-किमोरीश्की)।

किमः संख्यापरिमाणे डति च 5.2.41

पद.—किमः 5.1, संख्यापरिमाणे 7.1, इति-लुप्त-प्रथमान्तनिर्देशः, च-अव्य०।

अनु.—वतुप्, वः, घः।

अर्थ—संख्या के परिमाण अर्थ में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ किम् प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में डति तथा वतुप् प्रत्यय होते हैं तथा वतुप् के वकार के स्थान पर 'घ' आदेश भी होता है।

उदा.—का संख्या परिमाणम् एषाम्-किम् डति-कति जस्-कति (जनाः)।

किम् वतुप्-किम् घत्-किम् इयत्-कियत् सु-कियान्।

संख्याया अवयवे तयप् 5.2.42

पद.—संख्यायाः 5.1, अवयवे 7.1, तयप् 1.1

अनु.—तद् अस्य।

अर्थ—अवयव अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में तयप् होता है।

उदा.—पञ्च अवयवा अस्य-पञ्चन् तयप्-पञ्च तय-पञ्चतय सु-पञ्चतयम्। स्वादिष्व सर्व०। न लोपः प्राति०। चतुर् तयप्-चतुः तय-चतुस् तय (विसर्जनीयस्य सः)-चतुष् तय (ह्रस्वात्तादौ०)-चतुष्टय (ष्टुना ष्टुः) सु-चतुष्टयम्।

तयप् तथा अयच् प्रत्ययान्त शब्दों का दो प्रकार से प्रयोग होता है। यथा—

(क) धर्म प्रधान निर्देश की दशा में—स्त्रीलिंग या नपुँसकलिंग। जैसे—वर्णानां चतुष्टयम् अथवा वर्णानां चतुष्टयी। इसी प्रकार—लोकानां त्रयम् त्रयी वा।

(ख) धर्मी प्रधान निर्देश की दशा में—विशेष्यानुसार। जैसे—

त्रयाः लोकाः, त्रये लोकाः (प्रथमचरमतयाल्पा०)।
त्रय्यः स्थितयः।
त्रयाणि जगन्ति।

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा 5.2.43

पद.—द्वित्रिभ्याम् 5.2, तयस्य 6.1, अयच् 1.1, वा-अव्य०।

अनु.—तद् अस्य।

अर्थ—द्वि तथा त्रि प्रातिपदिकों से परे 'तयप्' के स्थान पर विकल्प से अयच् प्रत्यय होता है।

अनेकाल् होने से सम्पूर्ण स्थानी को आदेश होता है। 'तय' के द्वारा 'तयप्' का ग्रहण होता है। अयच् के चकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—द्वौ अवयवौ अस्य-द्वि तयप्-द्वितय-द्वि अयच्—

द्वि अय-द्व् अय (यस्येति च)-द्वयम् (सु) कु० 5.71
द्वि तयप् (पक्षे)—द्वितयम् (रघु० 8.6)।
त्रयोऽवयवा अस्य-त्रयम् (रघु० 3.16)।
त्रितयम् (हितो० 1.38)।

विशेष—प्रकृतसूत्र में 'तयप्' पद का अनुवर्त्तन कर विभक्ति विपरिणामेन उसे षष्ठ्यन्त (तयपः) कर लेने पर लाघव होता है, परन्तु ऐसा करने में एक दोष उपस्थित होता है। प्रकृतसूत्र में 'तयस्य' पद का योग न करने पर 'अयच्' प्रत्यय तयप् का अपवाद बन जाता है। उस दशा में स्थानिवद्भाव न होने से स्त्रीत्व में ङीप् न हो पाता तथा जस् में पाक्षिक सर्वनामता (प्रथमचरमतयाल्पार्ध०) भी न हो पाती।

उभादुदात्तो नित्यम् 5.2.44

पद.—उभात् 5.1, उदात्तः 1.1, नित्यम् 1.1

अनु.—तयस्य, अयच्, तद्, अस्य।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—षष्ठी के अर्थ में प्रथमा समर्थ 'उभ' प्रातिपदिक से पर तयप् को नित्य अयच् आदेश होता है तथा अयच् का आदि अकार उदात्त होता है।

अयच् में दो अच् हैं। दोनों के उदात्तत्व का बाध 'अनुदात्तम् पदमेकवर्जम्' से हो जाता है। 'चित्' होने से अयच् का अन्तोदात्तत्व 'चितः' के द्वारा सिद्ध ही है। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य आदि अच् (अकार) को उदात्त करना चाहते हैं।

उदा.—उभ अयच्-उभ् अय-उभय सु-उभयः। स्त्रीत्व की विवक्षा में स्थानिवद्भाव के कारण तयप् प्रत्यय होने से 'टिड्ढाऽण्०' से ङीप् होता है। उभयी (रघु० 8.23)।

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः 5.2.45

पद.—तद् 1.1, अस्मिन् 7.1, अधिकम् 1.1, इति अव्य०, दशान्तात् 5.1, डः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—दशन् शब्द है अन्त में जिसके ऐसे प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से 'ड' प्रत्यय होता है, सप्तमी के अर्थ में; यदि वह प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक 'अधिक' समानाधिकरण वाला हो।

'ड' के डकार की इत्संज्ञा होती है। 'टेः' से टि का लोप होता है।

उदा.—एकादश अधिका अस्मिन् शते—एकादशन् ड—एकादश् अ—एकादश सु-एकादशम् शतम् (=एक सौ ग्यारह)।

विशेष—1. दशन् शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक से सूत्रोक्त 'ड' प्रत्यय होता है।

पञ्च अधिका अस्मिन् शते—यहाँ 'ड' नहीं हुआ।

2. 'दशन्' शब्द के अन्त में होने पर ही पूर्वोक्त 'ड' प्रत्यय होता है:—

दशाधिका अस्मिन् शते—यहाँ 'ड' नहीं हुआ।

शदन्तविंशतेश्च 5.2.46

पद.—शदन्तविंशतेः 5.1, च-अव्य०।

अनु.—तद् अस्मिन् अधिकम् डः।

अर्थ—'अधिक' अर्थ में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ शदन्त तथा विंशति प्रातिपदिकों से सप्तमी के अर्थ में 'ड' होता है।

उदा.—त्रिंशद् अधिका यस्मिन् शते—त्रिंशत् ड—त्रिंश् अ-त्रिंश सु-त्रिंशं शतम्।

विंशतिरधिका अस्मिन् शते—विंशं शतम्।

'ति विंशतेर्डिति' से 'ति' का लोप।

विशेष—विंशति जिसके अन्त में है, ऐसे प्रातिपदिक से भी 'ड' होता है।[1]

एकविंशतिरधिका अस्मिन् शते—एकविंशं शतम्।

संख्यायाः गुणस्य निमाने मयट् 5.2.47

पद.—सङ्ख्यायाः 5.1, गुणस्य 6.1 निमाने 7.1, मयट् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—'इस भाग का यह मूल्य है'—इस अर्थ में प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से मयट् होता है।

उदा.—यवानां द्वौ भागौ निमानं (मूल्यम्) अस्य उदश्वित् भागस्य द्वि मयट्—द्विमय सु-द्विमयम् उदश्वित् यवानाम्।

विशेष—1. सूत्रोक्त 'गुणस्य' पद का फल है कि भाग का यह मूल्य है—इस अर्थ में ही मयट् होता है। यथा द्वौ व्रीहियवौ निमानस्योदश्वितः—यहाँ 'भाग' अभिप्रेत नहीं है। अतः मयट् न हुआ।

2. 'निमानम्' का फल है कि 'भाग का यह मूल्य है—इस अर्थ में ही मयट् होता है—

द्वौ गुणौ क्षीरस्यैकस्तैलस्य द्विगुणं तैलं पच्यते क्षीरेण—यहाँ 'मूल्य' अर्थ अभिप्रेत नहीं है। अतः मयट् न हुआ।

तस्य पूरणे डट् 5.2.48

पद.—तस्य 6.1, पूरणे 7.1, डट् 1.1

अनु.—संख्यायाः।

अर्थ—षष्ठी समर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् होता है। 'चुटू' से डकार की इत्संज्ञा होती है। एकादशानां पूरणः—एकादशन् डट्—एकादश् अ-

उदा.—एकादश सु-एकादशः।

नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् 5.2.49

पद.—नान्तात् 5.1 असङ्ख्यादेः 5.1, मट् 1.1

अनु.—तस्य संख्यायाः पूरणे डट्।

अर्थ—जिसके आदि में कोई संख्या न हो, ऐसे नकारान्त संख्यावाची षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से परे डट् प्रत्यय हो तथा

1. काशि० 5.2.46—तदन्तादपीति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस डट् को मट् आगम हो । मट् के टकार व आकार की इत्संज्ञा होती है । टित् होने से यह डट् का आदि अवयव बनेगा । 'संख्यादि' का अर्थ है—जिसके आदि में संख्या हो ।

एकादशन् संख्यादि संख्या है । चूँकि इसके प्रारम्भ में 'एक' शब्द है । इसी प्रकार द्वादशन् संख्यादि संख्या है ।

परन्तु द्वि, त्रि, चतुर् आदि असंख्यादि संख्या है ।

उदा.—पञ्चानां पूरणः—पञ्चन् डट्—पञ्चन् अ (यचि भम् टेः । नान्तादसंख्यादे० । टिलोप व मट् की युगपत् प्रवृत्ति हुई । अन्तरंग होने से टिलोप का बाध)—पञ्चन् मट् अ–पञ्चन् म् अ–पञ्च म सु–पञ्चमः ।

इसी प्रकार—सप्तमः, अष्टमः, नवमः, दशमः ।

विशेष—1. मट् आगम होने पर प्रत्यय अजादि नहीं रहता । अतः टिलोप नहीं होता ।

2. सूत्र की शर्त के अनुसार **नकारान्त** से पर डट् को मट् का आगम होता है ।

विंशतेः पूरणः—विंशति डट् (तस्य पूरणे डट्)—विंशति अ—विंश अ (यचि भम् । ति विंशतेर्डिति)—'यस्येति च' से अकार लोप की प्राप्ति हुई, परन्तु 'असिद्धवत्राभात्' से 'ति' का लोप असिद्ध होने के कारण लोप न हुआ—विंश अ (अतो गुणे)—विंश सु–विंशः । 'विंशति' नकारान्त नहीं है । अतः 'विशति डट्' इस दशा में मट् आगम नहीं होता है ।

असंख्यादेः अर्थात् संख्यादि संख्यावाचक से पर डट् प्रत्यय को मट् आगम नहीं होता है ।

एकादशानां पूरणः—एकादशः ।

एकादशन् संख्यादि नकारान्त शब्द है । अतः डट् को मट् आगम न हुआ ।

थट् च छन्दसि 5.2.50

पद.—थट् 1.1 च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—नान्तात् असंख्यादेः मट् तस्य पूरणे डट् संख्यायाः

अर्थ—वेद के विषय में जिसके आदि में संख्या नहीं है, ऐसे नकारान्त संख्यावाची षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में प्राप्त डट् प्रत्यय को थट् तथा मट् आगम होते हैं ।

थट् के थकार व टकार की तथा मट् के मकार व टकार की इत्संज्ञा होती है ।

थट् व मट् टित् हैं । अतः डट् के आदि अवयव होते हैं ।

पञ्चन् डट्—पञ्चन् मट् अ–पञ्च म सु–पञ्चमः ।

पक्ष में—पञ्चन् थट् डट्–पञ्चथः ।

षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् 5.2.51

पद.—षट्कतिकतिपयचतुराम् 6.3, थुक् 1.1

अनु.—तस्य पूरणे डट् संख्यायाः ।

अर्थ—डट् प्रत्यय परे रहते षष्ठी समर्थ षष्, कति, कतिपय तथा चतुर् प्रातिपदिकों को थुक् आगम होता है, पूरण अर्थ में ।

थुक् के उकार व ककार की इत्संज्ञा होती है । थुक् कित् है । अतः इन प्रातिपदिकों का अन्त्य अवयव बनेगा ।

उकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—षण्णां पूरणः—षष् डट् (तस्य पूरणे)—षष् थुक् अ–षष् थ् अ–षष् ठ् अ (ष्टुना ष्टुः)—षष्ठ सु–षष्ठः ।

कति थुक् डट्–कति थ् अ सु–कतिथः ।

'कतिपय' शब्द संख्यावाची नहीं है । अतः पूरण अर्थ में 'तस्य पूरणे डट्' से डट् की प्राप्ति नहीं होती है । प्रकृतसूत्र में 'कतिपय' शब्द का ग्रहण ज्ञापित करता है, कि संख्यावाची न होते हुए भी 'कतिपय' शब्द से डट् होता है, अन्यथा थुक् आगम व्यर्थ हो जाता है । तब कतिपय थुक् डट् सु–कतिपयथः ।

चतुर् डट्–चतुर् थुक् अ–चतुर्थ सु–चतुर्थः ।

विशेष—1. चतुर् शब्द से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय के अतिरिक्त 'चतुरश्छयतौ आद्यक्षर 'लोपश्च'[1] वार्तिक के द्वारा छ तथा यत् प्रत्यय भी होते हैं और चतुर् के आदि अक्षर (च) का लोप होता है ।

चतुर् छ–तुर् ईय् अ–तुरीय सु–तुरीयः ।

चतुर् यत्–तुर् य–तुर्यसु–तुर्यः ।

2. प्रकृतसूत्र में आचार्य के द्वारा प्रत्यय को आगम न करके प्रकृति को आगम किया जाना सप्रयोजन है । प्रत्यय को थुट् का आगम करने पर 'कतिथ' तथा 'कतिपयथ' की सिद्धि निर्बाध है । परन्तु 'षष् थुट् डट्' इस दशा में 'झलां जशोऽन्ते' के द्वारा डकार होकर 'षड्थ' ऐसा अनिष्ट रूप बनता है ।

इसी प्रकार 'चतुर् थुट् डट्' इस दशा में पदान्त रेफ को

1. महा० 5.2.51 (वा०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसर्ग तथा पुनः सकारादेश होकर 'चतुस्थ' अनिष्ट रूप बनता है।

अतः डट् प्रत्यय को थुट् आगम न करके प्रकृति को थुक् आगम किया गया है।

बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक् 5.2.52

पद.—बहुपूगगणसङ्घस्य 6.1, तिथुक् 1.1

अनु.—तस्य पूरणे डट् संख्यायाः।

अर्थ—डट् प्रत्यय परे रहते षष्ठी समर्थ बहु, पूग, गण तथा संघ प्रातिपदिकों से पूरण अर्थ में तिथुक् आगम होता है। तिथुक् के उकार व ककार की इत्संज्ञा होती है। कित् होने से यह प्रकृति का अन्त अवयव होता है।

उदा.—बहूनां पूरणः—बहु तिथुक् डट्-बहुतिथ् अ सु-बहुतिथः। बहुगणवतुडति संख्या।

इसी प्रकार—गणतिथः।

पूग तथा संघ शब्दों से पूरण अर्थ में प्रकृतसूत्र से डट् होता है। यह ज्ञापन सिद्ध है।

पूगतिथः। संघतिथः।

वतोरिथुक् 5.2.53

पद.—वतोः 6.1, इथुक् 1.1

अनु.—तस्य पूरणे डट् संख्यायाः

अर्थ—पूरण अर्थ में विहित डट् प्रत्यय परे रहते वत्वन्त प्रातिपदिक को इथुक् आगम होता है।

इथुक् के उकार व अकार की इत्संज्ञा होती है। वत्वन्त प्रातिपदिक की 'बहुगणवतु०' से संख्यासंज्ञा होती है।

उदा.—यावतां पूरणः-यावतिथः।

इसी प्रकार—तावतिथः, एतावतिथः।

द्वेस्तीयः 5.2.54

पद.—द्वेः 5.1, तीयः 1.1

अनु.—तस्य, पूरणे, संख्यायाः।

अर्थ—पूरण अर्थ में षष्ठी समर्थ 'द्वि' प्रातिपदिक से 'तीय' प्रत्यय होता है।

उदा.—द्वयोः पूरणः-द्वितीय सु-द्वितीयः।

त्रेः सम्प्रसारणञ्च 5.2.55

पद.—त्रेः 5.1, सम्प्रसारणम् 1.1, च-अव्य०।

अनु.—तीयः, संख्यायाः, तस्य, पूरणे।

अर्थ—पूरण अर्थ में षष्ठी समर्थ 'त्रि' प्रातिपदिक से तीय प्रत्यय होता है तथा प्रकृति को सम्प्रसारण होता है।

उदा.—त्रि तीय-त् ऋ इ तीय (इग्यणः सम्प्रसारणम्। सम्प्रसारणाच्च)—तृतीय सु-तृतीयः।

तृ तीय-इस दशा में अंग के अवयव हल् से परे सम्प्रसारण को दीर्घ प्राप्त होता है। (हलः)।

परन्तु 'हलः' में 'ढ्रलोपे पूर्वस्य—' से 'अणः' का अनुवर्त्तन करके सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—हल से पर सम्प्रसारण के अण् को दीर्घ होता है। इस प्रकार दीर्घत्व की अप्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सूत्रपाठ से भी ज्ञापित होता है कि आचार्य को यहाँ दीर्घ करना अभीष्ट नहीं है—

कर्तृकरणयोस्तृतीया।
तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन।

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् 5.2.56

पद.—विंशत्यादिभ्यः 5.3 तमट् 1.1 अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—संख्यायाः तस्य पूरणे।

अर्थ—षष्ठी समर्थ संख्यावाची विंशति आदि प्रातिपदिकों से पूरण अर्थ में विहित डट् प्रत्यय को तमट् आगम विकल्प से होता है।

उदा.—विंशतेः पूरणः—विंशति डट्-विंशति तमट् अ-विंशति तम् अ सु-विंशितमः।

पक्ष में—विंशति डट्-विंश अ-विंश सु-विंशः।

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च 5.2.57

पद.—नित्यम् 1.1 शता ... सरात् 5.1, च-अव्य०।

अनु.—तस्य पूरणे तमट्।

अर्थ—षष्ठी समर्थ शतादि प्रातिपदिक से तथा मास, अर्द्धमास व संवत्सर प्रातिपदिकों से पर डट् प्रत्यय को नित्य तमट् आगम होता है, पूरण अर्थ में।

मास, अर्द्धमास तथा संवत्सर शब्द संख्यावाची नहीं है, तथापि सूत्र में इनका योग होने से ज्ञापित होता है कि मास आदि शब्दों से पूरण अर्थ में डट् होता है।

उदा.—शतस्य पूरणः—शत तमट् डट्-शततम् अ-शततम सु-शततमः।

इसी प्रकार—सहस्रतमः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासस्य पूरणः–मासतमः ।
अर्द्धमासस्य पूरणः–अर्द्धमासतमः ।
संवत्सरस्य पूरणः–संवत्सरतमः ।

षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः 5.2.58

पद.—षष्ट्यादेः 5.1, च–अव्य० । असङ्ख्यादेः 5.1

अनु.—नित्यम्, तमट्, संख्यायाः, तस्य पूरणे

अर्थ—जिसके आदि में संख्या न हो ऐसे षष्ठी समर्थ संख्यावाची षष्टि आदि प्रातिपदिकों से पूरण अर्थ में विहित डट् प्रत्यय को नित्य तमट् आगम होता है ।

उदा.—षष्टेः पूरणः—षष्टितमः ।
इसी प्रकार–सप्ततितमः ।

सूत्र की शर्त के अनुसार जिसके आदि में संख्या है, उस संख्यावाची से पर डट् को नित्य तमट् आगम न होगा, प्रत्युत पाक्षिक तमट् होगा ।

एकसप्तति तमट् डट्–एकसप्ततितमः ।
पक्ष में—एकसप्ततः ।

मतौ छः सूक्तसाम्नोः 5.2.59

पद.—मतौ 7.1 छः 1.1, सूक्तसाम्नोः 7.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—सूक्त तथा साम वाच्य हों तो मत्वर्थ में प्रातिपदिक-मात्र से छ प्रत्यय होता है ।

तदस्याऽस्त्यस्मिन्निति० के द्वारा मतुप् होता है । यही अर्थ मत्वर्थ कहलाता है ।

उदा.—अस्यवाम शब्दोऽस्मिन्नस्तीति–अस्यवाम छ–अस्यवामीयम् (सूक्तम्) ।
इसी प्रकार–यज्ञायज्ञीयम् (साम) ।

अध्यायानुवाकयोर्लुक् 5.2.60

पद.—अध्या .... योः 7.2, लुक् 1.1

अनु.—मतौ, छः ।

अध्याय और अनुवाक वाच्य हों तो मत्वर्थ में विहित 'छ' प्रत्यय का लुक् होता है ।

महर्षि पतंजलि के अनुसार पाक्षिक लुक् होता है । पक्ष में 'छ' होता है ।

उदा.—गर्दभाण्ड छ–गर्दभाण्ड–गर्दभाण्ड सु–गर्दभाण्डः (अध्यायोऽनुवाको वा) ।
पक्ष में—गर्दभाण्डीयः ।

विमुक्तादिभ्योऽण् 5.2.61

पद.—विमुक्तादिभ्यः 5.3, अण् 1.1

अनु.—अध्यायाऽनुवाकयो; मतौ ।

अर्थ—अध्याय और अनुवाक वाच्य हो तो मत्वर्थ में विमुक्त आदि प्रातिपदिकों से अण् होता है ।

उदा.—विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्तीति–विमुक्त अण्–वैमुक्त सु–वैमुक्तोऽध्यायोऽनुवाको वा ।

गोषदादिभ्यो वुन् 5.2.62

पद.—गोषदादिभ्यः 5.3, वुन् 1.1

अनु.—अध्यायाऽनुवाकयोः मतौ ।

अर्थ—अध्याय और अनुवाक अर्थ वाच्य हो तो मत्वर्थ में गोषदादि प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—गोषद् वुन्–गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा ।

तत्र कुशलः पथः 5.2.63

पद.—तत्र–अव्य०, कुशलः 1.1, पथः 5.1

अनु.—वुन् ।

अर्थ—'कुशल' अर्थ में सप्तमी समर्थ पथिन् प्रातिपदिक से वुन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—पथि कुशलः—पथिन् वुन्–पथ् अक सु–पथकः ।

आकर्षादिभ्यः कन् 5.2.64

पद.—आकर्षादिभ्यः 5.3, कन् 1.1

अनु.—तत्र कुशलः ।

अर्थ—'कुशल' अर्थ में सप्तमी समर्थ आकर्षादि प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—आकर्षे कुशलः–आकर्षकः (= कसौटी के कार्य में चतुर) । त्सरौ कुशलः–त्सरुकः ।

धन हिरण्यात् कामे 5.2.65

पद.—धनहिरण्यात् 5.1, कामे 7.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—'इच्छा' अर्थ में सप्तमी समर्थ धन और हिरण्य प्रातिपदिकों से कन् होता है ।

उदा.—धने कामः—धन कन् सु–धनकः (= धन की इच्छा) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्य कन्-हिरण्यकः ।

स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते 5.2.66

पद.—स्वाङ्गेभ्यः 5.3, प्रसिते 7.1,

अनु.—कन् तत्र ।

अर्थ—'तत्पर' अर्थ में सप्तमी समर्थ स्वांगवाची प्रातिपदिक से कन् होता है ।

उदा.—केशेषु प्रसितः-केशकः (= बाल सँवारने में तत्पर)।

इसी प्रकार—दन्तकः, ओष्ठकः ।

उदराद् ठगाद्यूने 5.2.67

पद.—उदरात् 5.1, ठक् 1.1, आद्यूने 7.1

अनु.—तत्र प्रसिते ।

अर्थ—'पेटू' अर्थ वाच्य हो तो सप्तमी समर्थ उदर प्रातिपदिक से तत्पर अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

उदा.—उदरे प्रसितः-उदर ठक्-औदरिकः ।

शस्येन परिजातः 5.2.68

पद.—शस्येन 3.1, परिजातः 1.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—सब ओर से उत्पन्न—इस अर्थ में तृतीयासमर्थ सस्य प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—सस्येन परिजातः-सस्यकः साधुः (= पूर्ण साधु गुणों से युक्त) ।

अंशं हारी 5.2.69

पद.—अंशम् 2.1, हारी 1.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—हरण करने वाला-इस अर्थ में द्वितीया समर्थ अंश प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—अंशं हारी—अंशकः (= परम्परया प्राप्त धन को प्राप्त करने वाला) ।

तन्त्रादचिरापहृते 5.2.70

पद.—तन्त्रात् 5.1, अचिरापहृते 7.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—तत्काल बुना हुआ-अर्थ में पंचमी समर्थ तन्त्र प्रातिपदिक से कन् होता है ।

जुलाहे की खड्डी को 'तन्त्र' कहा जाता है ।

उदा.—तन्त्राद् अचिरापहृतः—तन्त्रकः पटः (=वह कपड़ा जो थोड़ी देर पूर्व खड्डी से पृथक् किया गया है) ।

ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम् 5.2.71

पद.—ब्राह्मणकोष्णिके 1.2, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में कन् प्रत्ययान्त ब्राह्मणक और उष्णिक शब्दों का निपातन किया जाता है ।

ब्राह्मणको देशः (= देश जिसमें शस्त्रजीवी ब्राह्मण रहते हों)।

उदा.—उष्णिका यवागूः (= लप्सी जिसमें अन्न कम हो तथा जल अधिक हो) । 'अल्पात्र' को निपातन से 'उष्ण' आदेश होता है ।

शीतोष्णाभ्यां कारिणि 5.2.72

पद.—शीतोष्णाभ्याम् 5.2, कारिणि 7.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—करने वाला—अर्थ वाच्य हो तो शीत और उष्ण द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से कन् होता है ।

उदा.—शीतं करोति—शीतकः ।

उष्णं करोति—उष्णकः ।

अधिकम् 5.2.73

पद.—अधिकम् 1.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—कन् प्रत्ययान्त 'अधिक' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—अध्यारूढ कन् (उत्तरपद लोप)—अधिकन्-अधिकम् (सु) ।

अनुकाभिकाभीकः कमिता 5.2.74

पद.—अनुकाभिकाभीकः 1.1 कमिता 1.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—इच्छा करने वाला-अर्थ में कन् प्रत्ययान्त अनुक, अभिक तथा अभीक शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—अनुकामयते-अनुकन्-अनुक सु-अनुकम् (= कामना करने वाला) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—अभि कामयते–अभिकम् (=कामुक, क्रूर)।

पक्ष में दीर्घ–अभीकम्।

पार्श्वेनान्विच्छति 5.2.75

पद.—पार्श्वेन 3.1, अन्विच्छति–क्रिया०।

अनु.—कन्।

अर्थ—चाहता है—अर्थ में तृतीया समर्थ पार्श्व प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है।

उदा.—पार्श्वेन अर्थान् अन्विच्छति—पार्श्वकः (= कुटिल उपायों से पैसा कमाने वाला)।

अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ 5.2.76

पद.—अयः .... भ्याम् 3.2, ठक्ठञौ 1.2

अनु.—अन्विच्छति।

अर्थ—अन्विच्छति—इस अर्थ में तृतीया समर्थ अयः-शूल तथा दण्डाजिन प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ठक् तथा ठञ् प्रत्यय होते है।

उदा.—(1) अयःशूलेनाऽन्विच्छति–अयःशूल ठक्–आयः-शूलिकः (= साहसिक)।

(2) दण्डाजिनमन्विच्छति—दण्डाजिन ठञ्–दाण्डाजिनिकः (= दम्भी)।

तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा 5.2.77

पद.—तावतिथम् 1.1, ग्रहणम् 1.1, इति-अव्य०, लुक् 1.1, वा-अव्य०।

अनु.—कन्।

अर्थ—द्वितीया समर्थ पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है तथा उस पूरणार्थक प्रत्यय का विकल्प से लोप होता है, जो द्वितीया समर्थ है यदि वह ग्रहण करना हो।

इतिकरण विवक्षा के लिए है। 'तावतिथम्' शब्द में 'वतोरिथुक्' से डट् प्रत्यय तथा प्रकृति से इथुक् आगम हुआ। डट् पूरणार्थक प्रत्यय है। यहाँ पूरणप्रत्ययान्त स्पष्ट निर्देश न करके 'तावतिथम्' ऐसा सामान्य निर्देश किया है। अतः इस पद का अर्थ 'पूरणप्रत्ययान्त' लेना होगा।

उदा.—द्वितीयेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति—द्वितीय कन् (यहाँ 'तीय' प्रत्यय पूरणार्थक है)—द्विक सु–द्विकम् ग्रहणम् (प्रत्यय का लुक् हुआ)। द्वितीय कन्–द्वितीयकम् ग्रहणम् (लुक् नहीं हुआ)।

स एषां ग्रामणीः 5.2.78

पद.—सः 1.1, एषाम् 6.3 ग्रामणीः 1.1

अनु.—कन्।

अर्थ—ग्रामणी समानाधिकरण वाले प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में कन् प्रत्यय होता है।

उदा.—देवदत्तो ग्रामणीरेषाम्–देवदत्त कन् जस्–देव-दत्तकाः।

'ग्रामणीः' का अर्थ है कि प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक जो **'ग्रामणी'** का समानाधिकरण वाला हो, उससे कन् होता है।

देवदत्तः शत्रुरेषाम्–यहाँ कन् न हुआ।

शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे 5.2.79

पद.—शृङ्खलम् 1.1, अस्य 6.1, बन्धनम् 1.1, करभे 7.1

अनु.—कन्।

अर्थ—'बन्धन' अर्थ में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ शृंखल प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में कन् प्रत्यय होता है। यदि 'करभ' शब्द षष्ठी समानाधिकरण वाला हो।

उदा.—शृंखलं बन्धनम् अस्य करभस्य–शृंखलकः (= ऊँट का वह बच्चा जिसके पैरों में शृंखला डाल दी हो)।

उत्क उन्मनाः 5.2.80

पद.—उत्कः 1.1, उन्मनाः 1.1

अनु.—कन्।

अर्थ—'उन्मन' अर्थ में उत्क शब्द का निपातन किया जाता है।

उदा.—उत्कः (=प्रवासी)।

कालप्रयोजनाद्रोगे 5.2.81

पद.—कालप्रयोजनात् 5.1, रोगे 7.1

अनु.—कन्।

अर्थ—'रोग' अर्थ वाच्य हो तो कालवाची और कारणवाची प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय होता है।

सप्तमी समर्थ कालवाची से तथा तृतीया समर्थ कारणवाची से कन् होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—द्वितीयेऽह्नि भवः—द्वितीय कन्-द्वितीयकः ज्वरः (= दूसरे दिन आने वाला बुखार)।

काशपुष्पैः जनितः-काशपुष्पकः ज्वरः (= काश के फूलों से उत्पन्न ज्वर)।

तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम् 5.2.82

पद.—तत् 1.1, अस्मिन् 7.1 अन्नम् 1.1 प्राये 7.1 संज्ञायाम् 7.1

अनु.—कन्।

अर्थ—प्रायः संज्ञा गम्यमान हो तो अन्न के विषय में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से सप्तमी के अर्थ में कन् प्रत्यय होता है।

उदा.—गुडापूपाः प्रायेणाऽन्नमस्यां पौर्णमास्याम्-गुडापूप कन्-गुडापूपक टाप् सु-गुडापूपिका (= पूर्णिमा जिसमें बहुत गुड़ वाला अपूप = पूआ भक्ष्य हो)।

कुल्माषादञ् 5.2.83

पद.—कुल्माषात् 5.1, अञ् 1.1

अनु.—तद् अस्मिन् अन्नम् प्राये संज्ञायाम्।

अर्थ—प्रायः संज्ञा गम्यमान हो तो अन्न के विषय में वर्त्तमान कुल्माष प्रातिपदिक से सप्तमी के अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—कुल्माषाः प्रायेणाऽन्नम् अस्याम्-कौल्माषी पौर्णमासी।

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते 5.2.84

पद.—श्रोत्रियन्-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, छन्दः 2.1, अधीते-क्रिया०।

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—वेद को पढ़ता है—इस अर्थ में श्रोत्रियम् शब्द का निपातन किया जाता है।

श्रोत्रियन् के नकार की इत्संज्ञा होती है। 'ञ्नित्यादि०' से आद्युदात्त होता है।

उदा.—छन्दोऽधीते—छन्दस् घन् (निपातनात् घन्)—श्रोत्र घन्-(निपातनात् सर्वादेशः)-श्रोत्र् इयन्-श्रोत्रियन् सु-श्रोत्रियः।

यह 'तदधीते तद्वेद' से प्राप्त अण् का अपवाद है। प्रकृतसूत्र में 'तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा' (पा० 5.2.77) से मण्डूकप्लुतिन्यायेन 'वा' पद का अनुवर्त्तन होता है। अतः पक्ष में सामान्य अण् होकर 'छान्दसः' बनता है।

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ 5.2.85

पद.—श्राद्धम् 1.1, अनेन 3.1, भुक्तम् 1.2, इनिठनौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—'भुक्त' अर्थ में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ श्राद्ध प्रातिपदिक से कर्त्ता अर्थ में इनि तथा ठन् प्रत्यय पर्यायेण होते हैं।

इनि के नकारोत्तरवर्त्ती इकार की तथा ठन् के नकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—श्राद्धं भुक्तम् अनेन-श्राद्ध इनि-श्राद्धिन् सु-श्राद्धी।
श्राद्ध ठन्-श्राद्धिक सु-श्राद्धिकः।

पूर्वादिनिः 5.2.86

पद.—पूर्वात् 5.1, इनिः 1.1

अनु.—अनेन।

अर्थ—क्रिया विशेषण पूर्व प्रातिपदिक से कर्त्ता अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

नकारोत्तरवर्त्ती इकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—पूर्वं कृतम् अनेन-पूर्व इनि-पूर्विन् सु = पूर्वी।

सपूर्वाच्च 5.2.87

पद.—सपूर्वात् 5.1 च-अव्य०।

अनु.—पूर्वात्, इनिः, अनेन।

अर्थ—जिसके पूर्व में कोई पद हो, ऐसे पूर्व शब्दान्त प्रातिपदिक से कर्त्ता अर्थ में इनि होता है।

उदा.—पूर्वं कृतम् अनेन-कृतपूर्वी (= जो पहले कर चुका है)।

विशेष—'कृतपूर्वी' आदि शब्द 'पूर्वादिनिः' सूत्र के द्वारा भी सिद्ध हो सकते हैं। पुनः आचार्य ने प्रकृतसूत्र का योग निम्नलिखित परिभाषा के ज्ञापनार्थ किया है—

ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्न अर्थात् जब किसी प्रातिपदिक का ग्रहण कर कोई विधि का विधान होता है तो वह विधि उस प्रातिपदिक से होती है तथा तदन्त से नहीं होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इष्टादिभ्यश्च 5.2.88

पद.—इष्टादिभ्यः 5.3, च-अव्य० ।

अनु.—इनिः, अनेन ।

अर्थ—कर्त्ता अर्थ में प्रथमा समर्थ इष्टादि प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय होता है ।

उदा.—इष्टम् अनेन-इष्ट इनि-इष्टिन् सु-इष्टी ।

अधीतम् मनेन-अधीती ।

स्त्रीत्व में-अधीतिनी (= स्त्री जिसने अध्ययन कर लिया है। द्र० कु० 5.16) ।

छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि 5.2.89

पद.—छन्दसि 7.1, परि...रिणौ 1.2, पर्यवस्थातरि 7.1

अनु.—इनिः ।

अर्थ—'पर्यवस्थाता' अर्थ वाच्य हो तो वेद के विषय में परिपन्थिन् और परिपरिन् शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—परिपन्थिन् इनि-परिपन्थ् इन् (निपातनात्)-परिपन्थिन् ।

परि इनि (द्वित्वं निपातनेन)-परिपरि इनि-परिपरिन् ।

परिपन्थिनम् (ऋ० 1.42.3) । परिपरिणः (मा०सं० 4.34) ।

अनुपद्यन्वेष्टा 5.2.90

पद.—अनुपदी 1.1, अन्वेष्टा 1.1

अनु.—इनिः ।

अर्थ—पीछे जाने वाला—इस अर्थ में अनुपदी शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—अनुपदम् अन्वेष्टा—अनुपद इनि-अनुपदी ।

साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् 5.2.91

पद.—साक्षात्-अव्य०, द्रष्टरि 7.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—इनिः ।

अर्थ—'द्रष्टा' अर्थ में साक्षात् शब्द से इनि होता है, संज्ञा के विषय में ।

उदा.—साक्षात् द्रष्टा—साक्षात् इनि (अव्ययानां भमात्रे ... वा० पा० 7.3.144)-साक्ष् इन्-साक्षिन् सु-साक्षी ।

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः 5.2.92

पद.—क्षेत्रियच्-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, परक्षेत्रे 7.1, चिकित्स्यः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—'दूसरे शरीर में चिकित्सा किया जाने योग्य'—इस अर्थ में क्षेत्रियच् शब्द निपातित किया जाता है ।

चकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—पर क्षेत्र घच्-क्षेत्र् इयच् (पर शब्दस्य लोपो निपातनात्)—क्षेत्रिय सु-क्षेत्रियः ।

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा 5.2.93

पद.—इन्द्रियम् 1.1, इन्द्रलिङ्गम् इत्यादिषु प्रत्येकम् 1.1, इति-अव्य०, वा-अव्य० ।

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—इन्द्रलिंग आदि अर्थों में 'इन्द्रिय' शब्द का विकल्प से निपातन किया जाता है ।

'लिङ्ग' अर्थ में षष्ठी समर्थ 'इन्द्र' शब्द से तथा 'दृष्ट' आदि अर्थों में तृतीया समर्थ 'इन्द्र' शब्द से घच् प्रत्यय का निपातन किया गया है ।

उदा.—(1) इन्द्रस्य लिंगम्-इन्द्रियम् ।

(2) इन्द्रेण दृष्टम्-इन्द्रियम् ।

(3) इन्द्रेण सृष्टम्-इन्द्रियम् ।

(4) इन्द्रेण जुष्टम्-इन्द्रियम् ।

(5) इन्द्रेण दत्तम्-इन्द्रियम् ।

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् 5.2.94

पद.—तत् 1.1, अस्य 6.1, अस्ति-क्रिया०, अस्मिन् 7.1, इति-अव्य०, मतुप् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—'इसका यह है' तथा 'इसमें यह है'—इस अर्थ में प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से मतुप् प्रत्यय होता है । मतुप् के उकार व पकार की इत्संज्ञा होती है ।

पित् करण का प्रयोजन स्वर विधान है । उदित् करण का प्रयोजन 'उगिदचां सर्वनाम०' से नुम् आदि कार्य हैं ।

उदा.—गावोऽस्य सन्ति-गो मतुप्-गोमत् सु-गोमान् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् (उगितश्च) होता है—गोमती । वृक्षा अस्मिन् सन्तीति–वृक्षवान् ।

मादुपधायाश्च० से मतुप् के 'म्' को 'व्' हुआ ।

विशेष—1. यद्यपि सूत्र में दो ही अर्थों का निर्देश है, तथापि सूत्र में 'इति' पद के ग्रहण से अन्य अनिर्दिष्ट अर्थों का भी ग्रहण जानना चाहिए ।

महर्षि पतञ्जलि ने उन अनिर्दिष्ट अर्थों का परिगणन किया है ।

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।
सम्बन्धेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥

क) भूमन् अर्थात् अधिक–बह्वयो गावः सन्त्यस्य गोमान् । भाव यह है कि अधिक गायों के होने पर ही व्यक्ति 'गोमान्' होता है, न कि एक गाय के होने पर ।

ख) निन्दा–कुष्ठी पुरुषः यहाँ निन्दा अर्थ वाच्य है ।

ग) प्रशंसा—प्रशस्तं रूपम् अस्त्यस्य–रूपवान् यहाँ प्रशंसा अर्थ में मतुप् हुआ है । द्र० हस्तवता (महाभा० 4.35.18) ।

घ) नित्य योग—नित्यं क्षीरम् अस्त्येषाम्–क्षीरी वृक्षः यहाँ नित्य योग अर्थ में मतुप् हुआ है ।

ङ) अतिशायन अर्थात् अधिक्य या श्रेष्ठता–अतिशयितम् उदरम् अस्त्यस्या–उदरिणी (कन्या) अतिशायन विवक्षित है ।

च) सम्बन्ध अर्थात् संयोग—दण्डोऽस्त्यस्य दण्डी ।

2. मतुबन्त शब्द से सूत्रोक्त अर्थों में पुनः सरूप प्रत्यय नहीं होता है, विरूप प्रत्यय अवश्य होता है । द्र०—

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थकः ।
सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥

अर्थात् शैषिक प्रत्ययान्त से पुनः सरूप शैषिक प्रत्यय नहीं होता है, मतुबन्त से पुनः सरूप मतुब् अर्थीय प्रत्यय नहीं होता है तथा इच्छा अर्थ में हुए सन् प्रत्ययान्त से पुनः सन् नहीं होता है ।

धनवानस्यास्तीति—यहाँ पुनः मतुप् नहीं होगा, कारण कि मतुप् प्रथम हो चुका है ।

दण्डिनः सन्त्यस्या इति—दण्डिमती शाला । दण्डिन् शब्द में मतुबर्थीय इनि है । तब पुनः विरूप प्रत्यय (मतुप्) हो गया है ।

3. गुणवचन प्रातिपदिक से पर मतुप् का लुक् होता है ।[1]

यथा—शुक्लः अस्यास्तीति–शुक्लः पटः ।

रसादिभ्यश्च 5.2.95

पद.—रसादिभ्यः 5.3 च-अव्य० ।

अनु.—तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति मतुप् ।

अर्थ—यह है इसका, यह है इसमें—इन अर्थों में प्रथमा समर्थ रसादि प्रातिपदिकों से मतुप् होता है ।

उदा.—रसोऽस्मिन्नस्तीति—रसवान् ।

इसी प्रकार—रूपवान् ।

यह नियम सूत्र है । यह नियम करता है कि रसादि प्रातिपदिकों से 'अत इनिठनौ' से इनि व ठन् न हों तथा मतुप् ही हों ।

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् 5.2.96

पद.—प्राणिस्थात् 5.1, आतः 5.1, लच् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—तदस्य अस्त्यास्मिन् इति ।

अर्थ—यह है इसका, यह है इसमें—इन अर्थों में प्रथमा समर्थ प्राणियों के अंगवाची तथा आकारान्त प्रातिपदिकों से विकल्प से लच् होता है ।

उदा.—चकार की इत्संज्ञा है । चूडाऽस्यास्तीति—चूडा लच्–चूडाल सु–चूडालः । पक्ष में—चूडावान् ।

इसी प्रकार—ग्रीवालः, ग्रीवावान्, जङ्घालः, जङ्घावान्; जिह्वालः, जिह्वावान् ।

विशेष—सूत्र की शर्तों के अनुसार—

क) **प्राणिस्थ वस्तु के वाचक** प्रातिपदिक से उक्त लच् होता है ।

शिखावान् दीपः—'शिखा' प्रातिपदिक आकारान्त है, परन्तु प्राणिस्थवाची नहीं है । अतः पाक्षिक लच् न होकर मतुप् हुआ ।

ख) **आकारान्त** प्रातिपदिक से उक्त प्रत्यय होता है—

'हस्त' शब्द आकारान्त नहीं है । अतः पाक्षिक लच् न होगा । हस्तवान् ।

सिध्मादिभ्यश्च 5.2.97

पद.—सिध्मादिभ्यः 5,3, च–अव्य० ।

1. महा० 5.2.94 (वा०)—गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग् वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—लच्, अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ सिध्मादि प्रातिपदिकों से विकल्प से लच् प्रत्यय होता है ।

पक्ष में मतुप् होता है ।

उदा.—सिध्ममस्यास्ति—सिध्मलः, सिध्मवान् ।
इसी प्रकार—मणिलः, मणिमान् ।

पार्ष्णि और धमनि शब्दों को दीर्घ होता है ।[1]
धमनि लच्-धमनीलः ।

वत्सांसाभ्यां कामबले 5.2.98

पद.—वत्सांसाभ्याम् 5.2 कामबले 7.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति लच् ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमासमर्थ वत्स तथा अंस प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके काम और बल अर्थों में लच् होता है ।

उदा.—वत्स लच्-वत्सलः ।
अंस लच्-अंसलः ।

फेनादिलच्च 5.2.99

पद.—फेनात् 5.1, इलच् 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—लच् अन्यतरस्याम् तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमासमर्थ फेन प्रातिपदिक से इलच् व लच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

पक्ष में मतुप् होता है ।

उदा.—फेनम् अस्त्यस्य-फेनिलः, फेनलः, फेनवान् ।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः 5.2.100

पद.—लोमा० ... भ्य 5.3, शनेलचः 2.3

अनु.—अन्यतरस्याम् तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में लोमादि प्रातिपदिकों से 'श' प्रत्यय, पामादि प्रातिपदिकों से 'न' प्रत्यय तथा पिच्छादि प्रातिपदिकों से 'इलच्' प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

पक्ष में मतुप् होता है ।

इलच् का चकार इत्संज्ञक है ।

उदा.—(1) लोमानि सन्त्यस्येति-लोमशः, लोमवान् ।
(2) पाम अस्त्यस्येति-पामन् न-पाम न सु-पामनः, पामवान् ।
(3) पिच्छमस्त्यस्येति-पिच्छलः, पिच्छवान् ।

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः 5.2.101

पद.—प्रज्ञा.... भ्य 5.3, णः 1.1

अनु.—अन्यतरस्याम् तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमासमर्थ प्रज्ञा, श्रद्धा और अर्चा प्रातिपदिकों से विकल्प से ण प्रत्यय होता है । ण के णकार की इत्संज्ञा होती है । पक्ष में मतुप् होता है ।

उदा.—प्रज्ञाऽस्यास्तीति—प्रज्ञा ण-प्राज्ञ सु-प्राज्ञः, प्रज्ञावान् ।

श्रद्धा ण-श्राद्धः; श्रद्धा मतुप्-श्रद्धावान् ।

अर्चा ण-आर्चः; अर्चा मतुप्-अर्चावान् ।

काशिका में सूत्र में 'वृत्ति' शब्द का अधिक पाठ प्राप्त होता है—

वृत्ति ण-वार्त्तः । वृत्ति मतुप्-वृत्तिवान् ।

तपःसहस्राभ्यां विनीनी 5.2.102

पद.—तपःसहस्राभ्याम् 5.2 विनीनी 1.2

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ तपस् तथा सहस्र प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके विनि तथा इनि प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—तपोऽस्याऽस्मिन्-तपस् विनि-तपस्विन् सु-तपस्वी।
सहस्र इनि-सहस्रिन् सु-सहस्री ।

अण् च 5.2.103

पद.—अण् 1.1 च-अव्य० ।

अनु.—तपःसहस्राभ्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ तपस् व सहस्र प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय भी होता है ।

उदा.—तपस् अण्-तापस सु-तापसः । (भट्टि० 1.20)।
सहस्र अण्-साहस्रः ।

विशेष—ज्योत्स्ना आदि प्रातिपदिकों से मत्वर्थीय अण् प्रत्यय होता है ।[2] यथा—

ज्योत्स्नाऽस्ति अस्मिन् पक्षे-ज्यौत्स्नः पक्ष ।

इसी प्रकार-तामिस्रः आदि ।

---

1. गणसूत्र ।

2. महा० 5.2.103 (वा०)—अण्प्रकरणे ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिकताशर्कराभ्यां च 5.2.104

पद.—सिकताशर्कराभ्याम् 5.2, च-अव्य० ।

अनु.—अण् तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ सिकता तथा शर्करा प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होता है ।

उदा.—सिकता अण्-सैकतः ।
शर्करा अण्-शार्करः ।

देशे लुबिलचौ च 5.2.105

पद.—देशे 7.1, लुबिलचौ 1.2, च-अव्य० ।

अनु.—सिकताशर्कराभ्याम्, अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—'देश' अभिधेय हो तो प्रथमा समर्थ सिकता तथा शर्करा प्रातिपदिकों से लुप् और इलच् तथा अण् प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

पक्ष में मतुप् होता है ।

उदा.—सिकता इलच्-सिकतिलः ।
सिकता अण्-सैकतः । (भट्टि० 2.18)।
सिकता मतुप्-सिकतावान् ।

इसी प्रकार—शर्करिलः, शार्करः, शर्करावान् ।

'देशे' पद का प्रयोजन है कि 'देश' गम्यमान न हो तो सूत्रोक्त प्रत्यय न होकर केवल अण् होता है—

सैकतो घटः ।
शार्करं मधु ।

दन्त उन्नत उरच् 5.2.106

पद.—दन्तः 1.1, पञ्चम्यर्थे प्रथमा, उन्नतः 1.1, उरच् 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—उन्नत अर्थ में विद्यमान प्रथमासमर्थ दन्त शब्द से उरच् प्रत्यय होता है, मत्वर्थ में । चकार की इत्संज्ञा है ।

उदा.—दन्ता उन्नताः सन्त्यस्येति—दन्त उरच्-दन्त उर (यस्येति च)-दन्तुर सु-दन्तुरः ।

यदि दन्त शब्द उन्नत अर्थ में विद्यमान न हो तो सूत्रोक्त उरच् प्रत्यय न होगा, मतुप् होगा—दन्तवान् ।

ऊषसुषिमुष्कमधो रः 5.2.107

पद.—ऊष ... धोः 5.1, रः 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ ऊष, सुषि, मुष्क तथा मधु प्रातिपदिकों से 'र' प्रत्यय होता है ।

उदा.—ऊषरम् क्षेत्रम् ।
सुषिरम् काष्ठम् ।
मुष्करः पशुः ।
मधुरो गुड़ः ।

विशेष—1. ख, मुख तथा कुञ्ज प्रातिपदिकों से मत्वर्थीय 'र' प्रत्यय होता है ।[1]—

खम् (महत् कण्ठविरम्) अस्याऽस्ति—खरः ।
मुखम् अस्यास्ति-मुखरः (मे० 40) ।
कुञ्जौ अस्य स्तः—कुञ्जरः ।

2. नग, पांशु और पाण्डु प्रातिपदिकों से मत्वर्थीय 'र' प्रत्यय होता है ।[2]—

नगाः (पर्वताः) सन्त्यस्मिन्-नगरम् ।
पांशुरस्त्यस्मिन्-पांशुरम् ।
पाण्डुरस्त्यस्मिन्-पाण्डुरम् ।

3. कच्छू शब्द से मत्वर्थीय 'र' प्रत्यय होता है तथा ह्रस्व भी होता है ।[3]—

कच्छू र-कच्छुर सु-कच्छुरः ।

द्युद्रुभ्यां मः 5.2.108

पद.—द्युद्रुभ्याम् 5.2, मः 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में द्यु तथा द्रु प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से 'म' प्रत्यय होता है ।

उदा.—द्युमः । द्रुमः ।

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् 5.2.109

पद.—केशात् 5.1, वः 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

---

1. महा० 5.2.107 (वा०)—प्रकणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ।
2. महा० 5.2.107 (वा०)—नगपांशु पाण्डुभ्यश्चेति वक्तव्यम् ।
3. महा० 5.2.107 (वा०)—कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ केश प्रातिपदिक से 'व' प्रत्यय विकल्प से होता है।

प्रकृत सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' पद पूर्वतः अनुवृत्त है। अतः पक्ष में मतुप् होता हैं।

पुनः सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' पद का योग होने से मतुप् का विकल्प होकर पक्ष में इनि तथा ठन् भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकार चार रूप बनते हैं।

उदा.—प्रशस्ताः केशा अस्य सन्तीति—
केश व–केशव सु–केशवः।
केश मतुप्–केशवान्।
केश इनि–केशी।
केश ठन्–केशिकः। (अत इनिठनौ)।

विशेष—1. केश से अतिरिक्त अन्य प्रातिपदिकों से भी 'व' प्रत्यय होता है।[1]—

मणिवः। हिरण्यवः। राजीवम्।

2. अर्णस् शब्द से व प्रत्यय तथा अन्त्य लोप होता है।[2]—

अर्णस् व–अर्णव सु–अर्णवः।

3. वेद के विषय में मत्वर्थ में ई तथा वनिप् होते हैं। 'व' तथा 'मतुप्' भी होते हैं।[3] यथा—

रथीः (ऋ० 10.102.2 शौ०सं० 7.62.1)।
सुमङ्गलीः (ऋ० 10.85.33 शौ० सं० 14.1.60)।
मघवानम् (ऋ० 10.167.2)।
उद्वा, उद्वती (व, मतुप्)।

4. मेधा और रथ प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके इरन् व इरच् प्रत्यय होते हैं।[4] दोनों में स्वर का अन्तर है—

मेधा इरन्–मेधिरः।
रथ इरच्–रथिरः।

गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम् 5.2.110

पद.—गाण्ड्यजगात् 5.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—वः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—संज्ञा के विषय में मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ गाण्डी तथा अजग प्रातिपदिकों से 'व' प्रत्यय होता है।

उदा.—गाण्डी व सु–गाण्डीवम् (= अर्जुन का धनुष)। द्र० मे० 52।
अजगवम् (= शिव का धनुष)।

काण्डाण्डादीरन्नीरचौ 5.2.111

पद.—काण्डाण्डात् 5.1, ईरन्नीरचौ 1.2

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ काण्ड तथा अण्ड प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ईरन् व ईरच् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—काण्डम् अस्यास्तीति–काण्ड ईरन्–काण्डीरः।
अण्ड ईरच्–अण्डीरः।

रजः कृष्यासुतिपरिषदो वलच् 5.2.112

पद.—रजः कृष्यासु... षद 5.1, वलच् 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ रजस्, कृषि, आसुति तथा परिषद् प्रातिपदिकों से वलच् प्रत्यय होता है। चकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—रजस् वलच्–रजस्वल टाप् सु–रजस्वला (मनु० 6.77)।
कृषि वलच् = कृषीवलः। वले (पा० 6.3.117)।
आसुति वलच् = आसुतीवलः (=शराब विक्रेता)।
परिषद्वलः।

विशेष—रजस् आदि से अतिरिक्त शब्दों से भी वलच् देखा जाता है।[5]—

भ्रातृवलः। उत्साहवलः।

दन्तशिखात् संज्ञायाम् 5.2.113

पद.—दन्तशिखात् 5.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, वलच्।

अर्थ—संज्ञा के विषय में मत्वर्थ में प्रथमासमर्थ दन्त तथा शिखा प्रातिपदिकों से वलच् होता है। चकार की इत्संज्ञा है।

उदा.—दन्त वलच्–दन्तावलः गजः। वले (पा० 6.3.117)। शिखावलं नगरम्।

---

1. महा० 5.2.109 (वा०)—व प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम्।
2. महा० 5.2.109 (वा०)—अर्णसो लोपश्च।
3. महा० 5.2.109 (वा०)—छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ।
4. महा० 5.2.109 (वा०)–मेधारथाभ्यामिरन्रिर चौ वक्तव्यौ।
5. महा० 5.2.112 (वा०)—वलच् प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः 5.2.114

पद.—ज्यो.... मसाः 1.3

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृंगिण, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन तथा मलीमस शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—(1) ज्योतिष् न–ज्योत् स् न (उपधालोप, न प्रत्यय)–ज्योत्स्न टाप् सु–ज्योत्स्ना ।

(2) तमस् र–तमिस्र (उपधा को इत्व, र प्रत्यय)–तमिस्र टाप् सु–तमिस्रा ।

(3) शृंग इनच्–शृङ्गिण सु–शृङ्गिणः ।

(4) ऊर्ज् विनि (असुक् आगम)–ऊर्जस्वी ।

(5) ऊर्ज् वलच् (असुक्)—ऊर्जस्वलः ।

(6) गो मिनि–गोमी ।

(7) मल इनच्–मलिन सु–मलिनः ।

(8) मल ईमसच्–मलीमसः (रघु० 2.40) ।

अत इनिठनौ 5.2.115

पद.—अतः 5.1, इनिठनौ 1.2

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति । अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ अदन्त प्रातिपदिक से इनि तथा ठन् प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

पक्ष में मतुप् होता है ।

इनि के इकार की इत्संज्ञा होती है । ठन् के नकार की इत्संज्ञा होती है । ठकारस्थ अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—दण्डोऽस्यास्तीति–दण्ड इनि–दण्डिन् सु–दण्डी ।
दण्ड ठन्–दण्डिकः ।
दण्ड मतुप्–दण्डवान् ।

विशेष—ह्रस्व अकारान्त प्रातिपदिक से ही इनि व ठन् होते हैं । यथा—

खट्वावान्—खट्वा शब्द आकारान्त है । अतः इनि व ठन् नहीं हुए ।

इस सूत्र पर महाभाष्य में एक श्लोक वार्तिक इस प्रकार प्राप्त होता है ।

क) एकाक्षरात् अर्थात् एकाक्षर प्रातिपदिक से इनि व ठन् नहीं होते हैं । यथा—
स्वम् अस्यास्तीति–स्ववान् (=धनवान्) ।

ख) कृतः अर्थात् कृदन्त से इनि व ठन् नहीं होते हैं—कारकवान् ।

ग) जातेः अर्थात् जातिवाचक से इनि व ठन् नहीं होते हैं—व्याघ्रवान् ।

घ) सप्तम्यां न तौ स्मृतौ अर्थात् सप्तम्यर्थ में उक्त इनि व ठन् नहीं होते हैं ।

दण्डाः सन्त्यस्याम् इति—दण्डवती ।

परन्तु यह नियम प्रायिक है ।

व्रीह्यादिभ्यश्च 5.2.116

पद.—व्रीह्यादिभ्यः 5.3, च–अव्य० ।

अनु.—इनि ठनौ, तदस्यास्त्यस्मिन्निति अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—मत्वर्थ में व्रीहि आदि गणपठित प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से इनि और ठन् विकल्प से होते हैं । पक्ष में मतुप् होता है ।

उल्लेखनीय है कि इस सम्पूर्ण प्रकरण में 'इति' पद का अनुवर्त्तन है । अतः व्रीहि आदि गणपठित शब्दों से इनि व ठन् प्रत्यय शिष्ट प्रयोगानुरोध से होंगे अर्थात् सभी शब्दों से दोनों प्रत्यय नहीं होंगे । शिखा, माला आदि से इनि होता है तथा यवखद आदि से ठन् ही होता है ।

उदा.—व्रीहि इनि–व्रीही ।
व्रीहि ठन्–व्रीहिकः ।
व्रीहि मतुप्–व्रीहिमान् ।
माया–मायी, मायिकः, मायावान् ।
शिखा–शिखी, शिखावान् ।
माला–माली, मालावान् ।
संज्ञा–संज्ञी, संज्ञावान् ।
केका–केकी, केकावान् ।
मेखला–मेखली, मेखलावान् ।
पताका–पताकी, पताकावान् ।
यवखद–यवखादिकः, यवखदवान् ।
नौ–नाविकः, नौमान् ।
वीणा–वीणी (इनि–मे० 49) ।

तुन्दादिभ्य इलच्च 5.2.117

पद.—तुन्दादिभ्यः 5.3, इलच् 1.1 च–अव्य० ।

अनु.—इनिठनौ, तदस्यास्त्यास्मिन्निति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ तुन्दादि प्रातिपदिकों से इलच्, इनि तथा ठन् प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

पक्ष में मतुप् होता है।

उदा.—तुन्दा इलच्–तुन्दिलः।
तुन्दा इनि–तुन्दी।
तुन्दा ठन्–तुन्दिकः।
तुन्दा मतुप्–तुन्दावान्।

एकगोपूर्वाट् ठञ् नित्यम् 5.1.118

पद.—एकगोपूर्वात् 5.1, ठञ् 1.1, नित्यम् 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—एक तथा गो शब्द जिन के पूर्व में हैं, ऐसे प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से मत्वर्थ में नित्य ही ठञ् प्रत्यय होता है।

उदा.—एकशत ठञ्–ऐकशतिकः।
गोशत ठञ्–गौशतिकः।

शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् 5.2.119

पद.—शतसहस्रान्तात् 5.1, च–अव्य०, निष्कात् 5.1

अनु.—ठञ्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—जिसके अन्त में शत व सहस्र शब्द हैं, ऐसे निष्क प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ठञ् होता है।

उदा.—निष्कशत ठञ्–नैष्कशतिकः।
निष्कसहस्र ठञ्–नैष्कसहस्रिकः।

रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् 5.2.120

पद.—रूपात् 5.1, आह.... यौ 7.2 यप् 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—मत्वर्थ में आहत और प्रशंसा अर्थों में वर्त्तमान रूप प्रातिपदिक से यप् प्रत्यय होता है।

आहत = सांचे में ढाल कर बनाई गई मुद्रा।

उदा.—रूप यप्–रूप्यः (दीनारः)।
रूप यप्–रूप्यः (पुरुषः)।

विशेष—1. आहत तथा प्रशंसा अर्थों में वर्त्तमान 'रूप' शब्द से यप् प्रत्यय होता है—

रूपवान्–यहाँ न तो आहत अर्थ विवक्षित है तथा न ही प्रशंसा अर्थ।

2. रूप शब्द से अतिरिक्त से भी यप् प्रत्यय होता है।[1]—

हिम्याः पर्वताः।
गुण्याः ब्राह्मणाः।

अस्मायामेधास्रजो विनिः 5.2.121

पद.—अस्मायामेधास्रजः 5.1, विनिः 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, अन्यतरस्याम्।

अर्थ—मत्वर्थ में अस् अन्त वाले, माया, मेधा तथा स्रज् प्रातिपदिकों से विनि प्रत्यय विकल्प से होता है। पक्ष में मतुप् होता है।

विनि के नकारोत्तरवर्त्ती इकार की इत्संज्ञा है।

उदा.—(1) यशोऽस्यास्तीति–यशस्वी, यशस्वान्।
(2) मायाऽस्यास्तीति–मायी, मायिकः (व्रीह्यादिगणे पठितत्वात्), मायावान्।
(3) मेधा–मेधावी, मेधावान्।
(4) स्रज्–स्रग्वी, स्रग्वान्।

बहुलं छन्दसि 5.2.122

पद.—बहुलम् 1.1 छन्दसि 7.1

अनु.—विनि, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—वेद के विषय में प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से मत्वर्थ में बहुलता से विनि प्रत्यय होता है। 'बहुलम्' पद का प्रयोग सभी विधियों के व्यभिचारार्थ होता है।

उदा.—(1) क्वचित् प्रवृत्तिः अर्थात् कहीं विधि प्रवृत्त होती है। यथा—
अग्ने तेजस्विन् (तै० 3.3.1.1)।
तेजस्विन् (शत० 12.1.3.23)।

(2) क्वचिदप्रवृत्तिः अर्थात् कहीं विधि प्रवृत्त नहीं होती है। यथा— सूर्यो वर्चस्वान् (पै०सं० 19.52.13)।
तेजस्वत् (जै०ब्रा० 3.3.30)।

विशेष—1. विनि परे रहते अष्ट्रा, मेखला, द्वय, उभय, रुजा और हृदय शब्दों को दीर्घादेश होता है, वेद के विषय में।[2] यथा—

अष्ट्रावी (ऋ० 10.102.8)। मेखलावी (पै० सं० 16.153.4)। द्वयावी (ऋ०1.42.4)। उभयावी (ऋ० 10.87.3)। रुजावी। हृदयावी।

1. महा० 5.2.120 (वा०)—यप् प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम्।

2. महा० 5.2.122 (वा०)—छन्दसि विनिप्रकरणेऽष्ट्रा-मेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घत्वं चेति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. मर्मन् प्रातिपदिक से विनि प्रत्यय होता है तथा दीर्घादेश होता है।[1] यथा—

मर्मन् विन्–मर्मान् विन्–मर्माविन् सु–मर्मावी।

3. वेद तथा लोक में (अर्थात् सर्वत्र) आमय शब्द से विनि प्रत्यय तथा दीर्घादेश होता है।[2] यथा—

आमय विनि–आमया विन् सु–आमयावी।

4. मतुप् के अर्थ में शृंग व वृन्द प्रातिपदिकों से आरकन् प्रत्यय होता है।[3] यथा—

शृंगाणि सन्ति अस्य–शृंग आरकन्–शृंगारक सु–शृंगारकः।
वृन्दम् अस्ति अस्य–वृन्द आरकन्–वृन्दारक सु–वृन्दारकः।

5. फल और बर्ह शब्दों से इनच् प्रत्यय होता है।[4] यथा—

फलानि सन्ति अस्य–फल इनच्–फलिन सु–फलिनः।
बर्हः अस्त्यस्य–बर्हिणः।

6. हृदय प्रातिपदिक से विकल्प से आलुच् प्रत्यय होता है।[5] यथा—हृदयमस्ति अस्य–हृदय आलुच्–हृदयालुः।

पक्ष में—हृदय इनि–हृदयिन् सु–हृदयी।
हृदय ठन्–हृदयिकः।
हृदय मतुप्–हृदयवान्।

7. 'उसे सहन नहीं कर पाता'—इस अर्थ में शीत, उष्ण तथा तृप्र प्रातिपदिकों से आलुच् प्रत्यय होता है।[6] यथा—

शीतं न सहते–शीतालुः।
उष्ण आलुच्–उष्णालुः।
तृप्र आलुच्–तृप्रालुः।

8. इसे सहन नहीं कर पाता—इस अर्थ में हिम प्रातिपदिक से चेलु प्रत्यय होता है।

'चुटू' से चकार की इत्संज्ञा होती है।[7]

यथा—हिमं न सहते–हिम चेलु–हिम एलु–हिमेलु सु–हिमेलुः।

9. इसे सहन नहीं कर पाता—इस अर्थ में बल प्रातिपदिक से ऊलच् होता है। चकार की इत्संज्ञा होती है।[8] यथा—

बलं न सहते–बल ऊलच्–बलूलः।

10. 'इसे सहन नहीं कर पाता'—इस अर्थ में तथा 'समूह' अर्थ में 'वात' प्रातिपदिक से ऊलच् होता है।[9] यथा—

वातं न सहते–वातूलः।
वातानां समूहः–वातूलः।

11. पर्व तथा मरुत् शब्दों से तन् होता है।[10] नागेशजी तन् के स्थान पर तप प्रत्यय मानते हैं।[11] यथा—

पर्व तन्–पर्वत सु–पर्वतः।
मरुत् तन्–मरुतः।

ऊर्णाया युस् 5.2.123

पद.—ऊर्णायाः 5.1, युस् 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ ऊर्णा प्रातिपदिक से युस् प्रत्यय होता है।

उदा.—ऊर्णा युस्–ऊर्णायुः।

वाचो ग्मिनिः 5.2.124

पद.—वाचः 5.1 ग्मिनिः 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ वाच् प्रातिपदिक से ग्मिनि प्रत्यय होता है।

ग्मिनि के नकारोत्तरवर्त्ती इकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—प्रशस्ता वाग् विद्यतेऽस्य–वाच् ग्मिनि–वाग् ग्मिन् सु–वाग्ग्मी (शि० 2.27)।

चोः कुः। झलां जशोऽन्ते।

वाग् ग्मिन्–इस दशा में हल् (प्रथम गकार) से परे झर् (द्वितीय गकार) है परन्तु उससे परे झर् नहीं है। अतः 'झरो झरि सवर्णे' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

इसी प्रकार झर् (प्रथम गकार) से परे झर् (द्वितीय गकार)

---

1. महा० 5.2.122 (वा०)—मर्मणश्चेति वक्तव्यम्।
2. महा० 5.2.122 (वा०)—सर्वत्रामयस्योपसंख्यानम्।
3. महा० 5.2.122 (वा०)—शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्वक्तव्यः।
4. महा० 5.2.122 (वा०)—फलबर्हाभ्यामिनज् वक्तव्यः।
5. महा० 5.2.122 (वा०)—हृदयाच्चालुजन्यतरस्याम्।
6. महा० 5.2.122 (वा०)—शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहते इत्यालुज् वक्तव्यः।
7. महा० 5.2.122 (वा०)—हिमाच्चेलुः।
8. महा० 5.2.122 (वा०)—बलादूलच्।
9. महा० 5.2.122 (वा०)—वातात्समूहे च। वातं न सहत इति च।
10. महा० 5.2.122 (वा०)—पर्वमरुद्भ्यां तन् वक्तव्यः।
11. महा० (उद्योतटीका) 5.2.122

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । परन्तु प्रथम गकार से पूर्व हल् नहीं है । अतः प्रथम गकार का लोप भी नहीं होता है ।

विशेष—कुछ विद्वान् प्रकृतसूत्र का पदच्छेद प्रकारान्तर से इस प्रकार दर्शाते हैं—

वाचो ग् मिनिः अर्थात् वाच् शब्द को गकार अन्तादेश तथा मिनि प्रत्यय होता है । तब वाच् मिनि वाग् मिनि इस दशा में 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' से प्राप्त अनुनासिकत्व की प्राप्ति अन्तादेश के सामर्थ्य से नहीं होती है । इस प्रकार एकगकारवान् 'वाग्मी' रूप सिद्ध होता है ।

आलजाटचौ बहुभाषिणि 5.2.125

पद.—आलजाटचौ 1.2, बहुभाषिणि 7.1

अनु.—वाचः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—'अधिक बोलना' अर्थ अभिप्रेत हो तो मत्वर्थ में प्रथमासमर्थ वाच् प्रातिपदिक से आलच् व आटच् प्रत्यय होते हैं ।

उदा.—वाच् आलच्-वाचालः (मे० 100) ।
वाच् आटच्-वाचाटः ।

विशेष—महाभाष्य में एक वार्तिक है—

'कुत्सित इति वक्तव्यम्'

अर्थात् जो अच्छी प्रकार व अधिक बोलता है, वह 'वाग्मी' कहलाता है ।

स्वामिन्नैश्वर्ये 5.2.126

पद.—स्वामिन् 1.1, ऐश्वर्ये 7.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में स्वामिन् शब्द का निपातन किया जाता है, ऐश्वर्य अर्थ में ।

उदा.—स्वम् अस्यास्ति-स्व आमिन्-स्वामिन् सु-स्वामी ।

विशेष—'ऐश्वर्य' अर्थ अभिधेय न हो तो 'स्वामिन्' शब्द न होकर 'स्ववान्' शब्द होता है ।

अर्श आदिभ्योऽच् 5.2.127

पद.—अर्श आदिभ्यः 5.3, अच् 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ अर्शस् आदि प्रातिपदिकों से अच् प्रत्यय होता है ।

चकार की इत् संज्ञा है ।

उदा.—अर्शांसि विद्यन्तेऽस्येति—अर्शस् अच्-अर्शस सु-अर्शसः ।

पलितम्-पलितानि सन्त्यस्य (मनु० 2.156) ।
पापम्-पापम् अस्यास्ति (वेणी० 3.6) ।
क्षेमः-क्षेमः अस्त्यस्य (रा० 3.37.13) ।

द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः 5.2.128

पद.—द्वन्द्वो .... ह्यात् 5.1, प्राणिस्थात् 5.1, इनिः 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—द्वन्द्व समास, रोग तथा निन्दनीय अर्थों में वर्त्तमान तथा प्राणी में स्थित अदन्त (=ह्रस्व अकारान्त) शब्द से इनि प्रत्यय होता है, मत्वर्थ में ।

उदा.—(1) समासे—कटकवलयम् अस्यास्ति-कटकवलय इनि सु-कटकवलयी ।
चीरजटाजिनी (रा० 2.101.2) ।
फालकुद्दाललांगली (रा० 2.32.29) ।
आगमाऽपायिन् (गी० 10.10) ।
(2) उपतापे-कुष्ठ इनि-कुष्ठी ।
(3) गर्ह्ये-ककुदावर्त्त इनि-ककुदावर्त्ती ।

विशेष—1. **प्राणिस्थ** अदन्त से उक्त प्रत्यय होता है । अतः 'पुष्पफलवान् वृक्षः' यहाँ इनि न हुआ ।

2. 'पुष्पफल' प्राणिस्थ नहीं है । अदन्त है । अतः इनि न होकर मतुप् हुआ ।

वातातीसाराभ्यां कुक् च 5.2.129

पद.—वातातीसाराभ्यां 5.2, कुक् 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ वात तथा अतीसार शब्दों से इनि प्रत्यय होता है तथा प्रकृति को कुक् आगम भी होता है ।

उदा.—वात कुक् इनि-वातकिन् सु-वातकी ।
अतीसार कुक् इनि-अतीसारकी ।

विशेष—1. पिशाच शब्द से इनि प्रत्यय तथा प्रकृति को कुक् आगम होता है ।[1]

पिशाच कुक् इनि-पिशाचकी ।

2. 'रोग' वाच्य होने पर ही 'वात' शब्द से इनि होता है ।[2]—

---

1. काशि०—5.2.129 (वा०) पिशाचाच्चेति वक्तव्यम् ।
2. काशि०—5.2.129 (वा०) रोगे चाऽयमिष्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातवती गुहा—यहाँ 'गुहा' अभिधेय है। अतः इनि न होकर मतुप् हुआ है।

वयसि पूरणात् 5.2.130

पद.—वयसि 7.1, पूरणात् 5.1

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—अवस्था गम्यमान हो तो पूरण प्रत्ययान्त प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

उदा.—पञ्चमोऽस्यास्ति-पञ्चमी उष्ट्रः (=पाँच मास की अवस्था वाला)।

पञ्चम शब्द में पूरणार्थक डट् प्रत्यय है।

विशेष—अवस्था गम्यमान न हो तो इनि नहीं होता है—

पञ्चमवान् ग्रामरागः।

सुखादिभ्यश्च 5.2.131

पद.—सुखादिभ्यः 5.3, च-अव्य०।

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ सुख आदि प्रातिपदिकों से इनि होता है।

उदा.—सुखमस्यास्तीति—सुखी।

धर्मशीलवर्णान्ताच्च 5.2.132

पद.—धर्मशीलवर्णान्तात् 5.1, च-अव्य०।

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—जिनके अन्त में धर्म, शील या वर्ण शब्द हैं, ऐसे प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि होता है।

उदा.—ब्राह्मण धर्म इनि-ब्राह्मणधर्मी।
ब्राह्मणशील इनि-ब्राह्मणशीली।
ब्राह्मण वर्ण इनि-ब्राह्मणवर्णी।

हस्ताज्जातौ 5.2.133

पद.—हस्तात् 5.1, जातौ 7.1

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—जाति वाच्य मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ हस्त प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय होता है।

हस्तोऽस्यास्तीति-हस्ती।

'जाति' वाच्य न हो तो इनि न होकर मतुप् होता है—

हस्तवान् पुरुषः।

वर्णाद् ब्रह्मचारिणि 5.2.134

पद.—वर्णात् 5.1, ब्रह्मचारिणि 7.1

अनु.—इनि, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—'ब्रह्मचारी' वाच्य हो तो प्रथमा समर्थ वर्ण प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय होता है, मत्वर्थ में।

उदा.—वर्ण इनि-वर्णिन् सु-वर्णी ब्रह्मचारी (कु० 5.65)।

विशेष—यदि 'ब्रह्मचारी' वाच्य न हो तो इनि नहीं होता है—

वर्णवान्-यहाँ मतुप् हुआ है।

पुष्करादिभ्यो देशे 5.2.135

पद.—पुष्करादिभ्यः 5.3, देशे 7.1

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति।

अर्थ—यदि 'देश' वाच्य हो तो मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ पुष्कर आदि प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय होता है।

उदा.—पुष्कर इनि—पुष्करिन् ङीप् सु-पुष्करिणी।

(1) यदि 'देश' वाच्य न हो तो इनि नहीं होता है—

पुष्करवान् हस्ती-यहाँ इनि न हुआ। मतुप् हुआ।

(2) बाहु तथा ऊरु पूर्व में हैं जिसके, ऐसे बल प्रातिपदिक से इनि होता है।[1]—

बाहुबल इनि-बाहुबली।
ऊरुबल इनि-ऊरुबली।

(3) 'सर्व' है आदि में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक से इनि होता है।[2]—

(4) 'समीप न होना' अर्थ में 'अर्थ' प्रातिपदिक से इनि होता है।[3]—

अर्थोऽसन्निहितोऽस्य-अर्थी।

'असन्निहित' अर्थ वाच्य न हो तो इनि नहीं होता है। यथा—अर्थवान्-मतुप् हुआ है।

(5) 'अर्थ' शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक से इनि होता है।[4]—

---

1. महा० 5.2.135 (वा०)—इनिप्रकरणे बलाद्बाहूरुपूर्वादुपसंख्यानम्।
2. महा० 5.2.135 (वा०)—सर्वादेश्चेति वक्तव्यम्।
3. महा० 5.2.135 (वा०)—अर्थाच्चासन्निहिते।
4. महा० 5.2.135 (वा०)—तदन्ताच्चेति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धान्यार्थ इनि–धान्यार्थी ।
हिरण्यार्थ इनि–हिरण्यार्थी ।

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् 5.2.136

पद.—बलादिभ्यः 5.3, मतुप् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ बलादि प्रातिपदिकों से विकल्प से मतुप् प्रत्यय होता है ।

पक्ष में इनि होता है ।

उदा.—बलम् अस्यास्तीति—बलवान्, बली ।

संज्ञायां मन्माभ्याम् 5.2.137

पद.—संज्ञायाम् 7.1, मन्माभ्याम् 5.2

अनु.—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में मत्वर्थ में मन् अन्त वाले तथा म शब्दान्त प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से इनि होता है ।

उदा.—प्रथिमा विद्यतेऽस्याः—प्रथिमन् इनि–प्रथिमिन् ङीप् सु–प्रथिमिनी ।

दामी अस्ति अस्याः–दामिन् इनि–दामिन् ङीप् सु–दामिनी ।
होम अस्त्यस्याः–होमिन् सु–होमी ।

संज्ञा गम्यमान न हो तो इनि नहीं होता है—

सोमवान्–मतुप् हुआ ।
होमवान्–मतुप् हुआ ।

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः 5.2.138

पद.—कंशंभ्याम् 5.2, बभयुस्तितुतयसः 1.3

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ कम् और शम् प्रातिपदिकों से ब, भ, युस्, ति, तु, त तथा यस् प्रत्यय होते हैं ।

चूँकि प्रकृति दो तथा प्रत्यय सात हैं । अतः यथासंख्य नियम प्रवृत्त नहीं होता है ।

कम् = जल । शम् = सुख ।

युस् तथा यस् के सकार की इत्संज्ञा होती है । इन्हें सित् करण का प्रयोजन 'सिति च' से पदसंज्ञा करना है ।

उदा.—(1) कम् ब–कम्ब सु–कम्बः ।
(2) शम् ब–शम्बः ।
(3) कम् भ–कम्भः ।
(4) कम् युस्–कं यु (पदसंज्ञा । मोऽनुस्वारः) —कंय्यु सु–कंय्युः ।
(5) शम् युस्–शंय्युः ।
(6) कम् ति–कन्तिः (अनुस्वारस्य ययि०) ।
(7) शम् ति–शन्तिः ।
(8) कम् तु–कन्तुः ।
(9) शम् तु–शन्तुः ।
(10) कम् त–कन्तः ।
(11) शम् त–शन्तः ।
(12) कम् यस्–कंय्यः ।
(13) शम् यस्–शंय्यः ।

तुन्दिवलिवटेर्भः 5.2.139

पद.—तुन्दि .... टेः 5.1, भः 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में प्रथमा समर्थ तुन्दि, वलि तथा वटि प्रातिपदिकों से 'भ' प्रत्यय होता है ।

उदा.—तुन्दिरस्यास्तीति–तुन्दिभ सु–तुन्दिभः ।
वलि भ सु–वलिभः ।
वटि भ सु–वटिभः ।

अहंशुभमोर्युस् 5.2.140

पद.—अहंशुभमोः 6.2, युस् 1.1

अनु.—तदस्यास्त्यस्मिन्निति ।

अर्थ—मत्वर्थ में अहम् तथा शुभम् प्रातिपदिकों से युस् प्रत्यय होता है ।

अहम् = घमण्ड । शुभम् = कल्याण ।

युस् को इत् करने का फल पदसंज्ञा करना है ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां पञ्चमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमाध्यायस्य
तृतीयः पादः

प्राग्दिशो विभक्तिः 5.3.1

पद.—प्राक्-अव्य०, दिशः 5.1, विभक्तिः 1.1

अनु.—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इत्येते चत्वारोऽधिकारा आ विस्तारभियाऽग्रे प्रतिसूत्रं न प्रदर्शिताः ।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है । इसका अधिकार दिक् शब्देभ्यः सप्तमी० (पा० 5.3.27) तक जाता है अर्थात् पा० 5.3.27 सूत्र से पहले पहले जो जो प्रत्यय कहे जायेंगे, उन उन की विभक्ति संज्ञा होती है । इन्हें प्राग्दिशीय प्रत्यय कहते हैं । ये स्वार्थ में होते हैं । द्र०—

अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्तीति अर्थात् जहाँ अर्थ का निर्देश नहीं होता हैं, वहाँ प्रत्यय को स्वार्थ में जानना चाहिए ।

यहाँ 'समर्थानाम्' व 'प्रथमात्' दोनों अधिकृत पदों की निवृत्ति हो जाती है । केवल 'वा' पद का अधिकार रहता है । अतः पक्ष में विग्रहपद भी रहता है ।

विभक्ति संज्ञा करने के दो फल हैं—

1) 'न विभक्तौ तुस्माः' के द्वारा विभक्ति संज्ञक त वर्ग, सकार व मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है ।

2) तसिल् आदि की विभक्ति संज्ञा होने से इसके परे रहते 'त्यदादीनामः' से अकारादेश होता है ।

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः 5.3.2

पद.—किं सर्व .... दिभ्यः 5.3, अद्व्यादिभ्यः 5.3 ।

अनु.—प्राग् दिशः ।

अर्थ—यहाँ से लेकर दिग्शब्देभ्यः सप्त० (पा० 5.3.27) तक जो जो प्रत्यय कहे जायेंगे वे सब किम्, सर्वनाम तथा बहु प्रातिपदिकों से होते हैं, द्वि आदि शब्दों को छोड़कर ।

सर्वनामों में द्वि आदि का भी पाठ है । ये प्रत्यय द्वि आदि से नहीं होंगे—ऐसा जानना चाहिए । 'अद्व्यादि' कहने से द्वि आदि से निषेध हो जाता है । चूँकि 'किम्' का पाठ द्वि आदि के अन्तर्गत है । फलतः 'किम्' से भी निषेध प्राप्त होता है । इसलिए सूत्र में 'किम्' का पृथक् उल्लेख किया गया है । इस प्रकार 'अद्व्यादि' के द्वारा द्वि, युष्मद्, अस्मद् और भवतु इन चार से ही निषेध होता है । कात्यायन के अनुसार सूत्रोक्त 'बहु' पद के द्वारा संख्यावाची 'बहु' पद का ही ग्रहण होता है । द्र० बहुग्रहणे संख्याग्रहणम् (वा०) ।

उदा.—कुत्र, यत्र, तत्र, बहुत्र ।
किम् त्रल् (सप्तम्यास्त्रल्)—कुत्र (कु तिहोः) ।
कुत्र सु-कुत्र ।

इदम इश् 5.3.3

पद.—इदमः 6.1, इश् 1.1

अनु.—प्राग् दिशः ।

अर्थ—दिग् शब्देभ्यः सप्त० तक जो-जो प्रत्यय कहे गये हैं, उनके परे रहते इदम् प्रातिपदिक के स्थान पर इश् आदेश होता है ।

शित् होने से सर्वादेश होता है ।

उदा.—इदम् ह (इदमो हः)—इश् ह—इह सु-इह ।
पक्ष में 'अस्मिन्' भी ।

एततौ रथोः 5.3.4

पद.—एतेतौ 1.2, रथोः 7.2

अनु.—इदमः, प्राग् दिशः ।

अनु.—रेफादि तथा थकारादि प्रत्यय परे रहते इदम् प्रातिपदिक के स्थान पर क्रमशः एत तथा इत् आदेश होते हैं अर्थात् रेफादि प्रत्यय परे रहते प्रकृति को 'एत' आदेश तथा थकारादि प्रत्यय परे रहते प्रकृति को 'इत्' आदेश होता है ।

उदा.—(1) इदम् र्हिल् (इदमो र्हिल्)-एत र्हि-एतर्हि सु-एतर्हि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) इदम् थमु (इदमस्थमुः)—
इत् थम्-इत्थम् सु-इत्थम् ।

एतदोऽन् 5.3.5

पद.—एतदः 6.1, अन् 1.1

अनु.—प्राग् दिशः ।

अर्थ—प्राग्दिशीय प्रत्ययों के परे रहते एतद् प्रकृति को अन् आदेश होता है । अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है । प्रयोजनाभाव से नकार की इत्संज्ञा नहीं होती है ।

उदा.—एतद् त्रल् (स्वादिष्व०) अन् त्र-अत्र (न लोपः प्राति०)—अत्र सु-अत्र । पक्ष में—एतस्मिन् ।

विशेष—महर्षि पतञ्जलि ने प्रकृत सूत्र का योगविभाग करते हुए इस प्रकार अर्थ किया है—

क) एतदः (एतेतौ रथोः) अर्थात् रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे रहते एतद् के स्थान पर क्रमशः एत और इत् आदेश होते हैं । यथा—

एतद् र्हिल्-एतर्हि । अत्र ।
एतद् थाल् (पा० 5.3.23)-तथा ।

ख) अन् (एतदः) अर्थात् एतद् के स्थान पर अन् आदेश हो प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे रहते । यथा—

अतः, अस्मात् ।
अत्र, अस्मिन् ।

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि 5.3.6

पद.—सर्वस्य 6.1, सः 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1, दि 7.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—दकारादि प्रत्यय परे रहते सर्व प्रातिपदिक के स्थान पर विकल्प से 'स' आदेश होता है ।

उदा.—सर्वदा (सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले०)-स दा-सदा सु-सदा । तद्धितश्चाऽसर्व ० ।

पक्ष में—सर्वदा । तद्धिताश्चाऽसर्व ० ।

पञ्चम्यास्तसिल् 5.3.7

पद.—पञ्चम्याः 5.1, तसिल् 1.1

अनु.—किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्यः, विभक्तिः ।

अर्थ—पञ्चमी अन्त किम्, सर्वनाम तथा बहु प्रातिपदिकों से विभक्ति संज्ञक तसिल् प्रत्यय होता है तथा द्वि आदि से नहीं होता है ।

उदा.—(1) किम् तसिल्-कु तस्-कुतस् सु-कुतस्-कुतः । किमः कः को बाधकर 'कु तिहोः' ।
(2) तद् तसिल्-ततः ।
(3) बहु तसिल्-बहुतः ।

पक्ष में कस्मात्, तस्मात्, बहुभ्यः भी बनेंगे ।

ध्यान रहे कि सभी वचनों में तसिल् पक्ष में 'कुतः' रूप ही होगा तथा पक्ष में विभक्ति रहेगी । यथा—

कस्मात्, 'कुतः; काभ्याम्, कुतः; केभ्यः, कुतः ।

इसी प्रकार स्त्रीलिंग में—

कस्याः, कुतः; काभ्याम्, कुतः; काभ्यः, कुतः । तसिलादिष्वाकृत्वसुचः से टाप् की निवृत्ति हो जाती है ।

तसेश्च 5.3.8

पद.—तसेः 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—तसिल्, किंसर्वनाम० ।

अर्थ—किम्, सर्वनाम (द्वि आदि को छोड़कर) तथा बहु प्रातिपदिकों से विहित तसि प्रत्यय के स्थान पर तसिल् आदेश होता है ।

प्रतियोगे० (पा० 5.4.44) से तथा अपादाने चाहीय० (पा० 5.4.45) से 'तसि' होता है । इसके स्थान में 'तसिल्' आदेश कहा गया है । तब विभक्ति संज्ञा होती है ।

उदा.—किम् तसि-किम् तसिल्-कुतः ।
यद् तसि-यद् तसिल्-यतः ।

इसी प्रकार—बहुतः ।

पर्यभिभ्यां च 5.3.9

पद.—पर्यभिभ्याम् 5.2, च-अव्य० ।

अनु.—तसिल् ।

अर्थ—परि तथा अभि प्रातिपदिकों से तसिल् होता है । कात्यायन के अनुसार सर्व अर्थ में वर्त्तमान 'परि' अव्यय से तथा उभय (= दोनों) अर्थ में वर्त्तमान 'अभि' अव्यय से तसिल् होता है ।

उदा.—परि तसिल्-परितः ।
अभि तसिल्-अभितः ।

विशेष—'अभितः' शब्द का समीप अर्थ में प्रयोग लोक में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेकत्र प्राप्त होता है—रा० 1.11.4, 3.75.57, महाभा० 4.38.5, च०सं० शरीर० 8.36)।

सप्तम्यास्त्रल् 5.3.10

पद.—सप्तम्याः 5.1, त्रल् 1.1

अनु.—किं सर्व० ।

अर्थ—सप्तम्यन्त किम्, सर्वनाम (द्वि आदि को छोड़कर) तथा बहु प्रातिपदिकों से स्वार्थ में त्रल् प्रत्यय होता है ।

लकार की इत् संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) कस्मिन् । किम् त्रल्–(किमः कः, कु तिहोः)–कुत्र सु–कुत्र । पक्ष में—कस्मिन् ।

सभी वचनों तथा स्त्रीलिंग में 'कुत्र' रहेगा ।

(2) तत्र, यत्र ।

(3) बहुत्र ।

इदमो हः 5.3.11

पद.—इदमः 5.1, हः 1.1

अनु.—सप्तम्याः,

अर्थ—सप्तम्यन्त 'इदम्' सर्वनाम से स्वार्थ में 'ह' प्रत्यय होता है ।

यह पूर्वोक्त त्रल् का अपवाद है ।

उदा.—इदम् ह (प्राप्त त्रल् को बाध कर)–इश् ह (इदम इश्)–इह सु–इह ।

पक्ष में—अस्मिन् ।

किमोऽत् 5.3.12

पद.—किमः 5.1, अत् 1.1

अनु.—सप्तम्याः ।

अर्थ—सप्तम्यन्त किम् शब्द से स्वार्थ में विकल्प से अत् प्रत्यय होता है ।

पक्ष में त्रल् होता है । 'वा ह च–च्छन्दसि' (पा० 5.3.13) से 'वा' पद का अपकर्षण किया जाता है । अत् के तकार की इत् संज्ञा होती है ।

उदा.—क्व, कुत्र । कस्मिन्–किम् अत्–किम् अ (क्वाऽति)—क्व अ (भसंज्ञा, यस्येति च–यहाँ अतो गुणे से पररूप प्राप्त था, परन्तु 'वार्णाद् आङ्गं बलीयः' परिभाषा के अनुसार लोप करना युक्त है)—क्व सु–क्व ।

पक्ष में—कुत्र । महाविभाषा के कारण 'कस्मिन्' भी ।

वा ह च च्छन्दसि 5.3.13

पद.—वा–अव्य०, ह–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—सप्तम्याः, किमः ।

अर्थ—वेद के विषय में सप्तम्यन्त किम् शब्द से विकल्प से 'ह' प्रत्यय होता है ।

उदा.—किम् ह–कु ह सु–कुह (ऋ० 1.24.10, 8.73.4) । पक्ष में यथाप्राप्त त्रल् तथा अत्—

कुत्र
क्व ।

इतराभ्योऽपि दृश्यते 5.3.14

पद.—इतराभ्यः 5.3, अपि–अव्य०, दृश्यन्ते–क्रिया० ।

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—पंचमी और सप्तमी से अतिरिक्त अन्यविभक्त्यन्त किम् आदि प्रातिपदिकों से भी तसिल् आदि प्रत्यय देखें जाते हैं ।

उदा.—शिष्ट प्रयोगों में ये प्रत्यय प्रायः भवतु (=आप) आदि शब्दों के योग में देखे जाते हैं ।

(क) भवतु के योग में—

स भवान्–ततो भवान्, तत्रभवान् ।
तं भवन्तम्–ततो भवन्तम्, तत्रभवन्तम् ।
तेन भवता–ततोभवता, तत्रभवता ।
तस्मै भवते–ततोभवते, तत्रभवते ।

इसी प्रकार शेष विभक्तियों में तथा शेष वचनों में ।

(ख) दीर्घायुस् के योग में—

स दीर्घायुः–ततो दीर्घायुः, तत्रदीर्घायुः ।
तं दीर्घायुषम्–ततोदीर्घायुषम्, तत्रदीर्घायुषम् ।

इसी प्रकार शेष विभक्तियों व वचनों में ।

(ग) देवानां प्रियः के योग में—

स देवानां प्रियः–ततोदेवानां प्रियः, तत्र देवानां प्रियः ।

इसी प्रकार सभी विभक्तियों व सभी वचनों में ।

(घ) आयुष्मत् के योग में—

स आयुष्मान्–तत आयुष्मान्, तत्रायुष्मान् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार शेष विभक्तियों व शेष वचनों में जानना चाहिए।

ये सभी तद् शब्द के रूप हैं। इसी प्रकार एतद् व इदम् शब्दों से भी रूप बनते हैं। यथा—

अतोभवान्, अत्रभवान्।

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा 5.3.15

पद.—सर्वैका ... तदः 5.1, काले 7.1, दा 1.1

अनु.—सप्तम्याः।

अर्थ—काल अर्थ में वर्त्तमान सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् तथा तद्–इन सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से 'दा' प्रत्यय होता है।

यह त्रल् का अपवाद है।

उदा.—सर्वस्मिन् काले–सर्व दा–सर्वदा, सदा (सर्वस्य सोऽन्यतर०)।

एकस्मिन् काले–एकदा।
अन्यस्मिन् काले–अन्यदा।
कस्मिन् काले–कदा।
यस्मिन् काले–यदा।
तस्मिन् काले–तदा।

विशेष—'काले' पद का प्रयोजन है कि सर्व आदि शब्द यदि काल अर्थ में वर्त्तमान न होंगे तो उक्त प्रत्यय नहीं होता है—सर्वत्र, एकत्र, अन्यत्र, कुत्र, यत्र, तत्र—(सप्तम्यास्त्रल्)।

प्रयोग— सर्वत्र स्थाने।
तत्र ग्रामे इत्यादि।

इदमो र्हिल् 5.3.16

पद.—इदमः 5.1, र्हिल् 1.1

अनु.—सप्तम्याः काले।

अर्थ—काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त 'इदम्' प्रातिपदिक से स्वार्थ में र्हिल् होता है। 'ह' प्रत्यय का अपवाद है। ल् इत् है।

उदा.—अस्मिन् काले–इदम् र्हिल् (प्राप्त 'ह' को बाध कर)–एत र्हि (इदम इश् से प्राप्त इश् का बाध)–एतर्हि सु–एतर्हि।

काल अर्थ में वर्त्तमान न होने पर 'ह' होकर इह देशे ऐसा रूप बनेगा।

अधुना 5.3.17

पद.—अधुना अव्य०।

अनु.—इदमः काले सप्तम्याः।

अर्थ—अधुना शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा.—इदम् अधुना–इश् अधुना (इदम इश्)–इ अधुना (यस्येति च)–अधुना सु–अधुना। अथवा—

इदम् धुना–अश् धुना–अधुना सु–अधुना।

दानीं च 5.3.18

पद.—दानीम् 1.1, च–अव्य०।

अनु.—इदमः, काले, सप्तम्याः।

अर्थ—काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त इदम् शब्द से दानीम् प्रत्यय होता है।

उदा.—अस्मिन् काले–इदम् दानीम्–इश् दानीम्–इदानीम् सु–इदानीम्।

तदो दा च 5.3.19

पद.—तदः 5.1, दा 1.1, च–अव्य०।

अनु.—सप्तम्याः, काले, दानीम्।

अर्थ—काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त तद् प्रातिपदिक से दा तथा दानीम् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—तस्मिन् काले–तद् दा–तदा सु–तदा।
तद् दानीम्–त दानीम्–तदानीम् सु–तदानीम्।

तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि 5.3.20

पद.—तयोः 6.2, दार्हिलौ 1.2, च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—सप्तम्याः, काले।

अर्थ—वेद के विषय में काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त इदम् तथा तद् प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके दा तथा र्हिल् प्रत्यय होते हैं तथा दोनों से दानीम् भी होता है।

'तयोः' पद के द्वारा इदम् तथा तद् का ग्रहण होता है।

उदा.—अस्मिन् काले—इदम् दा–इदा (का०सं० 13.15)।
इदानीम्।
तस्मिन् काले–तद् र्हिल्–तर्हि।
तदानीम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् 5.3.21

पद.—अनद्यतने 7.1, र्हिल् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—काले, सप्तम्याः, किंसर्वनाम बहु० ।

अर्थ—अनद्यतन काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त किम्, सर्वनाम तथा बहु प्रातिपदिकों से विकल्प से र्हिल् प्रत्यय होता है । पक्ष में 'दा' होता है ।

उदा.—कस्मिन् अनद्यतने काले–किम् र्हिल्–कर्हि ।
किम् दा–कदा ।
यर्हि, यदा ।
तर्हि, तदा ।

सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः 5.3.22

पद.—सद्यःपरुत् ... उत्तरेद्युः–अव्य० ।

अनु.—काल विशेष में वर्त्तमान सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से सद्यः आदि शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—समानेऽहनि–सम् द्यस्–सद्यस् सु–सद्यः ।[1] पूर्वस्मिन् संवत्सरे–पूर्व उत्–पर उत्–परुत् ।[2] पूर्वतर आरि–पर आरि–परारि (संवत्सरे) । अस्मिन् संवत्सरे–इदम् समसण्–इश् सम सण् (इदम इश्)–इश् सम–इसम (आदि वृद्धि)–एसमस् –एषमस्–एषमः ।[3]

परस्मिन् दिने–पर एद्यवि–परेद्यवि सु–परेद्यवि ।[4]

अस्मिन् दिने–इदम् द्य–अश् द्य–अद्य सु–अद्य ।[5]

पूर्वस्मिन् अहनि–पूर्व एद्युसच्–पूर्वेद्युः ।[6] (भाग० 10.52.42)।

इसी प्रकार— अन्य एद्युसच्–अन्येद्युः ।[6]
अन्यतर एद्युसच्–अन्यतरेद्युः ।[6]
इतर एद्युसच्–इतरेद्युः ।[6]
अपर एद्युसच्–अधरेद्युः ।[6]
उधर एद्युसच्–अधरेद्युः ।[6]
उभय एद्युसच्–उभयेद्युः ।[7]
उत्तर एद्युसच्–उत्तरेद्युः ।[6]

प्रकारवचने थाल् 5.3.23

पद.—प्रकारवचने 7.1, थाल् 1.1

अनु.—किं सर्वनाम बहुभ्यः ।

अर्थ—प्रकार अर्थ में वर्त्तमान किम् आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में थाल् प्रत्यय होता है ।

थाल् के लकार की इत्संज्ञा है ।

नागेश भट्ट के अनुसार 'प्रकारवचने' पद में पंचमी के अर्थ में सप्तमी है ।

उदा.—तेन प्रकारेण–तथा ।

इसी प्रकार—यथा, सर्वथा, अन्यथा, इतरथा आदि ।

इदमस्थमुः 5.3.24

पद.—इदमः 5.1, थमुः 1.1

अनु.—प्रकारवचने ।

अर्थ—प्रकार अर्थ में वर्त्तमान इदम् प्रातिपदिक से स्वार्थ में थमु प्रत्यय होता है ।

थमु के उकार की इत्संज्ञा है ।

'थमु' के स्थान पर 'थम्' का विधान करने पर कोई दोष नहीं है । कारण कि 'थम्' की विभक्ति संज्ञा है । तब 'न विभक्तौ तुस्माः' से मकार की इत् संज्ञा का निषेध होकर यह निर्बाध बना रहता है । परन्तु यहाँ आचार्य के द्वारा प्रयुक्त उकार अनुबन्ध व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'न विभक्तौ तुस्माः' के द्वारा होने वाला निषेध अनित्य है । फलतः 'किमोऽत्' में अत् के तकार की इत्संज्ञा होती है । यदि उक्त निषेध को अनित्य नहीं माना जायेगा तो 'अत्' के तकार की इत्संज्ञा का निषेध हो जायेगा ।

उदा.—अनेन प्रकारेण–इदम् थमु–इत्थम् ।

किमश्च 5.3.25

पद.—किमः 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—प्रकारवचने, थमुः ।

---

1. महा० 5.3.22 (वा०)—समानस्य स भावो निपात्ये द्यश्च प्रत्ययः ।
2. महा० 5.3.22 (वा०)—पूर्वपूर्वतरयोः परभावो निपात्यते, उदारी च प्रत्ययौ संवत्सरेऽभिधेये ।
3. महा० 5.3.22 (वा०)—इदम इश् भावः समसण् प्रत्ययो ... ।
4. महा० 5.3.22 (वा०)—परस्मादेद्यवि प्रत्ययोऽहनि ।
5. महा० 5.3.22 (वा०)—इदमोऽश्भावो द्यश्च .... ।
6. महा० 5.3.22 (वा०)—पूर्वान्यान्यतरे .... ।
7. महा० 5.3.22 (वा०)—द्युश्चोभयाद् वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—प्रकार अर्थ में वर्त्तमान किम् प्रातिपदिक से स्वार्थ में थमु प्रत्यय होता है।

उदा.—केन प्रकारेण–किम् थमु–क थम्–कथम्।

था हेतौ च च्छन्दसि 5.3.26

पद.—था 1.1, हेतौ 7.1, च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—किमः, प्रकारवचने।

अर्थ—वेद के विषय में हेतु तथा प्रकार अर्थों में वर्त्तमान किम् प्रातिपदिक से था प्रत्यय होता है।

उदा.—किम् था–क था–कथा सु–कथा (ऋ०10.146.1)।

दिक्शब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः 5.3.27

पद.—दिक्शब्देभ्यः 5.3, सप्त ... भ्यः 5.3, दिग्दे ... षु 7.3, अस्तातिः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—दिशा, देश और काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पंचम्यन्त तथा प्रथमान्त दिशावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) सप्तम्यन्त–पुरस्ताद् वसति, अधस्ताद् वसति।
(2) पंचम्यन्त–पुरस्ताद् आगतः, अधस्ताद् आगतः।
(3) प्रथमान्त–पुरस्ताद् रमणीयम्, अधस्ताद् रमणीयम्।

पूर्व तथा अधर शब्द दिशावाची है। इनसे अस्ताति प्रत्यय हुआ। अस्ताति का इकार इत् है।

विशेष—1. **दिशा, देश** अथवा **काल**–इन अर्थों में जो शब्द वर्त्तमान न हो, उससे अस्ताति नहीं होता है।

पूर्वस्मिन् गुरौ वसति।

2. **दिशावाची** शब्द से ही पूर्वोक्त दशा में अस्ताति होता है—

ऐन्द्र्यां दिशि वसति–यहाँ अस्ताति न हुआ।

3. **सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त** व **प्रथमान्त** से ही सूत्रोक्त अस्ताति होता है—

पूर्वं ग्रामं गतः—यहाँ 'पूर्वम्' पद द्वितीयान्त है। अतः अस्ताति न हुआ।

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् 5.3.28

पद.—दक्षिणोत्तराभ्याम् 5.2, अतसुच् 1.1

अनु.—दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपंचमी प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु।

अर्थ—दिशा, देश अथवा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पंचम्यन्त और प्रथमान्त दक्षिण और उत्तर प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अतसुच् होता है।

चकार तथा उकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—सप्तम्यन्त—दक्षिणतो वसति, उत्तरतो वसति।
पंचम्यन्त–दक्षिणत आगतः, उत्तरत आगतः।
प्रथमान्त–दक्षिणतो रमणीयम्, उत्तरतो रमणीयम्।

विभाषा परावराभ्याम् 5.3.29

पद.—विभाषा 1.1, परावराभ्याम् 5.2

अनु.—दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु अतसुच्।

अर्थ—दिशा, देश अथवा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पंचम्यन्त तथा प्रथमान्त पर तथा अवर प्रातिपदिकों से स्वार्थ में विकल्प से अतसुच् होता है।

पक्ष में अस्ताति होता है।

उदा.—परतः, परस्तात्। अवरतः, अवरस्तात्।

अञ्चेर्लुक् 5.3.30

पद.—अञ्चेः 5.1, लुक् 1.1

अनु.—दिग्शब्देभ्यः, सप्तमीपंचमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु।

अर्थ—दिशा, देश अथवा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पंचम्यन्त तथा प्रथमान्त अञ्चु धातु, तदन्त दिशावाची शब्द से पर अस्ताति प्रत्यय का लुक् होता है।

उदा.—प्र अञ्च् क्विन् (धातु संज्ञा, ऋत्विग्दधृक्० से क्विन्)–प्र अच् क्विन् (अनिदितां हल०, क्विन् का सर्वापहार-लोप)–प्र अच् ङीप् (अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्–वा०)–प्र च् ई (यचि भम्। अचः) प्रा च् ई (च–पा० 6.3.136)—प्राची।

सप्तम्यन्त प्राची से अस्ताति (पा० 5.3.27) प्राची (लुक्)–प्राच् (लुक् तद्धितलुकि से ङीप् का लुक्, तन्निमित्तक अकारलोप तथा दीर्घत्व की निवृत्ति हुई, सर्वण दीर्घ)–प्राच् सु (तद्धितश्चासर्वविभक्ति)–प्राच्।

प्राच् वसति–(पद संज्ञा, क्विन् प्रत्ययस्य कुः)–प्राक् वसति–प्राग् वसति (जश्त्व)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युपरिष्टात् 5.3.31

पद.—उपर्युपरिष्टात् 1.1

अनु.—दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु ।

अर्थ—अस्तात्ति के अर्थ में उपरि व उपरिष्टात् शब्द निपातित किये जाते हैं ।

उदा.—ऊर्ध्वायां दिशि वसति–उपरि वसति । उपरि आगतः । उपरि रमणीयम् ।

इसी प्रकार—उपरिष्टाद् वसति, उपरिष्टाद् आगतः, उपरिष्टाद् रमणीयम् ।

ऊर्ध्व रिल्–उप रि–उपरि सु–उपरि ।

ऊर्ध्व अस्तात्ति–उप रिष्टातिल्–उप रिष्टात्–उपरिष्टात् सु–उपरिष्टात् ।

पश्चात् 5.3.32

पद.—पश्चात् 1.1

अनु.—दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु ।

अर्थ—पश्चात् शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—अपरस्यां दिशि वसति–अपर आति–पश्च आति–पश्चात् सु–पश्चात् ।

विशेष—1. दिशावाची शब्द है पूर्व में, ऐसे अपर शब्द को पश्च भाव और आति प्रत्यय होता है ।[1] यथा—

उत्तरापरस्यां दिशि वसति–उत्तरपश्चात् ।
दक्षिणापरस्यां दिशि वसति–दक्षिणपश्चात् ।

2. जिसके पूर्व में दिशावाची शब्द तथा उत्तर में अर्ध शब्द हो, ऐसे 'अपर' शब्द को पश्च भाव होता है ।[2] यथा—

दक्षिणापर अर्थ—दक्षिणपश्चार्धः ।

इसी प्रकार–उत्तरपश्चार्धः ।

3. उत्तर में अर्ध शब्द हो तो 'अपर' को पश्च भाव होता है ।[3] यथा—पश्चार्धः । (श० 1.14)

1. महा० 5.3.32 (वा०)—दिक्पूर्वपदस्याऽपरस्य पश्चभावो वक्तव्य आतिश्च प्रत्ययः ।
2. महा० 5.3.32 (वा०)—अर्धोत्तरपदस्य दिक्पूर्वपदस्य पश्चभावो वक्तव्यः ।
3. महा० 5.3.32 (वा०)—विनाऽपि पूर्वपदेन पश्चभावो वक्तव्यः ।

पश्च पश्चा च च्छन्दसि 5.3.33

पद.—पश्च 1.1, पश्चा 1.1, च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—पश्चात् दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु ।

अर्थ—वेद के विषय में पश्च, पश्चा तथा पश्चात् शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—पश्च सिंहः ।
पश्चा सिंहः ।
पश्चात् सिंहः ।

उत्तराधरदक्षिणादातिः 5.3.34

पद.—उत्तरा ... णात् 5.1, आतिः 1.1

अनु.—दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु ।

अर्थ—दिशा, देश तथा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त तथा प्रथमान्त उत्तर, अधर व दक्षिण दिशावाची प्रातिपदिकों से अस्तात्ति के अर्थ में आति प्रत्यय होता है ।

उदा.—उत्तर आति–उत्तरात् सु–उत्तरात् ।
अधर आति–अधरात् ।
दक्षिण आति–दक्षिणात् ।

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः 5.3.35

पद.—एनप् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1, अदूरे 7.1, अपञ्चम्याः 5.1

अनु.—उत्तराधरदक्षिणात् दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु ।

अर्थ—दिशा, देश और काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त व प्रथमान्त दिशावाची उत्तर, अधर व दक्षिण प्रातिपदिकों से विकल्प से एनप् प्रत्यय होता है, यदि निकटता गम्यमान हो ।

एनप् के पकार की इत्संज्ञा होती है । पक्ष में यथाप्राप्त 'आति' होता है । उत्तर व दक्षिण शब्दों से अतसुच् (दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्) भी होता है ।

अधर शब्द से पक्ष में आति व अस्तात्ति होते हैं ।

उदा.—(1) उत्तरेण वसति (एनप्) ।
उत्तरात् वसति (आति) ।
उत्तरतो वसति (अतसुच्) ।
(2) उत्तरेण रमणीयम् (एनप्) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरात् रमणीयम् (आति)।
उत्तरतो रमणीयम् (अतसुच्)।

(3) अधरेण वसति (एनप्)।
अधराद् वसति (आति)।
अधस्ताद् वसति (अतसुच्)।
'अस्ताति च' से 'अध्' आदेश।

(4) अधरेण रमणीयम् (एनप्)।
अधराद् रमणीयम् (आति)।
अधस्ताद् रमणीयम् (अतसुच्)।

(5) दक्षिणेन वसति (एनप्)।
दक्षिणाद् वसति (आति)।
दक्षिणतो वसति (अतसुच्)।

(6) दक्षिणेन रमणीयम् (एनप्)।
दक्षिणाद् रमणीयम् (आति)।
दक्षिणतो रमणीयम् (अतसुच्)।

विशेष—1. अदूरे अर्थात् **निकटता** गम्यमान हो तो उत्तर, अधर तथा दक्षिण शब्दों से विकल्प से एनप् होता है—

उत्तराद् वसति–यहाँ एनप् न होकर 'आति' हुआ है।

2. अपञ्चम्याः अर्थात् **पञ्चम्यन्त** दिशावाची उत्तर, अधर व दक्षिण प्रातिपदिकों से एनप् **नहीं** होता है।

उत्तरात् आगतः—यहाँ 'आति' हुआ है।

दक्षिणादाच् 5.3.36

पद.—दक्षिणात् 5.1, आच् 1.1

अनु.—अपञ्चम्याः दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु।

अर्थ—दिशा, देश तथा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त व प्रथमान्त दिशावाची दक्षिण प्रातिपदिक से अस्ताति के अर्थ में आच् प्रत्यय होता है।

उदा.—दक्षिण आच्–दक्षिण आ–दक्षिणा सु–दक्षिणा।
दक्षिणा वसति।
दक्षिणा रमणीयम्।

आहि च दूरे 5.3.37

पद.—आहि–लुप्तप्रथमान्तरूपम्। च–अव्य०। दूरे 7.1

अनु.—दक्षिणादाच्, अपञ्चम्याः दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु।

अर्थ—दिशा, देश तथा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त व प्रथमान्त दिशावाची दक्षिण प्रातिपदिक से अस्ताति के अर्थ में आहि तथा आच् प्रत्यय होते हैं, यदि 'दूर' अर्थ वाच्य हो।

उदा.—(1) दक्षिणाहि वसति।
दक्षिणा वसति।

(2) दक्षिणाहि रमणीयम्।
दक्षिणा रमणीयम्।

विशेष—'दूर' अर्थ वाच्य न हो तो 'आहि' प्रत्यय न होकर अतसुच् प्रत्यय होता है—

दक्षिणतो वसति।

उत्तराच्च 5.3.38

पद.—उत्तरात् 5.1, च–अव्य०।

अनु.—आहि दूरे आच् अपञ्चम्याः दिक्शब्देभ्यः सप्तमी-पञ्चमी प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु।

अर्थ—दिशा, देश तथा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त व प्रथमान्त दिशावाची उत्तर प्रातिपदिक से भी अस्ताति के अर्थ में आहि तथा आच् प्रत्यय होते हैं, यदि 'दूर' अर्थ वाच्य हो।

उदा.—(1) उत्तराहि वसति।
उत्तरा वसति।

(2) उत्तराहि रमणीयम्।
उत्तरा रमणीयम्।

पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषाम् 5.3.39

पद.—पूर्वा ... राणाम् 6.3, असि–लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः पुरधवः 1.3, च–अव्य०, एषाम् 6.3

अनु.–दिशा, देश तथा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त व प्रथमान्त दिशावाची पूर्व, अधर तथा अवर शब्दों से अस्ताति के अर्थ में असि प्रत्यय होता है तथा प्रकृतियों को यथासंख्य करके पुर्, अध् तथा अव् आदेश होते हैं।

उदा.—(1) पूर्वस्यां दिशि वसति–पूर्व असि–पुर् अस्–पुरस् सु–पुरः वसति।
पुर आगतः।
पुरो रमणीयम्।

(2) अधर असि–अध् अस्–अधो वसति।
अध आगतः।
अधो रमणीयम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) अवर असि-अव् अस् सु-अवः ।
अवो वसति ।
अव आगतः ।
अवो रमणीयम् ।

अस्ताति च 5.3.40

पद.—अस्ताति 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—पूर्वाधरावराणाम् पुरधवः दिक्शब्देभ्यः सप्तमी-पञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु ।

अर्थ—दिशा, देश व काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त व प्रथमान्त दिशावाची पूर्व, अधर व अवर प्रातिपदिकों को यथासंख्य करके पुरु, अध् तथा अव् आदेश होते हैं, अस्तात् प्रत्यय परे रहते ।

उदा.—पूर्व अस्तात्-पुर अस्तात्-पुरस्तात् सु-पुरस्तात् वसति ।
पुरस्तात् आगतः ।
अधस्तात् वसति, आगतः ।
अवस्तात् वसति, आगतः ।

विभाषाऽवरस्य 5.3.41

पद.—विभाषा 1.1, अवरस्य 6.1

अनु.—अस्ताति दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु ।

अर्थ—दिशा, देश तथा काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त व प्रथमान्त दिशावाची अवर प्रातिपदिक के स्थान पर विकल्प से अव् आदेश होता है, अस्तात् प्रत्यय परे रहते।

पक्ष में—'अवर' होगा ।

उदा.—(1) अवस्तात् वसति ।
अवरस्तात् वसति ।
(2) अवस्ताद् आगतः ।
अवरस्ताद् आगतः ।
(3) अवस्ताद् रमणीयम् ।
अवरस्ताद् रमणीयम् ।

संख्याया विधार्थे धा 5.3.42

पद.—सङ्ख्यायाः 5.1, विधार्थे 7.1, धा 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—क्रिया के प्रकार अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची प्रातिपदिक से धा प्रत्यय होता है ।

उदा.—एकधा, द्विधा, त्रिधा इत्यादि ।

अधिकरणविचाले च 5.3.43

पद.—अधिकरणविचाले 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—संख्यायाः, धा ।

अर्थ—द्रव्य का विचाल गम्यमान हो तो संख्यावाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में 'धा' होता है ।
अधिकरण = द्रव्य ।
विचाल = अनेक संख्याओं में बदलना ।

उदा.—एकं राशिं पञ्च राशीन् करोति—पञ्चधा करोति ।
इसी प्रकार—अष्टधा, अनेकधा ।

एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् 5.3.44

पद.—एकात् 5.1, धः 6.1, ध्यमुञ् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—संख्यावाची 'एक' प्रातिपदिक से उत्तर (क्रिया का प्रकार तथा द्रव्य का विचाल-इन अर्थों में विहित) 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से ध्यमुञ् आदेश होता है । ध्यमुञ् के उकार तथा ञकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—एकं राशिं पञ्चराशीन् करोति-पञ्चधा, पञ्चध्यम् ।
एकया विधया भुङ्क्ते—एकधा, ऐकध्यम् ('तद्धिते०' आदि वृद्धि हुई है) ।

द्वित्र्योश्च धमुञ् 5.3.45

पद.—द्वित्र्योः 6.2, च-अव्य०, धमुञ् 1.1

अनु.—धः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—संख्यावाची 'द्वि' तथा 'त्रि' प्रातिपदिकों से उत्तर (क्रिया का प्रकार तथा द्रव्य का विचाल—इन अर्थों में विहित) 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से धमुञ् आदेश होता है । धमुञ् के उकार व ञकार की इत्संज्ञा होती है ।

पक्ष में 'धा' होता है ।

उदा.—द्वि धमुञ्-द्वै धम् सु-द्वैधम् । द्विधा ।
इसी प्रकार—त्रैधम्, त्रिधा ।

विशेष—धमुञ् प्रत्ययान्त से स्वार्थ में 'ड' प्रत्यय होता है ।[1] यथा—

1. महा० 5.3.45 (वा०)—धमुञन्तात् स्वार्थे डदर्शनम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतिद्वैधम् ड—मति द्वैध् अ जस्–मतिद्वैधानि ।

एधाच्च 5.3.46

पद.—एधाच् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—द्वित्र्योः धः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—संख्यावाची 'द्वि' तथा 'त्रि' प्रातिपदिकों से उत्तर (क्रिया का प्रकार तथा द्रव्य का विचाल–इन अर्थों में विहित) 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से एधाच् आदेश होता है । 'च्' की इत् संज्ञा होती है ।

यहाँ तीन रूप बनेंगे ।

उदा.—द्वि धा—द्वि एधाच्–द्व् एधा (यस्येति च)—द्वेधा सु–द्वेधा ।

द्वि धमुञ्–द्वैधम् ।

द्वि धा–द्विधा ।

इसी प्रकार–त्रेधा, त्रैधम्, त्रिधा ।

याप्ये पाशप् 5.3.47

पद.—याप्ये 7.1, पाशप् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—निन्दा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से पाशप् प्रत्यय होता है ।

अन्त्य पकार की इत् संज्ञा होती है ।

उदा.—कुत्सितो वैयाकरणः—वैयाकरणपाशप्–वैयाकरण-पाश सु–वैयाकरणपाशः ।

कुत्सितो भिषक्–भिषक्पाशः (अ०ह० 3.40.76)।

पूरणाद् भागे तीयादन् 5.3.48

पद.—पूरणात् 5.1, भागे 7.1, तीयात् 5.1, अन् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—'भाग' अर्थ में वर्त्तमान पूरणार्थक तीय प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में अन् प्रत्यय होता है ।

अन् के नकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—द्वि तीय (द्वेस्तीयः)—द्वितीय अन्–द्वितीय सु–द्वितीयः (केवल स्वर का अन्तर है) । त्रि तीय–(त्रेःसम्प्रसार०) तृतीय अन्–तृतीयः ।

विशेष—'भाग' अर्थ में वर्त्तमान न हो तो पूरणार्थक तीय प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से अन् नहीं होता है—

द्वितीयम्, तृतीयम् ।

प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि 5.3.49

पद.—प्राक्–अव्य०, एकादशभ्यः 5.3, अच्छन्दसि 7.1

अनु.—पूरणाद् भागे अन् ।

अर्थ—वेद के विषय को छोड़कर (अर्थात् केवल लोक में) भाग अर्थ में वर्त्तमान पूरणार्थक प्रत्ययान्त एकादश से पहले पहले जो संख्यावाची प्रातिपदिक, उनसे स्वार्थ में अन् प्रत्यय होता है ।

शब्द के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता है, केवल स्वर का अन्तर होता है ।

उदा.—पञ्चन् मट् डट्–पञ्चम अन् सु–पञ्चमः भागः ।

सप्तम अन्–सप्तमः ।

इसी प्रकार–नवमः दशमः ।

विशेष—1. 'एकादश' से **पूर्व पूर्व** जो संख्यावाची शब्द, उनसे ही अन् होता है—

एकादशः, द्वादशः–यहाँ अन् न हुआ ।

2. वेद में सूत्रोक्त अन् नहीं होता है—

तस्य पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत् (मै०सं० 1.9.4) ।

षष्ठाऽष्टमाभ्यां ञ च 5.3.50

पद.—षष्ठाऽष्टमाभ्याम् 5.2, ञ–लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, च–अव्य० ।

अनु.—अच्छन्दसि, भागे, अन्, पूरणात् ।

अर्थ—वेद के विषय को छोड़कर भाग अर्थ में वर्त्तमान पूरणार्थक प्रत्ययान्त षष्ठ और अष्टम प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ तथा अन् प्रत्यय होते हैं ।

ञ के ञकार की इत्संज्ञा होती है ।

'ञ' तथा 'अन्' में स्वरूपगत अन्तर नहीं है । 'ञ' में आदिवृद्धि होती है ।

उदा.—षष्ठ ञ–षाष्ठ सु–षाष्ठः ।

षष्ठ अ–षष्ठः ।

अष्टम ञ–आष्टमः ।

अष्टम अ–अष्टमः ।

मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च 5.3.51

पद.—मानपश्वङ्गयोः 7.2, कन्लुकौ 1.2, च–अव्य० ।

अनु.—षष्ठाष्टमाभ्याम्, भागे ।

अर्थ—यदि 'भाग' अभिधेय हो तो मान व पशु का अंग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप षष्ठ व अष्टम प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके कन् तथा लुक् होते हैं।

उदा.—षष्ठको भागो मानं चेत्तद्भवति-षष्ठ ञ-षाष्ठः।
लुक् होकर-षष्ठः।
अष्टमो भागः पशुरङ्गञ्चेत्तद्भवति—
आष्टमः, अष्टमः।

विशेष—'मान' व 'पशु का अंग' अर्थ में वर्त्तमान न हो तो सूत्रोक्त कन् व लुक् नहीं होते हैं—
षाष्ठः, षष्ठः।
आष्टमः, अष्टमः।

एकादाकिनिच्चाऽसहाये 5.3.52

पद.—एकात् 5.1, आकिनिच् 1.1, च-अव्य०, असहाये 7.1

अनु.—कन्लुकौ।

अर्थ—असहाय अर्थ में वर्त्तमान एक प्रातिपदिक से आकिनिच्, कन् तथा लुक् होते हैं।

उदा.—एक आकिनिच्-एक आकिन्-एकाकिन् सु-एकाकी।
एक कन्-एकक:।
एक कन् (लुक्)-एकः।

भूतपूर्वे चरट् 5.3.53

पद.—भूतपूर्वे 7.1, चरट् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—भूतपूर्व अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से चरट् प्रत्यय होता है।

उदा.—आढ्यो भूतपूर्वः—आढ्यचरः।

षष्ठ्या रूप्य च 5.3.54

पद.—षष्ठ्याः 5.1, रूप्य-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च-अव्य०।

अनु.—भूतपूर्वे चरट्।

अर्थ—भूतपूर्व अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से रूप्य और चरट् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—देवस्य भूतपूर्वो गौः-देव चरट्-देवचर सु-देवचरः। देव रूप्य सु-देवरूप्यः।

अतिशायने तमबिष्ठनौ 5.3.55

पद.—अतिशायने 7.1, तमबिष्ठनौ 1.2

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—प्रकर्ष विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् व इष्ठन् प्रत्यय होते हैं। तमप् के पकार तथा इष्ठन् के नकार की इत्संज्ञा होती है।

प्रकर्ष दो या अधिक में हुआ करता है। दो में प्रकर्ष के लिए पा० 5.3.57 से तरप् व ईयसुन् का विधान किया गया है। अतः प्रकृत सूत्र का क्षेत्र दो से अधिक वस्तुओं के समुदाय में से एक का प्रकर्ष प्रदर्शन है।

तमप् प्रत्यय सभी शब्दों से हो जाता है, परन्तु इष्ठन् केवल गुणवाचक शब्दों से ही होता है। (द्र० पा०5.3.58)।

उदा.—(1) अयम् एषाम् अतिशयेन सुकुमारः-सुकुमारतमः।

(2) अयम् एषाम् अतिशयेन विद्वान्-विद्वस् तमप्-विद्वद् तम (वसुस्रंसुध्वंस्वन डु०)-विद्वत्तम सु-विद्वत्तमः।

(3) अयम् एषाम् अतिशयेन पटुः-पटुतमः।
गुणवाची होने से-पटिष्ठः (टेः)।

तिङश्च 5.3.56

पद.—तिङः 5.1, च-अव्य०।

अनु.—अतिशायने, तमप्।

अर्थ—प्रकर्ष विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान तिङन्त से तमप् होता है।

यद्यपि यहाँ इष्ठन् पद भी अनुवृत्त है; परन्तु इष्ठन् के केवल गुणवाची शब्दों से होने के कारण इसका यहाँ सम्बन्ध नहीं है।

उदा.—(1) अयम् एषाम् अतिशयेन पचति-पचति तमप्-पचततम आमु (किमेत्तिङव्ययघा०)-पचततमाम् (यस्येति च)-पचततमाम् सु-पचततमाम्।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ 5.3.57

पद.—द्विवचनविभज्योपपदे 7.1, तरबीयसुनौ 1.2

अनु.—अतिशायने, तिङः।

अर्थ—दो अर्थों का प्रतिपादक शब्द तथा विभाग करने योग्य शब्द—इनके उपपद होने पर प्रकर्ष विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान सुबन्त तथा तिङन्त से तरप् व ईयसुन् प्रत्यय होते हैं, स्वार्थ में।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ 'उपपद' शब्द के द्वारा पारिभाषिक 'उपपद' का ग्रहण नहीं होता है । अतः 'उपपद' का अर्थ है—समीप उच्चारित पद ।

प्रकृति, प्रत्यय व उपपदों के समसख्यंक होने पर भी यहाँ यथासंख्य नियम लागू नहीं होता है ।

तरप् तथा ईयसुन् प्रत्यय दो में एक का प्रकर्ष बताने के लिए होता है ।

तरप् के पकार की तथा ईयसुन् के उकार व नकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) अयम् अनयोरतिशयेन पटुः–पटुतरप्–पटुतर सु–पटुतरः ।

पटु ईयसुन्–पटु ईयस्–पटीयस् सु–पटीयान् ।
पचति तरप्–पचतितराम् ।
गुरुतराः (विक्र० 4.15)।

(2) माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः—आढ्यतराः ।

अजादी गुणवचनादेव 5.3.58

पद.—अजादी 1.2, गुणवचनात् 5.1, एव–अव्य० ।

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—(पूर्वोक्त चार प्रत्ययों–तमप्, इष्ठन्, तरप्, ईयसुन् में से) अजादि प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से ही होते हैं ।

इस प्रकार तमप् व तरप् तो सभी प्रतिपदिकों से हो जाते हैं तथा इष्ठन् व ईयसुन् केवल गुणवाची शब्दों से होते हैं ।

उदा.—पटु इष्ठन्–पटिष्ठः ।
पटु ईयसुन्–पटीयान् ।

तुश्छन्दसि 5.3.59

पद.—तुः 5.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अजादी ।

अर्थ—वेद के विषय में तृच् व तृन् प्रत्ययान्त शब्दों से अजादि अर्थात् इष्ठन् व ईयसुन् प्रत्यय होते हैं ।

सूत्रस्थ 'तृ' पद निरनुबन्धक निर्देश है । अतः इसके द्वारा सानुबन्ध तृच् व तृन् दोनों का ग्रहण होता है ।

उदा.—कर्तृ इष्ठन्–कर्तृ इष्ठ (अतिशायने तमबिष्ठनौ । तुश्छन्दसि)—कर् इष्ठ (तुरिष्ठेमेयस्सु)—करिष्ठ सु–करिष्ठः (ऋ० 7.97.7) ।

दुह् तृन् (पुगन्तलघू०)—दोह् तृ (ददेर्धातोर्घः । झषस्तथोर्धोऽधः । झलां जश् झषि)–दोघ् तृ दोग्धृ ईयसुन्–दोग् ईयस् (तुरिष्ठेये०)–दोह् ईयस् ङीप् (उगितश्च)–दोहीयसी सु–दोहीयसी ।

प्रशस्यस्य श्रः 5.3.60

पद.—प्रशस्यस्य 6.1, श्रः 1.1

अनु.—अजादी ।

अर्थ—अजादि (इष्ठन् व ईयसुन्) प्रत्यय परे रहते प्रशस्य शब्द के स्थान में 'श्र' आदेश होता है ।

आदेश के अनेकाल् होने से सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है ।

उदा.—अयम् एषाम् अतिशयेन प्रशस्यः ('प्रशस्य' शब्द गुणवाची नहीं है । अतः इससे अजादि प्रत्यय प्राप्त नहीं है । परन्तु प्रकृत सूत्रपाठ से ज्ञापित होता है कि आचार्य 'प्रशस्य' शब्द से अजादि प्रत्ययों का विधान चाहते हैं, अन्यथा अजादि प्रत्यय के परे न होने पर प्रशस्य के स्थान पर 'श्र' आदेश नहीं हो पायेगा)—प्रशस्य इष्ठन्–श्र इष्ठ ('टेः' से प्राप्त लोप को 'प्रकृत्यैकाच्' से प्रकृतिभाव हुआ)—श्रेष्ठ सु–श्रेष्ठः ।

प्रशस्य ईयसुन्–श्रेयान् ।

ज्य च 5.3.61

पद.—ज्य–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च–अव्य० ।

अनु.—प्रशस्यस्य, अजादी ।

अर्थ—अजादि (अर्थात् इष्ठन् व ईयसुन्) प्रत्यय परे रहते प्रशस्य शब्द के स्थान पर 'ज्य' आदेश भी होता है ।

उदा.—अयम् एषाम् अतिशयेन प्रशस्यः—ज्य इष्ठन् (टेः । प्रकृत्यैकाच् ।)–ज्य इष्ठ सु–ज्येष्ठः ।

अयम् अनयोरतिशयेन प्रशस्यः–ज्य ईयसुन्–ज्य ईयस् (आदेः परस्य । ज्यायादीयसः)–ज्य आयस् (टेः । प्रकृत्यैकाच्। अकः सवर्णे दीर्घः)–ज्यायस् सु–ज्यायान् ।

द्र०—ज्यायः (गी० 3.8) ।

वृद्धस्य च 5.3.62

पद.—वृद्धस्य 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—ज्य, अजादी ।

अर्थ—अजादि (अर्थात् इष्ठन् व ईयसुन्) प्रत्यय परे रहते वृद्ध शब्द के स्थान पर 'ज्य' आदेश होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—अयम् एषाम् अतिशयेन वृद्धः-वृद्ध इष्ठन्-ज्य इष्ठ-ज्येष्ठ सु-ज्येष्ठः ।

अयम् अनयोरतिशयेन वृद्धः-वृद्ध ईयसुन्-ज्य ईयस्-ज्य आयस् सु-ज्यायान् ।

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ 5.3.63

पद.—अन्तिकबाढयोः 6.2, नेदसाधौ 1.2

अनु.—अजादि ।

अर्थ—अजादि (अर्थात् इष्ठन् ईयसुन्) प्रत्यय परे रहते अन्तिक और बाढ प्रातिपदिकों के स्थान में यथासंख्य करके नेद तथा साध आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) इदम् एषाम् अतिशयेन अन्तिकम्-अन्तिक इष्ठन्-नेद इष्ठ-नेदिष्ठ सु-नेदिष्ठः । नेदीयान् ।

(2) अयम् एषाम् अतिशयेन बाढम् अधीते-बाढ इष्ठन्-साध इष्ठ-सधिष्ठ सु-साधिष्ठः ।

इसी प्रकार—साधीयान् ।

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् 5.3.64

पद.—युवाल्पयोः 6.2, कन् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अजादी ।

अर्थ—अजादि (अर्थात् इष्ठन् व ईयसुन्) प्रत्यय परे रहते युव तथा अल्प प्रातिपदिकों के स्थान पर विकल्प से कन् आदेश होता है ।

उदा.—(1) अयम् एषाम् अतिशयेन युवा-युवन् इष्ठन्-कन् इष्ठ-कनिष्ठ सु-कनिष्ठः ।

पक्ष में—युवन् इष्ठन्-यु इष्ठ (स्थूलदूर युव०)-यो इष्ठ सु-यविष्ठः ।

(2) युवन् ईयसुन्-कनीयान् । (भाग० 9.2.15)।

युवन् ईयसुन्-यवीयान् ।

विन्मतोर्लुक् 5.3.65

पद.—विन्मतोः 6.2, लुक् 1.1

अनु.—अजादी ।

अर्थ—अजादि (अर्थात् इष्ठन् व ईयसुन्) प्रत्यय परे रहते विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् होता है ।

उदा.—(1) अतिशयेन स्रग्वी-स्रजिष्ठः ।

स्रज् विनि (अस्मायामेधास्रजो०)-स्रग्विन् (क्विन् प्रत्ययस्य कुः)-स्रग्विन् इष्ठन् (अतिशायने तमबि०)-स्रग् इष्ठन् (लुक्, निमित्ताऽपाये नैमित्तिकस्य०)-स्रज् इष्ठ सु-स्रजिष्ठः । यचि भम् । टेः । प्रकृत्यैकाच् । भत्वात् कुत्वमपि न ।

इसी प्रकार-स्रग्विन् ईयसुन्-स्रजीयान् ।

(2) अयम् एषाम् अतिशयेन त्वग्वान्-त्वच् मतुप् (तदस्यास्त्यस्मि०)-त्वच् वत् (मादुपधायाश्च०)-त्वग्वत् (चोः कुः)-त्वग्वत् इष्ठन् (अतिशायने तमबि०)-त्वग् इष्ठ-त्वच् इष्ठ सु-त्वचिष्ठः । टेः । प्रकृत्यैकाच् ।

इसी प्रकार—त्वचीयान् ।

प्रशंसायां रूपप् 5.3.66

पद.—प्रशंसायाम् 7.1, रूपप् 1.1

अनु.—तिङः ।

अर्थ—प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक तथा तिङन्त से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होता है । रूपप् के अन्त्य पकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—प्रशस्तो वैयाकरणः—वैयाकरणरूपः ।

पचति रूपप्-पचति रूप सु-पचतिरूपम् ।

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः 5.3.67

पद.—ईषदसमाप्तौ 7.1, कल्पब् .... यरः 1.3

अनु.—तिङः ।

अर्थ—कुछ न्यूनताविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान सुबन्त व तिङन्त से स्वार्थ में कल्पप्, देश्य तथा देशीयर् प्रत्यय होते हैं ।

कल्पप् का अन्त्य पकार तथा देशीयर् का अन्त्य रेफ इत्संज्ञक है ।

उदा.—(1) ईषद् ऊनः (किञ्चिद् न्यूनः) विद्वान्-विद्वस् कल्पप्-विद्वद् कल्प (वसुस्रसुध्वंसु०)-विद्वत् कल्प (खरि च)-विद्वत्कल्पः । विद्वत् देश्य-विद्वद्देश्यः ।

विद्वस् देशीयर्-विद्वद्देशीयः ।

स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिंगवचनान्यनुवर्त्तन्ते अर्थात् स्वार्थिक प्रत्ययान्त शब्द में प्रकृति के अनुसार लिंग व वचन का प्रयोग होता है । यथा—

विद्वत्कल्पः । यहाँ 'विद्वस्' पुल्लिँग व एक वचन होने से 'विद्वत्कल्प' में पुंस्त्व तथा एक वचन का योग है ।

(2) ईषद् ऊनं पचति-पचतिकल्पम्, पचतिदेश्यम्, पचतिदेशीयम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) पञ्च वर्षाणि भूतः (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति द्वितीया, तद्धितार्थे द्विगुः-तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चेति)-पञ्चन् वर्ष-पञ्चवर्ष ठञ् (तमधीष्टो भृतो भूतो भावी)—(चित्तवति नित्यम् इति लुक्)-पञ्चवर्ष सु-पञ्चवर्षः (पाँच वर्ष का)।

ईषद् ऊनः पञ्चवर्षः-पञ्चवर्षकल्पः, पञ्चवर्षदेश्यः, पञ्चवर्षदेशीयः।

गिरिकल्पम् (भट्टि० 6.41)। नेत्रकल्पैः (भट्टि० 2.5)। प्रभातकल्पा (रघु० 3.2)।

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु 5.3.68

पद.—विभाषा 1.1, सुपः 5.1, बहुच् 1.1, पुरस्तात् अव्य०, तु-अव्य०।

अनु.—ईषदसमाप्तौ।

अर्थ—न्यूनताविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान सुबन्त से विकल्प से बहुच् प्रत्यय होता है, परन्तु वह प्रत्यय प्रकृति से पूर्व ही हो।

पदमञ्जरीकार आदि कई वैयाकरण 'सुपः' में षष्ठी विभक्ति मानते हैं। द्र०—काशिका (पद.)-5.3.68

बहुच् के चकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—ईषद् ऊनः पटुः-बहुच् पटु-बहुपटु सु-बहुपटुः।

पक्ष में—पटुकल्पः, पटुदेश्यः, पटुदेशीयः भी होते हैं (ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्य०)।

विशेष—1. यहाँ उल्लेखनीय है कि बहुच् प्रत्यय प्रकृति से पूर्व होता है। इसलिए 'बहुपटु' इसके तद्धितान्त न होने से 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा नहीं हो पाती है। तब 'अर्थवदधातुर०' से उक्तसंज्ञा होती है।

2. 'सुपः' का प्रयोजन है कि सूत्रोक्त 'बहुच्' प्रत्यय सुबन्त से ही हो—

यजति-यह तिङन्त है। अतः बहुच् नहीं होता है।

प्रकारवचने जातीयर् 5.3.69

पद.—प्रकारवचने 7.1, जातीयर् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—प्रकार विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होता है। जातीयर् का रेफ इत्संज्ञक है।

उदा.—पटु जातीयर्-पटुजातीय सु-पटुजातीयः।

प्रागिवात्कः 5.3.70

पद.—प्राक्-अव्य०, इवात् 5.1, कः 1.1

अनु.—सुपः।

अर्थ—इवे प्रतिकृतौ (पा० 5.3.96) से पहले पहले 'क' प्रत्यय का अधिकार है अर्थात् 'इवे प्रतिकृतौ' सूत्र से पहले जो जो सूत्र कहे गये हैं, उनके द्वारा 'क' प्रत्यय का विधान जानना चाहिए।

उदा.—अज्ञातोऽश्वः-अश्वकः। 'अज्ञाते'।

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः 5.3.71

पद.—अव्ययसर्वनाम्नाम् 6.3, अकच् 1.1, प्राक्-अव्य०, टेः 5.1

अनु.—सुपः प्रागिवात् कः तिङः।

अर्थ—'इवे प्रतिकृतौ' से पूर्व-पूर्व के सूत्रों में अव्यय, सर्वनाम तथा तिङन्त से अकच् प्रत्यय हो तथा वह 'टि' से पूर्व हो।

अकच् के चकार तथा ककारोत्तरवर्त्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। यह 'क' प्रत्यय का अपवाद है।

'क' प्रकृति से परे होता है, परन्तु 'अकच्' टि से पूर्व होता है।

'क' केवल सुबन्त से होता है, परन्तु अकच् सुबन्त व तिङन्त दोनों से होता है।

चूँकि प्रकृत सूत्र में 'सुपः' तथा 'प्रातिपदिकात्' दोनों पदों का अनुवर्तन होता है। अतः अकच् प्रत्यय प्रयोगानुसार कहीं सुबन्त से तथा कहीं प्रातिपदिक से होता है। इसकी व्यवस्था निम्नलिखित वार्तिक के द्वारा की गई है।

ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् अन्यत्र सुबन्तस्य अर्थात् ओकारादि, सकारादि और भकारादि सुप् विभक्ति के परे रहते प्रातिपदिक सर्वनाम शब्द के टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है तथा शेष सुप् विभक्तियों में सुबन्त सर्वनाम शब्द के टि से पूर्व अकच् होता है।

उदा.—(1) अज्ञातैर्युष्माभिः—(अज्ञाते-पा० 5.3.73) युष्मद् भिस्-युष्म् अकच् अद् भिस्-युष्मकाभिः। असकौ (भट्टि० 20.5)।

(2) अज्ञातयोर्युवयोः-युष्मद् ओस्-युष्म् अकच् अद् ओस्-युष्मकद् ओस् (युवावौ द्विवचने)—युव अकद् ओस् (अतो गुणे। योऽचि)—युवकय् ओस्-युवकयोः।

(3) अज्ञातेषु युष्मासु-युष्मद् सुप्-युष्मकच् अद् सु-युष्मकासु (युष्मदस्मदोरना०। अकः सवर्णे०)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) अज्ञातेन त्वया–त्वयका (यहाँ सुबन्त की टि से पूर्व अकच् हुआ है।

(5) अज्ञातं नीचैः–नीच् अकच् ऐस्–नीचकैः।

(6) एहि (आ इण् सिप्)–एह् अकच् इ–एहकि।

कस्य च दः 5.3.72

पद.—कस्य 6.1, च–अव्य०, दः 1.1

अनु.—अव्ययस्य अकच् प्राक् टेः।

अर्थ—ककारान्त अव्यय को टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है तथा प्रकृति को दकार आदेश होता है। 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषा के बल पर दकारादेश अन्त्य वर्ण (ककार) के स्थान पर होता है।

चूँकि सर्वनाम शब्द ककारान्त है ही नहीं, अतः यहाँ सामर्थ्य से केवल 'अव्यय' इस पद का सम्बन्ध होता है।

उदा.—धिक्–ध् अकच् इक्–धकिक्–धकिद् (चर्त्व)–धकित्।

हिरुक्–हिरकुत्।

पृथक्–पृथकत्।

अज्ञाते 5.3.73

पद.—अज्ञाते 7.1

अनु.—अव्ययसर्वनाम्नाम्; प्राक् टेः, प्रागिवात् कः तिङः।

अर्थ—अज्ञात विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान अव्यय, सर्वनाम या तिङन्त से यथाप्राप्त (क तथा अकच्) प्रत्यय होते हैं।

अव्यय, सर्वनाम तथा तिङन्त से अकच् होता है तथा अन्य प्रातिपदिकों से क प्रत्यय होता है।

उदा.—उच्चैः–उच्चकैः।

सर्वे–सर्वके।

पचति–पचतकि।

अज्ञातोऽश्वः–अश्वकः।

कुत्सिते 5.3.74

पद.—कुत्सिते 7.1

अनु.—अव्यय सर्वनाम्नाम् अकच् प्राक् टेः प्राक् इवात् कः तिङः।

अर्थ—निन्दा विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान अव्यय, सर्वनाम अथवा तिङन्त से यथाविहित (अकच् व क) प्रत्यय होते हैं।

उदा.—(1) कुत्सितम् उच्चैः–उच्चकैः।

(2) कुत्सिताः सर्वे–सर्वके।

(3) कुत्सितं पचति–पचतकि।

(4) कुत्सितो गर्दभः–गर्दभकः।

संज्ञायां कन् 5.3.75

पद.—संज्ञायाम् 7.1, कन् 1.1

अनु.—कुत्सिते, प्रागिवात्।

अर्थ—निन्दाविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है, यदि संज्ञा गम्यमान हो।

उदा.—कुत्सितः शूद्रः–शूद्र कन् सु–शूद्रकः।

अनुकम्पायाम् 5.3.76

पद.—अनुकम्पायाम् 7.1

अनु.—तिङः। अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः, कः।

अर्थ—'अनुकम्पा' गम्यमान हो तो प्रातिपदिक से तथा तिङन्त से यथाविहित प्रत्यय होते हैं। अव्यय, सर्वनाम तथा तिङन्त से अकच् होता है तथा अन्य प्रातिपदिकों से 'क' होता है।

उदा.—(1) अनुकम्पितः पुत्रः–पुत्र क सु–पुत्रकः।

(2) स्वपिति–स्वपितकि।

नीतौ च तद्युक्तात् 5.3.77

पद.—नीतौ 7.1, च–अव्य०, तद्युक्तात् 5.1

अनु.—अनुकम्पायाम् तिङः, अकच्, कः।

अर्थ—'नीति' गम्यमान हो तो अनुकम्पा से सम्बद्ध प्रातिपदिक से तथा तिङन्त से यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

अव्यय, सर्वनाम तथा तिङन्त से अकच् होता है तथा शेष प्रातिपदिकों से 'क' होता है। यद्यपि 'नीति' के चार भेद हैं—साम, दान, दण्ड और भेद। चूँकि अनुकम्पा गम्यमान है, अतः यहाँ साम व दान दो की ही संगति लगती है।

उदा.—(1) हन्त ते तिलकाः।

(2) हन्त ते धानकाः।

(3) एहि–एहकि।

बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा 5.3.78

पद.—बह्वचः 5.1, मनुष्यनाम्नः 5.1, ठच् 1.1, वा–अव्य०।

अनु.—नीतौ, तद्युक्तात्, अनुकम्पायाम्।

अर्थ—अनुकम्पा गम्यमान हो और अनुकम्पा से युक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति गम्यमान हो तो अनेक अच् वाले मनुष्य के नाम वाले प्रातिपदिक से विकल्प से ठच् प्रत्यय होता है।

पक्ष में—'क' होता है।

उदा.—देवदत्त ठच् (ठाजादावूर्ध्व०)-देव इक सु-देविकः।

देवदत्त क-देवदत्तकः।

विशेष—1. **अनेक अच्** वाले प्रातिपदिक से ही सूत्रोक्त ठच् प्रत्यय होता है—

दत्तकः—'दत्त' दो अच् वाला है, अनेकाच् नहीं। अतः ठच् न हुआ, 'क' हुआ है।

2. **मनुष्य नामवाची** अनेकाच् शब्द से ही सूत्रोक्त ठच् होता है—

मद्रबाहुकः—'मद्रबाहु' अनेकाच् है, परतु मनुष्य नामवाची नहीं है। अतः ठच् न हुआ। 'क' हुआ।

घनिलचौ च 5.3.79

पद.—घनिलचौ 1.2, च-अव्य०।

अनु.—बह्वचः मनुष्यनाम्नः ठच् वा नीतौ तद्युक्तात् अनुकम्पायाम्।

अर्थ—अनुकम्पा से युक्त नीति गम्यमान हो तो अनेक अच् वाले व मनुष्य के नाम वाले प्रातिपदिक से घन् व इलच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं। पक्ष में ठच् होता है।

घन् के नकार की तथा इलच् के चकार की इत् संज्ञा होती है।

उदा.—देवदत्त घन्-देवदत्त घ-देवदत्त इय देव इय-देविय सु-देवियः।

देवदत्त इलच्-देविलः।
देवदत्त ठच्-देविकः।
देवदत्त क-देवदत्तकः।

प्राचामुपादेरडज् वुचौ च 5.3.80

पद.—प्राचाम् 6.3, उपादेः 5.1, अडज्वुचौ 1.2, च-अव्य०।

अनु.—घनिलचौ बह्वचः मनुष्यनाम्नः ठच् वा नीतौ तद्युक्तात् अनुकम्पायाम्।

अर्थ—नीति और अनुकम्पा गम्यमान हो तो 'उप' है आदि में जिसके ऐसे अनेक अच् वाले व मनुष्यवाची प्रातिपदिक से अडच् वुच्, घन्, इलच् व ठच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

उदा.—उपेन्द्रदत्त अडच्-उप अड-उपड सु-उपडः।
उपेन्द्रदत्त वुच्-उप अक सु-उपकः।
उपेन्द्रदत्त घन्-उपियः।
उपेन्द्रदत्त इलच्-उपिलः।
उपेन्द्रदत्त ठच्-उपिकः।
उपेन्द्रदत्त क-उपेन्द्रदत्तकः।

जातिनाम्नः कन् 5.3.81

पद.—जातिनाम्नः 5.1, कन् 1.1

अनु.—मनुष्यनाम्नः नीतौ तद्युक्तात् अनुकम्पायाम्।

अर्थ—नीति व अनुकम्पा गम्यमान हो तो मनुष्य नामधेय और जातिवाची प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है।

उदा.—व्याघ्रः कस्यचित् पुरुषस्य नाम-व्याघ्र कन्-व्याघ्र क सु-व्याघ्रकः।

विशेष—प्रकृत सूत्र में 'वा' पद का अनुवर्त्तन होने से कन् से अतिरिक्त प्रत्यय भी होता है—

व्याघ्र इलच्-व्याघ्रिलः।

अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च 5.3.82

पद.—अजिनान्तस्य 6.1, उत्तरपदलोपः 1.1, च-अव्य०।

अनु.—मनुष्यनाम्नः अनुकम्पायाम् कन्।

अर्थ—अनुकम्पा अर्थ में वर्त्तमान अजिन अन्त वाले व मनुष्य नाम वाले प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है तथा प्रकृति के उत्तरपद का लोप होता है।

उदा.—व्याघ्राजिनः कस्यचित् पुरुषस्य नाम-व्याघ्राजिनः अनुकम्पितः-व्याघ्राजिन कन्-व्याघ्र क-व्याघ्रकः।

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः 5.3.83

पद.—ठाजादौ 7.1, ऊर्ध्वम् 1.1, द्वितीयात् 5.1, अचः 5.1

अनु.—लोपः।

अर्थ—इस प्रकरण में 'ठ' तथा 'अजादि' प्रत्यय परे रहते द्वितीय अच् से बाद की जो प्रकृति, उसका लोप होता है।

यहाँ अन्त्य परिभाषा लागू नहीं होती है, अपितु सम्पूर्ण का लोप होता है।

उदाहरण पीछे प्रकरण से सम्बन्धित सूत्रों पर देखें जा सकते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. 'ठ' को 'ठस्येकः' से 'इक' आदेश होकर अजादि बन जाता है। तब प्रकृत सूत्र में 'ठाजादावूर्ध्वम्' के स्थान पर 'अजादावूर्ध्वम्' से भी काम चल जाता, परन्तु सूत्र में 'ठ' का योग उक् से परे द्वितीय होने पर 'क' के विधान के लिए है।

'वायुदत्तः' यहाँ 'ठच्' करने पर 'इसुसुक्तान्ता०' से 'क' आदेश होता है। यदि सूत्र में 'ठ' का योग न करेंगे तो यहाँ अजादि के प्राप्त न रहने से उत्तरपद का लोप न हो सकेगा। ऐसे स्थलों पर भी उक्त लोप हो जाये। इसलिए सूत्र में 'ठ' का ग्रहण किया गया है। द्र०—काशि० (न्यास)-5.3.83।

2. चतुर्थ अच् के बाद की प्रकृति का भी लोप होता है।[1]—

अनुकम्पितः बृहस्पतिदत्तः—बृहस्पतिकः।

3. अनजादि परे रहते भी प्रकृति का विकल्प लोप होता है।[2]—

देवदत्तकः, देवकः।

4. ठ, अजादि तथा अनजादि प्रत्यय परे रहते पूर्वपद का भी लोप होता है।[3]—

दत्तिलः, दत्तिकः, दत्तकः।

5. प्रत्यय के बिना भी पूर्वपद व उत्तरपद का लोप होता है।[4]—

देवदत्तः, दत्तः, देवः।

6. उवर्णान्त से परे इल के 'ल' का लोप होता है[5]—

भानुदत्तकः-भानुलः।

7. द्वितीय अच् से परे लोप की कर्त्तव्यता में सन्ध्यक्षर जब द्वितीय हो तो उसके आदि भाग का लोप होता है[6]—

अनुकम्पितः लहोडः-लहिकः

1. महा० 5.3.84 (वा०)—चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वक्तव्यः।
2. महा० 5.3.84 (वा०)—अनजादौ विभाषा लोपो वक्तव्यः।
3. महा० 5.3.83 (वा०)—लोपः पूर्वपदस्य च ठाजादावनजादौ च वक्तव्यः।
4. महा० 5.3.83 (वा०)—विनाऽपि प्रत्ययेन पूर्वोत्तरपदयोर्विभाषा लोपो वक्तव्यः।
5. महा० 5.3.83 (वा०)—उवर्णाल्ल इलस्य च।
6. महा० 5.3.83 (वा०)—द्वितीयादचो लोपे सन्ध्यक्षर द्वितीयत्वे तदादेर्लोपवचनम्।

8. एक अक्षर जिनका पूर्वपद है, उसके उत्तरपद का लोप होता है[7]—

अनुकम्पितः वागाशीः-वाच् ठच्-वाचिकः।

शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् 5.3.84

पद.—शेवल .... मादीनाम् 6.3, तृतीयात् 5.1

अनु.—ठाजादावूर्ध्वम् अचः लोपः मनुष्यनाम्नः।

अर्थ—जिसके आदि में शेवल, सुपरि, विशाल, वरुण तथा अर्यमा मनुष्य नामवाची शब्द हों, ऐसे प्रातिपदिक के तृतीय अच् के बाद की सम्पूर्ण प्रकृति का लोप होता है, ठ तथा अजादि प्रत्ययों के परे रहते।

उदा.—शेवलदत्त ठच्-शेवलिकः।
सुपरिदत्त ठच्-सुपरिकः।
विशालदत्त ठच्-विशालिकः।
वरुणदत्त ठच्-वरुणिकः।
अर्यमदत्त ठच्-अर्यमिकः।

इसी प्रकार घन्, इलच् आदि में जानना चाहिए।

अल्पे 5.3.85

पद.—अल्पे 7.1

अनु.—तिङः, अव्ययसर्वनाम्नाम्।

अर्थ—अल्पविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक तथा तिङन्त से यथाविहित (अकच् व क) प्रत्यय होते हैं।

उदा.—अल्पं तैलम्-तैल क-तैलक सु-तैलकम्। पचति-पचतकि (अकच्)।

ह्रस्वे 5.3.86

पद.—ह्रस्वे 7.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—ह्रस्वविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।

उदा.—ह्रस्वो वृक्षः-वृक्षकः।

संज्ञायां कन् 5.3.87

पद.—संज्ञायाम् 7.1, कन् 1.1

7. महा० 5.3.83 (वा०)—एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—ह्रस्वे ।

अर्थ—ह्रस्वविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है, संज्ञा गम्यमान हो तो ।

उदा.—ह्रस्वो वंशः-वंशकः ।

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः 5.3.88

पद.—कुटीशमीशुण्डाभ्यः 5.3, रः 1.1

अनु.—ह्रस्वे ।

अर्थ—ह्रस्व विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान कुटी, शमी और शुण्डा प्रातिपदिकों से 'र' प्रत्यय होता है ।

उदा.—ह्रस्वा कुटी-कुटीर सु-कुटीरः ।
ह्रस्वा शमी-शमीरः ।
ह्रस्वा शुण्डा-शुण्डारः ।

कुत्वा डुपच् 5.3.89

पद.—कुत्वाः 5.1, डुपच् 1.1

अनु.—ह्रस्वे ।

अर्थ—ह्रस्वविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान कुतू प्रातिपदिक से डुपच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—डुपच् के चकार तथा डु की इत्संज्ञा होती है । ह्रस्वा कुतूः-कुतूप सु-कुतूपम् ।

कासूगोणीभ्यां ष्टरच् 5.3.90

पद.—कासूगोणीभ्याम् 5.2, ष्टरच् 1.1

अनु.—ह्रस्वे ।

अर्थ—ह्रस्वविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान कासू तथा गोणी प्रातिपदिकों से ष्टरच् प्रत्यय होता है । ष्टरच् के षकार तथा चकार की इत्संज्ञा होती है ।

षित् होने से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् होगा ।

उदा.—ह्रस्वा कासू-कासू ष्टरच्-कासूतर ङीष् सु (निमित्ताऽपाये० इति टस्य तत्वम्)-कासूतरी ।

इसी प्रकार-गौणीतरी ।

वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे 5.3.91

पद.—वत्सोक्षा .... भ्यः 5.3, च-अव्य०, तनुत्वे 7.1

अनु.—ष्टरच् ।

अर्थ—अल्पताविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान वत्स, उक्षन्, अश्व तथा ऋषभ प्रातिपदिकों से ष्टरच् प्रत्यय होता है ।

अल्पता का अर्थ है—न्यूनता ।

उदा.—वत्स ष्टरच्-वत्सतरः (=वत्स अवस्था में न्यूनता अर्थात् कम वत्स) ।

उक्षन् ष्टरच्-उक्षतरः (=बैल जो यौवन को पार कर गया है । युवा बैल को 'उक्षन्' कहते हैं) ।

अश्व ष्टरच्-अश्वतरः ।
ऋषभ ष्टरच्-ऋषभतरः ।

किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् 5.3.92

पद.—किंयत्तदः 5.1, निर्धारणे 7.1, द्वयोः 7.2, एकस्य 6.1, डतरच् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—दो में से एक का निर्धारण अर्थ द्योत्य हो तो किम्, यद् तथा तद् प्रातिपदिकों से डतरच् प्रत्यय होता है ।

डतरच् के चकार व डकार की इत्संज्ञा होती है ।

डित् करने का प्रयोजन 'टेः' के द्वारा टिलोप करना है ।

जाति, गुण, क्रिया या संज्ञा के द्वारा किसी समूह में से किसी एक देश का पृथक् करण ही निर्धारण कहलाता है ।

उदा.—(1) अनयोः को वैष्णवः-किम् डतरच्-क् अतर सु-कतरः ।

डतर प्रत्ययान्त होने से 'कतर' की सर्वनाम संज्ञा होती है । द्र०—सर्वादीनि सर्वनामानि । महाविभाषा के कारण पक्ष में 'किम्' शब्द भी रहेगा ।

(2) अनयोर्योऽध्यापकः-अनयोर्यतरोऽध्यापकः ।

(3) अनयोः स देवः-अनयोस्ततरो देवः ।

विशेष—'निर्धारणे' का प्रयोजन है कि समुदाय में एकदेश का **पृथक् करण** गम्य हो तो डतरच् होता है—

कयोरन्यतरोऽध्यापकः-यहाँ निर्धारण गम्य नहीं है । अतः डतरच् न हुआ ।

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् 5.3.93

पद.—वा-अव्य०, बहूनाम् 6.3, जातिपरिप्रश्ने 7.1, डतमच् 1.1

अनु.—किंयत्तदः निर्धारणे एकस्य ।

अर्थ—जाति को पूछने के विषय में बहुतों में से एक का निर्धारण गम्य हो तो किम्, यद् तथा तद् प्रातिपदिकों से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वार्थ में विकल्प से डतमच् प्रत्यय होता है। पक्ष में अकच् होता है।

डतमच् के चकार व डकार की इत्संज्ञा है।

उदा.—(1) भवतां कः कठः-किम् डतमच्-कतम सु-कतमः (भवतां कठः)।

किम् (अकच् पक्ष में)-क् अकच् इम्-ककिम् (कादेशः खल्वप्यवश्य साकच्० महा० 7.2.102 वा० तथा किमः कः)-क सु-कः (भवतां कठः)।

(2) भवतां यः पटुः- यद् डतमच्-यतमः (भवतां पटुः)।

पक्ष में—य् अकच् अद्-यकद् सु-यक अ सु-य क सु-यकः।

(3) भवतां सः पटुः- तद् डतमच्-ततमः (भवतां पटुः)।

पक्ष में—सकः। तदोः सः सावनन्त्ययोः इति सकारादेशः।

ध्यान रहे डतरच् तथा डतमच् प्रत्ययों में ततर व ततम शब्दों से 'सु' होने की दशा में उक्त सकारादेश नहीं होता है, कारण कि सु से पूर्व 'तद्' शब्द नहीं है, ततर या ततम है।

महाविभाषा के कारण उपर्युक्त तीनों स्थलों पर पक्ष में वाक्य भी रहता है।

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने (पा० 2.1.63) सूत्र में 'जातिपरिप्रश्ने' का योग होने से ज्ञापित होता है कि जातिपरिप्रश्न में डतरच् भी होता है।

एकाच्च प्राचाम् 5.3.94

पद.—एकात् 5.1, च-अव्य०, प्राचाम् 6.3

अनु.—बहूनाम् डतमच् निर्धारणे एकस्य डतरच्।

अर्थ—प्राचीन आचार्यों के मत में एक शब्द से पूर्वोक्त सूत्र द्वय के विषय में प्रत्यय होते हैं अर्थात् दो में से एक के निर्धारण की दशा में डतरच् तथा बहुतों में से एक के निर्धारण में डतमच् होता है।

उदा.—एको देवदत्तः-अनयोः एकतरो अनयोः देवदत्तः।

एषाम् एको देवदत्तः-एषाम् एकतमो देवदत्तः।

अवक्षेपणे कन् 5.3.95

पद.—अवक्षेपणे 7.1, कन् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

अर्थ—अवक्षेपण अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है।

ध्यान रहे कि 'कुत्सिते' के द्वारा कन् प्रत्यय उसी से होता है जिसकी निन्दा की जाये, परन्तु प्रकृत सूत्र के द्वारा विधीयमान कन् प्रत्यय दूसरे की निन्दा के लिए जिसका उल्लेख किया जाये, उसके बोधक शब्द से होता है।

उदा.—व्याकरणकेन नाम त्वं गर्वितः अर्थात् व्याकरण ज्ञान के कारण तुझे घमण्ड है। यहाँ 'त्वम्' की निन्दा की जा रही है। अतः 'त्वम्' से कन् न हुआ। यहाँ निन्दा का कारण व्याकरण ज्ञान का अहंकार है। अतः 'व्याकरण' शब्द से कन् हुआ है।

इवे प्रतिकृतौ 5.3.96

पद.—इवे 7.1, प्रतिकृतौ 7.1

अनु.—कन्।

अर्थ—'इव' के अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् होता है यदि वह सदृश वस्तु प्रतिमा हो।

उदा.—अश्व इव प्रतिकृतिरश्वस्य-अश्व कन्-अश्वक सु-अश्वकः।

विशेष—'प्रतिकृति' अभिधेय न होने पर उक्त प्रत्यय नहीं होता है—

गौरिव गवयः-यहाँ कन् न हुआ। यहाँ 'इव' का अर्थ सादृश्य तो है, परन्तु 'प्रतिमा' अभिधेय नहीं है।

अन्य प्रयोग—कूपकः। ऊर्मिका। भ्रमरकः। उष्ट्रिका। मरीचिका (मरीचिरिव)। पादुका (पादूरिव)। विहङ्गिका (विहङ्ग इव)।

संज्ञायां च 5.3.97

पद.—संज्ञायाम् 7.1, च-अव्य०।

अनु.—इवे, कन्।

अर्थ—'इव' के अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

उदा.—अश्व इव-अश्वकः।

लुम्मनुष्ये 5.3.98

पद.—लुप् 1.1, मनुष्ये 7.1

अनु.—संज्ञायाम्, इवे, कन्।

अर्थ—'इव' के अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से संज्ञा के विषय में विहित कन् प्रत्यय का लुप् होता है, यदि मनुष्य अर्थ गम्य हो।

उदा.—चञ्चा इव-चञ्चा कन् (संज्ञायां च)-चञ्चा (लुम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्ये) सु-चञ्चा । तृण निर्मित मनुष्य को 'चञ्चा' कहते हैं । चञ्चा की तरह हल्का व्यक्ति 'चञ्चा' हुआ ।

विशेष—'मनुष्य' अर्थ गम्य न हो तो प्रत्यय का लुप् नहीं होता है—अश्वकः ।

जीविकार्थे चाऽपण्ये 5.3.99

पद.—जीविकार्थे 7.1, च-अव्य०, अपण्ये 7.1

अनु.—लुप्, मनुष्ये, कन्, प्रतिकृतौ ।

अर्थ—यदि कोई प्रतिमा जीविकार्जन हेतु बनाई गई हो और उसे बेचा न जाये तो इस अवस्था में प्रकृत सूत्र से (प्रतिकृति अभिधेय होने पर) विहित कन् प्रत्यय का लुप् होता है । यथा—

यदि कोई शिल्पी राम आदि की प्रतिमा के दर्शन करा करा कर जीविकोपार्जन तो करता है, परन्तु उसे बेचता नहीं है । उस दशा में विहित कन् प्रत्यय का लुप् होता है ।

उदा.—राम इव प्रतिकृतिः-राम कन्-राम सु-रामः ।

देवपथादिभ्यश्च 5.3.100

पद.—देवपथादिभ्यः 5.3, च-अव्य० ।

अनु.—इवे प्रतिकृतौ कन् लुप् ।

अर्थ—'इव' के अर्थ में वर्त्तमान देवपथादि प्रातिपदिकों से विहित प्रत्ययं का लुप् होता हैं यदि वह सदृश वस्तु प्रतिमा हो ।

उदा.—देवपथः इव अस्य प्रतिकृतिः-देवपथ कन् (इवे प्रतिकृतौ०)-देवपथ सु (लुप्)-देवपथः ।

वस्तेर्ढञ् 5.3.101

पद.—वस्तेः 5.1, ढञ् 1.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में वर्त्तमान 'वस्ति' शब्द से 'ढञ्' होता है ।

ढञ् के ञकार की इत्संज्ञा है । ढकार को एय आदेश होता है । प्रत्यय के ञित् होने से आदि वृद्धि होती है । स्त्रीत्व में टिड्ढाऽण्० से ङीप् होता है ।

उदा.—वस्तिरिव-वस्ति ढञ्-वास्तेयः ।

शिलाया ढः 5.3.102

पद.—शिलायाः 5.1, ढः 1.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में वर्त्तमान शिला शब्द से 'ढ' होता है।

उदा.—शिला ढ-शिलेयः ।

द्र० शिलेयं दधि (=पत्थर की तरह जमा हुआ दही) ।

शाखादिभ्यो यत् 5.3.103

पद.—शाखादिभ्यः 5.3, यत् 1.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में वर्त्तमान शाखा आदि प्रातिपदिकों से यत् होता है ।

उदा.—शाखेव-शाख्यः ।

मुखम् इव-मुख्यः ।

द्रव्यं च भव्ये 5.3.104

पद.—द्रव्यम् 1.1, च-अव्य०, भव्ये 7.1

अनु.—यत् ।

अर्थ—भव्य अर्थ में 'द्रव्य' शब्द का निपातन किया जाता है ।

भव्य = पात्रता ।

उदा.—द्रु यत्-द्रव्यः (राजपुत्रः) ।

कुशाग्राच्छः 5.3.105

पद.—कुशाग्रात् 5.1, छः 1.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में वर्त्तमान कुशाग्र शब्द से छप्रत्यय होता है ।

उदा.—कुशाग्रम् इव-कुशाग्र छ-कुशाग्रीय टाप् सु-कुशाग्रीया (बुद्धिः) ।

समासाच्च तद्विषयात् 5.3.106

पद.—समासात् 5.1, च-अव्य०, तद्विषयात् 5.1

अनु.—इवे, छः ।

अर्थ—इवार्थ विषय वाले समास में वर्त्तमान प्रातिपदिक से छ होता है ।

उदा.—काकगमनम् इव तालपतनम् इव-काकतालम् । अब काकताल शब्द से 'छ' हुआ । काकताल छ सु-काक-तालीयम् ।

शर्करादिभ्योऽण् 5.3.107

पद.—शर्करादिभ्यः 5.3, अण् 1.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में शर्करा आदि प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होता है ।

उदा.—शर्करा इव-शर्करा अण्-शार्कर सु-शार्करम् ।

अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् 5.3.108

पद.—अङ्गुल्यादिभ्यः 5.3, ठक् 1.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में अंगुलि आदि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है ।

उदा.—अंगुली इव-अंगुलिकः ।

एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम् 5.3.109

पद.—एकशालयाः 5.1, ठच् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में वर्त्तमान एकशाला प्रातिपदिक से विकल्प से ठच् प्रत्यय होता है ।

पक्ष में ठक् होता है ।

उदा.—एक शाला ठच्-एकशालिकः ।
एक शाला ठक्-ऐकशालिकः ।

कर्कलोहितादीकक् 5.3.110

पद.—कर्कलोहितात् 5.1, ईकक् 1.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में वर्त्तमान कर्क तथा लोहित प्रातिपदिकों से ईकक् प्रत्यय होता है ।

ईकक् के अन्त्य वर्ण (क्) की इत्संज्ञा है ।

उदा.—कर्क ईकक्-कार्कीकः ।
लोहित ईकक्-लौहितीकः ।

प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि 5.3.111

पद.—प्रत्नपूर्वविश्वेमात् 5.1, थाल् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—इवे ।

अर्थ—'इव' अर्थ में वर्त्तमान प्रत्न, पूर्व, विश्व तथा इम प्रातिपदिकों से थाल् होता है, वेद के विषय में ।

उदा.—प्रत्न इव-प्रत्न थाल्-प्रत्न था सु-प्रत्नथा ।
पूर्वथा ।
विश्वथा ।
इमथा (ऋ०5.44.1) ।

पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात् 5.3.112

पद.—पूगात् 5.1, ञ्यः 1.1, अग्रामणीपूर्वात् 5.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—'ग्रामणी' शब्द नहीं है पूर्वपद जिसका, ऐसे पूगवाची प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय होता है । ञ्य के ञकार की 'चुटू' से इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—शिबि ञ्यं-शैब्यः ।
शैब्यः, शैब्यौ, शिबयः ।

जस् में प्रत्यय का लुक् होता है ।

जहाँ पूग का ग्रामणी वाचक पूर्व अवयव होगा, वहाँ 'ञ्य' नहीं होता है—

देवदत्त कन् (स एषां ग्रामणीः)-देवदत्तकः ।

व्रातच्फञोरस्त्रियाम् 5.3.113

पद.—व्रातच्फञोः 6.2, अस्त्रियाम् 7.1

अनु.—ञ्यः ।

अर्थ—व्रातवाची और च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है, स्त्रीलिंग के विषय को छोड़कर ।

शस्त्रोपजीवियों के संघ को 'व्रात' कहते हैं ।

उदा.—(1) कपोतपाक ञ्य-कापोतपाक्यः ।
(2) कौञ्जायन ञ्य-कौञ्जायन्यः ।

कौञ्जायन च्फञ् प्रत्ययान्त शब्द है ।

विशेष—स्त्रीलिंग के विषय में 'ञ्य' नहीं होता है—

कपोतपाकी-यहाँ 'ञ्य' नहीं हुआ ।

आयुधजीविसङ्घाञ्ज्यड्वाहीकेष्वब्राह्मण-राजन्यात् 5.3.114

पद.—आयुध .... संघात् 5.1, ञ्यट् 1.1, वाहीकेषु 7.1, अब्राह्मणराजन्यात् 5.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—बाहीक देश विशेष में शस्त्रोपजीवी पुरुषों के संघ वाची प्रातिपदिक से ञ्यट् प्रत्यय होता है, ब्राह्मण और राजन्य शब्दों को छोड़कर ।

उदा.—कोण्डीबृस ञ्यट्-कौण्डीबृस्यः ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. **आयुधजीवी** पुरुषों के संघवाची प्रातिपदिक से ही ञ्यट् होता है—

मल्लाः–यह आयुधजीवियों का संघ नहीं है। अतः ञ्यट् न हुआ।

2. **संघवाची** से ही ञ्यट् होता है—

सम्राट्–यह आयुधजीवी है, परन्तु संघवाची नहीं है। अतः ञ्यट् न हुआ।

3. **बाहीक देशविशेष** में शस्त्रोपजीवी संघवाची से ञ्यट् होता है—

शाबराः–यहाँ प्रत्यय न हुआ।

4. **ब्राह्मण व राजन्य** से ञ्यट् नहीं होता है—

गोपालका ब्राह्मणाः।

शालङ्कायना राजन्याः।

वृकाट् टेण्यण् 5.3.115

पद.—वृकात् 5.1, टेण्यण् 1.1

अनु.—आयुधजीविसंघात्।

अर्थ—शस्त्रोपजीवियों के संघवाची वृक प्रातिपदिक से स्वार्थ में टेण्यण् प्रत्यय होता है। टेण्यण् के अन्त्य णकार तथा आद्य टकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—वृक टेण्यण्–वृक एण्य–वार्केण्य सु–वार्केण्यः।

दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः 5.3.116

पद.—दामन्या .... षष्ठात् 5.1, छः 1.1

अनु.—आयुधजीविसंघात्।

अर्थ—शस्त्रोपजीवियों के संघवाची दामन्यादिगण पठित तथा त्रिगर्त्तषष्ठ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में छ प्रत्यय होता है।

उदा.—दामन् छ–दामनीयः (सु)।

दाण्डक छ–दाण्डकीयः (सु)।

पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ 5.3.117

पद.—पर्श्वादि ... भ्याम् 5.2, अणञौ 1.2

अनु.—आयुधजीविसंघात्।

अर्थ—शस्त्रोपजीवि संघवाची पर्श्वादि तथा यौधेयादि गण-पठित शब्दों से स्वार्थ में यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा.—पर्शु अण्–पार्शु अ–पार्शो अ–पार्शव सु–पार्शवः।

योधेय अञ्–यौधेयः।

अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णा-वच्छ्रुमदणो यञ् 5.3.118

पद.—अभिजित् ... मदणः 5.1, यञ् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—अभिजित्, विदभृत्, शालावत्, शिखावत्, शमी-वत्, ऊर्णावत् तथा श्रूमत् शब्दों से विहित अण् प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में यञ् होता है।

उदा.—अभिजितोऽपत्यम्–आभिजितः।

आभिजित–यञ्–आभिजित्यः।

इसी प्रकार–वैदभृत्यः, शालावत्यः, शैखावत्यः, शामी-वत्यः, औणावत्यः, श्रौमत्यः।

सर्वत्र 'तस्याऽपत्यम्' से अण् होकर प्रकृत सूत्र से यञ् हुआ है।

विशेष—यहाँ गोत्रार्थ में विहित अण् का ग्रहण होता है। अतः आभिजितः मुहूर्त्तः यहाँ यञ् नहीं होता है।

ञ्यादयस्तद्राजाः 5.3.119

पद.—ञ्यादयः 1.3, तद्राजाः 1.3

अर्थ—'ञ्य' आदि प्रत्ययों की तद्राज संज्ञा होती है। अर्थात् 'पूगाञ्ञ्योऽग्रामणी०' (पा० 5.3.112) से विहित 'ञ्य' से लेकर पादसमाप्ति पर्यन्त सभी विहित प्रत्ययों की तद्राज संज्ञा होती है।

तद्राज संज्ञा का फल जस् में प्रत्यय का लुक् करना है (द्र० तद्राजस्य बहुषु०)।

उदाहरण पीछे देखे जा सकते हैं।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां पञ्चमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमाध्यायस्य

चतुर्थः पादः

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च 5.4.1

पद.—पादशतस्य 6.1, संख्यादेः 6.1, वीप्सायाम् 7.1, वुन् 1.1, लोपः 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—तद्धिताः ङ्याप् प्रातिपदिकात् प्रत्ययः परश्च इति चत्वारोऽधिकारा आ पादपरिसमाप्तेः । विस्तारभिया प्रतिसूत्रम् अग्रे न प्रदर्शिताः ।

अर्थ—वीप्सा गम्यमान हो तो संख्या है आदि में जिसके ऐसे पाद व शत अन्त वाले प्रातिपदिक से वुन् प्रत्यय होता है तथा पाद व शत शब्दों का लोप भी होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के बल पर पाद व शत के अन्त्य वर्ण का लोप होता है ।

उदा.—द्वौ पादौ ददाति–द्विपाद (तद्धितार्थोत्तरपद.) वुन्–द्विपाद् अक (पादः पत्)–द्विपद् अक टाप्–द्विपदिका (प्रत्ययस्थात् कात्०) सु–द्विपदिका ।

द्वे द्वे शते ददाति–द्विशत वुन्–द्विशत् अक टाप् सु–द्विशतिका ।

विशेष—1. पाद और शत अन्त वाले प्रातिपदिक से वुन् होता है—

द्वौ द्वौ माषौ ददाति–यहाँ प्रत्यय न हुआ आदि में संख्या हो तो वुन् होता है—

पादं पादं ददाति–यहाँ पाद शब्द है, परन्तु आदि में संख्या शब्द नहीं है । अतः वुन् न हुआ ।

3. वीप्सा गम्यमान हो तो वुन् होता है—

द्वौ पादौ ददाति–उत्तर में 'पाद' शब्द है तथा आदि में संख्या शब्द है, परन्तु वीप्सा न होने से वुन् न हुआ ।

4. महाभाष्यकार के अनुसार उत्तर पाद में पाद व शत शब्दों से अतिरिक्त शब्द हों तो भी वुन् देखा जाता है ।[1]—

द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति–द्विमोदकिका ददाति ।

दण्डव्यवसर्गयोश्च 5.4.2

पद.—दण्डव्यवसर्गयोः 7.2, च–अव्य० ।

अनु.—पादशतस्य संख्यादेः वुन् लोपश्च ।

अर्थ—दण्ड तथा दान गम्यमान हो तो पाद व शत शब्दान्त वाले तथा संख्यादि प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय होता है और पाद व शत शब्दों के अन्त का लोप होता है ।

1. द्वौ पादौ दण्डितः–द्वि पाद वुन्–द्वि पाद् अक–द्वि पद् अक टाप् सु–द्विपदिका ।

द्विशतिकां दण्डितः ।

2. द्वौ पादौ व्यवसृजति–द्विपदिकां व्यवसृजति ।

द्विशतिकां दण्डितः ।

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् 5.4.3

पद.—स्थूलादिभ्यः 5.3, प्रकारवचने 7.1, कन् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—प्रकारवचन अर्थ में वर्त्तमान स्थूल आदि प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—स्थूलप्रकारः—स्थूल कन्–स्थूल क सु–स्थूलकः ।

विशेष—चञ्चत् और बृहत् से भी कन् होता है ।[2]—

---

1. महा० 5.4.1 (वा०)—पादशतग्रहणमनर्थकम्, अन्यत्रापि दर्शनात् ।
2. महा० 5.4.3 (वा०)—कन्प्रकरणे चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चञ्चत् प्रकारः—चञ्चत्कः ।

इसी प्रकार—बृहत्कः ।

अनत्यन्तगतौ क्तात् 5.4.4

पद.—अनत्यन्तगतौ 7.1, क्तात् 5.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—यदि निरन्तर सम्बन्ध गम्यमान न हो तो क्त प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है ।

उदा.—भिन्न कन्-भिन्नक सु-भिन्नकः (= बीच-बीच में टूटा हुआ) ।

न सामिवचने 5.4.5

पद.—न-अव्य०, सामिवचने 7.1

अनु.—क्तात्, कन् ।

अर्थ—सामिवाची शब्द के उपपद रहते क्तान्त प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय नहीं होता है ।

सामि = अर्ध ।

उदा.—सामि कृत (पूर्वसूत्र से प्राप्त कन् का निषेध हो गया)-सामिकृत सु-सामिकृतम् ।

इसी प्रकार—नेमकृतम् ।

बृहत्या आच्छादने 5.4.6

पद.—बृहत्याः 5.1, आच्छादने 7.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—आच्छादन अर्थ में वर्त्तमान बृहती प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् होता है ।

उदा.—बृहति कन् टाप्-बृहतिका सु-बृहतिका (= उत्तरीय वस्त्र) ।

विशेष—**आच्छादन** अर्थ में वर्त्तमान 'बृहती' शब्द से ही कन् होता है—बृहती छन्दः ।

अषडक्षाशितङ्ग्वलंकर्मालंपुरुषाऽध्युत्तरपदात् खः 5.4.7

पद.—अषडक्षाशि.... पदात् 5.1, खः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—अषडक्ष, आशितंगु, अलंकर्म, अलम्पुष्प शब्दों से तथा अधि पूर्वक प्रातिपदिक से स्वार्थ में ख प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) षडक्षीणि न विद्यन्ते यस्मिन्-अषडक्ष ख-अषडक्षीण सु-अषडक्षीणः ।

(2) आशिता गावोऽस्मिन्-आशितं गो ख-आशितङ्गवीन सु-आशितङ्गवीनम् ।

(3) अलं कर्मणे-अलं कर्मन् ख-अलङ्कर्मीणः ।

(4) इसी प्रकार-अलम्पुरुषीणः ।

(5) इसी प्रकार-राजाधीनः ।

विभाषाऽञ्चेरदिक्स्त्रियाम् 5.4.8

पद.—विभाषा 1.1, अञ्चेः 5.1, आदिक्स्त्रियाम् 7.1

अनु.—खः, पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—दिग्वाची स्त्रीलिंग शब्द को छोड़कर अञ्चति उत्तर-पद वाले प्रातिपदिक से स्वार्थ में विकल्प से ख प्रत्यय होता है ।

1. प्राञ्च् ख-प्राच् ख-प्राचीन सु-प्राचीनम् ।

   पक्ष में—प्राञ्च् सु-प्राक् ।

2. अर्वाच् ख-अर्वाचीनम् ।

   पक्ष में—अर्वाक् ।

विशेष—1. **दिग्वाची स्त्रीलिंग** शब्द को छोड़कर ही सूत्रोक्त ख प्रत्यय होता है—

प्राची दिक्-यहाँ 'ख' न हुआ ।

2. दिग्वाची शब्द से ही 'ख' होता है—

   प्राचीना ब्राह्मणी ।

3. **स्त्रीवाची** से न हो—

   प्राचीनं दिग् रमणीयम् ।

जात्यन्ताच्छ बन्धुनि 5.4.9

पद.—जात्यन्तात् 5.1, छ-अविभक्तिकरूपम्, बन्धुनि 7.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—द्रव्य अर्थ में वर्त्तमान जात्यन्त (अर्थात् 'जाति' शब्द जिनके अन्त में है) प्रातिपदिक से स्वार्थ में 'छ' प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) ब्राह्मण जाति छ-ब्राह्मणजातीय सु-ब्राह्मण-जातीयः (अर्थात् ब्राह्मणः) ।

(2) इसी प्रकार-क्षत्रियजातीयः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—द्रव्य अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से ही छ प्रत्यय होता है—

ब्राह्मणजातिः शोभना–यहाँ प्रत्यय न हुआ।

स्थानान्ताद् विभाषा सस्थानेनेति चेत् 5.4.10

पद.—स्थानान्तात् 5.1, विभाषा 1.1, सस्थानेन 3.1, इति–अव्य०, चेत्–अव्य०।

अनु.—छः।

अर्थ—यदि तुल्य शब्द के द्वारा प्रातिपदिक अर्थवान् हो तो 'स्थान' शब्द है अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपदिक से विकल्प से छ प्रत्यय होता है।

उदा.—पित्रा तुल्यः–पितृ स्थान छ–पितृस्थानीय सु–पितृस्थानीयः।

पक्ष में—पितृस्थानः।

इसी प्रकार—मातृस्थानीयः, मातृस्थानः।

विशेष—'सस्थान से' इस कथन का प्रयोजन है। कि—गोस्थानम् (=तिष्ठन्ति अस्मिन् तत् स्थानम्) इस दशा में प्रत्यय नहीं होता है।

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे 5.4.11

पद.—किमेत्तिङव्ययघाद् 5.1, आमु–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, अद्रव्यप्रकर्षे 7.1

अनु.—पूर्ववदू अधिकाराः।

अर्थ—किम्, एदन्त, तिङन्त और अव्यय—इन चार से विहित घसंज्ञक प्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में आमु होता है तथा द्रव्य के प्रकर्ष में नहीं होता है।

उकार की इत्संज्ञा होती है। आमु को उदित् करने का प्रयोजन नुट् आगम का निषेध करना है। यदि 'आम्' इस प्रकार आचार्य विधान कर देते तो 'किंतम आम्' इस दशा में आम् को 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् प्राप्त हो जाता है।

यद्यपि उकार का लोप करने पर 'आम्' ऐसा प्रत्यय का स्वरूप होता है, तदपि उदित् करने पर इसे नुट् न होगा। कारण कि 'निरनुबन्धक ग्रहणे न सानुबन्धकस्य' परिभाषा के बल पर इसे नुट् नहीं हो पाता।

उदा.—(1) इदम् एषाम् अतिशयेन किम्–किन्तमाम्। किम् तमप्–किन्तम आमु–किन्तमाम् (यस्येति च)–किन्तमाम् सु–किन्तमाम्।

पक्ष में—किंतमाम् (वा पदान्तस्य)।

(2) अतिशयिते प्राह्णे–प्राह्णेतमाम्।

इसी प्रकार—पूर्वाह्णेतमाम्।

(3) आसाम् इयम् अतिशयेन पचति–पचतितमाम्।

(4) अतिशयेन उच्चैः–उच्चैस्तमाम्। अतितराम् (मे० 15, कुन्द० 5.15)।

विशेष—द्रव्य का प्रकर्ष गम्यमान हो तो सूत्रोक्त आमु प्रत्यय नहीं होता है। यथा—

उच्चैस्तमस्तरुः (=सबसे ऊँचा वृक्ष)—यहाँ द्रव्य का प्रकर्ष गम्यमान है। अतः आम् न हुआ।

अमु च च्छन्दसि 5.4.12

पद.—अमु–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—किमेत् तिङ् अव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे।

अर्थ—वेद के विषय में घसंज्ञक प्रत्ययान्त जो किम्, एदन्त, तिङन्त और अव्यय, इनसे आमु तथा अम् प्रत्यय पर्यायेण होते हैं तथा द्रव्य के प्रकर्ष में नहीं होते हैं।

उदा.—प्रतरं न आयुः (ऋ० 4.12.6)। प्रतरां नय (मा०सं० 17.51)।

अनुगादिनष्ठक् 5.4.13

पद.—अनुगादिनः 5.1, ठक् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—अनुगादिन् प्रातिपदिक से स्वार्थ में ठक् होता है।

अनुगादी एव–अनुगादिन् ठक्–अनुगादिकः।

णचः स्त्रियामञ् 5.4.14

पद.—णचः 5.1, स्त्रियाम् 7.1, अञ् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—णच् प्रत्ययान्त जो प्रातिपदिक, उससे स्वार्थ में स्त्रीलिंग में अञ् प्रत्यय होता है।

अष्टाध्यायी में कर्मव्यतिहारे णच्० (पा० 3.3.43) से णच् का विधान किया गया है। यहाँ इसी का ग्रहण है।

उदा.—व्यावक्रोशी, व्यावहासी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणिनुणः 5.4.15

पद.—अण् 1.1, इनुणः 5.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—इनुण् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में अण् होता है ।

अभिविधौ भाव इनुण् (पा० 3.3.44) से विहित इनुण् प्रत्यय का यहाँ ग्रहण् होता है ।

उदा.—सांराविकम्, सांकूटिनम् ।

विसारिणो मत्स्ये 5.4.16

पद.—विसारिणः 5.1, मत्स्ये 7.1

अनु.—अण् ।

अर्थ—'मत्स्य' अर्थ में वर्त्तमान विसारिन् शब्द से स्वार्थ में अण् होता है ।

उदा.—विसारिन् अण्–वैसारिण् अ सु–वैसारिणो मत्स्यः ।

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् 5.4.17

पद.—सङ्ख्यायाः 5.1, क्रियाभ्यावृत्तिगणने 7.1, कृत्वसुच् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—क्रिया की आवृत्ति अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची प्रातिपदिक से कृत्व सुच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—पञ्च वारान् भुङ्क्ते–पञ्चन् कृत्वसुच्–पञ्चन् कृत्वस्–पञ्चकृत्वस् सु–पञ्चकृत्वः ।

विशेष—संख्यावाची शब्द से ही प्रत्यय होता है—

भूरीन् वारान् भुङ्क्ते ।

यहाँ कृत्वसुच् प्रत्यय नहीं हुआ ।

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् 5.4.18

पद.—द्वित्रिचतुर्भ्यः 5.3, सुच् 1.1

अनु.—संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने ।

अर्थ—क्रिया की आवृत्ति अर्थ में वर्त्तमान द्वि, त्रि तथा चतुर् संख्यावाची प्रातिपदिकों से सुच् प्रत्यय होता है ।

सुच् के उकार तथा चकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—द्विर्भुङ्क्ते, त्रिर्भुङ्क्ते, चतुर्भुङ्क्ते ।

एकस्य सकृच्च 5.4.19

पद.—एकस्य 6.1, सकृत् 1.1 च–अव्य० ।

अनु.—क्रियाभ्यावृत्तिगणने सुच् ।

अर्थ—'एक' शब्द से सुच् प्रत्यय होता है तथा प्रकृति को 'सकृत्' आदेश होता है, क्रियागणन अर्थ में ।

उदा.—एक सुच्–सकृत् सुच्–सकृत् स्–सकृत् (संयोगान्तस्य लोपः)–सकृत् सु–सकृत् ।

विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले 5.4.20

पद.—विभाषा 1.1, बहोः 5.1, धा 1.1, अविप्रकृष्टकाले 7.1

अनु.—संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने ।

अर्थ—आसन्न काल में होने वाली क्रिया की आवृत्ति के गणन अर्थ में वर्त्तमान बहु शब्द से विकल्प से धा प्रत्यय होता है ।

पक्ष में—कृत्वसुच् होता है ।

उदा.—(1) बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते ।
(2) बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते ।

विशेष—विप्रकृष्ट क्रिया की अभ्यावृत्ति के गणन के अर्थ में कृत्वसुच् व सुच् दोनों होते हैं—

मासस्य पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते ।
मासस्य चतुःभुङ्क्ते ।

तत् प्रकृतवचने मयट् 5.4.21

पद.—तद् 1.1, प्रकृतवचने 7.1, मयट् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—सूत्रस्थ 'वचन' शब्द की द्विविध[1] व्युत्पत्ति के आधार पर इस सूत्र का दो प्रकार से अर्थ होता है ।[2]—

क) प्राचुर्य अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय होता है ।

ख) प्राचुर्य अर्थ में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से अधिकरण के अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है ।

---

1. क) 'ल्युट् च' इति वच् धातोर्ल्युट् ।
ख) 'करणाधिकरणयोश्च' इति वच् धातोर् अधिकरणे ल्युट् ।
2. काशि०—5.4.21 द्वयमपि प्रमाणमुभयथा सूत्र प्रणयनात् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मयट् का टकार इत् है । टित् करने का फल स्त्रीत्व में ङीप् करना है ।

उदा.—(क) प्रथम अर्थ के अनुसार—

प्रकृतम् (प्राचुर्येण प्रस्तुतम्) अन्नम्–अन्न मयट्–अन्नमय सु–अन्नमयम् (=अधिकता से विद्यमान अन्न) ।

यहाँ प्राचुर्य विशिष्ट वस्तु का ज्ञान होता है ।

(ख) द्वितीय अर्थ के अनुसार—

प्रकृतम् अन्न यस्मिन्–अन्नमयो यज्ञः ।

(=जिसमें अन्न की बहुतायत हो) । यहाँ अधिकरण अर्थ वाच्य है । प्राचुर्य युक्त वस्तु प्रकृत्यर्थ है तथा उसका अधिकरण प्रत्ययार्थ है । अतः विशेष्य के अनुसार लिंग विभक्ति व वचन होते हैं ।

समूहवच्च बहुषु 5.4.22

पद.—समूहवत्–अव्य०, च–अव्य०, बहुषु 7.3

अनु.—तत्प्रकृतवचने ।

अर्थ—(क) प्रभूत अर्थ में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से समूह अर्थों में विहित प्रत्यय होते हैं तथा मयट् भी होता है ।

(ख) प्रभूत अर्थ में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से अधिकरण अर्थ में समूह अर्थों में विहित प्रत्यय होते हैं तथा मयट् प्रत्यय भी होता है ।

उदा.—(क) मौदकाः प्राचुर्येण प्रस्तुताः—
मोदक ठक्–मौदकिकम् ।
मोदक मयट्–मोदकमयम् ।

(ख) मोदकाः प्राचुर्येण प्रस्तुताः यत्र—
मौदकिकं भोजनम् ।
मोदकमयं भोजनम् ।

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ् ञ्यः 5.4.23

पद.—अनन्तावसथेतिहभेषजात् 5.1, ञ्यः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—अनन्त, आवसथ, इतिह तथा भेषज प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ।

ञ्य के ञकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—अनन्तम् एव–अनन्त ञ्य–अनन्त य–आनन्त य–आनन्त्य सु–आनन्त्यम् ।
आवसथ ञ्य–आवसथ्यम् ।
इतिह ञ्य–ऐतिह्यम् ।
भेषज ञ्य–भैषज्यम् ।

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् 5.4.24

पद.—देवतान्तात् 5.1, तादर्थ्ये 7.1, यत् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—यदि तादर्थ्य वाच्य हो तो देवता है अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—अग्निदेवतायै इदम्–अग्निदेवता यत्–अग्नि देवत्य सु–अग्निदेवत्यम् ।

इसी प्रकार—पितृदेवत्यम् ।

पादार्घाभ्यां च 5.4.25

पद.—पादार्घाभ्याम् 5.2, च–अव्य० ।

अनु.—तादर्थ्ये, यत् ।

अर्थ—तादर्थ्य वाच्य हो तो पाद और अर्घ शब्दों से यत् प्रत्यय होता है ।

उदा.—पादार्थम् उदकम्–पाद यत्–पाद्य सु–पाद्यम् । (भट्टि० 2.26) ।

अर्घार्थम् उदकम्–अर्घ्यम् ।

विशेष—1. आमुष्यायण तथा आमुष्यपुत्रिका शब्द भी होते हैं[1]—

अमुष्य फक् (नडादित्वात् फक्)–आमुष्यायण सु–'आमुष्यायणः' ।

अमुष्यपुत्र वुञ् (मनोज्ञादित्वात्)–आमुष्यपुत्रिक टाप् सु–आमुष्यपुत्रिका ।

2. सम शब्द से आवतु प्रत्यय होता है[2]—

सम आवतु–समावत् ।

3. 'नव' शब्द को 'नू' आदेश तथा त्नप्, तनप् व ख प्रत्यय होते हैं[3]—

---

1. काशि० 5.4.25 (वा०)—आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकेत्युप संख्यानम् ।
2. काशि० 5.4.25 (वा०)—समशब्दादावतु प्रत्ययो वक्तव्यः ।
3. काशि० 5.4.25 (वा०)—नवस्य नू आदेशः त्नप् तनप् खाश्च प्रत्ययाः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव–नू त्नप्–नूत्न सु–नूत्नम् ।
नू तनप्–नूतन सु–नूतनम् ।
नू ख–नवीनम् ।

4. पुराण अर्थ में 'प्र' शब्द से न, त्नप्, तनप् तथा ख प्रत्यय होते हैं[1]—

प्र न–प्रण सु–प्रणम् ।
प्र त्नप्–प्र त्न सु–प्रत्नम् ।
प्र तनप्–प्रतन सु–प्रतनम् ।
प्र ख–प्रीण सु–प्रीणम् ।

5. भाग, रूप तथा नाम शब्दों से स्वार्थ में 'धेय' प्रत्यय होता है ।[2]— भागधेयम् ।
रूपधेयम् ।
नामधेयम् ।

6. वेद के विषय में मित्र शब्द से 'धेय' प्रत्यय होता है ।[3]—

मित्रधेये यतस्व (तै०सं० 4.2.7.2) ।

7. 'अग्नीध्र' और 'साधारण' शब्दों से अञ् होता है ।[4]—

अग्नीध्र अञ्–आग्नीध्रम् । साधारणम् ।

अतिथेर्ञ्यः 5.4.26

पद.—अतिथेः 5.1, ञ्यः 1.1

अनु.—तादर्थ्ये ।

अर्थ—तादर्थ्य वाच्य हो तो 'अतिथि' प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय होता है ।

उदा.—अतिथये इदम्–अतिथि ञ्य–आतिथ्य सु–आतिथ्यम् । द्र० भट्टि० 2.26 ।

देवात् तल् 5.4.27

पद.—देवात् 5.1, तल् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—देव शब्द से तल् प्रत्यय स्वार्थ में होता है । लकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—देव एव–देवता ।

तलन्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं ।

अवेः कः 5.4.28

पद.—अवेः 5.1, कः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—अवि शब्द से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होता है ।

उदा.—अविः एव–अवि क सु–अविकः ।

यावादिभ्यः कन् 5.4.29

पद.—यावादिभ्यः 5.3, कन् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—यावादि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् होता है ।

उदा.—याव एव–याव कन्–यावक सु–यावकः ।

इसी प्रकार–मणिकः ।

लोहितान्मणौ 5.4.30

पद.—लोहितात् 5.1, मणौ 7.1

अनु.—कन् ।

अर्थ—मणि अर्थ में वर्तमान 'लोहित' शब्द से स्वार्थ में कन् होता है ।

उदा.—लोहितो मणिः–लोहित कन्–लोहितक सु–लोहितकः ।

वर्णे चानित्ये 5.4.31

पद.—वर्णे 7.1, च–अव्य०, अनित्ये 7.1

अनु.—लोहितात् कन् ।

अर्थ—अनित्य वर्ण अर्थ में वर्त्तमान लोहित शब्द से स्वार्थ में कन् होता है ।

अनित्य का अर्थ है—क्षणिक या अप्राकृतिक ।

उदा.—कोपेन लोहितः—लोहितकः अर्थात्, क्रोध के कारण लाल वर्ण का । यहाँ लोहित गुण नित्य नहीं है, अपितु क्रोधवशात् क्षणभर के लिए है । अतः अनित्यता गम्यमान है ।

इसी प्रकार–पीडनेन लोहितः–लोहितकः ।

विशेष—1. अनित्य वर्ण अर्थ न हो तो सूत्रोक्त कन् नहीं होता है ।

लोहितो गौः —

1. काशि० 5.4.25 (वा०)—नञ्पुराणे प्रात् ।
2. काशि० 5.4.25 (वा०)—भागरूपनामभ्यो धेय प्रत्ययो वक्तव्यः ।
3. महा० 5.4.25 (वा०)—मित्राच्छन्दसि ।
4. महा० 5.4.25 (वा०)—अग्नीध्रसाधारणादञ् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. लोहित शब्द से विकल्प से लिंग का बाध होता है[1]—

लोहितिका कोपेन–वस्तुतः यहाँ ङीप्, तकार को नकार, कन्, टाप् तथा ह्रस्व (केऽणः) होकर 'लोहिनिका' शब्द बनना चाहिए था। पक्ष में पहले ही कन्, टाप् व इत्व होने के कारण नत्व न हुआ—लोहितिका।

यहाँ लिंगाधिकार में विहित कार्य का बाध हुआ है।

रक्ते 5.4.32

पद.—रक्ते 7.1

अनु.—लोहितात् कन्।

अर्थ—रंगा हुआ—इस अर्थ में वर्त्तमान लोहित शब्द से कन् प्रत्यय होता है।

उदा.—लोहितकः पटः (महाभा० 5.171.14)

कालाच्च 5.4.33

पद.—कालात् 5.1, च–अव्य०।

अनु.—रक्ते कन्। अनित्ये (मण्डूकप्लुतगत्या)।

अर्थ—अनित्य वर्ण में तथा रंगा हुआ—इन अर्थों में वर्त्तमान काल शब्द से कन् होता है।

उदा.—(1) कालकं मुखम् (अर्थात् लज्जावशात् क्षणिक कृष्णवर्ण मुख)–यहाँ कृष्णता अनित्य है। अतः कन् हुआ।

(2) कालकः पटः (अर्थात् कृष्णवर्ण से रंगा हुआ कपड़ा)।

विनयादिभ्यष्ठक् 5.4.34

पद.—विनयादिभ्यः 5.3, ठक् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—विनय आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

उदा.—विनय एव–विनय ठक्–वैनयिकः।
द्र० वैनयिकी (मनु० 7.65)।

इसी प्रकार—सामयिकः।
औपयिकः (रा० 5.21.19, 5.20.8)।

वाचो व्याहृतार्थायाम् 5.4.35

पद.—वाचः 5.1, व्याहृतार्थायाम् 7.1

अनु.—ठक्।

अर्थ—स्पष्ट वाणी–इस अर्थ में वर्त्तमान वाच् शब्द से स्वार्थ में ठक् होता है।

उदा.—वाच् ठक्–वाचिक सु–वाचिकम् (शि० 2.70)।

विशेष–स्पष्ट वाणी–इस अर्थ में वर्त्तमान वाच् शब्द से ही ठक् होता है—

मधुरा वाक् देवदत्तस्य–यहाँ न हुआ।

तद्युक्तात् कर्मणोऽण् 5.4.36

पद.—तद्युक्तात् 5.1, कर्मणः 5.1, अण् 1.1

अनु.—व्याहृतार्थायाम्।

अर्थ—स्पष्टवाणी से युक्त कर्मवाची शब्द से स्वार्थ में अण् होता है।

उदा.—कर्म एव–कर्मन् अण्–कार्मन–कार्मण सु–कार्मणम्।

विशेष—वेद के विषय कुलाल, वरुड, निषाद, कर्मार, चण्डाल, मित्र तथा अमित्र शब्दों से स्वार्थ में अण् होता है[2]—

कुलाल एव–कौलालः (का०सं० 34.1.7, मा० 30.7)।
वरुड एव–वारुडः
निषाद एव–नैषादः (मा०सं० 30.8)।
कर्मार एव–कार्मारः (ऋ० 1.112.2, मा० 30.21)
चण्डाल एव–चाण्डालः (वाज०सं० 30.2.1)
मित्र एव–मैत्रः (वाज० सं० 39.5)
अमित्र एव–आमित्रः (ऋ० 6.28.3)

ओषधेरजातौ 5.4.37

पद.—ओषधेः 5.1, अजातौ 7.1

अनु.—अण्।

अर्थ—जाति से भिन्न अर्थ में वर्त्तमान ओषधि शब्द से स्वार्थ में अण् होता है।

उदा.—ओषधि अण्–औषधि अ–औषध सु–औषधः 'यहाँ ओषधि' शब्द द्रव्य में वर्त्तमान है।

विशेष—'जाति' अर्थ में वर्त्तमान 'ओषधि' शब्द से अण् नहीं होता है—

1. महा० 5.4.30 (वा०)—लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा वक्तव्यम्।

2. महा० 5.4.36 (वा०)—अण्प्रकरणे कुलालवरुडनिषादकर्मारचण्डालमित्रामित्रेभ्यश्छन्दस्युपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधयः क्षेत्रे रूढा भवन्ति–यहाँ अण् न हुआ।

प्रज्ञादिभ्यश्च 5.4.38

पद.—प्रज्ञादिभ्यः 5.3, च–अव्य०।

अनु.—अण्।

अर्थ—प्रज्ञ आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अण् होता है। प्रज्ञादिगण एक आकृतिगण है।

उदा.—प्रज्ञ एव–प्राज्ञः।

इसी प्रकार—देवता एव–दैवतः। कौतूहलम्। त्रिपुष्कर एव–त्रैपुष्करः। स्वार्थ में अण् (मु०चि० 2.49)।

मृदस्तिकन् 5.4.39

पद.—मृदः 5.1, तिकन् 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—मृद् प्रातिपदिक से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय होता है। नकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—मृद् एव–मृद् तिकन्–मृद् तिक–मृत् तिक–मृत्तिक टाप् सु–मृत्तिका।

सस्नौ प्रशंसायाम् 5.4.40

पद.—सस्नौ 1.2, प्रशंसायाम् 7.1

अनु.—मृदः।

अर्थ—प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान मृद् प्रातिपदिक से स तथा स्न प्रत्यय होते हैं। प्रशस्ता मृद् (=उत्तम मिट्टी)।

उदा.—(1) मृद् स–मृत्स टाप् सु–मृत्सा।

(2) मृद् स्न–मृत्स्न टाप् सु–मृत्स्ना।

वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि 5.4.41

पद.—वृकज्येष्ठाभ्याम् 5.2, तिल्तातिलौ 1.2, च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—प्रशंसायाम्।

अर्थ—प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान वृक तथा ज्येष्ठ प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके तिल् तथा तातिल् प्रत्यय होते हैं, वेद के विषय में।

उदा.—प्रशस्तो वृकः–वृक तिल्–वृकति सु–वृकतिः।

प्रशस्तो ज्येष्ठः–ज्येष्ठ तातिल्–ज्येष्ठ तति सु–ज्येष्ठतातिः।

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् 5.4.42

पद.—बह्वल्पार्थात् 5.1, शस् 1.1, कारकात् 5.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः।

अर्थ—बहु अर्थ वाले तथा अल्प अर्थ वाले कारकवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में शस् प्रत्यय विकल्प से होता है। पक्ष में वाक्य ही रहता है। शस् के सकार की प्रयोजनाभाव से इत् संज्ञा नहीं होती है। 'लशक्वतद्धिते' में तद्धित का निषेध होने से शकार की इत्संज्ञा नहीं होती है।

उदा.—(1) बहूनि (धनानि) ददाति–बहु शस्–बहुशस् सु–बहुशः।

'बहु' शब्द बह्वर्थ है तथा कर्म कारक भी है। अतः शस् हुआ।

इसी प्रकार–प्रभूतशः, भूरिशः।

(2) बहुभिः ददाति–यहाँ करण कारक में बह्वर्थक 'बहु' शब्द है। अतः शस् होकर 'बहुशः' बना।

(3) बहुभ्यः ददाति–बहुशः (सम्प्रदान में)।

(4) बहुषु ददाति–बहुशः (अधिकरण में)।

(5) अल्पानि (धनानि) ददाति–अल्पशः।

(6) इसी प्रकार–स्तोकशः, कतिपयशः, भूरिशः।

(7) अन्य कारकों में–स्तोकेभ्यः, स्तोकेषु—स्तोकशः।

विशेष—1. 'कारकात्' का प्रयोजन है कि **कारकाभिधायी** प्रातिपदिक से ही सूत्रोक्त शस् प्रत्यय होता है—

बहूनां स्वामी—यहाँ बह्वर्थक 'बहु' शब्द है, परन्तु षष्ठी विभक्ति को कारक नहीं माना जाता। अतः शस् न हुआ।

इसी प्रकार 'अल्पानां स्वामी' यहाँ शस् न हुआ।

2. 'बह्वल्पार्थात्' का प्रयोजन है कि कारकाभिधायी **बह्वर्थक** व **अल्पार्थक** प्रातिपदिकों से ही शस् प्रत्यय होता है। यथा—

अश्वं ददाति—'अश्व' शब्द 'दा' धातु का कर्म कारक है परन्तु न तो बह्वर्थक है तथा न ही अल्पार्थक है। अतः शस् न हुआ।

3. बह्वर्थक तथा अल्पार्थक शब्दों से उक्त शस् प्रत्यय यथासंख्य करके मंगल व अमंगल गम्य होने पर ही होता है,

बहूनि ददाति श्राद्धेषु–बह्वर्थक 'बहु' शब्द 'दा' धातु का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म है। परन्तु 'श्राद्धेषु' का कथन है। अत; अमंगल का कथन होने से प्रत्यय न हुआ।

इसी प्रकार—अल्पं ददाति आभ्युदयिकेषु–यहाँ प्रत्यय न हुआ।

संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् 5.4.43

पद.—संख्यैकवचनात् 5.1, च–अव्य०, वीप्सायाम् 7.1

अनु.—शस्, अन्यतरस्याम्।

अर्थ—संख्यावाची तथा एकवाची प्रातिपदिक से विकल्प से शस् होता है, वीप्सा द्योत्य हो तो।

उदा.—द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति–द्विशः।

कार्षापणं कार्षापणं ददाति–कार्षापणशः।

विशेष—1. **संख्यावाची** तथा **एकवाची** प्रातिपदिक से ही शस् होता है—

घटं घटं ददाति–यहाँ न हुआ।

2. **'वीप्सा'** अर्थ में ही शस् होता है—

द्वौ ददाति–यहाँ शस् न हुआ।

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः 5.4.44

पद.—प्रतियोगे 7.1, पञ्चम्याः 5.1, तसिः 1.1

अनु.—अन्यतरस्याम्।

अर्थ—(कर्म प्रवचनीय संज्ञक) 'प्रति' शब्द के योग में विहित पंचमी, तदन्त प्रातिपदिक से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है।

'प्रतिः प्रतिनिधि प्रतिदानयोः' (पा० 1.4.91) से 'प्रति' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। 'प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात्' (पा० 2.3.11) से पंचमी विभक्ति का विधान किया गया है।

उदा.—अर्जुनात् प्रति अभिमन्युः—यहाँ 'अर्जुन' शब्द में 'प्रति' के योग में पञ्चमी है। अतः तस् हुआ। अर्जुनतः प्रति अभिमन्युः। पक्ष में वाक्य ही रहा।

विशेष—1. 'आदि' आदि शब्दों से भी तसि होता है।[1]—आदितः, पृष्ठतः, मध्यतः।

तीर्थतः (महाभा० 4.45.18)।

जन्मतः (मनु० 2.155)।

उभयतः (मनु० 1.47) प्रथमा में तसि।

सर्वतः (मनु० 8.107) षष्ठी में तसि।

उपायतः (रा० 3.36.16) सप्तमी में तसि।

पुरुषतः (महाभा० 2.15.21) सप्तमी में तसि।

अपादाने चाहीयरुहोः 5.4.45

पद.—अपादाने 7.1, च–अव्य०, अहीयरुहोः 6.2

अनु.—पञ्चम्याः, तसिः, अन्यतरस्याम्।

अर्थ—अपादान संज्ञक शब्द से विहित पञ्चमी, तदन्त शब्द से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है, यदि वह अपादान कारक हीय तथा रुह सम्बन्धी न हों।

उदा.—(1) ग्रामाद् आगच्छति–ग्रामतः आगच्छति। 'ग्राम' शब्द की अपादान संज्ञा, तसि प्रत्यय हुआ। पक्ष में वाक्य रहा।

(2) चौराद् बिभेति–चौरतो बिभेति।

विशेष—यदि अपादान कारक 'हीय' तथा 'रुह' सम्बन्धी हो तो तसि नहीं होता है—

सार्थाद् हीयते।

पर्वताद् अवरोहति।

अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्त्तरि तृतीयायाः 5.4.46

पद.—अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु 7.3, अकर्त्तरि 7.1, तृतीयायाः 5.1

अर्थ—अतिग्रह, अव्यथन तथा क्षेप–इन अर्थों में विहित तृतीया विभक्ति, तदन्त शब्द से तसि प्रत्यय होता है, यदि वह तृतीया कर्त्ता में न हो।

उदा.—(1) वृत्तेनाऽति गृह्यते–वृत्ततोऽतिगृह्यते। यहाँ तसि हुआ है।

(2) वृत्तेन न व्यथते–वृत्ततो न व्यथते।
अव्यथन विषय में तसि हुआ।

(3) वृत्तेन क्षिप्तः– वृत्ततः क्षिप्तः। निन्दा के विषय में तसि हुआ है।

कर्त्ता में तृतीया हो तो उक्त तसि प्रत्यय नहीं होता है—

विशेष—यदि **कर्त्ता अर्थ** में वर्त्तमान हो तो उक्त तसि प्रत्यय नहीं होता है—

1. महा० 5.4.44 (वा०)—तसिप्रकरणे आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवदत्तेन क्षिप्तः–यहाँ 'देवदत्त' कर्त्ता अर्थ में है । अतः तसि न हुआ ।

हीयमानपापयोगाच्च 5.4.47

पद.—हीयमानपापयोगात् 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—अकर्त्तरि, तृतीयायाः तसिः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—हीयमान तथा पाप शब्दों के साथ जिस शब्द का योग है, उस शब्द से परे विहित तृतीया विभक्ति, तदन्त शब्द से भी विकल्प से तसि प्रत्यय होता है यदि वह तृतीया विभक्ति कर्त्ता में न हो ।

उदा.—(1) वृत्तेन हीयते–वृत्ततो हीयते । यहाँ हीयमान के साथ 'वृत्त' शब्द का योग है । वृत्त से परे तृतीया है जो करण में है । अतः 'वृत्त' से तसि हुआ ।

(2) वृत्तेन पापः–वृत्ततः पापः । पूर्ववत् तसि हुआ ।

षष्ठ्या व्याश्रये 5.4.48

पद.—षष्ठ्याः 5.1, व्याश्रये 7.1

अनु.—तसिः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—व्याश्रय अर्थ में षष्ठी विभक्त्यन्त शब्द से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है ।

भिन्न-भिन्न पक्षों के आश्रयण को व्याश्रय कहते हैं ।

उदा.—देवाः अर्जुनतोऽभवन्—यहाँ 'व्याश्रय' अर्थ गम्यमान है । अतः तसि हुआ ।

विशेष—**'व्याश्रय'** अर्थ में ही उक्त तस् प्रत्यय होता है—

वृक्षस्य शाखा—यहाँ प्रत्यय न हुआ ।

रोगाच्चाऽपनयने 5.4.49

पद.—रोगात् 5.1, च–अव्य०, अपनयने 7.1

अनु.—षष्ठ्याः, तसिः, अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—चिकित्सा गम्यमान हो तो रोगवाची शब्द से विहित षष्ठी विभक्ति, तदन्त शब्द से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है ।

उदा.—कासतः कुरु (=खाँसी का अपनयन करो) । 'कास' रोगवाची शब्द है । 'कासस्य' में षष्ठी हुई । तब तसि प्रत्यय होकर 'कासतः' रूप बना ।

विशेष—**'चिकित्सा' गम्यमान** न हो तो सूत्रोक्त तसि प्रत्यय नहीं होता है—

प्रवाहिकायाः प्रकोपनं कुरु–यहाँ चिकित्सा गम्य न होने से तसि न हुआ ।

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः 5.4.50

पद.—कृभ्वस्तियोगे 7.1, सम्पद्यकर्त्तरि 7.1, च्विः 1.1

अनु.—पूर्ववद् अधिकाराः ।

अर्थ—सम्पद्य धातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में च्वि प्रत्यय विकल्प से होता है, यदि उस प्रातिपदिक का कृ, भू अथवा अस् धातु के साथ योग हो ।

इस सूत्र पर एक वार्तिक प्राप्त होता है—

अभूततद्भावे इति वक्तव्यम् (महा० 5.4.50 वा०) । इसका अभिप्राय है कि प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति 'अभूततद्भाव' अर्थ गम्य होने की दशा में ही होती है । जो वस्तु पहले जिस रूप में न हो तथा पश्चात् वह उस रूप को प्राप्त कर ले तो इसे 'अभूततद्भाव' कहा जाता है । यथा—

अश्वेतः श्वेतः सम्पद्यते तं करोति अर्थात् जो पहले 'श्वेत' न था । पश्चात् 'श्वेत' होता है । अतः अभूत (=जो पहले न था) का तद्भाव गम्य है । यहाँ 'अशुक्ल' प्रकृति है तथा 'शुक्ल' विकृति है ।

वार्तिक के साथ सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है—

विकार को प्राप्त हो रही जो प्रकृति, उसके अर्थ में वर्त्तमान विकारवाची शब्द से परे विकल्प से च्वि प्रत्यय होता है, यदि उस शब्द का कृ, भू अथवा अस् धातु के साथ योग हो ।

पक्ष में वाक्य रहता है ।

च्वि का सर्वापहार लोप होता है । द्र०—चुटू । उपदेशेऽजनुनासिक० । वेरपृक्तस्य ।

उदा.—(1) अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति (अथवा अशुक्लं शुक्लं सम्पद्यमानं करोति)—इस दशा में 'अशुक्ल' प्रकृति तथा 'शुक्ल' विकृति है । 'शुक्ल' शब्द सम्पद्य धातु का कर्त्ता है । अभूततद्भाव गम्य है । 'कृ' के साथ 'शुक्ल' का योग है । अतः च्वि हुआ ।

शुक्ल च्वि–शुक्ल । प्रत्ययलक्षण के द्वारा ईकार आदेश (अस्य च्वौ)—शुक्ली । 'ऊर्यादिच्विडाचश्च' से गतिसंज्ञा, 'प्राग्रीश्वरान्निपाताः' से निपात संज्ञा तथा 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' से अव्यय संज्ञा । शुक्ली सु–शुक्लीकरोति (हितो० 1.183)। ध्यान रहे 'शुक्ली' की गतिसंज्ञा है । अतः धातु से पूर्व ही प्रयुक्त होता है, पश्चात् नहीं (ते प्राग्धातोः) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) अशुक्लं शुक्लं सम्पद्यमानं भवति–शुक्लीभवति ।

(3) अशुक्ल; शुक्लः सम्पद्यमानः स्यात् शुक्लीस्यात् ।

इसी प्रकार—अब्रह्म ब्रह्म सम्पद्यमानं भवति—ब्रह्मीभवति । ब्रह्मन् च्वि–ब्रह्मन् (अन्तवर्तिनी विभक्ति को मानकर पद संज्ञा)–ब्रह्म (न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य) ब्रह्मीभवति (पूर्वात्रासिद्धम् से नलोप असिद्ध हुआ, परन्तु 'न लोपः सुप् स्वरसंज्ञा०' के द्वारा असिद्ध भाव का निषेध हो गया) ।

विशेष—सूत्र की शर्तों के अनुसार—

क) अभूततद्भावे अर्थात् **अभूततद्भाव** गम्य हो तो च्वि प्रत्यय होता है—

शुक्लं करोति–यहाँ 'शुक्ल' का 'कृ' धातु के साथ योग है, परन्तु अभूततद्भाव न होने से च्वि न हुआ ।

ख) **विकारवाची** शब्द से ही च्वि होता है—अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति–यहाँ प्रकृतिवाची (अशुक्ल) शब्द से च्वि नहीं होता है, अपितु विकारवाची (शुक्ल) शब्द से च्वि होता है ।

ग) कृभ्वस्तियोगे—विकारवाची शब्द का **कृ, भू या अस्** धातु के साथ योग होने पर ही च्वि होता है—

अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यमानो जायते—यहाँ अभूततद्भाव गम्य है, परन्तु विकारवाची शब्द का जन् धातु के साथ योग है । अतः च्वि न हुआ ।

सम्पद्यकर्तरि–अर्थात् सम्पद्य धातु के **कर्त्ता** अर्थ में वर्त्तमान विकारवाची प्रातिपदिक से ही च्वि होता है—

अनेकत्र एकत्र सम्पद्यमानं भवति—यहाँ अभूततद्भाव गम्य है तथा विकारवाची (एकत्र) शब्द का 'भू' धातु के साथ योग है, परन्तु 'एकत्र' शब्द सम्पद्य धातु का कर्त्ता न होकर अधिकरण है । अतः च्वि न होगा ।

अन्य प्रयोग—श्रेणीभूताः (मे० 22)। ग्रामीकरोति (स्वप्न० 1.3)। तरलीकरोति (कुन्द० 5.15)। स्वागतीकृत्य (मे० 23)। मिश्रीभूय (कुन्द० 4.6)।

अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च 5.4.51

पद.—अरुर्मनश्चक्षु ... रजसाम् 6.3, लोपः 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—सम्पद्यकर्तरि कृभ्वस्तियोगे च्विः ।

अर्थ—'सम्पद्य' धातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान अरुस्, मनस्, चक्षुस्, चेतस्, रहस् तथा रजस् शब्दों का लोप होता है तथा च्वि प्रत्यय होता है, इन प्रत्ययों का कृ, भू तथा अस् धातुओं के साथ योग हो ।

अलोऽन्त्य० परिभाषा के द्वारा इन प्रातिपदिकों के अन्त्य वर्ण का लोप होता है ।

उदा.—(1) अनरुः अरुः सम्पद्यते तं करोति–अरुस् च्वि–अरु च्वि–अरु कृ–अरुंकरोति, अरूभवति, अरूस्यात् ।

(2) इसी प्रकार–उन्मनस् च्वि कृ–उन्मन च्वि कृ–उन्मन कृ (अस्य च्वौ)–उन्मनीकरोति । उन्मनीभवति, उन्मनीस्यात् ।

(3) उच्चक्षूकरोति, उच्चक्षूभवति, उच्चक्षूस्यात् ।

(4) विचेतस् च्वि कृ–विचेत कृ (अस्य च्वौ)–विचेतीकरोति, विचेतीभवति, विचेतीस्यात् ।

(5) विरहस् च्वि कृ–विरहीकरोति, विरहीभवति, विरहीस्यात् ।

(6) विरजस् च्वि कृ–विरजीकरोति, विरजीभवति, विरजीस्यात् ।

विभाषा साति कार्त्स्न्ये 5.4.52

पद.—विभाषा 1.1, साति–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, कार्त्स्न्ये 7.1

अनु.—कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि ।

अर्थ—सम्पूर्णता गम्य हो तो च्वि के विषय में विकल्प से साति प्रत्यय होता है अर्थात् अभूततद्भाव में कृ, भू तथा अस् धातु का योग होने पर सम्पद्य धातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से विकल्प करके साति प्रत्यय होता है यदि कृत्स्नता गम्य हो ।

पक्ष में—च्वि होता है तथा महाविभाषा के कारण वाक्य भी रहता है ।

साति का इकार इत्संज्ञक है ।

उदा.—(1) (कृत्स्नं) शस्त्रम् अग्निः सम्पद्यते–अग्नि साति भू–अग्निसात् भू–अग्निसाद्भवति । तद्धितश्चासर्व विभक्तिः से 'अग्निसात्' की अव्यय संज्ञा, औत्सर्गिक सु विभक्ति का लोप। आदेशप्रत्यययोः से प्राप्त षत्व का 'सात्पदाद्योः' के द्वारा निषेध हो गया है ।

इसी प्रकार—अग्निसात्करोति ।

द्र०—भस्मसात्कुरुते (गी० 4.37) ।
भस्मसाच्चकार (भट्टि० 14.80) ।

(2) (कृत्स्नं) लवणम् उदकं सम्पद्यते–उदकसाद्भवति (लवणम्) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में—अग्नीभवति (च्वौ च-पा० 7.4.26)।

अभिविधौ सम्पदा च 5.4.53

पद.—अभिविधौ 7.1, सम्पदा 3.1, च-अव्य०।

अनु.—विभाषा साति कृभ्वस्तियोगे

अर्थ—अभिव्याप्ति गम्यमान हो तो कृ, भू, अस् तथा सम् पूर्वक पद् धातु के योग में विकल्प से साति प्रत्यय होता है। पक्ष में च्वि होता है।

उदा.—(1) अग्निसात् सम्पद्यते।
अग्निसाद् भवति।
पक्ष में—अग्नीभवति।

(2) उदकसात् सम्पद्यते।
उदकसाद् भवति।
उदकीभवति।

'कृत्स्न' अर्थ में उदकसाद् भवति अर्थात् सम्पूर्ण नमक पानी के रूप में परिवर्तित हो गया।

अभिविधि अर्थ में उदकसाद् भवति अर्थात् जितना भी नमक है, वह सब जल रूप में परिणत होता है।

तदधीनवचने 5.4.54

पद.—तदधीनवचने 7.1

अनु.—सम्पदा साति कृभ्वस्तियोगे।

अर्थ—कृ, भू, अस् और सम् पूर्वक पद् धातुओं के योग में स्वामिविशेषवाची प्रातिपदिक से उस स्वामिविशेष के अधीन कथन अर्थ में सति प्रत्यय होता है।

उदा.—राजाधीनं करोति-राजसात्करोति।
राजसात्सम्पद्यते।

देये त्रा च 5.4.55

पद.—देये 7.1, त्रा 1.1, च-अव्य०।

अनु.—तदधीनवचने सम्पदा साति कृभ्वस्तियोगे।

अर्थ—देय तदधीनवाची वाच्य हो तो कृ, भू, अस् के योग में तथा सम् पूर्वक पद् धातु के योग में त्रा तथा साति प्रत्यय होते हैं।

जिसके अधीन देय वस्तु की जाती है, उसके वाचक शब्द से प्रत्यय होता है।

उदा.—ब्राह्मणाधीनं देयं करोति-ब्राह्मणत्राकरोति, ब्राह्मणसात्करोति।
ब्राह्मणत्रा सम्पद्यते, ब्राह्मणसात् सम्पद्यते।

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्तेभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् 5.4.56

पद.—देव .... मर्तेभ्यः 5.3, द्वितीयासप्तम्योः 6.2, बहुलम् 1.1

अनु.—त्रा।

अर्थ—द्वितीया तथा सप्तमी विभक्ति है अन्त में जिनके, ऐसे देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु तथा मर्त्य शब्दों से बहुलता से त्रा प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) देवान् गच्छति-देवत्रा गच्छति।
देवेषु वसति-देवत्रा वसति।

(2) मनुष्यान् गच्छति-मनुष्यत्रा गच्छति।
मनुष्येषु वसति-मनुष्यत्रा वसति।

(3) पुरुषान् गच्छति-पुरुषत्रा गच्छति।
पुरुषेषु वसति-पुरुषत्रा वसति।

(4) पुरून् गच्छति-पुरुत्रा गच्छति।
पुरुषु वसति-पुरुत्रा वसति।

(5) मर्त्यान् गच्छति-मर्त्यत्रा गच्छति।
मर्त्येषु वसति-मर्त्यत्रा वसति।

(6) बहुल वचन के कारण अन्यत्र भी सूत्र की प्रवृत्ति देखी जाती है—बहुत्रा जीवतो मनः।

अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् 5.4.57

पद.—अव्यक्तानुकरणात् 5.1, द्व्यजवरार्धात् 5.1, अनितौ 7.1, डाच् 1.1

अनु.—कृभ्वस्तियोगे।

अर्थ—(द्वित्व कर चुकने पर) जिसके आधे भाग में दो या अधिक अच् हों ऐसे अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण रूप प्रातिपदिक से स्वार्थ में डाच् प्रत्यय होता है, यदि कृ, भू या अस् धातु के साथ उसका योग हो, परन्तु 'इति' शब्द के परे होने पर डाच् नहीं होता है। डाच् की विवक्षा होते ही अव्यक्तानुकरण को सर्वप्रथम द्वित्व होता है।

द्र०—डाचि च द्वे बहुलम् (वा०)।

डाच् में चकार डकार की इत्संज्ञा होती है। चकार अनुबन्ध 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' में विशेषण के लिए जोड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। डाच् को डित् करने का प्रयोजन टिलोप है (द्र०–टेः)।

जिसमें अकारादि अर्थ व्यक्त न हों, उसे अव्यक्त कहा जाता है।

यथा—खट खट, पट पट इत्यादि।

संस्कृत में भी पटत्, दमत्, खरटत्, श्रत् आदि अव्यक्त ध्वनियाँ पाई जाती है।

इस प्रकार की अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण को प्रकट करने के लिए डाच् प्रत्यय किया जाता है।

उदा.—पटत् एवं शब्दं करोति—'पटत्' यह अव्यक्त ध्वनि का अनुकरण है। इससे परे 'इति' नहीं है। इसका कृधातु के साथ कर्मत्वेन योग है। अतः डाच् की विवक्षा में प्रत्यय से पूर्व द्वित्व हुआ। पटत् अम् पटत् अम् डाच् करोति (डाचि च द्वे बहुलम् (वा०)। अव्यक्तानुकरणाद् ०)—

कृत्तद्धित समासाश्च से 'पटत् अम् पटत् अम् डाच्' की प्रातिपदिक संज्ञा। पटत् आ–पट प् अटत् आ ('नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्–तकारपकारयोः पररूपम्)–(यचिभम्। टेः)–पट पट् आ–पटपटाकरोति (ऊर्यादि-च्विडाचश्च। ते प्राग्धातोः। स्वरादिनिपातमव्ययम्। अव्ययादाप् सुपः)।

इसी प्रकार—पटपटाभवति, पटपटास्यात्।

विशेष—सूत्र की शर्तों के अनुसार—

क) **अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण प्रातिपदिक** से ही सूत्रोक्त डाच् प्रत्यय होता है—

ईषत्करोति–'ईषत्' व्यक्त ध्वनि है। अतः डाच् न हुआ।

ख) **जिस के आधे भाग में दो या अधिक अच्** हों, ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक से डाच् होता है—

श्रत् करोति—यहाँ 'श्रत्' शब्द अव्यक्त ध्वनि का अनुकरण है, परन्तु इसके आधे भाग में दो अच् नहीं है। अतः डाच् न हुआ।

ग) जिसके आधे भाग में **कम से कम** दो अच् हों, ऐसे प्रातिपदिक से सूत्रोक्त डाच् होता है—

खरटखरटा करोति—यहाँ 'खरटत्' अव्यक्त ध्वनि है, इससे परे 'इति' नहीं है, इसका कृ धातु के साथ योग भी है। आधे अर्ध भाग में **तीन अच्** हैं। अतः डाच् हो गया।

घ) 'इति' शब्द के परे रहते डाच् नहीं होता है—

पटिति करोति—'पटत् इति' इस दशा में अव्यक्त ध्वनि का अनुकरण है, अर्धभाग में दो अच् हैं, इसका 'कृ' के साथ योग है परन्तु इसमें 'इति' शब्द है। अतः डाच् न हुआ। पट् इति–पटिति करोति (अव्यक्तानुकरण स्यात इतौ–पा० 6.1.95)।

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ 5.4.58

पद.—कृञः 6.1, द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् 5.1, कृषौ 7.1

अनु.—डाच्।

अर्थ—द्वितीय, तृतीय, शम्ब और बीज–इन शब्दों से डाच् प्रत्यय होता है, यदि इन शब्दों का 'कृ' धातु के साथ योग हो तथा 'कृषि' अभिधेय हो।

उदा.—द्वितीयाकरोति (=दूसरी बार हल चलाता है)
तृतीयाकरोति।
शम्बाकरोति।
बीजाकरोति।

विशेष—**'कृषि' अभिधेय** होने पर ही सूत्रोक्त डाच् प्रत्यय होता है—

द्वितीयं करोति पदम्–यहाँ 'कृषि' अभिधेय नहीं है। अतः डाच् न हुआ।

संख्यायाश्च गुणान्तायाः 5.4.59

पद.—संख्यायाः 5.1, च–अव्य०, गुणान्तायाः 5.1

अनु.—कृञः कृषौ डाच्।

अर्थ—गुण शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से डाच् प्रत्यय होता है, यदि इस शब्द का कृ धातु के साथ सम्बन्ध हो तथा 'कृषि' अर्थ वाच्य हो।

उदा.—द्विगुण डाच् (करोति)—द्विगुणाकरोति।

विशेष—'कृषि' अर्थ वाच्य न हो तो पूर्वोक्त डाच् प्रत्यय नहीं होता है। यथा—

द्विगुणां करोति रज्जुम्।

समयाच्च यापनायाम् 5.4.60

पद.—समयात् 5.1, च–अव्य०, यापनायाम् 7.1

अनु.—कृञः डाच्।

अर्थ—'व्यतीत करना' गम्यमान हो तो 'समय' प्रातिपदिक से डाच् होता है, कृञ् के योग में।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—समय डाच् (करोति)-समयाकरोति (= समय काटता है)।

विशेष—**'व्यतीत करना'** अर्थ गम्य न हो तो सूत्रोक्त डाच् न होगा—

समयं करोति (= नियम करता है)—यहाँ डाच् न हुआ।

सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने 5.4.61

पद.—सपत्रनिष्पत्रात् 5.1, अतिव्यथने 7.1

अनु.—कृञः डाच्।

अर्थ—'अतिपीडन' गम्य हो तो सपत्र तथा निष्पत्र प्रातिपदिकों से डाच् होता है, यदि इन शब्दों का कृञ् के साथ योग हो।

उदा.—सपत्र डाच्—सपत्राकरोति मृगं व्याधः अर्थात् पत्र सहित बाण को हरिण के शरीर में प्रविष्ट करता है।

निष्पत्रा करोति मृगम् अर्थात् बाण मृग को इतनी तीव्र गति से बींधता है कि पत्र सहित शरीर से आर-पार निकल जाता है।

विशेष—'अतिपीडन' गम्य न हो तो सूत्रोक्त डाच् नहीं होता है—

सपत्रं वृक्षं करोति जलसेचकः। अतः डाच् न हुआ।

निष्कुलान्निष्कोषणे 5.4.62

पद.—निष्कुलात् 5.1, निष्कोषणे 7.1

अनु.—कृञः डाच्।

अर्थ—'निष्कोषण' गम्यमान हो तो निष्कुल शब्द से डाच् होता है, यदि उस शब्द का कृ धातु के साथ योग हो।

अन्दर स्थित अवयवों के बाहर निकालने को 'निष्कोषण' कहा जाता है।

उदा.—पशून् निष्कुला करोति अर्थात् पशुओं को इस प्रकार मारता है कि अन्तड़ियाँ बाहर निकल आती है।

विशेष—**'निष्कोषण'** गम्य न हो तो सूत्रोक्त डाच् नहीं होता है—

निष्कुलान् करोति शत्रून्-यहाँ डाच् न हुआ।

सुखप्रियादानुलोम्ये 5.4.63

पद.—सुखप्रियात् 5.1, आनुलोम्ये 7.1

अनु.—कृञः डाच्।

अर्थ—'अनुकूलता' गम्यमान हो तो सुख तथा प्रिय प्रातिपदिकों से डाच् होता है, यदि इनका कृ धातु के साथ योग हो।

उदा.—सुखाकरोति।
प्रियाकरोति।

विशेष—**'अनुकूलता'** गम्य हो तो सूत्रोक्त डाच् होता है। यथा—

सुखं करोति औषधपानम्-यहाँ 'आनुलोम्य' गम्य नहीं है। अतः डाच् न हुआ।

दुःखात् प्रातिलोम्ये 5.4.64

पद.—दुःखात् 5.1, प्रातिलोम्ये 7.1,

अनु.—कृञः डाच्।

अर्थ—प्रतिकूलता गम्य हो तो दुःख शब्द से डाच् प्रत्यय होता है, यदि 'कृ' का योग हो।

उदा.—दुःखाकरोति।

विशेष—**'प्रतिकूलता'** गम्य होने पर ही सूत्रोक्त डाच् होता है। यथा—

दुःखं करोति कदन्नम्-यहाँ प्रतिकूलता गमय नहीं है। अतः डाच् न हुआ।

शूलात् पाके 5.4.65

पद.—शूलात् 5.1, पाके 7.1

अनु.—कृञः डाच्।

अर्थ—'पाक' विषय हो तो शूल शब्द से डाच् होता है यदि इसका कृ के साथ योग हो।

उदा.—शूलाकरोति (= भाले इत्यादि पर रखकर पकाता है)।

विशेष—'पाक' विषय होने पर ही सूत्रोक्त डाच् प्रत्यय होता है। यथा—

शूलं करोति कदन्नम्-यहाँ 'पाक' गम्य नहीं है। अतः डाच् न हुआ।

सत्यादशपथे 5.4.66

पद.—सत्यात् 5.1, अशपथे 7.1

अनु.—कृञः डाच्।

अर्थ—'शपथ' अर्थ में वर्त्तमान न हो तब सत्य शब्द से डाच् होता है, यदि इसका कृ के साथ योग हो तो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—सत्याकरोति वाणिग् भाण्डम् ।

विशेष—शपथ अर्थ गम्य हो तो सूत्रोक्त डाच् नहीं होता है । यथा—

सत्यं करोति ब्राह्मणः ।

मद्रात् परिवापणे 5.4.67

पद.—मद्रात् 5.1, परिवापणे 7.1

अनु.—कृञः डाच् ।

अर्थ—मुण्डन अर्थ में वर्त्तमान मद्र शब्द से डाच् प्रत्यय होता है, यदि इसका कृ धातु के साथ योग हो ।

उदा.—मद्राकरोति (= शुभ मुण्डन करता है) ।

विशेष—'मुण्डन' अर्थ में ही सूत्रोक्त डाच् प्रत्यय होता है । यथा—

मद्रं करोति–यहाँ नहीं हुआ ।

समासान्ताः 5.4.68

पद.—समासान्ताः 1.3

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है । यहाँ से लेकर पाद की समाप्ति पर्यन्त जो जो प्रत्यय कहे जायेंगे वे सब समासान्त होंगे अर्थात् समास के एकदेश होंगे ।

न पूजनात् 5.4.69

पद.—न–अव्य०, पूजनात् 5.1

अनु.—समासान्ताः ।

अर्थ—पूजनवाची प्रातिपदिक से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं । यहाँ एक इष्टि है—स्वतिभ्यामेव । अतः यह निषेध 'सु' और 'अति' पूजनार्थक निपातों से परे ही प्रवृत्त होता है, अन्य पूजनार्थकों से परे नहीं ।

उदा.—शोभनः राजा–सुराजा समास होकर 'सुराजन्' शब्द बना, जिससे राजाहःसखिभ्यः से प्राप्त टच् का प्रकृत सूत्र के द्वारा निषेध हो गया । स्वती पूजायाम् इस वार्तिक से 'सु' पूजार्थक है ।

अतिशयितः गौः–अतिगौः ।

यहाँ भी गोरतद्धित लुकि से प्राप्त टच् का निषेध हो जाता है ।

विशेष—1. **'पूजनार्थक'** सु तथा अति पूर्वक शब्द से ही समासान्त प्रत्यय का निषेध होता है—ग्राम् अतिक्रान्तोऽति-गवः—यहाँ 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे 'द्वितीयया' (वा०) से पूजन से भिन्न अर्थ में वर्त्तमान 'अति' से समास हुआ । अतः 'गोरतद्धितलुकि' से टच् हो गया । निषेध न हुआ ।

प्रकृत निषेध 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वांगात् षच्' (पा० 5.4.113) सूत्र से पूर्व ही प्रवृत्त होता है ।[1] यथा—

सुशोभने अक्षिणी यस्य सः —

स्वक्षः । बहुव्रीहि समास में षच् हुआ है । यहाँ निषेध नहीं हुआ ।

किमः क्षेपे 5.4.70

पद.—किमः 5.1, क्षेपे 7.1

अनु.—न समासान्ताः ।

अर्थ—निन्दा अर्थ में वर्त्तमान किम् शब्द से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं ।

उदा.—किंराजा ।

किंसखा ।

राजाऽहःसखिभ्यः से प्राप्त टच् न हुआ ।

विशेष—'निन्दा' अर्थ में वर्त्तमान होने पर ही सूत्रोक्त निषेध प्रवृत्त होता है—

कस्य राजा–किंराजः यहाँ 'निन्दा' अर्थ नहीं है । अतः समासान्त प्रत्यय का निषेध न हुआ । 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से टच् हुआ ।

इसी प्रकार–किंसखः, किंगवः ।

नञस्तत्पुरुषात् 5.4.71

पद.—नञः 5.1, तत्पुरुषात् 5.1

अनु.—न समासान्ताः ।

अर्थ—नञ् तत्पुरुष समास से उत्तर जो शब्द तदन्त से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं ।

उदा.—अराजा । असखा । अगौः ।

विशेष—'तत्पुरुष' से ही सूत्रोक्त निषेध होता है । यथा—

अनृचो माणवकः, अधुरं शकटम्–यहाँ निषेध न हुआ ।

अविद्यमाना ऋचो यस्य—यहाँ 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा —' (वा०) से बहुव्रीहि समास, उत्तर पदलोप, नुट् आगम

---

1. महा० 5.4.69 (वा०)—प्राग् बहुव्रीहिग्रहणं च कर्त्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ । अ ऋच्-अनुट् ऋच्-अनृच् अ (ऋक्पूरब्धूः—)—अनृच् अ-अनृचः ।

पथो विभाषा 5.4.72

पद.—पथः 5.1, विभाषा 1.1

अनु.—नञः तत्पुरुषात् न समासान्ताः ।

अर्थ—नञ् से उत्तर जो पथिन् शब्द, तदन्त तत्पुरुष से समासान्त प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

उदा.—न पन्थाः-इस दशा में ऋक्पूरब्धूः से 'अ' प्रत्यय हुआ । अपथिन् अ-अपथ् अ (नस्तद्धिते)-अपथ सु (अपथं नपूंसकम्)-अपथम् ।

पक्ष में—'अ' न हुआ-अपन्थाः ।

बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् 5.4.73

पद.—बहुव्रीहौ 7.1, संख्येये 7.1, डच् 1.1, अबहुगणात् 5.1

अनु.—समासान्ताः ।

अर्थ—संख्येय में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास से समासान्त डच् प्रत्यय होता है यदि उसके अन्त में बहु तथा गण शब्द न हों । डच् को चित् स्वरार्थ किया गया है ।

उदा.—उपदशाः, उपविंशाः, द्वित्राः इत्यादि ।

विशेष—1. **'संख्येय'** में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास से सूत्रोक्त डच् प्रत्यय होता है यथा—

चित्रगुः-यहाँ संख्येय अर्थ में बहुव्रीहि नहीं है । अतः डच् न हुआ ।

2. **अन्त में 'बहु' तथा 'गण' शब्द** हों तो डच् नहीं होता है । यथा—

उपबहवः, उपगणाः यहाँ बहुव्रीहि समास है । संख्येय गम्य है, परन्तु अन्त में बहु तथा गण शब्द है । अतः डच् न हुआ ।

3. 'निस्त्रिंश्' आदि शब्दों के लिए यदि तत्पुरुष के उत्तरपद में संख्या हो तो, तदन्त से भी डच् होता है ।[1]

यथा—निर्गतानि त्रिंशदः-निस्त्रिंशानि अर्थात् तीस वर्ष इसमें बीत चुके हैं । निस् त्रिंशत् डच्-निस्त्रिंश् अ जस्-निस्त्रिंशानि ।

1. महा० 5.4.73 (वा०)—डच् प्रकरणे संख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यं निस्त्रिंशाद्यर्थम् ।

ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे 5.4.74

पद.—ऋक्पूरब्धूःपथाम् 6.3, अ-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, अनक्षे 7.1

अनु.—समासान्ताः ।

अर्थ— ऋच्, पुर्, अप्, धुर् तथा पथिन् शब्द हैं अन्त में जिसके ऐसे समस्त पद से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है, यदि वह धुर् अक्ष सम्बन्धी न हो ।

'अनक्षे' यहाँ सम्बन्ध षष्ठी के अर्थ में व्यत्यय के कारण सप्तमी हुई है । 'अनक्षे' यह निषेध यद्यपि सामान्यतया कहा गया है तथापि 'अक्ष' का सम्बन्ध केवल 'धुर्' के साथ सम्भव है, अन्यों (ऋच् आदि) के साथ नहीं । जिस पर रथ का पहिया घूमता है, उसे अक्ष कहा जाता है ।

उदा.—(1) न ऋचोऽस्य-अनृचः । तस्मान्नुडचि । समासान्त 'अ' ।

बहव ऋचोऽस्य-बहु ऋच् अ-बह्वृच सु-बह्वृचः । 'बह्वृचः' शब्द 'अध्येता' वाच्य होने पर ही होता है । 'अध्येता' वाच्य न होने पर समासान्त नहीं होता है—बहव ऋचो यस्मिन् तद् बह्वृक् सूक्तम्—यहाँ न हुआ ।

इसी 'अनृचः' के विषय में जानना चाहिए । यथा—

अविद्यमाना ऋक् यस्मिन् तद् अनृक्साम ।

द्र०—अनृचबह्वृचावध्येतर्येव (वा०) ।

ऋचोऽर्द्धम्-ऋच् अर्द्ध (अर्धं नपुंसकम् से वैकल्पिक तत्पुरुष)-अर्द्ध ऋच् (पूर्व निपात)-अर्द्धर्च् (आद् गुणः)-अर्द्धर्च् अ (समासान्त 'अ')-अर्द्धर्च (यह तत्पुरुष है । परवल्लिंगं द्वन्द्व—से परवल्लिंगता प्राप्त हुई, परन्तु 'अर्धर्चाः पुंसि च' से बाध होकर पुंस्त्व व नपुंसकत्व दोनों पर्यायेण होकर)—

अर्द्धर्चः, अर्द्धर्चम् ।

समासाभाव पक्ष में—ऋचोऽर्द्धम् ।

(2) विष्णोः पूः—विष्णु पुर् ('षष्ठी' इति समास)-विष्णु पुर् अ (ऋक्पूरब्धूः-इति अः)-तत्पुरुष होने से परवत् लिंगता (स्त्रीलिंग) प्राप्त हुई, परन्तु लोक में ये शब्द नपुंसक में ही प्रयुक्त होते हैं । अतः 'लिंगमशिष्यं लोकाश्रय-त्वाल्लिंगस्य' परिभाषा के आधार पर-विष्णपुर सु-विष्णपुरम् ।

(3) विमला आपो यस्य तद्-विमला आप् (अनेकमन्यपदार्थे । स्त्रियाः पुँवद्भाषित०)—विमल आप् (अकः सवर्णे-)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

-विमलाप् अ (ऋक्पूर ब०)-विमलाप सु (विशेष्या-नुसार लिंग)-विमलापं सरः ।

इसी प्रकार—द्वीपम्, अन्तरीपम्, समीपम् ।

(4) राज्ञो धूः-राजन् धुर् (षष्ठी)—राज धुर् (न लोपः प्राति०)—राजधुर् अ (ऋक्पूर०) परवल्लिंगता के कारण स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् हुआ । सु हुआ । राजधुर आसु-राजधुरा । इसी प्रकार—महती धूः-महाधुरा ।

महती धूः यस्य तद्-महाधुरं शकटम् आन्महतः समानाधिकरण० के द्वारा तकार को आकार आदेश होता है ।

यदि धुर् शब्द का सम्बन्ध 'अक्ष' के साथ होगा तो समासान्त न होगा । यथा—

अक्षस्य धूः-अक्षधूः ।

दृढाधूः यस्य सः-दृढधूः अक्षः । यहाँ स्त्रियाः पुँवद्भाषित० से पुवँद्भाव हुआ है तथा अनेकमन्यपदार्थे से समास हुआ । सूत्र में 'अनक्षे' पद के योग का यही प्रयोजन है ।

(5) जलस्य पन्थाः—जल पथिन् (षष्ठी)—जल पथिन् अ (भसंज्ञा, टिलोप)-जलपथ् अ सु-जलपथः (भस्य टेर्लोपः । परवल्लिंगता के कारण पुंस्त्व) ।

नरपतिपथे (मे० 41) ।

इसी प्रकार—दृशोः पन्थाः—दृक्पथः (नै० 2.73) ।

अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः 5.4.75

पद.—अच् 1.1, प्रत्यन्ववपूर्वात् 5.1, सामलोम्नः 5.1

अनु.—समासान्ताः ।

अर्थ—प्रति, अनु तथा अव हैं पूर्व में जिसके ऐसे सामन् तथा लोमन् प्रातिपदिकों से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—प्रतिगतं साम-प्रतिसामन्-प्रति साम् अ च्-
प्रति साम सु-प्रतिसामम् ।
अनु गतं साम-अनुसामम् ।
अव गतं साम-अवसामम् ।

इसी प्रकार-प्रतिलोमम्, अनुलोमम्, अवलोमम् ।

अक्ष्णोऽदर्शनात् 5.4.76

पद.—अक्ष्णः 5.1, अदर्शनात् 5.1

अनु.—अच् समासासान्ताः ।

अर्थ—यदि 'अक्षि' शब्द चक्षुर्वाची न हो तो अक्षिशब्दान्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—गवाम् अक्षीव-गवाक्षः ।

यहाँ अक्षि 'शब्द नेत्रवाची नहीं है, अपितु नेत्र के सदृश अर्थ में लाक्षणिक है । गो अक्षि ('षष्ठी' इति समासः)-ग् अवङ् अक्षि (अवङ्स्फोटायनस्य)-गव अक्षि (ध्यान रहे वकारोत्तरवर्त्ती अनुनासिक नहीं है । अतः इसकी इत् संज्ञा न हुई—गवाक्षि (अकः सवर्णे दीर्घः)—गवाक्षि अच्-गवाक्षि अ-गवाक्ष् अ (भसंज्ञा । यस्येति च)-गवाक्ष सु (परवल्लिंगं द्वन्द्व का बाध)—गवाक्षः ।

'अदर्शनात्' का प्रयोजन है कि यदि 'अक्षि' शब्द नेत्रवाची होगा तो सूत्रोक्त अच् न होगा—ब्राह्मणस्याक्षि-ब्राह्मणाक्षि यहाँ अच् न हुआ ।

अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः 5.4.77

पद.—अचतुर .... गोष्ठश्वाः 1.3

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—अचतुर, विचतुर, सुचतुर, स्त्रीपुंस, धेन्वनडुह, ऋक्साम, वाङ्मनस, अक्षिभ्रुव, दारगव, ऊर्वष्ठीव, पदष्ठीव, नक्तन्दिव, रात्रिन्दिव, अहर्दिव, सरजस, निश्श्रेयस, पुरुषायुष, द्व्यायुष, त्र्यायुष, ऋग्यजुष, जातोक्ष, महोक्ष, वृद्धोक्ष, उपशुन तथा गोष्ठश्व-ये शब्द अच् प्रत्ययान्त निपातित किये गये हैं ।

उदा.—(1) अविद्यमानानि चत्वारि (कार्षापणानि) यस्य सः-अचतुरः = जिसके पास चार कार्षापण (रुपया) भी नहीं है वह—अचतुर ।

(2) विगतानि चत्वारि (कार्षापणानि) यस्य सः-विचतुरः = इसके चार कार्षापण भी खर्च हो चुके हैं वह-विचतुर ।

(3) शोभनानि चत्वारि (कार्षापणानि) यस्य सः-सुचतुरः = जिसके पास चार कार्षापण बड़े सोहणे हैं वह-सुचतुर ।

(4) स्त्री च पुमांश्च तौ-स्त्रीपुंसौ = स्त्री और पुमान्-स्त्रीपुंस ।

(5) धेनुश्च अनड्वांश्च तौ-धेन्वनडुहौ = धेनु दुधारू गाय और अनड्वान् (बैल)-धेन्वनडुह ।

(6) ऋक् च साम च ते-ऋक् और साम मन्त्र-ऋक्साम ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) वाक् च मनश्च ते–वाङ्मनसे = वाक् (वाणी) और मन (= चित्त) वाङ्मनस ।

(8) अक्षि च भ्रुवौ च–अक्षिभ्रुवम् = अक्षि (= आँख) और भ्रू (सेली)–अक्षिभ्रुव ।

(9) दाराश्च गावश्च–दारगवम् = दारा स्त्री और गौ गाय–दारगव ।

(10) ऊरू च अष्ठीवन्तौ च–ऊर्वष्ठीवम् (यहाँ टिलोप हुआ) = ऊरू जंघा और अष्ठीवान् घुटना—ऊर्वष्ठीव ।

(11) पादौ च अष्ठीवन्तौ च–पदष्ठीवम् (पाद के स्थान पर पद्) = पाद पाँव और अष्ठवान् घुटना—पदष्ठीव ।

(12) नक्तं च दिवं च–नक्तन्दिवम् (निपातनात् समासः) (भट्टि० 4.39) = नक्त रात्रि दिव दिन–नक्तन्दिव ।

(13) रात्रिश्च दिवं च–रात्रिंदिवम् (पूर्व शब्द की मान्तता का निपातन) = रात्रि और दिन ।

(14) अहनि च दिवा च–अहर्दिवम् (यहाँ वीप्सा अर्थ है । 'अव्ययं विभक्ति० के द्वारा साकल्य अर्थ में समास हुआ) = अहः दिन में और दिवा दिन में–अहर्दिव । प्रत्येक दिन ।

(15) रजसां साकल्यम्–सरजसम्, सरजसमभ्यवहरति (अव्ययीभावे चाऽकाले' के द्वारा 'सह' को स आदेश) = रजः धूल को न छोड़कार–सरजस । सरजस धूल सहित खाता–पीता है ।

(16) निश्चिन्तं श्रेयः–निःश्रेयसम् = निश्चित श्रेयः सुख निश्श्रेयस (मोक्ष) ।

(17) पुरुषस्यायुः = पुरुषायुषम् = पुरुष की आयु = पुरुषायुष–सौ वर्ष ।

(18) द्वयोरायुषोः समाहारो द्व्यायुषम् = दो आयुओं का समाहार द्व्यायुष–दो सौ वर्ष ।

(19) त्रयाणामायुषां समाहारः–त्र्यायुषम् = तीन आयुओं का समाहार–त्र्यायुष–तीन सौ वर्ष ।

(20) ऋक् च यजुश्च–ऋग्यजुषम् = ऋक् और यजुष् के मन्त्र–ऋग्यजुष ।

(21) जातश्चासावुक्षा च–जातोक्षः = जात (उत्पन्न उक्षा) बैल–जातोक्ष ।

(22) महांश्चासावुक्षा च महोक्षः = महान् बड़ा उक्षा बैल महोक्ष ।

(23) वृद्धश्चासावुक्षा च–वृद्धोक्षः = वृद्ध बूढ़ा उक्षा बैल = वृद्धोक्ष ।

(24) शुनः समीपम्–उपशुनम् (समीपार्थे समासः) = श्वा (कुत्ते) के समीप–उपशुन ।

(25) गोष्ठे श्वा–गोष्ठश्वः = गोष्ठ गोशाला में रहने वाला श्वा कुत्ता–गोष्ठश्व ।

विशेष—त्रि तथा चतुर् शब्द हैं पूर्व में जिसके ऐसे चतुर् शब्द से अच् समासान्त होता है—

त्रयो वा चतुरो वा–त्रिचतुर् अच्–त्रिचतुर जस्–त्रिचतुराः ।

इसी प्रकार–चतुर्णां समीपे–उपचतुराः ।

ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः 5.4.78

पद.—ब्रह्महस्तिभ्याम् 5.2, वर्चसः 5.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—ब्रह्मन् और हस्तिन् शब्द से उत्तर जो वर्चस् शब्द, तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—ब्राह्मणो वर्चः–ब्रह्मन् वर्चस् अच्–ब्रह्मवर्चस् अ–ब्रह्मवर्चस सु–ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिनो वर्चः–हस्तिवर्चसम् ।

विशेष—पल्य तथा राजन् शब्दों से परे वर्चस् शब्द से भी अच् होता है ।[1]

पल्यवर्चसम् । राजवर्चसम् ।

अवसमन्धेभ्यस्तमसः 5.4.79

पद.—अवसमन्धेभ्यः 5.3, तमसः 5.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—अव, सम् तथा अन्ध शब्दों से पर जो तमस् शब्द, तदन्त समास से समासान्त अच् होता है ।

उदा.—अवहीनं तमः–अव तमस् अच्–अवतमस सु–अवतमसम् ।

सङ्गतं तमः–सन्तमसम् ।
अन्धं तमः–अन्धतमसम् ।

श्वसो वसीयः श्रेयसः 5.4.80

पद.—श्वसः 5.1, वसीयः श्रेयसः 5.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—श्वस् शब्द से उत्तर जो वसीयस् तथा श्रेयस् शब्द, तदन्त समास से अच् समासान्त होता है ।

1. काशि० 5.4.78 (वा०)—पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—श्वो वसीयः-श्वस् वसीयस् अच्-श्वोवसीयस सु-श्वोवसीयसम् ।

इसी प्रकार-श्वःश्रेयसम् ।

'मयूरव्यंसकादयश्च' से समास हुआ ।

अन्ववतप्ताद्रहसः 5.4.81

पद.—अन्ववतप्तात् 5.1, रहसः 5.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—अनु, अव तथा तप्त शब्दों से उत्तर जो रहस् शब्द, तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—अनुगतं रहः-अनु रहस् अच्-अनुरहस सु-अनुरहसम् (कुगतिप्रादयः) ।

अवगतं रहः-अवरहसम् ।

तप्तश्च तद् रहश्च-तप्तरहसम् ।

प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् 5.4.82

पद.—प्रतेः 5.1, उरसः 5.1, सप्तमीस्थात् 5.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—प्रति शब्द से पर सप्तमी अर्थ में वर्त्तमान जो उरस् शब्द, तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—उरसि वर्त्तते-प्रति उरस् अच्-प्रत्युरस सु-प्रत्युरसम् ।

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि० के द्वारा सप्तमी के अर्थ में समास हुआ है ।

विशेष—सप्तमी अर्थ में वर्त्तमान उरस् शब्द से ही सूत्रोक्त अच् होता है—

प्रतिगतम् उरः-प्रत्युरः । यहाँ अच् न हुआ ।

अनुगवमायामे 5.4.83

पद.—अनुगवम् 1.1, आयामे 7.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—अच् प्रत्ययान्त 'अनुगव' शब्द 'आयाम' अर्थ में निपातनसिद्ध है ।

उदा.—'अनुगु' यहाँ 'यस्य आयामः' से समास तथा 'ओर्गुणः' से गुण हुआ है ।

विशेष—'आयाम' अर्थ में ही सूत्रोक्त निपातन होता है—

पश्चाद् गवाम्-अनुगु । यहाँ निपातन न हुआ ।

द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः 5.4.84

पद.—द्विस्तावा 1.1, त्रिस्तावा 1.1, वेदिः 1.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—'वेदि' अभिधेय हो तो द्विस्तावा तथा त्रिस्तावा शब्द अच् प्रत्ययान्त निपातनसिद्ध है ।

उदा.—द्विस्तावा वेदिः ।
त्रिस्तावा वेदिः ।

द्विःतावत्-द्विस् तावत् अच्-द्विस् ताव् अ (टि का लोप)—द्विस्तावा (भस्याढे तद्धिते-पा० 6.3.34 वा०) ।

इसी प्रकार—त्रिस्तावा ।

विशेष—'वेदि' अर्थ न हो तो सूत्रोक्त निपातनकार्य नहीं होता है—

द्विस्तावती ।
त्रिस्तावती ।

उपसर्गादध्वनः 5.4.85

पद.—उपसर्गात् 5.1, अध्वनः 5.1

अनु.—अच् समासान्ताः ।

अर्थ—उपसर्ग से उत्तर जो अध्वन् शब्द, तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

चूँकि अध्वन् शब्द अक्रियावाची है । अतः इससे पूर्व उपसर्ग शब्द का योग नहीं हो सकता । तब सूत्रस्थ 'उपसर्ग' पद के द्वारा प्रादियों का उपलक्षण होता है ।

द्र०—काशि०-5.4.85 (पद०)

उदा.—प्रगतोऽध्वानम्-प्राध्वो रथः (= रथ जो मार्ग पर चल पड़ा) ।

प्र अध्वन् (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे-वा०)
प्र अध्वन् अच् (भ संज्ञा । नस्तद्धिते)-
प्र अध्व् अ-प्राध्व सु-प्राध्वः ।

इसी प्रकार—

अतिक्रान्तो ऽध्वानम्-अत्यध्वो रथः ।
निर्गतोऽध्वनः-निरध्वो रथः ।
सम्प्राप्तोऽध्वानम्-समध्वः ।

द्र०-समध्वाः (भट्टि० 3.45) ।

विशेष—'उपसर्गात्' का प्रयोजन है कि **उपसर्ग** से पर 'अध्वन्' शब्द से ही अच् होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमश्चाऽसौ अध्वा–परमाध्वा यहाँ अध्वन् शब्द प्रादियों से परे नहीं है। अतः अच् न हुआ।

तत्पुरुषस्याऽङ्गुलेः संख्याव्ययादेः 5.4.86

पद.—तत्पुरुषस्य 6.1, अङ्गुलेः 6.1, संख्याव्ययादेः 6.1

अनु.—अच् समासान्ताः।

अर्थ—संख्यावाची शब्द या अव्ययशब्द जिसके आदि में है तथा अंगुलिशब्द जिसके अन्त में है, ऐसे तत्पुरुष संज्ञक शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

उदा.—(1) द्वे अंगुली प्रमाणम् अस्य–यहाँ 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' के द्वारा मात्रच् प्रत्यय की विवक्षा में प्रत्यय से पूर्व तद्धितार्थोत्तरपद. के द्वारा समास हुआ। द्वि अंगुलि (पूर्वनिपात। तत्पुरुषः। संख्यापूर्वो द्विगुः)। सुप् लुक्। यण्। अच् समासान्त। द्व्यंगुल् अच् (यचि भम्। यस्येति च) सु आया। मात्रच् हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा। सुप् का लुक्। द्व्यंगुलमात्रच् (प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्–वा० के द्वारा मात्रच् का लुक्)—द्व्यंगुल सु (विशेष्यानुसार)—द्व्यंगुलम्।

(2) निर्गतम् अंगुलिभ्यः–यहाँ 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे०' से समास, पूर्व निपात, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् लुक्। निर् अंगुलि। निर् अंगुल् अ (अच् भसंज्ञा, यस्येति च)–निरंगुल (प्राप्त परवल्लिंगता का निषेध 'द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्व—' वा० के द्वारा)। निरंगुल सु–निरंगुलम्।

इसी प्रकार—अतिक्रान्तम् अंगुलिम्–अत्यंगुलम्।

विशेष—'तत्पुरुषस्य' का प्रयोजन है कि तत्पुरुष समास से ही अच् होता है—

पञ्च अंगुलयो यस्य सः–पञ्चांगुलिः। यहाँ बहुव्रीहि समास है। अतः अच् न हुआ।

अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः 5.4.87

पद.—अहस्सर्वैक....पुण्यात् 5.1, च–अव्य०, रात्रेः 5.1

अनु.—तत्पुरुषस्य संख्याव्ययादेः अच् समासान्ताः।

अर्थ—अहन्, सर्व, एकदेशवाची, संख्यात और पुण्य—इन शब्दों से उत्तर जो रात्रि शब्द तथा संख्यावाची व अव्यय से उत्तर जो रात्रि शब्द तदन्त तत्पुरुष समास से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ 'अहन्' शब्द का ग्रहण द्वन्द्व समास के लिए है तथा तत्पुरुष के लिए नहीं। 'एकदेश' के द्वारा अवयववाची–पूर्व, पर आदि शब्दों का ग्रहण होता है।

1. अहश्च रात्रिश्चाऽनयोः समाहारः—

'चार्थे द्वन्द्वः' के द्वारा समास, 'अल्पाच्तरम्' से 'अहन्' का पूर्वनिपात, सुप् लुक्–अहन् रात्रि। अहन् रात्रि अच् (भ संज्ञा। यस्येति च)–अहन् रात्र् अ–अह रु रात्र (रूपरात्रिरथ-न्तरेषु रुत्वं वाच्यम्–वा०)–अहर् रात्र (हशि च)–अह उ रात्र (आद् गुणः। प्राप्त परवल्लिंगता का बाध 'स नपुंसकम्' से हुआ। 'रात्राऽह्नाऽहाः पुंसि' से पुंस्त्व)–अहोरात्र सु–अहोरात्रः। 'जातिरप्राणिनाम्' से एकवद्भाव।

2. सर्वा चाऽसौ रात्रिः–'पूर्वकालैकसर्व०' या 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' के द्वारा समास। 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुँवद्भावः' (वा०) के द्वारा पुवंद्भाव। सर्वा रात्रि–सर्वरात्रि। अच्, इकार लोप, परवल्लिंगता का बाध, पुंस्त्व ('रात्रा-ह्नाहाः')–सर्वरात्रः।

3. पूर्वं रात्रेः–पूर्वाऽपराधरोत्तर० से समास। पूर्व रात्रि अच्। पूर्वरात्र् अ–पूर्वरात्र सु (पूर्ववत् पुंस्त्व)–पूर्वरात्रः। इसी प्रकार–अपररात्रः, उत्तररात्रः।

4. संख्याता चाऽसौ रात्रिः–'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' से अथवा 'पूर्वकालैकसर्वजरत्०' से समास। 'पुंवत् कर्मधारय-जातीय–' से पुँवद्भाव। शेष कार्य पूर्ववत्। संख्यातरात्रः।

5. पुण्या चाऽसौ रात्रिः–'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' से समास। 'पुंवत् कर्मधारय०' से पुँवद्भाव। शेष पूर्ववत्। पुण्यरात्रः।

6. द्वयो रात्र्योः समाहारः–तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च–से समास। द्विगु संज्ञा। शेष पूर्ववत्। पुंस्त्व का बाध विशेष है। संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् के द्वारा नपुंसकत्व। द्विरात्रम्। एक रात्रः (भाग० 9.14.39)।

7. रात्रिम् अतिक्रान्तः– 'अत्यादयः क्रान्ता०' से समास। शेष पूर्ववत्। अतिरात्रः।

अह्नोऽह्न एतेभ्यः 5.4.88

पद.—अह्नः 6.1, अह्नः 1.1, एतेभ्यः 5.3

अनु.—तत्पुरुषस्य संख्याव्ययादेः समासान्ताः।

अर्थ—संख्यावाची, अव्यय शब्द, सर्व, एकदेशवाची, संख्यात तथा पुण्य शब्दों से पर तत्पुरुष में वर्त्तमान अहन्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द के स्थान में समासान्त अह्न आदेश होता है ।

यद्यपि अनुवृत्तिवशात् अहन् से पर अहन् शब्द होने पर भी प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति होनी चाहिए परन्तु सामर्थ्यवशात् अहन् शब्द से उत्तर अहन् शब्द नहीं हो सकता ।

उदा.—(1) द्वयोरह्नोर्भवः–'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' से समास । 'तत्र भवः' से अण् । द्विगोर्लुगनपत्ये' से लुक् । द्वि अहन्–द्वि अह्न-द्व्यह्न सु–द्व्यह्नः ।

(2) अहरतिक्रान्तः–अति अहन् (पूर्ववत्)–अत्यह्नः । इसी प्रकार–निरह्नः ।

(3) सर्वं च तद् अहः–सर्वाह्नः ।

(4) पूर्वाह्नः । अपराह्नः ।

(5) संख्याताह्नः ।

(6) पुण्य शब्द से उत्तर 'अहन्' का 'उत्तमैकाभ्यां च' के द्वारा निषेध होता है ।

न संख्यादेः समाहारे 5.4.89

पद.—न–अव्य०, संख्यादेः 6.1, समाहारे 7.1

अनु.—अह्नः अह्नः तत्पुरुषस्य समासान्तः ।

अर्थ—समाहार अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची शब्द है आदि में जिसके ऐसे तत्पुरुष संज्ञक अहन् शब्द के स्थान में समासान्त अह्न आदेश नहीं होता है ।

उदा.—द्वे अहनी समाहृते–द्व्यहः ।

समाहार में वर्त्तमान होने के कारण अह्न आदेश न हुआ ।

विशेष—समाहार अर्थ में ही सूत्रोक्त अह्न आदेश का निषेध होता है—

द्वयोरह्नोर्भवः–द्व्यह्नः यहाँ समाहार नहीं है । अतः अह्न आदेश हो गया ।

उत्तमैकाभ्यां च 5.4.90

पद.—उत्तमैकाभ्याम् 5.2, च–अव्य० ।

अनु.—न तत्पुरुषस्य अह्नः अह्नः समासान्तः ।

अर्थ—उत्तम और एक शब्दों से उत्तर तत्पुरुष समास में वर्त्तमान अहन् शब्द के स्थान पर 'अह्न' आदेश नहीं होता है ।

उदा.—पुण्यम् अहः—यहाँ 'अह्नोऽह्न-एतेभ्यः' से अह्न आदेश प्राप्त था । निषेध हो गया । पुण्याहः ।

इसी प्रकार—एकम् अहः–एकाहः ।

राजाऽहःसखिभ्यष्टच् 5.4.91

पद.—राजाऽहःसखिभ्यः 5.3, टच् 1.1

अनु.—तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—राजन् अहन् व सखि शब्द हैं अन्त में जिसके, ऐसे तत्पुरुष समास से समासान्त टच् होता है ।

टच् के चकार व टकार की इत्संज्ञा होती है ।

टित् करण स्त्रीत्व में ङीप् के लिए है तथा चित् करण स्वरविधान के लिए है ।

उदा.—(1) परमश्चाऽसौ राजा–'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' अथवा 'सन्महत् परमोत्तम०' के द्वारा समास । सुप् लुक् आदि । परमराजन् टच् । यचि भम् । नस्तद्धिते । परमराज सु–परमराजः (परवल्लिंगता) ।

इसी प्रकार–महाराजः ।

(2) परमंश्च तद् अहः–पूर्ववत् कार्य । परम अहन् अ । अह्नष्टखोरेव । नस्तद्धिते । परमाऽह् अ । परवल्लिंगता का बाधकर 'रात्राह्नाहाः —' से पुंस्त्व–परमाहः ।

(3) राज्ञः सखा–'षष्ठी' के द्वारा समास । शेष पूर्ववत् । राजन् सखि अ–राजन् सख् अ–राजसख (न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य) राजसखः (परवल्लिंगता) ।

इसी प्रकार–विबुधसखः (भट्टि० 1.1) । प्रियसखम् (मे०12) । राजराजस्य (मे० 3) ।

परन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में टच् विरहित रूप भी प्राप्त होते हैं—

नागराज्ञा (महाभा० 1.16.13) । काशिराज्ञे (भासनाटक चक्र पृ० 187) । सर्वराज्ञः (वही–पृ० 445) ।

महाराजानम् (यज्ञफलनाटक, पृ० 28) । पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार ये प्रयोग अवश्य ही किसी व्याकरण के अनुसार साधु रहे होंगे (द्र० सं० व्याक० शास्त्र का इति०–भाग प्रथम, पृ० 38) ।

गोरतद्धितलुकि 5.4.92

पद.—गोः 5.1, अतद्धितलुकि 7.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—यदि तद्धित प्रत्यय का लुक् न हुआ हो तो गो शब्दान्त तत्पुरुष समास से पर टच् समासान्त होता है ।

उदा.—(1) पञ्चन् गो धन–पञ्चगो धन–पञ्चगो टच् धन–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चगवधन सु–पञ्चगवधनः । 'पञ्चगो धन' में त्रिपद बहुव्रीहि है। इसमें 'पञ्चगो' यह अवान्तर तत्पुरुष है । इसके अन्त में 'गो' शब्द है तथा किसी तद्धित का लुक् नहीं हुआ है ।

पञ्चगव की 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुसंज्ञा भी है । इससे पर जो सुप् है, उसका 'सुपो धातु—' से लोप हो जाता है ।

(2) परमश्चाऽसौ गौश्च–परमगवः । पूर्ववत् ।

(3) पञ्चगवम्–पूर्ववत् ।

विशेष—'अतद्धितलुकि' पद का प्रयोजन है कि तद्धित-प्रत्यय का **लुक् न होने पर** ही टच् होता है । यथा—

पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः–पञ्चगुः यहाँ 'तेन क्रीतम्' से ठक् हुआ । 'अध्यर्धपूर्वद्विगो०' से लुक् हुआ । तब टच् न हुआ ।

2. 'तद्धितलुकि' का प्रयोजन है कि **तद्धित प्रत्यय का ही** लुक् होने पर टच् नहीं होता है—

राजगवम् इच्छति–राजगवीयति यहाँ सुप् का लुक् हुआ है, तद्धित प्रत्यय का नहीं । अतः प्रतिषेध न हुआ और टच् हो गया ।

3. 'लुकि' का प्रयोजन है कि **तद्धित में ही** निषेध न हो । यथा—

पञ्चभ्यो गोभ्य आगतम्–पञ्चगवमयम् यहाँ तद्धित है, उसका लुक् नहीं है । अतः निषेध नहीं होता है ।

अग्राख्यायामुरसः 5.4.93

पद.—अग्राख्यायाम् 7.1, उरसः 5.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—'प्रधान' आख्या में वर्त्तमान उरस् शब्द, तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

उरस् का अर्थ है—प्रधान ।

उदा.—अश्वानाम् उरः–अश्वोरसम् (= घोड़ों में प्रधान)।

विशेष—'अग्राख्यायाम्' का प्रयोजन है कि **'प्रधान' के अर्थ में वर्त्तमान** उरस् शब्दान्त से ही टच् होता है—

देवस्य उरः–देवोरः यहाँ सामान्य कथन है । अतः टच् न हुआ ।

अनोश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः 5.4.94

पद.—अनोश्मायः सरसाम् 6.3, जातिसंज्ञयोः 7.2

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—जाति तथा संज्ञा के अर्थ में वर्त्तमान अनस्, अश्मन्, अयस् तथा सरस् शब्द हैं अन्त में जिसके, ऐसे तत्पुरुष संज्ञक समास से समासान्त टच् प्रत्यय होता है । 'अनोश्मायः सरसाम्' में पञ्चमी के अर्थ में षष्ठी का प्रयोग है।

उदा.—(1) (जाति के अर्थ में—

(क) उपगतम् अनः–कुगतिप्रादयः । उप अनस् टच् सु–उपानसम् ।

(ख) अमृतश्चावश्मा–विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । अमृत अश्मन् टच्–अमृत अश्म् अ सु (नस्तद्धिते)–अमृताऽश्मः ।

(ग) कालश्च तदयः–कालायसम् (पूर्ववत्) ।

(घ) मण्डूकानां सरः–मण्डूकसरस् टच् सु–मण्डूकसरसम् ('षष्ठी' के द्वारा समास हुआ है) ।

(2) संज्ञा के अर्थ में—

(क) महच्च तदनः—महत् अनस् टच्–महा अनस् अ (सन्महत् परमो० से तकार को आकार महानस सु–महानसम् ।

(ख) पिण्डश्चासावश्मा–पिण्ड अश्मन् टच् सु (विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । टच् । नस्तद्धिते । सु)–पिण्डाश्मः ।

(ग) लोहितं च तदयः–लोहितायसम् ।

(घ) जलस्य सरः–जलसरसम् ।

विशेष—'जातिसंज्ञयोः' का प्रयोजन है कि **जाति तथा संज्ञा** के अर्थ में वर्त्तमान अनस् आदि शब्दों से टच् होता है—

सदनः, सदश्मा, सत्सरः इन प्रयोगों जाति अथवा संज्ञा अर्थ नहीं है । अतः टच् न हुआ ।

ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः 5.4.95

पद.—ग्रामकौटाभ्याम् 5.2, च–अव्य०, तक्ष्णः 5.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—ग्राम तथा कौट शब्दों से उत्तर जो तक्षन् शब्द, तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् होता है ।

उदा.—(1) ग्रामस्य तक्षा–ग्राम तक्षन् टच्–ग्राम तक्ष् अ–ग्रामतक्ष सु–ग्रामतक्षः ।

(2) कुट्यां भवः, कूटे अर्थात् पर्वते भवः —

कौटः । कौटस्य तक्षा—कौटतक्षः । (पूर्ववत्) ।

विशेष—'ग्रामकौटाभ्याम्' का प्रयोजन है कि **ग्राम व**

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौट शब्दों से उत्तर तक्षन् शब्द से समासान्त टच् प्रत्यय होता है —

राज्ञस्तक्षा—राजतक्षा यहाँ राजन् शब्द से उत्तर तक्षन् शब्द है। अतः टच् न हुआ। राजन् तक्षन् सु–राजतक्षा।

अतेः शुनः 5.4.96

पद.—अतेः 5.1, शुनः 5.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः।

अर्थ—अति शब्द से उत्तर जो श्वन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् होता है।

उदा.—अतिक्रान्तः श्वानम्–अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे० से समास हुआ। अति श्वन् टच्–अति श्व् अ सु–अतिश्वः (=कुत्ते से शीघ्र भागने वाला)।

उपमानादप्राणिषु 5.4.97

पद.—उपमानात् 5.1, अप्राणिषु 7.3

अनु.—शुनः टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः।

अर्थ—उपमानवाची श्वन् शब्द जो प्राणिवाची न हो, तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है।

उदा.—आकर्षः श्वा इव–आकर्षश्वः यहाँ 'उपमितं व्याघ्रादिभिः–' के द्वारा समास हुआ। टच् हुआ।

विशेष—1. 'उपमानात्' का प्रयोजन है कि **उपमानवाची** जो श्वन् शब्द तदन्त से टच् होता है—

न श्वा–अश्वा यहाँ श्वन् उपमानवाची नहीं है।

2. 'अप्राणिषु' का प्रयोजन है कि जो श्वन् शब्द **प्राणिवाची** है, तदन्त से टच् नहीं होता है—

वानरः श्वेव–वानरश्वा–यहाँ श्वन् शब्द प्राणिवाची है। अतः टच् न हुआ।

उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः 5.4.98

पद.—उत्तरमृगपूर्वात् 5.1, च–अव्य०, सक्थ्नः 5.1

अनु.—उपमानात् टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः।

अर्थ—उत्तर, मृग, पूर्व व उपमानवाची शब्दों से परे जो सक्थि शब्द, तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् होता है।

उदा.—(1) उत्तरं सक्थ्नः–'पूर्वापर०' से समास। सुप् लुक्। पूर्वनिपात। उत्तर सक्थि टच्। यचि भम्, यस्येति च। उत्तर सक्थ सु–उत्तरसक्थम्।

(2) मृगस्य सक्थि–मृगसक्थम्। टच्, इकार लोप, सु।

(3) पूर्वं सक्थ्नः–पूर्वसक्थम्।

(4) फलकम् इव सक्थि–फलकसक्थः यहाँ 'उपमितं व्याघ्रादिभिः–' से समास हुआ।

नावो द्विगोः 5.4.99

पद.—नावः 5.1, द्विगोः 5.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः।

अर्थ—नौ शब्द है अन्त में जिसके ऐसे द्विगुसंज्ञक तत्पुरुष समास से टच् होता है।

उदा.—(1) द्वे नावौ समाहृते–द्वि नौ टच् सु–द्विनावम्। अन्त में नौ है, द्विगु संज्ञा है। अतः टच् हुआ।

(2) द्विनावधन; यहाँ अवान्तर द्विगु है। द्विनौ टच् धन सु–द्विनावधनः।

विशेष—'द्विगोः' का प्रयोजन है कि **द्विगुसंज्ञक** तत्पुरुष से ही सूत्रोक्त टच् होता है—

राज्ञः नौः–राजनौः। यहाँ षष्ठी तत्पुरुष है। अतः टच् न हुआ।

अर्द्धाच्च 5.4.100

पद.—अर्द्धात् 5.1, च–अव्य०।

अनु.—नावः द्विगोः टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः।

अर्थ—अर्द्ध शब्द से उत्तर जो 'नौ' शब्द, तदन्त द्विगु समास से समासान्त टच् होता है।

उदा.—अर्द्धं नावः–अर्द्धनावम्।

खार्याः प्राचाम् 5.4.101

पद.—खार्याः 5.1, प्राचाम् 6.3

अनु.—द्विगोः; अर्द्धात् टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः।

अर्थ—प्राचीन आचार्यों के मत में खारी शब्दान्त द्विगुसंज्ञक तत्पुरुष से तथा अर्द्ध शब्द से उत्तर खारी शब्द, तदन्त द्विगुसंज्ञक तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है। पक्ष में टच् नहीं होता है।

उदा.—(1) द्वे खार्यौ समाहृते—द्वि खारी टच् सु–द्विखारम्। पक्ष में—द्विखारि।

(2) अर्द्धं खार्याः–अर्द्धखारम्।

पक्ष में—अर्द्धखारी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वित्रिभ्यामञ्जलेः 5.4.102

पद.—द्वित्रिभ्याम् 5.2, अञ्जलेः 5.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—द्वि तथा त्रि शब्द से उत्तर जो अंजलि शब्द, तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् होता है ।

उदा.—(1) द्वे अंजली समाहृते–द्व्यंजलम् 'तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च' से समास ।

(2) तिस्रोऽञ्जलयः समाहृताः—त्र्यञ्जलम् ।

अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि 5.4.103

पद.—अनसन्तात् 5.1, नपुंसकात् 5.1, छन्दसि 7.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—वेद के विषय में नपुँसकलिंग में वर्त्तमान अन् अन्त वाले तथा अस् अन्त वाले तत्पुरुष संज्ञक शब्द से समासान्त टच् होता है ।

उदा.—(1) हस्तिनः चर्म–हस्तिन् चर्मन्–हस्तिन् चर्मन् टच्–हस्तिन् चर्म् टच्–हस्तिचर्म सु–हस्तिचर्मः ।

(2) देवच्छन्दसानि (मै०सं० 3.2.9)

ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् 5.4.104

पद.—ब्रह्मणः 5.1, जानपदाख्यायाम् 7.1

अनु.—टच् तत्पुरुषस्य समासान्ताः ।

अर्थ—जनपद में रहने वाला अर्थ में वर्त्तमान ब्रह्मन् शब्द जिसके अन्त में है, उस तत्पुरुष समास से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा–सुराष्ट्रब्रह्मन् टच्–सुराष्ट्र ब्रह्म् अ सु–सुराष्ट्रब्रह्मः ।

कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् 5.4.105

पद.—कुमहद्भ्याम् 5.2, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—ब्रह्मणः टच् समासान्ताः ।

अर्थ—कु और महत् से परे ब्रह्मन् शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे तत्पुरुष समास से समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) कुत्सितो ब्रह्मा–कुब्रह्मन् (कुगतिप्रादय)–कुब्रह्मन् टच्–कुब्रह्म् अ सु–कुब्रह्मः ।

पक्ष में—टच् नहीं होता है—कुब्रह्मा ।

(2) महाँश्चाऽसौ ब्रह्मा–महाब्रह्मः (सन्महत्–परम० । आन्महतः समानाधिकरण०) । पक्ष में—महाब्रह्मा ।

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे 5.4.106

पद.—द्वन्द्वात् 5.1, चुदषहान्तात् 5.1, समाहारे 7.1

अनु.—टच् समासान्ताः ।

अर्थ—समाहार में वर्त्तमान च वर्गान्त, दकारान्त, (षकारान्त तथा हकारान्त शब्द, तदन्त द्वन्द्व समास से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) (चवर्गान्तात्) वाक् च त्वक् च–वाच् त्वच् टच्–वाक्त्वच सु–वाक्त्वचम् । चार्थे द्वन्द्वः । चोः कुः । स नपुँसकम् । (भट्टि० 4.16)।

श्रीश्च स्रक् च–श्रीस्रजम् ।

(2) (दकारान्तात्)–समिच्च दृषच्च–समिध् दृषद् टच् सु–समिद्दृषदम् । शमीदृषदम् ।

(3) (षकारान्तात्)–वाक् च विप्रुट् च–वाच् विप्रुष् टच्–वाक् विप्रुष सु–वाग्विप्रुषम् । वाक्त्विषम् ।

(4) (हकारान्तात्)–छत्रं चोपानच्च–छत्रोपानहम् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'समाहारे' अर्थात् **समाहार अर्थ** में वर्त्तमान द्वन्द्व से ही सूत्रोक्त टच् होता है—

प्रावृट् च शरच्च–प्रावृट्शरदौ ।

यह समाहार अर्थ में नहीं है, इतरेतर योग द्वन्द्व है । अतः टच् न हुआ ।

2. 'द्वन्द्वात्' अर्थात् समाहार में वर्त्तमान **द्वन्द्व**समास से ही सूत्रोक्त टच् होता है—

पञ्च वाचः समाहृताः–पञ्चवाक् । यहाँ समाहार अर्थ है, परन्तु द्वन्द्व नहीं है । तत्पुरुष समास है । अतः टच् न हुआ ।

3. 'चुदषहान्तात्' अर्थात् **चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त** तथा **हकारान्त** से ही सूत्रोक्त टच् होता है—

दृषच्च समिच्चाऽनयोः समाहारः दृषत्समित्–यहाँ समिध् शब्द धकारान्त है । अतः टच् न हुआ । इसी प्रकार–यकृच्च मेदश्चाऽनयोः समाहारः—यकृन्मेदः । यहाँ मेदस् शब्द सकारान्त है । अतः टच् न हुआ ।

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः 5.4.107

पद.—अव्ययीभावे 7.1, शरत्प्रभृतिभ्यः 5.3

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—टच् समासान्ताः ।

अर्थ—अव्ययीभाव समास में शरद् आदि प्रातिपदिकों से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

शरत् प्रभृति एक गण है ।

उदा.—(1) शरदः समीपम्–अव्य० विभक्तिसमीप० से समास । उप अव्यय । पूर्व निपात । उप शरद् । प्राति० संज्ञा, सुप् लुक् । उपशरद् टच् सु । 'समासान्ताः' के अधिकार में टच् पठित है ।

अतः टजन्त 'उपशरद' भी अव्ययीभाव हुआ । उपशरद सु–उपशरदम् ।

(2) शरदं प्रति–प्रतिशरदम् ।

(3) विपाशं प्रति–प्रतिविपाशम् ।

(4) शरत्प्रभृति गण में एक गणसूत्र प्राप्त होता है—

जराया जरस् च अर्थात् अव्ययीभाव समास में जरा शब्द से समासान्त टच् करने पर जरा के स्थान पर जरस् हो जाता है । अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है । 'जराया जरसन्यतरस्याम्' के द्वारा अजादि विभक्ति परे रहते विकल्प से जरस् आदेश होता है । टच् अजादि तो है परन्तु विभक्ति संज्ञक नहीं है । अतः गणसूत्र के द्वारा नित्य जरस् आदेश कहा गया है । जरायाः समीपम्–उपजरसम् ।

(5) एक अन्य गणसूत्र है—

प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः अर्थात् प्रति, पर, सम् तथा अनु से परे अक्षि शब्द, तदन्त अव्ययीभाव से टच् होता है—

अक्षि अक्षि प्रति–प्रति अक्षि टच् (यस्येति च)–प्रत्यक्षम् ।

अक्ष्णः परम्–परोक्षम् ।

'पथिन्' यह गणसूत्र है । इसका अर्थ है कि प्रति, पर, सम तथा अनु से पथिन् शब्द, तदन्त अव्ययीभाव से टच् होता है—

प्रतिपथम् ।
सम्पथम् ।
अनुपथम् ।

अनश्च 5.4.108

पद.—अनः 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—टच् अव्ययीभावे, समासान्ताः ।

अर्थ—अव्ययीभाव समास में वर्त्तमान अन्नन्त प्रातिपदिक से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) राज्ञः समीपम्–उप राजन् (अव्ययं विभक्ति० पूर्वनिपात, सुप् लुक्)–उप राजन् टच्–(यचि भम् । अल्लोपोऽनः । नस्तद्धिते)–उपराज् अ सु–उपराजम् ।

(2) आत्मनि इति–अधि आत्मन् टच्–अध्यात्म् अ सु–अध्यात्मम् ।

अन्य उदा.—अध्यध्वम् (शि० 12.32) = अध्वनि इति ।

प्रतियुवम् (शि० 12.30) = युवानं प्रति । सराजम् (भट्टि० 2.49) = राज्ञा युगपत् ।

नपुँसकादन्यतरस्याम् 5.4.109

पद.—नपुँसकात् 5.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अनः अव्ययीभावे टच् समासान्ताः ।

अर्थ—अव्ययीभाव समास में वर्त्तमान अन् अन्त वाले नपुँसक शब्द से समासान्त टच् विकल्प से होता है ।

उदा.–(1) चर्मणः समीपम्–उप चर्मन् टच् (अनश्च । नपुँसका-दन्यत०)–उपचर्म् असु–उपचर्मम् । पक्ष में टच् नहीं होता है—उपचर्म ।

(2) अहनि अहनि–प्रत्यहम् ।

पक्ष में—प्रत्यहः (रोऽसुपि) ।

(3) इसी प्रकार—अधिसामम्, अधिसाम; अनुलोमम्, अनुलोम; प्रतिकर्मम्, प्रतिकर्म ।

नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः 5.4.110

पद.—नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः 5.3

अनु.—अव्ययीभावे टच् समासान्ताः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—अव्ययीभाव समास में वर्त्तमान नदी, पौर्णमासी तथा आग्रहायणी शब्द, तदन्त से समासान्त टच् विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) नद्याः समीपम्–उप नदी टच्–उपनद् अ सु–उपनदम् ।

पक्ष में—उप नदी सु–उपनदि । गोस्त्रियोरु० ।

(2) उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि ।

(3) उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि ।

झयः 5.4.111

पद.—झयः 5.1

अनु.—अव्ययीभावे, टच्, समासान्ताः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—झय् वर्ण है अन्त में जिसके ऐसे अव्ययीभाव समास से समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झय् प्रत्याहार में वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण आते हैं।

उदा.—उपसमिधम्।
टच् अभाव—उपसमिद्, उपसमित्।
उपदृषदम्।
उपदृषद्, उपदृषत्।

गिरेश्च सेनकस्य 5.4.112

पद.—गिरेः 5.1, च-अव्य०, सेनकस्य 6.1

अनु.—अन्यतरस्याम् अव्ययीभावे टच् समासान्ताः।

अर्थ—गिरि शब्द है अन्त में जिसके ऐसे अव्ययीभाव समास से समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से होता है।

उदा.—गिरेः समीपम्-उप गिरि टच् सु-उपगिरम्।

पक्ष में—उपगिरि।

गिरिषु इति-अन्तर्गिरम्।

पक्ष में—अन्तर्गिरि।

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् 5.4.113

पद.—बहुव्रीहौ 7.1, सक्थ्यक्ष्णोः 6.2, स्वांगात् 5.1, षच् 1.1

अनु.—समासान्ताः।

अर्थ—जिसके अन्त में स्वांगवाची सक्थि या अक्षि शब्द हो, ऐसे बहुव्रीहि समास से समासान्त षच् होता है।

षच् के षकार (षः प्रत्ययस्य) तथा चकार (हलन्त्यम्) की इत्संज्ञा होती है।

षित्करण का फल स्त्रीत्व में ङीष् करना है। चित्करण स्वरविधान के लिए है।

स्वांगशब्द व्याकरण में एक पारिभाषिक शब्द है। शरीर के अंग को स्वांग कहते हैं।

'सक्थ्यक्ष्णोः' यहाँ पंचमी के अर्थ में षष्ठी या सप्तमी है। द्र०—

सूत्रे तु दुःश्लिष्टविभक्तानि पदानि (काशिका)।

उदा.—दीर्घे सक्थिनी यस्य सः (अनेकमन्यपदार्थे)-दीर्घ सक्थि षच् (यस्येति च)-दीर्घ सक्थ् अ सु-दीर्घसक्थः।

विशाले अक्षिणी यस्य सः-विशालाक्षः।

इसी प्रकार—गौरसक्थः, लोहिताक्षः, जलजाक्षः। काक्षः (भट्टि० 5.24; दूत० 12)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. **बहुव्रीहि समास** से ही सूत्रोक्त षच् प्रत्यय होता है—

परमसक्थिः-यहाँ बहुव्रीहि नहीं है। अतः षच् न हुआ।

2. स्वांगवाची जो **सक्थि** तथा **अक्षि** शब्द, तदन्त से ही सूत्रोक्त षच् होता है—

दीर्घजानुः-यहाँ बहुव्रीहि समास है, स्वांगवाची शब्द (जानु) भी है, परन्तु सक्थि या अक्षि शब्द नहीं है। अतः षच् न हुआ।

3. **स्वांगवाची** शब्द से ही सूत्रोक्त षच् होता है—दीर्घ सक्थि शकटम्-यहाँ बहुव्रीहि है, अन्त में सक्थि शब्द है, परन्तु वह स्वांगवाची नहीं है। अतः षच् न हुआ।

इसी प्रकार—स्थूलाक्षिरिक्षुः में षच् न हुआ।

अङ्गुलेर्दारुणि 5.4.114

पद.—अङ्गुलेः 5.1, दारुणिः 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ षच् समासान्ताः।

अर्थ—यदि 'लकड़ी' अभिधेय हो तो अंगुलि शब्दान्त बहुव्रीहि से षच् समासान्त होता है।

उदा.—द्वे अंगुले प्रमाणम् अस्य-द्व्यंगुलं दारु। यहाँ षच् हुआ।

विशेष—'लकड़ी' वाच्य होने पर ही पूर्वोक्त षच् होता है—पंचांगुलिर्हस्तः यहाँ 'हस्त' वाच्य है। अतः षच् न हुआ।

द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः 5.4.115

पद.—द्वित्रिभ्याम् 5.2, ष-लुप्तविभक्तिकरूपम्, मूर्ध्नः 5.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में द्वि अथवा त्रि शब्दों से परे जो मूर्धन् शब्द उससे परे 'ष' समासान्त होता है।

'ष' के षकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—द्वौ मूर्धानौ यस्य सः-बहुव्रीहि है, द्वि शब्द से उत्तर मूर्धन् शब्द है। अतः 'ष' हुआ। द्वि मूर्धन् ष-द्विमूर्ध् अ सु (नस्तद्धिते)-द्विमूर्धः।

इसी प्रकार-त्रिमूर्धः।

विशेष—द्वि या त्रि शब्द से पर मूर्धन् शब्द से ष होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दश मूर्धानो यस्य सः–दशमूर्धा 'ष' न हुआ ।

द्र०—बहुमूर्ध्नः (भट्टि० 4.41) 'ष' न हुआ ।

अप् पूरणीप्रमाण्योः 5.4.116

पद.—अप् 1.1, पूरणीप्रमाण्योः 6.2

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—पूरणार्थप्रत्ययान्त जो स्त्रीलिंग शब्द तदन्त बहुव्रीहि से तथा प्रमाणी शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् होता है ।

'पूरणी' के द्वारा 'तस्य पूरणे डट्' आदि सूत्रों से पूरण अर्थ में विधीयमान डट् आदि प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्दों का ग्रहण होता है ।

'प्रमाणी' के द्वारा स्वरूप का ग्रहण होता है । अप् के पकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) कल्याणी पंचमी यासां (रात्रीणां) ताः–कल्याणीपञ्चमाः (रात्रयः) अर्थात् जिन रातों में पाँचवीं रात कल्याणप्रदा है, ऐसी रातें । अनेकमन्यपदार्थे से समास, 'स्त्रियाः पुँवद्०' से पुवँद्भाव निषेध, 'यस्येति च' से ईकार लोप । कल्याणी पंचमी अप्–कल्याणी पंचम् अ टाप् जस्–कल्याणीपंचमाः ।

(2) स्त्री प्रमाणी यस्य सः–स्त्रीप्रमाणः पुरुषः अर्थात् स्त्री जिसकी प्रमाण है, ऐसा पुरुष ।

विशेष—1. यहाँ प्रधान पूरणी का ही ग्रहण होता है[1]—

कल्याणी पंचमी अस्मिन् पक्षे सः–कल्याणपंचमीकः पक्षः । यहाँ अप् न हुआ ।

2. नक्षत्र अर्थ में 'नेतृ' से अप् समासान्त होता है ।[2]—

मृगो नेता आसां रात्रीणां ताः–मृगनेत्राः रात्रयः यहाँ अप् हुआ ।

3. वेद में नेतृ से अप् प्रत्यय होता है[3]—

बृहस्पतिनेत्रा (तै०सं० 1.8.20.1) ।

4. जिस पद से वेतनार्थक प्रत्यय किया गया है, ऐसा पद यदि पूर्वपद में हो तो मास शब्द से ठच् होता है[4]—

पंचकः मासः अस्य सः–पंचकमासिकः कर्मकरः ।

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः 5.4.117

पद.—अन्तर्बहिर्भ्याम् 5.2, च–अव्य०, लोम्नः 5.1

अनु.—बहुव्रीहौ अप् समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में अन्तर् तथा बहिस् शब्दों से उत्तर लोमन् शब्द से समासान्त अप् होता है ।

उदा.—(1) अन्तर्गतानि लोमानि यस्य सः–अन्तर्लोमन् अप्–अन्तर्लोम सु–अन्तर्लोमः ।

(2) बहिर्लोमः ।

अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चाऽस्थूलात् 5.4.118

पद.—अच् 1.1, नासिकायाः 6.1, संज्ञायाम् 7.1, नसम् 1.1, च–अव्य०, अस्थूलात् 5.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में बहुव्रीहि समास में स्थूल शब्द को छोड़कर अन्य शब्द से परे नासिका शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय होता है तथा नासिका के स्थान पर 'नस' आदेश होता है । अच् के चकार की इत्संज्ञा है ।

उदा.—द्रुरिव नासिकाऽस्य–द्रुनासिका–द्रुनस अच्–द्रुणस सु (पूर्वपदात्०)–द्रुणसः ।

विशेष—(क) सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. **संज्ञा के विषय** में ही सूत्रोक्त अच् व नस आदेश होता है—

तुंगनासिकः–यहाँ संज्ञा गम्यमान नहीं है । अतः अच् आदि कार्य नहीं हुए ।

2. **स्थूल शब्द** से **अतिरिक्त** शब्द से परे नासिका शब्द से ही सूत्रोक्त कार्य होते हैं—

स्थूलनासिकः—यहाँ स्थूल से परे नासिका शब्द है । अतः अच् न हुआ ।

(ख) खुर व खर शब्दों से परे नासिका शब्द को नस् आदि होता है ।[5]—

खुरम् इव नासिका यस्य सः–खुर नस्–खुर नस् सु–

---

1. महा० 5.4.116 (वा०)—अपि प्रधानपूरणीग्रहणं कर्त्तव्यम् ।
2. महा० 5.4.116 (वा०)—नेतुर्नक्षत्रे उपसंख्यानम् ।
3. महा० 5.4.116 (वा०)—छन्दसि च नेतुरुपसंख्यानम् ।
4. महा० 5.4.116 (वा०)—मासाद् भृतिप्रत्ययपूर्वपदाट्ठज्-विधिः ।
5. काशि० 5.4.118 (वा०)—खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुरणाः । अत्वसन्तस्य चाधातोः । खर इव नासिका यस्य सः–खरणाः ।

(ग) खुर व खर शब्दों से परे नासिका शब्द से पक्ष में अच् समासान्त होता है[1]—

खुरणस् अच् सु–खुरणसः । खरणसः ।

(घ) शितिनस्, अहिनस् तथा अर्चनस् शब्द वेद में साधु कहे गए हैं—

शिति; नासिका यस्य सः–शितिनस् सु–शितिनाः ।
अहिरिव नासिका यस्य सः–अहिनाः ।
अर्चा इव नासिका यस्य सः–अर्चनाः ।

उपसर्गाच्च 5.4.119

पद.—उपसर्गात् 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—अच् नासिकायाः नसम् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उपसर्ग से परे नासिका शब्द से परे समासान्त अच् होता है तथा नासिका शब्द को नस आदेश होता है ।

उदा.—उन्नता नासिक यस्य सः–उद् नस् अच्–उन्नस सु–उन्नसः । (भाग० 10.39.20)।

प्र नासिका–प्रनस् अच्–प्रणस सु–प्रणसः उपसर्गादनोत्परः से णत्व ।

विशेष—'वि' उपसर्ग से परे नासिका को 'ग्र' आदेश होता है[2]—विगता नासिका यस्य सः–विग्रः ।

सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाज-पदप्रोष्ठपदाः 5.4.120

पद.—सुप्रात ..... पदाः 1.3

अनु.—अच् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरश्र, एणीपद, अजपद तथा प्रोष्ठपद–ये अच् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध है ।

उदा.—(1) शोभनं प्रातरस्य–सुप्रातः (अच्, टिलोप) ।
(2) शोभनं श्वोऽस्य–सुश्वः (अच् टिलोप) ।
(3) शोभनं दिवाऽस्य–सुदिवः ।
(4) शारेरिव कुक्षिरस्य–शारिकुक्षः (अच्) ।
(5) चतस्रोऽश्रयो यस्य सः–चतुरश्रः ।
(6) एण्या इव पादौ अस्य सः–एणीपदः ।
(7) अजस्येव पादावस्य–अजपदः ।
(8) प्रोष्ठ इव पादावस्य–प्रोष्ठपदः ।

नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् 5.4.121

पद.—नञ्दुःसुभ्यः 5.3, हलिसक्थ्योः 6.2, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ अच् समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में नञ्, दुस् तथा सु—इनसे परे हलि तथा सक्थि शब्द से परे विकल्प से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) अविद्यमाना हलिरस्य–अ हलि अच्–अहलसु–अहलः ।
पक्ष में—अहलिः ।
(2) दुष्टा हलिः–दुस् हलि अच्–दुर्हल सु–दुर्हलः ।
पक्ष में—दुर्हलिः ।
(3) शोभना हलिः–सुहलः, सुहलिः ।
(4) असक्थः, असक्थिः ।
(5) दुःसक्थः, दुःसक्थिः ।
(6) सुसक्थः, सुसक्थिः ।

नित्यमसिच् प्रजामेधयोः 5.4.122

पद.—नित्यम् 1.1, असिच् 1.1, प्रजामेधयोः 6.2

अनु.—नञ्दुःसुभ्यः बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में नञ्, दुस् तथा सु से परे प्रजा अथवा मेधा शब्द से परे समासान्त असिच् प्रत्यय होता है ।

असिच् के चकार व इकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) अविद्यमानाः प्रजाः अस्य–अ प्रजा असिच्–अ प्रजा अस्–अप्रज् अस् सु–अप्रजाः ।
(2) दुष्प्रजाः ।
(3) सुप्रजाः ।
(4) अविद्यमाना मेधाऽस्य–अमेधाः ।
(5) दुर्मेधाः ।
(6) सुमेधाः ।

---

1. काशि० 5.4.118 पक्षेऽच्प्रत्ययोऽपीष्यते ।
2. काशि० 5.4.119 वेर्ग्रो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुप्रजाश्छन्दसि 5.4.123

पद.—बहुप्रजाः 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ असिच् समासान्ताः ।

अर्थ—वेद के विषय में बहुव्रीहि समास में 'बहुप्रजस्' असिच् प्रत्ययान्त शब्द निपातनसिद्ध है ।

उदा.—बहुप्रजाः (ऋ० 1.164.32) ।

विशेष—वेद के विषय में ही असिच् होता है । लोक में असिच् नहीं होता है—बहुप्रजः ।

धर्मादनिच् केवलात् 5.4.124

पद.—धर्मात् 5.1, अनिच् 1.1, केवलात् 5.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में केवल पूर्वपद से उत्तर धर्मन् शब्द से परे समासान्त अनिच् प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) कल्याणो धर्मोऽस्य-कल्याणधर्मा । अनिच् के इकार व चकार की इत्संज्ञा है । टि का लोप होकर रूप बनता है ।

जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः 5.4.125

पद.—जम्भा 1.1, सुहरिततृणसोमेभ्यः 5.3

अनु.—बहुव्रीहौ, अनिच्, समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में सु, हरित, तृण तथा सोम शब्दों से उत्तर जम्भा शब्द निपातनसिद्ध है ।

जम्भा शब्द जम्भ से अनिच् का निपातन करके सिद्ध होता है ।

जम्भा = भोजन व दाँत ।

उदा.—(1) शोभनो जम्भोऽस्य-सुजम्भा ।
(2) हरितजम्भा ।
(3) तृणजम्भा ।
(4) सोमजम्भा ।

विशेष—सु आदि से उत्तर जो जम्भ शब्द उससे परे अनिच् होता है—

पतितजम्भः-यहाँ सु आदि शब्द पूर्वपद में नहीं हैं । अतः अनिच् न हुआ ।

दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे 5.4.126

पद.—दक्षिणेर्मा 1.1, लुब्धयोगे 7.1

अनु.—अनिच् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में यदि व्याध का सम्बन्ध वाच्य हो तो 'दक्षिणेर्मा' अनिच् प्रत्ययान्त शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—दक्षिणम् ईर्मम् अस्य स-दक्षिण ईम अनिच् दक्षिणेर्म अन् सु-दक्षिणेर्मा । (भट्टि० 4.44)।

विशेष—'लुब्धयोगे' का प्रयोजन है कि **व्याध के साथ सम्बन्ध** गम्यमान हो तो अनिच् प्रत्ययान्त 'दक्षिणेर्मा' शब्द का निपातन होता है—दक्षिणेर्म शकटम् —

यहाँ अनिच् न हुआ ।

इच् कर्मव्यतिहारे 5.4.127

पद.—इच् 1.1, कर्मव्यतिहारे 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—कर्मव्यतिहार वाच्य हो तो बहुव्रीहि समास से इच् समासान्त होता है ।

इच् के चकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्-केश केश इच्-केशा केशि सु-केशाकेशि । तत्र तेनेदमिति सरूपे । अन्येषामपि दृश्यते । प्रकृत सूत्र का 'तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च' में पाठ है । अतः अव्ययीभाव संज्ञा हो गई ।

दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम्-दण्डादण्डि ।

मुसलामुसलि । कचाकचि ।

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च 5.4.128

पद.—द्विदण्ड्यादिभ्यः 5.3, च-अव्य० ।

अनु.—इच् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ द्विदण्डि आदि गण में पठित शब्द इच्-प्रत्ययान्त निपातित हैं ।

उदा.—(1) द्वाभ्यां दण्डाभ्यां प्रहरति-द्विदण्ड इच्-द्विदण्डि सु-द्विदण्डि ।

(2) द्विमुसलि ।

प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः 5.4.129

पद.—प्रसम्भ्याम् 5.2, जानुनोः 6.2, ज्ञुः 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में प्र अथवा सम् से उत्तर जो जानु शब्द उसके स्थान पर 'ज्ञु' आदेश होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—प्रकृष्टे जानुनी यस्य सः-प्र जानु-प्रज्ञु सु-प्रज्ञः ।

सम् ज्ञु सु-सञ्ज्ञुः ।

ऊर्ध्वाद् विभाषा 5.4.130

पद.—ऊर्ध्वात् 5.1, विभाषा 1.1

अनु.—जानुनोः ज्ञुः बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में ऊर्ध्व शब्द से उत्तर जो जानु शब्द उसके स्थान पर ज्ञु आदेश विकल्प से होता है—

उदा.— ऊर्ध्वे जानुनी यस्य सः-ऊर्ध्वज्ञुः ।

पक्ष में—ऊर्ध्वजानुः ।

ऊधसोऽनङ् 5.4.131

पद.—ऊधसः 6.1, अनङ् 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में जो ऊधस् शब्द तदन्त से अनङ् आदेश समासान्त होता है ।

अनङ् के ङकार व अकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) कुण्डम् इव ऊधो यस्याः सा-कुण्ड ऊधस्-कुण्डोधस्-कुण्डोध अनङ् (आद्गुणः । अनङ् । ङिच्च)-कुण्डोधन् (अतो गुणे)-कुण्डोधन् ङीष् (अनो बहुव्रीहेः । ङाबुभाभ्याम् बहुव्रीहेरूध०)-कुण्डोधन् ई (यचि भम् । भस्य । अल्लोपोऽनः)-कुण्डोध्नी सु-कुण्डोध्नी ।

(2) इसी प्रकार घटोध्नी ।

विशेष—ऊधस् का अनङ् आदेश करने में स्त्रीलिंग का ग्रहण होता है[1]—

महोधाः पर्जन्यः तथा घटोधो धैनुकम् यहाँ अनङ् नहीं होता है ।

धनुषश्च 5.4.132

पद.—धनुषः 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—अनङ् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में धनुस् शब्द तदन्त को अनङ् समासान्त आदेश होता है ।

उदा.—(1) शार्ङ्ग धनुर्यस्य सः-शार्ङ्ग धनु अनङ्-शार्ङ्ग धन्वन् सु-शार्ङ्गधन्वा ।

(2) गाण्डीवधन्वा (मे० 51) ।

(3) पुष्पधन्वा ।

(4) अधिज्यधन्वा ।

वा संज्ञायाम् 5.4.133

पद.—वा-अव्य०, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—धनुषः अनङ् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो तो बहुव्रीहि में जो धनुस् शब्द, तदन्त को विकल्प से अनङ् समासान्त आदेश होता है ।

उदा.—शतं धनूंषि यस्य सः-शत धनुस्-शत धन्वन् सु-शतधन्वा ।

पक्ष में—शतधनुः ।

दीप्ताप्तधनुः (भट्टि० 1.24)।

जायाया निङ् 5.4.134

पद.—जायायाः 6.1, निङ् 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ता; ।

अर्थ—बहुव्रीहि में जो जाया शब्द, तदन्त को निङ् समासान्त आदेश होता है । निङ् के ङकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—युवतिर्जाया यस्य सः-युवन् जाय् नि (स्त्रियाँ पुँवद् भाषित० । लोपो व्योर्वलि)-युवन् जानि (न लोपः प्रातिपदिक०)-युवजानि सु-युवजानिः ।

गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः 5.4.135

पद.—गन्धस्य 6.1, इत् 1.1, उत्पूतिसुसुरभिभ्यः 5.3

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उद्, पूति, सु तथा सुरभि शब्दों से उत्तर गन्ध शब्द को इत् समासान्त आदेश होता है ।

तकार मुखसुखार्थ है ।

उदा.—(1) उद् गतो गन्धोऽस्य-उद्गन्ध् इत् सु-उद्गन्धिः।

(2) पूतिगन्धिः ।

(3) सुगन्धिः ।

(4) सुरभिगन्धिः ।

विशेष—उत्पूति० का प्रयोजन है कि उद्, पूति, सु तथा सुरभि शब्दों से उत्तर गन्ध शब्द को इत् आदेश होता है—

तीव्रगन्धो वातः यहाँ इत् समासान्त आदेश न हुआ ।

1. महा० 5.4.131 (वा०)—ऊधसोऽनङि स्त्रीग्रहणं कर्त्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पाख्यायाम् 5.4.136

पद.—अल्पाख्यायाम् 7.1

अनु.—गन्धस्य इत् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—'अल्प' गम्यमान हो तो बहुव्रीहि समास में जो 'गन्ध' शब्द, तदन्त को समासान्त इत् आदेश होता है ।

उदा.—सूपोऽल्पोऽस्मिन् भोजने–सूपगन्धि भोजनम् ।

उपमानाच्च 5.4.137

पद.—उपमानात् 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—गन्धस्य इत् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उपमानवाची शब्द से उत्तर गन्ध शब्द को समासान्त इत् आदेश होता है ।

उदा.—(1) पद्मस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः–पद्मगन्धिः ।
(2) उत्पलगन्धिः ।
(3) करीषगन्धिः ।

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः 5.4.138

पद.—पादस्य 6.1, लोपः 1.1, अहस्त्यादिभ्यः 5.3

अनु.—उपमानात् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में हस्तिन् आदि शब्दों से भिन्न उपमानवाची शब्द से उत्तर पाद शब्द का समासान्त लोप होता है । आदेः परस्य परिभाषा के द्वारा 'पाद' शब्द के पकार का लोप प्राप्त होता है, परन्तु लोप को समासान्त (=समास का अन्तावयव) कहा गया है । अतः अलोन्त्यस्य के द्वारा दकारोत्तरवर्त्ती अकार का लोप होता है ।

लोप को समासान्त कहने का दूसरा फल है कि 'शेषाद् विभाषा' पा० द्वारा पाक्षिक कप् प्रत्यय नहीं होता है । जहाँ दूसरा समासान्त न किया गया हो, वहाँ पर 'शेषाद् विभाषा' की प्रवृत्ति होती है । चूँकि यहाँ लोप रूप समासान्त होता है । अतः कप् न हुआ ।

उदा.–(1) व्याघ्रपादाविव पादौ यस्य सः–व्याघ्रपाद (सप्तम्युपमानपूर्वपदस्यो० वा०) व्याघ्रपाद् सु–व्याघ्रपाद्,–त् ।
(2) सिंहपाद्,–त् ।

विशेष—अहस्त्यादिभ्यः का प्रयोजन है कि **हस्तिन् आदि** शब्द से उत्तर जो पाद शब्द उसे समासान्त लोप नहीं होता है—हस्तिपादाविव पादौ यस्य सः–हस्तिपादः ।

इसी प्रकार–अश्वपादः ।

कुम्भपदीषु च 5.4.139

पद.—कुम्भपदीषु 7.3, च–अव्य० ।

अनु.—बहुव्रीहौ पादस्य लोपः समासान्ताः ।

अर्थ—कुम्भपदी आदि शब्दों में लोप रूप समासान्त का निपातन किया जाता है ।

भाव यह है कि 'कुम्भपदी' आदि शब्दों, जिनमें पाद शब्द का लोप किया गया है, को साधु जानना चाहिए ।

उदा.—कुम्भाविव पादावस्य–कुम्भपाद् ङीप् (पादोऽन्यतरस्याम्)–कुम्भपद् ई (पादः पत्)–कुम्भपदी सु–कुम्भपदी ।

इसी प्रकार–शतपदी ।

संख्यासुपूर्वस्य 5.4.140

पद.—संख्यासुपूर्वस्य 6.1

अनु.—पादस्य लोपः बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में संख्या अथवा सु शब्द हैं पूर्वपद में जिसके, ऐसे पाद शब्द का समासान्त लोप होता है ।

उदा.—द्वौ पादौ यस्य सः–द्विपाद्,–त् ।
शोभनौ पादौ यस्य सः–सुपाद्,–त् । (भट्टि० 4.17)।

वयसि दन्तस्य दतृ 5.4.141

पद.—वयसि 7.1, दन्तस्य 6.1, दतृ-लुप्तप्रथमान्त-निर्देशः ।

अनु.—संख्या सुपूर्वस्य बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—अवस्था गम्यमान हो तो बहुव्रीहि समास में संख्या या सु शब्द है पूर्व में जिसके ऐसे दन्त शब्द को समासान्त दतृ आदेश होता है ।

दतृ के ऋकार की इत्संज्ञा होने से यह उगित् है । तब उगिदचां सर्व० के द्वारा नुम् हो जायेगा ।

उदा.—द्वौ दन्तावस्य–द्विदन्त–द्वि दतृ–द्वि दत्–द्विदनुम् त्–द्विदन्त् सु–द्विदन्त्–द्विदन् (संयोगान्तलोप, हल्ङ्यादिलोप)–द्विदन् ।

शोभना दन्ताः यस्य सः–सुदन् । सुदति (वाम० 1.13)। हे सुदती सु–हे सुदति स्–हे सुदति । सुदती (भाग० 10.53. 11) ।

विशेष—'वयसि' का प्रयोजन है कि **अवस्था** गम्यमान हो तो सूत्रोक्त दतृ आदेश होता है । द्विदन्तः कुंजरः यहाँ अवस्था गम्य नहीं है । अतः दतृ आदेश न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दसि च 5.4.142

पद.—छन्दसि 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—दन्तस्य दतृ बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—वेद के विषय में बहुव्रीहि समास में दन्त शब्द को दतृ आदेश समासान्त होता है ।

उदा.—पञ्चदन्तम् आलभेत ।

स्त्रियां संज्ञायाम् 5.4.143

पद.—स्त्रियाम् 7.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—दन्तस्य दतृ बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में बहुव्रीहि समास में यदि अन्यपदार्थ स्त्री वाच्य हो तो दन्त शब्द को दतृ समासान्त आदेश होता है ।

उदा.—अय इव दन्ताः यस्याः सा-अयोदती । अयस् दन्त-अयस् दतृ-अयोदत् ङीप् सु-अयोदती ।

विशेष—संज्ञा गम्यमान हो तो सूत्रोक्त दतृ आदेश होता है—

समदन्ती, स्निग्धदन्ती—यहाँ दतृ समासान्त आदेश न हुआ ।

विभाषा श्यावारोकाभ्याम् 5.4.144

पद.—विभाषा 1.1, श्यावारोकाभ्याम् 5.2

अनु.—दतृ बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में श्याव अथवा अरोक शब्दों से परे दन्त शब्द को समासान्त दतृ आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.—श्यावा दन्ताः यस्य सः-श्यावदन् ।
अरोका दन्ताः यस्य सः-अरोकदन् ।

पक्ष में—श्यावदन्तः, अरोकदन्तः ।

अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च 5.4.145

पद.—अग्रान्त .... वराहेभ्यः 5.3, च-अव्य० ।

अनु.—विभाषा दन्तस्य दतृ बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में अग्र शब्द जिसके अन्त में ऐसा शब्द शुद्ध, शुभ्र, वृष तथा वराह शब्दों से उत्तर दन्त शब्द को दतृ समासान्त आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) कुङ् मलाग्राणि इव दन्ताः यस्य सः-कुङ् मलाग्रदन् ।
पक्ष में—कुङ् मलाग्रदन्तः ।
(2) शुद्धाः दन्ताः यस्य सः-शुद्धदन्, शुद्धदन्तः ।
(3) शुभ्राः दन्ताः यस्य सः-शुभ्रदन्, शुभ्रदन्तः ।
(4) वृषः इव दन्ताः यस्य सः-वृषदन्, वृषदन्तः ।
(5) वराहः इव दन्ताः यस्य सः-वराहदन्, वराहदन्तः ।

ककुदस्याऽवस्थायां लोपः 5.4.146

पद.—ककुदस्य 6.1, अवस्थायाम् 7.1, लोपः 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—'अवस्था' गम्यमान हो तो 'ककुद' शब्द है अन्त में जिसके ऐसे बहुव्रीहि समास का समासान्त लोप होता है ।

उदा.—(1) असंज्ञातं ककुदम् अस्य-असंजात ककुद् सु-असंजातककुद् ।
(2) पूर्णककुद् ।

विशेष—'अवस्था' गम्यमान हो तो सूत्रोक्त समासान्त लोप होता है—

श्वेतककुदः यहाँ अवस्था गम्य नहीं है । अतः समासान्त लोप न हुआ ।

त्रिककुत् पर्वते 5.4.147

पद.—त्रिककुद् 1.1, पर्वते 7.1

अनु.—लोपः बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—'पर्वत' गम्यमान हो तो बहुव्रीहि समास में 'त्रिककुद्' शब्द निपातनसिद्ध है ।

उदा.—त्रिककुत् पर्वतः ।

विशेष—'पर्वत' गम्यमान न हो तो सूत्रोक्त समासान्त लोप नहीं होता है—

त्रिककुदोऽनयः यहाँ 'पर्वत' गम्यमान नहीं है । अतः समासान्त लोप न हुआ ।

उद्विभ्यां काकुदस्य 5.4.148

पद.—उद्विभ्याम् 5.2, काकुदस्य 6.1

अनु—लोपः बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उद् तथा वि से उत्तर काकुद शब्द का समासान्त लोप होता है ।

उदा.—उद्गतं काकुदम् अस्य-उत्काकुत् । प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (वा०) से समास हुआ । खरि च ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकाकुत् । विगतं (विकृतं, विशिष्टं) काकुदं यस्य सः । पूर्ववत् कार्यं ।

जिस पक्ष में उत्तरपद का लोप नहीं होता, उसमें समासान्त लोप भी नहीं होता है—

उद्गतकाकुदः, विगतकाकुदः । यहाँ 'गत' पद का लोप नहीं हुआ है ।

पूर्णाद् विभाषा 5.4.149

पद.—पूर्णात् 5.1, विभाषा 1.1

अनु.—काकुदस्य लोपः बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में पूर्ण शब्द से उत्तर काकुद शब्द का समासान्त लोप विकल्प से होता है ।

उदा.—पूर्णं काकुदम् अस्य स–पूर्ण काकुद्,–त् ।

पक्ष में—पूर्णकाकुदः ।

सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः 5.4.150

पद.—सुहृद्दुर्हृदौ 1.2, मित्राऽमित्रयोः 7.2

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में मित्र और शत्रु अर्थों में क्रमशः सुहृद् व दुर्हृद् शब्द निपातनसिद्ध हैं ।

भाव यह है कि 'मित्र' व 'शत्रु' गम्यमान हों तो क्रमशः सु–तथा 'दुस्' से परे 'हृदय' शब्द को हृद् समासान्त आदेश होता है ।

उदा.—(1) शोभनं हृदयं यस्य सः–सु हृद् सु–सुहृद्,–त् ।
(2) दुष्टं हृदयं यस्य सः–दुस् हृद् सु–दुर्हृद्,–त् ।

विशेष—'मित्राऽमित्रयोः का प्रयोजन है कि **'मित्र'** तथा **'शत्रु'** गम्यमान हों तो सूत्रोक्त समासान्त आदेश होता है ।

सुहृदयो मुनिः–यहाँ 'मित्र' गम्यमान नहीं है । अतः 'हृद्' आदेश न हुआ ।

दुर्हृदयश्चौरः—यहाँ 'शत्रु' गम्यमान नहीं है । अतः 'हृद्' आदेश नहीं हुआ ।

उरःप्रभृतिभ्यः कप् 5.4.151

पद.—उरःप्रभृतिभ्यः 5.3, कप् 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उरस् प्रभृति शब्द, तदन्त से समासान्त कप् प्रत्यय होता है । कप् के पकार की इत्संज्ञा है ।

उदा.—(1) व्यूढम् उरो यस्य सः–व्यूढ उरस् कप्–व्यूढोरस्क सु–व्यूढोरस्कः ।

(2) प्रियं सर्पिर्यस्य सः–प्रियसर्पिष्कः ।

भिन्ननौकः (भट्टि० 5.88)।

विशेष—1. उरस् प्रभृतिगण में एक गणसूत्र का है—अर्थान्नञः अर्थात् जिस बहुव्रीहि समास में पूर्वपद 'नञ्' तथा उत्तरपद 'अर्थ' हो तो उससे परे समासान्त कप् होता है : अविद्यमानोऽर्थो यस्य तद् अनर्थकं (वचनम्) । 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' (वा०) से 'विद्यमान' पद का लोप हुआ है ।

2. उरःप्रभृतिगण में निम्नलिखित पाँच शब्द प्रथमैकवचनान्त पठित हैं—

पयः, लक्ष्मीः, नौः, पुमान्, अनड्वान् । शेष शब्द प्रातिपदिक रूप में पठित हैं । उक्त प्रथमैकवचनान्त शब्दों से तभी कप् होता हैं, जब ये समास की दशा में प्रथमैकवचनान्त हों । यथा—

प्रिया लक्ष्मीर्यस्य सः–प्रियलक्ष्मीकः ।

जब ये शब्द प्रथमैकवचन में नहीं होते हैं, तब 'शेषाद् विभाषा' से पाक्षिक कप् होता है । यथा—

प्रिया लक्ष्म्यो यस्य सः–प्रियलक्ष्मीकः, प्रियलक्ष्मीः ।

यहाँ समास में प्रथमाबहुवचन (लक्ष्म्यः) का प्रयोग हुआ है । अतः नित्य कप् न हुआ ।

इनः स्त्रियाम् 5.4.152

पद.—इनः 5.1, स्त्रियाम् 7.1

अनु.—कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—स्त्रीलिंग के विषय में इन् अन्त वाले बहुव्रीहि समास से कप् समासान्त होता है ।

उदा.—बहवो दण्डिनो यस्यां शालायां सा–बहुदण्डिका शाला ।

बहुदण्डिन् (अत इनिठनौ) कप्–बहुदण्डिक टाप् सु–बहुदण्डिका ।

विशेष—**स्त्रीलिंग** के विषय में ही सूत्रोक्त कप् होता है—

बहुदण्डी राजा–यहाँ कप् न हुआ ।

नद्यृतश्च 5.4.153

पद.—नद्यृतः 5.1, च–अव्य० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—नदी संज्ञक तथा ऋकारान्त बहुव्रीहि समास से समासान्त कप् होता है ।

पा० 1.4.3 तथा 1.4.6 से नदी संज्ञा कही गई है ।

उदा.—(1) बह्व्यः कुमार्योऽस्मिन् देशे सः–बहुकुमारिको देशः ।

(2) बहवः कर्त्तारो यस्मिन् प्रासादे सः–बहुकर्तृकः प्रासादः ।

(३) सस्त्रीकः (भाग० 10.33.5)।

शेषाद् विभाषा 5.4.154

पद.—शेषात् 5.1, विभाषा 1.1

अनु.—कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—(शेष अर्थात्) जिस बहुव्रीहि से कोई समासान्त न कहा गया हो तो उससे समासान्त कप् विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) महद् यशो यस्य सः–महायशस्कः, महायशाः।

(2) तुल्यं वयो यस्य सः–तुल्यवयस्कः, तुल्यवयाः ।

(3) बह्व्यः खट्वाः यस्मिन् सः–बहुखट्वकः, बहुखट्वाकः, बहुखट्वः ।

आपोऽन्यतरस्याम् । स्त्रियाः पुँवद् भाषित०। गोस्त्रियोरुप०।

प्रमाणकम् (मु०चि० 2.52)

विशेष—'शेषात्' का प्रयोजन है कि अनुक्त समासान्त से ही पाक्षिक कप् होता है । अतः 'व्याघ्रपाद्' से कप् नहीं होता है । कारण कि यहाँ लोपरूप समासान्त हो चुका है । अतः शेषत्व नहीं रहा ।

न संज्ञायाम् 5.4.155

पद.—न–अव्य०, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो तो बहुव्रीहि समास से कप् समासान्त नही होता है ।

उदा.—विश्वे देवा यस्य सः–विश्वेदेवः ।

यहाँ पाक्षिक कप् प्राप्त था । निषेध हो गया ।

ईयसश्च 5.4.156

पद.—ईयसः 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—न कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—जिसके अन्त में ईयसुन् प्रत्यय है, ऐसे बहुव्रीहि समास से कप् समासान्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) बहवो श्रेयांसो यस्य सः–बहुश्रेयान् । 'प्रशस्यस्य श्रः' से 'श्र' आदेश तथा 'द्विवचनविभज्य०' से ईयसुन् हुआ । पाक्षिक कप् प्राप्त था । निषेध हो गया ।

(2) बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य सः–बहुश्रेयसी । नद्यृतश्च से प्राप्त कप् का निषेध हुआ ।

वन्दिते भ्रातुः 5.4.157

पद.—वन्दिते 7.1, भ्रातुः 5.1

अनु.—न कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—वन्दित अर्थ में वर्त्तमान भ्रातृ शब्द, तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता है ।

'वन्दित' का अर्थ है—पूजित ।

उदा.—शोभनो भ्राता यस्य सः–सुभ्राता ।

यहाँ 'नद्यृतश्च' से कप् प्राप्त था । प्रकृत सूत्र के द्वारा निषेध हो गया ।

विशेष—'वन्दित' अर्थ में ही सूत्रोक्त कप् प्रत्यय का निषेध होता है—

मूर्खभ्रातृकः यहाँ 'वन्दित' गम्यमान नहीं है । अतः कप् हो गया ।

ऋतश्छन्दसि 5.4.158

पद.—ऋतः 5.1, छन्दसि 7.1

अनु.—न कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—वेद के विषय में ऋवर्णान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् नहीं होता है ।

उदा.—हता माता यस्य सः–हतमाता (अथ० 2.32.4)। नद्यृतश्च से कप् प्राप्त था ।

हतस्वसा (अथ० 2.32.4; 67.3) ।

हतभ्राता (पै०सं० 2.14.2) ।

सुहोता (ऋ० 7.67.3, जै०उ० 4.6.1.6) ।

वीरमातरम् (भाग० 9.14.40) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे 5.4.159

पद.—नाडीतन्त्र्योः 6.2, स्वाङ्गे 7.1

अनु.—न कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—स्वांग में वर्त्तमान जो नाड़ी अथवा तन्त्री शब्द, तदन्त बहुव्रीहि समास से कप् नहीं होता है ।

उदा.—बह्व्यो नाड्यो यस्य सः–बहुनाडिः यहाँ 'नद्यृतश्च' से कप् प्राप्त था ।

बह्व्यः तन्त्र्यो यस्य सः–बहुतन्त्री ।

विशेष—'स्वांगे' का प्रयोजन है कि **स्वांग में वर्त्तमान** नाडी अथवा तन्त्री शब्द, तदन्त बहुव्रीहि से कप् का निषेध होता है—बहुनाडीकः स्तम्भः, बहुतन्त्रीका वीणा–यहाँ कप् का निषेध न हुआ ।

निष्प्रवाणिश्च 5.4.160

पद.—निष्प्रवाणिः 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—न कप् बहुव्रीहौ समासान्ताः ।

अर्थ—'निष्प्रवाणि' शब्द में कप् समासान्त का निषेध होता है ।

उदा.—निर्गता प्रवाणी यस्य स–निष्प्रवाणिः यहाँ नदीलक्षण कप् प्राप्त हुआ । निपातन से कप् का निषेध हो गया ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां पञ्चमाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः, ॥

॥ पञ्चमश्चाऽयमध्यायः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षष्ठाऽध्यायस्य

प्रथमः पादः

एकाचो द्वे प्रथमस्य 6.1.1

पद.—एकाचः 6.1, द्वे 1.2, प्रथमस्य 6.1

अर्थ—'द्वि' का अर्थ है—दो बार। प्रथम एक अच् वाले समुदाय को द्वित्व होता है।

उदा.—पपाच, पपात।

पच् णल् (लिट् प्र०पु०एक०)—इस दशा में पच् धातु के प्रथम एकाच् 'पच्' समुदाय को द्वित्व होकर रूप बनता है। पच् पच् अ–प पच् अ–पपाच।

शीक् त (लिट्)–शीक् शीक् ए–शी शीक् ए–शिशीके (भट्टि० 14.77)। व्रश्च झि (लिट्)–व्रश्च् उस्–वव्रश्च् उस्–वव्रश्चुः (भट्टि० 14.76)। आ घूर्ण् झि–आ घू घूर्ण् उस् (णलतुसुस्–। द्वित्वम्। हलादिः शेषः)–आ जुघूर्ण् उस् (कुहोश्चुः। ह्रस्वः)–आजुघूर्णुः (भट्टि० 14.77)।

अजादेर्द्वितीयस्य 6.1.2

पद.—अजादेः 6.1, द्वितीयस्य 6.1

अनु.—एकाचः द्वे।

अर्थ—अजादि के द्वितीय एकाच् वाले समुदाय को द्वित्व होता है।

उदा.—अटिटिषति।

अटितुम् इच्छति–अट् सन् इस दशा में सन् की आर्धधातुक संज्ञा, आर्धधातुक वलादि प्रत्यय को इट् आगम हुआ। अट् इट् ष—अटिस अब 'सन्यङोः' से द्वित्व होना है। 'अटिष' यह अजादि है। प्रकृत सूत्र के द्वारा प्रथम एकाच् 'अ' को द्वित्व न होकर द्वितीय एकाच् 'टिष्' को द्वित्व हुआ। अटिष् टिष् अ–अटिटिषति (हलादिः शेषः। तिप्। शप्)।

अर्ज् स्वार्थे णिच्–अर्ज् इ ल्–अर्ज् इ तिप्–आट् अर्ज् इ चङ् त्–आ अर्जिजत्–आर्जिजत् (भट्टि० 15.43)।

विशेष—'अजादि' पद में काशिकाकार बहुव्रीहि समास मानते हैं। द्र०—

अच् आदिर्यस्य धातोस्तदवयवस्य (काशि० 6.1.2)।

काशिकाकार के अनुसार प्रकृत सूत्र में 'द्वितीय' पद का योग सिद्ध करता है कि 'अजादि' पद में बहुव्रीहि समास है। यदि अच्चाऽसौ आदिश्च अजादिः इस प्रकार कर्मधारय समास माना जाये तो 'द्वितीय' पद व्यर्थ हो जाता है। पतंजलि यहाँ कर्मधारय मानते हैं। उनके अनुसार 'द्वितीयस्य' पद व्यर्थ है। (द्र० महा० 6.1.2)।

यद्यपि काशिकाकार परोक्षतः यहाँ कर्मधारय समास मानते हैं और 'द्वितीयस्य' पद का योग अत्यधिक स्पष्टता के लिए मानते हैं। द्र० काशिका 6.1.2—तेषां 'द्वितीयस्य' इति विस्पष्टार्थं द्रष्टव्यम्।

वस्तुतः 'अजादि' में कर्मधारय मानना उचित प्रतीत होता है। यदि बहुव्रीहि समास मान लिया जाये तो इन्द्रम् आत्मन इच्छति–इन्द्रीयति तथा इन्द्रीयितुम् इच्छति–इन्दिद्रीयिषति आदि में दकार को द्वित्व का निषेध हो जाता है।

न न्द्राः संयोगादयः 6.1.3

पद.—न–अव्य०, न्द्राः 1.3, संयोगादयः 1.3

अनु.—अजादेः द्वितीयस्य एकाचः द्वे।

अर्थ—आदिभूत अच् से परे द्वितीय एकाच् रूप समुदाय के संयोग के आदि में स्थित नकार, दकार तथा रेफ को द्वित्व नहीं होता है।

सूत्र के अनुसार—

क) धातु के आदि में अच् हो,
ख) उसका जो द्वितीय एकाच्,
ग) द्वितीय एकाच् में जो संयोग,
घ) उस संयोग के आदि में स्थित,
ङ) नकार, दकार या रेफ वर्ण को द्वित्व नहीं होता है।

अर्थात् यदि द्वितीय एकाच् समुदाय के संयोग के आदि वाला अक्षर नकार, दकार या रेफ हो तो उसे द्वित्व नहीं होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—(1) उन्द् सन्–उन्द् इट् स–उन्दिष–इस दशा में द्वितीय एकाच् 'न्दिष्' है जिसमें 'न्द्' की संयोग संज्ञा है जिसके आदि में नकार है। अतः नकार को द्वित्व नहीं हुआ। उन् दिष् दिष् अ अति–उन्दिदिषति।

(2) अद्ड् इट् सन्–अद् डिष–अद् डिष् डिष् अ–अद्डि डिष अति–अड्डिडिषति (ष्टुना ष्टुः)।

(3) अर्च् इट् सन्–अर्चिष–अर् चिष् चिष् अ–अर्चि–चिषति।

ऊर्णु णल् (लिट् प्र०पु०एक०)–ऊ र्णु अ–(रेफ के द्वित्व का निषेध हो गया)–ऊर् नु नु अ (द्वित्व की दृष्टि में णत्व 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' असिद्ध है। अतः 'नु' को द्वित्व हुआ) ऊर्णुनाव (वृद्धि, आवादेश, णत्व)।

विशेष—1. जो व्याख्याकार 'अजादि' पद में कर्मधारय समास मानते हैं। उनके अनुसार 'अजादेः' पद में पञ्चमी है। तदनुसार ही 'आदिभूत अच् से परे' ऐसा सूत्रार्थ किया गया है।

2. संयोग के आदि में जो बकार, उसको द्वित्व नहीं होता है[1]—

उब्ज् सन्–उब्ज् इट् स–उब् जिष् जिष् अ। उब् जि जिष् अ शप् तिप्–उब्जिजिषति।

3. यकार है परे जिसके ऐसे रेफ को द्वित्व का निषेध नहीं होता है[2]—अर्थात् संयोग के आदि में रेफ हो तथा उससे पर यकार हो तो रेफ को द्वित्व होता है—

ऋ यङ् (अट्यर्तिशूर्णोतीना०)–अर्य (यङि च। उरण् रपरः)–अर्य र्य (सन्यङोः) 'न न्द्राः संयोगादयः' से रेफ को द्वित्व का प्रतिषेध, परन्तु वार्तिक से द्वित्व हुआ—

अरर्य (हलादि शेषः)—अरार्य (दीर्घोऽकितः) अरार्य शप् त–अरार्यते।

4. ईर्ष्य धातु के तृतीय (व्यंजन अथवा एकाच्) को द्वित्व होता है।[3]—

ईर्ष्य् सन्–ईर्ष्य् इट् स–ईर् ष् यि यिष–(तृतीय अक्षर को द्वित्व हुआ)–ईर् ष् यियिष शप् तिप्–ईर्ष्यियिषति।

ईर्ष्यिष–इस दशा में तृतीय एकाच् 'ष' को द्वित्व हुआ–ईर् ष्य् इ ष ष–ईर्ष्यिषिष शप् ति (सन्यतः)–ईर्ष्यिषिषति।

5. कण्ड्वू आदि धातुओं के तृतीय एकाच् को द्वित्व होता है[4]—

कण्ड्वू यक् (कण्ड्वादिभ्यो यक्)–कण्ड्वू इट् सन् (सन्, इट्)–कण्ड्वूयिष (सन्यङोः) कण्ड्वू यिष् यिष् अ–कण्ड्वूयि-यिषति।

इसी प्रकार—असूयियिषति।

6. नाम धातु के तृतीय एकाच् को द्वित्व विकल्प से होता है[5]—

आत्मनः अश्वम् इच्छति–अश्व क्यच् (क्यचि च)–अश्वीय इट् सन्–अश्वीयिष (सन्, इट्, अकार लोप)–अश्वी यिष् यिष् अ–अश्वीयियिषति तृतीय एकाच् को द्वित्व)।

पक्ष में—द्वितीय एकाच् को द्वित्व हुआ–अ श्वी श्वी यिष–अशिश्वीयिषति।

7. कुछ व्याख्याकारों के अनुसार नामधातुओं के विषय में किसी को भी द्वित्व होता है[5]—

पुत्र क्यच्–पुत्रीय सन्–पुत्रीयिष इस दशा में–पुपुत्रीयिषति (प्रथम एकाच् को द्वित्व हुआ); पुतित्रीयिषति (द्वितीय एकाच् को द्वित्व हुआ); पुत्रीयियिषति (तृतीय एकाच् को द्वित्व हुआ); पुत्रीयिषिषति (चतुर्थ एकाच् को द्वित्व हुआ); पुपुति-त्रीयियिषति (तीनों एकाचों को द्वित्व हुआ।

8. सूत्र की शर्त के अनुसार—

क) 'न्द्राः' अर्थात् संयोग के आदि में **न, द तथा रेफ** को द्वित्व नहीं होता है—

ईक्षि सन्–ईक्षिष यहाँ 'क्ष्' की संयोग संज्ञा है परन्तु इसके आदि में न्, द्, रेफ नहीं हैं। अतः निषेध न हुआ।

ई क्षि क्षि ष–ई कि क्षिष–ईचिक्षिषते।

ख) संयोगादयः अर्थात् **संयोग के** आदि में न्, द् तथा रेफ को द्वित्व नहीं होता है—

प्र अन् इट् सन्–प्राणिष यहाँ नकार है परन्तु संयोग के आदि में नहीं है। अतः निषेध न हुआ—प्राणिणिषति।

---

1. काशि०—6.1.3 (वा०) बकारस्याप्ययं प्रतिषेधो वक्तव्यः।
2. वही—यकारपरस्य रेफस्य प्रतिषेधो न भवतीति वक्तव्यम्।
3. वही—ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम्। कस्य तृतीयस्य? केचिदाहुर्व्यंजनस्येति ...। अपरे पुनः तृतीय-स्यैकाचः इति व्याचक्षते।....।
4. महा० 6.1.3 (वा०) कण्ड्वादीनां तृतीयस्यैकाचो द्वे भवत इति वक्तव्यम्।
5. महा० 6.1.3 (वा०) वा नामधातूनां तृतीयस्यैकाचो द्वे भवत इति वक्तव्यम्।... यथेष्टं नामधातुष्विति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग) अजादेः अर्थात् **आदिभूत अच्** से परे ही सूत्रोक्त प्रतिषेध होता है—

दुद्राव, दिद्रासति यहाँ संयोग के आदि में (द् र्) है, द्वित्व का निमित्त भी है परन्तु आदिभूत अच् नहीं है। अतः निषेध न हुआ।

पूर्वोऽभ्यासः 6.1.4

पद.—पूर्वः 1.1, अभ्यासः 1.1

अनु.—द्वे।

अर्थ—'द्वे' पद को विभक्तिविपरिणाम के द्वारा षष्ठ्यन्त बना लिया जाता है।

इस प्रकरण में जो दो उच्चारण कहे गये हैं, उनमें पूर्व की अभ्यास संज्ञा होती है। भाव यह है कि 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' के प्रकरण में पूर्व की अभ्यास संज्ञा होती है तथा अष्टम अध्याय के 'सर्वस्य द्वे' (पा० 8.1.1) वाले द्वित्व प्रकरण में उक्त संज्ञा प्रवृत्त नहीं होती है। पूर्वापर दो प्रकार से होता है—

दिशा की अपेक्षया तथा अवयव की अपेक्षया। यहाँ 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' के द्वित्व का प्रकरण है। इसमें अवयव-परक प्रथम एकाच् को द्वित्व किया है। अतः द्वितीय प्रकार की पूर्वता अभीष्ट है।

उभे अभ्यस्तम् 6.1.5

पद.—उभे 1.2, अभ्यस्तम् 1.1

अनु.—द्वे।

अर्थ—षष्ठाऽध्याय के द्वित्व प्रकरण में द्वित्व के द्वारा जिन दो शब्दस्वरूपों का विधान है, उन दोनों की (समुदित रूप से) अभ्यस्त संज्ञा होती है।

अष्टाध्यायी में द्वित्वविधान दो स्थलों पर प्राप्त होता है—एकाचो द्वे प्रथमस्य (पा० 6.1.1) तथा सर्वस्य (पा० 8.1.1)। अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा (परि०) अर्थात् विधि और निषेध समीप पठित के ही होते हैं, दूरपठित के नहीं। चूँकि प्रकृत सूत्र षष्ठ अध्याय का है। अतः उक्त संज्ञा की प्रवृत्ति षाष्ठद्वित्वप्रकरण में ही होती है।

प्रकृत सूत्र में 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' से 'द्वे' पद का अनुवर्त्तन सम्भव होने पर भी यहाँ 'उभे' पद के ग्रहण के द्वारा सूचित होता है कि इस प्रकार में समुदित दोनों पदों की अभ्यस्त संज्ञा होती है। यदि प्रत्येक की पृथक् पृथक् संज्ञा मानेंगे तो 'नेनिजति' आदि में 'अभ्यस्तानामादिः' (पा० 6.1.183) के द्वारा प्रत्येक को आद्युदात्त होकर अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

'उभे अभ्यस्तम्' यहाँ 'उभे' की प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृति-भाव हुआ है।

उदा.—ददत्। दा लट्–दा शतृ–दा शप् अत्–दा दा अत् (श्लौ)–द दा अ त्–(अभ्यास संज्ञा)–द द् अत् (श्नाऽभ्यस्तयोरातः)–ददत् सु–ददत्।

जक्षित्यादयः षट् 6.1.6

पद.—जक्ष्–अविभक्तिकनिर्देशः, इत्यादयः 1.3, षट् 1.3

अनु.—अभ्यस्तम्।

अर्थ—जक्ष् धातु की तथा जक्ष् है आदि में जिन के ऐसी धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा होती है। जक्षादि छह धातु हैं—

जागृ, दरिद्रा, शासु, चकासृ, दीधीङ् तथा वेवीङ्। इस प्रकार कुल सात धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा होती है। अन्तिम दो का वेद में प्रयोग होता है।

उदा.—(1) जक्षति, जाग्रति, दरिद्रति, चकासति, शासति, दीध्यते, वेव्यते, सभी रूप लट् लकार के हैं।

जक्ष् शप् झि (अदिप्रभृतिभ्यः शपः। अभ्यस्त संज्ञा)–जक्ष् झि (अदभ्यस्तात्)–जक्ष् अत् इ–जक्षति।

जागृ अत् इ–जाग्रति (यण्)।

दरिद्रा अत् इ–(श्नाऽभ्यस्तयोरातः)—

दरिद्र् अति–दरिद्रति।

चकास् अति–चकासति।

शास् अत् इ–शासति।

दीधी अत् अ–(आत्मनेपदेष्वनतः)–अभ्यस्त संज्ञा, अभ्यस्तानामादिः से आदि को उदात्त स्वर–दीध्यते।

इसी प्रकार–वेव्यते।

(2) जक्ष् शप् शतृ इस दशा में उगिदचाम्० से प्राप्त नुम् आगम का अभ्यस्त संज्ञा होने के कारण निषेध हुआ (नाऽभ्यस्ताच्छतुः)। जक्षत्।

इसी प्रकार जाग्रत् आदि में जानना चाहिए।

तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य 6.1.7

पद.—तुजादीनाम् 6.3, दीर्घः 1.1, अभ्यासस्य 6.1

अर्थ—तुज् आदि धातुओं के अभ्यास को दीर्घ होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि शब्द प्रकारवाची है ।

उदा.—तूतुजान, मामहान

(1) तुज् (छन्दसि लिट् । लिटः कानज्वा) कानच्–तुज् तुज् आन (स्थानिवद्भाव से द्वित्वादि कार्य होकर)–तुतुज् आन–तूतुजान सु–तूतुजानः ।

इसी प्रकार–मामहानः ।

लिटि धातोरनभ्यासस्य 6.1.8

पद.—लिटि 7.1, धातोः 6.1, अनभ्यासस्य 6.1

अनु.—एकाचो द्वे प्रथमस्य अजादेः द्वितीयस्य ।

अर्थ—लिट् परे रहते अभ्यासरहित धातु के अवयव रूप प्रथम एकाच को द्वित्व होता है अथवा धातु के आदिभूत अच् से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है ।

'धातोः' पद में षष्ठी अवयवाऽवयविभाव में प्रयुक्त है । अतः 'धातु का अवयव स्वरूप जो एकाच्' ऐसा अर्थ किया गया है । 'एकाच्' पद में बहुव्रीहि समास है । यदि 'एकश्चाऽसौ अच्' इस प्रकार कर्मधारय मानेंगे तो 'पपाच' रूप न बन सकेगा ।

उदा.—जगाम, ऊर्णुनाव ।

गम् लिट्–व्यपदेशिवद्भाव से 'गम्' इस एकाज्भाग का प्रथमत्व होता है । गम् गम् णल्–जगम् अ–जगाम ।

ऊर्णु लिट्–द्वितीय एकाच् 'र्णु' को द्वित्व प्राप्त हुआ, रेफ को द्वित्व निषेध हो गया (न न्द्राः संयोगादयः)–ऊर् नु नु णल्–ऊर्णुनाव (द्वित्व विधायक सूत्र की दृष्टि में 'रषाभ्यां नो णः —' असिद्ध है । अतः 'नु' को द्वित्व हुआ है) ।

विशेष—1. चूँकि लिट् धातु से ही हुआ करता है । अतः यहाँ 'धातोः' पद का अनुवर्त्तन अर्थलभ्य है । प्रकृतसूत्र में 'धातोः' पद का पुनः ग्रहण किया गया है । अर्थलभ्य 'धातोः' पद पञ्चम्यन्त है, उसे यहाँ षष्ठ्यन्त करना पड़ता है । इस झंझट से बचने के लिए षष्ठ्यन्त 'धातोः' पद का प्रयोग किया गया है । ऐसा न करने पर सूत्र में अन्य कई दोष उपस्थित हो जाते हैं । यथा—उस दशा में 'लिट् परे होने पर एक अच् वाले प्रथम भाग को द्वित्व होता है'—ऐसा अर्थ होता । तब 'पपाच' आदि रूप तो सिद्ध हो जाते, परन्तु 'जागृणल्' इस दशा में 'जाग्' इसे द्वित्व नहीं होगा, कारण कि 'जाग्' से परे लिट् नहीं है ।

2. 'अनभ्यासस्य' का प्रयोजन है कि **अभ्यासरहित** धातु को द्वित्व होता है—

कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् (ऋ० 1.79.2) यहाँ 'णु यङ्' इस दशा में द्वित्व, गुण (गुणो यङ् लुकोः)–नोनूय (यङोऽचि च)–नोनू लिट्–नोनू णल्–नोनाव (यहाँ द्वित्व होकर 'नोनू' की अभ्यास संज्ञा है । अतः लिट् में पुनः द्वित्व न हुआ) ।

3. 'लिटि' का प्रयोजन है कि **लिट्** परे रहते ही द्वित्व होता है—

कृतृच्–कर्त्ता यहाँ द्वित्व न हुआ ।

4. द्विर्वचन के प्रकरण में वेद में विकल्प से होता है[1]—

यो जागार तमृचः कामयन्ते (ऋ० 5.44.14) । दाति प्रियाणीति (ऋ 4.8.3) ।

सन्यङोः 6.1.9

पद.—सन्यङोः 6.2

अनु.—धातोः अनभ्यासस्य एकाचः द्वे प्रथमस्य अजादेः द्वितीयस्य ।

अर्थ—सन्नन्त और यङन्त अभ्यासरहित धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है तथा आदिभूत अच् से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है ।

उदा.—पिपक्षति, पापच्यते ।

(1) पच् सन्–पच् पच् स–पपच् स–पपक्स (चोः कुः)–पिपक्ष शप् तिप्–पिपक्षति ।

(2) पच् यङ् (धातोरेकाचो०)–पच् पच् य–पपच् य (दीर्घोऽकितः)–पापच्य शप् त–पापच्यते । रुयङ्–रोरूयते (भाग० 9.6.31) ।

विशेष—1. सन्नन्त व यङन्त **अनभ्यास** धातु को ही द्वित्व होता है—

गुप् सन् (स्वार्थ में)–जुगुप्स (धातु संज्ञा) जुगुप्स सन् (इच्छा अर्थ में)–जुगुप्स इट् स–(चूँकि धातु अभ्यास रहित नहीं है । अतः द्वित्व नहीं होता है)–जुगुप्सिषते ।

2. 'सन्यङोः' पद षष्ठ्यन्त है । यदि सप्तमी मान ली जाये तो 'इण् सन्'–इस दशा में 'इ' को द्वित्व होकर अनिष्ट रूप बनता है ।

दूसरे, यङ् लुक् प्रक्रिया में द्वित्व 'सन्यङोः' को षष्ठ्यन्त

---

1. काशि०—6.1.8 (वा०) द्विर्वचनप्रकरणे छन्दसि वेति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानने से ही सिद्ध हो सकता है। यदि यहाँ सप्तमी मान लेंगे तो 'न लुमतांगस्य' के द्वारा प्रत्यय लक्षण का निषेध होकर द्वित्व न हो सकेगा।

श्लौ 6.1.10

पद.—श्लौ 7.1

अनु.—धातोः अनभ्यासस्य एकाचः द्वे प्रथमस्य अजादेः द्वितीयस्य।

अर्थ—'श्लु' परे रहते धातु के अभ्यासरहित प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है अथवा आदिभूत अच् से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

उदा.—जुहोति, बिभेति, जिह्रेति।

(1) हुलट्-हु तिप्-हु शप् ति-हुति-(जुहोत्यादिभ्यः श्लु)-हु हु ति-झु हु ति (कुहोश्चुः)-जुहुति (अभ्यासे चर्च)-जुहोति (सार्वधातुकार्धधातु०)। श्लु को प्राप्त शप् को प्रत्यय-लक्षण नहीं हो सकता। न लुमतांगस्य।

(2) भी ति-भी भी ति-बी भी ति-बि भी ति-बिभेति।

(3) ह्री ति-जिह्रेति। जिह्रेषि (भट्टि० 3.53)।

चङि 6.1.11

पद.—चङि 7.1

अनु.—धातोः अनभ्यासस्य एकाचः द्वे प्रथमस्य अजादेः द्वितीयस्य।

अर्थ—चङ् परे रहते अभ्यासरहित धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है अथवा आदिभूत अच् से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

उदा.—अपीपचत्।

पच् णिच् (हेतुमति च)-पाच् इ (अत उपधायाः)-पाचि ल् (धातु संज्ञा, लुङ्)-पाचि चङ् ल् (च्लिः, चङ्-णिश्रि द्रु०)-अ पाचि अ ल् (अंग संज्ञा, शट् आगम)-अपाच् अल् (णेरनिटि)-अपच् अल्-(णौ चङ्युपधायाः—)-अपच् अ तिप्-अपच् अ त्-अपच् पच् अत्-अपपच् अत् (चङि। अभ्यासकार्य। सन्वल्लघु०। सन्यतः)-अपिपचत् (दीर्घोः लघोः)-अपीपचत्। अशिश्रवन् (भट्टि० 3.25)।

दाश्वान् साह्वान् मीढ्वाश्च 6.1.12

पद.—दाश्वान् 1.1, साह्वान् 1.1, मीढ्वान् 1.1 च-अव्य०।

अर्थ—दाश्वस्, साह्वस् तथा मीढ्वस्-इन शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) दाश् लिट्-दाश् क्वसु (क्वसुश्च)-दाश्वस् (स्थानिवद्भाव से लिट्, प्राप्त द्वित्व का निषेध, वस्वेकाजाद्० से प्राप्त इट् का निषेध)-दाश्वस् सु-दाश्वान्।

(2) सह् क्वसु (परस्मैपदत्व, द्वित्व का निषेध, इट् का निषेध तथा धातु की उपधा को दीर्घ निपातन से होते हैं)-साह्वान्।

(3) मिह् क्वसु (द्वित्व का निषेध, इट् का निषेध, उपधा को दीर्घ तथा हकार को ढकार निपातन से होते हैं)—मीढ्वान्।

विशेष—1. क प्रत्यय परे रहते कृञ् आदि को द्वित्व होता है[1]—

क्रियतेऽनेनेति-चक्रम् (घञर्थे कः)।

क्लिद् क-चिक्लिदम्।

2. अच् परे रहते चर्, चल्, पत् और वद् धातुओं को द्वित्व होता है तथा अभ्यास को आक् आगम होता है।[2]—

चर् अच्-चर् चर् अ-चर् आक् चर सु-चराचरः। नन्दिग्रहिपचादिभ्यो०।

आगम विधान सामर्थ्य से हलादि शेष भी नहीं होता है।

इसी प्रकार—चलाचलः, पतापतः, वदावदः।

3. पूर्वोक्त द्वित्व विकल्प से होता है[3]—

पक्ष में—चरः, चलः, पतः, वदः रूप भी बनते हैं।

4. अच् परे रहते हन् धातु को द्वित्व तथा घत्व होते हैं[4]—

हन् अच्-हन् हन् अच्-घन् हन् अच्-घन् आक् हन् अ (आक् आगम)-घनाघन् अ (अभ्यासाच्च)-घनाघन सु-घनाघनः (ऋ० 10.103.1)।

5. पाटि धातु के णि का लुक् होता है, अभ्यास को ऊक् आगम और दीर्घ होता है[5]—

1. महा० 6.1.12 (वा०) कृञादीनां के द्वे भवत इति वक्तव्यम्।
2. महा० 6.1.12 (वा०) चरिचलिपतिवदीनां द्वित्वमच्याक्चाऽभ्यासस्य।
3. वही—वेति वक्तव्यम्।
4. वही—हन्तेर्घत्वं च।
5. वही—पाटेर्णिलुक् चोक् च दीर्घश्चाऽभ्यासस्य।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाटि अच्-पट् अच् (णिलुक्)-पट् पट् अ-पाट् ऊक् पट् अ-पाटूपट सु-पाटूपटः ।

ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे 6.1.13

पद.—ष्यङः 6.1, सम्प्रसारणम् 1.1, पुत्रपत्योः 7.2, तत्पुरुषे 7.1

अर्थ—तत्पुरुष समास में पुत्र व पति शब्द उत्तरपद में हों तो ष्यङ् को सम्प्रसारण होता है ।

उदा.—कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः-कारीषगन्ध्या पुत्र-कारीषगन्ध् इ आ पुत्र (सम्प्रसारण)-कारीष गन्धि पुत्र सु (पूर्वरूप)-सम्प्रसारणस्य-कारीषगन्धीपुत्रः ।

इसी प्रकार-कारीषगन्धीपतिः ।

विशेष—सूत्र की शर्तों के अनुसार—

क) ष्यङः अर्थात् **ष्यङ्** को ही सम्प्रसारण होता है—

इभम् अर्हति-इभ्य (दण्डादिभ्यो यत्)-इभ्यायाः पुत्रः-इभ्यापुत्रः यहाँ तत्पुरुष समास है, उत्तरपद में पुत्र शब्द है, परन्तु इभ्या में ष्यङ् नहीं है । अतः सम्प्रसारण नहीं हुआ ।

ख) पुत्रपत्योः अर्थात् **पुत्र और पति** शब्द उत्तर पद रहते ही सम्प्रसारण होता हैं—

कारीषगन्ध्याकुलम्-तत्पुरुष है, ष्यङ् भी है, परन्तु उत्तरपद में पुत्र व पति शब्द नहीं है । अतः सम्प्रसारण न हुआ ।

ग) तत्पुरुषे अर्थात् **तत्पुरुष** में ही ष्यङ् को सम्प्रसारण होता है—

कारीषगन्ध्यापतिरस्य ग्रामस्य-कारीषगन्ध्यापतिरयं ग्रामः—यहाँ तत्पुरुष नहीं है, बहुव्रीहि है । अतः सम्प्रसारण न हुआ ।

बन्धुनि बहुव्रीहौ 6.1.14

पद.—बन्धुनि 7.1, बहुव्रीहौ 7.1

अनु.—ष्यङः सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में बन्धु शब्द उत्तरपद हो तो ष्यङ् को सम्प्रसारण होता है ।

उदा.—कारीषगन्धाबन्धुरस्य-कारीषगन्धीबन्धुः । अनेकमन्यपदार्थे से बहुव्रीहि हुआ, उत्तरपद में 'बन्धु' शब्द है । अतः सम्प्रसारण हो गया । 'सम्प्रसारणस्य' से दीर्घ हुआ ।

विशेष—1. 'बहुव्रीहौ' का फल है कि **बहुव्रीहि समास** में ही सूत्रोक्त सम्प्रसारण होता है—

कारीषगन्ध्यायाः बन्धुः-कारीषगन्ध्याबन्धुः यहाँ तत्पुरुष समास है । अतः ष्यङ् को सम्प्रसारण न हुआ ।

2. 'बन्धु' शब्द पुल्लिँग है, परन्तु सूत्र में 'बन्धुनि' में नपुँसकलिंग का निर्देश सूचित करता है कि पर्याय शब्दों (सुहृद् आदि) में सूत्र की प्रवृत्ति न हो । 'बन्धुनि' यह अर्थ प्रधान निर्देश नहीं है, अपितु स्वरूपपरक है ।

3. मातच्, मातृक व मातृ शब्दों के परे रहते ष्यङ् को सम्प्रसारण होता है[1] और बहुव्रीहि में वह वैकल्पिक होता है । मातृ और मातृक इस प्रकार पृथक् पृथक् उपादान करने से 'नद्यृतश्च' से विहित कप् भी विकल्प से होता है: —

कारीषगन्धीमातः (मातृच्, सम्प्रसारण) ।

कारीषगन्ध्यामातः (मातृच्, सम्प्रसारणाभाव) ।

कारीषगन्धीमातृकः (मातृक, सम्प्रसारण) ।

कारीषगन्ध्यामातृकः (मातृक, सम्प्रसारणाभाव) ।

कारीषगन्धीमाता (मातृ, सम्प्रसारण) ।

कारीषगन्ध्यामाता (मातृ, सम्प्रसारणाभाव) ।

वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15

पद.—वचिस्वपियजादीनाम् 6.3, किति 7.1

अनु.—सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—कित् प्रत्यय परे रहते वच्, स्वप् तथा यजादि धातुओं को सम्प्रसारण होता है 'वचिस्वपियजादीनाम्' पद का दो प्रकार से विग्रह हो सकता है—

क) वचादयः स्वपादयः यजादयः,

ख) वचिश्च स्वपिश्च यजादयश्च ।

प्रथम विग्रह सूत्रकार को इष्ट नहीं है । वच परिभाषणे आदादिक व चौरादिक है । यदि वच् से आदादिक का ग्रहण करें तो सूत्र में 'स्वपि' का पृथक् उल्लेख व्यर्थ हो जाता है । कारण कि 'स्वप्' धातु तो वच्यादि में ही गृहीत हो जाता है ।

यदि चौरादिक वच् का ग्रहण करें तो भी उचित नहीं है । कारण कि चौरादिक वच्यादि धातुओं में वच् को छोड़कर अन्य किसी भी धातु में सम्प्रसारण का विषय नहीं है ।

जब प्रकृत सूत्र में 'वच्यादयः' ऐसा इष्ट नहीं है तो 'स्वप्यादयः' भी स्वतः निरस्त हो जाता है । कारण कि 'आदि' पद या तो सभी पदों से सम्बद्ध होगा; अन्यथा केवल

1. महा० 6.1.14 (वा०) मातृच्मातृकमातृषु ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम 'यज्' पद से ही सम्बद्ध होगा। अतः 'वचि' व 'स्वपि' का पृथक् ग्रहण है। 'वच्' के द्वारा आदादिक वच, ब्रू को प्राप्त वच् आदेश तथा चौरादिक (णिजभाव पक्ष में) वच् का ग्रहण होता है।

धातुपाठ में यज् धातु से लेकर भ्वादिगण की अन्तिम धातु टुओश्वि तक (नौ धातु) यजादि कहलाते हैं—

यज्, वप्, वह्, वस्, वेञ्, व्येञ्, ह्वेञ्, वद्, श्वि।

सम्प्रसारणं तदाश्रयञ्च कार्यं बलवत् (परि०) अर्थात् सम्प्रसारण तथा सम्प्रसारण के आश्रित (पूर्वरूप आदि) कार्य बलवान् होते हैं। अतः यदि द्वित्वादि व सम्प्रसारण की युगपत् प्रवृत्ति हो तो सर्वप्रथम सम्प्रसारण होता है।

उदा.—(1) उक्तः–वच् क्त–वच् त–उ अ च् त–उ च् त–उ क् त सु–उक्तः।

(2) सुप्तः–स्वप् क्त–स् उ अप् त–सुप्त सु–सुप्तः।

(3) इष्टः–यज् क्त–इज् त–इ ष् त–इष् त–इष्ट सु–इष्टः। व्रश्चभ्रस्ज० । ष्टुना ष्टुः।

(4) उप्तः–वप् क्त–उप् त–उप्त सु–उप्तः।

(5) ऊढः–वह् क्त–उह् त–उ ढ् त–उढ् ढ–ऊ ढ सु–ऊढः। हो ढः। झषस्तथो०। ढो ढे लोपः।

(6) उषितः–वस् क्त–उस् त–उस् इट् त–उसित–उषित सु–उषितः। शासिवसिघसीना०।

(7) उतः–वे क्त–उ ए त–उ त सु–उतः।

(8) संवीतः–सम् व्ये क्त–सम् व् इ ए त–सम् व् इ त–संवीत सु–संवीतः। हलः इति दीर्घः। 'व्ये' धातु को सम्प्रसारण करते समय प्रश्न उठता है कि वकार को सम्प्रसारण हो या यकार को? यहाँ 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' सूत्र ज्ञापक है कि वकार को सम्प्रसारण न हो यदि वकार को सम्प्रसारण होता तो प्रकृत सूत्र के द्वारा किया जाने वाला सम्प्रसारण निषेध व्यर्थ हो जाता। अतः यकार को सम्प्रसारण हुआ। तब वकार को प्राप्त सम्प्रसारण का निषेध हो गया।

(9) हूतः–ह्वे क्त–ह् उ ए त–हूत सु–हूतः। हलः।

(10) उदितः–वद् क्त–उद् इट् त–उदितः।

(11). शूनः–श्वि क्त–श् व् इ त–श् उ इ त–शुत–शुन–शुन सु–शूनः। ओदितश्च इति नत्वम्। श्वीदितो निष्ठायाम् इति प्राप्तस्य वलादिकेटः प्रतिषेधः।

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च 6.1.16

पद.—ग्रहिज्यावयि ..... भृज्जतीनाम् 6.3, ङिति 7.1, च–अव्य०।

अनु.—किति सम्प्रसारणम्।

अर्थ—ङित् तथा कित् प्रत्यय परे रहते ग्रह, ज्या, वय्, व्यध्, वश्, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् तथा भ्रस्ज् धातुओं को सम्प्रसारण होता है।

'वयि' यह इगन्त निर्देश है। इस प्रकार के दो धातु हैं—अय वय पय .... गतौ (भ्वा० 320) तथा दूसरा वे का आदेशभूत 'वय्'। यहाँ आदेशभूत 'वय्' का ही ग्रहण है। कारण कि, सभी धातु परस्मैपदी हैं।

महाभाष्यकार पतंजलि ने 'वय्' के ग्रहण को व्यर्थ बताया है। जिज्ञासु जन वहाँ देखें।

उदा.—(1) गृहीतः–ग्रह् क्त–गृह् इट् त–गृहीत सु–ग्रहोऽलिटिदीर्घः।

गृह्णाति–ग्रह् श्ना तिप्–गृह् नाति–गृह्णाति विजिघृक्षुः (भट्टि. 5.45)। 'रुदविदमुषग्रहि०' (पा० 1.2.8) से सन् कित् है।

निजिघृक्षयिष्यन् (भट्टि०2.40)।

(2) जीनः–ज्या क्त–जीन सु। (ल्वादिभ्यः। हलः) जिनाति–ज्या श्नाति–जिनाति।

(3) ऊयतुः–वय् अतुस् (लिट् प्र० पु० द्विव०)–उय् अतुस्–ऊय् अतुस्।

ङित्युदाहरणं नास्ति। वेञ् धातु के स्थान पर 'वेञो वयिः' (पा० 2.4.41) से लिट् आर्धधातुक विषय में 'वयि' आदेश होता है और वह लिट् किद्वत् (असंयोगाल्लिट् कित्) होता है। क्वचिदपि ङित् प्राप्त नहीं होता है।

(4) विद्धः–व्यध् क्त–विध् त–विध् ध–विद् ध सु। झषस्तथोर्धो०। झलां जश् झशि।

विध्यति–व्यध् श्यन् तिप् (सार्वधातुकमपित्)।

विध् य ति।

इसी प्रकार–हृदयाविध् (भट्टि० 6.73)।

(5) उशितः–वश् क्त–उश् इट् त–उशित सु।

उष्टः–वश् तस्–उश् तस्–उष् तस्–उष् टस्–उष्टस्। व्रश्चभ्रस्ज०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) विचितः–व्यच् क्त–विच् इट् त–विचित सु ।

विचति–व्यच् श तिप्–विचति ।

(7) वृक्णः–व्रश्च् क्त–वृश्च् त–वृश्च् न (ओदितश्च)–वृच् न (स्कोः संयोगाद्योरन्ते च)–वृक् न (चोः कुः)–वृक्ण् सु ।

प्रश्न उठता है कि कुत्व कैसे होगा? क्योंकि 'व्रश्च-भ्रस्ज०' से षत्व होना चाहिए । काशिका में एक वार्तिक प्राप्त होता है—

निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः अर्थात् षत्व, स्वर, प्रत्ययविधि तथा इड्विधियों के प्रति निष्ठादेश सिद्ध होता है । नत्व के सिद्ध रहने से निष्ठा झलादि प्राप्त नहीं होता है । फलतः व्रश्च के शकार को षकार नहीं होता है । व्रश्च् में स्तोः श्चुना श्चुः (पा०8.4.39) के द्वारा सकार को शकार हुआ है जो स्कोः संयोगाद्यो (पा० 8.2.29) की दृष्टि में असिद्ध है । अतः सकारलोप हो गया है ।

वृश्चति–व्रश्च् श तिप्–वृश्च् अति ।

(8) पृष्टः–प्रच्छ् क्त–पृच्छ् त पृश् त (च्छ्वोः शूडनुना०)–पृष् त (व्रश्च भ्रस्ज०)–पृष् ट सु (ष्टुना ष्टुः) ।

पृच्छति–प्रच्छ् श तिप्–पृच्छ् अति ।

(9) भृष्टः–भ्रस्ज् क्त–भृस्ज् त–भृस् श् त (व्रश्चभ्रस्ज०)–भृश् त (स्कोः–)–भृष् त–भृष् ट सु ।

भृज्जति–भ्रस्ज् श तिप्–भृस्ज् अ ति–भृद् ज् अति (झलां जश् झशि)–भृज्ज् अति (स्तोः श्चुना श्चुः) ।

लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् 6.1.17

पद.—लिटि 7.1, अभ्यासस्य 6.1, उभयेषाम् 6.3

अनु.—सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—लिट् परे रहते दोनों अर्थात् वचि, स्वपि, यजादि तथा ग्रहिज्यादि धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है ।

लिडादेश दो प्रकार का होता है—पित् (तिप्, सिप्, मिप्) तथा अपित् (तस् आदि) ।

अपित् लिडादेश कित् होता है (असंयोगाल्लिट् कित्) । अतः कित् होने के कारण अपित् लिट् परे रहते पूर्वोक्त बीस धातुओं (वच्, स्वप्, यजादि नौ, ग्रहादि नौ) को पूर्ववर्त्ती दो सूत्रों के द्वारा भी सम्प्रसारण सिद्ध था । प्रकृत सूत्र के विधान का फल है कि उक्त बीस धातुओं के अभ्यास को पित् लिट् में भी सम्प्रसारण हो जाये ।

द्वित्व करने के पश्चात् अभ्यास कार्य (हलादिः शेषः आदि) से पूर्व ही अभ्यास को सम्प्रसारण होता है ।

उदा.—(1) वच् णल् (लिट् प्र०पु० एक व०)–वच् वच् अ–उच् वच् अ–उ वच् अ–उवाच ।

(2) स्वप् णल्–सुप् स्वप् अ–सुस्वाप–सुष्वाप ।

(3) यज् णल्–यज् यज् अ–इज् यज् अ–इयज् अ–इयाज ।

(4) वप् णल्–उप् वप् अ–उवप् अ–उवाप ।

(5) वह् णल्–उवाह ।

(6) वस् णल्–उवास ।

(7) वद् णल्–उवाद ।

ग्रह् णल्–ग्रह् ग्रह् अ–गृह् ग्रह् अ–गृ ग्रह् अ–गर् ग्रह् अ (उरत्)–ग ग्रह् अ (हलादिः शेषः)–जग्रह् अ–जग्राह (कुहोश्चुः) । ग्रह् णल्–ग्रह् ग्रह् अ–ग ग्रह् अ–जग्राह—इस प्रकार सम्प्रसारण के बिना भी इष्ट सिद्धि हो जाती है ।

(9) ज्या णल्–ज्या औ–ज्य् औ (आत औ णलः । आतो लोप इटि च । द्विर्वचनेऽचि से लोपादेश को स्थानिवद्भाव होकर द्वित्व हुआ । ज्या ज्या औ–जि ज्य् औ —जिज्यौ ।

(10) वय णल्–उवाय ।

(11) व्यध् णल्–व्यध् व्यध् अ–विव्यध् अ–विव्याध ।

(12) वश् णल्–उवाश ।

(13) व्यच् णल्–व्यच् व्यच् अ–विच् व्यच् अ–विव्याच ।

(14) व्रश्च् णल्–व्रश्च् व्रश्च् अ–वृश्च् व्रश्च् अ–वृ व्रश्च् अ–वर् व्रश्च् अ–वव्रश्च ।

यहाँ भी सम्प्रसारण के बिना इष्ट रूप बन जाता है—

व्रश्च् णल्–व्रश्च् व्रश्च् अ–व व्रश्च् अ–वव्रश्च ।

(16) भ्रस्ज् णल्–भ्रस्ज् भ्रस्ज् अ–भृस्ज् भ्रस्ज् अ–भृभ्रस्ज् अ–भर् भ्रस्ज् अ–भभ्रस्ज् अ–बभ्रस्ज् अ–ब भ्रद् ज् अ (झलां जश् झशि)–बभ्रज्ज (स्तोः श्चुनाश्चुः) ।

अधिशिश्यिरे (भट्टि० 14.74) ।

स्वापेश्चङि 6.1.18

पद.—स्वापेः 6.1, चङि 7.1

अनु.—सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—चङ् परे रहते स्वापि (णिजन्त) धातु को सम्प्रसारण होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—स्वप् णिच् (हेतुमति च)–स्वापि (धातुसंज्ञा)–स्वापि लुङ्–स्वापि च्लि ल्–स्वापि चङ् ल्–अ स्वापि अ ल्–अस्वाप् अ ल्–अ स्वप् अ ल्–अ सुप् सुप् अल् (सम्प्रसारण, द्वित्व)–असुसुप् अल्–असूसुप् अत्–असूषुपत् (सन्वल्लघु-नि०—। दीर्घो लघोः)। अपीपचत् की तरह।

विशेष—चङ् परे रहते ही स्वापि को सम्प्रसारण होता है—

स्वापि यक् त–स्वाप्यते (सार्वधातुके यक्)

यहाँ चङ् नहीं है। अतः सम्प्रसारण न हुआ।

स्वपिस्यमिव्येञां यङि 6.1.19

पद.—स्वपिस्यमिव्येञाम् 6.3, यङि 7.1

अनु.—सम्प्रसारणम्।

अर्थ—यङ् परे रहते स्वप्, स्यम् तथा व्ये धातुओं को सम्प्रसारण होता है।

उदा.—(1) स्वप् यङ्–सुप् य–सुप्य् सुप्य् अ–सु सुप्य् अ त–सो सुप्य शप् त–सोसुप्यते–सोषुप्यते। सन्यङोः। गुणो यङ्लुकोः।

(2) स्यम् यङ्–सिम् य–सिम्य् सिम्य् अ–सिसिम्य–सेसिम्य शप् त–सेसिम्यते।

(3) व्ये यङ्–वेवीयते। आदेच उपदेशेऽशिति।

न वशः 6.1.20

पद.—न–अव्य०, वशः 6.1

अनु.—यङि सम्प्रसारणम्।

अर्थ—यङ् परे रहते वश् धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है।

उदा.—वश् यङ्–वावश्यते।

विशेष—यङ् परे रहते ही सम्प्रसारण का निषेध हो जाता है—वश् क्त–उष्टः।

यहाँ सम्प्रसारण हो गया।

चायः की 6.1.21

पद.—चायः 6.1, की–लुप्तप्रथमान्तरूपम्।

अनु.—यङि।

अर्थ—यङ् परे रहते चाय् धातु को 'की' आदेश होता है।

उदा.—चाय् यङ्–चेकीय शप् त–चेकीयते। सूत्र में 'की' यह दीर्घ निर्देश यङ् लुक् के लिए है–चेकीतः।

स्फायः स्फी निष्ठायाम् 6.1.22

पद.—स्फायः 6.1, स्फी–लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, निष्ठायाम् 7.1

अनु.—धातोः।

अर्थ—निष्ठा संज्ञक प्रत्यय परे रहते स्फायी धातु को 'स्फी' आदेश होता है।

उदा.—स्फाय् क्त–स्फाय् त (क्तक्तवतू निष्ठा)–स्फी त सु–स्फीतः।

विशेष—निष्ठा परे रहते ही 'स्फी' आदेश होता है—

स्फाय् क्तिन् (यह निष्ठा नहीं है)–स्फाय् ति–स्फाति सु–स्फातिः।

स्त्यः प्रपूर्वस्य 6.1.23

पद.—स्त्यः 6.1, प्रपूर्वस्य 6.1

अनु.—निष्ठायाम् सम्प्रसारणम्।

अर्थ—निष्ठा परे रहते प्र पूर्वक स्त्यै धातु को सम्प्रसारण होता है।

उदा.—प्र स्त्यै क्त–प्र स्त्या त (आदेच उपदेशे०)–प्र स्ति त (सम्प्रसारण)–प्रस्तीत सु (हलः)–प्रस्तीतः।

पक्ष में—प्रस्तीमः (प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्)।

विशेष—प्र पूर्वक स्त्यै धातु को ही सम्प्रसारण होता है—

सम् स्त्यै क्त–संस्त्यानः—यहाँ स्त्यै से पूर्व 'प्र' नहीं है। अतः सम्प्रसारण न हुआ।

द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः 6.1.24

पद.—द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः 7.2, श्यः 6.1

अनु.—निष्ठायाम्, सम्प्रसारणम्।

अर्थ—द्रवमूर्त्ति तथा स्पर्श अर्थ में वर्त्तमान श्यै धातु को सम्प्रसारण होता है, निष्ठा परे रहते।

उदा.—(1) श्यै क्त–श्यै न (श्योऽस्पर्शे)–श्या न–शि न–शीन सु–शीनम् (घृतम्) अर्थात् कठोर जमा हुआ घी। द्रवमूर्ति का अर्थ है—तरल पदार्थ का कठोर होना।

(2) श्यै क्त–श्या त–शि त–शीत सु–शीतः (वायुः) अर्थात् शीतल स्पर्श युक्त वायु।

विशेष—द्रव्यमूर्त्ति तथा **स्पर्श** अर्थ में ही सूत्रोक्त सम्प्रसारण होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संश्यानो वृश्चिकः । यहाँ न तो द्रव्यमूर्त्ति अर्थ हैं तथा न ही स्पर्श अर्थ है । अतः सम्प्रसारण न हुआ ।

प्रतेश्च 6.1.25

पद.—प्रतेः 5.1, च-अव्य० ।

अनु.—श्यः निष्ठायाम् सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—निष्ठा परे रहते प्रति से पर श्यै धातु को सम्प्रसारण होता है ।

उदा.—प्रति श्यै क्त-प्रतिशि न-प्रतिशीन सु-प्रतिशीनः ।

विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य 6.1.26

पद.—विभाषा 1.1, अभ्यवपूर्वस्य 6.1

अनु.—श्यः निष्ठायाम् सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—निष्ठा परे रहते अभि या अव पूर्वक श्यै धातु को सम्प्रसारण विकल्प से होता है ।

उदा.—अभिशीनम्, अभिश्यानम् ।
अवशीनम्, अवश्यानम् ।

शृतं पाके 6.1.27

पद.—शृतम् 1.1, पाके 7.1

अनु.—विभाषा निष्ठायाम् ।

अर्थ—'पाक' अर्थ में 'शृत' शब्द का विकल्प से निपातन किया जाता है । यथा— शृतं हवि ।

उदा.—श्रपिता-श्रा णिच् क्त-श्रपित टाप् सु ।
पुक्, णिच् लोप, इट्, ह्रस्व ।

प्यायः पी 6.1.28

पद.—प्यायः 6.1, पी-लुप्तप्रथमान्तरूपम् ।

अनु.—विभाषा निष्ठायाम् ।

अर्थ—निष्ठा परे रहते प्यायी धातु को विकल्प से पी आदेश होता है ।

यह व्यवस्थित विभाषा है । अनुपसर्ग प्या धातु को नित्य पी आदेश होता है तथा सोपसर्ग धातु को नहीं होता है ।

उदा.—प्याय् क्त-पी त-पीन सु-पीनम् (ओदितश्च) ।
अप्या क्त-आप्यात सु-आप्यातः ।

यहाँ 'पी' आदेश नहीं हुआ है ।

लिड्यङोश्च 6.1.29

पद.—लिड्यङोः 7.2, च-अव्य० ।

अनु.—प्यायः पी ।

अर्थ—लिट् तथा यङ् परे रहते प्याय् धातु को पी आदेश होता है ।

उदा.—आ प्या त-अप्या एश् (लिटस्तझयोरेश्०) लिटि धातोरनभ्यासस्य' से प्राप्त द्वित्व को बाधकर परवर्ती 'लिड्यङोश्च' से पी आदेश हुआ । आ पी एश्-अब पुनः द्वित्व प्राप्त हुआ । तब सकृद् गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितम्, तद् बाधितम् एव (परि०) से द्वित्व का बाध हुआ । 'पुनः प्रसंगविज्ञानात् सिद्धम्' (परि०) से द्वित्व हुआ । आ पी पी ए-आपि पी ए-प्राप्त यण् को बाधकर 'अचिश्नु०' से इयङ् आदेश की प्राप्ति हुई । इसे बाधकर 'एरनेकाचो०' से यण् हुआ । आपिप्ये (यण्) ।

आ प्या यङ्-आपीय-आपीपीय-आपेपीय शप् त-आपेपीयते (गुणो यङ्०) ।

विभाषा श्वेः 6.1.30

पद.—विभाषा 1.1, श्वेः 6.1

अनु.—लिड्यङोः, सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—लिट् और यङ् परे रहते श्वि धातु को विकल्प से सम्प्रसारण होता है ।

यहाँ प्राप्ताप्राप्त विभाषा है । लिट् लकार में कित् प्रत्ययों (द्विव०, बहुव०) के परे रहते नित्य सम्प्रसारण प्राप्त था । प्रकृत सूत्र के द्वारा विकल्प कहा गया है । अकित् प्रत्ययों (एक०) के तथा यङ् के परे रहते सम्प्रसारण प्राप्त न था । सो विकल्प कहा गया है ।

उदा.—(1) श्वि णल् (लिट् प्र० पु० एक०) द्वित्वाऽपेक्षया पर होने से पाक्षिक सम्प्रसारण हुआ । शु शु अ-शुशाव ।

पक्ष में—श्वि श्वि अ-शि श्वै अ-शिश्वाय ।

(2) श्वि अतुस् (लिट् प्र पु० द्विव०)-शु शु अतुस्-शु शुवतुः ।

इसी प्रकार—शुशुवुः (भट्टि० 14.79) ।

पक्ष में—श्वि अतुस्-शि श्वि अतुस्-शिश्वियतुः । इसी प्रकार-शिश्वियुः (भट्टि० 14.79) ।

(3) श्वि यङ्-शु शु य-शोशूय शप् त-शोशूयते ।

पक्ष में—श्वि श्विय-शि श्विय-शेश्वी य शप् त-शेश्वीयते । द्र० शेश्वीयमानः (भट्टि० 3.30) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णौ च संश्चङोः 6.1.31

पद.—णौ 7.1, च-अव्य०, संश्चङोः 7.2

अनु.—विभाषा श्वेः सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—सन् या चङ् हैं परे जिस णिच् के, ऐसे णिच् के परे रहते श्वि धातु को विकल्प से सम्प्रसारण होता है ।

उदा.—(1) श्वि णिच् (धातु संज्ञा)-श्वि णिच् सन्-श्वि इ स-श् उ इ इ स (सम्प्रसारण)-शु इ स-शौ इ स (अचो ञ्णिति)-शावि इट् स (इट्)-शु शावि इस (सन्यङोः । द्विर्वचनेऽचि)-शुशावे इस (आर्धधातुक गुण)-शु शावय् इस शप् तिप्-शुशावयिषति ।

पक्ष में—श्वि णिच् सन्-शि श्वि इ स-शिश्वायि इट् स-शिश्वाययिषति ।

(2) श्वि णिच् लुङ् (च्लि, चङ्, अट्)-अ श्वि इ अल्-अशु इ अल् (सम्प्रसा०) अ शा वि अल् (वृद्धि, आव्)-अ शु शाव् इ अल् (चङि । द्विर्वचनेऽचि इति रूपातिदेशः)-अ शू शाव् इ अल्-अशू शाव् अल्-अशू शव् अ तिप्-अशूशवत् ।

पक्ष में—अश्वि इ चङ् ल्—इस दशा में—अ शि श्वाय् इ अ तिप्-अ शिश्वाय् अत्-अशिश्वयत् ।

ह्वः सम्प्रसारणमभ्यस्तस्य च 6.1.32

पद.—ह्वः 6.1, सम्प्रसारणम् 1.1, अभ्यस्तस्य 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—णौ च संश्चङोः ।

अर्थ—सन् या चङ् है परे जिसके, ऐसे णिच् के परे रहते ह्वे धातु को सम्प्रसारण होता है तथा अभ्यस्त का निमित्त ह्वे धातु को भी सम्प्रसारण होता है ।

उदा.—(1) ह्वे णिच् सन्-जुहावयिषति (ह्वे को सम्प्र०) ।

(2) जुहाव (अभ्यस्तस्य सम्प्र०) ।

(3) जोहूयते (यङि सम्प्र०) ।

इसी प्रकार—अजुहूषत् (भट्टि० 17.19) ।

(4) जुहूषति (सनि स्य सम्प्र०) ।

(5) ह्वे णिच् चङ् ल्-अजूहवत् ।

बहुलं छन्दसि 6.1.33

पद.—बहुलम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—ह्वः सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—वेद के विषय में ह्वे धातु को बहुलता से सम्प्रसारण होता है ।

'बहुलम्' पद सभी विधियों के व्यभिचारार्थ होता है ।

उदा.—इन्द्रा ... ... हुवे (ऋ० 5.46.3, ऋ० 1.17.7)

ह्वे लट्-ह्व शप् इट्-हु अ इ-हुवे ।

ह्वयामि विश्वान् देवान् (ऋ० 7.34.8) ।

यहाँ सम्प्रसारण न हुआ ।

चायः की 6.1.34

पद.—चायः 6.1, की-लुप्तप्रथमान्तरूपम् ।

अनु.—बहुलम् छन्दसि ।

अर्थ—वेद के विषय में चाय् धातु को बहुलता से 'की' आदेश होता है ।

उदा.—नि चिक्युरन्यम् (ऋ० 1.164.38) । निच्चाय (मा०सं० 11.1) ।

अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताः श्रितमाशीराशीर्त्ताः 6.1.35

पद.—अपस्पृधेथाम्, आनृचुः, आनृहुः, चिच्युषे, तित्याज-सर्वे तिङन्ताः । श्राताः 1.3, श्रितम् 1.1, आशीर् 1.1, आशीर्त्ताः 1.3

अनु.—छन्दसि सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—वेद के विषय में अपस्पृधेथाम् आदि नौ शब्द निपातन सिद्ध हैं ।

उदा.—(1) स्पर्ध् आथाम् (लङ्)-स्पर्ध् स्पर्ध् आथाम् (निपातनात्)-पस्पर्ध् आथाम्-पस्पृध् आथाम् (निपातनात् सम्प्रसारणं पकारोत्तरवर्त्ति-अकारस्य लोपश्च)-अ प स्पृध् अ आथाम्-अपस्पृधेथाम् (मै० 2.4.4)। (आतो ङितः । लोपो व्योर्वलि) कुछ व्याख्याकारों के अनुसार-अप स्पर्ध् अ आथाम् -अपस्पृधेथाम् (द्र० काशिका० 6.1.36) । इस पक्ष में अट् का अभाव 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' से होगा ।

लोक में-अस्पर्धेथाम्, अपास्पर्धेथाम् ।

(2) अर्च् उस् (लिट् प्र०पु०बहु०)-आनृचुः (रेफस्य सम्प्रसारणम् अकारलोपश्च निपातनात्) लिटि धातोरन० । अत आदेः । तस्मान्नुड् द्विहलः । भाषा में-आनर्चुः ।

ऋ० 1.19.4

(3) इसी प्रकार-आनृहुः । भाषा में-आनर्हुः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) च्यु थास् (लिट् म०पु०एक०)-च्यु से (थासः से)-च्यु च्यु से (द्वित्व)-चिच्यु से (निपातन से अभ्यास के सम्प्रसारण तथा प्राप्त इट् का अभाव)-चिच्युषे (ऋ० 4.30.22) लोक में-चुच्युविषे ।

(5) त्यज् णल्-त्यज् त्यज् अ-ति त्यज् अ-तित्याज निपातनात् (अभ्यासस्य सम्प्रसारणम्) । भाषा में-तत्याज ।

तित्याज (ऋ० 10.71.6, तै०आ० 1.3.1) ।

(6) श्री क्त-श्रीत जस्-श्राताः (निपातनात् श्राभावः) । मै० 1.9.1

(7) श्री क्त-श्रित (निपातनात्) सु-श्रितम् ।

(8) आ श्री क्विप्-आ शीर् (निपातनात्) जस्-आशीरः। (शौ० 2.29.3 आशीः)।

आ श्री क्त-आशीर् त-आशीर्त (रदाभ्यां निष्ठातो० इति प्राप्तस्य नत्वस्य निपातनात् निषेधः)-आशीर्त जस्-आशीर्त्ताः (ऋ० 8.2.9) ।

न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् 6.1.36

पद.—न-अव्य०, सम्प्रसारणे 7.1, सम्प्रसारणम् 1.1

अर्थ—सम्प्रसारण परे होने पर पूर्व यण् को सम्प्रसारण नहीं होता है ।

इस सूत्र से ज्ञापित होता है कि जहाँ अव्यवहित या व्यवहित दो यण् हों तो प्रथम अन्त्य यण् को सम्प्रसारण होता है । यदि प्रथम पूर्व यण् को सम्प्रसारण किया जायेगा तो प्रकृत सूत्र व्यर्थ हो जाता है अर्थात् पूर्व यण् को सम्प्रसारण किये जाने की दशा में सम्प्रसारण परे रहते क्वचिदपि सम्प्रसारण प्राप्त न होगा । तब निषेध किस का होगा?

उदा.—(1) व्यध् क्त-व् इ अ ध् त-व् इध् त (ग्रहिज्याव्ययिव्यधि०)-विध्त (न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्)-विध् ध (झषस्तथो०)-विद्ध (झलां जश् झशि)-विद् धः (सु) । विद्धः । इसी प्रकार—विव्याध (वाम० 6.43) व्यध् लिट् प्र०पु०एक० ।

(2) विचितः (व्यच् क्त-पूर्ववत्) ।

(3) संवीतः (सम् व्ये क्त-पूर्ववत्) ।

(4) युवन् शस्-युवन् अस् (श्वयुवमघोनाम्०)-यु उन् अस्-यून् अस् (अकः सवर्णे० । श्वयुवमघोना० । न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्)-यूनः ।

विशेष—1. वेद में ऋच् परे रहते त्रि शब्द का सम्प्रसारण और उत्तरपद का लोप होता है[1]—

तिस्रा ऋचो यस्मिन् तत्-त्रि ऋच्-तृ ऋच्-तृच् अ (ऋक्पूरब्धू०) सु-तृचम् ।

2. वेद के विषय में मतुप् परे रहते **रयि** शब्द को बहुलता से सम्प्रसारण होता है[2]—

रयि मत्-रि मत्-रेमत्-रेवत् सु-रेवान् (ऋ० 1.18.2, तां० 1.10.2) रयिमान् (सम्प्रसारण न हुआ) ।

द्र० मा सं० 3.40, शत० 10.6.1.5 ।

लिटि वयो यः 6.1.37

पद.—लिटि 7.1, वयः 6.1, यः 6.1

अनु.—न सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—लिट् लकार परे रहते वय् के यकार को सम्प्रसारण नहीं होता है ।

उदा.—वय् णल्-वय् वय् अ (द्वत्व, लिट्यभ्यासस्योभये० ग्रहिज्यावयि० से य् को प्राप्त सम्प्रसारण का निषेध)-व व य् अ-उ वय् अ (पुनः व् को सम्प्रसारण)-उवाय ।

वश्चाऽस्याऽन्यतरस्यां किति 6.1.38

पद.—वः 1.1, च-अव्य०, अस्य 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1, किति 7.1

अनु.—लिटि वयो यः ।

अर्थ—कित् लिट् परे रहते इस वय् के यकार के स्थान पर वकार आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.—वय् अतुस् (असंयोगाल्लिट्०)-उ उय् अतुस्-ऊय् अतुस्-ऊव् अतुस्-ऊवतुः ।

पक्ष में—ऊयतुः । इसी प्रकार-ऊयुः (भट्टि० 14.84) ।

विशेष—सूत्र में **अस्य** पद के द्वारा पूर्व सूत्र के द्वारा विहित सम्प्रसारण निषेध का निर्देश है । तब प्रतिषेध किए हुए सम्प्रसारण वाले यकार को होने वाले वकार को भी सम्प्रसारण नहीं होता है ।

वेञः 6.1.39

पद.—वेञः 6.1

अनु.—लिटि न सम्प्रसारणम् ।

1. महा० 6.1.37 (वा०) ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्छन्दसि ।

2. महा० 6.1.37 (वा०) रयेर्मतौ बहुलम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—लिट् परे रहते वे धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है।

कित् लिट् में 'वचिस्वपियजा०' से सम्प्रसारण प्राप्त था। पित् लिट् में 'लिट्यभ्यास०' से सम्प्रसारण प्राप्त था। अतः दोनों दशाओं में प्रकृत सूत्र से निषेध होता है।

उदा.—वे णल्–वा णल्–वा औ–वावा औ–ववौ। आत औ णलः। लिटि धातोरनभ्या०।

ल्यपि च 6.1.40

पद.—ल्यपि 7.1, च–अव्य०।

अनु.—वेञः न सम्प्रसारणम्।

अर्थ—ल्यप् परे रहते वे धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है।

उदा.—प्र वे त्त्वा–प्र वा ल्यप् (आदेच उपदेशे०। ल्यप् आदेश। स्थानिवद्भाव से ल्यप् कित् है। वचिस्वपियजा० से सम्प्रसारण)–प्रवाय।

ज्यश्च 6.1.41

पद.—ज्यः 6.1, च–अव्य०।

अनु.—ल्यपि न सम्प्रसारणम्।

अर्थ—ल्यप् परे रहते ज्या धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है।

उदा.—प्र ज्या त्त्वा–प्र ज्या ल्यप् (ग्रहिज्या०)–प्रज्याय।

व्यश्च 6.1.42

पद.—व्यः 6.1, च–अव्य०।

अनु.—ल्यपि न सम्प्रसारणम्।

अर्थ—ल्यप् परे रहते व्ये धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है।

उदा.—प्र व्ये त्त्वा–प्र व्याल्यप् (आदेच उपदेशे०)–प्रव्याय।

विभाषा परेः 6.1.43

पद.—विभाषा 1.1, परेः 5.1

अनु.—व्यः ल्यपि न सम्प्रसारणम्।

अर्थ—ल्यप् परे रहते परि उपसर्ग से उत्तर जो व्ये धातु, उसे विकल्प से सम्प्रसारण नहीं होता है।

उदा.—परिव्ये त्त्वा–परि व्ये ल्यप्–परि व्या ल्यप् (आदेच उपदेशे०)–परि वि आय–परि विय–परिवीय (हलः)।

आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.44

पद.—आत् 1.1, एचः 6.1, उपदेशे 7.1, अशिति 7.1

अनु.—धातोः।

अर्थ—उपदेशे अवस्था में जो एजन्त (एच् वर्ण है अन्त में जिसके) धातु के अन्त्य अल् के स्थान पर आकार आदेश होता है, शित् से अतिरिक्त प्रत्यय परे रहते। एच् प्रत्याहार में चार वर्ण होते हैं—ए, ओ, ऐ, औ।

प्रकृतसूत्र के द्वारा लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ्, णिच्, सन्, यङ् तथा शिद्भिन्न प्रत्ययों में एजन्त धातु (यथा –धे) का स्वरूप आकारान्त (यथा–धा) हो जाता है।

उदा.—(1) धे तृच्–धातृ सु–धाता।

(2) नि शो तृच्–निशातृ सु–निशाता।

(3) ग्लै तृच्–ग्लाता।

विशेष—1. 'एचः' का प्रयोजन है कि उपदेश में जो एजन्त धातु, उसे ही सूत्रोक्त आकार अन्तादेश होता है—

कृ तृच् (यह एजन्त नहीं है। अतः आकार न हुआ)–कर् तृ सु–कर्त्ता।

2. 'उपदेशे' का प्रयोजन है कि **उपदेश** में जो एजन्त धातु, उसे आकार होता है—

चि तृच्–चे तृ (गुण) अब 'चे' यह एजन्त है परन्तु उपदेश अवस्था में यह धातु इकारान्त है। अतः आकार नहीं होता है। चेता।

3. 'अशिति' का प्रयोजन है कि **शित् से अन्य प्रत्यय** परे रहते ही एजन्त धातु को आकार अन्तादेश होता है—ग्लै शप् तिप्–'ग्लै' धातु उपदेश में एजन्त है, परन्तु इससे परे शप् है, जो शित् है। अतः आकार न हुआ–ग्लायति।

4. 'अशिति' के 'शित्' अंश में कर्मधारय समास है (द्र०–श् एव इत्–शित्)। यदि यहाँ 'श् इत् यस्य सः शित्' इस प्रकार बहुव्रीहि मानते हैं तो–म्लै त (भाववाच्य में लिट् प्र०पु० एक०) इस दशा में 'त' को होने वाला 'एश्' भी शित् रहेगा। तब धातु को आकार आदेश न होगा। यदि 'शित्' अंश में कर्मधारय मानते हैं तो तदादि विधि करके 'इत् संज्ञक शकारादि प्रत्यय न हो तो आकार होता है' ऐसा अर्थ करेंगे। तब एश् के इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय न होने से इसके परे रहते धातु को निर्बाध आकार हो जायेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्ला एश्-म्ला म्ला ए-म म्ला ए-मम्ल् ए-मम्ले ।

5. 'अशिति' में प्रसज्य प्रतिषेध है । यदि इसमें पर्युदास प्रतिषेध मानते हैं तो शित् से अतिरिक्त शित् सदृश (अर्थात् प्रत्ययों) में इसकी प्रवृत्ति हो सकेगी । यथा—

सु ग्लै से 'आतश्चोपसर्गे' के द्वारा तब तक 'क' प्रत्यय नहीं होगा, जब तक धातु आकारान्त न हो तथा धातु तब तक आकारान्त नहीं होगी, जब तक कोई प्रत्यय इससे आगे न आ जाए । इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष उपस्थित होता है । यदि अशिति में प्रसज्यप्रतिषेध मानते हैं तो यहाँ कोई दोष नहीं आता । सु ग्ला क-सुग्ल सु-सुग्लः । यह आत्त्व आदेश निर्निमित्त है । अतः यह प्रत्यय के आने से पूर्व ही हो जाता है ।

6. 'आत्' पद में तकार उच्चारणार्थ है ।

न व्यो लिटि 6.1.45

पद.—न-अव्य०, व्यः 6.1, लिटि 7.1

अनु.—आत् एचः उपदेशे ।

अर्थ—उपदेश अवस्था में जो एजन्त व्ये धातु उसे आकार अन्तादेश नहीं होता है, लिट् परे रहते ।

उदा.—व्ये णल्-व्ये व्ये अ (आकार न हुआ)-वि व्ये अ (लिट्यभ्यासस्यो० । न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्)-वि व्यै अ -विव्याय । संविव्ययुः (भट्टि० 14.74) ।

स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि 6.1.46

पद.—स्फुरतिस्फुलत्योः 6.2, घञि 7.1

अनु.—आत् एचः ।

अर्थ—घञ् परे रहते स्फुर् और स्फुल् धातुओं के एच् को आकार होता है ।

स्फुर् व स्फुल् को जहाँ गुण होता है, वहाँ इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है ।

उदा.—वि स्फुर् घञ्-वि स्फोर् अ-विस्फार् अ सु-विस्फारः ।

'स्फुरतिस्फुलत्योर्नि०' से पाक्षिक षत्व-विष्फारः । इसी प्रकार-विस्फालः, विष्फालः ।

क्रीङ्जीनां णौ 6.1.47

पद.—क्रीङ्जीनाम् 6.3, णौ 7.1

अनु.—आत् एचः ।

अर्थ—क्रीञ्, इङ् तथा जि धातुओं के एच् के स्थान पर आकार आदेश होता है, णिच् परे रहते ।

उदा.—क्री णिच्-क्रे इ-क्रा इ-क्रा पुक् इ शप् तिप्-क्रापयति ।

अधि इ णिच्-अधि ए इ-अधि आपुक् इ-अध्याप् इशप् तिप्-अध्यापयति ।

जि णिच्-जे इ-जा पुक् इ शप् ति-जापयति ।

सिध्यतेरपारलौकिके 6.1.48

पद.—सिध्यतेः 6.1, अपारलौकिके 7.1

अनु.—णौ आत् एचः ।

अर्थ—यदि सिध् धातु पारलौकिक अर्थ में वर्त्तमान न हो तो इसके एच् को आकार आदेश होता है, णिच् परे रहते ।

उदा.—अन्नं साधयति-सिध् णिच्-सेध् इ-साध् इ शप् तिप्-साधयति ।

विशेष—तपस्तापसं सेधयति यहाँ पारलौकिक अर्थ में सिध् धातु वर्त्तमान है । अतः आकार न हुआ ।

मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च 6.1.49

पद.—मीनातिमिनोतिदीङाम् 6.3, ल्यपि 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—उपदेशे एचः आत् ।

अर्थ—उपदेश अवस्था में ही ल्यप् परे रहते तथा एच् भाव के विषय में मीञ्, डुमिञ् तथा दीङ् धातुओं को आकार अन्तादेश होता है ।

'ल्यपि' में विषय सप्तमी है । कारण कि उपदेश अवस्था में ल्यप् परे हो नहीं सकता । चूँकि उपदेश अवस्था में मी, मि तथा दी धातुओं में एच् की प्राप्ति सम्भव नहीं है । फलतः 'एचः' को इन धातुओं का विशेषण नहीं मान सकते । अतः 'एचः' पद को भी 'विषये' से सम्बद्ध कर लिया जाता है । 'एच् भाव के विषय में' इसका अर्थ है 'एच् को उत्पन्न करने वाले प्रत्यय के विषय में' ।

इसका दूसरा लाभ यह है कि 'भावे' के द्वारा 'उप दी' से घञ् होकर युच् आगम करके 'उपदाय' रूप बन जाता है, अन्यथा 'एरच्' से अच् होकर अनिष्ट रूप बन जायेगा । एच् भाव पूर्वसूत्र से प्राप्त होता है । अशित् प्रत्यय ही एच् भाव निमित्तक है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—(1) प्र मी ल्यप्–प्रमाय ।

(2) नि मि ल्यप्–निमाय ।

(3) उप दी ल्यप्–उपदाय ।

(4) प्र मी यहाँ हमें लुट् की विवक्षा है । लुट् के होने पर 'त' आदि के परे रहते धातु को आर्धधातुक गुण होकर एकार (अर्थात् एच्) हो सकता है । अतः लुट् एज् निमित्तक हुआ । इसकी विवक्षा में ही आकार हो गया । प्र मा लुट्–प्रमात–प्रमाता (तास् आदि होकर) ।

(5) नि मा लुट्–निमाता ।

(6) उप दा लुट्–उपदाता ।

विभाषा लीयतेः 6.1.50

पद.—विभाषा 1.1, लीयतेः 6.1

अनु.—ल्यपि उपदेशे आत् एचः ।

अर्थ—उपदेश अवस्था में ल्यप् के विषय में तथा एच् भाव के विषय में ली धातु को विकल्प से आकार अन्तादेश होता है ।

यहाँ लीङ् व ली दोनों धातुओं का ग्रहण है ।

उदा.—(1) वि ली (लुट्)–वि ला ल्–विलात–विलाता (तास् आदि होकर) ।

पक्ष में—विलेता ।

(2) वि ली (ल्यप्)–वि ला ल्यप्–विलाय ।

पक्ष में—विलीय ।

(3) एषु आलीयते इति–आलानम् (भट्टि० 5.26) ।

विशेष—खल् और अच् प्रत्ययों के परे रहते निमी, मि तथा ली धातुओं को आकार–अन्तादेश नहीं होता है[1]—

ईषत्प्रमयः, ईषन्निमयः, ईषद्विलयः ।

खिदेश्छन्दसि 6.1.51

पद.—खिदेः 6.1, छन्दसि 7.1

अनु.—विभाषा आत् एचः ।

अर्थ—वेद के विषय में खिद् धातु के एच् के स्थान में विकल्प से आत्व होता है ।

उदा.—खिद् लिट्–खेद् ल्–खाद् ल्–खाद् खाद् ल्–खा खाद् ल्–छ खाद् ल्–च खाद् णल्–चखाद ।

पक्ष में—चिखेद ।

अपगुरो णमुलि 6.1.52

पद.—अपगुरः 6.1, णमुलि 7.1

अनु.—विभाषा आत् एचः ।

अर्थ—णमुल् परे रहते अप पूर्वक गुर् धातु के एच् के स्थान पर आकार अन्तादेश होता है ।

उदा.—अप गुर् णमुल् (आभीक्ष्ण्ये णमुल् च)–अप गोर् अम्–अप गार् अम् (आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः–वा०)–अपगार-मपगारम् ।

पक्ष में—अपगोरमपगोरम् ।

चिस्फुरोर्णौ 6.1.53

पद.—चिस्फुरोः 6.2, णौ 7.1

अनु.—विभाषा आत् एचः ।

अर्थ—णिच् परे रहतें चि तथा स्फुर् धातुओं के एच् के स्थान पर आकार आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.—चि णिच्–चै इ–चा इ–चापुक् इ (अर्तिह्वीव्ली०)–चापि शप् तिप्–चापयति ।

पक्ष में—चि णिच्–चै इ शप् ति–चाययति । अपुस्फुरत् (भट्टि० 15.89)। पक्ष में 'आत्' होता है ।

प्रजने वीयतेः 6.1.54

पद.—प्रजने 7.1, वीयते 6.1

अनु.—विभाषा णौ आत् एचः ।

अर्थ—प्रजन अर्थ में वर्त्तमान वी धातु के एच् को आकार अन्तादेश विकल्प से होता है, णिच् परे रहते ।

उदा.—वी णिच्–वै इ–वा इ–वा पुक् इ शप् तिप्–वापयति ।

वी णिच्–वाययति ।

बिभेतेर्हेतुभये 6.1.55

पद.—बिभेतेः 6.1, हेतुभये 7.1

अनु.—विभाषा णौ आत् एचः ।

अर्थ—हेतु से भय अर्थ में वर्त्तमान 'भी' धातु के एच् के स्थान पर विकल्प से आकार अन्तादेश होता है, णिच् परे रहते ।

उदा.—भी णिच्–भै इ–भा इ–भा प् इ शप् त–भापयते । भीस्म्योर्हेतुभये ।

1. महा० 6.1.50 (वा०) निमीमिलियां खलचोः प्रतिषेधो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी णिच्-भीष् इ शप् त-भीषयते ।

विशेष—हेतु से भय अर्थ में वर्त्तमान 'भी' धातु के एच् को आकार होता है—

कुञ्चिकयैनं भाययति-यहाँ पारिभाषिक कर्त्ता से भय नहीं है, अपितु कारण से भय है । अतः आकार अन्तादेश न हुआ ।

नित्यं स्मयतेः 6.1.56

पद.—नित्यम् 1.1, स्मयतेः 6.1

अनु.—हेतु भये णौ आत् एचः ।

अर्थ—हेतुभय अर्थ में वर्त्तमान स्मि धातु के एच् के स्थान पर नित्य आकार अन्तादेश होता है, णिच् परे रहते ।

उदा.—वि स्मि णिच्-विस्मायते । भीस्म्योर्हेतुभये । विस्मापयेताम् (भट्टि० 17.84)

विशेष—भय अर्थ में ही सूत्रोक्त आकार होता है—कुञ्चिकयैनं विस्मापयति-यहाँ प्रवृत्ति नहीं होती है ।

सृजिदृशोर्झल्यमकिति 6.1.57

पद.—सृजिदृशोः 6.2, झलि 7.1, अम् 1.1, अकिति 7.1

अनु.—धातोः ।

अर्थ—कित् से भिन्न झलादि प्रत्यय परे रहते सृज् और दृश् धातुओं को अम् आगम होता है ।

अम् के मकार की इत्संज्ञा है । मित् होने से अन्त्य अच् से पर यह आगम होगा ।

उदा.—सृज् तृच्-सृ अम् ज् तृ-स्र ज् तृ (यण्)-स्र ष् तृ (व्रश्चभ्रस्ज०) सु-स्रष्टा (ष्टुत्व) तृच् अकित् झल् प्रत्यय है ।

इसी प्रकार-द्रष्टा । अद्राक्षीत् (भट्टि० 15.7) ।

विशेष—'झलि' अर्थात् **झल् प्रत्यय परे** रहते ही सूत्रोक्त अम् आगम होता है—

सृज् ल्युट्-सर्जनम् यहाँ ल्युट् अकित् है, परन्तु झलादि नहीं है । अतः अम् न हुआ । इसी प्रकार-दर्शनम् ।

'अकिति' अर्थात् **अकित** प्रत्यय परे रहते ही सूत्रोक्त अमागम होता है—

सृज् क्त-सृष्टः । दृष्टः । यहाँ क्त झलादि तो है, परन्तु अकित् नहीं है । अतः अम् न हुआ ।

अनुदात्तस्य चर्दुपधस्याऽन्यतरस्याम् 6.1.58

पद.—अनुदात्तस्य 6.1, च-अव्य०, ऋदुपधस्य 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—झलि अकिति अम् ।

अर्थ—उपदेश में जो अनुदात्त तथा ऋकार उपधा वाली धातु, उसे अम् आगम विकल्प से होता है कित् भिन्न झलादि प्रत्यय परे रहते ।

उदा.—तृप् तृच्-यह उपदेश में अनुदात्त है तथा उपधा में ऋकार है । इससे परे अकित् झल् (तृच्) प्रत्यय है । अम् हुआ । त् र प् तृ-त्रप् तृ सु-त्रप्ता ।

पक्ष में—तृप् तृच् (रधादिभ्यश्च से पाक्षिक इट्)-तर्प्ता, तर्पिता ।

इसी प्रकार-द्रप्ता, दर्पिता, दर्प्ता ।

कृष् तृच्-क्रष्टा, कर्ष्टा ।

इसी प्रकार—अक्राक्षीत् (भट्टि० 15.47)।

विशेष—1. 'अनुदात्तस्य' अर्थात् उपदेश में **अनुदात्त** हो, उस धातु को सूत्रोक्त अम् होता है—

वृह् तृच्-वृढ् तृ (हो ढः)-वर्ढ् तृ (गुण)-वर्ढ् ढ् (झषस्तथो०)-वर्ढ् (ढो ढे) सु-वर्ढा । **वह्** धातु उपदेश में उदात्त है । अतः झलादि कित् परे रहते भी अम् न हुआ ।

2. 'ऋदुपधस्य' अर्थात् **उपधा** में **ऋकार** हो, ऐसी धातु को ही सूत्रोक्त अम् होता है—भिद् तृच्-भेत्ता । यह उपदेश में अनुदात्त धातु है तथा अकित् झलादि प्रत्यय परे हैं, परन्तु उपधा में ऋकार नहीं है । अतः अम् न हुआ ।

3. 'झलि' अर्थात् **झलादि प्रत्यय** परे रहते अम् होता है—

तृप् ल्युट्-तर्पणम् । तृप् धातु उपदेश में अनुदात्त है, ऋकार उपधा वाली है तथा इससे परे अकित् प्रत्यय है, परन्तु वह झलादि, नहीं है । अतः अम् न हुआ ।

4. 'अकिति' अर्थात् **कित् भिन्न** प्रत्यय परे रहते सूत्रोक्त अम् आगम होता है—

तृप् क्त-तृप्तः । धातु उपदेश में अनुदात्त है, ऋकार उपधा वाली है, इससे परे झलादि प्रत्यय है, परन्तु वह अकित् नहीं है । अतः अम् न हुआ ।

5. 'उपदेशे' अर्थात् **उपदेश** में जो अनुदात्त, ऐसी धातु से अम् आगम होता है—

सृप् तुमुन्-तुमुन् प्रत्यय के परे रहते सृप् धातु उदात्त हो जाती है (ञ्नित्यादिर्नित्यम्) । चूँकि धातु उपदेश काल में अनुदात्त है । अतः अम् हो गया । स्रप्तुम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीर्षंश्छन्दसि 6.1.59

पद.—शीर्षन् 1.1, छन्दसि 7.1

अर्थ—वेद के विषय में शीर्षन् शब्द का निपातन किया जाता है।

चूँकि वेद में 'शिरस्' शब्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है। अतः 'शीर्षन्' को 'शिरस्' का आदेश नहीं माना जा सकता, अपितु 'शीर्षन्' एक स्वतन्त्र प्रकृति है।

उदा.—शीर्ष्णा (ऋ० 1.116.12)।
शीर्ष्णे (मा०सं० 37.3)।

ये च तद्धिते 6.1.60

पद.—ये 7.1, च-अव्य०, तद्धिते 7.1

अनु.—शीर्षन्।

अर्थ—यकारादि तद्धित प्रत्यय परे रहते शिरस् को शीर्षन् आदेश होता है।

उदा.—शिरसि भवः-शीर्षण्यः।

शिरस् यत् (शरीरावयवाच्च)-शीर्षन् यत् (नस्तद्धिते। ये चाऽभावकर्मणोः)-शीर्षण्य सु-शीर्षण्यः।

विशेष—1. 'तद्धिते' अर्थात् तद्धित प्रत्यय परे रहते ही उक्त आदेश होता है—

शिर इच्छति-शिरस्यति यहाँ 'सुप आत्मनः क्यच्' से क्यच् हुआ जो यकारादि तो है, परन्तु तद्धित नहीं है। अतः 'शीर्षन्' न हुआ।

2. केश अर्थ में शीर्षन् आदेश विकल्प से होता है[1]—

शीर्षण्याः केशाः, शिरस्याः केशाः।

पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु 6.1.61

पद.—पद्दन् ... आसन्-एतानि सर्वाणि पृथक् पृथक् लुप्तप्रथमाविभक्तिकरूपाणि, शस्प्रभृतिषु 7.3 छन्दसि (मण्डूकप्लुतगत्या)।

अर्थ—चूँकि सूत्र में स्थानी का उल्लेख नहीं है। अतः अर्थ के अनुसार तथा आदेश के अनुरूप स्थानी की कल्पना करके सूत्रार्थ होता है—पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत्, शकृत्, उदक तथा आस्य-इन तेरह शब्दों के स्थान पर यथासंख्य करके पद्, दत्, नस्, मास्, हृत्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यकन्, शकन्, उदन् तथा आसन्—ये तेरह आदेश होते हैं, शस् प्रभृति प्रत्ययों के परे रहते।

काशिकाकार लिखते हैं कि कुछ व्याख्याकारों के मत में यहाँ 'छन्दसि' पद का अनुवर्त्तन होता है। द्र० काशिका-6.1.61 केचिदत्र छन्दसीत्यनुवर्त्तयन्ति। अपरे पुनरविशेषेणेच्छन्ति।[2]

उदा.—(1) निपदश्चतुरो जहि-निपाद शस्-निपद् अस् निपदः।

(2) या दतो धावति तस्यै श्यावदन् (तै०सं० 2.5.1.7) दन्त शस्-दत् अस्-दतः।

(3) सूकरस्त्वखन् नसा (शौ० 2.27.2)-नासिका टा-नस् आ-नसा।

(4) मासि त्वा पश्यामि चक्षुषा (तै० सं० 2.5.6.6) मास ङि-मास् इ-मासि।

(5) हृदा पूतं मनसा जातवेदो (शौ० 4.39) हृदय टा-हृद् आ-हृदा।

(6) अमावास्यायां निशि यजेत-निशा ङि-निश् इ-निशि।

(7) आसिक्तोऽस्नावरोहति (मै०सं० 3.15.8) असन टा-असन् टा (अल्लोपोऽनः)-अस्ना।

(8) या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि (ऋ० 1.162.13) यूष शस्-यूषन् अस्-यूष्न् अस् (अलोप)-यूष्णः।

(9) यत्ते दोष्णो दौर्भाग्यम्-(मै०सं० 3.10.3) दोष ङस्-दोषन् अस्-दोष्न् अस्-दोष्णः।

(10) यक्नोऽवद्यति। यकृत् शस्-यकन् अस्-यक्न् अस्-यक्नः।

(11) शक्नोऽवद्यति (शौ० 12.4.4)-शकृत् शस्-शकन् अस्-शक्नः।

(12) उद्नो दिव्यस्य नोदेहि (तै०सं० 2.4.8.2) उदक शस्-उदन् अस्-उद्नः।

(13) आसनि (ऋ० 1.75.1) किं लभे मधूनि-आस्य ङि-आसन् इ-आसनि।

---

1. महा० 6.1.61 (वा०) वा केशेषु।

2. काशिकाकारस्यैतद् वचनम् अनुसृत्याऽस्माभिः 'मण्डूकप्लुतगत्या छन्दसिपदम् अनुवर्त्तत' इति प्रदर्शितम्।
—ईश्वरचन्द्रः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. शस् प्रभृतिषु अर्थात् **शस् प्रकार के प्रत्ययों** के परे रहते ही सूत्रोक्त आदेश होते हैं—पादौ–यहाँ 'औ' विभक्ति है जो शस्प्रभृति नहीं है। अतः 'पद्' आदेश न हुआ।

2. लोक में भी सूत्रोक्त आदेश प्रचुरतया प्राप्त होते हैं।

3. मांस, पृतना तथा सानु के स्थान पर क्रमशः मांस्, पृत् तथा स्नु आदेश होते हैं, शस् प्रभृति के परे रहते।[1]

मांस्पचन्या उखायाः (ऋ० 1.162.13)।

पृत्सु मर्त्यम् (ऋ० 1.27.7)।

न ते दिवो न पृथिव्या अधिस्नुषु (मा०सं० 17.14)।

4. यत्, तस् तथा क्षुद्र शब्दों के परे रहते नासिका को नस् आदेश होता है—[2]

नासिकायां भवम्–नासिका यत्–नस्यम्। नासिकायाः (अपादाने चाहीयरुहोः)–नस् तस्–नस्तः।

नासिका क्षुद्रा यस्य सः–नस् क्षुद्र सु–नःक्षुद्रः।

5. यत् परे रहते वर्ण और नगर अर्थों में नस् आदेश नहीं होता है[3]—

नासिक्यो वर्णः। नासिक्यं नगरम्।

धात्वादेः षः सः 6.1.62

पद.—धात्वादेः 6.1, षः 6.1, सः 1.1

अनु.—उपदेशे।

अर्थ—उपदेश अवस्था में धातु के आदि में जो षकार, उसके स्थान पर सकार होता है।

'सः' में अकार उच्चारणार्थ है। यह आदेश निर्निमित्तक होता है अर्थात् किसी निमित्त के बिना ही यह आदेश होता है।

उदा.—षह–सह त–सह शप् ते–सहते।

षिच्–सिच् ल्–सिन् च् शप् तिप्–सिञ्चति।

शे मुचादीनाम्। स्तोः श्चुनाश्चुः।

विशेष—1. 'धातोः' अर्थात् धातु के आदि में जो षकार, उसे सकार होता है—

षष् यहाँ धातु का आदि षकार नहीं है। अतः सकार न हुआ।

2. 'आदेः' अर्थात् धातु के **आदि** में जो षकार, उसे सकार होता है—

लष्–षकार धातु के **आदि** में नहीं है। अतः सकार न हुआ। इसी प्रकार कष व कृष्।

3. 'उपदेशे' अर्थात् **उपदेश** अवस्था में जो षकार उसे सकार होता है—षकारम् इच्छति–षकारीयति–यहाँ उपदेश में षकार नहीं है। अतः सकार नहीं हुआ।

4. प्रश्न उठता है कि धातुपाठ में षकारादि धातुओं को सकारादि पढ दिया जाता तो लाघव होता तथा प्रकृत सूत्र की आवश्यकता न होती। इसका समाधान है कि 'आदेश-प्रत्यययोः' के द्वारा षत्व करने के लिए धातुपाठ में ऐसे धातुओं को षकारादि पढ़ा गया है।

5. नामधातु, ष्ठिवु तथा ष्वष्क–इनके आदि 'ष्' के स्थान पर 'स्' नहीं होता है[4]—

षोडीयति, षण्डीयति।
ष्ठीवति।
ष्वष्कते।

णो नः 6.1.63

पद.—णः 6.1, नः 1.1

अनु.—धात्वादेः, उपदेशे।

अर्थ—उपदेश में धातु के आदि में जो 'ण्' उसके स्थान पर 'न्' होता है।

उदा.—णम्–नम् शप् तिप्–नमति।
णी–नी शप् तिप्–नयति।

विशेष—1. 'आदेः' अर्थात् धातु के **आदि** में जो ण् उसे ही 'न्' होता है—

भण् शप् तिप्–भणति। णकार के आदि में न होने से नकार न हुआ।

इसी प्रकार क्वण्, अण् आदि में जानना चाहिए।

लोपो व्योर्वलि 6.1.64

पद.—लोपः 1.1, व्योः 6.2, वलि 7.1

---

1. महा० 6.1.64 (वा०) पदादिषु मांस्पृत् स्नूनामुपसंख्यानम्।
2. महा० 6.1.64 (वा०) नस् नासिकाया यत्तस्क्षुद्रेषु।
3. महा० 6.1.64 अवर्णनगरयोरिति वक्तव्यम्।
4. महा० 6.1.64 (वा०) सुब् धातु ष्ठिवुष्वष्कतीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः।

महर्षि–पाणिनि–प्रज्ञा–अनुसन्धान तिथी..... पु०सं०..... भारती पुस्तकालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—वल् परे रहते वकार और यकार का लोप होता है।

उदा.—(1) क्नूय् क्त–क्नूत (य् का लोप)–क्नूत सु–क्नूतम्।

(2) दिव् क्वसु–दिव् दिव् वस्–दिदिव् वस्–दिदिवस् सु (व् का लोप)–दिदिवान्।

(3) जीव् रदानु–जीरदानु सु–जीरदानुः (व् का लोप)।

विशेष—1. 'वलि' अर्थात् **वल् परे रहते** ही यकार या वकार का लोप होता है—

जीव्यात् यहाँ वकार से परे यकार है, जो वल् नहीं है। अतः वकार का लोप नहीं होता है।

2. वायु ओस्–वाय्वोः यहाँ वल् (वकार) परे रहते यकार का लोप होना चाहिए। वस्तुतः यहाँ यण् किया गया है। 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से वकार को स्थानिवद्भाव हो जाता है अर्थात् वकार को उकार मान लिया जाता है। अतः यलोप नहीं होता। पुनः शंका है कि 'न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोप०' के द्वारा य लोप विधि में स्थानिवद्भाव का निषेध हो जाता है। अतः यलोप होना चाहिए। समाधान है कि–'स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेश एव न स्थानिवद्'। अतः यलोप न हुआ।

3. 'लोपो व्योर्वलि' के स्थान पर 'व्योर्वलि लोपः' ऐसा न्यास उचित प्रतीत होता है। परन्तु ऐसा करने में दोष है। सूत्र में 'लोपः' पद का पूर्व न्यास का प्रयोजन है कि 'वि' के अपृक्तलोप से पहले वल् परे लोप हो जाये। यथा—

कण्डूय क्विप्–कण्डूय् क्विप्–कण्डूय् क्वि–कण्डूय् क्व्–कण्डूय् व्–कण्डू व्–कण्डू सु–कण्डूः।

धातु के अकार का लोप करने के पश्चात् कृताकृतप्रसंगी होने के कारण **व** लोप (जो नित्य है) की प्राप्ति होती है। परन्तु ऐसा करने पर आगे वल् न रहेगा। तब कण्डूय् के 'य्' का लोप न हो सकेगा। चूँकि सूत्र में पहले 'लोपः' ऐसा निर्देश है, अतः प्रथम वल्निमित्तक लोप होगा। पश्चात् अपृक्त का लोप होगा।

4. व्रश्च् धातु में वल् (रेफ) परे रहते पूर्व वकार का लोप होना चाहिए, परन्तु उच्चारण सामर्थ्य के कारण नहीं होता है।

वेरपृक्तस्य 6.1.65

पद.—वेः 6.1, अपृक्तस्य 6.1

अनु.—लोपः।

अर्थ—अपृक्त संज्ञक वकार का लोप होता है।

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः से एकाल् की ही अपृक्त संज्ञा होती है। सूत्रस्थ 'वि' पद में इकार उच्चारणार्थ है। 'व्' के स्थान पर 'वि' का निर्देश करने का फल है कि सामान्यतः क्विन् क्विप् ण्वि आदि सभी का ग्रहण हो जाये।

उदा.—ब्रह्म हन् क्विप्–ब्रह्म हन् क्वि (हलन्त्यम्)–ब्रह्म हन् क्व् (उपदेशेऽजनु०)–ब्रह्म हन् व् (लशक्वत०)–ब्रह्म हन् (वेरपृक्तस्य) सु–ब्रह्महा।

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्।

विशेष—'अपृक्तस्य' का फल है कि **अपृक्तसंज्ञक** व् का ही लोप होता है—

वृद्भ्यां विन् से जो 'विन्' होता है। उसके अन्त्य नकार का लोप होकर 'वि' बचता है, परन्तु एकाल् न होने से उसकी अपृक्तसंज्ञा नहीं है। अतः लोप न हुआ। दर्विः।

इसी प्रकार 'कृगृशृसृजागृभ्यः क्विः' से क्वि होता है। जागृविः।

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् 6.1.66

पद.—हल्ङ्याब्भ्यः 5.3, दीर्घात् 5.1, सुतिसि 1.1, अपृक्तम् 1.1, हल् 1.1

अनु.—लोपः।

अर्थ—हलन्त अंग से अथवा दीर्घ ङी या आप् जिसके अन्त में हैं, ऐसे अंग से परे सु, ति तथा सि प्रत्ययों के अपृक्त हल् का लोप होता है। दीर्घात् पद का 'ङी' और 'आप्' के साथ ही सम्बन्ध हैं।

भेदक अनुबन्धों से रहित होने के कारण 'ङी' से ङीप्, ङीष् तथा ङीन् का ग्रहण होता है। इसी प्रकार 'आप्' के द्वारा टाप्, डाप् तथा चाप् का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) राजन् सु–राजान् स्–राजान्–राजा। हन् तिप् (लङ् प्र०पु० एक०)–हन् शप् तिप्–अहन् त् (शप् का लुक्, अट्, इकार लोप)–अहन् (ति के अपृक्त 'त्' का लोप)।

अट् हन् शप् सिप् इस दशा में शप् लुक्। इतश्च से इकार लोप होकर– अहन् स् हुआ। अपृक्त 'स्' का लोप। अहन्।

(2) कुमारी (ङीप्) सु–कुमारी स्–कुमारी। गौरी (ङीष्) सु–गौरी स्–गौरी। शार्ङ्गरवी (ङीन्)–शार्ङ्गरवी।

(3) बाला (टाप्) सु–बाला स्–बाला।

विशेष—1. 'हल्ङ्याब्भ्यः' अर्थात् **हलन्त, ङ्यन्त** व **आबन्त** अंग से परे ही सूत्रोक्त हल् का लोप होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामणी सु–यहाँ 'ग्रामणी' क्विप् प्रत्ययान्त रूप है जो न हलन्त है, न ङ्यन्त है तथा न ही आबन्त है। अतः 'स्' का लोप न हुआ। ग्रामणी स्–ग्रामणीः।

2. 'दीर्घात्' अर्थात् **दीर्घ ङ्यन्त, दीर्घ आबन्त** अंग से परे सूत्रोक्त हल् का लोप होता है। यद्यपि ङी और आप् स्वतः दीर्घ होते हैं। अतः इनके लिए पुनः 'दीर्घ' का निर्देश व्यर्थ प्रतीत होता है, परन्तु यह सकारण है।

समास की दशा में ङी व आप् ह्रस्व हो जाते हैं।

यथा—'निष्कौशाम्बि'।

अतः यहाँ 'स्' का लोप नहीं होता है। द्र० निष्कौशाम्बिः।

इसी प्रकार–अतिमालः में जानना चाहिए।

3. 'सुतिसि' अर्थात् **सु, ति और सि** के अपृक्त हल् का लोप होता है—

भिद् से लुङ् प्र०पु० एक० में अट् भिद् सिच् ईट् तिप् इस दशा में अनुबन्ध लोप, इतश्च से इकार लोप तथा वृद्धि आदेश होकर 'अभैत् स् ईत्' यह स्थिति होती है। अब हल् (त्) से परे अपृक्त हल् (स्) है, परन्तु वह 'सि' का नहीं है, सिच् का है। अतः लोप न हुआ। अभैत्सीत्।

यहाँ ध्यान रहे कि सूत्र में 'ति' के साथ 'सि' का निर्देश होने से इस 'सि' के द्वारा सिप् का ही ग्रहण होता है, सिच् का नहीं।

4. 'अपृक्त' अर्थात् **अपृक्त संज्ञक** हल् का ही लोप होता है—

भिद् तिप्–भि श्नम् द् ति–भि न द् ति–भिनत् ति यहाँ हलन्त अंग से परे 'ति' है परन्तु वह अपृक्त संज्ञा वाला नहीं है। अतः लोप न हुआ। भिनत्ति।

5. 'हल्' अर्थात् अपृक्त संज्ञक **हल्** का ही लोप होता है—

भिद् णल्–बिभेद् अ इस दशा में हलन्त अंग (बिभेद्) से पर तिप् है, अपृक्त संज्ञक भी है, परन्तु हल् नहीं है अच् है। अतः लोप न हुआ। बिभेद।

6. अब शंका होती है कि हल् से परे हल् का लोप 'संयोगान्तस्य' के द्वारा भी सिद्ध है। तब प्रकृतसूत्र के द्वारा हलन्त अंग से परे हल् के लोप की क्या आवश्यकता? काशिकाकार ने इसका समाधान इस प्रकार दिया है—

(क) संयोगान्तस्य लोपे हि नलोपादिर्न सिध्यति अर्थात् संयोगान्त लोप करने पर न लोप आदि सिद्ध नहीं होते हैं। यथा—राजन् सु–राजन् स्–राजान् स् यदि यहाँ 'स्' का 'संयोगान्तस्य लोपः' (पा० 8.2.23) से लोप कर देते हैं तो 'राजान्' के नकार का 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (पा० 8.2.7) से लोप न हो सकेगा। कारण कि नलोप की दृष्टि में संयोगान्तलोप असिद्ध हैं।

इसी प्रकार–उखास्रस् स् इस दशा में संयोग के आदि सकार का 'स्कोः संयोगा०' के द्वारा लोप कर देने पर अवशिष्ट प्रत्ययसकार को वसुस्रंसु० से दकार न होगा (उखास्र स्)। कारण कि अवशिष्ट सकार वस्वादि का नहीं है, प्रत्यय (सु) का है।

अपि च, अट् भि श्नम् द् स् (लङ् म०पु०एक०) इस दशा में 'दश्च' के द्वारा 'रु' आदेश होता है—अ भि न र् स्। अब स् का संयोगान्त लोप कर दिया जाये तो रेफ (अभिनर्) को 'अतो रोरप्लुताद०' (पा० 6.1.109) के द्वारा उत्व न हो सकेगा। कारण कि उत्व की दृष्टि में संयोगान्त लोप असिद्ध है।

(ख) रात्तु ते नैव लोपः स्याद्, हलस्तस्माद् विधीयते अर्थात् रेफ से पर तकार का लोप नहीं हो सकता। अतः हलन्त अंग से पर हल् के लोप का विधान किया गया है। यथा—

अट् बिभर् त् (लङ् प्र०पु०एक०)—इस दशा में संयोगान्त लोप की प्रवृत्ति न ही होती है। कारण कि, 'रात्सस्य' सूत्र नियम करता है कि रेफ से पर सकार का ही लोप हो। चूँकि यहाँ रेफ से पर 'त्' है। अतः लोप न होगा।

एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः 6.1.67

पद.—एङ्ह्रस्वात् 5.1, सम्बुद्धेः 6.1

अनु.—हल्, लोपः।

अर्थ—एङन्त अंग तथा ह्रस्वान्त अंग से परे हल् का लोप होता है, यदि वह सम्बुद्धि का हो।

उदा.—(1) हे मुनि सु–हे मुनि स् (ह्रस्वस्य गुणः) हे मुने स्–हे मुने।

हे साधु सु–हे साधु स्–हे साधो स्–हे साधो।

(2) हे राम सु–हे राम स्–हे राम।

हे नदी सु–हे नदी स्–हे नदि स्–हे नदि।

हे वधू सु–हे वधु।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—'एङ्ह्रस्वात्' पद के साथ विशेष्य के रूप में 'अंगात्' जोड़ना आवश्यक है। इसके बिना सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

एङ् और ह्रस्व से परे सम्बुद्धि के हल् का लोप होता है। इस अर्थ में दोष है। यथा—

हे कतर (नपुँसके) सु-हे कतर् अद्ङ् स् (डित्व सामर्थ्यात्)।—हे कंतरद् स् इस दशा में रेफोत्तरवर्त्ती ह्रस्व अकार से पर दकार का लोप प्राप्त होता है, जो 'अंगात्' पद को सूत्रार्थ में जोड़ देने पर प्रसक्त नहीं होगा। इस दशा में 'कतरद्' यहाँ अंग ह्रस्वान्त नहीं, रेफान्त है। अतः हल् लोप का प्रश्न ही नहीं उठता।

शेश्छन्दसि बहुलम् 6.1.68

पद.—शेः 6.1, छन्दसि 7.1, बहुलम् 1.1

अनु.—लोपः।

अर्थ—वेद के विषय में बहुल करके 'शि' का लोप होता है।

'जश्शसोः शिः' से 'शि' आदेश होता है।

उदा.—या वना (शौ० 14.2.7)।

यद् जस्-य अ जस्-य शि-य (जश्शसोः शिः)-य नुम् (प्रत्ययलक्षण के द्वारा नुम्-नपुँसकस्य झलचः)-यान् (सर्वनामस्थाने०)-या (न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य)।

पक्ष में—यानि क्षेत्राणि (शौ० 14.2.7)।

सुदिना (ऋ० 7.18.21)।

वीर्या (शौ०सं० 20.65.3)।

वना (शत० 12.4.4.2)।

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.69

पद.—ह्रस्वस्य 6.1, पिति 7.1, कृति 7.1, तुक् 1.1

अर्थ—पित् कृत् परे होने पर ह्रस्व का अवयव तुक् होता है।

उदा.—इ क्यप् (एतिस्तुशास्०)-इक्यप् (कृदतिङ् से कृत् संज्ञा)-इ तुक् य-इत्य सु-इत्यः।

विशेष—1. 'ह्रस्वस्य' अर्थात् **ह्रस्व** को ही तुक् आगम होता है—

आ नी त्त्वा-आनी ल्यप्-आनीय, ल्यप् कृत् संज्ञक है, पित् है, परन्तु 'नी' ह्रस्व नहीं है। अतः तुक् न हुआ।

2. 'पिति' अर्थात् **पित्** कृत् परे रहते ही तुक् आगम होता है—

हुक्त-हु त सु-हुतम् यहाँ 'हु' यह ह्रस्व है, क्त प्रत्यय की कृत् संज्ञा है, परन्तु पित् नहीं है। अतः तुक् न हुआ। इसी प्रकार-जितम्, कृतम्।

3. 'कृति' अर्थात् **कृत् संज्ञक** प्रत्यय परे रहते ही तुक् आगम होता है—

पटु तरप्-पटु तर सु-पटुतरः यहाँ 'पटु' ह्रस्व है, तरप् पित् भी है, परन्तु कृत् संज्ञक नहीं है। अतः तुक् न हुआ।

संहितायाम् 6.1.70

पद.—संहितायाम् 7.1

अर्थ—यह अधिकार है। 'अनुदात्तं पदमेक०' (पा० 6.1.152) से पहले पहले तक यह अधिकार है।

भाव यह है कि इस सूत्र तक जो जो कार्य होंगे, वे सभी संहिता के विषय में जानने चाहिये।

'परः सन्निकर्षः संहिता' से संहिता संज्ञा होती है।

छे च 6.1.71

पद.—छे 7.1, च-अव्य०।

अनु.—'संहितायाम्' इति पदम् अग्रे प्रतिसूत्रं विस्तारभिया न प्रदर्शितम्। ह्रस्वस्य, तुक्।

अर्थ—संहिता के विषय में ह्रस्व को तुक् आगम होता है, छकार परे रहते।

उदा.—(1) शिव छाया-शिव तुक् छाया-शिव त् छाया-शिव द् छाया (स्तोः श्चुना श्चुः के असिद्ध होने से झलां जशोऽन्ते से दकार)-शिव ज् छाया (श्चुत्व के प्रति चर्त्व के असिद्ध होने से प्रथम श्चुत्व)-शिवच्छाया (खरि च) सु-शिवच्छाया। शिवच् छाया इस दशा में चोः कुः (पा० 8.2.30) के द्वारा कुत्व नहीं होता है। कारण कि कुत्व के प्रति जश्त्व (पा० 8.2.39), श्चुत्व (पा० 8.4.39) तथा चर्त्व (पा० 8.4.54) तीनों असिद्ध हैं।

(2) गम् लट् (इषुगमि यमां०)-गच्छ् तिप्-ग तुक् छ् शप् ति-गच्छति।

तनुच्छिदम् (भट्टि० 6.122)। भक्तिच्छेदः (मे० 19)। अथच्छाया (मे० 51)।

आङ्माङोश्च 6.1.72

पद.—आङ्माङोः 6.2, च-अव्य०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—छे तुक् ।

अर्थ—संहिता के विषय में छकार परे रहते आङ् तथा माङ् को तुक् आगम होता है ।

आङ् के चार अर्थ हैं—ईषत्, क्रियायोग, मर्यादा और अभिविधि ।

माङ् प्रतिषेधवाची अव्यय है ।

उदा.—(1) ईषत् छाया–आ छाया–आ तुक् छाया–आच्छाया (ईषत्) ।

आ छादयति–आच्छादयति (क्रियायोग) ।

आ छायाया:–आ छाया–आ तुक्

छाया–आच्छाया–आच्छाय सु–आच्छायम् (मर्यादा व अभिविधि) ।

(2) मा छैत्सीत्–माच्छैत्सीत् ।

दीर्घात् पदान्ताद् वा 6.1.73

पद.—दीर्घात् 5.1, पदान्तात् 5.1, वा–अव्य० ।

अनु.—छे, तुक् ।

अर्थ—संहिता के विषय में पदान्त दीर्घ से उत्तर जो छकार, उसके परे रहते तुक् आगम विकल्प से होता है ।

प्रश्न है कि तुक् किसका अवयव हो? 'उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्' के अनुसार तुक् आगम छकार को होना चाहिये । परन्तु पाणिनि का सूत्र 'विभाषा सेना सुरा-च्छाया शाला निशानाम्' (पा० 2.4.25) ज्ञापक है कि तुक् दीर्घ को होता है । कारण कि तुक् कित् है । अत: अन्त में होता है ।

ध्यान रहे कि व्यस्त या समस्त दोनों प्रकार के पदान्त में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है ।

उदा.—लक्ष्मी छाया–ष०तत्पु० समास की दशा में सुप् लुक् होकर प्रकृत सूत्र के द्वारा तुक् हुआ । लक्ष्मीच्छाया (समस्तावस्था) । लक्ष्मीछाया । शीतला छाया–कर्मधारय समास की दशा में सुप् लुक् होकर प्रकृत सूत्र के द्वारा तुक् हुआ । शीतलाच्छाया (व्यस्तावस्था) ।

पक्ष में—शीतलाछाया ।

विशेष—वेद के विषय में विश्वजनीन आदि को विकल्प से तुक् आगम होता है, छकार परे रहते [1]—

विश्वजनीनच्छत्रम् ।

नच्छायां कुरवोऽपराम् (शौ० 13.3.56) ।

न छायाम् ।

इको यणचि 6.1.74

पद.—इक: 6.1, यण् 1.1, अचि 7.1

अनु.—संहितायाम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में इक् के स्थान में यण् आदेश होता है, अच् परे रहते ।

अच् और इक् अविधीयमान हैं। अत: अणुदित् सवर्णस्य० के द्वारा अपने सवर्णियों के भी ग्राहक होंगे । यण् विधीयमान है । अत: अपने सवर्णियों (यँ वँ लँ) का ग्राहक नहीं होगा ।

उदा.—दधि अत्र–दध्यत्र (स्थानेऽन्तरतम:) ।

गौरी अपि–गौर्य्यपि (अचो रहाभ्याम्०) ।

मधु अत्र–मध्वत्र ।

वधू अक्षि–वध्वक्षि ।

पितृ आज्ञा–पित्राज्ञा ।

ऌ आकृति:–लाकृति: ।

विशेष—प्लुत हैं पूर्व में जिसके ऐसे इक् के सवर्ण दीर्घ आदेश का बाध करने के लिए यण् होता है[2]—

भो 3 इ इन्द्रम्–भो 3 विन्द्रम्—यहाँ अक: सवर्णे दीर्घ: से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था ।

एचोऽयवायाव: 6.1.75

पद.—एच: 6.1, अयवायाव: 1.3

अनु.—अचि ।

अर्थ—संहिता के विषय में अच् परे रहते एच् के स्थान पर अय्, अव्, आय् तथा आव् आदेश होते हैं ।

चूँकि स्थानी (एच्–ए, ओ, ऐ, औ) चार हैं तथा आदेश (अय्, अव्, आय्, आव्) भी चार हैं । समसंख्यक होने के कारण यथासंख्यमनुदेश: से यथासंख्य होते हैं अर्थात्—

ए को अय् ।

ओ को अव् ।

ऐ को आय् ।

औ को आव् ।

1. महा० 6.1.76 (वा०) विश्वजनादीनां छन्दसि वा तुगागमो भवतीति वक्तव्यम् ।

2. काशि० 6.1.77 (वा०) इक: प्लुत पूर्वस्य सवर्णदीर्घ-बाधनार्थं यणादेशो वक्तव्य: ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—(1) चि ल्युट्–चि अन–चे अन–चय् अन सु–चयनम् ।

(2) लू ल्युट्–लो अन–लवन सु–लवनम् ।

(3) चि ण्वुल्–चै अक–चाय् अक सु–चायकः ।

(4) लू ण्वुल्–लावकः ।

पू ण्वुल्–पावकः (कुन्द० 6.45) ।

वान्तो यि प्रत्यये 6.1.76

पद.—वान्तः 1.1, यि–7.1, प्रत्यये 7.1

अनु.—एचः ।

अर्थ—संहिता के विषय में यकारादि प्रत्यय परे रहते एच् के स्थान में वान्त आदेश होता है ।

वान्तः वः अन्ते यस्य सः अर्थात् जिसके अन्त में वकार है, ऐसा आदेश । वकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

वान्त से अभिप्राय 'एचोऽयवायावः' में पठित अव् तथा आव् आदेशों से हैं ।

ओदौतोश्चेति वक्तव्यम् के आधार पर ओ तथा औ—ये दो स्थानी निश्चित होते हैं ।

भाव यह है कि अकारादि प्रत्यय परे रहते ओ तथा औ के स्थान पर क्रमशः अव् तथा आव् आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) बभ्रु यञ् (मधुबभ्रवो०)–बभ्रो य–बाभ्रव्य सु–बाभ्रव्यः ।

(2) नौ यत् (नौवयोधर्म०)–नाव् य सु–नाव्यो (ह्रदः) ।

विशेष—1. 'वान्तः' अर्थात् **अव् तथा आव्** आदेश ही होते हैं—

रायम् इच्छति–रैयति—यहाँ न हुआ ।

2. 'यि' अर्थात् **यकारादि प्रत्यय** परे रहते ही वान्त आदेश होता है—

गोभ्याम्, नौभ्याम्–यकारादि प्रत्यय परे न होने से वान्त आदेश न हुआ ।

3. 'प्रत्यये' अर्थात् **प्रत्यय** परे रहते ही वान्त आदेश होता है—

गोयानम्, नौयानम्–यकारादि तो है, परन्तु प्रत्यय नहीं है । अतः वान्त आदेश न हुआ ।

4. वेद के विषय में 'यूति' परे रहते 'गो' को अव् आदेश होता है[1]—

गो यूति–गव् यूति–गव्यूतिः ।

गव्यूतिमुक्षतम् (ऋ० 3.62.16) ।

लोक में 'गोयूतिः' बनता है ।

5. यदि मार्ग का परिमाण 'गम्यमान हो तो 'गो' शब्द को वान्त आदेश होता है, यूति शब्द परे रहते[2]—

गो यूति–गव्यूति सु–गव्यूतिः ।

जहाँ मार्ग का परिमाण गम्यमान न हो तो 'गोयूतिः' बनेगा ।

धातोस्तन्निमित्तस्यैव 6.1.77

पद.—धातोः 6.1, तन्निमित्तस्य 6.1, एव–अव्य० ।

अनु.—वान्तः, यि, प्रत्यये ।

अर्थ—संहिता के विषय में यकारादि प्रत्यय परे रहते तन्निमित्तक ही जो धातु का एच् उसे वान्त (अव्, आव्) आदेश होता है ।

उदा.—(1) लू यत् (अचो यत्)–लो य–लव्य सु–लव्यम् ।

(2) अवश्य लू ण्यत् (ओरावश्यके)–अवश्यलाव्यम् ।

विशेष—'धातोः' अर्थात् **धातु** के एच् को ही वान्त आदेश होता है—

गो यत्–गव्यम् ।

क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे 6.1.78

पद.—क्षय्यजय्यौ 1.2, शक्यार्थे 7.1

अनु.—धातोः, यि, प्रत्यये ।

अर्थ—संहिता के विषय में शक्य अर्थ में क्षय्य तथा जय्य शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—क्षि यत् (अचो यत्)–क्षय्य सु–क्षय्यः । द्र० अक्षय्य (मे० 70) ।

जि यत्–जय्यः (भट्टि० 6.113) ।

विशेष—'शक्य' अर्थ में ही उक्त शब्द निपातित हैं—

क्षेयं पापम्, जेयो वृषलः यहाँ शक्यार्थ नहीं है ।

क्रय्यस्तदर्थे 6.1.79

पद.—क्रय्यः 1.1, तदर्थे 7.1

अनु.—धातोः यि प्रत्यये ।

अर्थ—संहिता के विषय में तदर्थ में (अर्थात् क्रयार्थ

1. महा० 6.1.79 (वा०)–गौर्यूतौ छन्दसि ।

2. महा० 6.1.79 (वा०)–अध्वपरिमाणे च ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिधेय हो तो) क्रय्य शब्द का निपातन किया जाता है।

उदा.—क्रय्यो गौः (=क्रय के लिए गौ)।

भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि 6.1.80

पद.—भय्यप्रवय्ये 1.2, च-अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—धातोः यि प्रत्यये।

अर्थ—संहिता के विषय में भय्य तथा प्रवय्य शब्दों का निपातन किया जाता है, वेद के विषय में।

उदा.—भी यत् (कृत्यल्युटो०)-भय्य सु-भय्यम्। प्र वी यत्-प्रवय्य। यह स्त्रीलिंग में ही होता है।

विशेष—जल अर्थ में 'ह्रदय्या' शब्द का निपातन किया जाता है[1]—

'भवे छन्दसि' से यत् हुआ। ह्रद यत्-ह्रदय्या।

एकः पूर्वपरयोः 6.1.81

पद.—एकः 1.1, पूर्वपरयोः 6.2

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है जो 'ऋत उत्' (पा० 6.1.107) तक जायेगा। इसका अर्थ है कि यहाँ से आगे जो भी विधान किया जायेगा, उस विषय में पूर्व और पर दोनों के स्थान पर एक आदेश होगा।

अन्तादिवच्च 6.1.82

पद.—अन्तादिवत्-अव्य०, च-अव्य०।

अनु.—एकः पूर्वपरयोः।

अर्थ—(पूर्वसूत्र के द्वारा कहा गया) एकादेश पूर्व के विषय में अन्त के समान तथा पर के विषय में आदि के समान होता है।

चूँकि एकादेश अखण्ड होता है। इनमें अन्त व आदि का व्यवहार सम्भव नहीं है। अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा अतिदेश किया गया है कि पूर्व से कार्य पड़ने पर वह अन्त के समान होता है तथा पर से कार्य पड़ने पर आदि के समान होता है।

उदा.—क्षीरप टा—क्षीरप इन (टाङसिङसामिनात्०) क्षीर-पेन (आद्गुणः) यहाँ 'ए' एकादेश है। यह पूर्वशब्द (क्षीरप) के अन्त (अ) के समान है तथा पर शब्द (इन) के आदि (इ) के समान है। भाव यह है कि 'ए' को अकार मानकर अकाराश्रित कार्य और इकार मानकर इकाराश्रित कार्य को जायेंगे। 'एकाजुत्तरपदे णः' से णत्व। क्षीरपेण।

1. महा० 6.1.83 (वा०) ह्रदय्या आप उपसंख्यानम्।

षत्वतुकोरसिद्धः 6.1.83

पद.—षत्वतुकोः 7.2, असिद्धः 1.1

अनु.—एकः पूर्वपरयोः।

अर्थ—षत्व तथा तुक् विधि करने में एकादेश असिद्ध होता है।

उदा.—(1) कः अस्य-क उ अस्य (अतो रोरप्लु०)-को अस्य (आद् गुणः)-कोऽस्य (एङः पदान्तादति)-अब 'आदेशप्रत्यययोः' से इण् (ओ) से परे 'स्' को षत्व प्राप्त होता है, परन्तु प्रकृत सूत्र के द्वारा षत्वविधि में यह एकादेश (अर्थात् ओ) असिद्ध है। तब षत्व न होगा।

(2) प्र इ ल्यप्-प्र इ य (आद् गुणः)-प्रेत् य (ह्रस्वस्य पिति कृति०)-इस दशा में ह्रस्व के न रहने से तुक् नहीं हो सकता था। प्रकृत सूत्र के द्वारा एकादेश (ए) तुग् विधि के प्रति असिद्ध है अर्थात् तुक् आगम की दृष्टि में 'प्र इ य' यह स्थिति है। तब तुक् हो गया। प्रेत्य सु-प्रेत्य।

आद् गुणः 6.1.84

पद.—आत् 5.1, गुणः 1.1

अनु.—एकः पूर्वपरयोः अचि।

अर्थ—अ वर्ण से उत्तर अच् परे रहने पर पूर्व व पर दोनों के स्थान पर एकादेश गुण होता है। अदेङ् गुणः से अ, ए, ओ की गुणसंज्ञा होती है।

तपर दो प्रकार का होता है—

(क) तत्काल का बोधक तपर (यथा—अदेङ् गुणः में अत् का तपर) तथा

(ख) विभक्ति तपर (यथा—आद्गुणः में आत् का तपर)। इसमें 'उपसर्गादृति धातौ' सूत्र ज्ञापक है।

'उपसर्गात्' में पञ्चमी का 'त्' है। यदि 'त्' को तत्काल के ग्रहण के लिए मान लिया जाये तो 'उपसर्गाद् ऋति धातौ' सूत्रस्थ ऋत् में तकार ग्रहण व्यर्थ हो जाता है।

अ वर्ण से अवर्ण होने पर सवर्ण दीर्घ हुआ करता है। अवर्ण से ए, ओ, ऐ तथा औ के परे रहते वृद्धि आदेश हुआ करता है। अतः अ वर्ण से केवल इ, उ, ऋ तथा ऌ परे रहते ही गुण एकादेश होता है।

उदा.—(1) उप इन्द्र-उपेन्द्र सु-उपेन्द्रः (स्थानेऽन्तरतमः)। नर ईश-नरेश सु-नरेशः।

(2) महा इन्द्र-महेन्द्र सु-महेशः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राका ईश–राकेश सु–राकेशः

(3) सूर्य उदय–सूर्योदय सु–सूर्योदयः ।

जल ऊर्मि–जलोर्मिः (सु) ।

(4) महा उदय–महोदयः (सु)।

गंगा ऊर्मि–गंगोर्मिः (सु)।

यहाँ त्रिमात्रिक व चतुर्मात्रिक गुण एकादेश की प्राप्ति होती है परन्तु 'अदेङ्गुणः' से द्विमात्रिक ओकार ही होता है ।

(5) कृष्ण ऋद्धि–कृष्णर्द्धि सु–कृष्णर्द्धिः । यहाँ उरण् रपरः के आधार पर रपर अकार एकादेश हुआ ।

(6) लता ऋद्धि–लतर्द्धिः ।

(7) तव ऌकारः–तवल्कारः ।

विशेष—सूत्रस्थ 'आत्' पद में पञ्चमी है तथा 'अचि' में सप्तमी है । 'तस्मादित्युत्तरस्य' तथा 'तस्मिन्निति०' परिभाषाएँ उपस्थित होती हैं । पञ्चमी के द्वारा निर्देश बलवान् होता है । इस परिभाषा के बल पर तथा विप्रतिषेध की दशा में पर कार्य बलवान् होता है—इस परिभाषा के बल पर पञ्चमी का नियम बलवान् होना चाहिए । परन्तु 'पूर्वपरयोः के अनुवर्त्तन के कारण एकादेश ही होता है ।

वृद्धिरेचि 6.1.85

पद.—वृद्धिः 1.1, एचि 1.1

अनु.—आत् एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—अवर्ण से उत्तर एच् वर्ण परे रहते दोनों के स्थान पर एक वृद्धि आदेश होता है, संहिता के विषय में ।

वृद्धिरादैच् से आ, ऐ, औ की वृद्धिसंज्ञा होती है ।

एच् में चार वर्ण हैं–ए, ओ, ऐ, औ । स्थानेऽन्तरतमः से ए, ऐ परे रहते 'ऐ' होता है तथा ओ, औ परे रहते 'औ' होता है ।

उदा.—(1) कृष्ण एकत्व–कृष्णैकत्व सु–कृष्णैकत्वम् ।

राजा एषः–राजैषः ।

(2) देव ऐश्वर्य–देवैश्वर्य सु–देवैश्वर्यम् ।

जन ऐक्य–जनैक्य सु–जनैक्यम् ।

(3) जल ओघ–जलौघः (सु) ।

गंगा ओघ–गंगौघः (सु) ।

(4) राम औत्सुक्य–रामौत्सुक्यम् (सु) ।

महा औत्सुक्य–महौत्सुक्यम् (सु) ।

एत्येधत्यूठ्सु 6.1.86

पद.—एत्येधत्यूठ्सु 7.3

अनु.—वृद्धिः आत् एचि एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्ण से परे एच् वर्ण वाली इण् तथा एध् हो अथवा ऊठ् हो तो पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है ।

जिस प्रकार स्वार्थ में वर्ण से 'कार' प्रत्यय जुड़ता है (यथा–अकार, उकार), उसी प्रकार धातुओं का निर्देश इक् या शितप् प्रत्यय के द्वारा किया जाता है । सूत्रस्थ 'एति' व 'एधति' से क्रमशः इण् तथा एध् धातुओं का ग्रहण करना चाहिए ।

उदा.—(1) उप एति–उप् ऐ ति–उपैति यहाँ पकारोत्तरवर्त्ती अवर्ण से परे एजादि इण् धातु वर्त्तमान है ।

(2) उप एधते–उपैधते यहाँ पकारोत्तरवर्त्ती अवर्ण से परे एजादि एध् धातु वर्त्तमान है ।

(3) प्रष्ठ ऊहः–प्रष्ठौहः ।

प्रष्ठ वाह् ण्वि–प्रष्ठवाह् शब्द से ङस् करने पर भसंज्ञा तथा ऊठ् आदेश (वाह् ऊठ्) करने पर 'प्रष्ठ ऊह् अस्' ऐसी स्थिति बनती है ।

यह सूत्र इण् व एध् के विषय में पररूप (एङि पररूपम्) का तथा ऊठ् के विषय में गुणादेश (आद् गुणः) का अपवाद है ।

विशेष—1. 'एजादि' का प्रयोजन है कि 'एच् है आदि में जिसके' ऐसा न कहने पर उप इतः (= दोनों पास जाते हैं) इस दशा में प्रकृत सूत्र से वृद्धि एकादेश प्राप्त होता है । पकारोत्तरवर्त्ती अकार से पर इण् धातु तो है, परन्तु एजादि नहीं है । अतः वृद्धि न होकर सामान्य गुण हुआ–उपेतः ।

इसी प्रकार प्र इदिधत् (णिजन्त एध् लुङ् प्रथम पुरुष एकवचन, आट् रहित) यहाँ अवर्ण से पर एध् धातु है, परन्तु एजादि न होने से वृद्धि एकादेश न होकर गुण होता है—प्रेदिधत् । यदि 'एजादि' न कहते तो यहाँ भी वृद्धि आदेश प्राप्त हो जाता ।

2. अक्ष शब्द के अन्त्य अवर्ण से ऊहिनी शब्द का आदि ऊकार परे होने पर पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है[1]—

1. महा० 6.1.89 (वा०) अक्षादूहिन्यां वृद्धिर्वक्तव्या ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्ष ऊहिनी–अक्षौहिनी (पूर्वपदात् ०)–अक्षौहिणी ।

3. प्र शब्द के अन्त्य अवर्ण से ऊह, ऊठ, ऊठि, एष तथा एष्य शब्दों का आदि अच् परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है[1]—

प्र ऊह–प्रौहः (सु, गुण का बाध) ।
प्र ऊढ–प्रौढः (सु, गुण का बाध) ।
प्र ऊढि–प्रौढिः (सु, गुण का बाध) ।
प्र एष–प्रैषः (सु, पररूप का बाध) ।
प्र एष्य–प्रैष्यः (सु, पररूप का बाध) ।

3. स्व शब्द से ईर, ईरिणी शब्दों के परे रहते वृद्धि एकादेश होता है[2]—

स्व ईर–स्वैर सु–स्वैरम् ।
स्व ईरिणी–स्वैरिणी सु–स्वैरिणी ।

4. तृतीया समास में अवर्ण से ऋत शब्द का आदि ऋवर्ण परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है ।[3]

सुखेन ऋतः–सुख ऋत–सुखार्त सु–सुखार्तः ।

तृतीया में ही उक्त वृद्धि एकादेश होता है—

परमश्चाऽसौ ऋतः–परम ऋत यहाँ तृतीया नहीं है, समास तो है । अतः वृद्धि न होकर गुण हुआ । परमर्त सु–परमर्तः । **समास** में ही उक्त वृद्धि एकादेश होता है—

सुखेन ऋतः–सुखेनर्तः ।

यहाँ तृतीया है, परन्तु समास नहीं है । अतः वृद्धि न हुई ।

5. प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण तथा दश–इन छह शब्दों के अन्त्य अवर्ण से परे ऋण शब्द का आदि ऋवर्ण होने पर पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है[4]—

प्र ऋण–प्रार्णम् (सु) ।
वत्सतर ऋण–वत्सतरार्णम् ।
कम्बल ऋण–कम्बलार्णम् ।
वसन ऋण–वसनार्णम् ।

1. महा०–6.1.89 (वा०) प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु वृद्धिर्वक्तव्या ।
2. महा०—स्वादीरेरिण्योर्वृद्धिर्वक्तव्या ।
3. महा०—ऋते च तृतीया समासेऽवर्णाद् वृद्धिर्वक्तव्या ।
4. महा०—6.1.89 (वा०) प्रवत्सतरकम्बलवसनानामृणे वृद्धिर्वक्तव्या ।

6. ऋण और देश शब्दों से परे ऋण होने पर पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है[5]—

ऋण ऋण–ऋणार्णम् ।
दश ऋण–दशार्णम् (न लोपः प्रातिपदि०) ।

आटश्च 6.1.87

पद.—आटः 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—वृद्धिः अचि एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में आट् से अच् परे रहते वृद्धि एकादेश होता है ।

उदा.—(1) आट् ईक्ष् शप् त (लङ् प्र०पु० एक०)–आ ईक्षत–ऐक्षत ।

(2) आ उब्ज् इट् सिच् ईट् तिप् (लुङ् प्र०पु० एक०)–आ उब्ज् इ ई त्–औब्जीत् ।

(3) आ ऋध् श्नु तिप् (लङ्)–आ ऋध् नोत्–आर्ध्नोत् (उरण् रपरः) ।

(4) अभि आट् इण् स् (लुङ् म०पु० एक०)–अभ्यैः (भट्टि० 5.67) ।

उपसर्गादृति धातौ 6.1.88

पद.—उपसर्गात् 5.1, ऋति 7.1, धातौ 7.1

अनु.—वृद्धिः आत् एकः पूर्वपरयोः अचि ।

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्णान्त उपसर्ग से पर ऋकारादि धातु परे रहते वृद्धि एकादेश होता है ।

उदा.—प्र ऋच्छति–प्रार्च्छति ।
उप ऋध्नोति–उपार्ध्नोति ।

विशेष—1. 'उपसर्गात्' अर्थात् **उपसर्ग** से पर ऋकारादि धातु परे रहते वृद्धि एकादेश होता है—

खट्वा ऋच्छति–खट्वार्च्छति यहाँ अवर्ण है, ऋकारादि धातु का ऋकार परे है, परन्तु उपसर्ग नहीं है । अतः वृद्धि न हुआ ।

2. 'ऋति' अर्थात् **ऋकारादि** परे रहते ही वृद्धि एकादेश होता है—

उप इतः—उपसर्ग के अकार से पर धातु का इकार है । अतः वृद्धि एकादेश न हुआ । उपेतः ।

5. महा०—ऋणदशाभ्यां वृद्धिर्वक्तव्या ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. चूँकि उपसर्ग संज्ञा क्रिया के योग में ही होती है। अतः प्रकृत सूत्र में 'उपसर्गात्' इस प्रकार उपसर्ग ग्रहण से ही आक्षेप से धातुग्रहण सम्भव था। पुनः 'धातौ' इस प्रकार ग्रहण का प्रयोजन है—शाकल्य के वचन को रोकना।

उप ऋच्छति इस दशा में 'ऋत्यकः' से प्रकृतिभाव होता है। इसे रोकने के लिए सूत्र में 'धातौ' का योग किया गया है।

4. 'ऋति' पद को तपर करने का फल है कि उप ऋकारीयति यहाँ उपसर्ग का अवर्ण पूर्व में है। इससे परे ऋकारादि धातु का ऋ वर्ण है, परन्तु वह दीर्घ है। अतः वृद्धि एकादेश न हुआ। उपर्कारीयति।

वा सुप्यापिशलेः 6.1.89

पद.—वा–अव्य०, सुपि–7.1, आपिशलेः 6.1

अनु.—उपसर्गात् ऋति धातौ वृद्धिः आत् एकः पूर्वपरयोः।

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्णान्त उपसर्ग से उत्तर सुबन्त अवयव वाली ऋकारादि धातु के परे रहते पूर्व व पर दोनों के स्थान पर आपिशलि आचार्य के मत में विकल्प से वृद्धि एकादेश होता है।

पक्ष में गुण होता है।

उदा.—उप ऋषभीयति–उपार्षभीयति।

पक्ष में—उपर्षभीयति।

उप ऌकारीयति–उपाल्कारीयति, उपल्कारीयति।

औतोऽम्शसोः 6.1.90

पद.—आ–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, ओतः 5.1, अम्शसोः 7.2

अनु.—एकः पूर्वपरयोः अचि।

अर्थ—संहिता के विषय में ओकार से उत्तर अम् तथा शस् विभक्ति के अच् के परे रहते पूर्व पर के स्थान पर आकार एकादेश होता है।

अम् दो विभक्तियाँ हैं—

क) सुप्—द्वितीया एक०,

ख) तिङ्—उ०पु०एक० के मिप् को लङ् में अम् आदेश।

परन्तु शस् के साहचर्य से यहाँ अम् सुप् का ही ग्रहण होता है।

उदा.—गो अम्–गाम्।

गो शस्–गाः।

इसी प्रकार–द्याम्, द्याः।

एङि पररूपम् 6.1.91

पद.—एङि 7.1, पररूपम् 1.1

अनु.—उपसर्गात् धातौ आत् एकः पूर्वपरयोः।

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्णान्त उपसर्ग से पर एङादि धातु परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

उदा.—प्र एजते–'वृद्धिरेचि' से वृद्धि प्राप्त हुआ। पररूप होकर–प्रेजते।

उप ओषति–उपोषति (वृद्धि को बाधकर पररूप)।

विशेष—1. शकन्धु आदि शब्दों में पररूप होता है और वह टि को होता है।[1] प्रकरणवशात् अ वर्ण और पर अच् के स्थान पर यह पररूप होता है। यथा—

शक अन्धुः–शकन्धुः।
कर्क अन्धुः–कर्कन्धुः।
कुल अटा–कुलटा।
हल ईषा–हलीषा।
लाङ्गल ईषा–लाङ्गलीषा।

पतत् अञ्जलिः–पतञ्जलिः (टि को पररूप) सार अङ्गः–सारङ्गः।

मनस् ईषा–मनीषा (टि को पररूप)।

2. केश अर्थ में ही 'सीमन्त' होता है। अन्यत्र पररूप न होगा।[2] यथा—

सीम अन्तः–सीमन्तः।

3. अनियम अर्थ में **एव** परे रहते पररूप होता है।[3] —

इह एव–इहेव।
अद्य एव–अद्येव।

4. समास में ओतु तथा ओष्ठ शब्दों के परे रहते विकल्प से पररूप होता है।[4]—

1. महा० 6.1.94 (वा०) शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् तच्च टेः।
2. वही—सीमन्तः केशेषु।
3. वही—एवे चानियोगे पररूपं वक्तव्यम्।
4. वही—ओत्वोष्ठयोः समासे वा पररूपं वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूल ओतुः-स्थूलोतुः, स्थूलौतुः (वृद्धि)। बिम्ब ओष्ठी-बिम्बोष्ठी, (तर० 3.482) बिम्बौष्ठी। ताम्रौष्ठ° (कु० 1.44)। इसी प्रकार—अधरोष्ठी (मे० 86)

समास से अन्यत्र वृद्धि ही होती है—

तिष्ठ, देवदत्तौष्ठं पश्य।

ओमाङोश्च 6.1.92

पद.—ओमाङोः 7.2, च-अव्य०।

अनु.—आत् एकः पूर्वपरयोः पररूपम्।

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्ण से उत्तर ओम् तथा आङ् परे रहते पररूप एकादेश होता है।

उदा.—आ ऊढा-ओढा। अद्य ओढा-अद्योढा। शिवाय ओम्-शिवायोम्।

शिव एहि-अन्तादिवच्च से पूर्व शब्द (आ) के अन्त (अर्थात् आ) की तरह हुआ। अतः जो-जो कार्य आङ् को करने हैं, वे सभी एहि को हो जायेंगे। शिवेहि।

शिव आ इहि इस दशा में प्रथम 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ करके पश्चात् गुण एकादेश करके शिवेहि नहीं बनाया जा सकता। कारण कि, असिद्धं बहिरंगमन्तरंगे (परि०) अर्थात् प्रथम अन्तरंग कार्य किया जाता है। धातु तथा उपसर्ग में संहिता करना अन्तरंग कार्य है। अतः प्रथम 'ऐहि' बनाकर पुनः पररूप करना होगा।

उस्यपदान्तात् 6.1.93

पद.—उसि 7.1, अपदान्तात् 5.1

अनु.—आत् एकः पूर्वपरयोः पररूपम्।

अर्थ—संहिता के विषय में अपदान्त अवर्ण से उस् का अच् परे रहते पूर्व व पर दोनों के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

उदा.—पा लुङ्-पा झि-पा जुस् (आतः) अट् पा (सिच् लुक् के पश्चात्) उस्-अ पा उस् (आद् गुणः)-अपुस् (पररूप) अपुः।

इसी प्रकार—अदुः।

विशेष—1. 'अपदान्तात्' अर्थात् अपदान्त से ही सूत्रोक्त पररूप होता है—

का उषिता-कोषिता। पदान्त होने से पररूप न हुआ।

2. 'आत्' अर्थात् **अवर्ण से** पर उस् परे रहते पर रूप होता है—

कृ कृ उस्-क कृ उस्-चक्रुः। यहाँ पररूप न हुआ।

अतो गुणे 6.1.94

पद.—अतः 5.1, गुणे 7.1

अनु.—अपदान्तात् एकः पूर्वपरयोः पररूपम्।

अर्थ—संहिता के विषय में अपदान्त अत् से गुण परे हो तो दोनों के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

उदा.—(1) पच् झि (लट् प्र०पु०बहु०)-पच् अन्ति (झोऽन्तः)-पच् शप् अन्ति पच अन्ति (सवर्ण दीर्घ को बाध कर पररूप)-पचन्ति।

(2) पच् इट् (उ०पु०एक०)-पच् शप् इ-पच ए वृद्धि को बाधकर पररूप)-पचे।

(3) तद् औ-त अ औ (त्यदादीनाम् अः)-त औ (अतो गुणे)-तौ।

विशेष—1. 'अपदान्तात्' अर्थात् **अपदान्त** अत् से उत्तर गुण परे रहते ही पररूप होता है—

सुर अरि-सुरारिः (पदान्त में अत् है। अतः पररूप न हुआ। सवर्णदीर्घ तथा सु)।

इसी प्रकार-दीर्घैकारः, दीर्घैकारः।

2. 'गुणे' अर्थात् **गुण परे** रहते ही सूत्रोक्त पररूप होता है—

पच् इट् (लङ् उ०पु०एक०)-अट् पच् अ इ-अपच इ 'इ' की गुण संज्ञा नहीं है। अतः पररूप न हुआ-अपचे।

3. 'अतः' अर्थात् **ह्रस्व अकार** से **उत्तर** गुण परे रहते पररूप होता है—

या झि-या अन्ति गुणसंज्ञक अकार परे हैं, 'या' अपदान्त है, परन्तु आकार होने से पररूप न हुआ। यान्ति।

अव्यक्तानुकरणस्याऽत इतौ 6.1.95

पद.—अव्यक्तानुकरणस्य 6.1, अतः 5.1, इतौ 7.1

अनु.—पररूपम् एकः पूर्वपरयोः।

अर्थ—संहिता के विषय में अव्यक्त के अनुकरण का जो 'अत्' शब्द, उससे इति शब्द परे रहते पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

उदा.—पटत् इति-पट् इति-पटिति।

झटत् इति-झटिति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. 'अव्यक्तानुकरणस्य' अर्थात् **अव्यक्त के अनुकरण** का जो 'अत्' शब्द हो तो उत्तर 'इति' परे है, परन्तु 'जगत्' व्यक्त शब्द है। अतः पररूप न हुआ—

जगदिति।

2. 'अतः' अर्थात् 'अत्' शब्द से उत्तर 'इति' शब्द परे रहते ही पररूप होता है—

मरट् इति–यहाँ अत् शब्द नहीं है। अतः पररूप न हुआ–मरडिति।

3. 'इतौ' अर्थात् **'इति' पद** परे रहते ही पररूप होता है—

पटत् अत्र–'पटत्' अव्यक्त अनुकरण है। 'अत्' शब्द है परन्तु 'इति' परे नहीं है। अतः पररूप न हुआ। पटदत्र।

4. अनेक अच् वाले अव्यक्त अनुकरण का पररूप होता है[1]—

स्रत् इति–स्रदिति। यहाँ 'स्रद्' अव्यक्त अनुकरण है। अत् शब्द से उत्तर 'इति' पद है, परन्तु 'स्रद्' अनेकाच् नहीं है। अतः पररूप न हुआ।

नाऽऽम्रेडितस्याऽन्त्यस्य तु वा 6.1.96

पद.—न–अव्य०, आम्रेडितस्य 6.1, अन्त्यस्य 6.1, तु–अव्य०। वा०–अव्य०।

अनु.—अव्यक्तानुकरणस्य अतः इतौ पररूपम् एकः पूर्वपरयोः।

अर्थ—संहिता के विषय में आम्रेडित संज्ञक जो अव्यक्तानुकरण का 'अत्' शब्द उससे पर 'इति' शब्द परे रहते पररूप एकादेश नहीं होता है, परन्तु उस आम्रेडित का जो अन्त्य तकार उसे विकल्प से पररूप एकादेश होता है।

उदा.—पटत् पटेति करोति–'तस्य परमाम्रेडितम्' से दूसरे पटत् शब्द की आम्रेडित संज्ञा है। 'त्' को पररूप कर दिया। आद्गुणः से गुण हुआ।

अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.97

पद.—अकः 5.1, सवर्णे 7.1, दीर्घः 1.1

अनु.—अचि एकः पूर्वपरयोः।

अर्थ—संहिता के विषय में अक् से उत्तर सवर्ण अच् परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है।

अक् में पाँच वर्ण हैं—अ, इ, उ, ऋ, ऌ। अविधीयमान होने के कारण अपने सवर्णियों के भी ग्राहक होते हैं।

आ, ई, ऊ आदि आठ वर्ण दीर्घ हैं, परन्तु 'स्थानेऽन्तरतमः' से वही दीर्घ आदेश होता है जो पूर्व व पर स्थानियों के सदृश होता है।

उदा.—सुर अरिः–सुरारिः।
देव आलयः–देवालयः।
लता अत्र–लताऽत्र।
विद्या आलयः–विद्यालयः।
हरि इन्द्रः–हरीन्द्रः।
मुनि ईशः–मुनीशः।
नदी इन्द्रः–नदीन्द्रः।
नदी ईशः–नदीशः।
भानु उदयः–भानूदयः।
वधू उदयः–वधूदयः।

विशेष—1. 'अकः' अर्थात् **अक् वर्ण** से उत्तर सवर्ण अक् परे रहते ही दीर्घ एकादेश होता है—

अग्नि ए–अग्ने ए यहाँ 'ए' से उत्तर सवर्ण 'ए' परे है, परन्तु वह अक् नहीं है। अतः दीर्घादेश न हुआ।

2. 'सवर्णे' अर्थात् **सवर्ण वर्ण** परे रहते ही दीर्घ एकादेश होता है—

दधि अत्र–इकार अक् है, तथा अकार भी अक् है, परन्तु दोनों सवर्ण नहीं हैं। अतः दीर्घादेश न हुआ। दध्यत्र।

3. सवर्ण दीर्घ होने में ऋ परे रहते विकल्प से 'ॠ' होता है[2]—

होतृ ऋकारः–होतॄकारः, होतृकारः।

4. सवर्ण दीर्घ होने में ऌ परे रहते विकल्प से ॡ होता है[3]—

होतृ ऌकारः–होतॄकारः, होतॢॡकारः।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः 6.1.98

पद.—प्रथमयोः 7.2, पूर्वसवर्णः 1.1

अनु.—अकः दीर्घः एकः पूर्वपरयोः अचि।

अर्थ—संहिता के विषय में अक् वर्ण से प्रथमा या द्वितीया

1. महा० 6.1.98 (वा०) अनेकाच इति वक्तव्यम्।
2. महा० 6.1.101 (वा०) सवर्णदीर्घत्वे ऋति ॠ वा वचनम्।
3. वही—ऌति ॡ वा वचनम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अच् परे हो तो पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है ।

प्रथमा और द्वितीया में अजादि विभक्तियाँ केवल पाँच हैं— औ, जस्, अम्, औट्, शस् ।

इन विभक्तियों में इकारान्त व उकारान्त शब्दों को पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश (क्रमशः ई तथा ऊ) होता है । यथा—

उदा.—हरि औ (यण् प्राप्त हुआ) —हरी ।

साधु औ (यण् प्राप्त हुआ)–साधू ।

अम् व जस् में पूर्वसवर्ण से भिन्न कार्य होते हैं ।

विशेष—1. 'अचि' अर्थात् **अच् परे** रहते ही पूर्वोक्त पूर्व सवर्ण दीर्घ होता है—

वृक्ष सु–वृक्षः अच् परे नहीं है । अतः पूर्व सवर्ण दीर्घ न हुआ ।

2. 'अकः' अर्थात् **अक् वर्ण** को ही पूर्वसवर्ण दीर्घ होता है—

नौ औ–अच् परे है, परन्तु पूर्व में अक् नहीं है । अतः पूर्वसवर्ण दीर्घ न हुआ । नावौ ।

3. **पूर्वसवर्ण** इसलिये कहा गया है कि हरि औ–यहाँ पर सवर्ण न हो, अन्यथा 'हरौ' अनिष्ट रूप बन जायेगा ।

4. **'दीर्घ'** इसलिए कहा गया कि त्रिमात्रिक आदेश न हो । हरि औ–इस दशा में द्विमात्रिक 'ई' होकर 'हरी' बन गया ।

तस्माच्छसो नः पुंसि 6.1.99

पद.—तस्मात् 5.1, शसः 6.1, नः 1.1, पुंसि 7.1

अनु.—पूर्वसवर्णः ।

अर्थ—संहिता के विषय में (पूर्व सूत्र से प्राप्त) पूर्वसवर्ण दीर्घ से पर शस् के (सकार के) स्थान पर 'न्' होता है, पुल्लिँग में । 'तस्मात्' पद के द्वारा पूर्वसवर्ण दीर्घ का ग्रहण होता है ।

'अलोऽन्त्यस्य' से अन्त्य वर्ण सकार को नकार होता है ।

नकारस्थ अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—देव शस् (अकः सवर्णे दीर्घः । अतो गुणे । प्रथमयोः पूर्व०)–देवास्–देवान् ।

(1) 'तस्मात्' का प्रयोजन है कि **कृतपूर्व सवर्ण दीर्घ** से पर शस् के स्थान पर नकार होता है—

गो शस् (औतोऽम् शसोः)–गास्–यहाँ दीर्घ तो है परन्तु वह पूर्वसवर्ण का नहीं है । अतः शस् के स् को न् नहीं हुआ । गाः ।

(2) 'शसः' का प्रयोजन है कि **शस् के** स् को ही न् होता है—

वृक्ष जस्–वृक्षास् यहाँ पूर्वसवर्णदीर्घ तो हुआ है, परन्तु शस् का स् नहीं है । अतः न् नहीं हुआ । वृक्षाः ।

(3) 'पुंसि' का प्रयोजन है कि **पुल्लिँग** में ही उक्त नकार आदेश होता है—

धेनु शस्–धेनू स् यहाँ पूर्वसवर्ण दीर्घ हुआ है तथा शस् का स् भी है, परन्तु स्त्रीलिंग का होने के कारण न् नहीं हुआ । धेनूः ।

नाऽऽदिचि 6.1.100

पद.—न–अव्य०, आत् 5.1, इचि 7.1

अनु.—पूर्व सवर्णः दीर्घः एकः पूर्वपरयोः

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्ण से इच् वर्ण परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है ।

उदा.—(1) राम औ–'वृद्धिरेचि' को बाध कर 'प्रथमयोः पूर्व०' से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश की प्राप्ति हुई । प्रकृत सूत्र से निषेध होकर वृद्धि एकादेश हुआ । रामौ ।

(2) लता औ–लता शी–लता ई–लते । (गुण की प्राप्ति, पूर्वसवर्ण दीर्घ की प्राप्ति, निषेध, गुण) ।

विशेष—1. 'आत्' का प्रयोजन है कि **अवर्ण** से उत्तर इच् परे रहते पूर्व सवर्ण दीर्घ का निषेध होता है—

हरि औ–हरी यहाँ अवर्ण नहीं है । इ वर्ण है । अतः निषेध न हुआ ।

2. 'इचि' का प्रयोजन है कि **इच् वर्ण** परे रहते ही निषेध होता है—

वृक्ष जस्–यहाँ इच् वर्ण परे नहीं है । अतः पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध न हुआ । वृक्षाः ।

दीर्घाज्जसि च 6.1.101

पद.—दीर्घात् 5.1, जसि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—न इचि पूर्वसवर्णः दीर्घः एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में दीर्घ वर्ण से उत्तर इच् वर्ण या जस् प्रत्यय परे रहते पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं होता है ।

उदा.—(1) कुमारी औ–यण् प्राप्त हुआ, प्रथमयोः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वसवर्णः ने यण् का बाध किया, प्रकृत सूत्र के द्वारा निषेध होकर)–कुमार्यौ ।

कुमारी जस् (पूर्ववत्)–कुमार्यः ।

(2) ब्रह्मबन्धू औ (पूर्ववत्)–ब्रह्मबन्ध्वौ । ब्रह्मबन्धू जस्–ब्रह्मबन्ध्वः ।

वा च्छन्दसि 6.1.102

पद.—वा–अव्य०, च्छन्दसि 7.1

अनु.—न दीर्घात् जसि इचि पूर्वसवर्णः दीर्घः एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—वेद के विषय में दीर्घ वर्ण से उत्तर इच् वर्ण या जस् प्रत्यय परे रहते विकल्प से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश का निषेध होता है, संहिता के विषय में ।

निषेध के विकल्प और विधि के विकल्प में कोई अन्तर नहीं पड़ता है ।

उदा.—मारुतीः (काठ० सं० 11.10) ।
वाराही (मै०सं० 4.4.5) ।

अमि पूर्वः 6.1.103

पद.—अमि 7.1, पूर्वः 1.1

अनु.—अकः एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में अक् वर्ण से उत्तर अम् प्रत्यय के अच् के परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है ।

उदा.—राम अम्–रामम् (अकः सवर्णे दीर्घः) ।
अतो गुणे । प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । अमि पूर्वः) ।
हरि अम् (इको यणचि । अमि पूर्वः)–हरिम् ।
साधु अम्–साधुम् ।

विशेष—1. सूत्र में 'पूर्वः' का ग्रहण किया गया है ताकि पूर्व का ही रूप हो तथा पूर्वसवर्ण सदृशतम दूसरा वर्ण न हो। अन्यथा—कुमारी अम् यहाँ त्रिमात्रिक आदेश प्राप्त हो जाता ।

2. प्रकृतसूत्र में 'वा च्छन्दसि' का अनुवर्त्तन करके अर्थ होता है—

वेद के विषय में अक् से उत्तर 'अम्' के अच् के परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर विकल्प से पूर्वरूप एकादेश होता है— मानुषीम् (काठ० 14.5) ।
गौर्यम् (ऋ० 4.12.6) ।

सम्प्रसारणाच्च 6.1.104

पद.—सम्प्रसारणात् 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—पूर्वः एकः पूर्वपरयोः अचि ।

अर्थ—संहिता के विषय में सम्प्रसारण संज्ञक वर्ण से उत्तर अच् के परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है ।

उदा.—(1) यज् क्त–इ अ ज् त (वचिस्वपि०)–इज् त–इष् त–इष्ट सु–इष्टम् ।

(2) वप् क्त–उ अप् त–उप् त सु–उप्तम् ।

(3) ग्रह् क्त–ग् ऋ अह् त (ग्रहिज्या०)–ग् ऋह् त–गृह् इ त–गृहीत सु (ग्रहोऽलि०)–गृहीतम् ।

एङः पदान्तादति 6.1.105

पद.—एङः 5.1, पदान्तात् 5.1, अति 7.1

अनु.—पूर्वः एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में पदान्त एङ् से पर अत् परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है ।

एङ् में दो वर्ण हैं—ए, ओ । अत् का अर्थ है—ह्रस्व अकार ।

उदा.—हरे अव–'हरे' सम्बोधन का एकवचन है । अतः पद है । पदान्त में 'ए' हुआ । 'अ' परे है । हरेऽव । विष्णो अव–विष्णोऽव ।

विशेष—1. 'पदान्तात्' अर्थात् **पदान्त** में एङ् वर्ण से पर अत् परे रहते ही पूर्व रूप एकादेश होता है—जे अ–जयः यहाँ 'जे' पद नहीं है । अतः 'ए' पदान्त में नहीं है । पूर्व रूप न हुआ ।

2. **'एङः'** अर्थात् 'एङ्' से उत्तर अत् परे रहते ही पूर्वरूप होता है—

दधि अत्र 'दधि' पद है, परन्तु पदान्त में 'एङ्' नहीं है । अत् परे रहते पूर्वरूप न हुआ । दध्यत्र ।

3. **'अति' अत् परे रहते** ही पूर्वरूप होता है—

साधो इति–'साधो' पद है, पदान्त में एङ् (ओ) है परन्तु ह्रस्व अकार परे नहीं है । अतः पूर्वरूप न हुआ ।

4. तपर करण का प्रयोजन है **ह्रस्व** अवर्ण के परे रहते ही पूर्वरूप होता है—

वायो आयाहि–'वायो' पद है, ओ (एङ्) पदान्त में भी है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवर्ण (आ) परे है, परन्तु ह्रस्व नहीं है । अतः पररूप न हुआ । वायवायाहि ।

ङसिङसोश्च 6.1.106

पद.—ङसिङसोः 6.2, च-अव्य० ।

अनु.—एङः अति पूर्वः एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में एङ् से उत्तर ङसि व ङस् के अकार के परे रहते पूर्व व पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है ।

उदा.—हरि ङसि (घेर्ङिति)-हरे अस्-हरेस्-हरेः ।
साधु ङसि-साधो अस्-साधोस्-साधोः ।

इसी प्रकार ङस् परे रहते पूर्वरूप होता है ।

ऋत उत् 6.1.107

पद.—ऋतः 5.1, उत् 1.1

अनु.—ङसिङसोः अति एकः पूर्वपरयोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में ह्रस्व ऋकार से उत्तर ङसि व ङस् के ह्रस्व अकार के परे रहते पूर्व व पर दोनों के स्थान पर पूर्व रूप एकादेश होता है ।

उदा.—पितृ ङसि-पितुर् स् (पूर्वरूप एकादेश, उरण् रपरः)- पितुर् (संयोगान्तलोप)-पितुः। पितृ ङस्-पितुः ।

विशेष—1. **'ऋतः'** में तपरकरण दीर्घ की निवृत्ति के लिए है । द्र०—उन्र्योर्ग्रः यहाँ 'गृ ङस्' इस दशा में दीर्घ ऋकार से पर ह्रस्व अकार परे रहते उत् एकादेश न हुआ ।

इसी प्रकार 'प्रे स्रोऽयज्ञे' में जानना चाहिए ।

2. यद्यपि विधीयमान अण् (उ) अपने सवर्ण का ग्राहक नहीं होता है, तदपि 'उत्' में तपरकरण से सूचित होता है कि भाव्यमानोऽप्यण् क्वचित् सवर्णान् गृह्णाति अर्थात् विधीयमान भी अण् कहीं कहीं सवर्णों का ग्राहक होता है । द्र०-काशि०-(पदम०) 6.1.111

यहाँ प्रमाण है कि 'यवलपरे यवला वा' (वा०) के द्वारा अनुनासिक यकारादि का विधान होता है । इसी प्रकार 'अदसोऽसेर्दादुदो मः' में उकार से ह्रस्व तथा दीर्घ दोनों का ग्रहण किया जाता रहा है ।

ख्यत्यात् परस्य 6.1.108

पद.—ख्यत्यात् 5.1, परस्य 6.1

अनु.—उत् ङसिङसोः अति ।

अर्थ—संहिता के विषय में जिनके स्थान पर यणादेश किया गया है, ऐसे खिशब्द, तिशब्द, खीशब्द अथवा तीशब्द से उत्तर ङसि व ङस् के ह्रस्व अकार के परे रहते उस अकार के स्थान पर ह्रस्व उकार होता है ।

उदा.—सखि ङसि-सखि अस्-सख्य् अस् (यण्)-सख्य् उस्-सख्युः ।

पति ङसि-पत्य् अस्-पत्य् उस्-पत्युः ।

इसी प्रकार ङस् में जानना चाहिए ।

विशेष—**'ख्यत्यात्'** इस पद में 'ख्य' तथा 'त्य' अकार युक्त निर्देश हैं । यह अकार उच्चारणार्थ है, अन्यथा 'सङ्ख्य' व अपत्य आदि शब्दों में प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति होकर 'सख्युर्यः' तथा 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' इत्यादि आचार्य वचनों में अनिष्ट रूप प्राप्त हो जायेंगे ।

अतो रोरप्लुतादप्लुते 6.1.109

पद.—अतः 5.1, रोः 6.1, अप्लुतात् 5.1, अप्लुते 7.1

अनु.—अति उत् ।

अर्थ—संहिता के विषय में अप्लुत अत् (ह्रस्व अकार) से उत्तर अप्लुत अत् (ह्रस्व अकार) परे रहते रु के रेफ के स्थान पर उत् आदेश होता है ।

उदा.—रामस् अत्र-राम रु अत्र (ससजुषो रुः)-

राम र् अत्र-राम उ अत्र-रामो अत्र (आद् गुणः)-रामोऽत्र (एङः पदान्तादति) ।

विशेष—1. 'ससजुषो०' (पा० 8.2.66) 'अतो रोरप्लु.' 'पा० 6.1.109' के प्रति असिद्ध है, तदपि वचन सामर्थ्य से सिद्ध है ।

2. सूत्रोक्त उत् आदेश 'रु' के अनुबन्धरहित स्वरूप अर्थात् रेफ के स्थान पर होता है । सूत्र में **'रु'** के निर्देश का प्रयोजन है कि यह उत् आदेश 'रु' के रेफ के स्थान पर ही होता है, अन्य रेफ के स्थान पर नहीं । फलतः प्रातर् अत्र, धातर् अत्र इत्यादि में उत्व नहीं होता है—प्रातरत्र, धातरत्र ।

3. 'अतः' का प्रयोजन है कि **ह्रस्व अकार** से उत्तर 'रु' को 'उत्' होता है—

मुनिस् अत्र-मुनि रु अत्र-मुनिरत्र । यहाँ रु से उत्तर अप्लुत अकार है परन्तु अप्लुत अकारपूर्वक नहीं है । अतः उत्व न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. 'अतः' में **तपरकरण** का प्रयोजन है कि वृक्षास् अत्र–वृक्षा अत्र यहाँ उत्व न हो ।

5. 'अति' का प्रयोजन है कि **अप्लुत अकार** परे रहते ही सूत्रोक्त उत्व होता है—

वृक्षस् इह—अप्लुत अकार से उत्तर 'रु' है । अप्लुत अकार परे नहीं है । अतः उत्व न हुआ ।

वृक्ष रु इह–वृक्ष इह ।

'अति' पद में तपर ग्रहण के कारण वृक्षस् आश्रितः–वृक्ष आश्रितः यहाँ उत्व न हुआ ।

6. 'अप्लुतात्' का प्रयोजन है कि **प्लुत अकार से उत्तर** ही रु को उत्व होता है—सुस्रोता इ अत्र न्वसि यहाँ प्लुत अकार से उत्तर 'रु' है । अप्लुत अकार के परे रहते भी उत्व न हुआ ।

7. 'अप्लुते' का प्रयोजन है कि **प्लुत** अकार परे न रहते उत्व होता है—

तिष्ठतु पयस् आ३ श्विन्–तिष्ठतु पय आ३श्विन् यहाँ प्लुत अकार के परे रहते उत्व न हुआ ।

हशि च 6.1.110

पद.—हशि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अतः रोः उत् ।

अर्थ—संहिता के विषय में हश् वर्ण परे रहते अकार से उत्तर रु के रेफ को उत् आदेश होता है ।

उदा.—देवस् हसति–देवो हसति ।
देवस् याति–देवो याति ।
देवस् वदति–देवो वदति ।
बालस् रोदिति–बालो रोदिति ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण ।

प्रकृत्याऽन्तःपादम्[1] 6.1.111

पद.—प्रकृत्या 3.1, अन्तःपादम्–अव्य० ।

अनु.—एङः, अति ।

अर्थ—संहिता के विषय में अकार परे रहते पाद के मध्य में वर्त्तमान एङ् को प्रकृतिभाव होता है अर्थात् सन्धिकार्य नहीं होता है ।

उदा.—सुजाते अश्वसूनृते (ऋ० 5.79.1) ।
उप प्रयन्तो अध्वरम् (ऋ० 1.74.1) ।

यहाँ 'एङः पदान्तादति' से पूर्वरूप प्राप्त था ।

विशेष—1. 'अन्तःपादम्' अर्थात् **पाद के मध्य** में वर्त्तमान एङ् से उत्तर अकार के परे रहते प्रकृतिभाव होता है—

एतेऽर्चयन्ति (ऋ० 1.165.1) यहाँ प्रकृतिभाव न हुआ ।

2. 'एङः' अर्थात् **एङ् से उत्तर** को प्रकृतिभाव होता है—

अन्वग्निरुषसामग्रख्यत् (शौ० 7.82.4) यहाँ एङ् से उत्तर अकार नहीं है । अतः प्रकृतिभाव न हुआ ।

काशिकाकार लिखते हैं कि इस सूत्र का 'नाऽन्तः पादमव्यपरे' इस प्रकार स्वरूप भी प्राप्त होता है ।

अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च 6.1.112

पद.—अव्यादवद्या .... स्युषु 7.3, च–अव्य० ।

अनु.—प्रकृत्या, अन्तः पादम्, एङः अति ।

अर्थ—संहिता के विषय में अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमुः, अव्रत, अयम्, अवन्तु तथा अवस्यु–इन का जो अकार, उसके परे रहते पाद के मध्य में वर्त्तमान एङ् को प्रकृतिभाव होता है ।

उदा.—अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात् (तै०सं० 2.1.11.2) मित्रमहो अवद्यात् (ऋ० 4.4.15)
मा शिवासो अवक्रमुः (ऋ० 7.32.27)
ते नो अव्रताः।
शत धारो अयं मणिः (शौ० 19.36.5)
ते नो अवन्तु पितरः ।
कुशिकासो अवस्यवः (ऋ० 3.42.9)

सन्धि कार्य भी प्राप्त होता है—

ते नोऽवन्तु (ऋ० 10.15.1; 70.8) ।

यजुष्युरः 6.1.113

पद.—यजुषि 7.1, उरः 1.1

अनु.—प्रकृत्या एङः अति ।

अर्थ—संहिता के विषय में यजुर्मन्त्र में एङन्त जो उरः शब्द, उससे अकार परे रहते प्रकृतिभाव होता है ।

काशिकाकार ने यहाँ उरो अन्तरिक्षं सजूः उदाहरण दिया है। उन्होंने प्रथमान्त 'उरस्' शब्द के सकार को रुत्व, उत्व होकर 'उरो' एङन्त रूप का ग्रहण किया है, परन्तु वस्तुस्थिति

1. 'अन्तःपादमव्यपरे' इति पाठान्तरमुपलभ्यते—ईश्वरचन्द्रः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि वैदिक संहिताओं में अकार के परे रहते एङन्त 'उरस्' शब्द एक बार भी प्राप्त नहीं होता है।

यजुर्वेद में 'उरो अन्तरिक्ष' प्रयोग कई बार प्राप्त होता है (द्र० मै०3.6.4, 1.2.2, क० 1.14, तै० 1.3.8.1)। महीधर ने 'उरो' शब्द को सम्बुद्ध्यन्त माना है।[1] महर्षि दयानन्द ने भी उक्तमन्त्र में प्रथमा के अर्थ में सम्बुद्धि का प्रयोग माना है।[2] अतः काशिकोद्धृत पाठ (उरो अन्तरिक्षं सजूः) लिपिकार का दोष प्रतीत होता है।

वस्तुतः आचार्य पाणिनि ने सूत्रों की रचना संहितारूप में की थी। ऐसा आचार्य के सूत्रों के अर्थ से भी प्रतीत होता है। यथा—

'स्थानेऽन्तरतमः' का स्वरूप' 'स्थानेऽन्तरतमे' ऐसा भी हो सकता है।

प्रकृतसूत्र का पाठ देखकर प्रतीत होता है कि यजुष्युर आपो जुषाणो० इस प्रकार संहितापाठ का उभयविध सन्धि-च्छेद सम्भव है—

यजुष्यरः आपो० तथा
यजुष्युरो आपो०।

काशिकाकार ने स्वयं इस ओर संकेत किया है। अतः वैदिक साहित्य में प्राप्त प्रयोगों के आधार पर सूत्र का द्वितीय स्वरूप ही अधिक संगत प्रतीत होता है।

आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे अम्बे अम्बाले अम्बिके पूर्वे 6.1.114

पद.—आपो जुषाणो .... अम्बाले ... सर्वे लुप्तविभक्तिक-रूपाणि, अम्बिके पूर्वे 1.2

अनु.—यजुषि प्रकृत्या अति।

अर्थ—संहिता के विषय में यजुर्मन्त्र में आपो, जुषाणो वृष्णो, वर्षिष्ठे–ये शब्द, अम्बिके शब्द से पूर्व अम्बे व अम्बाले–ये शब्द, अकार परे रहते प्रकृतिभाव होता है।

उदा.—आपो अस्मान् (मा० सं० 4.2.)।
आपो अध्न्या (मै० 1.2.18)।
जुषाणो अप्तुराज्यस्य (मा०सं० 5.35)।
वृष्णो अंशुभ्याम् (मा०सं० 7.1; शत० 4.1.1.9)।
वर्षिष्ठे अधिनाके (मै० 1.1.9)।
अम्बे अम्बाले अम्बिके।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके (का०25.5.1)।

अङ्ग इत्यादौ च 6.1.115

पद.—अंगे 7.1, इत्यादौ 7.1, च–अव्य०।

अनु.—यजुषि प्रकृत्या एङः अति।

अर्थ—संहिता के विषय में यजुर्वेद में अंग शब्द में जो एङ् उससे पर अकार परे रहते प्रकृतिभाव होता है तथा अंग शब्द के आदि में वर्त्तमान 'अ' के परे रहते एङ् को प्रकृतिभाव होता है।

उदा.—प्राणो अंगे अंगे अशोचिषम् (मै० सं० 1.2.17 मा०सं० 6.20) यहाँ 'अंगे अशोचिषम्' में तथा 'प्राणो अंगे' में प्रकृतिभाव हुआ है।

अनुदात्ते च कुधपरे 6.1.116

पद.—अनुदात्ते 7.1, च–अव्य०, कुधपरे 7.1

अनु.—यजुषि प्रकृत्या एङः अति।

अर्थ—संहिता के विषय में यजुर्मन्त्र में कवर्ग या धकार-परक अनुदात्त अकार के परे रहते एङ् को प्रकृतिभाव होता है।

उदा.—(1) अयं सो अग्निः (मा० 12.47) 'अग्नि' शब्द अनुदात्तादि है। अकार से क वर्ग (ग्) परे हैं। प्रकृतिभाव हो गया।

(2) अयं सो अध्वरः अनुदात्तादि अकार से पर धकार है। प्रकृतिभाव हुआ। उपप्रयन्तो अध्वरम् (शत० 2.3.4.10)।

विशेष—1. 'अनुदात्ते' अर्थात् **अनुदात्त अकार** परे रहते प्रकृतिभाव होता है—

अधोऽग्रे 'अ' से पर क वर्ग है, परन्तु अनुदात्त नहीं है। अतः प्रकृतिभाव न हुआ।

2. 'कुधपरे' अर्थात् **क वर्ग** या **धकार परक** अकार के परे रहते प्रकृतिभाव होता है—

सोऽयम् अग्निः यहाँ अकार से पर न तो क वर्ग है तथा न ही धकार है। अतः प्रकृतिभाव न हुआ।

अवपथासि च 6.1.117

पद.—अवपथासि 7.1, च–अव्य०।

अनु.—अनुदात्ते यजुषि प्रकृत्या एङः अति।

1. यजु० (मही०) 4.7 हे उरो विस्तीर्ण अन्तरिक्ष।
2. यजु० (मही० भाष्य) प्रथमार्थे सम्बुद्धिः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—संहिता के विषय में यजुर्मन्त्र में अवपथाः के अनुदात्त अकार के परे रहते एङ् को प्रकृतिभाव होता है।

उदा.—त्री रुद्रेभ्यो अवपथाः।

सर्वत्र विभाषा गोः 6.1.118

पद.—सर्वत्र-अव्य०, विभाषा-1.1, गोः 6.1

अनु.—प्रकृत्या एङः पदान्तात् अति।

अर्थ—संहिता केविषय में लोक तथा वेद दोनों में एङन्त 'गो' शब्द को पदान्त में विकल्प से प्रकृतिभाव होता है, अकार परे रहते।

उदा.—गो अग्र-(सुप्तिङन्तं पदम्)-गो अग्र सु-गो अग्रम् (प्रकृतिभाव)।

पक्ष में अवङ् होगा (देखें अगला सूत्र)।

काशिका में पक्ष में 'गोऽग्रम्' रूप दिखाया गया है, जो चिन्त्य है। यह सूत्र 'अवङ् स्फोटायनस्य' का अपवाद है, 'एङः पदान्तादति' का नहीं। अतः पक्ष में अवङ् स्फो० की प्रवृत्ति होती है। यथा—

गो अग्रम् 'एङः पदान्तादति' से पूर्व रूप की प्राप्ति हुई। उसको बाध कर 'अवङ् स्फोटायनस्य' की प्रवृत्ति हुई। उसे बाधकर प्रकृतसूत्र से पाक्षिक प्रकृतिभाव हुआ। जिस पक्ष में प्रकृतिभाव न होगा, वहाँ अवङ् हो जायेगा। अवङ् के पक्ष में पूर्वरूप भी होगा। अतः अगले सूत्र पर पक्ष में पूर्वरूप दिखाया है।

यहाँ पक्ष में गोऽग्रम् दर्शाना उचित नहीं है।

विशेष—1. 'एङः' अर्थात् **एङन्त** जो गो शब्द उसे प्रकृतिभाव होता है—

चित्रगु अग्रम्-चित्रग्वग्रम्।

2. 'पदान्ते' अर्थात् **पदान्त में** ही एङ्न्त जो 'गो' शब्द, उसे प्रकृतिभाव होता है—गो ङस् (ङसिङसोश्च)—

यहाँ पदान्त में 'गो' शब्द नहीं है।

गोस्-गोः।

अवङ् स्फोटायनस्य 6.1.119

पद.—अवङ् 1.1, स्फोटायनस्य 6.1

अनु.—गोः, विभाषा, अचि, पदान्तात्।

अर्थ—पदान्त में जो एङ्, तदन्त गो शब्द को अच् परे रहते विकल्प से अवङ् आदेश होता है।

'इको यणचि' से मण्डूकप्लुतगत्या 'अचि' पद का अनुवर्त्तन होता है।

अवङ् के ङकार की इत्संज्ञा है।

उदा.—गो अग्र-पदान्त है, अकार परे रहते अवङ् हुआ। अनेकाल् होने से सर्वादेश होना चाहिए। 'ङिच्च' से अन्त्य अल् (ओ) के स्थान पर हुआ। ग् अव अग्र-गवाग्र (अकः सवर्णे०)-गवाग्रम् (सु)। पक्ष में—गोऽग्रम्।

विशेष—1. अवङ् के ङकार की इत्संज्ञा होती है, तथा वकारोत्तरवर्ती अकार की नही होती है।

यहाँ 'गवाश्वप्रभृतीनि च' सूत्र प्रमाण है। यदि इस अकार की इत्संज्ञा कर देंगे तो गवाश्व० न बन सकेगा।

2. **पदान्त** में ही अवङ् होता है—

गो इ-गवि पदान्त न होने से अवङ् न हुआ।

इन्द्रे च 6.1.120

पद.—इन्द्रे 7.1, च-अव्य०।

अनु.—अवङ् गोः अचि।

अर्थ—संहिता के विषय में इन्द्र शब्द परे रहते एङन्त गो शब्द को अवङ् आदेश होता है।

उदा.—गो इन्द्र-गवङ् इन्द्र-गवेन्द्र सु-गवेन्द्रः।

(1) 'एङन्त' का प्रयोजन है कि एङन्त गो शब्द से ही अवङ् होता है—

चित्रगु इन्द्रः—चित्रग्विन्द्रः यहाँ अवङ् न हुआ।

(2) काशिकाकार ने अगले सूत्र के 'नित्यम्' पद को प्रकृत सूत्र के साथ जोड़ा है—इन्द्रे च नित्यम् (काशि० 6.1.124)।

वस्तुतः 'इन्द्रे च' इस आरम्भ सामर्थ्य से ही पूर्व शास्त्र से अनुवृत्त 'विभाषा' पद की निवृत्ति हो जाती है। अतः 'नित्यम्' पद का प्रयोग उचित नहीं है।

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् 6.1.121

पद.—प्लुतप्रगृह्याः 1.3, अचि 7.1, नित्यम् 1.1

अनु.—प्रकृत्या।

अर्थ—संहिता के विषय में अच् परे रहते प्लुत तथा प्रगृह्य संज्ञक शब्दों को नित्य ही प्रकृतिभाव होता है।

उदा.—(1) देवदत्ता 3 अत्र न्वसि-प्रकृतिभाव हुआ। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति-'दूराद्धूते' से पाक्षिक प्लुत हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) अग्नी इति, वायू इति, खट्वे इति यहाँ ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् से प्रगृह्य संज्ञा होकर प्रकृतिभाव हुआ है।

त इमेऽध्यासते (भाग०10.85.49) 'इमे' बहुवचनान्त रूप है, न कि द्विवचनान्त। अतः प्रगृह्य संज्ञा न हुई। प्रगृह्य न होने से प्रकृतिभाव न हुआ।

रविविधू अपि (मु०चि० 2.43)।

आङोऽनुनासिकश्छन्दसि बहुलम् 6.1.122

पद.—आङः 6.1, अनुनासिकः 1.1, छन्दसि 7.1, बहुलम् 1.1

अनु.—अचि प्रकृत्या।

अर्थ—संहिता के विषय में वेद में अच् परे रहते आङ् को अनुनासिक आदेश बहुलता से होता है तथा उस अनुनासिक को प्रकृतिभाव भी होता है।

उदा.—(1) अभ्र आँ अपः (अनुनासिक व प्रकृतिभाव हुआ)।

गभीर आँ उग्रपुत्रे (पूर्ववत्)।

(2) सवायँ एवा रात्र्युषसे (ऋ० 1.113.1) बहुल कहने से 'आ' से अन्यत्र भी अनुनासिक होता है।

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6.1.123

पद.—इकः 1.3, असवर्णे 7.1, शाकल्यस्य 6.1, ह्रस्वः 1.1, च–अव्य०।

अनु.—अचि प्रकृत्या।

अर्थ—असवर्ण अच् परे रहते पदान्त इक् को विकल्प से ह्रस्व होता है।

विधान सामर्थ्य से स्वरसन्धि नहीं होती है, अन्यथा ह्रस्वविधान व्यर्थ हो जायेगा।

उदा.—(1) चक्री अत्र–असवर्ण अच् (अ) परे है। इक् (ई) को ह्रस्व हुआ। चक्रि अत्र। पक्ष में यण् होकर—चक्र्यत्र।

(2) दधि अत्र–दधि अत्र, दध्यत्र।

(3) मधु अस्ति–मधु अस्ति, मध्वस्ति।

विशेष—1. 'असवर्णे' अर्थात् **असवर्ण अच्** परे रहते ही ह्रस्व होता है—

योगी इच्छति–दीर्घ ईकार से पर सवर्ण 'इ' है। अतः ह्रस्व न हुआ। सवर्ण दीर्घ हुआ।

कुमारी ईहते–कुमारीहते।

2. 'पदान्त' अर्थात् **पदान्त** इक् को ही ह्रस्व होता है—

गौरी औ–पदान्त में इक् (ई) नहीं है। अतः ह्रस्व न हुआ। गौर्यौ।

3. 'इकः' अर्थात् असवर्ण अच् परे रहते **इक्** को ही ह्रस्व होता है—

खट्वा इन्द्रः—असवर्ण अच् (इ) परे हैं। परन्तु इक् नहीं है। अतः ह्रस्व न हुआ।

4. सित् परे और नित्य समास विधि में पूर्वोक्त ह्रस्व का निषेध होता है।[1]

अयं ते योनिर् ऋत्वियः—यहाँ 'ऋतु' से घस् होकर ऋत्वियः बना है। अतः प्राप्त प्रकृतिभाव का निषेध हो गया। यण् होकर 'ऋत्वियः' बना।

मध्वरिः यहाँ समास है। अतः प्रकृतिभाव का निषेध हो गया।

5. ईषा अक्ष आदि में वेद में केवल प्रकृतिभाव होता है[2]—

ईषा अक्षः (ऋ०8.5.29)। का ईमिरे। यथा अगमन्। पूषा अविष्टु (ऋ० 10.26.19)। ज्या इयम् (ऋ. 6.75.3)।

ऋत्यकः 6.1.124

पद.—ऋति 7.1 अकः 1.3

अनु.—ह्रस्वः प्रकृत्या पदान्ते। शाकल्यस्य।

अर्थ—ऋत् (ह्रस्व ऋकार) परे रहते पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है।

उदा.—ब्रह्मा ऋषिः–ब्रह्म ऋषि वचन सामर्थ्य से पुनः गुण सन्धि नहीं होती है।

पक्ष में गुण सन्धि–ब्रह्मर्षिः।

देव ऋषिवर्यम् (भाग० 10.69.16)।

ब्रह्म ऋषीन् (भाग० 10.86.57)।

सुर ऋषिम् (भाग० 7.1.14)।

भार्गव ऋषेः (भाग० 9.15.13)। काकऋक्षश्वानः (मु० चि० 11.104)। कपि ऋक्षाणाम् (मु०चि० 11.102)। राजऋषिः (भाग० 24.10)।

विशेष—1. 'पदान्त' अर्थात् **पदान्त** में ही ह्रस्व होता है—

1. महा० 6.1.127 (वा०) सित्नित्य समासयोः शाकलप्रतिषेधो वक्तव्यः।
2. वही—ईषा अक्षादिषु च्छन्दसि प्रकृतिभावमात्रं वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ ऋच्छत्–आर्च्छत् (आटश्च)–अपदान्त होने से ह्रस्व न हुआ।

2. समास में भी उक्त ह्रस्व होता है—

सप्त ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम्।

3. 'ऋति' अर्थात् **ह्रस्व ऋकार** परे रहते ही ह्रस्व होता है—

खट्वा इन्द्रः—ह्रस्व ऋकार परे नहीं है। ह्रस्व न हुआ। खट्वेन्द्रः।

4. 'अकः' अर्थात् **अक् वर्णों** को ही ह्रस्व होता है—

वृक्षौ ऋश्यः—ह्रस्व ऋकार परे है, परन्तु अक् नहीं है। अतः ह्रस्व तथा ह्रस्व–समुच्चित प्रकृतिभाव भी नहीं होता है। वृक्षावृश्यः।

अप्लुतवदुपस्थिते 6.1.125

पद.—अप्लुतवत्–अव्य०, उपस्थिते 7.1

अर्थ—'उपस्थित' का अर्थ है—अनार्ष (जो वेद से अन्यत्र हो)। वेद विषय से अतिरिक्त जो 'इति' पद, उसके परे रहते प्लुत अप्लुत के समान होता है।

तब सन्धिकार्य होता है।

उदा.—सुश्लोका 3 इति 'दूराद्धूते च' से प्लुत हुआ। प्रकृत सूत्र से अप्लुत हुआ।

गुण होकर–सुश्लोकेति।

ई3 चाक्रवर्मणस्य 6.1.126

पद.—ई3 लुप्तप्रथमाविभक्तिकरूपम्, चाक्रवर्मणस्य 6.1

अनु.—अचि अप्लुतवत्।

अर्थ—अच् परे रहते प्लुत ई3 चाक्रवर्मण के मत में अप्लुत के समान होता है।

उदा.—(1) अस्तु ही3 इत्यब्रवीत्। इस दशा में अप्लुत व दीर्घ हुआ–अस्तु हीत्यब्रवीत्।

पक्ष में प्लुत रहा। तब प्रकृतिभाव हुआ। अस्तु ही3 इत्यब्रवीत्।

(2) चिनुहीदम्, चिनुही 3 इदम्। यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

दिव उत् 6.1.127

पद.—दिवः 6.1, उत् 1.1

अनु.—पदान्तात् इति मण्डूकप्लुतगत्या अनुवर्त्तते। 'दिव्' इति अनेन प्रातिपदिकं गृह्यते, न तु धातुः।

अर्थ—विभक्ति विपरिणाम से 'पदान्तात्' पद को 'पदान्ते' बना लिया जाता है।

पदान्त में दिव् शब्द के स्थान पर उत् आदेश होता है।

उत् का अर्थ है—ह्रस्व उकार।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा 'उत्' आदेश वकार के स्थान पर होता है।

उदा.—सु दिव् भ्याम् (स्वादिष्वसर्वनाम०)–सुदि उ भ्याम्–सुद्युभ्याम् (यण्)।

इसी प्रकार–सुद्युभिः, सुद्युभ्यः, सुद्युषु।

विशेष—1. 'उत्' में तपर करण ऊठ् की निवृत्ति के लिए है। सुद्युभ्याम् आदि में परत्व के कारण 'ऊठ्' प्राप्त था। तपर करण का प्रयोजन है कि सुद्युभ्याम् आदि में ऊठ् न हो।

2. 'पदान्ते' अर्थात् **पदान्त** में ही 'उ' आदेश होता है—

दिव् औ–यहाँ पदान्त नहीं है। अतः ह्रस्व उकार न हुआ। दिवौ।

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि 6.1.128

पद.—एतत्तदोः 6.2, सुलोपः 1.1, अकोः 6.2, अनञ् समासे 7.1, हलि 7.1

अर्थ—संहिता के विषय में ककार जिसमें नहीं है तथा जो नञ् समास में वर्त्तमान नहीं है, ऐसे एतद् व तद् शब्दों के सु का लोप होता है, हल् परे रहते।

उदा.—एषस् देवः 'सु' के सकार का लोप हो गया–एष देवः।

सस् देवः–स देवः।

विशेष—1. 'अकोः अर्थात् **ककाररहित** एतद् व तद् के 'सु' का लोप होता है। जब अव्यय सर्वनाम्नामकच् ० के द्वारा एतद् और तद् की टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है, तब इनमें ककार आ जाता है। उस दशा में इनके 'सु' का लोप नहीं होता है—

एषकस् देवः–एषको देवः।
सकस् देवः–सको देवः।

2. 'अनञ् समासे' अर्थात् **नञ् समास न हो** तो सु लोप होता है। यह प्रसज्यप्रतिषेध है—

अनेषः देवः, असः देवः। 'सु' का लोप न हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. 'हलि' अर्थात् हल् परे रहते ही एतद् व तद् के सु का लोप होता है—

एषस् अत्र–एषोऽत्र,
सस् अत्र–सोऽत्र,

यहाँ हल् परे न होने के कारण सुलोप न हुआ।

4. 'एतत्तदोः' अर्थात् एतद् व तद् के ही सु का लोप होता है—

यस् ददाति–यो ददाति ककाररहित है, नञ् समास में वर्त्तमान नहीं है तथा हल् परे है परन्तु एतद् या तद् का सु नहीं है। अतः सु लोप न हुआ।

5. 'सुलोपः' अर्थात् सु का ही लोप होता है —

एत औ गावौ–यहाँ एतद् है, ककार रहित है, नञ् समास भी नहीं है, हल् परे हैं परन्तु 'औ' विभक्ति है। अतः लोप न हुआ—एतौ गावौ।

स्यश्छन्दसि बहुलम् 6.1.129

पद.—स्यः 1.1, (षष्ठ्यर्थे प्रथमा), छन्दसि 7.1, बहुलम् 1.1

अनु.—सुलोपः हलि।

अर्थ—संहिता के विषय में वेद में हल् परे रहते 'स्य' के सु का लोप होता है, बहुलता से।

उदा.—उतस्य वाजी (ऋ० 4.40.4; 38.7)। उदु स्य देवः (शां० 8.7)।

यत्र स्थो निपतेत्–यहाँ सुलोप न हुआ।

सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् 6.1.130

पद.—सः 1.1 (षष्ठ्यर्थे प्रथमा), अचि 7.1, लोपे 7.1, चेत्–अव्य०, पादपूरणम् 1.1

अनु.—सुलोपः।

अर्थ—संहिता के विषय में यदि केवल लोप होने से ही पादपूर्ति होती हो तो अच् परे रहते तद् शब्द के सु का लोप होता है।

पाद शब्द के द्वारा ऋङ्मन्त्र व श्लोक का चरण–दोनों का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) सेमामविड्दि प्रभृतिं (ऋ० 2.24.01) यहाँ 'सः इमाम्' इस दशा में 'सु' का लोप होकर गुण हुआ है। तब पादपूर्ति भी हो जाती है।

(2) सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः। सैष कर्णो महात्यागी, सैष भीमो महाबलः। यह अनुष्टुप् छन्द का उदाहरण है। सः एषः इस दशा में सुलोप हुआ, वृद्धि आदेश हुआ फलतः पादपूर्ति हो गई। यदि सुलोप न करते तो पाद पूर्ति न होती।

सुट् कात् पूर्वः 6.1.131

पद.—सुट् 1.1, कात् 5.1, पूर्वः 1.1

अनु.—संहितायाम्।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार 'पारस्करप्रभृतीनि च' तक जाता है।

संहिता के विषय में ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है। सुट् के टकार की इत् संज्ञा है। उकार उच्चारणार्थ है। टित् होने से यह अन्त में होना चाहिए, परन्तु 'पूर्वः' कह देने से यह पूर्व में होगा।

टित् करने का प्रयोजन है कि 'परिनिविभ्यः सेव०' में इसका ग्रहण हो सके। उदाहरण आगे देखें।

सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे 6.1.132

पद.—सम्परिभ्याम् 5.2, करोतौ 7.1, भूषणे 7.1

अनु.—सुट् कात् पूर्वः।

अर्थ—संहिता के विषय में भूषण अर्थ में सम् व परि उपसर्ग से उत्तर 'कृ' धातु के परे रहते ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है।

उदा.—(1) सम् कर्त्ता–सम् सुट् कर्त्ता (सम्पुंकानां सत्वम्–वा० के द्वारा म् को स्) स स् स् कर्त्ता–सँ स् स् कर्त्ता (अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु० से पाक्षिक अनुनासिक)। पक्ष में (अनुनासिकात् परोऽनु० से अनुस्वार)–संस् स् कर्त्ता अयोगवाहानामट्सु० (वा०) के द्वारा अनुस्वार का अट् में परिगणन होने से हल् से उत्तर होने पर झरो झरि सवर्णे से एक सकार का लोप–संस्कर्त्ता

अनुस्वार को अच् मान कर 'अनचि च' से सकार को द्वित्व–संस्कर्त्ता। सकार लोप एवं द्वित्व भी पाक्षिक होने से तीन सकार वाला रूप भी बनता है—संस्स्कर्त्ता।

(2) परि कर्त्ता–परि सुट् कर्त्ता (परिनिविभ्यः सेव०)–परिष्कर्त्ता।

विशेष—'भूषणे' अर्थात् भूषण अर्थ में ही सुट् होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकरोति ।

परन्तु 'संस्कृतं भक्षाः' सूत्र ज्ञापक है कि भूषण अर्थ के बिना ही सुट् हो जाता है । इस सूत्र में 'भूनना' अर्थ में भी सुट् हो गया ।

समवाये च 6.1.133

पद.—समवाये 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—सम्परिभ्याम् करोतौ सुट् कात् पूर्वः ।

अर्थ—संहिता के विषय में समुदाय अर्थ में कृ धातु परे रहते सम् या परि से उत्तर ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है ।

उदा.—सम् कृतम्-सम् सुट् कृतम्-संस्कृतम् । परि कृतम्-परि सुट् कृतम्-परिष्कृतम् ।

उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु 6.1.134

पद.—उपात् 5.1, प्रतियत्न ... ध्याहारेषु 7.3

अनु.—करोतौ सुट् कात् पूर्वः ।

अर्थ—संहिता के विषय में प्रतियत्न, वैकृत अथवा वाक्याध्याहार गम्यमान हो तो 'उप' से परे 'कृ' के ककार से पूर्व सुट् आगम होता है ।

उदा.—(1) प्रतियत्नो गुणाऽऽधानम् अर्थात् किसी वस्तु में नये गुण का आधान करना 'प्रतियत्न' कहलाता है । यथा—

एधोदकस्योपस्कुरुते अर्थात् लकड़ी पानी को उपस्कृत करती है । यहाँ सुट् हुआ है ।

(2) विकृतमेव वैकृतम्-विकारः वैकार का अर्थ है—विकार । यथा—

उपस्कृतं भुङ्क्ते (= विकृत रीति से खाता है, अर्थात् जैसा सामने आया, खा लिया) यहाँ सुट् हुआ ।

(3) वाक्याऽध्याहार आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् अर्थात् अभीष्ट वाक्य के एकदेश अर्थात् पदों के अध्याहार को 'वाक्याऽध्याहार' कहते हैं ।

उपस्कृतं ब्रूते-यहाँ सुट् हुआ ।

किरतौ लवने 6.1.135

पद.—किरतौ 7.1, लवने 7.1

अनु.—उपात् सुट् कात् पूर्वः ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'लवन' (अर्थात् काटना) का विषय हो तो कृ धातु के परे रहते उप से उत्तर ककार से पूर्व सुट् आगम होता है ।

उदा.—उपस्कारं मद्रका लुनन्ति-यहाँ काटना अर्थ में धातु का प्रयोग है । णमुल् प्रत्यय हुआ है । सुट् हुआ ।

विशेष—1. अट् अथवा अभ्यास के व्यवधान में भी ककार से पूर्व सुट् हो जाता है ।[1]—उपास्किरत्, उपचस्कार यहाँ सुट् हो गया ।

2. जहाँ लवन अर्थ न होगा । वहाँ सुट् न होगा उपकिरति देवदत्तः यहाँ सुट् न हुआ ।

हिंसायां प्रतेश्च 6.1.136

पद.—हिंसायाम् 7.1, प्रतेः 5.1, च-अव्य० ।

अनु.—किरतौ उपात् सुट् कात् पूर्वः ।

अर्थ—संहिता के विषय में प्रति तथा उप उपसर्ग से उत्तर हिंसा अर्थ में कृ धातु परे रहते उसके ककार से पूर्व सुट् होता है ।

उदा.—उपस्किरति, प्रतिस्किरति ।

अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने 6.1.137

पद.—अपात् 5.1, चतुष्पाच्छकुनिषु 7.3, आलेखने 7.1

अनु.—किरतौ सुट् कात् पूर्वः ।

अर्थ—चतुष्पाद् तथा पक्षी आदि के द्वारा कुरेदना गम्यमान हो तो अप उपसर्ग से उत्तर कृ धातु के ककार से पूर्व सुट् होता है ।

उदा.—(1) अपस्किरते वृषभो हृष्टः (=मस्त होकर साँड पृथ्वी को खोदता है) सुट् हुआ ।

(2) अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी (=आश्रय के लिए कुत्ता पृथ्वी कुरेदता है) ।

(3) अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी (=खाने के लिए मुर्गा पृथ्वी कुरेदता है) ।

विशेष—1. **चतुष्पाद् व पक्षी** का कुरेदना गम्य हो तो सुट् होता है—

अपकिरति देवदत्तः यहाँ न चतुष्पाद् का कुरेदना है तथा न ही पक्षी का । अतः सुट् न हुआ ।

---

1. अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम्—(वार्तिकम् इदं काशिकायां सूत्ररूपेण पठितम् अस्ति) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. हर्ष, जीविकाकरण तथा कुलायकरण अर्थों में ही सुट् होता है ।[1]

अपकिरति श्वा ओदनपिण्डम् आशितः यहाँ चतुष्पाद् के द्वारा कुरेदना तो है, परन्तु उक्त तीनों में से एक अर्थ भी नहीं है । अतः सुट् न हुआ ।

कुस्तुम्बुरूणि जातिः 6.1.138

पद.—कुस्तुम्बुरूणि 1.3, जातिः 1.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में कुस्तुम्बुरु शब्द में तकार से पूर्व सुट् आगम निपातन किया जाता है, यदि वह जाति अर्थ वाला हो ।

उदा.—कुस्तुम्बुरु ओषधि का जातिविशेष है । उसके फल को भी 'कुस्तुम्बुरु' कहते हैं ।

विशेष—'जातिः' अर्थात् **जाति अर्थ** हो तो सुट् होता है—

कुत्सितानि तुम्बुरूणि–कुतुम्बुरूणि यहाँ सुट् न हुआ ।

अपरस्पराः क्रियासातत्ये 6.1.139

पद.—अपरस्पराः 1.3, क्रियासातत्ये 7.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में क्रियासातत्य गम्यमान हो तो 'अपरस्पराः' यह शब्द सुट् से युक्त निपातन किया जाता है ।

उदा.—अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति (=सार्थ लोग निरन्तर गमन करते हैं) ।

विशेष—जहाँ क्रिया की निरन्तरता गम्य न हो, वहाँ सुट् नहीं होता है—

अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति यहाँ सुट् न हुआ ।

गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु 6.1.140

पद.—गोष्पदम् 1.1, सेवितासेवितप्रमाणेषु 7.3

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में सेवित, असेवित तथा प्रमाण इन विषयों में 'गोष्पद' शब्द में सुट् आगम तथा षत्व का निपातन किया जाता है ।

उदा.—(1) गोष्पदो देशः ।
(2) अगोष्पदान्यरण्यानि ।
(3) गोष्पदमात्रं क्षेत्रम् ।

विशेष—गोः पदम्–गोपदम् यहाँ पूर्वोक्त एक भी अर्थ नहीं है । अतः सुट् न हुआ ।

आस्पदं प्रतिष्ठायाम् 6.1.141

पद.—आस्पदम् 1.1, प्रतिष्ठायाम् 7.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में प्रतिष्ठा गम्यमान हो तो 'आस्पद' शब्द में सुट् का निपातन किया जाता है ।

उदा.—आस्पदम् ।

वचन सामर्थ्य से नपुँसकलिंगता है ।

विशेष—**प्रतिष्ठा** अर्थ में ही 'आस्पद' शब्द का निपातन होता है—

आ पदात्–आपदम् 'प्रतिष्ठा' गम्य नहीं होने से सुट् न हुआ ।

आश्चर्यमनित्ये 6.1.142

पद.—आश्चर्यम् 1.1, अनित्ये 7.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में अद्भुतता गम्य हो तो 'आश्चर्य' शब्द में सुट् का निपातन किया जाता है ।

उदा.—आ चर्–चरेराङि चाऽगुरौ (वा०) से यत् । आचर् यत्–आश्चर्यम् ।

विशेष—'अनित्ये' अर्थात् **अनित्य** गम्य हो तो 'आश्चर्य' शब्द का निपातन होता है—

आचर्यं कर्म शोभनम् । यहाँ सुट् न हुआ ।

वर्चस्केऽवस्करः 6.1.143

पद.—वर्चस्के 7.1, अवस्करः 1.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में अन्न का मल गम्यमान हो तो 'अवस्कर' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—अव कॄ अप् (ऋदोरप्)–अवस्किर सु अवस्करः ।

विशेष—'वर्चस्के' अर्थात् **'अन्न का मल'** गम्यमान होने पर ही 'अवस्कर' शब्द का निपातन होता है—

1. महा० 6.1.142 (वा०) हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—अवकरः ।

अपस्करो रथाङ्गम् 6.1.144

पद.—अपस्करः 1.1, रथाङ्गम् 1.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'रथ का अवयव' गम्यमान हो तो 'अपस्कर' शब्द में सुट् का निपातन किया जाता है ।

उदा.—अपस्करः ।

विशेष—'रथांगम्' अर्थात् **रथांग** गम्य हो तो 'अपस्कर' निपातन सिद्ध है—

अपकरः यहाँ रथांग गम्य नहीं है । अतः सुट् न हुआ ।

विष्किरः शकुनौ वा 6.1.145

पद.—विष्किरः 1.1, शकुनौ 7.1, वा–अव्य० ।

अनु.—सुट् कात् पूर्वः ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'शकुनि' गम्यमान हो तो 'विष्किर' शब्द में विकल्प से सुट् का निपातन होता है ।

उदा.—विष्किरः–सुट् हुआ ।
विकिरः–सुट् न हुआ ।

ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे 6.1.146

पद.—ह्रस्वात् 5.1, चन्द्रोत्तरपदे 7.1, मन्त्रे 7.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में संहिता के मन्त्र में ह्रस्व से उत्तर चन्द्र शब्द से पूर्व सुट् का आगम होता है ।

उदा.—सुश्चन्द्रः (तै०सं० 4.4.4.6) ।

विशेष—'ह्रस्वात्' अर्थात् **ह्रस्व से उत्तर** चन्द्र शब्द से पूर्व सुट् होता है—

सूर्याचन्द्रमसाविव (ऋ० 5.51.15)

यहाँ ह्रस्व न होने के कारण सुट् न हुआ । 'मन्त्रे' अर्थात् **मन्त्र के विषय** में ही सुट् होता है—

सुचन्द्रा पौर्णमासी ।

प्रतिष्कशश्च कशेः 6.1.147

पद.—प्रतिष्कशः 1.1, च–अव्य०, कशेः 6.1 ।

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में प्रतिष्कश शब्द का निपातन किया जाता है । सुट् आगम तथा षत्व का निपातन किया जाता है ।

उदा.—ग्रामम् अद्य प्रवेक्ष्यामि, भव मे त्वं प्रतिष्कशः ।

विशेष—'कशेः' अर्थात् **कश्** धातु से ही उक्त निपातन होता है—

प्रतिगतः कशाम्–प्रतिकशोऽश्वः ।

प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी 6.1.148

पद.—प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रौ 1.2, ऋषी 1.2

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'ऋषि' गम्यमान हो तो प्रस्कण्व तथा हरिश्चन्द्र शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—प्रस्कण्व ऋषिः ।

हरिश्चन्द्र ऋषिः (ऋ० 9.66.26) ।

विशेष—'ऋषी' अर्थात् **'ऋषि'** गम्यमान हो तो उक्त सुट् आगम होता है —

प्रकण्वो देशः, हरिचन्द्रो माणवक; यहाँ सुट् न हुआ ।

मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः 6.1.149

पद.—मस्करमस्करिणौ 1.2, वेणुपरिव्राजकयोः 7.2

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संहिता के विषय में वेणु (=बाँस) तथा संन्यासी गम्यमान हो तो यथासंख्य करके मस्कर तथा मस्करिन् शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—मा कृ अच्–मा सुट् कर् अ (सुट् । ह्रस्व निपातन से)–मस्कर सु–मस्करः ।

इसी प्रकार–मस्करी ।

विशेष—'वेणुपरिव्राजकयोः' अर्थात् **बाँस व संन्यासी** गम्यमान हो तो उक्त शब्दों का निपातन होता है—

मा कृ अच्–मकरो ग्राहः ।
मा कृ इनि–मकरी समुद्रः

उक्त अर्थ वाच्य न होने से यहाँ सुट् न हुआ ।

कास्तीराजस्तुन्दे नगरे 6.1.150

पद.—कास्तीराजस्तुन्दे 1.2, नगरे 7.1

अनु.—सुट् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—संहिता के विषय में नगर गम्यमान हो तो कास्तीर तथा अजस्तुन्द शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—कास्तीरं नाम नगरम् ।
अजस्तुन्दं नाम नगरम् ।

विशेष—'नगरे' अर्थात् नगर गम्यमान हो तो उक्त निपातन होता है—

कातीरम्, अजतुन्दम् ।

पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् 6.1.151

पद.—पारस्करप्रभृतीनि 1.3, च–अव्य०, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—सुट् ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में पारस्कर आदि शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—पारस्करः (एकदेश का नाम) ।
कारस्करः (एक वृक्ष का नाम) ।
रथस्पा (एक नदी का नाम) ।

विशेष—1. चोर और देवता अर्थों में तद् और बृहद् से उत्तर 'कर' और 'पति' शब्द से पूर्व सुट् होता है[1]—

तद् सुट् कृ अच्–तस्करः (तलोपः) ।
बृहत् पति–बृह सुट् पति–बृहस्पति सु–बृहस्पतिः ।

चोर तथा देवता अर्थ न हों तो सुट् नहीं होता है—

तत्करः, बृहत्पतिः ।

अनुदात्तं पदमेकवर्जम् 6.1.152

पद.—अनुदात्तम् 1.1, पदम् 1.1, एकवर्जम् 1.1

अर्थ—यह परिभाषा है । जिस एक पद में उदात्त या स्वरित का विधान किया जाता है तो एक अच् को छोड़ कर वह शेष पद अनुदात्त अच् वाला होता है ।

उदा.—गोपायति यहाँ गोपाय (सनाद्यन्ता धातवः) की धातु संज्ञा हुई । धातोः के द्वारा अन्तोदात्त हुआ । गोपाय यकारोत्तरवर्त्ती अकार उदात्त हुआ तो शेष अनुदात्त हो गये । गोपाय शप् तिप्–गोपायति । शप् व तिप् अनुदात्त हैं । 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' से एकादेश भी उदात्त हुआ । गोपायति । अब उदात्तादनुदा० से इकार स्वरित हो गया—गोपायति ।

1. गणसूत्र—तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट्तलोपश्च ।

विशेष—1. विभक्ति स्वर की अपेक्षा नञ् स्वर बलवान् होता है[2]—

अतिस्नः यहाँ तिसृभ्यो जसः से सतिशिष्ट भी विभक्तिस्वर पहले नञ्स्वर होने के बाद जस् आने पर उसका स्वर उदात्त सतिशिष्ट होने से बलवान् है । परन्तु नञ् स्वर बलवान् होता है ।

2. विभक्ति निमित्त स्वर से भी नञ् स्वर बलवान् होता है[3]—अचतुरः 'चतुरनडुहोराम्०' से आम् उदात्त हुआ । विभक्ति के कारण होने से यह सतिशिष्ट है । परन्तु नञ् का प्रकृति स्वर बलवत्तर होता है ।

कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः 6.1.153

पद.—कर्षात्वतः 6.1, घञः 6.1, अन्तः 1.1, उदात्तः 1.1

अर्थ—कृष् धातु तथा आकारवान् घञन्त शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) कृष् घञ्–कर्ष् अ सु–कर्षः अन्तोदात्त होकर शेष अनुदात्त हुआ ।

(2) पच् घञ्–पाक सु–पाकः घञ् आद्युदात्त (ञ्नित्यादि०) था । उसका बाध होकर अन्तोदात्त हुआ ।

उञ्छादीनां च 6.1.154

पद.—उञ्छादीनाम् 6.3, च–अव्य० ।

अनु.—अन्तः उदात्तः ।

अर्थ—उञ्छ आदि शब्दों को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—उञ्छ् घञ् सु–उञ्छः आद्युदात्त प्राप्त था । उसे बाधकर अन्तोदात्त हुआ—उञ्छः ।

विशेष—1. दूष्य अर्थ में गर शब्द अन्तोदात्त होता है । द्र०–गरो दूष्येऽबन्तः (ग०सू०) । गरः (=विष) ।

2. करण अर्थ में वेद, वेग, वेष्ट तथा बन्ध शब्द अन्तोदात्त होते हैं ।

द्र०—वेदवेगवेष्टबन्धः करणे (ग०सू०)। वेदः । वेगः । वेष्टः ।

2. महा० 6.1.158 (वा०) विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ।
3. वही—विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. वेद में स्तु, यु, द्रु अन्तोदात्त होते हैं। द्र० स्तुयुद्रुवश्छन्दसि (ग०सू०)।

परिष्टुत्। संयुत्। परिद्रुत्।

4. स्तोत्र में 'वर्त्तनि' शब्द अन्तोदात्त होता है। द्र०—वर्त्तनिः स्तोत्रे (ग०सू०)।

वर्त्तनिः।

5. श्वघ्न में 'दर' शब्द अन्तोदात्त होता है। द्र०—श्वघ्ने दरः (ग०सू०)।

दरः।

5. भावगर्हा में साम्ब व ताप शब्द अन्तोदात्त होते हैं। द्र०-साम्बतापौ भावगर्हायाम् (ग०सू०)—

साम्बः, तापः।

6. उत्तम और शश्वत्तम शब्द अन्तोदात्त होते हैं। द्र० उत्तमशश्वत्तमशब्दौ सर्वत्र (ग०सू०)।

उत्तमः। शश्वत्तमः।

7. भक्ष, मन्थ, भोग तथा देह शब्द अन्तोदात्त होते हैं। द्र० (ग०सू०)—

भक्षः, मन्थः, भोगः, देहः।

अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः 6.1.155

पद.—अनुदात्तस्य 6.1, च-अव्य०, यत्र-अव्य०, उदात्तलोपः 1.1

अर्थ—जिस (अनुदात्त) के परे रहते उदात्त का लोप होता है, उस अनुदात्त को आद्युदात्त होता है।

उदा.—'कुमार' अन्तोदात्त है (फि...उदात्तः)। कुमार ङीप् (अनुदात्तौ सुप्पितौ)। अब 'यस्येति च' से ई (अनुदात्त) के परे रहते 'अ' (उदात्त) का लोप हुआ। कुमार् ई। प्रकृत सूत्र के द्वारा 'ई' उदात्त हुआ। कुमारी। शेष अनुदात्त हो गया।

विशेष—1. 'अनुदात्तस्य' अर्थात् **अनुदात्त के परे** रहते जहाँ उदात्त का लोप हो, वहाँ **अनुदात्त** को ही उदात्त होता है—

प्रासंगं वहति-प्रासंग्यः-प्रासंग शब्द अन्तोदात्त है (थाथघञ०)। स्वरित यत् के परे रहते उदात्त (अ) का लोप हुआ है। अतः आद्युदात्त न हुआ। प्रासंग्यः।

2. उदात्त ग्रहण का प्रयोजन है कि 'बैदी' में अनुदात्त का लोप है। अतः उदात्त नही हुआ। द्र० बैदी

धातोः 6.1.156

पद.—धातोः 6.1

अनु.—अन्तः उदात्तः।

अर्थ—धातु को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—पठति। पठ् अन्तोदात्त है। शप् व तिप् पित् होने से अनुदात्त है। शप् के अकार को स्वरित हुआ।

चितः 6.1.157

पद.—चितः 1.1 (षष्ठ्यर्थे)।

अनु.—अन्तः उदात्तः।

अर्थ—चित शब्द में चित् से मत्वर्थीय 'अ' प्रत्यय माना है। चित् का अर्थ है—जिसका चकार इत् है।

चित् है अन्त में जिस शब्द के, उसे अन्तोदात्त होता है।

उदा.—भञ्ज् घुरच् (भञ्जभासमिदो०)—भङ्गुर सु-भङ्गुरम्। घुरच् चित् है।

तद्धितस्य 6.1.158

पद.—तद्धितस्य 6.1

अनु.—चितः अन्तः उदात्तः।

अर्थ—तद्धित जो चित् प्रत्यय उसे अन्तोदात्त होता है।

उदा.—कुञ्ज च्फञ् (गोत्रे कुञ्जादि०)-च्फञ् चित् है तथा तद्धित है। कौञ्जायन जस्-कौञ्जायनाः।

कितः 6.1.159

पद.—कितः 6.1

अनु.—तद्धितस्य अन्तः उदात्तः।

अर्थ—तद्धित कित् प्रत्यय अन्तोदात्त होता है।

उदा.—नड फक् (नडादिभ्य०)-नाडायन सु-नाडायनः।

तिसृभ्यो जसः 6.1.160

पद.—तिसृभ्यः 5.3, जसः 6.1

अनु.—अन्तः उदात्तः।

अर्थ—तिसृ शब्द से उत्तर जस् विभक्ति अन्तोदात्त होती है।

उदा.—त्रि तिसृ जस्-तिस्रः। 'त्रि' शब्द को अन्तोदात्त (फिट् सू० 1) होता है। फलतः 'तिसृ' शब्द भी अन्तोदात्त हुआ। यणादेश होने से उदात्तस्वरितयो० के द्वारा अनुदात्त (अनुदात्तौ सुप्पितौ) जस् को स्वरित प्राप्त था, परन्तु अन्तोदात्त हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुरश्शसि 6.1.161

पद.—चतुरः 6.1, शसि 7.1

अनु.—अन्तः उदात्तः ।

अर्थ—शस् परे रहते चतुर् शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—चतुर् शब्द आद्युदात्त (ञ्नित्यादि०) है । चत् उरन् । चतुर् शस्–चतुरः ।

सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः 6.1.162

पद.—सौ 7.1, एकाचः 5.1, तृतीयादिः 1.1, विभक्तिः 1.1

अनु.—उदात्तः ।

अर्थ—सु के परे रहते एकाच् शब्द से उत्तर तृतीयादि विभक्ति को उदात्त स्वर होता है । 'सु' के द्वारा सप्तमी बहुवचन (सुप्) का ग्रहण होता है ।

'तृतीयादि' का अर्थ है—तृतीया से लेकर सभी विभक्तियाँ ।

उदा.—वाक्षु सप्तमी बहुवचन का रूप है । 'सुप्' परे रहते यह एकाच् है । अतः वाच् आ–वाचा । इसी प्रकार–वाग्भिः ।

विशेष—1. 'सौ' अर्थात् **सु परे** जो एकाच् शब्द उससे पर तृतीयादि को उदात्त होता है—राजसु यह सुप् परे रहते एकाच् नहीं रहा । अतः 'राज्ञा' यहाँ टाविभक्ति को उदात्त न हुआ । इसी प्रकार युष्मद् सु युष्मासु यहाँ सुप् परे रहते अनेकाच् है । अतः तृतीयादि में एकाच् (त्वया) रहने पर भी विभक्ति को उदात्त न हुआ—त्वया ।

2. 'एकाचः' अर्थात् **एकाच्** जो शब्द, उससे उत्तर तृतीयादि को उदात्त होता है—गिरिणा यहाँ अनेकाच् से उत्तर तृतीयादि विभक्ति है । अतः उदात्त न हुआ ।

3. 'तृतीयादिः' अर्थात् **तृतीयादि विभक्ति** को ही उदात्त होता है—वाचौ यहाँ 'औ' है । अतः उदात्त न हुआ । (सुप्पितौ अनुदात्तौ) ।

4. 'विभक्तिः' अर्थात् **विभक्ति** को ही उदात्त होता है—वाक्त्रा यहाँ तृतीयादि तो है, परन्तु इस की विभक्ति संज्ञा न होने से उदात्त न हुआ ।

अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे 6.1.163

पद.—अन्तोदात्तात् 5.1, उत्तरपदात् 5.1, अन्यतरस्याम् 7.1, अनित्यसमासे 7.1

अनु.—एकाचः तृतीयादिः विभक्तिः उदात्तः ।

अर्थ—अनित्य समास में जो अन्तोदात्त एकाच् उत्तरपद, उससे उत्तर तृतीयादि विभक्ति विकल्प से उदात्त होती है ।

अनित्य समास का दो प्रकार से ग्रहण होता है—

क) जिसका स्वपद विग्रह होता है,

ख) नित्य अधिकार में जो समास न होता है ।

यहाँ द्वितीय प्रकार का ग्रहण इष्ट है ।

उदा.—परमवाचा यहाँ 'सन्महत्परमोत्त०' के द्वारा समास हुआ है । जो नित्य अधिकार में नहीं है । अतः विभक्ति को उदात्त हुआ तथा विकल्प से हुआ ।

पक्ष में अन्तोदात्त होता है—परमवाचा ।

विशेष—'अन्तोदात्तात्' अर्थात् **अन्तोदात्त** से ही उत्तर विभक्ति को उदात्त होता है—

अवाचा, सुवाचा यहाँ अन्तोदात्त न होने से विभक्ति को उदात्त न हुआ ।

अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् 6.1.164

पद.—अञ्चेः 5.1, छन्दसि 7.1, असर्वनामस्थानम् 1.1

अनु.—विभक्तिः उदात्तः ।

अर्थ—वेद के विषय में अञ्चु धातु से उत्तर सर्वनाम स्थान से अतिरिक्त विभक्ति को उदात्त होता है।

उदा.—दधि अञ्चु क्विन् (ऋत्विग्दधृक्०) होकर दध्यञ्च् बनता है । ङस् की सर्वनाम स्थान संज्ञा नहीं है । अतः उदात्त हुआ । अनुनासिक लोप, अकार लोप (अचः), दीर्घ (चौ)–दधीचः (ऋ० 1.84.13) ।

ऊडिदम्पदाद्यप्पुप्रैद्युभ्यः 6.1.165

पद.—ऊडिदम्पदाद्यप्पुप्रैद्युभ्यः 5.3

अनु.—असर्वनामस्थानम्, अन्तोदात्तात्, विभक्तिः, उदात्तः ।

अर्थ—अन्तोदात्त ऊठ्, इदम्, पदादि, अप्, पुम्, रै तथा दिव् शब्दों से उत्तर सर्वनामस्थान से भिन्न विभक्ति उदात्त होती है ।

उदा.—(1) प्रष्ठौहः—ऊठ् हुआ है ।

(2) आभ्याम्—इदम् भ्याम् ।

(3) निपदः—यहाँ पदादि के द्वारा 'पद्दन्नो.' वाले आदेश पद् आदि का ग्रहण होता है ।

(4) अपः–अप् । शस् ।

(5) पुंसा–पुंस् आ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) रायः–रै शस् ।

(7) दिवः–दिव् ङस् ।

ऊठ् के विषय में उपधा का ग्रहण होता है—

अक्षद्युवाः—यहाँ उपधा में ऊठ् नहीं है ।

अतः उदात्त न हुआ ।

अष्टनो दीर्घात् 6.1.166

पद.—अष्टनः 5.1, दीर्घात् 5.1

अनु.—असर्वनामस्थानम् विभक्तिः उदात्तः ।

अर्थ—दीर्घ अन्त वाला जो अष्टन् शब्द, उससे उत्तर सर्वनामस्थान से भिन्न विभक्ति उदात्त होती है ।

उदा.—'अष्टन आ विभक्तौ' से 'आ' होता है । अष्टन् भिस्–अष्ट आ भिस–अष्टाभिः ।

शतुरनुमो नद्यजादी 6.1.167

पद.—शतुः 5.1, अनुमः 5.1, नद्यजादी 1.2

अनु.—असर्वनामस्थानम्, अन्तोदात्तात् विभक्तिः उदात्तः ।

अर्थ—नुम् रहित अन्तोदात्त, शतृप्रत्ययान्त शब्द, तदन्त से उत्तर नदीसंज्ञक या अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति उदात्त होती है ।

उदा.—(1) तुद् शत्–तुदत् ङीप्–तुदती—यहाँ नदी संज्ञक ङीप् उदात्त हो गया ।

(2) तुदत् आ–तुदता—यहाँ अजादि व सर्वनामस्थान से भिन्न 'आ' को उदात्त हो गया ।

विशेष—1. 'अनुमः' अर्थात् **नुम् रहित** से उत्तर नदीसंज्ञक व अजादि विभक्ति को उदात्त होता है —

तुदन्तीः यहाँ नुम् हुआ है । अतः विभक्ति को उदात्त न हुआ । प्रातिपदिक को अन्तोदात्त हो गया । ङीप् अनुदात्त रहा।

2. 'नद्यजादी' अर्थात् **नदी संज्ञक** या **अजादि असर्वनामस्थान** विभक्ति ही उदात्त होते हैं—

तुदद्भ्याम् यहाँ 'भ्याम्' अजादि नहीं है । अतः सामान्य अनुदात्त हुआ ।

3. बृहत् तथा महत् शब्दों से उत्तर नदी व अजादि असर्वनाम स्थान विभक्ति उदात्त होते हैं[1]—बृहती, बृहता ।

महती, महता ।

1. काशि० 6.1.174 (वा०) बृहन्महतोरुपसंख्यानम् ।

उदात्तयणो हल्पूर्वात् 6.1.168

पद.—उदात्तयणः 5.1, हल्पूर्वात् 5.1

अनु.—नद्यजादी असर्वनामस्थानम् विभक्तिः उदात्तः ।

अर्थ—हल् पूर्व में है जिससे, ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण्, उससे उत्तर नदीसंज्ञक प्रत्यय को अथवा अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति को उदात्त होता है ।

उदा.—कर्तृ ङीप्–कर्त्री तृच् प्रत्ययान्त कर्तृ शब्द अन्तोदात्त (चितः) है । इसके स्थान पर यण् हुआ । इससे उत्तर ङीप् उदात्त हुआ । कर्त्री कर्तृ टाप् –कर्त्रा (पूर्ववत्) ।

विशेष—1. उदात्त ग्रहण का प्रयोजन है कि **उदात्त को जो यण् हुआ**, उससे उत्तर को उदात्त होता है—कर्तृ यह तृन् प्रत्ययान्त शब्द आद्युदात्त है । तृच् अनुदात्त है । कर्त्री यहाँ अनुदात्त को यण् हुआ है । अतः ङीप् उदात्त न हुआ ।

2. नकार का भी यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।[2] वाक्पत्नीयं कन्या–'विभाषा सपूर्वस्य' के द्वारा नकारान्त आदेश और 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् हुआ । पति शब्द अन्तोदात्त है । यहाँ यण् नहीं नकार आदेश है । प्रकृत वार्तिक से यहाँ भी ङीप् उदात्त हुआ ।

नोङ्धात्वोः 6.1.169

पद.—न-अव्य०, ऊङ्धात्वोः 6.2

अनु.—उदात्तयणः हल्पूर्वात् अजादी असर्वनामस्थानम् विभक्तिः उदात्तः ।

अर्थ—हल् पूर्व में है जिससे, ऐसा ऊङ् या धातु के उदात्त के स्थान पर जो यण्, उससे उत्तर सर्वनामभिन्न अजादि विभक्ति उदात्त नहीं होती है ।

चूँकि ऊङ् तथा धातु से परे 'नदी' की प्राप्ति नहीं होती है । अतः 'नदी' शब्द का अनुवर्त्तन होने पर भी अर्थ में नहीं दिखाया गया है ।

उदा.—(1) ब्रह्मा बन्धुर्यस्य सः ब्रह्मबन्धुः बहुव्रीहि हुआ । ब्रह्मबन्धु ऊङ् (ऊङुतः) । यह प्रत्यय स्वर से उदात्त है । उकार (अनुदात्त) व ऊङ् (उदात्त) का दीर्घ एकादेश हुआ । ब्रह्मबन्धू 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' से उदात्त हुआ । ब्रह्मबन्धू टा (टा अनुदात्त है)–ब्रह्मबन्ध्वा (यण्) । पूर्वसूत्र से विभक्ति 'आ' को उदात्त प्राप्त हुआ । प्रकृत सूत्र के द्वारा निषेध हो गया । उदात्तस्वरितयो० के द्वारा विभक्ति को स्वरित हुआ ।

2. वही०—(वा०) नकारग्रहणं कर्त्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) सकृल्लू क्विबन्त है। 'गतिकारक०' के द्वारा उत्तरपद प्रकृतिस्वर है। सकृत् लू यहाँ धातु लू उदात्त है। सकृल्लू आ-सकृल्ल्वा। यहाँ उदात्त को यण् हुआ। इससे पर 'आ' विभक्ति को पूर्वसूत्र से उदात्त प्राप्त था। निषेध हुआ।

ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् 6.1.170

पद.—ह्रस्वनुड्भ्याम् 5.2, मतुप् 1.1

अनु.—अन्तोदात्तात् उदात्तः।

अर्थ—अन्तोदात्त ह्रस्वान्त तथा नुट् से उत्तर मतुप् उदात्त होता है।

उदा.—अक्षण्वत् (तदस्याऽस्त्य० से मतुप्, अनो नुट् से नुट्)-अक्षण्वता।

विशेष—1. 'रै' शब्द से उत्तर मतुप् उदात्त होता है[1]—
आरेवान्।

2. त्रि शब्द से उत्तर मतुप् उदात्त नहीं होता है[2]—त्रिवतीः।

नामन्यतरस्याम् 6.1.171

पद.—नाम् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—ह्रस्वः मतुप् अन्तोदात्तात् विभक्तिः उदात्तः।

अर्थ—मतुप् का अर्थानुरोध से विभक्तिविपरिणाम होकर 'मतुपि' बन जाता है।

मतुप् प्रत्यय के परे रहते ह्रस्वान्त अन्तोदात्त से उत्तर 'नाम्' को विकल्प से उदात्त होता है।

उदा.—अग्नीनाम्, अग्नीनाम्।

ङ्याश्छन्दसि बहुलम् 6.1.172

पद.—ङ्याः 5.1, छन्दसि 7.1, बहुलम् 1.1

अनु.—नाम् विभक्तिः उदात्तः।

अर्थ—वेद के विषय में ङ्यन्त शब्द से उत्तर 'नाम्' को बहुलता से उदात्त होता है।

उदा.—अभिभक्तीनाम् (ऋ० 10.103.8) बह्वीनाम् (ऋ०6.75.5)। नदीनाम् (मा०सं० 26.15)।

षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः 6.1.173

पद.—षट्त्रिचतुर्भ्यः 5.3, हलादिः 1.1

अनु.—विभक्तिः उदात्तः।

अर्थ—षट् संज्ञक शब्द, त्रि तथा चतुर् शब्द से उत्तर हलादि विभक्ति उदात्त होती है। ष्णान्ता षट् से षकारान्त, नकारान्त संख्यावाची शब्द की षट् संज्ञा होती है।

उदा.—(1) षड्भिः, षड्भ्यः, षण्णाम्, पञ्चानाम्, सप्तानाम्।
(2) त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रयाणाम्।
(3) चतुर्भिः, चतुर्णाम्।

विशेष—'हलादिः' अर्थात् **हलादि विभक्ति** ही उदात्त होती है—

चतसृ शस्-चतस्रः यहाँ हलादि विभक्ति नहीं है। अतः उदात्त नहीं हुआ। अनुदात्त हुआ।

झल्युपोत्तमम् 6.1.174

पद.—झलि 7.1, उपोत्तमम्-अव्य०।

अनु.—षट् संज्ञक शब्द, त्रिशब्द व चतुर् शब्द से उत्पन्न जो झलादि विभक्ति, तदन्त शब्द के उपोत्तम को उदात्त होता है।

उदा.—(1) पञ्चन् भिस्-पञ्चभिः षट् संज्ञक 'पञ्चन्' शब्द से झलादि विभक्ति 'भिस्' हुई। तदन्त के उपोत्तम को उदात्त हुआ। पञ्चभिः।
(2) तिसृभिः।
(3) चतुर्भिः।

विशेष—1. 'झलि' अर्थात् **झलादि विभक्ति**, तदन्त के उपोत्तम को उदात्त होता है—

पञ्चानाम् यहाँ आम् झलादि विभक्ति नहीं है।

2. 'उपोत्तमम्' अर्थात् **उपोत्तम** को ही उदात्त होता है—

षड्भिः यहाँ षट् संज्ञक शब्द है, झलादि विभक्ति है, परन्तु उपोत्तम नहीं है। अतः उदात्त न हुआ।

विभाषा भाषायाम् 6.1.175

पद.—विभाषा 1.1, भाषायाम् 7.1

अनु.—झलि, उपोत्तमम्, षट्त्रिचतुर्भ्यः, विभक्तिः, उदात्तः।

अर्थ—भाषा के विषय में षट् संज्ञक शब्द, त्रिशब्द, चतुर् शब्द से उत्पन्न जो झलादि विभक्ति, तदन्त शब्द के उपोत्तम को विकल्प से उदात्त होता है।

उदा.—पञ्चभिः, पञ्चभिः।
तिसृभिः, तिसृभिः।
चतसृभिः, चतसृभिः।

---

1. काशि०—6.1.176 (वा०) रेशब्दाच्च मतुप् उदात्तत्वं वक्तव्यम्।
2. काशि०—6.1.176 (वा०) त्रेश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः 6.1.176

पद.—न-अव्य०, गोश्वन् साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः 5.3

अर्थ—गो, श्वन्, सु अर्थात् प्रथमा एक० में जो अ-वर्णान्त प्रातिपदिक, राट्, अङ्, क्रुङ् तथा कृत्—इनसे पूर्वोक्त स्वर नहीं होते हैं।

उदा.—(1) गवा॑ यहाँ 'सावकाचस्तृती० से 'आ' को उदात्त प्राप्त था। निषेध हो गया। प्रातिपदिक स्वर के कारण 'गो' उदात्त हुआ।

(2) शुना॑-पूर्ववत्।

(3) येभ्य॑ः यद् आदि प्रातिपदिक 'सु' परे रहते अवर्णान्त (त्यदादीनाम् अः) हैं। अतः पूर्ववत् प्राप्ति व निषेध।

(4) राजा॑ पूर्ववत्।

(5) प्राञ्चा॑ पूर्ववत्।

(6) क्रुञ्चा॑ पूर्ववत्।

(7) कृता॑ पूर्ववत्।

दिवो झल् 6.1.177

पद.—दिवः 5.1, झल् 1.1

अनु.—न विभक्तिः उदात्तः।

अर्थ—दिव् शब्द से उत्तर झलादि विभक्ति उदात्त नहीं होती है।

उदा.—दिव् भिस्-दि उ भिस्-द्युभि॑ः।

विशेष—'झल्' अर्थात् **झलादि विभक्ति** उदात्त नही होती है—दिव् टा-दि॒वा यहाँ झलादि विभक्ति न होने से निषेध न हुआ।

नृ चाऽन्यतरस्याम् 6.1.178

पद.—नृ लुप्तपञ्चमीविभक्तिकरूपम्, च-अव्य०, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—झल् न विभक्तिः उदात्तः।

अर्थ—नृ से उत्तर झलादि विभक्ति को विकल्प से उदात्त नहीं होता है।

उदा.—नृभि॑ः, नृ॒भिः।

विशेष—'झल्' अर्थात् **झलादि विभक्ति** को पाक्षिक निषेध होता है—न्रा निषेध न हुआ।

तित् स्वरितम् 6.1.179

पद.—तित् 1.1, स्वरितम् 1.1

अर्थ—तित् स्वरित होता है।

जिसका तकार इत् है, वह 'तित्' है।

उदा.—चिकीर्ष यह सन्नन्त धातु है। अचो यत् से चिकीर्ष यत्। अतो लोपः। चिकीर्ष्य सु-चि॒कीर्ष्य॑म्। यत् तित् होने से स्वरित हुआ। कार्य॑म् (ऋहलोर्ण्यत्)।

तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुक-मनुदात्तमह्न्विङोः 6.1.180

पद.—तास्यनुदात्ते ... शात् 5.1, लसार्वधातुकम् 1.1, अनुदात्तम् 1.1, अह्न्विङोः 6.2

अर्थ—तासि प्रत्यय, धातु अनुदात्त जिसका इत् है, ङित् धातु तथा जो उपदेश में अवर्णान्त है—इन से उत्तर लकार के स्थान में सार्वधातुक तस् आदि प्रत्यय अनुदात्त होते हैं तथा हनुङ् तथा इङ् धातु को नहीं होते हैं।

उदा.—(1) कृ तासि रौ-कर्त्तारौ यहाँ तस् प्रत्ययस्वर से उदात्त हुआ। तास् को प्रत्यय स्वर से उदात्त हुआ। 'सति शिष्टोऽपि विकरणस्वरो लसार्वधातुकस्वरं न बाधते' से 'रौ' को उदात्त प्राप्त हुआ। प्रकृत सूत्र के द्वारा अनुदात्त हुआ। क॒र्त्तारौ॑।

(2) आस्ते॑ आस धातु अनुदात्तेत् है। शेष पूर्ववत्।

(3) सूते॑ षूङ् अनुदात्तङित् है। पूर्ववत्।

(4) तु॒दतः॑ तुद उपदेशावस्था में अकारान्त है। धातु स्वर उदात्त हुआ।

आदिः सिचोऽन्यतरस्याम् 6.1.181

पद.—आदिः 1.1, सिचः 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—उदात्तः।

अर्थ—सिच् अन्त वाले को विकल्प से आद्युदात्त होता है।

उदा.—मा हि कार्ष्टा॑म्, मा हि क॒र्ष्टाम्।

सिच् के आद्युदातत्व में अनिट् पित् का पक्ष में उदात्तत्व होता है[1]—मा हि क॒र्षम्।

स्वपादिहिंसामच्यनिटि 6.1.182

पद.—स्वपादिहिंसाम् 6.3, अचि 7.1, अनिटि 7.1

अनु.—आदिः अन्यतरस्याम् लसार्वधातुकम् उदात्तः।

अर्थ—स्वपादि धातुओं के तथा हिंस् धातु के अजादि

1. महा० 6.1.187 (वा०) सिच आद्युदात्तत्वेऽनिटः पितः पक्ष उदात्तत्वं वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिट् लसार्वधातुक परे हो तो आदि को उदात्त विकल्प से होता है।

लसार्वधातुकम् का सप्तमी में विभक्तिविपरिणाम होता है।

उदा.—स्वप् झि-स्वप् शप् अन्ति 'अन्ति' अजादि ल सार्वधातुक है। स्वपन्ति, स्वपन्ति। आद्युदात्त हुआ। पक्ष में—मध्योदात्त प्रत्ययस्वर से हो गया हिंसन्ति। हिंसन्ति।

विशेष—1. 'अचि' अर्थात् **अजादि** लसार्वधातुक परे हो तो आद्युदात्त विकल्प से होता है—स्वप्यात् यहाँ न हुआ।

2. 'अनिटि' अर्थात् **अनिट्** लसार्वधातुक परे हो तो आद्युदात्त विकल्प से होता है—**स्वपितः** यहाँ अनिट् लसार्वधातुक नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

अभ्यस्तानामादिः 6.1.183

पद.—अभ्यस्तानाम् 6.3, आदिः 1.1

अनु.—अचि अनिटि लसार्वधातुकम् उदात्तः।

अर्थ—अजादि अनिट् लसार्वधातुक परे हो तो अभ्यस्त संज्ञक को आद्युदात्त होता है।

उदा.—ददति-ददति दद अभ्यस्त संज्ञक है।

विशेष—1. 'अचि' अर्थात् **अजादि** लसार्वधातुक परे रहते ही आद्युदात्त होता है।

दद्यात् यहाँ न हुआ।

2. 'अनिटि' अर्थात् **अनिट्** लसार्वधातुक परे रहते आद्युदात्त होता है—

जक्षितः अनिट् न होने से आद्युदात्त न हुआ।

अनुदात्ते च 6.1.184

पद.—अनुदात्ते 7.1, च-अव्य०।

अनु.—अभ्यस्तानाम् आदिः लसार्वधातुकम् उदात्तः।

अर्थ—उदात्त से रहित लसार्वधातुक के परे रहते अभ्यस्त संज्ञक को आद्युदात्त होता है।

उदा.—ददाति (उभेऽभ्यस्तम्)। यहाँ अविद्यमान उदात्त वाला सार्वधातुक परे है।

सर्वस्य सुपि 6.1.185

पद.—सर्वस्य 6.1, सुपि 7.1

अनु.—आदिः उदात्तः।

अर्थ—सुप् परे रहते सर्व शब्द को आद्युदात्त होता है।

उदा.—सर्वैः। सर्वे।

भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति 6.1.186

पद.—भीह्रीभृ ... जागराम् 6.3, प्रत्ययात् 5.1, पूर्वम् 1.1, पिति 7.1

अर्थ—पित् लसार्वधातुक परे रहते भी, ह्री, भृ, हु, मद, जन, धन, दरिद्रा तथा जागृ धातु के अभ्यस्त को प्रत्यय से पूर्व को उदात्त होता है।

उदा.—(1) बिभेति 'अनुदात्ते च' से अभ्यस्त को आद्युदात्त प्राप्त था।

(2) जिह्रेति,
(3) बिभर्त्ति।
(4) जुहोति।
(5) ममत्तु,
(6) जजनत्,
(7) दधनत्,
(8) दरिद्राति,

विशेष—1. 'भीह्री०' अर्थात् **भी, ह्री** आदि धातुओं के अभ्यस्त को उदात्त होता है—

ददाति-यहाँ भी, ह्री आदि सूत्रोक्त धातु नहीं है। अतः उदात्त न हुआ।

2. 'पिति' अर्थात् **पित्** सार्वधातुक परे रहते ही उदात्त होता है—

दरिद्रति यहाँ 'झि' प्रत्यय है, जो पित् नहीं है। अतः उदात्त न हुआ।

लिति 6.1.187

पद.—लिति 7.1

अनु.—प्रत्ययात् पूर्वम् उदात्तः।

अर्थ—जिसका लकार इत् है, ऐसे प्रत्यय से पूर्व उदात्त होता है।

उदा.—चिकीर्ष ण्वुल्-चिकीर्षकः यहाँ ण्वुल् का लकार इत् है।

आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् 6.1.188

पद.—आदिः 1.1, णमुलि 7.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—उदात्तः।

अर्थ—णमुल् परे रहते पूर्व (धातु) को विकल्प से आद्युदात्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—लोलूयं लोलूयम्-णमुल् हुआ । प्रकृत सूत्र से आद्युदात्त और 'लिति' से प्रत्यय को उदात्त होकर मध्योदात्त हुआ । आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः से द्वित्व हुआ । तस्य परम् आम्रेडितम् । 'अनुदात्तं च' से अनुदात्त हुआ । समस्त अनुदात्तों को एकश्रुति हो गई ।

पक्ष में—लोलूयं लोलूयम् ।

अचः कर्तृयकि 6.1.189

पद.—अचः 6.1, कर्तृयकि 7.1

अनु.—आदिः अन्यतरस्याम् उदात्तः ।

अर्थ—कर्तृवाच्य सार्वधातुक में विहित यक् प्रत्यय के परे रहते उपदेश में अजन्त धातु को विकल्प से आद्युदात्त होता है ।

उदा.—'लूयते केदारः स्वयमेव सामान्यतः कर्मवाच्य में सार्वधातुक लकारों में धातु से यंक् होता है, परन्तु कर्म कर्तृ स्थलों में कर्मवद्भाव होने से यक् होता है । सार्वधातुके यक् ।

पक्ष में—तास्यनुदात्ते० के द्वारा निघात करके प्रत्ययस्वर से यक् को उदात्त हुआ । लूयते केदारः स्वयमेव ।

विशेष—1. 'अचः' अर्थात् **उपदेश में जो अजन्त**, उससे ही आदि उदात्त होता है—

भिद्यते यहाँ आद्युदात्त न हुआ ।

2. 'कर्तृ यकि' अर्थात् कर्तृ **वाच्य** में जो यक् उसके परे रहते ही आद्युदात्त होता है—

लूयते केदारो देवदत्तेन यहाँ कर्मवाच्य में यक् है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

थलि च सेटीडन्तो वा 6.1.190

पद.—थलि 7.1, च-अव्य०, सेटि-7.1, इट् 1.1, अन्तः 1.1, वा-अव्य० ।

अनु.—आदिः अन्यतरस्याम् उदात्तः ।

अर्थ—सेट् थल् परे रहते इट् को विकल्प से उदात्त होता है तथा चकार से आदि को, अन्त को विकल्प से होता है ।

उदा.—लुलविथ, लुलविथ, लुलविथ, लुलविथ इस प्रकार चार स्वर क्रमशः होते हैं ।

ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.191

पद.—ञ्निति 7.1, आदिः 1.1, नित्यम् 1.1

अनु.—उदात्तः ।

अर्थ—ञित् व नित् प्रत्यय के परे रहते आद्युदात्त होता है ।

उदा.—गर्ग यञ् (गर्गादिभ्यो यञ्)-गार्ग्य सु-गार्ग्यः ।

वासुदेव वुन् (वासुदेवार्जुना०)-वासुदेवकः

आमन्त्रितस्य च 6.1.192

पद.—आमन्त्रितस्य 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—आमन्त्रित संज्ञक को आद्युदात्त होता है । 'सामन्त्रितम्' के द्वारा सम्बोधन की आमन्त्रित संज्ञा होती है ।

उदा.—देवदत्त, देवदत्तौ, देवदत्ताः ।

पथिमथोः सर्वनामस्थाने 6.1.193

पद.—पथिमथोः 6.2, सर्वनामस्थाने 7.1

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—सर्वनामस्थान परे रहते पथिन् व मिथन् शब्दों को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—पन्थाः, मन्थाः ।

विशेष—'सर्वनामस्थाने' अर्थात् **सर्वनामस्थान** परे रहते ही आद्युदात्त होता है—पथा, मथा यहाँ टा विभक्ति है, जो सर्वनामस्थान नहीं है ।

अन्तश्च तवै युगपत् 6.1.194

पद.—अन्तः 1.1, च-अव्य०, तवै-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, युगपत्-अव्य० ।

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—'तवै' प्रत्यय है अन्त में जिसके, ऐसे शब्द को एक साथ आद्युदात्त व अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—हन्तवै ।

क्षयो निवासे 6.1.195

पद.—क्षयः 1.1, निवासे 7.1

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—निवास गम्यमान हो तो 'क्षय' शब्द आद्युदात्त होता है ।

उदा.—क्षि घ (पुंसि संज्ञायाम्०) क्षय सु-क्षयः ।

विशेष—'निवासे' अर्थात् निवास गम्यमान होने पर ही 'क्षय' आद्युदात्त होता है—

क्षयो वर्तते दस्यूनाम् यहाँ 'निवास' अर्थ नहीं है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयः करणम् 6.1.196

पद.—जयः 1.1, करणम् 1.1

अनु.—आद्युदात्तः ।

अर्थ—करणवाची 'जय' शब्द आद्युदात्त होता है ।

उदा.—जिघ-जय सु-जयः 'घ' प्रत्यय होने के कारण अन्तोदात्त प्राप्त था ।

विशेष—'करणम्' अर्थात् **करणवाची** जय शब्द आद्युदात्त होता है—जयो वर्तते ब्राह्मणानाम्—यहाँ कर्तृवाची है । अतः आदि उदात्त न हुआ ।

वृषादीनां च 6.1.197

पद.—वृषादीनाम् 6.3, च-अव्य० ।

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—वृष आदि शब्दों को आदि उदात्त होता है ।

उदा.—वृषः इगुपधज्ञा० से 'क' हुआ । अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था ।

इसी प्रकार-जनः, ज्वरः, ग्रहः ।

विशेष—भाव तथा कर्म अर्थों में क्रमशः शम और रण शब्द आद्युदात्त होते हैं, संज्ञा के विषय में—शमः, रणः ।

संज्ञायामुपमानम् 6.1.198

पद.—संज्ञायाम् 7.1, उपमानम् 1.1

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में उपमानवाची शब्द को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—चञ्चा, खरकुटी इनमें मूलस्वर अन्त उदात्त है, परन्तु आदि उदात्त हुआ ।

विशेष—1. 'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा** के विषय में आदि उदात्त होता है—अग्निर्माणवकः ।

2. 'उपमानम्' अर्थात् **उपमानवाची** शब्द को आदि उदात्त होता है—

देवदत्तः उपमानवाची नहीं है, संज्ञा है । अतः आदि उदात्त न हुआ ।

निष्ठा च द्व्यजनात् 6.1.199

पद.—निष्ठा 1.1, च-अव्य०, द्व्यच् 1.1, अनात् 1.1

अनु.—संज्ञायाम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—दो अच् वाला निष्ठान्त शब्द आदि उदात्त होता है, संज्ञा के विषय में, आकार को छोड़कर ।

उदा.—दत्तः, गुप्तः सभी द्व्यच् हैं, निष्ठान्त है । अतः आदि उदात्त हुआ ।

विशेष—1. 'निष्ठा' अर्थात् **निष्ठान्त** शब्द को आद्युदात्त होता है—

देवः, भीमः ये द्व्यच् हैं परन्तु निष्ठान्त नहीं है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

2. 'द्व्यच्' अर्थात् **दो अच् वाले** को ही आद्युदात्त होता है—

चिन्तितः यह निष्ठान्त तो है परन्तु दो से अधिक अच् होने के कारण आद्युदात्त न हुआ ।

3. 'अनात्' अर्थात् **आकार** को आद्युदात्त न हो—

त्रातः, आप्तः यहाँ निष्ठान्त हैं, दो अच् वाले हैं, परन्तु आकार होने से आद्युदात्त न हुआ ।

4. 'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय में** आदि उदात्त नहीं होता है—

कृतम् यह निष्ठान्त है, दो अच् वाला है तथा आकार भी नहीं है, परन्तु संज्ञा का विषय न होने से आद्युदात्त न हुआ ।

शुष्कधृष्टौ 6.1.200

पद.—शुष्कधृष्टौ 1.2

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—शुष्क तथा धृष्ट शब्दों को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—शुष्कः, धृष्टः ।

आशितः कर्त्ता 6.1.201

पद.—आशितः 1.1, कर्त्ता 1.1

अनु.—आदिः उदात्तः ।

अर्थ—कर्तृवाची आशित शब्द को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—आशितः ।

विशेष—'कर्त्ता' अर्थात् **कर्त्ता अर्थ** में ही आद्युदात्त होता है— आशितम् अन्नम् ।

रिक्ते विभाषा 6.1.202

पद.—रिक्ते 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—आदिः उदात्तः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—रिक्त शब्द को विकल्प से आद्युदात्त होता है।

उदा.—रिक्तः, रिक्तः।

जुष्टार्पिते च च्छन्दसि 6.1.203

पद.—जुष्टार्पिते 1.2, च-अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—विभाषा आदिः उदात्तः।

अर्थ—वेद के विषय में जुष्ट तथा अर्पित शब्दों को विकल्प से आद्युदात्त होता है।

उदा.—जुष्टः, जुष्टः।
अर्पितः, अर्पितः।

लोक में ये शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त होते हैं।

नित्यं मन्त्रे 6.1.204

पद.—नित्यम् 1.1, मन्त्रे 7.1

अनु.—जुष्टार्पिते, आदिः, उदात्तः।

अर्थ—मन्त्र के विषय में जुष्ट और अर्पित शब्दों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—जुष्टम्। अर्पितम्।

युष्मदस्मदोर्ङसि 6.1.205

पद.—युष्मदस्मदोः 6.2, ङसि 7.1

अनु.—आदिः उदात्तः।

अर्थ—ङस् परे रहते युष्मद् व अस्मद् को आद्युदात्त होता है।

उदा.—युष्मद् ङस्-तव।
अस्मद् ङस्-मम।

युष्मद् व अस्मद् शब्द प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है।

ङयि च 6.1.206

पद.—ङयि 7.1, च-अव्य०।

अनु.—युष्मदस्मदोः आदिः उदात्तः।

अर्थ—ङे परे रहते युष्मद् और अस्मद् को आद्युदात्त होता है।

उदा.—तुभ्यम्, मह्यम्।

विशेष—पूर्वसूत्र तथा प्रकृतसूत्र-इन दोनों के स्थान पर एक सूत्र का पाठ करने से लाघव होता परन्तु आचार्य ने ऐसा नहीं किया। कारण कि, दोनों के स्थान पर एक सूत्र बना देने की दशा में यथासंख्य की शंका बनी रहती। अतः यथासंख्य की निवृत्ति के लिए आचार्य ने योग-विभाग किया है।

यतोऽनावः 6.1.207

पद.—यतः 6.1, अनावः 5.1

अनु.—आदिः उदात्तः, द्व्यच् (मण्डूकप्लुत्या)।

अर्थ—यत् प्रत्ययान्त तथा दो अच् वाले शब्द को आद्युदात्त होता है, 'नौ' शब्द को छोड़कर।

उदा.—चि यत् (अचो यत्)-चेय सु-चेयम्।

विशेष—1. 'अनावः' अर्थात् **'नौ' शब्द को** छोड़कर ही आद्युदात्त होता है—

नाव्यम् यह यत् प्रत्ययान्त है, दो अचों वाला है परन्तु 'नौ' शब्द होने के कारण आद्युदात्त न हुआ।

2. 'द्व्यच्' अर्थात् **दो अच्** वाले को ही आद्युदात्त होता है—

ललाट्यम् यह यत् प्रत्ययान्त है, परन्तु दो अच् वाला न होने के कारण आद्युदात्त नहीं हुआ।

ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः 6.1.208

पद.—ईडवन्दवृशंसदुहाम् 6.3, ण्यतः 6.1

अनु.—आदिः उदात्तः।

अर्थ—ण्यत् प्रत्ययान्त ईड, वन्द, वृ, शंस तथा दुह को आद्युदात्त होता है।

उदा.—ईड्यम्। वन्द्यम्। वार्यम्। शंस्यम्। दोह्यम्।

विभाषा वेण्विन्धानयोः 6.1.209

पद.—विभाषा 1.1, वेण्विन्धानयोः 6.2

अनु.—आदिः उदात्तः।

अर्थ—वेणु तथा इन्धान शब्दों को विकल्प से आद्युदात्त होता है।

उदा.—वेणु नुप्रत्ययान्त होने से इसे अन्तोदात्त प्राप्त है। वेणुः, वेणुः।

इन्ध् शानच् से 'इन्धान' बनता है, शानच् को अन्तोदात्त प्राप्त था। इन्धानः, इन्धानः।

त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् 6.1.210

पद.—त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् 6.3

अनु.—विभाषा आदिः उदात्तः।

अर्थ—त्याग, राग, हास, कुह, श्वठ तथा क्रथ को विकल्प से आदि उदात्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग, राग तथा हास घञन्त हैं । अतः अन्तोदात्त (कर्षात्वतो घञो०) प्राप्त है ।

उदा.—त्याग॑:, त्या॒गः । हास॑:, हा॒सः ।

कुह, श्वठ तथा क्रथ अच् प्रत्ययान्त (पचाद्यच्) है । अन्तोदात्त प्राप्त है ।

कुह॑:, कु॒हः । श्वठ॑:, श्व॒ठः । क्रथ॑:, क्र॒थः ।

उपोत्तमं रिति 6.1.211

पद.—उपोत्तमम्–अव्य०, रिति 7.1

अनु.—उदात्तः ।

अर्थ—रित् (= जिसका रेफ इत् है) शब्द का उपोत्तम उदात्त होता है ।

उदा.—कृ अनीयर्–करणीय यह रित् प्रत्ययान्त है । उपोत्तम उदात्त हुआ । क॒रणीय॑म् । पटु॒जातीय॑: यहाँ जातीयर् रित् प्रत्यय है ।

चङन्यतरस्याम् 6.1.212

पद.—चङि 7.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—उपोत्तमम् उदात्तः ।

अर्थ—चङन्त शब्द के उपोत्तम को विकल्प से उदात्त होता है।

उदा.—मा हि ची॒कर॑ताम् ।

पक्ष में—मा हि ची॒क॒रताम् ।

मतोः पूर्वमात् संज्ञायां स्त्रियाम् 6.1.213

पद.—मतोः 5.1, पूर्वम् 1.1, आत् 1.1, संज्ञायाम् 7.1, स्त्रियाम् 7.1

अर्थ—यदि मतुप् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग में संज्ञाविषयक हो तो उस मतुप् प्रत्यय से पूर्व आकार को उदात्त होता है ।

उदा.—उ॒दु॒म्ब॒रा॑वती यहाँ मतुप् प्रत्यय हुआ है । मतुबन्त 'उदुम्बरावती' स्त्रीलिंग में संज्ञा है । अतः आकार को उदात्त हुआ ।

विशेष—1. 'आत्' अर्थात् **आकार** को ही उदात्त होता है—इ॒क्षु॒मती॑, द्रु॒मवती॑ । यहाँ उदात्त न हुआ ।

2. 'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय** में ही उदात्त होता है—खट्वावती यहाँ उदात्त न हुआ ।

3. 'स्त्रियाम्' अर्थात् **स्त्रीलिंग** में ही उदात्त होता है—शरावान् यहाँ उदात्त न हुआ ।

4. 'मतोः' अर्थात् **मतुप्** से ही पूर्व उदात्त होता है—गवादिनी यहाँ उदात्त न हुआ ।

अन्तोऽवत्याः 6.1.214

पद.—अन्तः 1.1, अवत्याः 6.1

अनु.—संज्ञायाम् 7.1, उदात्तः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में अवती शब्दान्त को अन्त उदात्त होता है ।

उदा.—अ॒जि॒र॒वती, हं॒स॒वती ।

ईवत्याः 6.1.215

पद.—ईवत्याः 6.1

अनु.—अन्तः संज्ञायाम् उदात्तः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में ईवती शब्दान्त पद को उदात्त होता है ।

उदा.—अ॒हीव॒ती, मु॒नीव॒ती 'शरादीनां च' से दीर्घ हुआ है ।

चौ 6.1.216

पद.—चौ 7.1

अनु.—अन्तः उदात्तः ।

अर्थ—'चु' परे रहते पूर्व को अन्तोदात्त होता है । अञ्चु धातु के अकार व नकार का लोप करके जो 'चु' रूप बनता है । उसी का यहाँ ग्रहण है ।

उदा.—दु॒धीच॑:, दु॒धीचा॑ ।

समासस्य 6.1.217

पद.—समासस्य 6.1

अनु.—अन्तः उदात्तः ।

अर्थ—समास को अन्तोदात्त होता है ।

समास के भिन्न–भिन्न पदों को भिन्न भिन्न स्वर प्राप्त है ।

उदा.—रा॒जपु॒रुषः । प॒टह॒श॒ब्दः ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां षष्ठाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठाध्यायस्य

द्वितीयः पादः

बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् 6.2.1

पद.—बहुव्रीहौ 7.1, प्रकृत्या 3.1, पूर्वपदम् 1.1

अर्थ—बहुव्रीहि समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। 'समासस्य' के द्वारा अन्तोदात्त होता है। तब शेष को अनुदात्त प्राप्त था।

उदा.—स्नातकपुत्रः पूर्वपद को प्रकृतिस्वर हुआ।

तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्यय-द्वितीयाकृत्याः 6.2.2

पद.—तत्पुरुषे 7.1, तुल्यार्थ ... कृत्याः 1.3

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में तुल्य अर्थ वाले, तृतीयान्त सप्तम्यन्त उपमानवाची अव्यय द्वितीयान्त तथा कृत्यप्रत्ययान्त जो पूर्वपद, उसे प्रकृति स्वर होता है।

अव्यय पद के द्वारा नञ्, कु तथा निपातों का ही ग्रहण होता है।

उदा.—(1) तुल्यार्थ०—तुल्यलोहितः यहाँ पूर्वपद में तुल्यार्थ है, जिसे प्रकृति स्वर हो गया।

(2) तृतीया०–शङ्कुलाखण्डः

(3) सप्तमी०–अक्षशौण्डः।

(4) उपमानवाची–शरकाण्डगौरी।

(5) अव्यय०–अब्राह्मणः। कुब्राह्मणः। अतिमालः।

(6) द्वितीया०–मुहूर्त्तसुखम् पा. 6.3.108 से अन्तोदात्त है।

(7) कृत्य०–पानीयशीतम्। 'उपोत्तमं रिति' से ईकार उदात्त है।

वर्णो वर्णेष्वनेते 6.2.3

पद.—वर्णः 1.1, वर्णेषु 7.3, अनेते 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में वर्णवाची शब्द उत्तरपद में हो तो वर्णवाची जो पूर्वपद, उसे प्रकृतिस्वर होता है, यदि एत शब्द उत्तरपद में न हो।

उदा.—कृष्णसारङ्गः यहाँ कृष्ण शब्द नक् प्रत्ययान्त है (द्र०–कृषेर्वर्णे ... उणा० 3.4)। पूर्वपद में वर्णवाची 'कृष्ण' शब्द को प्रकृतिस्वर हो गया।

विशेष—1. 'वर्णः' अर्थात् **वर्णवाची** पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है—परमकृष्णः यहाँ 'परम' पूर्वपद है, जो वर्णवाची नहीं है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

2. 'वर्णेषु' अर्थात् **वर्णवाची** उत्तरपद रहते ही पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है—

कृष्णतिलाः यहाँ पूर्वपद में वर्णवाची शब्द है परन्तु उत्तरपद में वर्णवाची शब्द नहीं है। अतः पूर्वपद को प्रकृतिस्वर न हुआ।

3. 'अनेते' अर्थात् **उत्तरपद में 'एत'** शब्द हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर नहीं होता है—लोहितैतः उत्तरपद में 'एत' शब्द है। अतः पूर्वपद को प्रकृतिस्वर न हुआ।

गाधलवणयोः प्रमाणे 6.2.4

पद.—गाधलवणयोः 7.2, प्रमाणे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—प्रमाणवाची तत्पुरुष समास में गाध व लवण शब्द उत्तरपद में हों तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—अरित्रं गाधमुदकम्–प्रमाणवाची अरित्र तथा गाध शब्दों में षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ। गाध शब्द उत्तरपद है। अरित्र को मध्योदात्त हुआ।

अश्वलवणम् पूर्ववत् अश्व शब्द को नित् स्वर से आद्युदात्त हुआ।

विशेष—'प्रमाणे' अर्थात् **प्रमाणवाची** तत्पुरुष में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमगाधम् उत्तरपद में गाध शब्द है, परन्तु प्रमाणवाची तत्पुरुष नहीं है। अतः पूर्वपद (परम) को प्रकृतिस्वर न हुआ।

दायाद्यं दायादे 6.2.5

पद.—दायाद्यम् 1.1, दायादे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में दायाद शब्द उत्तरपद में रहते दायाद्यवाची पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—धनदायादः–तत्पुरुष समास है। 'दायाद' शब्द उत्तरपद में है। दायाद्यवाची 'धन' शब्द पूर्वपद है। धन शब्द क्यु (उणा० 2.81) प्रत्ययान्त है। अतः आद्युदात्त हुआ।

विशेष—'दायाद्यम्' अर्थात् **दायाद्यवाची** पूर्वपद को ही प्रकृति स्वर होता है —

परमदायादः यहाँ उत्तरपद में 'दायाद' शब्द है परन्तु पूर्वपद में दायाद्यवाची शब्द नहीं है। अतः इसे प्रकृतिस्वर न हुआ।

प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः 6.2.6

पद.—प्रतिबन्धि 1.1, चिरकृच्छ्रयोः 7.2

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में चिर तथा कृच्छ्र शब्द उत्तरपद में रहते प्रतिबन्धिवाची पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। प्रतिबन्धी का अर्थ है—कार्य की सिद्धि को रोकने वाला।

उदा.—गमनचिरम् तत्पुरुष समास है। गमन क्रिया में चिरकाल जन्य व्यवधान पड़ रहा है। 'लिति' से उदात्त हुआ।

विशेष—'प्रतिबन्धि' अर्थात् **प्रतिबन्धिवाची** शब्द को प्रकृतिस्वर होता है—

मूत्रकृच्छ्रम्—यहाँ प्रतिबन्धिवाची शब्द नहीं है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

पदेऽपदेशे 6.2.7

पद.—पदे 7.1, अपदेशे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—अपदेशवाची तत्पुरुष में पद शब्द उत्तरपद में हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। अपदेश = बहाना।

उदा.—मूत्रपदेन प्रस्थितः मूत्रत्याग रूप अपदेश है। अतः पूर्वपद को अन्तोदात्त (थाथघञ्क्ता०) हुआ।

निवाते वातत्राणे 6.2.8

पद.—निवाते 7.1, वातत्राणे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—वातत्राणवाची तत्पुरुष समास में उत्तरपद में निवात शब्द हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—कुटीनिवातम्–'कुटी' गौर्यादित्वात् ङीप् प्रत्ययान्त है। प्रकृतिस्वर हुआ।

विशेष—'वातत्राणे' अर्थात् **वातत्राणवाची** तत्पुरुष में ही पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है—

राजनिवाते वसति–यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

शारदेऽनार्तवे 6.2.9

पद.—शारदे 7.1, अनार्तवे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में अनार्तववाची शब्द उत्तरपद में हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। ऋतु में होने वाले को 'आर्तव' कहते हैं।

उदा.—रज्जुशारदम् उदकम् रज्जु शब्द को आदि उदात्त (ञ्नित्या०) हुआ है।

विशेष—'अनार्तवे' अर्थात् **आर्तववाची** शब्द उत्तरपद हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर नहीं होता—

परमशारदम्—यहाँ तत्पुरुष समास है, उत्तरपद में 'शारद' शब्द है, यह आर्तववाची है। अतः पूर्वपद 'परम' को प्रकृतिस्वर न हुआ।

अध्वर्युकषाययोर्जातौ 6.2.10

पद.—अध्वर्युकषाययोः 7.2, जातौ 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—जातिवाची तत्पुरुष में अध्वर्यु और कषाय शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—कठाध्वर्युः यहाँ कठ को अन्तोदात्त हुआ। दौवारिककषायम् यहाँ भी अन्तोदात्त हुआ।

विशेष—'जातौ' अर्थात् **जातिवाची तत्पुरुष** में ही पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है—परमाऽध्वर्युः, परमकषायः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये 6.2.11

पद.—सदृशप्रतिरूपयोः 7.2, सादृश्ये 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—सादृश्य वाची तत्पुरुष में सदृश तथा प्रतिरूप शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—पितृसदृशः अन्तोदात्त हुआ।

पितृप्रतिरूपः अन्तोदात्त हुआ है।

विशेष—'सादृश्ये' अर्थात् **सादृश्यवाची** तत्पुरुष में ही प्रकृतिस्वर होता है—

परमसदृशः 'सदृश' शब्द उत्तरपद है, परन्तु सादृश्यवाची तत्पुरुष नहीं है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

द्विगौ प्रमाणे 6.2.12

पद.—द्विगौ 7.1, प्रमाणे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—प्रमाणवाची तत्पुरुष समास में द्विगु उत्तरपद रहते पूर्वपद प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—प्राच्यसप्तसमः 'प्राच्य' और 'सप्तसम' शब्दों में समास (मयूरव्यंसकादयश्च) हुआ। सप्तसमाः प्रमाणमस्य इस अर्थ में उत्पन्न 'मात्रच्' प्रत्यय का (प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्-पा० 5.2.37 वा०) नित्य लुक् हुआ। 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुसंज्ञा हुई। 'यतोऽनावः' से 'प्राच्य' आद्युदात्त हुआ।

विशेष—1. 'द्विगौ' अर्थात् **द्विगु उत्तरपद रहते** प्रकृतिस्वर होता है—

व्रीहिप्रस्थः द्विगु उत्तरपद न होने से प्रकृतिस्वर न हुआ।

2. 'प्रमाणे' अर्थात् **प्रमाणवाची** तत्पुरुष में ही प्रकृतिस्वर होता है—

परमसप्तशमः—यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

गन्तव्यपण्यं वाणिजे 6.2.13

पद.—गन्तव्यपण्यम् 1.1, वाणिजे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में वाणिज शब्द उत्तरपद रहते गन्तव्यवाची तथा पण्यवाची जो पूर्वपद, उसे प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—मुद्रवाणिजः, अश्ववाणिजः यहाँ पूर्वपद को प्रकृतिस्वर हुआ है।

विशेष—**गन्तव्यवाची** व **पण्यवाची** पूर्वपद को ही प्रकृतिस्वर होता है—

परम वाणिजः, उत्तमवाणिजः यहाँ प्रकृतिस्वर होता है।

मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुँसके 6.2.14

पद.—मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये 7.1, नपुँसके 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—नपुँसकवाची तत्पुरुष समास में यदि मात्रा, उपज्ञा, उपक्रम तथा छाया शब्द उत्तरपद में हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—(1) भिक्षामात्रम्।
(2) पाणिनोपज्ञम्।
(3) दर्शनीयोपक्रमम्।
(4) धनुश्छायम्।

विशेष—'नपुँसके' अर्थात् **नपुँसकवाची** तत्पुरुष में ही पूर्वोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

कुण्ड्यच्छाया—यहाँ प्रकृतिस्वर नहीं हुआ।

सुखप्रिययोर्हिते 6.2.15

पद.—सुखप्रिययोः 7.2, हिते 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—हितवाची तत्पुरुष समास में सुख व प्रिय शब्द उत्तरपद में हों तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—गमनसुखम् 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' से समास हुआ। 'लिति' से आद्युदात्त हुआ।

गमनप्रियम्—पूर्ववत्।

विशेष—'हिते' अर्थात् **हितवाची** तत्पुरुष समास में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है।

परमसुखम्, परमप्रियम् यहाँ प्रकृतिस्वर नहीं हुआ है।

प्रीतौ च 6.2.16

पद.—प्रीतौ 7.1, च-अव्य०।

अनु.—तत्पुरुषे, प्रकृत्या पूर्वपदम् सुखप्रिययोः।

अर्थ—प्रीति अर्थ में तत्पुरुष समास में सुख व प्रिय शब्द उत्तरपद में हों तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—ब्राह्मणसुखम्। अण् होने से अन्तोदात्त है। छात्रप्रियः। छत्रादिभ्यो णः से 'ण' हुआ। अतः अन्तोदात्त हुआ।

विशेष—'प्रीतौ' अर्थात् **प्रीति अर्थ** में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

राजसुखम्, राजप्रियम् यहाँ न हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वं स्वामिनि 6.2.17

पद.—स्वम् 1.1, स्वामिनि 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—तत्पुरुष समास में स्वामिन् शब्द उत्तरपद में हो तो स्ववाची पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है । गोस्वामी, धनस्वामी ।

विशेष—'स्वम्' अर्थात् **स्ववाची** पूर्वपद को ही प्रकृतिस्वर होता है—परमस्वामी 'परम' शब्द स्ववाची नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

पत्यावैश्वर्ये 6.2.18

पद.—पत्यौ 7.1, ऐश्वर्ये 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में पति शब्द उत्तरपद में हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—सेनापतिः 'सेना' व 'पति' शब्दों का षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ । सह इवेन वर्तते इति सेना (बहु०) । आद्युदात्त (बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्) हुआ ।

विशेष—'ऐश्वर्ये' अर्थात् **ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष** में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

ब्राह्मणी वृषलीपतिः यहाँ ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

न भूवाक्चिद्दिधिषु 6.2.19

पद.—न-अव्य०, भूवाक्चिद्दिधिषु 1.1

अनु.—पत्यौ ऐश्वर्ये तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में पति शब्द उत्तरपद में हो तो भू, वाक्, चित् तथा दिधिषू-इन पूर्वपदों को प्रकृतिस्वर नहीं होता है ।

उदा.—भूपतिः 'भू' शब्द क्युन् प्रत्ययान्त (भूसूधूभ्रस्जि० उणा० 2.81) है । अतः 'समासस्य' से अन्तोदात्त हुआ । प्रकृतिस्वर न हुआ ।

वाक् पतिः-पूर्ववत् अन्तोदात्त ।
चित् पतिः-पूर्ववत् ।
दिधिषूपतिः-पूर्ववत् ।

वा भुवनम् 6.2.20

पद.—वा-अव्य०, भुवनम् 1.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम् पत्यौ ऐश्वर्ये ।

अर्थ—ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में पति शब्द उत्तरपद हो तो 'भुवन' पूर्वपद को प्रकृतिस्वर विकल्प से होता है ।

पक्ष में 'समासस्य' से अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—भुवनपतिः-अन्तोदात्त ।
भुवनपतिः-आद्युदात्त ।

विशेष—'उणादयो बहुलम्' में 'बहुलम्' पद के ग्रहण-वशात् भाषा में भी 'भुवन' शब्द का प्रयोग होता है । द्र०-भुवनपतिरादित्यः ।

आशङ्काबाधनेदीयस्सु सम्भावने 6.2.21

पद.—आशङ्काबाधनेदीयस्सु 7.3, सम्भावने 7.1

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—सम्भावनावाची तत्पुरुष समास में आशङ्क, आबाध और नेदीयस् शब्द उत्तरपद में हों तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है । गमनाशङ्कम् कर्मधारय समास हुआ है । 'लिति' से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त हुआ ।

उदा.—गमनाबाधम्-पूर्ववत् ।
गमननेदीयः-पूर्ववत् ।

विशेष—'सम्भावने' अर्थात् **सम्भावना** अर्थ में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

परमनेदीयः यहाँ सम्भावना अर्थ नहीं है । अतः प्रकृति स्वर न हुआ ।

पूर्वे भूतपूर्वे 6.2.22

पद.—पूर्वे 7.1, भूतपूर्वे 7.1

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम् तत्पुरुषे ।

अर्थ—भूतपूर्ववाची तत्पुरुष समास में 'पूर्व' शब्द उत्तरपद हो तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—आढ्यपूर्वः कर्मधारय समास हुआ । प्रकृतिस्वर हो गया ।

विशेष—'भूतपूर्वे' अर्थात् **भूतपूर्ववाची समास** में ही प्रकृतिस्वर होता है—

परमपूर्वः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये 6.2.23

पद.—सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु 7.3, सामीप्ये 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—समीपवाची तत्पुरुष समास में सविध, सनीड, समर्याद, सवेश तथा सदेश उत्तरपद में हों तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—(1) मद्रसविधम् 'षष्ठी' से समास हुआ। 'सविध' में बहुव्रीहि है। 'मद्र' रक् प्रत्ययान्त है। अन्तोदात्त हुआ।
(2) मद्रसनीडम्–पूर्ववत्।
(3) मद्रसमर्यादम्–पूर्ववत्।
(4) मद्रसदेशम्–पूर्ववत्।

विशेष—'सामीप्ये' अर्थात् समीपवाची तत्पुरुष में ही प्रकृतिस्वर होता है—

देवदत्तसमर्यादम् यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु 6.2.24

पद.—विस्पष्टादीनि 1.3, गुणवचनेषु 7.3

अनु.—तत्पुरुषे प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में गुणवाची उत्तरपद हो तो विस्पष्ट आदि पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—विस्पष्टकटुकम् 'सुप् सुपा' से समास हुआ। 'गतिरनन्तरः' से 'विस्पष्ट' शब्द आद्युदात्त है।

इसी प्रकार–विचित्रकटुकम्।

विशेष—1. 'विस्पष्टादीनि' अर्थात् **विस्पष्ट** आदि जो पूर्वपद, उसे ही प्रकृतिस्वर होता है—परमलवणम् यहाँ पूर्वपद में विस्पष्टादि गणपठित शब्द नहीं है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

2. 'गुणवचनेषु' अर्थात् **गुणवाची शब्द** के उत्तरपद रहते, पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। विस्पष्टब्राह्मणः उत्तरपद में गुणवाची शब्द नहीं है। अतः पूर्वपद (विस्पष्ट) को प्रकृतिस्वर न हुआ।

श्रज्यावमकन्पापवत्सुभावे कर्मधारये 6.2.25

पद.—श्रज्यावमकन्पापवत्सु 7.3, भावे 7.1, कर्मधारये 7.1

अनु.—तत्पुरुषे, प्रकृत्या, पूर्वपदम्।

अर्थ—कर्मधारय समास में श्र, ज्य, अवम, कन् और पापवत् शब्दों के उत्तरपद रहते भाववाची पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—(1) गमनश्रेष्ठम् 'लिति' से प्राप्त स्वर का बाध होकर प्रकृतिस्वर हुआ।
(2) वचनज्येष्ठम् पूर्ववत्।
(3) गमनावमम् पूर्ववत्।
(4) गमनकनिष्ठम् पूर्ववत्।
(5) गमनपापिष्ठम् पूर्ववत्।

विशेष—1. 'श्रादिषु' अर्थात् **'श्र आदि** शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है—गमनशोभनम् 'शोभन' शब्द उत्तरपद में है। अतः पूर्वपद (गमन) को प्रकृतिस्वर न हुआ।

2. 'भावे' अर्थात् **भाववाची पूर्वपद** को ही प्रकृति स्वर होता है—

गमनश्रेयः यहाँ 'गमन' शब्द करण अर्थ में (गम्यतेऽनेनेति) है। अतः प्रकृति स्वर न हुआ।

3. 'कर्मधारये' अर्थात् **'कर्मधारय'** समास में ही उक्त प्रकृति स्वर होता है—

गमनस्य श्रेयो गमनश्रेयः यहाँ 'गमन' शब्द भाव अर्थ में है, उत्तरपद में 'श्र' है, परन्तु कर्मधारय नहीं है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

कुमारश्च 6.2.26

पद.—कुमारः 1.1, च–अव्य०।

अनु.—कर्मधारये प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—कर्मधारय समास में कुमार पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—कुमारश्रमणाः 'कुमार' धातु से पचादित्वात् अच् होता है। अतः अन्तोदात्त हुआ।

आदिः प्रत्येनसि 6.2.27

पद.—आदिः 1.1, प्रत्येनसि 7.1

अनु.—कुमारः कर्मधारये प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—कर्मधारय समास में प्रत्येनस् शब्द उत्तरपद में हो तो पूर्वपद 'कुमार' को आदि उदात्त होता है। यहाँ सामर्थ्यवशात् उदात्त का ग्रहण होता है। अतः अर्थ 'आद्युदात्त' लिखा है।

उदा.—कुमारप्रत्येनाः।

पूगेष्वन्यतरस्याम् 6.2.28

पद.—पूगेषु 7.3, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—आदिः कुमारः कर्मधारये प्रकृत्या पूर्वपदम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—कर्मधारय समास में 'पूगवाची' शब्द उत्तरपद में रहते 'कुमार' शब्द को विकल्प से आदि को उदात्त होता है।

पक्ष में अन्तोदात्त होता है।

उदा.—कुमारचातकाः (आदि को उदात्त)।
कुमारचातकाः (अन्त को उदात्त)।

इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ 6.2.29

पद.—इगन्तकालकपालभगालशरावेषु 7.3, द्विगौ 7.1

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—द्विगु समास में इगन्त शब्द, कालवाची शब्द, कपालशब्द, भगाल शब्द तथा शराव शब्द इनके उत्तरपद में रहते पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है।

उदा.—(1) (इगन्त०)–पञ्चारत्निः।
(2) (काल०)–दशमास्यः।
(3) (कपाल०)–दशकपालः।
(4) (भगाल०)–दशभगालः।
(5) (शराव०)–दशशरावः।

विशेष—1. 'इगन्तादिषु' अर्थात् **इगन्त** आदि शब्दों के उत्तरपद में रहते सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

दशभिरश्वैः क्रीतः दशाश्वः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

2. 'द्विगौ' अर्थात् **द्विगु समास** में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

परमशरावः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

बह्वन्यतरस्याम् 6.2.30

पद.—बहु 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—द्विगु समास में इगन्त शब्द, कालवाचीशब्द, कपाल शब्द, भगाल शब्द तथा शराव शब्द इनके उत्तरपद रहते 'बहु' जो पूर्वपद, उसे विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है।

बहु शब्द में कु प्रत्यय (लंघिब० उणा० 1.29) है। अतः प्रकृतिस्वरेण अन्तोदात्त है।

उदा.—बह्वरत्निः, बहुरत्निः।
बहुमास्यः, बहुमास्यः।
बहुकपालः, बहुकपालः।
बहुभगालः, बहुभगालः।
बहुशरावः, बहुशरावः।

दिष्टिवितस्त्योश्च 6.2.31

पद.—दिष्टिवितस्त्योः 7.2, च–अव्य०।

अनु.—अन्यतरस्याम् द्विगौ प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—द्विगु समास में दिष्टि व वितस्ति शब्दों के उत्तरपद में रहते विकल्प से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

पक्ष में अन्तोदात्त (समासस्य) होता है।

उदा.—पञ्चदिष्टिः। पञ्चवितस्तिः।

सप्तमी सिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात् 6.2.32

पद.—सप्तमी 1.1, सिद्धशुष्कपक्वबन्धेषु 7.3, अकालात् 5.1

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—यदि उत्तरपद में सिद्ध, शुष्क, पक्व तथा बन्ध शब्द हों तो कालवाची से अतिरिक्त सप्तम्यन्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—(1) काम्पिल्यसिद्धः यहाँ सप्तम्यन्त पूर्वपद है जिसे प्रकृतिस्वर हुआ है।
(2) निधनशुष्कः–पूर्ववत्।
(3) कुम्भीपक्वः–पूर्ववत्।
(4) चक्रबन्धः–पूर्ववत्।

विशेष—'अकालात्' अर्थात् **कालवाची को छोड़कर** ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

पूर्वाह्णसिद्धः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

परिप्रत्युपापा वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु 6.2.33

पद.—परिप्रत्युपापाः 1.3, वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु 7.3

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—(अव्ययीभाव समास में) वर्ज्यमानवाचक, दिन के अवयववाची तथा रात्रि के अवयववाची शब्द उत्तरपद में हों तो परि, प्रति, उप व अप पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—(1) त्रिगर्त्तात् परि–परित्रिगर्त्तम्।
(2) पूर्वाह्णं पूर्वाह्णं प्रति–प्रतिपूर्वाह्णम्।
(3) पूर्वरात्रं पूर्वरात्रं प्रति–प्रतिपूर्वरात्रम्।
(4) पूर्वाह्णस्य समीपम्–उपपूर्वाह्णम्।

इसी प्रकार —उपपूर्वरात्रम्।

(5) त्रिगर्त्ताद् अप–अपत्रिगर्त्तम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु 6.2.34

पद.—राजन्यबहुवचनद्वन्द्वे 7.1, अन्धकवृष्णिषु 7.3

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—अन्धक और वृष्णि वंश में विद्यमान राजन्यवाची बहुवचनान्त द्वन्द्व समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—(1) श्वाफल्कचैत्रकाः ये अन्धकवंशवाची बहुवचनान्त शब्द हैं । श्वाफल्क तथा चैत्रक शब्द अण् प्रत्ययान्त हैं (ऋष्यन्धक०) । अतः अन्तोदात्त है ।

(2) शिनिवासुदेवाः ये वृष्णिवंशवाची शब्द है । इसे प्रकृतिस्वर आद्युदात्त होता है ।

विशेष—1. राजन्य० अर्थात् **राजन्यवाची** शब्द के समास में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—द्वैप्यहैमायनाः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

2. बहुवचन के निर्देश का फल है कि **बहुवचनान्त** द्वन्द्व समास में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

सङ्कर्षणवासुदेवौ यहाँ बहुवचनान्त न होने से प्रकृतिस्वर न हुआ ।

3. 'द्वन्द्वे' अर्थात् द्वन्द्व समास में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

वृष्णीनां कुमाराः–वृष्णिकुमाराः यहाँ तत्पुरुष समास है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

4. 'अन्धकवृष्णिषु' अर्थात् **अन्धक** व **वृष्णि** वंश के विषय में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है— कुरुपञ्चालाः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

सङ्ख्या 6.2.35

पद.—सङ्ख्या 1.1

अनु.—द्वन्द्वे प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—द्वन्द्व समास में संख्यावाची पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—एकश्च दश च–एकादश ।

इसी प्रकार–द्वादश, त्रयोदश ।

आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासी 6.2.36

पद.–आचार्योपसर्जनः 1.1, च–अव्य०, अन्तेवासी 1.1

अनु.—द्वन्द्वे पूर्वपदम् प्रकृत्या ।

अर्थ—यदि आचार्य का कथन गौण हो तो शिष्यवाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—आपिशलपाणिनीयाः यहाँ आपिशलस्याऽपत्यम्–आपिशलिः (अत इञ्) । तेन प्रोक्तम् अर्थ में अण् (इञश्च) हुआ । तदधीयत ये अन्तोवासिनः तेऽप्यापिशलाः । तद्अधीते तद् वेद से विहित अण् का लुक् (प्रोक्ताल्लुक्) हो जाता है ।

तब आपिशलाश्च पाणिनीयाश्च इस प्रकार द्वन्द्व समास होकर प्रकृतिस्वर हुआ ।

विशेष—'आचार्योपसर्जनः' अर्थात् **आचार्य का कथन गौण** होने पर ही सूत्रोक्त प्रकृति स्वर होता है—

छान्दसवैयाकरणाः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

कार्त्तकौजपादयश्च 6.2.37

पद.—कार्त्तकौजपादयः 1.3, च–अव्य० ।

अनु.—द्वन्द्वे प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—कार्त्तकौजपादि शब्दों के द्वन्द्व समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—कार्त्तकौजपौ यहाँ तस्याऽपत्यम् अर्थ में अण् होकर द्वन्द्व समास हुआ है । तब प्रकृतिस्वर हुआ ।

महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारत-हैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु 6.2.38

पद.—महान् 1.1, व्रीह्यपराह्ण .... प्रवृद्धेषु 7.3

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—यदि उत्तरपद में व्रीहि, अपराह्ण, गृष्टि, इष्वास, जाबाल, भार, भारत, हैलिहिल, रौरव, तथा प्रवृद्ध शब्द हों तो पूर्वपद महान् शब्द को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—(1) महाव्रीहिः महान् शब्द (वर्त्तमाने पृषद्०) अन्तोदात्त है ।

(2) महापराह्णः–पूर्ववत् ।
(3) महागृष्टिः–पूर्ववत् ।
(4) महेष्वासः ।
(5) महाजाबालः ।
(6) महाभारः ।
(7) महाभारतः ।
(8) महाहैलिहिलः ।
(9) महारौरवः ।
(10) महाप्रवृद्धः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे 6.2.39

पद.—क्षुल्लकः 1.1, च-अव्य०, वैश्वदेवे 7.1

अनु.—महान् प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—यदि उत्तरपद में 'वैश्वदेव' शब्द हो तो पूर्वपद में क्षुल्लक व महान् शब्दों को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—क्षुल्लकवैश्वदेवम् ।
महावैश्वदेवम् ।

उष्ट्रः सादिवाम्योः 6.2.40

पद.—उष्ट्र 1.1, सादिवाम्योः 7.2

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—यदि सादि और वामी शब्द उत्तरपद में हों तो पूर्वपद उष्ट्र शब्द को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—उष्ट्रसादिः । उष्ट्रवामी ।

गौः सादसादिसारथिषु 6.2.41

पद.—गौः 1.1, सादसादिसारथिषु 7.3

अनु.—प्रकत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—यदि साद, सादि व सारथि शब्द उत्तरपद में हों तो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—गोःसादः गौसादः ।
गोःसादिः गोसादिः ।
गोसारथिः ।

कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा-पारेवडवातैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च 6.2.42

पद.—कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु-लुप्तप्रथमान्तरूपे । असूत-जरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रूः, पण्यकम्बलः (प्रत्येकम्) षष्ठीस्थाने प्रथमा। दासीभाराणाम् 6.3 च-अव्य० ।

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—कुरुगार्हपत आदि सात शब्दों तथा दासीभारादि गणपठित शब्दों के पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—(1) कुरुगार्हपतम् यहाँ कुरु शब्द कुप्रत्ययान्त (उणा० 1.24) होने से अन्तोदात्त है ।

(2) रिक्तगुरुः रिक्तशब्द पा० 6.1.202 से विकल्प से आद्युदात्त व अन्तोदात्त है । रिक्तगुरुः ।

(3) असूता जरती-असूतजरती पा० 6.2.2 से आद्युदात्त ।

(4) अश्लीला दृढरूपा-अश्लीलदृढरूपा-पूर्ववत् ।

(5) पारेवडवा इव-पारेवडवा फिट्सूत्र 21 से पारशब्द अन्तोदात्त है ।

(6) तितिलिनोऽपत्यम्-तैतिलः तेषां कद्रूः-तैतिलकद्रूः अण् प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त ।

(7) पण्यकम्बलः पा० 3.1.101 से यत् होकर पण्य बनता है । अतः आद्युदात्त है ।

(8) दासीभारः ।
इसी प्रकार-देवहूतिः ।

विशेष—1. 'गार्हपत' परे रहते कुरु और वृजि शब्दों को प्रकृतिस्वर होता है—[1]
कुरुगार्हपतम् । वृजिगार्हपतम् ।

2. संज्ञा में ही पण्यकम्बल को प्रकृतिस्वर होता है[2]—
पण्यकम्बल ।

चतुर्थी तदर्थे 6.2.43

पद.—चतुर्थी 1.1, तदर्थे 7.1

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—तदर्थ के उत्तरपद रहते चतुर्थी पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—यूपदारु । कुण्डलहिरण्यम् ।

विशेष—'तदर्थे' अर्थात् तदर्थ के उत्तरपद रहते ही प्रकृतिस्वर होता है—

कुबेरबलिः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

अर्थे 6.2.44

पद.—अर्थे 7.1

अनु.—चतुर्थी प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—अर्थ शब्द उत्तरपद रहते चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को प्रकृति स्वर होता है ।

उदा.—मात्रे इदम्-मात्रर्थम् ।
लित् स्वर से मध्योदात्त हुआ ।

क्ते च 6.2.45

पद.—क्ते 7.1, च-अव्य० ।

---

1. महा० 6.2.42 (वा०) कुरुवृज्योर्गार्हपत इति वक्तव्यम् ।
2. का०वा०—पण्यकम्बलः संज्ञायाम् इति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—चतुर्थी प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—क्त प्रत्ययान्त उत्तरपद में हो तो चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—गोहि॑तम् । गोर॑क्षितम् ।

कर्मधारयेऽनिष्ठा 6.2.46

पद.—कर्मधारये 7.1, अनिष्ठा 1.1

अनु.—क्ते प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—कर्मधारय समास में क्तप्रत्ययान्त के उत्तरपद रहते निष्ठान्त को छोड़कर जो पूर्वपद उसे प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—श्रेणि॑कृताः । पूगक॑ृताः ।

विशेष—1. 'कर्मधारये अर्थात् **कर्मधारय** समास में ही उक्त प्रकृतिस्वर होता है—

श्रेण्या कृतम्–श्रेणिकृतम् यहाँ कर्मधारय नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

2. 'अनिष्ठा' का प्रयोजन है कि **निष्ठा को** छोड़कर शेष को प्रकृति स्वर होता है—

कृताकृतम् उत्तरपद में क्तप्रत्ययान्त है । कर्मधारय समास है । पूर्वपद में निष्ठान्त शब्द है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

अहीने द्वितीया 6.2.47

पद.—अहीने 7.1, द्वितीया 1.1

अनु.—क्ते प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—अहीनवाची समास में क्तान्त उत्तरपद रहते द्वितीयान्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—कष्टश्रि॑तः, ग्रामग॑तः

विशेष—1. 'अहीने' अर्थात् **अहीनवाची समास** में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—कन्तारातीतः ।

2. द्वितीयान्त को अनुपसर्ग की दशा में ही पूर्वोक्त प्रकृतिस्वर होता है[1]—

सुखप्राप्तः । सुखापन्नः यहाँ क्रमशः 'प्र' तथा 'आ' उपसर्ग हैं । अतः प्रकृति स्वर न हुआ ।

तृतीया कर्मणि 6.2.48

पद.—तृतीया 1.1, कर्मणि 7.1

अनु.—क्ते प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—कर्मवाची क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद रहते तृतीयान्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—अहि॑हतः 'अहि' शब्द 'आङि श्रिहनि०' (उणा० 6.138) से निष्पन्न है । अतः अन्तोदात्त है ।

विशेष—'कर्मणि' अर्थात् **कर्मवाची** के उत्तरपद रहते ही उक्त प्रकृतिस्वर होता है—

रथेन यातः–रथयातः यहाँ कर्मवाची क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद नही है । अतः प्रकृति स्वर न हुआ ।

गतिरनन्तरः 6.2.49

पद.—गतिः 1.1, अनन्तरः 1.1

अनु.—कर्मणि क्ते प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—कर्मवाची क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद रहते पूर्वपदस्थ अव्यवहित गति को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—प्रकृ॑तः

'कृत' शब्द क्तप्रत्ययान्त है । इससे पूर्व अव्यवहित गतिसंज्ञक 'प्र' है । अतः प्रकृति स्वर हुआ ।

विशेष—'अनन्तरः' अर्थात् **अव्यवहित** को ही सूत्रोक्त प्रकृति स्वर होता है—

समुदाहृ॑तः सम् तथा हृत शब्दों के मध्य उद् आ का व्यवधान है ।

तादौ च निति कृत्यतौ 6.2.50

पद.—तादौ 7.1, च–अव्य०, निति 7.1, कृति 7.1, अतौ 7.1

अनु.—गतिः अनन्तरः प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—'तु' शब्द को छोड़कर तकारादि, नित् (जिसका नकार इत् है) कृत् संज्ञक प्रत्यय के परे रहते अव्यवहित गतिसंज्ञक पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

प्रकर्त्ता यहाँ 'कर्त्ता' में तकारादि नित् कृत् प्रत्यय (तृन्) है । इससे पूर्व अव्यवहित 'प्र' है । अतः प्रकृति स्वर हुआ ।

1. 'तादौ' अर्थात् **तकारादि** प्रत्यय परे रहते ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

प्रजल्पा॑कः यहाँ षाकन् कृत् प्रत्यय है, जो तकारादि नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

2. 'निति' अर्थात् **नित्** प्रत्यय परे रहते ही प्रकृति स्वर होता है—

1. काशि० 6.2.47 (वा०) द्वितीयानुपसर्ग इति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकर्त्ता यहाँ तृच् प्रत्यय है जो तकारादि तो है परन्तु नित् नहीं है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

3. उपदेशकाल में जो तकारादि, उसके परे रहते सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है[1]—

प्रलपिता यहाँ प्रत्यय को इट् हुआ है, परन्तु उपदेश में तकारादि होने से प्रकृतिस्वर हो गया।

तवै चाऽन्तश्च युगपत् 6.2.51

पद.—तवै-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च-अव्य०, अन्तः 1.1, च-अव्य०, युगपत्-अव्य०।

अनु.—गतिः अनन्तरः प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—तवै प्रत्यय को अन्तोदात्त होता है तथा इससे पूर्व अव्यवहित गति संज्ञक शब्द को प्रकृतिस्वर भी होता है।

सूत्रस्थ 'युगपत्' पद का फल है कि एक साथ दो उदात्त भी हो जायेंगे।

उदा.—परिपातवै तवै अन्तोदात्त हुआ। 'परि' गतिसंज्ञक शब्द है। इसे आद्युदात्त हुआ।

अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये 6.2.52

पद.—अनिगन्तः 1.1, अञ्चतौ 7.1, वप्रत्यये 7.1

अनु.—गतिः प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—इक् नहीं है अन्त में जिसके, ऐसे गति संज्ञक को प्रकृतिस्वर होता है, यदि उत्तरपद में वप्रत्ययान्त अञ्चु धातु हो।

उदा.—प्राञ्चः यहाँ 'प्र' गतिसंज्ञक है जिसके अन्त में इक् नहीं है। उत्तरपद में क्विन् प्रत्ययान्त अञ्चु धातु है। अतः प्रकृतिस्वर हुआ।

विशेष—1. 'अनिगन्तः' अर्थात् **अनिगन्त** को ही प्रकृतिस्वर होता है—

प्रत्यञ्चः यहाँ 'प्रति' इगन्त है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

2. 'वप्रत्यये' अर्थात् **वप्रत्ययान्त** शब्द के उत्तरपद रहते प्रकृतिस्वर होता है।

उदञ्चनः। यहाँ अनिगन्त गतिसंज्ञक 'उद्' पूर्वपद है, परन्तु वप्रत्ययान्त अञ्चु नहीं है। अतः प्रकृतिस्वर न हुआ।

न्यधी च 6.2.53

पद.—न्यधी 1.2, च-अव्य०।

अनु.—अञ्चतौ वप्रत्यये प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—वप्रत्ययान्त अञ्चु धातु के परे रहते नि व अधि को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—न्यञ्चः। अधीचः।

ईषदन्यतरस्याम् 6.2.54

पद.—ईषत्-अव्य०, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—पूर्वपद 'ईषत्' शब्द को विकल्प से प्रकृति स्वर होता है।

उदा.—ईषत्कडारः। ईषत्कडारः। पक्ष में अन्तोदात्त (समासस्य) होता है।

हिरण्यपरिमाणं धने 6.2.55

पद.—हिरण्यपरिमाणम् 1.1, धने 7.1

अनु.—अन्यतरस्याम् प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—धन शब्द उत्तरपद रहते हिरण्य और परिमाण अर्थों को कहने वाला पूर्वपद विकल्प से प्रकृतिस्वर से रहता है।

उदा.—द्विसुवर्णधनम्। द्विसुवर्णधनम्।

यहाँ सुवर्ण शब्द परिमाण तथा सोना इन दोनों का वाचक है।

विशेष—1. 'हिरण्य' शब्द के ग्रहण का फल है कि 'प्रस्थधनम्' में प्रकृति स्वर न हो।

2. 'परिमाण' शब्द के ग्रहण का फल है कि 'काञ्चनधनम्' में प्रकृतिस्वर नहीं होता है।

3. 'धने' अर्थात् **धन** शब्द उत्तरपद रहते ही प्रकृति स्वर होता है—निष्कमाला यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ।

प्रथमोऽचिरोपसम्पत्तौ 6.2.56

पद.—प्रथमः 1.1, अचिरोपसम्पत्तौ 7.1

अनु.—अन्यतरस्याम् प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थ—अभिनव अर्थ गम्यमान हो तो 'प्रथम' पूर्वपद को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—प्रथमवैयाकरणः।

पक्ष में—प्रथमवैयाकरणः।

विशेष—जहाँ अभिनव अर्थ गम्यमान न हो वहाँ प्रकृतिस्वर नहीं होता है—

---

1. का०वा०—कृदग्रहणमुपदेशे ताद्यर्थम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमवैयाकरणः ।

कतरकतमौ कर्मधारये 6.2.57

पद.—कतरकतमौ 1.2, कर्मधारये 7.1

अनु.—अन्यतरस्याम् प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—कर्मधारय समास में कतर व कतम पूर्वपद को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—कतरकठः, कतरकठः ।
कतमकठः, कतमकठः ।

आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः 6.2.58

पद.—आर्यः 1.1, ब्राह्मणकुमारयोः 7.2

अनु.—कर्मधारये अन्यतरस्याम् प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—कर्मधारय समास में ब्राह्मण व कुमार शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद में 'आर्य' शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है ।

'ऋहलोर्ण्यत्' से 'आर्य' शब्द ण्यत् प्रत्ययान्त है । 'तित् स्वरितम्' से अन्तस्वरित होता है ।

उदा.—आर्यब्राह्मणः, आर्यब्राह्मणः ।
आर्यकुमारः, आर्यकुमारः ।

विशेष—1. 'आर्यः' अर्थात **'आर्य'** शब्द को ही प्रकृति स्वर होता है—

परमब्राह्मणः । परमकुमारः यहाँ प्रकृति स्वर होता है—

2. 'ब्राह्मणकुमारयोः' अर्थात् **ब्राह्मण** और **कुमार** शब्दों के उत्तरपद रहते ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

आर्यक्षत्रियः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

राजा च 6.2.59

पद.—राजा 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—ब्राह्मणकुमारयोः कर्मधारये अन्यतरस्याम् प्रकृत्या-पूर्वपदम् ।

अर्थ—कर्मधारय समास में ब्राह्मण व कुमार शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद 'राजन्' शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—राजब्राह्मण, राजब्राह्मणः ।
राजकुमारः, राजकुमारः ।

षष्ठी प्रत्येनसि 6.2.60

पद.—षष्ठी 1.1, प्रत्येनसि 7.1

अनु.—राजा अन्यतरस्याम् प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—प्रत्येनस् शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद में षष्ठ्यन्त 'राजन्' शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—राज्ञःप्रत्येनाः, राज्ञःप्रत्येनाः ।

यहाँ 'षष्ठ्या आक्रोशे' से अलुक् हुआ है । 'आक्रोश' अर्थ न होने पर लुक् होता है—

राजप्रत्येनाः, राजप्रत्येनाः ।

विशेष—'षष्ठी' अर्थात् **षष्ठ्यन्त** राजन् शब्द को ही प्रकृतिस्वर होता है—

राजा चाऽसौ प्रत्येनाश्च-राजप्रत्येनाः ।

यहाँ राजन् शब्द षष्ठ्यन्त नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

क्ते नित्यार्थे 6.2.61

पद.—क्ते 7.1, नित्यार्थे 7.1

अनु.—अन्यतरस्याम् प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—जिसका नित्य अर्थ है, ऐसे समास में, क्तप्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है । 'नित्य' शब्द त्यप् प्रत्यय से निष्पन्न होता है । द्र०—त्यब्नेर्ध्रुवे (पा० 4.2.103 वा०) । पित् होने से यकारोत्तर-वर्ती अकार अनुदात्त तथा 'उपसर्गा०' (फिट्. 80) से इकार उदात्त है ।

उदा.—नित्यप्रहासितः ।

पक्ष में अन्तोदात्त होता है—नित्यप्रहसितः ।

विशेष—'नित्यार्थे' अर्थात् **नित्य अर्थ वाले** समास में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

मुहूर्तप्रहसितः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

ग्रामः शिल्पिनि 6.2.62

पद.—ग्रामः 1.1, शिल्पिनि 7.1

अनु.—अन्यतरस्याम् प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

अर्थ—शिल्पिवाची शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद 'ग्राम' को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—ग्रामनापितः, ग्रामनापितः ।

विशेष—1. 'ग्रामः' अर्थात् **ग्राम शब्द को** ही प्रकृति स्वर होता है—

परमनापितः यहाँ प्रकृतिस्वर न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. शिल्पिनि' अर्थात् **शिल्पिवाची** शब्द के उत्तरपद रहते ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

ग्रामरथ्या–'रथ्या' शब्द शिल्पिवाची नहीं है ।

राजा च प्रशंसायाम् 6.2.63

पद.—राजा 1.1, च–अव्य०, प्रशंसायाम् 7.1

अनु.—शिल्पिनि अन्यतरस्याम् प्रकृत्यापूर्वपदम् ।

अर्थ—प्रशंसा अर्थ में शिल्पिवाची शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद 'राजन्' शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—राजनापितः, राजनापितः ।

विशेष—1. 'राजा' अर्थात् **राजन् शब्द** को ही विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है—

परमनापितः यहाँ प्रशंसा अर्थ है, परन्तु पूर्वपद में राजन् शब्द नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

2. 'प्रशंसायाम्' अर्थात् **प्रशंसा अर्थ** में ही सूत्रोक्त प्रकृतिस्वर होता है—

राजनापितः पूर्वपद में 'राजन्' शब्द है । परन्तु प्रशंसा अर्थ नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

आदिरुदात्तः 6.2.64

पद.—आदिः 1.1, उदात्तः 1.1

अनु.—पूर्वपदम् ।

अर्थ—यह अधिकारसूत्र है । इसके आगे जहाँ-जहाँ स्वर-विधान किया जायेगा, वहाँ-वहाँ पूर्वपद को आदि उदात्त होगा।

सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे 6.2.65

पद.—सप्तमीहारिणौ 1.2, धर्म्ये 7.1, अहरणे 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—हरणशब्द को छोड़कर धर्म्यवाची शब्दों के उत्तर-पद रहते सप्तम्यन्त तथा हारिवाची पूर्वपद को आदि उदात्त होता है ।

उदा.—मुकुटे कार्षापणम् ।
वैयाकरणहस्ती ।

विशेष—1. 'धर्म्ये' अर्थात् **धर्म्यवाची** शब्दों के उत्तरपद रहते ही सूत्रोक्त आद्युदात्त होता है—

स्तम्बेरमः यहाँ न हुआ ।

2. 'अहरणे' अर्थात् **'हरण' शब्द को छोड़कर** ही सूत्रोक्त स्वर होता है—

वाडवहरणम्–यहाँ न हुआ ।

युक्ते च 6.2.66

पद.—युक्ते 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—आदिः उदात्तः पूर्वपदम् ।

अर्थ—युक्त वाची समास में पूर्वपद को आदि उदात्त होता है ।

उदा.—गोबल्लवः यहाँ आदि को उदात्त हुआ ।

विभाषाऽध्यक्षे 6.2.67

पद.—विभाषा 1.1, अध्यक्षे 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—'अध्यक्ष' शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद को विकल्प से आदि उदात्त होता है ।

उदा.—गवाध्यक्षः अश्वाध्यक्षः । गवाध्यक्षः अश्वाध्यक्षः ।

पापं च शिल्पिनि 6.2.68

पद.—पापम् 1.1, च–अव्य०, शिल्पिनि 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः विभाषा ।

अर्थ—शिल्पिवाची शब्द उत्तरपद रहते पाप शब्द को विकल्प से आदि उदात्त होता है । पक्ष में अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—पापनापितः, पापनापितः ।

गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे 6.2.69

पद.—गोत्रान्ते ... ब्राह्मणेषु 7.3, क्षेपे 7.1

अनु.—पूर्वपदम्, आदिः उदात्तः ।

अर्थ—निन्दा गम्यमान हो तो गोत्रवाची, अन्तेवासिवाची, माणव तथा ब्राह्मण शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को आदि उदात्त होता है ।

उदा.—(1) (गोत्रवाची)—जङ्घावात्स्यः यहाँ निन्दा अर्थ गम्य है ।

(2) (अन्तेवासी)—ओदनपाणिनीयाः यहाँ भी निन्दा गम्य-मान है ।

(3) (माणव)–भिक्षामाणवः ।

(4) (ब्राह्मण)–भयब्राह्मणः ।

विशेष—1. 'गोत्रादिषु' अर्थात् **गोत्र आदि** शब्दों के उत्तरपद रहते ही पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—

दासीश्रोत्रियः यहाँ आदि को उदात्त न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. 'क्षेपे' अर्थात् **निन्दा गम्यमान** हो तो पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—

महाब्राह्मणः यहाँ न हुआ ।

अङ्गानि मैरेये 6.2.70

पद.—अङ्गानि 1.3, मैरेये 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—मैरेय शब्द उत्तरपद रहते उसके उपादानकारणवाची पूर्वपद को आदि उदात्त होता है । मैरेय एक मद्य का नाम है ।

उदा.—गुडमैरेय यहाँ मैरेय उत्तरपद है । गुड इसका उपादान कारण है ।

इसी प्रकार–मधुमैरेयः ।

विशेष—1. 'अङ्गानि' अर्थात् **उपादानकारणवाची** को ही आद्युदात्त होता है—

परममैरेयः यहाँ 'परम' शब्द उपादानकारणवाची नहीं है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

2. 'मैरेये' अर्थात् **'मैरेय'** शब्द के उत्तरपद रहते ही पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—

फलासवः पूर्वपद में उपादानकारणवाची 'फल' शब्द है, परन्तु उत्तरपद में 'मैरेय' शब्द नहीं है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

भक्ताख्यास्तदर्थेषु 6.2.71

पद.—भक्ताख्याः 1.3, तदर्थेषु 7.3

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—उन अन्नविशेषों के लिए पात्रवाची शब्दों के उत्तरपद रहते अन्नविशेषवाची पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है ।

'भक्त' का अर्थ है—अन्न । 'आख्या' का अभिप्राय है—उस अन्न का पर्याय तथा तत् सम्बन्धी पात्रविशेष ।

उदा.—भिक्षाकंसः । श्राणाकंसः

'कंस' पात्रवाची शब्द है । भिक्षा व श्राणा अन्नविशेष को कहते हैं ।

विशेष—'भक्ताख्या' अर्थात् **अन्नविशेष** वाची को ही आद्युदात्त होता है—

समाशशालयः—यहाँ सूत्रोक्त स्वर न हुआ ।

2. **'तदर्थेषु'** का प्रयोजन है कि भिक्षाप्रियः में आद्युदात्त न हो ।

गोविडालसिंहसैन्धवेषूपमाने 6.2.72

पद.—गोविडालसिंहसैन्धवेषु 7.3, उपमाने 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—उपमानवाची गो, विडाल, सिंह तथा सैन्धव शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है ।

उदा.—हिरण्यं गौरिव–हिरण्यगवः ।
भिक्षाविडालः ।
तृणसिंहः ।
पानसैन्धवः ।

विशेष—'उपमाने' अर्थात् **उपमानवाची** उत्तरपद रहते ही आद्युदात्त होता है—परमसिंहः यहाँ न हुआ ।

अके जीविकार्थे 6.2.73

पद.—अके 7.1, जीविकार्थे 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—जीविकार्थवाची समास में अकप्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है ।

उदा.—दन्तलेखकः (=दाँतों पर लिखने वाला) यहाँ जीविकार्थवाची समास है । 'लेखक' शब्द अक प्रत्ययान्त है । आदि को उदात्त हुआ है ।

विशेष—1. 'अकः' अर्थात् **अकप्रत्ययान्त** शब्द के उत्तरपद रहते ही पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—रमणीयकर्त्ता यहाँ जीविकार्थवाची समास है, परन्तु उत्तरपद में 'कर्त्ता' शब्द है जो अकप्रत्ययान्त नहीं है । अतःपूर्वपद को आद्युदात्त न हुआ ।

2. 'जीविकार्थे' अर्थात् **जीविकार्थवाची समास** में ही पूर्वोक्त स्वर होता है—

इक्षुभक्षिका यहाँ आद्युदात्त न हुआ ।

प्राचां क्रीडायाम् 6.2.74

पद.—प्राचाम् 6.3, क्रीडायाम् 7.1

अनु.—अके पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—पूर्वदेशवाची लोगों की जो क्रीडा, तद्वाची समास में अकप्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद में रहते पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है ।

उदा.—वीरणपुष्पप्रचायिका ।

विशेष—1. 'प्राचाम्' अर्थात् **प्राच्य लोगों** की क्रीडा के समास में ही सूत्रोक्त स्वर होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवपुत्रप्रचार्यिका यह उदीच्यों की क्रीडा है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

2. 'क्रीडायाम्' अर्थात् **क्रीडा** के विषय में ही पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—

पुष्पप्रचार्यिका यहाँ ण्वुच् प्रत्यय हुआ ।

अणि नियुक्ते 6.2.75

पद.—अणि 7.1, नियुक्ते 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—अण् प्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद रहते नियुक्तवाची समास में पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है ।

उदा.—छत्रधारः यहाँ कर्मण्यण् से अण् हुआ आदि को उदात्त होता है ।

विशेष—'नियुक्ते' अर्थात् **नियुक्तवाची** समास में ही पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—

काण्डलावः ।

शिल्पिनि चाऽकृञः 6.2.76

पद.—शिल्पिनि 7.1, च-अव्य०, अकृञः 5.1

अनु.—अणि आदिः उदात्तः पूर्वपदम् ।

अर्थ—शिल्पिवाची समास में अण् प्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है, यदि वह अण् प्रत्यय 'कृ' से परे न हो ।

उदा.—तन्तुवायः । तुन्नवायः ।

विशेष—1. 'शिल्पिनि' अर्थात् **शिल्पिवाची** समास में ही पूर्वोक्त स्वर होता है—

काण्डलावः यहाँ आद्युदात्त न हुआ ।

2. 'अकृञः' अर्थात् अण् प्रत्यय कृञ् से उत्तर न हो तो आद्युदात्त होता है—

कुम्भकारः यहाँ न हुआ ।

संज्ञायां च 6.2.77

पद.—संज्ञायाम् 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—अणि अकृञः पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में अण् प्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है, यदि वह अण् प्रत्यय कृञ् धातु से उत्तर न हो ।

उदा.—तन्तुवायः 'वाय' अण् प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद में है । 'तन्तुवाय' एक कीट का नाम होता है । अतः संज्ञा का विषय हो गया ।

गोतन्तियवं पाले 6.2.78

पद.—गोतन्तियवम् 1.1, पाले 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—पाल शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद में गो, तन्ति तथा यव शब्दों को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—गोपालः । तन्तिपालः । यवपालः ।

विशेष—1. पूर्वपद में **गो आदि** शब्दों को ही आद्युदात्त होता है—

वत्सपाल; यहाँ सूत्रोक्त स्वर न हुआ ।

2. 'पाले' अर्थात् **पाल शब्द** उत्तरपद में रहते सूत्रोक्त स्वर होता है—

गोरक्षः—पूर्वपद में 'गो' शब्द है, परन्तु उत्तरपद में 'पाल' शब्द नहीं है । अतः 'गो' शब्द को आद्युदात्त न हुआ ।

णिनि 6.2.79

पद.—णिनि 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—णिन् प्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—फलहारी 'हृ' धातु से णिन् होकर 'हारी' शब्द बनता है । पूर्वपद के आदि को उदात्त हुआ ।

उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव 6.2.80

पद.—उपमानम् 1.1, शब्दार्थप्रकृतौ 7.1, एव-अव्य०।

अनु.—णिनि पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—शब्दार्थ धातु वाले णिनिप्रत्ययान्त शब्दों के ही उत्तरपद रहते उपमानवाची पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है ।

उदा.—उष्ट्र इव क्रोशति-उष्ट्रक्रोशी । शब्दार्थक 'क्रुश्' धातु से णिनि हुआ है । (कर्तर्युपमाने) । ध्वांक्ष इव रौति-ध्वांक्षरावी ।

खरनादी ।

विशेष—1. 'शब्दार्थप्रकृतौ' अर्थात् **शब्दवाची धातु** वाले उत्तरपद के रहते ही सूत्रोक्त स्वर होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृकप्रेक्षी प्रेक्ष् धातु शब्दार्थक नहीं है। अतः 'वृक' को आद्युदात्त न हुआ।

2. **'प्रकृतौ'** का प्रयोजन है कि गर्दभोच्चारी में आद्युदात्त न हो।

युक्तारोह्यादयश्च 6.2.81

पद.—युक्तारोह्यादयः 1.3, च-अव्य०।

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः।

अर्थ—युक्तारोही आदि समस्तपदों के आदि को उदात्त होता है।

उदा.—युक्तारोही। आगतरोही।

दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे 6.2.82

पद.—दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्वटम् 1.1, जे 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः।

अर्थ—जशब्द उत्तरपद रहते दीर्घान्त, काश, तुष, भ्राष्ट्र तथा वट पूर्वपद के आदि को उदात्त होता है।

उदा.—(1) कुटीज-कुट्यां जातः।
(2) काशजः-काशे जातः।
(3) तुषजः-तुषे जातः।
(4) भ्राष्ट्रजः-भ्राष्ट्रे जातः।
(5) वटजः-वटे जातः।

अन्त्यात् पूर्वं बह्वचः 6.2.83

पद.—अन्त्यात् 5.1, पूर्वम् 1.1, बह्वचः 6.1

अनु.—जे पूर्वपदम् उदात्तः।

अर्थ—'ज' उत्तरपद रहते अनेक अच् वाले पूर्वपद के अन्त्य अक्षर से पूर्व को उदात्त होता है।

उदा.—उपसरजः यहाँ 'उपसर' बह्वच् है। इसके अन्त्य अक्षर (र) से पूर्व सकारोत्तरवर्त्ती अकार को उदात्त हुआ।

विशेष—'बह्वचः' अर्थात् **अनेक अच् वाले** पूर्वपद के अन्त्य अक्षर से पूर्व को उदात्त होता है—

दग्धजानिं यहाँ न हुआ। 'दग्ध' शब्द बह्वच् नहीं है।

ग्रामेऽनिवसन्तः 6.2.84

पद.—ग्रामे 7.1, अनिवसन्तः 1.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः।

अर्थ—ग्राम शब्द उत्तरपद रहते अनिवसन्तवाची पूर्वपद को आद्युदात्त होता है।

'अनिवसन्त' का अर्थ है—निवास करने वाला।

उदा.—मल्लानां ग्रामः-मल्लग्रामः।

विशेष—'अनिवसन्तः' का फल है कि 'दक्षिग्रामः' में आद्युदात्त न हो।

घोषादिषु च 6.2.85

पद.—घोषादिषु 7.3, च-अव्य०।

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः।

अर्थ—घोष आदि शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को आद्युदात्त होता है।

उदा.—दाक्षिघोषः। दाक्षिकटः।

छात्र्यादयः शालायाम् 6.2.86

पद.—छात्र्यादयः 1.3, शालायाम् 7.1

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः।

अर्थ—शाला शब्द उत्तरपद रहते छात्रि आदि शब्दों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—छत्रस्य अपत्यम्-छात्रिः (अत इञ्)।
छात्रिशाला। व्याडिशाला।

प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् 6.2.87

पद.—प्रस्थे 7.1, अवृद्धम् 1.1, अकर्क्यादीनाम् 6.3

अनु.—पूर्वपदम् आदिः उदात्तः।

अर्थ—प्रस्थ शब्द उत्तरपद रहते कर्क्यादि गणपठित शब्दों को तथा वृद्धसंज्ञक शब्दों को छोड़कर पूर्वपद को आद्युदात्त होता है। वृद्धिर्यस्याचा० से वृद्धसंज्ञा कही गई है।

उदा.—इन्द्रप्रस्थः। कुण्डप्रस्थः।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अवृद्धम्' अर्थात् **वृद्धसंज्ञक** को सूत्रोक्त स्वर नहीं होता है—

दाक्षिप्रस्थः 'प्रस्थ' शब्द उत्तरपद में है परन्तु पूर्वपद में 'दाक्षि' शब्द है जिसकी वृद्धसंज्ञा है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

2. 'अकर्क्यादीनाम्' अर्थात् **कर्क्यादिगणपठित** शब्दों को छोड़कर पूर्वोक्त स्वर होता है—

कर्कीप्रस्थः यहाँ आद्युदात्त न हुआ।

मालादीनां च 6.2.88

पद.—मालादीनाम् 6.3, च-अव्य०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—प्रस्थे पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—प्रस्थ शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद में मालादि शब्दों को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—मालाप्रस्थः । शालाप्रस्थः ।

अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम् 6.2.89

पद.—अमहन्नवम् 1.1, नगरे 7.1, अनुदीचाम् 6.3

अनु.—पूर्वपदम् आदिरुदात्तः ।

अर्थ—नगर शब्द उत्तरपद रहते महत् तथा नव शब्दों को छोड़कर पूर्वपद को आद्युदात्त होता है । यदि वह नगर उदीच्च प्रदेश का न हो ।

उदा.—पुण्ड्रनगरम् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अमहन्नवम्' अर्थात् **महत् व नव शब्दों को छोड़कर** ही पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—

महानगरम् पूर्वपद में 'महत्' शब्द है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच् 6.2.90

पद.—अर्मे 7.1, च-अव्य०, अवर्णम् 1.1, द्व्यच् 1.1, त्र्यच् 1.1

अनु.—अमहन्नवम् पूर्वपदम् आदिः उदात्तः ।

अर्थ—अर्म शब्द उत्तरपद रहते दो अच् वाले, तीन अच् वाले, अकारान्त पूर्वपद को आद्युदात्त होता है ।

उदा.—दत्तार्मम् । कुक्कुटार्मम् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अवर्णम्' अर्थात् **अकारान्त** पूर्वपद को ही आद्युदात्त होता है—

बृहदर्मम् बृहद् शब्द अकारवान् नही है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

2. 'द्व्यच् त्र्यच्' अर्थात् **दो अच् वाले, तीन अच् वाले** पूर्वपद को आद्युदात्त होता है—

कपिञ्जलार्मम् 'कपिञ्जल' शब्द न तो द्व्यच् है और न ही त्र्यच् है । अतः आद्युदात्त न हुआ ।

न भूताधिकसंजीवमद्राश्मकज्जलम् 6.2.91

पद.—न-अव्य०, भूताधिक ... ज्जलम् 1.1

अनु.—पूर्वपदम् अर्मे आदिः उदात्तः ।

अर्थ—अर्म शब्द उत्तरपद रहते भूत, अधिक, संजीव, मद्र, अश्मन् तथा कज्जल—इन पूर्वपदों को आद्युदात्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) भूतार्मम् द्व्यच् होने से 'भूत' शब्द को आद्युदात्त प्राप्त है ।

(2) अधिकार्मम् त्र्यच् होने से 'अधिक' शब्द को आद्युदात्त प्राप्त था ।

(3) संजीवार्मम्–पूर्ववत् ।

(4) मद्रार्मम्–पूर्ववत् ।

(5) अश्मार्मम्–पूर्ववत् ।

(6) कज्जलार्मम्–पूर्ववत् ।

(7) मद्र तथा अश्मन् का समस्तपद के रूप में भी प्रयोग होता है । अतः मद्राश्मार्मम् ।

विशेष—आद्युदात्त के प्रकरण में वेद में दिवोदास आदि शब्दों को आद्युदात्त होता है ।[1]

दिवोदासम् ।

अन्तः 6.2.92

पद.—अन्तः 1.1

अनु.—पूर्वपदम् उदात्तः ।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है । इसके आगे जो स्वर विधान किया जायेगा, वह अन्तोदात्त होगा ।

सर्वं गुणकात्स्न्र्ये 6.2.93

पद.—सर्वम् 1.1, गुणकात्स्न्र्ये 7.1

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः ।

अर्थ—गुणों की सम्पूर्णता अर्थ में वर्त्तमान 'सर्व' पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः पूर्वकालैकसर्व० से समास हुआ ।

विशेष—1. 'सर्वम्' अर्थात् **'सर्व' पूर्वपद को ही** अन्तोदात्त होता है—परमश्वेतः यहाँ न हुआ ।

2. 'गुण०' अर्थात् **गुणों की** सम्पूर्णता अर्थ में ही उक्त स्वर होता है—

1. काशि० 6.2.91 (वा०) आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वसौवर्णः यहाँ द्रव्य की सम्पूर्णता है, गुणों की नहीं। अतः अन्तोदात्त न हुआ।

3. 'कात्स्न्यें' अर्थात् **सम्पूर्णता** के अर्थ में पूर्वोक्त स्वर होता है—

सर्वेषां श्वेततरः–सर्वश्वेतः यहाँ गुणों की **सम्पूर्णता** गम्य नहीं है। अतः 'सर्व' शब्द को अन्तोदात्त न हुआ।

संज्ञायां गिरिनिकाययोः 6.2.94

पद.—संज्ञायाम् 7.1, गिरिनिकाययोः 7.2

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा के विषय में गिरि तथा निकाय शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—अञ्जनागिरिः। शाण्डिनिकायः।

विशेष—'संज्ञायाम्' अर्थात् संज्ञा के विषय में ही सूत्रोक्त स्वर होता है—

परमगिरिः। ब्राह्मणनिकायः। यहाँ संज्ञा का विषय नहीं है। अतः पूर्वपद अन्तोदात्त न हुआ।

कुमार्यां वयसि 6.2.95

पद.—कुमार्याम् 7.1, वयसि 7.1

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—अवस्था गम्यमान हो तो 'कुमारी' शब्द के उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्त उदात्त होता है।

उदा.—वृद्धा चासौ कुमारी च–वृद्धकुमारी। 'विशेषणं विशेष्येण०' से समास। जरती चासौ कुमारी च–जरत् कुमारी। 'पूर्वकालैक सर्व०' से समास।

'पुंवत्कर्मधारय०' से दोनों स्थलों पर पुँवद्भाव हुआ है।

विशेष—'वयसि' अर्थात् **अवस्था** गम्यमान हो तो पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है—

परमकुमारी यहाँ अवस्थागम्य नहीं है।

उदकेऽकेवले 6.2.96

पद.—उदके 7.1, अकेवले 7.1

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—मिश्रवाची समास में 'उदक' शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—गुडमिश्रम् उदकम्—गुडोदकम्। गुण एकादेश होने पर पक्ष में 'स्वरितो वानुदात्ते पदादौ' (पा० 8.2.6) से 'ओ' को स्वरित हुआ। गुडोदकम्।

विशेष—'अकेवले' अर्थात् **मिश्रवाची** समास में ही पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है—

शीतोदकम् यहाँ मिश्रवाची समास नहीं है, कर्मधारय समास है। अतः उक्त स्वर न हुआ।

द्विगौ क्रतौ 6.2.97

पद.—द्विगौ 7.1, क्रतौ 7.1

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—क्रतुवाची समास में द्विगु उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—गर्गाणां त्रिरात्रः—गर्गत्रिरात्रः। षष्ठी तत्पुरुष है।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'द्विगौ' अर्थात् **द्विगु** उत्तरपद रहते ही पूर्व पद को अन्तोदात्त होता है—

अतिरात्रः—यहाँ उत्तरपद में द्विगु नहीं है। अतः उक्त स्वर न हुआ।

2. 'क्रतौ' अर्थात् **क्रतुवाची** समास में ही उक्त स्वर होता है—

बिल्वसप्तरात्रः यहाँ 'सप्तरात्रः' यह द्विगु उत्तरपद में है, परन्तु क्रतुवाची समास न होने से पूर्वपद को उक्तस्वर न हुआ।

सभायां नपुँसके 6.2.98

पद.—सभायाम् 7.1, नपुँसके 7.1

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—नपुँसकलिंग समास में सभा शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्त उदात्त होता है।

उदा.—गोपालसभम्। पशुपालसभम्।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'सभायाम्' अर्थात् **सभा शब्द** उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है—

ब्राह्मणसेनम् नपुँसकलिंग समास है, परन्तु उत्तरपद में 'सभा' शब्द नहीं है। अतः पूर्वपद को अन्तोदात्त न हुआ।

2. 'नपुँसकम्' अर्थात् **नपुँसकलिंग समास** में ही पूर्वोक्त स्वर होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसभा उत्तरपद में सभा शब्द है, परन्तु नपुँसकलिंग समास नहीं है। अतः पूर्वपद को अन्तोदात्त न हुआ।

पुरे प्राचाम् 6.2.99

पद.—पुरे 7.1, प्राचाम् 6.3

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—प्राच्य देश के कथन में 'पुर' शब्द उत्तर पद रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—ललाटपुरम्।

विशेष—'प्राचाम्' अर्थात् **प्राच्यदेश के** कथन की दशा में ही सूत्रोक्त स्वर होता है—

शिवपुरम् 'पुर' शब्द उत्तरपद में है। परन्तु प्राच्य देश का कथन नहीं है। अतः उक्त स्वर न हुआ।

अरिष्टगौडपूर्वे च 6.2.100

पद.—अरिष्टगौडपूर्वे 7.1, च-अव्य०।

अनु.—पुरे पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—जिस समास में अरिष्ट तथा गौड शब्द पूर्व में है तथा 'पुर' शब्द उत्तरपद में है, उसके पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—अरिष्टं श्रितः-अरिष्टश्रितः, तस्य पुरम्-अरिष्टश्रितपुरम्।

इसी प्रकार-गौडभृत्यपुरम्।

न हास्तिनफलकमार्देयाः 6.2.101

पद.—न-अव्य०, हास्तिनफलकमार्देयाः 1.3

अनु.—पुरे पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—'पुर' शब्द उत्तरपद रहते हास्तिन, फलक तथा मार्देय-इन पूर्वपदों को अन्तोदात्त नहीं होता है।

उदा.—हास्तिनपुरम् 'पुरे प्राचाम्०' से अन्तोदात्त प्राप्त था।

फलकपुरम्। मार्देयपुरम्।

कुसूलकूपकुम्भशालं बिले 6.2.102

पद.—कुसूलकूपकुम्भशालम् 1.1, बिले 7.1

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—'बिल' उत्तरपद रहते कुसूल, कूप, कुम्भ तथा शाला—इन पूर्वपदों को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—कुसूलबिलम् (= कुठले का मुँह)।
कूपबिलम्। कुम्भबिलम्। शालाबिलम्।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'कुसूलादि' अर्थात् **कुसूल आदि** पूर्वपदों को ही अन्तोदात्त होता है—

सर्पबिलम् उत्तरपद में 'बिल' शब्द है, परन्तु पूर्वपद में कुसूल आदि एक भी शब्द नहीं है। अतः 'सर्प' शब्द को अन्तोदात्त न हुआ।

2. 'बिले' अर्थात् उत्तरपद में **'बिल' शब्द** रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है—

कुसूलस्वामी यहाँ पूर्वपद में सूत्रोक्त 'कुसूल' शब्द है, परन्तु उत्तरपद में 'बिल' शब्द नहीं है। अतः पूर्वपद को अन्तोदात्त न हुआ।

दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु 6.2.103

पद.—दिक्शब्दाः 1.3, ग्राम .... चानराटेषु 7.3

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—ग्रामवाची, जनपदवाची आख्यानवाची तथा चानराट् शब्द-इनके उत्तरपद रहते दिशावाची पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) पूर्वेषुकामशमी। (2) पूर्वपञ्चालाः।
(3) पूर्वयायातम्। (4) पूर्वचानराटम्।

आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि 6.2.104

पद.—आचार्योपसर्जनः 1.1, (सप्तम्यर्थे प्रथमा), च-अव्य०, अन्तेवासिनि 7.1

अनु.—दिक्शब्दाः पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—जहाँ 'आचार्य' का कथन गौण हो, उस शिष्यवाची शब्द के उत्तरपद रहते दिशावाची पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—पाणिनेश्छात्राः पाणिनीयाः, पूर्वे च ते पाणिनीयाश्चपूर्वपाणिनीयाः।

यहाँ आचार्य पाणिनि का कथन गौण है। पाणिनीय शिष्यवाची शब्द उत्तरपद में है। दिशावाची 'पूर्व' शब्द को अन्तोदात्त हुआ।

विशेष—1. 'आचार्योपसर्जनः' अर्थात् **'आचार्य'** का कथिन गौण होने पर ही उक्त स्वर होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वशिष्याः यहाँ उक्त स्वर न हुआ।

2. 'अन्तेवासिनि' अर्थात् **शिष्यवाची शब्द** उत्तरपद में रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है—

पूर्वपाणिनीयं शास्त्रम् यहाँ पूर्वपद को अन्तोदात्त न हुआ।

उत्तरपदवृद्धौ सर्वञ्च 6.2.105

पद.—उत्तरपदवृद्धौ 7.1, सर्वम् 1.1, च-अव्य०।

अनु.—दिक् शब्दाः पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—'उत्तरपदस्य' (पा० 7.3.10) इसके अधिकार में जो विहित वृद्धि, उस वृद्धिमान् शब्द के उत्तरपद रहते सर्व शब्द और दिशावाची पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—सर्वपाञ्चालकः। पूर्वपाञ्चालकः।

बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् 6.2.106

पद.—बहुव्रीहौ 7.1, विश्वम् 1.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा के विषय में बहुव्रीहि समास में 'विश्व' पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—विश्वदेवः।

बहुव्रीहौ प्रकृत्या० से प्रकृतिस्वर की प्राप्ति थी।

उदराश्वेषुषु 6.2.107

पद.—उदराश्वेषुषु 7.3

अनु.—बहुव्रीहौ संज्ञायाम् पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा के विषय में बहुव्रीहि समास में उदर, अश्व तथा इषु शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—वृकोदरः (यह 'भीम' की संज्ञा है)।
दामोदरः (=कृष्ण)।
हर्यश्वः। यौवनाश्वः। सुवर्णपुङ्खेषुः।
महेषुः सभी संज्ञाएँ हैं।

क्षेपे[1] 6.2.108

पद.—क्षेपे 7.1

अनु.—उदराश्वेषुषु बहुव्रीहौ संज्ञायाम् पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा के विषय में बहुव्रीहि समास में निन्दा गम्यमान हो तो उदर, अश्व तथा इषु शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—कुण्डोदरः। कटुकाश्वः। चलाचलेषुः।

सर्वत्र निन्दा अर्थ गम्यमान है। संज्ञा है। बहुव्रीहि समास है।

नदी बन्धुनि 6.2.109

पद.—नदी 1.1, बन्धुनि 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रहि समास में 'बन्धु' शब्द उत्तरपद रहते नदी संज्ञक पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—गार्गीबन्धुः। वात्सीबन्धुः।

विशेष—1. 'नदी' अर्थात् **नदीसंज्ञक** पूर्वपद को ही अन्तोदात्त होता है—

ब्रह्मबन्धुः उत्तरपद में 'बन्धु' शब्द है, परन्तु पूर्वपद में नदीसंज्ञक शब्द नहीं है। अतः 'ब्रह्म' शब्द को अन्तोदात्त न हुआ।

2. 'बन्धुनि' अर्थात् उत्तरपद में **'बन्धु'** शब्द रहते पूर्वपद को अन्तोदात्त होता है—

गार्गीप्रियः पूर्वपद में नदी संज्ञक शब्द (गार्गी) है, परन्तु उत्तरपद में 'बन्धु' शब्द नहीं है। अतः पूर्वपद को अन्तोदात्त न हुआ।

निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् 6.2.110

पद.—निष्ठा 1.1, उपसर्गपूर्वम् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ पूर्वपदम् अन्तः उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उपसर्ग है पूर्व में जिसके, ऐसे निष्ठान्त पूर्वपद को विकल्प से अन्तोदात्त होता है।

उदा.—प्रधौतमुखः धौत निष्ठान्त शब्द है, इसके पूर्व में 'प्र' उपसर्ग है।

यदि 'मुख' को स्वांगवाची मान लिया जाये तो 'निष्ठोपमा०' से अन्तोदात्त होता है—

प्रधौतमुखः (पक्षे)।

यदि अस्वांगवाची मान लिया जाये तो 'गतिरनन्तरः' से प्रकृतिस्वर होता है—

प्रधौतमुखः (पक्षे)।

1. यद्यपि महाभाष्ये 'उदराश्वेषुषु क्षेपे' इति इति पाठः प्राप्यते, परं तत्र योगविभागस्य अनिर्देशत्वात् सूत्रद्वयम् इदम् इति निश्चीयते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. 'निष्ठा' अर्थात् **निष्ठान्त** पूर्वपद को ही अन्तोदात्त होता है—

प्रसेचंकमुखः 'सेचक' पद से पूर्व में उपसर्ग (प्र) है परन्तु 'सेचक' निष्ठान्त पद नहीं है। अतः पूर्वपद को अन्तोदात्त न हुआ।

2. 'उपसर्गपूर्वम्' अर्थात् **उपसर्ग है पूर्व** में जिसके ऐसे निष्ठान्त पद को अन्तोदात्त होता है—

शुष्कमुंखः बहुव्रीहि समास है, पूर्वपद में 'शुष्क' शब्द निष्ठान्त पद है परन्तु इससे पूर्व उपसर्ग नहीं है। अतः सूत्रोक्त स्वर न हुआ।

उत्तरपदादिः 6.2.111

पद.—उत्तरपदादिः 1.1

अनु.—उदात्तः।

अर्थ—यह अधिकार है। आगे जो स्वरविधान किया जायेगा, वह उत्तरपद के आदि को उदात्त होगा।

कर्णो वर्णलक्षणात् 6.2.112

पद.—कर्णः 1.1, वर्णलक्षणात् 5.1

अनु.—बहुव्रीहौ उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में वर्णवाची और लक्षणवाची से उत्तर कर्ण शब्द को आद्युदात्त होता है।

उदा.—शुक्लकर्णः वर्णवाची 'शुक्ल' शब्द से उत्तर कर्ण शब्द को आद्युदात्त हुआ। यहाँ प्रकृति स्वर प्राप्त था।

दात्राकर्णः लक्षणवाची 'दात्रा' शब्द से उत्तर कर्ण शब्द को आद्युदात्त हुआ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'कर्णः' अर्थात् **'कर्ण' शब्द को ही** आद्युदात्त होता है—

श्वेतपादः यहाँ उत्तरपद में 'कर्ण' शब्द नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

2. 'वर्णलक्षणात्' अर्थात् **वर्णवाची** और **लक्षणवाची** शब्द से उत्तरपद को ही आद्युदात्त होता है—

शोभनकर्णः यहाँ उत्तरपद में 'कर्ण' है परन्तु पूर्वपद में न तो वर्णवाची शब्द है और न ही लक्षणवाची है। अतः सूत्रोक्त स्वर न हुआ।

संज्ञौपम्ययोश्च 6.2.113

पद.—संज्ञौपम्ययोः 7.2, च–अव्य०।

अनु.—कर्णः उत्तरपदादिः बहुव्रीहौ उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा तथा उपमा के विषय में बहुव्रीहि समास में उत्तरपद 'कर्ण' को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) मणिकर्णः यह एक संज्ञा है।
(2) गोकर्णा इव कर्णौ यस्य—गोकर्णः यहाँ उपमा है।

कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च 6.2.114

पद.—कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घम् 1.1, च–अव्य०।

अनु.—संज्ञौपम्ययोः उत्तरपदादिः बहुव्रीहौ उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा तथा उपमा के विषय में बहुव्रीहि समास में कण्ठ, पृष्ठ, ग्रीवा तथा जंघा इन उत्तरपदों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) (संज्ञा में) नीलकण्ठः, नाकपृष्ठः, नीलग्रीवः नाडीजङ्घः।

(2) (उपमा में) खरकण्ठः (खरस्य कण्ठ इव कण्ठो यस्य), अजपृष्ठः, अश्वग्रीवः, अश्वजङ्घः।

शृङ्गमवस्थायां च 6.2.115

पद.—शृङ्गम् 1.1, अवस्थायाम् 7.1, च–अव्य०।

अनु.—संज्ञौपम्ययोः बहुव्रीहौ उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ०—संज्ञा व उपमा के विषय में बहुव्रीहि समास में अवस्था गम्यमान हो तो उत्तरपद 'शृंग' शब्द को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) उद्गतशृङ्गः उद्गते शृङ्गे यस्य सः। अवस्था गम्य है।
(2) ऋष्यशृङ्गः यह संज्ञा है।
(3) मेषशृङ्गः।

विशेष—'अवस्थायाम्' अर्थात् **अवस्था गम्यमान** हो तो सूत्रोक्त आद्युदात्त होता है—

स्थूलशृङ्गः।

नञो जरमरमित्रमृताः 6.2.116

पद.—नञः 5.1, जरमरमित्रमृताः 1.3

अनु.—बहुव्रीहौ उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में नञ् से उत्तर जर, मर, मित्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा मृत शब्दों को आद्युदात्त होता है। यह 'नञ्सुभ्याम्' का अपवाद है।

उदा.—अजरः-न विद्यते जरः यस्य।
अमरः। अमित्रः। अमृतः।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'नञः' अर्थात् **नञ् से परे** उत्तरपद को ही आद्युदात्त होता है—

ब्राह्मणमित्रः 'मित्र' शब्द नञ् से उत्तर नहीं है। अतः उक्त स्वर न हुआ।

2. 'जरादयः' अर्थात् उत्तरपद में जो **'जर' आदि शब्द**, उन्हें ही आद्युदात्त होता है—

अशत्रुः नञ् है परन्तु उससे पर 'शत्रु' शब्द है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

सोर्मनसी अलोमोषसी 6.2.117

पद.—सोः 5.1, मनसी 1.2, अलोमोषसी 1.2

अनु.—बहुव्रीहौ उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में 'सु' से उत्तर मन् अन्त वाले तथा अस् अन्त वाले शब्दों को आद्युदात्त होता है परन्तु लोमन् तथा उषस् शब्दों को नहीं होता है।

उदा.—सुकर्मा, सुधर्मा।
सुपयाः, सुयशाः।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'सोः' अर्थात् **'सु' से उत्तर** को ही आद्युदात्त होता है—

कृतकर्मा उत्तरपद में मन् अन्त वाला 'कर्मन्' शब्द है, परन्तु इससे पूर्व 'सु' नहीं है। अतः पूर्वोक्त स्वर न हुआ।

इसी प्रकार-'कृतयशाः' में न हुआ।

2. 'मनसी' अर्थात् 'सु' से उत्तर **मन् अन्त** वाले व **अस् अन्त वाले** शब्दों को ही उक्त स्वर होता है—

सुराजा 'राजन्' शब्द न तो मन् अन्त वाला है और न ही अस् अन्त वाला है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

3. 'अलोमोषसी' अर्थात् 'लोमन्' तथा 'उषस्' शब्दों को उक्त स्वर नहीं होता है—सुलोमा। सूषा।

क्रत्वादयश्च 6.2.118

पद.—क्रत्वादयः 1.3, च-अव्य०।

अनु.—बहुव्रीहौ सोः उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में 'सु' से उत्तर क्रतु आदि उत्तर पद को आद्युदात्त होता है।

उदा.—सुक्रतुः। सुदृशीकः।

आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि 6.2.119

पद.—आद्युदात्तम् 1.1, द्व्यच् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ सोः उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—वेद के विषय में बहुव्रीहि समास में 'सु' से उत्तर दो अच् वाले आद्युदात्त शब्द को आद्युदात्त ही होता है।

उदा.—स्वश्वाः। सुरथाः। अश्व तथा रथ शब्द उणादि नित् प्रत्यय से निष्पन्न हैं। अतः आद्युदात्त हैं।

विशेष—1. 'आद्युदात्तम्' अर्थात् दो अच् वाला जो **आद्युदात्त** उसे ही सूत्रोक्त स्वर होता है—

सुबाहुः 'बाहु' 'कु' प्रत्यय से निष्पन्न है। अतः अन्तोदात्त है। फलतः सूत्रोक्त स्वर न हुआ

2. 'द्व्यच्०' अर्थात् **दो अच् वाले** शब्द को ही उक्त स्वर होता है—

सुहिरण्यः 'हिरण्य' शब्द तीन अचों वाला है। अतः प्रकृत स्वर न हुआ।

वीरवीर्यौ च 6.2.120

पद.—वीरवीर्यौ 1.2, च-अव्य०।

अनु.—छन्दसि बहुव्रीहौ सोः उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—वेद के विषय में बहुव्रीहि समास में 'सु' से उत्तर वीर तथा वीर्य शब्दों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—सुवीरेण। सुवीर्यस्य।

कूलतीरतूलमूलशालाक्षसममव्ययीभावे 6.2.121

पद.—कूलतीर ... लाक्षसमम् 1.1, अव्ययीभावे 7.1

अनु.—उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—अव्ययीभाव समास में उत्तरपद में कूल, तीर, तूल, मूल, शाला, अक्ष तथा सम शब्दों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—उपकूलम्।
उपतीरम्।
उपतूलम्।
उपमूलम्।
उपशालम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाक्षम्।
सुषमम्। द्र०—सु विनिर्दुर्भ्यः—।

विशेष—1. 'कुलादि०' अर्थात् उत्तरपद में जो **कूल आदि** शब्द, उन्हें आद्युदात्त होता है—उपकुम्भम् अव्ययीभाव समास है, परन्तु उत्तरपद में सूत्रोक्त कूल आदि एक भी शब्द नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

2. 'अव्ययीभावे' अर्थात् **अव्ययीभाव** समास में ही 'कूल' आदि शब्दों को आद्युदात्त होता है—

परमकूलम् कर्मधारय समास है। अतः 'कूल' शब्द को आद्युदात्त न हुआ।

कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ 6.2.122

पद.—कंसमन्थ ... काण्डम् 1.1, द्विगौ 7.1

अनु.—उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—द्विगु समास में उत्तरपद में कंस, मन्थ, शूर्प, पाय्य तथा काण्ड शब्दों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—द्विकंसः, त्रिकंसः।
द्विमन्थः, त्रिमन्थः।
द्विशूर्पः।
द्विपाय्यः।
द्विकाण्डः।

विशेष—'द्विगौ' अर्थात् **द्विगुसमास** में सूत्रोक्त 'कंस' आदि शब्द आद्युदात्त होते हैं—

परमकंसः कर्मधारय समास है। अतः 'कंस' शब्द आद्युदात्त न हुआ।

तत्पुरुषे शालायां नपुंसके 6.2.123

पद.—तत्पुरुषे 7.1, शालायाम् 7.1, नपुंसके 7.1

अनु.—उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—नपुंसकलिंग में शाला शब्दान्त तत्पुरुष समास में उत्तरपद को आद्युदात्त होता है।

उदा.—ब्राह्मणानां शाला-ब्राह्मणशालम् यहाँ 'विभाषा सेनासुराच्छाया –' से पाक्षिक नपुंसक लिंगता होती है।

पक्ष में—ब्राह्मणशाला।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'तत्पुरुषे' अर्थात् **तत्पुरुष** में सूत्रोक्त स्वर होता है—

दृढशालम् यहाँ उत्तरपद में 'शाला' शब्द है, नपुंसक-लिंगता भी है परन्तु तत्पुरुष समास नहीं है। अतः 'शाल' शब्द को आद्युदात्त न हुआ।

2. 'शालायाम्' अर्थात् **शाला** शब्द है अन्त में जिसके ऐसे तत्पुरुष समास में उक्त स्वर होता है—ब्राह्मणसेनम्-नपुंसकलिंगता है, तत्पुरुष है, परन्तु उत्तरपद में 'सेना' शब्द है। अतः इसे आद्युदात्त न हुआ।

3. 'नपुंसके' अर्थात् **नपुंसकलिंग** में ही उक्त स्वर होता है—

ब्राह्मणशाला तत्पुरुष समास है, अन्त में 'शाला' शब्द भी है, परन्तु नपुंसकलिंगता नहीं है। अतः उक्त आद्युदात्त स्वर न हुआ।

कन्था च 6.2.124

पद.—कन्था 1.1, च-अव्य०।

अनु.—नपुंसके तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—नपुंसकलिंग में तत्पुरुष समास में 'कन्था' उत्तरपद को आद्युदात्त होता है।

उदा.—चप्पानां कन्था-चप्पकन्थम्। यहाँ 'संज्ञायां कन्थोशीनरे०' से नपुंसकलिंगता हुई है।

आदिश्चिहणादीनाम् 6.2.125

पद.—आदिः 1.1, चिहणादीनाम् 6.3

अनु.—नपुंसके, तत्पुरुषे कन्था उदात्तः।

अर्थ—नपुंसकलिंग में कन्था शब्द अन्त वाले तत्पुरुष समास में चिहणादिगणपठित शब्दों को आद्युदात्त होता है।

यहाँ 'आदिः' पद का ग्रहण 'उत्तरपद' के बाध के लिये है। तब उत्तरपद को आद्युदात्त न होकर पूर्वपद को आद्युदात्त होता है। चिहणकन्थम्।

उदा.—मडरकन्थम्।

चेलखटकटुककाण्डं गर्हायाम् 6.2.126

पद.—चेल ... काण्डम् 1.1, गर्हायाम् 7.1

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—निन्दा गम्यमान हो तो तत्पुरुष समास में उत्तरपद में चेल, खेट, कटुक तथा काण्ड शब्दों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—पुत्रश्चेलम् इव-पुत्रचेलम्।
नगरखेटम्।
दधिकटुकम्।
भूतकाण्डम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—'गर्हायाम्' अर्थात् **निन्दा** गम्यमान हो तो सूत्रोक्त आद्युदात्त होता है—

परमचेलम् यहाँ निन्दा अर्थ गम्य नहीं है। अतः उक्त स्वर न हुआ।

चीरमुपमानम् 6.2.127

पद.—चीरम् 1.1, उपमानम् 1.1

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—तत्पुरुष समास में उत्तरपद में जो उपमानवाची 'चीर' शब्द, उसे आद्युदात्त होता है।

उदा.—वस्त्रं चीरम् इव-वस्त्रचीरम्।

विशेष—'उपमानम्' अर्थात् **उपमानवाची** 'चीर' शब्द को आद्युदात्त होता है—

परमचीरम् यहाँ कर्मधारय समास है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

पललसूपशाकं मिश्रे 6.2.128

पद.—पललसूपशाकम् 1.1, मिश्रे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—मिश्रवाची तत्पुरुष समास में उत्तरपद में जो पलल, सूप व शाक शब्द, उन्हें आद्युदात्त होता है।

उदा.—गुडेन मिश्रं पललम्-गुडपललम्।
घृतेन मिश्रः सूपः-घृतसूपः।
घृतेन मिश्रं शाकम्-घृतशाकम्।

विशेष—'मिश्रे' अर्थात् **मिश्रवाची** तत्पुरुष समास में ही पललादि को आद्युदात्त होता है—

परमपललम् कर्म धारय समास है। अतः उत्कृष्टता कही गई है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम् 6.2.129

पद.—कूल ... कर्षाः 1.3, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा के विषय में तत्पुरुष समास में उत्तरपद में जो कूल, सूद, स्थल तथा कर्ष शब्द, इन्हें आद्युदात्त होता है।

उदा.—दाक्षिकूलम्।
देवसूदम्।
दाण्डायनस्थली।
दाक्षिकर्षः

ये सभी ग्रामविशेष के नाम हैं। अतः संज्ञा हैं। 'जानपदकुण्ड०' के द्वारा ङीष् होकर 'स्थली' बनता है।

विशेष—'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय** में ही कूल आदि को आद्युदात्त होता है—

परमकूलम् यहाँ संज्ञा गम्यमान नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

अकर्मधारये राज्यम् 6.2.130

पद.—अकर्मधारये 7.1, राज्यम् 1.1

अनु.—तत्पुरुषे, उत्तरपदादिः, उदात्तः।

अर्थ—कर्मधारय को छोड़कर शेष तत्पुरुष समास में उत्तरपद राज्य शब्द को आद्युदात्त होता है।

उदा.—ब्राह्मणराज्यम् यहाँ षष्ठीतत्पुरुष है।

विशेष—'अकर्मधारये' अर्थात् **कर्मधारय को छोड़कर** ही प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति होती है—परमराज्यम् यह कर्मधारय समास है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

वर्ग्यादयश्च 6.2.131

पद.—वर्ग्यादयः 1.3, च-अव्य०।

अनु.—अकर्मधारये तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—कर्मधारय को छोड़कर शेष तत्पुरुष में उत्तरपद में जो वर्ग्यादि शब्द, उन्हें आद्युदात्त होता है।

उदा.—वासुदेववर्ग्यः (= वासुदेव के वर्ग का)।

पुत्रः पुम्भ्यः 6.2.132

पद.—पुत्रः 1.1, पुम्भ्यः 5.3

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—तत्पुरुष समास में पुल्लिंगवाची शब्द से उत्तर पुत्र शब्द को आद्युदात्त होता है।

उदा.—कौनटिपुत्रः।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'पुत्रः' अर्थात् उत्तरपद में जो **'पुत्र'** शब्द, उसे आद्युदात्त होता है—

कौनटिमातुलः यहाँ उत्तरपद में 'पुत्र' शब्द नहीं है। अतः आदि को उदात्त न हुआ।

2. 'पुम्भ्यः' अर्थात् **पुल्लिंगवाची** शब्द से ही उत्तर जो 'पुत्र' शब्द, उसे आद्युदात्त होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गार्गीपुत्रः यहाँ उत्तरपद में 'पुत्र' शब्द है, परन्तु 'गार्गी' पुल्लिंगवाची शब्द नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः 6.2.133

पद.—न-अव्य०, आचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः 5.3

अनु.—पुत्रः तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—तत्पुरुष समास में आचार्यवाची, राजन्वाची, ऋत्विग् वाची, संयुक्तवाची तथा ज्ञातिवाची शब्दों से उत्तर पुत्र शब्द को आद्युदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) (आचार्य वाचि.)–आचार्यपुत्रः, उपाध्यायपुत्रः।
(2) (राजवाचि०)–राजपुत्रः, ईश्वरपुत्रः।
(3) (ऋत्विग् वाचि०)–ऋत्विक्पुत्रः, याजकपुत्रः।
(4) (संयुक्तवाचि०)–सम्बन्धिपुत्रः, श्यालपुत्रः।
(5) (ज्ञातिवाचि०)–ज्ञातिपुत्रः, भ्रातुष्पुत्रः।

चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः 6.2.134

पद.—चूर्णादीनि 1.3, अप्राणिषष्ठ्याः 5.1

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—तत्पुरुष समास में प्राणिभिन्न षष्ठ्यन्त शब्द से उत्तर चूर्णादि उत्तरपद को आद्युदात्त होता है।

उदा.—मुद्गचूर्णम्।
मसूरचूर्णम्।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अप्राणिषष्ठ्याः' अर्थात् **प्राणिभिन्न षष्ठ्यन्त** शब्द से उत्तर शब्द को आद्युदात्त होता है—

मत्स्यचूर्णम् मत्स्य 'प्राणिवाची है। अतः इससे उत्तर 'चूर्ण' शब्द को आद्युदात्त न हुआ।

2. 'षष्ठ्याः' अर्थात् **षष्ठ्यन्त** से उत्तर को आद्युदात्त होता है—

परमचूर्णम् यहाँ तत्पुरुष समास है, उत्तरपद में 'चूर्ण' शब्द है परन्तु यह षष्ठ्यन्त से उत्तर नहीं है। अतः 'चूर्ण' शब्द को आद्युदात्त न हुआ।

षट् च काण्डादीनि 6.2.135

पद.—षट् 1.3, च–अव्य०, काण्डादीनि 1.3

अनु.—अप्राणिषष्ठ्याः तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—तत्पुरुष समास में प्राणिभिन्न षष्ठ्यन्त शब्द से उत्तर जो काण्ड आदि छह शब्द, उन्हें आद्युदात्त होता है।

प्रकृतसूत्र के द्वारा 'चेलखेट०' पा० 6.2.126 सूत्र पठित 'काण्ड' शब्द से लेकर 'कूलसूद०' (पा० 6.2.129) में पठित 'कूल' शब्द पर्यन्त 'काण्ड' आदि छह शब्दों का ग्रहण होता है।

उदा.—दर्भकाण्डम्।
दर्भचीरम्।
तिलपललम्।
मुद्गसूपः।
मूलकशाकम्।
नदीकूलम्।

विशेष—'**षड्**' अर्थात् 'काण्ड' आदि छह शब्दों को ही आद्युदात्त होता है—

राजसूदः 'सूद' शब्द पूर्वोक्त छह शब्दों में परिगणित नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

कुण्डं वनम् 6.2.136

पद.—कुण्डम् 1.1, वनम् 1.1

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदादिः उदात्तः।

अर्थ—तत्पुरुष समास में वनवाची कुण्ड शब्द उत्तरपद को आद्युदात्त होता है—

दर्भकुण्डम्। शरकुण्डम्।

विशेष—'वनम्' अर्थात् **वनवाची** कुण्ड शब्द को आद्युदात्त होता है—

मृत्कुण्डम्।

प्रकृत्या भगालम् 6.2.137

पद.—प्रकृत्या 3.1, भगालम् 1.1

अनु.—तत्पुरुषे उत्तरपदम्।

अर्थ—तत्पुरुष समास में भगालवाची उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है।

उदा.—कुम्भीभगालम्।
कुम्भीकपालम्।

लघावन्ते द्वयोश्च० (फिट्. 42) के द्वारा भगाल व कपाल शब्द मध्योदात्त हैं।

शितेर्नित्याबह्वज् बहुव्रीहावभसत् 6.2.138

पद.—शितेः 5.1, नित्याबह्वज् 1.1, बहुव्रीहौ 7.1, अभसत् 1.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—प्रकृत्या उत्तरपदम् ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में शिति शब्द से उत्तर नित्य ही जो अबह्वच् उत्तरपद, उसे प्रकृति स्वर होता है, परन्तु 'भसत्' शब्द को नहीं होता है ।

उदा.—शितिपादः । शित्योष्ठः ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'शितेः' अर्थात् **शिति** शब्द से उत्तर शब्द को ही प्रकृतिस्वर होता है—

दुर्शनीयपादः यहाँ 'शिति' शब्द नहीं है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

2. 'नित्य०' पद का ग्रहण करने का फल है कि 'शितिककुत्' में प्रकृतिस्वर न हो । ककुत् शब्द नित्य अबह्वच् नहीं है ।

3. 'अबह्वच्' अर्थात् **अनेक अच् वाले** को प्रकृतिस्वर नहीं होता है—

शितिललाटः–ललाट शब्द अनेकाच् है । अतः प्रकृतिस्वर न हुआ ।

गतिकारकोपपदात् कृत् 6.2.139

पद.—गतिकारकोपपदात् 5.1, कृत् 1.1

अनु.—प्रकृत्या तत्पुरुषे उत्तरपदम् ।

अर्थ—तत्पुरुष समास में गति, कारक तथा उपपद से उत्तर जो कृदन्त शब्द, उस उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—(1) (गति०)–प्रकारकः । कुगतिप्रादयः । गतिश्च । लिति ।

(2) (कारक०)–पलाशशातनः षष्ठी तत्पु० । शदेरगतौ तः । लिति ।

(3) (उपपद.)–ईषत्करः । ईषद्दुःसुषु० । लिति ।

उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् 6.2.140

पद.—उभे 1.2, वनस्पत्यादिषु 7.3, युगपत् 1.1

अनु.—प्रकृत्या ।

अर्थ—वनस्पत्यादि शब्दों में पूर्व तथा उत्तर दोनों पदों को एक साथ प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—वनस्पतिः ।
बृहस्पतिः ।

देवताद्वन्द्वे च 6.2.141

पद.—देवताद्वन्द्वे 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—उभे युगपत् प्रकृत्या ।

अर्थ—देवतावाची शब्दों का जो द्वन्द्व समास उसमें पूर्वपद व उत्तरपद को एक साथ प्रकृतिस्वर होता है ।

उदा.—इन्द्रासोमौ ।
इन्द्रावरुणौ ।

(1) **'देवता** पद का ग्रहण करने का प्रयोजन है कि 'प्लक्षन्यग्रोधौ' में प्रकृति स्वर नहीं होता है । कारण कि यह देवतावाची नहीं है ।

(2) **'द्वन्द्व'** पद का प्रयोजन है कि 'अग्निष्टोमः' में प्रकृतिस्वर नहीं होता है । यहाँ देवतावाची शब्द तो है परन्तु द्वन्द्व नहीं है ।

नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु 6.2.142

पद.—न अव्य०, उत्तरपदे 7.1, अनुदात्तादौ 7.1, अपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु 7.3

अनु.—देवताद्वन्द्वे उभे युगपत् प्रकृत्या ।

अर्थ—अनुदात्तादि शब्द उत्तरपद होने पर पृथिवी, रुद्र, पूषा और मन्थी से अतिरिक्त देवतावाची द्वन्द्वसमास में पूर्वपद और उत्तरपद को एक साथ प्रकृतिस्वर नहीं होता है ।

उदा.—इन्द्राग्नी ।
इन्द्रावायू ।

'वायु' शब्द में उण् प्रत्यय (उणा०1.1) है । प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है । इसी प्रकार 'अग्नि' शब्द को जानना चाहिए ।

विशेष—'अपृथिव्यादिषु' अर्थात् **पृथिवी आदि को छोड़कर** ही प्रकृतसूत्र प्रवृत्त होता है—द्यावापृथिव्यौ यहाँ दोनों पदों को प्रकृतिस्वर हुआ ।

अन्तः 6.2.143

पद.—अन्तः 1.1

अनु.—उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है । इसका अधिकार पाद की समाप्ति पर्यन्त जाता है । समास के उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.2.144

पद.—थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.3

अनु.—अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—गति, कारक व उपपद से उत्तर थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र तथा क–इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) (थ प्रत्य०)–सुनीथः उणा० 2.2 से क्थन् प्रत्यय हुआ ।

अवभृथः उणा० 2.3 से क्थन् हुआ । इन्हें गतिकारकोप० से आद्युदात्त प्राप्त था ।

(2) (अथ प्रत्य०)–आवसथः, उपवसथः उणा० 3.116 से अथ प्रत्यय हुआ । पूर्ववत् आद्युदात्त प्राप्त था ।

(3) (घञ् प्रत्य०)–प्रभेदः–पूर्ववत् ।

(4) (क्त प्रत्य०)–दूरादागतः–'गतिरनन्तरः' पूर्ववत् ।

(5) (अच् प्रत्य०)–प्रजयः–पूर्ववत् ।

(6) (अप् प्रत्य०)–प्रलवः–पूर्ववत् । ऋदोरप् ।

(7) (इत्र प्रत्य०)–प्रलवित्रम्–अर्तिलूधू० से इत्र हुआ । पूर्ववत् आद्युदात्त प्राप्त था ।

(8) (कप्रत्य०)–गोवृषः–'मूलविभुजा०' (पा० 3.2.5 वा०) से कप्रत्यय हुआ ।

सूपमानात् क्तः 6.2.145

पद.—सूपमानात् 5.1, क्तः 1.1

अनु.—अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—सु तथा उपमानवाची शब्द से उत्तर क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—सुकृतम् । वृकावलुप्तम् (वृकैरिवावप्लुतम्) ।

संज्ञायामनाचितादीनाम् 6.2.146

पद.—संज्ञायाम् 7.1, अनाचितादीनाम् 6.3

अनु.—क्तः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में गति, कारक व उपपद से उत्तर क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है, आचित आदि शब्दों को नहीं होता है ।

उदा.—(1) सम्भूतो रामायणः कर्म में क्त हुआ । 'गतिरनन्तरः' का बाध हुआ ।

(2) धनुभिः खाता–धनुष्खाता नदी यहाँ 'कर्तृकरणे कृता०' से समास हुआ । जनसनखन० से आत्व । 'तृतीया कर्मणि' को बाधकर अन्तोदात्त हुआ ।

(3) हस्तिमृदिता भूमिः–पूर्ववत् ।

विशेष—1. 'अनाचितादीनाम्' अर्थात् **आचितादि को छोड़कर** उक्त निषेध होता है—

पर्याचितम् । परिगृहीतम् ।

यहाँ निषेध न हुआ ।

2. संहिता शब्द जब 'गो' से भिन्न अर्थ की संज्ञा होती है, तब अन्तोदात्त नहीं होता है ।[1]

प्रवृद्धादीनां च 6.2.147

पद.—प्रवृद्धा दीनाम् 6.3, च–अव्य० ।

अनु.—क्तः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—प्रवृद्ध आदि शब्दों के क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—प्रवृद्धम् । प्रयुक्ताः ।

कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि 6.2.148

पद.—कारकात् 5.1, दत्तश्रुतयोः 6.2, एव-अव्य०, आशिषि 7.1

अनु.—संज्ञायाम् क्तः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—आशीर्वाद गम्यमान हो तो संज्ञा के विषय में कारक से उत्तर दत्त व श्रुत क्तप्रत्ययान्त शब्दों को ही अन्त उदात्त होता है ।

उदा.—देवा एनं देयासुर्देवदत्तः ।
विष्णुरेनं श्रूयाद् विष्णुश्रुतः ।

विशेष—1. 'कारकात्' अर्थात् **कारक से उत्तर** को ही अन्तोदात्त होता है—

सम्भूतो रामायणः यहाँ न हुआ ।

2. 'दत्तश्रुतयोः' अर्थात् **'दत्त'** व **'श्रुत'** शब्दों को ही अन्तोदात्त होता है—

देवपालितः यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

3. 'आशिषि' अर्थात् **'आशीर्वाद'** गम्यमान हो तो उक्त स्वर होता है—

देवैः खाता–देवखाता यहाँ न हुआ ।

इत्थम्भूतेन कृतमिति च 6.2.149

पद.—इत्थम्भूतेन 3.1, कृतम् 1.1, इति-अव्य०, च–अव्य० ।

---

1. काशि० 6.2.146 संहिताऽगवि (ग०सू० 171) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—कारकात् क्तः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—इस प्रकार को प्राप्त हुए के द्वारा किया हुआ—इस अर्थ में तत्पुरुष समास में कारक से उत्तर क्तप्रत्ययान्त शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—सुप्तेन प्रलपितम्–सुप्तप्रलपितम् ।

अनो भावकर्मवचनः 6.2.150

पद.—अनः 1.1, भावकर्मवचनः 1.1

अनु.—कारकात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—कारक से उत्तर भाव तथा कर्मवाची अन प्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है—

उदा.—ओदन भोजनम् भुज् धातु से अन (यु) प्रत्यय होकर 'भोजन' शब्द बनता है ।

विशेष—1. 'अनः' अर्थात् **अन प्रत्ययान्त** को ही अन्तोदात्त होता है—

हस्तहार्यम् 'हस्त' से उत्तर 'हार्य' शब्द है जो अन-प्रत्ययान्त नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

2. 'भावकर्मवचनः' अर्थात् **भाववाची व कर्मवाची** उत्तरपद को ही अन्तोदात्त होता है—

दन्तधावनम् 'दन्त' कारक से उत्तर 'धावन' अनप्रत्ययान्त शब्द है । 'धावन' में करण में ल्युट् हुआ है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादि-क्रीताः 6.2.151

पद.—मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादिक्रीताः 1.3

अनु.—कारकात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—कारक से उत्तर जो मन् प्रत्ययान्त, क्तिन् प्रत्ययान्त व्याख्यान, शयन, आसन, स्थान तथा याजकादि गणपठित शब्द और क्रीतशब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—1. रथस्य वर्त्म–रथवर्त्म ।
2. पाणिनेः कृतिः–पाणिनिकृतिः ।
3. छन्दसो व्याख्यानम्–छन्दोव्याख्यानम् ।
4. राज्ञः शयनम्–राजशयनम् ।
5. राज्ञ आसनम्–राजासनम् ।
6. गवां स्थानम्–गोस्थानम् ।
7. ब्राह्मणस्य याजकः–ब्राह्मणयाजकः ।
8. गवा क्रीतः–गोक्रीतः ।

सप्तम्याः पुण्यम् 6.3.152

पद.—सप्तम्याः 5.1, पुण्यम् 1.1

अनु.—अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—सप्तम्यन्त से उत्तर पुण्य शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—अध्ययने पुण्यम्–अध्ययनपुण्यम् ।

विशेष—'सप्तम्याः' अर्थात् **सप्तम्यन्त से उत्तर** को ही अन्तोदात्त होता है—

वेदेन पुण्यम्–वेदपुण्यम् यहाँ तृतीयान्त से उत्तर 'पुण्य' शब्द है । अन्तोदात्त न हुआ ।

ऊनार्थकलहं तृतीयायाः 6.2.153

पद.—ऊनार्थकलहम् 1.1, तृतीयायाः 5.1

अनु.—अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—तृतीयान्त से उत्तर ऊनार्थवाची तथा कलह शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—माषेन ऊनम्–माषोनम् ।
माषेन विकलम्–माषविकलम् ।
वाचा कलहः–वाक्कलहः ।

मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ 6.2.154

पद.—मिश्रम् 1.1, च–अव्य०, अनुपसर्गम् 1.1, असन्धौ 7.1

अनु.—तृतीयायाः, अन्तः, उत्तरपदस्य, उदात्तः ।

अर्थ—असन्धि गम्यमान हो तो तृतीयान्त से पर उपसर्ग रहित जो 'मिश्र' शब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—गुडैः मिश्राः–गुडमिश्राः ।

विशेष—1. 'मिश्रम्' अर्थात् **'मिश्र'** शब्द को ही अन्तोदात्त होता है—

गुडधानाः यहाँ 'मिश्र' शब्द उत्तरपद नहीं है ।

2. 'अनुपसर्गम्' अर्थात् **उपसर्गरहित** मिश्र शब्द को ही अन्तोदात्त होता है—

गुडैः सम्मिश्राः गुडसम्मिश्राः यहाँ तृतीयान्त से उत्तर 'मिश्र' शब्द है परन्तु वह उपसर्ग युक्त है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

3. 'असन्धौ' अर्थात् **सन्धि गम्यमान न हो** तो अन्तोदात्त होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणमिश्रो राजा—यहाँ सन्धि गम्यमान है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

नञो गुणप्रतिषेधे संपाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः 6.2.155

पद.—नञः 5.1, गुणप्रतिषेधे 7.1, संपाद्यर्हहितालमर्थाः 1.3, तद्धिताः 1.3

अनु.—अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—तत्पुरुष समास में गुण के निषेध अर्थ में वर्त्तमान नञ् शब्द से उत्तर सम्पादि, अर्ह, हित और अलम् अर्थक तद्धितप्रत्ययान्त जो उत्तरपद उसे अन्तोदात्त होता है ।

यह सूत्र 'तत्पुरुषे तुल्यार्थ०' का अपवाद है ।

उदा.—(1) कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि मुखम्–कार्णवेष्टकिकम्, न कार्णवेष्टकिकम्–अकार्णवेष्टकिकम् ।

(2) छेदमर्हति छैदिकः, न छैदिकः–अच्छैदिकः ।

(3) वत्सेभ्यो हितः–वत्सीयः, न वत्सीयः–अवत्सीयः ।

(4) सन्तापाय प्रभवति–सान्तापिक;, न सान्तापिकः–असान्तापिकः ।

सूत्र की शर्त के अनुसार—

(1) 'नञः' अर्थात् **नञ् शब्द से उत्तर को** ही अन्तोदात्त होता है—गर्दभरथम् अर्हति–गार्दभरथिकः ।

विगार्दभरथिकः यहाँ नञ् नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

(2) 'गुणविप्रतिषेधे' अर्थात् **गुण के निषेध अर्थ** में ही अन्तोदात्त होता है—

गार्दभरथिकाद् अन्यः–अगार्दभरथिकः । यहाँ नञ् है परन्तु गुण का प्रतिषेध नहीं है ।

(3) 'सम्पाद्य०' अर्थात् **सम्पादि आदि** को ही अन्तोदात्त होता है—

अपाणिनीयः यहाँ नञ् है, गुण का प्रतिषेध है परन्तु सम्पादि आदि न होने से अन्तोदात्त न हुआ ।

ययतोश्चातदर्थे 6.2.156

पद.—ययतोः 6.2, च–अव्य०, अतदर्थे 7.1

अनु.—नञः गुणप्रतिषेधे तद्धिताः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—गुण प्रतिषेध अर्थ में जो नञ्, उससे उत्तर अतदर्थ में य तथा यत् तद्धितप्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) पाशानां समूहः पाश्या, न पाश्या-अपाश्या । 'य' तद्धित प्रत्यय हुआ है ।

(2) दन्तेषु भवम्–दन्त्यम्, न दन्त्यम्–अदन्त्यम् । यत् प्रत्यय हुआ है ।

विशेष—'अतदर्थे' का प्रयोजन है कि अपाद्यम् यहाँ अन्तोदात्त नहीं होता है । द्र०—पादार्थम् उदकम्–पाद्यम् । न पाद्यम्–अपाद्यम् ।

अच्कावशक्तौ 6.2.157

पद.—अच्कौ 1.2, अशक्तौ 7.1

अनु.—नञः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अशक्ति गम्यमान हो तो नञ् से उत्तर जो अच् प्रत्ययान्त व कप्रत्ययान्त उत्तरपद उसे अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) अपचः नञ् से उत्तर अच् प्रत्ययान्त 'पच' शब्द है । अतः अन्तोदात्त हुआ ।

(2) अविलिखः कप्रत्यय हुआ है ।

विशेष—'अशक्तौ' अर्थात् शक्ति गम्यमान हो तो अन्तोदात्त नहीं होता है—

अपचः दीक्षितः यहाँ अन्तोदात्त नहीं हुआ ।

आक्रोशे च 6.2.158

पद.—आक्रोशे 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अच्कौ नञः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—आक्रोश गम्यमान हो तो नञ् से उत्तर अच् प्रत्ययान्त व कप्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) अपचः (जाल्मः) ।

(2) अविलिखः ।

संज्ञायाम् 6.2.159

पद.—संज्ञायाम् 7.1

अनु.—आक्रोशे नञः अन्तः उत्तरपदस्य उदान्तः ।

अर्थ—आक्रोश गम्यमान हो तो संज्ञा के विषय में नञ् से उत्तर शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—अदेवदत्तः इसका अर्थ है कि 'देवदत्त' नाम होते हुए भी जो तदनुकूल कार्य न करें ।

कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च 6.2.160

पद.—कृत्योकेष्णुच्चार्वादयः 1.3, च–अव्य० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—नञः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—नञ् से उत्तर कृत्यसंज्ञक, उक प्रत्ययान्त, इष्णुच् प्रत्ययान्त और चार्वादिगण पठित शब्द जो उत्तरपद, उसे अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) अकर्त्तव्यम् यहाँ 'तव्य' कृत्य प्रत्यय हुआ है ।

(2) अनागामुकम् यहाँ 'लषपतपद.' से उकञ् हुआ है ।

(3) अनिराकरिष्णुः 'अलंकृञ्०' से इष्णुच् हुआ है ।

अनाढ्यम्भविष्णुः 'कर्त्तरि भुवः–' से खिष्णुच् हुआ है । इष्णुच् के द्वारा खिष्णुच् का भी ग्रहण होता है ।

(4) अचारुः ।

विशेष—1. संज्ञा में वर्त्तमान, वर्द्धमान, त्वरमाण, म्रियमाण, क्रियमाण, रोचमान तथा शोभमान शब्द अन्तोदात्त होते हैं । द्र०—ग०सू० 172 ।

2. विकार और सदृश शब्द व्यस्त और समस्त दोनों दशाओं में अन्तोदात्त होते हैं । यथा—अविकारः । असदृशः । अविकारसदृशः । द्र०—ग०सू० 173 ।

3. वेद में राजन् व अहन् शब्द अन्तोदात्त होते हैं—

अराजा । अनहः ।

द्र०—ग० सू० 174 ।

विभाषा तृन्नञ्तीक्ष्णशुचिषु 6.2.161

पद.—विभाषा 1.1, तृन्नञ्तीक्ष्णशुचिषु 7.3

अनु.—नञः अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—नञ् से उत्तर तृन् प्रत्ययान्त, अन्नशब्द, तीक्ष्ण शब्द तथा शुचि शब्द–इन्हें विकल्प से अन्तोदात्त होता है ।

पक्ष में—'तत्पुरुषे तुल्यार्थ०' से प्रकृतिस्वर होता है ।

द्र०—निपाता आद्युदात्ताः (फिट्. 80) ।

उदा.—अकर्त्ता । तच्छील अर्थ में तृन् ।

अनन्नम् ।

अतीक्ष्णम् ।

अशुचिः ।

बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने 6.2.162

पद.—बहुव्रीहौ 7.1, इदमेतत्तद्भ्यः 5.3, प्रथमपूरणयोः 6.2, क्रियागणने 7.1

अनु.—अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में इदम्, एतद् व तद् शब्दों से उत्तर क्रिया के गणन में वर्त्तमान जो प्रथम तथा पूरण प्रत्ययान्त शब्द, उन्हें अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) इदं प्रथमं गमनं (भोजनं वा) यस्य सः

इदम्प्रथमः ।

इदन्द्वितीयः ।

(2) एतत्प्रथमः ।

एतद्द्वितीयः ।

(3) तत् प्रथमः ।

तद् द्वितीयः ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'बहुव्रीहौ' अर्थात् **बहुव्रीहि समास में ही** उक्त अन्तोदात्त होता है—

अनेन प्रथमः–इदम्प्रथमः ।

यहाँ बहुव्रीहि समास नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

2. 'इदम्०' अर्थात् **इदम्, एतद् तथा तद्** शब्दों को ही अन्तोदात्त होता है—

यत्प्रथमः यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

3. 'प्रथम०' अर्थात् **प्रथम व पूरणप्रत्ययान्त** शब्दों को ही अन्तोदात्त होता है—

तानि बहूनि यस्य–तद्बहुः यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

4. 'गणने' अर्थात् **'गणन'** में वर्त्तमान जो शब्द, उसे अन्तोदात्त होता है—

अयं प्रथम एषाम् ते–इदम्प्रथमाः । यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

संख्यायाः स्तनः 6.2.163

पद.—संख्यायाः 6.1, स्तनः 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में संख्या शब्द से उत्तर स्तन शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—द्विस्तना ।

त्रिस्तना ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'संख्यायाः' अर्थात् **संख्या शब्द से उत्तर** जो शब्द उसे अन्तोदात्त होता है—

दर्शनीयस्तना यहाँ संख्याशब्द नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. 'स्तनः' अर्थात् **स्तन शब्द** को ही अन्तोदात्त होता है—द्विशिराः संख्या (द्वि) शब्द से उत्तर स्तन शब्द नहीं है। अतः अन्तोदात्त न हुआ।

विभाषा छन्दसि 6.2.164

पद.—विभाषा 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—संख्यायाः स्तनः बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः

अर्थ—वेद के विषय में बहुव्रीहि समास में संख्या शब्द से उत्तर स्तन शब्द को विकल्प से अन्तोदात्त होता है।

उदा.—चतुःस्तना।

पक्ष में प्रकृतिस्वर (आद्युदात्त) होकर–चतुःस्तना।

संज्ञायां मित्राजिनयोः 6.2.165

पद.—संज्ञायाम् 7.1, मित्राजिनयोः 6.2

अनु.—बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ—संज्ञा के विषय में बहुव्रीहि समास में उत्तरपद में जो मित्र तथा अजिन शब्द, उन्हें अन्तोदात्त होता है।

उदा.—देवमित्रः।
वृकाजिनः।

विशेष—'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय में** ही उक्त स्वर होता है—प्रियमित्रः। यहाँ न हुआ।

व्यवायिनोऽन्तरम् 6.2.166

पद.—व्यवायिनः 5.1, अन्तरम् 1.1

अनु.—बहुव्रीहि समास में व्यवधायकवाची शब्द से उत्तर अन्तर शब्द को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—वस्त्रमन्तरं व्यवधायकं यस्य सः–वस्त्रान्तरः।

विशेष—'व्यवायिनः' अर्थात् **व्यवधायकवाची** शब्द से उत्तर 'अन्तर' शब्द को अन्तोदात्त होता है—

आत्मान्तरः यहाँ अन्तोदात्त न हुआ।

मुखं स्वाङ्गम् 6.2.167

पद.—मुखम् 1.1, स्वाङ्गम् 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में स्वांगवाची जो मुख शब्द ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—गौरमुखः।
भद्रमुखः।

विशेष—'स्वाङ्गम्' अर्थात् **स्वांगवाची** 'मुख' शब्द को ही अन्तोदात्त होता है—

दीर्घमुखा शाला—बहुव्रीहि समास है, उत्तरपद में 'मुख' शब्द है, परन्तु स्वांगवाची न होने से अन्तोदात्त न हुआ।

नाव्ययदिक्छब्दगोमहत्स्थूलमुष्टि-पृथुवत्सेभ्यः 6.2.168

पद.—न अव्य०, अव्ययदिक्छब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः 5.3

अनु.—मुखं स्वाङ्गम् बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में अव्यय, दिशावाची शब्द, गो, महत्, स्थूल, मुष्टि, पृथु, तथा वत्स—इनसे उत्तर जो स्वांगवाची मुख शब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) उच्चैर्मुखं यस्य सः उच्चैर्मुखः। प्रकृतिस्वर हुआ। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्।

(2) प्राङ् मुखं यस्य सः–प्राङ्मुखः अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये।

(3) गौरिव मुखं यस्य सः गोमुखः। महद् मुखं यस्य सः–महामुखः।

(4) इसी प्रकार स्थूलमुखः। मुष्टिमुखः। पृथुमुखः। वत्समुखः।

निष्ठोपमानादन्यतरस्याम् 6.2.169

पद.—निष्ठोपमानात् 5.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—मुखं स्वाङ्गम् बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त व उपमानवाची शब्द से उत्तर स्वांगवाची जो मुखशब्द, ऐसे उत्तरपद को विकल्प से अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) प्रक्षालितमुखः–प्रक्षालितं मुखं येन सः। प्रक्षालित निष्ठान्त पद है। पक्ष में पा० 6.2.1 से प्रकृतिस्वर हुआ—प्रक्षालितमुखः।

(2) सिंहमुखः–सिंहस्य मुखम् इव मुखं यस्य। उपमानवाची पद से उत्तर स्वांगवाची 'मुख' शब्द है। अन्तोदात्त हुआ।

पक्ष में प्रकृतिस्वर हुआ—सिंहमुखः।

जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽकृतमितप्रतिपन्नाः 6.2.170

पद.—जातिकालसुखादिभ्यः 5.3, अनाच्छादनात् 5.1, क्तः 1.1, अकृतमितप्रतिपन्नाः 1.3

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में आच्छादनवाची शब्द को छोड़कर जो जातिवाची, कालवाची तथा सुखादिशब्द, उनसे उत्तर क्तप्रत्ययान्त शब्द को अन्तोदात्त होता है परन्तु कृत, मित तथा प्रतिपन्न शब्दों को नही होता है ।

उदा.—(1) सारंगः जग्धो येन सः सारंगजग्धः । अनेकमन्यपदार्थे से समास । 'सारंग' जातिवाची शब्द है । 'जग्ध' क्तप्रत्ययान्त शब्द है । अतः अन्तोदात्त हुआ ।

(2) मासः जातो यस्य सः मासजातः । 'मास' शब्द कालवाची है ।

(3) सुखं जातं यस्य सः सुखजातः ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'जात्यादिभ्यः' अर्थात् **जातिवाची आदि** शब्दों से उत्तर क्तप्रत्ययान्त शब्द को अन्तोदात्त होता है—

पुत्रजातः–बहुव्रीहि समास है, उत्तरपद में क्तप्रत्ययान्त शब्द (जात) है, परन्तु 'पुत्र' जातिवाची शब्द नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

2. 'अनाच्छादनात्' अर्थात् **आच्छादनवाची को छोड़कर** ही प्रकृतसूत्र प्रवृत्त होता है—

वस्त्रच्छन्नः 'वस्त्र' आच्छादनवाची है । अतः इससे उत्तर क्तप्रत्ययान्त 'छन्न' शब्द रहते भी अन्तोदात्त न हुआ ।

3. 'अकृतमितप्रतिपन्नाः' अर्थात् **कृत, मित तथा प्रतिपन्न शब्दों को छोड़कर** ही अन्तोदात्त होता है—

कुण्डकृतः । कुण्डमितः । कुण्डप्रतिपन्नः ।

यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

वा जाते 6.2.171

पद.—वा अव्य०, जाते 7.1

अनु.—जातिकालसुखादिभ्यः बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में जातिवाची, कालवाची तथा सुखादि शब्दों से उत्तर 'जात' शब्द को विकल्प से अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—दन्तजातः, दन्तजातः ।
मासजातः, मासजातः ।
सुखजातः, सुखजातः ।

नञ्सुभ्याम् 6.2.172

पद.—नञ्सुभ्याम् 5.2

अनु.—बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में 'नञ्' तथा 'सु' से उत्तर शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—न विद्यन्ते यवा यस्मिन् सः अयवः । सुयवः ।

कपि पूर्वम् 6.2.173

पद.—कपि 7.1, पूर्वम् 1.1

अनु.—नञ्सुभ्याम् बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में नञ् और सु शब्दों से पर जो उत्तर पद, उसे कप् प्रत्यय से पूर्व अन्तोदात्त होता है ।

'नद्यृतश्च' से कप् होता है ।

उदा.—अकुमारीको देश ।
सुकुमारीकः ।

ह्रस्वान्तेऽन्त्यात् पूर्वम् 6.2.174

पद.—ह्रस्वान्ते 7.1, अन्त्यात् 5.1, पूर्वम् 1.1 ।

अनु.—कपि नञ्सुभ्याम् बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में नञ् तथा सु शब्दों से उत्तर ह्रस्वान्त उत्तरपद के अन्त्य स्वर से पूर्व को उदात्त होता है, कप् परे रहते ।

उदा.—अयवको देशः ।
सुयवकः ।

बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि 6.2.175

पद.—बहोः 5.1, नञ्वत्-अव्य०, उत्तरपदभूम्नि 7.1

अनु.—बहुव्रीहौ अन्तः; उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उत्तरपद के बहुत्व अर्थ में विद्यमान 'बहु' शब्द से उत्तर शब्द को नञ् के समान स्वर होता है ।

उदा.—बहुयवो देशः । 'नञ्सुभ्याम्' से अन्तोदात्त होता है । यहाँ भी हो गया ।

बहुकुमारीकः । 'कपि पूर्वम्' से पूर्व को अन्तोदात्त है ।

विशेष—'उत्तरपदभूम्नि' का प्रयोजन है कि निम्नलिखित में नञ्वत् स्वर न हो—

बहुषु मनोऽस्य–बहुमनाः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न गुणादयोऽवयवाः 6.2.176

पद.—न-अव्य०, गुणादयः 1.3, अवयवाः 1.3

अनु.—बहोः बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में 'बहु' से उत्तर अवयववाची गुणादिगणपठित शब्दों को अन्तोदात्त नहीं होता है ।

उदा.—बहुगुणा रज्जुः । बहुसूक्तः ।

द्र०–बहुव्रीहौ प्रकृत्या०। लंघिबंह्योर्नलोपश्च (उणा०1.29)।

विशेष—'अवयवाः' अर्थात् **अवयववाची** गुणादि शब्दों से ही उक्त निषेध होता है—

बहुगुणो ब्राह्मणः ।

उपसर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु 6.2.177

पद.—उपसर्गात् 5.1, स्वाङ्गं 1.1, ध्रुवम् 1.1, अपर्शु 1.1

अनु.—बहुव्रीहौ अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में उपसर्ग से उत्तर पर्शु शब्द को छोड़कर ध्रुव स्वांगवाची शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—सततं यस्य प्रगतं पृष्ठं भवति सः प्रपृष्ठः

इसी प्रकार–प्रललाटः ।

विशेष–(1) 'उपसर्गात्' अर्थात् **उपसर्ग से उत्तर** को ही अन्तोदात्त होता है—

दुर्शनीयललाटः यहाँ उपसर्ग नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

(2) 'स्वांगम्' अर्थात् **स्वांगवाची** को ही अन्तोदात्त होता है—

प्रशाखो वृक्षः 'प्र' उपसर्ग है परन्तु उससे उत्तर स्वांगवाची शब्द नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

(3) 'अपर्शु' अर्थात् **'पर्शु' शब्द को छोड़कर** प्रकृतसूत्र प्रवृत्त होता है—

विपर्शुः यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

वनं समासे 6.2.178

पद.—वनम् 1.1, समासे 7.1

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—समास मात्र में उपसर्ग से उत्तर जो 'वन' शब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है—

प्रकृष्टं वनम्–प्रवणम् ।

अन्तः 6.2.179

पद.—अन्तः-अव्य० ।

अनु.—वनम् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अन्तर् शब्द से उत्तर 'वन' शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

अन्तर् वनं यस्मिन् अन्तर्वणो देशः ।

अन्तश्च 6.2.180

पद.—अन्तः 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—उपसर्गात् अन्यः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—उपसर्ग से उत्तर जो 'अन्तः' शब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—प्राप्तः । पर्यन्तः ।

न निविभ्याम् 6.2.181

पद.—न-अव्य०, निविभ्याम् 5.2

अनु.—अन्तः उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—नि तथा वि उपसर्गों से उत्तर 'अन्त' शब्द को अन्तोदात्त नहीं होता है ।

उदा.—न्यन्तः । व्यन्तः ।

परेरभितोभावि मण्डलम् 6.2.182

पद.—परेः 5.1, अभितोभावि 1.1, मण्डलम् 1.1

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—परि उपसर्ग से उत्तर अभितोभाविवाची तथा मण्डल शब्द को अन्तोदात्त होता है । अभितोभावि का अर्थ है—दोनों ओर से होना जिसका स्वभाव है ।

उदा.—परिकूलम् 'कूल' शब्द दोनों ओर से होने के स्वभाव वाला है । अतः अन्तोदात्त हुआ । इसी प्रकार–परितीरम् ।

प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम् 6.2.183

पद.—प्रात् 5.1, अस्वाङ्गम् 1.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में प्र उपसर्ग से उत्तर अस्वांगवाची उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—प्रकोष्ठम् ।
प्रगृहम् ।

विशेष—1. 'अस्वांगम्' अर्थात् **स्वांगवाची को छोड़कर** अन्तोदात्त होता है—

प्रहस्तम् 'हस्त' शब्द स्वांगवाची है । अत; अन्तोदात्त न हुआ ।

2. 'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय** में ही सूत्रोक्त अन्तोदात्त होता है—

प्रपीठम् यहाँ संज्ञा का विषय नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

निरुदकादीनि च 6.2.184

पद.—निरुदकादीनि 1.3, च-अव्य० ।

अनु.—अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—निरुदकादिगण पठित शब्दों को भी अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—निरुदकम् ।
निरुपलम् ।

अभेर्मुखम् 6.2.185

पद.—अभेः 5.1, मुखम् 1.1

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अभि उपसर्ग से उत्तर जो मुख शब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—अभिमुखः ।

अपाच्च 6.2.186

पद.—अपात् 5.1, च-अव्य० ।

अनु.—मुखम् उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अप उपसर्ग से उत्तर जो मुख शब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—अपगतं मुखम् अस्मात् (अपगतं मुखात् वा)-अपमुखः । अपमुखम् ।

स्फिगपूतवीणाऽञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम च 6.2.187

पद.—स्फिगपूत वीणा ... नाम 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—अपात् उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अप उपसर्ग से उत्तर स्फिग, पूत, वीणा, अंजस्, अध्वन्, कुक्षि, सीरनाम तथा नाम शब्दों को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—(1) अपस्फिगम् ।
(2) अपपूतम् ।
(3) अपवीणम् ।
(4) अपाञ्जः ।
(5) अपाध्वा ।
(6) अपकुक्षिः ।
(7) अपसीरः ।
(8) अपहलम् ।
(9) अपलांगलम् ।
(10) अपनाम ।

अधेरुपरिस्थम् 6.2.188

पद.—अधेः 5.1, उपरिस्थम् 1.1

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अधि उपसर्ग से उत्तर उपरिस्थवाची उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—अधिदन्तः दाँत के ऊपर दाँत निकलने को अधिदन्त कहते हैं ।

इसी प्रकार—

अधिकर्णः ।

विशेष—'उपरिस्थम्' अर्थात् **उपरिस्थवाची** शब्द को ही अन्तोदात्त होता है—

अधिकरणम् यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

अनोरप्रधानकनीयसी 6.2.189

पद.—अनोः 5.1, अप्रधाकनीयसी 1.2

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अनु उपसर्ग से उत्तर अप्रधानवाची उत्तरपद को तथा कनीयस् शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—अनुगतो ज्येष्ठम् अनुज्येष्ठः ।
अनुगतः कनीयान् अनुकनीयान् ।

विशेष—'अप्रधानकनीयसी' अर्थात् **अप्रधानवाची** शब्द को तथा **कनीयस्** शब्द को ही अन्तोदात्त होता है—

अनुगतो ज्येष्ठः अनुज्येष्ठः यहाँ अन्तोदात्त न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषश्चान्वादिष्टः 6.2.190

पद.—पुरुषः 1.1, च-अव्य०, अन्वादिष्टः 1.1

अनु.—अनोः उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अनु उपसर्ग से उत्तर अन्वादिष्टवाची पुरुष शब्द को अन्तोदात्त होता है ।

कथन के पश्चात् कथन को अन्वादिष्ट कहते हैं ।

उदा.—अन्वादिष्टः पुरुषः अनुपुरुषः ।

अतेरकृत्पदे 6.2.191

पद.—अतेः 5.1, अकृत्पदे 1.2

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—अति उपसर्ग से उत्तर जो अकृदन्त शब्द और पद शब्द, ऐसे उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—अंकुशम् अतिक्रान्तः अत्यंकुशः ।
अतिकशोऽश्वः ।
अतिपदा ।

विशेष—1. 'अकृत्पदे' अर्थात् **अकृदन्त** शब्द और **पद** शब्द को ही अन्तोदात्त होता है—

अतिकारकः 'कारक' शब्द कृदन्त है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

2. अति से उत्तर धातुलोप में उत्तरपद अन्तोदात्त होता है[1]—

शोभनो गार्ग्यः अतिगार्ग्यः ।

नेरनिधाने 6.2.192

पद.—नेः 5.1, अनिधाने 7.1

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—प्रकाशन अर्थ में नि उपसर्ग से उत्तर जो शब्द, उसे अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—निमूलम् (=जिसका मूल निकला हुआ है) । न्यक्षम् (=जिसका अक्ष निकला हुआ है) ।

उदा.—(1) 'अनिधाने' अर्थात् **प्रकाशन अर्थ** में ही उक्त अन्तोदात्त होता है—

निदण्डः यहाँ न हुआ ।

1. काशि० 6.2.191 । अतेर्धातुलोप इति वक्तव्यम् ।

प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे 6.2.193

पद.—प्रतेः 5.1, अंश्वादयः 1.3, तत्पुरुषे 7.1

अनु.—उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—तत्पुरुष समास में प्रति उपसर्ग से पर जो अंशु आदि शब्द, उन्हें अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—प्रतिगतोंऽशुः प्रत्यंशुः ।
प्रतिजनः ।

विशेष—'तत्पुरुषे' अर्थात् **तत्पुरुष में ही** अन्तोदात्त होता है—

प्रतिगता अंशवोऽस्य प्रत्यंशुः (उष्ट्रः) । यहाँ तत्पुरुष समास नहीं है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः 6.2.194

पद.—उपात् 5.1, द्व्यजजिनम् 1.1, अगौरादयः 1.3

अनु.—तत्पुरुषे उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—तत्पुरुष समास में उप उपसर्ग से उत्तर दो अच् वाले शब्द को तथा अजिन शब्द को अन्तोदात्त होता है, परन्तु गौरादि शब्दों को नहीं होता है ।

उदा.—उपगतो देवम्-उपदेवः 'देव' शब्द दो अच् वाला है । अतः अन्तोदात्त हुआ । उपाजिनम् ।

विशेष—'अगौरादयः' अर्थात् **गौरादि शब्दों** को छोड़कर दो अच् वाले शब्द को अन्तोदात्त होता है—

उपगौरः । उपतैषः ।

सोरवक्षेपणे 6.2.195

पद.—सोः 5.1, अवक्षेपणे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे उपसर्गात् अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः ।

अर्थ—निन्दा अर्थ गम्यमान हो तो तत्पुरुष समास में 'सु' उपसर्ग से उत्तर जो शब्द, उसे अन्तोदात्त होता है ।

उदा.—सुस्थण्डिलः ।
सुप्रत्यवसितः ।

विशेष—1. 'सोः' अर्थात् 'सु' उपसर्ग से उत्तर को ही अन्तोदात्त होता है—

कुब्राह्मणः यहाँ 'सु' नहीं, 'कु' है । अतः अन्तोदात्त न हुआ ।

2. 'अवक्षेपणे' अर्थात् **निन्दा गम्यमान** हो तो अन्तोदात्त होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुतृणम् निन्दा अर्थ नहीं है। अतः अन्तोदात्त न हुआ।

विभाषोत्पुच्छे 6.2.196

पद.—विभाषा 1.1, उत्पुच्छे 7.1

अनु.—तत्पुरुषे अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ—तत्पुरुष समास में उत्पुच्छ शब्द को विकल्प से अन्तोदात्त होता है।

उदा.—उत्क्रान्तः पुच्छात् उच्पुच्छः, उत्पुच्छः पक्ष में प्रकृति स्वर हुआ।

द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ 6.2.197

पद.—द्वित्रिभ्याम् 5.2, पाद्दन्मूर्धसु 7.3, बहुव्रीहौ 7.1

अनु.—विभाषा, अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ—बहुव्रीहि समास में द्वि तथा त्रि से उत्तर जो पाद्, दत् व मूर्धन् शब्द, ऐसे उत्तरपद शब्दों को विकल्प से अन्तोदात्त होता है।

उदा.—द्वौ पादावस्य द्विपात्, द्विपात्।
द्विदन्, द्विदन्।
द्विमूर्धा, द्विमूर्धा।
द्विमूर्ध, द्विमूर्धः।

विशेष—1. सूत्र में 'पाद्' व 'दत्' इस प्रकार आदेशरूप निर्देश किया गया है, परन्तु 'मूर्धन्' शब्द के अकृतादेश रूप का निर्देश है। अतः मूर्धन् शब्द का सामान्यतया दोनों प्रकार का ग्रहण किया जाता है।

2. 'द्वित्रिभ्याम्' अर्थात् 'द्वि' तथा 'त्रि' शब्दों से उत्तर शब्द को ही अन्तोदात्त होता है—

कल्याणमूर्धा यहाँ न हुआ।

3. 'पादादिषु' अर्थात् **पाद्, दत्** व **मूर्धन्** शब्दों के उत्तरपद रहते अन्तोदात्त होता है—द्विहस्तम् यहाँ 'द्वि' से उत्तर 'हस्त' शब्द है। अतः अन्तोदात्त न हुआ।

4. 'बहुव्रीहौ' अर्थात् **बहुव्रीहि** समास में ही अन्तोदात्त होता है—

द्वयोर्मूर्धा द्विमूर्धा यहाँ बहुव्रीहि समास नहीं है। अतः अन्तोदात्त न हुआ।

सक्थं चाक्रान्तात् 6.2.198

पद.—सक्थम् 1.1, च-अव्य०, अक्रान्तात् 5.1

अनु.—बहुव्रीहौ विभाषा अन्तः उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ— बहुव्रीहि समास में 'क्र' शब्द नहीं है अन्त में जिसके, ऐसे शब्द से उत्तर 'सक्थ' शब्द को विकल्प से अन्तोदात्त होता है।

'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः—' से समासान्त षच् होकर 'सक्थ' रूप बनता है।

उदा.—गौरसक्थः, गौरसक्थः।

विशेष—'अक्रान्तात्' अर्थात् क्र नहीं है अन्त में जिसके, ऐसे शब्द से उत्तर 'सक्थ' को अन्तोदात्त होता है—

चक्रसक्थः 'चक्र' के अन्त में 'क्र' है। इस से परे 'सक्थ' है। अतः पाक्षिक अन्तोदात्त नहीं होता है।

'सक्थ' समासान्त षच् से निष्पन्न है। अतः षच् के चित् होने से नित्य अन्तोदात्त हुआ।

परादिश्छन्दसि बहुलम् 6.2.199

पद.—परादिः 1.1, छन्दसि 7.1, बहुलम् 1.1

अनु.—सक्थम् उत्तरपदस्य उदात्तः।

अर्थ—वेद के विषय में समास मात्र में उत्तरपद (अर्थात् सक्थ) को बहुलता से आद्युदात्त होता है।

उदा.—अङ्गिसक्थम् 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' से समास हुआ। 'सक्थ' शब्द को आद्युदात्त हुआ।

बहुल वचन के कथनवशात्

(क) सक्थ से भिन्न पदों को आद्युदात्त होता है—

ऋजुबाहुः।

(ख) अन्य समास में भी आद्युदात्त होता है।

वाक्पतिः।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां षष्ठाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठाध्यायस्य

तृतीयः पादः

अलुगुत्तरपदे 6.3.1

पद.—अलुक् 1.1, उत्तरपदे 7.1

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। आगे के सूत्रों में 'अलुक्' तथा 'उत्तरपदे' इन दोनों का अधिकार चलता है। पूर्वपद और उत्तरपद—इनका प्रयोग समास स्थल में ही होता है। अतः यह स्पष्ट है कि प्रकृत अधिकार का क्षेत्र समासविधि से सम्बद्ध है।

विशेष—'उत्तरपदे' अर्थात् **उत्तरपद परे** रहते ही अलुक् होता है—

निष्क्रान्तः स्तोकात्–निःस्तोकः। 'स्तोक' से उत्तर पञ्चमी विभक्ति है, परन्तु उत्तरपद में कुछ नहीं है। अतः अलुक् न हुआ। समास करने पर 'सुपोधातुप्राति०' से विभक्ति का लुक् हुआ करता है। उसी का अलुक् होता है।

पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः 6.3.2

पद.—पञ्चम्याः 6.1, स्तोकादिभ्यः 5.3

अनु.—अलुग् उत्तरपदे।

अर्थ—उत्तरपद परे रहते स्तोक आदि शब्दों से उत्तर पंचमी विभक्ति का अलुक् होता है। अलुक् का अर्थ है—लुक् (=लोप) न होना। 'स्तोकादि' पद के द्वारा 'स्तोकान्तिक-दूरार्थकृच्छ्राणि सूत्र में कथित स्तोक आदि शब्दों का ग्रहण होता है।

'करणे च स्तोकाल्प०' तथा 'दूरान्तिका—' से पञ्चमी विभक्ति होती है। इसी विभक्ति का अलुक् होता है।

उदा.—स्तोकान्मुक्तः।
अल्पान्मुक्तः।
अन्तिकादागतः।
अभ्याशादागतः।
दूरादागतः।
विप्रकृष्टादागतः।
कृच्छ्रान्मुक्तः।

ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः 6.3.3

पद.—ओजःसहोम्भस्तमसः 5.1, तृतीयायाः 6.1

अनु.—अलुग् उत्तरपदे।

अर्थ—उत्तरपद परे रहते ओजस्, सहस्, अम्भस् तथा तमस् शब्द से उत्तर तृतीया विभक्ति का अलुक् होता है।

उदा.—ओजसाकृतम्।
सहसाकृतम्।
अम्भसाकृतम्।
तमसाकृतम्।

विशेष—1. 'अञ्जस्' शब्द से उत्तर तृतीया विभक्ति का अलुक् होता है[1]—
अञ्जसाकृतम्।

2. पुंसानुज तथा जनुषान्ध में भी तृतीया का अलुक् होता है[2]— पुंसा अनुजः–पुंसाऽनुजः।
जनुषा अन्धः–जनुषाऽन्धः।

मनसः संज्ञायाम् 6.3.4

पद.—मनसः 5.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—तृतीयाः अलुग् उत्तरपदे।

अर्थ—संज्ञा के विषय में उत्तरपद परे रहते मनस् शब्द से उत्तर तृतीया विभक्ति का अलुक् होता है।

मनसादत्ता–यह किसी का नाम है।

विशेष—'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय में** ही पूर्वोक्त अलुक् होता है—

मनसा दत्ता–मनस् दत्ता–मनोदत्ता यह संज्ञा नहीं है। अतः तृतीया का अलुक् न हुआ।

आज्ञायिनि च 6.3.5

पद.—आज्ञायिनि 7.1, च–अव्य०।

---

1. काशि० 6.3.3 अञ्जस उपसंख्यानं कर्त्तव्यम् (का०वा०)।
2. वही—पुंसानुजो जनुषान्ध इति वक्तव्यम् (का०वा०)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—मनसः तृतीयायाः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—आज्ञायी शब्द के उत्तरपद रहते मनस् शब्द से उत्तर तृतीया विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—मनसा आज्ञातुं शीलम् अस्य-मनसाज्ञायी ।

आत्मनश्च 6.3.6

पद.—आत्मनः 5.1, च-अव्य० ।

अनु.—अलुग् उत्तरपदे तृतीयायाः ।

अर्थ—उत्तरपद परे रहते आत्मन् शब्द से उत्तर तृतीया का अलुक् होता है ।

उदा.—आत्मनापञ्चमः ।
आत्मनाषष्ठः ।

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः परस्य च 6.3.7

पद.—वैयाकरणाख्यायाम् 7.1, चतुर्थ्याः 6.1, परस्य 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—अलुगुत्तरपदे आत्मनः ।

अर्थ—जिस कथन के द्वारा वैयाकरण ही व्यवहार करते हैं, उसके कथन में 'पर' तथा 'आत्मन्' शब्द से उत्तर चतुर्थी विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—परस्मैपदम् ।
आत्मनेपदम् ।

हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् 6.3.8

पद.—हलदन्तात् 5.1, सप्तम्याः 6.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो तो उत्तरपद के परे रहते हलन्त और अदन्त शब्दों से उत्तर सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—(1) युधि स्थिरः-युधिष्ठिरः । संज्ञायाम् । गवि-युधिभ्यां स्थिरः-। ष्टुनाष्टुः ।

त्वचि सारः-त्वचिसारः । बहुव्रीहि समास ।

(2) अरण्येतिलकाः ।
अरण्येमाषाः । वनेचरः (भट्टि० 5.97)

विशेष—1. 'हलदन्तात्' अर्थात् हलन्त और अदन्त शब्दों से उत्तर सप्तमी का अलुक् होता है—नद्यां कुक्कुटिका-नदीकुक्कुटिका । 'नदी' शब्द ईकारान्त है । अतः अलुक् न हुआ ।

2. 'संज्ञायाम्' अर्थात् संज्ञा के विषय में ही सप्तमी का अलुक् होता है—

अक्षेषु शौण्डः-अक्षशौण्डः 'अक्ष' शब्द अदन्त है, परन्तु संज्ञा न होने से अलुक् न हुआ ।

3. हृत् व दिव् शब्दों से उत्तर ङि विभक्ति का अलुक् होता है—हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् ।

कारनाम्नि च प्राचां हलादौ 6.3.9

पद.—कारनाम्नि 7.1, च-अव्य०, प्राचाम् 6.3, हलादौ 7.1

अनु.—हलदन्तात् सप्तम्याः, अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—प्राच्य देशों में जो करों के नाम वाले शब्द उनमें भी हलन्त व अदन्त शब्दों से उत्तर सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है, हलादि शब्द परे रहते ।

यह नियम सूत्र है । यह नियम करता है कि—

(क) कारनाम में ही
(ख) प्राच्य देश में व्यवहृत नामों में ही,
(ग) हलादि शब्द परे रहते ही,
अलुक् होता है ।

उदा.—स्तूपेशाणः ।
दृषदिमाषकः ।
हलेद्विपादिका ।

विशेष—1. 'कारनाम्नि' अर्थात् कार के नाम वाले शब्द में ही सूत्रोक्त अलुक् होता है—

अभ्यर्हिते पशुः-अभ्यर्हितपशुः । यहाँ अलुक् न हुआ ।

2. 'हलादौ' अर्थात् हलादि शब्द परे रहते ही उक्त अलुक् होता है—

अविकटे उरणः-अविकटोरणः । यहाँ अलुक् न हुआ ।

3. 'हलदन्तात्' अर्थात् हलन्त व अदन्त शब्द से उत्तर विभक्ति का अलुक् होता है— नद्यां दोहनी-नदीदोहनी यहाँ अलुक् न हुआ ।

मध्याद् गुरौ 6.3.10

पद.—मध्याद् 5.1, गुरौ 7.1

अनु.—सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—गुरु शब्द उत्तरपद रहते मध्य शब्द से उत्तर सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—मध्येगुरुः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—'अन्त' शब्द से परे भी सप्तमी का अलुक् होता है—

अन्तेगुरुः । द्र० काशि० 6.3.11

अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे 6.3.11

पद.—अमूर्धमस्तकात् 5.1, स्वाङ्गात् 5.1, अकामे 7.1

अनु.—हलदन्तात् सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—मूर्धन् व मस्तक शब्दों को छोड़कर स्वांगवाची जो हलन्त व अदन्त शब्द, उस से उत्तर सप्तमी का अलुक् होता है यदि 'काम' शब्द को छोड़कर अन्य शब्द उत्तरपद हो ।

उदा.—कण्ठेकालः ।
उरसिलोमा ।
उदरेमणिः ।
मध्येक्षामा (मे० 86) ।

सर्वत्र 'सप्तम्युपमान पूर्वपद.' (पा० 2.2.24 वा०) से समास हुआ है ।

विशेष—1. 'अमूर्द्धमस्तकात्' अर्थात् **'मूर्द्धन्'** व **मस्तक** शब्दों को छोड़कर शेष शब्द से पर अलुक् होता है—मूर्द्धशिखः । मस्तकशिखः यहाँ अलुक् न हुआ ।

2. 'अकामे' अर्थात् **काम शब्द** से **अतिरिक्त** शब्द परे रहते अलुक् होता है—

मुखे कामोऽस्य-मुखकामः । यहाँ अलुक् न हुआ ।

3. 'स्वांगात्' अर्थात् **स्वांगवाची** शब्द से उत्तर विभक्ति का अलुक् होता है—

अक्षेषु शौण्डः—'अक्ष' अदन्त शब्द है, परन्तु स्वांगवाची नहीं है । अतः अलुक् न हुआ ।

बन्धे च विभाषा 6.3.12

पद.—बन्धे 7.1, च-अव्य०, विभाषा 1.1

अनु.—हलदन्तात् सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—बन्ध शब्द उत्तरपद रहते हलन्त व अदन्त शब्द से उत्तर सप्तमी विभक्ति का विकल्प से अलुक् होता है ।

बहुव्रीहि समास में 'अमूर्धमस्तकात्०' से नित्य अलुक् प्राप्त था । अतः विकल्प कहा गया है । तत्पुरुष में 'नेन्सिद्धब०' से निषेध प्राप्त था । अतः विकल्प कहा गया है ।

उदा.—हस्तेबन्ध, हस्तबन्धः ।
चक्रेबन्धः, चक्रबन्धः ।

तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6.3.13

पद.—तत्पुरुषे 7.1, कृति 7.1, बहुलम् 1.1

अनु.—सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—कृदन्त उत्तरपद रहते तत्पुरुष समास में बहुलता से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—(1) स्तम्बेरमः
कर्णेजपैः (भट्टि० 3.7) ।

स्तम्बकर्णयो० के द्वारा अच् प्रत्यय हुआ है । विभक्ति का अलुक् हुआ है ।

(2) जलेजानि (भट्टि० 6.74) ।
(3) दिविष्ठाः (भट्टि० 4.33) ।
(4) वनेवास (भट्टि० 3.16) ।

कुरुचरः, भद्रचरः-'चरेष्टः' से 'ट' प्रत्यय हुआ है । बहुल कथन से अलुक् न हुआ ।

प्रावृट्शरत्कालदिवां जे 6.3.14

पद.—प्रावृट्शरत्कालदिवाम् 6.3, जे 7.1

अनु.—सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—'ज' उत्तरपद रहते प्रावृष्, शरद्, काल तथा दिव् इन शब्दों से उत्तर सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—प्रावृषिजः ।
शरदिजः ।
कालेजः ।
दिविजः ।

'सप्तम्यां जनेर्डः से 'ड' हुआ है ।

विभाषा वर्षक्षरशरवरात् 6.3.15

पद.—विभाषा 1.1, वर्षक्षरशरवरात् 5.1

अनु.—जे सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—'ज' उत्तरपद रहते वर्ष, क्षर, शर तथा वर इन शब्दों से उत्तर सप्तमी विभक्ति का विकल्प से अलुक् होता है ।

उदा.—वर्षेजः, वर्षजः ।
क्षरेजः, क्षरजः ।
शरेजः, शरजः ।
वरेजः, वरजः ।

घकालतनेषु कालनाम्नः 6.3.16

पद.—घकालतनेषु 7.3, कालनाम्नः 5.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—विभाषा सप्तम्या; अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—घसंज्ञक प्रत्यय, कालशब्द तथा तनप्रत्यय के उत्तरपद रहते काल के नामवाची शब्दों से उत्तर सप्तमी विभक्ति का विकल्प से अलुक् होता है ।

'तरप्तमपौ घः' से तरप् व तमप् की घसंज्ञा होती है ।

'तन' के द्वारा तुट् आगम सहित ट्यु तथा ट्युल् प्रत्ययों का ग्रहण होता है ।

उदा.—पूर्वाह्णेतरे, पूर्वाह्णतरे । पूर्वापरा० । राजाहःसखिभ्यष्टच् । अह्नोऽह्न एतेभ्यः । अह्नोऽदन्तात् ।

पूर्वाह्णेकाले, पूर्वाह्णकाले ।
पूर्वाह्णेतने, पूर्वाह्णतने ।

विशेष—'कालनाम्नः' अर्थात् **कालवाची** शब्द से ही विभक्ति का अलुक् होता है—

शुक्लतरे, शुक्लतमे ।

शयवासवासिष्वकालात् 6.3.17

पद.—शयवासवासिषु 7.3, अकालात् 5.1

अनु.—विभाषा सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—शय, वास तथा वासिन् शब्दों के उत्तरपद रहते कालवाची से भिन्न शब्द से उत्तर सप्तमी विभक्ति का विकल्प से अलुक् होता है ।

उदा.—खेशयः, खशयः । 'अधिकरणे शेतेः' से अच् ।
ग्रामेवासः, ग्रामवासः ।
ग्रामेवासी, ग्रामवासी ।

विशेष—'अकालात्' अर्थात् **कालवाची से भिन्न** शब्द से उत्तर विभक्ति का अलुक् होता है—

पूर्वाह्णशयः पूर्वाह्ण कालवाची शब्द है । अतः इससे उत्तर अलुक् न हुआ ।

नेन्सिद्धबध्नातिषु च 6.3.18

पद.—न अव्य०, इन्सिद्धबध्नातिषु 7.3, च-अव्य० ।

अनु.—सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—इन् प्रत्ययान्त शब्द, सिद्ध शब्द तथा बध्नाति के उत्तरपद रहते सप्तमी विभक्ति का अलुक् नहीं होता है ।

यहाँ 'तत्पुरुषे कृति०' से अलुक् प्राप्त है ।

उदा.—स्थण्डिलशायी ।
स्थण्डिलवर्त्ती ।
स्थण्डिलेशयः (भाग० 9.10.35) ।
काम्पिल्यसिद्धः ।
चक्रबद्धः ।
वनवासि (भट्टि० 2.26) ।

स्थे च भाषायाम् 6.3.19

पद.—स्थे 7.1, च-अव्य०, भाषायाम् 7.1

अनु.—न सप्तम्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—लौकिक साहित्य में 'स्थ' शब्द के उत्तरपद रहते सप्तमी विभक्ति का अलुक् नहीं होता है ।

उदा.—कूटस्थः ।
पर्वतस्थः ।

विशेष—'भाषायाम्' अर्थात् **लोक में ही** उक्त अलुक् नहीं होता है—कृष्णोऽस्याखरेष्ठो (वा०सं० 2.1) ।

वेद में अलुक् हो गया ।

षष्ठ्या आक्रोशे 6.3.20

पद.—षष्ठ्याः 6.1, आक्रोशे 7.1

अनु.—अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—आक्रोश गम्यमान हो तो उत्तरपद रहते षष्ठी विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—चौरस्यकुलम् ।
वृषलस्यकुलम् ।

विशेष—1. 'आक्रोशे' अर्थात् **आक्रोश गम्यमान** हो तो विभक्ति का अलुक् होता है—

ब्राह्मणकुलम् यहाँ आक्रोश गम्यमान नही है । अतः अलुक् न हुआ ।

2. युक्ति, दण्ड तथा हर शब्द परे रहते क्रमशः वाच्, दिश् तथा पश्यत् शब्दों से उत्तर षष्ठी विभक्ति का अलुक् होता है । द्र० (का०वा०)—वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतोहरः ।

3. आमुष्यायण, आमुष्यपुत्रिका तथा अमुष्यकुलिका शब्दों में षष्ठी का अलुक् होता है—[1]

आमुष्यायणः । आमुष्यपुत्रिका । आमुष्यकुलिका ।

4. देवानाम्प्रियः शब्द साधु है । का०वा० ।[2]

---

1. काशि० 6.3.21
2. काशि० 6.3.21

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. संज्ञा के विषय में शेप, पुच्छ तथा लांगूल शब्दों के उत्तरपद रहते श्वन् से उत्तर षष्ठी विभक्ति का अलुक् होता है—[1]

शुनःशेप; । शुनःपुच्छः । शुनोलांगूलः ।

6. दास शब्द परे रहते दिव् शब्द से उत्तर षष्ठी का अलुक् होता है—[2]

दिवोदासः ।

पुत्रेऽन्यतरस्याम् 6.3.21

पद.—पुत्रे 7.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—षष्ठ्या आक्रोशे अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—आक्रोश गम्यमान हो और 'पुत्र' शब्द उत्तरपद हो तो विकल्प से षष्ठी विभक्ति का अलुक् होता है ।

उदा.—दास्याःपुत्रः, दासीपुत्रः ।
वृषल्याःपुत्रः, वृषलीपुत्रः ।

ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः 6.3.22

पद.—ऋतः 5.1, विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः 5.3

अनु.—षष्ठ्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—विद्याकृत सम्बन्धवाची तथा योनिकृतसम्बन्धवाची ऋकारान्त शब्द से उत्तर षष्ठी विभक्ति का अलुक् होता है, उत्तरपद परे रहते ।

उदा.—होतुरन्तेवासी, होतुःपुत्रः ।
पितुरन्तेवासी, पितुःपुत्रः ।

विशेष—1. 'ऋतः' अर्थात् **ऋकारान्त शब्द से** उत्तर विभक्ति का अलुक् होता है—

आचार्यपुत्रः यहाँ अलुक् न हुआ ।

विभाषा स्वसृपत्योः 6.3.23

पद.—विभाषा 1.1, स्वसृपत्योः 7.2

अनु.—ऋतो विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः षष्ठ्याः अलुगुत्तरपदे ।

अर्थ—स्वसृ तथा पति शब्द के उत्तरपद रहते विद्याकृत सम्बन्धवाची व योनिकृत सम्बन्धवाची ऋकारान्त शब्द से उत्तर षष्ठी विभक्ति का विकल्प से अलुक् होता है ।

उदा.—'मातुःष्वसा, मातुःस्वसा, मातृष्वसा 'मातुःपितुर्भ्या०' के द्वारा पाक्षिक षत्व होता है ।

मातृष्वसा में नित्य षत्व 'मातृपितृभ्यां'—के द्वारा होता है—

दुहितुःपतिः, दुहितृपतिः ।

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे 6.3.24

पद.—आनङ् 1.1, ऋतः 6.1, द्वन्द्वे 7.1

अनु.—विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः उत्तरपदे ।

अर्थ—विद्याकृत सम्बन्धवाची तथा योनिकृतसम्बन्धवाची ऋकारान्त द्वन्द्वसमास में आनङ् आदेश होता है, उत्तरपद परे रहते ।

उदा.—(1) होतापोतारौ ।
नेष्टोद्गातारौ ।
(2) मातापितरौ । मातापित्रोः (पञ्च० 14.17)।
यातानान्दरौ ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के बल पर अन्त्य वर्ण 'ऋ' के स्थान पर आनङ् होता है । 'न लोपः प्रातिपदिका०' से नलोप होता है ।

विशेष—1. 'ऋतः' अर्थात् **ऋकारान्त** शब्द को ही आनङ् आदेश होता है—

पिता च पितामहश्च–पितृपितामहौ इस दशा में पितृ (ऋकारान्त) तथा पितामह (जो ऋकारान्त नहीं है) का द्वन्द्व समास है । अतः आनङ् न हुआ ।

2. 'आनङ्' अर्थात् **आनङ्** आदेश होता है । यदि 'आ' आदेश करते तो रपर होकर अनिष्ट रूप बन जाता ।

द्र०—काशि० 6.3.25

देवताद्वन्द्वे च 6.3.25

पद.—देवताद्वन्द्वे 7.1, च–अव्य०

अनु.—आनङ् उत्तरपदे ।

अर्थ—देवतावाची शब्दों के द्वन्द्व समास में उत्तरपद रहते पूर्वपद को आनङ् आदेश होता है ।

उदा.—इन्द्रावरुणौ ।
इन्द्रासोमौ ।

इन्द्राबृहस्पती । मित्रावरुणौ (भट्टि० 2.41) ।

ईदग्नेः सोमवरुणयोः 6.3.26

पद.—ईत् 1.1, अग्नेः 6.1, सोमवरुणयोः 7.2

अनु.—देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे ।

1. काशि० 6.3.21 ।
2. काशि० 6.3.21 ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—देवतावाची द्वन्द्व समास में सोम तथा वरुण शब्द उत्तरपद रहते अग्नि शब्द को ईत् अर्थात् ईकारादेश होता है। ईत् में तकार उच्चारणार्थ है। अग्नीषोमौ 'अग्नेः स्तुत् स्तोम-सोमाः' से षत्व होता है।

इद् वृद्धौ 6.3.27

पद.—इत् 1.1, वृद्धौ 7.1

अनु.—अग्नेः देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे।

अर्थ—वृद्धि आदेश युक्त उत्तर पद परे रहते देवताद्वन्द्व समास में अग्नि शब्द को इकारादेश होता है।

उदा.—आग्निवारुणीम्।
आग्निमारुतम्।

विशेष—1. 'वृद्धौ' अर्थात् **वृद्धि आदेश युक्त** शब्द उत्तरपद रहते ही इकारादेश होता है—
आग्नेन्द्रः।

2. वृद्धि वाले उत्तरपद में इत्व आदेश करने में विष्णु शब्द को इकारादेश नहीं होता है[1]—
आग्नावैष्णवम्।

दिवो द्यावा 6.3.28

पद.—दिवः 7.1, द्यावा 1.1

अनु.—देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे।

अर्थ—देवताद्वन्द्व समास में उत्तरपद परे रहते पूर्वपद दिव् शब्द को द्यावा आदेश होता है।

उदा.—द्यावाक्षामा। द्यावाभूमी।

दिवसश्च पृथिव्याम् 6.3.29

पद.—दिवसः 1.1, च-अव्य०, पृथिव्याम् 7.1

अनु.—दिवो द्यावा देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे।

अर्थ—देवताद्वन्द्व में पृथिवी शब्द उत्तरपद रहते दिव् शब्द को दिवस् आदेश होता है तथा द्यावा आदेश भी होता है।

प्राप्त आनङ् का बाध हो जाता है। दिवस् का अकारयुक्त पाठ रुत्वादि कार्यों के निवारणार्थ है।

उदा.—दिवस् पृथिव्यौ। द्यावापृथिव्यौ।

उषासोषसः 6.3.30

पद.—उषासा 1.1, उषसः 6.1

अनु.—देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे।

1. काशि० 6.3.28 (वा०)।

अर्थ—देवताद्वन्द्व समास में उत्तरपद परे रहते उषस् शब्द को उषासा आदेश होता है। आनङ् का अपवाद है।

उदा.—उषाश्च सूर्यश्च उषासासूर्यम्।
इसी प्रकार-उषासानक्ता।

मातरपितरावुदीचाम् 6.3.31

पद.—मातरपितरौ 1.2, उदीचाम् 6.3

अर्थ—उदीच्च आचार्यों के मत में मातरपितरौ शब्द का निपातन किया जाता है।

उदा.—माता च पिता च-मातरपितरौ। मातृ शब्द को अरङ् आदेश निपातन से होता है।

विशेष—'उदीचाम्' अर्थात् उदीच्य लोगों के मत में 'मातरपितरौ' होता है, अन्यत्र 'मातापितरौ' होता है।

पितरामातरा च च्छन्दसि 6.3.32

पद.—पितरामातरा 1.2, च-अव्य०, छन्दसि 7.1

अर्थ—वेद के विषय में पितरामातरा शब्द का निपातन किया जाता है। 'च' पद के द्वारा 'मातरपितरौ' पद का भी ग्रहण होता है। इस प्रकार वेद में दोनों प्रकार के शब्दों का निपातन किया गया है।[2]

उदा.—पितृ शब्द को निपातन से अराङ् आदेश होता है।

उत्तरपद में 'औ' विभक्ति के स्थान पर आकार आदेश (सुपां सुलुक्०) होता है पितरामातरा (यजु० 9.19; शत० 5.1.5.26); मातरापितरौ (ऋ० 4.6.7)। मातृ शब्द को गुण (ऋतो ङि—) होता है।

विशेष—लोक में 'मातापितरौ' होता है।

स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियापूरणीप्रियादिषु 6.3.33

पद.—स्त्रियाः 6.1, पुंवत् अव्य०, भाषितपुंस्कादनूङ्-लुप्तषष्ठीकम्, समानाधिकरणे 7.1, स्त्रियाम् 7.1, अपूरणी-प्रियादिषु 7.3

अनु.—उत्तरपदे।

अर्थ—जिससे परे ऊङ् प्रत्यय न किया गया हो, ऐसे भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवत् हो जाता है यदि समानाधिकरण स्त्रीलिंग उत्तरपद परे हो, परन्तु पूरणी या प्रिया आदि के परे रहते पुँवद्भाव नहीं होता है।

2. वै०सि०कौ० (भाग4) वैदिकी प्रक्रिया—सूत्र 3528।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुँवद् का अर्थ है कि स्त्रीलिंग वाचक शब्दों के पश्चात् जुड़ा हुआ स्त्रीप्रत्यय हट जाता है। ऊङ् एक स्त्रीप्रत्यय है जिसका विधान निम्नलिखित सूत्रों के द्वारा किया गया है—

ऊङ् उतः । पङ्गोश्च । ऊरूत्तरपदादौपम्ये । संहितशफलक्षणवामादेश्च ।

'पूरणी' के द्वारा पूरणार्थप्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्दों का ग्रहण होता है। यथा—द्वितीया। प्रियादि एक गण है।

जो शब्द जिस प्रवृत्ति निमित्त को लेकर पुल्लिंग में प्रवृत्त होता है, यदि वह उसी प्रवृत्तिनिमित्त को लेकर अन्य लिंग में प्रवृत्त हो तो उसे भाषितपुँस्क कहते हैं। शब्द का वाच्य को बोधन कराने का जो निमित्त होता है, वह प्रवृत्तिनिमित्त होता है। यथा—'पट' शब्द का पट को बोध कराने का निमित्त 'पटत्व' है। यह ही प्रवृत्तिनिमित्त हुआ।

उदा.—(1) चित्रा गावो यस्य सः चित्रगुः अनेकमन्यपदार्थे से समास। विशेषण का पूर्व निपात। प्रातिपदिक संज्ञा सुप् का लुक्। चित्रा गो। 'चित्र' शब्द पुल्लिंग में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। चित्रा शब्द भाषितपुँस्क है। इससे ऊङ् प्रत्यय भी नहीं हुआ है। पुँवद्भाव हुआ। चित्र गो। गोस्त्रियोरुपसर्ज०। चित्रगु। विशेष्यानुसार लिंगादि करके चित्रगुः ब्राह्मणः।

(2) रूपवती भार्या यस्य सः रूपवद्भार्यः पूर्ववत् कार्य होकर—रूपवती भार्या। 'रूपवती' को पुँवद् हुआ। रूपवद् भार्या। झलां जशोऽन्ते। गोस्त्रियो०। रूपवद् भार्य सु-रूपवद्भार्यः।

(3) युवतिर्जाया यस्य सः–युवजानिः (भट्टि० 5.13)।
श्लक्ष्णा चूडा यस्य सः श्लक्ष्णचूडः।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'स्त्रियाः' अर्थात् **स्त्रीलिंग शब्द** को ही पुँवद्भाव होता है—

ग्रामणि (= ब्राह्मणकुलं) दृष्टिरस्य–ग्रामणिदृष्टिः यहाँ समानाधिकरण स्त्रीलिंग शब्द (दृष्टि) उत्तरपद में है। परन्तु 'ग्रामणि' शब्द स्त्रीलिंग नहीं, अपितु नपुँसकलिंग है। अतः पुँवद्भाव न हुआ।

2. 'भाषितपुँस्कात्' अर्थात् **भाषितपुँस्क** स्त्रीलिंग शब्द को ही पुँवद्भाव होता है–खट्वाभार्यः में पुँवदभाव नहीं होता है। खट्वा शब्द भाषित पुँस्क नहीं है, अपितु नित्य स्त्रीलिंग है।

3. 'अनूङ्' अर्थात् **जिससे ऊङ् प्रत्यय** नहीं हुआ है, ऐसे स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव होता है—

वामोरूः भार्या यस्य सः वामोरूभार्यः 'वामोरू' शब्द ऊङ् (संहितशफलक्षण०) प्रत्ययान्त है। भाषितपुँस्क स्त्रीलिंग होने पर भी पुँवद्भाव न हुआ।

इसी प्रकार—पङ्गूभार्यः, ब्रह्मबन्धूभार्यः।

4. 'समानाधिकरणे' अर्थात् **समानाधिकरण** स्त्रीलिंग उत्तर पद परे रहते ही भाषितपुँस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव होता है।

कल्याण्या माता यहाँ 'कल्याणी' शब्द भाषित पुँस्क स्त्रीलिंग शब्द है जिससे ऊङ् प्रत्यय नहीं हुआ। 'मातृ' शब्द स्त्रीलिंग तो है परन्तु 'कल्याण्याः' का समानाधिकरण न होने से पुँवद्भाव न हुआ। कल्याणीमाता।

5. 'स्त्रियाम्' अर्थात् समानाधिकरण **स्त्रीलिंग** शब्द उत्तरपद रहते ही पुँवद्भाव होता है—

कल्याणी प्रधानमेषां कल्याणीप्रधानाः। स्त्रीलिंग उत्तरपद न होने से पुँवद्भाव न हुआ।

6. 'अपूरणी प्रियादिषु' अर्थात् **पूरणी तथा प्रिया आदि के परे न रहते ही** पुँवद्भाव होता है।

कल्याणी पञ्चमी यासां (रात्रीणां) ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः (सिद्धि पा० 5.4.116 पर देखें)। यहाँ सूत्र की सभी शर्तें पूरी हैं परन्तु 'पञ्चमी' शब्द पूरण-प्रत्ययान्त है। अतः इसके परे रहते पुँवद्भाव न हुआ।

कल्याणी प्रिया यस्य सः कल्याणीप्रियः। सूत्र की सभी शर्तें पूरी हैं परन्तु 'प्रिया' शब्द के उत्तरपद में रहते पुँवद्भाव न हुआ।

तसिलादिष्वाकृत्वसुचः 6.3.34

पद.—तसिलादिषु 7.3, आ अव्य०, कृत्वसुचः 5.1

अनु.—स्त्रियाः पुवंद्भाषितपुस्कादनूङ्।

अर्थ—तसिल् आदि प्रत्ययों से लेकर कृत्वसुच् पर्यन्त जो प्रत्यय, उनके परे रहते ऊङ् वर्जित भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव होता है।

'पञ्चम्यास्तसिल्' में पठित तसिल् का यहाँ ग्रहण होता है।

'संख्यायाः क्रियाभ्या०' में पठित कृत्वसुच् पर्यन्त सभी प्रत्यय जानने चाहिए।

उदा.—(1) तस्याः शालायाः–ततः।

(2) तस्याम्–तत्र।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) यस्याः–यतः ।

(4) यस्याम्–यत्र ।

विशेष—1. शस् प्रत्यय परे रहते बह्वर्थक तथा अल्पार्थक को पुँवद्भाव होता है[1]—

बह्वीभ्यो देहि–बहुशो देहि ।
अल्पाभ्यो देहि–अल्पशो देहि ।

2. त्व तथा तल् प्रत्यय परे रहते पुँवद्भाव होता है[2]—

पट्व्याः भावः–पटुत्वम् । पटुता

3. 'ढ' से अतिरिक्त तद्धित प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक का पुँवद्भाव होता है[3]—

हस्तिनीनां समूहः–हास्तिकम् ।

'ढ' परे रहते पुवंद्भाव नहीं होता है—

रोहिणेयः यहाँ ढ प्रत्यय हुआ है । अतः पुँवद्भाव नहीं हुआ ।

4. ठक् तथा छस् प्रत्ययों के परे रहते पुँवद्भाव होता है[4]—

भवत्याः छात्रःभावत्कः (ठक् । इसुसु०) । भवदीयः (छस्)।

क्यङ् मानिनोश्च 6.3.35

पद.—क्यङ्मानिनोः 7.2, च–अव्य० ।

अनु.—स्त्रियाः पुवंद्भाषितपुस्कादनूङ् उत्तरपदे ।

अर्थ—क्यङ् तथा मानिन् परे रहते ऊङ्वर्जित भाषित-पुस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव होता है ।

उदा.—(1) एनी इव आचरति–एतायते ।

'एनी' शब्द 'एत' शब्द से ङीप् (वर्णादनुदा०) होकर बनता है । पुँवद्भाव होकर ङीप् की निवृत्ति हो गई ।

(2) दर्शनीयमानी अयम् अस्याः ।

न कोपधायाः 6.3.36

पद.—न अव्य०, कोपधायाः 6.1

अनु.—स्त्रियाः पुवंद्भाषित पुस्कादनूङ् उत्तरपदे ।

अर्थ—ककार उपधा वाले भाषितपुस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद् नहीं होता है ।

उदा.—पाचिका भार्या यस्य सः पाचिकाभार्यः ।

मद्रिका इव आचरति–मद्रिकायते ।

संज्ञापूरण्योश्च 6.3.37

पद.—संज्ञापूरण्योः 6.2, च–अव्य० ।

अनु.—न स्त्रियाः पुवंद्भाषितपुस्कादनूङ् उत्तरपदे ।

अर्थ—संज्ञावाची व पूरणीप्रत्ययान्त भाषितपुस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव नहीं होता है ।

उदा.—(1) दत्ता भार्या यस्य सः–दत्ताभार्यः ।
दत्ता इव आचरति–दत्तायते ।

(2) पञ्चमीभार्यः ।
पञ्चमीवाऽऽचरति–पञ्चमीयते ।

वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे 6.3.38

पद.—वृद्धिनिमित्तस्य 6.1, च–अव्य०, तद्धितस्य 6.1, अरक्तविकारे 7.1

अनु.—न स्त्रियाः पुवंद्भाषितपुस्कादनूङ् उत्तरपदे ।

अर्थ—रक्त व विकार अर्थों को छोड़कर अन्य अर्थों में विहित जो वृद्धि का कारण तद्धित प्रत्यय, तदन्त भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव नहीं होता है ।

सूत्र की शर्तें—

क) तद्धित प्रत्यय जो वृद्धि का कारण हो,

ख) तद्धित प्रत्यय रक्त व विकार अर्थ में न हो,

ग) तद्धित प्रत्ययान्त शब्द से ऊङ् न किया गया हो ।

घ) तद्धित प्रत्ययान्त शब्द भाषितपुस्क स्त्रीलिंग हो ।

उदा.—(1) माथुरी भार्या यस्य सः–माथुरी शब्द में भवार्थक अण् प्रत्यय है जो वृद्धि का निमित्त भी है । पुँवद्भाव न हुआ ।

(2) माथुरीयते ।

विशेष—1. 'वृद्धिनिमित्तस्य' अर्थात् तद्धितप्रत्यय वृद्धि का कारण हो—

मध्यमा भार्या यस्य सः–'मध्यमा' शब्द में तद्धित प्रत्यय

---

1. काशि० 6.3.35 (वा०) शसि बह्वल्पार्थस्य पुँवद्भावो वक्तव्यः ।
2. वही—त्वतलोर्गुणवचनस्य पुँवद्भावो वक्तव्यः ।
3. काशि० 6.3.35 (वा०) भस्याढे तद्धिते पुँवद्भावो वक्तव्यः ।
4. वही—ठक्छसोश्च पुँवद्भावो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'म' है (मध्यान्मः) जो वृद्धि का निमित्त नहीं है । अतः पुँवद्भाव का निषेध न हुआ ।

2. 'तद्धितस्य' अर्थात् **तद्धित प्रत्यय होना** चाहिए —

काण्डलावा भार्या यस्य सः काण्डलावभार्यः । काण्डं लुनाति-अण् कृत (कर्मण्यण्) हुआ है जो वृद्धि का निमित्त तो है परन्तु तद्धित नहीं है । अतः पुँवद्भाव का निषेध न हुआ ।

3. 'अरक्तविकारे' अर्थात् **रक्तार्थक विकारार्थक** तद्धित प्रत्यय न हो—

कषायेण रक्ता काषायी । काषायी बृहतिका यस्य सः-काषायबृहतिकः यहाँ रक्त अर्थ में अण् हुआ है । अतः पुँवद्भाव का निषेध न हुआ ।

लोहस्य विकारो लौही । लौही ईषा यस्य रथस्य-लौहेषः । यहाँ विकार अर्थ में अण् हो गया । अतः पुँवद्भाव का निषेध न हुआ ।

स्वाङ्गाच्चेतः 6.3.39

पद.—स्वाङ्गात् 5.1, च-अव्य०, ईतः 6.1

अनु.—न स्त्रियाः पुँवद्भाषितपुंस्कादनूङ् उत्तरपदे ।

अर्थ—स्वांगवाची शब्द से उत्तर जो ईकार तदन्त भाषित पुंस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव नहीं होता है ।

उदा.—दीर्घकेशी भार्या यस्य सः दीर्घकेशीभार्यः । दीर्घ-केशी शब्द में ङीष् (स्वांगाच्चोप०) हुआ है । अतः पुँवद्भाव का निषेध हुआ ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'स्वांगात्' अर्थात् **स्वाँगवाची शब्द** से उत्तर ईकार हो-

पट्वी भार्या यस्य सः पटुभार्यः । पट्वी शब्द में ईकार तो है परन्तु 'पटु' शब्द स्वांगवाची नहीं है । अतः पुँवद्भाव का निषेध न हुआ ।

2. 'ईतः' अर्थात् **'ईकार' प्रत्यय,** तदन्त को ही उक्त निषेध होता है—

अविद्यमानाः केशाः यस्याः सा समास होकर ङीप् का प्रतिषेध (सहनञ्विद्यमा०) हुआ । टाप् हुआ । अकेशा भार्या यस्य सः—अकेशभार्यः । 'अकेशा' में ईकार नहीं है । अतः पुँवद्भाव का निषेध न हुआ ।

3. काशिका में प्रकृतसूत्र में 'अमानिनि' पद का योग किया गया है । यथा—दीर्घकेशमानिनी यहाँ उक्त निषेध न हुआ ।

जातेश्च 6.3.40

पद.—जातेः 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—न स्त्रियाः पुँवद्भाषितपुँस्कात् अनूङ् उत्तरपदे ।

अर्थ—जातिवाची भाषितपुँस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्भाव नहीं होता है ।

उदा.—कठीभार्यः 'जातेरस्त्रीविषया०' से ङीष् हुआ है ।

पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु 6.3.41

पद.—पुंवद्-अव्य०, कर्मधारयजातीयदेशीयेषु 7.3

अनु.—स्त्रियाः भाषितपुंस्कादनूङ् ।

अर्थ—कर्मधारय समास में तथा जातीय व देशीय प्रत्ययों के परे रहते ऊङ्वर्जित भाषितपुँस्क स्त्रीलिंग शब्द को पुँवद्-भाव होता है ।

कर्मधारय समास में 'स्त्रियाः पुँवद्भाषितपुँस्क०' के द्वारा पुँवद्भाव प्राप्त ही था । इसके अतिरिक्त 'तसिलादिष्वा०' के द्वारा जातीय तथा देशीय प्रत्ययों के परे रहते भी पुँवद्भाव प्राप्त था । प्रकृतसूत्र का तात्पर्य है कि 'न कोपधायाः' से लेकर 'जातेश्च' पर्यन्त सूत्रों के द्वारा प्राप्त निषेधस्थलों में भी पुँवद्भाव हो जाये ।

'प्रकारवचने जातीयर्' से 'जातीयर्' प्रत्यय होता है 'ईषद-समाप्तौ' से 'देशीयर्' प्रत्यय होता है ।

उदा.—(1) पाचकवृन्दारिका 'न कोपधायाः' से निषेध प्राप्त था । पाचकजातीयाः । पाचकदेशीया ।

(2) दत्तवृन्दारिका 'संज्ञायूरण्योश्च' से निषेध प्राप्त था ।
दत्तजातीया । दत्तदेशीया । पञ्चमजातीया ।

(3) माथुरभार्या 'वृद्धिनिमित्तस्य च' से निषेध प्राप्त था ।
माथुरदेशीया ।

(4) श्लक्ष्णमुखवृन्दारिका 'स्वांगाच्चेतः'—से निषेध प्राप्त था ।
श्लक्ष्णमुखजातीया । श्लक्ष्णमुखदेशीया ।

(5) कठवृन्दारिका । 'जातेश्च' से निषेध प्राप्त था ।
कठजातीया । कठदेशीया । एकवेणी (मे० 99)।

विशेष—1. अण्डादि परे रहते कुक्कुटी आदि को पुँवद्भाव होता है[1]—

कुक्कुट्या अण्डम्-कुक्कुटाण्डम् ।

1. काशि० 6.3.42 (का०वा०) कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु पुँवद्भावो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृग्याः पदम्–मृगपदम् ।
काक्याः शावः–काकशावः ।

2. खित् तथा घ आदि परे रहते पुँवद्भाव की अपेक्षा विप्रतिषेध के बल पर ह्रस्वत्व होता है[1]—

क) कालीम् आत्मानं मन्यते–कालीम् मन् य आ (आत्ममाने खश्च । दिवादिभ्यः श्यन् । टाप्)—अब पुँवद्भाव व ह्रस्वत्व की युगपद् प्रवृत्ति होती है । ह्रस्वादेश हुआ । कालिम्मन्या ।

ख) पटि्वतरा घसंज्ञक प्रत्यय हुआ है । पुँवद्भाव की अपेक्षा ह्रस्वादेश हुआ ।

ग) पट्विका–क प्रत्यय है । ह्रस्व हुआ ।

घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योनेकाचो ह्रस्वः 6.3.42

पद.—घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु 7.3, ङ्यः 6.1, अनेकाचः 6.1, ह्रस्वः 1.1

अनु.—भाषितपुंस्कात् उत्तरपदे ।

अर्थ—घ संज्ञक प्रत्यय, रूप, कल्प, चेलट्, ब्रुव, गोत्र मत तथा हत शब्द परे रहते भाषितपुँस्क शब्द से उत्तर जो ङी, तदन्त अनेकाच् शब्द को ह्रस्व होता है ।

तरप् व तमप् की घसंज्ञा है ।

पा० 5.3.66 से रूपप् प्रत्यय होता है ।

पा० 5.3.67 से कल्पप् प्रत्यय होता है । चेलट्, ब्रुव तथा गोत्र कुत्सार्थवाची शब्द हैं ।

उदा.—(1) ब्राह्मणितरा ब्राह्मणी शब्द भाषितपुँस्क स्त्रीलिंग है । ब्राह्मणी शब्द ङी (ङीन्) प्रत्ययान्त है । 'ब्राह्मणी' शब्द अनेकाच् भी है । अतः ह्रस्व हुआ ।

ब्राह्मणितमा–पूर्ववत् ।

(2) ब्राह्मणिरूपा ।
(3) ब्राह्मणिकल्पा ।
(4) ब्राह्मणिचेला । कुत्सितानि कुत्सनैः ।
(5) ब्राह्मणिब्रुवा–पूर्ववत् ।
(6) ब्राह्मणिगोत्रा–पूर्ववत् ।
(7) ब्राह्मणिमता–विशेषणं विशेष्येण० ।
(8) ब्राह्मणिहता–पूर्ववत् ।

1. वही (का०वा०)—पुँवद्भावाद् ह्रस्वत्वं खिदादिषु भवति विप्रतिषेधेन ।

विशेष—1. 'ङ्यः' अर्थात् 'ङी' अन्त में है जिसके ऐसे शब्द को ह्रस्व होता है—

दत्तातरा 'दत्ता' शब्द ङी प्रत्ययान्त नहीं है । अतः ह्रस्व न हुआ ।

2. 'अनेकाचः' अर्थात् अनेकाच् को ही ह्रस्व होता है—

द्र० पा०—6.3.43 ।

नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम् 6.3.43

पद.—नद्याः 6.1, शेषस्य 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ह्रस्वः उत्तरपदे ।

अर्थ—नदी संज्ञक शेष शब्द को विकल्प से ह्रस्व होता है, घ, रूप, कल्प, चेलट्, ब्रुव, गोत्र, मत तथा हत के परे रहते ।

'शेष' शब्द का अभिप्राय है कि पूर्वसूत्र में कथित से जो शेष रह गया है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा अङ्यन्त जो नदी संज्ञक हैं, उसे ह्रस्व होता है । इसके अतिरिक्त ङ्यन्त एकाच् नदीसंज्ञक शब्दों में भी यह सूत्र प्रवृत्त होता है ।

उदा.—(1) ब्रह्मबन्धुतरा—अङ्यन्त, अनेकाच्, घ ।
ब्रह्मबन्धूतरा ।
(2) स्त्रितरा—ङ्यन्त, एकाच्, घ । स्त्रीतरा ।
(3) ब्रह्मबन्धुरूपा ।
ब्रह्मबन्धूरूपा ।
(4) ब्रह्मबन्धुकल्पा
ब्रह्मबन्धूकल्पा ।
(5) ब्रह्मबन्धुचेली ।
ब्रह्मबन्धूचेली ।
(6) ब्रह्मबन्धुब्रुवा ।
ब्रह्मबन्धूब्रुवा ।
(7) ब्रह्मबन्धुगोत्रा ।
ब्रह्मबन्धूगोत्रा ।
(8) ब्रह्मबन्धुमता
ब्रह्मबन्धूमता ।
(9) ब्रह्मबन्धुहता ।
ब्रह्मबन्धूहता ।

विशेष—1. कृदन्त नदीसंज्ञक को ह्रस्व नहीं होता है[2]—

2. काशि० 6.3.44 कृत्नद्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मीतरा लक्ष्मी शब्द में 'ई' कृदन्त प्रत्यय है। पाक्षिक ह्रस्व न हुआ।

उगितश्च 6.3.44

पद.—उगितः 5.1, च–अव्य०।

अनु.—नद्याः अन्यतरस्याम् घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमत-हतेषु ह्रस्वः उत्तरपदे।

अर्थ—घ, रूप, कल्प, चेलट्, ब्रुव, गोत्र, मत तथा हत शब्द परे रहते उगित् शब्द से सम्बन्धित नदी संज्ञक शब्द को विकल्प से ह्रस्व होता है।

उदा.—(घ) श्रेयसितरा, श्रेयसीतरा श्रेयसितमा, श्रेयसीतमा।

(रूपप्) श्रेयसिरूपा, श्रेयसीरूपा।
(कल्पप्) श्रेयसिकल्पा, श्रेयसीकल्पा।
(चेलट्) श्रेयसिचेली, श्रेयसीचेली।
(ब्रुव) श्रेयसिब्रुवा, श्रेयसीब्रुवा।
(गोत्रम्) श्रेयसिगोत्रा, श्रेयसीगोत्रा।
(मत) श्रेयसिमता, श्रेयसीमता।
(हत) श्रेयसिहता, श्रेयसीहता।

'विद्वस्' शब्द से 'ङीप्' करके 'विदुषी' शब्द बनता है। इसी प्रकार 'विदुषी' शब्द से रूप बनाये जा सकते हैं—

विदुषितरा, विदुषीतरा।
विदुषिरूपा, विदुषीरूपा।
विदुषिकल्पा, विदुषीकल्पा।
विदुषिचेली, विदुषीचेली।

इत्यादि।

आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः 6.3.45

पद.—आत् 1.1, महतः 6.1, समानाधिकरणजातीययोः 7.2

अनु.—उत्तरपदे।

अर्थ—समानाधिकरण पद उत्तरपद रहते या जातीयर् प्रत्यय परे रहते महत् शब्द को आकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य से आकार अन्तादेश होता है। आत् में तकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—(1) महांश्चाऽसौ राजा–महत् राजन् (विशेषणं विशेष्येण०। अथवा। सन्महत् परमो०। पूर्व निपात, सुप् लुक्, अन्तादेश)–मह आ राजन्–महा राजन्–महा राज् अ (राजाहः सखि०। नस्तद्धिते)–महाराजः परवल्लिङ्गं द्वन्द्व०।

(2) महाजातीयः यहाँ जातीयर् (प्रकारवचने जातीयर्) हुआ है।

विशेष—1. 'समानाधिकरणजातीययोः अर्थात् **समानाधिकरण** उत्तरपद या **जातीय** पर रहते ही आकार अन्तादेश होता है—महतः पुत्रः–महत्पुत्रः यहाँ समानाधिकरण उत्तरपद नहीं है।

2. समानाधिकरण अर्थ के लिए महत् को आकार अन्तादेश में घास, कर तथा विशिष्ट उत्तरपद रहते पुँवद्भाव होता है[1]—

महत्या घासः–महाघासः पुँवद्भाव हुआ और अन्तादेश हुआ।

महाकरः। महाविशिष्टः।

3. हविष् अर्थ में कपाल शब्द परे रहते अष्टन् शब्द को आकार अन्तादेश होता है[2]—

अष्टाकपालम्।

4. युक्त अर्थ में 'गो' शब्द परे रहते अष्टन् को आकार अन्तादेश होता है[3]—

अष्टागवेन शकटेन।

द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः 6.3.46

पद.—द्व्यष्टनः 6.1, संख्यायाम् 7.1, अबहुव्रीह्यशीत्योः 7.2

अनु.—आत् उत्तरपदे।

अर्थ—संख्यावाचक उत्तरपद रहते 'द्वि' तथा 'अष्टन्' शब्दों को आकार अन्तादेश होता है, परन्तु बहुव्रीहि समास में तथा 'अशीति' उत्तरपद रहते अन्तादेश नहीं होता है।

उदा.—द्वौ च दश च–द्वादश। चार्थे द्वन्द्वः। संख्यायाः अल्पीयस्याः पूर्वनिपातो वक्तव्यः से पूर्वनिपात। ष्णान्ता षट्। षड्भ्यो लुक्। न लोपः प्रातिपदि०।

अष्टौ च दश च–अष्टादश।

विशेष–1. 'अबहुव्रीह्यशीत्योः' अर्थात् **बहुव्रीहि** समास में तथा **अशिति** उत्तरपद रहते आकार अन्तादेश नहीं होता है—

द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः (संख्ययाऽव्ययाऽसन्नाऽदूरा०)।
द्व्यशीतिः यहाँ अन्तादेश न हुआ।

---

1. काशि० 6.3.46 (का०वा०)—महदात्त्वे घासकर०।
2. वही—अष्टनः कपाले०।
3. वही—गवि च युक्ते०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. द्व्यष्टनः अर्थात् 'द्वि' तथा 'अष्टन्' शब्दों को ही आकार अन्तादेश होता है—

पञ्चदश यहाँ अन्तादेश न हुआ ।

3. 'संख्यायाम्' अर्थात् **संख्या** उत्तरपद रहते ही अन्तादेश होता है—

द्वैमातुरः । आष्टमातरः उत्तरपद में संख्या नहीं है । अत; अन्तादेश न हुआ ।

4. शत से पूर्व जो संख्या, उसके उत्तरपद रहते ही अन्तादेश होता है[1]—द्विशतम् यहाँ आकार न हुआ ।

त्रेस्त्रयः 6.3.47

पद.—त्रेः 6.1, त्रयः 1.1

अनु.—संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः उत्तरपदे ।

अर्थ—संख्या उत्तरपद रहते 'त्रि' शब्द को 'त्रयस्' आदेश होता है, परन्तु बहुव्रीहि समास में तथा 'अशीति' उत्तरपद रहते नहीं होता है ।

उदा.—त्रयोदश । त्रयस्त्रिंशत् ।

विभाषा चत्वारिंशत् प्रभृतौ सर्वेषाम् 6.3.48

पद.—विभाषा 1.1, चत्वारिंशत् प्रभृतौ 7.1, सर्वेषाम्6.3

अनु.—संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः उत्तरपदे ।

अर्थ—चत्वारिंशत् आदि संख्या उत्तरपद रहते द्वि, अष्टन् और त्रि शब्दों को पूर्वोक्त कार्य विकल्प से होते हैं, बहुव्रीहि समास में तथा 'अशीति' उत्तरपद रहते नहीं होते हैं ।

पूर्वोक्त का अभिप्राय है कि 'द्वि' व 'अष्टन्' को आकार अन्तादेश होता है तथा 'त्रि' शब्द को 'त्रयस्' आदेश होता है।

उदा.—द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशत्, अष्टाचत्वारिंशत् ।
त्रिपञ्चाशत्, त्रयःपञ्चाशत् ।

हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु 6.3.49

पद.—हृदयस्य 6.1, हृत् 1.1, लेखयदण्लासेषु 7.3

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—लेख, यत्, अण् तथा लास परे रहते हृदय शब्द को हृत् आदेश होता है ।

यत् और अण् प्रत्यय हैं । लेख तथा लास शब्द हैं ।

उदा.—(1) हृदयं लिखतीति–हृल्लेखः । द्र० हृल्लेखकरी (गी० 20.22)
हृदयस्य प्रियम्–हृद्यम् (यत् प्रत्यय) ।
हृदयस्येदम्–हार्दम् (अण् प्रत्यय) ।
हृदयस्य लासः–हृल्लासः ।

वा शोकष्यञ्रोगेषु 6.3.50

पद.—वा–अव्य०, शोकष्यञ्रोगेषु 7.3

अनु.—हृदयस्य हृत् उत्तरपदे ।

अर्थ—शोक, ष्यञ् तथा रोग परे रहते हृदय शब्द को विकल्प से हृत् आदेश होता है । ष्यञ् प्रत्यय है । शेष सभी शब्द हैं ।

उदा.—(1) हृदयस्य शोकः–हृत् शोकः (स्तोःश्चुना श्चुः । शश्छोऽटि)–हृच्छोकः । पक्ष में—हृदयशोकः ।

(2) शोभनं हृदयं यस्य सः सुहृदयः, तस्य भावः (कर्म वा)–सुहृत् ष्यञ्–सौहृत् य–सौहार्त् य–सौहार्द् य सु–सौहार्द्यम् (हृद्भगसिन्ध्वन्ते०) ।

पक्ष में—सौहृदय्यम् (तद्धितेष्वचाम्० । यस्येति च) ।

हृद्रोगः । हृदयरोगः ।

पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु 6.3.51

पद.—पादस्य 6.1, पद–लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, आज्याति-गोपहतेषु 7.3

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—आजि, आति, ग तथा उपहत उत्तरपद रहते 'पाद' शब्द को 'पद' आदेश होता है ।

उदा.—पादाभ्याम् अजति–पदाजिः ।
पादाभ्याम् अतति–पदातिः ।
पादाभ्यां गच्छति–पदगः । पद्गाः (भट्टि० 3.41)
पादेनोपहतः–पदोपहतः ।

पद्यत्यतदर्थे 6.3.52

पद.—पद् 1.1, यति 7.1, अतदर्थे 7.1

अनु.—पादस्य उत्तरपदे ।

अर्थ—अतदर्थ यत् प्रत्यय परे रहते 'पाद' शब्द के स्थान पर 'पद्' आदेश होता है ।

उदा.—पादौ विध्यन्ति–पद् य जस्–पद्याः ।

1. काशि० 6.3.47 (वा०) प्राक् शतादिति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. 'अतदर्थे' अर्थात् 'तदर्थ' से भिन्न यत् परे रहते ही 'पद्' आदेश होता है—

पादार्थम् उदकम्–पाद्यम् । यहाँ न हुआ ।

2. 'चरति' अर्थ में 'इक' परे रहते भी 'पद्' आदेश होता है[1]— पादाभ्यां चरति–पदिकः ।

हिमकाषिहतिषु च 6.3.53

पद.—हिमकाषिहतिषु 7.3, च–अव्य० ।

अनु.—पद् पादस्य उत्तरपदे ।

अर्थ—हिम, काषिन् तथा हति के उत्तरपद रहते 'पाद' शब्द को 'पद्' आदेश होता है ।

उदा.—पादस्य हिमम्–पद् हिमम्–पद्धिमम्, पत्काषिणः (भट्टि० 16.28, 3.4) । पादाभ्यां हन्यते–पद्धतिः ।

ऋचः शे 6.3.54

पद.—ऋचः 6.1, शे 7.1

अनु.—पादस्य पद् उत्तरपदे ।

अर्थ—'श' परे रहते ऋचा सम्बन्धी 'पाद' शब्द को 'पद्' होता है ।

उदा.—पच्छो गायत्रीं शंसति ।

विशेष—अन्यत्र पद् आदेश नहीं होता है । यथा—पादशः कार्षापणं ददाति ।

वा घोषमिश्रशब्देषु 6.3.55

पद.—वा अव्य०, घोषमिश्रशब्देषु 7.3

अनु.—पद् पादस्य उत्तरपदे ।

अर्थ—घोष, मिश्र तथा शब्द उत्तरपद रहते 'पाद' शब्द को विकल्प करके 'पद्' आदेश होता है ।

उदा.—पद्घोषः, पादघोषः–षष्ठी तत्पुरुष । पन्मिश्रः, पादमिश्रः (पूर्वसदृश०) । पच्छब्दः, पादशब्दः । षष्ठी तत्पु० ।

विशेष—'निष्क' परे रहते 'पाद' शब्द को 'पद्' आदेश होता है[2]— पन्निष्कः, पादनिष्कः ।

उदकस्योदः संज्ञायाम् 6.3.56

पद.—उदकस्य 6.1, उदः 1.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में उत्तरपद परे रहते 'उदक' शब्द को 'उद' आदेश होता है ।

उदा.—उदमेघः संज्ञा है । अतः उद आदेश हुआ ।

विशेष—1. जहाँ संज्ञा का विषय न हो वहाँ 'उद' आदेश नहीं होता है—

उदकगिरिः ।

2. उत्तरपद में भी 'उदक' शब्द को 'उद' आदेश होता है, संज्ञा के विषय में[3]—

लोहितोदः । क्षीरोदः ।

पेषंवासवाहनधिषु च 6.3.57

पद.—पेषंवासवाहनधिषु 7.3, च–अव्य० ।

अनु.—उदकस्योदः उत्तरपदे ।

अर्थ—पेषं, वास, वाहन तथा धि शब्द उत्तरपद रहते 'उदक' शब्द को 'उद' आदेश होता है ।

उदा.—(1) उदपेषं पिनष्टि (स्नेहने पिषः इति णमुल्)
(2) उदकस्य वासः–उदवासः ।
(3) उदकस्य वाहनः–उदवाहनः ।
(4) उदकं धीयतेऽस्मिन्–उदधिः (कर्मण्यधिकरणे च) ।

एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम् 6.3.58

पद.—एकहलादौ 7.1, पूरयितव्ये 7.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—उदकस्योदः उत्तरपदे ।

अर्थ—जिसे पूरा किया जाये (अर्थात् भरा जाये), तद्वाची व एकहलादि शब्द के उत्तरपद रहते 'उदक' शब्द को विकल्प से 'उद' आदेश होता है ।

'एकहलादि' शब्द में 'एक' शब्द संख्यावाची नहीं है, अपितु असहायवाची है । अतः इसका अर्थ है कि एक अकेला हल् ही तद्वाचक शब्द के आदि में होना चाहिए ।

उदा.—उदककुम्भः, उदकुम्भः ।
उदकपात्रम्, उदपात्रम् ।

'कुम्भ' व 'पात्र' को जल से पूर्ण किया जाना है तथा इनके आदि में तुल्य जातीयक कोई अन्य हल् नहीं है ।

---

1. काशि० 6.3.53 (का०वा०) पद्भावे इके चरतावुपसंख्यानम् ।
2. काशि० 6.3.56 (का०वा०) निष्के चेति वक्तव्यम् ।
3. काशि० 6.3.57 (का०वा०) संज्ञायामुत्तरपदस्य उदकशब्दस्य० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. 'एकहलादौ' अर्थात् **एक ही हल् आदि** में है, ऐसे शब्द के उत्तरपद रहते 'उद' आदेश होता है—

उदकस्थालम्–यहाँ न हुआ।

2. 'पूरयितव्ये' अर्थात् **जिसे भरा जाना है,** तद्वाचक शब्द उत्तरपद रहते 'उद' आदेश होता है—

उदकपर्वतः–'पर्वत' को जल से पूर्ण नहीं किया जाता है। अतः 'उद' आदेश न हुआ।

मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु 6.3.59

पद.—मन्थौदनस–हेषु 7.3, च–अव्य०।

अनु.—अन्यतरस्याम् उदकस्योदः उत्तरपदे।

अर्थ—मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध तथा गाह शब्दों के उत्तरपद रहते 'उदक' शब्द को विकल्प से 'उद' आदेश होता है।

उदा.—उदकेन मन्थः–उदमन्थः, उदकमन्थः।
उदकेनोदनः–उदौदनः, उदकौदनः।
उदकेन सक्तुः–उदसक्तुः, उदकसक्तुः।
उदकस्य बिन्दुः–उदबिन्दुः, उदकबिन्दुः।
उदकस्य वज्रः–उदवज्रः, उदकवज्रः।
उदकं बिभर्त्ति–उदभारः, उदकभारः।
उदकं हरति–उदहारः, उदकहारः।
उदकस्य वीवधः–उदवीवधः, उदकवीवधः।
उदकं गाहते–उदगाहः, उदकगाहः।

इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य 6.3.60

पद.—इकः 6.1, ह्रस्वः 1.1, अङ्यः 6.1, गालवस्य 6.1

अनु.—अन्यतरस्याम् उत्तरपदे।

अर्थ—अङ्यन्त व इगन्त शब्द को गालव आचार्य के मत में विकल्प से ह्रस्व होता है, उत्तरपद परे रहते।

अङ्यन्त का अर्थ है—जिसके अन्त में 'ङी' नहीं है।

इगन्त–इक् है अन्त में जिसके।

उदा.—ग्रामणिपुत्रः, ग्रामणीपुत्रः।

ब्रह्मबन्धुपुत्रः, ब्रह्मबन्धूपुत्रः। द्र० भ्रुकुटी (भट्टि० 3.30)

विशेष—1. 'इकः' अर्थात् **इगन्त** शब्द को ही ह्रस्व होता है—

खट्वापादः खट्वा शब्द अङ्यन्त है। परन्तु इगन्त नहीं है। अतः ह्रस्व न हुआ।

2. 'अङ्यः' अर्थात् **अङ्यन्त को** ही ह्रस्व होता है—

गार्गीपुत्रः गार्गी शब्द इगन्त व ङ्यन्त है। अतः ह्रस्व न हुआ।

3. जिनमें इयङ् उवङ् आदेश होता है, उन शब्दों को तथा अव्यय शब्दों को ह्रस्व नहीं होता है[1]—

श्रीकुलम् श्रीशब्द इगन्त व अङ्यन्त है परन्तु इयङ्भावी है। अतः ह्रस्व न हुआ। इसी प्रकार–भ्रूकुलम्।

4. 'भ्रुकुंस' आदि शब्दों को अकार आदेश होता है[2]—

भ्रकुंसः। भ्रकुटिः।

एकतद्धिते च 6.3.61

पद.—एक–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, तद्धिते 7.1, च–अव्य०

अनु.—ह्रस्वः उत्तरपदे।

अर्थ—तद्धित प्रत्यय परे रहते तथा उत्तरपद परे रहते 'एक' शब्द को ह्रस्व होता है—

सामर्थ्यवशात् स्त्रीलिंग 'एका' का ग्रहण होता है।

उदा.—एकस्या भावः–एकत्वम्।
एकस्या दुग्धम्–एकदुग्धम्।

ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् 6.3.62

पद.—ङ्यापोः 6.2, संज्ञाछन्दसोः 7.2, बहुलम् 1.1

अनु.—ह्रस्वः उत्तरपदे।

अर्थ—वेद के विषय में तथा संज्ञा के विषय में ङ्यन्त तथा आबन्त शब्द को बहुलता से ह्रस्व होता है, उत्तरपद परे रहते।

उदा.—(1) रेवतिपुत्रः 'रेवती' ङ्यन्त शब्द है। संज्ञा के विषय में ह्रस्व हुआ।

(2) कुमारिदा 'कुमारी' शब्द ङ्यन्त है।
वेद में ह्रस्व हुआ है।

(3) शिलवहम् 'शिला' शब्द आबन्त है।
संज्ञा में ह्रस्व हुआ।

---

1. काशि० 6.3.61 (वा०) इयङुवङ्भाविनामव्ययानां च न भवति।
2. वही—भ्रुकुंसादीनामकारो भवतीति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) अजक्षीरम् 'अजा' आबन्त शब्द है।
वेद में ह्रस्व हुआ है।

(5) बहुलम् पद सर्वविधिव्यभिचारार्थ होता है। अतः कई स्थलों पर ह्रस्व प्राप्त नहीं होता है—

नान्दीकरः। नान्दीघोषः। जगतीच्छन्दः। लोमकागृहम्। ऊर्णासूत्रम्।

त्वे च 6.3.63

पद.—त्वे 7.1, च-अव्य०।

अनु.—ङ्यपो बहुलम् ह्रस्वः।

अर्थ—त्व प्रत्यय परे रहते ङ्यन्त और आबन्त शब्द को बहुल करके ह्रस्व होता है।

उदा.—अजाया भावः अजत्वम्।
रोहिणित्वम्।

ह्रस्व नहीं होता है—

अजात्वम्, रोहिणीत्वम्।

इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु 6.3.64

पद.—इष्टकेषीकामालानाम् 6.3, चिततूलभारिषु 7.3

अनु.—ह्रस्वः उत्तरपदे।

अर्थ—चित्त, तूल तथा भारिन् शब्दों के क्रमशः उत्तरपद रहते इष्टका, इषीका और माला शब्दों को ह्रस्व होता है।

उदा.—इष्टकचित्तम्।
इषीकतूलम्।
मालभारिणी।

विशेष—इष्टका आदि शब्द हैं अन्त में जिनके, ऐसे शब्दों को भी ह्रस्व होता है[1]—

पक्वेष्टकाचित्तम्।
मुञ्जेषीकतूलम्।
उत्पलमालभारिणी।

खित्यनव्ययस्य 6.3.65

पद.—खिति 7.1, अनव्ययस्य 6.1

अनु.—ह्रस्वः उत्तरपदे।

अर्थ—खित् प्रत्यय है अन्त में जिसके, ऐसे उत्तरपद के रहते पूर्वपद को ह्रस्व आदेश होता है, परन्तु अव्यय को ह्रस्वादेश नहीं होता है।

उदा.—आत्मानं कालीं मन्यते-काली मन् श्यन् खश् (आत्ममाने खश्च से श्यन्)-काली मन् य अ-काली मन्य (अतो गुणे)-कालिमन्य-कालिमुम् मन्य (मुम्)-कालिम्मन्या (टाप्, सु)।

प्रथम ह्रस्व करना चाहिए, पश्चात् मुम् करें। प्रथम मुम् करने की दशा में पूर्वपद के अजन्त न रहने से ह्रस्वादेश न हो सकेगा। इसी प्रकार-नाडिन्धमान् (भट्टि० 6.94)।

विशेष—'अनव्ययस्य' अर्थात् अव्यय को ह्रस्व नहीं होता है—

दिवा आत्मानं मन्यते-दिवामन्या रात्रिः।
दोषामन्यम् अहः।

अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.66

पद.—अरुर्द्विषदजन्तस्य 6.1, मुम् 1.1

अनु.—खित्यनव्ययस्य उत्तरपदे।

अर्थ—खिदन्त उत्तरपद रहते अरुस्, द्विषत् तथा अजन्त शब्दों को मुम् आगम होता है, परन्तु अव्यय को नहीं होता है। मुम् के अन्त्य मकार व उकार की इत्संज्ञा होती है। मित् होने से यह अन्त्य अच् से पर होता है।

उदा.—(1) अरुस्तुदति-अरुस् तुद् खश् (विध्वरुषोस्तुदः)-अरुस् तुद् श अ (श विकरण, अतो गुणे)-अरु मुम् स् तुद (मुम्, संयोगान्त लोप)-अरुम् तुद (अनुस्वार, पाक्षिक परसवर्ण, सु) अरुन्तुदः, अरुंतुदः। अभ्रंलिहाग्राः (मे० 68)।

(2) द्विषन्तं तापयति-द्विषत् तापि खच् (द्विषत्परयोस्तापे)-द्विषत् तप् इ अ (खचि ह्रस्वः)-द्विषत् तप् अ (णेरनिटि)-द्विष मुम् त् तप द्विषम् तप् (मुम्, संयोगान्त लोप) द्विषन्तपः (अनुस्वार, परसवर्ण, सु)।

(3) जनम् एजयति-जन एजि-जन एजि शप् खश् (एजेः खश्। कर्त्तरि शप्)-जन मुम् एजे अ (पररूप, इकार को गुण, मुम्)-जनमेजय सु-जनमेजयः। सत्त्वमेजयः (भट्टि० 6.94) इसी प्रकार-कालिम्मन्या। वातमजः (भट्टि० 2.17)।

विशेष—1. अरुस् आदि को ही मुम् होता है—

आत्मानं विद्वासं मन्यते-विद्वन्मन्यः यहाँ मुम् न हुआ।

2. 'अजन्त' यहाँ 'अन्त' पद के ग्रहण के द्वारा कृत अजन्त कार्य का ज्ञान होता है। फलतः ह्रस्वादेश करने के पश्चात् मुम् होता है।

1. काशि० 6.3.65

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च 6.3.67

पद.—इचः 6.1, एकाचः 6.1, अम् 1.1, प्रत्ययवत्-अव्य०, च-अव्य० ।

अनु.—खिति उत्तरपदे ।

अर्थ—खिदन्त उत्तरपद रहते इजन्त एकाच् शब्द को अम् आगम होता है और वह आगम अम् प्रत्यय के समान होता है ।

'प्रत्यय' पद के द्वारा द्वितीया एकवचन में 'अम्' का ग्रहण होता है ।

प्रकृत सूत्र के द्वारा विहित 'अम्' आगम को वे सभी कार्य होते हैं जो अम् प्रत्यय को होते हैं ।

अम् के विभक्ति होने से उसके अन्त्य हल् मकार की इत्संज्ञा का निषेध हो गया (न विभक्तौ तुस्माः) । यद्यपि 'अम्' आगम है, परन्तु प्रत्ययवत् मान लेने पर 'परश्च' नियम के बल पर इजन्त शब्द से पर ही होता है ।

उदा.—(1) आत्मानं गां मन्यते-गो मन् श्यन् अ-गो अम् मन् य-गाम् मन्य (खश्, श्यन् पररूप अम् आगम, आत्व-औतोऽम्शसोः)-गाम्मन्यः (सु) ।

(2) स्त्री अम् मन् श्यन् खश्-स्त्रीम् मन्य (खश्, श्यन्, पररूप, अम्, अमिपूर्वः)-स्त्रीम्मन्यः (सु) ।

इयङ् पक्ष में (वाऽम्शसोः) स्त्रियम्मन्यः ।

(3) नृ अम् मन् श्यन् खश् (पूर्ववत्)-

नर् अम् मन्य (ऋतो ङिसर्व०)-नरम्मन्यः ।

(4) श्रियम्मन्यः, भ्रुवम्मन्यः (अचि श्नुधातु०) ।

विशेष—1. 'इचः' अर्थात् **इजन्त शब्द को** ही अम् आगम होता है—

त्वङ्मन्यः त्वच् शब्द इजन्त नहीं है । अतः अम् न हुआ ।

2. 'एकाचः' अर्थात् **'एकाच्'** को ही अम् आगम होता है—

लेखाभ्रुम्मन्यः लेखाभ्रू शब्द इजन्त तो है, परन्तु एकाच् नहीं है । अतः अम् आगम न हुआ । मुम् हो गया ।

वाचंयमपुरन्दरौ च 6.3.68

पद.—वाचंयमपुरन्दरौ 1.2, च-अव्य० ।

अनु.—मुम् ।

अर्थ—वाचंयम तथा पुरन्दर शब्दों में अम् आगम का निपातन किया जाता है ।

उदा.—वाचं यच्छति-वाचंयमः (वाचि यमो व्रते, भट्टि० 6.102, 3.41) ।

पुरं दारयति-पुरन्दरः (पूःसर्वयोर्दा०) ।

कारे सत्यागदस्य 6.3.69

पद.—कारे 7.1, सत्यागदस्य 6.1

अनु.—मुम् उत्तरपदे ।

अर्थ—कार शब्द उत्तरपद रहते सत्य तथा अगद शब्दों को मुम् आगम होता है ।

उदा.—सत्यं करोति-सत्यङ्कारः (नश्चाऽपदा०। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) ।

इसी प्रकार-अगदङ्कारः ।

विशेष—1. 'कार' शब्द उत्तरपद रहते अस्तु, सत्य तथा अगद शब्दों को मुम् आगम होता है[1]—अस्तुङ्कारः ।

2. वेद के विषय में 'कार' शब्द परे रहते भक्ष शब्द को मुम् आगम होता है[2]—भक्षङ्कारः ।

3. वेद में 'धेनु' शब्द से 'होने वाली' इस अर्थ में मुम् आगम होता है[3]—धेनुम्भव्या ।

4. 'पृण' शब्द परे रहते 'लोक' शब्द को मुम् आगम होता है[4]—लोकम्पृणः ।

5. 'इत्य' शब्द परे रहते 'अनभ्याश' शब्द को मुम् आगम होता है[5]—अनभ्याशमित्यः ।

6. 'इन्ध' शब्द परे रहते 'भ्राष्ट्र' तथा 'अग्नि' शब्दों को मुम् आगम होता है[6]—भ्राष्ट्रमिन्धः अग्निमिन्धः ।

7. 'गिल' शब्द परे रहते गिलभिन्न शब्द को मुम् आगम होता है[7]—तिमिङ्गिलः ।

गिल परे रहते गिल के मुम आगम नहीं होता है—

---

1. काशि० 6.3.70 (का०वा०) अस्तुसत्याग० ।
2. वही (का०वा०) भक्षस्य छन्दसि कारे मुम् ० ।
3. काशि० 6.3.70 (का०वा०) धेनोर्भव्यायां मुम् वक्तव्यः ।
4. वही (का०वा०) लोकस्य पृणे मुम् वक्तव्यः ।
5. वही (का०वा०) इत्येऽनभ्याशस्य मुम् वक्तव्यः ।
6. वही (का०वा०) भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे मुम् वक्तव्यः ।
7. वही (का०वा०) गिलेऽगिलस्य ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिलगिलः ।

8. 'गिलगिल' शब्द परे रहते पूर्वपद को मुम् आगम होता है[1]—तिमिङ्गिलगिलः ।

9. 'करण' शब्द परे रहते उष्ण तथा भद्र शब्दों को मुम् आगम होता है[2]—उष्णङ्करणम् । भद्रङ्करणम् ।

10. सूत, उग्र, राज, भोज तथा मेरु शब्दों से उत्तर 'दुहितृ' शब्द को विकल्प से 'पुत्रट्' आदेश होता है[3]—

सूतपुत्री (पुत्रट् पक्ष में टिड्ढाण्० से ङीप्) सूतदुहिता ।
उग्रपुत्री, उग्रदुहिता ।
राजपुत्री, राजदुहिता ।
भोजपुत्री, भोजदुहिता ।
मेरुपुत्री, मेरुदुहिता ।

श्येनतिलस्य पाते ञे 6.3.70

पद.—श्येनतिलस्य 6.1, पाते 7.1, ञे 7.1

अनु.—मुम् उत्तरपदे ।

अर्थ—'पात' शब्द के उत्तरपद रहते तथा 'ञ' प्रत्यय परे रहते 'श्येन' तथा 'तिल' शब्दों को मुम् आगम होता है ।

उदा.—श्येनस्य पातोऽस्यां क्रीडायाम्—

श्यैनम्पाता (आदि वृद्धि) ।
तैलम्पाता ।

विशेष—जहाँ 'ञ' प्रत्यय परे न होगा, वहाँ मुम् नहीं होगा—श्येनपातः ।

रात्रेः कृति विभाषा 6.3.71

पद.—रात्रेः 6.1, कृति 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—मुम् उत्तरपदे ।

अर्थ—कृदन्त उत्तरपद रहते 'रात्रि' शब्द को विकल्प से मुम् आगम होता है ।

उदा.—रात्रिञ्चरः (रात्रिञ्चरालयम्, द्र० भट्टि 5.95), रात्रिचरः । 'चरेष्टः' से टप्रत्यय हुआ । रात्रिमटः, रात्र्यटः । अच् प्रत्यय हुआ ।

नलोपो नञः 6.3.72

पद.—नलोपः 1.1, नञः 6.1

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—उत्तरपद परे रहते 'नञ्' के नकार का लोप होता है।

उदा.—न ब्राह्मणः—नञ् ब्राह्मण—न ब्राह्मण अब्राह्मण सु—अब्राह्मणः ।

विशेष—अवक्षेप अर्थ में तिङ् में नञ् के नकार का लोप होता है[4]—अपचसि त्वं जाल्म ।

तस्मान्नुडचि 6.3.73

पद.—तस्मात् 5.1, नुट् 1.1, अचि 7.1

अनु.—नञः उत्तरपदे ।

अर्थ—तस्मात् अर्थात् जिसके नकार का लोप हो चुका है ऐसे नञ् से उत्तर अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम होता है । उकार तथा टकार की इत्संज्ञा होती है । टित् होने से नुट् आदि अवयव होता है । 'तस्मात्' पद में पञ्चमी का प्रयोग होने से उससे पर अव्यवहित नुट् होना चाहिए । 'अचि' में सप्तमी का निर्देश है । अतः अच् के परे रहते अव्यवहित पूर्व को नुट् होना चाहिए ।

इस दशा में 'उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्' परिभाषा निर्णय करती है कि पञ्चमी विभक्ति सप्तमी से बलवान् होती है । फलतः तस्मात् (नञः) यह निर्देश बलवान् हुआ । इस प्रकार नुट् लुप्तनकार नञ् से अव्यवहित पर अजादि उत्तरपद का ही अवयव होगा ।

उदा.—न अश्वः—नञ् अश्व सु—नञ् अश्व—न अश्व—अ अश्व—अनुट् अश्व—अनश्व सु—अनश्वः ।

विशेष—1. 'अचि' अर्थात् अजादि उत्तरपद को ही नुट् आगम होता है—

अब्राह्मणः. नुट् न हुआ ।

2. 'तस्मात्' अर्थात् लुप्तनकार नञ् से ही उत्तर अजादि उत्तरपद को नुट् होता है । यदि 'नञ्' को नुट् आगम होता तो 'ङमो ह्रस्वादचि ङ्मुण् नित्यम्' द्वारा ङमुट् होकर अनिष्ट रूप प्राप्त होता है ।

नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसक-नक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या 6.3.74

पद.—नभ्राण्न ... केषु 7.3, प्रकृत्या 3.1

अनु.—नञः ।

---

1. वही (का०वा०) गिलगिले चेति वक्तव्यः ।
2. वही (का०वा०) उष्णभद्रयोः करणे मुम् वक्तव्यः ।
3. वही (का०वा०) सूतोग्रराजभोज० ।
4. महा० 6.3.73 (वा०) अवक्षेपे तिङ्युपसङ्ख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—सूत्रोक्त नभ्राट् आदि शब्दों में नञ् को प्रकृतिभाव होता है।

भाव यह है कि नभ्राट् आदि शब्दों में 'नलोपो नञः' तथा 'तस्मान्नुडचि' सूत्र प्रवृत्त नहीं होते हैं।

उदा.—(1) न भ्राजते–नभ्राट् (भ्राजभास०। व्रश्च भ्रस्ज०)।

(2) न पातीति–नपात्।

(3) न वेत्तीति–नवेदाः (असुन् औणादिक)।

(4) सत्सु साधवः–सत्याः। न सत्याः असत्याः। न असत्याः नासत्याः।

(5) न मुञ्चतीति–नमुचिः।

(6) नाऽस्य कुलमस्तीति–नकुलः।

(7) नाऽस्य खमस्तीति–नखम्।

(8) न स्त्री न पुमान्–नपुंसकम्।

(9) न क्षरति (क्षीयते वा)–नक्षत्रम्।

(10) न क्रामति–नक्रः।

(11) नास्मिन् अकम्–नाकम्।

एकादिश्चैकस्य चादुक् 6.3.75

पद.—एकादिः 1.1, च–अव्य०, एकस्य 6.1, च–अव्य०, आदुक् 1.1

अनु.—प्रकृत्या नञः उत्तरपदे।

अर्थ—'एक' है आदि में जिसके, ऐसे नञ् को प्रकृतिभाव होता है, उत्तरपद परे रहते तथा एक शब्द को आदुक् आगम होता है। यद्यपि सभी वृत्तिकारों ने इस सूत्र के द्वारा 'आदुक्' आगम माना है, परन्तु पतञ्जलि के अनुसार यहाँ 'अदुक्' आगम है। सम्भवतः पतञ्जलि की दृष्टि में न्यायशास्त्रीय लाघव रहा हो। जबकि वृत्तिकार का उद्देश्य सूत्रकार्य को सरल बनाना होता है।[1]

आदुक् के ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—पहले 'नञ्' व 'विंशति' का समास होता है। नविंशतिः। तब 'एक' शब्द के साथ इसका समास होता है—एक आदुक् न विंशति–एकाद् नविंशति–एकान्नविंशति सु–एकाद्नविंशतिः, एकान्नविंशतिः।

नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् 6.3.76

पद.—नगः 1.1, अप्राणिषु 7.3, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—प्रकृत्या नञः उत्तरपदे।

अर्थ—प्राणिभिन्न अर्थ में वर्त्तमान 'नग' शब्द के 'नञ्' को विकल्प से प्रकृतिभाव होता है।

उदा.—न गच्छति–नगः।

पक्ष में—अगः।

'प्राणिषु' अर्थात् **प्राणिभिन्न** अर्थ में ही नञ् को प्रकृतिभाव होता है—

अगो वृषलः शीतेन। यहाँ प्रकृतिभाव न हुआ।

सहस्य सः संज्ञायाम् 6.3.77

पद.—सहस्य 6.1, सः 1.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—उत्तरपदे।

अर्थ—संज्ञा के विषय में उत्तरपद परे रहते 'सह' शब्द को 'स' आदेश होता है।

उदा.—सह पुत्रेण–सपुत्रः (तेन सहेति०)। जहाँ संज्ञा का विषय न होगा, वहाँ उक्त आदेश न होगा—

सहयुध्वा।

ग्रन्थान्ताधिके च 6.3.78

पद.—ग्रन्थान्ताधिके 7.1, च–अव्य०।

अनु.—सहस्य सः उत्तरपदे।

अर्थ—ग्रन्थ के अन्त व अधिक अर्थ में वर्त्तमान 'सह' के स्थान पर 'स' आदेश होता है, उत्तरपद परे रहते।

उदा.—समुहूर्त्तम्।

समाषः।

द्वितीये चानुपाख्ये 6.3.79

पद.—द्वितीये 7.1, च–अव्य०, अनुपाख्ये 7.1

अनु.—सहस्य सः उत्तरपदे।

अर्थ—अनुमान के योग्य अप्रधानवाची उत्तरपद परे रहते 'सह' के स्थान पर 'स' आदेश होता है।

उदा.—अग्निना सह वर्त्तते–साग्निः।

अव्ययीभावे चाकाले 6.3.80

पद.—अव्ययीभावे 7.1, च–अव्य०, अकाले 7.1

अनु.—सहस्य सः उत्तरपदे।

अर्थ—अव्ययीभाव समास में अकालवाची शब्द के उत्तरपद रहते 'सह' को 'स' आदेश होता है।

1. महा० (प्रदीप) 6.3.75 तुल्यायामपि संहितायां प्रतिपत्ति-लाघवाय वृत्तिकारैरादुगाश्रितः, भाष्यकारेण तु न्यायाद् अदुगेव स्थापितः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—सचक्रम्–चक्रेण सह । 'अव्ययं विभक्तिसमीप समृद्धि०' ।

विशेष—'अकाले' अर्थात् **कालभिन्न शब्द** के उत्तरपद रहते ही 'स' आदेश होता है—

सह पूर्वाह्णम् यहाँ न हुआ ।

वोपसर्जनस्य 6.3.81

पद.—वा अव्य, उपसर्जनस्य 6.1

अनु.—सहस्य सः ।

अर्थ—जिसमें सब अवयव उपसर्जन हैं, उस बहुव्रीहि समास के अवयवभूत 'सह' शब्द को 'स' आदेश विकल्प से होता है, उत्तरपद परे रहते ।

उदा.—सपुत्रः, सहपुत्रः ।

बहुव्रीहि के सभी पद उपसर्जन होते हैं ।

विशेष—'उपसर्जनस्य' का प्रयोजन है कि 'सहयुध्वा' में 'स' आदेश न हो ।

प्रकृत्याऽशिषि 6.3.82

पद.—प्रकृत्या 3.1, आशिषि 7.1

अनु.—सहस्य ।

अर्थ—आशीर्वाद गम्यमान हो तो 'सह' शब्द को प्रकृति-भाव होता है ।

उदा.—स्वस्ति देवदत्ताय सहपुत्राय ।

समानस्य छन्दस्यमूर्ध्वप्रभृत्युदर्केषु 6.3.83

पद.—समानस्य 6.1, छन्दसि 7.1, अमूर्ध्वप्रभृत्युदर्केषु 7.3

अनु.—सः उत्तरपदे ।

अर्थ—वेद के विषय में 'समान' शब्द के स्थान पर 'स' आदेश होता है, परन्तु मूर्धन्, प्रभृति और उदर्क उत्तरपद रहते 'स' आदेश नहीं होता है ।

उदा.—समानो गर्भः–सगर्भः ।
पूर्वापरप्रथम० से समास ।
सगर्भ्यः (तै०1.2.4.2, शत० 3.2.4.20) ।

विशेष—अमूर्ध० अर्थात् उत्तरपद में **मूर्धन्, प्रभृति** तथा **उदर्क** शब्द हों तो उक्त आदेश नहीं होता है—

समानमूर्धा (तै०सं० 4.3.11.4) ।
समानप्रभृतयः ।
समानोदर्काः (तै०सं० 5.3.1.2, शां० 8.4) ।

ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्ण-वयोवचनबन्धुषु 6.3.84

पद.—ज्योतिर्जनपदरात्रि .... बन्धुषु 7.3

अनु.—समानस्य सः उत्तरपदे ।

अर्थ—ज्योतिस्, जनपद, रात्रि, नाभि, नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन तथा बन्धु—इनके उत्तरपद रहते 'समान' को 'स' आदेश होता है ।

उदा.—(1) समानं ज्योतिरस्य–सज्योतिः ।
(2) सजनपदः ।
(3) सरात्रिः ।
(4) सनाभिः ।
(5) सनामाः सर्वनामस्थाने० ।
(6) सगोत्रः ।
(7) सरूपः ।
(8) सस्थानः ।
(9) सवर्णः ।
(10) सवयाः (अत्वसन्तस्य०) ।
(11) सवचनः ।
(12) सबन्धुः ।

चरणे ब्रह्मचारिणि 6.3.85

पद.—चरणे 7.1, ब्रह्मचारिणि 7.1

अनु.—समानस्य सः उत्तरपदे ।

अर्थ—चरण गम्यमान हो तो ब्रह्मचारी उत्तरपद रहते 'समान' को 'स' आदेश होता है ।

उदा.—समानो ब्रह्मचारी–सब्रह्मचारी ।

तीर्थे ये 6.3.86

पद.—तीर्थे 7.1, ये 7.1

अनु.—समानस्य सः उत्तरपदे ।

अर्थ—'तीर्थ' शब्द उत्तर पद रहते तथा यप्रत्यय परे रहते 'समान' शब्द के स्थान पर 'स' आदेश होता है ।

उदा.—सतीर्थ्यः । समानतीर्थे वासी ।

विभाषोदरे 6.3.87

पद.—विभाषा 1.1, उदरे 7.1

अनु.—ये समानस्य सः उत्तरपदे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'उदर' शब्द उत्तरपद रहते य प्रत्यय परे हो तो 'समान' शब्द को 'स' आदेश विकल्प से होता है।

उदा.—सोदर्यः। समानोदर्यः (समानोदरे) शयित ओ चोदात्तः। सोदराद्यः।

दृग्दृशवतुषु 6.3.88

पद.—दृग्दृशवतुषु 7.3

अनु.—समानस्य स उत्तरपदे।

अर्थ—दृश्, दृश व वतु-इनके उत्तरपद रहते 'समान' शब्द को 'स' आदेश होता है। दृश् से तात्पर्य क्विन्नन्त 'दृश्' से है तथा 'दृश्' से तात्पर्य कञन्त 'दृश्' से है।

उदा.—सदृक्। सदृशः।

समानाऽन्ययो श्चेति वक्तव्यम् के द्वारा क्विन् तथा कञ् प्रत्यय होता है। वतुप् प्रत्यय परे रहते कोई उदाहरण नहीं है।

विशेष—'दृक्ष' परे रहते 'समान' को 'स' आदेश होता है[1]—सदृक्षः।

इदङ्किमोरीश्की 6.3.89

पद.—इदङ्किमोः 6.2, ईश्की-लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः।

अनु.—दृग्दृशवतुषु उत्तरपदे।

अर्थ—दृश्, दृश तथा वतु परे रहते 'इदम्' तथा 'किम्' के स्थान पर यथासंख्य करके 'ईश्' तथा 'की' आदेश होते हैं।

उदा.—ईदृक् (दृश्)।
ईदृशः (दृश)।
इयान् (वतु)।
कीदृक् (दृश्)।
कीदृशः (दृश)।
कियान् (वतु)।

विशेष—'दृक्ष' परे रहते भी 'ईश्' व 'की' आदेश होते हैं। द्र० काशिका-दृक्षे चेति वक्तव्यम्।

ईदृक्षः। कीदृक्षः।

आ सर्वनाम्नः 6.3.90

पद.—आ-लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, सर्वनाम्नः 6.1

अनु.—दृग्दृशवतुषु उत्तरपदे।

अर्थ—दृश्, दृश तथा वतु परे रहते सर्वनाम को आकार अन्तादेश होता है।

उदा.—(1) तादृक्-तादृश् सु-तादृश् (सुलोप)-क्विन् प्रत्ययस्य कुः (पा० 8.2.62) के असिद्ध होने से व्रश्चभ्रस्ज० (पा० 8.2.36) के द्वारा षकार-तादृष्। तादृड्-तादृग् (झलां जशोऽन्ते। क्विन् प्रत्ययस्य कुः)-तादृग्, क् (वाऽवसाने)।

(2) तादृश सु-तादृशः।
(3) तावत् सु-तावान्।
(4) यादृक्, यादृशः, यावान्।

'दृक्ष' परे रहते भी उक्त अन्तादेश होता है—

तादृक्षः, यादृक्षः।

विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये 6.3.91

पद.—विष्वग्देवयो 6.2, च-अव्य०, टेः 6.1, अद्रि लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, अञ्चतौ 7.1, वप्रत्यये 7.1

अनु.—सर्वनाम्नः उत्तरपदे।

अर्थ—वप्रत्ययान्त अञ्चु धातु के परे रहते विष्वग्, देव शब्दों के तथा सर्वनाम शब्दों के टिभाग को 'अद्रि' आदेश होता है क्विप् व क्विन् प्रत्ययों का 'व' शेष रहता है। इसी का यहाँ ग्रहण है।

उदा.—(1) विष्वग् अञ्चतीति-विश्व् अद्रि अङ् (ऋत्विग्दधृक्० से क्विन् होकर अञ्चु धातु से 'अङ्' बनता है)—विष्वद्र्यङ् सु-विश्वद्र्यङ्।

(2) देवद्र्यङ्। देवद्र्यञ्चः (भट्टि० 19.3)
(3) तद्र्यङ्।
यद्र्यङ्।

विशेष—1. 'विष्वग्देवयोः' अर्थात् **'विष्वग्'** और **'देव'** शब्दों के टिभाग को 'अद्रि' आदेश होता है—

अश्वाची-यहाँ 'अद्रि' आदेश न हुआ।

2. 'अञ्चतौ' अर्थात् **'अञ्चु'** धातु के परे रहते ही 'अद्रि' आदेश होता है—

विष्वग्युक् यहाँ न हुआ।

समः समि 6.3.92

पद.—समः 6.1, समि 1.1 (क्लीबे)।

अनु.—अञ्चतौ वप्रत्यये उत्तरपदे।

अर्थ—वप्रत्ययान्त अञ्चु धातु के उत्तरपद रहते 'सम्' को 'समि' आदेश होता है।

1. महा० 6.3.89 (वा०) दृग्दृशवतुषु दृक्ष उपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—सम्यङ् ।

सम् अञ्चु क्विन्-सम् अञ्च्-सम् अच् (ऋत्विग्दधृक्०। अनिदितां हलः-)-समि अच् सु-समि अनुम् च् स्-सम्यन् उगिदचां०। सुलोप । संयोगान्तलोप)-सम्यङ् (क्विन् प्रत्ययस्य-) ।

तिरसस्तिर्यलोपे 6.3.93

पद.—तिरसः 6.1, तिरि 1.1 (नपुँसके), अलोपे 7.1

अनु.—अञ्चतौ वप्रत्यये उत्तरपदे ।

अर्थ—वप्रत्ययान्त अञ्चु धातु के उत्तरपद रहते 'तिरस्' को 'तिरि' आदेश होता है, यदि अञ्चु के अकार का लोप न हुआ हो । अञ्चु धातु के अकार का लोप भसंज्ञक प्रत्यय में (अचः) होता है ।

उदा.—तिरस् अञ्चु क्विन्-तिरस् अञ्च्-तिरस् अच्-तिरि अच् सु-तिरि अनुम् च् स् तिरि अन् (नकार लोप, नुम्, सु, सुलोप, संयोगान्तलोप)-तिर्यन्-तिर्यङ् ।

विशेष—'अलोपे' अर्थात् अञ्चु को **अकार का लोप न होने की दशा** में ही 'तिरि' आदेश होता है—

तिरस् अञ्चु क्विन्-तिरस् अञ्च् टा-(अचः से अकार लोप)-तिरश्चा 'तिरि' आदेश न हुआ । शेष नकार लोप आदि हुआ ।

सहस्य सध्रिः 6.3.94

पद.—सहस्य 6.1, सध्रिः 1.1

अनु.—अञ्चतौ वप्रत्यये उत्तरपदे ।

अर्थ—व प्रत्ययान्त अञ्चु धातु के उत्तरपद रहते 'सह' के स्थान पर 'सध्रि' आदेश होता है ।

उदा.—सह अञ्चु क्विन्-सह अञ्च्-सह अच्-सध्रि अच्-सध्रि अच् सु-सध्र्यच् सु-सध्र्य नुम् च् स्-सध्र्यन् च्-सध्र्यन्-सध्र्यङ् । इसी प्रकार सध्रीचीम् (भट्टि० 6.7)

सधमादस्थयोश्छन्दसि 6.3.95

पद.—सध-लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, मादस्थयोः 7.2, छन्दसि 7.1

अनु.—सहस्य उत्तरपदे ।

अर्थ—वेद के विषय में 'माद' और 'स्थ' उत्तरपद रहते 'सह' को 'सध' आदेश होता है ।

उदा.—सधमादेः (ऋ० 8.2.3, तै०ब्रा० 3.1.1.8) ।
सधस्थम् (ऋ० 3.62.15, शत० 3.5.3.21) ।

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् 6.3.96

पद.—द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यः 5.3, अपः 6.1, ईत् 1.1

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—द्वि, अन्तर् तथा उपसर्ग से उत्तर अप् शब्द को ईकार आदेश होता है । 'आदेः परस्य' के द्वारा 'अप्' के अकार को ईकार होता है ।

उदा.—द्वीपम् ।
अन्तरीपम् ।
नीपम्, वीपम्, समीपम् ।

विशेष—1. 'समाप' शब्द में ईकार नही होता है[1]—
समापम् । (समा आपः अस्मिन्) ।

2. अकार से भिन्न वर्ण से परे ईत्व होता है[2]—
प्रापम्, परापम् यहाँ ईत्व न हुआ ।

ऊदनोर्देशे 6.3.97

पद.—ऊत् 1.1, अनोः 5.1, देशे 7.1

अनु.—अपः उत्तरपदे ।

अर्थ—'देश' गम्यमान हो तो 'अन्' से उत्तर 'अप्' शब्द को ऊकार आदेश होता है । अनूपो देशः ।

विशेष—जहाँ 'देश' गम्यमान न हो, वहाँ उक्त आदेश नहीं होता है—
अन्वीपम् ।

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु 6.3.98

पद.—अषष्ठ्यतृतीयास्थस्य 6.1, अन्यस्य 6.1, दुक् 1.1, आशी ... गच्छेषु 7.3

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—आशिस्, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति, कारक, राग तथा छ इनके परे रहते 'अन्य' शब्द को 'दुक्' आगम होता है, यदि वह षष्ठी या तृतीया में स्थित न हो ।

दुक् के ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) अन्य आशिस्-अन्यदुक् आशिस्-अन्यदाशिस् सु-अन्यदाशीः ।

---

1. काशि० 6.3.97 (वा०) समाप ईत्वे प्रतिषेधो वक्तव्यः ।
2. वही (वा०) इत्वमनवर्णादिति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) अन्यदाशा ।
(3) अन्यदास्था ।
(4) अन्यदास्थितः ।
(5) अन्यदुत्सुकः ।
(6) अन्यदूतिः ।
(7) अन्य दुक् कारक-अन्यत् कारक सु-
अन्यत्कारकः ।
(8) अन्यद्रागः ।
(9) अन्यस्मिन् भवः-अन्यदीयः ।

विशेष—'अषष्ठ्यतृतीयास्थस्य' अर्थात् **षष्ठी** व **तृतीया** में **स्थित न होने** पर ही दुक् आगम होता है—

अन्यस्य आशीः-अन्याशीः यहाँ न हुआ ।
अन्येन आस्थितः-अन्यास्थितः ।

अर्थे विभाषा 6.3.99

पद.—अर्थे 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—अषष्ठ्यतृतीयास्थस्य अन्यस्य दुक् उत्तरपदे ।

अर्थ—अर्थ शब्द उत्तरपद रहते अषष्ठीस्थ तथा अतृतीयास्थ 'अन्य' शब्द को विकल्प से 'दुक्' आगम होता है ।

उदा.—अन्यस्मै इदम्-अन्य दुक् अर्थम्-अन्यदर्थम् ।
पक्ष में—अन्य अर्थम्-अन्यार्थम् ।

कोः कत्तत्पुरुषेऽचि 6.3.100

पद.—कोः 6.1, कत् 1.1, तत्पुरुषे 7.1, अचि 7.1

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—तत्पुरुष समास में अजादि उत्तरपद रहते 'कु' को 'कत्' आदेश होता है ।

उदा.—कुत्सितोऽजः-कु अज-कद् अज सु-कदजः (कुगति प्रादयः । झलां जशोऽन्ते) ।

विशेष—1. 'तत्पुरुषे' अर्थात् **तत्पुरुष समास में** ही 'कत्' आदेश होता है—

कुत्सित उष्ट्रः यस्य सः-कूष्ट्रः यहाँ बहुव्रीहि होने से कद् आदेश न हुआ ।

2. 'अचि' अर्थात् **अजादि उत्तरपद रहते** ही 'कद्' आदेश होता है—

कुत्सितः ब्राह्मणः-कुब्राह्मणः ।

यहाँ न हुआ ।

3. 'त्रि' परे रहते भी 'कु' को 'कत्' आदेश होता है[1]—

कुत्सिताः त्रयः-कत्त्रयः ।

रथवदयोश्च 6.3.101

पद.—रथवदयोः 7.2, च-अव्य० ।

अनु.—कोः कत् उत्तरपदे ।

अर्थ—रथ तथा वद शब्द उत्तरपद रहते 'कु' को 'कत्' आदेश होता है ।

उदा.—कद्रथः ।
कद्वदः ।

तृणे च जातौ 6.3.102

पद.—तृणे 7.1, च-अव्य०, जातौ 7.1

अनु.—कोः कत् उत्तरपदे ।

अर्थ—तृण शब्द उत्तरपद रहते 'कु' को 'कत्' आदेश होता है, 'जाति' अर्थ गम्यमान हो तो ।

उदा.—कतृणा नाम जातिः

विशेष—यदि **'जाति'** अभिधेय न हो तो 'कत्' आदेश नहीं होता है—

कुत्सितानि तृणानि-कुतृणानि ।

का पथ्यक्षयोः 6.3.103

पद.—का-लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, पथ्यक्षयोः 7.2

अनु.—कोः उत्तरपदे ।

अर्थ—पथिन् तथा अक्ष शब्द उत्तरपद रहते 'कु' शब्द को 'का' आदेश होता है ।

उदा.—कुत्सितः पन्थाः-कापथः (ऋक्पूरब्धू०, नस्तद्धिते) कुत्सिते अक्षिणी अस्य-काक्षः (भट्टि० 5.24) (बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः—) ।

ईषदर्थे 6.3.104

पद.—ईषदर्थे 7.1

अनु.—का कोः उत्तरपदे ।

अर्थ—'थोड़ा' अर्थ में वर्त्तमान 'कु' शब्द को 'का' आदेश होता है, उत्तरपद परे रहते ।

उदा.—ईषद् मधुरम्-कामधुरम् ।

---

1. काशि० 6.3.100 (वा०) कद्भावे त्रावुपसंख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार—कालवणम् ।

कुगतिप्रादयः ।

विभाषा पुरुषे 6.3.105

पद.—विभाषा 1.1, पुरुषे 7.1

अनु.—का कोः उत्तरपदे ।

अर्थ—'पुरुष' शब्द उत्तरपद रहते 'कु' शब्द के स्थान पर विकल्प से 'का' आदेश होता है ।

उदा.—कापुरुषः, कुपुरुषः ।

कवं चोष्णे 6.3.106

पद.—कवम् 1.1, च-अव्य०, उष्णे 7.1

अनु.—विभाषा का कोः उत्तरपदे ।

अर्थ—'उष्ण' शब्द उत्तरपद रहते 'कु' शब्द को 'कव' आदेश होता है तथा विकल्प से 'का' आदेश होता है ।

'का' के अभाव पक्ष में 'कत्' होता है ।

उदा.—कवोष्णम् ।

कोष्णम् (भट्टि० 6.120) ।

कदुष्णम् (कोः कत् तत्०) । (भट्टि० 3.18) ।

पथि च च्छन्दसि 6.3.107

पद.—पथि 7.1, च-अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—विभाषा कवम् का कोः उत्तरपदे ।

अर्थ—वेद के विषय में 'पथिन्' शब्द उत्तरपद रहते 'कु' के स्थान पर 'कव' आदेश होता है तथा विकल्प से 'का' आदेश होता है । पक्ष में 'कु' ही रहता है ।

उदा.—कवपथः ।

कापथः ।

कुपथः ।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् 6.3.108

पद.—पृषोदरादीनि 1.3, यथोपदिष्टम् अव्य० ।

अर्थ—'पृषोदर' आदि शब्द रूप जिस रूप में उच्चारित हैं, उसी रूप में साधु हैं ।

उदा.—पृषद् उदरं यस्य तत् पृषोदरम् । इसी प्रकार-शवानां शयनम्-श्मशानम् ।

विशेष—1. दिशावाचक शब्द से उत्तर 'तीर' शब्द को विकल्प से 'तार' आदेश होता है[1]—

दक्षिणतारम्, दक्षिणतीरम् ।

2. 'वाद' शब्द परे 'वाच्' को 'ड्' आदेश तथा 'वाद' को 'ल' आदेश होता है, इञ् प्रत्यय परे रहते[2]—

वाचं वदतीति-वाग्वादः । तस्याऽपत्यम्-वाग्वाद इञ्-वाड्वालि सु-वाड्वालिः ।

3. दत्, दश तथा धा उत्तरपद रहते 'षष्' का उत्व तथा उत्तरपद के आदि वर्ण को ष्टुत्व होता है[3]—

षड् दन्ता अस्य-षोडन् । षष् दन्त-ष उ दन्त् सु-षो डन्त् स्-षोडन् ।

इसी प्रकार-षष् दशन्-षोडश ।

4. 'धा' परे रहते 'षष्' का उत्व विकल्प से होता है और उत्तरपद के आदि को ष्टुत्व होता है[4]—

षष् धा-ष उ ढ-षोढा सु-षोढा ।

षष् धा-षड्धा ।

न पदान्ताट्टोरनाम् ।

5. दुर् से उत्तर दाश, नाश, दभ तथा ध्य हों तो 'दुर्' के रेफ को उत्व तथा उत्तरपद के आदि को ष्टुत्व होता है[5]—

दुर् दाश-दु उ डाश-दूडाशः ।

दुर् नाश-दु उ नाश सु-दूणाशः ।

दुर् दभ-दूडभ सु-दूडभः ।

दुर् ध्य-दूढ्य सु-दूढ्यः ।

6. रोह धातु परे रहते 'स्वर्' के रेफ को उत्व होता है, वेद के विषय में[6]—

जाय एहि सुवो स्वो रोहाव (तै०सं० 1.7.9.1) ।

7. वेद में पीवोपवसनादि का लोप होता है[7]—

पीवस् उपवसन-पीवोपवसन ।

संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहन्नन्यतरस्यां ङौ 6.3.109

पद.—संख्याविसायपूर्वस्य 6.1, अह्नस्य 6.1, अहन् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1, ङौ 7.1

---

1. काशि० 6.3.109 (वा०) दिक्शब्दस्योत्तरस्य तीरस्य—।
2. काशि० 6.3.109 (वा०) वाचो वादेर्डत्वं च—।
3. काशि० 6.3.109 (वा०) षष उत्वं दत्दशधा— ।
4. काशि० 6.3.109 (वा०) धासु वा षष उत्वम् ।
5. काशि० 6.3.109 (वा०) दुरो दाशनाशदभ०—।
6. वही—(वा०) स्वरो रोहतौ छन्दस्युत्वं वक्तव्यम् ।
7. वही—(वा०) पीवोपवसनादीनां च लोपो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—उत्तरपदे ।

अर्थ—संख्या, वि तथा साय शब्द हैं पूर्व में जिसके, ऐसे 'अह्न' शब्द को विकल्प से 'अहन्' आदेश होता है, ङि परे रहते ।

उदा.—(1) द्वयोः अह्नोर्भवः–द्व्यह्नः, तस्मिन् द्व्यहनि, द्व्यह्नि ।

(2) व्यपगतम् अहो व्यह्नः, तस्मिन्–व्यहनि, व्यह्नि ।

(3) सायाहनि, सायाह्नि ।

विशेष—'संख्या०' अर्थात् **संख्या, वि** तथा **साय** शब्द पूर्व में होने पर ही 'अहन्' आदेश होता है—

पूर्वाह्णे, अपराह्णे यहाँ न हुआ ।

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः 6.3.110

पद.—ढ्रलोपे 7.1, पूर्वस्य 6.1, दीर्घः 1.1, अणः 6.1

अर्थ—ढकार और रेफ के लोप में निमित्तभूत जो ढकार और रेफ, उनके परे होने पर पूर्व अण् के स्थान पर दीर्घ होता है ।

'ढ्र' में ढकार, रेफ व अकार है । अकार उच्चारणार्थ है ।

तात्पर्य यह है कि 'ढो ढे लोपः' के द्वारा जब ढकार के परे रहते ढकार का लोप हो जाये अथवा 'रो रि' के द्वारा रेफ के परे रहते रेफ का लोप हो जाये तो पूर्व अण् (अ,इ,उ) को दीर्घादेश होता है ।

उदा.—(1) लिह् क्त–लिद् ढ–लि ढ–लीढ सु–लीढम् ।

इसी प्रकार—मीढम् । उपगूढम् । मूढः ।

(2) अहर् रम्यम्–अह रम्यम्–अहारम्यम् । पुनर् रमते–पुनारमते ।

अग्नि स् रथः–अग्नीरथः । कथाभी रमसे (भट्टि० 6.67)। शम्भुस् राजते–शम्भू राजते ।

विजिग्राहयिषु रामम् (भट्टि०4.34) ।

अन्य उदा.—बीजयोनी रामः (भाग० 10.46.31) ।

श्रीमद्भी रूपोदार्य० (भाग० 10.60.10) ।

पितृभी रामः (वाम० 35.5) ।

दीधितिभी रेजे (भाग० 7.3.3) ।

चतू रसः (भाग० 10.2.27) ।

सिसृक्षू रजः (भाग० 10.59.29)।

विविशू राजानः (भाग० 10.42.34) ।

हिरण्यकशिपू राजन् (भाग० 7.3.1) ।

विशेष—1. 'पूर्वस्य' अर्थात् **पूर्व** अण् को दीर्घादेश होता है । इसका तात्पर्य है कि उत्तरपद के न रहते भी (एकपद में भी) दीर्घ होता है । यथा—

लीढम् ।

2. 'अणः' अर्थात् **अण्** (अ,इ,उ) को ही दीर्घादेश होता है—

तृढः, वृढः यहाँ ढकार का लोप हुआ है, परन्तु पूर्व में ऋकार है, अण् नहीं । अतः दीर्घ न हुआ ।

इसी प्रकार–अत्रे रामः (भट्टि० 4.1) ।

राहुकेत्वो रौप्यम् (मु०चि० 4.11)।

सहिवहोरोदवर्णस्य 6.3.111

पद.—सहिवहोः 6.2, ओत् 1.1, अवर्णस्य 6.1

अनु.—ढ्रलोपे ।

अर्थ—ढकार का लोप हुआ हो तो सह् और वह् धातु के अकार को ओकार होता है ।

उदा.—(1) सह् तृच्–सह् तृ–सद् ढृ–स ढृ–सोढृ सु–सोढा ।

(2) वह् तृच्–वोढा ।

विशेष—1. 'अवर्णस्य' अर्थात् सह् तथा वह् धातु के **अकार** के स्थान पर ही ओकार होता है—

वह् क्त–उह् त–उद् त–उद् ढ–उ ढ (सम्प्रसारण, पूर्व रूप, ढलोप) इस दशा में वह् का अकार नहीं है । अतः ओकार न हुआ । ढ्रलोपे पूर्वस्य० से दीर्घ हो गया । ऊढः ।

'अवर्ण' कथन से अकार व आकार दोनों का ग्रहण होता है ।

यथा—वह् लुङ्–वह् तस् (प्र०पु०द्विव०)–अट् वह् स् ताम् (च्लि, सिच्, अट्, ताम्)–अ वाह् स् ताम् (वद व्रज-हल०)–अवाह् ताम् (झलो झलि)–अवाद् ढाम् (हो ढः । झषस्तथोर्धोऽधः । ष्टुना ष्टुः)–अवा ढाम् (ढो ढे लोपः)–अवोढाम् (सहिवहोरोद०) ।

इसलिए 'अवर्णस्य' पाठ सप्रयोजन है ।

साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे 6.3.112

पद.—साढ्यै–अव्य०, साढ्वा–अव्य०, साढा 1.1, इति अव्य०, निगमे 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—वेद में साढ्यै, साढ्वा तथा साढा शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—सह् क्त्वा-सह् ध्यै-साढ्यै (प्राप्त ओकार का निषेध)।

सह् क्त्वा-साढ्वा।

सह् तृन्-साढा (ऋ० 7.56.23) काशिकाकार के अनुसार यहाँ तृच् प्रत्यय है।

संहितायाम् 6.3.113

पद.—संहितायाम् 7.1

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। पाद की समाप्ति पर्यन्त यह अधिकार चलता है।

कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्र-स्रुवस्वस्तिकस्य 6.3.114

पद.—कर्णे 7.1, लक्षणस्य 6.1, अविष्टा ... कस्य 6.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घः अणः संहितायाम्।

अर्थ—संज्ञा के विषय में कर्ण शब्द उत्तरपद रहते विष्ट, अष्टन्, पञ्चन्, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव तथा स्वस्तिक-इन शब्दों को छोड़कर लक्षणवाची शब्दों के अण् को दीर्घादेश होता है।

उदा.—दात्रम् इव-दात्रम्।
दात्रं कर्णे यस्य सः दात्राकर्णः।

इसी प्रकार-त्र्यङ्गुलाकर्णः।

विशेष—1. 'लक्षणस्य' अर्थात् **लक्षणवाची** शब्दों के अण् को दीर्घ होता है—

शोभनौ कर्णौ यस्य सः शोभनकर्णः यहाँ लक्षणवाची शब्द नहीं है। अतः दीर्घ न हुआ।

2. 'अविष्टादीनाम्' अर्थात् **'विष्ट' आदि शब्दों को छोड़कर ही** दीर्घ होता है—

विष्टकर्णः। अष्टकर्णः। यहाँ न हुआ।

नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ 6.3.115

पद.—नहिवृ ... निषु 7.3, क्वौ 7.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽणः, संहितायाम्।

अर्थ—संहिता के विषय में नहि, वृति, वृषि, व्यधि, रुचि, सहि तथा तनि-इनसे निष्पन्न क्विप् प्रत्ययान्त शब्दों के उत्तरपद रहते पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

उदा.—(1) उप नह् क्विप् (सम्पदादिभ्यः क्विप्-पा० 3.3.94 वा०)-उप नध् (नहो धः)-उप नद् (झलां जशोऽन्ते)-उप नत् (खरि च)-उपानत्।

परीणत् (उपसर्गादि समासे०)।

(2) नीवृत्। उपावृत्।
(3) प्रावृट्। उपावृट्।
(4) मर्मावित् (ग्रहिज्यावयि०)। हृदयाविधम् (भट्टि० 6.73)। मृगाविध् (भट्टि० 2.7)।
(5) नीरुक्। अभीरुक्।
(6) ऋतीषट्।
(7) परीतत्।

विशेष—'क्वौ' अर्थात् **क्विप् प्रत्ययान्त** परे रहते ही दीर्घ होता है—

परिणहनम् यहाँ दीर्घ न हुआ।

वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् 6.3.116

पद.—वनगिर्योः 7.2, संज्ञायाम् 7.1, कोटरकिंशुलुकादीनाम् 6.3

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽणः उत्तरपदे संहितायाम्।

अर्थ—संज्ञा के विषय में 'वन' तथा 'गिरि' शब्दों के उत्तरपद रहते क्रमशः कोटरादि और किंशुलुकादि शब्दों को दीर्घ होता है।

तात्पर्य यह है कि 'वन' परे रहते कोटरादिगण पठित शब्दों को दीर्घ होता है तथा 'गिरि' शब्द परे रहते किंशुलुकादि गणपठित शब्दों को दीर्घ होता है।

उदा.—कोटरावणम्।
किंशुलुकागिरिः।

विशेष—'कोटरकिंशुलुकादीनाम्' अर्थात् **कोटरादि** व **किंशुलुकादि** शब्दों को ही दीर्घ होता है—

असिपत्रवनम्। कृष्णगिरिः।

वले 6.3.117

पद.—वले 7.1

अनु.—संज्ञायाम् पूर्वस्य दीर्घोऽणः संहितायाम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—संज्ञा के विषय में वल परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

'वल' के द्वारा 'रजः कृष्यासुतिपरिषदो वलच्' से विहित 'वलच्' प्रत्यय का ग्रहण होता है।

उदा.—आसुतीवलः।
दन्तावलः।
कृषीवलः।

मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् 6.3.118

पद.—मतौ 7.1, बह्वचः 6.1, अनजिरादीनाम् 6.3

अनु.—संज्ञायाम् पूर्वस्य दीर्घोऽणः संहितायाम्।

अर्थ—संज्ञा के विषय में मतुप् परे रहते बह्वच् शब्दों के अण् को दीर्घ होता है, परन्तु अजिरादिगणपठित शब्दों को नहीं होता है।

उदा.—उदुम्बरावती।
अमरावती।
पुष्करावती।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'बह्वचः' अर्थात् **अनेक अच् वाले** शब्द को ही दीर्घ होता है—

व्रीहिमती यहाँ न हुआ।

2. 'अनजिरादीनाम्' अर्थात् **अजिरादि शब्दों को छोड़कर** ही दीर्घ होता है—

अजिरवती।
खदिरवती। यहाँ दीर्घ न हुआ।

शरादीनां च 6.3.119

पद.—शरादीनाम् 6.3, च-अव्य०।

अनु.—मतौ संज्ञायाम् पूर्वस्य दीर्घोऽणः संहितायाम्।

अर्थ—संज्ञा के विषय में मतुप् परे रहते शरादि गणपठित शब्दों को दीर्घ होता है।

उदा.—शरावती। वंशावती।

इको वहेऽपीलोः 6.3.120

पद.—इकः 6.1, वहे 7.1, अपीलोः 6.1

अनु.—दीर्घः उत्तरपदे दीर्घो भवति।

अर्थ—संज्ञा के विषय में 'वह' उत्तरपद रहते इगन्त पूर्वपद को दीर्घ होता है, परन्तु 'पीलु' शब्द को नहीं होता है।

उदा.—ऋषीवहम्।
मुनीवहम्।

विशेष—1. 'इकः' अर्थात् **इगन्त** को ही दीर्घ होता है—पिण्डवहम्-'पिण्ड' शब्द इगन्त नहीं है। अतः दीर्घ न हुआ।

2. 'अपीलोः' अर्थात् **'पीलु' शब्द को छोड़कर** ही दीर्घ होता है —

पीलुवहम्।

3. 'पीलु' आदि शब्दों को छोड़कर दीर्घ होता है।[1] यथा—

दारुवहम् यहाँ भी दीर्घ न हुआ।

उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् 6.3.121

पद.—उपसर्गस्य 6.1, घञि 7.1, अमनुष्ये 7.1, बहुलम् 1.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽणः उत्तरपदे संहितायाम्।

अर्थ—यदि 'मनुष्य' गम्यमान न हो तो घञन्त शब्द उत्तरपद रहते उपसर्ग के अण् को बहुल करके दीर्घ होता है।

उदा.—वीक्लेदः यहाँ 'मनुष्य' अभिधेय नहीं है। 'क्लेद' घञ्प्रत्ययान्त शब्द है। अतः 'वि' को दीर्घ हो गया।

अपामार्गः। सपरीवारः (भट्टि० 6.87)।

बहुलवचन के कारण 'प्रसेव' तथा 'प्रसार' में दीर्घ नहीं होता है।

विशेष—1. करण से निर्वृत्त अर्थ में 'साद' व 'कार' शब्द परे रहते दीर्घ होता है[2]—

प्रासादः। प्राकारः।

अन्य अर्थ में दीर्घ नहीं होता है—

प्रसादः। प्रकारः।

2. वेशादि शब्द परे रहते विकल्प से दीर्घ होता है[3]—

प्रतीवेशः, प्रतिवेशः।
प्रतीरोधः, प्रतिरोधः।

3. 'अमनुष्ये' अर्थात् **'मनुष्य'** अर्थ गम्यमान हो तो दीर्घ नहीं होता है—

निषादो मनुष्यः।

---

1. काशि० 6.3.121 (वा०)—अपील्वादीनामिति वक्तव्यम्।
2. काशि० 6.3.122 (वा०)—सादकारयोः कृत्रिमे—।
3. वहीं—प्रतिवेशादीनां विभाषा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इकः काशे 6.3.122

पद.—इकः 6.1, काशे 7.1

अनु.—उपसर्गस्य दीर्घः उत्तरपदे संहितायाम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'काश' शब्द उत्तरपद रहते इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होता है ।

उदा.—नीकाशः । वीकाशः ।

विशेष—'इकः' अर्थात् इगन्त उपसर्ग को ही दीर्घ होता है—

प्रकाशः 'प्र' इगन्त नहीं है । अतः दीर्घ न हुआ ।

दस्ति 6.3.123

पद.—दः 6.1, ति 7.1

अनु.—इकः उपसर्गस्य दीर्घः संहितायाम् ।

अर्थ—'दा' के स्थान पर होने वाले तकारादि आदेश के परे इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होता है ।

उदा.—निदा क्त–निद् त् त (अच उपसर्गात्तः—) नित् त् त (खरि च)–नित् त (झरो झरि सवर्णे)–नीत्त सु–नीत्तम् ।

इसी प्रकार–परीत्तम् ।

अष्टनः संज्ञायाम् 6.3.124

पद.—अष्टनः 6.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽणः संहितायाम् उत्तरपदे ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में अष्टन् शब्द को दीर्घ होता है, उत्तरपद रहते ।

उदा.—अष्टौ वक्राणि यस्य सः अष्टावक्रः 'न लोपः' प्रातिपदिकान्तस्य' से नलोप होता है ।

विशेष—'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय में ही** दीर्घ होता है—

अष्टौ पुत्राः अस्य अष्टपुत्रः यहाँ संज्ञा का विषय नहीं है ।

छन्दसि च 6.3.125

पद.—छन्दसि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अष्टनः पूर्वस्य दीर्घोऽणः उत्तरपदे संहितायाम् ।

अर्थ—वेद के विषय में अष्टन् शब्द को दीर्घ होता है, उत्तरपद परे रहते ।

उदा.—अष्टाकपालम् अष्टापदी ।

विशेष—लोक में 'गो' शब्द परे रहते 'युक्त' अर्थ में अष्टन् शब्द को दीर्घ होता है[1]—

अष्टागवम् शकटम् ।

चितेः कपि 6.3.126

पद.—चितेः 6.1, कपि 7.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽणः संहितायाम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में कप् परे रहते 'चिति' शब्द को दीर्घ होता है ।

उदा.—एकचितीकः (एका चितिर्यस्य सः) ।

'स्त्रियाः पुँवद्०' से पुँवद्भाव हुआ ।

विश्वस्य वसुराटोः 6.3.127

पद.—विश्वस्य 6.1, वसुराटोः 7.2

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽणः उत्तरपदे संहितायाम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'वसु' तथा 'राट्' परे रहते 'विश्व' शब्द को दीर्घ अन्तादेश होता है ।

'राट्' का योग पदान्त का उपलक्षण है । चूँकि पदान्त में 'राट्' शब्द रहता है । अतः पदान्त में ही दीर्घ अन्तादेश होता है, अन्यत्र न होगा ।

यथा—विश्वराजौ यहाँ दीर्घ नहीं होता है ।

उदा.–विश्वराज् सु–विश्वराज्–विश्वराष्–विश्वराड्–विश्वाराड्, विश्वाराट् हल्ङ्याब्भ्यो० । व्रश्चभ्रस्ज । झलां जशोऽन्ते । विश्वस्य वसुराटोः । वाऽवसाने ।

इसी प्रकार—विश्वाराड्भ्यः इत्यादि में ।

नरे संज्ञायाम् 6.3.128

पद.—नरे 7.1, संज्ञायाम् 7.1

अनु.—विश्वस्य पूर्वस्य दीर्घोऽणः उत्तरपदे संहितायाम् ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में 'नर' शब्द उत्तरपद रहते 'विश्व' शब्द को दीर्घ आदेश होता है ।

उदा.—विश्वानरः–यह किसी का नाम है ।

मित्रे चर्षौ 6.3.129

पद.—मित्रे 7.1, च–अव्य०, ऋषौ 7.1

अनु.—विश्वस्य पूर्वस्य दीर्घोऽणः उत्तरपदे संहितायाम् ।

---

1. काशि० 6.3.126 (वा०) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'ऋषि' अर्थ गम्यमान हो तो 'मित्र' शब्द उत्तरपद में रहते 'विश्व' शब्द को दीर्घ होता है।

उदा.—विश्वामित्रः नाम ऋषिः।

मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ 6.3.130

पद.—मन्त्रे 7.1, सोमा .. स्य 6.1, मतौ 7.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽणः संहितायाम्।

अर्थ—वेद मन्त्रों के विषय में मतुप् प्रत्यय परे रहते सोम, अश्व, इन्द्रिय तथा विश्वदेव्य शब्दों को दीर्घ होता है।

उदा.—सोमावती (उगितश्च) (ऋ० 10.97.7)
अश्वावती (ऋ० 10.97.7)
इन्द्रियावती (तै०सं० 2.4.2.1)
विश्वदेव्यावती (तै०सं० 4.1.6.1)

ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम् 6.3.131

पद.—ओषधेः 6.1, च-अव्य०, विभक्तौ 7.1, अप्रथमायाम् 7.1

अनु.—मन्त्रे संहितायाम् पूर्वस्य दीर्घोऽणः।

अर्थ—वेदमन्त्र के विषय में प्रथमा को छोड़कर शेष विभक्ति परे रहते 'ओषधि' शब्द को दीर्घ होता है।

उदा.—ओषधीभ्यः (तै०आ० 2.12.1)।

सूत्र की शर्त के अनुसार—

विशेष—1. 'अप्रथमायाम्' अर्थात् **प्रथमाभिन्न** विभक्ति में ही सूत्रोक्त दीर्घ होता है—

स्थिरेयमस्त्वोषधिः यहाँ प्रथमा है। अतः दीर्घ न हुआ।

2. 'विभक्तौ' अर्थात् **'विभक्ति'** में ही उक्त दीर्घ होता है—

ओषधिपते यहाँ विभक्ति नहीं है। अतः दीर्घ न हुआ।

ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् 6.3.132

पद.—ऋचि 7.1, तुनु ... णाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् दीर्घोऽणः।

अर्थ—ऋचा के विषय में तु, नु, घ, मक्षु, तङ्, कु, त्र तथा उरुष्य शब्दों को दीर्घ होता है।

उदा.—(1) आ तू न इन्द्र वृत्रहन् (ऋ० 4.32.1)
(2) नू करणे।
(3) उत वा घा स्यालात् (ऋ० 1.109.2)।
(4) मक्षू गोमन्तमीमहे (ऋ० 8.33.3)।
(5) भरता जातवेदसम् (ऋ० 10.176.2)।
(6) कूमनः।
(7) अत्रा गौः।
(8) उरुष्या णो (ऋ० 1.91.15)

लोट् म०पु० बहुव० 'थ' प्रत्यय को लङ्वत् (लोटो लङ्वत्) आदेश करके 'त' आदेश (तस्थस्थमिपां०) होता है। लङ्वत् होने से 'त' ङित् हुआ। यहाँ पर इसी का ग्रहण है। अतः 'शृणोत' (तै०सं० 1.3.13.1) में दीर्घ न हुआ।

इकः सुञि 6.3.133

पद.—इकः 6.1, सुञि 7.1

अनु.—ऋचि उत्तरपदे संहितायाम् दीर्घः।

अर्थ—ऋचा के विषय में सुञ् परे रहते इगन्त शब्द को दीर्घ होता है।

सुञ् निपात का ग्रहण किया गया है।

उदा.—अभी षु णः (ऋ० 4.31.3)।
ऊ षु णः (ऋ० 1.36.13)।
सुञः (पा० 8.3.107)।
नश्च धातुस्थो (पा० 8.4.26)।

द्व्यचोऽतस्तिङः 6.3.134

पद.—द्व्यचः 6.1, अतः 6.1, तिङः 6.1

अनु.—ऋचि उत्तरपदे संहितायाम् दीर्घः।

अर्थ—ऋचा के विषय में दो अच् वाले तिङन्त के अकार को दीर्घ होता है।

उदा.—विद्मा हि त्वा (ऋ० 10.47.01)।

सूत्र की शर्त के अनुसार—

विशेष—1. 'द्व्यचः' अर्थात् **दो अच् वाले** तिङन्त को ही दीर्घ होता है—

अश्वा भवत वाजिनः (मा०सं० 9.6)।

2. 'अतः' अर्थात् **अकार** को ही दीर्घ होता है—
आ देवान्वक्षि यक्षि च (ऋ० 5.26.1)।
यहाँ अकार नहीं है। अतः दीर्घ न हुआ।

निपातस्य च 6.3.135

पद.—निपातस्य 6.1, च-अव्य०,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—ऋचि उत्तरपदे संहितायाम् दीर्घोऽण: ।

अर्थ—ऋचा के विषय में निपात को दीर्घ होता है ।

उदा.—एवा ते (ऋ० 10.20.10)
ते अच्छा (ऋ० 1.2.2)

इनका चादिगण में पाठ होने से इनकी निपात संज्ञा है ।

अन्येषामपि दृश्यते 6.3.136

पद.—अन्येषाम् 6.3, अपि अव्य०, दृश्यते क्रियापदम् ।

अनु.—दीर्घोऽण: उत्तरपदे संहितायाम् ।

अर्थ—पूर्वोक्त सूत्रों के स्थलों से अन्यत्र भी देखा जाता है अर्थात् जहाँ सूत्र के द्वारा दीर्घादेश नहीं कहा गया है, वहाँ भी दीर्घादेश देखा जाता है ।

उदा.—केशाकेशि (तत्र तेने० । इच् कर्म० ।)
कचाकचि ।
जलाषाट् ।
नारक: ।
पूरुष: ।

विशेष—दन्त, दंष्ट्र, कर्ण, कुन्द, वराह, पुच्छ तथा पद शब्द परे रहते 'श्वन्' शब्द को दीर्घ होता है—

श्वादन्त: । श्वादंष्ट्र: । श्वाकर्ण: । श्वाकुन्द: । श्वावराह: । श्वापुच्छ: । श्वापद: ।

चौ 6.3.137

पद.—चौ 7.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽण: उत्तरपदे संहितायाम् ।

अर्थ—लुप्त अकार नकार वाली अञ्चु धातु परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ होता है ।

'चौ' के द्वारा लुप्त अकार नकार वाली 'अञ्चु' धातु का ग्रहण होता है ।

उदा.—प्र अच् शस्-प्र अच् अस् 'उगिदचां०' की प्रवृत्ति न होने से नुम् नहीं होता है ।
यचि भम् । प्र च् अस् । अच: (पा० 6.4.138) ।
यहाँ लुप्त अकार नकार वाली अञ्चु(च्) धातु परे हैं । अत: दीर्घ हुआ ।
प्राच् अस्-प्राच: ।

सम्प्रसारणस्य 6.3.138

पद.—सम्प्रसारणस्य 6.1

अनु.—पूर्वस्य दीर्घोऽण: उत्तरपदे संहितायाम् ।

अर्थ—उत्तरपद परे रहते सम्प्रसारणान्त पूर्वपद के अण् को दीर्घ होता है ।

उदा.—कारीषगन्धीपुत्र: ।
कारीषगन्धीपति: ।

द्र० पा० 4.1.74 का सिद्धि भाग ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां षष्ठाऽध्यायस्य तृतीय: पाद: समाप्त: ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठाध्यायस्य

चतुर्थः पादः

अङ्गस्य 6.4.1

पद.—अङ्गस्य 6.1

अर्थ—यह अधिकारसूत्र है । सप्तम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त यह अधिकार चलता है ।

हलः 6.4.2

पद.—हलः 5.1

अनु.—अंगस्य सम्प्रसारणस्य दीर्घः अणः ।

अर्थ—अंग का अवयव जो हल्, उससे उत्तर जो सम्प्रसारण, तदन्त अंग को दीर्घ होता है ।

'अचश्च' तथा 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषाओं के बल पर यह दीर्घ अन्त्य अच् को होता है ।

उदा.—(1) ज्या क्त (एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्)–ज् इ आ त (कित् होने से–ग्रहिज्यावयि०)–जित (सम्प्रसारणाच्च । सार्वधातुकार्धधा० । क्ङिति च)–जीत–जीन (हलः । ल्वादिभ्यः)–जीन सु–जीनः ।

(2) ह्वे क्त–ह् उ ए त–हुत (सम्प्रसारण)–हूत–हूतः ।

विशेष—1. 'हलः' अर्थात् **हल् से उत्तर** जो सम्प्रसारण तदन्त को ही दीर्घ होता है—

वेञ् क्त–वे त–उ ए त–उत (सम्प्रसारण, पूर्वरूप)–'उ' की अंगसंज्ञा है । व्यपदेशिवद्भाव से इसके अन्त में सम्प्रसारण (उ) भी है परन्तु वह सम्प्रसारण 'हल्' से उत्तर नहीं है । अतः दीर्घ न हुआ । उतः ।

2. 'हलः' का अंगस्य के साथ सम्बन्ध है । यदि 'हलः' को 'अंगस्य' के साथ सम्बद्ध न करते हैं तो दुर् वे ञ् क्त–दुरुतम् यहाँ दीर्घ होकर अनिष्टरूप बनता है । कारण कि हल् (रेफ) से पर सम्प्रसारण (उ) है । अतः तदन्त 'दुरु' को दीर्घ हो जाना चाहिये था ।

3. 'तदन्तस्य' अर्थात् सम्प्रसारण है **अन्त में जिसके** ऐसे अंग को दीर्घ होता है—

व्यध् क्त (ग्रहिज्या०)–विध् त–विध् ध्–विद् ध (धत्व, जश्त्व) हुआ । अब हल् (वकार) से उत्तर सम्प्रसारण (इ) है । अतः प्रकृत सूत्र से दीर्घ प्राप्त होता है परन्तु तदन्त न होने से दीर्घ नहीं होता है । विद् ध सु–विद्धः ।

नामि 6.4.3

पद.—नामि 7.1

अनु.—अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—नाम् परे रहते (अजन्त) अंग को दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) राम आम्–राम नुट् आम्–राम नाम् रामानाम्–रामाणाम् ।

(2) हरि आम्–हरि नाम् (नुट्)–हरीनाम्–हरीणाम् ।

(3) साधु आम्–साधूनाम् ।

(4) कर्तृ आम्–कर्तॄणाम् ।

न तिसृचतसृ 6.4.4

पद.—न–अव्य०, तिसृचतसृ–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम् ।

अनु.—अंगस्य दीर्घः नामि ।

अर्थ—नाम् परे रहते तिसृ व चतसृ अंग को दीर्घ नहीं होता है ।

उदा.—त्रि आम् (त्रेस्त्रयः को बाधकर त्रिचतुरो० से 'तिसृ' आदेश) तिसृ आम् अब 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' (पा० 7.1.54) से नुट् तथा 'अचि र ऋतः' (पा० 7.2.100) से रेफ आदेश की युगपत् प्राप्ति होती है । 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' के बल पर रेफादेश होना चाहिये, परन्तु 'न तिसृचतसृ' सूत्र ज्ञापक है कि रेफादेश को बाध कर नुट् आगम होता है । यदि पहले रेफादेश कर दिया जाये तो (तिस्र् आम्) न तो नुट् प्राप्त होगा और अच् न रहने से न ही दीर्घ प्राप्त होगा । अतः प्रकृत सूत्र के द्वारा दीर्घप्रतिषेध वचन व्यर्थ हो जाता है । तब 'नुमचिरतृज्वद् भावेभ्यो—' वा० द्वारा प्रथम नुट् हुआ । रेफादेश की प्राप्ति न होकर प्रकृतसूत्र से निषेध होता है । तिसृ नाम्–तिसृनाम्–तिसृणाम् (ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्) ।

(2) चतसृणाम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दस्युभयथा 6.4.5

पद.—छन्दसि 7.1, उभयथा-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य तिसृचतसृ दीर्घः नामि ।

अर्थ—वेद के विषय में तिसृ व चतसृ अंग को दोनों प्रकार से होता है अर्थात् दीर्घ होता है तथा अदीर्घ भी होता है।

उदा.—तिसृणाम् (मै०सं० 4.5.9) ।
तिसॄणाम् (ऋ० 5.69.2) ।
चतसृणाम् (काठ०सं० 27.9) ।
चतसॄणाम् ।

विशेष—'उभयथा' पद के स्थान पर 'वा' का ग्रहण करने में लाघव होता है परन्तु पर्याय शब्दों के विषय में आचार्य पाणिनि गौरव लाघव की अपेक्षा नहीं करते हैं ।[1]

न्यासकार के अनुसार विचित्रता के लिए 'उभयथा' पद का ग्रहण है ।[2]

नृ च 6.4.6

पद.—नृ-लुप्त षष्ठ्यन्त रूपम्, च-अव्य० ।

अनु.—उभयथा अंगस्य नामि दीर्घः ।

अर्थ—नाम् परे रहते 'नृ' शब्द को दोनों प्रकार से (दीर्घादेश व अदीर्घादेश) होता है ।

उदा.—नृ आम्-नृ नाम् (नामि)-नॄणाम्, (भाग० 10. 54.54) नृणाम् (प्रकृतसूत्र) ।

काशिकाकार के अनुसार यहाँ 'छन्दसि' पद का अनुवर्त्तन होता है—

केचिदेतत् छन्दसीति नानुवर्त्तयन्ति (काशि० 6.4.6) ।

नोपधायाः 6.4.7

पद.—न-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, उपधायाः 6.1

अनु.—अंगस्य नामि दीर्घः ।

अर्थ—नाम् परे रहते नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है ।

उदा.—पञ्चन् आम् (ष्णान्ता षट् । षट् चतुर्भ्यश्च)-पञ्चान् नाम्-पञ्चानाम् 'स्वादिष्वसर्व०' से पद संज्ञा हुई । 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (पा० 8.2.7) सूत्र के द्वारा प्राप्त नकारलोप 'नोपधायाः' (पा० 6.4.7) की दृष्टि में असिद्ध है । अतः उपधादीर्घ होता है ।

सप्तन् आम्-सप्तानाम् ।
नवानाम् ।
दशानाम् ।

विशेष—'न' अर्थात् **नकारान्त** अंग की उपधा को ही दीर्घ होता है—

चतुर् आम्-चतुर् नाम् यहाँ चतुर् की अंग संज्ञा है, परन्तु अन्त में 'न्' नहीं है । अतः उपधा (उकार) को दीर्घ न हुआ ।

2. 'नामि' अर्थात् 'नाम्' परे रहते ही दीर्घ होता है—

चर्मन् आम् 'नाम्' परे नहीं है । अतः नकारान्त अंग (चर्मन्) की उपधा (अकार) को दीर्घ न हुआ-चर्मणाम् ।

सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ 6.4.8

पद.—सर्वनामस्थाने 7.1, च-अव्य०, असम्बुद्धौ 7.1

अनु.—नोपधायाः अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति परे रहते नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है ।

'सुडनपुँसकस्य' से सर्वनामस्थान संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) राजन् सु-राजान् स्-राजान्-राजा ।

इसी प्रकार-राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ ।

(2) सामन् जस् (जश्शसोः शिः । शि सर्वनामस्थानम्)-सामन् शि-सामान् शि-सामानि ।

सामन् शस्-सामानि ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'सर्वनामस्थाने' अर्थात् **सर्वनामस्थान** संज्ञक (सु, औ, जस्, अम्, औट् शि) प्रत्यय के परे रहते ही दीर्घ होता है ।

राजन् ङि-ङि की सर्वनामस्थान संज्ञा नहीं है । अतः दीर्घ न हुआ । राजनि ।

2. 'असम्बुद्धौ' अर्थात् **सम्बुद्धि संज्ञक प्रत्यय को छोड़ कर** शेष सर्वनामस्थान प्रत्यय में दीर्घ होता है—

हे राजन् सु यहाँ सम्बुद्धि का 'सु' परे है । अतः दीर्घ न हुआ । हे राजन् ।

वा षपूर्वस्य निगमे 6.4.9

पद.—वा-अव्य०, षपूर्वस्य 6.1, निगमे 7.1 सर्वनाम-स्थाने असम्बुद्धौ नोपधायाः ।

1. परि० 124 पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाद्रियते ।
2. काशि० (न्यास) 6.4.5 उभयथेति वचनं वैचित्र्यार्थम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—वेद के विषय में यदि नकारान्त अंग की उपधा से पूर्व षकार हो तो, ऐसी उपधा को विकल्प से दीर्घ होता है, सम्बुद्धिवर्जित सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहते ।

उदा.—(1) तक्षन् अम्–तक्षान् अम् (तक्षन्) नकारान्त अंग है, उपधाभूत अकार से पूर्व षकार है, सर्वनामस्थान प्रत्यय (अम्) परे रहते उपधा को दीर्घ हुआ)–तक्षाणम् (अट्कु-प्वाङ्—) । मैं०सं० 2.4.1 । पक्ष में—तक्षणम् ।

(2) ऋभुक्षिन् अम् (इतोऽत् सर्वनामस्थाने)–ऋभुक्षन् अम्–ऋभुक्षाणम् । पक्ष में ऋभुक्षणम् (ऋ० 1.111.4) । लोक में विकल्प नहीं होता है ।

सान्तमहतः संयोगस्य 6.4.10

पद.—सान्त–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, महतः 6.1, संयोगस्य 6.1

अनु.—सर्वस्थाने असम्बुद्धौ नोपधायाः अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—सम्बुद्धिवर्जित सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहते सकारान्त संयोग के नकार की उपधा को तथा महत् के नकार की उपधा को दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) प्रशस्य ईयसुन्–श्र ईयस्–श्रेयस् सु–श्रेय नुम् स् स् (द्विवचनविभज्योपपदे० । प्रशस्यस्य श्रः । उगिदचां सर्वनाम० । श्रेयान् स् स् (सुलोप । संयोगान्तलोप)–श्रेयान् ।

इसी प्रकार–विद्वान् (विद्वस् सु–विद्वन् स् स्–विद्वान् स् स्–विद्वान् स्–विद्वान्) । इसी प्रकार यशांसि, मनांसि ।

(2) महत् सु–महन् त् स्–महान् त् स्–महान् त्–महान् उगिदचां० ।

अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृ-प्रशास्तॄणाम् 6.4.11

पद.—अप्तृन्तृच् .... पोतृप्रशास्तॄणाम् 6.3

अनु.—सर्वनामस्थाने असम्बुद्धौ उपधायाः अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—सम्बुद्धिवर्जित सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहते अप्, तृन् प्रत्ययान्त, तृच् प्रत्ययान्त, स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ तथा प्रशास्तृ शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) अप् जस्–आपः ।

(2) (तृन्०)-कर्तृ सु–कर्तॄर् स्–कर्त्तार् स्-कर्त्तार्-कर्त्ता ।

(3) (तृच्०)–कर्तृ सु–कर्त्ता ।

क्रोष्टा (अतिदेश होकर । द्र० तृज्वत् क्रोष्टुः)

(4) स्वसृ सु–स्वसा ।

(5) नप्तृ सु–नप्ता ।

(6) नेष्टृ सु–नेष्टा ।

(7) त्वष्टृ सु–त्वष्टा ।

(8) क्षत्तृ सु–क्षत्ता ।

(9) होतृ सु–होता ।

(10) पोतृ सु–पोता ।

(11) प्रशास्तृ सु–प्रशास्ता ।

विशेष—तीन औणादिक सूत्रों[1] के द्वारा बीस शब्द कहे गये हैं । अब शंका होती है कि जब नप्तृ, नेष्टृ आदि सातों शब्द तृन्नन्त व तृजन्त हैं तो इनकी उपधा को 'अप्तृन्तृच्-स्वसृ' इतने मात्र सूत्र से दीर्घ हो जायेगा । पुनः इनका पृथक् उल्लेख व्यर्थ है ।

इसका समाधान काशिकाकार ने इस प्रकार दिया है—

औणादिक शब्दों के विषय में दो मत है—

अव्युत्पत्ति पक्ष व व्युत्पत्तिपक्ष ।

(क) नप्त्रादीनां ग्रहणम् अव्युत्पत्तिपक्षे विध्यर्थम् (काशि० 6.4.11) अर्थात् जो लोग औणादिक शब्दों को अव्युत्पन्न मानते हैं, उनके अनुसार 'नप्तृ' आदि शब्दों में प्रकृतिप्रत्यय का विभाग सम्भव नहीं है । अतः इनके तृच् वा तृन् प्रत्ययान्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता । इस दशा में 'अप्तृन्तृच्स्वसृ' इतने सूत्र से काम नहीं चल सकता । फलतः नप्तृ आदि शब्दों का उपधादीर्घ के विधान के लिए ग्रहण आवश्यक है ।

(ख) (नप्त्रादीनां ग्रहणम्) व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् (काशि० 6.4.11) अर्थात् जो लोग औणादिक शब्दों को व्युत्पन्न मानते हैं, उनके अनुसार 'नप्तृ' आदि शब्द पूर्वोक्त रीत्या तृच् वा तृन् प्रत्ययान्त हैं । इस दशा में इन शब्दों का ग्रहण नियमार्थ है । भाव यह है कि यदि तृन् प्रत्ययान्त व तृच्-प्रत्ययान्त शब्दों को उपधादीर्घ करना हो तो केवल नप्तृ आदि सात शब्दों को ही होता है, अन्य को नहीं ।

---

1. (क) तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ (उणा० 250)—यथा—शंस्तृ, शास्तृ, क्षत्तृ, क्षोत्तृ, प्रशास्तृ उन्नेतृ, प्रतिहर्तृ, उद्गातृ ।
(ख) बहुलमन्यत्रापि (उणा०251)—यथा—हन्तृ, मन्तृ ।
(ग) नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृपितृदुहितृ (उणा० 252) यथा—नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, होतृ, पोतृ, भ्रातृ, जामातृ, मातृ, पितृ और दुहितृ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हन्पूषार्यम्णां शौ 6.4.12

पद.—इन्हन्पूषार्यम्णाम् 6.3, शौ 7.1

अनु.—उपधायाः अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—'शि' विभक्ति परे रहते इन्नन्त, हन् शब्दान्त, पूषन् शब्दान्त तथा अर्यमन् शब्दान्त अंग की उपधा को ही दीर्घ होता है । 'शि सर्वनामस्थानम्' से नपुँसकलिंग में 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है । यह नियम सूत्र है । 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' के द्वारा दीर्घादेश सिद्ध है ही । प्रकृत सूत्र नियम करता है कि सूत्रोक्त शब्दों की उपधा को दीर्घ हो तो केवल 'शि' परे रहते ही हो ।

उदा.—(1) बहुदण्डिन् जस् (शस् वा)–बहुदण्डिन् शि–बहुदण्डीन् इ–बहुदण्डीनि ।
(2) बहुवृत्रहन् शि–बहुवृत्रहाणि ।
(3) बहुपूषन् शि–बहुपूषाणि ।
(4) बह्वर्यमन् शि–बह्वर्यमाणि ।

सौ च 6.4.13

पद.—सौ 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—इन् हन् पूषार्यम्णाम् असम्बुद्धौ उपधायाः अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—सम्बुद्धिवर्जित 'सु' विभक्ति परे रहते इन्नन्त, हन्नन्त, पूषन् शब्दान्त तथा अर्यमन् शब्दान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) दण्डिन् सु–'सर्वनामस्थाने चा०' के द्वारा प्राप्त दीर्घादेश का 'इन्हन्पूषाऽर्य०' से निषेध हुआ । प्रकृत सूत्र के द्वारा दीर्घ हुआ । दण्डीन् स्–दण्डीन्–दण्डी ।
(2) वृत्रहा ।
(3) पूषा ।
(4) अर्यमा ।

अत्वसन्तस्य चाधातोः 6.4.14

पद.—अत्वसन्तस्य 6.1, च–अव्य०, अधातोः 6.1

अनु.—सौ असम्बुद्धौ अंगस्य उपधायाः दीर्घः ।

अर्थ—सम्बुद्धिवर्जित 'सु' प्रत्यय परे रहते 'अतु' है जिसके अन्त में तथा धातु को छोड़कर 'अस्' है जिसके अन्त में, ऐसे अंग की उपधा को दीर्घ होता है। 'अतु' के द्वारा मतुप्, वतुप्, डवतु तथा क्तवतु आदि प्रत्ययों का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) धी मतुप्–धीमत् सु–(यहाँ 'अत्वसन्तस्य—' पा० 6.4.14 से उपधा दीर्घ तथा 'उगिदचां—' पा० 7.1.70 से नुमागम युगपत् प्राप्त होते हैं । नुमागम परकार्य है तथा नित्यकार्य भी है । तदपि प्रथम उपधादीर्घ होता है । यदि प्रथम नुम् कर दिया जाये तो उपधा में नकार होने से दीर्घादेश न हो सकेगा । धीमात् स्–धीमान् त् स् (नुम्)–धीमान् त्–धीमान् ।
इसी प्रकार–बलवान् ।
भा डवतु–भवत् सु–भवान् ।
गम् क्तवतु–गतवत् सु–गतवान् ।
(2) सुपयस् सु–सुपयाः ।
इसी प्रकार–वेधस्–सु–वेधाः । सुयशाः ।

विशेष—'अधातोः' अर्थात् **धातु को छोड़कर** जो 'अस्', तदन्त की उपधा को दीर्घ होता है—पिण्डं ग्रसते–पिण्डग्रस् सु–ग्रस् शब्द धातु से निष्पन्न है । अतः उपधा को दीर्घ न हुआ । पिण्डग्रः ।

अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति 6.4.15

पद.—अनुनासिकस्य 6.1, क्विझलोः 7.2, क्ङिति 7.1

अनु.—उपधायाः अंगस्य दीर्घः ।

अर्थ—क्वि तथा झलादि कित् वा ङित् परे रहते अनुनासिकान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है ।

'क्वि' के द्वारा क्विप् आदि का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) (क्वि परे) प्रशम् क्विप्–प्रशम्–प्रशाम् (दीर्घ)–प्रशान् (मो नो धातोः) चूँकि 'मो, नो धातोः' (पा० 8.2.64) सूत्र 'न लोपः प्रातिं'—(पा० 8.2.7) की दृष्टि में असिद्ध है । अतः नलोप नहीं होता है ।

इदम् इव आचरति (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब् वा वक्तव्यः)–इदम् क्विप्–इदम् (धातु संज्ञा)–प्रत्ययलक्षण से क्विप् परे है । इदाम् शप् ति (लट्, तिप्, शप्)–इदामति ।

(2) शम् क्त–शम् त–शाम् त–शांत–शान्त सु–शान्तः (झलादि कित् परे है) । शंशान्तः यहाँ यङ्लुगन्त 'शम्' धातु से 'तस्' में रूप बना है । नुगतोनुना० ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अनुनासिकस्य' अर्थात् **अनुनासिकान्त** अंग की उपधा को ही दीर्घ होता है—

(क) ओदनं पचति–ओदनपक्, पच् धातु से क्विप् हुआ है । अंग के अन्त में अनुनासिक नहीं है । अतः उपधा को दीर्घ न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) पच् क्त–पक्व सु–पक्वः कित् झलादि प्रत्यय परे है, परन्तु अनुनासिकान्त अंग न होने से उपधा को दीर्घ न हुआ।

2. 'क्विझलोः' अर्थात् **क्वि** तथा **झलादि** प्रत्यय रहते ही उपधा को दीर्घ होता है—

गम् यक् (सार्वधातुके यक्) त–गम्यते 'यक्' कित् तो है परन्तु झलादि नहीं है तथा न ही क्विप् है। अतः अनुनासिकान्त (गम्) की उपधा को दीर्घ न हुआ। गम्यते।

3. 'क्ङिति' अर्थात् **कित्** व **ङित्** परे रहते ही उपधा दीर्घ होता है—

गम् तृच्–गन्तृ सु–गन्ता। गम् अनुनासिकान्त अंग है। तृच् झलादि है, परन्तु न ङित् है और न ही कित् है। अतः उपधादीर्घ न हुआ।

अज्झनगमां सनि 6.4.16

पद.—अज्झनगमाम् 6.3, सनि 7.1

अनु.—अंगस्य दीर्घः झलि।

अर्थ—झलादि सन् प्रत्यय परे रहते अजन्त धातु, हन् धातु तथा गम् धातु रूप अंग को दीर्घ होता है।

महाभाष्य के अनुसार 'गम्' के द्वारा इण् व इक् के स्थान पर होने वाले आदेश स्वरूप 'गम्' का ग्रहण होता है। अनिट् सन् ही झलादि होता है।

उदा.—(1) कृ सन् (इट् की प्राप्ति। 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' से निषेध)—कृ स (आर्धधातुक गुण की प्राप्ति। 'इको झल्' से तथा 'क्ङिति च' से निषेध)–किर् स–कीर् स–कीर्ष (ऋत इद् धातोः। हलि च। आदेशप्रत्यययोः) कीर् कीर् ष–की कीर् ष–किकीर्ष चिकीर्ष शप् ति–चिकीर्षति।

इसी प्रकार–चिचीषति, तुष्टूषति, जिहीर्षति, प्रावुवूर्षुः (भट्टि० 5.49)।

(2) हन् सन्–जिघांस शप् तिप्–जिघांसति जिघांसुः (भट्टि० 6.28; 1.26)। अभ्यासाच्च।

(3) अधि इ सन्–अधिजिगांसते।

तनोतेर्विभाषा 6.4.17

पद.—तनोतेः 6.1, विभाषा 1.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः दीर्घः झलि सनि।

अर्थ—झलादि सन् परे रहते तन् अंग की उपधा को विकल्प से दीर्घ होता है।

उदा.—तन् सन्–तितांस शप् तिप्–तितांसति।

पक्ष में—तितंसति।

क्रमश्च क्त्वि 6.4.18

पद.—क्रमः 6.1, च–अव्य०, क्त्वि 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः दीर्घः विभाषा झलि।

अर्थ—झलादि क्त्वा परे रहते क्रम् अंग की उपधा को विकल्प से दीर्घ होता है।

उदा.—क्रम् क्त्वा–क्रान्त्वा, क्रन्त्वा।

च्छ्वोः शूडनुनासिके च 6.4.19

पद.—च्छ्वोः 6.2, शूठ् 1.1, अनुनासिके 7.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य क्विझलोः क्ङिति।

अर्थ—अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहते या क्वि परे रहते या झलादि कित् परे रहते या झलादि ङित् परे रहते तुक् सहित छकार तथा वकार के स्थान पर यथासंख्य करके 'श्' तथा 'ऊठ्' आदेश होते हैं। ऊठ् में ठकार अनुबन्ध 'एत्येधत्यूठ्सु' के लिए जोड़ा है।

उदा.—(1) प्रच्छ् नङ्–प्रश् नङ् (यजयाचयतविच्छ०)–प्रश्न सु–प्रश्नः।

इसी प्रकार–विश्नः।

यहाँ अनुनासिकादि प्रत्यय (नङ्) परे है।

(2) शब्द प्राच्छ् क्विप् क्विब् वचिप्रच्छ्याय० (वा०) शब्द प्राच्छ् (प्रत्यय लक्षण के द्वारा 'श्' आदेश हुआ)—शब्द प्राश् सु–शब्द प्राश्–शब्दप्राष् (व्रश्चभ्रस्ज०) शब्द प्राड् (झलां जशोऽन्ते)–शब्दप्राड्,–ट् (वाऽवसाने)।

(3) प्रच्छ् क्त—('ग्रहिज्यावयि०' से सम्प्रसारण) पृच्छ् त (झलादि कित् 'त' परे रहते 'श्' आदेश)–पृश् त–पृष् त–पृष् ट सु–पृष्टः (व्रश्चभ्रस्ज०। ष्टुना ष्टुः)

(4) सिव् न (उणा० 3.9)–सि ऊठ् न (अनुनासिकादि प्रत्यय परे है)—स्यून (यण्)–स्योन सु (आर्धधातुकगुण)–स्योनः।

इसी प्रकार–खव् श्नाति (लट् प्र०पु० एक०) में ऊठ् होकर ख ऊठ् नाति–खौनाति (एत्येधत्यूठ्सु)।

(5) अक्ष दिव् क्विप्–अक्ष दिव् (प्रत्ययः लक्षण से ऊठ् आदेश)–अक्ष दि ऊठ् सु–अक्षद्यूः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) दिव् क्त (झलादि कित् परे है)—दि ऊ त–द्यूत सु–द्यूतः । इसी प्रकार—

मृगद्युवौ (भट्टि० 5.47) मृगैर्दीव्यत इति क्विप् । दिव् सन् णिच् तिप् (लङ् प्र० पु०एक०)–अदुद्यूषयद् (भट्टि० 5.49), निष्ठ्यूत (श 4.7)।

ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च 6.4.20

पद.—ज्वर .... विमवाम् 6.3, उपधायाः 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अनुनासिके क्विझलोः अंगस्य च्छ्वोः शूठ् ।

अर्थ—अनुनासिकादि प्रत्यय या क्विप् या झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ज्वर्, त्वर्, स्रिव्, अव् तथा मव् अंग की उपधा तथा वकार दोनों को ऊठ् आदेश होता है ।

'च्छ्' के स्थान पर होने वाले 'श्' का यहाँ सम्बन्ध न होने से अर्थ में नहीं दिया गया है । सूत्रोक्त पाँचों धातुओं की उपधा व वकार—दोनों के स्थान पर ऊठ् होता है । ज्वर् तथा त्वर् में उपधा से पूर्व वकार है तथा शेष में उपधा के पश्चात् वकार है ।

महाभाष्य के कुछ व्याख्याकारों के अनुसार उक्त धातुओं के उपधा तथा वकार के स्थान पर पृथक् पृथक् ऊठ् होकर सवर्ण दीर्घ हो जाता है ।

उदा.—(1) ज्वर् क्विप् (सम्पदादिभ्यः क्विप्–वा०) ज्वर्–ज् ऊठ् र्–जूर् सु–जूर्–जूः । ज्वर् क्तिन् (झलादि कित्)–ज् ऊठ् र् ति–जूर्ति सु–जूर्तिः ।

(2) त्वर् क्विप्–तूः (पूर्ववत्) । त्वर् क्तिन् (झलादि कित्)–तूर्तिः ।

(3) स्रिव् क्विप्–स्रूः पूर्ववत् ।
स्रिव् क्तिन्–स्रूतिः पूर्ववत् ।

(4) अव् मन् (अवतेष्टिलोपश्च–उणा० 1.139)–अव् म् (प्रत्यय की टि का लोप)–ऊ म् (अनुनासिकादि प्रत्यय परे है)—ओम् (आर्धधातुकगुण)–ओम् सु–ओम् । अव् क्विप्–ऊ सु–ऊः–पूर्ववत् । अव् क्तिन्–ऊतिः ।

(5) मव् क्विप्–मूः पूर्ववत् ।
मव् क्तिन्–मूतिः ।

भट्टोजि दीक्षित के अनुसार प्रकृतसूत्र में 'क्ङिति' के अनुवर्त्तन की आवश्यकता नहीं है । कारण कि अकित् अङित् झलादि में भी प्रकृतसूत्र का कार्य देखा जाता है । यथा—

अव् तुन् (उणा० 1.69–सितनिगमि०)–ऊठ् तु–ओतु सु–ओतुः यहाँ झलादि न तो ङित् है और न ही कित् है । तदपि ऊठ् हो गया ।

राल्लोपः 6.4.21

पद.—रात् 5.1, लोपः 1.1

अनु.—क्विझलोः क्ङिति अंगस्य छ्वोः ।

अर्थ—क्वि तथा झलादि कित् ङित् परे रहते रेफ से उत्तर छकार या वकार का लोप होता है ।

उदा.—(1) (छस्य क्वौ) मुर्छ् क्विप्–मुर्छ्–मुर् सु–मुर्–मूर्–मूः ।

इसी प्रकार हुर्छ् क्विप्–हूः ।

रेफ से उत्तर छकार को तुक् किसी भी सूत्र से विहित नहीं है । अतः रेफ से उत्तर केवल छकार का ही लोप होता है ।

(2) (छस्य झलादौ किति) मुर्छ् क्त –मुर्छ्त (आदितश्च से इट् निषेध । रदाभ्यां निष्ठातो० से प्राप्त नत्व का 'न ध्याख्या०' से निषेध) च– मुर् त–मूर्त (हलि च)–मूर्त्त सु–मूर्त्तः ।

(3) (छस्य झलादौ ङिति)–मुर्छ् यङ्–मो मू र्छ् य (यङ् लुक्)–मोमूर्छ् तस् (लट् प्र०पु० द्विव)–मोमूर् तस्–मोमूर्त्तः ।

(4) (वकारस्य क्वौ) धुर्व् क्विप्–धुर्व् (सर्वापहारलोप)–धुर् सु–धुर् (क्विबन्ता धातुत्वं न जहाति–इस कथन के अनुसार धातुत्व के अक्षुण्ण रहने से पदान्त में 'वोरुपधाया दीर्घ इकः' से उपधादीर्घ) धूर्–धूः । (द्र० भट्टि० 3.54 °धुराम्) तुर्व् क्विप्–तूः ।

(5) (वकरस्य झलादौ किति) तुर्व् क्त–तुर्व् त–तुर् त–तुर् न–तूर्ण सु–तूर्णः ।

असिद्धवदत्राभात् 6.4.22

पद.—असिद्धवत्–अव्य०, अत्र–अव्य०, आ–अव्य०, भात्–5.1

अर्थ—यहाँ से लेकर 'भस्य' (पा० 6.4.129) अधिकार की समाप्तिपर्यन्त होने वाले कार्य को 'आभीय' कार्य कहते हैं ।

'आभात्' में अभिविधि अर्थ में आङ् का प्रयोग है ।

'अत्र' का ग्रहण समानाश्रयत्व द्योतन के लिए है । समानाश्रय आभीय कार्य सिद्ध के समान नहीं होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय का अर्थ है—निमित्त। एक ही निमित्त है जिनका, उन्हें 'समानाश्रय' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी आश्रय को लेकर यदि कोई आभीय कार्य हो चुका हो तो पुनः उसी आश्रय को लेकर होने वाले दूसरे आभीय कार्य की दृष्टि में प्रथम आभीय कार्य असिद्ध होता है।

उदा.—(1) हन् लोट्-हन् सिप्-हन् शप् सिप्-हन् सिप् (अदादिभ्यः शपः)-हन् हि (सेर्ह्यपि०)-जहि (हन्तेर्जः पा० 6.4.36) अब 'अतो हेः' पा० 6.4.105 से हि का लुक् प्राप्त होता है। चूँकि 'हि' का आश्रय करके 'हन्' धातु को 'ज' आदेश हुआ है तथा इसी 'हि' को आश्रय करके 'हि' का लुक् प्राप्त होता है। दोनों आभीय कार्य हैं। दोनों समानाश्रय हैं। अतः हिलुक् की दृष्टि में जादेश असिद्ध है। अतः लुक् न हुआ। जहि।

(2) अस् लोट्-अस् सिप्-अस् शप् सि-अस् सि-अस् हि-स् हि (श्नसोरल्लोपः)-एहि (ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च) अब धि आदेश रूप आभीय कार्य प्राप्त न हुआ (हुझल्भ्यो—) परन्तु इसकी दृष्टि में एत्वरूप आभीय कार्य असिद्ध होने से झल् के रहने से 'धि' हुआ। एधि।

(3) शास् सिप्-शास् हि-शा हि (शा हौ)-शाधि-पूर्ववत्।

विशेष—1. 'आभात्' अर्थात् **'भस्य' अधिकार** पर्यन्त ही असिद्धभाव होता है—

अभाजि, रागः—यहाँ 'न' का लोप (भञ्जेश्च चिणि। रञ्जेश्च) कार्य 'अत उपधायाः' से प्राप्त वृद्धि के प्रति असिद्ध नहीं है।

2. 'अत्र' का ग्रहण **समानाश्रयत्व के** द्योतन के लिए है—

पा क्वसु (वस्, द्वित्व, सम्प्रसारण वसोः सम्प्रसारणम्)-पपा उस् (आतो लोप इटि च के द्वारा आलोप करने में सम्प्रसारण असिद्ध नहीं है)-पपुस् अस्-पपुषः।

3. उवङ् तथा यण् की कर्त्तव्यता में क्रमशः वुक्, तथा युट् सिद्ध होते हैं[1]—

भू लिट्-भूव् णल्-भू भूव्-बभूव् अ (भुवो वुग्-पा० 6.4.88) अब 'अचि श्नुधातु—पा० 6.4.77 से उवङ् प्राप्त हुआ कारण कि 'असिद्धवत्राभात्' से वुक् आगम असिद्ध है। प्रकृत वार्तिक से सिद्ध होने से उवङ् आदेश न हुआ—बभूव।

उप दी .त (लिट्)-उप दी एश्-उप दी दी ए (दीङो युडचि-पा० 6.4.63)-दि दी युट् ए। 'असिद्धवत्राभात्' से युट् असिद्ध है परन्तु एरनेकाचोऽसंयोग—पा० 6.4.82 से यण् प्राप्त हुआ। वार्तिक ने इसे सिद्ध कह दिया। तब यण् न हुआ—उपदिदीये।

श्नान्नलोपः 6.4.23

पद.—श्नात् 5.1, नलोपः 1.1

अर्थ—'श्न' से उत्तर नकार का लोप होता है।

उदा.—(1) हिसि (इदितो नुम् धातोः)-हि नुम् स् (रुधादिभ्यः श्नम्)-हिश्नम् न् स् तिप्-हि न न् स् तिप्-हिन स् ति-हिनस्ति।

(2) अञ्ज् तिप्-अ श्नम् ञ्नति-अनञ् ति (नकार लोप)-अनक्ति (चोः कुः, खरि च)।

अभञ्ज् तिप् (लङ्)-अभश्नम् न् ज् त्-अभनक् (भट्टि० 5.36)।

विशेष—1. 'श्नात्' यहाँ शकार विशिष्ट नकार का ग्रहण है। अतः **'श्नम्' से पर** नकार का लोप होता है—

यत् नङ् (यजयाजयत०)-यत्न नुट् आम्-यत्नानाम् (नामि)। यहाँ दीर्घ होने पर भी स्थानिवद्भाव से नलोप प्रसक्त था, परन्तु यह नकार 'श्नम्' से परे नहीं है। अतः न लोप न हुआ।

2. 'श्नात्' में 'श्न' पद प्रतिपदोक्त है तथा 'श्नम्' का द्योतक है। अतः 'विश्नानाम्' में नकार लोप नहीं होता है, कारण कि यहाँ 'श्न' लाक्षणिक (सूत्र के द्वारा निष्पन्न) है। यथा— विश् नङ्-विश्न नुट् आम्-विश्नानाम्।

अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति 6.4.24

पद.—अनिदिताम् 6.3, हलः 6.1, उपधायाः 6.1, क्ङिति 7.1

अनु.—अंगस्य न लोपः।

अर्थ—कित् ङित् परे रहते जिनके इकार की इत् संज्ञा नहीं होती, ऐसे हलन्त अंगों की उपधा के नकार का लोप होता है।

उदा.—(1) प्र अञ्च् क्विन् (ऋत्विग्दधृक्०)-प्रअञ्च् (सर्वापहारलोप)-प्र अच् (प्रत्यय लक्षण के द्वारा कित् परे रहते प्रकृतसूत्र के द्वारा नकार जो ञकार बन गया है, का लोप हुआ)—प्राच् सु-प्रा नुम् च् स्-प्रान् च्-प्रान्-प्राङ् (क्विन् प्रत्ययस्य कुः)।—

1. काशि० 6.4.22 (का०वा०)—वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ भवत इति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वंस् क्त–ध्वस् त–ध्वस्त सु–ध्वस्तः ।

(2) स्रंस् यङ्–सनीस्रस्यते (द्वित्व, अभ्यास को नीक्–नीग्वञ्चु० तथा नलोप) ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अनिदिताम्' अर्थात् **जिसका इकार इत् संज्ञक नहीं** है, ऐसे हलन्त अंग की उपधा के नकार का लोप होता है—

नदि (इदितो नुम् धातोः)–न नुम् द्–नन्द् (इसका इत् इत् है)—नन्द् यक् (सार्वधातुके यक्) नन्द् य शप् त–नन्द् यते (कित् परे है, हलन्त अंग है, उपधा में नकार भी है, परन्तु इसकी इकार इत् है । अतः नलोप न हुआ) ।

इसी प्रकार 'नानन्द्यते' में यङ् ङित् परे रहते नलोप न हुआ ।

2. 'हलः' अर्थात् **हलन्त अंग की** उपधाभूत नकार का लोप होता है—

नी यक् शप् त–नीयते धातु का इकार इत् नहीं है, कित् परे है, उपधा में नकार भी है, परन्तु हलन्त अंग नहीं है । अतः नलोप न हुआ ।

नेनीयते यङ् में ङित् परे रहते नलोप न हुआ । यहाँ हलन्त अंग नहीं है ।

3. 'उपधायाः' अर्थात् **उपधाभूत** नकार का लोप होता है—

नह् यक् शप् त–नह्यते (इकार इत् नहीं है, हलन्त अंग है, कित् परे है, परन्तु नकार उपधा में नहीं है । अतः नकार लोप न हुआ ।

इसी प्रकार—नानह्यते में ङित् परे रहते नकार का लोप न हुआ । कारण कि यह उपधा में नहीं है ।

4. 'क्ङिति' अर्थात् **कित् या ङित्** परे रहते ही नकार लोप होता है—

ध्वंस् इट् तृच् सु–ध्वंसिता (इकार इत् नहीं है, उपधा में नकार नहीं है, हलन्त अंग भी है, परन्तु कित् या ङित् परे नहीं है । अतः नलोप न हुआ ।

5. उपताप तथा शरीरविकार अर्थों में यथासंख्य करके लङ् व कम्प् का भी नलोप होता है[1]—

विलगितः लंग् में इकार इत् है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा नलोप प्राप्त न था ।

इसी प्रकार–विकपितः ।

6. मृग रमण अर्थ में 'णि' परे रहते 'रञ्ज्' धातु के नकार का लोप होता है[2]—

मृगान् रजयति ।

अन्यत्र नलोप नहीं होता है—वस्त्राणि रञ्जयति ।

7. घिनुण् परे रहते रञ्ज् के नकार का लोप होता है[3]—

रागी (सम्पृचानुरुचा०)। राग् घिनुण्–राग–इन्–रागिन् सु ।

8. रजक, रजन और रजस् में न लोप होता है[4]—

रञ्ज् ष्वुन्–रजक सु–रजकः ।
रञ्ज् ल्युट्–रजन सु–रजनम् ।
रञ्ज् असुन्–रजस् ।

दंशसञ्जस्वञ्जां शपि 6.4.25

पद.—दंशसञ्जस्वञ्जाम् 6.3, शपि 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः न लोपः ।

अर्थ–शप् परे रहते दंश्, सञ्ज् तथा स्वञ्ज् अंग की उपधाभूत नकार का लोप होता है । 'लक्षण प्रतिपदोक्त०' परिभाषा से प्रतिपदोक्त नकारवान् धातु ही ली जायेंगी । इदित् होने से नकारवान् नहीं ।

उदा.—दंश् शप् तिप्–दशति ।
सञ्ज् शप् तिप्–सजति ।

परि स्वञ्ज् शप् तिप्–परिस्वजते (उपसर्गात् सुनोति०) । पर्यष्वजत (भट्टि० 17.47) ।

रञ्जेश्च 6.4.26

पद.—रञ्जेः 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य उपधायाः नलोपः शपि ।

अर्थ—शप् परे रहते रञ्ज् अंग के उपधाभूत नकार का लोप होता है ।

उदा.—रञ्ज् शप् तिप्–रजति ।

घञि च भावकरणयोः 6.4.27

पद.—घञि 7.1, च–अव्य०, भावकरणयोः 7.2

अनु.—अंगस्य उपधायाः रञ्जेः न लोपः ।

1. काशि० 6.4.25 (का०वा०)—अनिदितां नलोपे लङ्गि कम्प्योरुपतापशरीरविकारयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ।
2. काशि० 6.4.24 (का०वा०)—रञ्जेर्णौ मृगरमण उपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ।
3. वही (का०वा०) घिनुणि च रञ्जेरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ।
4. वही (का०वा०) रजकरजनरजःसूपसंख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—भाव या करण अर्थ में विहित घञ् प्रत्यय के परे रहते रञ्ज् धातु के उपधाभूत नकार का लोप होता है।

उदा.—रञ्ज् घञ्-रागः (आश्चर्यो रागः। भाव अर्थ में)। रञ्ज् घञ्-रागः (रज्यतेऽनेनेति करण अर्थ में घञ्) अत उपधायाः। चजोः कु घिण्ण्यतोः।

विशेष—'भावकरणयोः' अर्थात् **भाव** तथा **करण** अर्थ में ही नलोप होता है—

रज्यत्यस्मिन् इति रङ्गः अधिकरण में घञ् हुआ है। अतः नलोप न हुआ। अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्।

स्यदो जवे 6.4.28

पद.—स्यदः 1.1, जवे 7.1

अनु.—घञि उपधायाः न लोपः।

अर्थ—'वेग' गम्यमान हो तो घञ् परे रहते 'स्यद' शब्द का निपातन किया जाता है।

उदा.—स्यन्द् घञ्-स्यद् अ-स्यद् सु-स्यदः। अत उपधायाः से प्राप्त वृद्धि का अभाव।

विशेष—'वेग' गम्यमान न हो तो नकार लोप नहीं होता है— तैलस्यन्दः।

अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः 6.4.29

पद.—अवोदै ... श्रथाः 1.3

अनु.—घञि उपधायाः नलोपः।

अर्थ—अवोद, एध, ओद्म, प्रश्रथ तथा हिमश्रथ शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—अव उन्द् घञ्-अव उद् अ सु-अवोदः।

इन्ध् घञ्-इध् अ-एध सु-एधः। 'न धातुलोप आर्धधातुके' से प्राप्त गुणनिषेध का निपातन से अभाव हुआ।

उन्द् मन् (अर्त्तिस्तु-उणा० 1.140)-उद्म ओद्म सु-ओद्मः।

प्र श्रन्थ् घञ्-प्रश्रथ सु-प्रश्रथः।

हिमश्रन्थः।

विशेष—प्रकृतसूत्र में श्रन्थ् के लुप्त नकार के प्रयोग से सूचित होता है कि अष्टाध्यायी में अविहित कित्त्व पाणिनि को अन्यत्र भी अभीष्ट है।

न तो आचार्य पाणिनि ने तथा न ही वार्त्तिककार ने लिट् की कित् संज्ञा के प्रकरण में श्रन्थ ग्रन्थ संदर्भे, दम्भु दम्भे तथा स्वञ्ज परिष्वङ्गे के लिट् को कित्त्व विधान किया है।

पतंजलि के द्वारा पा० 6.4.120 के भाष्य में 'देभतुः' प्रयोग का उल्लेख सूचित करता है, पतंजलि 'दम्भ्' से परे लिट् कित् स्वीकार करते हैं।

इसी प्रकार पा० 8.3.118 के भाष्य में 'परिषष्वजे' रूप के निर्देश से ज्ञापित होता है कि पतंजलि को संयोगान्त धातु से पर पाणिनि के द्वारा अविहित कित् अभिमत है।

नाञ्चेः पूजायाम् 6.4.30

पद.—न-अव्य०, अञ्चेः 6.1, पूजायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः नलोपः।

अर्थ—पूजार्थक 'अञ्च्' धातु के उपधाभूत नकार का लोप नहीं होता है।

अञ्च् धातु के 'गति' व 'पूजा' दो अर्थ होते हैं।

उदा.—(1) प्र अञ्च् (पूजार्थक) क्विन्-प्र अञ्च् अनिदितां हल उपधाया० से प्राप्त नलोप का निषेध हुआ)-प्राञ्च् सु (चूँकि अञ्च् धातु नलोपी नहीं है। अतः 'उगिदचाम्०' की प्रवृत्ति नहीं होती है)-प्राञ्च्-प्राञ्-प्रान् (निमित्तापाये०)-प्राङ् (क्विन् प्रत्य०)।

अञ्च् क्त-अञ्च् इट् त सु-अञ्चितम्। (अञ्चेः पूजायाम्)।

विशेष—'पूजायाम्' अर्थात् **पूजा अर्थ** में ही नलोप का निषेध होता है—

उदक्तम् उदकं कूपात् यहाँ गति अर्थ है। अतः नलोप का निषेध न हुआ।

क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः 6.4.31

पद.—क्त्वि 7.1, स्कन्दिस्यन्दोः 6.2

अनु.—अंगस्य उपधायाः नलोपः न।

अर्थ—क्त्वा प्रत्यय परे रहते स्कन्द् तथा स्यन्द अंग के उपधाभूत नकार का लोप नहीं होता है।

उदा.—स्कन्द् क्त्वा—स्कन्त् त्वा (अनिदितां हल उप० से प्राप्त नलोप का निषेध, चर्त्व) स्कन्त्वा। 'झरो झरि सवर्णे' से तकार लोप।

स्यन्द् क्त्वा-स्यन्दित्वा (स्वरति सूति० से पाक्षिक इट्। 'न क्त्वा सेट्' से कित् का प्रतिषेध। अतः नलोप प्रसक्त ही नहीं होता है)।

पक्ष में इट् अभाव तथा प्रकृतसूत्र के द्वारा नलोप निषेध हुआ-स्यन्द् त्वा स्यन्त् त्वा-स्यन्त्वा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान्तनशां विभाषा 6.4.32

पद.—जान्तनशाम् 6.3, विभाषा 1.1

अनु.—अंगस्य त्ति्व उपधायाः न लोपः न ।

अर्थ—त्त्वा प्रत्यय परे रहते नकारान्त अंग तथा नश् अंग के उपधाभूत नकार का विकल्प करके निषेध होता है ।

उदा.—(1) रञ्ज् त्त्वा–रञ्ज् त्वा–रन् क्त्वा रङ्क्त्वा (निषेध हुआ) चोः कुः । खरि च । अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।

पक्ष में निषेध न हुआ—रञ्ज् त्त्वा–रज् त्वा–रत्त्वा ।

भञ्ज् त्त्वा–भङ्क्त्वा (भट्टि० 4.3), भक्त्वा ।

(2) नश् त्त्वा (मस्जिनशोर्झलि)–न नुम् श् त्वा–नंश् त्वा–नंष् त्वा (व्रश्चभ्रस्ज०—) नंष्ट्वा (ष्टुना ष्टुः) ।

पक्ष में—नष्ट्वा ।

इट् पक्ष में—नशित्वा बनता है ।

भञ्जेश्च चिणि 6.4.33

पद.—भञ्जेः 6.1, च–अव्य०, चिणि 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः विभाषा न लोपः ।

अर्थ—चिण् परे रहते भञ्ज् धातु के उपधाभूत नकार का विकल्प से लोप होता है ।

उदा.—भञ्ज् लुङ्–भञ्ज् त–भञ्ज् च्लि त–भञ्ज् चिण् त–भञ्ज् इत–अभज् इत (लोप पक्ष)–अभाज् इत (अत उपधायाः) अभाजि (चिणो लुक्) ।

अभञ्ज् इत (लोपाभाव पक्ष)—अभञ्जि ।

शास इदङ्हलोः 6.4.34

पद.—शासः 6.1, इत् 1.1, अङ्हलोः 7.2

अनु.—अंगस्य उपधायाः किङति ।

अर्थ—अङ् तथा हलादि कित् ङित् परे रहते शास् अंग की उपधा को इकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) शास् तिप् (लुङ् प्र०पु०एक०) शास् च्लि त्–शास्–अङ् त्–अशिस् अत्–अशिषत् सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ।

द्र० आशिषत् (भट्टि० 6.4)

अङ् परे रहते ह्रस्व इकार आदेश हुआ ।

(2) शास् क्यप् (एतिस्तुशास्वृ० कर्म में क्यप्)–शास् य–शिस् य–शिष् य (शासिवसिघसीनां च)–शिष्य सु–शिष्यः ।

हलादि कित् परे रहते इकार आदेश हुआ ।

(3) शास् तस् (लट् प्र०पु०द्विव०)–शिस् तस् (सार्वधातुकमपित्)–शिष् तस्–शिष्टः हलादि ङित् परे है ।

विशेष—1. 'अङ् हलोः' अर्थात् **अङ् व हलादि कित् ङित्** परे रहते ही इकार आदेश होता है—

शास् झि (लट्)–शासति यहाँ इकार न हुआ ।

शशासतुः (लिट् अतुस्) इकार न हुआ ।

2. क्वि परे रहते 'शास्' को इकार होता है[1]—

आर्यान् शास्ति–आर्य शास् क्विप्–आर्य शिस्–आर्य शिस् सु–आर्य शिस्–आर्यशीः ।

3. जिस शास् धातु से सर्त्तिशास्त्यर्त्ति० के द्वारा अङ् विधान किया गया है, उसी का ग्रहण यहाँ किया जाता है ।[2] अतः आङ् पूर्वक शास् (आङ शासु इच्छायाम्) को सूत्रोक्त इकारादेश नहीं होता है—

आशास्ते (हलादि ङित् परे है) ।

आशास्यमानः (हलादि कित् परे है) ।

4. क्वि परे रहते आङ् पूर्वक शास् धातु को भी इकार आदेश होता है[3]—

आ शास् क्विप्–आ शास्–आ शिस् सु–आशिस्–आशीः।

शा हौ 6.4.35

पद.—शा 1.1, हौ 7.1

अनु.—शासः अंगस्य ।

अर्थ—'हि' परे रहते 'शास्' अंग को 'शा' आदेश होता है।

उदा.—अनुशास् सिप् (लट्)–अनुशास् हि–अनु सा हि–अनुशाधि (असिद्धवत्राभात्) । अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है । द्र० शाधि (भट्टि० 3.53) ।

हन्तेर्जः 6.4.36

पद.—हन्तेः 6.1, जः 1.1

अनु.—अंगस्य हौ ।

अर्थ—'हि' परे रहते 'हन्' के स्थान पर 'ज' आदेश होता है ।

---

1. काशि० 6.4.34 (वा०)—क्वौ च शास इत्वं भवतीति वक्तव्यम् ।
2. काशि० 6.4.34 ।
3. काशि० 6.4.34 (वा०)—क्विप् प्रत्यये तु तस्यापि भवतीति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है ।

उदा.—हन् सिप्–हन् हि (लोट्, सिप्, शप्, शप् लुक्, हि)–जहि ।

अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति 6.4.37

पद.—अनुदात्तोप ... तनोत्यादीनाम् 6.3, अनुनासिक–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, लोपः 1.1, झलि 7.1, क्ङिति 7.1,

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—झलादि कित् ङित् परे रहते अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश धातु, वन् धातु और अनुनासिकान्त तनोत्यादि धातु–इन अंगों का लोप होता है ।

अनुनासिक 6.3 (लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्) पद अनुदात्तोपदेश, वन् तथा तनादि सभी का विशेषण है, परन्तु वन् धातु स्वतः अनुनासिकान्त है । अतः अर्थ में इसका विशेषण नहीं बनाया गया है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अंग के अन्त्य अर्थात् अनुनासिक वर्ण का लोप होता है ।

अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश छह धातु हैं—

यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन् (दिवादिगणी) ।

वन् (भ्वादिगणी) के अर्थ इस प्रकार हैं—

(क) शब्द करना,
(ख) सेवा करना,
(ग) हिंसा करना ।

वनु याचने धातु का तनोत्यादि में भी पाठ उपलब्ध है । उसका ग्रहण तनादित्वेन स्वतः गृहीत है । अतः सूत्रपठित 'वन्' के द्वारा भ्वादिगणी 'वन्' का ही ग्रहण होता है । अनुनासिकान्त तनादिगणपठित आठ धातु हैं—

तन्, क्षण्, क्षिण्, ऋण्, तृण्, घृण्, वन्, मन् ।

तनादिगण में षण् धातु का भी अनुनासिकान्त पाठ प्राप्त होता है, परन्तु 'जनसनखनां सञ्झलोः' के द्वारा उसमें आत्व का विशेष विधान किया गया है, अतः यहाँ उसका ग्रहण नहीं किया जाता है ।

उदा.—(1) यम् त्त्वा–यत्वा
(2) रम् त्त्वा–रत्वा
(3) नम् त्त्वा–नत्वा
(4) गम् त्त्वा–गत्वा
(5) हन् त्त्वा–हत्वा
(6) मन् त्त्वा–मत्वा
(7) वन् क्तिन्–वतिः 'तितुत्र०' से इट् का निषेध होता है ।
(8) तन् त्त्वा–तत्वा । अतत (लुङ् में) ।
(9) क्षण् त्त्वा–क्षत्वा
(10) क्षिण् त्त्वा–क्षित्वा
(11) ऋण् त्त्वा–ऋत्वा
(12) तृण् त्त्वा–तृत्वा
(13) घृण् त्त्वा–घृत्वा
(14) वन् त्त्वा–वत्वा
(15) मन् त्त्वा–मत्वा

विशेष—1. **अनुनासिकान्त** अनुदात्तोपदेश अंग के अनुनासिक का लोप होता है—

मुच् क्त–मुक्तः मुच् अनुदात्तोपदेश तो है, परन्तु अनुनासिकान्त नहीं है । अतः इसके अनुनासिक का लोप न हुआ ।

2. **अनुनासिकान्त** तनादिगणपठित धातु के अनुनासिक का लोप होता है—

'कृ' तनादिगणपठित है, परन्तु अनुनासिकान्त नहीं है । अतः 'डुकृञ् करणे' की निवृत्ति के लिए 'अनुनासिकान्त' विशेषण है ।

3. 'झलादि' अर्थात् **झलादि** परे रहते ही सूत्रोक्त धातुओं के अनुनासिक का लोप होता है—

नम् यक् शप् त–नम्यते 'नम्' अनुनासिकान्त है, कित् प्रत्यय (यक्) परे है, परन्तु वह झलादि नहीं है । अतः अनुनासिक का लोप नहीं हुआ ।

4. 'क्ङिति' अर्थात् **कित् ङित्** परे रहते ही अनुनासिक-लोप होता है—

हन् झि हन् अनुनासिकान्त है । इससे परे झलादि (झि) प्रत्यय है, परन्तु यह न तो कित् है और न ही ङित् है ।

हन्ति–अनुनासिक लोप न हुआ । इसी प्रकार—गन्ता ।

5. 'अनुदात्तोपदेश०' अर्थात् जो **उपदेश में अनुदात्त** हो, उसके अनुनासिक का लोप होता है—

शम् क्त–शान्तः (अनुनासिकस्य क्विझलोः) शम् धातु अनुनासिकान्त है, परन्तु अनुदात्तोपदेश नहीं है ।

6. 'अनुनासिकस्य' अर्थात् **अनुनासिक** का ही लोप होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच् क्त–पक्वः पच् अनुदात्तोपदेश है परन्तु अनुनासिकान्त नहीं है। अतः प्रकृतसूत्र प्रवृत्त नहीं होता।

वा ल्यपि 6.4.38

पद.—वा–अव्य०, ल्यपि 7.1

अनु.—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम्, अनुनासिक लोपः अंगस्य।

अर्थ—ल्यप् परे रहते अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश धातु, वन् धातु तथा अनुनासिकान्त तनादिगणपठित धातु–इन अंगों के अनुनासिक का विकल्प से लोप होता है।

उदा.—प्रयम् ल्यप्–प्रय य–प्रयतुक् य–प्रयत्य सु–प्रयत्य (ह्रस्वस्य पितिकृति—)। पक्ष में—प्रयम्य।

आगम् ल्यप्–आगत्य, आगम्य।

इसी प्रकार अन्यत्र जानें।

यह व्यवस्थित विभाषा है। मकारान्त का अनुनासिक लोप विकल्प से होता है तथा नकारान्त का नित्य अनुनासिक लोप होता है—

प्रमन् ल्यप्–प्रमत्य।
आ हन् ल्यप्–आहत्य। वितत्य (भट्टि० 3.47)।

न क्तिचि दीर्घश्च 6.4.39

पद.—न–अव्य०, क्तिचि–7.1, दीर्घः 1.1, च–अव्य०।

अनु.—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम् अंगस्य अनुनासिकलोपः।

अर्थ—क्तिच् परे रहते अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश धातु, वन् धातु तथा अनुनासिकान्त तनादिगणपठित धातु–इन अंगों के अनुनासिक का लोप तथा दीर्घ नहीं होता है—

उदा.—यम् क्तिच् (क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्) अब अनुनासिकलोप का प्रतिषेध हुआ। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः' से प्राप्त दीर्घत्व का निषेध हो गया। यन्तिः।

गमः क्वौ 6.4.40

पद.—गमः 6.1, क्वौ 7.1

अनु.—अंगस्य अनुनासिक लोपः।

अर्थ—क्वि परे रहते गम् के अनुनासिक का लोप होता है।

उदा.—अध्वानं गच्छति–अध्वन् गम् क्विप् (क्विप् च)–अध्वन् गम् (प्रत्ययलक्षण के द्वारा अनुनासिक लोप हुआ) तुक् हुआ। अध्वगत् सु–अध्वगत्।

विशेष—1. गम् आदि का लोप होता है[1]–

सम् यम् क्विप्–संयत्।

2. गमादि का ऊकार आदेश और अनुनासिक लोप होता है[2]— अग्रे गम् क्विप्–अग्रे गम्–अग्रे गू सु–अग्रेगूः।
अग्रे भ्रम् क्विप्–अग्रेभ्रूः।

विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् 6.4.41

पद.—विड्वनोः 7.2, अनुनासिकस्य 6.1, आत् 1.1

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—विट् और वन् प्रत्यय परे रहते अनुनासिक वर्ण को आकार आदेश होता है। आत् में तकार मुखसुखार्थ है।

उदा.—(1) अप् जन् विट् (जनसनखनक्रमगमो विट्) अप् जन्–अब्जाः।

इसी प्रकार–गोजाः। गोषाः। विलखाः। कूपखाः। दधिक्राः। अग्रेगाः।

(2) विजन् वन् (अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते)–विजावन् सु–विजावा।

ओण् वन्–(आर्धधातुक इट् का 'नेड् वशि कृति' से निषेध)–ओ आ वन्–अवावन् (एचोऽयवायावः)–अवावा (सु)।

जनसनखनां सञ्झलोः 6.4.42

पद.—जनसनखनाम् 6.3, सञ्झलोः 7.2

अनु.—आत् झलि क्ङिति।

अर्थ—झलादि सन् तथा झलादि कित् ङित् परे रहते जन्, सन् तथा खन्–इनके अंग को आकार आदेश होता है।

जन् तथा खन् धातु नित्य सेट् हैं। अतः उनसे उत्तर झलादि सन् सम्भव नहीं है।

उदा.—(1) जन् क्त–ज आ त–जात सु–जातः

(2) सन् सन्–सन् स–स आ स–सास–सास् सास् अ–सा सा स–स सास–सि सा स–सिषास शप् तिप्–सिषासति। 'सनीवन्तर्ध०' से पाक्षिक इट् होता है। इट् अभाव पक्ष में ही आकार आदेश हुआ है।

सन् क्त–स आ त–सात सु–सातः।

---

1. काशि० 6.4.40 (वा०)—गमादीनामिति वक्तव्यम्।
2. काशि० 6.4.40 (वा०)—ऊ च गमादीनामिति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् त (आत्मनेपद, लुङ्, प्र०पु०एक०)–असन् स् त (अट्, च्लि, सिच्)–असन् त (तनादिभ्यस्तथासोः से सिच् का पाक्षिक लोप)–अब लोप पक्ष में 'अनुदात्तोपदेश०' से अनुनासिक लोप प्रसक्त हुआ। 'त' 'सार्वधातुकमपित्' से ङित् है। अतः 'न्' को आकार हुआ। अ स आ त–असात। (जहाँ सिच् का लुक् नहीं होता, वहाँ इट् होकर–असनिष्ट)।

(3) खन् क्त–खातः पूर्ववत्।

'(झलि) सनि' अर्थात् **झलादि सन्** परे रहते ही आकार आदेश होता है—

जन् सन्–जिजनिषति (इट् होने से 'सन्' झलादि न रहा। अतः आकार अन्तादेश न हुआ।

ये विभाषा 6.4.43

पद.—ये 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—जनसनखनाम् आत् क्ङिति अंगस्य।

अर्थ—यकारादि कित् या ङित् परे रहते जन्, सन् व खन्—इन अंगों के नकार को विकल्प से आकार अन्तादेश होता है।

उदा.—(1) जन् यक् (कर्मणि) त–जन्य शप् ते–जन्यते।

जन् यक् शप् त–ज आ य अते– जायते (आकार अन्तादेश कित् परे रहते)।

(2) जन् यङ् (यकारादि ङित् प्रत्यय)–जञ्जन्यते।
जाजायते (आकार अन्तादेश)।

(3) सन् यक् शप् त–सन्यते।
सायते (कित् में आकार अन्तादेश)।

(4) सन् यङ्–संसन्यते।
सासायते (ङित् में आकार अन्तादेश)।

(5) खन्यते, खायते (आकार आदेश)।

(6) खन् यङ्–चङ्खन्यते।
चाखायते (आकार आदेश)।

विशेष—काशिकाकार ने 'ये' का अर्थ 'यकारादौ' करते हुए यकार में अकार परोक्षतः मुख सुखार्थ माना है परन्तु क्षीरस्वामी तथा धातुपारायणकार को 'ये' पद के द्वारा यशब्द घटित प्रत्यय इष्ट नहीं है।[1] उनके अनुसार यक् तथा यङ् में ही उक्त विकल्प होता है तथा यासुट् में नहीं होता। यदि आचार्य को 'ये' पद के द्वारा तदादिविधि (अर्थात् यकारादौ) इष्ट होती तो वे 'ये' के स्थान पर 'यि' पाठ करते। यथा—

लोपो यि (पा० 6.4.118)।

अयङ् यि क्ङिति (पा० 7.4.22)।

तनोतेर्यकि 6.4.44

पद.—तनोतेः 6.1, यकि 7.1

अनु.—अंगस्य विभाषा आत्।

अर्थ—यक् प्रत्यय परे रहते तन् अंग के नकार को विकल्प से आकार अन्तादेश होता है।

उदा.—तन् यक् शप् त–तन्यते।

त आ यक् अ त–तायते (आकार आदेश)।

विशेष—'यकि' अर्थात् **यक् परे** रहते ही आकार अन्तादेश होता है—

तन्तन्यते यङ् हुआ है जो यकारादि है, परन्तु यक् नहीं है। अतः आकार न हुआ।

सनः क्तिचि लोपश्चाऽन्यतरस्याम् 6.4.45

पद.—सनः 6.1, क्तिचि 7.1, लोपः 1.1, च–अव्य०, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य आत्।

अर्थ—क्तिच् परे रहते सन् अंग को आकार आदेश होता है तथा विकल्प से इसका लोप होता है।

उदा.—सन् क्तिच्–स आ ति–साति सु–सातिः (आत्व पक्ष)। सन् क्तिच्–स ति सु–सतिः (आत्व अभाव, लोप पक्ष)।

सन्तिः (आत्व अभाव, लोप अभाव पक्ष)।

आर्धधातुके 6.4.46

पद.—आर्धधातुके 7.1

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। 'न ल्यपि' (पा० 6.4.69) से पूर्व तक इसका अधिकार जाता है।

महाभाष्य में इसके निम्नलिखित सात प्रयोजन बताये हैं—

(क) अलोप (अतो लोपः पा० 6.4.48)।

(ख) यलोप (यस्य लोपः पा० 6.4.49)।

---

1. क्षीरतर०—कथं सन्यात्? ये इति अदन्ते ये परे विधानात्। मा०धा०वृ०—धातुपारायणे तु 'लोपो यि' (पा० 6.4.118) इतिवद् वर्णमात्रे निर्देष्टव्ये 'य' इत्यत्वतो निर्देशाद् या सुटि आत्त्वं न इत्युक्तम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) णिलोप (णेरनिटि—पा० 6.4.51)।
(घ) आलोप (आतो लोप इटि च—पा० 6.4.64)।
(ङ) ईत्व (घुमास्थागापा०—पा० 6.4.66)।
(च) एत्व (वाऽन्यस्य संयो०—पा० 6.4.68)।
(छ) चिण्वद्भाव (स्यसिच्सीयुट्०—पा० 6.4.62)।

उदाहरण तत् तत् सूत्रों पर देखें।

भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् 6.4.47

पद.—भ्रस्जः 6.1, रोपधयः 6.2, रम् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य आर्धधातुके।

अर्थ—आर्धधातुक परे रहते भ्रस्ज् अंग के रेफ और उपधा के स्थान पर विकल्प से रम् का आगम होता है।

रोपध (र+उपध) यहाँ रेफ में अकार उच्चारणार्थ है।

रम् के अकार मकार की इत् संज्ञा होती है। अतः इस के मित् होने के कारण रम् आगम अन्त्य अच् से पर होना चाहिए।

उदा.—(1) भ्रस्ज् तृच् (आर्धधातुक संज्ञा, रम्)–भज् तृ भरम् ज् तृ–भर्ज् तृ–भर्ष् तृ (व्रश्चभ्रस्ज०) भर्ष्टा (ष्टुत्व, सु)।

पक्ष में—भ्रस्ज् तृ–भ्रज् तृ–भ्रष् तृ–भ्रष्टा (स्कोः संयोगादो०। व्रश्चभ्रस्ज०। ष्टुना ष्टुः)।

(2) भ्रस्ज् लिट्–भर्ज् अ (पूर्ववत्)–बभर्ज।

पक्ष में—भ्रस्ज् भ्रस्ज्–भभ्रस्ज्–बभ्रस्ज्–बभ्रश्ज् (श्चुत्व)–बभ्रज्ज (झलां जश् झशि)।

(3) कित् व ङित् आर्धधातुक परे रहते रम् के आगम को बाधकर पूर्व विप्रतिषेध से सम्प्रसारण होता है[1]—

(कित् आर्धधातुक)

भ्रस्ज् क्त–रम् आगम (पा० 6.4.47) तथा सम्प्रसारण (पा० 8.4.44) युगपत् प्राप्त होते हैं। पर होने के कारण रम् आगम होना चाहिए, परन्तु पूर्व विप्रतिषेध के कारण सम्प्रसारण होगा—भृस्ज् त–भृज् त–भृष् त–भृष् ट–भृष्टः (सु)।

ङित् में कोई उदाहरण सम्भव नहीं।

अतो लोपः 6.4.48

पद.—अतः 6.1, लोपः 1.1

अनु.—अंगस्य आर्धधातुके।

अर्थ—आर्धधातुक परे रहते अकारान्त अंग का लोप होता है।

यह अर्थ काशिका के अनुसार है। यह अर्थ दोष पूर्ण है। इसके अनुसार आर्धधातुक कर लेने के पश्चात् यदि ह्रस्व अकारान्त अंग होता है तो उसके अत् का भी लोप होकर अनिष्ट रूप बन जायेगा। यथा—

अय् (गतौ) क्विप्–अय् व् (इकार, ककार, पकार का लोप)–अव् (लोपो व्योर्वलि)–अब काशिका सम्मत अर्थवशात् अकार का लोप होकर अनिष्ट रूप बनता है।

भट्टोजि दीक्षित ने वै०सि०कौ० में इस सूत्र का अर्थ इस प्रकार दिया है—

उपदेशे (अनुदात्तोपदेशवनति० इत्यतः अनुवर्तते) **आर्धधातुके आर्धधातुके** (द्विरुक्तिः) **अतः अंगस्य** (अनुवृत्तः) **लोपः** अर्थात् आर्धधातुक प्रत्यय के उपदेश की अवस्था में जो अदन्त अंग उसके अन्त्य (अर्थात् अत्) का लोप होता है, आर्धधातुक परे रहते।[2] इस अर्थ में कोई दोष प्रसक्त नहीं होता है।

उदा.—'कृ सन्–चिकीर्ष तृच्–चिकीर्ष इट् तृच्–चिकीर्षिता (अकार लोप)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अतः' अर्थात् **अदन्त अंग** का लोप होता है—चि तृच्–चे तृ सु–चेता आर्धधातुक प्रत्यय परे है, परन्तु अंग अदन्त नहीं है। अतः अकार लोप न हुआ।

2. 'अतः' में तपरकरण का प्रयोजन है कि **ह्रस्व** अकारान्त अंग का लोप होता है— या तृ सु–याता आर्धधातुक परे है, परन्तु अंग अदन्त नहीं है। अतः लोप न हुआ।

3. 'आर्धधातुके' अर्थात् **आर्धधातुक** परे रहते अदन्त अंग का लोप होता है—

वृक्षस्य भावः–वृक्ष त्व सु–वृक्षत्वम् 'त्व' आर्धधातुक नहीं है। अतः इसके परे रहते अदन्त अंग (वृक्ष) का लोप न हुआ।

---

1. काशि० 6.4.47 ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन।

2. वै०सि०कौ० (भाग-2, सूत्र 2308)—
आर्धधातुकोपदेशकाले यदकारान्तं तस्याऽकारस्य लोपः स्यादार्धधातुके परे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. वृद्धि तथा दीर्घ की अपेक्षा अलोप पूर्वविप्रतिषेध से होता है[1]—

कृ सन्–चिकीर्ष (धातु संज्ञा) ण्वुल्–चिकीर्षक सु–चिकीर्षकः (यहाँ पा० 6.4.48 से अकार लोप तथा 'अचो ञ्णिति' पा० 7.2.115 से वृद्धि आदेश युगपत् प्राप्त होते हैं। परकार्य होने से वृद्धि आदेश होना चाहिए, परन्तु पूर्व विप्रतिषेध से अकार लोप होता है । चिकीर्ष यक् शप् त (कर्मवाच्य में 'त', यक् तथा शप् हुआ)—चिकीर्ष य अत (यहाँ 'अकृत्सार्वधातुकयोः' पा० 7.4.25 से दीर्घ तथा 'अल्लोपः' पा० 6.4.48 से अकारलोप युगपत् प्राप्त होते हैं। दीर्घ पर कार्य होने से यहाँ प्रसक्त होता है, परन्तु पूर्व विप्रतिषेध से अकार लोप होता है । चिकीर्ष्यते ।

यस्य हलः 6.4.49

पद.—यस्य 6.1, हलः 5.1

अनु.—आर्धधातुके अंगस्य लोपः ।

अर्थ—आर्धधातुक परे रहते हल् से उत्तर 'य्' का लोप होता है ।

'आदेः परस्य' परिभाषा के द्वारा 'य' के आदि (अर्थात् यकार) का लोप होता है । अकार का लोप पूर्वसूत्र से सिद्ध होता है ।

उदा.—(1) भिद् यङ्–बेभिद्य (धातु संज्ञा) तुमुन्–बेभिद् तुम्–बेभिद् इट् तुम्–बेभिदितुम् (यकार लोप, अलोप इट्) ।

(2) बेभिद्य लिट्–बेभिद्य आम् लिट्–बेभिद् आम् कृ त (यकार लोप, अकार लोप, लिट् का लुक्, कृ का अनुप्रयोग आदि)–बेभिदाञ्चक्रे ।

(3) अबेभिदिष्ट (भट्टि० 15.116)—भिद् (अत्यर्थे यङ्) यङ्—अब लुङ् होकर रूप बना ।

रोरुदावान् (भट्टि० 3.32)–रुद् यङ्–रोरुद्य अङ् टाप्–रोरुदा मतुप्–रोरुदावत् सु ।

विशेष—1. 'यस्य' अर्थात् **सस्वर यकार** का ही लोप होता है—मव्य के अकार की इत् संज्ञा होती है । मव्य् इट् तृच् इस दशा में सस्वर यकार न होने से उसका लोप न हुआ । मव्यिता ।

2. 'हलः' अर्थात् **हल् से उत्तर** यकार का लोप होता है—लू यङ्–लोलूय (धातु संज्ञा) इट् तृच्—यहाँ आर्धधातुक परे है, परन्तु हल् से उत्तर 'य' नहीं है । अतः लोप नहीं होता है । लोलूयिता ।

क्यस्य विभाषा 6.4.50

पद.—क्यस्य 6.1, विभाषा 1.1

अनु.—आर्धधातुके हलः लोपः ।

अर्थ—आर्धधातुक परे रहते हल् से उत्तर 'क्य' का लोप विकल्प से होता है ।

'क्य' के द्वारा क्यच् क्यष् व क्यङ् का ग्रहण होता है । परन्तु हल् से उत्तर क्यष् सम्भव नहीं है । अतः यहाँ क्यङ् व क्यच् का ही ग्रहण इष्ट है ।

यहाँ भी 'आदेः परस्य' से यकार का लोप होता है । तब 'अतो लोपः' से अकार लोप होता है ।

उदा.—(1) आत्मनः समिधम् इच्छति–समिध् क्यच्–समिध्य ('नः क्ये' के अनुसार पदसंज्ञा न होने से 'झलां जशोऽन्ते' से जश्त्व भी नहीं होता है । धातु संज्ञा, लुट् की उत्पत्ति, लकारादेश तास् डा, इट् ।–समिध् य इ ता ('यस्य हलः' से यकार का नित्य लोप प्राप्त हुआ, प्रकृतसूत्र के द्वारा विकल्प हुआ)–समिध् अ इ ता (अतो लोपः)–समिधिता । 'पुगन्तलघूपधस्य' से प्राप्त गुण का निषेध हुआ । अकार लोप 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से स्थानिवत् हो गया ।

पक्ष में समिध्य इता–समिध्यिता (अतो लोपः) ।

णेरनिटि 6.4.51

पद.—णेः 6.1, अनिटि 7.1

अनु.—अंगस्य आर्धधुके लोपः ।

अर्थ—जिसके आदि में इट् न हो, ऐसे आर्धधातुक के परे रहते 'णि' का लोप होता है ।

'णि' के द्वारा णिच् व णिङ्–दोनों का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) पच् णिच् (हेतुमति च)–पाचि (अत उपधायाः पाचि क्तिन् (स्त्रियाँ क्तिन्)–पाचि ति ('तितुत्रतथ०' से इट् का निषेध)–पाच् ति (णि लोप)–पाक्तिः (चोः कुः । सु) ।

(2) रक्ष् णिच्–रक्षि त् (लुङ्, प्र०पु०एक०)–रक्षि चङ् त् (च्लि, चङ्)–र रक्षि अत् द्वित्व, अभ्यास कार्य) अब 'अचि श्नुधातु०' पा० 6.4.77 के द्वारा इयङ् तथा 'णेरनिटि' पा० 6.4.51 के द्वारा णि लोप युगपत् प्राप्त होते हैं । परत्वात्

1. काशि० 6.4.48 (वा०)—वृद्धिदीर्घाभ्यामतो लोपः पूर्वविप्रतिषेधेन ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयङ् होना चाहिए, परन्तु पूर्वविप्रतिषेध से णिलोप हुआ । अर रक्ष् अत्-अररक्षत् ।

(3) आटि (णिच्, वृद्धि)-आटि चङ् त् (पूर्ववत्)-आटि टि अत् (णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । चङि) अब 'एरनेकाचः-' पा० 6.4.82 से यण् व 'णेरनिटि' पा० 6.4.51 से णिलोप युगपत् प्राप्त होते हैं परन्तु पूर्वविप्रतिषेध से णिलोप हुआ । आट् आगम, वृद्धि होकर—आटिटत् ।

(4) कारि (णिच्, वृद्धि)-कारि युच् ('स्त्रियाम्' के अधिकार में 'ण्यास्श्रन्थो युच्')-कारि अन (युवोरनाकौ)—अब 'सार्वधातुकार्ध०' पा० 8.3.84 से गुण तथा 'णेरनिटि' पा० 6.4. 51 से णिलोप युगपत् प्राप्त होते हैं। पूर्ववत् पूर्व-विप्रतिषेध से णिलोप हुआ । कारन टाप् । कारणा (णत्व, सु)।

(5) कारि (पूर्ववत्) ण्वुल् (ण्वुल्तृचौ)-कारि अक (युवोरनाकौ)-अब 'अचो ञ्णिति' पा० 7.2.115 के द्वारा वृद्धि तथा 'णेरनिटि' से णिलोप युगपत् प्राप्त होते हैं । पूर्ववत् पूर्व विप्रतिषेध से णिलोप हुआ । कार अक सु-कारकः ।

(6) कारि यक् त (णिच्, वृद्धि, लडादेश, यक्)-अब 'अकृत् सार्वधातुकयोर्दीर्घः' पा० 7.4.24 से दीर्घादेश तथा 'णेरनिटि' से णिलोप युगपत् प्राप्त होते हैं । तब पूर्व विप्रतिषेध से णिलोप हुआ । कार् यते-कार्यते ।

द्र० काशि० 6.4.51 इयङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घाणामपवादः ।

विशेष—'अनिटि' अर्थात् **अनिट्** आर्धधातुक परे रहते ही णिलोप होता है—

कारि इट् तृच् (णिच्, तृच्, इट्) अब तृच् आर्धधातुक है, परन्तु वह अनिट् नहीं सेट् है । अतः णिलोप न हुआ । कारे इतृ-कारयितृ सु-कारयिता ।

निष्ठायां सेटि 6.4.52

पद.—निष्ठायाम् 7.1, सेटि 7.1

अनु.—णेः लोपः ।

अर्थ—सेट् निष्ठा परे रहते 'णि' का लोप होता है । 'णि' के द्वारा णिच् व णिङ् का ग्रहण इष्ट है ।

उदा.—भक्ष् णिच् (चुरादित्वात्)-भक्षि क्त-भक्षि इट् क्त-भक्ष् इत सु-भक्षितम् ।

विशेष—'सेटि' अर्थात् **सेट्** निष्ठा परे रहते ही णिलोप होता है—

सम् ज्ञप् क्त-सम् ज्ञप् णिच् त-सम् ज्ञपित सु-सञ्ज्ञपितः अनिट् निष्ठा होने से णिलोप न हुआ ।

जनिता मन्त्रे 6.4.53

पद.—जनिता 1.1, मन्त्रे 7.1

अनु.—णेः लोपः ।

अर्थ—वेदमन्त्र के विषय में सेट् तृच् परे रहते 'जनितृ' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—जन् णिच् इट् तृच् यहाँ णिलोप प्राप्त न था । जन् इतृ-जनितृ सु-जनिता यो न पिता जनिता (ऋ०10.82.3) ।

लोक में—जनयिता ।

शमिता यज्ञे 6.4.54

पद.—शमिता 1.1, यज्ञे 7.1

अनु.—णेः लोपः ।

अर्थ—यज्ञकर्म के विषय में सेट् तृच् परे रहते 'शमितृ' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—शृतं हविः शमितः ।

अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु 6.4.55

पद.—अय् 1.1, आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु 7.3

अनु.—णेः आर्धधातुके ।

अर्थ—आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु तथा इष्णु के परे रहते णि को 'अय्' आदेश होता है। 'आलु' के द्वारा 'आलुच्' का ग्रहण इष्ट है । द्र० 'स्पृहिग्रहिपति०' (पा० 3.2.158) 'श्रुदक्षिस्पृहि० (उणा० 376) से आय्य प्रत्यय होता है ।

'इत्नु' के द्वारा 'स्तनिहृषि०' (उणा० 309) से विहित 'इत्नुच्' प्रत्यय का ग्रहण होता है ।

'इष्णु' के द्वारा 'णे-श्छन्दसि' (पा० 3.2.137) से विहित 'इष्णुच्' का ग्रहण इष्ट है । यह सूत्र अनिट् आर्धधातुक मात्र में णिलोपविधायक 'णेरनिटि' का परत्वेन तथा निरवकाशत्वेन अपवाद है ।

उदा.—(1) कारि आम् लिट् इस दशा में 'अय्' होकर कारयाञ्चकार बनता है । वादयाञ्चक्रिरे (भट्टि० 14.03) । आकर्णयामास (भट्टि० 3.27) ।

(2) गण्डि अन्तः-गण्डयन्तः 'तृभूवहि०' (उणा० 408) से 'झच्' हुआ । 'झोऽन्तः' से अन्त आदेश हुआ ।

(3) गृहि आलुच्-गृहयालु सु-गृहयालुः ।

(4) गृहि आय्य-गृहयाय्य सु-गृहयाय्यः ।

(5) स्तनि इत्नु-स्तनयित्नुः (सु) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) पारि इष्णु-पारयिष्णु जस्-पारयिष्णवः ।

ल्यपि लघुपूर्वात् 6.4.56

पद.—ल्यपि 7.1, लघुपूर्वात् 5.1

अनु.—णेः अय् आर्धधातुके ।

अर्थ—लघु वर्ण है पूर्व में जिसके, ऐसे वर्ण से उत्तर णि के स्थान पर अय् आदेश होता है, ल्यप् परे रहते ।

उदा.—प्रशम् णिच् ल्यप्-प्रशम् अय्य (मितां ह्रस्वः)-प्रशमय्य ।

विशेष—'लघुपूर्वात्' अर्थात् **लघुवर्ण है पूर्व में जिससे,** ऐसे वर्ण से उत्तर णि को अय् होता है—

प्र पत् णिच् ल्यप्-प्रपात् इय (उपधादीर्घ)-प्रपात्य (त् वर्ण से पूर्व 'आ' है जो लघुवर्ण नहीं है । अतः तकार से उत्तर णि को अय् आदेश न हुआ । णिलोप हुआ)।

विभाषाऽऽपः 6.4.57

पद.—विभाषा 1.1, आपः 5.1

अनु.—ल्यपि णेः अय् आर्धधातुके ।

अर्थ—ल्यप् परे रहते आप् से उत्तर णि के स्थान पर विकल्प से अय् आदेश होता है । 'आप्' के द्वारा 'आप्ल्ऌ लम्भने' (चुरादि०) तथा 'आप्ऌ व्याप्तौ' (स्वादि०) दोनों धातुओं का ग्रहण इष्ट है ।

उदा.—प्र आप् णिच् ल्यप्-प्रापय्य, प्राप्य । अय् अभाव पक्ष में णिलोप हुआ ।

युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि 6.4.58

पद.—युप्लुवोः 6.2, दीर्घः 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—ल्यपि अंगस्य ।

अर्थ—वेद के विषय में ल्यप् परे रहते 'यु' तथा 'प्लु' अंग को दीर्घ होता है ।

उदा.—वि यु ल्यप्-वियूय (ऋ० 10.131.2; यजु० 10.32)। परि प्लु ल्यप्-परिप्लूय (काठ०सं० 25.3) ।

'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' (प०) के अनुसार दीर्घ का अभाव भी होता है—

अभिप्लुत्य (शां ब्रा० 21.1) ।

लोक में तुक् आगम होता है—

संयुत्य, आप्लुत्य ।

क्षियः 6.4.59

पद.—क्षियः 6.1

अनु.—अंगस्य दीर्घः ल्यपि ।

अर्थ—ल्यप् परे रहते 'क्षि' अंग को दीर्घ होता है ।

उदा.—प्र क्षि ल्यप्-प्रक्षीय ।

निष्ठायामण्यदर्थे 6.4.60

पद.—निष्ठायाम् 7.1, अण्यदर्थे 7.1

अनु.—अंगस्य दीर्घः क्षियः ।

अर्थ—ण्यत् वर्जित अर्थ में वर्त्तमान निष्ठा के परे रहते 'क्षि' अंग को दीर्घ होता है । 'कृत्याः' के द्वारा 'ण्यत्' की कृत्य संज्ञा है । 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' से ण्यत् का अर्थ भाव तथा कर्म है ।

उदा.—आ क्षि क्त-आक्षीणः (दीर्घ, णत्व, सु गत्यर्थाकर्म० । क्षियो दीर्घात्) ।

प्रक्षीणः ।

वाऽऽक्रोशदैन्ययोः 6.4.61

पद.—वा-अव्य०, आक्रोशदैन्ययोः 7.2

अनु.—निष्ठायाम् अण्यदर्थे अंगस्य क्षियः दीर्घः ।

अर्थ—आक्रोश और दैन्य अर्थ गम्यमान हों और ण्यत् भिन्न अर्थ में वर्त्तमान निष्ठा परे हो तो 'क्षि' अंग को विकल्प से दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) (आक्रोशे) क्षितायुः (दीर्घाभाव) । क्षीणायुः (दीर्घ, नत्व, णत्व) ।

(2) (दैन्ये) क्षितः ।

क्षीणः (दीर्घ, नत्व, णत्व) ।

स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च 6.4.62

पद.—स्यसिच्सीयुट्तासिषु 7.3, भावकर्मणोः 7.2, उपदेशे 7.1, अच्हनग्रहदृशाम् 6.3, वा-अव्य०, चिण्वत्-अव्य०, इट् 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य । आर्धधातुके ।

अर्थ—भाव तथा कर्म गम्यमान हों तो उपदेश में जो अच् तदन्त अंग तथा हन्, ग्रह्, व दृश् इन अंगों को स्य, सिच्, सीयुट् तथा तास् परे रहते विकल्प से चिण्वद्भाव होता है तथा चिण्वत् पक्ष में स्य आदि को इट् आगम होता है । प्रकृत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्र में 'आर्धधातुके' का अधिकार है। अतः 'सीयुट्' के द्वारा आर्धधातुक सीयुट् (आशीर्लिङ् के सीयुट्) का ग्रहण होता है। वि०लिङ् का सीयुट् सार्वधातुक संज्ञक होता है। चिण्वद्भाव अंग को होता है तथा इट् आगम स्य आदि को होता है। द्र०

यावान् इण् नाम स सर्व आर्धधातुकस्यैव भवति (महाभाष्यम् 6.4.62)।

चिण्वद्भाव का तात्पर्य है कि चिण् होने पर जो जो अंगकार्य होते हैं, वे सभी अंगकार्य 'स्य' आदि के परे रहते होंगे।

चिण् के णकार व चकार की इत्संज्ञा है। चिण् परे रहते निम्नलिखित चार कार्य होते हैं, उन्हें यहाँ भी जानना चाहिए। महाभाष्य में इन्हें श्लोकबद्ध किया गया है। यथा—

चिण्वद् वृद्धिर्युक् च हन्तेश्च घत्वम्,
दीर्घश्चोक्तो यो मितां वा चिणीति ।
इट् चाऽसिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्,
नित्यश्चाऽयं वल्निमित्तो विघाती ॥ अर्थात्

(क) चिण्वद् वृद्धिः-चिण् परे होने पर णिन्निमित्तक वृद्धि होती है। (अत उपधायाः अथवा अचो ञ्णिति)।

(ख) युक् च-चिण् परे रहते आदन्त धातु को युक् आगम होता है (आतो युक् चिण् कृतोः)।

(ग) हन्तेश्च घत्वम्-चिण् के परे रहते हन् धातु के हकार को घकार होता है (हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु)।

(घ) दीर्घश्चोक्तो यो मितां वा चिणीति-चिण् परे रहते मित् अंग की उपधा को पाक्षिक दीर्घ होता है (चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्)। यहाँ निम्नलिखित विशेष ध्यातव्य है—

(ङ) इट् चाऽसिद्धस्तेन में लुप्यते णिः अर्थात् चिण्वद्भाव होने पर स्य आदि को जो इट् आगम होता है, वह आभीय कार्य होने से असिद्ध है। फलतः 'णेरनिटि' से णिलोप हो जाता है।

(च) नित्यश्चाऽयं वल्निमित्तो विघाती—यह इट् आगम नित्य तथा वलादिलक्षण वाला इट् अनित्य होता है। 'भावि तास् त' इस दशा में 'स्यसिच् सीयुट्-' से चिण्वदिट् तथा 'आर्ध-धातुकस्येड्वलादेः' (पा० 7.2.35) से इट् युगपत् प्राप्त होते हैं। परत्व के कारण वलादिलक्षण इट् होना चाहिए परन्तु चिण्वद् इट् नित्य है तथा वलादिनिमित्तक इट् अनित्य है। अनित्य से नित्य कार्य बलवान् होता है। अतः चिण्वद् इट् हुआ। भाविता।

उदा.—(1) (अजन्तस्य स्ये) चि स्य त (कर्मणि लृट्)-चि इट् स्य त-चै इ स्य त-चायिष्यते (वृद्धि)। पक्ष में—चेष्यते।

अचायिष्यत (कर्मणि लृङि रूपम्)।
अचेष्यत (पक्षे रूपम्)।

शम् णिच्-शामि (अत उपधायाः)-शमि इट् स्य त-शामिष्यते (जनीजृष्क्नसु० भ्वा० गणसूत्र से मित् संज्ञा। मितां ह्रस्वः से ह्रस्व। स्य, चिण्वद्भाव, इट्, अत उपधायाः से वृद्धि। 'असिद्धवत्राभात्' के द्वारा इट् के असिद्ध होने से णिलोप हो गया। पक्ष में—शमिष्यते।

णिजन्त अवस्था में वलादि इट् होकर—शमयिष्यते।
लृङ् में अशामिष्यत, अशमिष्यत, अशमयिष्यत।

(2) (हनः स्ये) हन् स्य त-हान् इट् स्य त-घान् इस्यत-घानिष्यते (अतः उपधायाः। हो हन्तेर्०)। द्र० भट्टि० 1.22

पक्ष में—हनिष्यते।

लृङ् में-अघानिष्यत, अहनिष्यत।

(3) (ग्रहः स्ये) ग्रह् इट् स्य त-ग्राहिष्यते। पक्ष में—ग्रहीष्यते (ग्रहोऽलिटि दीर्घः)।

लृङ् में-अग्राहिष्यत, अग्रहीष्यत।

(4) (दृशः स्ये) दृश् इट् स्य त-दर्शिष्यते (पुगन्तलघूप०)।

पक्ष में—द्रक्ष्यते। लृङ् में-अदर्शिष्यत, अद्रक्ष्यत।

(5) (अजन्तस्य सिचि) चि सिच् आताम् (कर्म में लुङ्, प्र०पु०द्विव०, च्लि, सिच्)-अचि इट् स् आताम्-अचै इस् आताम् (अचो ञ्णिति)-अचायिषाताम्।

पक्ष में—अचेषाताम्।

अशामिषाताम् (अत उपधायाः)।

पक्ष में—अशमिषाताम्। (वलादि इट्)।

णिच् में—अशमयिषाताम्।

अन्वभाविष्ठाः (भट्टि० 5.35)।

(6) (हनः सिचि) अघानिषाताम् (अत उपधा०, हो हन्तेर्०)। पक्ष में—अवधिषाताम् (लुङि च)।

अहसाताम् ('हनः सिच्' से कित्त्व तथा अनुदात्तोपदेशवनति०' से नलोप)।

(7) (ग्रहः सिचि) अग्राहिषाताम् (अत उपधायाः)।

पक्ष में—अग्रहीषाताम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(8) (दृशः सिचि) अदर्शिषाताम् (पुगन्तलघूपधस्य)।
पक्ष में—अद्रक्षाताम्।

(9) (अजन्तस्य सीयुटि) चि सीयुट् त (आ० लिङ्)–चि सीय् सुट् त–चि इट् सीय् सुट् त–चायिषीष्ट (लिङः सीयुट्। सुट् तिथोः। अचो ञ्णिति। यकार लोप)। पक्ष में—चेषीष्ट।

(10) (हनः सीयुटि) हन् इट् सीयुट् सुट् त–घानिषीष्ट (अत उपधायाः। हो हन्तेर्०। यलोप) वधिषीष्ट (पक्ष में)।

(11) (ग्रहः सीयुटि) ग्राहिषीष्ट (पूर्ववत्)।
पक्ष में—ग्रहीषीष्ट।

(12) (दृशः सीयुटि) दर्शिषीष्ट (पुगन्तलघू०)।
पक्ष में—द्रक्षीष्ट।

(13) (अजन्तस्य तासौ) चायिता (अचो ञ्णिति)।
पक्ष में—चेता।
शामिता (चिण्वद्भाव, अत उपधायाः)।
शमिता (अभाव पक्ष)।
शमयिता (णिच् पक्ष)।

(14) (हनः तासौ)–घानिता। पूर्ववत्।
पक्ष में—हन्ता।

(15) (ग्रहः तासौ) ग्राहिता। पक्ष में—ग्रहीता।

(16) (दृशः तासौ) दर्शिता। पक्ष में—द्रष्टा।

विशेष—1. 'स्यसिच्०' अर्थात् **स्य, सिच्, सीयुट्** तथा **तास्** परे रहते ही चिण्वद्भाव व इट् होता है—

चेतव्यम् यहाँ चिण्वद्भाव न हुआ।

2. भावकर्मणोः अर्थात् **'भाव'** व **'कर्म'** में ही चिण्वद् भाव होता है—

चेष्यति 'स्य' है परन्तु कर्त्ता अर्थ में है। अतः चिण्वद्-भाव न हुआ।

3. 'उपदेशे' अर्थात् **उपदेश** में जो अच्, तदन्त को चिण्वद् भाव होता है—

कृ णिच् स्य त–कारिस्य ते यहाँ 'कार्' अजन्त नहीं है, अतः 'स्य' परे रहते चिण्वद्भाव प्राप्त न हुआ। चूँकि 'कृ' उपदेश में अजन्त है। अतः चिण्वद्भाव हो गया।

4. 'अज्झन०' अर्थात् **अच् तदन्त, हन्, ग्रह् तथा दृश्**–इनको ही चिण्वद्भाव होता है।

पठिष्यते यहाँ चिण्वद्भाव न हुआ।

दीङो युडचि क्ङिति 6.4.63

पद.—दीङः 5.1, युट् 1.1, अचि 7.1, क्ङिति 7.1

अनु.—अंगस्य आर्धधातुके।

अर्थ—दीङ् से उत्तर अजादि कित् ङित् आर्धधातुक को युट् का आगम होता है।

युट् के टकार व उकार की इत्संज्ञा है। युट् टित् होने से आदि अवयव होता है। 'दीङः' में पञ्चमी निर्देश है तथा 'अचि' में सप्तमी निर्देश है। पञ्चमी विभक्ति का निर्देश बलवान् होता है। अतः दीङ् से उत्तर अव्यवहित अजादि का आदि अवयव होता है।

उदा.—दीङ् त (लिट्)–दी ए ('असंयोगाल्लिट् कित्' से कित् हुआ। अतः गुण का निषेध हो गया)–दी युट् ए–दीये–दिदीये (द्वित्व अभ्यास कार्य)।

दिदी ये—इस दशा में युट् (पा० 6.4.63) 'असिद्ध-वत्राभात्' से असिद्ध है। अतः 'एरने०' से यण् प्राप्त होता है। 'वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ भवत इति वक्तव्यम्' पा० 6.4. 22 (वा०) से युट् आगम सिद्ध है। अतः यण् न हुआ।

विशेष—1. 'अचि' अर्थात् **अजादि** कित् ङित् को ही युट् आगम होता है—

उप दी यङ्–उपदेदीयते ङित् है परन्तु अजादि नहीं है। अतः युट् न हुआ।

2. 'क्ङिति' अर्थात् **कित्** व **ङित्** को ही युट् होता है—

उप दी ल्युट् (अजादि है, परन्तु कित् या ङित् नहीं है)–उपदानम्–अतः युट् न हुआ।

आतो लोप इटि च 6.4.64

पद.—आतः 6.1, लोपः 1.1, इटि 7.1, च–अव्य०।

अनु.—अचि क्ङिति आर्धधातुके अंगस्य।

अर्थ—अजादि आर्धधातुक कित् ङित् तथा अजादि आर्ध-धातुक इट् परे रहते अंग के आकार का लोप होता है।

उदा.—(1) पा अतुस् (लिट्) 'असंयोगाल्लिट् कित्' से कित् हुआ। 'लिट् च' से आर्धधातुक संज्ञा। अब आकार लोप (पा० 6.4.64) तथा द्वित्व (पा० 6.1.8) युगपत् प्राप्त होते हैं। परत्व के कारण आकारलोप प्राप्त होता है। 'द्विर्वचनेऽचि' से आकार लोप का निषेध होकर प्रथम द्वित्व हुआ। पा अतुस्–पपतुः (द्वित्वादि)। अतुस् अजादि आर्ध-धातुक कित् है।

इसी प्रकार–पपुः। इसी प्रकार–अदधः (भट्टि० 6.18) चङ् में रूप।

(2) प्र दा अङ्–'आतश्चोपसर्गे' से अङ् हुआ। 'आर्ध-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातुकं शेषः' से आर्धधातुक । अजादि आर्धधातुक ङित् 'अङ्' परे रहते आकार लोप । प्र द् अ–प्रद टाप् सु–प्रदा इसी प्रकार–कम्बलदः ।

(3) पा थल् (लिट्)–पा इ थ (पा अनुदात्त है । 'एकाच उपदेशे०' से इट् निषेध 'कृसृभृवृ०' क्रादिनियम से इट् की प्राप्ति हुई । 'अचस्तास्वत्०' से निषेध । भारद्वाज नियम से इट् का विकल्प । इट् पक्ष में द्वित्वादि, आकार लोप होकर–पपिथ ।

पक्ष में—पपाथ यहाँ न इट् है, न अजादि कित् है और न ही अजादि ङित् है ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'आर्धधातुके' अर्थात् **आर्धधातुक** में ही उक्त आकार लोप होता है—

या झि–या अन्ति ('सार्वधातुकमपित्' से ङित् है)–यहाँ 'अन्ति' अजादि है तथा ङित् है, परन्तु आर्धधातुक नहीं है । अतः आकार लोप नहीं हुआ । यान्ति ।

वि अति रा इट् (कर्मव्यतिहार अर्थ में लङ् उ०पु० एक०)–'कर्तरि कर्म०' से आत्मनेपद हुआ । वि अति अट् रा इ–यहाँ अजादि इट् है परन्तु आर्धधातुक नहीं है । अतः आकार लोप न हुआ । व्यत्यरे–गुण हुआ । इसी प्रकार–व्यत्यले ।

'इटि' पद के द्वारा 'इट् आगम' का ग्रहण हो अथवा उ.पु. एकव. 'इट्' प्रत्यय का ग्रहण हो? इस विषय में वैयाकरणों में दो मत हैं—

क) नागेश प्रभृति विद्वान् 'इट्' के द्वारा केवल इट् आगम का ग्रहण करते हैं । इस पक्ष में 'इटि' पद के साथ 'आर्धधातुके' पद को सम्बद्ध करने की आवश्यकता नहीं है ।

ख) भट्टोजिदीक्षित प्रभृति विद्वान् 'इट्' पद के द्वारा इट् आगम व उ०पु० एक० का इट्–दोनों का ग्रहण करते हैं । इनके पक्ष में 'इटि' पद का 'आर्धधातुके' पद विशेषण अनिवार्यतः बनता है, अन्यथा 'व्यत्यरे' आदि रूप निष्पन्न नहीं हो पाते हैं ।

2. 'अचि' अर्थात् **अजादि** में ही आकार लोप होता है—

ग्लै यक् त–'यक्' आर्धधातुक है, कित् है, परन्तु अजादि नहीं है । अतः आकार लोप नहीं होता है । ग्ला य त –ग्लायते ।

ग्लै यङ् शप् त—यहाँ 'यङ्' ङित् है, आर्धधातुक है, परन्तु अजादि नहीं है । अतः आकार लोप न हुआ–जाग्लायते ।

दा इट् (आ०लिङ्)–दा अत् (इटोऽत्) दा सीयुट् अत् (सीयुट् आगम हुआ जो स्थानिवद्भाव से इट् है । 'लिङाशिषि' से आर्धधातुक भी है परन्तु अजादि नहीं है । अतः आकार लोप न हुआ) । दासीय ।

ईद् यति 6.4.65

पद.—ईत् 1.1, यति 7.1

अनु.—अंगस्य आतः ।

अर्थ—यत् प्रत्यय परे रहते आकारान्त अंग को 'ईत्' आदेश होता है ।

उदा.—दा यत्–दीय–देय (सार्वधातुकार्धधा०)–सु–देयम् ।

विशेष—'ईत्' के स्थान पर 'इत्' आदेश कर देने पर भी यहाँ इष्टसिद्धि हो जाती, परन्तु दीर्घ निर्देश उत्तरार्थ किया गया है । अगले सूत्र 'घुमास्थागापाजहातिः०' में दीर्घ ईकार का अनुवर्त्तन आवश्यक था । अतः प्रकृत सूत्र में दीर्घ विधान किया गया है ।

घुमास्थागापाजहातिसां हलि 6.4.66

पद.—घुमास्था .... साम् 6.3, हलि 7.1

अनु.—अंगस्य ईत् आर्धधातुके क्ङिति आतः ।

अर्थ—हलादि कित् ङित् आर्धधातुक परे रहते घु, मा, स्था, गा, पा, ओहाक् तथा षो–इन अंगों के आकार के स्थान पर 'ईत्' आदेश होता है ।

'गा' पद के द्वारा गै > गा' का तथा इङ् > गाङ्–दोनों का ग्रहण होता है ।

'पा रक्षणे' में विकरण 'शप्' का लुक् होता है । अतः इसका यहाँ ग्रहण नहीं है । यथा—

पा यक् त–(ईत् न होकर) पायते ।

सूत्र में 'जहाति' इस प्रकार स्पष्ट निर्देश होने से यहाँ 'ओहाक् त्यागे' का ग्रहण होता है तथा 'ओहाङ् गतौ' का नहीं । 'दाधाघ्वदाप्' से घुसंज्ञा होती है ।

उदा.—(1) दा यक् त–यक् हलादि आर्धधातुक कित् है । अतः ईत् हुआ । दीयते ।

इसी प्रकार—धीयते ।

दा यङ् शप् त–देदीयते

यङ् हलादि आर्धधातुक ङित् है । अतः ईत् हुआ ।

इसी प्रकार—देधीयते ।

(2) मा यक् त–मीयते (किति) ।

मा यङ् शप् त–मेमीयते (ङिति) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) स्था यक् त–स्थीयते ।
स्था यङ् त–तेष्ठीयते ।

(4) गै यक् त–गा यक् त–गीयते ।
गै यङ् शप् त–जेगीयते ।

इङ् को लुङ् की विवक्षा में वैकल्पिक गाङ् आदेश । गाङ् पक्ष में—गात (प्र०पु०एक०) गा सिच् त (च्लि, सिच्)–गा स् त (गाङ्कुटादिभ्यो० से ङित्)–गी स् त–गीष् त–गीष्ट–अधि अट् गीष्ट–अध्यगीष्ट ।

(5) पा यक् त–पीयते ।
पा यङ् शप् त–पेपीयते ।

(6) हा यक् त–हीयते ।
हा यङ् शप् त–जेहीयते ।

(7) षो यक् त–सा य त–सीयते ।
षो यङ् शप् त–सेषीयते ।

विशेष—1. 'हलि' अर्थात् **हल् परे** रहते ही 'ईत्' होता है–

दा झि–दा उस्–दा दा उस्–यहाँ 'उस्' कित् है परन्तु हलादि नहीं है । अतः 'ईत्' न हुआ । आकार लोप हुआ है । द दा उस्–दद् उस्–ददुः ।

एर्लिङि 6.4.67

पद.—एः 1.1, लिङि 7.1

अनु.—घुमास्था.. साम्, क्ङिति, आर्धधातुके, अंगस्य ।

अर्थ—कित् ङित् लिङ् आर्धधातुक परे रहते घु, मा, स्था, गा, पा, हा तथा षो—इन अंगों को एकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) दा यास् त् (लिङ्, तिप्)–दायात् (यासुट् परस्मैपदेषू० । किदाशिषि) देयात् ।

इसी प्रकार–धेयात् ।

(2) मा यासुट् त्–मेयात् । यहाँ 'मा' के द्वारा 'मा माने' का ही ग्रहण इष्ट है । 'मेङ्' तथा 'माङ्' आत्मनेपदी है और आत्मनेपद में लिङ् कित् नहीं होता ।

(3) स्था यासुद् त्–स्थेयात् । स्थेयाः (भट्टि० 19.16)

(4) गै यासुट् त्–गेयात् । यहाँ 'गाङ्' का ग्रहण नहीं होता है ।

(5) पा यासुट् त्–पेयात् ।

(6) हा–हेयात् ।

(7) षो–सेयात् ।

विशेष—'क्ङिति' अर्थात् **कित् व ङित्** में ही एत्व होता है–

दा सीयुट् सुट् त (आत्मनेपद में) दा सीय् स् त–(कित् न होने से एत्व न हुआ) दासीस् त–दासीष्त–दासीष्ट ।

वाऽन्यस्य संयोगादेः 6.4.68

पद.—वा–अव्य०, अन्यस्य–6.1, संयोगादेः 6.1

अनु.—अंगस्य आत; एः आर्धधातुके लिङि किति ।

अर्थ—कित् लिङ् आर्धधातुक परे रहते घु, मा, स्था, गा, पा, हा तथा षो धातुओं से अतिरिक्त संयोगादि (=संयोग है आदि में जिसके)–अंग के आकार को एत्व आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.—ग्लै यासुट् त् (आ०लिङ्) यहाँ 'यास्त्' यह 'लिङाशिषि' से आर्धधातुक लिङ् है । 'किदाशिषि' से 'यासुट्' कित् है (आदेच उपदेशेऽशिति) । ग्ला यासुट् त् । 'ग्ला' घुमा आदि से अतिरिक्त है तथा इसके आदि में संयोग (ग्ल्) है । ग्लेयास्त्–ग्लेयात् ।

पक्ष में—ग्लायात् ।

इसी प्रकार (म्लै)–म्लेयात्, म्लायात् ।
(ध्मा) ध्मेयात्, ध्मायात् ।
(म्ना) म्नेयात्, म्नायात् ।
(घ्रा) घ्रेयात्, घ्रायात् ।
(श्रै) श्रेयात्, श्रायात् ।
(ध्यै) ध्येयात्, ध्यायात् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अन्यस्य' अर्थात् **घु आदि से अतिरिक्त** को ही विकल्प से एत्व होता है—

स्था यास् त्–स्थेयात् 'स्था' धातु संयोगादि है, इससे परे कित् आर्धधातुक लिङ् है । अतः पाक्षिक एत्व प्राप्त होता है । परन्तु 'स्था' का घु आदि में परिगणन होने से एत्व का विकल्प न होकर नित्य 'एत्व' होता है । स्थेयात् ।

2. 'संयोगादेः' अर्थात् **संयोगादि** अंग को ही पाक्षिक एत्व होता है—

या यास् त्–यायात्–कित् लिङ् आर्धधातुक परे है, 'या' धातु घुमा आदि से अतिरिक्त है परन्तु वह संयोगादि नहीं है । अतः एत्व न हुआ ।

3. 'क्ङिति' अर्थात् **कित्** परे रहते ही एत्व होता है—

ग्ला सीयुट् सुट् त–'ग्ला' धातु संयोगादि है, घु आदि से अतिरिक्त है, इससे परे आर्धधातुक लिङ् है परन्तु वह कित् न होने से एत्व न हुआ । ग्लासीष्ट ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न ल्यपि 6.4.69

पद.—न-अव्य०, ल्यपि 7.1

अनु.—अंगस्य घुमास्थागापाजहातिसाम् ।

अर्थ—ल्यप् परे रहते घु आदि को जो कुछ कहा है, वह नहीं होता ।

यहाँ 'घुमास्था०' से प्राप्त ईत् का निषेध होता है ।

उदा.—(1) प्र दा ल्यप्-प्रदाय । प्रधाय ।
(2) प्रमाय ।
(3) प्रस्थाय ।
(4) प्रगाय ।
(5) प्रपाय ।
(6) प्रहाय ।
(7) अवसाय ।

मयतेरिदन्यतरस्याम् 6.4.70

पद.—मयतेः 6.1, इत् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य ल्यपि ।

अर्थ—ल्यप् परे रहते मेङ् अंग को विकल्प से 'इत्' आदेश होता है ।

'इत्' में तकार मुखसुखार्थ है ।

अप मेङ् ल्यप्-अप मि य-अप मि तुक् य-अपमित्य सु-अपमित्य । उदीचां माङो ० । पक्ष में—अपमाय ।

लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः 6.4.71

पद.—लुङ्लङ्लृङ्क्षु 7.3, अट् 1.1, उदात्तः 1.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—लुङ्, लङ् तथा लृङ् परे होने पर अंग को 'अट्' आगम होता है और वह 'अट्' उदात्त होता है ।

उदा.—(1) भू तिप्-भूत्-अभूत् (लुङ्) ।

(2) भू लङ्-भू तिप्-भू शप् ति (सार्वधातुक संज्ञा, कर्त्तरि शप्)-भू अत् (इतश्च)-भो अत् (सार्वधातुकार्धधातु०)-भवत्-अट् भवत्-अभवत् ।

(3) भू स्य तिप्-भू इट् स्यत्-अभविष्यत् ।

भाष्यकार के अनुसार लावस्था में ही अट् व आट् कर लेना चाहिए । प्रक्रियानुसारी ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तिप् आदि लादेश, शप् आदि विकरण तथा अन्य सम्प्रसारणादि कार्य कर चुकने के पश्चात् अट् आट् किया जाना चाहिए । प्रक्रिया ग्रन्थों के अनुसार लकारावस्था में अट् आट् कर लेने से निम्नलिखित दशाओं में अनिष्ट रूप प्राप्त होते हैं—

अघसत् (अद् लुङ्) ।
ऐज्यत (यज् कर्मणि लङ्) ।
औह्यत (वह् कर्मणि लङ्) ।
औप्यत् (वप् कर्मणि लङ्) ।

आकरग्रन्थों में उपर्युक्त सभी दोषों का परिहार दिया गया है ।

आडजादीनाम् 6.4.72

पद.—आट् 1.1, अजादीनाम् 6.3

अनु.—लुङ्लङ्लृङ्क्षु अंगस्य उदात्तः ।

अर्थ—लुङ्, लङ् तथा लृङ् परे रहते अजादि अंग को आट् आगम होता है और वह उदात्त होता है ।

उदा.—(1) ईक्ष् इ स् त (लुङ्, सिच्, इट्)-आट् ईक्ष् इ स् त-ऐक्षिष्ट (आट्, आटश्च, षत्व, ष्टुत्व) ।

(2) ईक्ष् शप् त (लङ्, शप्)-आ ईक्ष् अ त (आट्)-ऐक्षत (वृद्धि) ।

(3) ईक्ष् इट् स्य त (लृङ्, स्य, इट्)-आट् ईक्ष् इ स्य त (आट्)-ऐक्षिष्यत (आटश्च) ।

अन्य उदा.—अभि आ इण् स् (लङ् म०पु० एक०)-अभ्यैः (भट्टि० 5.67) ।

छन्दस्यपि दृश्यते 6.4.73

पद.—छन्दसि 7.1, अपि-अव्य०, दृश्यते-तिङन्तरूपम्।

अनु.—अंगस्य आट् उदात्तः ।

अर्थ—वेद के विषय में आट् आगम का व्यभिचार होता है।

तात्पर्य है कि लोक में आट् अजादि अंग को होता है । वेद में आट् अजादि को होता ही है, अनजादि अर्थात् हलादि से भी देखा जाता है । व्याकरण में 'अपि' पद सभी विधियों के व्यभिचारार्थ प्रयुक्त होता है ।

उदा.—आवः (ऋ० 1.33.14) ।
आनक् ।
आयुनक् (लङ्, चोः कुः, खरि च) ।

न माङ्योगे 6.4.74

पद.—न-अव्य०, माङ्योगे 7.1

अनु.—अंगस्य अट् आट् लुङ्लङ्लृङ्क्षु ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—माङ् के योग में अंग को अट् व आट् आगम नहीं होते हैं।

उदा.—(1) मा स्म भूत् (स्मोत्तरे लङ् च)–यहाँ लुङ् में अट् की प्राप्ति हुई। निषेध हो गया।

(2) मा स्म भवत् (स्मोत्तरे लङ् च)–लङ् हुआ। पूर्ववत् अट् का निषेध।

(3) मा भवान् ईहिष्ट–लुङ्, सिच्, आट् की प्राप्ति व निषेध।

(4) मा स्म भवान् ईहत–लङ्, शप्, पूर्ववत् आट् का निषेध।

मा शुचः (कुन्द 1.31), मा धुक्षः (भट्टि० 6.16), मा मुहः, मा रुषः (भट्टि० 15.16), अवमंस्थाः (नी०श० 17)।

बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि 6.4.75

पद.—बहुलम् 1.1, छन्दसि 7.1, अमाङ्योगे 7.1, अपि–अव्य०।

अनु.—अंगस्य लुङ्लङ्लृङ्क्षु माङ्योगे अट् आट् न।

अर्थ—आचार्य पाणिनी ने 'अपि' पद का प्रयोग विधि के सभी प्रकार से व्यभिचारार्थ किया है। अतः सूत्रार्थ इस प्रकार होगा—वेद के विषय में लुङ्, लङ् या लृङ् परे रहते माङ् के योग में अट् आट् बहुलता से होते है तथा माङ् का योग न होने पर भी अट् आट् नहीं होते हैं।

उदा.—(1) (माङ्योगे) मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः।
मा अभित्था;
मा आवः।
(2) (अमाङ्योगे) जनिष्ठा उग्रः (ऋ० 10.73.1)।
काममम् ऊनयीः।
काममम् ऊर्दयीत्।

इरयो रे 6.4.76

पद.—इरयोः 6.2, रे–लुप्तप्रथमान्तरूपम्।

अनु.—बहुलम्, छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में 'इरे' के स्थान पर बहुलता से 'रे' आदेश होता है।

'इरे' के द्वारा 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' के द्वारा विहित 'इरेच्' का ग्रहण होता है।

'इरयोः' इस द्विवचन के निर्देश के द्वारा दोनों प्रकार के 'इरे' का ग्रहण इष्ट है—

(क) 'झ' को प्राप्त इरेच्,

(ख) 'इरेच्' के स्थान पर प्राप्त 'रे', जिसे इट् आगम होकर 'इरे' स्वरूप बन जाता है। तात्पर्य यह है कि 'इरेच्' के स्थान पर जो 'रे' आदेश होता है, उसे इट् आगम होकर पुनः जो 'इरे' बन जाता है, उसे भी 'रे' आदेश हो जाता है।

उदा.—गर्भं प्रथमं दध्र आपः (ऋ० 10.82.5)।

धा झ–धा इरेच्–दधा इरेच्–दध् इरे (आतो लोप इटि च)–दध्रे–दध्रे (शौ०सं० 12.1.37)। दुदुह्रे (तै०ब्रा० 2.7.13.4)। जगृभ्रे (ऋ० 5.32.11)।

बहुलकथन से क्वचित् नहीं भी होता है—चक्रिरे। तत्निरे (ऋ० 1.164.5)। तेनिरे (शत० 4.6.7.13)।

अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ 6.4.77

पद.—अचि 7.1, श्नुधातुभ्रुवाम् 6.3, य्वोः 6.2, इयङुवङौ 1.2

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—अजादि प्रत्यय परे रहते श्नुप्रत्ययान्त शब्द, इवर्णान्त-उवर्णान्त धातु तथा भ्रू शब्द–इन अंगों को इयङ् व उवङ् आदेश होते हैं।

ङिच्च परिभाषा के द्वारा उक्त आदेश अन्त्यवर्ण (या तो इकार अथवा उकार) के स्थान पर होते हैं। 'स्थानेऽन्तरतमः' के द्वारा इवर्ण के स्थान पर 'इयङ्' तथा उवर्ण के स्थान पर 'उवङ्' होता है।

इयङ् व उवङ् के 'ङ्' तथा 'अ' की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—(1) शक् (वर्तमाने लट्। झि। अन्त आदेश। श्नु विकरण)–शक् श्नु अन्ति–शक्नुवङ् अन्ति–शक्नुवन्ति।

(2) क्षि (इवर्णान्त धातु) लिट्–क्षि अतुस्–क्षि–क्षि अतुस्–किक्षि अतुस्–चिक्षि अतुस्–चि क्षियङ् अतुस्–चिक्षियतुः।

नी (ईवर्णान्त धातु) औ–नियङ् औ–नियौ। इको यणचि। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। दीर्घाज्जसि च। इको यणचि। अचि श्नुधातु०।

लू (दीर्घ ऊकारान्त धातु) अतुस्–लुलुवतुः (पूर्ववत्)।
लू क्विप्–लू जस्–लुवः।

(3) भ्रू औ–भ्रुवौ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अचि' अर्थात् **अजादि परे रहते** ही 'इयङ्' 'उवङ्' होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप् श्नु यासुट् त् यहाँ अजादि नहीं है।

अतः श्नु प्रत्ययान्त (आप्नु) अंग को उवङ् न हुआ। आप्नुयात्।

2. 'श्नुधातुभ्रुवाम्' अर्थात् **श्नुप्रत्ययान्त, इवर्णान्त उवर्णान्त धातु तथा भ्रू अंग** को ही इयङ् उवङ् आदेश होता है—

लक्ष्मी आट् ए–लक्ष्मी ऐ–लक्ष्म्यै यहाँ इयङ् न हुआ।

3. 'ग्वोः' अर्थात् **इवर्णान्त उवर्णान्त** को ही इयङ् उवङ् होता है—

कृ अतुस् (लिट्)–चक्रतुः ऋवर्णान्त है। अतः इयङ् उवङ् न हुआ।

4. वेद के विषय में 'तनु' आदि को बहुलता से उवङ् होता है[1]—तनुवम् (तै०सं० 1.5.5.4)।

तन्वम् (शौ०सं० 5.3.1)।

अभ्यम् (ऋ० 7.92.3)।

अश्वियम् (तै०सं० 2.2.12.8)।

त्र्यम्बकम् (ऋ० 7.59.12)।

अभ्यासस्याऽसवर्णे 6.4.78

पद.—अभ्यासस्य 6.1, असवर्णे 7.1

अनु.—ग्वोः इयङ्उवङौ अचि।

अर्थ—असवर्ण अच् परे रहते इकारान्त व उकारान्त अभ्यास को यथासंख्य करके इयङ् व उवङ् आदेश होते हैं।

उदा.—(1) इ अ (लिट्, णल्, अनुबन्ध लोप)–अब 'अचो ञ्णिति' पा० 7.2.115 से वृद्धि तथा पा० 6.1.8 से द्वित्व युगपत् प्राप्त होते हैं। 'द्विर्वचनेऽचि' से प्रथम द्वित्व हुआ। इ इ अ–इ ऐ अ (अचो ञ्णिति)–यहाँ 'एचोऽय-वायावः' से 'आय्' आदेश (ऐ+अ) तथा प्रकृतसूत्र के द्वारा इयङ् आदेश (इ+ऐ) प्राप्त हैं। इ ऐ अ इस दशा में 'अचः परस्मिन्०' से ऐकार को स्थानिवद्भाव होने से असवर्ण वर्ण के प्राप्त न रहने से प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है, परन्तु 'असवर्णे' पद का योग यहाँ ज्ञापक है कि इस स्थल पर स्थानिवद्भाव नहीं होता है। यदि ऐसा न मानेंगे तो कहीं भी असवर्ण अच् की प्राप्ति न हो सकेगी। 'वार्णादागं बलीयः' परिभाषा के द्वारा अंगकार्य (इयङ् आदेश) के बलवान् होने से प्रथम इयङ् हुआ। इयङ् ऐ अ। इय् आय् अ (अब आय् हुआ)–इयाय। इसी प्रकार—इष् णल्–इयङ् एष् अ–इयेष (द्र० इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपताम्–कु० 5.7)।

ऋ तिप्–ऋ शप् ति (जुहोत्यादिभ्यः श्लुः)–ऋ ऋति –अर् ऋति (उरत्)–अ ऋति–इ ऋति–(अर्तिपिपर्त्योश्च)–इयङ् ऋति–इय् अर्ति–इयर्ति (अचो रहा०)।

(2) उख् णल्–उख् उख् अ–उ ओख् अ इस दशा में धातु इजादि व गुरुमान् है। अतः 'इजादेश्च गुरु०' से 'आम्' प्राप्त होता है, परन्तु आम् नहीं होता है। कारण कि, णल् परे रहते अंग को गुण हुआ है जिसके फलस्वरूप धातु गुरुमान् हुआ है। यदि इसे आम् कर दें तो णल् व्यवहित हो जाता है। अतः 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं–' (प०) से गुरुमत्त्वक-निमित्त णल् पर कर्ता का व्याघातक 'आम्' नहीं होता है। उवोख।

उष् णल्–उवोष।

विशेष—'असवर्णे' अर्थात् **असवर्ण** परे रहते ही अभ्यास को इयङ् उवङ् होता है—

इ अतुस्–इ इ अतुस्–ईयतुः यहाँ न हुआ।

स्त्रियाः 6.4.79

पद.—स्त्रियाः 6.1

अनु.—अचि इयङ् अंगस्य।

अर्थ—अजादि प्रत्यय परे रहते 'स्त्री' अंग को 'इयङ्' आदेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा ईकार को इयङ् आदेश होता है।

उदा.—स्त्री औ–स्त्रियौ।

वाऽम् शसोः 6.4.80

पद.—वा–अव्य०, अम् शसोः 7.2

अनु.—स्त्रियाः अंगस्य इयङ्।

अर्थ—अम् या शस् परे रहते 'स्त्री' अंग को विकल्प से 'इयङ्' आदेश होता है।

उदा.—(1) स्त्री अम्–स्त्रि यङ् अम्–स्त्रियम्

इयङ् अभाव पक्ष–स्त्रीम् (अमि पूर्वः)।

(2) स्त्री शस्–स्त्रि यङ् अस्–स्त्रियः।

पक्ष में—स्त्री अस्–स्त्रीः (प्रथमयोः पूर्व०–भट्टि० 17.2)।

इणो यण् 6.4.81

पद.—इणः 6.1, यण् 1.1

अनु.—अंगस्य अचि।

1. काशि० 6.4.77 (वा०)—इयङ्उवङ्प्रकरणे तन्वादीनां छन्दसि बहुलम् उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—अच् परे रहते इण् अंग को यण् आदेश होता है।

'इणः' पद के द्वारा व्याख्यानसामर्थ्य से इण् धातु का ग्रहण होता है, न कि इण् प्रत्याहार का। 'स्थानेऽन्तरतमः' से 'इ' के स्थान पर 'य्' होता है।

उदा.—(1) इ झि (लट्)–इ अन्ति (इको यणचि। अचि श्नुधातु०। इणो यण्)–यन्ति। इसी प्रकार लोट् में यन्तु। शंका होती है कि इ ल्युट्–अयनम् तथा इ ण्वुल्–आयकः में उक्त यण् आदेश क्यों नहीं प्रसक्त होता है? 'इणो यण्' सूत्र 'अचिश्नुधातुभ्रुवां०' के पश्चात् पढ़ा गया है। 'अचो ञ्णिति' (पा० 7.2.115) तथा गुणविधायक सूत्र 'सार्वधातुकार्धधातु०' (पा० 7.3.84)—दोनों सप्तम अध्याय में पठित हैं। यणादेश पूर्वोक्त इयङ्, वृद्धि तथा गुण के मध्य पढा गया है। 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' (प०) अर्थात् जो अपवाद मध्य में पठित हैं, वे पूर्वविधि का ही बाध करते हैं, बाद वाली विधि का नहीं। अतः 'इणो यण्' इयङ् का बाध करेगा, न कि गुण (अयनम्) का अथवा वृद्धि (आयकः) का।

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य 6.4.82

पद.—एः 6.1, अनेकाचः 6.1, असंयोगपूर्वस्य 6.1

अनु.—अचि यण् अंगस्य धातोः (अचिश्नु० इत्यतः)।

अर्थ—धातु का अवयव जो संयोग, वह नहीं है पूर्व में जिसके ऐसा इवर्ण, तदन्त धातु, वह धातु है अन्त में जिसके ऐसे अनेकाच् अंग को यण् आदेश होता है, अजादि प्रत्यय परे रहते।

'अचि श्नुधातुभ्रुवां० से अनुवृत्त 'धातु' पद की द्विरुक्ति की जाती है। एक 'धातोः' पद 'एः' का विशेष्य बनता है। दूसरा 'धातोः' पद 'असंयोगपूर्वस्य' पद के 'संयोग' अंश के साथ सम्बद्ध होता है।

उदा.—(1) प्र ध्यै क्विप् (सम्प्रसारण)–प्रधी औ–(इको यणचि। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। दीर्घाज्जसि च। इको यणचि। अचि श्नु०) अन्त में इयङ् की प्राप्ति हुई। 'धी' इवर्णान्त धातु है। इसके पूर्व धातु का अवयव 'ध्' है जो संयोग नहीं है। यह धातु (धी) अनेकाच् अंग (प्रधी) के अन्त में है। अतः प्रकृत सूत्र के द्वारा यण् हो गया। प्रध्यौ।

(2) ग्रामणी औ (पूर्ववत्)–ग्रामण्यौ।

(3) नी अतुस् (लिट्)–नी नी अतुस् यहाँ निनी अनेकाच् अंग है। निन्यतुः।

(4) नि ली त (लिट्)।

नि लि ली ए (एश् आदेश, द्वित्व, ह्रस्व) निलिल्ये (भट्टि० 14.76)।

(5) सेनान्यः (भट्टि० 14.48)।

(6) वानरसेनान्योः (भट्टि० 6.122)।

(7) उच्चिक्रियरे (भट्टि० 3.38) उद् चिकी इरेच्–इस दशा में यण् हुआ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अनेकाचः' अर्थात् **अनेकाच्** अंग को ही पूर्वोक्त यण् आदेश होता है—

नी क्विप्–नी औ यहाँ 'नी' इवर्णान्त धातु है, इवर्ण से पूर्व संयोग भी नहीं है परन्तु 'नी' अनेकाच् अंग नहीं है। अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा यण् नहीं होगा। प्रथमयोः पूर्व० से प्राप्त पूर्वसवर्ण दीर्घ को बाधकर अचि श्नु० से इयङ् हुआ।

नियौ।

2. 'एः' अर्थात् **इवर्ण** को ही यण् होता है—लुलू उस् (लिट्, झि, उस्) अब 'लुलू' अनेकाच् है, इसके अन्त में 'लू' धातु है, इसके ऊकार से पूर्व संयोग नहीं है। अतः यण् होना चाहिए। परन्तु 'लुलू' अंग के अन्त में इवर्ण नहीं है। अतः यण् न होगा।

'अकः सवर्णे दीर्घः' को बाधकर उवङ् हुआ। लुलुवुः।

3. 'असंयोगपूर्वस्य' अर्थात् **संयोग नहीं है पूर्व में जिसके**, ऐसा इवर्ण, उसे यण् होता है—

सु श्री औ–सुश्रियौ यहाँ 'श्री' धातु इवर्णान्त है। इसके 'ई' से पूर्व संयोग है। अतः यण् न हुआ। शेष सभी शर्तें पूरी हैं। यथा—'सुश्री' अनेकाच् अंग है। इसके अन्त में इवर्णान्त धातु भी है।

इसी प्रकार—यवक्री औ–यवक्रियौ।

4. 'संयोग विशेषणम्' अर्थात् **संयोग** धातु का अवयव होगा तो ही यण् का निषेध होता है—

उन्नी औ यहाँ 'उन्नी' अनेकाच् अंग है। 'नी' इवर्णान्त धातु है। वह अंग के अन्त में है। धातु के इवर्ण (ई) से पूर्व संयोग (न्) है परन्तु वह धातु का अवयव नहीं है, उपसर्ग द्वारा निष्पन्न है। अतः यण् होगा। उन्यौ। 'प्रधी' में जो संयोग है, वह धातु का अवयव नहीं है, उपसर्ग का है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. जिस शब्द के पूर्वपद में गतिसंज्ञक या कारक से भिन्न शब्द हो तो उक्त यण् नहीं होता है[1]—

शुद्धधी यह अनेकाच् अंग है। पूर्वपद ('शुद्ध') न गति है और न ही कारक है। अतः 'एरने०' की प्रवृत्ति न होगी। शुद्धधी औ–शुद्धधियौ।

ओः सुपि 6.4.83

पद.—ओः 6.1, सुपि 7.1

अनु.—अनेकाचः असंयोगपूर्वस्य अंगस्य यंण् अचि।

अर्थ—धातु का अवयव संयोग जिसके पूर्व में नहीं है, ऐसा उवर्ण, तदन्त जो धातु, तदन्त अनेकाच् अंग को यण् आदेश होता है, अजादि सुप् परे रहते।

उदा.—खलपू औ–(इको यणचि। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। दीर्घाज्जसि च। इको यणचि। अचि श्नुधातु० से उवङ् की प्राप्ति हुई)। 'पू' उवर्णान्त धातु है, इसके उवर्ण से पूर्व धातु का अवयव संयोग नहीं है। यह धातु 'पू' अनेकाच् अंग (खलपू) के अन्त में हैं। अजादि सुप् (औ) परे है। अतः यण् हो गया। खलप्वौ।

सकृत् लू–सकृल्लू औ (तोर्लि) यहाँ सभी शर्तें पूरी हैं। 'ल्ल्' संयोग धातु का अवयव नहीं है। अतः यण् हो गया। सकृल्ल्वौ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'सुपि' अर्थात् **सुप् में ही** होता है—

लुलुवुः (लिट्, झि) यहाँ अजादि है, परन्तु सुप् नहीं है। अतः यण् न हुआ।

2. 'अनेकाचः' अर्थात् **अनेकाच्** अंग को ही होता है—

लू औ–लुवौ अनेकाच् अंग नहीं है। अतः यण् न हुआ।

3. 'असंयोगपूर्वस्य' अर्थात् जो **संयोगपूर्व** नहीं है, उससे ही यण् होता है—

कटप्रुवौ 'कटप्रू' अनेकाच् अंग है, 'औ' अजादि सुप् परे है परन्तु उवर्ण से पूर्व संयोग (प्र्) है। अतः यण् न हुआ।

वर्षाभ्वश्च 6.4.84

पद.—वर्षाभ्वः 6.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य यण् सुपि अचि।

अर्थ—अजादि सुप् परे रहते 'वर्षाभू' अंग को यण् आदेश होता है।

उदा.—वर्षाभू औ (इको यणचि। प्रथमयोः पूर्व०। दीर्घाज्जसि च। इको यणचि। अचि श्नुधातु०। ओः सुपि। न भूसुधियोः। अचि श्नु०। अब उवङ् को बाधकर यण् हुआ वर्षाभ्वौ।

विशेष—1. दृन्, कर, पुनर् तथा कारा शब्दपूर्वक 'भू' शब्द को यण् होता है, अजादि सुप् परे रहते[2]—

दृन् भू औ (पूर्ववत् उवङ् की प्राप्ति)—यण् होकर दृन् भ्वौ।

करभू औ–करभ्वौ।
पुनर्भू औ–पुनर्भ्वौ।
काराभू औ–काराभ्वौ।

न भूसुधियोः 6.4.85

पद.—न–अव्य०, भूसुधियोः 6.2

अनु.—अंगस्य यण् अचि सुपि।

अर्थ—भू और सुधी अंगों को यण् न हो, अजादि सुप् परे रहते।

उदा.—(1) स्वभू औ (इको यणचि। प्रथमयोः पूर्व०। दीर्घाज्जसि च। इको यणचि। अचि श्नुधातु०। ओः सुपि। न भूसुधियोः।) यण् का निषेध हो जाने पर उवङ् आदेश होता है—स्वभुवौ।

इसी प्रकार—प्रतिभुवौ, आत्मभुवौ, स्वयम्भुवौ।

(2) सुधी औ (इको यणचि। प्रथमयोः पूर्व०। दीर्घाज्जसि च। इको यणचि। अचि श्नुधातु०। एरनेकाचः–। न भूसुधियोः)।

इस प्रकार यण् का निषेध होने पर इयङ् होता है—सुधियौ।

छन्दस्युभयथा 6.4.86

पद.—छन्दसि 7.1, उभयथा–अव्य०।

अनु.—अंगस्य भूसुधियोः।

अर्थ—वेद के विषय में भू तथा सुधी अंगों को दोनों प्रकार से होता है अर्थात् कहीं यण् होता है तथा कहीं यण् दिखाई नहीं पड़ता है।

उदा.—विभ्वम् (ऋ० 4.7.1) यहाँ यण् हुआ है। सुध्यः

1. काशि० 6.4.82 (वा०)—गतिकारकाभ्यामन्यपूर्वस्य नेष्यते।

2. काशि० 6.4.84 (वा०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋ० 6.1.7) यहाँ भी यण् हुआ है । विभुवम् (तै०सं० 1.5.5) । विभुवे (मा०सं० 22.30) ।

हुश्नुवोः सार्वधातुके 6.4.87

पद.—हुश्नुवोः 6.2, सार्वधातुके 7.1

अनु.—अनेकाचः अंगस्य असंयोगपूर्वस्य ओः यण् अचि ।

अर्थ—अजादि सार्वधातुक परे रहते हु धातु तथा श्नुप्रत्यान्त-इन अनेकाच् अंगों के असंयोगपूर्व (= संयोग नहीं है पूर्व में जिसके) उकार को यण् आदेश होता है ।

'असंयोगपूर्वस्य' पद 'ओः' का विशेषण है, अतः अनुवृत्ति में हमने इन्हें पास-पास रखा है ।

उदा.—(1) हु झि-हु शप् झि-हु झि (श्लुत्व, द्वित्व)-जुहु अति (अदभ्यस्तात्)-जुह्वति 'इको यणचि' से प्राप्त यण् का बाध होकर 'अचि श्नुधातु०' से उवङ् प्राप्त हुआ । उवङ् का बाध होकर यण् हुआ ।

(2) सु श्नु झि-सु श्नु अन्ति (स्वादिभ्यः श्नुः । झोऽन्तः) प्राप्त यण् का बाध होकर उवङ् । उवङ् को बाधकर यण्-सुन्वन्ति ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'हुश्नुवोः' अर्थात् **हु धातु** तथा **श्नुप्रत्ययान्त** अनेकाच् अंग को ही यण् होता है—

यु (यङ् लुक्)-योयु अति-यण् न हुआ । योयुवति ।

2. 'सार्वधातुके' अर्थात् **सार्वधातुक** में ही उक्त यण् होता है—

हु अतुस्-जुहुवतुः अतुस् सार्वधातुक नहीं है, अजादि अवश्य है । जुहु इस अनेकाच् अंग के उवर्ण को यण् न हुआ ।

3. 'असंयोगपूर्वस्य' अर्थात् **संयोग नहीं है पूर्व में जिसके** ऐसे उवर्ण को यण् होता है—

आप्नु अन्ति (झि प्रत्यय, श्नु, अन्त आदेश) 'आप्नु' श्नु-प्रत्ययान्त अनेकाच् अंग है तथा सार्वधातुक अजादि (अन्ति) प्रत्यय परे है, परन्तु इसके उवर्ण से पूर्व संयोग (प्न्) है। अतः इस उवर्ण के स्थान पर यण् नहीं हुआ । आप्नुवन्ति ।

इसी प्रकार-अक्ष्णुवन्ति में जानना चाहिए ।

भुवो वुग् लुङ्लिटोः 6.4.88

पद.—भुवः 6.1, वुक् 1.1, लुङ्लिटोः 7.2

अनु.—अंगस्य अचि ।

अर्थ—लुङ् व लिट् सम्बन्धी अच् प्रत्यय परे हो तो 'भू' अंग को 'वुक्' आगम होता है । वुक् के ककार की इत्संज्ञा है । उकार मुखसुखार्थ है ।

उदा.—(1) भू झि (लुङ्)-भू अन्ति (लुङ् । झोऽन्तः)-भू सिच् अन्त् (च्लि, सिच्, इतश्च)-भू अन्त् (गातिस्थाघु०)-अट् भू वुक् अन्त् (भुवोवुग्० । अट्)-अभूवन्त् (संयोगान्तलोप)-अभूवन् ।

(2) भू लिट् (परोक्षे लिट्)-भू णल् (तिप्; णल्) अब 'अचो ञ्णिति' (पा० 7.2.115 से वृद्धि तथा 'भुवो वुग् लुङ् लिटोः' (पा० 6.4.88) से वुक् आगम युगपत् प्राप्त होते हैं । वृद्धि परकार्य है । अतः वुक् की अपेक्षा वृद्धि होना चाहिए परन्तु वुगागम नित्य कार्य है । अतः वृद्धि को बाधकर वुक् हुआ । भूव् अ-भूव् भूव् अ (लिटि धातोरनभ्यासस्य)-भू भू व् अ (पूर्वोऽभ्यासः । हलादिः शेषः)-भू भू व् अ-भ भू व् अ (ह्रस्वः । भवतेरः)-ब भू व् अ (अभ्यासे चर्च)-बभूव ।

चूँकि 'वुक्' करने पर इगन्त अंग नहीं रहता है । अतः गुण तथा वृद्धि प्राप्त नहीं होते है । इसलिए वुक् नित्य तथा गुण वृद्धि अनित्य है । अनित्य की अपेक्षा नित्य बलवान् होता है । अतः वुक् आगम गुण व वृद्धि का बाधक है ।

ऊदुपधाया गोहः 6.4.89

पद.—ऊत् 1.1, उपधायाः 6.1, गोहः 6.1

अनु.—अंगस्य अचि ।

अर्थ—अजादि प्रत्यय परे रहते गोह अंग की उपधा को 'ऊत्' आदेश होता है । तकार मुखसुखार्थ है ।

उदा.—(1) नि गुह् (संवरणे) शप् तिप् (लट्)-नि गोह् अ ति-निगूहति (गुण, ऊदादेश) ।

(2) निगुह् ण्वुल्-निगोह् अक-निगूहकः (सु) ।

(3) निगुह् णमुल् (आभीक्ष्ण्ये०)-निगूहम् निगूहम् (आभीक्ष्ण्ये०, पा० 8.1.12 वा०) ।

विशेष—'उपधायाः' अर्थात् **उपधा** को ही 'ऊत्' आदेश होता है । अतः अलोऽन्त्य परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती है ।

दोषो णौ 6.4.90

पद.—दोषः 6.1, णौ 7.1

अनु.—'णि' परे रहते 'दोष' अंग की उपधा को 'ऊत्' होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—दुष् णिच् शप् ति–दोष् णि अति–दूष् इ अति–दूषयति ।

विशेष—'णौ' अर्थात् **'णि' परे रहते ही** 'ऊत्' होता है—दोषो वर्त्तते–यहाँ उक्त आदेश न हुआ ।

वा चित्तविरागे 6.4.91

पद.—वा–अव्य०, चित्तविरागे 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः दोषः ऊत् णौ ।

अर्थ—'चित्तविकार' गम्यमान हो तो 'दोष' अंग की उपधा को ऊत् आदेश विकल्प से होता है, णि परे रहते ।

उदा.—दुष् णिच् शप् ति–दूषयति ।
पक्ष में गुण–दोषयति ।

मितां ह्रस्वः 6.4.92

पद.—मिताम् 6.3, ह्रस्वः 1.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः णौ ।

अर्थ—णि परे रहते मित् संज्ञक अंग की उपधा को ह्रस्व होता है ।

घटादयो मित; अर्थात् भ्वादिगणी घट् आदि धातु मित् कहा गया हैं ।

ज्ञपादयः अर्थात् चुरादिगणी ज्ञप् आदि धातु भी मित् हैं ।

उदा.—घट् णि–घाटि (अत् उपधायाः)–घाटि शप् ति–घटि अति–घटयति ।

इसी प्रकार–ज्ञपयति ।
परिणमयित्वा (मे० 45) ।

चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् 6.4.93

पद.—चिण्णमुलोः 7.2, दीर्घः 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य मिताम् उपधायाः णौ ।

अर्थ—चिण् परक णि तथा णमुल् परक णि परे रहते मित् अंग की उपधा के विकल्प से दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) शम् णि लुङ्–शम् णि च्लि ल्–शम् णि चिण् त–शाम् चिण् त (च्लि को चिण्, दीर्घ, णिच् का लोप)–शाम् इत–अशाम् इ (अट्, 'त' का लोप)–अशामि ।

पक्ष में दीर्घ न हुआ–अशमि ।

सूत्राणि–चिण् भाव० । णेरनिटि । चिणो लुक् ।

(2) शम् णिच् णमुल् (आभीक्ष्ण्ये)–शाम् अम् (णिलोप) –शामं शामम् ।

पक्ष में—शमं शमम् ।

विशेष—दीर्घ ग्रहण का प्रयोजन है कि ह्रस्व विकल्प ही क्यों न कर दिया जाये परन्तु यह सम्भव नहीं है ।

खचि ह्रस्वः 6.4.94

पद.—खचि 7.1, ह्रस्वः 1.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः ह्रस्वः ।

अर्थ—खच् परक णि परे रहते अंग की उपधा को ह्रस्व होता है ।

उदा.—द्विषन्तं तापयति–द्विषत् तप् णि खच् (द्विषत् परयोस्तापे)–द्विषत् ताप् णि अ–द्विषत् तप् अ–द्विषन्तप सु–द्विषन्तपः ।

परन्तपः ।
पुरन्दरः (पूःसर्वयोर्दा०) ।

ह्लादो निष्ठायाम् 6.4.95

पद.—ह्लादः 6.1, निष्ठायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः ह्रस्वः ।

अर्थ—निष्ठा परे रहते ह्लाद अंग की उपधा को ह्रस्व होता है ।

उदा.—प्र ह्लाद् क्त–प्रह्लन्नः (रदाभ्यां निष्ठातो नस्य० । श्वीदितो निष्ठायाम्) ।

विशेष—'निष्ठायाम्' अर्थात् **निष्ठा परे रहते** ही उपधा को ह्रस्व होता है—

प्रह्लादयति यहाँ निष्ठा नहीं है । अतः ह्रस्व न हुआ ।

छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य 6.4.96

पद.—छादेः 6.1, घे 7.1, अद्व्युपसर्गस्य 6.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः ह्रस्वः ।

अर्थ—'घ' प्रत्यय परे रहते छादि अंग, जो दो उपसर्गों से युक्त नहीं है, की उपधा को ह्रस्व होता है ।

उदा.—उरस् छद् णि अ सु–उरश्छदः 'छादि' अंग दो उपसर्गों से युक्त नहीं है । यहाँ 'णि' का लोप, उपधा ह्रस्व हुआ है ।

दन्तच्छदः–'छे च' से तुक् हुआ (भट्टि० 5.19) । प्रच्छदः में एक उपसर्ग है । अतः ह्रस्व हो गया ।

विशेष—'अद्व्युपसर्गस्य' अर्थात् **जो दो उपसर्गों से युक्त नहीं है,** ऐसे अंग की उपधा को ह्रस्व होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम् उप् छाद् अ यहाँ 'छाद्' दो उपसर्गों से युक्त है। अतः ह्रस्व न हुआ। समुपच्छादः।

इस्मन्त्रन्क्विषु च 6.4.97

पद.—इस्मन्त्रन्क्विषु 7.3, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य छादेः उपधायाः ह्रस्वः।

अर्थ—इस्, मन्, त्रन् तथा क्वि-इनके परे रहते 'छादि' अंग की उपधा को ह्रस्व होता है।

उदा.—(1) छदिः (अर्चिशुचिहुसृपि०-उणा० 2.108)।

(2) छद्म (सर्वधातुभ्यो मनिन्-उणा० 4.145)।

(3) छत्रम् (सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्-उणा० 4.159)।

(4) धामच्छत् (क्विप् च)।

सर्वत्र णिलोप तथा उपधा ह्रस्व हो गया।

गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि 6.4.98

पद.—गमहनजनखनघसाम् 6.3, लोपः 1.1, क्ङिति 7.1, अनङि 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः अचि।

अर्थ—अङ् को छोड़कर अजादि कित् ङित् परे रहते गम्, हन्, जन्, खन् तथा घस्-इन अंगों की उपधा का लोप होता है।

उदा.—(1) गम् अतुस् (लिट्)-जगम् अतुस् (द्वित्व, अभ्यास कार्य)-जग् म् अतुस्-जग्मतुः। 'असंयोगाल्लिट्०' से 'अतुस्' कित् है।

(2) हन् अतुस्-जघ्नतुः (अभ्यासाच्च)।

(3) जन् त (लिट्)-जन् जन् ए (लिटस्तझ०)-ज ज् न् ए (उपधालोप)-ज ज् ञ् ए (श्रुत्व)। जज्ञे।

(4) खन् अतुस्-खन् खन्-खखन् अतुस्-च खन् अतुस्-चख् न्-अतुस्-चख्नतुः। इसी प्रकार—निचख्ने (भट्टि० 3.8)।

(5) घस् अतुस्-घस् घस् अतुस्-जघस् अतुस्-जघ् स् अतुस्-जक् स् अतुस्-जक्षतुः। जक्षुः (भट्टि० 2.25)।

विशेष—1. 'क्ङिति' अर्थात् **कित् ङित्** परे रहते ही उपधा का लोप होता है—

गमनम्। हननम् यहाँ उपधालोप न हुआ।

2. 'अनङि' अर्थात् **अङ् भिन्न** कित् ङित् परे रहते उपधा-लोप होता है—

अगमत्, अघसत् यहाँ 'च्लि' को 'अङ्' (पुषादि०) हुआ। अतः उपधालोप न हुआ।

तनिपत्योश्छन्दसि 6.4.99

पद.—तनिपत्योः 6.2, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य उपधायाः लोपः अचि क्ङिति।

अर्थ—वेद के विषय में अजादि कित् ङित् परे रहते तन् तथा पत् अंग की उपधा का लोप होता है।

उदा.—तन् झ (लिट्)-तन् तन् इरेच्-ततन् इरे-तत् न् इरे-तत्निरे (ऋ० 1.164.5)।

पत् मस्-पत् पत् इट् मस्- पपत् इ मस्-पप् त् इ मस्-पप्तिम (ऋ० 9.107.20)।

विशेष—लोक में 'वितेनिरे' तथा 'पेतिम' रूप बनते हैं।

घसिभसोर्हलि च 6.4.100

पद.—घसिभसोः 6.2, हलि 7.1, च-अव्य०।

अनु.—छन्दसि अंगस्य उपधायाः लोपः क्ङिति अचि।

अर्थ—वेद के विषय में हलादि तथा अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते घस् तथा भस् अंग की उपधा का लोप होता है।

उदा.—(1) (घस्)-सग्धिः (मा०सं० 18.9)।

(2) (भस्)-बब्धाम्।

भस् ताम्-भस् भस् ताम्-भभस् ताम्-बभ स् धाम्-बभ् स् धाम्-बभ् धाम्-बब् धाम्-बब्धाम्।

(3) भस् शप् झि (श्लुत्व, द्वित्व)-ब भस् अति-बभ् सति-बप्सति (खरि च)। ऋ० 8.43.3

विशेष—'क्ङिति' अर्थात् **कित् ङित्** में ही उपधा का लोप होता है—

अंशून् बभस्ति (काठ० सं० 35.14) यहाँ उपधालोप न हुआ।

हुझल्भ्यो हेर्धिः 6.4.101

पद.—हुझल्भ्यः 5.3, हेः 6.1, धिः 1.1

अनु.—अंगस्य हलि।

अर्थ—'हु' तथा झलन्त अंग से उत्तर हलादि 'हि' को 'धि' आदेश होता है।

उदा.—(1) हु सिप्-हु श्प् सिप्-हु सिप् हु हु सि-झु हु सि-जुहुसि-जुहु हि-जुहुधि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) छिद् सिप्-छिश्नम् द् सि (रुधादिभ्यः श्नम्)-छिनद् हि (सेर्ह्यपिच्च)-छिन् द्हि (श्नसोरल्लोपः)-छिन् द्धि-छिन्द्धि (भट्टि० 20.10)। विद्धि (भट्टि० 6.97)। शाधि (भट्टि० 3.53)। अद्धि (भट्टि० 20.10)। एधि (भट्टि० 20.6)। शाधि (भाग० 11.2.9)।

विशेष—1. 'हु झल्भ्यः' अर्थात् 'हु' तथा **झलन्त** अंग से उत्तर 'हि' को 'धि' आदेश होता है—

क्री श्ना सिप्-क्रीनाहि-क्रीणीहि

यहाँ 'धि' नहीं होता है।

2. 'हेः' अर्थात् **'हि' को** ही 'धि' आदेश होता है—

हु तस्-जुहुताम् यहाँ 'हि' नहीं है। अतः 'धि' न हुआ।

3. रुद्, स्वप् तथा श्वस् आदि झलन्त धातु हैं। 'सार्वधातुके यक्' से इन धातुओं से पर 'हि' को इट् होता है। तब स्वप् इहि इस दशा में झलन्त अंग (स्वप्) से उत्तर 'हि' को 'धि' नहीं होता है। इसके समाधान के लिए महाभाष्य में निम्नलिखित कारिका प्राप्त होती है—

क) हलोऽनुवर्त्तनाद्वापि अर्थात् प्रकृतसूत्र में 'घसिभसोर्हलि च' से 'हलि' का अनुवर्त्तन होता है। तब 'स्वप्' अंग से उत्तर हलादि 'हि' न रहने से उसे 'धि' नहीं होता है।

ख) निर्दिश्यमानतोऽथवा अर्थात् सूत्र में जिसका साक्षात् निर्देश होता है, उसी को कार्य होता है, अन्य को नहीं (द्र०-निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति)। चूँकि सूत्र में 'हि' के स्थान पर 'धि' कहा गया है। 'स्वप् इहि' यहाँ इट् सहित 'हि' है। जिसे 'धि' नहीं होता है।

ग) हस्य धत्वं भवेच्चेति अर्थात् सूत्रपठित 'हि' तथा 'धि' दोनों पदों में इकार मुखसुखार्थ है। वास्तव में यहाँ हकार के स्थान पर धकार का विधान किया गया है। 'स्वप् इहि' इस दशा में झलन्त अंग (स्वप्) से उत्तर अव्यवहित हकार नहीं है। अतः धकार नहीं होता है। इस सम्बन्ध में भट्टोजिदीक्षित का वचन भी विशेष द्रष्टव्य है—

परत्वाद् इटि धित्वं न (वै०सि०कौ० भाग 3, सूत्र 2474)।

अर्थात्—'स्वप् हि' इस दशा में 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' (पा० 6.4.101) के द्वारा धित्व तथा 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' (पा० 7.2.76) से इट् युगपत् प्राप्त होते हैं। परकार्य होने से इट् हुआ। सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव इस परिभाषा के बल पर धित्व की पुनः प्रवृत्ति नहीं होती है।

श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि 6.4.102

पद.—श्रुशृणुपृकृवृभ्यः 5.3, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य हेः धिः।

अर्थ—वेद के विषय में श्रु, शृणु, पृ, कृ तथा वृ अंग से उत्तर 'हि' को 'धि' होता है।

उदा.—(1) श्रु सिप्-श्रु शप् हि (शप् का छान्दस लोप)-श्रुधी (अन्येषामपि दृश्यते) द्र०—ऋ० 1.2.1, शां० 22.7

(2) श्रु सिप् (श्रुवः शृ च)-शृणुधी (ऋ० 8.84.3, शत० 7.5.2.39)।

(3) पृ सिप्-पुर् सि-पुर् हि-पुर् धि-पूर्धि-पूर्द्धि (उदोष्ठ्य पूर्वस्य। हलि च। अचो रहाभ्यां द्वे)। द्र० ऋ० 1.36.12।

(4) कृधि (यजु० 5.41)।

(5) वृधि। (ऋ० 1.7.6)।

अङितश्च 6.4.103

पद.—अङितः 6.1, च-अव्य०।

अनु.—छन्दसि हेः धिः।

अर्थ—वेद के विषय में अङित् 'हि' को 'धि' होता है। वेद में 'वा छन्दसि' के द्वारा 'हि' विकल्प से अपित् है। अपित् पक्ष में ही 'हि' ङित् तथा पित् पक्ष में 'हि' अङित् होता है।

उदा.—रम् (व्यत्ययेन परस्मैपदित्वम्)-रम् शप् सिप् (बहुलं छन्दसि इति शपः श्लुः)-रम् रम् हि-ररम् हि-रारम् हि (तुजादीनां दीर्घो०)-रारम् धि-रारंधि-रारन्धि (हि के अङित् होने से 'अनुदात्तोपदेशवनतितनो०' की प्रवृत्ति नहीं होती है)।

प्र यम् सिप्-प्रयन्धि (ऋ० 3.36.9)।

विशेष—'अङितः' अर्थात् **अङित्** 'हि' को ही 'धि' होता है—

हव्यं प्रीणीहि (काठ० सं० 40.94) यहाँ 'धि' न हुआ।

चिणो लुक् 6.4.104

पद.—चिणः 5.1, लुक् 1.1

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—चिण् से परे 'त' का लुक् होता है।

चूँकि यह अंगाधिकार का कार्य है। प्रत्यय के परे रहते पूर्व की अंग संज्ञा होती है। सूत्र के द्वारा अंग से उत्तर का लुक् कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि प्रत्यय का लुक् होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूँकि 'त' परे रहते ही 'च्लि' को 'चिण्' होता है। अतः अर्थ में 'त' का लुक् होता है—ऐसा कहा गया है।

उदा.—(1) अकारि-कृ (लुङ् कर्मणि)-कृ च्लि त-कृ चिण् त-अकारि त-अकारि (कु० 5.10)।

इसी प्रकार-आपादि (भट्टि० 6.31)।

अजनि अदीपि (भट्टि० 6.32)। अबोधि (भट्टि०6.32) आपाति (भट्टि० 4.32)। प्रत्यवादि (भट्टि०15.०9)।

अतो हेः 6.4.105

पद.—अतः 5.1, हेः 6.1

अनु.—अंगस्य लुक्।

अर्थ—अदन्त अंग से परे 'हि' का लुक् होता है। 'हि' के द्वारा हकार इकार रूप अल् समुदाय का ग्रहण नहीं होता है, अपितु 'हि' स्वरूप वाला प्रत्यय का ग्रहण होता है।

अतः अलोऽन्त्य परिभाषा लागू नहीं होती है।

उदा.—पठ् सिप् (लोट्)-पठ् शप् हि-पठ हि-पठ। प्लुष् सिप् -प्लुषाण (भट्टि० 20.37 सेर्ह्यपि०, श्ना, हलः श्नः-। अतो हेः)। इसी प्रकार—अनुलिम्प, धूपाय, आविध्य, आमुञ्च (भट्टि० 20.11)।

विशेष—1. 'अतः' अर्थात् **ह्रस्व अकार** से उत्तर 'हि' का लुक् होता है—

इहि युहि यहाँ इकार व उकार से उत्तर 'हि' है। अतः लुक् न हुआ।

'अत्' इसमें तपरकरण का प्रयोजन है कि **आकार** से उत्तर 'हि' का लुक् नहीं होता है—याहि, पाहि यहाँ आकार से उत्तर 'हि' है।

इसी प्रकार—लु श्ना हि-लुनीहि 'ई हल्यघोः' से विहित ईकार के असिद्ध होने से यहाँ आकार ही दृष्टिगोचर होता है, परन्तु आकार होने से 'हि' का लोप नहीं होता है।

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् 6.4.106

पद.—उतः 5.1, च-अव्य०, प्रत्ययात् 5.1, असंयोग-पूर्वात् 5.1

अनु.—अंगस्य हेः लुक्।

अर्थ—संयोग नहीं है पूर्व में जिसके, ऐसा प्रत्यय का अवयव जो उकार, उससे उत्तर 'हि' का लुक् होता है।

उदा.—(1) चि श्नु हि यहाँ 'नु' एक प्रत्यय है जिसका अवयव उकार है तथा उस उकार से पूर्व संयोग नहीं है। अतः उस उकार से पर 'हि' का लुक् हो गया। चिनु।

(2) सम् तन् उ हि (तनादिकृञ्भ्य उ) यहाँ 'हि' का लुक् हुआ। सन्तनु (भट्टि० 5.47)।

(3) कृ सिप्-कृ उ सिप्-कृ उ हि-कुर् उ हि-कुरु (अत उत् सार्वधातुके। उतश्च प्रत्य०)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'उतः' अर्थात् **ह्रस्व उकार** से उत्तर 'हि' का लुक् होता है—लुनीहि यहाँ प्रत्यय का अवयव 'ई' है। अतः इससे पर 'हि' का लुक् न हुआ।

2. 'प्रत्ययात्' अर्थात् **प्रत्यय से उत्तर** 'हि' का लुक् होता है—युहि यहाँ उकार से पूर्व संयोग नहीं है, परन्तु यह उकार धातु का अवयव है। अतः उकार से पर 'हि' का लुक् न हुआ।

3. 'असंयोगपूर्वात्' अर्थात् **संयोग नहीं है पूर्व में** जिसके, ऐसे उकार से उत्तर 'हि' का लुक् होता है। 'असंयोगपूर्व' पद उकार का विशेषण है, न कि प्रत्यय का।

प्राप्नुहि यहाँ 'नु' प्रत्यय है। इसका अवयव उकार है। इस उकार से पूर्व संयोग है। अतः उकार से उत्तर 'हि' का लुक् न हुआ।

4. वेद के विषय में पूर्वोक्त लुक् विकल्प से होता है[1]—

आतनुहि। धिनुहि (काठ० सं० 1.6)।

कृणु (शौ० सं० 1.29.1)।

लोपश्चाऽस्यान्यतरस्यां म्वोः 6.4.107

पद.—लोपः 1.1, च-अव्य०, अस्य 6.1, अन्यतर-स्याम् 7.1, म्वोः 7.2

अनु.—अंगस्य असंयोगपूर्वात् उतः प्रत्ययात्।

अर्थ—जिसके पूर्व संयोग नहीं है तथा जो प्रत्यय का अवयव है, ऐसा उकार, तदन्त का विकल्प से लोप होता है। 'म्' अथवा 'व्' परे रहते।

उदा.—(1) सु मस् (लट्)-सु श्नु मस्-सुन्मः।

पक्ष में—सुनुमः।

'नु' प्रत्यय है, इसका अवयव उकार है, उकार से पूर्व संयोग नहीं है। अतः उकार का पाक्षिक लोप हुआ, 'म्' परे रहते।

---

1. काशि० 6.4.106 (वा०)—उतश्च प्रत्ययाच्छन्दो वा वचनम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) सुन्वः, सुनुवः ।

विशेष—1. 'प्रत्ययस्य' अर्थात् **प्रत्यय का अवयव** उकार, तदन्त का लोप होता है—

युवः, युमः यहाँ उकार प्रत्यय का अवयव नहीं है । अतः लोप न हुआ ।

2. 'असंयोगपूर्वस्य' अर्थात् **संयोग पूर्व में नहीं है** जिसके ऐसे उकार का लोप होता है—

शक्नुवः, शक्नुमः उकार से पूर्व संयोग है । अतः लोप न हुआ ।

नित्यं करोतेः 6.4.108

पद.—नित्यम् 1.1, करोतेः 5.1

अनु.—अंगस्य उतः प्रत्ययात् लोपः म्वोः ।

अर्थ—'म्' अथवा 'व्' परे रहते 'कृ' से उत्तर प्रत्यय के उकार का नित्य लोप होता है ।

उदा.—कुर्मः, कुर्वः विकल्प प्राप्त था, नित्य लोप हुआ ।

ये च 6.4.109

पद.—ये 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य करोतेः नित्यं लोपः उतः प्रत्ययात् ।

अर्थ—यकारादि प्रत्यय परे रहते 'कृ' धातु से उक्त 'उ' का लोप होता है ।

यकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—कृ तिप् (वि०लिङ)-कृ उ यासुट् त्-कर् उ यास् त् (अत उत् सार्वधातुके)-कुर् उ यास्त्-कुर् यास्त् (उकारलोप)-कुर्यात् (लिङः सलोपो०) ।

अत उत् सार्वधातुके 6.4.110

पद.—अतः 6.1, उत् 1.1, सार्वधातुके 7.1

अनु.—अंगस्य करोतेः उतः प्रत्ययात् ङिति ।

अर्थ—सार्वधातुक कित् ङित् परे रहते उप्रत्ययान्त 'कृ' के ह्रस्व अकार के स्थान पर ह्रस्व उकार होता है ।

उदा.—कृ तस्-कृ उ त स्-कर् उ त स्-कुर् उ त स्-कुरुतः ।

विशेष—1. 'सार्वधातुके' अर्थात् **पहले किए गये सार्वधातुक** के परे रहते भी 'उत्' होता है—कुरु यहाँ उत्व तथा हिलोप युगपत् प्राप्त होते हैं । नित्य होने से हिलोप हो गया । अब सार्वधातुक के न रहने पर भी भूतपूर्व सार्वधातुक के परे रहते उत् हो गया ।

2. 'उत्' में तपरकरण का प्रयोजन गुण के निवारण के लिए है । यदि तपर न किया जाता तो आदेश स्वरूप उकार को लघूपधगुण प्राप्त हो जाता है । तपरकरण ज्ञापक है कि अकार के स्थान पर ह्रस्व उकार ही हो तथा उस उकार को गुण वृद्धि आदि अन्य कार्य न हों ।

श्नसोरल्लोपः 6.4.111

पद.—श्नसोः 6.2, अत्-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, लोपः 1.1

अनु.—सार्वधातुके ङिति ।

अर्थ—सार्वधातुक कित् ङित् परे रहते 'श्न' तथा 'अस्' के अकार का लोप होता है । 'श्न' के द्वारा 'श्नम्' का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) भिद् तस्-भिश्नम् द् तस्-भिन द् तस्-भिन् द् तस् (अकारलोप)-भिन् त् तस्-भिन्तः (नकार को अनुस्वार, अनुस्वार को परसवर्ण) ।

(2) अस् तस्-स् तस्-स्तः ।

श्नाऽभ्यस्तयोरातः 6.4.112

पद.—श्नाऽभ्यस्तयोः 6.2, आतः 6.1

अनु.—अंगस्य लोपः सार्वधातुके ङिति ।

अर्थ—कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते 'श्ना' प्रत्यय के तथा अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार का लोप होता है ।

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते घु वर्जित धातु के आकार को ईकार होता है (ई हल्यघोः) । अतः यह सूत्र अजादि कित् ङित् सार्वधातुक में ही सावकाश है । इसके अतिरिक्त घुसंज्ञक धातु के विषय अजादि हलादि यह अर्थात् उभयविध सार्वधातुक कित् ङित् में प्रवृत्त होता है ।

उदा.—(1) क्री श्ना झि-क्रीना अन्ति-क्रीन् अन्ति (अजादि ङित् सार्वधातुक परे है)—क्रीणन्ति (अट्कुप्वाङ्नुम्०) ।

(2) हा झि-हा शप् झि-हा झि (श्लु)-जहा झि (द्वित्वादि)-जहा अति (अदभ्यस्तात्)-जह् अति (अजादि ङित् सार्वधातुक परे है)-जहति । इसी प्रकार—अन्तर्धत्स्व (भट्टि० 5.32) ।

विशेष—1. 'श्नाऽभ्यस्तयोः' अर्थात् **श्नाप्रत्यय** और **अभ्यस्त संज्ञक** धातु के आकार का लोप होता है—

यान्ति-यहाँ 'अन्ति' अजादि, ङित्, सार्वधातुक प्रत्यय परे है परन्तु 'आ' न तो 'श्ना' प्रत्यय का है और न ही अभ्यस्त संज्ञक धातु का है । अतः लोप न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. 'आतः' अर्थात् **दीर्घ आकार** का ही लोप होता है—

बिभ्रति यहाँ 'अति' अजादि, ङित् व सार्वधातुक प्रत्यय परे है, 'बिभृ' अभ्यस्त संज्ञक धातु है परन्तु 'आकार' नहीं है। अतः लोप न हुआ।

ई हल्यघोः 6.4.113

पद.—ई –लुप्तप्रथमान्तरूपम्, हलि–7.1, अघोः 6.1

अनु.—श्नाऽभ्यस्तयोः अंगस्य आतः सार्वधातुके क्ङिति।

अर्थ—हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते श्ना प्रत्यय तथा अभ्यस्त संज्ञक धातु—इन अंगों के आकार के स्थान पर 'ई' आदेश होता है, परन्तु घुसंज्ञक धातु के आकार को नहीं होता है।

उदा.—(1) क्री श्ना तस् (लट्, प्र०पु०द्विव०, श्ना)–क्रीना तस् (सार्वधातुकमपित् से तस् ङित्)–क्रीनीतस्–क्रीणीतः।

(2) क्लिश्नीतः (भट्टि० 18.31)। उद्धुनीयात (भट्टि० 19.8)।

(3) मा त (लट्)–मा शप् त–मा त (श्लु, द्वित्व)–मा मा त–मि मा त (भृञामित्)–मिमीत–मिमीते।

विशेष—1. 'अघोः' अर्थात् **घुसंज्ञक धातु को छोड़कर** आकार को ईत्व होता है—

दा तस्–दा दा तस् (शप्, श्लु, द्वित्व)–द दा तस् (ह्रस्व)–इस स्थिति में प्रकृत सूत्र प्रवृत्त नहीं होता है। आकार लोप (श्नाऽभ्यस्तयोरातः)–द द् तस् (खरि च)–दत्तः।

2. 'हलि' अर्थात् **हलादि परे** रहते ईत्व होता है—

मा झ–मा मा अत–मि मा अत यहाँ अजादि ङित् सार्वधातुक 'अत' परे है। अतः आकार को ईकार न हुआ। मिम् अ त (आकार लोप हुआ)–मिमते।

इद् दरिद्रस्य 6.4.114

पद.—इत् 1.1, दरिद्रस्य 6.1,

अनु.—अंगस्य आतः हलि सार्वधातुके क्ङिति।

अर्थ—हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते दरिद्रा अंग के आकार के स्थान पर इकार आदेश होता है।

इत् में तकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—दरिद्रा तस्–दरिद्र् इ तस्–दरिद्रितः (भट्टि० 18.31) (लट्, प्र०पु०द्विव०–हलादि ङित् सार्वधातुक)।

विशेष—1. 'हलि' अर्थात् **हलादि** कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते इकार आदेश होता है—

दरिद्रा झि—दरिद्रा अति (अजादि ङित् सार्वधातुक परे है। अतः इकार आदेश न हुआ)–दरिद्र् अति–दरिद्रति।

2. 'क्ङिति' अर्थात् **कित् ङित्** परे रहते ही आकार को इकार होता है—

दरिद्रा तिप् (हलादि सार्वधातुक है, परन्तु न ङित् है और न कित् है। अतः आकार को इकार न हुआ) —दरिद्राति।

3. आर्धधातुक परे रहते 'दरिद्रा' के आकार का लोप होता है[1]—दरिद्रा अच् (आकारान्त लक्षण 'ण' प्रत्यय न होकर पचादिलक्षण 'अच्' हुआ)—

दरिद्र अ (आर्धधातुक परे रहते आकार का लोप हुआ) —दरिद्र सु–दरिद्रः।

प्रत्यय की विधि में यह आकार लोप सिद्ध होता है।[2] यथा—दरिद्र अ यदि 'आ' के लोप को असिद्ध मान लें तो युक् (आतो युक् चिण्कृतोः) प्राप्त होता है।

4. अद्यतनी (=लुङ्) में आकार का लोप विकल्प से होता है[3]—दरिद्रा सिच् ति (लुङ्, तिप्, च्लि, सिच्)–दरिद्रा सक् इट् स् ईट् त् ('यमरमनमातां सक् च' से सक् व इट्, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' से 'ईट्', 'इतश्च' से इकार लोप)–अट् दरिद्रा स् ईत् (इट ई टि। अट्। सवर्ण दीर्घ)–अदरिद्रासीत्।

लोप पक्ष में (अदरिद्र् ईत्)–अदरिद्रीत्।

5. सूत्र में 'दरिद्रस्य' पद आर्ष प्रयोग है। दरिद्रा ङस्–दरिद्रः (आलोप होकर)। 'दरिद्रा' के स्थान पर 'दरिद्र' ऐसा ह्रस्व निर्देश को आर्ष मानना चाहिए।[4]

भियोऽन्यतरस्याम् 6.4.115

पद.—भियः 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य इत् हलि क्ङिति सार्वधातुके।

अर्थ—हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते 'भी' अंग को विकल्प से इकार आदेश होता है।अलोऽन्त्य परिभाषा के बल पर ईकार के स्थान पर इकार होता है।

---

1. काशि० 6.4.114 (वा०)—दरिद्रातेरार्धधातुके लोपो वक्तव्यः।
2. वही—(वा०) सिद्धश्च प्रत्ययविधौ भवतीति वक्तव्यम्।
3. वही—(वा०) अद्यतन्यां वेति वक्तव्यम्।
4. काशि०—6.4.114

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—भी तस् (तस्, शप्, श्लु)–बिभी तस् (द्वित्व, अभ्यास कार्य)–बिभितः । पक्ष में—बिभीतः ।

विशेष—1. 'हलि' अर्थात् **हलादि** सार्वधातुक कित् ङित् परे रहते विकल्प से इकार होता है—बिभी अति–बिभ्यति (अजादि ङित् सार्वधातुक 'अति' परे है । इकार न हुआ । 'एरनेकाचः–' से यण् हुआ) ।

2. 'सार्वधातुके' अर्थात् **सार्वधातुक** कित् ङित् हलादि में इकार होता है—

भीयते कर्म में यक् हुआ जो कित् व हलादि तो है, परन्तु सार्वधातुक नहीं है । अतः इकार न हुआ ।

3. 'क्ङिति' अर्थात् **कित् ङित्** हलादि सार्वधातुक परे रहते इकार होता है—बिभी तिप्–बिभेति 'तिप्' हलादि व सार्वधातुक तो है, परन्तु न तो ङित् है और न ही कित् है । अतः इत् न हुआ । परत्वात् गुण हुआ ।

4. प्रकृतसूत्र में 'क्ङिति' व 'हलि' की अनुवृत्ति की आवश्यकता नहीं है । कारण कि—

क) अजादि सार्वधातुक में ईकार के स्थान पर इकार होने या न होने–दोनों स्थितियों में 'एरनेकाचः' से यण् होता है । अतः इत् आदेश करना व्यर्थ है ।

ख) अकित् अङित् प्रत्ययों (=जो पित् हैं) में परत्वात् गुण होता है । यथा—बिभेति ।

जहातेश्च 6.4.116

पद.—जहातेः 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य इत् अन्यतरस्याम् हलि क्ङिति सार्वधातुके

अर्थ—हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते 'हा' अंग के आकार को विकल्प से ह्रस्व इकार होता है ।

यह 'ई हल्यघोः' का अपवाद है ।

उदा.—हा तस् (शप्, श्लु, तस्–ङित् हलादि सार्वधातुक है)–हा हा तस्–ह हा तस्–झहा तस्–जहा तस्–जहितः ।

पक्ष में 'जहीतः' बनता है (ई हल्यघोः) । विशेष ध्यातव्य है कि द्वित्व के पश्चात् इकार आदेश होता है । यदि द्वित्व से पूर्व इत् आदेश कर लिया जायेगा तो 'जिहितः' ऐसा अनिष्ट रूप बनेगा ।

द्वित्व के पश्चात् इत् आदेश किये जाने के पक्ष में दो प्रमाण भी उल्लेखनीय है—

(क) 'श्नाभ्यस्तयोरातः' से 'अभ्यस्तस्य' पद अनुवृत्त है । इस दशा में अर्थ होगा—अभ्यस्त संज्ञक 'हा' अंग के आकार को इत् आदेश होता है । द्वित्व से पूर्व अभ्यस्त संज्ञा प्राप्त नहीं है । अतः द्वित्व के पश्चात् इत् होना चाहिए ।

(ख) हा तस् यहाँ द्वित्व तथा इत्व युगपत् प्राप्त होते हैं । द्वित्व अन्तरंग है तथा इत्व बहिरंग है । बहिरंग से अन्तरंग बलवान् होता है । अतः प्रथम द्वित्व होगा । तब इत्व होगा ।

आ च हौ 6.4.117

पद.—आ–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च–अव्य०, हौ –7.1

अनु.—जहातेः इत् अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—'हि' परे रहते 'हा' अंग के आकार को आकार आदेश होता है तथा विकल्प से ह्रस्व इकार होता है ।

पक्ष में—ईकार होता है ।

उदा.—जहा सिप् (शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास कार्य)–जहा हि ('हि' आदेश)–जहाहि (आकार हुआ) ।

जहिहि (इत् आदेश हुआ) ।

जहीहि (पक्ष में ईकार हुआ–ई हल्यघोः भट्टि० 3.53)

लोपो यि 6.4.118

पद.—लोपः 1.1, यि 7.1

अनु.—जहातेः सार्वधातुके ।

अर्थ—यकारादि सार्वधातुक परे रहते 'हा' अंग के आकार का लोप होता है ।

उदा.—जहा यास् त् (वि०लिङ्, शप्, श्लु, द्वित्व, यासुट्, इकार लोप) अब 'जहातेश्च' से प्राप्त इत् का तथा 'ई हल्यघोः' से प्राप्त ईकार का बाध होकर लोप हुआ—जह् यास्त्–जहयात् ।

विशेष—काशिका में 'क्ङिति' की अनुवृत्ति प्रदर्शित की गई है । वस्तुतः 'हा' अंग से उत्तर अङित् व अकित् यकारादि सार्वधातुक सम्भव नहीं है । अतः 'क्ङिति' का अनुवर्त्तन अनावश्यक प्रतीत होता है ।

ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च 6.4.119

पद.—ध्वसोः 6.2, एत् 1.1, हौ 7.1, अभ्यासलोपः 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य क्ङिति ।

अर्थ—कित् ङित् 'हि' परे रहते घुसंज्ञक धातु तथा अस् धातु–इन अंगों को एकार आदेश होता है तथा अभ्यास का लोप होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुसंज्ञक धातुओं के विषय में ही अभ्यास सम्भव है। यद्यपि 'लोपो यि' से 'लोपः' पद का अनुवर्त्तन होता हैं, तदपि प्रकृत सूत्र में 'लोपः' पद का ग्रहण सिद्ध करता है कि सम्पूर्ण अभ्यास का लोप हो जाये। अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा एकार आदेश अन्त्य वर्ण के स्थान पर होता है।

उदा.—(1) द दा हि (सिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास-कार्य, हि)–द् ए हि (घुसंज्ञा होने से एत्व व अभ्यास लोप)–देहि।

(2) अस् हि (सिप्, शप्, लुक्, हि)–अ ए हि (ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च–पा० 6.4.119) एत्व आभीय कार्य है जो समानाश्रय 'धि' आदेश के प्रति असिद्ध है अर्थात् 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' पा० 6.4.101 की दृष्टि में 'ए' हुआ ही नहीं, वहाँ 'स्' ही है। अ ए धि ('धि' आदेश हुआ)। स्थानिवद्भाव से 'धि' ङित् है (सार्वधातुकमपित्)–एधि (श्नसोरल्लोपः)।

अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि 6.4.120

पद.—अतः 6.1, एकहल् मध्ये 7.1, अनादेशादेः 6.1, लिटि 7.1

अनु.—अंगस्य एत् अभ्यासलोपः क्ङिति।

अर्थ—'लिटि' पद का आवर्त्तन किया जाता है। एक 'लिटि' पद में निमित्त सप्तमी है तथा दूसरे में परसप्तमी है।

ङित् लिट् सम्भव नहीं है। अतः कित् लिट् परे रहते–ऐसा अर्थ होता है।

लिट् को निमित्त मानकर जिसके आदि में कोई आदेश न हुआ हो, ऐसे अंग के अवयवभूत असंयुक्त हलों के मध्य में स्थित ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश होता है तथा अभ्यास का लोप होता है, कित् लिट् परे रहते।

तात्पर्य यह है कि लिट् को निमित्त मानकर जिसके आदि में कोई आदेश न हुआ हो, ऐसा जो अंग उसके अवयवभूत अत् अर्थात् ह्रस्व अकार को एकार आदेश होता है कित् लिट् परे रहते, यदि उस अकार के दोनों ओर एक एक अर्थात् असंयुक्त हल् हो। साथ ही पूर्वोक्त दशा में अभ्यासलोप भी होता है।

उदा.—पपठ् अतुस् (लिट्, अतुस्, द्वित्व, अभ्यास कार्य) अब एत्व व अभ्यास लोप हुआ—पेठतुः।

पठ् पठ् अतुस् इस दशा में एत्व तथा अभ्यास नहीं हो सकता, क्योंकि अब अकार के पश्चात् असंयुक्त हल् (ठ्) है परन्तु अकार से पूर्व संयुक्त हल् (ठ्प्) है। सूत्र के अनुसार दोनों ओर असंयुक्त हल् होना चाहिए। इसलिए हलादि शेषः की प्रवृत्ति के पश्चात् एत्वादि कार्य युक्त है।

आसेदुषः (भट्टि० 3.26)। तेनुः (भट्टि० 2.3) फेलुः (भट्टि० 3.42)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अतः' अर्थात् **ह्रस्व अकार** के स्थान पर ही एकार आदेश होता है—

दिव् अतुस्–दिदिव् अतुस्–इस दशा में लिट् को निमित्त मानकर 'दिदिव्' अंग के आदि में कोई आदेश नहीं हुआ, कित् लिट् (अतुस्) परे भी है परन्तु ह्रस्व अकार नहीं है जो दोनों ओर असंयुक्त हल् से घिरा हुआ है। अतः एकार नहीं होता है—दिदिवतुः।

'अत्' में तपरकरण का प्रयोजन है कि **ह्रस्व** अकार के स्थान पर ही एत्व होता है—

रास् त–रास् ए सूत्र की सभी शर्त पूर्ण हैं, परन्तु ह्रस्व अकार नहीं है। अतः एत्व न हुआ। रासे।

2. 'एकहल्मध्ये' अर्थात् **दोनों ओर असंयुक्त हल्** हों, तभी अकार को एकार होता है—

रक्ष् अतुस् (लिट्, अतुस्, द्वित्व, अभ्यास कार्य) अब सूत्र की सभी शर्तें पूरी हैं, परन्तु अकार से पूर्व असंयुक्त हल् (रेफ) है तथा अकार से पश्चात् संयुक्त हल् है। अतः एत्व न हुआ—रक्षतुः।

इसी प्रकार जज्वलतुः, जज्वरतुः तथा तत्सरतुः में एत्व व अभ्यास लोप नहीं होते हैं।

3. 'अनादेशादेः' अर्थात् **लिट् को मानकर अंग के आदि में कोई आदेश न हो,** तब एत्व व अभ्यासलोप होते हैं—

गण् अतुस्–जगणतुः द्वित्व तथा कुहोश्चुः से कवर्ग (ग्) हुआ। चूँकि लिट् को निमित्त मानकर 'जगण्' अंग के आदि को आदेश (कुत्व) हुआ है। अतः एत्व तथा अभ्यासलोप न हुआ।

इसी प्रकार जगदतुः, चखनतुः तथा बभणतुः में एत्व व अभ्यासलोप नहीं होते हैं। इस विषय में ध्यातव्य है कि अंग के आदि में आदेश होने पर वर्ण के स्वरूप में परिवर्तन होने पर आदेश हुआ माना जाता है। यदि आदेश होने पर भी उस वर्ण में कोई परिवर्तन न हो तो 'अनादेश' ही माना जायेगा। इस सम्बन्ध में 'न शसददवादिगुणानाम्' (पा० 6.4.126) सूत्र ज्ञापक है। 'दद' धातु में 'अभ्यासे चर्च' के द्वारा अभ्यास के दकार के स्थान पर दकार आदेश होता है। वर्ण (द्) में कोई परिवर्त्तन न हुआ, तथापि आदेश अवश्य हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः अनादेश न होने से अत एकहल्मध्ये० सूत्र की स्वतः प्रवृत्ति नहीं होती है। तब 'न शसदद०' सूत्र के द्वारा निषेध कैसा?

फलतः 'न शसददवादि०' सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि आचार्य को 'आदेश' पद के द्वारा 'स्वरूप में परिवर्त्तन' इष्ट है। चूँकि 'दद' के विषय में स्वरूप में कोई परिवर्त्तन नहीं होता है। अतः इस स्थल पर इसे अनादेश माना जायेगा। तब 'अत एकहल्मध्ये०' के द्वारा एत्व तथा अभ्यासलोप प्रसक्त हो जायेंगे जिसकी निवृत्ति के लिए 'न शसददवादि०' सूत्र का पाठ किया गया है। यथा—

जेपतुः, देहतुः इत्यादि। भ्रेजिरे (भट्टि० 14.68)।

4. 'लिटि' अर्थात् **लिट् को निमित्त मानकर** आदेश न हुआ हो—

णम्–नम् (णो नः) अतुस्–नेमतुः यहाँ 'ननम्' अंग से पर कित् लिट् (अतुस्) है, इसके अवयव ह्रस्व अकार के दोनों ओर असंयुक्त हल् हैं तथा इस अंग के आदि को लिट् को निमित्त मानकर आदेश नहीं हुआ है। अतः एत्व व अभ्यास-लोप हो गये। ध्यान रहे कि 'ण' के स्थान पर होने वाला 'न' आदेश लिट् को निमित्त मानकर नहीं हुआ है। वह निर्निमित्तक आदेश है। यह आदेश लकार की उत्पत्ति से पूर्व हो जाता है। अतः लिट् निमित्तक आदेश नहीं माना जाता है।

इसी प्रकार—षह् (धात्वादेः षः सः)–सह् त–सेहे एत्व तथा अभ्यास लोप हो जायेंगे।

5. दम्भ् धातु को एत्व तथा अभ्यास लोप होते हैं[1]–

दम्भ् अतुस् (लिट्, प्र०पु०द्विव०)–दम्भ् दम्भ् अतुस्–(द्वित्व)–ददम्भ् अतुस् (अभ्यास कार्य) इस दशा में 'ददम्भ्' अंग के आदि को आदेश नहीं हुआ है, इससे परे कित् लिट् (अतुस्) है ददम्भ् अतुस्–ददभ् अतुस् (अनुनासिक का लोप) –अनुनासिक लोप के असिद्ध होने से 'ददभ्' अंग के अवयव अकार के एक ओर संयुक्त हल् (म् भ्) है। अतः प्रकृत सूत्र के द्वारा एत्व व अभ्यासलोप नहीं होते हैं।

ददभ् अतुस्–देभतुः वार्तिक के द्वारा एत्व तथा अभ्यास लोप हुआ।

6. लिट् भिन्न प्रत्यय परे रहते नश् तथा मन् अंग को एत्व होता है[2]—

नश् लुङ्–नश् ल्–नश् मिप् (उ०पु०एक०)–नश् च्लि मि (च्लि)–नश् अङ् मि (पुषादिद्युतादि०) अट् नश् अ अम् (अट्, अम् आदेश)–अनेशम्, अनश् अंग के ह्रस्व अकार को एकार हुआ है। इसी प्रकार—

मन् वुन् ('आशिषि च' पा० 3.1.150)–मन् वु–मन् अक (युवोरनाकौ)–मन् अक टाप् (स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्)–मेनका सु–मेनका–मन् के अकार के स्थान पर एकार हो गया। चूँकि इस का क्षिपकादिगण में पाठ है। अतः क्षिपकादीनां चोपसंख्यानम् (पा० 7.2.45 वा०) के द्वारा इत्व निषेध होता है।

7. वेद के विषय में लिट् भिन्न में अम् व पच् अंग के अकार को एकार होता है[3]—

वि अम् चानश्–वि अम् आन (अनुबन्ध लोप)–वि एम् आन (एत्व)–व्येमान (यण्) सु–व्येमानम्।

पच् लिङ्–पच् ल्–पच् शप् झ–पच् अ रन् (झस्य रन्)–पच् अ सीयुट् रन्–पच् अ सीय् रन्–पच ईय् रन् (सलोप)–पचेरन् (गुण, यलोप)–पेचेरन् (अकार को एकार)–पेचिरन् (एकार के स्थान पर छान्दस ह्रस्वादेश।

8. यज् तथा वप् का भी एत्व होता है[4]—

यज् लङ्–यज् ल्–यज् इट् (उ०पु०एक०) यज् शप् इट् –यज् ए–यजे–येजे (एत्व)–आयेजे 'छन्दस्यपि दृश्यते' (पा० 6.4.73) के द्वारा अनजादि 'यज्' को आट् आगम हुआ।

इसी प्रकार—वप् लङ्।
वप् ल्–वप् इट्। लादेश।
वप् शप् इ–वपे–गुण।
आवेपे–आट्, एत्व।

थलि च सेटि 6.4.121

पद.—थलि 7.1, च–अव्य०, सेटि 7.1

अनु.—अत एकहल्मध्ये अनादेशादेः लिटि एत् अंगस्य अभ्यासलोपः।

अर्थ—लिट् को निमित्त मानकर जिसके आदि को आदेश न हुआ हो, ऐसा जो अंग उसके अवयवभूत ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश तथा अभ्यास लोप होता है, सेट् थल्

1. काशि० 6.4.120 (वा०)—दम्भेरेत्वं वक्तव्यम्।
2. काशि० 6.4.120 (वा०)–नशिमन्योरलिट्येत्वं वक्तव्यम्।
3. काशि० 6.4.120 (वा०)—छन्दस्यमिपचोरप्यलिटि एत्वं वक्तव्यम्।
4. काशि० 6.4.120 (वा०)—यजिवप्योश्च।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परे रहते यदि उस ह्रस्व अकार के दोनों ओर असंयुक्त हल् हों।

(सेट्) थल् कित् नहीं होता है। अतः विधान किया गया है।

उदा.—(1) नद् लिट्-ल् (लिट्)।
नद् सिप् (लादेश)।
नद् थल् (णलतुसुस्थलथुस०)।
नद् नद् थ (द्वित्व)।
ननद् थ (अभ्यास कार्य)।

'ननद्' अंग का अवयव अकार है। इसके दोनों ओर असंयुक्त हल् हैं।

लिट् को निमित्त मानकर अंग के आदि को आदेश नहीं हुआ है।

ननद् इट् थ-ननद् इथ (इडागम)। सेट् थल् परे रहते एत्व तथा अभ्यास लोप हुए।
नेदिथ।

विशेष—'सेटि' अर्थात् सेट् थल् परे रहते ही एकार व अभ्यासलोप होता है—
पच् लिट्-पच् ल्।
पच् सिप्-पच् थल्-पच् थ।

आर्धधातुक इट् की प्राप्ति, 'एकाच उपदेशे०' से इट् का निषेध।

'कृसृभृ०' से इट् की प्राप्ति, 'उपदेशेऽत्वतः' से इट् का निषेध, भारद्वाज नियम से इट् की विकल्प से प्राप्ति।

(इट् पक्ष में 'थलि च सेटि' से एत्व तथा अभ्यास लोप होकर 'पेचिथ' बनता है)।

इट् अभाव पक्ष में—
पच् थ-पच् पच् थ (द्वित्व)।
पपच् थ (अभ्यास कार्य)।

पपक्थ (थल् सेट् न होने से एत्व तथा अभ्यासलोप न हुआ 'चोः कुः' से कुत्व)।

तृफलभजत्रपश्च 6.4.122

पद.—तृफलभजत्रपः 6.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य अतः एत् अभ्यासलोपः थलि सेटि लिटि क्ङिति।

कित् लिट् तथा सेट् थल् परे रहते तृ, फल, भज तथा त्रप-इन अंगों के अक़ार के स्थान पर एकार आदेश तथा अभ्यासलोप होता है।

उदा.—(1) तृ लिट्-तृल्-तृ अतुस् (प्र०पु०द्विव०)। तृ तृ अतुस् (अतुस् लिट् कित् है। द्वित्व)। त तृ अतुस् (अभ्यासकार्य) त तर् अ तुस् (ऋच्छत्यृताम् से गुण)।

गुण से प्राप्त 'अ' को प्राप्त एत्व का 'न शसदद०' से निषेध।
तेर् अतुस् (तृफलभजत्रपश्च)।
तेरतुः।

(2) ततर् थल् (पूर्ववत्)।
ततर् इथ (इट्)।
तेरिथ।

(3) उत्तेरिथ (भट्टि० 14.57)।

(4) फल् फल् अतुस् (लिट्, अतुस्, द्वित्व)। फ फल् अतुस् (हलादि शेष)।

प फल् अतुस् (अभ्यासे चर्च)।

प फल् अंग का अवयवभूत अकार के दोनों ओर असंयुक्त हल् हैं।

अंग से परे कित् लिट् (अतुस्) है।

'पफल्' अंग के आदि को लिट्निमित्तक आदेश हुआ है, परन्तु 'अभ्यासे चर्च' (पा० 8.4.53) सूत्र 'अत एकहल्-मध्ये०' (पा० 6.4.120) की दृष्टि में असिद्ध है। अतः एत्व तथा अभ्यासलोप की प्राप्ति होती है, परन्तु 'तृफलभजत्रपश्च' सूत्र ज्ञापक है कि पा० 6.4.120 द्वारा विधीयमान एत्व व अभ्यास लोप की दृष्टि में पा० 8.4.53 द्वारा विहित जश्त्व, चर्त्व असिद्ध नहीं होता है।

यदि उक्त चर्त्व असिद्ध होता तो प्रकृत सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि एत्व तथा अभ्यासलोप की दृष्टि में जश्त्व व चर्त्व सिद्ध होते हैं।

पफल् अतुस् यहाँ चर्त्व के सिद्ध रहने से एत्व व अभ्यास लोप की प्राप्ति न हुई। तब प्रकृत सूत्र के द्वारा एत्व तथा अभ्यासलोप हुआ—फेलतुः।

(5) पफल् थल् (पूर्ववत्)।
प फल् इथ (सेट् थल् परे है)।
फेलिथ। (एत्व, अभ्यासलोप)।

(6) भज् अतुस्।
बभज् अतुस् (पूर्ववत्)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजतुः (पूर्ववत्)।

(7) बभज् इट् थल्-पूर्ववत्।
भेजिथ।

(8) त्रप् लिट्-त्रप् ल्।

त्रप् त-त्रप् ए (लिटस्तझयो०)। त त्रप् ए ('ए' कित् लिट् है। द्वित्व, अभ्यास कार्य)। तत्रप् ए इस दशा में 'तत्रप्' अंग का अवयव अकार है। 'तत्रप्' से परे लिट् कित् (ए) है। अंग के आदि को लिट् निमित्तक आदेश नहीं हुआ है, परन्तु ह्रस्व अकार के एक ओर संयुक्त हल् (त् र्) है। अतः एत्व तथा अभ्यासलोप प्राप्त न थे।

त्रेपे एत्व, अभ्यास लोप (तृफलभजत्रपश्च) (भट्टि० 14.84)

(9) त्रप् थल्-त्रेपिथ।

विशेष—श्रन्थ् अंग के अकार को एकार तथा अभ्यासलोप होता है कित् लिट् व सेट् थल् परे रहते[1]—

श्रन्थ् अतुस् (लिट्)।

श्रेथतुः (द्वित्व, अभ्यासलोप, अनुनासिकलोप) श्रन्थ् का अकार अनेकहल् मध्य होने के कारण इसे एत्व तथा अभ्यासलोप प्राप्त न था।

राधो हिंसायाम् 6.4.123

पद.—राधः 6.1, हिंसायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य अतः एत् अभ्यासलोपः थलि सेटि क्ङिति लिटि।

अर्थ—कित् लिट् अथवा सेट् थल् रहते हिंसा अर्थ में वर्त्तमान राध् अंग के अवर्ण के स्थान पर एकार होता है तथा अंग के अभ्यास का लोप होता है।

उदा.—अप राध् लिट्। हिंसा अर्थ में।
अप राध् अतुस्। लादेश।
अप राध् राध् अतुस् (अतुस् कित् लिट् है)।

अप र राध् अतुस् (द्वित्व, अभ्यासकार्य)। अपरेधतुः-अत एकहल् मध्ये० सूत्र की सभी शर्तें यहाँ पूरी थीं, केवल 'रराध्' अंग का अवयव 'आ' है। ह्रस्व अकार न होने के कारण इसकी प्रवृत्ति न हुई। प्रकृतसूत्र के द्वारा एत्व तथा अभ्यास-लोप हुआ। इसी प्रकार—रेधुः (भट्टि० 14.19) अपरेधिथ (सेट् थल् में पूर्ववत्)।

हिंसा अर्थ में वर्त्तमान न हो तो 'राध्' अंग को एत्व तथा अभ्यासलोप नहीं होते हैं—

रराधतुः।
रराधिथ।

वा जृभ्रमुत्रसाम् 6.4.124

पद.—वा-अव्य०, जृभ्रमुत्रसाम् 6.3

अनु.—अंगस्य अत एत् अभ्यासलोपः थलि सेटि क्ङिति लिटि।

अर्थ—कित् लिट् या सेट् थल् परे रहते जृ, भ्रम् और त्रस् अंग के अकार को एकार तथा (अंग के) अभ्यास का लोप विकल्प से होता है।

उदा.—(1) जृ ल् (लिट्)।
जृ जृ अतुस् (लादेश, द्वित्व)।
ज जृ अतुस् (अभ्यास कार्य)

ज जर् अतुस् (ऋच्छत्यृताम् से गुण)। जजर् अंग का ह्रस्व अकार गुण शब्द से भावित है। 'न शसददवादि०' के द्वारा एत्व तथा अभ्यास लोप का निषेध हुआ।

जेरतुः (प्रकृतसूत्र से एत्व, अभ्यास लोप)। जजरतुः (पक्ष में न हुआ)।

(2) जृ थल् (पूर्ववत्)।
ज जृ इट् थ-जजर् इथ (इट्)।
जेरिथ।

पक्ष में—जजरिथ।

(3) बभ्रम् अतुस् (लिट्, लादेश, द्वित्व, अभ्यास कार्य)।

अनेकहल् मध्य अकार को, एत्व की प्राप्ति न थी। साथ ही लिट् निमित्तक आदेश भी है।

भ्रेमतुः (वा जृभ्रमुत्रसाम्)।

पक्ष में—बभ्रमतुः।

(4) बभ्रम् इट् थल् (पूर्ववत्-सेट् थल्, द्वित्व, अभ्यास-कार्य)।

भ्रेमिथ (वा जृभ्रमुत्रसाम्)।
पक्ष में—बभ्रमिथ।

(5) तत्रस् अतुस् (पूर्ववत् द्वित्वादि)।

'तत्रस्' अंग के अवयव ह्रस्व अकार के संयुक्त हल् के मध्य (त् र्) स्थित होने के कारण यहाँ एत्वादि प्राप्त न थे। प्रकृतसूत्र के द्वारा विकल्प से प्राप्त हुए—

1. काशि० 6.4.122 (वा०)—श्रन्थेश्चेति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेसतुः ।

पक्ष में—तत्रसतुः ।

(6) सेट् थल् में—त्रेसिथ ।

पक्ष में—तत्रसिथ ।

फणां च सप्तानाम् 6.4.125

पद.—फणाम् 6.3, च-अव्य०, सप्तानाम् 6.3

अनु.—अंगस्य अत वा एत् अभ्यासलोपः लिटि क्ङिति सेटि थलि ।

अर्थ—कित् लिट् अथवा सेट् थल् परे रहते 'फण्' आदि सात धातु-इनके अंग के अवयव ह्रस्व अकार के स्थान पर विकल्प से एकार तथा (अंग को) अभ्यास लोप होता है ।

'फणाम्' यहाँ बहुवचन निर्देश के द्वारा 'आदि' अर्थ का ग्रहण किया जाता है ।

उदा.—(1) पफण् अतुस् 'पफण्' अंग के आदि को आदेश हुआ है । अतः एत्व प्राप्त न था । फेणतुः । पक्ष में—पफणतुः । इसी प्रकार-फेणुः (भट्टि० 14.77) ।

सेट् थल् में-फेणिथ ।

पक्ष में—पफणिथ ।

(2) राज् अतुस्-रेजतुः यहाँ 'राज्' अंग का अवयव आकार है । अतः एत्व प्राप्त न था । पक्ष में—रराजतुः । इसी प्रकार-रेजुः (भट्टि० 2.2; 14.7) । पक्ष में—रराजुः ।

सेट् थल् में-रेजिथ ।

पक्ष में—रराजिथ ।

(3) भ्राज् त-बभ्राज् ए इस दशा में बभ्राज् अंग का अवयव ह्रस्व अकार नहीं है । इसके अतिरिक्त अंग के आदि को आदेश हुआ है । अतः एत्व प्राप्त न था ।

भ्रेजे ।

पक्ष में—बभ्राजे ।

(4) भ्राश् त-भ्रेशे (पूर्ववत्) ।

पक्ष में—बभ्राशे ।

(5) भ्लाश् त-भ्लेशे (पूर्ववत्) ।

पक्ष में—बभ्लाशे ।

(6) स्यम् अतुस्-सस्यम् अतुस् (द्वित्व, अभ्यास कार्य)-'सस्यम्' अंग के अवयवभूत अकार के एक ओर संयोग हल् है । अतः एत्व प्राप्त न था ।

प्रकृतसूत्र के द्वारा एत्व हुआ—

स्येमतुः । पक्ष में—सस्यमतुः । इसी प्रकार-स्येमुः (भट्टि० 14.77) सेट् थल् में—स्येमिथ, सस्यमिथ ।

(7) स्वन् अतुस् (पूर्ववत्)-स्वेनतुः

पक्ष में—सस्वनतुः

सेट् थल् में—स्वेनिथ, सस्वनिथ ।

विशेष—'सप्तानाम्' का प्रयोजन है कि 'फण्' आदि सात धातुओं को ही उक्त कार्य होते हैं—

ध्वन् अतुस्-यह फणादि सात में नहीं है । अतः एत्व अभ्यासलोप नहीं होता है—दध्वनतुः ।

इसी प्रकार—दध्वनिथ ।

न शसददवादिगुणानाम् 6.4.126

पद.—न-अव्य०, शसददवादिगुणानाम् 6.3

अनु.—अंगस्य अतः एत् अभ्यासलोपः लिटि क्ङिति थलि सेटि ।

अर्थ—कित् लिट् अथवा सेट् थल् परे रहते शस्, दद्, वकारादि अंग के अत् के स्थान पर तथा गुणभावित अत् के स्थान पर एकार नहीं होता है तथा अंग के अभ्यास का लोप नहीं होता है ।

उदा.—(1) शस् अतुस्-श शस् अतुस्-शशसतुः ।

शस् इट् थल्-शशसिथ ।

(2) ददद् ए (लिट्, प्र०पु० एक०, द्वित्व)-ददे ।

(3) ववम् अतुस्-ववमतुः ।

वम् इट् थल्-ववमिथ ।

(4) पॄ अतुस्-प पॄ अतुस् अब 'शृदॄप्रां ह्रस्वो वा' (पा० 7.4.12) से पाक्षिक ह्रस्व प्राप्त हुआ । ह्रस्व अभाव पक्ष में—

प पॄ अतुस्-पपर् अतुस् ('ऋच्छत्यॄताम्' से गुण) ।

'अत एकहल् मध्ये०' से प्राप्त एत्व का निषेध हुआ—पपरतुः ।

पॄ इट् थल्-पपरिथ ।

इसी प्रकार निम्नलिखित में एत्वादि का निषेध होता है—

शशरतुः, शशरिथ ।

ददरतुः, ददरिथ ।

लू इट् थल्-लुलू इथ (द्वित्व, ह्रस्व)-लु लो इथ (गुण) 'थलि च सेटि' से प्राप्त एत्व का निषेध हुआ-लुलविथ ।

इसी प्रकार-पुपविथ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्र में पठित गुणानाम् पद के द्वारा गुणसंज्ञक अकार का ग्रहण नहीं होता है, अपि गुण विधायक सूत्रभावित गुण (अकार, ओकार) का ग्रहण किया जाता है—

लुलविथ में गुणविधायक सूत्र (सार्वधातुकार्धधातुकयोः) के द्वारा गुण (ओकार) भावित है। अतः निषेध हुआ है।

पिपरतुः यहाँ भी गुणविधायक सूत्र (ऋच्छत्यृताम्) के द्वारा गुण (अकार) भावित है। अतः एत्व का निषेध हुआ है।

यदि '°गुणानाम्' पद के द्वारा सामान्यतः गुणसंज्ञक वर्णों (अकार, ओकार) का ग्रहण होता तो 'पेठतुः' रूप में एत्व तथा अभ्यासलोप प्रसक्त न होते। कारण कि—पपठ् अतुस् यहाँ लिट् कित् (अतुस्) परे रहते 'पपठ्' अंग में गुणसंज्ञक वर्ण (अकार) है। अतः एत्व होना चाहिए था। इसके अतिरिक्त प्रकृतसूत्र में 'शस्' व 'दद्' का पाठ व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'गुण' पद के द्वारा सामान्य गुणसंज्ञक वर्ण का ग्रहण न होकर गुणसम्पादकसूत्र के द्वारा भावित गुण-वर्ण (अकार, ओकार) का ग्रहण होता है। यदि ऐसा न होता तो '°गुणानाम्' इतने सूत्र मात्र से 'शस्' व 'दद्' अंग के अकार को एत्व का निषेध हो जाता। तब सूत्र में इनके पाठ की क्या आवश्यकता थी ?

अर्वणस्त्रसावनञः 6.4.127

पद.—अर्वणः 6.1, तृ-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, असौ 7.1, अनञः 5.1,

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—नञ् से रहित अंगसंज्ञक 'अर्वन्' शब्द को 'तृ' आदेश होता है, परन्तु 'सु' परे रहते नही होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर होता है।

तृ के ऋकार की इत्संज्ञा होती है। अतः यहाँ सर्वादेश नहीं होता है।

उदा.—अर्वन् औ-अर्वत् औ।

अर्व नुम् त् औ-उगिदचां सर्वनाम०।

अर्वंत् औ-नश्चाऽपदान्तस्य०।

अर्वन्तौ-अनुस्वारस्य ययि०।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अनञः' अर्थात् नञ् से रहित अर्वन् को ही 'तृ' आदेश होता है—

न अर्वा-अनर्वा यहाँ नञ् तत्पुरुष है। अनर्वन् औ-अनर्वाणौ। 'तृ' आदेश न हुआ।

2. 'असौ' अर्थात् 'सु' परे रहते 'तृ' आदेश नहीं होता है—अर्वन् सु-अर्वन्-अर्वान्-अर्वा यह 'तृ' न हुआ।

मघवा बहुलम् 6.4.128

पद.—मघवा 1.1, (षष्ठ्यर्थे), बहुलम् 1.1

अनु.—अंगस्य, तृ।

अर्थ—मघवन् शब्द को बहुलता से 'तृ' आदेश होता है।

उदा.—मघवन् सु-मघवतृ स्-मघवत् स् (उगिदचां सर्वनाम०)-मघव नुम् त् स्-मघवन्त् (सु का लोप)-मघवन् (संयोगान्त लोप)-मघवान् (प्रत्ययलक्षण के द्वारा सर्वनामस्थाने चाऽस०)-मघवान्।

यद्यपि 'सर्वनामस्थाने०' (पा० 6.4.8) सूत्र की दृष्टि में 'संयोगान्तस्य लोपः' (पा०8.2.23) सूत्र असिद्ध है। अतः उपधादीर्घ नहीं होना चाहिए परन्तु 'मघवा बहुलम्'में 'बहुलम्' पद के ग्रहण का प्रयोजन है कि उपधादीर्घ के विषय में संयोगान्त लोप असिद्ध नहीं होता है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि 'बहुलम्' के ग्रहण का तात्पर्य 'इष्टसिद्धि' होता है अर्थात् इष्टसिद्धि में जो जो व्यवधान हो उन सभी का निवारण हो जाता है—

पक्ष में 'तृ' आदेश नहीं होता है—मघवन् सु-मघवन्-मघवान्-मघवा।

मघवन् शब्द की रूपमाला

तृत्वपक्ष

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	मघवान्	मघवन्तौ[1]	मघवन्तः
द्वितीया	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
तृतीया	मघवता	मघवद्भ्याम्[2]	मघवद्भिः
चतुर्थी	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
पंचमी	मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
षष्ठी	मघवतः	मघवतोः	मघवत्सु
सप्तमी	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु
सम्बोधन	हे मघवन्!	हे मघवन्तौ!	हे मघवन्तः!

तृत्वाऽभावपक्ष

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	मघवा	मघवानौ	मघवानः
द्वितीया	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः

1. नुम् आगम। 2. झलांजशोऽन्ते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीया	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
चतुर्थी	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पंचमी	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
षष्ठी	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
सप्तमी	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
सम्बोधन	हे मघवन्!	हे मघवानौ!	हे मघवानः!

भस्य 6.4.129

पद.—भस्य 6.1

अर्थ—यह अधिकार है जो अध्याय की समाप्ति पर्यन्त चलता है।

पादः पत् 6.4.130

पद.—पादः 6.1, पत् 1.1

अनु.—अंगस्य भस्य।

अर्थ—पाद् शब्द है अन्त में जिसके ऐसे भसंज्ञक अंग के स्थान पर पत् आदेश होता है।

उदा.—द्वौ पादौ अस्य–द्विपाद् (संख्यासुपूर्वस्य से अकार लोप हुआ है)

द्विपाद् शस्–द्विपद् अस्–द्विपदः।

वसोः सम्प्रसारणम् 6.4.131

पद.—वसोः 6.1, सम्प्रसारणम् 1.1

अनु.—अंगस्य भस्य।

अर्थ—वसु प्रत्ययान्त भसंज्ञक अंग को सम्प्रसारण होता है।

'वसु' के द्वारा 'क्वसु' का भी ग्रहण होता है।

उदा.—विद् शप् शतृ इस दशा में शप् का लुक् तथा शतृ को 'वसु' आदेश (विदेः शतुर्वसुः) होता है। 'विद्वस्' शब्द बना।

विद्वस् शस् (यचि भम्)–विद् उ अ स् अस् (सम्प्रसारण)–विदुस् अस् (सम्प्रसारणाच्च)–विदुषः (आदेशप्रत्यययोः)।

वाह ऊठ् 6.4.132

पद.—वाहः 6.1, ऊठ् 1.1

अनु.—अंगस्य भस्य सम्प्रसारणम्।

अर्थ–भसंज्ञक 'वाह्' के स्थान पर सम्प्रसारण 'ऊठ्' होता है।

चूँकि 'ऊठ्' की सम्प्रसारण संज्ञा कही गई है। अतः यण् (वकार) के स्थान पर होता है। यदि सम्प्रसारण संज्ञा न की जाती तो उक्त आदेश अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य वर्ण (हकार) के स्थान पर प्राप्त होता।

उदा.—विश्ववाह् शस् (यचि भम्)–विश्व ऊठ् आह् अस्–विश्व ऊ आह् अस्–विश्व ऊह् अस् (सम्प्रसारणाच्च)–विश्वौहः (एत्येधत्यूठ्सु) इसी प्रकार–दित्यौहः, प्रष्ठौहः।

श्वयुवमघोनामतद्धिते 6.4.133

पद.—श्वयुवमघोनाम् 6.3, अतद्धिते 7.1

अनु.—अंगस्य भस्य सम्प्रसारणम्।

अर्थ—तद्धित से रहित प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक श्वन्, युवन् और मघवन् अंगों को सम्प्रसारण होता है।

उदा.—(1) श्वन् शस्–श्वन् अस् (सम्प्रसारण)–श् उ अन् अस्–श् उन् अस्–शुनः। 'यचि भम्' से भसंज्ञा।

(2) युवन् शस्–यु उ अन् अस्–यु उन् अस्–यून् अस्–यूनः।

अब यकार को प्राप्त सम्प्रसारण का 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' से निषेध हुआ।

(3) मघवन् अस्–मघ उन् अस्–मघोनः। (मे० 6)।

विशेष—1. 'अतद्धिते' अर्थात् **तद्धित भिन्न** प्रत्यय परे रहते ही सम्प्रसारण होता है—

शुनः विकारः–श्वन् अञ् (तद्धित प्रत्यय अञ् परे होने के कारण सम्प्रसारण न हुआ)–'द्वारादीनाच्च' से ऐच् आगम–शौवन् अ 'नस्तद्धिते' से टिलोप–शौव् अ सु–शौवम् 'प्राणि-रजतादिभ्योऽञ्' से अञ् हुआ है।

युवन् अण् (सम्प्रसारण न हुआ)–यौवनम्।

मघवा देवताऽस्य–मघवन् अण् (साऽस्य देवता)–माघवन सु–माघवनः।

2. भट्टोजि दीक्षित ने यहाँ 'अल्लोपोऽनः' से 'अनः' पद का अनुवर्त्तन कर वचनविपरिणाम के द्वारा 'अनाम्' बना लिया है।[1] दीक्षित के अनुसार 'अन्नन्त मघवन् आदि को सम्प्रसारण हो' ऐसा अर्थ है। यदि ऐसा अर्थ न करेंगे तो 'तृ' आदेश पक्ष में 'मघवत् आ' इस दशा में 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' (परि०) के द्वारा इसे 'मघवन्' मानकर सम्प्रसारण प्राप्त होता है, जो अनिष्ट है। अतः 'अन्नन्त' को ही सम्प्रसारण हो–ऐसा अर्थ करने पर कोई दोष प्रसक्त नहीं होता है। द्र०—

1. वै०सि०कौ० (भाग-1) सूत्र 362 द्र० अन्नन्तानां भसंज्ञकानांम् एषां तद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महा० 6.4.133–श्वादीनां सम्प्रसारणे नकारान्तग्रहण-मनकारान्तप्रतिषेधार्थम् ।

अल्लोपोऽनः 6.4.134

पद.—अत्–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम् लोपः 1.1, अनः 6.1

अनु.—अंगस्य भस्य ।

अर्थ—अन् है अन्त में जिसके ऐसे भसंज्ञक अंग के अन् के अकार का लोप होता है ।

राजन् शस्–राज्न् अस्–राज्ञ् अस् (श्चुत्व)–राज्ञः ।

उदा.—दधि आ–दध् अनङ् आ (अस्थिदधि०) दधन् आ (यचि भम्)–दध्न् आ–दध्ना । तक्षन् टा–तक्ष्न् आ–तक्ष्णा ।

विशेष—नकारान्त अन् को यह लोप होता है[1]—

राज्ञः इदम्–राजन् छ–राजन् ईय–राजकीय सु–राजकीयम् ।

'राज्ञः क च' से 'छ' प्रत्यय तथा 'क्' आदेश यहाँ अकार लोप न हुआ ।

षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि 6.4.135

पद.—षपूर्वहन्धृतराज्ञाम् 6.3, अणि 7.1

अनु.—भस्य अंगस्य अल्लोपः अनः ।

अर्थ—'ष' है पूर्व में जिसके ऐसा जो अन् तदन्त शब्द, हन् तथा धृतराजन् शब्द–इन भसंज्ञक अंगों के अकार का लोप होता है अण् परे रहते ।

उदा.—(1) उक्ष्णोऽपत्यम्–उक्षन् अण् (उक्षन् शब्द के 'अन्' से पूर्व षकार है)–औक्षन् अ–औक्ष् न् अ–औक्ष्णः ।

'अन्' (पा० 6.4.167) । 'अल्लोपोऽनः' से प्राप्त अकार का लोप नहीं होता था । तक्षन् अण्–ताक्ष्णः ।

(2) भ्रूणं हतवान्–भ्रूण हन् अण्–भ्रूण हन् अ–भ्रूणघ्न सु–भ्रूणघ्नः ।

'ब्रह्मभ्रूण०' से क्विप् ।

(3) धृतराजन् अण्–धृतराज्ञः ।

विशेष—1. 'अणि' अर्थात् **'अण्' परे रहते** ही अकार का लोप होता है—

तक्षन् ण्य–ताक्षन् य–ताक्षन्य सु–ताक्षण्यः यहाँ 'ण्य' हुआ है । अतः अकार लोप न हुआ ।

2. 'षपूर्व०' अर्थात् षपूर्वक **अन् तदन्त, हन् तथा धृत-राजन्** के अकार का लोप होता है—

सामन् अण्–सामनः 'अन्' से प्रकृतिभाव हो गया । तब न तो टिलोप हुआ और न ही अकार लोप हुआ ।

विभाषा ङिश्योः 6.4.136

पद.—विभाषा 1.1, ङिश्योः 7.2

अनु.—अंगस्य अल्लोपः अनः ।

अर्थ—'ङि' या 'शी' परे हो तो अंग का अवयवस्वरूप भसंज्ञक जो अन्, उसके अकार का विकल्प से लोप होता है ।

उदा.—(1) राजन् ङि (भसंज्ञा)–राज्न् इ–राज् ञ् इ–राज्ञि ।
पक्ष में—राजनि ।

दधि ङि–दधनङ् (अस्थिदधिसक्थ्य०) दधन् इ–दध् न् इ–दध्नि । पक्ष में—दधनि ।

सामन् ङि–साम्नि, सामनि । मूर्धनि (रघु० 13.70)।

(2) सामन् औ–सामन् शी–साम्न् ई–साम्नी ।
पक्ष में—सामनी ।

न संयोगाद् वमन्तात् 6.4.137

पद.—न–अव्य०, संयोगात् 5.1, वमन्तात् 5.1

अनु.—भस्य अंगस्य अल्लोपः अनः ।

अर्थ—वकारान्त अथवा मकारान्त जो संयोग, उससे उत्तर भसंज्ञक 'अन्', उसके अकार का लोप नहीं होता है ।

उदा.—(1) पर्वन् टा–'र्व्' यह वकारान्त संयोग है । इससे उत्तर 'अन्' है । 'यचि भम्' से भसंज्ञा होती है ।

'अल्लोपोऽनः' से अकार लोप की प्राप्ति हुई जिसका निषेध हो गया । पर्वणा–णत्व हो गया ।

इसी प्रकार—

पुष्पधन्वन् आ–पुष्पधन्वना ।
मातरिश्वन् आ–मातरिश्वना ।
अध्वन् आ–अध्वना ।
यज्वन् आ–यज्वना ।

(2) चर्मन् आ–'र्म्' मकारान्त संयोग है । इससे पर 'अन्' है । 'यचि भम्' से भसंज्ञा है । अन् के अकार का लोप प्राप्त है (अल्लोपोऽनः) । निषेध हो गया । चर्मणा ।

इसी प्रकार—

शर्मन् टा–शर्मणा ।
अश्मन् टा–अश्मना ।

---

1. काशि० 6.4.134 (वा०)—अनो नकारान्तस्याऽयं लोप इष्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मन् टा–आत्मना ।
वर्त्मन् टा–वर्त्मना ।
धर्मन् टा–धर्मणा ।
कर्मन् टा–कर्मणा ।

विशेष—1. 'संयोगात्' अर्थात् **संयोग से उत्तर** जो भसंज्ञक 'अन्' उसके अकार का लोप होता है—

प्रतिदीवन् यहाँ वकार से उत्तर 'अन्' है । परन्तु वकार संयोग के अन्त में नहीं है । अतः निषेध न हुआ । अकार लोप हुआ । प्रतिदीवन् टा–प्रतिदीव्ना ।

इसी प्रकार 'सामन्' में मकार से उत्तर अन् है परन्तु संयोगान्त में मकार नहीं है । अतः अल्लोप का निषेध न हुआ । सामन् टा–साम्ना ।

2. 'वमन्तात्' अर्थात् **वकारान्त** या **मकारान्त** जो संयोग उससे उत्तर 'अन्' के अकार का लोप होता है—तक्षन् यहाँ संयोग से उत्तर 'अन्' है परन्तु उस संयोग के अन्त में न तो मकार है और नहीं वकार है । अतः प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति न होगी । 'अल्लोपोऽनः' से अल्लोप होगा—तक्षन् टा–तक्ष्न् आ–तक्ष्णा ।

अचः 6.4.138

पद.—अचः 6.1

अनु.—अंगस्य भस्य अल्लोपः ।

अर्थ—लुप्त नकार वाली 'अञ्च्' धातु के भसंज्ञक अकार का लोप होता है ।

'अच्' के द्वारा लुप्त नकार वाली अञ्चु धातु का निर्देश है ।

उदा.—प्र अञ्चु क्विन्–प्र अञ्च् (सर्वापहारलोप)–प्रत्यय-लक्षण द्वारा 'अनिदितां हल उपधाया—' से नकार लोप–प्र अच् इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा होकर—

प्र अच् शस् ('यचि भम्' से भसंज्ञा । लुप्त नकार वाली 'अच्' धातु के अकार का लोप)–प्रच् अस्–प्राच् अस् (चौ)–प्राचः ।

द्र०—प्रत्यक् (भट्टि० 14.16) ।

उद ईत् 6.4.139

पद.—उदः 5.1, ईत् 1.1

अनु.—अंगस्य भस्य अचः ।

अर्थ—उद् उपसर्ग से उत्तर लुप्त नकार वाली अञ्च् धातु के भसंज्ञक अकार के स्थान पर ईकार होता है ।

'ईत्' में तकार मुखसुखार्थ है ।

उदा.—उद् अञ्च् क्विन्–उद् अच् इसकी प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'शस्' हुआ । उद् अच् शस्–उद् ईच् अस्–उदीचः ।

आतो धातोः 6.4.140

पद.—आतः 6.1, धातोः 6.1

अनु.—अंगस्य भस्य लोपः ।

अर्थ—आकारान्त जो धातु, तदन्त भसंज्ञक अंग का लोप होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्यवर्ण (आकार) का लोप होता है ।

उदा.–कीलालपा यहाँ 'पा' आकारान्त धातु है जो 'कीला-लपा' अंग के अन्त में है । 'शस्' में इसकी भसंज्ञा होती है ।

कीलालपा शस्–कीलालप् अस्–कीलालपः ।

इसी प्रकार—

विश्वपा शस्–विश्वपः ।
शुभंया शस्–शुभंयः ।

विशेष—1. 'आतः' अर्थात् **आकारान्त** जो धातु तदन्त अंग के आकार का लोप होता है—

नी टा 'नी' धातु है परन्तु आकारान्त नहीं है । अतः पूर्वोक्त लोप न होकर इयङ् हुआ । निया ।

2. 'धातोः' अर्थात् आकारान्त **जो धातु** तदन्त अंग के आकार का लोप होता है—

खट्वा शस् यहाँ 'खट्वा' आकारान्त अंग है । इसकी भसंज्ञा भी है परन्तु इस अंग के अन्त में धातु नहीं है । अतः आकार का लोप न हुआ । पूर्व सवर्णदीर्घ हुआ । खट्वाः ।

मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः 6.4.141

पद.–मन्त्रेषु 7.3, आङि 7.1, आदेः 6.1, आत्मनः 6.1

अनु.—अंगस्य भस्य लोपः ।

अर्थ—वेद मन्त्र के विषय में 'आङ्' परे रहते 'आत्मन्' शब्द के आदि का (अर्थात् आकार का) लोप होता है ।

'आङ्' तृतीया एकवचन के लिए पूर्वाचार्यों की संज्ञा है । द्र०–न्यास टीका ।

उदा.—त्मना (ऋ० 7.7.1) यहाँ 'टा' विभक्ति में आकार का लोप हो गया । मन्त्रों में 'त्मन्या' रूप प्राप्त होता है । पदमंजरीकार के अनुसार यहाँ 'ङि' को 'या' आदेश हुआ है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्र० सप्तम्येकवचनस्य या शब्द-आदेशः (काशि० 6.4.141 पदम०)।

विशेष—1. 'मन्त्रेषु' अर्थात् **मन्त्र** के विषय में ही 'आत्मन्' के आदि का लोप होता है—

आत्मना-लोक में लोप नहीं होता है।

2. 'आङि' अर्थात् तृतीया एकवचन की विभक्ति **'आङ्' के परे रहते** ही आकार लोप होता है—

यदात्मनस्तन्नो वरिष्ठा यहाँ आङ् परे नहीं है। अतः आत्मन् के आदि का लोप न हुआ।

3. 'आङ्' विभक्ति से भिन्न विभक्ति के परे रहते भी 'आत्मन्' के आदि (आकार) का लोप होता है[1]—

त्मनम् (ऋ० 7.63.6)। त्मनि (ऋ० 4.29.4)। त्मन् (ऋ० 4.4.9)।

त्मन्यासमञ्जन् मह्यम् (ऋ० 10.110.10)

यहाँ 'ङि' परे रहते भी आकार का लोप हो गया है। इस विषय में समाधान प्रस्तुत करते हुए न्यासकार लिखते हैं कि 'मन्त्रेषु' पद में बहुवचन के निर्देश से सूचित होता है कि उक्त कार्य यथाविहित से अन्यत्र भी प्राप्त होता है। इस प्रकार न्यासकार के अनुसार बहुवचन निर्देश के द्वारा आचार्य पाणिनि को उक्त लोप कार्य व्यापक विधि वाला अभिप्रेत है।[2] इस विषय में महाभाष्य प्रमाण है[3]—

आहोस्विच्छब्दाधिक्यादर्थाधिक्यम्।

4. 'आतो धातोः' से 'आतः' पद का अनुवर्त्तन सहजलभ्य होने पर भी प्रकृतसूत्र में 'आदेः' पद का प्रयोग उत्तरार्थ किया गया है।[4]

प्रकृतसूत्र में 'आदेः' पद के ग्रहण का दूसरा प्रयोजन है कि 'आत्मन्' के आदि आकार का ही लोप है। यदि 'आतः' पद का अनुवर्त्तन किया जाता तो 'आत्मना' के अन्त्य आकार का लोप भी प्रसक्त होता।

ति विंशतेर्डिति 6.4.142

पद.—ति-लुप्तषष्ठ्यन्त रूपम्, विंशतेः 6.1, डिति 7.1

अनु.—अंगस्य भस्य लोपः।

अर्थ—डित् प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक 'विंशति' अंग के 'ति' का लोप होता है।

उदा.—(1) विंशत्या क्रीतः-विंशति ड्वुन् (विंशति-त्रिंशद्भ्यां०) -विंशति वुन्-विंश अक-विंशक सु-विंशकः।

(2) विंशतिरधिकाऽस्मिन्-विंशति ड (शदन्तविंशतेश्च)-विंश अ-विंश सु-विंशम्।

(3) विंशतेः पूरणः-विंशति डट्-विंश अ-विंश सु-विंशः (तस्य पूरणे डट्)।

विशेष—'डिति' अर्थात् **डित् परे रहते ही** 'ति' का लोप होता है—

विंशति टा-यहाँ डित् प्रत्यय परे नहीं है। अतः 'ति' का लोप न हुआ।

विंशत्या।

टेः 6.4.143

पद.—टेः 6.1

अनु.—भस्य अंगस्य डिति लोपः।

अर्थ—डित् परे रहते भसंज्ञक अंग की 'टि' का लोप होता है।

उदा.—(1) कतर स-कतर अद्ड् (अद्ड् डतरादिभ्यः-)-कतर अद् (अकः सवर्णे दीर्घः। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः) इसका बाध होकर टिलोप (टेः)-कतर् अद्-कतरद्,-त्। स्थानिवद्भाव से भसंज्ञा होती है।

नस्तद्धिते 6.4.144

पद.—नः 6.1, तद्धिते 7.1

अनु.—टेः लोपः अंगस्य भस्य।

अर्थ—तद्धित परे रहते नकारान्त भसंज्ञक अंग की 'टि' का लोप होता है।

उदा.—राज्ञः समीपम्-राजन् उप (अव्ययं विभक्तिसमीप० से समास, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्लुक्)-उपराजन् (उपसर्जन संज्ञा, पूर्वनिपात)-उपराजन् टच् (अनश्च से टच्। भसंज्ञा। अल्लोपोऽनः से प्राप्त अकारलोप का बाध)-उपराज् अ-उपराज (टिलोप)-उपराजम् (सु, नाऽव्ययीभावाद०, अमिपूर्वः)।

इसी प्रकार—

अग्निशर्मणोऽपत्यम्-अग्निशर्मन् इञ्-अग्नि शर्मन् इ-अग्निशर्म् इ-अग्निशर्मि (टिलोप)-आग्निशर्मिः (सु, अचो रहाभ्यां०)।

1. काशि० 6.4.141 (वा०)—आङोऽन्यत्राऽपि दृश्यते।
2. काशि० 6.4.141—(न्यास)।
3. महाभाष्य—1.1.44.67।
4. काशि० 6.4.141—(न्यास)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. 'नः' अर्थात् **नकारान्त** भसंज्ञक की 'टि' का लोप होता है—

सत्वतः अपत्यम्–सत्वत् अ (भसंज्ञा)–सात्वत् अ (आदि-वृद्धि)–सात्वतः (सु) नकारान्त अंग न होने से लोप न हुआ।

2. 'तद्धिते' अर्थात् **तद्धित प्रत्यय** परे रहते ही 'टि' का लोप होता है—

शर्मन् टा (भसंज्ञा) नकारान्त अंग 'शर्मन्' है परन्तु तद्धित परे नहीं है। अतः टिलोप न हुआ–शर्मणा।

3. निम्नलिखित शब्दों का टिलोप होता है[1]—

(क) सब्रह्मचारिण इमे–सब्रह्मचारिन् अण् (तस्येदम्)–साब्रह्मचारिन् अ (इनण्यनपत्ये से प्रकृतिभाव) इसका बाध होकर टिलोप–साब्रह्मचाराः (जस्)।

(ख) पीठसर्पिण इमे–पीठसर्पिन् अण्।
पैठसर्पिन् आदिवृद्धि।
पूर्ववत् प्रकृतिभाव।
पैठसर्प् अ जस् (टिलोप, जस्)। पैठसर्पाः।

(ग) कलापिना प्रोक्तम्–कलापिन् अण्।
कलाप् अ (पूर्ववत् आदिवृद्धि, प्रकृतिभाव, टिलोप)।
कालाप जस्–कालापाः।

(घ) कुथुमिन् अण्–कुथुम् अ–कुथुम जस्–कुथुमाः।

(ङ) तैतिलिन् अण्–तैतिलाः–पूर्ववत्।

(च) जाजलिन् अण्–जाजलाः।

(छ) लांगलिन् अण्–लांगलाः।

(ज) शिलालिन् अण्–शैलालाः।

(झ) शिखण्डिन् अण्–शैखण्डाः।

(ज) सूकरसद्मन् अण्–सौकरसद्माः।
'अन्' से प्रकृतिभाव प्राप्त था।

(झ) सुपर्वन् अण्–सौपर्वाः (पूर्ववत्)।

4. विकार अर्थ में 'अश्मन्' की 'टि' का लोप होता है[2]—

अश्मनो विकारः—अश्मन् अण्–आश्म् अ–आश्मः (सु) विकार से भिन्न अर्थ में 'आश्मन' होता है।

5. कोश अर्थ में 'चर्मन्' का टिलोप होता है[3]—

चार्मः कोशः
अन्यत्र–चार्मणः।

6. संकोच अर्थ में 'श्वन्' की 'टि' का लोप होता है[4]—

श्वन् अण्–शौवन् अ (ऐच् आगम)–शौव् अ–शौव सु (टि-लोप)–शौवः।
अन्यत्र–शौवनः।

7. सायम्प्रातिक आदि की साधुता के लिए अव्ययों की 'टि' का लोप होता है[5]—

(क) सायम्प्रातो भवः–सायम्प्रातर् ठञ् (कालाट् ठञ्)–सायम्प्रात् इक–सायम्प्रातिकः (सु)।

(ख) पुनः पुनः भवति–पुनर् पुनर् ठञ्–पौनर् पुनर् इक–पौनःपुनिकः (सु)।

(ग) बहिस् यञ् (बहिषष्टिलोपो यञ्च (वा०)–बाह् य–बाह्यः (सु)।

(घ) कुतः कुत आगतः–कुतस् कुतस् ठञ्–कौतस्कुतः।

अह्नष्टखोरेव 6.4.145

पद.—अह्नः 6.1, टखोः 7.2, एव–अव्य०।

अनु.—अंगस्य भस्य टेः लोपः तद्धिते।

अर्थ—'ट' अथवा 'ख' तद्धित प्रत्यय परे रहते ही 'अहन्' भसंज्ञक अंग का टिलोप होता है।

यह नियम सूत्र है।

उदा.—(1) द्वि अहन् ट–द्वि अह् अ–द्व्यह सु–द्व्यहः।

(2) त्रि अहन् ख (अह्नः खः क्रतौ–पा० 4.2.41 वा०)–त्रि अह् ईन त्र्यहीनः (सु)।

विशेष—समूह अर्थ में अहन् से 'ख' प्रत्यय होता है[6]—

यह नियमार्थ है। अतः अह्ना निर्वृत्तम्–आह्निकम् यहाँ टिलोप न हुआ।

ओर्गुणः 6.4.146

पद.—ओः 6.1, गुणः 1.1

अनु.—अंगस्य भस्य तद्धिते।

अर्थ—तद्धित परे रहते भसंज्ञक उवर्णान्त अंग को गुण होता है।

---

1. काशि० 6.4.144 (वा०)—नान्तस्य टिलोपे ....।
2. काशि० 6.4.144 (वा०)—अश्मनो विकार उप-संख्यानम्।
3. काशि० 6.4.144 (वा०)—चर्मणः ....।
4. काशि० 6.4.144 (वा०)—शुनः सङ्कोच ....।
5. काशि० 6.4.144 (वा०)—अव्ययानां च ....।
6. काशि० 6.4.145 (वा०)—अह्नः समूहे खो वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—बभ्रु य–बभ्रो य–बाभ्रो य–बाभ्रव्यः (सु)। शङ्कु य (उगवादिभ्यो यत्)–शङ्कव्यम्।

ढे लोपोऽकद्र्वाः 6.4.147

पद.—ढे 7.1, लोपः 1.1, अकद्र्वाः 6.1

अनु.—भस्य अंगस्य ओः तद्धिते।

अर्थ—'ढ' तद्धित परे रहते 'कद्रू' शब्द को छोड़कर शेष उवर्णान्त भसंज्ञक अंग का लोप होता है।

उदा.—कमण्डलु ढञ् (चतुष्पाद्भ्यो ढञ्)–कामण्डल् एय –कामण्डलेय सु–कामण्डलेयः।

जम्बु ढ–जाम्बेयः।

विशेष–कद्रू ढक्–काद्रू एय–काद्रो एय–काद्रवेय–काद्रवेयः। कद्रू शब्द का लोप न हुआ।

यस्येति च 6.4.148

पद.—यस्य 6.1, ईति 7.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य भस्य लोपः तद्धिते।

अर्थ—ईकार तथा तद्धित के परे रहते भसंज्ञक इवर्ण तथा अवर्ण का लोप होता है।

उदा.—(1) दाक्षि ङीष् (इतो मनुष्यजातेः)।
दाक्ष् ई–दाक्षी।
दाक्षी सु–दाक्षी।

(2) बलि ढक् (इतश्चाऽनिञः)।
बलि एय–बाल् एय।
बालेय सु–बालेयः।

(3) गौर ङीष् (षिद्गौरादिभ्यश्च)।
गौर ई–गौर् ई।
गौरी सु–गौरी।

(4) दक्ष इञ् (अत इञ्)।
दाक्ष इञ्–दाक्ष् इ।
दाक्षि सु–दाक्षिः।

विशेष—1. 'औङ्' के स्थान पर 'शी' आदेश की दशा में सूत्रोक्त इवर्ण का तथा अवर्ण का लोप नहीं होता है[1]—

जल औ–जल शी (नपुँसकाच्च)।
जल ई ('यस्येति च' का बाध हुआ)।
जले (गुण)।

2. इयङ् उवङ् की अपेक्षा लोप विप्रतिषेध से होता है[2]—

क) वत्सान् प्रीणाति–वत्सप्रीः।
अपत्य अर्थ में 'चतुष्पाद्भ्यो ढञ्' से ढञ् हुआ—
वत्सप्री ढञ्–वत्सप्री एय।

अब 'अचि श्नुधातु०' (पा० 6.4.77) से इयङ् तथा 'यस्येति च' (पा० 6.4.148) से ईकार लोप युगपत् प्राप्त होते हैं। परत्व के कारण ईकार लोप—

वात्सप्र् एय–वात्सप्रेयः (सु)।

ख) लेखाभ्रू ढञ् (शुभ्रादिभ्यश्च)।

पूर्ववत् उवङ् तथा उकारलोप की प्राप्ति–लैखाभ्र् एय–लैखाभ्रेयः (सु)।

सूर्यतिष्याऽगस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः 6.4.149

पद.–सूर्यतिष्य...मत्स्यानाम् 6.3, यः 6.1, उपधायाः 6.1

अनु.—अंगस्य भस्य तद्धिते ईति।

अर्थ—ईकार तथा तद्धित परे रहते भसंज्ञक अंग की उपधाभूत यकार का लोप होता है यदि वह यकार सूर्य, तिष्य, अगस्त्य तथा मत्स्य का हो।

उदा.—सूर्य ङीप्–सूर्य ई।
सूर्य् इ (यस्येति च)।

'असिद्धवत्राभात्' से अकारलोप असिद्ध है। अतः उपधा भूत 'य्' का लोप—

सूर्य् ई–सूर् ई–सौर् ई सु–सौरी।

सूर्य तथा अगस्त्य के उपधा भूत यकार का लोप 'छ' तथा 'ङी' में ही होता है[3]—

सूर्य छ–सौरीयः।

परन्तु सूर्यस्येदम्–सौर्यं चरु यहाँ अण् में यलोप न हुआ।

तिष्य अण्–तिष्य् अ।
तैष्य् अ–तैष् अ।
तैष सु–तैषम्।

---

1. महा० 6.4.148 (वा०)—यस्येत्यादौ श्यां प्रतिषेधः।
2. काशि० 6.4.148 (वा०)—इयङ् उवङ्भ्यां लोपो भवति विप्रतिषेधेन।
3. काशि० 6.4.149 (वा०)—सूर्याऽगस्त्ययोश्छे च ङ्यां च।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्र अर्थ में ही तिष्य तथा पुष्य शब्दों के उपधाभूत यकार का लोप होता है[1]—

अगस्त्य ङीप्–आगस्त्य् ई ।
आगस्त् ई–आगस्ती (सु) ।

आगस्त्यः यहाँ य लोप न हुआ ।

मत्स्य ङीष्–मत्स्य् ई । षिद्गौरा० ।
मत्स् ई–मत्सी (सु) ।

मत्स्य के उपधाभूत यकार का 'ङी' में ही लोप होता है[2]—मत्स्यस्येदम्–मात्स्यं मांसम् यहाँ यलोप न हुआ ।

विशेष—1. 'तस्' परे रहते 'अन्तिक' का कादिलोप तथा आद्युदात्त होता है[3]—

अन्तिक तस्–अन्ति तस्–अन्तितः ।

2. 'तम' परे रहते 'अन्तिक' शब्द के तादि अंश (अर्थात् तकार से लेकर अन्त तक) तथा कादि (अर्थात् ककार से लेकर अन्त तक) का लोप होता है[4]—

अन्तिक तम–अन् तम–अन्तमः
(तादि लोप हुआ) ।
अन्तिम तम–अन्ति तम–अन्तितमः
(कादि लोप हुआ)

3. 'य' परे रहते 'अन्तिक' का कादिलोप होता है[5]—

अन्तिक य–अन्तियः (सु) ।

हलस्तद्धितस्य 6.4.150

पद.—हलः 5.1, तद्धितस्य 6.1

अनु.—ईति, यः लोपः उपधायाः ।

अर्थ—हल् से उत्तर भसंज्ञक अंग के उपधाभूत तद्धित यकार का लोप होता है, ईकार परे रहते ।

उदा.—वत्स यञ्–वात्स्य (गर्गादिभ्यो यञ्)–वात्स्य (स्त्रियाम् । यञश्च)–वात्स्य ङीप्–वात्स्य् ई (यस्येति च)–वात्स् ई (अकार लोप के स्थानिवद्भाव के कारण उपधाभूत यकार का लोप हुआ है)–वात्सी सु–वात्सी ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'हलः' अर्थात् **'हल्' से उत्तर** का ही लोप होता है—

कारिका ढक्–कारिकेय ङीप् (स्त्रीत्व में) । कारिकेय् ई (यस्येति च) ।

कारिकेयी सु–कारिकेयी ।

चूँकि यकार हल् से उत्तर नहीं है । अतः उपधाभूत यकार का लोप न हुआ ।

2. 'तद्धितस्य' अर्थात् **तद्धित** यकार का ही लोप होता है—वैद्य ङीप्–वैद्यी ।

'यस्येति च' से अकार लोप, अकारलोप के असिद्ध होने से यकार की उपधा संज्ञा । इससे परे ईकार है तथा यह यकार हल् (द्) से परे भी है परन्तु यकार तद्धित का नहीं है । अतः लोप न हुआ ।

आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति 6.4.151

पद.—आपत्यस्य 6.1, च–अव्य०, तद्धिते 7.1, अनाति 7.1

अनु.—भस्य अंगस्य हलः यः लोपः ।

अर्थ—हल् से उत्तर भसंज्ञक अंग के अपत्य सम्बन्धी यकार का लोप होता है यदि आकारादि तद्धित परे न हो ।

उदा.—गर्ग यञ्–गार्ग्यः ।
गार्ग्य वुञ् (गोत्रोक्षोष्ट्रो०)
गार्ग्य् अक (यस्येति च) ।
गार्ग् अक सु–गार्गकम् ।

अपत्य सम्बन्धी 'य' का लोप हुआ ।

विशेष—1. 'आपत्यस्य' अर्थात् **अपत्य सम्बन्धी** जो यकार उसका लोप होता है—

काम्पिल्य वुञ् (धन्वयोपधाद् वुञ्) काम्पिल्य् अक

चूँकि यकार अपत्यसम्बन्धी नहीं है । अतः हल् से उत्तर होने पर भी इसका लोप न हुआ—

काम्पिल्यकः ।

2. 'अनाति' अर्थात् **आकारादि** तद्धित परे रहते यकार लोप नहीं होता है—

गार्ग्यस्य गोत्राऽपत्यम्—
गार्ग्य फक्–गार्ग्य आयन (यञञोश्च) आकारादि तद्धित परे

1. वही (वा०) तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि ।
2. वही (वा०) मत्स्यस्य ङ्यामिति वक्तव्यम् ।
3. वही (वा०) अन्तिकस्य तसि कादिलोप आद्युदात्तं च ।
4. वही (वा०) तमे तादेश्च ।
5. काशि० 6.4.149 (वा०) अन्तिकस्य तसि कादिलोप आद्युदात्तं च ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः हल् (ग्) से उत्तर (य्) का लोप न हुआ—

गार्ग्य् आयन–गार्ग्यायन–गार्ग्यायणः (सु)।

क्यच्व्योश्च 6.4.152

पद.—क्यच्व्योः 7.2, च–अव्य०।

अनु.—आपत्यस्य हलः लोपः अंगस्य यः।

अर्थ—हल् से उत्तर अंग के अपत्य सम्बन्धी यकार का लोप होता है क्य अथवा च्वि परे रहते।

उदा.—(1) गार्ग्यम् आत्मन इच्छति–गार्ग्य क्यच् (सुप आत्मनः क्यच्)—

गार्ग्य य–गार्ग्य् य–
गार्ग् य–गार्गीयति
(क्यचि च। लटादि)।
गार्गायते (क्यङ् में)। अकृत्सार्वधातु०।

(2) गार्ग्य च्वि भू (अभूततद्भावे०)–गार्ग्य–गार्ग (यलोप)।

गार्गीभूतः (अस्य च्वौ)।

बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् 6.4.153

पद.—बिल्वकादिभ्यः 5.3, छस्य 6.1, लुक् 1.1

अनु.—अंगस्य भस्य तद्धिते।

अर्थ—तद्धित प्रत्यय परे रहते बिल्वकादि शब्दों से उत्तर भसंज्ञक 'छ' का लुक् होता है।

उदा.—बिल्वा यस्यां सन्ति–बिल्वकीया (छ)। तस्यां भवाः बैल्वकाः

'नडादीनां कुक् च' से कुक् आगम।

'तत्र भवः' से अण्।

विशेष—'क्रुञ्चा' शब्द को ह्रस्व भी होता है। द्र० काशि० 6.4.153 (ग०सू०)।

क्रुञ्चकीया, क्रौञ्चकाः।

तुरिष्ठेमेयस्सु 6.4.154

पद.—तुः 6.1, इष्ठेमेयस्सु 7.3

अनु.—अंगस्य भस्य लोपः।

अर्थ—इष्ठन्, इमनिच् अथवा ईयसुन् परे रहते 'तृ' का लोप होता है।

'इष्ठ' के द्वारा 'इष्ठन्' का, 'इम' के द्वारा 'इमनिच्' का तथा 'ईयस्' के द्वारा 'ईयसुन्' का ग्रहण होता है।

उदा.—कर्तृ इष्ठन्–कर् इष्ठ–करिष्ठः।

दोग्धृ ईयसुन्–दोहीयस् ङीप्–दोहीयसी।

टेः 6.4.155

पद.—टेः 6.1

अनु.—अंगस्य लोपः इष्ठेमेयस्सु।

अर्थ—इष्ठन्, इमनिच् तथा ईयसुन् परे रहते भसंज्ञक 'टि' का लोप होता है।

उदा.—पटु इष्ठन्–पट् इष्ठ सु–पटिष्ठः।

पटु इमनिच्–पटिमन् सु–पटिमा।

पटु ईयसुन्–पटीयस् सु–पटीयान्।

विशेष—णि परे रहते प्रातिपदिक को इष्ठवद्भाव होता है[1]—

इष्ठवद्भाव का तात्पर्य है कि इष्ठन् के परे रहते जो कार्य होते हैं, वे सभी यहाँ भी होते हैं। महाभाष्य में इन कार्यों का परिगणन किया गया है—

पुँवद्भावरभावटिलोपयणादिपरार्थम्

अर्थात्—

(क) पुँवद्भाव होता है—एनीम् आचष्टे यहाँ 'एनी' से 'णिच्' (तत्करोति तदाचष्टे) हुआ। इष्ठवद्भाव होकर पुँवद्भाव हुआ (तसिलादिष्वा०) एतयति।

(ख) रभाव होता है—पृथुम् आचष्टे यहाँ पूर्ववत् 'णिच्' हुआ—

पृथु णिच् (इष्ठवद्भाव)–प्रथयति ('र ऋतो हलादेर्लघोः' से रभाव)।

(ग) टिलोप होता है—पटुम् आचष्टे—यहाँ णिच् हुआ तथा इष्ठवद्भाव हुआ।

पटु णिच्
पट् णिच्–पटयति।

(घ) यणादिपर होता है—स्थूलम् आचष्टे यहाँ स्थूल णिच् होकर इष्ठवद्भाव हुआ। 'स्थूलदूरयुवह्रस्व०' के द्वारा यणादि पर (ल्) का लोप हुआ—

स्थू णिच्

---

1. काशि० 6.4.155 (वा०) णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य कार्यं भवतीति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब पूर्व का गुण हुआ—स्थवयति ।

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः 6.4.156

पद.—स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणाम् 6.3, यणादिपरम् 1.1, पूर्वस्य 6.1, च-अव्य०, गुणः 1.1

अनु.—इष्ठेमेयस्सु ।

अर्थ—इष्ठन्, इमनिच् या ईयसुन् परे रहते स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व, क्षिप्र तथा क्षुद्र—इनके यणादिपर (अर्थात् यण्) का लोप होता है तथा उससे पूर्व को गुणादेश होता है ।

उदा.—(1) स्थूल इष्ठन्-
स्थू इष्ठन् (यणादि का लोप)
स्थो इष्ठ (पूर्व को गुण)
स्थविष्ठ सु-स्थविष्ठः । स्थवीयान् (ईयसुन्) ।

(2) दूर इष्ठन्-
दो इष्ठ-दविष्ठः (सु) ।
दूर ईयसुन्-दवीयान् ।

(3) युवन् इष्ठन्-
युव इष्ठ-यो इष्ठ-यविष्ठः (सु) ।
यविष्ठवत् (भट्टि० 2.44)
युवन् ईयसुन्-यवीयान् ।

(4) ह्रस्व इष्ठन्-
ह्रसिष्ठ सु-
ह्रसिष्ठः ।
ह्रस्व ईयसुन्-ह्रसीयान् ।
ह्रस्व इमनिच्-ह्रसिमा (सु) ।

(5) क्षिप्र इष्ठन्-
क्षेप् इष्ठ-क्षेपिष्ठः ।
क्षिप्र ईयसुन्-क्षेपीयान् ।
क्षिप्र इमनिच्-क्षेपिमा ।

(6) क्षुद्र इष्ठन्-
क्षोदिष्ठः ।
क्षुद्र ईयसुन्-
क्षोदीयान् ।
क्षुद्र इमनिच्-
क्षोदिमा ।

ह्रस्व, क्षिप्र तथा क्षुद्र शब्दों का पृथ्वादिगण में पाठ है । अतः इनसे 'पृथ्वादिभ्य इमनिच्' से 'इमनिच्' हो जाता है ।

'परम्' का तात्पर्य है कि पूर्ववर्त्ती यण् का लोप न हो । परवर्त्ती जो यणादि शब्द उसी का लोप होता है ।

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः 6.4.157

पद.—प्रियस्थिरस्फिरो .... वृन्दारकाणाम् 6.3, प्रस्थस्फ ... वृन्दाः 1.3

अनु.—भस्य अंगस्य इष्ठेमेयस्सु ।

अर्थ—इष्ठन्, इमनिच् या ईयसुन् परे रहते प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ तथा वृन्दारक-इन भसंज्ञक अंगों के स्थान पर यथासंख्य करके प्र, स्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि तथा वृन्द आदेश होते हैं ।

चूँकि प्रिय, उरु, गुरु, बहुल तथा दीर्घ शब्दों का पाठ पृथ्वादिगण में है । अतः इनसे ही इमनिच् होगा, अन्यों से नहीं ।

उदा.—(1) प्रिय इष्ठन्-
प्र इष्ठ-प्रेष्ठः (भट्टि० 2.45)
प्रिय इमनिच्-
प्र इमन्-प्रेमन् सु-प्रेमा ।
प्रिय ईयसुन्-
प्र ईयस्-प्रेयस् सु-प्रेयान् ।

(2) स्थिर इष्ठन्-
स्थ इष्ठ-स्थेष्ठ सु-स्थेष्ठः ।
स्थिर ईयसुन् -
स्थ ईयस्-स्थेयस् सु-स्थेयान् ।

(3) स्फिर इष्ठन्
स्फ इष्ठ-स्फेष्ठ सु-स्फेष्ठः ।
स्फिर ईयसुन्
स्फ ईयस्-स्फेयस्-स्फेयान् (सु) ।

(4) उरु इष्ठन्-
वर् इष्ठ-वरिष्ठः (सु) । भट्टि० 2.45 ।
उरु इमनिच्
वर इमन् सु-वरिमा ।
उरु ईयसुन्-
वर् ईयस् सु-वरीयान् ।

(5) बहुल इष्ठन्-
बंहि इष्ठ-बंहिष्ठः (टेः इति टिलोपः भट्टि०2.45)
बहुल इमनिच्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंहि इमन् सु–बंहिमा ।
बहुल ईयसुन् –
बंहि ईयस् सु–बंहीयान् ।

(6) गुरु इष्ठन्–
गर् इष्ठ सु–गरिष्ठः (भट्टि० 2.45) ।
गुरु इमनिच्
गर् इमन् सु–गरिमा ।
गुरु ईयसुन्–
गर ईयस् सु–गरीयान् (मनु० 2.136) ।

(7) वृद्ध इष्ठन्–
वर्षि इष्ठ सु–वर्षिष्ठः ।
वृद्ध ईयसुन्–
वर्षि ईयस् सु–वर्षीयान् ।

(8) तृप्र इष्ठन् –
त्रप् इष्ठ सु–त्रपिष्ठः ।
तृप ईयसुन्
त्रप् ईयस् सु–त्रपीयान् ।

(9) दीर्घ इष्ठन्–
द्राघि इष्ठ सु–द्राघिष्ठः ।
दीर्घ इमनिच्–
द्राघि इमन् सु–द्राघिमा ।

द्राघिमवन्ति (भट्टि० 3.42) द्राघिमन् मतुप् शि–द्राघिमवन्ति ।

दीर्घ ईयसुन् –
द्राघि ईयस्–द्राघीयान्
दीर्घ णिच् (णाविष्ठ० वा०)
इष्ठवद्भाव–
द्राघयन्ति (भट्टि० 18.33) ।

(10) वृन्दारक इष्ठन्–
वृन्द इष्ठ–वृन्दिष्ठः (सु) भट्टि० 2.45
वृन्दारक ईयसुन्
वृन्द ईयस्–वृन्दीयान् । सु ।

बहोर्लोपो भू च बहोः 6.4.158

पद.—बहोः 5.1, लोपः 1.1, भू–लुप्तप्रथमान्तरूपम् च–अव्य०, बहोः 6.1

अनु.—भस्य अंगस्य इष्ठेमेयस्सु ।

अर्थ—'बहु' शब्द से उत्तर इष्ठन्, इमनिच् अथवा ईयसुन् का लोप होता है और 'बहु' के स्थान पर 'भू' आदेश होता है । अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है ।

पूर्वशास्त्र से अनुवृत्त 'इष्ठेमेयस्सु' पद का विभक्ति वि-परिणाम होकर षष्ठ्यन्त 'इष्ठेमेयसाम्' बन जाता है ।

उदा.—(1) बहु इष्ठन्–भूयिष्ठः (अगले सूत्र पर देखें)

(2) बहु इमनिच्–
भू मन्–भूमा (सु) ।
इसी प्रकार—भूयानं कुर्वन्ति–भूमयन्ति । (भट्टि० 18.25)।

(3) बहु ईयसुन्–
भू यस्–भूयान् (सु)

'आदेः परस्य' परिभाषा के द्वारा इमनिच् व ईयसुन् के आदि वर्ण (इ,ई) का लोप होता है ।

इष्ठस्य यिट् च 6.4.159

पद.—इष्ठस्य 6.1, यिट् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—भस्य अंगस्य बहोः भू बहोः ।

अर्थ—'बहु' शब्द से उत्तर 'इष्ठन्' को 'यिट्' का आगम होता है तथा बहु शब्द को 'भू' आदेश होता है । काशिकाकार 'यिट्' को लोप का अपवाद स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार यिट् के इकार व टकार दोनों की इत्संज्ञा है । इस प्रकार 'इष्ठन्' के लोप की आवश्यकता नहीं है[1]—

भू यिट् इष्ठन्–भू य् इष्ठ–भूयिष्ठः

परन्तु पदमंजरीकार 'यिट्' को लोप का अपवाद मानने के साथ-साथ आगम व लोप—दोनों को भी स्वीकार करते हैं ।[2] उनके मत से यदि 'लोप' का अनुवर्त्तन किया जाये तो 'यिट्' के इकार को उच्चारणार्थ न माना जाये ।

बहु इष्ठन्–
भू यिट् ष्ठन्–भूयिष्ठ–
भूयिष्ठः ।

महाभाष्यकार को दोनों पक्ष अभिमत हैं ।

यिट् के इकार व टकार की इत्संज्ञा है ।

उदा.—बहु इष्ठन्–

1. काशि० 6.4.159 (वा०)—लोपापवादो यिडागमः ।
2. काशि० (पद०) 6.4.159—यदि तु लोपोऽप्यनुकृष्य विधीयते तदेकारो नोच्चारणार्थः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू इष्ठ-भू यिट् इष्ठ-भूयिष्ठः ।

ज्यादादीयसः 6.4.160

पद.—ज्यात् 5.1, आत् 1.1, ईयसः 6.1

अनु.—भस्य अंगस्य ।

अर्थ—भसंज्ञक अंग 'ज्य' से उत्तर 'ईयस्' को आकार आदेश होता है ।

'ईयस्' के द्वारा ईयसुन् का ग्रहण होता है । 'आदेः परस्यः' परिभाषा के द्वारा यह आकार आदेश 'ईयसुन्' के आदि वर्ण (आ) के स्थान पर होता है ।

उदा.—प्रशस्य ईयसुन्-
ज्य ईयस् (ज्य च) ।

ज्य आयस् इस दशा में 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ । इसे बाधकर 'टेः' के द्वारा टिलोप प्राप्त हुआ । इसको बाधकर 'प्रकृत्यैकाच्' के द्वारा प्रकृतिभाव प्राप्त हुआ । इसे बाधकर 'अकः सवर्णे दीर्घः' के द्वारा दीर्घ एकादेश होता है—ज्यायान् (सु) ।

र ऋतो हलादेर्लघोः 6.4.161

पद.—रः 1.1, ऋतः 6.1, हलादेः 6.1, लघोः 6.1

अनु.—अंगस्य भस्य इष्ठेमेयस्सु ।

अर्थ—इष्ठन्, इमनिच् या ईयसुन् परे रहते हलादि भसंज्ञक अंग के लघु ऋकार के स्थान पर 'र' (सस्वर रेफ) आदेश होता है । काशिका में ऐसे शब्दों को श्लोकबद्ध किया गया है । द्र०—

परिगणनं कर्त्तव्यम्—

पृथुं मृदुं भृशं चैव, कृशं च दृढमेव च ।
परिपूर्वं वृढं चैव, षडेतान् रविधौ स्मरेत् ॥

उदा.—(1) पृथु इष्ठन्
प्रथु इष्ठ-प्रथ् इष्ठ (टेः)—
प्रथिष्ठः (सु) ।
पृथु इमनिच्-
प्रथु इमन्-प्रथ् इमन्-प्रथिमा (सु)।
पृथु ईयसुन्-
प्रथ् ईयस् सु-प्रथीयान् ।

(2) मृदु इष्ठन्-
म्रदु इष्ठ-म्रद् इष्ठ-
म्रदिष्ठः (सु) ।
मृदु इमनिच्-
मृदु इमन्-म्रद् इमन्-
म्रदिमा (सु) ।
मृदु ईयस्-म्रद् ईयस्-
मद्रीयान् (सु) ।

(3) भृश इष्ठन्-भ्रशिष्ठः ।
भृश इमनिच्-भ्रशिमा ।
भृश ईयसुन्-भ्रशीयान् ।

(4) कृश इष्ठन्-
क्रश इष्ठन्-क्रश् इष्ठ-क्रशिष्ठः ।
कृश इमनिच्-
क्रश इमन्-क्रशिमा ।
क्रश ईयसुन्-
क्रश ईयस्-क्रशीयान् ।

(5) दृढ इष्ठन्-
द्रढ इष्ठ-द्रढ् इष्ठ-द्रढिष्ठः ।
दृढ इमनिच्-
द्रढ इमन्-द्रढिमा ।
दृढ ईयसुन्-
द्रढ् ईयस्-द्रढीयान् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'ऋतः' अर्थात् **ऋकार के** स्थान पर ही 'र' आदेश होता है—पटु इष्ठन्-

यहाँ हलादि अंग 'पटु' है परन्तु इसमें ऋकार नहीं है अपितु अकार है । अतः 'र' आदेश न हुआ । पटिष्ठः ।

2. 'हलादेः' अर्थात् **हलादि अंग** के ऋकार के स्थान पर 'र' आदेश होता है—

ऋजु इष्ठन्-

'ऋजु' अजादि अंग है । अतः इसके ऋकार को 'र' आदेश न हुआ—

ऋजिष्ठः ।

3. 'लघोः' अर्थात् **लघुसंज्ञक** ऋकार के स्थान पर ही 'र' आदेश होता है—

कृष्ण इष्ठन्-

'कृष्ण' अंग हलादि है परन्तु इसका ऋकार 'संयोगे गुरु' से गुरुसंज्ञक है । अतः 'र' आदेश न हुआ—

कृष्णिष्ठः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाषर्जोश्छन्दसि 6.4.162

पद.—विभाषा 1.1, ऋजोः 6.1, छन्दसि 7.1

अनु.—भस्य अंगस्य ऋतः रः इष्ठेमेयस्सु ।

अर्थ—वेद के विषय में इष्ठन्, इमनिच् या ईयसुन् प्रत्यय परे रहते 'ऋजु' अंग के ऋकार के स्थान पर 'र' आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.—ऋजु इष्ठन्–रजिष्ठम् (ऋ० 1.91.1) ।
रजिष्ठम् (मा०सं० 19.52) ।
रजिष्ठैः (ऋ० 1.79.3, तै०ब्रा० 3.6.11.3) ।

पक्ष में—ऋजिष्ठः ।
ऋजीयः (शौ०सं० 5.14.12, 8.4.12) ।
ऋजीयसी (पै०सं० 15.23.10) ।

प्रकृत्यैकाच् 6.4.163

पद.—प्रकृत्या 3.1, एकाच् 1.1

अनु.—भस्य अंगस्य इष्ठेमेयस्सु ।

अर्थ—इष्ठन्, इमनिच् अथवा ईयसुन् प्रत्यय परे रहते एक अच् वाले भसंज्ञक अंग को प्रकृतिभाव होता है ।

उदा.—स्वच् विनि (अस्मायामेधा०)—स्वग्विन् इष्ठन् (विन्मतोर्लुक्)–स्वज् इष्ठ–स्वजिष्ठ ('टेः' से टिलोप नहीं होता है)–स्वजिष्ठः ।

इसी प्रकार–(1) स्वुच् मतुप् हुआ । इष्ठन् में 'मतुप्' का लुक् हुआ । स्वुचिष्ठः ।

(2) स्वज् ईयसुन्–स्वजीयान् ।

(3) स्वज् णिच् (तत्करोति तदाचष्टे) इष्ठवद्भाव हुआ (णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य कार्यं भवतीति)–स्वजयति ।

विशेष—अक प्रत्यय परे रहते राजन्य, मनुष्य तथा युवन् को प्रकृतिभाव होता है[1]—

राजन्यानां समूहः–राजन्य वुञ् (गोत्रोक्षोष्टो०)–राजन्यक सु–राजन्यकम् । मनुष्याणां समूहः–मानुष्यकम् ।

यूनो भावः–यौवनिकाः ।

मनोज्ञादि गण में होने से 'वुञ्' हुआ ।

यह सूत्र अल्लोपोऽनः, नस्तद्धिते, यस्येति च तथा टेः का अपवाद है ।

1. काशि० 6.4.163 (वा०) प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवान ।

इनण्यनपत्ये 6.4.164

पद.—इन् 1.1, अणि 7.1, अनपत्ये 7.1

अनु.—भस्य अंगस्य प्रकृत्या ।

अर्थ—अपत्यार्थ से भिन्न अर्थ में विहित अण् के परे रहते 'इन्' को प्रकृतिभाव होता है ।

उदा.—(1) कूट (धातु संज्ञा, अभिविधौ भाव इनुण्) कूट इनुण्–सम् कूटिन् (कुगतिप्रादयः)–सम् कूटिन् (प्राति० संज्ञा, अणिनुणः)–सम् कूटिन् अण् ('नस्तद्धिते' से प्राप्त टिलोप का निषेध–इनण्यनपत्ये)–साम् कूटिन् अ (तद्धितेष्वचाम०)–सांकूटिनम् (मोऽनुस्वारः । सु) ।

(2) गर्भिन् अण् (प्रकृतिभाव)–गार्भिन् अ–गार्भिण सु–गार्भिणम् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अणि' अर्थात् **अण् परे** रहते ही प्रकृतिभाव होता है—दण्डिनां समूहः दाण्डम् ।

यहाँ 'अनुदात्तादे०' के द्वारा अञ् हुआ । अतः प्रकृतिभाव न हुआ । 'नस्तद्धिते' से टिलोप हुआ ।

2. 'अनपत्ये' अर्थात् **अपत्य अर्थ से भिन्न** अण् परे रहते ही प्रकृतिभाव होता है—

मेधाविनोऽपत्यम्–

मेधाविन् अण्—यहाँ अपत्य अर्थ होने के कारण प्रकृतिभाव न हुआ ।

मेधाव् अण् (टिलोप) ।
मैधावः (सु) ।

गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च 6.4.165

पद.—गाथिविदथि .... पणिनः 1.3 च–अव्य० ।

अनु.—इन् अणि प्रकृत्या भस्य अंगस्य ।

अर्थ—अण् परे रहते गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन् तथा पणिन् अंगों को 'इन्' को प्रकतिभाव होता है ।

इन सभी शब्दों में मत्वर्थीय प्रत्यय 'इन्' (पा० 5.2.115) हुआ है ।

उदा.—(1) गाथिनोऽपत्यम्–गाथिन् अण् (प्रकृतिभाव होकर)–गाथिन सु–गाथिनः ।

(2) विदथिन् अण्–वैदथिनः ।

(3) केशिन् अण्–कैशिनः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) गणिन् अण्–गाणिनः ।

(5) पणिन अण्–पाणिनः ।

संयोगादिश्च 6.4.166

पद.—संयोगादिः 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—अणि इन् प्रकृत्या ।

अर्थ—संयोग है आदि में जिसके ऐसे 'इन्' को प्रकृतिभाव होता है 'अण्' परे रहते ।

उदा.—मद्रिणोऽपत्यम्–

मद्रिन् अण्–माद्रिणः (सु) ।

'इन्' से पूर्व संयोग (द् र्) है ।

इसी प्रकार—

वघ्रिन् अण्–वाघ्रिणः ।

अन् 6.4.167

पद.—अन् 1.1

अनु.—भस्य अंगस्य प्रकृत्या अणि ।

अर्थ—अण् परे रहते भसंज्ञक 'अन्' अंग को प्रकृतिभाव होता है ।

उदा.—राजोऽपत्यम् —

राजन् अण्–राजन सु–राजनः ।

'नस्तद्धिते' के द्वारा प्राप्त टिलोप का अपवाद है ।

इसी प्रकार—

सामन् अण्–सामनः ।

विमन् अण्–वैमनः ।

सुत्वन् अण्–सौत्वनः ।

जित्वन् अण्–जैत्वनः ।

'सुयजो०' के द्वारा 'ङ्वनिप्' प्रत्यय होता है ।

'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से 'क्वनिप्' होता है ।

ये चाऽभावकर्मणोः 6.4.168

पद.—ये 7.1, च–अव्य०, अभावकर्मणोः 7.2

अनु.—भस्य अंगस्य प्रकृत्या अन् तद्धिते ।

अर्थ—यकारादि तद्धित के परे रहते 'अन्' को प्रकृतिभाव होता है परन्तु भाव या कर्म अर्थ में विहित तद्धित परे रहते नहीं होता है । यकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—(1) राज्ञोऽपत्यं जातिः—

'राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्' तथा 'राजश्वशुराद् यत्' से यत् हुआ—

राजन् यत् अब भसंज्ञा होकर टिलोप (नस्तद्धिते) प्राप्त हुआ—

प्रकृतसूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव–राजन्य सु–राजन्यः (भट्टि० 2.35)

(2) साम सु साधुः–सामन्यः (पूर्ववत् भट्टि० 4.9) ।

इसी प्रकार–वेमन्यः

कर्मणि साधुः–कर्मण्यः ।

'तत्र साधुः' से सर्वत्र 'यत्' हुआ है ।

विशेष—'अभावकर्मणोः' अर्थात् **भाव तथा कर्म अर्थ** से अतिरिक्त अर्थ में विहित तद्धित के परे रहते प्रकृतिभाव होता है—

राज्ञः कर्म–राजन् यक् (पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्)—यहाँ यकारादि तद्धित प्रत्यय परे है । अंग के अन्त में 'अन्' है परन्तु प्रत्यय कर्म अर्थ में है । अतः प्रकृतिभाव न हुआ—

राजन् य–राज् य (नस्तद्धिते)–राज्य सु–राज्यम् ।

इसी प्रकार–राज्ञो भावः राज्यम् ।

आत्माध्वानौ खे 6.4.169

पद.—आत्माध्वानौ 1.2, खे 7.1

अनु.—भस्य अंगस्य प्रकृत्या ।

अर्थ—'ख' प्रत्यय परे रहते 'आत्मन्' तथा 'अध्वन्' शब्द को प्रकृतिभाव होता है ।

उदा.—(1) आत्मने हितः—

आत्मन् ख (आत्मन् विश्वजन०)–आत्मन् ईन (प्रकृतिभाव)–आत्मनीनः ।

(2) अध्वानम् अलङ्गामी–

अध्वन् ख (अध्वनो यत् खौ)–

प्रकृतिभाव होकर—

अध्वनीनः (सु) । भट्टि० 2.49) ।

विशेष—'खे' अर्थात् **'ख'** परे रहते ही प्रकृतिभाव होता है—

आत्मानम् आत्मानं प्रति–प्रत्यात्मम् यहाँ 'अनश्च' के द्वारा टच् होता है—प्रति आत्मन् टच्–प्रत्यात्म् अ सु–प्रत्यात्मम् ।

यहाँ प्रकृतिभाव न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार प्रगतम् अध्वानम्–प्रध्वन् अच् (उपसर्गादध्वनः) –प्र अध्व् अ सु–प्राध्वम् । टिलोप हुआ ।

न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः 6.4.170

पद.—न-अव्य०, मपूर्वः 1.1, अपत्ये 7.1, अवर्मणः 6.1

अनु.—भस्य अंगस्य अन् प्रकृत्या अणि ।

अर्थ—अपत्य अर्थ में वर्त्तमान 'अण्' के परे रहते मकार है पूर्व में जिसके ऐसे 'अन्' को प्रकृतिभाव नहीं होता है परन्तु 'वर्मन्' के 'अन्' को होता है ।

उदा.—सुषाम्णोऽपत्यम्–

सुषामन् अण् ('अन्' से प्राप्त प्रकृतिभाव का निषेध हुआ)–सुषाम् अ–सौषाम (नस्तद्धिते)–सौषामः (सु) ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अवर्मणः' अर्थात् **'वर्मन्'** के **'अन्'** को प्रकृतिभाव का निषेध **नहीं** होता है—

वर्मन् अण्–वार्मणः । प्रकृतिभाव हुआ ।

चक्रवर्मन् अण्–चाक्रवर्मणः ।

2. 'मपूर्वः' अर्थात् **मकार है पूर्व में जिसके** ऐसे 'अन्' को प्रकृतिभाव का निषेध होता है—

सुत्वन् अण् यहाँ 'अण्' परे है, 'अन्' भी है परन्तु 'अन्' से पूर्व मकार नहीं है । अतः प्रकृतिभाव का निषेध न हुआ । सौत्वनः ।

3. 'अपत्ये' अर्थात् **अपत्य अर्थ में** ही अण् परे रहते प्रकृतिभाव का निषेध होता है—

चर्मणा परिवृत्तो रथः—

चर्मन् अण् यहाँ 'अण्' परे है, 'चर्मन्' के 'अन्' से पूर्व मकार है परन्तु 'अण्' अपत्य अर्थ में नहीं है । अतः प्रकृतिभाव का निषेध न हुआ ।

चार्मणः ।

ब्राह्मोऽजातौ 6.4.171

पद.—ब्राह्मः 1.1, अजातौ 7.1

अनु.—अपत्ये ।

अर्थ—जाति अर्थ को छोड़कर अपत्य में 'ब्राह्म' शब्द में टिलोप निपातन किया जाता है ।

उदा.—ब्रह्मणोऽपत्यम्—

ब्राह्मणः यहाँ अपत्यार्थक जाति को कहने में टिलोप न हुआ ।

कार्म्मस्ताच्छील्ये 6.4.172

पद.—कार्म्मः 1.1, ताच्छील्ये 7.1

अनु.—अंगस्य भस्य ।

अर्थ—ताच्छील्यार्थक 'ण' परे रहते 'कार्म्म' शब्द में टिलोप निपातन किया जाता है ।

उदा.—कर्मन् ण (छत्रादिभ्यो णः)–कर्म् अ–कार्म् अ–कार्म्म (अचो रहाभ्यां—) कार्म्मः (सु) ।

औक्षमनपत्ये 6.4.173

पद.—औक्षम् 1.1, अनपत्ये 7.1

अनु.—भस्य अंगस्य ।

अर्थ—अनपत्यार्थक अण् परे रहते 'औक्ष' में टिलोप निपातन किया जाता है ।

उदा.—उक्षन् अण् (तस्येदम्)–उक्ष् अ–औक्ष सु–औक्षम् ।

विशेष—'अनपत्ये' अर्थात् **'अपत्य'** अर्थ में टिलोप नहीं होता है—उक्ष्णोऽपत्यम्–

उक्षन् अण्–उक्ष् न् अ (षपूर्वहन्राज्ञामणि)–औक्ष्ण सु–औक्ष्णः ।

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेय-वाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाक-मैत्रेयहिरण्मयानि 6.4.174

पद.—दाण्डिनायन ... हिरण्मयानि 1.3

अर्थ—दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वाशिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय तथा हिरण्मय—ये शब्द निपातनसिद्ध हैं ।

उदा.—(1) दण्डिन् फक् (नडादिभ्यः फक्) —दण्डिन् आयन ('नस्तद्धिते' से प्राप्त टिलोप का निपातन से निषेध)–दण्डिन् आयन सु–दाण्डिनायनः ।

(2) हस्तिन् फक्–हास्तिनायनः (पूर्ववत्) ।

(3) अथर्वन् ठक् (वसन्तादिभ्यष्ठक्) यहाँ प्रकृतिभाव निपातन से होता है—

आथर्वन् इक—आथर्वणिकः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) जिह्माशिनोऽपत्यम्–

जिह्माशिन् ढक् (शुभ्रादिभ्यश्च) जैह्माशिन् एय (पूर्ववत् प्रकृतिभाव)–जैह्माशिनेयः (सु)।

(5) वाशिनोऽपत्यम्—वाशिन् फिञ् (उदीचां वृद्धाद०)–वाशिनायनि सु (प्रकृति-भाव का निपातन) वाशिनायनिः।

(6) भ्रूणहन् ष्यञ् (भाव अर्थ में) भ्रौणहन् य (तकारान्ता-देश का निपातन) भ्रौणहत्यः (सु)।

(7) धीवन् ष्यञ्–धैवत्यम् (पूर्ववत्)।

(8) सरयू अण्–(भव अर्थ में)–सरव अ ('यू' के स्थान पर 'व')–सारवम् (सु)।

(9) इक्ष्वाकु अञ् (जनपदशब्दा०)–ऐक्ष्वाक् अ–ऐक्ष्वाकः (उकारलोप का निपातन)।

(10) मित्रयु ढञ् (गृष्ट्यादिभ्यश्च)—यहाँ 'केकयमित्रयु०' के द्वारा प्राप्त 'इय्' को बाधकर निपातन से 'यु' का लोप हुआ। मित्र एय–मैत्रेयः।

(11) हिरण्य मयट् (विकार अर्थ में) हिरण् मय (यादि का निपातन से लोप) हिरण्मय सु–हिरण्मयम्। (भट्टि० 2.47)।

ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि 6.4.175

पद.—ऋत्व्यवास्त्व्य ... हिरण्ययानि 1.3, छन्दसि 7.1

अर्थ—वेद के विषय में ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी तथा हिरण्यय शब्दों का निपातन किया जाता है।

1. ऋतु यत् (निपातन से यण्)—ऋत्व्य सु–ऋत्व्यम्। (पै०सं० 19.25.14; तां ब्रा० 7.8.1) (पा० 4.4.110)। भव अर्थ में यत्।

2. वास्तौ भवम्–
वास्तु यत्–
वास्त्व्यम् (पूर्ववत् यण्)।

3. वस्तुनि भवः—
वस्तु अण् (पा० 4.3.53)
वास्त्वम् (निपातन से यण्)। मै०सं० 2.2.4

4. मधु अण् (तस्येदम्)—
माधु अ (निपातन से यण्)–
माध्व ङीप् (टिड्ढाण०)–
माध्वी।

द्र० माध्वीः (ऋ० 1.90.6)
(शत० 14.9.3.11)।

5. हिरण्यस्य विकारः—

हिरण्य मयट् (मयड्वैतयोर्भाषा०)–हिरण्यय (निपातन से यकार लोप) हिरण्ययम् (सु) द्र० ऋ० 1.25.13, शत० 7.5.2.11)। द्र० हिरण्ययेन (ऋ० 1.35.2)।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां षष्ठाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

॥ षष्ठश्चाऽयमध्यायः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सप्तमाऽध्यायस्य

प्रथमः पादः

युवोरनाकौ 7.1.1

पद.—युवोः 6.1, अनाकौ 1.2

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—'यु' तथा 'वु' के स्थान पर यथासंख्य करके 'अन' और 'अक' आदेश होते हैं । 'अन' और 'अक' आदेश अदन्त हैं ।

अनेकाल् होने से दोनों आदेश सर्वादेश होते हैं ।

उदा.—नन्द् ल्यु (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो—) नन्द् यु (लशक्वतद्धिते)–नन्द् अन–नन्दन सु–नन्दनः ।

कृ ण्वुल् (ण्वुल् तृचौ)–कार् वु (अनुबन्ध लोप, वृद्धि)–कार् अक सु–कारकः ।

विशेष—1. प्रकृतसूत्र के द्वारा केवल अनुनासिक यण् (यँ, वँ) वाले प्रत्ययों का ग्रहण किया गया है । ण्वुल्, ल्यु आदि अनुनासिक यण् वाले प्रत्यय है ।

प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः अर्थात् अद्यत्वे गुरुपम्परया एव अनुनासिकता का ज्ञान होता है ।

ऊर्णाया युस्–ऊर्णायुः यहाँ 'युस्' में अनुनासिक यण् न होने से इसे 'अन' आदेश न हुआ ।

इसी प्रकार भुज् तथा मृङ् धातुओं से यथासंख्य होने वाले उणादि प्रत्यय युक् और त्युक् भी अनुनासिक यण् वाले नहीं हैं । अतः इनके 'यु' को 'अन' नहीं होता है । यथा—

भुज् युक्–भुज्युः ।
मृ त्युक्–मृत्युः ।

2. 'युवोः' पद में व्याख्याकार एकवचन वा द्विवचन दोनों की कल्पना करते हैं । एकवचन की दशा में एकवद् (समाहार) द्वन्द्व होकर 'युवुनः' ऐसा नुम् सहित रूप होना चाहिए था । परन्तु 'अनित्यम् आगमशासनम्' (प०) के अनुसार आगम अनित्य होने से यहाँ अनिवार्य नहीं है । अतः सौत्र पुंस्त्व मानना चाहिए । अन्यत्र भी ऐसा देखा जाता है । द्र०–

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ।

यदि द्विवचन माना जाये तो इतरेतर द्वन्द्व होगा । यथा—

युश्च वुश्च–युवू, तयोः युव्वोः । अब वकार का लोप छान्दस मान लिया जाये तो 'युवोः' प्रयोग बन जाता है ।

इसी प्रकार दोनों मत उचित हैं ।

आयनेयीनीयियः फढखच्छघां प्रत्ययादीनाम् 7.1.2

पद.—आयन्एय्ईन्ईय्इयः 1.3, फढखच्छघाम् 6.3, प्रत्ययादीनाम् 6.3

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—प्रत्यय के आदि में जो फ्, ढ्, ख्, छ् तथा घ्–इन्हें यथासंख्य करके आयन्, एय्, ईन्, ईय् तथा इय् आदेश होते हैं ।

'फ' आदि में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—(1) (फस्यायन्) नड फक् (नडादिभ्यः फक्)–नाडायन सु–नाडायनः ।

(2) (ढस्यैय्) विनता ढक् (स्त्रीभ्यो ढक्)–वैन ता एय–वैनतेय सु–वैनतेयः ।

(3) (खस्येन्) आढ्यकुल ख (कुलात् खः)–आढ्यकुलीनः (सु) ।

ग्राम खञ्–ग्रामीणः (ग्रामाद् यखञौ) ।

(4) (छस्येय्) माला छ (वृद्धाच्छः)–मालीयः ।

(5) (घस्येय्) क्षत्र घ (क्षत्राद् घः)–क्षत्रियः ।

विशेष—(क) सूत्र की शर्त के अनुसार—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. 'प्रत्ययादीनाम्' अर्थात् **प्रत्यय** के आदि में जो 'फ' आदि उन्हें 'आयन्' आदि आदेश होते हैं—

फल् तिंप्–फल् शप् ति–फलति 'फ' आदि में है, परन्तु प्रत्यय के आदि में नहीं है। अतः 'आयन्' आदेश न हुआ।

इसी प्रकार—ढौकते, खनति, छिनत्ति, घूर्णते आदि के विषय में जानना चाहिए।

2. 'प्रत्ययादीनाम्' अर्थात् प्रत्यय के **आदि** में जो 'फ' आदि, उन्हें 'आयन्' आदि आदेश होते हैं—

जानु प्रमाणम् अस्य–जानु दघ्नच् (प्रमाणे द्वयसज्०)–जानुदघ्नम् (सु)–यहाँ दघ्नच् प्रत्यय है परन्तु आदि में घकार नहीं है। अतः इसके स्थान पर 'इय्' आदेश नहीं हुआ।

(ख) 'आयन्' आदि आदेश प्रत्ययों के **उपदेश काल** में ही होते हैं।

(ग) धातु से जो 'फ' आदि प्रत्यय उन्हें 'आयन्' आदि आदेश नहीं होते हैं। यहाँ 'ऋतेरीयङ्' सूत्र ज्ञापक है। यदि धातु से उत्तर प्रत्यय को आयनादि आदेश होते तो 'ऋतेरीयङ्' के स्थान पर 'ऋतेश्छङ्' सूत्र होना चाहिए था। अतः यहाँ 'इयङ्' अंश व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि धातु से उत्तर प्रत्यय के आदि में आयनादि आदेश नहीं होते हैं।

फलतः 'एजेः खश्' में 'खश्' के खकार की तथा 'पदरुजविशस्पृशो घञ्' में 'घञ्' के घकार की इत्संज्ञा होती है। यदि इन्हें आयनादि आदेश होते तो इनकी इत्संज्ञा करना व्यर्थ हो जाता।

(घ) 'आयन्' आदि आदेशों के अन्त्य वर्णों की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा प्राप्त होती है, परन्तु इनकी इत्संज्ञा नहीं होती है। यहाँ 'प्राचार्यमवृद्धात् फिन् बहुलम्' सूत्र ज्ञापक है। यदि 'फिन्' के नकार की इत्संज्ञा होकर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' से आद्युदात्त होता है। यदि 'आयन्' के नकार की इत्संज्ञा होती तो फिन् को नित् करना व्यर्थ है। अतः 'फिन्' यह व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि आयन् के नकार की इत्संज्ञा नहीं होती है।

झोऽन्तः 7.1.3

पद.—झः 6.1, अन्तः 1.1

अनु.—प्रत्ययस्य।

अर्थ—प्रत्यय के अवयव 'झ्' के स्थान पर 'अन्त्' आदेश होता है।

'अन्त' में अन्त्य अकार मुखसुखार्थ है। 'अन्त्' की 'विभक्तिश्च' से विभक्ति संज्ञा है। अतः 'हलन्त्यम्' से प्राप्त तकार की इत्संज्ञा का 'न विभक्तौ तुस्माः' के द्वारा निषेध होता है।

उदा.—(1) पठ् झि–पठ् शप् अन्त् इ–पठ अन्ति–पठन्ति (अतो गुणे)।

(2) विश् झच् (जृविशिभ्यां झच्)–वेशन्तः (सु)।

अदभ्यस्तात् 7.1.4

पद.—अत् 1.1, अभ्यस्तात् 5.1

अनु.—झः प्रत्ययस्य।

अर्थ—अभ्यस्त संज्ञक शब्द से उत्तर प्रत्यय के आदि (अव्यवहित) झ् के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है।

'अत्' के तकार की इत्संज्ञा का पूर्ववत् निषेध होता है।

उदा.—दा झि–दा शप् झि–दा झि (श्लुत्व)–दादा झि–ददा झि (द्वित्व, उभे अभ्यस्तम्)—ददा अत् इ (श्नाऽभ्यस्तयोरातः)–दद् अति–ददति।

यह 'झोऽन्तः' का अपवाद है परन्तु 'झेर्जुस्' प्रकृतसूत्र का अपवाद है।

आत्मनेपदेष्वनतः 7.1.5

पद.—आत्मनेपदेषु 7.3, अनतः 5.1

अनु.—झः प्रत्ययस्य अत्। अंगस्य।

अर्थ—ह्रस्व अकार से भिन्न वर्ण है अन्त में जिसकें, ऐसे अंग संज्ञक शब्द से उत्तर आत्मनेपद में वर्त्तमान प्रत्यय के 'झ्' के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है।

'अत्' आदेश अन्त्यवर्ण अकार को न होकर 'झ्' के स्थान पर होता है।

उदा.—चि झ–चि श्नु झ अब 'चिनु' यह अंग अकारान्त नहीं है। अतः इससे उत्तर झकार को 'अत्' हुआ। चिनु अत–चिन्वते (टि को एत्व)।

आशास् झ (लङ्)।
आशासत (भट्टि० 17.1)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'आत्मनेपदेषु' अर्थात् **आत्मनेपद** में वर्त्तमान 'झ' को 'अत्' होता है—

चि श्नु झि–चि नु झि 'चिनु' अंग अकारान्त नहीं है, परन्तु 'झि' का झकार आत्मनेपद में वर्त्तमान नहीं है। अतः 'अत्' आदेश न हुआ। 'झोऽन्तः' से 'अन्त्' आदेश हुआ। चिन्वन्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. 'अनतः' अर्थात् **ह्रस्व अकार से भिन्न** वर्ण है **अन्त में** जिसके ऐसे अंग से उत्तर 'झ्' को अत् होता है—

एध् झ अब शप् विकरण तथा 'अत्' आदेश युगपत् प्राप्त होते हैं। 'शप्' नित्य है तथा 'अत्' आदेश अनित्य है। अतः शप् हुआ। एध् अ झ। अब 'झ' आत्मनेपद का प्रत्यय है परन्तु अकारान्त (एध) अंग से उत्तर होने से प्रकृतसूत्र प्रवृत्त न हुआ। एधन्ते (झोऽन्तः। टित आत्मनेपदा०।)

शीङो रुट् 7.1.6

पद.—शीङः 5.1, रुट् 1.1

अनु.—झः अत्।

अर्थ—शीङ् से उत्तर 'झ्' के स्थान पर आदेशभूत 'अत्' को रुट् आगम होता है। रुट् टित् है। अतः आदि अवयव होता है।

उदा.—शी झ–शी अत् अ (आत्मनेपदेष्वनतः)–शी रुट् अत् अ (यदागमास्तद्गुणीभूता०)—शी रत् अ ('रत' भी सार्वधातुक हुआ)–शेरत (शीङः सार्वधातुके गुणः)–शेरते (टि को एत्व)। द्र० भाग० 7.3.18

विशेष—1. रुट् आगम 'अत्' को होता है न कि 'झ' प्रत्यय को। अतः 'अत्' को विभक्तिविपरिणाम से षष्ठ्यन्त बना लेते हैं।

यदि 'झ' को रुट् किया जाता तो 'अत्' आदेश न होगा–

शी झ–शी रुट् झ–इस अवस्था में 'झ्' को 'अत्' आदेश प्राप्त नहीं होता है।

2. 'शीङः' पद में सानुबन्ध निर्देश का प्रयोजन है कि यङ्लुक् में उक्त आगम नहीं होता है। यथा—

वि अति शीङ् यङ् (यङ्लुक्, प्रत्ययलक्षण से द्वित्व)–व्यति शी शी झ–व्यतिशेश्यते यहाँ रुट् न हुआ।

वेत्तेर्विभाषा 7.1.7

पद.—वेत्तेः 5.1, विभाषा 1.1

अनु.—झः अत् रुट्।

अर्थ—विद् अंग से उत्तर जो 'झ' प्रत्यय उसके स्थान पर हुआ जो 'अत्' आदेश, उसे विकल्प से रुट् आगम होता है।

उदा.—सम् विद् ('समो गम्यृच्छिभ्याम्' से आत्मनेपद हुआ)–सम् विद् झ (शप्, शप् का लुक्)–सम् विद् अत् अ–सम् विद् रुट् अत् अ–संविद्रते (अत्, रुट्, टि को एत्व, अनुस्वार।

पक्ष में—संविदते।

बहुलं छन्दसि 7.1.8

पद.—बहुलम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—झः अत् रुट्।

अर्थ—वेद के विषय में झादेश रूप 'अत्' को 'रुट्' आगम बहुलता से होता है।

उदा.—(1) दुह् झ (लङ्)–अट् दुह् अत् अ (शप्, शप् का लुक्, अट्)–अदुह्ह (रुट् आगम) मै० 4.2.13 (लोपस्त आत्मनेपदेषु इति तकारलोपः। अतो गुणे)।

(2) अदुहत यहाँ रुट् न हुआ।

(3) दृश् मिप् (लुङ्)–अट् दृश् अम् (अम् आदेश)–अ दृश् च्लि अम्–अदृश् अङ् अम् ('इरितो वा' से अङ्)–अदृश् रुट् अअम् यहाँ 'बहुलम्' वचन के कारण 'अत्' से अन्यत्र (अम्) रुट् हुआ है—अदृश्रम् (ऋ० 1.50.3) 'बहुलम्' पद सभी विधियों के व्यभिचारार्थ होता है। अतः—

अट् दृश् रुट् अङ् अन् (झि को अन्ति, इकार लोप, संयोगान्त लोप) यहाँ न तो 'झ' है तथा न ही उसका आदेशभूत 'अत्' है, तदपि 'रुट्' हुआ है—अदृश्रम् (ऋ० 1.50.3)।

अतो भिस ऐस् 7.1.9

पद.—अतः 5.1, भिसः 6.1, ऐस् 1.1

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—ह्रस्व अकारान्त अंग से उत्तर 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' आदेश होता है।

'ऐस्' के सकार का जो लोप प्राप्त होता है, उसका 'न विभक्तौ तुस्माः' के द्वारा निषेध होता है।

'ऐस्' अनेकाल् है। अतः सर्वादेश होता है।

उदा.—वृक्ष भिस्–वृक्ष ऐस्–वृक्षैः (वृद्धिरेचि)।

विशेष—1. 'अतः' अर्थात् **अवर्ण** से उत्तर भिस् को 'ऐस्' आदेश होता है—

साधु भिस्— साधुभिः 'साधु' अदन्त अंग नहीं है। अतः 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश न हुआ।

2. 'तपरकरणम्' अर्थात् (अत्) **ह्रस्वअकार** वर्ण; तदन्त अंग से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है—

'माला भिस्' यहाँ 'माला' अंग से उत्तर 'भिस्' को उक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश नहीं हुआ, कारण कि 'माला' के अन्त में ह्रस्व अकार नहीं है। मालाभिः।

3. 'अतो भिस ऐस्' के स्थान पर 'अतो भिस एस्' ऐसा पाठ करने पर इष्टसिद्धि हो जाती है तथा मात्रा लाघव भी होता है, परन्तु 'एस्' की अपेक्षा 'ऐस्' न्यास सप्रयोजन है। यह अगले सूत्र पर 'नद्यैः' की व्याख्या में स्पष्ट किया जायेगा।

बहुलं छन्दसि 7.1.10

पद.—बहुलम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य अतः भिस ऐस्।

अर्थ—वेद के विषय में ह्रस्व अकारान्त अंग से उत्तर 'भिस्' के स्थान पर बहुलता से 'ऐस्' आदेश होता है।

उदा.—'बहुलम्' शब्द की परिभाषा के अनुसार—

(क) क्वचित् प्रवृत्तिः–देवैः यहाँ 'ऐस्' हुआ है।

(ख) क्वचिद् अप्रवृभिः–कर्णेभिः (यजु० 25.21) यहाँ ऐस्' न हुआ।

(ग) क्वचिद् अन्यदेव—नद्यैः ह्रस्व अकारान्त अंग से भिन्न (ईकारान्त) अंग से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' हो गया है।

विशेष—यदि आचार्य 'ऐस्' के स्थान पर 'एस्' पाठ करते तो अदन्त अंग से ऐस के परे रहते वृद्धि एकादेश में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, परन्तु अकार से भिन्न (नदी आदि) अंगों से पर 'एस्' होने पर 'नद्यैः' आदि रूप उपपन्न न हो सकेंगे। इसलिए आचार्य ने 'एस्' पाठ न करके 'ऐस्' पाठ किया है।

नेदमदसोरकोः 7.1.11

पद.—न–अव्य०, इदमदसोः 6.2, अकोः 6.2

अनु.—अंगस्य भिस् ऐस्।

अर्थ—ककार रहित इदम् और अदस् शब्दों से उत्तर 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' आदेश नहीं होता है।

उदा.—(1) इदम् भिस्–इद अ भिस् (त्यदादीनाम् अः)–इद भिस् (अतो गुणे)–अ भिस् (हलि लोपः) अब व्यपदेशिवद्भाव से 'अतो भिस ऐस्' के द्वारा 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश की प्राप्ति हुई। प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया।

अ भिस् (बहुवचने झल्येत्)–एभिः।

(2) अदस् भिस्–अद अ भिस्–अदभिस् ('अतो भिस ऐस्' से प्राप्त 'ऐस्' का निषेध) अदे भिस् (बहुवचने झल्येत्)–अमीभिः (एत ईद् बहुवचने)।

विशेष—'अकोः' अर्थात् **ककार रहित** इदम् व अदस् से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' का निषेध होता है—

इमकैः, अमुकैः यहाँ ककार से युक्त इदम् व अदस् अंग हैं। अतः निषेध न हुआ। 'ऐस्' हुआ।

टाङसिङसामिनात्स्याः 7.1.12

पद.—टाङसिङसाम् 6.3, इनात्स्याः 1.3

अनु.—अंगस्य अतः।

अर्थ—अदन्त अंग से उत्तर टा, ङसि तथा ङस् विभक्ति के स्थान पर यथासंख्य करके इन, आत् तथा स्य आदेश होते हैं।

इन तथा स्य अदन्त आदेश हैं।

उदा.—(1) गज टा–गज इन–गजेन (आद्गुणः)।

(2) राम ङसि–राम आत्–रामात् (अकः सवर्णे दीर्घः)–रामात्,–द् (वाऽवसाने)।

(3) देव ङस्–देवस्य।

विशेष—'अतः' अर्थात् **अदन्त** अंग से उत्तर 'टा' आदि को पूर्वोक्त आदेश होते हैं—

सखि टा–सख्या यहाँ अदन्त अंग न होने से 'टा' को 'इन' न हुआ। सखि ङसि/ङस्–सख्युः इसी प्रकार यहाँ आत् आदि न हुआ।

ङेर्यः 7.1.13

पद.—ङेः 6.1, यः 1.1

अनु.—अंगस्य अतः।

अर्थ—अदन्त अंग से उत्तर 'ङे' को 'य' होता है।

उदा.—राम ङे–राम य ('ङे' सुप् है। अतः 'स्थानिवद्' आदेशोऽनल्० से स्थानिवद्भाव होकर 'य' भी सुप् हुआ)–रामाय (सुपि च)

सर्वनाम्नः स्मै 7.1.14

पद.—सर्वनाम्नः 5.1, स्मै 1.1 (अविभक्तिकरूपम्)।

अनु.—अतः अंगस्य ङेः।

अर्थ—अदन्त सर्वनाम अंग से उत्तर 'ङे' के स्थान पर 'स्मै' आदेश होता है।

उदा.—सर्व ङे—सर्वस्मै।

इसी प्रकार–कस्मै, यस्मै।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ 7.1.15

पद.—ङसिङ्योः 6.2, स्मात्स्मिनौ 1.2

अनु.—अंगस्य अतः सर्वनाम्नः ।

अर्थ—अदन्त सर्वनाम अंग से उत्तर ङसि तथा ङि विभक्तियों के स्थान पर यथासंख्य करके 'स्मात्' व 'स्मिन्' आदेश होते हैं । इनके अन्त्य हल् (तकार व नकार) की इत्संज्ञा का 'न विभक्तौ तुस्माः' से निषेध हो जाता है ।

उदा.—(1) सर्व ङसि–सर्वस्मात् ।

इसी प्रकार–यस्मात्, कस्मात् आदि ।

(2) सर्व ङि–सर्वस्मिन् ।

इसी प्रकार–यस्मिन्, कस्मिन् आदि ।

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा 7.1.16

पद.—पूर्वादिभ्यः 5.3, नवभ्यः 5.3, वा–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अतः सर्वनाम्नः ङसिङ्योः स्मात् स्मिनौ ।

अर्थ—पूर्व आदि नौ अदन्त अंगों से उत्तर ङसि व ङि के स्थान पर विकल्प से 'स्मात्' व 'स्मिन्' आदेश होते हैं ।

पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्, स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्, अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः (पा० 1.1.33–35)–इन सूत्रों में स्थित नौ शब्दों का तत् तत् अर्थ में यहाँ ग्रहण किया गया है ।

उदा.—(1) पूर्वस्मात्, पूर्वात् । पूर्वस्मिन्, पूर्वे

पूर्व ङसि–पूर्वस्मात् ।
पक्ष में—पूर्वात् (टाङसिङसा०) ।
पूर्व ङि–पूर्वस्मिन् ।
पक्ष में—पूर्व इ–पूर्वे ।

इसी प्रकार अन्य शब्दों के विषय में जानना चाहिए । नीचे दी गई रूपमाला से सब स्पष्ट हो जायेगा ।

पूर्व (प्रथम आदि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पंचमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु
संबोधन	हे पूर्व!	हे पूर्वौ!	हे पूर्वे!, हे पूर्वाः!

पर (दूसरा आदि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	परः	परौ	परे, पराः
द्वितीया	परम्	परौ	परान्
तृतीया	परेण	पराभ्याम्	परैः
चतुर्थी	परस्मै	पराभ्याम्	परेभ्यः
पंचमी	परस्मात्, परात्	पराभ्याम्	परेभ्यः
षष्ठी	परस्य	परयोः	परेषाम्
सप्तमी	परस्मिन्, परे	परयोः	परेषु
संबोधन	हे पर!	हे परौ!	हे परे!, हे परा!

अवर (न्यून आदि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	अवरः	अवरौ	अवरे,अवराः
द्वितीया	अवरम्	अवरौ	अवरान्
तृतीया	अवरेण	अवराभ्याम्	अवरैः
चतुर्थी	अवरस्मै	अवराभ्याम्	अवरेभ्यः
पंचमी	अवरस्मात्, अवरात्	अवराभ्याम्	अवरेभ्यः
षष्ठी	अवरस्य	अवरयोः	अवरेषाम्
सप्तमी	अवरस्मिन्, अवरे	अवरयोः	अवरेषु
संबोधन	हे अवर!	हे अवरौ!	हे अवरे!, हे अवराः!

दक्षिण (दाहिना आदि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	दक्षिणः	दक्षिणौ	दक्षिणे, दक्षिणाः
द्वितीया	दक्षिणम्	दक्षिणौ	दक्षिणान्
तृतीया	दक्षिणेन	दक्षिणाभ्याम्	दक्षिणैः
चतुर्थी	दक्षिणस्मै	दक्षिणाभ्याम्	दक्षिणेभ्यः
पंचमी	दक्षिणस्मात्, दक्षिणात्	दक्षिणाभ्याम्	दक्षिणेभ्यः
षष्ठी	दक्षिणस्य	दक्षिणयोः	दक्षिणेषाम्
सप्तमी	दक्षिणस्मिन्, दक्षिणे	दक्षिणयोः	दक्षिणेषु
संबोधन	हे दक्षिण!	हे दक्षिणौ!	हे दक्षिणे!, हे दक्षिणाः!

उत्तर (अगला आदि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	उत्तरः	उत्तरौ	उत्तरे, उत्तराः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीया	उत्तरम्	उत्तरौ	उत्तरान्
तृतीया	उत्तरेण	उत्तराभ्याम्	उत्तरैः
चतुर्थी	उत्तरस्मै	उत्तराभ्याम्	उत्तरेभ्यः
पंचमी	उत्तरस्मात्, उत्तरात्	उत्तराभ्याम्	उत्तरेभ्यः
षष्ठी	उत्तरस्य	उत्तरयोः	उत्तरेषाम्
सप्तमी	उत्तरस्मिन्, उत्तरे	उत्तरयोः	उत्तरेषु
संबोधन	हे उत्तर!	हे उत्तरौ!	हे उत्तरे!, हे उत्तराः!

अपर (दूसरा आदि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	अपरः	अपरौ	अपरे,अपराः
द्वितीया	अपरम्	अपरौ	अपरान्
तृतीया	अपरेण	अपराभ्याम्	अपरैः
चतुर्थी	अपरस्मै	अपराभ्याम्	अपरेभ्यः
पंचमी	अपरस्मात्, अपरात्	अपराभ्याम्	अपरेभ्यः
षष्ठी	अपरस्य	अपरयोः	अपरेषाम्
सप्तमी	अपरस्मिन्, अपरे	अपरयोः	अपरेषु
संबोधन	हे अपर!	हे अपरौ!	हे अपरे!, हे अपराः!

अधर (नीचा आदि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	अधरः	अधरौ	अधरे,अधराः
द्वितीया	अधरम्	अधरौ	अधरान्
तृतीया	अधरेण	अधराभ्याम्	अधरैः
चतुर्थी	अधरस्मै	अधराभ्याम्	अधरेभ्यः
पंचमी	अधरस्मात्, अधरात्	अधराभ्याम्	अधरेभ्यः
षष्ठी	अधरस्य	अधरयोः	अधरेषाम्
सप्तमी	अधरस्मिन्, अधरे	अधरयोः	अधरेषु
संबोधन	हे अधर!	हे अधरौ!	हे अधरे!, हे अधराः!

स्व (आत्मा, आत्मीय)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	स्वः	स्वौ	स्वे, स्वाः
द्वितीया	स्वम्	स्वौ	स्वान्
तृतीया	स्वेन	स्वाभ्याम्	स्वैः
चतुर्थी	स्वस्मै	स्वाभ्याम्	स्वेभ्यः
पंचमी	स्वस्मात्, स्वात्	स्वाभ्याम्	स्वेभ्यः
षष्ठी	स्वस्य	स्वयोः	स्वेषाम्
सप्तमी	स्वस्मिन्, स्वे	स्वयोः	स्वेषु
संबोधन	हे स्व!	हे स्वौ!	हे स्वे!, हे स्वाः!

अन्तर (बाह्य या परिधानीय)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	अन्तरः	अन्तरौ	अन्तरे,अन्तराः
द्वितीया	अन्तरम्	अन्तरौ	अन्तरान्
तृतीया	अन्तरेण	अन्तराभ्याम्	अन्तरैः
चतुर्थी	अन्तरस्मै	अन्तराभ्याम्	अन्तरेभ्यः
पंचमी	अन्तरस्मात्, अन्तरात्	अन्तराभ्याम्	अन्तरेभ्यः
षष्ठी	अन्तरस्य	अन्तरयोः	अन्तरेषाम्
सप्तमी	अन्तरस्मिन्, अन्तरे	अन्तरयोः	अन्तरेषु
संबोधन	हे अन्तर!	हे अन्तरौ!	हे अन्तरे!, हे अन्तराः!

विशेष—'नवभ्यः' अर्थात् पूर्व आदि नौ से ही उत्तर ङसि व ङि को विकल्प से 'स्मात्' व 'स्मिन्' होते हैं—

त्यद् ङसि–त्यस्मात् ।
त्यद् ङि–त्यस्मिन् ।

यहाँ विकल्प नहीं होता है । त्यद् पूर्वोक्त नौ में नहीं है ।

जसः शी 7.1.17

पद.—जसः 6.1, शी–लुप्तप्रथमान्तरूपम् ।

अनु.—अंगस्य अत; सर्वनाम्नः ।

अर्थ—अदन्त सर्वनाम अंग से उत्तर 'जस्' को 'शी' आदेश होता है ।

जस् प्रत्यय है । अतः 'शी' भी स्थानिवद्भाव से प्रत्यय हुआ ।

आदेश के पश्चात् 'शी' की प्रत्यय संज्ञा होती है । प्रत्यय संज्ञा के अभाव में इसके शकार की इत्संज्ञा भी नहीं होती है (द्र० लशक्वतद्धिते) । अतः आदेश के समय अनेकाल् होने के कारण सर्वादेश होता है, न कि शित् होने के कारण । आदेश होने के पश्चात् ही यह शित् होता है ।

उदा.—सर्व जस्–सर्व शी–सर्व ई–सर्वे ।

इसी प्रकार—ये, के इत्यादि ।

विशेष—'शी' के स्थान पर 'शि' कर देने पर भी इष्ट-सिद्धि (सर्वे) हो जाती है । तब दीर्घ निर्देश 'मधुनी' इत्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थलों के लिए किया गया है। फलतः 'नपुँसकाच्च' आदि सूत्रों में अनुवर्त्तन के प्रयोजन से 'शि' न करके 'शी' दीर्घ किया गया है।

औङ आपः 7.1.18

पद.—औङः 6.1, आपः 5.1

अनु.—अंगस्य शी।

अर्थ—आबन्त अंग से उत्तर 'औङ्' के स्थान पर 'शी' होता है।

'औङ्'–औकार विभक्ति (औ, औट्) की प्राचीन संज्ञा है। इसके अतिरिक्त औङ् को ङित् सामान्य प्रयोजन के लिए किया गया है, ताकि इसके द्वारा 'औ' (प्र० द्विव०) तथा 'औट्' (द्वि०द्विव०) दोनों का ग्रहण हो सके।

उदा.—माला औ–माला शी–माले (स्तः)।
माला औट्–माला शी–माले (पश्य)।

नपुँसकाच्च 7.1.19

पद.—नपुँसकात् 5.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य औङः शी।

अर्थ—नपुँसक अंग से उत्तर 'औ' विभक्ति (प्र०व द्वि० का द्विव०) के स्थान पर 'शी' आदेश होता है।

उदा.—जल औ–जल शी चूँकि स्थानिवद्भाव से 'शी' भी स्वादि हुआ। अतः 'सुडनपुँसकस्य' से इसकी सर्वनाम संज्ञा न हुई। इसके परे रहते 'यचि भम्' से 'जल' की भसंज्ञा हुई।

'यस्येति च' से 'जल' के अन्त्य अकार का लोप प्राप्त होता है परन्तु वार्तिक[1] के द्वारा अकार लोप का निषेध होता है।

–जले।
जल औट्–जले।

जश्शसोः शिः 7.1.20

पद.—जश्शसोः 6.2, शिः 1.1

अनु.—अंगस्य नपुँसकात्।

अर्थ—नपुँसक अंग से उत्तर 'जस्' तथा 'शस्' के स्थान पर 'शि' आदेश होता है। स्थानिवद्भाव से 'शि' प्रत्यय हुआ। 'शि सर्वनामस्थानम्' से इसकी सर्वनामस्थान संज्ञा हुई।

उदा.—जल जस्–जल शि–जल इ–जल नुम् इ (नपुँसकस्य झलचः)–जल न् इ–जलान् इ (सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ)–जलानि।

जल शस्–जलानि (पूर्ववत्)।
असृज् शस्–असृञ्जि (वेणी० 6.41)।

विशेष—जस् विभक्ति के सहचरित 'शस्' का ग्रहण होने के कारण तद्धित संज्ञक 'शस्' को 'शि' आदेश नहीं होता है। यथा—

कुण्डशो ददाति।

यहाँ कुण्डं कुण्डं ददाति–इस वीप्सा अर्थ में 'संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्' से 'शस्' हुआ है।

अष्टाभ्य औश् 7.1.21

पद.—अष्टाभ्यः 5.3, औश् 1.1

अनु.—अंगस्य जश्शसोः।

अर्थ—आकार आदेश किए हुए 'अष्टन्' शब्द से उत्तर जस् और शस् को 'औश्' आदेश होता है।

'भ्यस्' विभक्ति में 'अष्टन्' शब्द के दो रूप बनते हैं—

अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः

परन्तु प्रकृतसूत्र में प्रयुक्त 'अष्टाभ्यः' पद 'अष्टा' शब्द का है। 'अष्टा' का तात्पर्य है कि 'अष्टन आ विभक्तौ' के द्वारा आकार अन्तादेश वाला 'अष्टन्' शब्द।

उदा.—अष्टन् जस्–अष्ट आ औश् ('अष्टाभ्य औश्' के द्वारा 'आ' अन्तादेश तथा 'जस्' को 'औश्' हुआ[2])। अष्टा औ (अकः सवर्णे०)–अष्टौ (वृद्धिरेचि)। (द्र० भाग० 9.24. 52, 53)।

इसी प्रकार—अष्टन् शस्–अष्टौ।

विशेष—'अष्टाभ्यः' अर्थात् **कृताकार 'अष्टन्'** अंग से उत्तर जस् व शस् को 'औश्' होता है—

अष्टन् जस् यहाँ आकार अन्तादेश नहीं किया गया है। अतः षट्संज्ञा होकर 'षड्भ्यो लुक्' से लुक् हुआ है—

अष्टन्–अष्ट (न लोपः प्रातिः०)।

शंका होती है कि 'अष्टन आ विभक्तौ' के द्वारा हलादि विभक्ति में ही आकार अन्तादेश होता है। तब अजादि विभक्ति (जस् व शस्) में अन्तादेश के अप्राप्त रहने पर 'औश्' कैसे हो सकता है? तब प्रकृतसूत्र में 'अष्टाभ्यः' पद

1. महा० 7.1.19 (वा०) औङः श्यां प्रतिषेधः।

2. द्र० पा० 7.1.21 विशेष वक्तव्य।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि आचार्य को जस् व शस् विभक्ति में भी 'अष्टन्' शब्द को आकार अन्तादेश इष्ट है।

यदि आचार्य को ऐसा अभिमत न होता तो वे 'अष्टाभ्य औश्' के स्थान पर 'अष्टभ्य औश्' पाठ करते।

षड्भ्यो लुक् 7.1.22

पद.—षड्भ्यः 5.3, लुक् 1.1

अनु.—अंगस्य जश्शसोः।

अर्थ—षट् संज्ञक अंग से उत्तर जस् व शस् का लुक् होता है।

उदा.—षष् जस्—षष्-षड्-षड्,-षट् (ष्णान्ताः षट्। षड्भ्यो लुक्। झलां जशोऽन्ते। वाऽवसाने)।

इसी प्रकार—षष् शस्-षड्, षट्।

पञ्चन् अस् (जस्/शस्)-पञ्चन्-पञ्च।
सप्तन् अस्-सप्त (पूर्ववत्)।
नवन् अस्-नव (पूर्ववत्)।
दशन् अस्-दश (पूर्ववत्)।

स्वमोर्नपुँसकात् 7.1.23

पद.—स्वमोः 6.2, नपुँसकात् 5.1

अनु.—अंगस्य लुक्।

अर्थ—नपुँसक अंग से उत्तर 'सु' तथा 'अम्' का लुक् होता है।

इसका अपवाद 'अतोऽम्' है।

'आदेः परस्य' से 'अम्' के अकार का लुक् होना चाहिए, परन्तु 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' के द्वारा उक्त संज्ञाएँ प्रत्यय की की गई है, न कि प्रत्यय के एक अंश की। अतः समग्र प्रत्यय (सु, अम्) का लुक् होता है।

उदा.—वारि सु-वारि।
वारि अम्-वारि।
मधु सु-मधु।
मधु अम्-मधु।

अतोऽम् 7.1.24

पद.—अतः 5.1, अम् 1.1

अनु.—अंगस्य नपुँसकात् स्वमोः।

अर्थ—अदन्त नपुँसक अंग से उत्तर 'सु' तथा 'अम्' के स्थान पर 'अम्' आदेश होता है।

अनेकाल् होने से 'अम्' सर्वादेश है। यह 'स्वमोर्नपुँसकात्' का अपवाद है।

उदा.—जल सु-जल अम्-जलम् (अकः सवर्णे दीर्घः। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। अतो गुणे। अमि पूर्वः)।

जल अम्-जल अम् ('अम्' के स्थान पर 'अम्' हुआ)-जलम्

विशेष—1. यहाँ 'अम्' के स्थान पर 'अम्' करना कुछ अटपटा लगता है, परन्तु आचार्य का कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होता है। 'अतोऽम्' के द्वारा 'अम्' के स्थान पर 'अम्' आदेश करके आचार्य ज्ञापित करते हैं कि 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' अर्थात् 'अम्' के स्थान पर 'अम्' ही हो, कहीं 'स्वमोर्नपुँसकात्' से इसका लुक् न हो जाये।

2. 'अतः' में तपर करण मुखसुखार्थ है। कारण कि नपुँसक लिंग में आकारान्त शब्द की अप्राप्ति होती है। 'ह्रस्वो नपुँसके प्राति०' से सर्वत्र ह्रस्व हो जाता है।[1] अतः 'अतः' में तपरकरण तत्काल के लिए नहीं है।

3. कुछ व्याख्याकारों के अनुसार 'अतोम्' का (अतः म् इस प्रकार विच्छेद करते हुए) सूत्रार्थ इस प्रकार करते हैं—

अदन्त नपुँसक से उत्तर सु तथा अम् को 'म्' आदेश होता है।

इस अर्थ के अनुसार—

जल सु-जलम्-जलम्।

जल अम्-जल म् म् ('आदेः परस्य' से 'अम्' के आदि को 'म्' हुआ)-जलम् (संयोगान्तलोप)। सम्बुद्धि में भी कोई कठिनाई नहीं होती है। इस प्रकार 'अतोऽम्' के स्थान पर 'अतो म्' न्यास उचित प्रतीत होता है।

परन्तु काशिकाकार,[2] पदमंजरीकार,[3] न्यासकार[4] तथा शेखरकार[5] सभी ने इस अर्थ की आलोचना की है।

---

1. काशि० (न्यास) 7.1.24 तपरकरणं मुखसुखार्थम् न तु दीर्घनिवृत्त्यर्थम्, दीर्घस्याऽभावात्।
2. काशि० 7.1.24 मकारः कस्मान्न क्रियते? दीर्घत्वं (पा० 7.1.102) प्राप्नोति।
3. काशि० (पद०) 7.1.24 अत्रामिति पदच्छेदः, न तु मिति। तथाहि सति लाघवाय 'मत' इत्येव ब्रूयात् ... दीर्घप्रसंगस्तु 'सुपि च' इति दीर्घः प्राप्नोति।
4. काशि० (न्यास) 7.1.24
5. द्र० शेखर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभाष्यकार पतञ्जलि को भी 'म्' के स्थान पर 'अम्' आदेश इष्ट है[1]।

अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः 7.1.25

पद.—अद्ड् 1.1, डतरादिभ्यः 5.3, पञ्चभ्यः 5.3

अनु.—स्वमोः अंगस्य नपुँसकात्।

अर्थ—डतर आदि पाँच नपुँसक अंगों से उत्तर सु और अम् के स्थान पर अद्ड् हो जाता है। 'अद्ड्' के डकार की इत्संज्ञा होती है। डतर आदि पाँच शब्द (डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर) सर्वादिगण में आते हैं।

इनमें डतर व डतम प्रत्यय हैं।

यह सूत्र 'अतोऽम्' का अपवाद है।

उदा.—कतर सु–कतर अद्ड्–कतर अद् (प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। टेः–यहाँ 'अद्' स्थानिवद्भाव से स्वादि है। अतः भसंज्ञा होती है)—कतर् अद्–कतरद्,–त् (वाऽवसाने)।

इसी प्रकार–कतर अम्–कतरद्,–त्।
कतमद्,–त्।
इतरद्,–त्।
अन्यतरद्,–त्।
अन्यद्,–त्।

विशेष—'अद्ड् डतरादिभ्यः—' यहाँ 'अद्ड्' में ष्टुत्व (ष्टुना ष्टुः) होकर तथा संयोगान्त लोप होकर 'अड्' ऐसा होना चाहिए था परन्तु आचार्य ने स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए सन्धि नहीं की।

नेतराच्छन्दसि 7.1.26

पद.—न–अव्य०, इतरात् 5.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य स्वमोः अद्ड्।

अर्थ—वेद के विषय में 'इतर' अंग से उत्तर सु तथा अम् को 'अद्ड्' आदेश नहीं होता है।

उदा.—इतर सु–इतरम्। (मै० 1.6.12)।
इतर अम् इतरम्।

विशेष—'एकतर' शब्द से उत्तर सु और अम् को अद्ड् आदेश नहीं होता है, भाषा और वेद दोनों में[2]—
एकतर सु–एकतरम्।
एकतर अम्–एकतरम्।

युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् 7.1.27

पद.—युष्मदस्मद्भ्याम् 5.2, ङसः 6.1, अश् 1.1

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—युष्मद् तथा अस्मद् अंग से उत्तर 'ङस्' के स्थान पर 'अश्' आदेश होता है।

अश् आदेश सर्वादेश है। यह शित् है।

उदा.—युष्मद् ङस्–तव 'अद् ङस् (तवममौ ङसि)–तवद् ङस् (अतो गुणे)–तवद् अश्–तवद् अ (शेषे लोपः)–तव् अ–तव।

अस्मद् ङस्–मम अद् ङस्–ममद् ङस्–ममद् अश्–मम् अ–मम।

ङे प्रथमयोरम् 7.1.28

पद.—ङे–लुप्तषष्ठीकरूपम्, प्रथमयोः 6.2, अम् 1.1

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मद्भ्याम्।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अंगों से उत्तर ङे विभक्ति (चतु० एक०) को, प्रथमा (सु, औ, जस्) को तथा द्वितीया (अम्, औट्, शस्) को 'अम्' आदेश होता है।

प्रथमा च द्वितीया च–प्रथमाद्वितीये, तयोः प्रथमयोः

एकशेष द्वन्द्व हुआ।

अतः 'प्रथमयोः' पद के द्वारा प्रथमा व द्वितीया का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) युष्मद् ङे–युष्मद् अम् (स्थानिवद्भाव से 'अम्' भी 'ङे' हुआ)–तुभ्य अद् अम् (तुभ्यमह्यौ ङयि)–तुभ्यद् अम्–तुभ्य् अम् (अतो गुणे। टिलोपपक्ष में 'शेषे लोपः' से टिलोप) तुभ्यम् (अन्त्यलोप पक्ष में—तुभ्यद् अम्–तुभ्य अम्–तुभ्यम्)।

अस्मद् ङे–अस्मद् अम्–मह्यद् अम्–मह्यम्।

(2) युष्मद् सु–युष्मद् अम्–त्व अद् अम् (त्वाहौ सौ)–त्वद् अम् (अतो गुणे)–त्व् अम् (शेषे लोपः)–त्वम्।

अस्मद् सु–अस्मद् अम्–अहद् अम्–अह् अम्–अहम्।

(3) युष्मद् औ–युष्मद् अम् (ङे प्रथमयोरम्) युव अद् अम् (युवावौ द्विवचने)—
युवद् अम् (अतो गुणे)–

1. महा० 6.1.67 (एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः)।
2. महा० 7.1.26 (वा०) एकतराद्धि सर्वत्र छन्दसि भाषायां प्रतिषेध इष्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युव आ अम् (प्रथमायाश्च द्विवचने०)–
युवा अम् (अकः सवर्णे०)–
युवाम् (अमि पूर्वः)।

अस्मद् औ–अस्मद् अम्–आवद् अम्–आव आ अम्–आवा अम्–आवाम्।

(4) युष्मद् जस्–युष्मद् अम् (ङे प्रथमयो०)–यूय अद् अम् (स्थानिवद्भाव। 'यूयवयौ जसि' से 'यूय')–

यूयद् अम् (अतो गुणे)–
यूय् अम् (शेषे लोपः)–
यूयम्।

अस्मद् जस्–अस्मद् अम्–वय अद् अम्–वयद् अम्–वय् अम्–वयम्।

(5) युष्मद् अम्–युष्मद् अम् (ङे प्रथम०)–त्व अद् अम् (स्थानिवद्भाव से 'अम्' को 'अम्' त्वमावेकवचने)–

त्वद् अम् (अतो गुणे)–

त्व आ अम् (द्वितीयायाश्च)–त्वा अम् (अकः सवर्णे०)–त्वाम् (अमि पूर्वः)।

अस्मद् अम्–म अद् अम्–मद् अम्–म आ अम्–मा अम्–माम्।

(6) युष्मद् औट् ('युवाम्' की तरह पूर्ववत्। युवद् अम् इस दशा में 'द्वितीयायाश्च' से आकार अन्तादेश होता है)—युवाम्। आवाम्।

(7) युष्मान्, अस्मान् (अग्रिम सूत्र का उदाहरण देखिए)।

शसो न 7.1.29

पद.—शसः 6.1, न–लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः।

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मद्भ्याम्।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अंग से उत्तर 'शस्' के स्थान पर 'न्' आदेश होता है।

यह 'ङे प्रथमयोरम्' का अपवाद है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा 'शस्' के सकार के स्थान पर 'न्' आदेश प्राप्त होता है परन्तु 'आदेः परस्य' से अकार के स्थान पर होता है।

उदा.—युष्मद् शस् (ङेप्रथमयो०। शसो न)–युष्मद् अस्–युष्मद् न् स्–युष्म आन् स् (द्वितीयायाश्च)–युष्मा न् स्–युष्मान् (अकः सवर्णे०। संयोगान्तस्य लोपः)–युष्मान् संयो-गान्त लोप के असिद्ध होने से यहाँ 'न लोपः प्रातिपदि०' की प्रवृत्ति नहीं होती है। 'अट्कुप्वाङ्०' के द्वारा प्राप्त णत्व का 'पदान्तस्य' के द्वारा निषेध होता है।

अस्मद् शस्–अस्मद् न् स्–अस्म आन् स्–अस्मान्।

भ्यसो भ्यम् 7.1.30

पद.—भ्यसः 6.1, अभ्यम् 1.1

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मद्भ्याम्।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अंग से उत्तर 'भ्यस्' के स्थान पर 'अभ्यम्' आदेश होता है 'न विभक्तौ तुस्माः' के द्वारा 'अभ्यम्' के मकार की इत्संज्ञा का निषेध होता है।

उदा.—युष्मद् भ्यस्–युष्मद् अभ्यम्–युष्म् अभ्यम्–युष्म-भ्यम् (शेषे लोपः)। अभ्यम् अजादि विभक्ति है, परन्तु अनादेश नहीं है। अतः 'योऽचि' की प्रवृत्ति (यकारादेश) नहीं होती है।

'शेषे लोपः' से अन्त्यलोप पक्ष में 'अतो गुणे' के द्वारा पररूप होता है—युष्म अभ्यम्–युष्मभ्यम्।

अस्मद् भ्यस्–अस्मद् अभ्यम्–अस्म् अभ्यम्–अस्मभ्यम्।

विशेष—कुछ विद्वान् 'अभ्यम्' के स्थान पर 'भ्यम्' आदेश मानते हैं। उनके अनुसार—युष्मद् भ्यस्–युष्मद् भ्यम्–

युष्म भ्यम् ('शेषे लोपः' से अन्त्यलोप)—युष्मभ्यम् इस दशा में भ्यम् हलादि विभक्ति परे है, परन्तु वह अनादेश नहीं है। अतः 'युष्मदस्मदोरनादेशे' की प्रवृत्ति 'आकार अन्तादेश) नहीं होता है।

अब युष्म भ्यम् इस दशा में 'बहुवचने झल्येत्' के द्वारा एत्व प्राप्त हुआ। 'अंगवृत्ते पुनर्वृत्तौ अविधिर्निष्ठितस्य' (प०) के द्वारा निवारण हो गया।

इस परिभाषा का तात्पर्य है कि किसी अंगाधिकार में प्रोक्त विधि के द्वारा परिनिष्ठित प्रयोग (युष्मभ्यम्) बन जाता है अर्थात् इष्टसिद्धि हो जाती है तो अंगाधिकार प्रोक्त अन्य विधि (बहुवचने झल्य०) प्रवृत्त नहीं होती है।

काशिकाकार 'भ्यम्' आदेश स्वीकार करते हैं तथा उन्होंने दोनों प्रकार का मत प्रकट किया है।[1]

---

1. काशि० 6.1.30 ... भ्यसः भ्यम् इत्ययम् आदेशो भवति। ...। केचित् पुनरभ्यमादेशमेत्व निवृत्त्यर्थं कुर्वन्ति।
—द्र० न्यास० 6.1.30 ते हि केचिद् भ्यमादेशम् इच्छन्ति, केचिद् अभ्यमादेशः।
—द्र० पद० 6.1.30 भ्यमादेशः, अभ्यमादेश इति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चम्या अत् 7.1.31

पद.—पञ्चम्याः 6.1, अत् 1.1

अनु.—युष्मदस्मद्भ्याम् अंगस्य भ्यसः ।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अंगों से उत्तर पञ्चमी विभक्ति के 'भ्यस्' के स्थान पर 'अत्' होता है । 'अत्' का तकार उच्चारणार्थ है ।

अनेकाल् होने से 'अत्' सर्वादेश होता है ।

उदा.—युष्मद् भ्यस्–युष्मद् अत्–युष्म् अत् (शेषे लोपः)–युष्मत् ।

अस्मद् अत्–अस्म् अत्–अस्मत् ।

एकवचनस्य च 7.1.32

पद.—एकवचनस्य 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—युष्मदस्मद्भ्याम् अंगस्य पञ्चम्याः अत् ।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अंग से उत्तर पंचमी के एकवचन (ङसि) के स्थान पर 'अत्' होता है ।

उदा.—युष्मद् ङसि–युष्मद् अत्–
त्व अद् अत् (त्वमावेकवचने)–
त्वद् अत् (अतो गुणे)–
त्व् अत् (शेषे लोपः)–
त्वत् ।

अस्मद् ङसि–अस्मद् अत्–म अद् अत्–मद् अत्–म् अत्–मत् ।

साम आकम् 7.1.33

पद.—सामः 6.1, आकम् 1.1

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मद्भ्याम् ।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अंग से उत्तर 'साम्' के स्थान पर 'आकम्' आदेश होता है ।

युष्मद् आम्–
युष्मद् आकम् (प्रकृतसूत्र)–

युष्म आकम् (अन्त्यलोप पक्ष में—शेषे लोपः)–युष्माकम् (अकः सवर्णे दीर्घः) ।

युष्म् आकम् (टिलोपपक्ष)–
युष्माकम् ।
अस्मद् आकम्–अस्म् आकम्–अस्माकम् ।

विशेष—यहाँ 'साम्' पद के द्वारा सुट् सहित आम् (षष्ठी बहुवचन) का ग्रहण इष्ट है । 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' के द्वारा अदन्त सर्वनामसंज्ञक अंग से उत्तर 'आम्' को 'सुट्' आगम होता है । युष्मद् व अस्मद् अंग अदन्त नहीं होता है । अतः इनसे परे 'आम्' को 'सुट्' सम्भव नहीं । तब शंका है कि सूत्र में 'सामः' पद व्यर्थ है, इसके स्थान पर 'आमः' होना चाहिए था ।

वस्तुतः यहाँ 'साम्' निर्देश भावी 'सुट्' को सूचित करता है ।[1] 'आकम्' आदेश करने के पश्चात् 'शेषे लोपः' (अन्त्यलोप पक्ष में) के द्वारा दकार का लोप होकर अकारान्त अंग (युष्म/अस्म) बचता हैं । तब इनसे परे 'आम्' को सुट् आगम प्राप्त होता है । उसकी निवृत्ति के लिए 'साम्' ऐसा निर्देश किया गया है ।

तात्पर्य यह कि प्रकृतसूत्र के द्वारा 'आम्' के स्थान पर 'आकम्' आदेश किया गया है तथा अन्त्य लोपपक्ष में 'आम्' को प्राप्त सुट् आगम का निषेध होता है ।

आत औ णलः 7.1.34

पद.—आतः 5.1, औ–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, णलः 6.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—आकारान्त अंग से उत्तर 'णल्' के स्थान पर 'औ' आदेश होता है ।

'आत्' पद में तकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—पा तिप् (लिट् प्र०पु० एक०)–
पा णल् (णलतुसस्०)–

पा औ अब द्वित्व (पा० 6.1.8) तथा वृद्धि (वृद्धिरेचि–पा० 6.1.85) युगपद् प्राप्त होते हैं । परत्वाद् वृद्धि प्राप्त हुई । 'द्विर्वचनेऽचि' से निषेध हुआ ।

पा पा औ (द्वित्व)–
प पा औ (अभ्यासकार्य)–
पपौ (वृद्धि) ।

इसी प्रकार—ददौ, तस्थौ, जग्लौ ।

उपर्युक्त सभी रूपों में वृद्धि एकादेश होकर रूप निष्पन्न हुए हैं । इन सभी स्थलों पर आदेशभूत 'औ' या 'ओ' दोनों ही हो सकते हैं । रूप सिद्धि में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा । अतः प्रकृतसूत्र के स्थान पर 'आत ओ णलः' पाठ करने में मात्रा लाघव होता है ।

परन्तु 'आत ओ णलः' न्यास की दशा में 'दरिद्रौ' रूप न बन सकेगा । दरिद्रा ओ–यहाँ आकार का लोप होता है । तब

1. काशि० 7.1.33 तस्यैव तु भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दरिद्रो' अनिष्ट रूप बन जायेगा । अतः 'आत औ णलः' स्वरूप उचित है ।

तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् 7.1.35

पद.—तुह्योः 6.2, तातङ् 1.1, आशिषि 7.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—आशीर्वाद अर्थ में 'तु' और 'हि' के स्थान पर विकल्प से 'तातङ्' आदेश होता है ।

'तु' तथा 'हि' के द्वारा लोट् के प्र०पु० तथा म०पु० के एकवचन ही गृहीत होते हैं ।

यद्यपि प्र०पु० बहुवचन के 'अन्तु' में भी 'अंशतः 'तु' होता है, तदपि 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य' परिभाषा के द्वारा यहाँ 'तु' के अनर्थक होने से इसका ग्रहण नहीं होता है ।

चूँकि 'तु' पित् है । अतः अनुदात्त है । इससे अनुदात्त 'तात्' ही होता है ।

इसी प्रकार आतिदेशिक अपित्त्व के कारण उदात्त 'हि' को उदात्त 'तात्' ही होता है ।

तातङ् के ङकार व अकार की इत्संज्ञा है । ङित् होने से तातङ् अन्त्य वर्ण के स्थान पर प्राप्त होता है (ङिच्च) ।

परन्तु पर होने से यह सर्वादेश (अनेकाल्शित् सर्वस्य) होता है ।

उदा.—जीव् तिप् (आशिषि लिङ्लोटौ, तिप्)-जीव् शप् तु (शप्, एरुः)-जीवतु-जीवतात् ।

पक्ष में—जीवतु ।

जीव् शप् सिप्-जीव् अ हि (सेर्ह्यपिच्च)-जीवतात् । पक्ष में—जीव (अतो हेः) ।

विशेष—अष्टाध्यायी में प्रत्यय को ङित्करण के दो प्रयोजन होते हैं—

(क) अन्तादेश । यथा—'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णा०' तथा 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' ।

(ख) गुणवृद्धिनिषेध । यथा—'सार्वधातुकमपित्' (आतिदेशिक ङित्) तथा 'यासुट् परस्मैपदेषू०' (औपदेशिक ङित्) । प्रकृतसूत्र में—

1. तातङ् को ङित् करने के भी दो फल हैं—

(क) तिप् तथा सिप् पित् प्रत्यय हैं । इनके स्थान पर होने वाला आदेश स्थानिवद्भाव से पित् होता है । तातङ् आदेश ङित्करण के कारण पित् नहीं होता है ।

(ख) तातङ् को ङित्करण गुण और वृद्धि के निषेध के लिए है । यथा—

यु तातङ्—युतात् यहाँ 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' से वृद्धि नहीं होती है ।

द्विष् तात्—द्विष्टात् यहाँ प्राप्त लघूपधगुण का निषेध हो जाता है ।

2. 'आशिषि' अर्थात् **आशीर्वाद** अर्थ में ही 'तातङ्' आदेश विकल्प से होता है—

गच्छतु भवान् ग्रामम् यहाँ आशीर्वाद अर्थ नहीं है । अतः 'तातङ्' न हुआ ।

विदेः शतुर्वसुः 7.1.36

पद.—विदेः 5.1, शतुः 6.1, वसुः 1.1

अनु.—अंगस्य । अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—विद् अंग से उत्तर 'शतृ' प्रत्यय के स्थान पर 'वसु' आदेश विकल्प से होता है ।

वसु के उकार की इत्संज्ञा होती है ।

वसु को उगित् करण 'वसोः सम्प्रसारणम्' के लिए किया गया है ।

धातुपाठ में विद् धातु का अनेक गणों में पाठ है, परन्तु यहाँ आदादिक विद् का ही ग्रहण है । यथा—

(क) विद सत्तायाम् (दिवा०) तथा विद विचारणे (रु०) —दोनों धातु आत्मनेपदी हैं । अतः इन से पर शतृ की प्राप्ति नहीं है ।

(ख) विद् लाभे (तुदा०) उभयपदी है । परस्मैपद की दशा में शतृ प्राप्त है परन्तु वहाँ 'श' विकरण का व्यवधान है ।

उदा.—विद् शतृ (लटः शतृशानचा०)-
विद् अत्-विद् शप् अत्-विद् अत् (लुक्)-
विद् वसु-विद्वस् सु-विद्वान् ।

पक्ष में विद् अत्-विदन् (सु) ।

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37

पद.—समासे 7.1, अनञ्पूर्वे 7.1, क्त्वः 6.1, ल्यप् 1.1

अर्थ—नञ् नहीं है पूर्वपद में जिसके ऐसे समास में क्त्वा के स्थान पर 'ल्यप्' आदेश होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ समास के पूर्व पद में नञ् से भिन्न कोई अव्यय हो तो क्त्वा को 'ल्यप्' होता है। 'ल्यप्' के लकार व पकार की इत्संज्ञा होती है।

क्त्वा आर्धधातुक कित् कृत् प्रत्यय है। अतः ल्यप् भी स्थानिवद्भाव से कित् व आर्धधातुक हुआ।

'क्त्वातोसुन्कसुनः' से ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होता है।

ल्यप् के अनेकाल् होने से यह सर्वादेश है। लित् करण स्वरार्थ है तथा पित् करण तुक् आगम के लिए है।

उदा.—प्र कृ क्त्वा (समानकर्तृकयोः पूर्वकाले। एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्)।

प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' से निषेध।
प्र कृ क्त्वा च (कुगतिप्रादयः से समास)–
प्र कृ ल्यप्–प्रकृ य (अनुबन्धलोप)–
प्रकृत्य (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्) –
प्रकृत्य (सु, लुक्)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'समासे' अर्थात् **समास** में ही क्त्वा को 'ल्यप्' होता है—कृत्वा यहाँ समास नहीं है। अतः ल्यप् आदेश न हुआ।

2. 'अनञ् पूर्वे' अर्थात् **नहीं है नञ् पूर्वपद में** जिसके ऐसे समास में क्त्वा को ल्यप् होता है—

अकृत्वा यहाँ पूर्वपद में नञ् अव्यय है। अतः ल्यप् आदेश न हुआ।

क्त्वाऽपि च्छन्दसि 7.1.38

पद.—क्त्वा-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, अपि–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—समासे अनञ्पूर्वे क्त्वः ल्यप्।

अर्थ—वेद में अनञ् पूर्वपद वाले समास में क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होता है तथा क्त्वा भी होता है। 'अपि' पद के द्वारा विधि का व्यभिचार उपस्थित होता है।

उदा.—(1) परिधापयित्वा (काठ० सं० 6.8) यहाँ समास के पूर्वपद में नञ् अव्यय नहीं है। अतः क्त्वा को ल्यप् प्राप्त हुआ, परन्तु क्त्वा को क्त्वा ही हो गया है।

इसी प्रकार प्रत्यर्पयित्वा (शौ०सं० 12.2.55)।

(2) निषद्य (ऋ० 1.177.4)। उद्धृत्य (काठ०सं० 6.8) यहाँ क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हुआ है।

विशेष—'क्त्वाऽपि च्छन्दसि' के स्थान पर 'वा छन्दसि' सूत्र न्यास में लाघव होता, परन्तु 'अपि' पद सभी विधियों के व्यभिचारार्थ प्रयुक्त होता है। अतः समास से अन्यत्र भी 'ल्यप्' देखा जाता है—

अर्च्य तान् यहाँ समास न होने पर भी क्त्वा को ल्यप् हुआ है।

सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः 7.1.39

पद.—सुपाम् 6.3, सुलुक्पूर्व .... याजालः 1.3

अनु.—छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में सुप् प्रत्ययों के स्थान पर सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच् तथा आल् होते हैं।

उदा.—(1) (सुपां सुः) पन्थाः (ऋ० 10.84.23) पथिन् जस् यहाँ 'जस्' के स्थान पर 'सु' हुआ है।

वेद के विषय में सुप् के स्थान पर भिन्न सुप् हो जाया करता है[1]—

दक्षिणायाः (ऋ० 1.164.9) यहाँ 'ङि' के स्थान पर 'ङस्' हुआ है।

वेद के विषय में तिङ् के स्थान भिन्न तिङ् हो जाया करता है[2]—

तक्षति (ऋ० 1.162.6) यहाँ 'झि' के स्थान पर 'तिप्' हुआ है।

(2) (सुपां लुक्) चर्मन् (तै०सं० 7.5.9.3)। व्योमन् (यजु० 19.7) यहाँ 'ङि' का लुक् हुआ है।

(3) (सुपां पूर्वसवर्ण दीर्घः)–धीती (ऋ० 1.164.8)। सुष्टुती (ऋ० 2.32.4) यहाँ 'टा' विभक्ति को पूर्वसवर्ण दीर्घ हो गया है।

लोक में धीत्या, सुष्टुत्या प्रयोग होते हैं।

(4) (सुपाम् आ)–यन्तारा (तै०सं० 4.6.9.3) यहाँ 'औ' विभक्ति के स्थान पर 'आ' आदेश हुआ है।

(5) (सुपाम् आत्)–ताद् ब्राह्मणात् (यहाँ सुप् विभक्ति को

1. काशि० 7.1.39 (वा०) सुपां सुपो भवन्तीति वक्तव्यम्।
2. वही (वा०) तिङां तिङो भवन्तीति वक्तव्यम्।
3. काशि० 7.1.39 तान् ब्राह्मणानिति प्राप्ते।
4. वै०सि०कौ० (भाग 4) सूत्र 3561।
5. काशि० (न्यास) 7.1.39 द्वितीयैकवचनस्याऽऽत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकार आदेश हुआ है । काशिकाकार[3] के अनुसार शस् विभक्ति को आकार आदेश हुआ है, परन्तु भट्टोजि दीक्षित[4] व न्यासकार[5] के अनुसार 'अम्' को 'आ' हुआ है ।

(6) (सुपां शे) युष्मे (ऋ० 8.68.19) । अस्मे (ऋ० 4.49.4) यहाँ जस् विभक्ति को 'शे' आदेश हुआ है ।

(7) (सुपां या) उरुया (मै० 3.7.8) यहाँ 'टा' को 'या' आदेश हुआ है ।

इसी प्रकार–धृष्णुया (यजु० 27.38) । सुगातुया (ऋ० 1.97.2) ।

(8) (सुपां डा)–नाभा (शौ सं० 7.61.1, ऋ० 1.143.4) यहाँ 'ङ्' के स्थान पर 'डा' हुआ है ।

(9) (सुपां ड्या) अनुष्ट्या (मै० 4.13.4) यहाँ अनुष्टुप् टा–अनुष्टुप् ड्या–अनुष्ट्या (टा को ड्या, टिलोप) होकर रूप बना है ।

(10) (सुपां याच्) साधुया (ऋ० 10.66.12, 1.46.11) साधु सु (स्वमोर्नपुँसकात्)–साधु याच्–साधुया बनता है ।

इसी प्रकार–अनुष्ठुया (ऋ० 4.4.14) ।

(11) (सुपाम् आल्) वसन्ता (मै०2.3.4) यहाँ 'ङि' सुप् को 'आल्' आदेश हुआ है ।

विशेष—वेद में सुपों के स्थान पर इया, डियाच्, ईकार, आङ्, अयाच् तथा अयार् आदेश होते हैं[1]—

उर्विया (ऋ० 1.92.9) यहाँ 'टा' सुप् को 'इया' आदेश हुआ है ।

सुक्षेत्रिया यहाँ भी 'टा' को 'इया' हुआ है । सरसी (ऋ० 7.103.2) 'ङि' सुप् को 'ई' हुआ है ।

प्रबाहवा (ऋ० 2.38.2) 'टा' के स्थान पर 'आङ्' हुआ है ।

स्वप्नया (अथ० 5.7.8) 'टा' को 'अयाच्' हुआ है ।

नावया (ऋ० 1.97.8) 'टा' को 'अयार्' हुआ है ।

अमो मश् 7.1.40

पद.—अमः 6.1, मश् 1.1

अनु.—छन्दसि 7.1

अर्थ—वेद के विषय में 'अम्' के स्थान पर 'मश्' आदेश होता है ।

'तस्थस्थमिपां०' के द्वारा 'मिप्' के स्थान पर होने वाले 'अम्' आदेश का यहाँ ग्रहण किया गया है[2]—

शित् होने से 'मश्' सर्वादेश होता है ।

मश् का अकार उच्चारणार्थ है ।[3]

उदा.—वधीम् (ऋ० 1.165.8) यहाँ 'अम्' को 'मश्' हो गया है । 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' से अट् का अभाव हो गया ।

लोपस्त आत्मनेपदेषु 7.1.41

पद.—लोपः 1.1, तः 6.1, आत्मनेपदेषु 7.3

अनु.—छन्दसि ।

अर्थ—वेद के विषय में आत्मनेपद में वर्त्तमान तकार का लोप होता है ।

उदा.—(1) अदुह्व (मै० 4.2.1) यहाँ तकार का लोप हुआ है । 'बहुलं छन्दसि' से रुट् आगम भी हुआ है ।

लोक में 'अदुहत' होता है ।

(2) दुह्वाम् (अथ० 8.7) यहाँ भी पूर्ववत् तकार लोप तथा रुट् आगम हुआ है ।

लोक में 'दुग्धाम्' होता है ।

(3) शोभे (ऋ० 1.120.5) ।

(4) दुह्वे (ऋ० 5.69.2) ।

(5) शेरे (शत० 2.3.1.2) ।

विशेष—1. 'क्त्वाऽपिच्छन्दसि' से यहाँ 'अपि' पद अनुवृत्त है । अतः तकारलोप नहीं भी होता है—कुरुते ।

2. 'आत्मनेपदेषु' अर्थात् **आत्मनेपद** में वर्त्तमान तकार का लोप होता है—

दुहन्ति (तै० ब्रा० 3.7.4.16) यहाँ आत्मनेपद नहीं है । अतः तकारलोप न हुआ ।

ध्वमो ध्वात् 7.1.42

पद.—ध्वमः 6.1, ध्वात् 1.1

अनु.—छन्दसि ।

अर्थ—वेद के विषय में 'ध्वम्' के स्थान पर 'ध्वात्' आदेश होता है ।

1. महा० 7.1.39 (वा०)–इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् । वही (वा०)—आड्याजयारामुपसंख्यानम् ।
2. काशि० 7.1.40 अमिति मिबादेशो गृह्यते ।
3. काशि० (न्यास) 7.1.40 अकार उच्चारणार्थः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेकाल् होने से यह सर्वादेश है।

उदा.—वारयध्वात् (मै० 3.4.13, ऐ०ब्रा० 3.6)—वृ णिच् ध्वम्–वारयध्वम्–वारयध्वात्।

यजध्वैनमिति च 7.1.43

पद.—यजध्वैनम् 1.1, इति–अव्य०, च–अव्य०।

अनु.—छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में 'यजध्वैनम्' शब्द का निपातन किया जाता है।

उदा.—यजध्वमेनम् के स्थान पर 'यजध्वैनम्' (ऋ० 8.2.37) हो गया।

यहाँ 'एनम्' परे रहते 'यजध्वम्' के मकार का लोप निपातन से होता है।

विशेष—काशिकाकार 'यजध्वैनम्' के स्थान पर 'यजध्यै-नम्' पाठ मानते हैं। उन्होंने सूत्र के द्वारा दो कार्यों का निपातन किया है[1]—

यजध्वम् एनम् (मकार लोप)
यजध्व एनम् (वकार को यकार)
यजध्यैनम्।

इस विषय में न्यासकार मौन है तथा पदमंजरीकार ने परोक्षतः काशिकाकार का समर्थन किया है।[2]

परन्तु वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीकार ने इसे काशिकाकार का प्रमाद माना है।[3]

तस्य तात् 7.1.44

पद.—तस्य 6.1, तात् 1.1

अनु.—छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में 'त' के स्थान पर 'तात्' आदेश होता है।

यहाँ 'त' के द्वारा लोट् म०पु० बहुव० के 'थ' का आदेश 'त' का ग्रहण किया जाता है।

उदा.—कृणुतात् (मै० 4.3.4.25) यहाँ 'तात्' आदेश हुआ है। लोक में 'कृणुत' होता है।

गमयतात् (ऐ०ब्रा० 2.6)।

तप्तनप्तनथनाश्च 7.1.45

पद.—तप्तनप्तनथनाः 1.3, च–अव्य०।

अनु.—छन्दसि तस्य।

अर्थ—वेद के विषय में 'त' के स्थान पर तप्, तनप्, तन तथा थन आदेश पर्यायेण होते हैं।

उदा.—(1) शृणोत। सुनोत (ऋ० 7.32.8)।

(2) दधातन (ऋ० 8.101.5, ऐ०ब्रा० 1.9)।
जुहोतन (यजु० 3.1)।

(3) ब्रवीतन (ऋ० 1.84.5)।
जुजुष्टन (ऋ० 4.36.7)।

विशेष—'अपि' पद के अधिकार वशात् लोट् के 'त' से अन्यत्र (अर्थात् लङ् के 'त' के स्थान पर) भी 'तप्' आदि आदेश प्राप्त होते हैं—

अब्रवीतन (ऋ० 1.161.3)।
अभूतन (ऋ० 1.191.5; शौ०सं० 4.37.5)।

इन्दतो मसि 7.1.46

पद.—इदन्तः 1.1, मसि–लुप्तप्रथमान्तरूपम्।

अनु.—छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में 'मस्' ह्रस्व इकार अवयव वाला होता है।

तात्पर्य यह है कि 'मस्' के स्थान पर 'मसि' देखा जाता है। 'मसि' में इकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—दीपयामसि (अथ० 12.2.5)।
भञ्जयामसि (पै०सं० 2.20.4)।
वासयामसि (शौ०सं० 19.47.9)।
एमसि (ऋ० 1.1.7)
इनीमसि (सा०ब्रा० 1.8.10)।

क्त्वो यक् 7.1.47

पद.—क्त्वः 6.1, यक् 1.1

अनु.—छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में 'क्त्वा' को 'यक्' आगम होता है।

यक् का ककार इत् है। अतः 'क्त्वा' का अन्त्य अवयव बनता है।

---

1. काशि० 7.1.43 मकारलोपो निपात्यते वकारस्य यकारः ...।
2. काशि० (पद०) 7.1.43 बह्वृचास्तु वकारमेवाधीयते।
3. वै०सि०कौ० (भाग 4) सूत्र 3562।
वकारस्य यकारो निपात्यत इति वृत्तिकारोक्तिः प्रामादिकी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—दत्वाय (ऋ० 10.85.33)।
युक्त्वाय (यजु० 11.3)।
कृत्वाय (यजु० 11.59 पै०सं० 13.1.5)।
हत्वाय (शौ० सं० 4.31.2)।
वृत्वाय (यजु० 11.19। मै०2.7.2)।
जग्ध्वाय (ऋ० 10.146.5)।

इष्ट्वीनमिति च 7.1.48

पद.—इष्ट्वीनम् 1.1, इति-अव्य०, च-अव्य०।

अनु.—छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में क्त्वाप्रत्ययान्त 'इष्ट्वीनम्' पद का निपातन किया जाता है।

उदा.—यज् क्त्वा-इष्ट्वा-इष्ट्वीनम् (ईनम् अन्तादेश) द्र० आश्व० श्रौ० पृ० 204। सूत्रस्थ 'च' पद अनुक्त समुच्चय के लिए है। अतः 'पीत्वीनम्' आदि प्रयोग भी प्राप्त होता है।

स्नात्व्यादयश्च 7.1.49

पद.—स्नात्व्यादयः 1.3, च-अव्य०।

अनु.—छन्दसि।

अर्थ—वेद के विषय में 'स्नात्वी' इत्यादि शब्द निपातन-सिद्ध है।

उदा.—स्नात्वा-स्नात्वी (ईकार अन्तादेश)
द्र० मै०सं० 3.11.10, तै०ब्रा० 2.6.6.3
पीत्वी (ऋ० 3.40.7, शत० 4.5.4.10)
कृत्वी (ऋ० 10.15.12)।
हित्वी (यजु० 33.93)।

आज्जसेरसुक् 7.1.50

पद.—आत् 1.1, जसेः 6.1, असुक् 1.1

अनु.—छन्दसि अंगस्य।

अर्थ—वेद के विषय में अवर्णान्त अंग से उत्तर 'जस्' को 'असुक्' आगम होता है।

'असुक्' के ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है।

असुक् कित् है। अतः जस् का अन्त्य अवयव होता है।

उदा.—देव जस्-देवास् असुक्-देवासः।
ब्राह्मणासः (ऋ० 7.103.7)।
सोम्यासः (ऋ० 10.15.च०1)।

अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि 7.1.51

पद.—अश्वक्षीरवृषलवणानाम् 6.3, आत्मप्रीतौ 7.1, क्यचि 7.1

अनु.—अंगस्य असुक्।

अर्थ—आत्मप्रीति के अर्थ में क्यच् परे रहते अश्व, क्षीर, वृष तथा लवण-इन अंगों को 'असुक्' आगम होता है।

उदा.-(1) आत्मनोऽश्वम् इच्छति-अश्व क्यच्-अश्व असुक् य-अश्वस् य (अनुबन्ध लोप, अतो गुण)-अश्वस्यति (तिप्)।
(2) क्षीर असुक् क्यच्-क्षीरस्यति बालः (= बच्चा दूध चाहता है)।
(3) वृषम् आत्मन इच्छति-वृषस्यति गौः। द्र० वृषस्यन्ती (भट्टि० 4.30)।
(4) लवणस्यति उष्ट्रः (=ऊँट लवण की इच्छा करता है)।

विशेष—1. 'आत्मप्रीतौ' अर्थात् 'आत्मा की प्रसन्नता' अर्थ में ही सूत्रोक्त असुक् आगम होता है—

अश्वम् इवाऽऽचरति-अश्वीयति यहाँ प्रीति अर्थ नहीं है। अतः असुक् आगम न हुआ।

इसी प्रकार-वृषीयति, लवणीयति।

2. महाभाष्य में दो वार्त्तिक[1] प्राप्त होते हैं। इनके अनुसार अश्व तथा वृष अंगों को असुक् आगम मैथुन की इच्छा में ही होता है तथा क्षीर तथा लवण अंगों को असुक् आगम लालसा अर्थ में ही होता है।

3. लालसा अर्थ में सभी प्रातिपदिकों से 'असुक्' आगम होता है।[2]—

दधि क्यच्-दधि असुक् यति-दध्यस्यति।

4. लालसा अर्थ में सभी प्रातिपदिकों से 'सुक्' आगम किसी किसी आचार्य के मत में होता है।[3]

दधि सुक् क्यच्-दधिस्यति।

आमि सर्वनाम्नः सुट् 7.1.52

पद.—आमि 7.1, सर्वनाम्नः 5.1, सुट् 1.1

1. महा० 7.1.51 (वा०)—अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामिति वक्तव्यम्।
(वा०) क्षीरलवणयोर्लालसायामिति वक्तव्यम्।
2. महा० 7.1.51 (वा०)—सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायामसुग्वक्तव्यः।
3. महा० 7.1.51 (वा०)—सुग्वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—आत् अंगस्य ।

अर्थ—अवर्णान्त से पर सर्वनाम से विहित आम् परे रहते सुट् आगम होता है ।

'सर्वनाम्नः' में पंचमी है तथा 'आमि' में सप्तमी है । सप्तमी की अपेक्षा पंचमी बलवान् होती है । अतः यह 'सुट्' आगम सर्वनाम अंग से उत्तर अव्यवहित 'आम्' को होता है । सुट् के टकार व उकार की इत्संज्ञा होती है । अतः टित् होने से आदि में होगा ।

उदा.—(1) सर्व आम्–सर्व सुट् आम्–सर्व साम्–सर्वेसाम् (बहुवचने झल्येत्)–सर्वेषाम् (आदेश प्रत्यययोः) ।

(2) सर्व टाप्–सर्वा आम्
सर्वा सुट् साम्–सर्वासाम् ।

(3) यद्–य अ–य (त्यदादीनामः । अतो गुणे)–
य आम्–य सुट् आम्–
ये साम् (बहुवचने०)–
येषाम् ।

(4) यासाम् ।

(5) इसी प्रकार तेषाम्, तासाम् ।

अष्टाध्यायी में 'आम्' चार स्थानों पर प्राप्त होता है—

(क) सुप् प्रत्यय–षष्ठी बहुवचन,

(ख) सुप् आदेश–'ङेराम् नद्याम्नीभ्यः' के द्वारा 'ङि' के स्थान पर प्राप्त 'आम्' आदेश,

(ग) 'किमेत्तिङव्ययघादाम्बु' से होने वाला 'आम्',

(घ) 'कास्प्रत्ययादाम्' से लिट् परे रहने होने वाला 'आम्'।

अन्तिम दो 'आम्' प्रत्ययों का यहाँ प्रयोजन नहीं है । ये दोनों 'आम्' सर्वनाम से प्राप्त नहीं है ।

'आमि' इस पद के द्वारा षष्ठी बहुवचन का ही ग्रहण होता है, न कि 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' के द्वारा प्राप्त 'आम्' आदेश का ।

कारण कि, 'आम्' आदेश को परवर्त्ती होने से आट्, याट् व स्याट् हो जाते हैं ।

त्रेस्त्रयः 7.1.53

पद.—त्रेः 6.1, त्रयः 1.1

अनु.—अंगस्य आमि ।

अर्थ—'आम्' परे रहते 'त्रि' अंग के स्थान पर 'त्रय' आदेश होता है ।

अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है ।

'त्रेः' पद में एकवचन का निर्देश अनुकरण के कारण है अर्थात् यहाँ 'त्रि' शब्द संख्यावाची न होकर अनुकरणात्मक है ।

उदा.—त्रि आम्–त्रय आम्–
त्रय नुट् आम् (ह्रस्वनद्यापो०)–
त्रयानाम् (नामि)–
त्रयाणाम् (अट्कुप्वाङ्नुम्०) ।

वेद में 'त्रीणाम्' भी देखा जाता है[1]—त्रीणाम् (ऋ० 10.185.1, यजु० 3.31)

वेद में सभी विधियाँ वैकल्पिक होती हैं । अतः त्रयाणाम् भी प्राप्त होता है ।

ह्रस्वनद्यापो नुट् 7.1.54

पद.—ह्रस्वनद्यापः 5.1, नुट् 1.1

अनु.—अंगस्य आमि ।

अर्थ—ह्रस्वान्त, नद्यन्त तथा आबन्त अंग से उत्तर 'आम्' को 'नुट्' आगम होता है ।

नुट् के उकार व टकार की इत्संज्ञा होती है । टित् होने से नुट् आदि में होता है ।

ह्रस्वान्त का अर्थ है—ह्रस्व अच् जिसके अन्त में है ।

नद्यन्त का अर्थ है—नदी संज्ञक शब्द जिसके अन्त में है । 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' के द्वारा नदी संज्ञा कही गई है ।

आबन्त का अर्थ है—आप् है अन्त में जिसके । आप् के द्वारा टाप्, चाप् व डाप् प्रत्ययों का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) देव आम्–देव नुट् आम्–देव नाम्–देवानाम् (सुपि च) ।

पति आम्–पति न् आम्–पतीनाम् । (नामि) ।
साधु आम्–साधूनाम् । (नामि) ।
पितृ आम्–पितॄणाम् (नामि । ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्) ।

(2) कुमारी आम्–कुमारी न् आम्–कुमारीणाम् ।
गौरी आम्–गौरीणाम् ।
ब्रह्मबन्धु आम्–ब्रह्मबन्धूनाम् ।

(3) खट्वा आम्–खट्वा नुट् आम्–खट्वानाम् ।
माला आम्–मालानाम् ।
बहुराजा (डाबुभाभ्या० से डाप्)—
बहुराज आम्–बहुराजानाम् ।
कारीषगन्ध्या आम्–कारीषगन्ध्यानाम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षट्चतुर्भ्यश्च 7.1.55

पद.—षट्चतुर्भ्यः 5.3, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य आमि नुट् ।

अर्थ—षट् संज्ञक तथा चतुर् शब्द से उत्तर 'आम्' को नुट् आगम होता है ।

'ष्णान्ता षट्' से षट्संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) पञ्चन् आम् (षट् संज्ञा)-
पञ्चन् नुट् आम्-पञ्च नाम्-
पञ्चन् आम् (नोपधायाः)-
पञ्चानाम् ।

'स्वादिष्वसर्वनाम०' से पदत्व होने पर व नलोप के असिद्ध होने पर ही उपधादीर्घ होता है ।

(2) सप्तन् आम्-सप्तानाम् ।

(3) अष्टन् आम्-अष्टन् नाम्-अष्ट आ नाम् (अष्टन आ विभक्तौ)-अष्टानाम् ।

(4) नवन् आम्-नवानाम् ।

(5) दशन् आम्-दशानाम् ।

(6) षष् आम्-षष् न् आम्-
षड् नाम्-ष ण् नाम-षण्णाम् ।

(7) चतुर् आम्-चतुर् न् आम्-चतुर्णाम् (रषाभ्यां नो णः समानपदे) ।

पक्ष में—चतुर्ण्णाम् (अचो रहाभ्यां च—०) ।

श्रीग्रामण्योश्छन्दसि 7.1.56

पद.—श्रीग्रामण्योः 6.2, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य आमि नुट् ।

अर्थ—वेद के विषय में श्री तथा ग्रामणी अंगों से उत्तर 'आम्' को 'नुट्' आगम होता है ।

उदा.—श्री आम्-श्रीन् आम्-श्रीणाम् (ऋ० 10.45.5)। ग्रामणी आम्-ग्रामणीनाम् (का०सं० 28.3) ।

गोः पादान्ते 7.1.57

पद.—गोः 5.1, पादान्ते 7.1

अनु.—छन्दसि अंगस्य आमि नुट् ।

अर्थ—वेद के विषय में ऋचा के पाद के अन्त में वर्त्तमान गो अंग से उत्तर 'आम्' को 'नुट्' आगम होता है ।

यहाँ 'छन्दसि' पद का अधिकार है । अतः 'पादान्त' के द्वारा ऋचा का पादान्त लिया जाता है तथा श्लोक का पादान्त नहीं ।

उदा.—विद्मा हि त्वा गोपतिं शूरगोनाम् (ऋ०10.47.1)। ऋचा के पाद के मध्य में 'गवाम्' (ऋ० 2.23.18) ही रहता है ।

इदितो नुम् धातोः 7.1.58

पद.—इदितः 6.1, नुम् 1.1, धातोः 6.1

अर्थ—इदित् धातु को नुम् आगम होता है । जिसका ह्रस्व इकार इत् होता है, उसे 'इदित्' कहते हैं ।

'मिदचोऽन्त्यात् परः' से 'नुम्' अन्त्य अच् से पर होता है ।

उदा.—कुडि-कुड्-कुनुम् ड्-कुन् ड्-कुण्ड् । अब लकारोत्पत्ति अथवा कृत् प्रत्यय की उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार—गुजि-गुनुम् ज्-गुंज्-गुञ्ज् (अब लिडादेश होकर) जुगुञ्ज (भट्टि० 2.19) ।

विशेष—1. ध्यान रहे प्रकृतसूत्र में 'गोः पादान्ते' से 'अन्ते पद का अधिकार होने से यदि ह्रस्व इकार की धातु के अन्त में इत्संज्ञा होती है तभी नुमागम होता है। अतः 'चक्षिङ्' में इकार की इत्संज्ञा होने पर भी 'नुम्' नहीं होता है।

2. 'भिदिर्' यहाँ 'इर्' इस समुदाय की इत्संज्ञा होती है, केवल इकार की नहीं । अतः नुम् नहीं होता है ।

शे मुचादीनाम् 7.1.59

पद.—शे 7.1, मुचादीनाम् 6.3

अनु.—अंगस्य नुम् ।

अर्थ—'श' परे रहते मुच् आदि धातुओं को 'नुम्' का आगम होता है ।

मुचादि आठ धातु हैं जो पाणिनीय धातुपाठ के तुदादिगण के अन्त में पठित हैं । यथा—

1. मुच्, 2. लिप्, 3. विद्, 4. लुप्, 5. सिच्, 6. कृत्, 7. खिद्, 8. पिश् ।

सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में 'श' विकरण होता है । इसके अतिरिक्त 'शतृ' व शानच् में 'श' है। अतः इन आठ धातुओं को पूर्वोक्त चार लकारों तथा शतृ-शानच् में ही 'नुम्' आगम होता है ।

उदा.—(1) मुच् श ति (लुट्, तिप्, श)-
मुनुम् च् अति-मुन् चति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सार्वधातुकमपित्' से 'श' ङित् है, तदपि 'अनिदितां हलः—' से नकारलोप वचनसामर्थ्य से नहीं होता है।

मुंचति (नश्चाऽपदान्तस्य०)–
मुञ्चति (अनुस्वारस्य ययि०)।

इसी प्रकार लुम्पति, विन्दति आदि में होता है।

(2) मुच् शतृ–मु नुम् शतृ–मुञ्चत् सु–मुञ्चन्।

इसी प्रकार अन्य प्रयोग। द्र० व्यलिम्पन् (भट्टि० 17.3)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'शे' अर्थात् **'श' परे रहते** ही 'नुम्' होता है—

मुच् तृच् यहाँ 'श' परे नहीं है। अतः नुम् न हुआ।

मोक्तृ सु–मोक्ता।

2. 'मुचादीनाम्' अर्थात् **'मुच्' आदि आठ** धातुओं को ही नुम् आगम होता है—

तुद् श तिप्–तुदति यहाँ 'तुद्' धातु मुचादि में परिगणित नहीं है। अतः 'श' परे रहते भी नुम् न हुआ।

महाभाष्य में कहा है कि तृम्फ आदि (तृफ्, दृफ्, गुफ्, उभ्, शुभ्) धातुओं से भी नुम् होता है, 'श' परे रहते[1]—

तृफ् शति–तृम्फति।

मस्जिनशोर्झलि 7.1.60

पद.—मस्जिनशोः 6.2, झलि 7.1

अनु.—झलादि प्रत्यय परे रहते मस्ज् और नश् धातुओं को नुम् आगम होता है।

उदा.—(1) मस्ज् तृच् (कृत् प्रत्यय हुआ)–

'मिदचोऽन्त्यात् परः' से अन्त्य अच् से पर नुम् प्राप्त हुआ, परन्तु 'मस्जेरन्त्यात् पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गसंयोगादि लोपार्थम्' (पा० 1.1.46 वा०) के द्वारा अन्त्य अल् से पूर्व नुम् हुआ। मस् नुम् ज् तृ—

म न् ज् तृ (स्कोः संयोगा०)—
मन् ग् तृ (चोः कुः)–
मन् क् तृ (खरि च)–
मंक् तृ (नश्चाऽपदान्त०)–
मङ्क्ता (अनुस्वारस्य ययि० । सु)।

(2) इसी प्रकार मङ्क्तुम्, मङ्क्तव्यम्

(3) मस्ज् थल् (लिट्)–

मस् नुम् ज् थ–म म स् न् ज् थ (नुम्, द्वित्व, अभ्यासकार्य)–

(भारद्वाज नियम से पाक्षिक इट्। इट् अभाव पक्ष में)–

म म न् ज् थ (स्कोः संयोगा०)–
म म न् क् थ (चोः कुः। खरि च)–
ममङ्क्थ (नश्चाऽप० । अनुस्वारस्य०)।

(इट् पक्ष में—ममज्जिथ)।

(4) मस्ज् तिप् (लुङ्)–अ म स् नुम् ज् सिच् त् (इतश्च। सिच्, नुम्, अट्)–

अमास् न् ज् स् त् (हलन्तलक्षणावृद्धि)–
अमान् ज् स् ई त् (स्कोः संयो०)–
अ मा न् ग् स् ई त् (चोः कुः)–

अमाङ्क्षीत् (खरि च, षत्व, नश्चापदान्त०; अनुस्वारस्य ययि०)।

इसी प्रकार–न्यमाङ्क्षीत् (भट्टि० 3.30)

(5) नश् तृच्–न नुम् श् तृ–
('रधादिभ्यश्च' से पाक्षिक इट्)
न न् ष् तृ (व्रश्च भ्रस्ज०)–
नंष्टा (नश्चाऽपदा० । सु)।

(6) इसी प्रकार–नंष्टुम्, नंष्टव्यम्।

(7) नश् थ (लिट्)–
('रधादिभ्यश्च' से पाक्षिक इट्)–
न नुम् श् थ (इट् अभाव, नुम्)–
न न न् श् थ (द्वित्वादि)–
न न न् ष् थ (व्रश्चभ्रस्ज०)–
न न न् ष् ठ (ष्टुना ष्टुः)–
ननंष्ठ (नश्चाऽपदान्त०)।

(इट् पक्ष में 'थलि च सेटि' के द्वारा 'नेशिथ' बनता है)।

(8) (ऌट् में) नङ्क्ष्यति–स्य, षत्व, ककार (षढोः कः सि), षत्व। द्र० विनङ्क्ष्यति (भट्टि० 16.26)।

(9) नश् सन्–निनङ्क्ष–(पूर्ववत्)
निनङ्क्ष उ सु–निनङ्क्षुः (भट्टि० 4.33)।

विशेष—'झलि' अर्थात् **झलादि प्रत्यय** परे रहते नुम् होता है—

मस्ज् ल्युट्–मज्जनम्।
नश् ल्युट्–नशनम्।
यहाँ नुम् न हुआ।

1. महा० 7.1.59 (वा०)—शे तृम्फादीनामुपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रधिजभोरचि 7.1.61

पद.—रधिजभोः 6.2, अचि 7.1

अनु.—अंगस्य नुम् ।

अर्थ—अजादि प्रत्यय परे रहते रध् व जभ् अंगों को नुम् आगम होता है ।

उदा.—(1) रध् णिच् शप् तिप्-र नुम् ध् इ अ ति-रन्धयति ।

(2) जभ् णिच् शप् तिप्-ज नुम् भ् इ अ ति-जम्भयति ।

'अचि' अर्थात् **अजादि** परे रहते ही नुम् होता है—

रध् तृच्-रद्धा यहाँ अजादि प्रत्यय नहीं है । अतः नुम् न हुआ ।

नेट्यलिटि रधेः 7.1.62

पद.—न-अव्य०, इटि 7.1, अलिटि 7.1, रधेः 6.1

अनु.—अंगस्य नुम् ।

अर्थ—लिट् को छोड़कर इडादि प्रत्यय परे रहते 'रध्' अंग को नुम् आगम नहीं होता है ।

उदा.—(1) रधिता-रधादिभ्यश्च से पाक्षिक इट् होता है । इट् पक्ष में नुम् का निषेध हुआ ।

(2) रधितुम् ।

विशेष—1. 'इटि' अर्थात् **इडादि प्रत्यय परे** रहते ही नुम् का निषेध होता है—

रध् ल्युट्-रध् अन यहाँ अजादि है, परन्तु इडादि नहीं है । अतः नुम् का निषेध नहीं होता है—रन्धनम् ।

2. 'अलिटि' अर्थात् **लिट् को छोड़कर** ही नुम् का निषेध होता है—

रध् वस् (लिट्)-र रन्ध् इट् व (इडादि है परन्तु लिट् होने से निषेध न हुआ)-ररन्धिव ।

रभेरशब्लिटोः 7.1.63

पद.—रभेः 6.1, अशब्लिटोः 7.2

अनु.—अंगस्य अचि नुम् ।

अर्थ—शप् को तथा लिट् को छोड़कर अजादि प्रत्यय परे रहते रभ् अंग को नुम् आगम होता है ।

उदा.—आ रभ् णिच् शप् तिप्-आ र नुम् भ् इ अ ति-आरम्भयति ।

विशेष—'अशब् लिटोः' अर्थात् **शप् और लिट् को** छोड़कर ही नुम् होता है—

आ रभ् शप् त-आरभते यहाँ शप् परे होने से नुम् का निषेध हुआ ।

आरेभे यहाँ लिट् का एश् प्रत्यय परे रहते नुम् न हुआ ।

लभेश्च 7.1.64

पद.—लभेः 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अचि नुम् अशब् लिटोः ।

अर्थ—शप् तथा लिट् को छोड़कर अजादि प्रत्यय परे रहते लभ् अंग को नुम् आगम होता है ।

उदा.-लभ् णिच् शप् तिप्-ल नुम् भ् इ अ ति-लम्भयति।

आङो यि 7.1.65

पद.—आङः 5.1, यि 7.1

अनु.—अंगस्य लभेः नुम् ।

अर्थ—यकारादि प्रत्यय के विषय में आङ् से उत्तर लभ् अंग को नुम् आगम होता है ।

उदा.—आल नुम् भ् ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्)-
आलम्भ्य टाप् सु-आलम्भ्या ।

'यि' में विषय सप्तमी है । अतः ण्यत् से पूर्व नुम् हो जायेगा । यदि पहले नुम् नहीं करते हैं तो 'पोरदुपधात्' से यत् प्राप्त हो जायेगा ।

नुम् को अनुस्वार व परसवर्ण होता है ।

विशेष—'आङः' अर्थात् **आङ् से उत्तर** लभ् को 'नुम्' होता है—

'लभ्यम्' यहाँ आङ् से उत्तर लभ् नहीं है । अंतः नुम् नहीं हुआ ।

उपात् प्रशंसायाम् 7.1.66

पद.—उपात् 5.1, प्रशंसायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य लभेः नुम् यि ।

अर्थ—प्रशंसा अर्थ में उप उपसर्ग से उत्तर लभ् अंग को नुम् आगम होता है यकारादि प्रत्यय के विषय में ।

उदा.—उप ल नुम् भ् य-उपलम्भ्य टाप् सु-उपलम्भ्या ।

प्रशंसा अर्थ गम्यमान न हो तो नुम् नहीं होता है—
उपलभ्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसर्गात् खल्घञोः 7.1.67

पद.—उपसर्गात् 5.1, खल्घञोः 7.2

अनु.—अंगस्य लभेः नुम् ।

अर्थ—खल् तथा घञ् प्रत्ययों के परे रहते उपसर्ग से उत्तर लभ् अंग को नुम् आगम होता है । 'ईषद्दुःसुषु०' से खल् होता है ।

उदा.—(1) ईषत् प्र ल नुम् भ् खल्-ईषत् प्रलम्भ सु-ईषत्प्रलम्भः ।
सुप्रलम्भः ।

(2) प्र ल नुम् भ् घञ्-प्रलम्भः (सु) ।

न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् 7.1.68

पद.—न-अव्य०, सुदुर्भ्याम् 5.2, केवलाभ्याम् 5.2

अनु.—उपसर्गात् अंगस्य लभेः खल्घञोः ।

अर्थ—खल् तथा घञ् परे रहते केवल सु तथा दुर् उपसर्गों से उत्तर लभ् अंग को नुम् नहीं होता है ।

उदा.—सुलभम् । दुर्लभम् ।
सुलाभः । दुर्लाभः ।

विशेष—'केवलाभ्याम्' अर्थात् केवल **'सु' तथा 'दुर्'** से उत्तर लभ् को नुम् होता है । इन उपसर्गों से पूर्व या उत्तर अन्य उपसर्ग न हो—

सुप्रलम्भः यहाँ 'सु' से उत्तर 'प्र' है । अतः नुम् हो गया ।

विभाषा चिण् णमुलोः 7.1.69

पद.—विभाषा 1.1, चिण्णमुलोः 7.2

अनु.—अंगस्य लभेः नुम् ।

अर्थ—चिण् तथा णमुल् परे रहते लभ् अंग को विकल्प से नुम् आगम होता है ।

उदा.—(1) लभ् त (लुङ्)—
अ लभ् चिण् त (च्लि, चिण्, अट्)-
(पाक्षिक नुम्)
अ ल नुम् भ् इ त-अ ल न् भ् इ त-
अ ल न् भ् इ (चिणो लुक्)-
अ लं भ् इ-अलम्भि ।
पक्ष में—अ लभ् इ त (चिण् भाव०)-
अलाभि (चिणो लुक्) ।

(2) लभ् णमुल्
ल नुम् भ् अम्-लम्भम्-
लम्भम् लम्भम्-लम्भंलम्भम् ।
पक्ष में—लाभंलाभम् ।

यह व्यवस्थित विभाषा है । अतः उपसर्ग युक्त लभ् से नित्य नुम् होता है—उपालम्भि ।

उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः 7.1.70

पद.—उगिदचाम् 6.3, सर्वनामस्थाने 7.1, अधातोः 6.1

अनु.—अंगस्य नुम् ।

अर्थ—सर्वनामस्थान प्रत्यय परे रहते धातुभिन्न उगित् को तथा जिसके नकार का लोप हो चुका हो ऐसी अञ्च् धातु को नुम् का आगम होता है ।

उगित् का अर्थ है—जिनका उकार, ऋकार व ऌकार इत् संज्ञक हो ।

'शि सर्वनामस्थानम्' तथा 'सुडनपुँसकस्य' से सर्वनामस्थान संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) भवत् (डवतु प्रत्यय) सु-भव नुम् त् स्-भवन् त् (सु का लोप)-भवान् त् (उपधा दीर्घ)-भवान् (संयोगान्त लोप) ।

(2) श्रेयस् (ईयसुन् प्रत्यय)-श्रेय न् स् सु-श्रेयान् स् स्-श्रेयान् स्-श्रेयान् ।

(3) पच त् (शतृ प्रत्यय)-पच न् त् सु-पचन् ।

(4) प्र अच् (अञ्च् धातु)-प्र अ नुम् च् सु-प्राङ् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. उगिदचाम्' अर्थात् **उगित्** को तथा **नकारलोप वाले अञ्च्** धातु को ही नुम् आगम होता है—

दृषद् सु-दृषद् यहाँ नुम् न हुआ ।

2. 'सर्वनामस्थाने' अर्थात् **सर्वनामस्थान प्रत्यय परे** रहते नुम् होता है—

भवत् शस्-भवतः शस् की सर्वनामसंज्ञा नहीं है । अतः नुम् न हुआ ।

3. 'अधातोः' अर्थात् **धातु से भिन्न** को ही नुम् होता है—

गोमन्तम् इच्छति-गोमत् यति यहाँ मतुप् प्रत्यय उगित् है । परन्तु धातु होने के कारण नुम् न हुआ ।

युजेरसमासे 7.1.71

पद.—युजेः 6.1, असमासे 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य सर्वनामस्थाने नुम् ।

अर्थ—सर्वनामस्थान परे रहते युज् अंग को नुम् होता है, परन्तु समास में नहीं होता है ।

धातुपाठ में 'युज्' धातु का दो बार पाठ प्राप्त होता है—

युजिर् योगे (रु० उभ०)
युज समाधौ (दिवा०) ।

प्रायः धातु के निर्देश में इक् अथवा शितप् प्रत्ययों का प्रयोग होता है ।[1] परन्तु 'युजि' पद में इक् का प्रयोग नहीं है । यहाँ इकार का निर्देश युजिर् धातु के ग्रहण के लिए है । अतः युज समाधौ का ग्रहण नहीं होता है ।

उदा.—(1) युजिर् क्विन् (ऋत्विग् दधृक् स्रग्दिगु०)-युज् सु-युनुम् ज् स् (नुम्) ।
यु न् ज् (सु लोप)-
युन् (संयोगान्तलोप)-
युङ् (क्विन् प्रत्ययस्य कुः) ।

इसी प्रकार-युञ्जौ, युञ्जः ।

विशेष—'असमासे' अर्थात् **समास में** नुम् नहीं होता है-

सु युजिर् क्विप्-सु युज् सु यहाँ समास है । अतः नुम् न हुआ ।

सु युज् (सुलोप)—
सु युग् (चोः कुः)-
सुयुग्, सुयुक् (वाऽवसाने) ।

नपुँसकस्य झलचः 7.1.72

पद.—नपुँसकस्य 6.1, झलचः 6.1

अनु.—अंगस्य नुम् सर्वनामस्थाने ।

अर्थ—सर्वनामस्थान परे रहते झल्न्त अथवा अजन्त नपुँसक को नुम् आगम होता है ।

उदा.—(1) शकृत् जस् (जश्शसोः शिः)-
शकृत् शि (नुम्)-
श कृ न् त् इ-शकृन्ति ।
पयस् शि (पूर्ववत्)-
प य न् स् इ-पयान् स् इ-
पयांसि ।
(2) फल शि-फल न् इ-
फलान् इ-फलानि (सर्वनामस्थाने चा०) ।
वारि शि-वारिन् इ-
वारीन् इ-वारीणि ।
मधु शि-मधूनि ।

विशेष—1. 'नपुँसकस्य' अर्थात् **नपुँसक अंग** को ही नुम् होता है—

अग्निचित्—यहाँ झलन्त अंग है, सर्वनामस्थान परे है परन्तु नपुँसक नहीं है । अतः नुम् न हुआ । अग्निचित् ।

2. 'झलचः' अर्थात् **झलन्त** व **अजन्त अंग** को नुम् होता है—बहु पुर् शि-बहुपुरि यहाँ 'शि' (सर्वनामस्थान) परे है, नपुँसक अंग है परन्तु झलन्त नहीं है । अतः नुम् न हुआ ।

3. महाभाष्य में कहा है कि यदि झल् किसी अच् से परे होगा तभी नुम् का आगम होता है[2]—

मांस् यह झलन्त अंग है परन्तु इसका झल् (स्) अच् से उत्तर नहीं है । अतः नुम् नहीं होता है । यथा—

मांस् इ-मांसि ।

4. 'बहूर्जि' शब्द में नुम् नहीं होता है[3]—

बहूनि ऊर्ज्जि येषु (येषां वा) तानि-यहाँ नुम् न हुआ ।

बहूर्जि ।

कुछ विद्वानों के मत में अन्त्य से पूर्व को नुम् होता है—

बहू र् न् ज् इ-बहूर्ञ्जि ।

इकोऽचि विभक्तौ 7.1.73

पद.—इकः 6.1, अचि 7.1, विभक्तौ 7.1

अनु.—अंगस्य नपुँसकस्य नुम् ।

अर्थ—अजादि विभक्ति परे रहते इगन्त नपुँसक अंग को नुम् आगम होता है ।

इगन्त-इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) है अन्त में जिसके ।

उदा.—(1) वारि औ (नपुँसकाच्च)-
वारि शी-वारि ई-
वारिन् ई-वारिणी ।

इसी प्रकार वारीणि, वारिणा, वारिणे, वारिणः, वारिणोः, वारिणि ।

(2) मधु शी (पूर्ववत्)-
मधुनी ।

---

1. इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ।
2. महा० 7.1.72 अचः परस्यैव झलो नुम्विधानम् ।
3. महा० 7.1.72 तत्र बहूर्जि प्रतिषेधः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) कर्तृ शी–कर्तृणी ।

विशेष—1. 'इकः' अर्थात् **इगन्त अंग** को ही नुम् होता है—

जल औ–'जल' नपुँसक अंग है, 'औ' अजादि विभक्ति परे है परन्तु इगन्त अंग नहीं है । अतः नुम् न हुआ ।

जल ई–जले ।

2. 'अचि' अर्थात् **अजादि विभक्ति** परे रहते ही नुम् होता है । प्रकृतसूत्र में 'अचि' पद की सार्थकता पर विचार करते हुए काशिकाकार व न्यासकार ने अनेक सम्भावनाओं की कल्पना की है तथा अन्त में 'अचि' पद के योग के द्वारा ज्ञापक सिद्ध किया है कि 'न लुमतांऽगस्य' सूत्र अनित्य है । द्र०—

(क) यदि उत्तर शास्त्र के लिए 'अचि' पद का योग है तो इसे अगले सूत्र में पढ़ा जाना चाहिए ।[1]

(ख) हलादि विभक्ति में नुम् आगम की निवृत्ति के लिए 'अचि' पद का योग व्यर्थ है[2] । कारण कि—

वारिभ्याम् इस दशा में नुम् कर दिया जाये तो कोई हानि नहीं । वारिन्भ्याम् । 'स्वादिष्व०' से पद संज्ञा होकर 'न लोपः प्राति०' से न लोप हो जायेगा—वारिभ्याम् ।

(ग) लुक् प्राप्त विभक्ति को निमित्त मानकर प्राप्त नुम् की निवृत्ति के लिए भी 'अचि' पद का ग्रहण व्यर्थ है । यथा—

हे त्रपु स्–इस दशा में सु का 'स्वमोर्नपुँसकात्' से लुक् हुआ । हे त्रपु । अब लुक् हुए 'सु' को निमित्त मानकर नुम् की प्राप्ति होती है । 'हे त्रपुन्' इस दशा में 'न लोपः प्रा०' से प्राप्त नकार लोप का 'न डिसम्बुद्ध०' से निषेध हो जाता है । इसकी निवृत्ति के लिए 'अचि' पद की आवश्यकता मानना भी व्यर्थ है । कारण कि 'न लुमतांऽगस्य' के द्वारा नुम् का निषेध हो जाता है ।[3]

निष्कर्ष—प्रकृतसूत्र में 'अचि' पद व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'न लुमतांगस्य' सूत्र अनित्य है ।

यदि यह निषेध नित्य होता तो सम्बुद्धि में लुक् को प्राप्त विभक्ति को निमित्त मान कर कोई कार्य नहीं होना चाहिए ।

परिणामस्वरूप 'हे त्रपु' में नुम् की प्राप्ति ही नहीं है तो सूत्र में 'अचि' पद का ग्रहण व्यर्थ है । 'अचि' पद का ग्रहण ज्ञापित करता है कि आचार्य नुम् के निषेध के प्रति सचेष्ट हैं । नुम् की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब 'न लुमतांगस्य' सूत्र अनित्य हो ।

3. 'विभक्तौ' अर्थात् अजादि **विभक्ति** परे रहते नुम् होता है—

तुम्बुरु अञ् (विकार अर्थ में)—

'तुम्बुरु' इगन्त नपुँसक अंग है, अजादि प्रत्यय (अञ्) परे है परन्तु यह विभक्ति नहीं है । अतः नुम् न हुआ । तुम्बुरवम् । नागेश जी 'विभक्तौ' के स्थान पर 'सुपि' का योग उचित मानते हैं ।

त्रपु शि–त्रपु इ इस दशा में 'नपुँसकस्य झलचः' (पा० 7.1.72) तथा 'इकोऽचि विभक्तौ' (पा०7.1.73) की युगपत् प्रवृत्ति होती है । इस विषय में वैयाकरणों के दो मत हैं—

(क) परत्व के कारण 'इकोऽचि विभक्तौ' से यहाँ नुम् होना चाहिए ।

(ख) 'इकोऽचि विभक्तौ' शेष अजादि विभक्तियों में चरितार्थ है । यहाँ 'नपुँसकस्य झलचः' के द्वारा ही नुम् होना चाहिए । ऐसा आचार्य का मन्तव्य प्रतीत होता है, अन्यथा आचार्य पाणिनि 'झलचः' के स्थान पर 'झलतः' पाठ करते ।

तृतीयादिषु भाषितपुँस्कं पुँवद् गालवस्य
7.1.74

पद.—तृतीयादिषु 7.3, भाषितपुँस्कम् 1.1, पुँवत्–अव्य०, गालवस्य 6.1

अनु.—अंगस्य नपुँसकस्य इकः अचि विभक्तौ नुम् ।

अर्थ—अजादि तृतीयादि विभक्ति परे रहते इगन्त भाषित पुँस्क नपुँसक शब्द विकल्प से पुँवत् होता है ।

पुँवत् का अर्थ है—पुँल्लिंग की तरह ।

भाषितपुंस्क का अर्थ है—वह शब्द जो पुँल्लिंग में भी उसी प्रवृत्तिनिमित्त को भाषित कर चुका है । तात्पर्य है कि जिस शब्द का एक प्रवृत्तिनिमित्त हो, उसे भाषितपुँस्क कहते हैं । 'तृतीयादि० का अर्थ है—तृतीया से लेकर अन्त तक ।

टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि तथा ओस्–ये विभक्तियाँ अजादि तृतीयादि हैं ।

उदा.—ग्रामणी टा (पुँवद्भाव हुआ)–
ग्रामणी आ–ग्रामण्या (एरनेकाच०) ।

1. काशि० 7.1.73 उत्तरार्थम् । ... तत्रैव कर्त्तव्यम् ।
2. काशि० (न्यास०) 7.1.73 व्यञ्जनादौ मा भूत् .... एतच्चाऽप्रयोजनम्, अस्त्वत्र नुम् ।
3. काशि० 7.1.73 .... प्रत्ययलक्षणे प्रतिषिद्धे विभक्तिरेव नास्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में—ग्रामणी टा-ग्रामणि नुम् आ-ग्रामणिना ।

विशेष—1. 'तृतीयादिषु' अर्थात् **तृतीयादि विभक्ति** परे रहते पुँवद्भाव होता है—

ग्रामणी शी-ग्रामणि इ-ग्रामणिनी पुँवद्भाव न हुआ ।

2. 'भाषितपुँस्कम्' जिसका **प्रवृत्तिनिमित्त एक हो** उसे ही पुँवद्भाव होता है—

जतु ङे-'जतु' अंग इगन्त नपुँसक है ।

तृतीयादि अजादि (ङे) विभक्ति परे है । परन्तु 'जतु' भाषितपुँस्क नहीं है । अतः पुँवद्भाव न हुआ । जतुने ।

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः 7.1.75

पद.—अस्थिदधि.....थ्यक्ष्णाम् 6.3, अनङ् 1.1, उदात्तः 1.1

अनु.—अंगस्य नपुँसकस्य तृतीयादिषु अचि विभक्तौ ।

अर्थ—तृतीयादि अजादि विभक्ति परे रहते अस्थि, दधि, सक्थि तथा अक्षि-इन अंगों के स्थान पर अनङ् आदेश होता है और वह उदात्त होता है ।

अनङ् के ङकार की इत्संज्ञा है ङित् होने से 'अनङ्' 'अस्थि' आदि अंगों के अन्त्य अल् (इकार) के स्थान पर होता है ।

नकारोत्तरवर्त्ती अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—(1) अस्थि टा-अस्थ् अनङ् आ-अस्थ् न् आ-अस्थ्ना । अल्लोपोऽनः ।

(2) दधि टा-दध्ना ।

(3) सक्थि टा-सक्थ्ना ।

(4) अक्षि टा-अक्ष्णा ।

इसी प्रकार 'ङे' आदि विभक्तियों में जानना चाहिए ।

'तृतीयादिषु' का अधिकार होने से 'अस्थिनी' में अनङ् न हुआ ।

छन्दस्यपि दृश्यते 7.1.76

पद.—छन्दसि 7.1, अपि-अव्य०, दृश्यते-तिङन्तरूपम्

अनु.—अंगस्य नपुँसकस्य अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् अनङ् उदात्तः ।

अर्थ—वेद के विषय में अस्थि, दधि, सक्थि तथा अक्षि-इन नपुँसक अंगों को अनङ् उदात्त आदेश होता है ।

'अपि' वचन के द्वारा अन्यत्र भी देखा जाता है ।

उदा.—(1) अस्थि भि स्-अस्थन् भिस्-अस्थभिः । (ऋ० 1.44.13) यहाँ अजादि से भिन्न (हलादि) विभक्ति में भी अनङ् हुआ है ।

(2) अक्षभिः (यजु० 25.21) ।

(3) अक्षण्वता—यहाँ विभक्ति से भिन्न (अर्थात् तद्धित प्रत्यय) परे रहते अनङ् हुआ है ।

(4) अस्थन्वन्तम् (ऋ० 1.164.4) मतुप् में अनङ् हुआ ।

ई च द्विवचने 7.1.77

पद.—ई-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च-अव्य०, द्विवचने 7.1

अनु.—छन्दसि अंगस्य नपुँसकस्य अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् अनङ् उदात्तः ।

अर्थ—वेद के विषय में द्विवचन विभक्ति (औ, औट् आदि) परे रहते अस्थि, दधि, सक्थि व अक्षि अंगों को ईकारादेश होता है ।

उदा.—(1) अक्षि भ्याम्-अक्षीभ्याम् (ऋ० 10.163.1) ।

(2) अक्षि औ (नपुँसकाच्च)-अक्षि शी-अक्ष् ई ई-अक्षी ते इन्द्र पिंगले ।

नाऽभ्यस्ताच्छतुः 7.1.78

पद.—न-अव्य०, अभ्यस्तात् 5.1, शतुः 6.1

अनु.—अंगस्य नुम् ।

अर्थ—अभ्यस्त संज्ञक से उत्तर शतृ प्रत्यय के नुम् का आगम नहीं होता है ।

उदा.—दा शतृ-दा शप् शतृ-दा शतृ (श्लु)-ददा अत् (द्वित्वादि)-ददत् (श्नाऽभ्यस्तयोरातः)-ददत् सु 'उगिदचां०' से प्राप्त नुम् का निषेध हुआ । ददत् ।

इसी प्रकार—जक्षत् सु-जक्षत् ।

वा नपुँसकस्य 7.1.79

पद.—वा-अव्य०, नपुँसकस्य 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यस्तात् शतुः नुम् ।

अर्थ—सर्वनामस्थान परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक से उत्तर जो शतृ प्रत्यय तदन्त नपुँसक अंग को विकल्प से नुम् आगम होता है ।

उदा.—ददत् जस्-ददत् शि-ददत् इ-दद नुम् त् इ-ददन्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में—ददति ।

आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80

पद.—आत् 5.1, शीनद्योः 7.2, नुम् 1.1

अनु.—अंगस्य शतुः वा नुम् ।

अर्थ—अवर्णान्त अंग से परे जो शतृ प्रत्यय का अवयव, तदन्त अंग के अवयव को विकल्प से नुम् होता है, शी और नदी परे रहते । 'नदी' के द्वारा ङीप् आदि का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) तुदत् शी (औ को 'शी' आदेश)–यहाँ 'तुद' यह अवर्णान्त अंग है । इससे परे 'त्' यह शतृ का अवयव है । तदन्त अंग 'तुदत्' है । इससे परे 'शी' है ।

तुद नुम् त् ई–तुदन्ती ।

पक्ष में—तुदती ।

(2) तुदत् ङीप् (उगितश्च)–
तुदन्ती, तुदती ।

विशेष—1. 'आत्' अर्थात् **अवर्ण से पर** को ही नुम् होता है—

कुर्वती यहाँ नुम् न हुआ ।

2. 'शीनद्योः' अर्थात् **'शी'** तथा **'नदी'** परे रहते ही नुम् होता है—

तुदताम् यहाँ नुम् न हुआ ।

शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81

पद.—शप्श्यनोः 6.2, नित्यम् 1.1

अनु.—अंगस्य शतुः शीनद्योः नुम् ।

अर्थ—शप् अथवा श्यन् के अवर्ण से परे जो शतृ का अवयव, तदन्त अंग को नित्य नुम् का आगम होता है, शी और नदी परे रहते ।

'कर्तरि शप्' से भ्वादिगण में 'शप्' विकरण होता है ।
'दिवादिभ्यः श्यन्' से दिवादिगण में 'श्यन्' होता है ।

उदा.—(1) पच् शप् शतृ–पचत् ई 'नपुँसकाच्च' से 'शी' आदेश, 'अन्तादिवच्च' से 'पच' की अंगसंज्ञा । इससे पर 'त्' शतृ का अवयव है । तदन्त 'पचत्' है । पच नुम् त् ई–पचन्ती ।

पचत् ङीप्–पचन्ती ।

(2) दिव् श्यन् शतृ–दीव्यत् ई (पूर्ववत्)–दीव्यन्ती ।

सावनडुहः 7.1.82

पद.—सौ 7.1, अनडुहः 6.1

अनु.—अंगस्य नुम् ।

अर्थ—'सु' परे रहते 'अनडुह्' अंग को नुम् होता है ।

उदा.—अनडुह् सु–अनडु आम् ह् स् (चतुरनडुहोराम्०) –अनड्वा नुम् ह् स् (नुम्)–अनड्वान् ह् (सु लोप)–अनड्वान् (संयोगान्तलोप)–अनड्वान् ।

संयोगान्त लोप असिद्ध होने से नकार लोप न हुआ ।

विशेष—नुम् आगम अपवाद व आम् आगम उत्सर्ग है । अतः नुम् के द्वारा आम् का बाध होना चाहिए परन्तु काशिकाकार के अनुसार इनमें बाध्यबाधक भाव नहीं है ।[1]

काशिकाकार यहाँ 'आच्छीनद्योर्नुम्' से 'आत्' का अधिकार मानकर इस प्रकार अर्थ करते हैं—

'सु' परे रहते अनडुह् को नुम् आगम होता है परन्तु यह अवर्ण से उत्तर होता है । इस अर्थ के अनुसार नुम् अवर्ण से उत्तर होता है । अवर्ण आम् किये बिना प्राप्त नहीं है । अतः प्रथम 'आम्' करके पश्चात् नुम् किया जाता है ।

दृक्स्ववःस्वतवसां छन्दसि 7.1.83

पद.—दृक्स्ववःस्वतवसाम् 6.3, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य सौ नुम् ।

अर्थ—वेद के विषय में दृक्, स्ववस् तथा स्वतवस् इन अंगों को नुम् आगम होता है, सु परे रहते ।

उदा.—(1) ई दृश् (क्विन्) सु–ईदृ नुम् श् सु–ईदृन्श् (सु लोप)–ईदृन्–ईदृङ् (क्विन् प्रत्ययस्य०)–ईदृङ् ।

(2) तादृश् सु–तादृङ् ।
(3) यादृश् सु–यादृङ् ।
(4) सदृश् सु–सदृङ् ।
(5) स्ववस् सु–स्ववन् स् स्–स्ववान् स्–स्ववान् ।
(6) स्वतवस् सु–स्वतवन् स् स्–स्वतवान् स् स्–स्वतवान्स्–स्वतवान् ।

दिव औत् 7.1.84

पद.—दिवः 6.1, औत् 1.1

अनु.—अंगस्य सौ ।

अर्थ—'सु' परे रहते दिव् अंग को 'औ' आदेश होता है ।

1. काशि० 7.1.82 न बाध्यबाधकभावम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'औत्' का तकार उच्चारणार्थ है। औकार अन्त्य वर्ण (व्) के स्थान पर होता है। 'दिव्' के द्वारा 'दिवु' धातु का ग्रहण नहीं हो सकता, कारण कि धातु का अनुबन्ध रहित निर्देश नहीं होता है।

तब 'दिव्' के द्वारा 'दिव्' प्रातिपदिक का ग्रहण होता है।

उदा.—दिव् सु-दि औ स्-द्यौस्-द्यौः (यण्)।

पथिमथ्यृभुक्षामात् 7.1.85

पद.—पथिमथ्यृभुक्षाम् 6.3, आत् 1.1

अनु.—अंगस्य सौ।

अर्थ—'सु' परे रहते पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन्-इन अंगों को आकार आदेश होता है।

'आत्' में तकार उच्चारणार्थ है। आकार अन्तादेश होता है।

उदाहरण अगले सूत्र पर देखें।

इतोऽत् सर्वनामस्थाने 7.1.86

पद.—इतः 6.1, अत् 1.1, सर्वनामस्थाने 7.1

अनु.—अंगस्य पथिमथ्यृभुक्षाम्।

अर्थ—सर्वनामस्थान प्रत्यय परे रहते पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन्-अंग के इकार के स्थान पर अकार आदेश होता है।

अत् में तकार उच्चारणार्थ है।

प्रकृतसूत्र में पूर्वसूत्र से 'आत्' पद का अधिकार प्राप्त होने पर भी प्रकृतसूत्र में पुनः 'अत्' का ग्रहण 'षपूर्व' के लिए है। 'ऋभुक्षणम्' यहाँ 'वा षपूर्वस्य निगमे' से पाक्षिक दीर्घ होता है। यदि 'अत्' न करके 'आत्' किया जाता तो पक्ष में ह्रस्व (ऋभुक्षणम्) सुनाई न पड़ता।

अत् विधान करने पर पाक्षिक दीर्घ हो सकता है।

उदा.—(1) पथिन् सु-पथि आ स् (पथिमथ्यृ०)-
पथ् अ आ स् (इतोऽत् सर्व०)-
पथ् आ स् (सवर्णदीर्घ०)-
पन्थ् आ स् (थो न्थः)-
पन्थाः।

(2) मथिन् सु-मथि आ स्-मथ् अ आ स्-मन्थास्-मन्थाः।

(3) ऋभुक्षिन् सु-ऋभुक्षि आ स्-ऋभुक्ष् अ आस्-ऋभुक्षाः।

(4) पथिन् औ-पथन् औ-पन्थन् औ-पन्थान् औ (सर्वनामस्थाने चाऽस०)-पन्थानौ। इसी प्रकार मन्थानौ, ऋभुक्षाणौ।

(5) (शेष सर्वनामस्थान)-पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ। ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ।

थो न्थः 7.1.87

पद.—थः 6.1, न्थः 1.1

अनु.—अंगस्य पथिमथ्यृभुक्षाम् सर्वनामस्थाने।

अर्थ—सर्वनामस्थान पर रहते पथिन् तथा मथिन् अंगों के थकार के स्थान पर 'न्थ्' आदेश होता है। 'न्थ' में अकार उच्चारणार्थ है।

यद्यपि यहाँ 'ऋभुक्षिन्' पद अनुवृत्त है तदपि उसके सम्भव न होने से इसे अर्थ में नहीं दिखाया गया है।

उदा.—(1) पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ—इनकी सिद्धि पूर्वसूत्र पर देखें।

(2) मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ-पूर्व सूत्र पर सिद्धि देखें।

भस्य टेर्लोपः 7.1.88

पद.—भस्य 6.1, टेः 6.1, लोपः 1.1

अनु.—अंगस्य पथिमथ्यृभुक्षाम्।

अर्थ—भसंज्ञक पथिन्, मथिन् व ऋभुक्षिन् अंगों की टि का लोप होता है।

उदा.—(1) पथिन् शस्-भसंज्ञा,
पथ् अस्-पथः।
(2) मथिन् शस्-मथः।
(3) ऋभुक्षिन् शस्-ऋभुक्षः।

पुँसोऽसुङ् 7.1.89

पद.—पुँसः 6.1, असुङ् 1.1

अनु.—अंगस्य सर्वनामस्थाने।

अर्थ—सर्वनामस्थान की विवक्षा में 'पुँस्' को 'असुङ्' आदेश होता है।

ङित् होने से असुङ् अन्त्य अल् (स्) के स्थान पर होता है।

असुङ् के डकार व उकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—(1) पुंस्-पुम् असुङ् सु सर्वनामस्थान (सु) की इच्छामात्र में सकार को असुङ् हुआ। 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' के द्वारा अनुस्वार भी मकार में परिणत हुआ—

पु म् अस् स्-पुम नुम् स् स् (उगिदचां०)-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुमान् स् स् (सान्तमहतः—)-पुमान् स्-पुमान् ।

(2) पुंस्-पुम् असुङ् औ-पुमांसौ ।

इसी प्रकार—पुमांसः, पुमांसम्, पुमांसौ ।

गोतो णित् 7.1.90

पद.—गोतः 5.1, णित् 1.1

अनु.—अंगस्य सर्वनामस्थाने ।

अर्थ—ओकारान्त शब्द से उत्तर सर्वनामस्थान विभक्ति णिद्वत् होती है । तात्पर्य है कि जो जो कार्य णित् परे रहते हैं, वे सब सर्वनामस्थान के परे रहते भी हों ।

उदा.—(1) गो सु (णिद्वत्)-
गौ स् (अचो ञ्णिति)-
गौः ।

(2) गो औ-गौ औ-गावौ ।

(3) गो जस्-गौ अस्-गावः ।

(4) गो अम्-गाम् (औतोऽम्०) ।

(5) गो औ-गावौ ।

विशेष—1. इस सूत्र पर दो वार्तिक प्राप्त होते हैं—

(क) ओतो णिद् इति वाच्यम् अर्थात् ओकारान्त शब्द से उत्तर सर्वनामस्थान विभक्ति णित् होती है—

तब—गो सु-गौस्-गौः

सुद्यो सु-सुद्यौ स्-सुद्यौः ।

हे साधो स् इस दशा में प्रकृत वार्तिक के द्वारा 'सु' णित् होकर अनिष्ट रूप प्राप्त होता है । इसके निवारण के लिए दूसरा वार्त्तिक प्राप्त होता है ।

(ख) विहित विशेषणञ्च अर्थात् ओकारान्त शब्द से उत्तर विहित सर्वनामस्थान विभक्ति णित् होती है ।

तब 'हे साधो स्' इस दशा में चूँकि 'सु' विभक्ति ओकारान्त (साधो) शब्द से विहित नहीं है अपितु उकारान्त (साधु) शब्द से विहित है । अतः 'सु' णित् न हुआ ।

2. 'गोतो णित्' सूत्र में 'गो' शब्द से पञ्चमी के अर्थ में 'तसिल्' का प्रयोग हुआ है परन्तु सम्पूर्ण पाणिनीय तन्त्र में शब्द विशेष से तसिल् प्रत्यय क्वचिदपि प्राप्त नहीं होता है । कुछ विद्वान् 'गोतः' में तपर निर्देश मानते हैं । उनके अनुसार—'गोतः' में तपरकरण का प्रयोजन है कि ओकारान्त 'गो' शब्द से उत्तर सर्वनामस्थान णित् होता है—चित्रगुः यहाँ 'गो' शब्द को ह्रस्व हो गया है । अतः इससे परे 'सु' णिद्वत् न हुआ । परन्तु यह मत उचित प्रतीत नहीं होता है । कारण कि, तपर निर्देश वर्ण के साथ किया जाता है न कि नामशब्द के साथ ।

कुछ विद्वान् इसे श्रुतिदोष का परिणाम मानते हैं । उनके अनुसार 'गोतो णित्' के स्थान पर 'ओतो णित्' मूल पाठ था। संहिता की दशा में 'पुंसोऽसुङोतो णित्' इस प्रकार सूत्रपाठ होना चाहिए । चूँकि प्राचीन ज्ञान श्रुतिपरम्परा में था । अतः सम्भव है कि श्रुति दोष के कारण 'पुंसोऽसुङोतो णित्' गृहीत कर लिया गया । परन्तु यह कल्पनामात्र प्रतीत होती है । यदि प्रकृतसूत्र का मूल पाठ 'ओतो णित्' होता तो महर्षि पतंजलि को 'ओतो णिद् इति वाच्यम्' (वा०) का पाठ न करना पड़ता । अतः सूत्र का मूल पाठ 'गोतो णित्' ही प्रतीत होता है ।

आदरणीय पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी के अनुसार ओकारान्त शब्दों की 'गो' संज्ञा प्राचीन आचार्यों की है जिसे आचार्य पाणिनि ने अविकल अपने शास्त्र में गृहीत कर लिया है ।[1]

णलुत्तमो वा 7.1.91

पद.—णल् 1.1, उत्तमः 1.1, वा-अव्य० ।

अनु.—णित् ।

अर्थ—उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णित् होता है । णित् के दो अर्थ हैं—

(क) जिसका णकार इत् हो,

(ख) णित् के समान हो ।

प्रथम अर्थ के अनुसार सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—उत्तम पुरुष के णल् के णकार की विकल्प से इत्संज्ञा होती है ।

'णित्' शब्द के दूसरे अर्थ के अनुसार सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णिद्वत् होता है ।

चूँकि प्रकृतसूत्र अतिदेश प्रकरण में पठित है । अतः सूत्र का दूसरा अर्थ ही संगत बैठता है ।

उदा.—(1) कृ णल् (लिट् उ०पु० एक०)-

---

1. सं० व्याक० शास्त्र का इति० (प० युधि० मीमांसक)—भाग प्रथम, पृ० 79

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चकर् अ (द्वित्वादि)–
चकार (अत उपधायाः)।
पक्ष में—चकर।
(2) गद् णल्–
जगद् अ –
जगाद, जगद।

सख्युरसम्बुद्धौ 7.1.92

पद.—संख्युः 5.1, असम्बुद्धौ 7.1

अनु.—अंगस्य सर्वनामस्थाने णित्।

अर्थ—अंग संज्ञक सखि शब्द से परे सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान संज्ञक विभक्ति णिद्वत् होती है।

उदा.—(1) सखि औ (णिद्वत्)–
सखै औ (अचो ञ्णिति)–
सखाय् औ–सखायौ।

(2) सखि जस्–सखायः।

(3) सखि अम्–सखायम्।

(4) सखि औट्–सखायौ।

विशेष—'असम्बुद्धौ' अर्थात् **सम्बुद्धि भिन्न** सर्वनामस्थान ही णिद्वत् होता है—

हे सखि सु–हे सखे स्–हे सखे (एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः) यहाँ सम्बुद्धि का 'सु' है अतः णिद्वत् नहीं हुआ।

अनङ् सौ 7.1.93

पद.—अनङ् 1.1, सौ 7.1

अनु.—अंगस्य सख्युः असम्बुद्धौ।

अर्थ—सम्बुद्धि भिन्न 'सु' परे रहते अंगसंज्ञक 'सखि' शब्द के स्थान पर 'अनङ्' आदेश होता है।

'सु' के द्वारा प्रथमा एकवचन व सप्तमी बहुवचन–इन दो विभक्तियों का ग्रहण होता है। प्रकृतसूत्र में 'सौ' के द्वारा प्रथमा एकवचन का ही ग्रहण इष्ट है। कारण कि, सप्तमी बहुवचन की दशा में 'असम्बुद्धौ' का अधिकार व्यर्थ हो जाता है।

अनङ् का ङकार इत् है तथा (नकारोत्तरवर्त्ती) अकार उच्चारणार्थ है।

ङित् होने से अनङ् अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

उदा.—सखि सु–सख् अनङ् स्–
सखन् स्–सखान् स् (सर्वनामस्थाने०)–
सखान् (सु लोप)–
सखा (न लोपः प्राति०)।

ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च 7.1.94

पद.—ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसाम् 6.3, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य अनङ् सौ असम्बुद्धौ।

अर्थ—सम्बुद्धि भिन्न सु परे रहते ऋदन्त, उशनस् (=शुक्राचार्य), पुरुदंसस् (=बिल्ली) तथा अनेहस् (=समय)–इन अंगों को अनङ् आदेश होता है।

उदा.—(1) कर्तृ सु–कर्त्तृ अनङ् स्–कर्त्तन् स्–कर्त्तान् स् (अप् तृन् तृच्०)–कर्त्तान्–कर्त्ता।

इसी प्रकार–पिता, माता, भ्राता।

(2) उशनस् सु–उशन अनङ् स्–उशन अन् स्–उशनन् स् (अतो गुणे)–उशनान् स् (सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ)–उशनान्–उशना।

(3) पुरुदंसस् सु–पुरुदंस अनङ् स्–पुरुदंसन् स्–पुरुदंसान् स्–पुरुदंसान्–पुरुदंसा।

(4) अनेहस् सु–अनेह अनङ् स्–अनेहन् स्–अनेहान् स्–अनेहान्–अनेहा।

तृज्वत् क्रोष्टुः 7.1.95

पद.—तृज्वत्–अव्य०, क्रोष्टुः 1.1

अनु.—अंगस्य सर्वनामस्थाने असम्बुद्धौ।

अर्थ—सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे रहते 'क्रोष्टु' शब्द को तृज्वद्भाव होता है। तात्पर्य है कि तृच् के समान हो जाता है अर्थात् 'क्रोष्टु' शब्द तृच् प्रत्ययान्त (क्रोष्टृ) की तरह हो जाता है।

उदा.—(1) क्रोष्टु सु–क्रोष्टृ स् (तृज्वत्)–

क्रोष्टृ अनङ् स् ('ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' से प्राप्त गुण का निषेध होकर 'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां०' से अनङ् हुआ)–

क्रोष्टन् स्–
क्रोष्टान् स् (अप्तृन्तृच्स्वसृ०)–
क्रोष्टान्–क्रोष्टा।

(2) क्रोष्टु औ–क्रोष्टृ औ–
क्रोष्टर् औ (ऋतो ङि सर्व०)–
क्रोष्टार् औ (अप्तृन्तृच्०)–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोष्टारौ ।

(3) क्रोष्टु जस्-क्रोष्टारः ।

(4) क्रोष्टु अम्-क्रोष्टारम् ।

(5) क्रोष्टु औ-क्रोष्टारौ

विशेष—'सर्वनामस्थाने' का अधिकार होने से 'क्रोष्टून्' (भट्टि० 6.5) में तृज्वद् न हुआ ।

स्त्रियां च 7.1.96

पद.—स्त्रियाम् 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य क्रोष्टुः तृज्वत् ।

अर्थ—स्त्रीवाची क्रोष्टु शब्द तृजन्त के सदृश होता है । तात्पर्य है कि स्त्रीलिंग में 'क्रोष्टु' के स्थान पर 'क्रोष्ट्र' आदेश होता है । अब स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् (ऋन्नेभ्यो ङीप्) होकर 'क्रोष्ट्री' शब्द बनता है ।

उदा.—(1) क्रोष्टु-क्रोष्ट्र ङीप्-क्रोष्ट्री सु-क्रोष्ट्री ।

(2) क्रोष्टु-क्रोष्ट्री भ्याम्-क्रोष्टीभ्याम् ।

विभाषा तृतीयादिष्वचि 7.1.97

पद.—विभाषा 1.1, तृतीयादिषु 7.3, अचि 7.1

अनु.—अंगस्य तृज्वत् क्रोष्टुः ।

अर्थ—अजादि तृतीयादि विभक्ति परे रहते 'क्रोष्टु' शब्द को विकल्प से तृज्वद्भाव होता है ।

तृतीयादि अजादि आठ विभक्तियाँ हैं—

1. टा, 2. ङे, 3. ङसि, 4. ङस्, 5. ओस्, 6. आम्, 7. ङि, 8. ओस् ।

तृज्वद्भाव के अभाव पक्ष में घिसंज्ञा हो जायेगी ।

उदा.—(1) क्रोष्टु-क्रोष्ट्र टा-क्रोष्ट्रा ।

पक्ष में—क्रोष्टुना (आङो नाऽस्त्रियाम्) ।

(2) क्रोष्टु ङे-क्रोष्ट्र ए-क्रोष्ट्रे ।

पक्ष में—क्रोष्टो ए (घेर्ङिति)-क्रोष्टवे ।

(3) क्रोष्टु ङसि-क्रोष्ट्र अस्-क्रोष्ट् उर् स् (ऋत उत्)-क्रोष्टुर् (रात् सस्नय संयोगान्तस्य लोपः)-क्रोष्टुः ।

पक्ष में—क्रोष्टो अस् (घेर्ङिति)-क्रोष्टोः (ङसिङसोश्च)।

(4) क्रोष्टु ङस्-क्रोष्टुः (पूर्ववत्) ।

पक्ष में—क्रोष्टोः (पूर्ववत्) ।

(5) क्रोष्टु ओस्-क्रोष्ट्र ओस्-क्रोष्ट्रोः ।

पक्ष में—क्रोष्टु ओस्-क्रोष्ट्वोः ।

(6) क्रोष्टु आम् यहाँ प्रकृतसूत्र के द्वारा तृज्वद्भाव तथा 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से 'नुट्' युगपत् प्राप्त होते हैं । 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' के द्वारा तृज्वद्भाव प्राप्त हुआ । अब 'नुमचिर तृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' (वा०) के द्वारा पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'नुट्' हुआ । क्रोष्टु नुट् आम्-क्रोष्टूनाम् (नामि) ।

(7) क्रोष्टु ङि क्रोष्ट्र ङि (ऋतो ङि सर्वनाम०)—

क्रोष्टर् इ-क्रोष्टरि ।

अभाव पक्ष में—क्रोष्टु इ-क्रोष्ट औ-क्रोष्टौ (अच्च घेः । वृद्धिरेचि) ।

(8) क्रोष्टु ओस्-क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः (पूर्ववत्) ।

विशेष—1. 'तृतीयादिषु' अर्थात् **तृतीयादि विभक्तियों** में ही विकल्प से तृज्वद्भाव होता है—

क्रोष्टु शस्-क्रोष्टून्-शस् अजादि विभक्ति है परन्तु तृतीयादि नहीं है । अत; तृज्वद्भाव न हुआ ।

2. 'अचि' अर्थात् **अजादि** विभक्ति परे रहते ही तृज्वद्भाव होता है—

क्रोष्टु भ्याम्-क्रोष्टुभ्याम् 'भ्याम्' तृतीयादि विभक्ति तो है परन्तु अजादि नहीं है । अतः तृज्वद्भाव न हुआ ।

रूपमाला

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
द्वितीया	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृतीया	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
पंचमी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
षष्ठी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
सप्तमी	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु
सम्बो०	हे क्रोष्टो!	हे क्रोष्टारौ!	हे क्रोष्टारः!

चतुरनडुहोरामुदात्तः 7.1.98

पद.—चतुरनडुहोः 6.2, आम् 1.1, उदात्तः 1.1

अनु.—अंगस्य सर्वनामस्थाने ।

अर्थ—सर्वनामस्थान विभक्ति परे रहते चतुर् तथा अनडुह् अंगों को आम् आगम होता है तथा वह उदात्त होता है ।

उदा.—(1) चतुर् जस्-चतु आम् र् अस्-चत्वार् अस्-चत्वारः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर् जस्-चतुर् शि (शि सर्वनामस्थानम्)-चतु आम् र् इ (चतुरनडुहो—) चत्वारि ।

(2) अनडुह् सु-अनडु आम् ह् स्-अनडु आम् नुम् ह् स् (सावनडुहः) अनड् वान् ह्-अनड्वान् ।

अनडुह् औ-अनड्वाहौ ।
अनडुह् जस्-अनडवाहः ।
अनडुह् अम्-अनड्वाहम् ।
अनडुह् औ-अनड्वाहौ ।

विशेष—स्त्रीलिंग के विषय में अनडुह् शब्द से 'आम्' विकल्प से होता है[1]—

अनडुही, अनड्वाही ।

अम् सम्बुद्धौ 7.1.99

पद.—अम् 1.1, सम्बुद्धौ 7.1

अनु.—अंगस्य चतुरनडुहोः ।

अर्थ—सम्बुद्धि परे रहते चतुर् तथा अनडुह् अंगों को अम् का आगम होता है ।

उदा.—हे अनडुह् सु-हे अनडु अम् ह् स्-हे अनड्व नुम् ह् स् (सावन डुहः)-अनड्वन्ह्-हे अनड्वन् ।

ऋत इद् धातोः 7.1.100

पद.—ऋतः 6.1, इत् 1.1, धातोः 6.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—अंग सञ्ज्ञक ऋदन्त धातु को ह्रस्व इकार आदेश होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा इकार आदेश अन्त्य वर्ण (ऋ) के स्थान पर होता है । जिस स्थल पर प्रकृतसूत्र के द्वारा इत्त्व तथा 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' (पा० 7.1.102) के द्वारा उत्त्व के साथ-साथ गुण व वृद्धि प्राप्त होते हैं, उन-उन स्थलों पर गुण व वृद्धि इत्त्व तथा उत्त्व को परत्व के कारण बाध लेते हैं । द्र०—

इत्त्वोत्त्वाभ्यां गुणवृद्धी भवतः विप्रतिषेधेन (वा०) अतः जहाँ-जहाँ गुण-वृद्धि का विषय नहीं होता है, वहाँ-वहाँ प्रकृतसूत्र के द्वारा इत्त्व होता है ।

उदा.-(1) कॄ तिप्-कॄ शप् तिप् (सार्वधातुकमपित् । क्ङिति च)-

किर् अ ति-किरति ।

(2) इसी प्रकार-गिरति ।

(3) आ स्तृ क्त-आ स्तिर् त-आ स्तिर् न-आस्तीर्न (हलि च)-

आस्तीर्णः (णत्व, सु) ।

(4) वि शॄ क्त-विशीर्णः (पूर्ववत्) ।।

'श्र्युकः किति' से इट् निषेध ।

(5) सम् गॄ शानच्-

सम् गिर् शप् मुक् आन-
सङ्गिरमाणः (भट्टि० 3.8) ।

विशेष—'धातोः' अर्थात् **धातु को** ही इकार अन्तादेश होता है—

पितॄणाम् यहाँ 'पितॄ' में ऋकार धातु का नहीं है । अतः इकार आदेश नहीं होता है ।

उपधायाश्च 7.1.101

पद.—उपधायाः 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य धातोः ऋतः इत् ।

अर्थ—अंग संज्ञक धातु की उपधाभूत ऋकार के स्थान पर इकार आदेश होता है ।

उदा.—कृत् णिच् शप् तिप्-किर्त् इ शप् तिप्-कीर्त् इ अ ति (उपधायां च)-कीर्तयति ।

उदोष्ठ्यपूर्वस्य 7.1.102

पद.—उत् 1.1, ओष्ठ्यपूर्वस्य 6.1

अनु.—अंगस्य ऋतः धातोः ।

अर्थ—अंगसंज्ञक धातु का अवयव ओष्ठ्य वर्ण जिसके पूर्व में है, ऐसा जो ऋ वर्ण, तदन्त अंग को ह्रस्व उकार आदेश होता है ।

उकार, पवर्ग और उपध्मानीय ओष्ठ्य वर्ण हैं । वकार का उच्चारणस्थान दन्तोष्ठ है । अतः इसमें ओष्ठ्यत्व अक्षुण्ण रहता है ।

उदा.—(1) पॄ सन्-पुर्स-पुपुर्स-पुपूर्ष शप् तिप्-पुपूर्षति । धातोः कर्मणः समानकर्तृकाद् इच्छायां वा ।

(2) मॄ सन्-मुर्स (उकार आदेश)-मुर्स् मुर्स् अ-मु मुर्स (द्वित्वादि)-मुमूर्ष (दीर्घ, 'हलि च' षत्व)-मुमूर्ष धातु संज्ञा ।

मुमूर्ष तिप्-मुमूर्ष शप् ति-
मुमूर्षति (भाग० 10.50.20) ।

1. महा० 7.1.98 (वा०) आमनडुहः स्त्रियां वा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) स्वृ सन्-स्वुर् स (उकार आदेश)-

स्वुर्स् स्वुर्स् अ-सु स्वुर्स-सु स्वूर्ष (द्वित्व, अभ्यासकार्य, दीर्घ, मूर्धन्य आदेश)-

सुस्वूर्ष (धातु संज्ञा)-
सुस्वूर्षति (तिप्, शप्)।

इसी प्रकार—प्रावुवूर्षुः (भट्टि० 5.49)।

विशेष—इत्त्व तथा उत्त्व को गुणवृद्धि बाध लेते हैं[1]—

1. आ स्तृ ल्युट् 'ऋत इद् धातोः' के द्वारा इकार आदेश तथा 'सार्वधातुकार्ध०' के द्वारा युगपत् गुण प्राप्त होते हैं। प्रकृत वार्तिक के द्वारा गुण हुआ—

आस्तरणम्।

इसी प्रकार—तृ शप् तिप् यहाँ 'सार्वधातुकार्धधातुक०' के द्वारा गुण तथा 'ऋत इद् धातोः' के द्वारा 'इत्' युगपत् प्राप्त हुए। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' के द्वारा गुण प्राप्त हुआ परन्तु अल्पापेक्षित्वाद् इकार आदेश प्राप्त हुआ। प्रकृत वार्तिक के द्वारा गुण हुआ। तरति।

2. नि पृ ल्युट् यहाँ 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' के द्वारा उकार आदेश तथा 'सार्वधातुकार्धधातु०' के द्वारा गुण युगपत् प्राप्त होते हैं। वार्तिक से गुण हुआ-निपरणम्।

3. आस्तृ ण्वुल् 'ऋत इद् धातोः' से इकार आदेश तथा 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि युगपत् प्राप्त होते हैं। वार्तिक के द्वारा वृद्धि आदेश हुआ—

आस्तारकः।

4. नि पृ ण्वुल् यहाँ 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उकार आदेश तथा 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि युगपत् प्राप्त होते हैं। वार्तिक के द्वारा वृद्धि हुई—

निपारकः।

बहुलं छन्दसि 7.1.103

पद.—बहुलम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य ऋतः धातोः उत्।

अर्थ—वेद के विषय में ऋकारान्त धातु अंग को बहुल करके उकार आदेश होता है।

उदा.—(1) मुमूर्षति (मृ सन्)-उदोष्ठ्यपूर्वक 'ऋ' को उकार आदेश हुआ है।

(2) पॄ कि-पॄ पॄ कि (उकार न हुआ)-प पॄ कि (द्वित्व अभ्यासकार्य)-पप्रि (यण्)-प्रप्रि तमप्-पप्रितमम् (सु)। पपुरिः (ऋ० 1.46.4)।

(3) तॄ किन् (आदृगमहनजनः)-तुर् कि (द्विर्वचनेऽचि से स्थानिवद्, द्वित्व, उरत्) त तुर् कि तर् तुर् कि-ततुरिः (सु, अनोष्ठ्यपूर्वी 'तॄ' धातु को उकार आदेश हुआ है)। द्र०—(ऋ० 1.145.3, 4.39.2)।

(4) गॄ किन् (पूर्ववत्)-जगुरिः (ऋ० 10.108.1)।

(5) वॄ-वुरीत (काठ० 20.14)।

---

1. महा० 7.1.102 (वा०)—इत्त्वोत्त्वाभ्यां गुणवृद्धी भवतो विप्रतिषेधेन।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां सप्तमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तमाध्यायस्य

द्वितीयः पादः

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु 7.2.1

पद.—सिचि 7.1, वृद्धिः 1.1, परस्मैपदेषु 7.3

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—परस्मैपद प्रत्यय परे है जिसके ऐसे सिच् के परे रहते वृद्धि आदेश होता है ।

'इको गुणवृद्धि' के द्वारा यह 'इक्' के स्थान पर होता है ।

सिच् की आर्धधातुक संज्ञा होती है । अतः सिच् के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण भी प्राप्त होता है ।

गुण अन्तरंग तथा वृद्धि बहिरंग है । अतः वृद्धि को बाधकर गुण होना चाहिए परन्तु वचनसामर्थ्य से वृद्धि गुण का बाध कर लेती है । यदि वृद्धि का बाध करके गुण करते हैं तो सर्वत्र गुण हो जाया करेगा और वृद्धि निरवकाश हो जायेगी । उस दशा में प्रकृतसूत्र का पाठ व्यर्थ हो जाता है ।

उदा.—(1) चि सिच् ईट् त् (लुङ्, तिप्, इकार लोप, च्लि, सिच्)–

चै स् ई त् (वृद्धि)–

अचैषीत् (मूर्धन्य) ।

(2) अ नी सिच् ई त्–अनैषीत् ।

(3) अ लू स् ई त्–अलावीत् ।

(4) अ कृ स् ई त्–अकार्षीत् ।

तृ तिप्–तृ इट् सिच् ईट् त्–तार् इ ईत्–तारीत्–उद् अट् तारीत्–उदतारीत् (भट्टि० 15.10)।

विशेष—'परस्मैपदेषु' अर्थात् **परस्मैपद** प्रत्यय परे रहते ही वृद्धि होती है—

अच्योष्ट—यहाँ सिच् है । इससे पर परस्मैपद प्रत्यय नहीं है। अतः इस सिच् के परे रहते इगन्त अंग (च्यु) को वृद्धि आदेश न हुआ ।

अतो ल्रान्तस्य 7.2.2

पद.—अतः 6.1, ल्र–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, अन्तस्य 6.1

अनु.—अंगस्य वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु ।

अर्थ—अकार के समीप जो लकार व रेफ, तदन्त अंग के ह्रस्व अकार के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है । परस्मैपद-परक सिच् परे रहते ।

'अन्त' शब्द के दो अर्थ होते हैं—

(क) अन्त, छोर,

(ख) समीप (द्र० उदकान्तं गच्छति) ।

सूत्रस्थ 'अन्त' शब्द 'समीप' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इसमें निम्नलिखित प्रमाण है—

(क) 'छोर' अर्थ में 'अन्त' शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है । कारण कि, 'अतो ल्रः' इतना सूत्र बना लेने पर भी तदन्त विधि होकर 'ल्रान्त' अर्थ उपपन्न हो सकता था ।

(ख) 'छोर' अर्थ में 'अन्त' पद को मान लेने की दशा में सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—लकार तथा रेफ हैं अन्त में जिसके ऐसे अंग के अकार को वृद्धि आदेश होता है परस्मै-पदपरक सिच् परे रहते ।

इस अर्थ के अनुसार 'अश्वल्लीत्' आदि में वृद्धि आदेश प्राप्त होता है ।

अतः 'अन्त' पद 'समीप' अर्थ में ही प्रयुक्त है । सूत्रस्थ 'ल्रान्तस्य' पद का विच्छेद निम्न प्रकार से सम्भव है—

(क) ल्रं च तद् अन्तं च (कर्मधारय) ।

(ख) ल्रस्य अन्तस्य (ष०तत्पु०) ।

कर्मधारय समास मान लेने की दशा में विशेषणभूत 'अन्त' पद का पूर्व निपात प्राप्त है । अतः इसे कर्मधारय नहीं माना जा सकता ।

षष्ठी तत्पुरुष मान लेने की दशा में सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

लकार व रेफ के समीपवर्त्ती अंगावयव ह्रस्व अकार को वृद्धि आदेश होता है परस्मैपदपरक सिच् परे रहते ।

इस अर्थ के अनुसार रप्, रण् तथा शल्ल् आदि धातुओं के अकार को वृद्धि प्राप्त होती है । रप् व रण् में रेफ के पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग का अवयवभूत ह्रस्व अकार है तथा शल्ल् में वह लकार के पास है।

ध्यान रहे कि रप् व रण् में पाक्षिक वृद्धि आदेश (अतो हलादेर्ः) होता है तथा शल्ल् में वृद्धि नहीं होती है।

अतः 'ल्रान्तस्य' पद में षष्ठी तत्पुरुष नहीं माना जा सकता है।

वस्तुतः आचार्य को 'ल्रान्तस्य' एक पद इष्ट नहीं है। 'ल्र' पद लुप्तषष्ठ्यन्त है जो 'अंगस्य' का विशेषण है। तदन्त-विधि होकर 'ल्रान्तस्य अंगस्य अतः वृद्धिः स्यात्' ऐसा अर्थ हो जाता है।

प्रस्तुत सूत्र में 'वृद्धिः' पद के अनुरोध से 'इको गुणवृद्धी' परिभाषा उपस्थित होती है परन्तु 'अतः' पद की आवृत्ति कर लेने पर इस दोष की निवृत्ति होकर सूत्र का समुचित अर्थ इस प्रकार होता है—

अत् (= ह्रस्व अकार) के समीप जो लकार वा रेफ, तदन्त अंग के अत् (= ह्रस्व अकार) के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है सिच् परे रहते, यदि उस सिच् से परे परस्मैपद का प्रत्यय हो।

अब एक शंका उपस्थित होती है कि वृद्धि का निषेध (नेटि–पा० 7.2.4) तथा पाक्षिक वृद्धि (अतो हलादेर्लघोः–पा० 7.2.7) दोनों परकार्य हैं। अतः प्रकृतसूत्र के कार्य का बाध करते हैं।

समाधान यह है कि लकारान्त व रेफान्त सभी धातु सेट् हैं। यदि वहाँ 'नेटि' से वृद्धि का निषेध करने लगेंगे तो प्रकृतसूत्र को कहीं अवकाश प्राप्त न होकर व्यर्थ हो जायेगा। अतः वृद्धि निषेध तथा पाक्षिक वृद्धि का प्रकृतसूत्र अपवाद है और यह इन्हें बाध लेगा।

उदा.—(1) ज्वल् इस् ईत् (लुङ्, तिप्, सिच्, इट्, ईट्) अ ज्वाल् ईत् (सिच् लोप, सवर्ण दीर्घ, अट्, वृद्धि)–

अज्वालीत्।
ह्वल्–अह्वालीत्।

(2) क्षर्–अक्षारीत्।
त्सर्–अत्सारीत्।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अतः' अर्थात् अंग के **ह्रस्व अकार** के स्थान पर वृद्धि होती है—

खुर् धातु से लुङ् होकर 'अखोरीत्' बनता है। इसमें अकार के समीप रेफ नहीं है तथा न ही ह्रस्व अकार है। अतः वृद्धि न हुई।

इसी प्रकार–'न्यमीलीत्' में वृद्धि न हुई।

2. 'ल्रान्तस्य' अर्थात् **लकारान्त** व **रेफान्त** धातु के अकार को वृद्धि होती है—

मा अटीत्–यहाँ ह्रस्व अकार तो है परन्तु धातु न तो लकारान्त है और न ही रेफान्त है। अतः वृद्धि आदेश न हुआ।

3. 'अन्तस्य' अर्थात् **ह्रस्व अकार** के समीप जो लकार या रेफ तदन्त धातु के अकार को वृद्धि होती है—

बभ्र् लुङ्–अबभ्रीत् यहाँ धातु रेफान्त तो है परन्तु अकार के पास नहीं है। अतः वृद्धि आदेश न हुआ।

इसी प्रकार 'अश्वल्लीत्' में वृद्धि न हुई।

वदव्रजहलन्तस्याऽचः 7.2.3

पद.—वदव्रजहलन्तस्य 6.1, अचः 6.1

अनु.—अंगस्य सिचि परस्मैपदेषु वृद्धिः।

अर्थ—परस्मैपद सिच् परे रहते वद्, व्रज् और हलन्त अंगों के अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है।

उदा.—(1) वद् तिप् (लुङ्, तिप्)–
वद् सिच् त् (इकार लोप, च्लि, सिच्)–
वद् इट् स् ईट् त् (इट्, ईट्)–
अवाद् इ ई त् (वृद्धि, सिच् का लोप)–
अवादीत् (सवर्णदीर्घ)।

(2) व्रज् इ स् ई त् (पूर्ववत्)–
अ व्राज् इ ईत् (वृद्धि, अट्, सिच् लोप)–
अव्राजीत्।

(3) पच्–अपाक्षीत्।
भिद्–अभैत्सीत्।
छिद्–अच्छैत्सीत्।
रुद्–अरौत्सीत्।

विशेष—1. चूँकि हलन्त कथन के द्वारा वद् व व्रज् का भी ग्रहण हो जाता है। अतः वद् व व्रज् का पृथक् उल्लेख सप्रयोजन है।

यदि यहाँ वद् व व्रज् का ग्रहण न किया जाता तो 'नेटि' के द्वारा वृद्धि निषेध होकर 'अतो हलादेर्लघोः' के द्वारा वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त होती है। प्रकृतसूत्र में इनका योग होने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विधान सामर्थ्य के कारण इन्हें वृद्धि हो जाती है और 'नेटि' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

2. 'अचः' पद का न्यास सप्रयोजन है। यदि सूत्र में 'अचः' पद का योग न होता तो 'इको गुणवृद्धी' परिभाषा उपस्थित होकर केवल इगन्त अंग को ही वृद्धि हो पाती। इस दशा में 'अपाक्षीत्' में वृद्धि नहीं हो सकती थी।

नेटि 7.2.4

पद.—न अव्य०, इटि 7.1

अनु.—अंगस्य हलन्तस्य वृद्धिः परस्मैपदेषु सिचि।

अर्थ—परस्मैपद प्रत्यय परे है जिसके ऐसे इडादि सिच् परे रहते हलन्त अंग के स्थान पर वृद्धि नहीं होती है।

'वदव्रजहलन्तस्य' इस समूचे पद का अधिकार होने पर भी यहाँ 'हलन्तस्य' का ही योग होता है कारण कि, वद् तथा व्रज् को विधान सामर्थ्य के कारण निषेध प्रसक्त नहीं होता है।

उदा.—(1) दिव् इट् सिच् ईट् त् (लुङ्, तिप्, सिच्, इट्, ईट्)—

हलन्तलक्षणा वृद्धि का निषेध–

अदेवीत् (अट्, सिच् लोप, गुण, दीर्घ)।

(2) सिव्–असेवीत्।

(3) कुष्–अकोषीत्।

(4) अ गुप् सिच् त् (लुङ्, तिप्, सिच्, सिच् के आर्धधातुक होने से 'आयादय आर्धधातु०' से वैकल्पिक 'आय'। 'आय' पक्ष में 'अगोपाय इस् ईत्'–इस दशा में 'अतो लोपः' से अकार लोप होकर 'अगोपायीत्' बनता है। अब 'आय' अभाव पक्ष में)–

अ गुप् इ स् ईत् ('स्वरतिसूति०' से पाक्षिक इट्)–अब हलन्तलक्षणा वृद्धि का निषेध होकर लघूपधगुण हुआ—

अगोपीत्।

जिस पक्ष में 'इट्' नहीं होता है, वहाँ इडादि सिच् के न रहने से 'नेटि' की प्रवृत्ति नहीं होती है। हलन्तलक्षणा वृद्धि होकर— अगौप्सीत्।

विशेष—'इटि' अर्थात् **इडादि** सिच् परे रहते ही निषेध होता है—

अ गुप् स् ईत् (लुङ्, आय अभाव तथा इट् अभाव पक्ष में)–

इडादि सिच् न होने से निषेध न हुआ। हलन्तलक्षणा वृद्धि हुई–अगौप्सीत्।

सम्पूर्ण सिद्धि ऊपर उदाहरणों में देखें।

ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् 7.2.5

पद.—ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् 6.3

अनु.—अंगस्य वृद्धिः न इटि सिचि परस्मैपदेषु।

अर्थ—परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय है परे जिसके ऐसे इडादि सिच् परे रहते हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण्, श्वस्, जागृ, णिप्रत्ययान्त, श्वि तथा एदित्–इन अंगों को वृद्धि नहीं होती है।

हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण्, श्वस् तथा एदित् (= ह्रस्व एकार जिसका इत् है)–ये हलन्त अंग हैं। अतः इन्हें हलन्तलक्षणा वृद्धि प्राप्त होती है। 'नेटि' के द्वारा इसका निषेध होकर 'अतो हलादेर्लघोः' से वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त हुई जिसका प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध होता है।

जागृ, णिप्रत्ययान्त तथा श्वि अंगों को 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' के द्वारा प्राप्त नित्य वृद्धि का निषेध होता है। शंका होती है कि 'अजागरीत्' इसमें 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' से प्राप्त वृद्धि का 'जाग्रोऽविचिण्०' के द्वारा बाध हो जाता है। तब प्रकृतसूत्र में 'जागृ' पद का ग्रहण व्यर्थ है।

इसका समाधान है कि पूर्ववत् गुण कर लेने पर 'अतो त्रान्तस्य' के द्वारा प्राप्त वृद्धि के प्रतिषेध के लिए यहाँ सूत्र में 'जागृ' का ग्रहण आवश्यक है।

उदा.—(1) अग्रह् इ स् ई त् (लुङ्, सिच्, इट्, ईट्, अट्)–

अग्रहीत् (वृद्धि निषेध)।

(2) वम्–अवमीत्।

(3) व्यय्–अव्ययीत्।

इसी प्रकार—अव्ययीः (भट्टि० 15.17)

(4) क्षण्–अक्षणीत्।

(5) श्वस्–अश्वसीत्। द्र० न्यश्वसिषुः (भट्टि० 3.17)

(6) जागृ–अजागरीत्।

(7) आ ऊन् णि इस् ईत्–आ ऊ ने इस् ईत्–औ नय् ईत्–औनयीत्।

आटश्च। इट ईटि।

(8) श्वि–अश्वयीत्।

(9) कटे–अकटीत्।

हसे–अहसीत्।

कखे–अकखीत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रगे–अरगीत् ।

ऊर्णोतेर्विभाषा 7.2.6

पद.—ऊर्णोतेः 6.1, विभाषा 1.1

अनु.—अंगस्य न वृद्धिः इटि सिचि परस्मैपदेषु ।

अर्थ—परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय परे है जिसके ऐसे इडादि सिच् के परे रहते ऊर्णु धातु को विकल्प से वृद्धि नहीं होती है ।

उदा.—ऊर्णु इ स् ई त् (पूर्ववत्)–

'विभाषोर्णोः' के द्वारा विकल्प से ङिद्वत् । ङित् पक्ष में गुण, वृद्धि का निषेध होकर उवङ् आदेश होता है—प्र ऊर्णु व् ईत्–प्रोर्णुवीत् । ङित् अभाव पक्ष में)–

आ ऊर्णु इ स् ईत् (आट्)–

'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' से तथा 'इको गुणवृद्धी' से उकार के स्थान पर नित्य वृद्धि प्राप्त हुई । तब प्रकृतसूत्र के द्वारा वैकल्पिक वृद्धि हुई ।

आ ऊर्णावीत्–और्णावीत्
आ ऊर्णवीत्–और्णवीत् (आर्धधातुक गुण) ।

लुङ् लकार की रूपमाला

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथम पुरुष	और्णावीत् (वृद्धि)	और्णाविष्टाम्	और्णाविषुः
	और्णवीत् (गुण)	और्णविष्टाम्	और्णविषुः
	और्णुवीत् (उवङ्)	और्णुविष्टाम्	और्णुविषुः
मध्यम पुरुष	और्णावीः	और्णाविष्टम्	और्णाविष्ट
	और्णवीः	और्णविष्टम्	और्णविष्ट
	और्णुवीः	और्णुविष्टम्	और्णुविष्ट
उत्तम पुरुष	और्णाविषम्	और्णाविष्व	और्णाविष्म
	और्णविषम्	और्णविष्व	और्णविष्म
	और्णुविषम्	और्णुविष्व	और्णुविष्म

अतो हलादेर्लघोः 7.2.7

पद.—अतः 6.1, हलादेः 6.1, लघोः 6.1

अनु.—अंगस्य वृद्धिः विभाषा इटि सिचि परस्मैपदेषु ।

अर्थ—परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय परे है जिसके ऐसे इडादि सिच् परे रहते हलादि अंग के लघु अकार के स्थान पर विकल्प से वृद्धि होती है ।

लघु अकार का अर्थ है—लघु संज्ञक अकार ।

'नेटि' से प्राप्त निषेध का विकल्प होता है ।

'इडादौ सिचि' पद 'लघोरतः' का विशेषण है । तब 'येन नाऽव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' (प०) के द्वारा इडादि सिच् परे रहते केवल एक वर्ण का व्यवधान क्षन्तव्य है । इसके कारण 'अचकासीत्' में वैकल्पिक वृद्धि नहीं होती है ।

उदा.—(1) अकण् इ स् ईत् (पूर्ववत्)–

यहाँ सिच् प्रत्यय को मानकर 'कण्' हलादि अंग है । इससे परे इडादि सिच् है (इस्) । इससे परे परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय (ईत्) है । लघुसंज्ञक अकार को वैकल्पिक वृद्धि–अकाणीत्, अकणीत् ।

(2) अगादीत्, अगदीत् ।

उद् खन् तिप् (लुङ्)–उदखनीत् (भट्टि० 15.55)

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अतः' अर्थात् **अकार** के स्थान पर ही विकल्प से वृद्धि होती है—

दिव् इ स् ई त्–यहाँ 'दिव्' हलादि अंग है, इससे परे इडादि सिच् है, सिच् से परे परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय है। परन्तु अंग में अकार नहीं है । अतः वृद्धि न हुई–अदेवीत् ।

इसी प्रकार—असेधीत्, अशोचीत्, असेवीत् में जानना चाहिए ।

2. 'लघोः' अर्थात् **लघु संज्ञक** अकार के स्थान पर पाक्षिक वृद्धि होती है—

रक्ष् इस् ईत् यहाँ हलादि अंग (रक्ष्) से परे परस्मैपरक (ईत्) इडादि सिच् (इस्) है । परन्तु अकार की लघुसंज्ञा नहीं है । अतः वैकल्पिक वृद्धि नहीं होती है—अरक्षीत् ।

इसी प्रकार–अजल्पीत्, अमन्थीत्, अतक्षीत् में जानना चाहिए ।

3. 'हलादेः' अर्थात् **हलादि अंग** के लघु अकार को विकल्प से वृद्धि होती है—

अश् इस् ईत् यहाँ सूत्र की सभी शर्तें पूरी हैं केवल हलादि अंग नहीं है । अतः वृद्धि आदेश न हुआ–आशीत् (आट् होकर) । इसी प्रकार–आटीत् ।

नेड् वशि कृति 7.2.8

पद.—न–अव्य०, इट् 1.1, वशि 7.1, कृति 7.1

अर्थ—वशादि कृत् संज्ञक प्रत्यय को इट् नहीं होता है । वश् एक प्रत्याहार है ।

'वशि' तथा "कृति' दोनों पदों में षष्ठी के अर्थ में सप्तमी हुई है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वश् के अन्तर्गत व, र, ल, पञ्चम वर्ण (ञ, म, ङ, ण, न), चतुर्थ अक्षर (झ, भ, घ, ढ, ध), तृतीय अक्षर (ज, ब, ग, ड, द) आते हैं।

'आर्धधातुकस्येड्वलादेः से 'इट्' प्राप्त था, सो निषेध हुआ।

उदा.—(1) ईश् वरच् (स्थेशभासपि०)–
ईश् वर (कृदतिङ्)–
ईश्वरः (सु)।

(2) दीप् र (नमिकम्पि०)–
दीप्रः (सु)।

(3) सु शृ मनिन् (अन्येभ्योऽपि दृश्यते)–
सु शृ मन्–सुशर् मन् (आर्धधातुकगुण)–
सुशर्मा (सु)
भस् मनिन् (अन्येभ्योऽपि०)–
भस्मन् सु–भस्म।

(4) याच् नङ् (यजयाचयत०)–
याच् न (स्तोः श्चुना श्चुः)–
याच् ञ टाप्–
याच्ञा (सु)।

विशेष—'कृति' अर्थात् **कृत् संज्ञक** वशादि को इट् का आगम नहीं होता है—

रुरुद् व (लिट्) यहाँ 'व' वशादि है परन्तु 'कृत्' नहीं है। अतः निषेध न हुआ। रुरुदिव।

तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च 7.2.9

पद.—तितुत्रतथ .... रकसेषु 7.3, च–अव्य०।

अनु.—न इट् कृति।

अर्थ—ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क तथा स इन कृत् संज्ञक प्रत्ययों को इट् आगम नहीं होता है।

'ति' के द्वारा क्तिच् व क्तिन् का सामान्य ग्रहण होता है।

'त' के द्वारा औणादिक 'तन्' का ग्रहण होता है तथा 'क्त' का नहीं।

उदा.—(1) तन् क्तिच् (क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्)–

तन् ति–तन्तिः (अनुदात्तोपदेशवनति० के द्वारा अनुनासिक लोप प्राप्त था तथा अनुनासिकस्य क्विझलोः–से दीर्घ प्राप्त था। 'क्तिचि दीर्घश्च' से दोनों का निषेध हुआ)। दीप् क्तिन् (स्त्रियां क्तिन्)–
दीप्तिः (सु)।

(2) सच् तुन् (सितनिगमि० उणा० 1.69)–
सच् तु–सक्तु (चोः कुः)–
सक्तुः (सु)।

(3) शस् ष्ट्रन् (दाम्नीशस्०)–
शस् ष्ट्र (हलन्त्यम्)–
शस् ष्ट्र (षः प्रत्ययस्य)–
शस् त्र (निमित्तापाये०)–
शस्त्रम् (सु)।
पत् ष्ट्रन् (पूर्ववत्)–
पत्त्रम्।
यू ष्ट्रन् (पूर्ववत्)
योत्रम्।

(4) हस् तन् (हसिमृग्रिण् ० उणा० 3.86)–
हस्तः (सु)।
लू तन् (पूर्ववत्)–
लोतः (आर्धधातुक गुण, सु)।
पू तन्–पोतः पूर्ववत्।
धुर्व् तन् (पूर्ववत्)–
धुर् त–धूर्तः (वलोप, दीर्घ, सु)।

(5) काश् क्थन् (हनि कुषि० उणा० 2.2)–
काश् थ–काष् थ (व्रश्चभ्रस्ज०)–
काष्ठम् (ष्टुना ष्टुः, सु)।
कुष् क्थन्–कुष्ठम् (पूर्ववत्)।

(6) कुष् क्सि (प्लुषिकुषि० उणा० 3.155)–
कुष् सि (लघूपधगुण निषेध)–
कुक् सि (षढोः कः सि)–
कुक्षिः (षत्व, सु)।

(7) इष् क्सु (इषेः क्सुः–उणा० 3.157)–
इक्षुः–पूर्ववत्।

(8) अश् सरन् (अशेः सरन्–उणा० 3.70)–
अश् सर–
अष् सर–(व्रश्चभ्रस्ज०)–
अक् सर (षढोः कः–)
अक्षरम् (षत्व, सु)।

(9) शल् कन् (इण् भी कापा० उणा० 3.43)–
शल्कः।

(10) वद् स (वृतृवदि० उणा० 3.62)–
वत्सः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—ग्रह आदि अंगों से इतर अंग से पर सूत्रोक्त ति, तु, त्र, त तथा थ कृत् प्रत्ययों को इट् आगम होता है[1]—

नि ग्रह् इट् क्तिन्–निगृहीतिः (सम्प्रसारण, इट्, दीर्घ; सु)।
उप स्निह् क्तिन्–उपस्निहितिः (इट्)।
नि कुच् क्तिन्–निकुचितिः।

इसी प्रकार–निपठितिः।

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् 7.2.10

पद.—एकाचः 5.1, उपदेशे 7.1, अनुदात्तात् 5.1

अनु.—न इट्।

अर्थ—उपदेश अवस्था में एक अच् वाला तथा साथ ही अनुदात्त जो धातु, उससे पर (आर्धधातुक प्रत्यय) को इट् का आगम नहीं होता है।

ध्यान रहे 'एकाचः' और 'अनुदात्तात्' दोनों के साथ 'उपदेशे' पद का सम्बन्ध है यदि 'उपदेशे' का सम्बन्ध केवल 'एकाचः' के साथ मानते हैं तो सूत्रार्थ इस प्रकार होगा—

'उपदेश में जो एकाच् धातु ऐसे अनुदात्त धातु से पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है—इस अर्थ के अनुसार 'कर्तुम्' में इट् प्राप्त होता है। यथा—

कृ तुमुन्–कृ धातु उपदेश में एकाच् है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' से इसे उदात्त हुआ। भले ही यह धातु उपदेश में अनुदात्त है परन्तु अब उपदेशोत्तर काल में अनुदात्त न रहने से इट् निषेध न हो सकेगा।

यदि 'उपदेशे' का सम्बन्ध केवल 'अनुदात्तात्' के साथ मानते हैं तो सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

'उपदेश में जो अनुदात्त धातु ऐसे एकाच् धातु से पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है—

इस अर्थ के अनुसार 'चकृषे' में इट् प्राप्त होने लगता है। यथा—

कृ थास्–चकृ से यहाँ 'कृ' धातु उपदेश में अनुदात्त है। लिट् में द्वित्व होकर यह अनेकाच् हो गया है। 'कृ' धातु भले ही उपदेश में एकाच् है परन्तु अब अनेकाच् होने से इससे पर आर्धधातुक प्रत्यय (से) को प्राप्त इट् का निषेध नहीं होता है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि 'उपदेशे' पद का 'एकाचः' तथा 'अनुदात्तात्' दोनों के साथ सम्बन्ध है।

अतः सूत्रोक्त निषेध की प्रवृत्ति के लिए धातु का उपदेश काल में एकाच् व अनुदात्त दोनों का होना आवश्यक है।

अनुबन्ध रहित धातु का एकाच्त्व वा अनेकाच्त्व देखा जाता है। अन्यथा–डुकृञ् के सानुबन्ध अवस्था में अनेकाच् रहने से 'कर्तुम्' आदि रूप न बन सकेंगे।

धातुपाठ में धातुओं के सस्वर पाठ के दो प्रयोजन है—

(क) पद विधान–धातु के अनुबन्ध का सस्वर पाठ 'पद' के लिए किया गया है। यथा—

1) अनुदात्तङित आत्मनेपदम् के द्वारा जिस धातु के अनुदात्त की इत्संज्ञा होती है उससे पर आत्मनेपद होता है। ऐसी धातु को अनुदात्तेत् कहते हैं। एधँ, कमुँ आदि अनुदात्तेत् धातु हैं।

2) स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले के द्वारा जिसके स्वरित की इत् संज्ञा होती है, उससे पर परस्मैपद (क्रियाफल के परगामी होने पर) अथवा आत्मनेपद (क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर) होता है। ऐसी धातु को स्वरितेत् कहते हैं।

(ख) अन्य प्रयोजन–कुछ धातुओं को (शुद्ध रूप में) अनुदात्तादि स्वर के साथ पठित किया गया है।

जिन धातुओं को अनुदात्त के साथ पढा गया है, उन्हें अनुदात्तोपदेश धातु तथा जिन्हें उदात्त के साथ पढा गया है, उन्हें उदात्तोपदेश धातु कहा जाता है। अनुदात्तोपदेश धातु से पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् का निषेध होता है। इस प्रकार अनुदात्तेत् व अनुदात्तोपदेश धातुओं में अन्तर जानना चाहिए।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण पाणिनीय धातुपाठ में स्पष्टतया उपलब्ध होता है। उपदेश अवस्था में जो एकाच् व अनुदात्त है, उनके परिज्ञान के लिए काशिकाकार ने एक कारिकाबद्ध तालिका दी है जिसका सार इस प्रकार है—

(क) संस्कृत में धातु दो ही प्रकार की है[2]—

अजन्त व हलन्त।

अजन्तों में उदात्तोपदेश धातु थोड़े हैं। कारिका में इनका परिगणन कर दिया गया है। अतः कारिकोक्त धातुओं को छोड़कर शेष एकाच् अजन्त धातु अनुदात्तोपदेश जाननी चाहिए।

---

1. काशि० 7.2.9 (वा०) तितुत्रतथेष्वग्रहादीनामिति वाच्यम्।

2. काशि० 7.2.10 द्वय एव धातवः–स्वरान्ताः व्यञ्जनान्ताश्च।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) ऊदन्तमृदन्तमृतां .... सन्निबोधत ।[1] अर्थात् ऊदन्त, ॠदन्त, वृङ्, वृञ्, श्वि, डीङ्, शीङ्, श्रिञ्, रु, स्नु, क्षु, यु, णु, क्ष्णु--ये एकाच् अजन्त धातु उदात्त हैं । अतः इन्हें छोड़कर शेष एकाच् अजन्त धातु उपदेश में अनुदात्त हैं ।

(ग) शकिस्तु .... निट् स्वरान् ।[2]

हलन्त धातुओं में अनुदात्तोपदेश थोड़े हैं । अतः उनका कारिका में सीधा परिगणन किया गया है ।

1) कान्त (जिनके अन्त में ककार है) धातुओं में शक् (शक्तौ),

2) सान्त धातुओं में घस् व वस्,

3) भान्त धातुओं में यभ् (मैथुने), रभ् (राभस्ये) तथा लभ् (प्राप्तौ),

4) मान्तों में गम् (गतौ), नम् (प्रह्वत्वे, शब्दे च), यम् (उपरमे) तथा रम् (क्रीडीयाम्),

5) नान्त धातुओं में मन् (ज्ञाने-दिवा०), हन् (हिंसागत्योः),

6) हान्त धातुओं में दह् (भस्मीकरणे), दिह् (उपचये), दुह् (प्रपूरणे), णह् (बन्धने), मिह् (सेचने), रुह् (बीज-जन्मनि), लिह् (आस्वादने) तथा वह् (प्रापणे),

7) शान्त धातुओं में क्रुश् (आह्वाने रोदने च), दंश् (दशने), दिश् (अतिसर्जने), दृश् (दर्शने), मृश् (आमर्शने), रुश्, रिश् (हिंसायाम्), लिश् (अल्पीभावे), लिश् (गतौ), विश् (प्रवेशने) तथा स्पृश् (संस्पर्शे),

8) धान्त धातुओं में क्रुध् (क्रोधे), क्षुध् (बुभुक्षायाम्), बुध् (अवगमने-दिवा०), बन्ध् (बन्धने), युध् (सम्प्रहारे-दिवा०), रुध् (आवरणे), राध् (संसिद्धौ) राध् (वृद्धौ), व्यध् (ताडने), शुध् (शौचे), साध् (संसिद्धौ) तथा सिध् (संराद्धौ-दिवा०),

9) षान्त धातुओं में कृष् (विलेखने), त्विष् (दीप्तौ), तुष् (प्रीतौ), द्विष् (अप्रीतौ), दुष् (वैकृत्ये), पुष् (पुष्टौ-दिवा०), पिष् (सञ्चूर्णने-रु०), विष् (व्याप्तौ), विष् (सेचने), विष् (विप्रयोगे), शिष् (हिंसायाम्-भ्वा०), शिष् (विशेषणे-रु०), शुष् (शोषणे-दिवा०) तथा श्लिष् (आलिंगने-दिवा०),

10) पान्त धातुओं में आप् (व्याप्तौ), आप् (लम्भने), क्षिप् (प्रेरणे), छुप् (स्पर्शे), तप् (सन्तापे), तप् (ऐश्वर्ये), तप (दाहे), तिप् (क्षरणे), तृप् (प्रीणने-दिवा०), दृप् (हर्शमोहन-योः-दिवा०), लिप् (उपदेहे), लुप् (छेदने-तुदा०), वप् (बीज सन्ताने), शप् (आक्रोशे), स्वप् (शये) तथा सृप् (गतौ),

11) दान्त धातुओं में अद (भक्षणे), क्षुद् (सम्पेषणे), खिद् (दैन्ये) खिद् (परिघाते), छिद् (द्वैधीकरणे), तुद् (व्यथने), णुद् (प्रेरणे), पद् (गतौ-दिवा०), भिद् (विदारणे), विद् (सत्तायाम्-दिवा०), विद् (विचारणे-रु०), विन्द् (लाभे), शद् (शातने), षद् (विशरण०), स्विद् (गात्रप्रक्षरणे-दिवा०), स्कन्द् (गति०) तथा हद् (पुरीषोत्सर्गे),

12) चान्त धातुओं में पच् (पाके), मुच् (मोक्षणे), रिच् (विरेचने) रिच (वियोजन०), वच् (परिभाषणे), विच् (पृथग् भावे) तथा षिच् (क्षरणे),

13) जान्त धातुओं में त्यज् (हानौ), णिज् (शौच-पोषणयोः), भज (सेवायाम्), भञ्ज् (आमर्दने), भुज् (पालना-ऽभ्य०), भुज (कौटिल्ये), भ्रस्ज् (पाके), मस्ज् (शुद्धौ), यज् (देवपूजा०), युज् (योगे), युज् (समाधौ), युज् (संयमने), रुज् (भंगे), रञ्ज् (रागे), विज् (पृथग्भावे), ष्वञ्ज् (परिष्वंगे), सञ्ज् (संगे) तथा सृज् (विसर्गे),

14) छान्तों में प्रच्छ् (ज्ञीप्सायाम्) ।

इस प्रकार उपर्युक्त एकाच् हलन्त 103 धातु अनुदात्तोपदेश हैं । इन सभी धातुओं से उत्तर आर्धधातुक प्रत्यय को प्राप्त इट् का निषेध होता है ।

उदा.—नी तृच्-नेतृ सु-नेता ।
स्तु तृच्-स्तोता ।

विशेष—1. 'एकाचः' अर्थात् **एक अच् वाले** धातु से पर आर्धधातुक को इट् का निषेध होता है—

'हनो वध लिङि' के द्वारा 'वध' अनेकाच् है । अतः इससे पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम का निषेध नहीं होता है—

अट् वध इ सिच् ईत्-अवधीत् ।

2. 'उपदेशे' अर्थात् उपदेश अवस्था में जो एकाच् व अनुदात्त धातु उससे पर आर्धधातुक को इट् का निषेध होता है—

पू स्य तिप्-'पू' एकाच् है परन्तु उपदेश अवस्था में उदात्त है । अतः इट् निषेध न हुआ—

पविष्यति ।

3. चूँकि इट् वलादि आर्धधातुक को ही होता है । अतः साक्षात् अनुवृत्ति न होने पर भी 'वलादेः' तथा 'आर्धधातुकस्य' पद अर्थतः यहाँ गृहीत होते हैं ।

1. काशि० 7.2.10 द्वय एव धातवः-स्वरान्ताः व्यञ्जनान्ताश्च ।
2. वही ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशिकाकार तथा सायण यहाँ 'आर्धधातुकस्य' का अधिकार नहीं मानते हैं।

4. चूँकि सभी अनुदात्त अनिट् धातु 'एकाच्' ही हैं। अतः प्रकृतसूत्र में 'एकाचः' पद का योग व्यर्थ प्रतीत होता है।

इसका समाधान है कि प्रकृतसूत्र 'एकाचः' का योग होने से यङ्लुक् में प्रकृतसूत्र प्रवृत्त नहीं होता है। अतः 'एकाचः' पद का योग सार्थक है।

व्याकरणशास्त्र के व्याख्याकारों के अनुसार यङ्लुक् प्रक्रिया में पाँच कार्य नहीं होते हैं जिन्हें निम्नलिखित कारिका में संगृहीत किया गया है—

श्तिपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्टं यद् गणेन च।
यत्रैकाज् ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि॥

अर्थात्—

(क) **श्तिपा**—धातु का निर्देश इक् तथा श्तिप् इन दो प्रत्ययों के द्वारा किया जाता है (द्र०-इक् श्तिपौ धातुनिर्देशे)।

जो कार्य श्तिप् को प्रयोग करके होते हैं, वे यङ्लुक् में नहीं होते हैं। यथा—

'हन्तेर्ज' के द्वारा हन् धातु को 'ज' आदेश कहा गया है। 'हन्तेः' पद में 'हन्' धातु का 'श्तिप्' के द्वारा निर्देश किया गया है। फलतः 'ज' आदेश रूप कार्य 'श्तिप्' के द्वारा निर्दिष्ट हुआ। यह कार्य यङ्लुक् में नहीं होगा अर्थात् यङ्लुक् में म०पु० एक० में 'ज' आदेश नहीं होगा। वहाँ 'जङ्घहि' बनता है।

(ख) **शपा**—अर्थात् जिन कार्यों को करने के लिए शप् के द्वारा निर्देश किया जाये, वे कार्य भी यङ्लुक् में नहीं होते हैं। यथा—

सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भु० के द्वारा इव् अन्त वाले तथा ऋध् आदि धातुओं से उत्तर सन् को विकल्प से इट् होता है। इस सूत्र में 'भर' पद में शप् के द्वारा 'भृ' धातु का निर्देश है। अतः शप् निर्देश के द्वारा किया जाने वाला कार्य (इट् का विकल्प) यङ्लुक् प्रक्रिया में नहीं होगा। तात्पर्य है कि डुभृञ् पालनपोषणयोः तथा भृञ् भरणे-दोनों धातुओं के यङ्लुक् में सन् को इट् का विकल्प नहीं होता है।

(ग) **अनुबन्धेन**—अर्थात् अनुबन्ध के निर्देश के द्वारा किए जाने वाले कार्य यङ्लुक् में नहीं होते हैं।

अनुबन्ध का निर्देश दो प्रकार से होता है—

(1) शीङः सार्वधातुके गुणः, स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु, क्रीङ् जीनां णौ इन सूत्रों में ङकार (शीङ्), ञकार (धूञ् में) तथा ङकार (क्रीङ् में) अनुबन्धों को तत् तत् सूत्र में स्वरूपतः दिया गया है। अतः इन धातुओं को इन सूत्रों से होने कार्य इनकी यङ्लुक् प्रक्रिया में नहीं होंगे।

(2) कई बार अनुबन्धों का निर्देश इत्संज्ञा करने के लिए किया जाता है—

अनुदात्तङित आत्मनेपदम्, इदितो नुम् धातोः इन सूत्रों में ङकार व इकार अनुबन्धों को इत्संज्ञा के लिए दिया गया है। इनके निर्देश से होने वाले कार्य (आत्मनेपद का होना तथा नुम् आगम का होना) यङ्लुक् में नहीं होंगे। तात्पर्य है कि शीङ् का यङ्लुक् में 'शेशयीति' रूप होता है तथा टुनदि धातु से यङ्लुक् में नुम् भी नहीं होता है—

नानदीति, नानत्ति।

(घ) **निर्दिष्टं यद् गणेन च** अर्थात् गण के निर्देश के द्वारा होने वाला कार्य भी यङ्लुक् में नहीं होता है। यथा—

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः
दिवादिभ्यः श्यन्
स्वादिभ्यः श्नुः

इन सूत्रों में गणनिर्देश पूर्वक श्लुत्व, श्यन् विकरण तथा श्नु विकरण का विधान किया गया है। अतः यङ्लुक् में ये कार्य नहीं होते हैं।

तात्पर्य है कि गण के निर्देश के द्वारा विहित कार्य यङ्लुक् में नहीं होता है। यथा—'हु' से यङ्लुक् में 'जोहवीति' तथा 'दिव्' से देदिवीति' बनता है।

(ङ) **यत्रैकाज् ग्रहणं चैव** अर्थात् जो कार्य 'एकाच्' शब्द को लेकर होता है, वह यङ्लुक् में नहीं होता है।

'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' में 'एकाच्' पद के निर्देश के द्वारा इट् का निषेध कहा गया है। अतः उक्त निषेध यङ्लुक् में नहीं होता है। यथा—

बेभिदिता—यहाँ वलादिलक्षणक इट् हुआ है।

श्युकः किति 7.2.11

पद.—श्युकः 6.1, किति 7.1

अनु.—अंगस्य न इट्। एकाचः।

अर्थ—श्रि अंग से उत्तर या उगन्त एकाच् अंग संज्ञक धातु से उत्तर कित् प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता है।

उक् प्रत्याहार है। इसमें उ, ऋ तथा ऌ वर्ण होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अंगस्य' में विभक्ति विपरिणाम होकर 'अंगात्' बन जाता है।

'किति' में षष्ठी के अर्थ में सप्तमी है।

'एकाचः' पद 'उकः' का विशेषण है। तब 'ऊर्णु' आदि उगन्त अनेकाच् में इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है।

उदा.—(1) श्रि क्त्वा–श्रित्वा (इट् निषेध)।
श्रि क्त–श्रितः (सु)।
श्रि व (लिट्)–

असंयोगाल्लिट् कित् से 'व' किद्वत् हुआ। 'आर्धधातुक-स्येड्वलादेः' से प्राप्त इट् का प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया। तब क्रादिनियम से इट् होकर द्वित्वादि हुआ—

श्रि इव–शिश्रि इव–शिश्रियिव (इयङ्)। 'श्रि व' इस दशा में प्रकृतसूत्र (पा० 7.2.11) के द्वारा इट् का निषेध तथा 'स्वरतिसूति०' (पा० 7.2.44) के द्वारा वैकल्पिक इट् युगपत् प्राप्त होते हैं।

'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' के बल पर वैकल्पिक इट् होना चाहिए। यहाँ समाधान है कि विधिकाण्ड से पूर्व प्रतिषेध काण्ड को आचार्य के द्वारा प्रारम्भ किया जाना ज्ञापित करता है कि आचार्य पाणिनि को प्रतिषेध की प्रधानता इष्ट है। अतः पाक्षिक इट् न होकर इट् का निषेध होता है।

तात्पर्य यह है कि आचार्य ने पा० 7.2.8 (नेड् वशि कृति) इट् का निषेध प्रकरण प्रारम्भ किया है तथा पा० 7.2.35 (आर्धधातुकस्येड् वलादेः) के द्वारा इट् के विधान का प्रकरण प्रारम्भ किया है। शास्त्र में लोक में प्रथम विधान तथा पश्चात् निषेध हुआ करता है परन्तु स्वयं पाणिनि के द्वारा विधान से पूर्व निषेध के आरम्भ सामर्थ्य से सिद्ध होता है कि आचार्य की दृष्टि में विधान की अपेक्षा निषेध महत्त्वपूर्ण है। अतः दोनों के उपस्थित होने पर निषेध को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(2) यु क्त्वा–युत्वा।
लू क्त–लूनः (ल्वादिभ्यः)।
धू व (लिट्)–दु धू इ व (प्रथम इट् निषेध, पुनः क्रादिनियम से इट्)–
दुधुविव (उवङ्)।
भू व (लिट्)–बभू वुक् इव–बभूविव।
(पूर्ववत्)।
तृ क्त–तीर्णः (रदाभ्यां०)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'श्युकः' अर्थात् अंगसज्ञक श्रि धातु तथा एकाच् उगन्त धातु से पर आर्धधातुक कित् प्रत्यय को इट् नहीं होता है—

विद् क्त–विदितः यहाँ निषेध न हुआ।

2. 'किति' अर्थात् कित् प्रत्यय को ही इट् का निषेध होता है—

श्रि तृच्–श्रयिता यहाँ 'श्रि' से उत्तर कित् आर्धधातुक नहीं है। अतः निषेध न हुआ।

काशिकाकार के अनुसार कुछ व्याख्याकार 'किति' में गकार का प्रश्लेष स्वीकार करते हैं।[1] यथा—

ग् च क् च–क्कौ, क्कौ इतौ यस्य सः क्कित्, तस्मिन् क्किति।

यहाँ प्रथम गकार को 'खरि च' (पा० 8.4.54) के द्वारा ककार हुआ है जो 'हशि च' (पा० 6.1.110) की दृष्टि में असिद्ध है। अतः 'श्युकः क्किति' के स्थान पर 'श्युको क्किति' होना चाहिए। 'हशि च' के द्वारा 'रु' के स्थान पर उत्व का अभाव आर्ष है।

इस प्रकार 'भू ग्स्नु' में इट् का निषेध होकर 'भूष्णुः' बनता है।

सनि ग्रहगुहोश्च 7.2.12

पद.—सनि 7.1, ग्रहगुहोः 6.2, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य उकः न इट्।

अर्थ—ग्रह, गुह् तथा उगन्त धातुओं से पर 'सन्' को इट् आगम नहीं होता है।

उदा.—(1) ग्रह् सन् (रुदविदमुषग्रहि० के द्वारा सन् किद्वत् प्राप्त इट् का प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध)–
गृह् स (ग्रहिज्यावयि०)–
गृद् स (हो ढः)–
गृक् स (षढोः कः सि)–
घृक् स (एकाचो बशो०)–
घृक् ष (आदेश प्रत्यय०)–
घृक् घृक् ष (सन्यङोः)–
घृ घृक् ष–घर् घृक् ष (उरत्)–
घ घृक् ष–

1. काशि० 7.2.11 केचिदत्र द्विककार निर्देशेन गकार प्रश्लेषं वर्णयन्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झ घृक् ष (कुहोश्चुः)–
ज घृक् ष (अभ्यासे चर्च)–
जिघृक् ष (सन्यतः)–
जिघृक्षति (लट्, तिप्, शप्)–

(2) गुह् सन् (स्वरति सूति० से प्राप्त वैकल्पिक इट् निषेध)–
गुढ् स (होढः)–
गुक् स (षढोः कः–)
घुक् स (एकाचो—)
जुघुक् स (द्वित्वादि)–
जुघुक्षति (लट्)।

(3) रू सन् (इट् निषेध)–
रु रू स
रुरूषति (लट्)।
लू सन्
लुलूषति।
भू सन्
बुभूषति।

'इको झल्' से 'सन्' किद्वत् है। अतः प्राप्त आर्धधातुक गुण का निषेध होता है।

कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि 7.2.13

पद.—कृसृभृवृ ... श्रुवः 6.1, लिटि 7.1

अनु.—अंगस्य, न इट्।

अर्थ—अंगसंज्ञक कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु और श्रु–इन धातुओं से उत्तर लिट् को इट् का निषेध होता है।

'कृ' के द्वारा डुकृञ् करणे तथा कृञ् हिंसायाम् दोनों का ग्रहण होता है।

इसी प्रकार 'भृ' के द्वारा 'भृञ् भरणे' तथा 'डुभृञ् धारण-पोषणयोः' दोनों का ग्रहण होता है। 'वृ' के द्वारा 'वृङ् सम्भक्तौ' तथा 'वृञ् वरणे' दोनों का ग्रहण होता है।

सूत्रोक्त कृ, सृ तथा भृ धातु एकाच् व अनुदात्त हैं। अतः 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' से इन धातुओं से पर लिट् को इट् का निषेध स्वतः सिद्ध है।

'वृ' से उत्तर लिट् को 'श्र्युकः किति' से इट् का निषेध हो जाता है।

तब 'कृ' आदि चार धातुओं का ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि सूत्र में इन धातुओं का ग्रहण नियमार्थ है।

यह सूत्र दो प्रकार से नियम करता है—

(क) यदि कृञ् आदियों से इट् का निषेध करना ही हो तो वह केवल लिट् में ही होता है।[1]—

परन्तु यह उचित नहीं है। कारण कि, 'कृते ग्रन्थे' (पा० 4.3.116) के द्वारा 'कृतः' पद, 'तमधीष्टो भृतो भूतो०' (पा० 5.1.79) के द्वारा 'भृतः' पद तथा 'परिवृत्तो रथः (पा० 4.2.9) के द्वारा 'परिवृतः' पद निष्पन्न न हो सकेंगे। फलतः इस प्रकार नियम नहीं किया जा सकता।

(ख) प्रकृति को आश्रय मानकर या प्रत्यय को आश्रय मानकर होने वाला इट् का निषेध कृ आदि आठ धातुओं से ही परे लिट् को (इट् का आगम) नहीं होता है। भले ही 'कृ' आदि से भिन्न किसी अनिट् धातु से पर लिट् को इट् आगम हो जाये।

तात्पर्य यह है कि कृ, सृ, भृ तथा वृ–इन का निषेध होने पर 'ऋतो भारद्वाजस्य' के द्वारा थल् में पाक्षिक इट् प्राप्त होता है। उसके वारण के लिए प्रकृतसूत्र में इनका ग्रहण नियमार्थ किया गया है।

स्तु, द्रु, स्रु तथा श्रु धातुओं के ग्रहण के निम्नलिखित दो प्रयोजन हैं—

1) थल् में भारद्वाज नियम से प्राप्त इट् के विकल्प का निवारण,

2) व,म, से, ध्वे, वहि तथा महिङ् में क्रादिनियम से प्राप्त इट् का निवारण।

यथा—

स्तु थल्–तुष्टोथ।
द्रु थल्–दुद्रोथ।
स्रु थल्–सुस्रोथ।
श्रु थल्–शुश्रोथ।
स्तु व–तुष्टुव (इसी प्रकार अन्य धातुओं से)
स्तु म–तुष्टुम (इसी प्रकार अन्य धातुओं से)
स्तु थास्–तुष्टुषे (इसी प्रकार अन्य धातुओं से)
स्तु ध्वम्–तुष्टुध्वे (इसी प्रकार अन्य धातुओं से)
स्तु वहि–तुष्टुवहे (इसी प्रकार अन्य धातुओं से)
स्तु महिङ्–तुष्टुमहे (इसी प्रकार अन्य धातुओं से)

नागेश प्रभृति विद्वानों का मत है कि यह नियम उन सब

1. काशि० (न्यास) 7.2.13 लिट्येव, क्रादयोऽनिटः इत्येष तु विपरीत नियमो नाशंकनीयः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातुओं पर लागू होता है जिनमें इट् का निषेध चाहे 'न' कहकर किया गया हो (एकाच उपदेशेऽनु०) अथवा 'वा' कहकर (स्वरतिसूति०)।[1]

इस विषय में कुछ नव्यव्याख्याकारों का मत है कि यह नियम केवल उन अनिट् धातुओं पर ही लागू होता है, जहाँ 'न' कहकर इट् का निषेध किया गया है।[2] यथा—

भिद् आदि से उत्तर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् का स्पष्टतः निषेध (एकाच उपदेशे०) किया गया है। अतः भिद् से उत्तर प्रत्यय को क्रादि नियम से इट् होना चाहिए। इनके मत में 'बिभिदिव' रूप बनता है तथा गुप् (ऊदित् धातु) से 'जुगोपिथ' व 'जुगोप्थ' रूप बनते हैं। जबकि नागेश के मत में गुप् से केवल एक रूप (जुगोपिथ) ही बनता है।

उदा.— (1) कृ व (लिट्)-
चकृव।
कृ म-चकृम।

(2) सृ व-ससृव।
सृ म-
ससृम।

(3) भृ व-
बभृव।
भृ म-बभृम।

(4) वृ व-
ववृव।
वृ म-ववृम।

(5) वृ वहि-
ववृवहे।
वृ महिङ्-
ववृमहे।

(6) स्तु व-
तुष्टुव।
स्तु म-
तुष्टुम।

(7) द्रु व-
दुद्रुव।
द्रु म-
दुद्रुम।

(8) स्नु व-
सुस्नुव।
स्नु म-सुस्नुम।

(9) श्रु व-
शुश्रुव।
श्रु म-
शुश्रुम।

विशेष—सूत्रोक्त प्रतिषेध सुट् रहित 'कृ' का ही होता है[3]- सम् कृ व-सञ्चस्करिव 'अडभ्यासव्यवायेऽपि' से 'सुट्' हुआ। तब इट् हुआ।

सम् कृ म-सञ्चस्करिम।

श्वीदितो निष्ठायाम् 7.2.14

पद.—श्वीदितः 6.1, निष्ठायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य न इट्।

अर्थ—अंग संज्ञक श्वि धातु तथा ईदित् धातु से पर निष्ठा संज्ञक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है। 'क्तक्तवतू निष्ठा' के द्वारा क्त तथा क्तवतु की निष्ठा' संज्ञा होती है।

ईदित्-जिसका दीर्घ ईकार इत् है।

उदा.—(1) श्वि क्त-(इट् निषेध)
श् उ इ त-(वचिस्वपि०)
शु त-(सम्प्रसारणाच्च)
शु न (ओदितश्च)
शूनः (हलः, सु)।

(2) ओलस्जी-लस्ज् क्त-
लस्ज् न (ओदितश्च-पा० 8.2.45)-
लग् न (चोः कुः-पा० 8.2.30)-
लग्नः (सु)।
ओविजी-विज् क्त-
विग्नः।
दीपी क्त-दीप्तः।

यस्य विभाषा 7.2.15

पद.—यस्य 6.1, विभाषा 1.1

1. लघुशब्देन्दुशेखर 7.2.13
2. वै०सि०कौ० (तत्त्वबोधिनी)—सूत्र 2293
3. काशि० 7.2.13 कृञोऽसुट्कस्येति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इटि ।

अर्थ—जिस अंगसंज्ञक धातु से पाक्षिक इट् का विधान किया गया है, उससे पर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता है ।

इट् का वैकल्पिक विधान करने वाले सूत्र ये हैं—

(क) स्वरतिसूतिसूयति० पा० 7.2.44

(ख) उदितो वा–पा० 7.2.56

उदा.—(1) वि धू क्त–विधूतः ।
गुह् क्त–गुह् त–गुढ् ढ–
गुढ–गूढः (ढ्रलोपे पूर्वस्य० । सु) ।
(2) वृधु–वृध् क्त–
वृद् ध–वृद्धः
झषस्तथोर्धो० । झलां जश् झशि ।

आदितश्च 7.2.16

पद.—आदितः 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इटि ।

अर्थ—अंगसंज्ञक आदित् धातु से उत्तर निष्ठा को इट् नहीं होता है । आदित्–आकार है इत् जिसका ।

उदा.—(1) ञिमिदा–मिद् क्त–
मित्रः ।
(2) ञिक्ष्विदा–क्ष्विद् क्त–
क्ष्विण्णः ।
(3) ञिष्विदा–स्विद् क्त–
स्वित्रः ।

चकार अनुक्त समुच्चय के लिए है । तब आदित् से भिन्न धातु से उत्तर निष्ठा को इट् का निषेध होता है—

वम् क्त–वाम् त–
वान्तः ।
आ श्वस् क्त–आश्वस्तः ।

विभाषा भावादिकर्मणोः 7.2.17

पद.—विभाषा 1.1, भावादिकर्मणोः 7.2

अनु.—अंगस्य आदितः निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—भाव तथा आदिकर्म में वर्त्तमान आदित् धातु से पर निष्ठा संज्ञक प्रत्यय को विकल्प से इट् होता है ।

उदा.— (1) भिद् क्त–भिन्नः (सु) ।
भिन्नमनेन । भेदितम् अनेन ।
(2) प्र मिद् क्त–प्रमिन्नः ।
पक्ष में—प्रमेदितः ।

क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु 7.2.18

पद.—क्षुब्धस्वान्त ...बाढानि 1.3, मन्थमन..भृशेषु 7.3

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—मन्थ, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास तथा भृश–इन अर्थों में यथासंख्य करके क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट तथा बाढ शब्दों का निपातन किया जाता है ।

सर्वत्र इट् का अभाव है ।

उदा.—(1) क्षुभ् क्त–क्षुभ् ध–
क्षुभ् ध–(झषस्तथोर्धोऽधः—)
क्षुब् ध (झलां जश् झशि)–
क्षुब् धः (सु) । क्षुब्धो मन्थः ।
अन्यत्र इट् होकर–क्षुभितम् ।
(2) स्वन् क्त–स्वान्त–
स्वान्तः (अनुनासिकस्य क्विझलोः—)
स्वान्तं मनः । अन्यत्र–स्वनितम् ।
(3) ध्वन् क्त–ध्वान् त (पूर्ववत्)–
ध्वान्तं तमः । अन्यत्र–ध्वनितम् ।
(4) लग् क्त–लग्न (नत्व का निपातन)–
लग्नं सक्तम् ।
(5) म्लेच्छ् क्त–
म्लेष् त–
म्लिष् त (निपातन से ह्रस्व)–
म्लिष्टम् अविस्पष्टम् ।
(6) वि रेभ् क्त–
वि रिभ् त (निपातन से ह्रस्व)–
वि रिभ् ध (झषस्तथोर्धो०)–
विरिब् ध (झलां जश् झशि)–
विरिब्धः स्वरः ।
(7) फण् क्त–फाण् त (अनुनासिकस्य क्विझलो—)
फाण् ट–फाण्टम् अनायासः ।
(8) बाह् त–बाढ् त–
बाढ् ढ–बाढ सु–बाढं भृशम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृषिशसी वैयात्ये 7.2.19

पद.—धृषिशसी 1.2, वैयात्ये 7.1

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—अविनय गम्यमान हो तो धृष् तथा शस् धातुओं से उत्तर निष्ठा को इट् का आगम नहीं होता है ।

उदा.—(1) धृष् त–धृष्टः ।
(2) वि शस् त–विशस्तः ।

'अविनय' से अन्यत्र 'धर्षित' तथा 'विशसित' होते हैं ।

दृढः स्थूलबलयोः 7.2.20

पद.—दृढः 1.1, स्थूलबलयोः 7.2

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—स्थूल तथा बल अर्थों में निष्ठान्त 'दृढ' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—दृंह् क्त (इट् का अभाव निपातन से)–
दृह् त (निपातन से नुम् लोप)–
दृ त (निपातन से हकार लोप)–
दृढ (निपातन से ढकार)–
दृढः स्थूलः ।
दृढः बलवान् ।
अन्यत्र 'दृंहितः' बनता है ।

कुछ विद्वान् इसे 'दृह्' धातु से निष्पन्न मानते हैं ।[1]

प्रभौ परिवृढः 7.2.21

पद.—प्रभौ 7.1, परिवृढः 1.1

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—स्वामी अर्थ में निष्ठान्त 'परिवृढ' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—परि वृह् क्त–
परि वृ त–
परिवृढः कुटुम्बी ।

प्रभु अर्थ से अन्यत्र इट् होता है—परिवृंहितम् ।

कृच्छ्रगहनयोः कषः 7.2.22

पद.—कृच्छ्रगहनयोः 7.2, कषः 6.1

अनु.—निष्ठायाम् अंगस्य न इट् ।

अर्थ—दुःख तथा गम्भीर अर्थों में कष् धातु से उत्तर निष्ठा को इट् नहीं होता है ।

उदा.—कष् त–कष्ट–
(1) कष्टोऽग्निः ।
कष्टं व्याकरणम् ।
(2) कष्टानि वनानि ।
कष्टः पर्वतः ।

दुःख तथा गम्भीर अर्थों से अन्यत्र इट होता है—
कषितं सुवर्णम् ।

घुषिरविशब्दने 7.2.23

पद.—घुषिः 1.1, अविशब्दने 7.1

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—अविशब्दन अर्थ में घुष् धातु से उत्तर निष्ठा संज्ञक प्रत्यय को इट् नहीं होता है ।

अविशब्दन का अर्थ है—भावों का अप्रकाशन ।

उदा.—घुष् क्त–घुष् ट–घुष्ट–
घुष्टा रज्जुः (= घुटी हुई रस्सी) ।
घुष्टौ पादौ (= रगड़ कर धोए हुए पैर) ।

अन्यत्र इट् होता है—
अवघुषितं वाक्यम् ।

अर्देः सन्निविभ्यः 7.2.24

पद.—अर्देः 6.1, सन्निविभ्यः 5.3,

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इट् ।

अथ—सम्, नि तथा वि उपसर्गपूर्वक 'अर्द्' धातु से उत्तर निष्ठा को इट् नहीं होता है ।

उदा.—सम् अर्द् क्त–
सम् अर्न् न (रदाभ्यां०)–
सम् अर्ण् न (षाभ्यां नो णः—)–
सम् अर्ण् ण (ष्टुना ष्टुः—)–
समर्ण (हलो यमां यमि०)–
समर्णः ।

इसी प्रकार—
नि अर्द् क्त–न्यर्णः
वि अर्द् क्त–व्यर्णः ।

विशेष—1. 'सन्निविभ्यः' अर्थात् सम् आदि उपसर्ग से उत्तर अर्द् से पर निष्ठा को इट् का निषेध होता है—

1. काशि० 7.2.20 अथ दृहिः प्रकृत्यन्तरमस्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्द् क्त-अर्दितः ।

2. 'अर्देः' अर्थात् अर्द् धातु से उत्तर निष्ठा को इट् का निषेध होता है—

सम् एध् क्त-समेधितः । यहाँ न हुआ ।

अभेश्चाविदूर्ये 7.2.25

पद.—अभेः 5.1, च-अव्य०, आविदूर्ये 7.1

अनु.—अंगस्य अर्देः निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—सन्निकट अर्थ में **अभि** उपसर्गपूर्वक **अर्द्** धातु से पर निष्ठा को इट् नहीं होता है ।

उदा.—अभि अर्द् क्त-अभि अर्ण-
अभ्यर्ण-
अभ्यर्णा सेना ।
अभ्यर्णा शरत् । (द्र० भट्टि० 2.22)

णेरध्ययने वृत्तम् 7.2.26

पद.—णेः 6.1, अध्ययने 7.1, वृत्तम् 1.1

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—अध्ययन अर्थ में ण्यन्त वृत् धातु का निष्ठान्त 'वृत्त' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—वृत् णि क्त-
वृत् णि त (निपातन से इट् निषेध)-
वृत् त (निपातन से णिलुक्)-
वृत्त (प्रत्यय लक्षण गुण का 'न लुमतांऽगस्य' से निषेध)-
वृत्तो गुणो देवदत्तेन ।
वृत्तं पारायणं देवदत्तेन ।

अन्यत्र इट् होता है—
वर्त्तितम् ।

वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः 7.2.27

पद.—वा-अव्य०, दान्तशान्त ... छन्नज्ञप्ताः 1.3

अनु.—अंगस्य णेः निष्ठायाम् न इट् ।

अर्थ—दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त, स्पष्ट, छन्न तथा ज्ञप्त-इन शब्दों में निपातन से णिलुक् तथा इट् का निषेध विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) दम् णि (जनिजृष्क्रसु० से मित् संज्ञा)-दाम् णि क्त (अत उपधायाः)-
दम् णि त (मितां ह्रस्वः)-
दाम् णि त (अनुनासिकस्य क्विझलोः—)
दाम् त (निपातन से इट् निषेध तथा णि लुक्)-
दांत-दान्तः ।
पक्ष में—दमितः (इट् हुआ । णि का लोप) ।

(2) इसी प्रकार—
शम् णि क्त-शान्तः ।
पक्ष में—शमितः ।

(3) पूर् णि क्त-
पूर् त-(रदाभ्यां निष्ठातो०)-
पूर् ण-पूर्णः ।
पक्ष में—पूरितः ।

(4) दस् णि क्त-
दस्तः ।
पक्ष में—दासितः ।

(5) स्पश् णि क्त-
स्पष् त (व्रश्चभ्रस्ज०)-
स्पष्टः ।
पक्ष में—स्पाशितः ।

(6) छद् णि त-
छद् त-छन्नः ।
पक्ष में—छादितः ।

(7) ज्ञप् णिच् क्त-
ज्ञप्तः ।
ज्ञपितः ।

रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् 7.2.28

पद.—रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् 6.3

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् वा न इट् ।

अर्थ—रुष्, अम्, त्वर्, सम् पूर्वक घुष् तथा आङ् पूर्वक स्वन् अंग से उत्तर निष्ठा को विकल्प से इट् नहीं होता है ।

उदा.—(1) रुष् क्त-रुष्टः ।
पक्ष में—रुषितः ।

(2) अभि अम् क्त-
अभि आम् त (अनुनासिकस्य०)-
अभ्यान्तः ।
पक्ष में इट् होकर-
अभ्यमितः ।

(3) त्वर् क्त-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त् ऊठ् र् त (ज्वरत्वर०)-
तू र् त-तूर्णः

'आदितश्च' से इट् निषेध प्राप्त था। यहाँ विकल्प से हो गया— त्वरितः।

(4) सम् घुष् क्त-
संघुष्टः
पक्ष में—संघुषितम्।

(5) आङ् स्वन् क्त-
आस्वान् त (अनुनासिकस्य०)-
आस्वान्तः।
पक्ष में इट् होकर-आस्वनितः।

हृषेर्लोमसु 7.2.29

पद.—हृषेः 6.1, लोमसु 7.3

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् वा इट् न।

अर्थ—'लोम' अर्थ में हृष् धातु से पर निष्ठा को विकल्प से इट् का निषेध होता है।

'हृष्' के द्वारा हृषु अलीके तथा हृष तुष्टौ-दोनों का ग्रहण होता है।

उदा.—हृष् क्त-हृष्ट जस्-हृष्टानि लोमानि।
पक्ष में इट् होकर—
हृषितानि लोमानि।

यहाँ 'गत्यर्थाकर्मक०' के द्वारा कर्त्ता अर्थ में 'क्त' हुआ है।

हृष्टं लोमभिः (इट् निषेध)।
हृषितं लोमभिः (इट् आगम)।

यहाँ 'नपुँसके भावे क्तः' से भाव में 'क्त' हुआ है।

ध्यान रहे यहाँ 'लोमसु' के द्वारा 'केश' व 'लोम' दोनों का अविशेषतः ग्रहण है।

विशेष—1. 'लोमसु' अर्थात् **'लोम'** अर्थ में ही सूत्रोक्त इट् आगम का विकल्प से निषेध होता है—

हृष्टो देवदत्तः
हृषितो देवदत्तः

यहाँ 'अलीक' व 'तुष्टि' अर्थों में प्रयोग हैं। 'लोम' अर्थ न होने से विकल्प न हुआ।

2. विस्मित तथा प्रतिघात अर्थों में निष्ठा को विकल्प से इट् नहीं होता है[1]—

हृष्टो देवदत्तः हृषितो देवदत्तः (=देवदत्त विस्मित है)।
हृष्टा दन्ताः, हृषिता दन्ताः (= दाँत टूट गये हैं)।

अपचितश्च 7.2.30

पद.—अपचितः 1.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम् वा इट् न।

अर्थ—निष्ठान्त शब्द 'अपचित' का विकल्प से निपातन होता है।

उदा.—अप चाय् क्त (निपातन से इट् अभाव)-अपचित (निपातन से 'चि')-अपचितः
पक्ष में—अपचायितः।

विशेष—'क्तिन्' में नित्य अनिट्त्व तथा 'चि' आदेश होता है[2]—

अप चाय् क्तिन्-अपचितिः।

हु ह्वरेश्छन्दसि 7.2.31

पद.—हु-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, ह्वरेः 6.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य निष्ठायाम्।

अर्थ—वेद के विषय में निष्ठा संज्ञक प्रत्यय परे रहते 'ह्वृ' के स्थान पर 'हरु' आदेश होता है। अनुदात्तोपदेश होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' से इट् का निषेध होता है।

उदा.—अहुतमसि (यजु० 1.9)।

अपरिह्वृताश्च 7.2.32

पद.—अपरिह्वृताः 1.3, च-अव्य०।

अनु.—छन्दसि, निष्ठायाम्, अंगस्य।

अर्थ—वेद के विषय में 'अपरिह्वृताः' यह बहुवचनान्त में निपातित है।

उदा.—अप ह्वृ क्त अब 'हरु ह्वरेश्छन्दसि' से प्राप्त 'हरु' आदेश का निपातन से अभाव हुआ। अप ह्वृत जस्-अपरिह्वृताः (ऋ० 1.100.19)।

सोमे ह्वरितः 7.2.33

पद.—सोमे 7.1, ह्वरितः 1.1

अनु.—छन्दसि अंगस्य निष्ठायाम्।

अर्थ—वेद के विषय में 'सोम' अर्थ में 'ह्वरित' शब्द का निपातन किया जाता है।

1. काशि० 7.2.29 (वा०) विस्मितप्रतिघातयोश्चेति वक्तव्यम्।

2. काशि० 7.2.30 (वा०) क्तिनि नित्यमिति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—हृ क्त-निम्नलिखित कार्य निपातन से होते हैं—

(1) इट् आगम-हृ इत,

(2) गुण-हर् इत,

(3) पा० 7.2.31 से प्राप्त 'हरु' आदेश का अभाव हरितः (सु)।

ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृ-वरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिक्षमिति-वमित्यमितीति च 7.2.34

पद.—ग्रसितस्कभितस्तभितो ... विकस्ताः 1.3, विशस्तृ इत्यादिषु प्रत्येकं लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः, वरूत्रीः 1.3, इति-अव्य०, च-अव्य०।

अनु.—छन्दसि अंगस्य निष्ठायाम् न इट्।

अर्थ—वेद के विषय में (सूत्रोक्त) ग्रसित आदि उन्नीस शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) ग्रसु-ग्रस् क्त-

'उदितो वा' से 'क्वा' को वैकल्पिक इट् का विधान होने से 'यस्य विभाषा' के द्वारा 'क्त' को इट् का निषेध प्राप्त हुआ। निपातन से इट् हुआ।

ग्रस् इ त-ग्रसितः (मै० 3.7.4)।

(2) स्कम्भु-स्कम्भ् क्त-
पूर्ववत् निपातन से इट् हुआ।
स्कम्भ् इट् त-
स्कभ् इत (अनिदितां हल उप०)-
स्कभितः (ऋ० 6.70.1)।

(3) स्तम्भु-स्तम्भ् क्त-
पूर्ववत् इट्।
स्तम्भ् इत-स्तभ् इत-
स्तभितः (ऋ० 10.121.5, यजु० 32.6)।

(4) उद् स्तम्भ् क्त-
उद् स्तभ् इत (पूर्ववत्)-
उद् तभ् इत (उदः स्थास्तम्भोः—)
उत्तभितः (ऋ० 10.85.01)।

(5) चते-चत् क्त-
चत्तः (इडभाव का निपातन)।

(6) वि कस् क्त-
विकस्त (इडभाव)-
विकस्तः (मै० 2.7.4)।

(7) वि शसु-वि शस् तृच्-
वि शस्तृ (इडागम का अभाव)-
विशस्ता (ऋ० 1.162.19)।

(8) शंसु-शंस् तृच्-
शंस्तृ (इडागम का अभाव)-
शंस्ता (ऋ० 1.162.5)।

(9) शासु-शास् तृच्-
प्रशास्तृ (पूर्ववत्)-
प्रशास्ता (ऋ० 2.5.4)।

(10) तृ तृच्-
तर् उट् तृ (उट् आगम का निपातन)-
तरुता (ऋ० 10.178.01)

(11) तृ तृच्-
तर् ऊट् तृ (ऊट् का निपातन)-
तरूता।

(12) वृङ् (या वृञ्) तृच्-
वृ उट् तृ (पूर्ववत्)-
वरुता।

(13) वृ तृच्-
वृ ऊट् तृ -
वरूता।

(14) वृ तृच्-वरू तृ-
वरूतृ ङीप् (ऋन्नेभ्यो—)।
वरूत्री जस् ('छन्दसि' से पूर्वसवर्णदीर्घ)-
वरूत्रीः (यजु० 11.61; मै० 2.7.6)।

(15) उद् ज्वल् तिप्-
उद् ज्वल् शप् ति-
उद् ज्वल् इति (निपातन से अकार को इकार आदेश)-
उज्ज्वलिति।

(16) क्षर् शप् ति-
क्षरि ति (पूर्ववत्)-
क्षरिति।

(17) क्षम् शप् ति-
क्षमिति।

(18) वमिति पूर्ववत्।

(19) अम् शप् ति-
अमिति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35

पद.—आर्धधातुकस्य 6.1, इट् 1.1, वलादेः 6.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—अंग संज्ञक शब्द से उत्तर वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है । यकार को छोड़कर सभी व्यंजन वल् प्रत्याहार में आ जाते हैं ।

इट् टित् है । अतः आदि अवयव होता है ।

उदा.—लू तृ–लू इट् तृ–
लो इ तृ–लवितृ–
लवितृ सु–लविता ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'आर्धधातुकस्य' अर्थात् **आर्धधातुक संज्ञक** प्रत्यय को ही इट् होता है—
शी त–शी शप् त–
शी त (अदादिभ्यः शपः)–

शेते यहाँ सार्वधातुक प्रत्यय 'त' है जो वलादि है । आर्धधातुक न होने से इट् न हुआ ।

2. 'वलादेः' अर्थात् **वलादि** प्रत्यय को ही इट् होता है—

लू अनीयर् यहाँ 'अनीयर्' की आर्धधातुक संज्ञा है परन्तु यह वलादि नहीं है । अतः इट् न हुआ ।
लो अनीय–लवनीयः ।

स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते 7.2.36

पद.—स्नुक्रमोः 6.2, अनात्मनेपदनिमित्ते 1.2

अनु.—अंगस्य आर्धधातुकस्य वलादेः इट् ।

अर्थ—यदि 'स्नु' तथा 'क्रम्' आत्मनेपद के निमित्त न हों तो अंगसंज्ञक 'स्नु' तथा 'क्रम्' से उत्तर वलादि आर्धधातुक प्रत्यय को इट् होता है ।

उदा.—(1) प्रस्नु तुमुन्–
प्रस्नु इ तुम्–
प्रस्नो इ तुम्–
प्रस्नवितुम् ।
(2) प्रक्रम् तुमुन्–
प्रक्रम् इट् तुम्–
प्रक्रमितुम् ।

विशेष—'अनात्मनेपदनिमित्ते' अर्थात् 'स्नु' और 'क्रम्' आत्मनेपद के निमित्त न हो तभी सूत्रोक्त इट् होता है—

प्र स्नु सीयुट् सुट् त–'भावकर्मणोः' से कर्त्ता में आत्मनेपद हुआ है । इट् न हुआ ।

प्रस्नु सीय् स् त–प्रस्नुसीस् त–प्रस्नुषीस्त–प्रस्नुषीष् त–प्रस्नुषीष्ट–प्रस्नीषीष्ट । इसी प्रकार–प्रक्रंसीष्ट ।

ग्रहोऽलिटि दीर्घः 7.2.37

पद.—ग्रहः 5.1, अलिटि 7.1, दीर्घः 1.1

अनु.—अंगस्य वलादेः आर्धधातुकस्य इट् एकाचः ।

अर्थ—'इट्' को विभक्ति विपरिणाम से षष्ठ्यन्त (इटः) में परिणत किया जाता है । 'विहितस्य' का अध्याहार किया जाता है ।

एकाच् ग्रह् धातु से पर विहित इट् को दीर्घ आदेश होता है परन्तु लिट् परे रहते नहीं होता है ।

इट् के स्थान पर आन्तरतम्य से ईकार ही दीर्घ आदेश होता है ।

उदा.—(1) ग्रह् तृच्–
ग्रह् इट् तृ–
ग्रह् ई तृ सु–
ग्रहीता ।
(2) ग्रह् तव्यत्–
ग्रहीतव्यम् (सु) ।
(3) ग्रह् तुमुन्–
ग्रह् इ तुम्–
ग्रहीतुम् ।
(4) ग्रह् क्त्वा–
गृह् त्वा (सम्प्रसारण)–
गृह् इ त्वा–
गृहीत्वा ।
(5) ग्रह् लुट्–ग्रह् तिप्–
ग्रह् तास् डा–
ग्रह् ता–ग्रह् इ ता–
ग्रहीता ।
(6) ग्रह् लृट्–ग्रह् स्य तिप्–
ग्रहीष्यति
ग्रहीष्यते (आत्म०) ।
(7) ग्रह् आ०लिङ्–
ग्रहीषीष्ट (सीयुट्, सुट्, इट्, दीर्घ) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ 'न लिङि' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

(8) ग्रह् तिप् (लुङ्)–

अ ग्रह् इ सिच् ईत् (इकार लोप, सिच्, इट्, ईट्)–

अ ग्रह् इस् ईत् (प्राप्त हलन्तलक्षणा वृद्धि का 'नेटि' से निषेध। 'अतो हलादेर्लघोः' से वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त हुई। 'ह्यन्तक्षण०' के द्वारा निषेध हो गया)–

अ ग्रह् ई स् ई त् (दीर्घादेश)–

अ ग्रह् ई ई त् (चूँकि दीर्घ आदेश होने से इट् न रहा। अतः 'इट ईटि' की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। 'एकदेशविकृत मनन्यवत्' (प०) के बल पर दीर्घादेश प्राप्त 'ई' को इट् ही माना जायेगा। तब सिच् का लोप हुआ)–

अग्रहीत्।

अग्रह् सिच् त (आत्म०)–

अग्रह् इ स् त–अग्रहीष्ट।

(9) ग्रह् (लृङ्) तिप्–

ग्रह् इट् स्यत्–

अग्रहीष्यत्।

ग्रह् (लृङ्) त–

अग्रहीष्यत।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अलिटि' अर्थात् **लिट् परे न रहते** ही इट् को दीर्घ होता है— ग्रह् थल् (लिट्)–

जग्रह् थ (द्वित्वादि)–

जग्रहिथ (दीर्घ न हुआ)।

इसी प्रकार–जगृह् इट् व (लिट् 'ग्रहिज्या०' से सम्प्रसा०) जगृहिव।

जगृह् इट् म–जगृहिम।

ग्रह् थास् (आत्मने० म०पु० एक०)–

जग्रह् से ('से' आदेश, द्वित्वादि)–

जगृहिषे।

2. 'एकाचः' का अधिकार होने से 'जाग्रहिता' आदि यङ् लुगन्त के प्रयोगों में दीर्घ नहीं होता है।

3. 'विहितस्य' का अध्याहार करने से 'ग्राहितम्' में दीर्घ न हुआ। यथा—ग्रह णिच्–ग्राहि क्त–

ग्राहि इट् त–

ग्राह् इ त (णि लोप)–

ग्राहितम् (सु)।

वृतो वा 7.2.38

पद.—वृतः 5.1, वा–अव्य०।

अनु.—अंगस्य वलादेः आर्धधातुकस्य इट् दीर्घः अलिटि।

अर्थ—वृ तथा ऋदन्त धातुओं से पर विहित इट् को विकल्प दीर्घादेश होता है, परन्तु लिट् परे रहते न हो।

'वृ' के द्वारा 'वृङ्' व 'वृञ्' दोनों का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) वृ तृच्–वृ इट् तृ–

वरिता।

पक्ष में—वरीता

(2) पॄ तृच्–पॄ इ तृ–

पर् इ तृ–परिता।

पक्ष में—परीता।

पॄ तिप् (लृट्)–

पॄ स्यति–पॄ इट् स्यति–

परिष्यति।

पक्ष में—परीष्यति।

स्तृ इट् तृच्–

स्तरिता, स्तरीता।

न लिङि 7.2.39

पद.—न–अव्य०, लिङि 7.1

अनु.—अंगस्य वृत; इट् दीर्घः।

अर्थ—लिङ् परे रहते वृ (वृङ् व वृञ्) तथा ऋदन्त धातुओं से उत्तर इट् को दीर्घादेश नहीं होता है।

उदा.—(1) वृ सीयुट् सुट् त (लिङ्)–

वृ इट् सीय् स् त–वरि सीय् स् त–

वरिसीस् त–वरिषीष्ट।

(2) स्तृ सीय् स् त (आ०लिङ्)–

इट् आगम नित्य प्राप्त हुआ। 'लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु' के द्वारा वैकल्पिक इट् हुआ। इट् पक्ष में—

स्तृ इट् सीय् स् त–स्तर् इ षीष्ट–

स्तरिषीष्ट ('वृतो वा' का बाध प्रकृतसूत्र करता है)। (इट् अभाव पक्ष में 'उश्च' के द्वारा लिङ् कित् हुआ। गुण निषेध। 'ऋत इद् धातोः' से इत्व)। स्तिर् सीय् स् तस्तीर्षीष्ट (हलि च)।

सिचि च परस्मैपदेषु 7.2.40

पद.—सिचि 7.1, च–अव्य०, परस्मैपदेषु 7.3

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य वृतः इट् दीर्घः न ।

अर्थ—परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय परे रहते जो सिच् उसके परे रहते वृ (वृङ् तथा वृञ्) तथा ऋदन्त धातुओं से उत्तर इट् को दीर्घ नहीं होता है ।

उदा.—(1) वृङ् आत्मनेपदी है । अतः इसके विषय में प्रकृतसूत्र प्रवृत्त नहीं होता है ।

वृञ् इ स् ई त् (लुङ्, तिप्, इकार लोप, सिच्, इट्, ईट्)–

('वृतो वा' से प्राप्त वैकल्पिक दीर्घ का निषेध)

अट् वार् इस् ईत् (अट्, वृद्धि)–

अ वार् इ ईत् (सिच् लोप)–

अवारीत् (सवर्ण दीर्घ) ।

(तस् में) वृ इस् ताम्–

अवारिष्टाम् ।

(2) पृ इस् ईत् (पूर्ववत्)–

अपार् इस् ईत् ('सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' से इगन्तलक्षणा वृद्धि)–

अपारीत् (सिच् लोप, लोप को सिद्ध मानकर सवर्ण दीर्घ)।

(तस् में) अट् पृ इस् ताम्–अपारिष्टाम् ।

अस्तारिष्टाम् ।

विशेष—'परस्मैपदेषु' अर्थात् **परस्मैपदसंज्ञक** प्रत्यय परे रहते ही दीर्घ आदेश का निषेध होता है—

प्र वृ इ सिच् त–

(वृङ् धातु आत्मनेपदी है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा दीर्घादेश का निषेध न हुआ । 'वृत्तो वा' के द्वारा वैकल्पिक दीर्घ हुआ)–

प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट ।

इट् सनि वा 7.2.41

पद.—इट् 1.1, सनि 7.1, वा–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य वृतः ।

अर्थ—वृ तथा ऋदन्त धातुओं से उत्तर सन् प्रत्यय को विकल्प से इट् आगम होता है ।

उदा.—(1) वृ सन्–वृ इट् स

('सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् का निषेध प्राप्त था । प्रकृतसूत्र के द्वारा पाक्षिक इट् हुआ) ।

वि व र् इस (द्वित्वादि, सन्यतः)–

विवरिषते (लट्, त, शप्) ।

'वृतो वा' से पाक्षिक दीर्घ–

विवरीषते ।

वृ स (इट् अभाव पक्ष में)–

'इको झल्' से सन् किद्वत् ।

('अज्झनगमां सनि' से अंग को दीर्घ । 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' के द्वारा उकार आदेश)–

वुर् स–वुर् वुर् स–

वु वुर् स (हलि च)–

वुवूर्षते (लट्) ।

द्र० प्रावुवूर्षुः (भट्टि० 5.49)

वृ सन्–वुवूर्षति (पूर्ववत्, परस्मैपद में इट् अभाव पक्ष में, उकार, दीर्घ, तिप्) ।

वृ सन्–विवरिषति (इट् पक्ष, दीर्घ अभाव पक्ष, तिप्)।

वृ सन्–विवरीषति (इट् पक्ष, दीर्घ पक्ष, तिप्) ।

(2) तॄ सन्–तितीर्षति (ऋत इद् धातोः) से इकार, दीर्घ, इट् का अभाव) ।

तॄ सन्–तितरिषति (इट् पक्ष, दीर्घ का अभाव) ।

तॄ सन्–तितरीषति (इट्, दीर्घ) ।

इसी प्रकार—स्तॄ–तिस्तीर्षति ।

तिस्तरिषति ।

तिस्तरीषति ।

लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु 7.2.42

पद.—लिङ्सिचोः 7.2, आत्मनेपदेषु 7.3

अनु.—अंगस्य वृतः इट् वा ।

अर्थ—वृ तथा ऋदन्त धातुओं से उत्तर लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् आगम होता है आत्मनेपद में ।

चूँकि प्रकृतसूत्र का कार्यक्षेत्र आत्मनेपद है । अतः परस्मैदी धातु के विषय में उक्त इट् नहीं होता है ।

उदा.—(1) वृ सीयुट् सुट् त (आ०लिङ्)–

वृ सीय् स्त (इट् अभाव)–

वृषीष्ट (यलोप, षत्व) ।

वृ सीय् स् त (इट् पक्ष)–

वर् इ सीय् स् त ('वृतो वा' से दीर्घ 'न लिङि') वरिषीष्ट (दीर्घादेश अभाव)–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) वृ स् त (सिच्)–
अट् वृ त (सिच् लोप, इट् अभाव)।
अवृत।
वृ स् त–वृ इट् स् त (इट् पक्ष)–
अवर् इष्ट (गुण, अट्)–
अवरिष्ट।
अवरीष्ट (वृतो वा)।

(3) स्तृ सीय् स् त–
स्तिर् सीय् स् त (इट् अभाव 'उश्च' से किद्वत्। गुण निषेध)–
स्तीर्षीष्ट (दीर्घ)।
स्तृ सीय् स् त–
स्तर् इट् सीय् स् त (इट्)–
स्तरिषीष्ट। ('न लिङि' से दीर्घादेश का निषेध)।

(4) स्तृ स् त (लुङ्, सिच्)–
स्तृ इट् स् त (प्रकृतसूत्र से पाक्षिक इट्)–
स्तर् इ स् त (आर्धधातुक गुण)–
अस्तरिष्ट (अट्, 'वृतो वा' से पाक्षिक दीर्घ)।
अस्तरीष्ट।
स्तृ स् त (इट् अभाव)–
स्तिर् स् त (उश्च, गुण निषेध, 'ऋत इद् धातोः)–
अट् स्तिर् ष् त (षत्व, अट्)–
अस्तीर्ष्ट (हलि च)।

ऋतश्च संयोगादेः 7.2.43

पद.—ऋतः 5.1, च–अव्य०, संयोगादेः 5.1

अनु.—अंगस्य लिङ्सिचोः आत्मनेपदेषु वा इट्।

अर्थ—संयोग है आदि में जिसके ऐसे ऋदन्त धातु से उत्तर लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् आगम होता है, आत्मनेपद प्रत्यय के विषय में।

उदा.—(1) स्तृ सीयुट् सुट् त–
(इट् का निषेध प्राप्त हुआ। प्रकृतसूत्र से वैकल्पिक इट् हुआ)।
स्तृ इट् सीस्त–स्तरिषीष्ट
(आर्धधातुक गुण, षत्व)।
स्तृ सीय् स् त (इट् अभाव पक्ष)–
'उश्च' से किद्वत्, गुणनिषेध।
स्तृषीष्ट।

(2) ध्वृ सीय् स् त–
ध्वरिषीष्ट (इट् पक्ष)।
ध्वृषीष्ट (इट् अभाव)।

(3) स्मृ सीय् स् त–
स्मरिषीष्ट।
स्मृषीष्ट।

(4) आ स्तृ सिच् त–
आ स्तिर् स् त (इट् का अभाव)–
आ अ स्तीर्ष्ट (अट्, दीर्घ)–
आस्तीर्ष्ट (वृद्धि)।
आस्तरिष्ट (इट्, दीर्घ अभाव)–
आस्तरीष्ट (इट्, दीर्घ)।

(5) अध्वृषाताम्।
(लुङ्, आताम्, इट् अभाव)।
अध्वरिषाताम्
(इट्, गुण)।

(6) स्मृ लुङ्–
अस्मृषाताम् (इट् अभाव)।
अस्मरिषाताम् (इट् आगम)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'ऋतः' अर्थात् **ऋदन्त** धातु से उत्तर लिङ् व सिच् को विकल्प से इट् होता है—

च्यु सीय् स् त–

'च्य्' का संयोग है परन्तु यह संयोग ऋदन्त से पूर्व नहीं है। अतः इससे उत्तर लिङ् को इट् न हुआ–
च्योषीष्ट (गुण, षत्व)।
लुङ् में
च्यु सिच् त (पूर्ववत् इट् न हुआ)–
अच्योष्ट।
इसी प्रकार—प्लोषीष्ट, अप्लोष्ट।

2. 'संयोगादेः' अर्थात् **संयोग है आदि** में जिसके ऐसे ऋदन्त धातु से पर लिङ् व सिच् को विकल्प से इट् होता है–

कृ सीय् स् त यहाँ ऋदन्त धातु से पर आत्मनेपद विषय लिङ् है परन्तु इसके आदि में संयोग नहीं है। अतः इट् न हुआ। कृषीष्ट।
कृ सिच् त–
अट् कृ स् त –
अकृत।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा 7.2.44

पद.—स्वरति सूति .... धूञूदितः 5.1, वा–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य वलादेः आर्धधातुकस्य इट् ।

अर्थ—स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् इन धातुओं से तथा ऊदित् (= दीर्घ ऊकार जिसका इत् है) धातु से उत्तर वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् आगम होता है ।

'स्वरति' के द्वारा 'स्वृ शब्दोपतापयोः' (भ्वा०पर०) का, 'सूति' के द्वारा 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा० आत्म०) का, 'सूयति' के द्वारा 'षूङ् प्राणिप्रसवे' (दिवा० आत्म०) का तथा 'धूञ्' के द्वारा 'धूञ् कम्पने' (स्वा०, क्र्या० उभ०) का ग्रहण होता है ।

ऊदित् के द्वारा गुपू, गाहू प्रभृति धातुओं का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) स्वृ तृच्–
स्वृ इट् तृच्–
स्वरितृ सु–स्वरिता ।
पक्ष में—
स्वृ तृ–स्वर्तृ–स्वर्त्तृ सु–
स्वर्त्ता ।

(2) प्र षू–प्र सू–
प्र सू तृच्–
प्र सो इट् तृ–प्रसविता ।
प्र सू तृ–प्रसोता ।

(3) षू–सू तृच्–
सू इट् तृ–सो इ तृ–
सवितृ सु–सविता ।
सू तृच्–
सोता ।

(4) धू तृच्–
धू इट् तृ–
धो इ तृ–धवितृ–
धवितृ सु–धविता ।
धू तृच्–
धोता ।

(5) गुपू–गुप् तृच्–
गुप् इट् तृ–गोपितृ सु–
गोपिता ।
गुप् तृच्–
गोप्ता ।
गाहू–गाह् तृच्–
गाह् इट् तृ–गाहितृ–
गाहितृ सु–गाहिता ।
गाह् तृच्–
गाढ् तृ–गाढ् ढृ–
गाढृ सु–गाढा ।

रधादिभ्यश्च 7.2.45

पद.—रधादिभ्यः 5.3, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य वलादेः आर्धधातुकस्य इट् वा ।

अर्थ—रधादि धातुओं से उत्तर वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है ।

रधादि एक गण है जो दिवादिगण का उपगण है । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित आठ धातुओं का समावेश होता है—

रध हिंसायाम् (दिवा०, प०) ।
णश अदर्शने (दिवा०, प०) ।
तृप प्रीणने (दिवा०, प०) ।
दृप हर्षमोहनयोः (दिवा०, प०) ।
द्रुह जिंघांसायाम् (दिवा०, प०) ।
मुह वैचित्ये (दिवा०, प०) ।
ष्णुह उद्गिरणे (दिवा०, प०)
ष्णिह प्रीतौ (दिवा०, प०) ।

इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है । तृप् और दृप् धातु अनिट् हैं । अतः इनसे इट् की अप्राप्ति थी सो विकल्प कह दिया गया । शेष धातु सेट् हैं । इनसे इट् नित्य प्राप्त था । विकल्प कह दिया गया ।

उदा.—(1) रध् तृच्–
रध् धृ (झषस्तथोर्धो—)
रद् धृ (झलां जश् झशि)–
रद्धा (सु) ।
पक्ष में—रधिता (इट्) ।

(2) णश्–नश् तृच्–
न नुम् श् तृ (मस्जिनशोर्झलि)–
न न् श् तृ (व्रश्चभ्रस्ज०)–
न न् ष् तृ (ष्टुना ष्टुः)–
न न् ष् ट्–नंष् ट्–
नंष्टा ।
नश् इट् तृ (इट् पक्ष)–
नशिता ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) तृप् तृच्-
तृ अम् प् तृ (अनुदात्तस्य चर्दु०)-
त्रप् तृ सु-त्रप्ता (अम्, इट् अभाव)।
तृप् तृच् (अम् अभाव, इट् अभाव) तर्प्ता ।
तृप् इट् तृच्-
तर्पितृ सु-तर्पिता (अम् अभाव, इट्)।

(4) दृप् तृच्
दृ अम् प् तृ-
द्रप् तृ-द्रप्ता ।
दृप् तृच्-
दर्प्ता ।
दृप् इट् तृ-
दर्पितृ सु-दर्पिता ।

(5) द्रुह् तृच्-
द्रुघ् तृ (वा द्रुहमुह०)-
द्रुघ् धृ (झषस्तथो—)-
द्रुग् धृ (झलां जश् झशि)-
द्रोग् धृ सु (गुण)-
द्रोग्धा ।
द्रुह् तृच् (घत्व अभाव, इट् अभाव)
द्रुद् तृ (हो ढः)-
द्रुद् ढृ (ष्टुना ष्टुः)-
द्रोद् ढृ (गुण)-
द्रोढृ सु-द्रोढा ।
द्रुह् इट् तृच् (इट् पक्ष)-
द्रोहितृ सु-द्रोहिता ।

(6) मुह् तृच्-
मुघ् तृ-
मुघ् धृ-
मुग् धृ-
मोग्धा (इट् अभाव, घत्व पक्ष) ।
मुह् तृच् (इट् अभाव, घत्व अभाव)-
मुद् तृ-
मुद् ढृ-
मोद् ढृ-
मोढृ सु-मोढा ।
मुह् इट् तृ (इट्)-
मोह् इ तृ-
मोहिता ।

(7) ष्णुह्-स्नुह् तृच्-
स्नुघ् तृ (घत्व, इट् अभाव)-
स्नुघ् धृ-
स्नुग् धृ-
स्नोग् धृ-स्नोग्धा ।
स्नुह् तृच् (इट् अभाव, घत्व अभाव)-
स्नुद् तृ-
स्नुद् ढृ-
स्नोद् ढृ-स्नोढृ सु-
स्नोढा ।
स्नुह् इट् तृच्-
स्नोह इ तृ-
स्नोहितृ सु-स्नोहिता ।

(8) ष्णिह्-स्निह् तृच्-
स्निघ् तृ-
स्निघ् धृ-
स्निग् धृ-
स्नेग् धृ सु-
स्नेग्धा (इट् अभाव, घत्व) ।
स्निह् तृच्-
स्निद् तृच्-
स्निद् ढृ-
स्नेद् ढृ-स्नेढृ सु-
स्नेढा (घत्व अभाव, इट् अभाव) ।
स्निह् इट् तृच्-
स्नेह् इ तृ-
स्नेहिता ।

निरः कुषः 7.2.46

पद.—निरः 5.1, कुषः 5.1

अनु.—अंगस्य वलादेः आर्धधातुकस्य इट् वा ।

अर्थ—निर् पूर्वक कुष् अंग से उत्तर वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् आगम होता है ।

उदा.—निर् कुष् तुमुन्-
निः कुष् तुम्-
निष् कोष् तुम्-(इददुपधस्य०)-
निष्कोष्टुम् । (इट् अभाव) ।
निष्कोषितुम् (इट्) ।

'निर्' उपसर्ग न रहने पर कुष् से उत्तर वलादि आर्धधातुक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नित्य इट् होता है—

कुष् तुमुन्–कोषितुम् ।

इण्निष्ठायाम् 7.2.47

पद.—इट् 1.1, निष्ठायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य निरः कुषः ।

अर्थ—निर् पूर्वक कुष् अंग से उत्तर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् आगम होता है ।

प्रकृतसूत्र में इट् का अधिकार होने पर भी पुनः इट् का ग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिए है ।[1]

उदा.—निर् कुष् क्त–
निष्कुषित सु–निष्कुषितः ।
निर् कुष् क्तवतु–
निष्कुषितवान् ।

तीषसहलुभरुषरिषः 7.2.48

पद.—ति 7.1, इषसहलुभरुषरिषः 5.1

अनु.—अंगस्य आर्धधातुकस्य इट् वा ।

अर्थ—'ति' पद को विभक्तिविपरिणाम से षष्ठ्यन्त बनाकर तदादि विधि कर ली जाती है ।

इष्, सह, लुभ्, रुष् और रिष्–इन अंगों से उत्तर तकारादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् होता है ।

धातुपाठ में इष् धातु का तीन स्थलों पर पाठ प्राप्त होता है—(क) इषु इच्छायाम् (तुदा०, पर०) ।
(ख) इष आभीक्ष्ण्ये (क्र्यादि०, पर०) ।
(ग) इष गतौ (दिवा०, पर०) ।

हरदत्त के अनुसार 'इष' व 'सह' विकरणान्त पठित हैं । 'इष' में 'श' तथा 'सह' में 'शप्' विकरण है । (द्र० पद-मञ्जरी) ।

दैवादिक और क्रैयादिक धातुओं में औपदेशिक अकार अनुबन्ध है । अतः सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् (प०) से अकार विकरणक 'सह' के सहयोगवशात् अकार विकरणक तौदादिक का ग्रहण होता है ।

परन्तु महाभाष्य में एक वार्त्तिक[2] के द्वारा यहाँ दैवादिक इष् धातु का प्रतिषेध किया गया है । हरदत्त की व्याख्या के अनुसार दैवादिक इष् में सूत्र की प्राप्ति ही नहीं है । तब वार्तिककार की उक्त वार्तिक व्यर्थ होकर ज्ञापित करती है कि प्रकृतसूत्र तीनों 'इष्' धातुओं में प्रवृत्त होता है । वार्त्तिक के द्वारा निषेध होने से शेष दो (तौदादिक तथा क्रैयादिक) धातुओं में यह सूत्र प्रवृत्त होता है ।

अतः 'इष्' के द्वारा केवल तौदादिक व क्रैयादिक इष् का ही ग्रहण होता है ।

इष् आदि सभी धातु सेट् हैं । प्रकृतसूत्र के द्वारा विकल्प किया गया है ।

उदा.—(1) इष् तृच्–
इष् इट् तृ–
एष् इ तृ सु–एषिता ।
पक्ष में—एष् तृ–एष्टा ।

(2) सह् तृच्–
सोढ् ढृ–(सहिवहोरोदवर्णस्य)–
सोढृ सु–सोढा ।
इट् होकर–सहिता ।

(3) लुभ् तृच्–
लुभ् इट् तृ–
लोभ् इ तृ–लोभिता ।
लुभ् तृ (इट् अभाव)–
लुभ् धृ–लुब् धृ–
लोब् धृ सु–लोब्धा ।

(4) रुष् तृच्–
रुष् इट् तृच्–
रोषिता ।
रुष् तृ–
रोष्टा (इट् अभाव)।

(5) रिष् तृच्–
रिष् इट् तृ–
रेषिता ।
रिष् तृच्–
रेष्टा (इट् अभाव)।

सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् 7.2.49

पद.—सनि 7.1, इवन्तर्धभ्रस्ज ... सनाम् 6.3

1. काशि० 7.2.47 इड्ग्रहणं नित्यार्थम् ।
2. महा० 7.2.48 (वा०) इषेस्तकारे श्यन् प्रत्ययात् प्रतिषेधः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य वा इट् ।

अर्थ—'सनि' को विभक्ति विपरिणाम के द्वारा षष्ठ्यन्त (सनः) बना लिया जाता है ।

इव् अन्त में है जिसके ऐसे अंग से, ऋधु वृधौ, भ्रस्ज पाके, दम्भु दम्भे, श्रिञ् सेवायाम्, स्वृ शब्दोपतापयोः, यु मिश्रणे, ऊर्णुञ् आच्छादने, भृञ् भरणे, ज्ञपि तथा सन् (षणु तथा षण)—इनसे उत्तर सन् प्रत्यय को विकल्प से इट् होता है ।

उदा.—(1) दिव् सन्–
दिव् इट् सन्–देविष
दिदेविष (द्वित्वादि)–
दिदेविषति (लट्, तिप्, शप्) ।
इट् अभाव पक्ष में—
दिव् सन्–
दि ऊठ् स–द्यूस–(च्छ्वोः शूडनु०)–
दुद्यूस (द्वित्वादि)–
दुद्यूषति ।
सिव् सन्–
सिसेविषति ।
सुस्यूषति (इट् अभाव) ।

(2) ऋधु सन्–
ऋध् इट् स–अर्ध् इ स (गुण)–
अर्धिष–अर् धिष् धिष् अ–
(षत्व, 'अजादेर्द्वितीयस्य' से द्वित्व)–
अर् दि धिष (अभ्यासे चर्च)–
आर्दिधिषति ।
इट् अभाव में–
ऋधु सन्–ऋ धुस धुस–
ऋध् ध् स (अजादेर्द्वितीयस्य)–
ऋद ध् स (अभ्यासे चर्च)–
ऋ दि ध् स (सन्यतः)–
ई र् दि ध् स (आप् ज्ञप्यृधाम्)–
ई र् ध् स (अत्र लोपोऽभ्यास०)–
ई र् त् स (खरि च)–
ईर्त्सति (लट्, तिप्)।

(3) भ्रस्ज् सन्–
यहाँ प्रमुख रूप से दो कार्य होते हैं—
(क) प्रकृतसूत्र के द्वारा इट् का विकल्प,
(ख) 'भ्रस्जो रोपधयो०' के द्वारा रम् आगम का विकल्प ।

इस प्रकार चार रूप बनते हैं:—

क) (इट् पक्ष, रम् पक्ष)—
भ्रस्ज् सन्–भ्रस्ज् इ स–
ब भ्रस्ज् इ स–
बि भ्रस्ज् इ स (द्वित्व, सन्यतः)–
बि भ रम् ज् इ स (रेफ व उपधा—दोनों के स्थान पर 'रम्')–
बिभर्जिषति (षत्व आदि) ।
बिभर्ज्जिषति (अचो रहा०) ।

ख) (इट् पक्ष, रम् अभाव)–
भ्रस्ज् इ सन्–
भ्रस्ज् भ्रस्ज् इ स (द्वित्व)–
बभ्रस्ज् इ स (अभ्यासकार्य)–
बि भ्र श् ज् इ स (सन्यतः । स्तोः श्चुना–)–
बि भ्रज्ज् इस (झलां जश् झशि)–
बिभ्रज्जिषति (लट्, तिप्, शप्) ।

ग) (इट् अभाव, रम् पक्ष)–
भ्रस्ज् सन्–
बभ्रस्ज् स–द्वित्वादि–)–
बिभ्रस्ज् स (सन्यतः)–
बि भ रम् ज् स–बिभर्ज् स–
बि भर्ष् स (व्रश्चभ्रस्ज०)–
बि भर्क् स (षढोः कः सि)–
बिभर्क् ष (मूर्धन्य)–
बिभर्क्षति (तिप्, शप्) ।

घ) (इट् अभाव, रम् अभाव)–
भ्रस्ज् सन्–
ब भ्रस्ज् स–
बिभ्रस्ज स–
बिभ्रज्स (स्कोः संयोगा०)–
बिभ्रष् स (व्रश्चभ्रस्ज०)–
बिभ्रक् स (षढोः कः—)
बिभ्रक् ष (मूर्धन्य)–
बिभ्रक्षति (लट्, तिप्, शप्) ।

(4) दम्भ् सन्–
दिम्भ् सन् (दम्भ इच्च)–
'हलन्ताच्च' से सन् किद्वत्, 'अनिदितां हल उपधाया—' से अनुनासिक लोप–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिभ् स–
दिदिभ् स–
दिभ् स (अत्र लोपोऽभ्या०)–
धिभ् स (एकाचो बशो०)–
धिप् स (खरि च)–
धिप् शप् तिप् (तिप्, शप्)।
धिप्सति।
(ईत् पक्ष में)–
दम्भ् सन्–
दीम्भ् स (दम्भ इच्च)–
दीभ् स–
दिदीभ् स–
दीभ् स–
धीभ् स–
धीप् स शप् ति–धीप्सति।
(इट् पक्ष में)–
दम्भ् इट् सन्–
दिदम्भ् इ स–
दिदम्भिषति।

(5) श्रि सन्–
श्रि इट् सन्–
शि श्रि इ स–
शिश्रयिषति।
(इट् अभाव पक्ष में)–
श्रि सन्–
शि श्रि स–
इको झल्। अज्झनगमां०।
शिश्रीषति।

(6) स्वृ सन्–
स्वृ इ स–
स्वृ स्वृ इ स–
सृ स्वृ इ स (शर्पूर्वाः खयः)–
सर् स्वृ इ स (उरत्)–
स स्वृ इ स (हलादिः शेषः)–
सि स्वृ इ स (सन्यतः)–
सि स्वर् इ स (गुण)–
सिस्वरिषति (मूर्धन्य, तिप्, शप्)।
(इट् अभाव पक्ष में)–
स्वृ सन्–(अज्झनगमां०)–
स्वुर् स (उदोष्ठ्यपूर्वस्य)–
स्वुर्ष (मूर्धन्य)–
स्वुर्ष् स्वुर्ष् अ (द्वित्वादि)–
सुस्वूर्ष शप् तिप् (हलि च से दीर्घ)–
सुस्वूर्षति।

(7) यु सन्–
यु यु इट् स–
यु यो इ स–
यि यो इ स (ओः पुयण्ज्यपरे)–यियविषति।
(इट् अभाव पक्ष में)–
यु स–
यु यु स–
यु यू ष–
युयूषति।

(8) ऊर्णु सन्–
ऊर् र्णु इ स–
ऊर् नु नु इस–
ऊर्णु नविष–
ऊर्णुनविषति
ऊर्णु स (विभाषोर्णोः से सन् पाक्षिक ङिद्वत् हुआ)
ऊर्णु नु इ स (अचि श्नु०)–
ऊर्णुनुविषति।
(इट् अभाव पक्ष में)–
ऊर्णु सन्–
ऊर् नु नु स–
ऊर्णुनूषति।

(9) भृ सन्–
भृ इ स–
बिभर् इस–
बिभरिषति।
(इट् अभाव पक्ष में)–
भृ सन्–
भुर् स–भुर्ष–
बुभुर्ष–
बुभूर्षति (हलि च)।

(10) ज्ञा णिच्–ज्ञपि सन्–
ज्ञपि इ सन्–
जिज्ञपयिषति।
(इट् अभाव पक्ष में)–
ज्ञपि सन्–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्ञप् स (द्वित्वादि)–
ज्ञप् स (अत्र लोपोऽभ्यास०)–
ज्ञीप्स (आप् ज्ञप्यृ०)–
ज्ञीप्सति ।

(11) सन् सन्–
सन् इट् स–
सिसन् इ स–
सिसनिषति ।
(इट् अभाव पक्ष में)–
सन् सन्
स स आ स (जनसनखनां०)–
सि सा स–
सिषासति ।

विशेष—'सनि' अर्थात् 'सन्' प्रत्यय को विकल्प से इट् होता है—

दिव् तृच्–दिव् इ तृ–देविता ।

यहाँ नित्य इट् हुआ ।

क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः 7.2.50

पद.—क्लिशः 5.1, क्त्वानिष्ठयोः 6.2

अनु.—अंगस्य इट् वा ।

अर्थ—क्लिश् धातु से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठा संज्ञक प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) क्लिश् क्त्वा–
क्लिश् इ त्वा (मृडमृदगुध० से किद्वत्)–
क्लिशित्वा ।
इट् अभाव पक्ष में—
क्लिश् त्वा–
क्लिष् त्वा (व्रश्चभ्रस्ज०)–
क्लिष्ट्वा ।

(2) क्लिश् क्त–
क्लिश् इत–
क्लिशित सु–क्लिशितः ।
क्लिश् क्त (इट् अभाव)–
क्लिष्ट सु–क्लिष्टः ।

(3) क्लिश् क्तवतु–
क्लिशितवत् सु–
क्लिशितवान् ।
(इट् अभाव)–
क्लिश् क्तवतु–
क्लिष्टवान् ।

पूङश्च 7.2.51

पद.—पूङः 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य क्त्वानिष्ठयोः इट् वा ।

अर्थ—पूङ् धातु से उत्तर क्त्वा व निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को विकल्प से इट् होता है ।

'श्युकः किति' के द्वारा पूङ् से उत्तर इट् का निषेध प्राप्त था । प्रकृतसूत्र के द्वारा विकल्प कह दिया है ।

'पूङः क्त्वा च' से पूङ् से उत्तर क्त्वा व निष्ठा कित् नहीं होते हैं । अतः गुण भी होता है ।

उदा.—(1) पूङ् क्त्वा–
पू त्वा–
पू इ त्वा–पवित्वा (भट्टि० 3.18) ।
(इट् अभाव)–
पू त्वा–पूत्वा ।

(2) पू क्त–
पू इ क्त–पवित सु–
पवितः ।
(इट् अभाव)–
पू क्त–
पूत सु–पूतः ।

(3) पू क्तवतु–
पू इ तवत्–
पवितवत् सु–पवितवान् ।
(इट् अभाव)–
पू तवत्–पूतवान् ।

वसतिक्षुधोरिट् 7.2.52

पद.—वसतिक्षुधोः 6.2, इट् 1.1

अनु.—अंगस्य क्त्वानिष्ठयोः इट् ।

अर्थ—वस् तथा क्षुध् धातुओं से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठा संज्ञक प्रत्यय को इट् होता है ।

उदा.—(1) वस् क्त्वा–उस् इट् त्वा–
उष् इत्वा–उषित्वा (भट्टि० 3.45) ।

(2) वस् क्त–उष् इ त–
उषित सु–उषितः ।
वस् क्तवतु–उषितवान् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) क्षुध् क्त्वा–
क्षुध् इ त्वा–क्षुधित्वा ।
(4) क्षुध् क्त–क्षुध् इ त–
क्षुधित सु–क्षुधितः ।
क्षुध् क्तवतु–क्षुधितवान् ।

अञ्चेः पूजायाम् 7.2.53

पद.—अञ्चेः 5.1, पूजायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य क्त्वानिष्ठयोः इट् ।

अर्थ—पूजा अर्थ में अञ्च् धातु से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को इट् आगम होता है ।

उदा.—(1) अञ्च् क्त्वा–
अञ्च् इट् त्वा–अञ्चित्वा ।
(2) अञ्च् क्त–
अञ्च् इ त–अञ्चितः ।

विशेष—'पूजायाम्' अर्थात् **पूजा अर्थ** में ही अञ्च् धातु से उत्तर क्त्वा व निष्ठा को इट् होता है—

उद् अञ्च् क्त–उद् अच् त–उद् अक्त सु–उदक्तम् । यहाँ उद्धृत अर्थ में होने से इट् न हुआ ।

लुभो विमोहने 7.2.54

पद.—लुभः 5.1, विमोहने 7.1

अनु.—अंगस्य क्त्वानिष्ठयोः इट् ।

अर्थ—विमोहन अर्थ में लुभ् धातु से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठा संज्ञक प्रत्यय को इट् आगम होता है ।

उदा.—(1) लुभ् क्त्वा–लुभ् इ त्वा–लुभित्वा ।

रलो व्युपधाद् हलादेः–से क्त्वा विकल्प से कित् होता है । अतः पक्ष में गुण होकर—लोभित्वा ।

(2) वि लुभ् क्त–
वि लुभ् इट् त–विलुभित सु–विलुभितः ।

'विमोहने' अर्थात् **विमोहन** अर्थ में ही इट् होता है—

लुभ् क्त–लुब्धः (पीडित अर्थ में होने से इट् न हुआ) ।

जृव्रश्च्योः क्त्वि 7.2.55

पद.—जृव्रश्च्योः 6.2, क्त्वि 7.1

अनु.—अंगस्य इट् ।

अर्थ—जृ तथा व्रश्च् धातुओं से उत्तर क्त्वा प्रत्यय को इट् होता है ।

उदा.—(1) जृ क्त्वा–जृ इ त्वा–
जर् इ त्वा–जरित्वा ।
पक्ष में 'वृतो वा' से दीर्घ–जरीत्वा ।
(2) व्रश्च् क्त्वा–
व्रश्च् इ त्वा–व्रश्चित्वा ।

सूत्र में 'क्त्वा' का योग 'निष्ठा' की निवृत्ति के लिए है ।

उदितो वा 7.2.56

पद.—उदितः 5.1, वा–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य क्त्वि इट् ।

अर्थ—अंगसंज्ञक उदित् धातु से उत्तर क्त्वा को विकल्प से इट् होता है ।

उदित्–ह्रस्व उकार जिसका इत् है ।

उदा.—(1) शमु क्त्वा–शम् इ त्वा
शमित्वा ।
शम् क्त्वा–शम् त्वा–
शाम् त्वा (अनुनासिकस्य क्विझलो—)
शां त्वा (नश्चाऽपदा०)–
शान्त्वा ।
(2) भ्रमु क्त्वा–
भ्रमित्वा, भ्रान्त्वा ।
(3) दमु क्त्वा–
दमित्वा, दान्त्वा ।
(4) तमु क्त्वा–
तमित्वा, तान्त्वा ।
(5) दिवु क्त्वा–
देवित्वा, ('न क्त्वा सेट्' से क्त्वा अकित्) ।
पक्ष में—
दिव् त्वा–दि ऊठ् त्वा–द्यूत्वा ।
(6) चमु क्त्वा–
चमित्वा, चान्त्वा ।
(7) क्रमु क्त्वा–
क्रमित्वा ।
इट् अभाव में—
क्रम् क्त्वा–क्रान्त्वा ।

'क्रमश्च क्त्वि' से विकल्प से दीर्घ होता है—क्रन्त्वा (दीर्घ अभाव, इट् अभाव) ।

(8) तनु क्त्वा–
तन् इट् त्वा–तनित्वा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन् क्त्वा (इट् अभाव)-तत्वा (अनुदात्तोपदेश वनति तनोत्या०)।

(9) रमु क्त्वा-
रमित्वा, रत्वा (पूर्ववत्)।

सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः 7.2.57

पद.—से 7.1, असिचि 7.1, कृतचृतच्छृदतृदनृतः 5.1

अनु.—आर्धधातुकस्य इट् वा अंगस्य।

अर्थ—कृत्, चृत्, छृद्, तृद् और नृत्-इन अंगसंज्ञक धातुओं से उत्तर सकारादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् होता है परन्तु सिच् परे रहते नहीं होता है।

'से' के सकार में अकार उच्चारणार्थ है। यहाँ षष्ठी के अर्थ में सप्तमी है।

'कृत' के द्वारा कृती छेदने (तुदा०पर०) तथा कृती वेष्टने (रु०प०) दोनों का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) कृती-कृत् स्य तिप् (ल्रट्)-कृत् इट् स्य ति-कर्तिष्यति।
पक्ष में—कर्त्स्यति (भट्टि० 16.15)।
अ कृत् स्य ति (ल्रङ्)-
अकर्तिष्यत्।
पक्ष में—अकर्त्स्यत्।
कृत् सन्-कृत् इ स-
चिकर्तिष (द्वित्वादि)-
चिकर्तिषति।
पक्ष में—
कृत् सन्-चिकृत् स-
चिकृत्सति।

(2) चृत् स्य तिप् (ल्रट्)-
चर्तिष्यति।
पक्ष में—
चर्त्स्यति (भट्टि० 16.20)
चृत् ल्रङ्-
अचृत् स्य तिप्-
अचर्तिष्यत्।
पक्ष में—
अचर्त्स्यत्।
चृत् सन्-
चिचर्तिष-
चिचर्तिषति।
पक्ष में—
चिचृत्सति।

(3) छृद् ल्रट्-
छृद् इ स्य ति-
छर्दिष्यति।
पक्ष में—
छर्त्स्यति।
छृद् ल्रङ्-
अट् छृद् इट् स्य तिप्-
अछर्दिष्यत्।
पक्ष में—
अछर्त्स्यत्।
छृद् सन्-
चिच्छर्दिषति।
पक्ष में इट् अभाव-
चिच्छृत्सति।

(4) तृद् ल्रट्-
तृद् स्य तिप्-
तर्दिष्यति।
पक्ष में इट् का अभाव—
तर्त्स्यति। द्र० वितर्त्स्यति (भट्टि० 16.15)
तृद् ल्रङ्-
अट् तृद् इ स्य तिप्-
अतर्दिष्यत्।
पक्ष में इट् अभाव-
अतर्त्स्यत्।
तृद् सन्-
तितृद् इ स-
तितर्दिषति।
पक्ष में इट् अभाव
तितृद् स-
तितृत्सति।

(5) नृत् स्य तिप्-
नृत् इ स्य ति-
नर्तिष्यति।
इट् अभाव-
नृत् स्य ति-
नर्त्स्यति। द्र० नर्त्स्यन्ति (भट्टि० 16.20)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत् लङ्-
अट् नृत् इट् स्य तिप्-
अनर्तिष्यत् ।
इट् अभाव-
अनर्त्स्यत् ।
नृत् सन्-
नृत् इट् स-
निनर्तिष-
निनर्तिषति ।
इट् अभाव-
निनृत् स-
निनृत्सति ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'से' अर्थात् **सकारादि** को ही इट् विकल्प से होता है—

कृत् तृच् यहाँ 'कृत्' से उत्तर सकारादि नहीं है । अतः इट् विकल्प नहीं हुआ, नित्य हुआ । कर्तिता ।

इसी प्रकार 'चृत्' आदि के विषय में जानना चाहिए ।

2. 'असिचि' अर्थात् **सिच् को छोड़कर** सकारादि प्रत्यय को विकल्प से इट् होता है—

कृत् लुङ्-अट् कृत् इ स् ई त् इस दशा में 'कृत्' से उत्तर सिच् है । अतः सकारादि होने पर भी 'सिच्' को इट् का विकल्प न हुआ । नित्य इट् हुआ-अकर्तीत् ।

इसी प्रकार 'चृत्' आदि के बारे में जानना चाहिए ।

गमेरिट् परस्मैपदेषु 7.2.58

पद.—गमेः 5.1, इट् 1.1, परस्मैपदेषु 7.3

अनु.—अंगस्य से आर्धधातुकस्य ।

अर्थ—अंगसंज्ञक गम् धातु से उत्तर सकारादि आर्धधातुक को इट् होता है यदि उस सकारादि से परे परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय हो ।

उदा.—(1) गम् लृट्-
गम् स्य तिप्-
गम् इट् स्य ति-
गमिष्यति ।

(2) गम् लङ्-
अट् गम् स्य तिप्-
अ गम् इ स्य त्-
अगमिष्यत् ।

(3) गम् सन्-
गम् इट् सन्-
जिगम् इस-
जिगमिषति ।

विशेष—1. 'गमेः अर्थात् **'गम्'** से उत्तर सकारादि को इट् होता है—

चि स्यति-चेष्यति ।

2. 'परस्मैपदेषु' अर्थात् **आत्मनेपद परे** न हो तभी इट् होता है । तात्पर्य यह है कि सकारादि प्रत्यय से उत्तर परस्मैपद हो यह आवश्यक नहीं है परन्तु इससे पर आत्मनेपद नहीं होना चाहिए । यथा—

गम् स्य त यहाँ आत्मनेपद (कर्म०) लृट् है । अतः इट् न हुआ ।

गंस्यत-गंस्यते ।

गम् सन् तुमुन्-जिगमिषितुम् यहाँ सकारादि से उत्तर आत्मनेपद नहीं है तथा परस्मैपद भी नहीं है । तदपि इट् हो गया ।

3. 'से' अर्थात् **सकारादि** को ही इट् आगम होता है—

गम् तृ—यहाँ इट् न हुआ ।

इसी प्रकार गन्तव्यम् तथा गन्तुम् में इट् न हुआ ।

न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः 7.2.59

पद.—न-अव्य०, वृद्भ्यः 5.3, चतुर्भ्यः 5.3

अनु.—अंगस्य आर्धधातुकस्य इट् से परस्मैपदेषु ।

अर्थ—आत्मनेपद का विषय न हो तो अंगसंज्ञक वृतु आदि चार धातुओं (वृतु, वृधु, शृधु, स्यन्दू) से पर सकारादि आर्धधातुक को इट् का आगम नहीं होता है ।

'वृद्भ्यः' में बहुवचन निर्देश के द्वारा 'आदि' अर्थ गृहीत होता है ।

द्युतादि के अन्तर्गत वृतादि एक उपगण है । जिसमें निम्नलिखित पाँच धातु हैं—

वृतु वृधु शृधु स्यन्दू कृपू ।

प्रकृतसूत्र में 'चतुर्भ्यः' पद के द्वारा इस उपगण के प्रथम चार धातुओं का ग्रहण होता है । ये चार धातु है—

वृतु, वृधु, शृधु तथा स्यन्दू ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें वृत्, वृध् तथा शृध्—ये तीन धातु उदात्त हैं। अतः नित्य इट् प्राप्त था। सो निषेध कह दिया।

स्यन्दू धातु ऊदित् है। अत; 'स्वरतिसूति—' से वैकल्पिक इट् प्राप्त था। सो निषेध कह दिया।

वृतु आदि चारों धातु आत्मनेपदी हैं परन्तु 'वृद्भ्यः स्यसनोः' के द्वारा 'स्य' तथा 'सन्' में इनसे परस्मैपद होता है।

उदा.—(1) वृत् स्य ति–
वर्त् स्य ति–
वर्त्स्यति। द्र० निवर्त्स्यति (भट्टि० 16.6)
वृत् लृङ्–
अ वृत् स्य तिप्–
अवर्त्स्यत्। द्र० निवर्त्स्यन् (निवृत् स्य शतृ)। वृत् सन्–
'हलन्ताच्च' से सन् किद्वत्।
विवृत् स शप् तिप्–
विवृत्सति।

(2) वृध् स्य तिप्–
वर्ध् स्य ति–
वर्त्स्यति (खरि च)।
वृध् लृङ्–
अट् वृध् स्य तिप्–
अवर्ध् स्य त्–
अवर्त्स्यत्।
वृध् सन्–
विवृध् स–
विवृत्सति।

(3) शृध् स्य ति–
शर्त्स्यति।
शृध् लृङ्–
अ शृध् स्य तिप्–
अशर्त्स्यत्।
शृध् सन्–
शिशृध् स–
शिशृत्सति।

(4) स्यन्द् स्य ति–
स्यन्त्स्यति (भट्टि० 16.17, 12.77)।
स्यन्द् लृङ्–
अट् स्यन्द् स्य ति–
अस्यन्त् स्य त्–
अस्यन्त्स्यत्।
स्यन्द् सन्–
स्यन्द् स्यन्द् स–
सस्यन्द् स–
सिस्यन्द् स–(सन्यतः)–
सिस्यन्त्सति।

वृत् आदि को स्य तथा सन् में विकल्प से परस्मैपद होता है। पक्ष में आत्मनेपद रहता है। तब इट् का निषेध नहीं होता है—वर्तिष्यते।

तासि च क्लृपः 7.2.60

पद.—तासि–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, च–अव्य०, क्लृपः 6.1

अनु.—अंगस्य आर्धधातुकस्य से परस्मैपदेषु न इट्।

अर्थ—कृप् धातु से उत्तर तास् तथा सकारादि आर्धधातुक को इट् का आगम नहीं होता है, परस्मैपद परे रहते।

उदा.—(1) कृप् तास् डा (लुट्)–
कल्प् ता–कल्प्ता।

(2) कृप् तिप् (लृट्)–
कृप् स्य ति–
कल्प्स्यति।

(3) कृप् सन्–
चिक्लृप् स–
चिक्लृप्सति।

अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम् 7.2.61

पद.—अचः 5.1, तास्वत्–अव्य०, थलि 7.1, अनिटः 5.1, नित्यम् 1.1

अनु.—तासि, अंगस्य, न, इट्, 'उपदेशेऽत्वतः' इत्युत्तरसूत्राद् 'उपदेशे' इत्यस्याऽप्यनुवर्त्तनम्।

अर्थ—'तास्वत्' पद में सप्तम्यन्त से 'वति' प्रत्यय हुआ है। अतः इस पद का अर्थ है—जिस प्रकार तास् में (इट् नहीं होता उसी प्रकार थल् में न हो)।

उपदेश में अजन्त धातु जो तास् में नित्य अनिट् हो, उस धातु से उत्तर थल् को उसी प्रकार इट् नहीं होता है जिस प्रकार उसे तास् में इट् नहीं होता है।

यदि किसी धातु का 'तास्' में प्रयोग नहीं होगा तो उससे पर थल् को इट् का निषेध प्रवृत्त नहीं होगा। यथा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लिट्यन्यतरस्याम्' के द्वारा लिट् में 'अद्' धातु को 'घस्लृ' आदेश होता है । यह आदेश 'तास्' में नहीं होता है । परिणामस्वरूप थल् में प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध नहीं होगा । द्र०—जघसिथ ।

यह सूत्र क्रादि नियम से प्राप्त इट् का आंशिक अपवाद है । क्रादिनियम के द्वारा 'कृ' आदि आठ धातुओं को छोड़कर सभी अनिट् धातुओं से थल् में इट् प्राप्त होता है, परन्तु प्रकृतसूत्र के द्वारा उपदेश में जो अजन्त धातु उससे निषेध कहा गया है ।

उदा.—(1) या थल्–
या या थ–
ययाथ ।

'या' धातु उपदेश में अजन्त है, इसे 'तास्' में इट् प्राप्त नहीं है (याता) । अतः थल् में इट् का निषेध हो गया ।

(2) चि थल्–
चि चि थ–
चिचेथ ।

(3) नी थल्–
नी नी थ–
नि नी थ–
निनेथ ।

(4) हु थल्–हु हु थ–
झु हु थ–जुहुथ–
जुहोथ ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अचः' अर्थात् उपदेश में **अजन्त** व तास् में अनिट् जो धातु उससे पर 'थल्' को इट् नहीं होता—

भिद् थल्–बिभेदिथ

'भिद्' धातु 'तास्' में नित्य अनिट् है (द्र० भेत्ता) । परन्तु उपदेश में अजन्त नहीं है । अतः यहाँ थल् को इट् का निषेध न हुआ ।

2. 'तास्वत्' अर्थात् उपदेश में अजन्त व तास् में नित्य अनिट् जो धातु उससे पर 'थल्' को उसी प्रकार इट् नहीं होता जिस प्रकार तास् को नहीं होता है—

लू थल्–लुलविथ

'लू' धातु उपदेश में अजन्त है परन्तु वह 'क्त्वा' में नित्य अनिट् है । अतः इट् का निषेध न हुआ ।

3. 'थलि' अर्थात् उपदेश में अजन्त व तास् में नित्य अनिट् जो धातु उससे पर **'थल्'** को इट् नहीं होता है अर्थात् अन्य को इट् हो जाता है—

या व (लिट्)–
या या व–य या इव–
यय् इव–ययिव ।
इसी प्रकार—ययिम ।

'या' उपदेश में अजन्त है, तास् में नित्य अनिट् (द्र०याता) है परन्तु इससे पर थल् नहीं है । अतः इट् का निषेध न हुआ । क्रादि नियम से इट् हो गया ।

4. 'अनिटः' अर्थात् उपदेश में अजन्त तथा तास् में नित्य **अनिट्** जो धातु उससे पर थल् को इट् का निषेध होता है—

भू थल्–बभूविथ

'भू' धातु उपदेश में अजन्त है । यह धातु 'श्र्युकः किति' के द्वारा 'क्त्वा' में अनिट् है (द्र०–भूत्वा) परन्तु 'तास्' में अनिट् नहीं है (द्र०–भविता) ।

अतः 'थल्' में इट् का निषेध न हुआ ।

5. 'नित्यम्' अर्थात् 'तास्' में जो **नित्य** अनिट् उस धातु से पर 'थल्' को इट् का निषेध होता है—

स्वृ थल्–सस्वरिथ, सस्वर्थ । 'स्वृ' धातु उपदेश में अजन्त है परन्तु 'तास्' में 'स्वरतिसूति०' के द्वारा वैकल्पिक इट् होता है । अतः नित्य रूप से अनिट् नहीं है । इस कारण 'थल्' में इट् का निषेध न हुआ ।

इसी प्रकार—वि धू थ–विदुधविथ यहाँ 'धू' उपदेश में अजन्त है परन्तु 'तास्' में पाक्षिक अनिट् है । अतः इट् का निषेध न हुआ ।

6. 'उपदेशे' अर्थात् **उपदेश** में जो अजन्त तथा 'तास्' में नित्य अनिट् धातु उससे पर 'थल्' को 'इट्' नहीं होता है—

हृ थल्

इस दशा में द्वित्व तथा गुण युगपत् प्राप्त होते हैं । अच् परे न रहने से 'द्विर्वचनेऽचि' सूत्र की प्रवृत्ति भी नहीं होती है ।

अब नित्य होने के कारण तथा पर कार्य होने के कारण सर्वप्रथम गुण हुआ ।

हर् थ–इस दशा में क्रादिनियम से इट् प्राप्त होता है ।

हृ धातु तास् में नित्य अनिट् है । चूँकि 'हृ' धातु उपदेश में अजन्त है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा इट् का निषेध हो जाता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतसूत्र में 'उपदेशे' पद का अनुवर्त्तन करने के कारण 'हर् थ' इस दशा में इट् का निषेध हो जायेगा, कारण कि 'हृ' धातु उपदेश में अजन्त था, भले ही इस समय (गुण को प्राप्त होकर) हलन्त है। द्र०—

उपदेशग्रहोऽप्यत्र वक्ष्यमाणोऽपकृश्यते।
गुणे नित्ये कृतेऽप्येष ऋदन्ते प्राप्नुयात् कथम् ॥[1]

उपदेशेऽत्वतः 7.2.62

पद.—उपदेशे 7.1, अत्वतः 5.1

अनु.—अंगस्य तासि अनिटः नित्यम् तास्वत् इट् न थलि।

अर्थ—उपदेश में ह्रस्व अकारवान् तथा तास् में नित्य अनिट् जो धातु उससे पर थल् को इट् नहीं होता है।

उदा.—(1) पच–पच् थल्–
प पच् थ–पपक्थ।

'पच' उपदेश में अकारवान् है, तास् में नित्य अनिट् है (द्र०–पक्ता)। इससे पर 'थल्' को इट् का निषेध हो गया।

(2) यज–यज् थल्–
इ यज् थ–इयष् थ–
इयष्ठ (पूर्ववत्)।

(3) शक–शक् थल्–
शशक् थ–शशक्थ।

(4) रञ्ज–रञ्ज् थल्–
र रञ्जथ–ररङ्क्थ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'उपदेशे' अर्थात् **उपदेश में** जो ह्रस्व अकार वाला तथा तास् में नित्य अनिट् धातु से उत्तर थल् को इट् का निषेध होता है—

कृष् थल् इस दशा में नित्य व पर होने के कारण गुण हुआ–कर्ष्थ।

यदि प्रकृतसूत्र में 'उपदेशे' पद का योग नहीं होता तो यहाँ क्रादि नियम से प्राप्त इट् आगम नहीं होगा। कारण कि, 'कृष्' धातु उपदेशे में भले ही अकारवान् न हो, 'कर्ष्' इस अवस्था में अवश्य अकारवान् है। अतः इट् का निषेध होता है।

'उपदेशे' पद का योग होने से यहाँ प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति न हो सकेगी। कारण कि, उपदेश अवस्था में 'कृष्' धातु अकारवान् नहीं है।

2. 'अत्वतः' अर्थात् **ह्रस्व अकारवान्** धातु से उत्तर 'थल्' को इट् का निषेध होता है—भिद् धातु उपदेश में ह्रस्व अकारवान् नहीं है। तास् में नित्य अनिट् है (द्र०–भेत्ता)। अतः 'भिद् थल्' इस दशा में प्रकृतसूत्र प्रवृत्त न हुआ।

क्रादिनियम से इट् हुआ—बिभेदिथ।

इसी प्रकार—

छिद् थल्–चिच्छेदिथ।

3. 'नित्यम्' अर्थात् तास् में जो **नित्य** अनिट् धातु उससे पर थल् को इट् नहीं होता है—अञ्जू यह ऊदित् धातु है। इससें 'स्वरतिसूति०' के द्वारा वैकल्पिक इट् होता है। तास् में इट् तो होता है परन्तु वह नित्य न होने से 'अञ्ज् थल्' इस दशा में प्रकृतसूत्र के द्वारा इट् का निषेध नहीं होता है। भले ही यह धातु उपदेश में ह्रस्व अकारवान् है—

आनञ्ज् इ थ–आनञ्जिथ।

4. 'अत्वतः' में तपरकरण का प्रयोजन है कि **ह्रस्व अकारवान्** जो धातु उससे पर थल् को इट् का निषेध होता है—

राध्–उपदेश में अवर्ण वाला धातु है परन्तु उसमें ह्रस्व अवर्ण नहीं है। तास् में नित्य अनिट् है। प्रकृतसूत्र के द्वारा इट् का निषेध न हुआ।

राध् थल्–राध् राध् थ–राराध् थ–रराध् थ–रराध् इ थ–रराधिथ।

ऋतो भारद्वाजस्य 7.2.63

पद.—ऋतः 5.1, भारद्वाजस्य 6.1

अनु.—अंगस्य तास्वत् थल्यनिटः नित्यम् न इट् तासि।

अर्थ—भारद्वाज ऋषि के मत में तास् में नित्य अनिट् जो ऋदन्त धातु उससे पर थल् को इट् आगम नहीं होता है।

यह निषेध विकल्प से प्रवृत्त होता है। यह नियम सूत्र है। यह नियम करता है कि तास् में नित्य अनिट् केवल ऋदन्त धातु से परे ही थल् को इट् आगम का निषेध होता है, अन्य धातुओं से परे थल् को इट् हुआ करेगा।

उदा.—(1) या थल्–य या थ–ययिथ (भारद्वाजमते)।
य या थ–ययाथ (अचस्तास्वत्० के द्वारा इट् का निषेध)।
(2) पच् थल्–पच् इ थ–पेचिथ (भारद्वाजमते)।

1. काशि० (पद०) 7.2.61

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प पच् थ–पपक्थ (उपदेशेऽत्वतः के द्वारा इट् का निषेध)।

विशेष—वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में एक कारिका उपलब्ध होती है जिसमें निम्नलिखित चार सूत्रों के विषय को संगृहीत कर दिया है। सूत्र ये हैं—

(क) कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि (पा० 7.2.13),

(ख) अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम् (पा० 7.2.61),

(ग) उपदेशेऽत्वतः (पा० 7.2.62),

(घ) ऋतो भारद्वाजस्य (पा० 7.2.63)

पाठकों की सुविधा के लिए कारिका और उसकी व्याख्या नीचे दी जा रही है—

अजन्तोऽकारवान् वा यस्,
तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट्,
क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥[1]

(क) अजन्तो .... वेडयम् अर्थात् तास् में नित्य अनिट् जो धातु अजन्त (परन्तु ऋकारान्त न हो) अथवा ह्रस्वअकारवान् हैं तो उससे पर थल् को विकल्प से इट् होता है।

अचस्तास्वत् थल्यनिटो० तथा उपदेशेऽत्वतः के द्वारा निषेध हुआ है तथा भारद्वाज के मत में इट् हुआ है। अतः विकल्प प्रवृत्त हुआ।

(ख) ऋदन्त .... नित्याऽनिट् अर्थात् तास् में नित्य अनिट् जो ऋदन्त धातु उससे पर थल् को नित्य इट् का निषेध होता है।

यह निषेध 'अचस्तास्वत्०' के द्वारा आचार्य पाणिनि के मत में तथा 'ऋतो भारद्वाजस्य' के द्वारा भारद्वाज के मत में प्रवृत्त होता है। तात्पर्य यह है कि यह निषेध सभी आचार्यों के मत में होने के कारण नित्य प्रवृत्त होता है।

(ग) क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् अर्थात् कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु तथा श्रु—इन आठ को छोड़कर शेष सभी अनुदात्त धातु लिट् में सेट् होते हैं।

'कृसृभृवृस्तुद्रु०' के द्वारा 'कृ' आदि आठ धातुओं से ही लिट् में इट् नहीं होता है, शेष से हो जाता है।

ध्यान रहे कि उक्त क्रादिवर्जित धातु थल् के अतिरिक्त अन्यत्र लिट् में सेट् होते हैं। थल् में 'अचस्तास्वत् थल्य०' तथा उपदेशेऽत्वतः के द्वारा इन शेष धातुओं से परे थल् को विकल्प से इट् होता है।

कृसृ आदि को लिट् में कहीं भी इट् नहीं होता है।

बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे 7.2.64

पद.—बभूथ आततन्थ जगृम्भ ववर्थ–चत्वारि क्रियापदानि, इति–अव्य०, निगमे 7.1

अनु.—थलि न इट्।

अर्थ—वेद के विषय में बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ तथा ववर्थ–इन शब्दों का थल् में निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) भू थल्–

बभूथ (क्रादिनियम से प्राप्त इट् का निपातन से निषेध) द्र० तै० सं० 3.1.4.4, ऋ० 1.102.9

(2) आ तन् थल्–
आ त तन् थल्–(पूर्ववत्)
आततन्थ (ऋ० 3.22.2; यजु० 12.48)।

(3) ग्रह् मस्–
ग्रह् म–
गृह् म (ग्रहिज्यावयि०)–
गृभ् म (ह्मग्रहोर्भश्छन्दसि)–
जगृभ् म (पूर्ववत् इट् निषेध)–
जगृम्भ (ऋ० 10.47.1)।

(4) वृ थल्–
ववर्थ (ऋ० 1.91.12)।

क्रादिनियम से इट् का निषेध सिद्ध ही था। पुनः नियमार्थ निपातन किया गया है कि वेद में ही वृञ् से उत्तर थल् को इट् का निषेध होता है।

विभाषा सृजिदृशोः 7.2.65

पद.—विभाषा 1.1, सृजिदृशोः 6.2

अनु.—अंगस्य थलि न इट्।

अर्थ—अंग संज्ञक सृज् व दृश् धातुओं से उत्तर थल् को इट् का विकल्प निषेध होता है।

यहाँ क्रादिनियम से नित्य इट् प्राप्त था। यहाँ तौदादिक 'सृज्' का ग्रहण है।

उदा.—(1) सृज् थल्–
सृ सृज् थ–
सर् सृज् थ (उरत्)–

1. वै०सि०कौ० (भाग–3) सूत्र 2295।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स सृज् थ–
स सृष् थ (व्रश्चभ्रस्ज०)–
स सृ अम् ष् थ (सृजिदृशो०)–
सस्रष् थ–सस्रष्ठ (इट् अभाव)।
सृज् थ–
सृज् इट् थ (इट् पक्ष)–
स सृज् इथ–ससर्जिथ।

(2) दृश् थल्–
दृश् दृश् थ–
दृ दृश् थ–
दर् दृश् थ–(उरत्)–
द दृश् थ–(हलादिः शेषः)–
द दृष् थ–(व्रश्चभ्रस्ज०)–
द दृ अम् ष् थ
ददृष्ठ (इट् अभाव)।
दृश् थल्–
द दृश् इट् थ (इट् पक्ष)–
ददर्शिथ।

इडत्यर्तिव्ययतीनाम् 7.2.66

पद.—इट् 1.1, अत्यर्तिव्ययतीनाम् 6.3

अनु.—अंगस्य थलि।

अर्थ—अंगसंज्ञक अद्, ऋ तथा व्ये धातुओं से पर थल् को इट् होता है।

यहाँ अत्ति, अर्त्ति तथा व्ययति में शितप् के द्वारा निर्देश है।

इस शास्त्र में प्रकृतसूत्र से पूर्व निषेध तथा विकल्प इन दोनों का प्रकरण चल रहा था परन्तु प्रकृतसूत्र में न तो निषेध प्रवृत्त होता है तथा न ही विकल्प प्रवृत्त होता है।

अचस्तास्वत्थल्य० तथा 'ऋतो भारद्वाजस्य' के द्वारा 'ऋ' धातु से पर इट् का प्रतिषेध कहा गया है। तब प्रकृतसूत्र में 'ऋ' का ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि प्रकृतसूत्र के द्वारा इट् के निषेध की प्रवृत्ति नहीं होती है।

अद् तथा व्ये धातुओं से पर थल् को इट् का विकल्प 'उपदेशेऽत्वतः', 'अस्तास्वत्थल्य०' तथा 'ऋतो भारद्वाजस्य' के द्वारा स्वतः सिद्ध है। तब प्रकृतसूत्र के द्वारा विकल्प प्रवृत्त नहीं होता है।

इस प्रकार यहाँ न तो निषेध होता है और न ही विकल्प होता है। नित्य इट् होता है।

उदा.—(1) लिट्यन्यतरस्याम् के द्वारा लिट् में अद् के स्थान पर विकल्प से 'घस्' आदेश होता है।

अद् (घस् अभाव पक्ष में)
अद् थल्–

अनुदात्त होने से इट् का निषेध (एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्)–

पुनः इट् की प्राप्ति (कृसृभृवृ०)–
इट् का निषेध (उपदेशेऽत्वतः)–
इट् का विकल्प (ऋतो भारद्वाजस्य)–
नित्य इट् (प्रकृतसूत्र)–
अद् इट् थ–
अ अद् इ थ (द्वित्वादि)–
आ अद् इ थ (अत आदेः)–
आदिथ (सवर्णदीर्घ)।

(2) ऋ थल्–
ऋ इट् थल्–
आरिथ।

(3) व्ये थल्–
विव्ये इथ (इट्, सम्प्रसारण)–
विव्ययिथ।

वस्वेकाजाद्घसाम् 7.2.67

पद.—वसु-लुप्तसप्तम्यन्तरूपम्, एकाजाद्घसाम् 6.3

अनु.—अंगस्य इट्।

अर्थ—(द्विर्वचन कर लेने के पश्चात्) एकाच् धातु, आकारान्त धातु तथा घस् धातु से उत्तर वसु को इट् का आगम होता है।

यहाँ 'एकाच्' पद के द्वारा द्विर्वचन को प्राप्त एकाच् का ग्रहण किया गया है। 'वसु' पद के द्वारा लिट् के स्थान पर होने वाला 'क्वसु' आदेश का ग्रहण है।

उदा.—(1) अद् क्वसु–अद् इ वस्–
आदि वस्–
आदिवस् सु–आदिवान्।
अश् क्वसु–
आशिवान्।
पच् क्वसु–
पेचिवान्।
प्र वस् क्वसु–प्रोषिवान् (भट्टि० 3.27)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) या क्वसु–
या या वस्–
य या इ वस्–
ययिवस् सु–ययिवान् ।
स्था क्वसु–
स्था स्था इ वस्–
था स्था इ वस्–
थ स्था इ वस्–
त स्थिवस् सु–
तस्थिवान् ।
(3) घस् क्वसु–
घस् इ वस्–
झ घ स् इ वस्–(कुहोश्चुः)–
ज घ स् इ वस्–
ज घ् स् इ वस् (उपधालोप)–
ज क् स् इ वस्
जक्षिवस् सु–
जक्षिवान् ।

सूत्रोक्त सभी धातुओं से पर लिट्स्थानिक 'क्वसु' को इट् प्राप्त था । प्रकृतसूत्र नियमार्थ है । यह सूत्र नियम करता है कि इन धातुओं से ही उत्तर जो वसु, उसे इट् हो ।

क्रादि नियम के द्वारा अन्य धातुओं से उत्तर क्वसु को इट् प्राप्त था जिसकी व्यावृत्ति प्रकृतसूत्र के द्वारा कर दी गई है । फलतः 'बिभिद्वान्' में इट् नहीं होता है ।

विभाषा गमहनविदविशाम् 7.2.68

पद.—विभाषा 1.1, गमहनविदविशाम् 6.3

अनु.—अंगस्य वसु इट् ।

अर्थ—अंगसंज्ञक गम्, हन्, विद् तथा विश् धातुओं से उत्तर 'वसु' को विकल्प से इट् आगम होता है ।

विश् के साहचर्य से इस सूत्र में तौदादिक लाभार्थक 'विद्' धातु का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) गम् वस्–
जगम् वस्–
जगम् इ वस्–
जग्म् इ वस्–(गमहनजन०)–
जग्मिवान् (सु) ।
(पक्ष में इट् अभाव)
जगम् वस्–
जगन्वस् सु–जगन्वान् ।
(2) हन् क्वसु–
हन् हन् वस्–
झ हन् वस् (कुहोश्चुः)–
ज ह न् वस्–
ज ह न् इ वस्–
ज घ् न् इ वस्–(अभ्यासाच्च)–
जघ्निवान् ।
(पक्ष में इट् अभाव)
जहन् वस्–
जघन् वस्–जघन्वान् ।
(3) विद् क्वसु–
विविद् वस्–
विविद् इ वस्–
विविदिवान् ।
(पक्ष में इट् अभाव)
विविद् वस्–
विविद्वान् ।
(4) विश् क्वसु–
विविश् इ वस्–
विविशिवान् ।
(पक्ष में इट् अभाव)
वि विश् वस्–
विविश्वान् ।

विशेष—दृश् धातु से उत्तर 'वसु' को विकल्प से इट् होता है[1]—
दृश् वसु–
द दृश् इट् वस्–
ददृशिवान् ।
(पक्ष में इट् अभाव)
दृश् वसु–
ददृश् वस्–ददृश्वान् ।

सनिंससनिवांसम् 7.2.69

पद.—सनिंससनिवांसम् 1.1

अनु.—अंगस्य इट् वसु ।

अर्थ—'सनिंससनिवांसम्' शब्द का निपातन किया जाता है ।

1. काशि० 7.2.68 (वा०) दृशेश्चेति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—इसमें निम्नलिखित कार्यों का निपातन किया गया है—

सनिम् सन् वसु–

सनिम् स सन् वसु–(अत एकहल्मध्ये० से प्राप्त एत्व व अभ्यासलोप का अभाव)–सनिम् स सन् इट् वस् (इट्)–

सनिंस सनिवस् अम्–

सनिंससनिवांसम् (आश्व० श्रौ० 1.3.4.16)।

ऋद्धनोः स्ये 7.2.70

पद.—ऋद्धनोः 6.2, स्ये 7.1

अनु.—अंगस्य इट्।

अर्थ—ह्रस्व ऋकारान्त व हन् धातुओं से उत्तर 'स्य' को इट् आगम होता है।

उदा.—(1) कृ तिप् (लृट्)–
कृ स्य ति–
कृ इट् स्य ति–
करिष्यति।
इसी प्रकार—हरिष्यति।

(2) हन् स्य ति–
हन् इस्य ति–
हनिष्यति (पूर्ववत्)। द्र० उपहनिष्यते (भट्टि० 16.12)

अञ्जेः सिचि 7.2.71

पद.—अञ्जेः 5.1, सिचि 7.1

अनु.—अंगस्य इट्।

अर्थ—'सिचि' यहाँ षष्ठी के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग हुआ है।

अंगसंज्ञक 'अञ्ज्' धातु से उत्तर 'सिच्' को इट् का आगम होता है।

अञ्जू ऊदित् है। अतः 'स्वरतिसूति०' के द्वारा पाक्षिक इट् प्राप्त है। प्रकृतसूत्र के द्वारा नित्य इट् होता है।

उदा.—अञ्ज् लुङ्–
अञ्ज् सिच् तिप् (च्लि, सिच्)–
अञ्ज् स् ई त् (इकार लोप, ईट्)–
अञ्ज् इ स् ई त्–
अञ्ज् इ ई त् (सिच् का लोप)
आ अञ्ज् ई त् (आट्) –
आञ्जीत् (आटश्च)–

हलन्तलक्षणा वृद्धि का 'नेटि' से निषेध होता है। 'सिचि' अर्थात् सिच् को इट् होता है—

अञ्ज् तृच् यहाँ सिच् नहीं है। अतः नित्य इट् न हुआ। 'स्वरतिसूति०' के द्वारा विकल्प से इट् हुआ—

अञ्ज् इ तृ–अञ्जिता।
अञ्ज् तृ–अङ्क्ता।

स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु 7.2.72

पद.—स्तुसुधूञ्भ्यः 5.3, परस्मैपदेषु 7.3

अनु.—अंगस्य सिचि इट्।

अर्थ—अंगसंज्ञक स्तु, सु तथा धूञ् धातुओं से उत्तर सिच् को इट् होता है यदि उस (सिच्) से परे परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हो।

स्तु तथा सु अनुदात्त होने से अनिट् हैं। प्रकृतसूत्र के द्वारा नित्य इट् कह दिया गया।

धूञ् से 'स्वरतिसूति०' के द्वारा विकल्प से इट् प्राप्त था। प्रकृतसूत्र के द्वारा नित्य कह दिया गया।

उदा.—(1) ष्टुञ्–स्तु–स्तु लुङ्–
स्तु तिप्–स्तु सिच् त्–
स्तु इ स् ई त्–स्तौ इ स् ई त्–
स्तौ इ ई त्–अस्ताव् ईत्–
अस्तावीत्।
इसी प्रकार—स्त झि–स्तु च्लि झि–स्तु सिच् उस्–स्तु इट् स् उस्–स्तौ इ सुस्–अ स्ताव् इषुस्–अस्ताविषुः (भट्टि० 15.70)।

(2) षुञ्–सु–सु लुङ्–
सु तिप्–सु सिच् त्–
सु इ स् ई त्–सौ इ स् ई त्–
सौ इ ई त्–साव् ई त्–
असावीत्।

(3) धूञ्–धू तिप् (लुङ्)–
धू सिच् ईत्–धू इ स् ई त्–
धौ इ स् ई त्–धाव् इ ई त्–
अधावीत्।

विशेष—'परस्मैपदेषु' अर्थात् यदि सिच् से परे **परस्मैपद-संज्ञक** प्रत्यय हो तभी सिच् को इट् होता है—स्तु त (लुङ्)–

स्तु सिच् त आत्मनेपद परक होने से सिच् को इट् न हुआ—अस्तोस् त–अस्तोष्ट।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार—सु सिच् त–असोष्ट ।

धू सिच् त इस दशा में विकल्प से इट् हुआ—

अधोष्ट, अधविष्ट ।

यमरमनमातां सक् च 7.2.73

पद.—यमरमनमाताम् 6.3, सक् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य परस्मैपदेषु सिचि इट् ।

अर्थ—परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहते अंगसंज्ञक यम्, रम्, नम् तथा आकारान्त धातुओं को 'सक्' का आगम होता है तथा सिच् को इट् का आगम होता है ।

सक् के ककार की इत्संज्ञा होती है । इसके कित् होने से वह अंग का अन्त्य अवयव बनता है ।

सक् में अकार उच्चारणार्थक है ।

उदा.—(1) यम् तिप् (लुङ् प्र०पु०एक०)–

यम् सिच् त् (इकार लोप, सिच्)–
यम् इ स् त् (इट्)–
अट् यम् इ स् ई त् (ईट्)–
अट् यम् सक् इ स् ई त् (सक्)–
अ यम् स् इ ई त् (सिच् लोप)–
अयम् स् ई त् (सवर्ण दीर्घ)–
अयंसीत् (नश्चाऽपदा०) ।
प्र उद् यम् तिप् (लुङ्)–प्रोदयंसीत् (भट्टि० 15.66)।

(2) 'व्याङ्परिभ्यो रमः' से वि आदि उपसर्गों से युक्त रम् धातु से परस्मैपद होता है । अतः विपूर्वक 'रम्' धातु का उदाहरण दिखाया जा रहा है—

वि रम् तिप् (लुङ्)–
वि रम् सक् इ स् ई त् (पूर्ववत्)–
वि अट् रम् सक् ई त् (पूर्ववत्)–
वि अ रम् स् ई त्–व्यरंसीत् ।

(3) नम् स् इ स् ई त् (पूर्ववत्)–

अनम् सक् ई त्–
अनंसीत् (भट्टि० 15.25)

(4) या (आकारान्त धातु) लुङ्–

या इ स् ई त् (पूर्ववत्)–
अट् या सक् इ स् ई त्–
अ यास् ई त्–अयासीत् ।

'अयासीत्' रूप सक् व इट् के बिना भी निष्पन्न हो जाता है । सक् व इट् आगम 'अयासिष्टाम्' में चरितार्थ होता है :

या सिच् ताम्–
अ या सक् इ स् ताम्–
अयासिष्टाम् ।

यम् आदि अंग को हलन्तलक्षणा वृद्धि प्राप्त होती है जिसका 'नेटि' के द्वारा निषेध हो जाता है ।

अप्सासीत् (भट्टि० 15.6) ।
मा ज्ञासीः (भट्टि० 15.9) ।
अभासीत् (भट्टि० 15.23) ।
मा अतियासीः (भट्टि० 2.51) ।
अलासीत् (भट्टि० 15.53) ।

स्मिपूङ्रञ्वशां सनि 7.2.74

पद.—स्मिपूङ्रञ्वशाम् 6.3, सनि 7.1

अनु.—अंगस्य इट् ।

अर्थ—अंगसंज्ञक स्मि, पूङ्, ऋ, अञ्चू तथा अश् धातुओं से उत्तर 'सन्' प्रत्यय को इट् होता है ।

उदा.—(1) स्मिङ् सन्–(एकाच उपदेशे० से प्राप्त निषेध को बाधकर)–

स्मि इट् सन्–
स्मि स्मि इ स–(द्वित्व)–
सि स्मि इ स–
सिस्मयिस (गुण, अयादेश)–
सिस्मयिषते (षत्व, लुट्) ।

(2) पूङ् का ग्रहण होने से पूञ् की निवृत्ति हो जाती है—

पू सन्–
पू पू इ स–
पू पो इ स–
पि पविष (ओः पुयण्ज्यपरे)–
पिपविषते ।

उगन्त होने से 'सनि ग्रहगुहोश्च' के द्वारा नित्य इट् निषेध प्राप्त था ।

(3) ऋ सन्–

ऋ इट् स–(सनिग्रहगुहोश्च)–
अ रि स–(गुण)–
अ रि रि स (अजादेर्द्वितीयस्य)–
अरिरिषति ।

(4) अञ्चू सन्–

अञ्चू इ स–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन् जिष् जिष् अ–

'न न्द्राः संयोगादयः' के द्वारा नकार के द्वित्व का निषेध हो गया।

स्वरतिसूति० के द्वारा प्राप्त वैकल्पिक इट् का बाध होकर नित्य इट् हुआ।

अञ्जिजिषति।

(5) अश् सन्–
अश् इ स–
अशिशिस्–
अशिशिषते।

किरश्च पञ्चभ्यः 7.2.75

पद.—किरः 5.1, च–अव्य०, पञ्चभ्यः 5.3

अनु.—अंगस्य सनि इट्।

अर्थ—कृ आदि पाँच धातुओं से उत्तर सन् को इट् आगम होता है।

कृ आदि पाँच धातु ये हैं—

कृ, गृ, दृङ्, धृङ् तथा प्रच्छ्।

उदा.—(1) कृ सन्–(अनुदात्त होने से इट् निषेध)
कृ इट् स–
चिकरि स–
चिकरिष (षत्व)–
चिकरिषति (लट्, तिप्)।

(2) गृ सन्–
गृ इ स–(पूर्ववत्)–
जिगरिष–
जिगरिषति।

(3) दृङ् सन् ('सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् निषेध) दृ इ स–
दिदरिष–
दिदरिषते–पूर्ववत्।

(4) धृ सन्–
धृ इ स–
दिधरिषते।

(5) प्रच्छ् सन्–
प्रच्छ् इ स–प प्रच्छ् इस–
पिपृच्छिषति।

विशेष—1. 'पञ्चभ्यः' अर्थात् कृ आदि पाँच धातुओं से उत्तर सन् को इट् होता है—

सृज् सन्–सृज् धातु कृ आदि पाँच में नहीं है। अतः सन् को इट् न हुआ—सिसृक्षति।

रुदादिभ्यः सार्वधातुके 7.2.76

पद.—रुदादिभ्यः 5.3, सार्वधातुके 7.1

अनु.—अंगस्य वलादेः इट् पञ्चभ्यः।

अर्थ—रुद् आदि पाँच धातुओं से उत्तर वलादि सार्वधातुक को इट् आगम होता है।

रुद् आदि पाँच धातु ये हैं—

रुद, स्वप्, श्वस्, अन् तथा जक्ष्।

उदा.—(1) रुद् तिप्–
रुद् शप् तिप्–
रुद् तिप्–(शप् लुक्)–
रुद् इ ति–रोदिति।

(2) स्वप् इ ति (पूर्ववत्)–स्वपिति।

(3) श्वस् इ ति (पूर्ववत्)–श्वसिति।

(4) प्र अन् इ ति (पूर्ववत्)–
प्राणिति। द्र० प्राणिवः (भट्टि० 4.38)
प्र अन् वस् – प्र अन् इट् वस्।

(5) जक्ष् इ ति–जक्षिति। द्र० भट्टि० 18.19, भट्टि० 4.39)।

विशेष—'सार्वधातुके' अर्थात् **सार्वधातुक को** इट् होता है—स्वप् तृ 'तृ' वलादि है परन्तु सार्वधातुक नहीं है। अतः इट् न हुआ—स्वप्ता।

ईशः से 7.2.77

पद.—ईशः 5.1, से–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्।

अनु.—अंगस्य सार्वधातुके इट्।

अर्थ—ईश् धातु से उत्तर सार्वधातुक 'से' को इट् आगम होता है।

'थासः से' के द्वारा 'थास्' (आत्मनेपद म०पु०एक०) के स्थान पर 'से' होता है।

उदा.—(1) ईश् थास् (लट्)–
ईश् शप् थास्–
ईश् थास् (अदिप्रभृतिभ्यः—)–
ईश् से–
ईश् इट् से–ईशिषे (भट्टि० 18.15; 3.43)

(2) ईश् थास् (लोट्)–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश् शप् थास्-
ईश् थास् (पूर्ववत्)-
ईश् से (थासः से)-
ईश् स्व (सवाभ्यां वामौ)-
ईश् इ स्व-ईशिष्व

'एकदेश विकृतमनन्यवद् भवति' के द्वारा यहाँ 'स्व' का भी ग्रहण होता है।

ईडजनोर्ध्वे च 7.2.78

पद.—ईडजनोः 6.2, ध्वे-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम् । च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य सार्वधातुके से इट् ।

अर्थ—ईड् तथा जन् धातुओं से उत्तर 'ध्व' तथा 'से' सार्वधातुक प्रत्यय को इट् आगम होता है।

उदा.—(1) ईड् ध्वम्-(लट्)-
ईड् इट् ध्वम्-
ईडिध्वम्-ईडिध्वे ।
(2) ईड् ध्वम् (लोट्)-
ईड् इ ध्वम्-ईडिध्वम् ।
(3) ईड् थास्-
ईड् से-ईड् इट् से-
ईडिषे (भट्टि० 18.15) ।
(4) ईड् थास् (लोट्)-
ईड् से-ईड् स्व-
ईड् इस्व-ईडिष्व ।
(5) जन् ध्वम् (लट्)-
जन् इ ध्वम्-जनिध्वे ।
(6) जन् ध्वम् (लोट्)-
जन् इ ध्वम्-जनिध्वम् ।
(7) जन् थास् (लट्)-
जन् से-जन् इ से-
जनिषे ।
(8) जन् थास् (लोट्)-
जन् से-जन् स्व-
जन् इ स्व-जनिष्व ।

लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य 7.2.79

पद.—लिङः 6.1, सलोपः 1.1, अनन्त्यस्य 6.1

अनु.—अंगस्य सार्वधातुके ।

अर्थ—सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य सकार का लोप हो जाता है।

अनन्त्य-जो अन्त में न हो ।

उदा.—(1) कृ उ तिप् (वि० लिङ्)-
कृयासुट् त्-
कुर् यास् त्-कुर्यात् । ये च ।
(2) कृ त (वि० लि० आत्म०)-
कृ उ सीयुट् सुट् त-
कृ उ सीय् स् त-
कुर् उ सीय् स् त (अत उत् सार्व०)-
कुर् उ सीय् त (सलोप)-
कुर् उ ई य् त (सलोप)-
कुर् उ ई त (लोपो व्योर्वलि)-
कुर्वीत ।
(3) इसी प्रकार-शृणुयात् इत्यादि ।
उत्सहेय (भट्टि० 3.54)

विशेष—1. 'अनन्त्यस्य' अर्थात् जो **अन्त में न हो** ऐसे सकार का लोप होता है—
कृ झि (वि० लि०)-
कृ उ यासुट् उस्-
कुर् उ यास् उस्-
कुर् यास् उस् (ये च)-
कुर् या उस्-

कुर्युः ('उस्' का सकार अन्त्य है । अतः उसका लोप न हुआ) ।

इसी प्रकार—कृ उ यासुट् सिप्-
कुर् उ यास् स् (यहाँ अन्त्य सकार का लोप नहीं होता है)
कुर्याः ।

2. 'सार्वधातुके' का अधिकार होने से आशीर्लिङ् के सकार का लोप नहीं होता है।

'लिङाशिषि' से वह आर्धधातुक होता है। यथा—
कृ त (आ०लिङ्)-
कृ सीयुट् सुट् त-
कृसीय् स् त-कृषीष्ट (यहाँ स-लोप न हुआ) ।

अतो येयः 7.2.80

पद.—अतः 5.1, या-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, इयः 1.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य सार्वधातुके ।

अर्थ—अदन्त अंग से उत्तर सार्वधातुक के अवयव 'यास्' के स्थान पर 'इय्' आदेश होता है । यास् ङस् इस दशा में षष्ठी विभक्ति का लुक् होकर सकार को रुत्व तथा रेफ को यकार होता है—

याय् इस दशा में 'लोपः शाकल्यस्य' के द्वारा य लोप होकर 'या' बना है । य लोप को सौत्रत्वाद् सिद्ध मानकर गुण हुआ है परन्तु पतञ्जलि आदि विद्वानों के अनुसार गुण वर्जित पाठ (अतो या इयः) था । यथा—

अतो या इय इत्यत्राकार ग्रहणं पंचमी निर्दिष्टम् ।[1]

तथा—

षष्ठ्या जातायाः सुलुक्० इति लुकि रुत्व यत्वयलोपेषु तस्याऽसिद्धत्वात् गुणाभावे अतो या इयः इति रूपम् ।[2]

अतः हमने 'यास् के स्थान पर'–ऐसा अर्थ किया है ।

कुछ विद्वानों के अनुसार लुप्त सकारवान् (अर्थात् जिसके सकार का लोप हो चुका है) 'या' के स्थान पर 'इय्' आदेश करते हैं । ऐसा मानने पर 'पचेयुः' रूप नहीं बन सकता । यथा—

पच् अ यासुट् उस्–
पच या उस्

इस स्थिति में 'अतो येयः' (पा० 7.2.80) से 'इय्' आदेश तथा 'उस्यपदान्तात्' (पा० 6.1.93) के द्वारा पर रूप–दोनों युगपत् प्राप्त होते हैं । 'इय्' आदेश परकार्य होने से प्राप्त हुआ परन्तु पररूप कार्य अन्तरंग होने से इसे बाध देता है । कारण कि, 'या उस्' यहाँ पररूप कार्य केवल प्रत्यय में होने से अन्तरंग है परन्तु अदन्त के आश्रित होने से इयादेश बहिरंग है ।

तब पररूप होकर 'पचायुः' अनिष्ट रूप बनता है । इसलिए 'इय्' आदेश 'या' को न होकर यास्' को ही होना चाहिए । स्वयं काशिकाकार ने इस ओर संकेत किया है ।[3]

'इय' का अकार उच्चारणार्थ है । अनेकाल् होने से यह सर्वादेश है ।

उदा.—पच् ति (वि०लिङ्)–

पच् शप् यासुट् तिप्–
पच् अ यास् त् (इकार लोप)–

पच यास् त् अब अनन्त्य सकार का लोप प्राप्त होता जिसे बाधकर 'इय' होता है—

पच इय त्–पच इय् त्–
प चे य् त्–पचेत् ।
(लोपो व्योर्वलि) ।

विशेष—प्रकृतसूत्र में 'सार्वधातुके' का अधिकार है । इस अधिकार की सार्थकता पर महाभाष्य में निम्नप्रकार से विचार किया गया है—

कृ सन्–चिकीर्ष

धातु संज्ञा करके आ०लिङ्० का 'ति' प्रत्यय आया–

चिकीर्ष यासुट् ति–

'लिङाशिषि' से आर्धधातुक संज्ञा हुई । 'सार्वधातुके' का अधिकार होने से यहाँ इयादेश प्राप्त नहीं होता है ।

चिकीर्ष् यास् त्
('अतो लोपः' से अकार लोप)
चिकीर्ष्यात् (स् लोप) ।

यहाँ शंका है कि 'अतो लोपः' सूत्र नित्य है । अतः इयादेश से पूर्व अकारलोप प्रवृत्त होगा । तब अत् के न रहने से अदन्त अंग नहीं रहेगा तो यासुट् को इयादेश प्राप्त न होगा । इसमें 'सार्वधातुके' का अधिकार न होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता है ।

परन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है । 'अतो येयः' (पा० 7.2.80) सूत्र 'अतो लोपः' (पा० 6.4.48) तथा 'अतो दीर्घो यञि' (पा० 7.3.101) इन दो सूत्रों के मध्य है । उपर्युक्त (चिकीर्ष्यात्) स्थिति में आशीर्लिङ् में नित्य होने से 'अतो लोपः' इयादेश का बाध कर देता है तथा विधिलिङ् (पच यात्) में पर होने के कारण 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र इयादेश का बाध करता है । 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्त (प०) के द्वारा इयादेश पूर्वविधि (अतो लोपः) का बाध करता है ।

तब 'चिकीर्ष्यात्' इस दशा में 'अतो लोपः' को बाधकर इयादेश प्राप्त होता है जिसके निवारण के लिए 'सार्वधातुके' का अधिकार आवश्यक है ।

आतो ङितः 7.2.81

पद.—आतः 6.1, ङितः 6.1

1. महा० 7.2.82
2. महा० (उद्योत) 7.2.80
3. काशि० 7.2.80 केचिदत्र 'अतो यासियः' इति सूत्रं पठन्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य सार्वधातुके अतः इयः ।

अर्थ—अदन्त अंग से पर ङित् सार्वधातुक के अवयव आकार के स्थान पर 'इय' आदेश होता है ।

लट्, लोट्, लङ् व विधिलिङ् सार्वधातुक हैं । इनके 'आताम्' व 'आथाम्' 'सार्वधातुकमपित्' के द्वारा ङिद्वत् हैं । इनके अवयव 'आ' को 'इय' होता है । 'इय' का अकार उच्चारणार्थ है । वि०लिङ् में सीयुट् होने से अदन्त अंग के न मिलने से इयादेश नहीं होता है ।

उदा.—(1) पच् आताम् (लट्)–
पच् शप् आताम्–पच इय ताम्–
पच इय् ताम्–पचेय् ताम्–
पचे ताम्–पचेते (टित आत्मनेपदा०) ।

इसी प्रकार—
पच् शप् आथाम्–
पचेथे ।

(2) पच् शप् आताम् (लोट्)–
पच आताम्–पच इय ताम्–
पचेय् ताम्–पचेताम् ।
इसी प्रकार–
पच् शप् आथाम्–
पचेथाम् ।

(3) पच् आताम् (लङ्)–
पच् शप् इय ताम्–
अट् पचेय् ताम्–अपचेताम् ।
इसी प्रकार–
अपचेथाम् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'आतः' अर्थात् **आकार** के स्थान पर ही इयादेश होता है— पच् शप् झि–पच् अ अन्ति

'पच' अदन्त अंग है । इससे पर सार्वधातुक ङित 'अन्ति' है परन्तु इसका अवयव आकार नहीं है । अतः इयादेश न हुआ—पचन्ति ।

2. 'ङितः' अर्थात् **ङित्** के ही आकार के स्थान पर इयादेश होता है—

पच् वहि (लोट्)–
पच् शप् आट् वहि–
पच आ वहि

यहाँ 'पच' अदन्त अंग है । इससे पर 'आवहि' है जिसका अवयव आकार है परन्तु यह ङित् नहीं है । अतः इयादेश न हुआ—पचावहै ।

3. 'आतः' में तपरकरण का प्रयोजन है कि 'मिमाते' में 'आताम्' के आकार को 'इय' न हो ।

माङ् लट्–मा आताम्–
मा मा आताम्–मि मा आताम्–
(भृञामित्)–
मिम् आताम्–

इस दशा में 'श्नाऽभ्यस्तयोरातः' से 'आ' का लोप हुआ है ।

यदि 'आतः' में तपरकरण न होता तो पर कार्य होने से इयादेश की प्राप्ति होती है ।

आने मुक् 7.2.82

पद.—आने 7.1, मुक् 1.1

अनु.—अंगस्य अतः ।

अर्थ—'आन' परे रहते अंग के ह्रस्व अकार को 'मुक्' आगम होता है ।

अनुवृत्त 'अतः' पद को विभक्ति विपरिणाम के द्वारा षष्ठ्यन्त कर लिया जाता है, परन्तु यह 'अंगस्य' का विशेषण नहीं है । 'अदन्तस्य अंगस्य मुक् स्यात्' ऐसा अर्थ करने पर स्वर दोष प्रसक्त होता है । अतः हमने 'अंग के ह्रस्व अकार को मुक् आगम होता है'—ऐसा अर्थ किया है ।

उदा.—पच् शानच्–
पच् शप् आन–
पच मुक् आन–
पच म् आन सु–पचमानः

मुक् के ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है ।

विशेष—'अतः' का अधिकार होने से **ह्रस्व अकार** को ही मुक् आगम होता है—

धा शानच्–
धा शप् शानच्–
धा शानच् (श्लु)–
दधा आन

अब ह्रस्व अकार न होने से मुक् आगम न हुआ—
दधान सु–दधानः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईदासः 7.2.83

पद.—ईत् 1.1, आसः 5.1

अनु.—अंगस्य आने ।

अर्थ—'आस्' से उत्तर 'आन' को ईकारादेश होता है । 'आन' के आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है ।

उदा.—आस् शानच्–
आस् शप् शानच्–
आस् आन–आस् ईन–
आसीन सु–आसीनः ।

अष्टन आ विभक्तौ 7.2.84

पद.—अष्टनः 6.1, आः 1.1, विभक्तौ 7.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—विभक्ति परे रहते 'अष्टन्' अंग को 'आ' आदेश होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा यह आदेश अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर होता है । 'आ' यह जातिनिर्देश नहीं है, व्यक्ति निर्देश है । यदि इसे आकृतिनिर्देश मानेंगे तो 'स्थानेऽन्तरतमः' के द्वारा नकार के स्थान पर अनुनासिक आकार (आँ) प्राप्त होता है । अतः इसे व्यक्ति निर्देश मानना उचित है ।[1]

प्रकृतसूत्र के द्वारा विहित आकार आदेश को वैयाकरण वैकल्पिक मानते हैं । इसमें 'अष्टनो दीर्घात्' सूत्र प्रमाण है । यदि प्रकृतसूत्र के द्वारा विहित आकार आदेश नित्य होता तो 'अष्टनो दीर्घात्' में 'दीर्घात्' पद व्यर्थ हो जाता है । कारण कि, 'अष्टन आ विभक्तौ' के द्वारा सर्वत्र 'आ' हो जाने पर ह्रस्व उपलब्ध ही न होगा । इस प्रकार 'दीर्घात्' पद व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि आकार आदेश वैकल्पिक है ।

'अष्टाभ्य औश्' के द्वारा जस् व शस् में वैकल्पिक आत्व होता है । शेष सभी विभक्तियाँ हलादि हैं (ध्यान रहे कि 'आम्' को 'नुट्' का आगम होकर 'आम्' भी हलादि विभक्ति बन जाती है) । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा विहित आकार अन्तादेश हलादि विभक्तियों में होता है ।

उदा.—(1) अष्टन् भिस्–
अष्ट आ भिस्–
अष्टा भिस् (सवर्ण दीर्घ)–
अष्टाभिः ।
(आत्व अभाव पक्ष में)
अष्टन् भिस्
अष्टभिः ।

(2) अष्टन् भ्यस्–
अष्ट आ भ्यस्–
अष्टाभ्यः ।
(आत्व अभाव में) अष्टभ्यः ।

(3) अष्टन् आम्–
'ष्णान्ता षट्' से षट्संज्ञा । षट् चतुर्भ्यश्च से नुट्–
अष्टन् नुट् आम्–
अष्टन् नाम्–
अष्ट आ नाम्–अष्टानाम् ।
आत्व अभाव पक्ष में—
अष्टन् आम्–अष्टन् नाम्–
अष्टान् नाम् (नोपधायाः)–
अष्टानाम् (न लोपः प्राति०) ।

(4) अष्टन् सुप्–
अष्ट आ सु–
अष्टासु ।
(आत्व अभाव पक्ष में)
अष्टन् सुप्–
अष्टसु ।

अष्टन् शब्द की रूपमाला

	एकव०	द्विव०	बहु० (आत्व पक्ष)	बहु० (अनात्व पक्ष)
प्रथमा	–	–	अष्टौ	अष्ट
द्वितीया	–	–	अष्टौ	अष्ट
तृतीया	–	–	अष्टाभिः	अष्टभिः
चतुर्थी	–	–	अष्टाभ्यः	अष्टभ्यः
पञ्चमी	–	–	अष्टाभ्यः	अष्टभ्यः
षष्ठी	–	–	अष्टानाम्	अष्टानाम्
सप्तमी	–	–	अष्टासु	अष्टसु

विशेष—'विभक्तौ' अर्थात् **विभक्ति** परे रहते ही अष्टन् को आकार अन्तादेश होता है—

अष्टन् त्व 'त्व' की विभक्ति संज्ञा नहीं है । अतः आकार अन्तादेश न हुआ—

अष्टत्व सु–अष्टत्वम् ।

1. काशि० 7.2.84

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायो हलि 7.2.85

पद.—रायः 6.1, हलि 7.1

अनु.—अंगस्य आः विभक्तौ ।

अर्थ—हलादि विभक्ति परे रहते 'रै' अंग को आकार आदेश होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा ऐकार के स्थान पर आकार अन्तादेश होता है ।

ये विभक्तियाँ हलादि हैं—

सु, भ्याम्, भिस्, भ्यस् तथा सुप् ।

उदा.—(1) रै सु-र् आ स्-
रा स्-रा: ।
(2) रै भ्याम्-र् आ भ्याम्-
राभ्याम् ।
(3) रै भिस्-र् आ भिस्-
राभिः ।
(4) रै भ्यस्-र् आ भ्यस्-
राभ्यः ।
(5) रै सुप्-र् आ सु-
रासु ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. "हलि' अर्थात् हलादि विभक्ति परे रहते आकार अन्तादेश होता है—

रै औ-आकार अन्तादेश न हुआ ।
राय् औ-रायौ ।

2. 'विभक्तौ' का अधिकार होने से-रै त्व-रैत्वम् में आकार अन्तादेश न हुआ ।

युष्मदस्मदोरनादेशे 7.2.86

पद.—युष्मदस्मदोः 6.2, अनादेशे 7.1

अनु.—अंगस्य आः विभक्तौ हलि ।

अर्थ—अनादेश हलादि विभक्ति परे रहते युष्मद् और अस्मद् अंगों को 'आ' आदेश होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा यह आकार अन्तादेश होता है ।

उदा.—(1) युष्मद् भ्याम्-
युव अद् भ्याम् (युवावौ द्विव०)-
युवद् भ्याम् (अतो गुणे)-

अनादेश हलादि विभक्ति (भ्याम्) परे हैं । अतः आकार अन्तादेश होकर—

युव आ भ्याम्-युवाभ्याम् ।

इसी प्रकार—

अस्मद् भ्याम्-
आव अद् भ्याम्-
आवद् भ्याम्-
आव आ भ्याम्-आवाभ्याम् ।

(2) युष्मद् भिस्-
युष्म आ भिस्-
युष्माभिः ।
अस्मद् भिस्-
अस्म आ भिस्-
अस्माभिः ।

(3) युष्मद् सुप्-
युष्म आ सु-
युष्मासु ।
अस्मद् सुप्-
अस्म आ सु-
अस्मासु ।

विशेष—'अनादेशे' अर्थात् अनादेश हलादि विभक्ति परे रहते आकार अन्तादेश होता है—

युष्मद् भ्यस्-
युष्मद् अत् (पञ्चम्या अत्)-
युष्म् अत् (शेषे लोपः)-
युष्मत्

यहाँ अनादेश विभक्ति न रहने से अन्तादेश न हुआ ।

इसी प्रकार—

अस्मद् भ्यम्-
अस्मद् अत्-
अस्म् अत्-अस्मत् ।
युष्मद् भ्यस्-
युष्मद् भ्यम् ('भ्यसो भ्यम्' से)

यह 'भ्यम्' पक्ष में प्रत्युदाहरण है ।

युष्म भ्यम् (शेषे लोपः)-
युष्मभ्यम् ।
अस्मद् भ्यस्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मद् भ्यम्–
अस्म भ्यम्–
अस्मभ्यम् ।

यहाँ 'भ्यम्' आदेश विभक्ति परे है । अतः आकार अन्तादेश न हुआ ।

द्वितीयायाञ्च 7.2.87

पद.—द्वितीयायाम् 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मदोः आः विभक्तौ ।

अर्थ—द्वितीया विभक्ति परे रहते युष्मद् व अस्मद् अंगों को आकार अन्तादेश होता है ।

उदा.—(1) युष्मद् अम्–
त्व अद् अम् (त्वमावेकवचने)–
त्वद् अम्–
त्व आ अम्–
त्वा अम्–
त्वाम् (अमि पूर्वः) ।

इसी प्रकार–
अस्मद् अम्–
म अद् अम्–
मद् अम्–
म आ अम्–
माम् ।

(2) युष्मद् औट्–
युष्मद् अम् (डेप्रथमयोरम्)–
युव अद् अम् (युवावौ द्विव०)–
युवद् अम्–
युव आ अम् (द्वितीयायाञ्च)–
युवा अम्
युवाम् (अमि पूर्वः) ।
अस्मद् अम्–
आवद् अम्–
आव आ अम्–
आवा अम्–
आवाम् ।

(3) युष्मद् शस्–

युष्मद् अस् (डे प्रथमयोरम् को बाध कर 'शसो न' से नकार)–
युष्मद् न् स्–
युष्म आ न् स् (द्वितीयायाञ्च)–
युष्मान् स्–
युष्मान् (संयोगान्तलोप) ।
अस्मद् शस्–
अस्मद् न् स्–
अस्म आ न् स्–
अस्मान् ।

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् 7.2.88

पद.—प्रथमायाः 6.1, च–अव्य०, द्विवचने 7.1, भाषायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मदोः आः विभक्तौ ।

अर्थ—लोक में प्रथमा का द्विवचन परे रहते युष्मद् तथा अस्मद् अंगों को आकार अन्तादेश होता है ।

उदा.—(1) युष्मद् औ–
युष्मद् अम् (डे प्रथमयोरम्)–
युव अद् अम् (युवावौ द्विवचने)–
युवद् अम्–
युव आ अम्–
युवा अम्–(सवर्णदीर्घ)–
युवाम् (अमि पूर्वः) ।
अस्मद् औ–
अस्मद् अम्–
आव अद् अम्–
आवद् अम्–
आव आ अम्–
आवाम् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'प्रथमायाः' अर्थात् **प्रथमा** के द्विवचन के परे रहते आकार अन्तादेश होता है—

युष्मद् ओस्–
युव अद् ओस्–(युवावौ द्विव०)–
युवद् ओस्

'ओ' परे है परन्तु वह प्रथमा का नहीं है । अतः आकार अन्तादेश न हुआ—

युवय् ओस् (योऽचि)–
युवयोः ।

इसी प्रकार—आवयोः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. 'द्विवचने' अर्थात् **द्विवचन** परे रहते ही आकार अन्तादेश होता है—

त्वम्, अहम् यहाँ प्रथमा तो है परन्तु 'औ' नहीं है। अतः आकार अन्तादेश न हुआ।

इसी प्रकार यूयम् व वयम् में आकार अन्तादेश न हुआ।

3. 'भाषायाम्' अर्थात् **लोक में ही** आकार अन्तादेश होता है–युवम् (ऋ०1.152.1) वेद में आकार अन्तादेश न हुआ।

योऽचि 7.2.89

पद.—यः 1.1, अचि 7.1

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मदोः अनादेशे विभक्तौ।

अर्थ—अनादेश अजादि विभक्ति परे रहते युष्मद् तथा अस्मद् अंगों को 'य्' आदेश होता है। यकार में अकार उच्चारणार्थ है।

अलोऽन्त्य परिभाषा से यकार अन्तादेश होता है।

उदा.—(1) युष्मद् टा–
त्व अद् आ (त्वमावेकवचने)–
त्वद् आ–
त्वय् आ–त्वया।

इसी प्रकार—
अस्मद् टा–
म अद् आ–
मद् आ–मय् आ–मया।

(2) युष्मद् ओस्–
युव अद् ओस् (युवावौ द्विव०)–
युवद् ओस्–
युव य् ओस्–(योऽचि)–
युवयोः।
अस्मद् ओस्–आव अद् ओस्–
आवद् ओस्–आव य् ओस्–
आवयोः।

(3) युष्मद् ङि–
त्व अद् इ (त्वमावेक०)–
त्वद् इ–त्वय् इ (योऽचि)–
त्वयि।
अस्मद् ङि–म अद् इ–
मद् इ–मय् इ–मयि।

विशेष—1. 'अचि' अर्थात् **अजादि** विभक्ति परे रहते ही यकार अन्तादेश होता है—

युष्मद् भ्याम्–
युव अद् भ्याम् (युवावौ द्विवचने)–
युवद् भ्याम्–

'भ्याम्' अनादेश तो है परन्तु अजादि नहीं है। अतः यकार अन्तादेश न हुआ—

युव आ भ्याम्–युवाभ्याम्।

इसी प्रकार–आवाभ्याम् में यकार आदेश नहीं होता है।

2. 'अनादेशे' का अधिकार होने से निम्नलिखित स्थलों पर यकार अन्तादेश नहीं होता है—

युष्मत्, अस्मत्

यहाँ 'पञ्चम्या अत्' के द्वारा 'अत्' आदेश हो गया है।

इसी प्रकार—

युष्मभ्यम् तथा अस्मभ्यम् में यकारादेश न हुआ। यहाँ 'भ्यसोऽभ्यम्' के द्वारा विभक्ति को 'अभ्यम्' आदेश हुआ है।

शेषे लोपः 7.2.90

पद.—शेषे 7.1, लोपः 1.1

अनु.—अंगस्य विभक्तौ युष्मदस्मदोः।

अर्थ—स्थान षष्ठी के अर्थ में अधिकरणत्व की विवक्षा से 'शेषे' में सप्तमी हुई है।

'शेषे' पद के अर्थ के विषय में दो मत हैं—

(क) 'शेषे' पद प्रकृति से सम्बद्ध है। इस मत के अनुसार युष्मद् व अस्मद् के मपर्यन्त भाग से आगे शेष भाग का लोप होता है।

मपर्यन्त भाग से आगे 'अद्' शेष बचता है जो युष्मद् और अस्मद् की 'टि' है। अतः इस मत के अनुसार इन अंगों की 'टि' का लोप होता है।[1]

परन्तु उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह नही है कि युष्मद् और अस्मद् शब्दों में मपर्यन्त आदेशों से अवशिष्ट शेष भाग का लोप होता है। ऐसा अर्थ करने पर एक दोष प्रसक्त होता है। यथा—

युष्मभ्यम् तथा अस्मभ्यम् में प्रकृतसूत्र प्रवृत्त न हो सकेगा। कारण कि यहाँ मपर्यन्त भाग को कोई आदेश नही होता है।

---

1. काशि० 7.2.90 केचित् तु शेषे लोपं टिलोपम् इच्छन्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) 'शेषे' पद प्रत्यय से सम्बद्ध है। इसके अनुसार शेष विभक्तियों में युष्मद् तथा अस्मद् का लोप है।

यहाँ 'शेष' पद का अभिप्राय है—आत्व व यत्व विधान से अतिरिक्त।[1]

इस अर्थ की दशा में अलोन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् (दकार) का लोप होता है।

अष्टाध्यायी में **युष्मदस्मदोरनादेशे, द्वितीयायाञ्च** तथा **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** के द्वारा आत्व तथा **योऽचि** के द्वारा यत्व का विधान किया गया है।

इस अर्थ के अनुसार जहाँ-जहाँ आत्व या यत्व आदेश होता है, उन-उन स्थलों से अन्यत्र युष्मद् व अस्मद् के अन्त्य अल् (दकार) का लोप होता है।

काशिकाकार ने एक श्लोक में इन स्थलों को इस प्रकार संगृहीत किया है—

पञ्चम्याश्च चतुर्थ्याश्च षष्ठप्रथमयोरपि।
यान्यद्विवचनान्यत्र 'शेषे लोपो' विधीयते ॥[2]

अर्थात् पंचमी, चतुर्थी, षष्ठी तथा प्रथमा विभक्तियों के एक वचन और बहुवचन में 'शेषे लोपः' प्रवृत्त होता है।

ध्यान रहे—अन्त्य लोप पक्ष में 'अतो गुणे' से पररूप अथवा 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप की आवश्यकता है। टिलोप पक्ष में न पररूप की आवश्यकता होती है तथा न ही पूर्व रूप की।

उदा.—(1) युष्मद् सु–
युष्मद् अम् (ङे प्रथमयोरम्)–
त्व अद् अम् (त्वाहौ सौ)–

अब **शेषे लोपः** (पा० 7.2.90) से अद् भाग का लोप तथा **अतो गुणे** (पा० 6.1.94) से पररूप युगपत् प्राप्त होते हैं। परकार्य होने के कारण टिलोप प्रथम प्रवृत्त होना चाहिए परन्तु पररूप इसका बाधकर प्रवृत्त होता है। कारण कि, टिलोप अंगाधिकार में पठित होने के कारण विभक्ति प्रत्यय सापेक्ष है। अतः बहिरंग है। पररूप अन्तर्गत वर्णद्वय की अपेक्षा रखता है। अतः बहिरंग है। फलतः अन्तरंग बलवान् होने से यहाँ प्रथम प्रवृत्त हुआ।

ध्यान रहे कि समानाश्रय न होने के कारण **वार्णादांगं बलीयः** (प०) भी यहाँ प्रवृत्त नहीं होती है। यहाँ टिलोप तो विभक्ति को निमित्त मानता है तथा पररूप अकार को। दोनों का आश्रय भिन्न-भिन्न है। अतः उक्त परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती है।

त्वद् अम्–
त्व् अम् (टिलोप पक्ष)।
त्व अम् (अन्त्यलोप पक्ष)।
त्वम् (अतो गुणे)।

इसी प्रकार—

अस्मद् सु–अस्मद् अम्–
अह अद् अम्–अहद् अम्–
अह् अम्–अहम्।
अह अम्–अहम् (अन्त्यलोप)।

(2) युष्मद् जस्–
यूयम्
देखें पा० 7.2.93 का उदाहरण भाग।
अस्मद् जस्–
वयम्।

(3) युष्मद् ङे–
तुभ्यम्
द्र० पा० 7.2.95 का उदाहरण भाग।
अस्मद् ङे–
मह्यम्।

(4) युष्मद् भ्यस्–
युष्मभ्यम्।
द्र० पा० 7.1.30 का उदहारण भाग।
अस्मद् भ्यस्–
अस्मभ्यम्।

(5) युष्मद् ङसि–
त्वत्।
द्र० पा० 7.1.32 का उदाहरण भाग।
अस्मद् ङसि–
मत्।

(6) युष्मद् भ्यस्–
युष्मत्।
द्र० पा० 7.1.31 का उदाहरण भाग।
अस्मद् भ्यस्–
अस्मत्।

(7) युष्मद् ङस्–

1. काशि० 7.2.90 कश्च शेषः? यत्राऽऽकारो यकारश्च न विहितः।
2. काशि० 7.2.90

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तव ।
द्र० पा० 7.2.96 का उदाहरण भाग ।
अस्मद् ङस्-
मम ।
(8) युष्मद् आम्-
युष्माकम् ।
द्र० पा० 7.1.33 का उदाहरण भाग ।
अस्मद् आम्
अस्माकम् ।

मपर्यन्तस्य 7.2.91

पद.—मपर्यन्तस्य 6.1

अर्थ—यह अधिकारसूत्र है ।

यहाँ से लेकर पा० 7.2.98 पर्यन्त जो भी कार्य हो वह म् पर्यन्त भाग को होता है ।

युवावौ द्विवचने 7.2.92

पद.—युवावौ 1.2, द्विवचने 1.2

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य विभक्तौ ।

अर्थ—विभक्ति परे होने पर द्विवचन में युष्मद् और अस्मद् अंग के म्पर्यन्त भाग को क्रमशः युव और आव आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) युष्मद् औ-
युष्मद् अम् (ङे प्रथमयोरम्)-
युव अद् अम् (युवावौ द्विव०)-
युवद् अम्-
युव आ अम्-
युवाम् ।

इसी प्रकार—
अस्मद् औ-
अस्मद् अम्-
आव अद् अम्-आवद् अम्-आव आ अम्-आवाम् ।

(2) युष्मद् भ्याम्-
युव अद् भ्याम्-
युवद् भ्याम्-युव आ भ्याम्-युवाभ्याम् ।

इसी प्रकार—
अस्मद् भ्याम्-
आव अद् भ्याम्-आवद् भ्याम्-
आव आ भ्याम्-आवाभ्याम् ।

(3) युष्मद् ओस्-युव अद् ओस्-
युवद् ओस्-युवय् ओस्-युवयोः ।

इसी प्रकार—
अस्मद् ओस्-आव अद् ओस्-
आवद् ओस्-आव य् ओस्-आवयोः ।

यूयवयौ जसि 7.2.93

पद.—यूयवयौ 1.2, जसि 7.1

अनु.—युष्मदस्मदोः अंगस्य मपर्यन्तस्य विभक्तौ ।

अर्थ—जस् विभक्ति परे रहते युष्मद् और अस्मद् के म्-पर्यन्त भाग को यथासंख्य करके यूय व वय आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) युष्मद् जस्-
युष्मद् अम् (ङे प्रथमयोरम्)-

अम् को स्थानिवद्भाव से जस् है । अतः यूय अद् अम्-यूयद् अम्-
यूय् अम् (शेषे लोपः)-
यूयम् ।

अन्त्यलोप पक्ष में 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप यूयद् अम्-यूय अम्-
यूयम् ।

इसी प्रकार—
अस्मद् जस्-अस्मद् अम्-
वय अद् अम्-वयद् अम्-
वय् अम्-वयम् ।

त्वाहौ सौ 7.2.94

पद.—त्वाहौ 1.2, सौ 7.1

अनु.—युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य अंगस्य विभक्तौ ।

अर्थ—'सु' विभक्ति परे रहते युष्मद् और अस्मद् के म्पर्यन्त भाग को यथासंख्य 'त्व' तथा 'अह' आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) युष्मद् सु-
युष्मद् अम्-त्व अद् अम्-
त्वद् अम्-त्व् अम्-त्वम् ।

इसी प्रकार—
अस्मद् सु-अस्मद् अम्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अह अद् अम्-अहद् अम्-अह् अम्-
अहम् ।

तुभ्यमह्यौ ङयि 7.2.95

पद.—तुभ्यमह्यौ 1.2, ङयि 7.1

अनु.—युष्मदस्मदोः अंगस्य मपर्यन्तस्य विभक्तौ ।

अर्थ—ङे परे रहते युष्मद् और अस्मद् के म्पर्यन्त भाग को यथासंख्य करके तुभ्य और मह्य आदेश होते हैं ।

उदा.—युष्मद् ङे-युष्मद् अम्-
अम् को स्थानिवद्भाव से ङे मानकर-
तुभ्य अद् अम्-तुभ्यद् अम्-
तुभ्य् अम् ('शेषे लोपः' के टिलोप पक्ष में)-
तुभ्यम् ।
तुभ्य अम् (अन्त्य लोप पक्ष में)-
तुभ्यम् (अमि पूर्वः) ।

तवममौ ङसि 7.2.96

पद.—तवममौ 1.2, ङसि 7.1

अनु.—युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य अंगस्य विभक्तौ ।

अर्थ—ङस् विभक्ति परे रहते युष्मद् व अस्मद् के म्पर्यन्त भाग को यथासंख्य तव तथा मम आदेश होते हैं ।

उदा.—युष्मद् ङस्-
'त्वमावेकवचने' को बाध कर 'तव' आदेश
तव अद् ङस्-तवद् ङस्-
तवद् अश्-तव् अश्-तव ।

इसी प्रकार—
अस्मद् ङस्-मम अद् ङस्-
ममद् ङस्-ममद् अश्-मम् अश्-मम ।

त्वमावेकवचने 7.2.97

पद.—त्वमौ 1.2, एकवचने 7.1

अनु.—अंगस्य युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य विभक्तौ ।

अर्थ—विभक्ति परे रहते एकत्व कथन में युष्मद् व अस्मद् के म्पर्यन्त भाग को यथासंख्य 'त्व' तथा 'म' आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) युष्मद् अम्-
त्वाम् ।
अस्मद् अम्-
माम् ।

द्र० पा० 7.2.87 का सिद्धि भाग ।

(2) युष्मद् टा-
त्वया ।
अस्मद् टा-
मया ।
द्र० पा० 7.2.89 का सिद्धि भाग ।

(3) युष्मद् ङसि-
त्वत् ।
अस्मद् ङसि-
मत् ।
द्र० पा० 7.1.32 का सिद्धि भाग ।

(4) युष्मद् ङि-
त्वयि ।
अस्मद् ङि-
मयि ।
द्र० पा० 7.2.89 का सिद्धि भाग ।

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च 7.2.98

पद.—प्रत्ययोत्तरपदयोः 7.2, च-अव्य० ।

अनु.—युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य अंगस्य विभक्तौ त्वमावेकवचने ।

अर्थ—प्रत्यय अथवा उत्तर पद परे रहते एकत्व अर्थ में वर्त्तमान युष्मद् और अस्मद् अंग के म्पर्यन्त भाग को यथा संख्य करके 'त्व' तथा 'म' आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) तव अयम्-
युष्मद् छ (त्यदादीनि च । वृद्धाच्छः)-
युष्मद् ईय-
त्व अद् ईय-त्वदीय सु-त्वदीयः ।
अस्मद् छ-मदीयः ।

(2) अतिशयेन त्वम्-
युष्मद् तरप्-त्व अद् तर-त्वद् तर-
त्वत्तरः ।
इसी प्रकार-मत्तरः ।

(3) त्वाम् इच्छति-
युष्मद् क्यच् (सुप आत्मनः क्यच्)-
त्व अद् य-त्वद्यति (तिप्) ।
इसी प्रकार-मद्यति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) त्वम् इवाचरति–
युष्मद् क्यङ् (कर्तुः क्यङ्–)–
त्वद्यते ।

इसी प्रकार–मद्यते । मत्तः (भट्टि० 3.15) ।

(5) तव पुत्रः—
युष्मद् पुत्र–त्व अद् पुत्र–
त्वत् पुत्रः (सु) ।

इसी प्रकार–मत्पुत्रः । मत्प्रियार्थम् (मे० 23)

यहाँ नहीं हुआ है—
युष्मद्गुरूणाम् (कुन्द० 5.11)

त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ 7.2.99

पद.—त्रिचतुरोः 6.2, स्त्रियाम् 7.1, तिसृचतसृ–लुप्त-प्रथमान्तरूपम् ।

अनु.—अंगस्य विभक्तौ ।

अर्थ—विभक्ति परे रहते स्त्रीत्व की विवक्षा में 'त्रि' तथा 'चतुर्' के स्थान पर यथासंख्य करके 'तिसृ' व 'चतसृ' आदेश होते हैं ।

उदा.—(1) त्रि–तिसृ–तिसृ जस्–

'ऋतो ङि सर्व०' से गुण प्राप्त हुआ । 'अचि र ऋतः' के द्वारा बाध हो गया । तिस्रः ।

इसी प्रकार 'शस्' में–तिस्रः ।

(2) त्रि–तिसृ–तिसृभिस्–
तिसृभिः ।

(3) चतुर्–चतसृ–चतसृ जस्–चतस्रः ।

(4) चतुर्–चतसृ भिस्–चतसृभिः

रूपमाला (त्रि)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	–	–	तिस्रः
द्वितीया	–	–	तिस्रः
तृतीया	–	–	तिसृभिः
चतुर्थी	–	–	तिसृभ्यः
पञ्चमी	–	–	तिसृभ्यः
षष्ठी	–	–	तिसृणाम्
सप्तमी	–	–	तिसृषु

रूपमाला (चतुर्)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	–	–	चतस्रः
द्वितीया	–	–	चतस्रः
तृतीया	–	–	चतसृभिः
चतुर्थी	–	–	चतसृभ्यः
पञ्चमी	–	–	चतसृभ्यः
षष्ठी	–	–	चतसृणाम्
सप्तमी	–	–	चतसृषु

विशेष—'स्त्रियाम्' अर्थात् **स्त्रीत्व की विवक्षा** में ही 'तिसृ' व 'चतसृ' आदेश होते हैं—

त्रि जस्–त्रयः यहाँ स्त्रीत्व की विवक्षा न होने से 'तिसृ' आदेश न हुआ ।

अचि र ऋतः 7.2.100

पद.—अचि 7.1, रः 1.1, ऋतः 6.1

अनु.—अंगस्य तिसृचतसृविभक्तौ ।

अर्थ—अच् परे रहते 'तिसृ' और 'चतसृ' के ह्रस्व ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश होता है ।

रेफ में अकार उच्चारणार्थ है । यह रेफादेश पूर्वसवर्ण दीर्घ, उत्व तथा गुण का अपवाद है । यथा—

(क) तिसृ शस्–तिसृ अस्

यहाँ 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से प्राप्त दीर्घादेश को बाधकर रेफादेश होता है—तिस्रः ।

(ख) प्रियतिसृ ङस्–

यहाँ 'ऋत उत्' से प्राप्त उत्त्व को बाध कर रेफादेश होता है—प्रियतिस्रः ।

(ग) तिसृ जस्–

इस दशा में 'ऋतो ङिसर्वनाम०' से प्राप्त गुण को बाधकर रेफादेश होता है—तिस्रः । इस प्रकार यह सूत्र दीर्घादेश, उत्त्व तथा गुण का अपवाद है ।

उदा.—तिसृ जस्–
तिस्रः ।
चतसृ जस्–
चतस्रः ।

विशेष—'अचि' अर्थात् **अच्** परे रहते ही रेफादेश होता है–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिसृभिः, चतसृभिः

यहाँ अच् परे नहीं है। अतः रेफादेश न हुआ।

जराया जरसन्यतरस्याम् 7.2.101

पद.—जरायाः 6.1, जरस् 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य अचि विभक्तौ।

अर्थ—अजादि विभक्ति परे रहते 'जरा' शब्द को विकल्प से 'जरस्' आदेश होता है। निम्नलिखित तेरह विभक्तियाँ अजादि हैं—

1. औ, 2. जस्, 3. अम्, 4. औट्, 5. शस्, 6. टा, 7. ङे, 8. ङसि, 9. ङस्, 10. ओस्, 11. आम्, 12. ङि, 13. ओस्।

'जरस्' शब्द अनेकाल् है। अतः सर्वादेश होता है।

उदा.—(1) जरा औ–जरस् औ–
जरसौ।
पक्ष में—जरा औ–जरा शी–
जरे।
(2) जरा जस्–जरस् अस्–
जरसः।

पक्ष में जरा जस्–जराः। जरसम् (भाग० 9.19.21)।

इसी प्रकार अन्यत्र जानना चाहिए।

रूपमाला

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	जरा	जरे, जरसौ	जराः, जरसः
द्वितीया	जराम्, जरसम्	जरे, जरसौ	जराः, जरसः
तृतीया	जरया, जरसा	जराभ्याम्	जराभिः
चतुर्थी	जरायै, जरसे	जराभ्याम्	जराभ्यः
पंचमी	जरायाः, जरसः	जराभ्याम्	जराभ्यः
षष्ठी	जरायाः, जरसः	जरयोः, जरसोः	जराणाम्, जरसाम्
सप्तमी	जरायाम्, जरसि	जरयोः, जरसोः	जरासु
सम्बोधन	हे जरे!	हे जरे, जरसौ!	हे जराः, जरसः!

विशेष—1. 'पदांगाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' (प०) अर्थात् पद और अंग के अधिकार में जिसके स्थान पर जो आदेश विधान किया जाता है, वह उस स्थानी को तथा तदन्त स्थानी को होता है।

पदस्य (पा० 8.1.16) से पदाधिकार चलता है जो पा० 8.3.55 पर्यन्त जाता है।

अंगस्य (पा० 6.4.1) यहाँ से अंगाधिकार प्रारम्भ होकर सप्तम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त चलता है।

उपर्युक्त परिभाषा का तात्पर्य है कि इन दोनों अधिकारों में जिसको जो आदेश हो वह उसके स्थान पर तथा वह जिस समुदाय के अन्त में हो उस समुदाय के स्थान पर भी होता है। यथा—

प्रकृतसूत्र (पा० 7.2.101) अंगाधिकार के अन्तर्गत पढा गया है। अतः इस परिभाषा द्वारा 'जरस्' आदेश 'जरा' शब्द के स्थान पर तो होगा ही तथा 'जरा' शब्द है अन्त में जिसके ऐसे (निर्जर, दुर्जर आदि) शब्दों के स्थान पर भी होगा।

अब प्रश्न उठता है कि अनेकाल् होने से 'जरस्' शब्द सम्पूर्ण स्थानी (यथा—निर्जर या दुर्जर) के स्थान पर प्राप्त होता है।

परन्तु एक परिभाषा है। **निर्दिश्यमानस्याऽऽदेशा भवन्ति** (प०) अर्थात् जितने अंश का निर्देश किया गया हो उतने अंश के स्थान पर ही आदेश होता है। चूँकि प्रकृतसूत्र के द्वारा **जरा** के स्थान पर **जरस्** आदेश का विधान किया गया है तो **निर्जर** की दशा में **जरस्** आदेश सम्पूर्ण स्थानी (निर्जर) को न होकर **'जर'** इस अंश के स्थान पर होगा।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि **जरस्** आदेश **जरा** के स्थान पर होता है परन्तु **निर्जर** प्रभृति शब्दों में तो **जर** शब्द है, **जरा** नहीं।

इसके समाधान के लिए एक अन्य परिभाषा उपस्थित होती है। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** (प०) अर्थात् एकदेश में विकार आ जाने पर भी अवयवी अन्य के समान नहीं हो जाता है। लोक में देखा जाता है कि पूँछ कट जाने पर भी कुत्ते को कुत्ता ही कहा जाता है, गधा इत्यादि नहीं। इसी प्रकार **जरा** शब्द विकृत होकर **जर** हो गया है। अतः व्याकरण शास्त्र में उसे **जरा** मानकर ही कार्य होगा। फलतः प्रकृतसूत्र के द्वारा **निर्जर** प्रभृति शब्दों के **जर** अंश को **जरस्** आदेश निर्बाध हो जाता है।

निर्जर शब्द की रूपमाला

विभक्ति	एकव०	द्विव०	बहु०
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरसौ, निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जराः
द्वितीया	निर्जरसम्, निर्जरम्	निर्जरसौ, निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जरान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीया	निर्जरसा, निर्जरेण	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः
चतुर्थी	निर्जरसे, निर्जराय	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
पंचमी	निर्जरसः, निर्जरात्	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
षष्ठी	निर्जरसः, निर्जरस्य	निर्जरसोः, निर्जरयोः	निर्जरसाम्, निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरसि, निर्जरि	निर्जरसोः, निर्जरयोः	निर्जरेषु
सम्बोधन	हे निर्जर!	हे निर्जरसौ, हे निर्जरौ!	हे निर्जरसः, हे निर्जराः!

यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि इन, आत्, स्य (टाङसिङसामिनात्स्याः–पा० 7.1.12), य (ङेर्यः पा० 7.1.13) तथा नुट् (ह्रस्वनद्यापो नुट् पा० 7.1.54) की अपेक्षा जरस् आदेश (जराया जरसन्यतरस्याम् पा० 7.2.101) पर है। अतः प्रथम **जरस्** आदेश करना चाहिए। पश्चात् **इन** आदि आदेश करने चाहिए।

एक प्रश्न उपस्थित होता है कि **निर्जर भिस्** इस दशा में **भिस्** को **ऐस्** आदेश होने पर **जरा** को **जरस्** आदेश नहीं होता है।

इसका समाधान है कि सन्निपात लक्षण विधि विघातक कार्य में निमित्त नहीं होता है। द्र० **सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य**।

यहाँ अदन्त अंग (निर्जर) के कारण ऐस् आदेश हुआ है। तब यह आदेश उस अदन्त अंग के विघातक कार्य (अर्थात् जरस् आदेश) का निमित्त नहीं हो सकता। भाव यह है कि **ऐस्** आदेश को मानकर **जरस्** आदेश नहीं होगा।

त्यदादीनामः 7.2.102

पद.—त्यदादीनाम् 6.3, अः 1.1

अनु.—अंगस्य विभक्तौ।

अर्थ—विभक्ति परे रहते त्यद् आदि शब्दों के स्थान पर अकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अकार आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है। त्यदादिगण सर्वादिगण का एक उपगण है। भाष्यकार के अनुसार यह त्यद् से प्रारम्भ होकर द्वि शब्द पर्यन्त है। इस प्रकार इसमें निम्नलिखित आठ शब्द आते हैं—

1. त्यद्, 2. तद्, 3. यद्, 4. एतद्, 5. इदम्, 6. अदस्, 7. एक, 8. द्वि।

उदा.—(1) त्यद् सु–त्य अ स्–त्य स्–स्यः। इसी प्रकार शेष विभक्तियों में जानना चाहिए।

(2) तद् सु–त अ स्–त सु–सः।

(3) यद्–य अ–य सु–यः।

(4) एतद् सु–एत अ स्–एत स्–एस स्–एषः।

(5) इदम् औ–इद अ औ–
इद औ–इम औ–इमौ।

(6) अदस् औ–अद अ औ–
अद औ–अदौ–अमू
(अदसोऽसेर्दादुदोमः)।

(7) एक सु–एकः।

(8) 'द्वि' शब्द द्विवचनान्त ही होता है।
द्वि औ–द्व् अ औ–द्वौ।

किमः कः 7.2.103

पद.—किमः 6.1, कः 1.1

अनु.—अंगस्य विभक्तौ।

अर्थ—विभक्ति परे रहते 'किम्' अंग को 'क' आदेश होता है।

'क' अनेकाल् होने से सर्वादेश है।

उदा.—किम् सु–क स्–कः।

इसी प्रकार शेष विभक्तियों में जानना चाहिए।

कु तिहोः 7.2.104

पद.—कु 1.1, तिहोः 7.2

अनु.—अंगस्य किमः विभक्तौ।

अर्थ—तकारादि या हकारादि विभक्ति परे रहते **किम्** के स्थान पर **कु** आदेश होता है। **'ति'** में इकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—(1) किम् तसिल्–
पञ्चम्यास्तसिल्। प्राग्दिशो विभक्तिः। कु तस्–
कुतः।
तद्धितश्चासर्व०। अव्ययादाप् सुपः। किम् त्रल्–
(सप्तम्यास्त्रल्)।
कुत्र–कुत्र सु–कुत्र।

(2) किम् ह–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वा ह चच्छन्दसि)।

कुह सु-कुह।

क्वाति 7.2.105

पद.—क्व-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, अति 7.1

अनु.—अंगस्य किमः विभक्तौ।

अर्थ—अत् विभक्ति के परे रहते **किम्** के स्थान पर **क्व** आदेश होता है।

यह **किमः कः** का अपवाद है। अनेकाल् होने से **क्व** सर्वादेश है।

उदा.—'कस्मिन्' इस अर्थ में—

किम् अत् (किमोऽत्)-

किम् अ-क्व अ-

(भसंज्ञा, यस्येति च)

क्व् अ-क्व सु-क्व।

तदोः सः सावनन्त्ययोः 7.2.106

पद.—तदोः 6.2, सः 1.1, सौ 7.1, अनन्त्ययोः 6.2

अनु.—त्यदादीनाम्, अंगस्य विभक्तौ।

अर्थ—सु विभक्ति परे रहते त्यद् आदि शब्दों के अनन्त्य (=जो अन्त में न हो) तकार व दकार के स्थान पर सकार आदेश होता है।

उदा.—(1) त्यद् सु-त्य अस्-

त्यस्-स्यः।

(2) तद् सु-त अ स्-तस्-

सः।

(3) एतद् सु-एत अस्-एतस्-

एषः।

(4) अदस् सु (**त्यदादीनामः** को बाधकर **अदस औ सुलोपश्च**)-

अद औ-अदौ-

असौ।

विशेष—'अनन्त्ययोः' अर्थात् जो **अन्त में नहीं है** ऐसे तकार व दकार के स्थान पर सकार होता है—

हे तद् सु इस दशा में-हे त अ स्-हे सः-होता है। यदि **'अनन्त्ययोः'** न कहेंगे तो परकार्य होने के कारण अत्व को बाधकर दकार के स्थान पर 'स्' हो जायेगा।

हे सस् सु-हे सस् (हल्ङ्यादि लोप)-

हे सः यह अनिष्ट रूप बन जायेगा।

अदस औ सुलोपश्च 7.2.107

पद.—अदसः 6.1, औ-लुप्तप्रथमान्तरूपम्, सुलोपः 1.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य सौ विभक्तौ।

अर्थ—सु विभक्ति परे रहते **अदस्** के स्थान पर **औकार** आदेश तथा इससे पर **सु** का लोप होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा से औकार आदेश अदस् के अन्त्य अल् (सकार) के स्थान पर होता है।

उदा.—अदस् सु-अद औ-

अदौ-असौ

त्यदादीनामः को बाधकर प्रकृतसूत्र के द्वारा औकार हुआ। **तदोः सः सावनन्त्ययोः** के द्वारा सकारादेश हुआ।

यहाँ अदौ इस दशा में **अदसोऽसेर्दादुदोमः** पा० 8.2.80 प्राप्त होता है परन्तु **तदोः सः**—पा० 7.2.106 की दृष्टि में असिद्ध होने से वह प्रवृत्त नहीं होता है।

इदमो मः 7.2.108

पद.—इदमः 6.1, मः 1.1

अनु.—अंगस्य सौ विभक्तौ।

अर्थ—सु परे रहते इदम् अंग के स्थान पर मकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा इदम् के अन्त्य अल् (मकार) के स्थान पर मकार होता है। यह त्यदादित्व के कारण होने वाले अकार का अपवाद है।

उदा.—(1) इदम् सु (त्यदादीनामः का बाध)-

इदम् स्-

अय् अम् स् (इदोऽय् पुंसि)-

अयम् स्-अयम्।

(2) इदम् स् (स्त्रीत्व में)-

इयम् स् (यः सौ)-

इयम्।

दश्च 7.2.109

पद.—दः 6.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य विभक्तौ इदमः मः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—विभक्ति परे रहते इदम् अंग के मकार के स्थान पर दकार होता है।

उदा.—(1) इदम् औ–इद अ औ–
इद औ–इम औ–
इमौ (वृद्धिरेचि)।

(2) इदम् जस्–इद अ अस्–
इद अस्–इद शी–इम ई–इमे।

(3) इसी प्रकार–इमम्, इमौ, इमान्।

यः सौ 7.2.110

पद.—यः 1.1, सौ 7.1

अनु.—अंगस्य इदमः दः विभक्तौ।

अर्थ—सु विभक्ति परे रहते इदम् के दकार के स्थान में यकार होता है।

यकार में अकार उच्चारणार्थ है। पुल्लिंग में सु परे रहते 'इदोऽय् पुंसि' के द्वारा **इद्** भाग को **अय्** हो जाने से दकार उपलब्ध नहीं है। अतः प्रकृतसूत्र स्त्रीलिंग में ही प्रवृत्त होता है।

उदा.—इदम् सु–इयम् स्–इयम्।

इदोऽय् पुंसि 7.2.111

पद.—इदः 6.1, अय् 1.1, पुंसि 7.1

अनु.—अंगस्य इदमः सौ विभक्तौ।

अर्थ—**सु** विभक्ति परे रहते पुल्लिंग में इदम् के **इद्** अंश के स्थान पर **अय्** आदेश होता है।

अनेकाल् होने से **अय्** सर्वादेश होता है। **अय्** के यकार की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा प्राप्त होती है परन्तु प्रयोजनाभाव से इत्संज्ञा का निषेध होता है।

ग्रहण सामर्थ्य से यकार का लोप भी नहीं होता है।

उदा.—इदम् सु (त्यदादीनामः का बाध होकर)–
अय् अम् सु–अयम् स्–अयम्।

विशेष—1. **'पुंसि'** अर्थात् **पुल्लिंग में ही इद्** को **अय्** होता है—

इयं ब्राह्मणी स्त्रीत्व की विवक्षा में **अय्** न हुआ।

2. **सौ** का अधिकार होने से **इमौ पुत्रौ** यहाँ **अय्** आदेश न हुआ।

अनाप्यकः 7.2.112

पद.—अन् 1.1, आपि 7.1, अकः 6.1

अनु.—अंगस्य इदमः इदः विभक्तौ।

अर्थ—तृतीयादि विभक्ति परे रहते ककाररहित **इदम्** शब्द के **इद्** भाग को **अन्** आदेश होता है। **टा** के **आ** से लेकर **सुप्** के पकारपर्यन्त **आप्** प्रत्याहार बनता है। अतः **तृतीयादि विभक्ति परे रहते** ऐसा अर्थ किया गया है।

अक् का अर्थ है—ककार रहित। इदम् शब्द में **अव्ययसर्वनाम्नामकच्०** के द्वारा **अकच्** प्रत्यय होकर **इदकम्** यह ककारसहित रूप बन जाता है।

अन् आदेश अनेकाल् है। अतः सर्वादेश है। हलादि विभक्ति परे रहते अग्रिम सूत्र **हलि लोपः** पा० 7.2.113 के द्वारा लोप होता है। अतः **अनाप्यकः** सूत्र केवल अजादि तृतीयादि में ही सावकाश होता है। अजादियों में भी यह सूत्र केवल **टा** तथा **ओस्** में ही प्रवृत्त होता है।

उदा.—(1) इदम् टा–इद अ आ–
अन् अ आ–अन इन–
(टाङसिङसामिनात्०)
अनेन।

(2) इदम् ओस्–इद अ ओस्–
अन् अ ओस्–अनयोः।
(ओसि च)।

विशेष—**अकः** अर्थात् **ककाररहित** इदम् के **इद्** को **अन्** आदेश होता है—

इदकम् टा–इदक अ टा–
इमक इन–इमकेन

यहाँ **अन्** आदेश न हुआ।

इसी प्रकार–**इमकयोः** में **अन्** न हुआ।

हलि लोपः 7.2.113

पद.—हलि 7.1, लोपः 1.1

अनु.—अंगस्य इदमः अकः इदः विभक्तौ।

अर्थ—तृतीयादि हलादि विभक्ति परे रहते ककार रहित **इदम्** शब्द के **इद्** भाग का लोप होता है। तृतीयादि हलादि आठ विभक्तियाँ हैं—

1. भ्याम्, 2. भिस्, 3. भ्याम्, 4. भ्यस्, 5. भ्याम्, 6. भ्यस्, 7. आम् (सुट् सहित), 8. सुप्।

अलोऽन्त्य परिभाषा से **इद्** के अन्त्य अल् (दकार) का लोप प्राप्त होता है परन्तु यहाँ एक परिभाषा प्रवृत्त होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे (प०) अर्थात् अनर्थक की दशा में अलोऽन्त्य परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है, यदि अभ्यास का विकार अनर्थक हो तो यह परिभाषा अवश्य प्रवृत्त होती है।

समुदाय अर्थवान् होता है तथा एकदेश अनर्थक होता है। द्र० **समुदायो ह्यर्थवान् तस्यैकदेशोऽनर्थकः**। यहाँ **इदम्** सार्थक है तथा इसका एकदेश (**इद्**) अनर्थक है। इद् के अनर्थक होने से अलोऽन्त्य परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है। तब सम्पूर्ण **इद्** का लोप होता है।

उदा.—(1) इदम् भ्याम्-इद अ भ्याम्-इदभ्याम्-(अनाप्यकः को बाधकर 'हलि लोपः' से इद् का लोप हुआ)-

अ भ्याम्-
(आद्यन्तवदेकस्मिन्। सुपि च)
आभ्याम्।

(2) इदम् भिस्-इद अ भिस्-
इद भिस्-अ भिस्-

(हलि लोपः। व्यपदेशिवद्भाव से भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश प्राप्त हुआ)-

ए भिस्-एभिः।
(नेदमदसोरकोः। बहुवचने झल्येत्)

(3) इदम् भ्यस्-इद अ भ्यस्-
इद भ्यस्-अ भ्यस्-एभ्यः।

(4) इदम् आम्-इद अ आम्-
इद आम्-इद सुट् आम्-
(आमि सर्वनाम्नः सुट्)
अ स् आम् (हलि लोपः)-
एसाम्-एषाम्
(बहुवचने झल्येत्)।

(5) इदम् सुप्-इद अ सु-
इद सु-अ सु-एसु-एषु।

मृजेर्वृद्धिः 7.2.114

पद.—मृजेः 6.1, वृद्धिः 1.1

अनु.—अंसस्य।

अर्थ—मृज् अंग को वृद्धि होती है।

'इको गुणवृद्धि' परिभाषा के द्वारा यह मृज् धातु के इक् (ऋकार) के स्थान पर होती है यद्यपि यहाँ 'प्रत्यये' इस पद का साक्षात् अधिकार प्राप्त नहीं होता है तदपि धातु को कहा गया कार्य प्रत्यय के परे रहते ही होता है—इस परिभाषा के अनुसार प्रत्यय के परे रहते मृज् अंग के ऋकार के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है। ऋकार के स्थान पर होने वाला वृद्धि आदेश **उरण् रपरः** तथा **स्थानेऽन्तरतमः** के द्वारा **आर्** के रूप में होता है।

उदा.—(1) मृज् तुमुन्-मृज् तुम्-
मार्ज् तुम्-
मार्ष् तुम् (व्रश्चभ्रस्ज०)-
मार्ष्टुम्।

(2) मृज् ण्यत्-

('मृजेर्विभाषा' से विकल्प से क्यप्' होता है। तब पक्ष में 'ऋहलोर्ण्यत्' से 'ण्यत्' हुआ)-

मृग् य (चजोः कु घिण्ण्यतोः)-
प्राप्त लघूपधगुण को बाधकर-
मार्ग् य-मार्ग्यः (सु)।

अचो ञ्णिति 7.2.115

पद.—अचः 6.1, ञ्णिति 7.1

अनु.—अंगस्य वृद्धिः।

अर्थ—ञित् या णित् प्रत्यय परे रहते अजन्त अंग को वृद्धि आदेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा यह अन्त्य अल् (अच्) के स्थान पर होती है।

उदा.—(1) कृ अञ्-कार् अ-
कार सु-कारः।

(2) सखि औ-
सखै औ-सखायौ।
(सख्युरसम्बुद्धौ)।

(3) यु ष्ट्रन् (सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्-उणा० 4.159 तथा बहुल वचन से णिद्वत्)-
यौ त्र-यौत्र सु-यौत्रम्।

(4) गो सु-
गौ स्-गौः
(गोतो णित्)।

अत उपधायाः 7.2.116

पद.—अतः 6.1, उपधायाः 6.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य वृद्धिः ञ्णिति ।

अर्थ—ञित् अथवा णित् प्रत्यय परे रहते उपधा भूत ह्रस्व अकार के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है ।

ह्रस्व अकार के स्थान पर 'आकार' वृद्धि होती है ।

उदा.—(1) पच् घञ् (भाव में)–
पाच् अ–पाक् अ–पाक–
पाक सु–पाकः ।
(2) भज् घञ्–भाज् अ–भाग् अ–
भाग सु–भागः ।
(3) पच् ण्वुल्–पच् अक–
पाच् अक–पाचकः (सु) ।
(4) पठ् णि–पाठ् इ–पाठि तिप्–
पाठि शप् ति–पाठे अति–पाठयति (एचोऽयवा०)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. **अतः** अर्थात् **ह्रस्व अकार** के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है—
भिद् ण्वुल्–भिद् अक–
भेदकः ।

उपधा में ह्रस्व अकार नहीं है । तब वृद्धि आदेश न हुआ । लघूपधगुण हुआ ।

2. **उपधायाः** अर्थात् **उपधाभूत** ह्रस्व अकार को वृद्धि होती है—

तक्ष् ण्वुल्–तक्ष् अक–तक्षकः णित् प्रत्यय परे है परन्तु उपधा में ह्रस्व अकार नहीं है ।

इसी प्रकार—
चकास् णिच्–चकासि
उपधा में ह्रस्व अकार नहीं है । अतः वृद्धि नहीं होती है—
चकासि शप् ति–चकासयति ।

तद्धितेष्वचामादेः 7.2.117

पद.—तद्धितेषु 7.3, अचाम् 6.3, आदेः 6.1

अनु.—अंगस्य अचः वृद्धिः ञ्णिति ।

अर्थ—ञित् या णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अंगों के अचों में जो आदि अच् उसके स्थान पर वृद्धि आदेश होता है। 'अचाम्' में निर्धारण में षष्ठी है ।

उदा.—(1) गर्ग यञ् (गर्गादिभ्यो यञ्)–
गार्ग य–गार्ग् य–गार्ग्य–
गार्ग्यः (सु) ।
(2) उपगु अण्–
औपगु अ–औपगो अ–
औपगव सु–औपगवः ।

किति च 7.2.118

पद.—किति 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य तद्धितेषु अचाम् आदेः अचः वृद्धिः ।

अर्थ—कित् तद्धित परे रहते अंग के अचों में आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है ।

उदा.—(1) नड फक् (नडादिभ्यः फक्)–
नाड आयन–नाडायन सु–नाडायनः
(2) अक्ष ठक्
(प्राग्वहतेष्ठक्)–
अक्ष इक–आक्ष इक–
आक्षिकः ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां सप्तमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तमाऽध्यायस्य

तृतीयः पादः

देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् 7.3.1

पद.—देविकाशिंशपा.... श्रेयसाम् 6.3, आत् 1.1

अनु.—अंगस्य तद्धितेष्वचामादेः अचो ञ्णितिकिति वृद्धि ।

अर्थ—वृद्धि आदेश का प्रसंग होने पर ञित्, णित् या कित् तद्धित परे रहते देविका, शिंशपा, दित्यवाह, दीर्घसत्र तथा श्रेयस् अंगों के आदि अच् के स्थान पर आकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) देविकायां भवः–
देविका अण् (प्राचां ग्रामनगराणाम् से प्राप्त वृद्धि को बाध कर आकार आदेश)–
दाविका अ–दाविक् अ–
दाविक सु–दाविकम् ।
(2) शिंशपाया विकारः–
शिंशपा अण् (पलाशादिभ्यो वा)–
शांशपा अ–
(तद्धितेष्वचामादेः)
शांशप् अ–शांशपः ।
(3) दित्यौह इदम्–
दित्यवाह् अण्–
दात्यौह सु–दात्यौहम् ।
(4) दीर्घ सत्रे भवम्–
दीर्घ सत्र अण्–
दीर्घ सत्र सु–दीर्घ सत्रम् ।
(5) श्रेयसि भवम्–
श्रेयस् अण्–
श्रायस् अ–श्रायसम् ।

विशेष—'वहीनर' शब्द को इत्व आदेश होता है[1]—
वहीनरस्याऽपत्यम्–विहीनर इञ्–वैहीनर इ–वैहीनरिः ।

केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः 7.3.2

पद.—केकय ... प्रलयानाम् 6.3, यादेः 6.1, इयः 1.1

अनु.—अंगस्य तद्धितेषु ञ्णिति किति ।

अर्थ—ञित्, णित् तथा कित् प्रत्यय परे रहते केकय, मित्रयु और प्रलय–इन अंगों के 'य्' आदि वाले भाग के स्थान पर 'इय' आदेश होता है ।

उदा.—(1) केकय अञ् (जनपदशब्दात्०)–
केक इय अ–कैकेय अ–कैकेयः (सु) ।
(2) मित्रयु वुञ् (गोत्रचरणा०)–
मित्र इय अक–मित्रेय अक–मैत्रेयक सु–मैत्रेयकः ।
(3) प्रलयाद् आगतम्–
प्रलय अण् (तत आगतः)–
प्रल इय अ–प्रलेय अ–प्रालेयः ।

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् 7.3.3

पद.—न–अव्य०, य्वाभ्याम् 5.2, पदान्ताभ्याम् 5.2, पूर्वौ 1.2, तु–अव्य०, ताभ्याम् 5.2, ऐच् 1.1

अनु.–अंगस्य तद्धितेषु अचाम् आदेः अचः ञ्णिति किति ।

अर्थ—ञित्, णित् अथवा कित् प्रत्यय परे रहते पदान्त यकार अथवा पदान्त वकार से उत्तर जो अंग का आदि अच् उसके स्थान पर वृद्धि आदेश नहीं होता है, परन्तु उन (अर्थात् यकार व वकार) से पूर्व यथासंख्य करके ऐ तथा औ आगम होते हैं ।

तात्पर्य है कि यकार से पूर्व ऐकार तथा वकार से पूर्व औकार आगम होता है । शब्द के आदि में वि, सु या नि में से कोई उपसर्ग संज्ञक शब्द या निपात संज्ञक शब्द हो और वहाँ यणादेश हुआ हो तो इस दशा में (यण् के द्वारा प्राप्त) यकार व वकार पदान्त में होते हैं । क्योंकि 'वि' आदि की

1. काशि० 7.3.1 (वा०) वहीनरस्येद् वचनं कर्त्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव्यय संज्ञा है तथा इनसे उत्तर सुप् विभक्ति का लुक् हो जाता है। यथा—

(क) वि आकरण–व्याकरण।
वि असन–व्यसन।
वि आस–व्यास।

(ख) सु अश्व–स्वश्व।

(ग) नि आय–न्याय।
नि आस–न्यास।

उदा.—(1) व्याकरणम् अधीते–
व्याकरण अण् (तदधीते तद्वेद)–
वैयाकरण अ

(तद्धितेष्वचामादेः से प्राप्त आदि वृद्धि का निषेध, ऐ आगम)–
वैयाकरणः–
(यस्येति च। सु)।
व्यास कि–
व् ऐ यासकि–वैयासकिः।
वैयासकिः (भाग० 10.1.14)।
न्याय ठक्–
न् ऐ याय इक–नैयायिक–
नैयायिकः।

(2) स्वश्वस्याऽपत्यम्–
स्वश्व अण्–
(तस्याऽपत्यम्। शिवादिभ्योऽण्)–
स् औ वश्च अ–सौवश्वः।
(यस्येति च। सु)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. **व्याभ्याम्** अर्थात् पदान्त **यकार** या **वकार** से उत्तर आदि अच् को वृद्धि नहीं होती है तथा ऐच् का आगम होता है—

ना अर्थः यस्य सः न्रर्थः।
न्रर्थस्याऽपत्यम्

यहाँ न तो पदान्त यकार है और नहीं पदान्त वकार है। अतः आदि अच् को वृद्धि का निषेध नहीं होता है—

न्रर्थ इ–न्रार्थ इ–न्रार्थि सु–न्रार्थिः।

2. **पदान्ताभ्याम्** अर्थात् **पदान्त में ही** यकार व वकार से पूर्व ऐच् आगम होता है—

यष्टिः प्रहरणम् अस्य–
यष्टि ईकक्–याष्टीकः।

यहाँ यकार पदान्त में नहीं है। अतः ऐच् आगम न हुआ।

एति (गच्छति) इति यन्।
इ शतृ–यत् सु–यन्।

यत इमे–याताः यहाँ भी पदान्त में यकार न होने से इससे पूर्व ऐच् आगम न हुआ।

द्वारादीनां च 7.3.4

पद.—द्वारादीनाम् 6.3, च–अव्य०।

अनु.—न य्वाभ्याम् पूर्वौ तु ताभ्याम् ऐच् तद्धितेषु अचाम् आदेः अचः ञ्णिति वृद्धिःअंगस्य।

अर्थ—द्वार आदि अंगों के यकार अथवा वकार से परे आदि अच् के स्थान पर वृद्धि नहीं होती है तद्धित ञित्, णित् या कित् परे रहते तथा यकार से पूर्व 'ऐ' आगम व वकार से पूर्व 'औ' आगम होता है।

उदा.—(1) द्वारे नियुक्तः–
द्वार ठक् (तत्र नियुक्तः)–
दौवार इक–दौवारिक सु–
दौवारिकः (भट्टि० 12.07)

(2) द्वारपालस्येदम्–
द्वारपाल अण् (तस्येदम्)–
दौवारपालम्।

(3) स्वरम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः–
स्वर अण् (अधिकृत्य कृते ग्रन्थे)–
सौवर सु–सौवरः।

न्यग्रोधस्य च केवलस्य 7.3.5

पद.—न्यग्रोधस्य 6.1, च–अव्य०, केवलस्य 6.1

अनु.—न य्वाभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् तद्धितेषु अचाम् आदेः अचो ञ्णिति अंगस्य वृद्धिः।

अर्थ—केवल न्यग्रोध–इस अंग के आदि अच् को वृद्धि नहीं होती है तद्धित ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते परन्तु ऐच् आगम होता है।

न्यग्रोध में केवल **य्** का प्रसंग होने से **ऐ** आगम होता है।

उदा.—न्यग्रोधस्य विकारः—
न्यग्रोध अञ् (अनुदात्तादेरञ्)–
न् ऐ य ग्रोध अ–नैयग्रोधः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—'केवलस्य' अर्थात् **केवल** न्यग्रोध शब्द के आदि अच् को वृद्धि नहीं होती है—

न्यग्रोधमूले भवाः न्यग्रोधमूलाः
यहाँ ऐच् आगम न हुआ।

न कर्मव्यतिहारे 7.3.6

पद.—न-अव्य०, कर्मव्यतिहारे 7.1

अनु.—न ष्याभ्या पूर्वौ तु ताभ्याम् ऐच् तद्धितेषु अचाम् आदेः अचः ञ्णिति किति वृद्धिः अंगस्य।

अर्थ—कर्मव्यतिहार अर्थ में तद्धित ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते आदि अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश का निषेध नहीं होता है तथा यकार व वकार से पूर्व ऐच् आगम नहीं होता है।

तात्पर्य यह है कि **क्रिया का परस्पर करना** अर्थ में वृद्धि होती है तथा ऐच् आगम नहीं होता है।

उदा.—वि अव क्रुश् णच् (भावः कर्मव्यतिहार)-
व्यवक्रोश अञ् (णचः स्त्रियाम्)-
प्राप्त वृद्धि निषेध का प्रतिषेध होकर
व्यावक्रोश ङीप् सु-व्यावक्रोशी। (टिड्ढाऽण्०)।

स्वागतादीनां च 7.3.7

पद.—स्वागतादीनाम् 6.3, च-अव्य०।

अनु.—पूर्ववत्।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते स्वागत आदि अंगों के आदि अच् को वृद्धि का निषेध नहीं होता है तथा ऐच् आगम नहीं होता है।

पूर्ववत् वृद्धि आदेश होता है तथा ऐच् आगम नहीं होता है।

उदा.—(1) स्वागतम् इत्याह—
स्वागत ठक् (आहौ प्रभूतादिभ्यः)-
स्वागतिकः (सु)।

(2) स्वध्वरेण चरति-
स्वध्वर ठक् (चरति)-
स्वाध्वर इक-स्वाध्वरिकः।

श्वादेरिञि 7.3.8

पद.—श्वादेः 6.1, इञि 7.1

अनु.—पूर्ववत्।

अर्थ—इञ् प्रत्यय परे रहते श्व है आदि में जिसके ऐसे अंग के आदि अच् को वृद्धि का निषेध नहीं होता है तथा ऐच् का आगम नहीं होता है।

उदा.—श्व भस्त्रस्याऽपत्यम्-
श्वभस्त्र इञ् (अत इञ्)-
श्वाभस्त्र इ-श्वाभस्त्रिः।
इसी प्रकार-श्वादंष्ट्रिः।

विशेष—श्वागणिक आदि में इकारादि प्रत्यय होता है[1]—
श्वगणेन चरति-
श्वागणिकः
आदि अच् को वृद्धि हुई है।
श्व यूथेन चरति-
श्वायूथिकः।

पदान्तस्याऽन्यतरस्याम् 7.3.9

पद.—पदान्तस्य 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—श्वादेः न पूर्ववत्।

अर्थ—पद शब्द है अन्त में जिसके तथा श्व शब्द है आदि में जिसके ऐसे अंग को पूर्व कथित (आदि वृद्धि निषेध व ऐच् आगम) विकल्प से होता है।

तात्पर्य है कि आदि वृद्धि व ऐच् आगम दोनों का विकल्प होता है।

आदि वृद्धि के निषेध पक्ष में ऐच् आगम होता है।

उदा.—शुन इव पदं यस्य-श्वापदः
(शुनो दन्तदंष्ट्र०-वा० से दीर्घ)-
श्वापदस्येदम्-
श्वापद अणृ (तस्येदम्)-
श्, औ वापद अण् (वृद्धिनिषेध पक्ष)-
शौवापदम्।
(वृद्धि निषेध अभाव पक्ष में)
श्वापद अण्-श्वापदम्
(पर्जन्यवल्लक्षणात् वृद्धि)।

उत्तरपदस्य 7.3.10

पद.—उत्तरपदस्य 6.1

अर्थ—यह अधिकारसूत्र है जो पा० 7.3.32 तक चलता है।

---

1. काशि० 7.3.8 (वा०) इकारादिग्रहणं कर्त्तव्यं श्वागणिकाद्यर्थम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अर्थ है कि पा० 7.3.32 से पूर्व तक जो-जो कार्य विहित हों वे सभी उत्तरपद के स्थान पर होते हैं।

अवयवाद् ऋतोः 7.3.11

पद.—अवयवात् 5.1, ऋतोः 6.1

अनु.—अंगस्य उत्तरपदस्य वृद्धिः तद्धितेषु अचाम् आदेः अचः ञ्णिति किति।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते अवयववाची पूर्वपद से उत्तर ऋतुवाची उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदा.—(1) पूर्वं वर्षाणाम्–
पूर्ववर्ष (पूर्वापराधरोत्तर०)–
पूर्ववर्ष ठक् (तत्र भवः। वर्षाभ्यष्ठक्)–
पूर्ववार्षिक सु–पूर्ववार्षिकम्।

(2) पूर्व हेमन् अण्–
पूर्वहैमन सु–पूर्वहैमनम्।

विशेष—'अवयवात्' अर्थात् **अवयववाची** पूर्वपद से उत्तर ऋतु वाची उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है—
पूर्वासु वर्षासु भवम्–पौर्ववर्षिकम्।

सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य 7.3.12

पद.—सुसर्वार्द्धात् 5.1, जनपदस्य 6.1

अनु.—पूर्ववत्।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते सु, सर्व तथा अर्द्ध शब्दों से उत्तर जनपदवाची उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदा.—(1) सु पञ्चाल (कुगतिप्रादयः)–
सुपञ्चाले जातः (अवृद्धादपि०)–
सुपञ्चाल वुञ्–
सुपाञ्चालकः।

(2) सर्वपञ्चाल (पूर्वकालैकसर्व०)–
सर्वपञ्चाल वुञ् (पूर्ववत्)–
सर्वपाञ्चालकः।

(3) अर्धपञ्चाल (अर्धं नपुंसकम्)–
अर्धपाञ्चालकः।

दिशोऽमद्राणाम् 7.3.13

पद.—दिशः 5.1, अमद्राणाम् 6.3

अनु.—जनपदस्य, पूर्ववत्।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते दिशावाची शब्द से उत्तर जनपद वाची उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है परन्तु मद्र शब्द को न हो।

उदा.—(1) पूर्वेषु पञ्चालेषु भवः–
पूर्वपञ्चाल (तद्धितार्थोत्तर०)–
पूर्वपाञ्चालकः (वुञ्)।
इसी प्रकार—

(2) अपरपाञ्चालकः।

(3) दक्षिणपाञ्चालकः।

विशेष—'दिशः' अर्थात् **दिशावाची** शब्द से उत्तर शब्द को आदि वृद्धि होती है—

पूर्वः पञ्चालानाम्–पूर्वपञ्चालः, तत्र भवः–पूर्वपञ्चालकः

यहाँ दिशावाची शब्द नहीं है। अतः इससे उत्तर पञ्चाल शब्द को आदि वृद्धि न हुई।

2. 'अमद्राणाम्' अर्थात् **मद्र आदि** शब्दों को आदिवृद्धि नहीं होती है—
पूर्वमद्र अञ् (मद्रेभ्योऽञ्)–
पौर्वमद्रः
इसी प्रकार–
आपरमद्रः।

यहाँ पूर्वपद में दिशावाची शब्द है परन्तु इससे उत्तर 'मद्र' शब्द है। अतः उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि न हुई।

प्राचां ग्रामनगराणाम् 7.3.14

पद.—प्राचाम् 6.3, ग्रामनगराणाम् 6.3

अनु.—दिशः उत्तरपदस्य अंगस्य वृद्धिः तद्धितेषु अचाम् आदेः अचः ञ्णिति किति।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते दिशावाची शब्दों से उत्तर प्राच्यदेश में जो ग्राम व नगरवाची शब्द, उनके आदि अच् के स्थान पर वृद्धि होती है।

उदा.—(1) पूर्वेषुकामशम्यां भवः–
पूर्वेषुकामशमी ञ (दिक् पूर्व०)–
पूर्वेषुकामशमः।

(2) पूर्वस्मिन् पाटलिपुत्रे भवः–
पूर्वपाटलिपुत्र वुञ् (रोपधेतो—)–
पूर्वपाटलिपुत्रकः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च 7.3.15

पद.—संख्यायाः 5.1, संवत्सरसंख्यस्य 6.1, च–अव्य०।

अनु.—पूर्ववत्।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते संख्यावाची शब्द से उत्तर संवत्सर या संख्यावाची अंग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदा.—(1) द्वौ संवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वेति–
द्विसंवत्सर (तद्धितार्थोत्तरपद.)–
द्विसंवत्सर ठञ् (तमधीष्टो०)–
द्विसावंत्सरिकः।
इसी प्रकार—त्रिसांवत्सरिकः।

(2) द्वे षष्ठी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–
द्विषाष्ठीक; (पूर्ववत्)।
इसी प्रकार–
द्विसाप्ततिकः।

वर्षस्याऽभविष्यति 7.3.16

पद.—वर्षस्य 6.1, अभविष्यति 7.1

अनु.—संख्यायाः उत्तरपदस्य अंगस्य वृद्धिः तद्धितेष्वचामादेः किति अचः ञ्णिति।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते संख्या शब्द सें उत्तर वर्ष शब्द के आदि अच् को वृद्धि होती है यदि प्रत्यय भविष्यत् अर्थ में न हो।

उदा.—(1) द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा–
द्वि वर्ष–
द्विवार्षिकः।

(2) त्रीणि वर्षाणि भावी–

त्रिवर्ष यहाँ भविष्यत् अर्थ में प्रत्यय हुआ है। अतः उत्तरपद में आदिवृद्धि नहीं होती है।

त्रैवर्षिकम्।

परिमाणान्तस्याऽसंज्ञाशाणयोः 7.3.17

पद.—परिमाणान्तस्य 6.1, असंज्ञाशाणयोः 7.2

अनु.—पूर्ववत्।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते संख्यावाची शब्द से उत्तर परिमाणवाची शब्द है अन्त में जिससे ऐसे अंग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है यदि संज्ञा का विषय हो अथवा शाण शब्द उत्तरपद में हो तो वृद्धि आदेश नहीं होता है।

उदा.—(1) द्वौ कुडवौ प्रयोजनम् अस्य–
द्विकुडव (तद्धितार्थोत्तर०)–
द्विकुडव ठञ् (प्रयोजनम्)–
द्विकौडविकः।

(2) द्वि सुवर्ण–
द्वि सुवर्ण ठक् (तेन क्रीतम्)–
द्विसौवर्णिकम्।

(3) द्वि निष्क–
द्विनैष्किकम्।

जे प्रोष्ठपदानाम् 7.3.18

पद.—जे 7.1, प्रोष्ठपदानाम् 6.3

अनु.—उत्तरपदस्य अंगस्य वृद्धिः तद्धितेष्वचामादेः अचो ञ्णिति किति।

अर्थ—जात अर्थ में विहित तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय के परे रहते प्रोष्ठपद अंग से उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है।

'प्रोष्ठपदानाम्' इस बहुवचन निर्देश से प्रोष्ठपदा के पर्याय 'भद्रपदा' का भी ग्रहण होता है।

उदा.—(1) प्रोष्ठपदासु जातः
प्रोष्ठपदा अण् (नक्षत्रेण युक्तः कालः)–
प्रोष्ठपदा (लुबविशेषे)–
प्रोष्ठपदा अण् (तत्र जातः। सन्धि वेला०)–
प्रोष्ठपादः (सु)।

(2) भद्रपदासु जातः
भद्रपदा अण् (पूर्ववत्)–
भद्रपादः।

विशेष—'जे' अर्थात् **जात अर्थ में ही** 'प्रोष्ठपद' के उत्तरपद को आदि वृद्धि होती है—

प्रोष्ठपदासु भवः–प्रौष्ठपद;।

उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि न हुई।

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च 7.3.19

पद.—हृद्भगसिन्ध्वन्ते 7.1, पूर्वपदस्य 6.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य उत्तरपदस्य तद्धितेष्वचामादेः अचो ञ्णिति किति वृद्धिः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते हृद्, भग और सिन्धु शब्द हैं अन्त में जिसके ऐसे अंगों के पूर्वपद और उत्तरपद दोनों के आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदा.—(1) सुहृदयस्य भावः
सुहृदय ष्यञ् (गुणवचन०)–
सुहृद् य (वा शोक०)–
सौहार्द् य सु–सौहार्द्यम्।

(2) सुहृदयस्येदम्–
सुहृदय अण् (तस्येदम्)–
सुहृद् अ (हृदयस्य हृल्ले०)–
सौहार्द् अ सु–सौहार्दम्।

(3) सुभगस्य भावः–
सुभग ष्यञ्–
सौभाग्यम्।

(4) दुर्भग ष्यञ्–दौर्भाग्यम्।

(5) सुभगाया अपत्यम्–
सुभगा ढक् (कल्याण्यादी०)–
सौभागिनङ् एय–
सौभागिनेयः (भट्टि० 4.35)।

(6) दुर्भग ढक्।
दौर्भागिनेयः।

(7) सक्तुप्रधानाः सिन्धवः
सक्तुसिन्धवः (शाकपार्थिवादीनां०)–
सक्तुसिन्धुषु भवः–
सक्तुसिन्धु अण् (तत्र भवः)–
साक्तुसैन्धवः।

अनुशतिकादीनां च 7.3.20

पद.—अनुशतिकादीनाम् 6.3, च–अव्य०।

अनु.—पूर्वपदस्य उत्तरपदस्य अंगस्य वृद्धिः तद्धितेषु अचामादेः अचो ञ्णिति किति।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते अनुशतिक आदि अंगों के पूर्वपद तथा उत्तरपद दोनों के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है।

उदा.—(1) अनुशतिकस्येदम्–
अनुशतिक अण्–
आनुशातिकम्।

(2) अनुहोडेन चरति–
अनुहोड ठक्–
आनुहौडिकः।

(3) अनुसंवरणे दीयते–
(तत्र च दीयते० से भववत् अतिदेश। सामान्य अण्)
अनु संवरण अ–
आनुसांवरणम्।

(4) अनुसंवत्सर ठञ्–
(भववत् अतिदेश होकर 'बह्वचो०' से ठञ्)
आनुसांवत्सरिकः।

(5) सार्वलौकिकम् (भट्टि० 5.33)।

देवताद्वन्द्वे च 7.3.21

पद.—देवताद्वन्द्वे 7.1, च–अव्य०।

अनु.—पूर्वपदस्य उत्तरपदस्य अंगस्य वृद्धिः तद्धितष्वचामादेः अचो ञ्णिति किति।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते देवतावाची द्वन्द्व समास में पूर्वपद व उत्तरपद के आदि अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है।

उदा.—(1) अग्निश्च वरुणश्च–
अग्निवरुणौ–
अग्निवरुण अण् (साऽस्य देवता)–
आग्निवारुण ङीप् (इद् वृद्धौ)–
आग्निवारुणी।

(2) आग्नि मरुत अण्–आग्निमारुत–
आग्निमारुती (ङीप्)।

नेन्द्रस्य परस्य 7.3.22

पद.—न–अव्य०, इन्द्रस्य 6.1, परस्य 6.1

अनु.—देवताद्वन्द्वे कित तद्धितेष्वचामादेः अचो ञ्णिति अंगस्य वृद्धिः।

अर्थ—देवतावाची द्वन्द्व समास में उत्तरपदस्थ इन्द्र शब्द के आदि अच् को वृद्धि नहीं होती है।

उदा.—(1) सोमश्च इन्द्रश्च (चार्थे द्वन्द्वे)–अण्–
सोमाइन्द्र (देवताद्वन्द्वे च)–
सोमेन्द्र–सौमेन्द्रः (तद्धितष्वचामादेः)।

(2) अग्नि इन्द्र–
अग्नि इन्द्र अण् (साऽस्य देवता)–
अग्नानङ् इन्द्र अ–
आग्नेन्द्र–आग्नेन्द्रः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घाच्च वरुणस्य 7.3.23

पद.—दीर्घात् 5.1, च-अव्य०, वरुणस्य 6.1

अनु.—देवताद्वन्द्वे अचः ञ्णिति किति अंगस्य वृद्धिः अचाम् आदेः ।

अर्थ—देवतावाची शब्दों के द्वन्द्व समास में दीर्घान्त शब्द से उत्तर जो वरुण शब्द ऐसे अंग के आदि अच् को वृद्धि आदेश नहीं होता है, ञित्, णित् या कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते ।

उदा.—(1) इन्द्रवरुणौ-
इन्द्रवरुण अण्-

(देवताद्वन्द्वे च से प्राप्त वृद्धि का निषेध तथा तद्धितेष्वचामादेः से आदि वृद्धि, आनङ्)

ऐन्द्रावरुणम्

(2) मित्रवरुणौ-
मित्रानङ्वरुण अण्-
मैत्रावरुणम् ।

विशेष—'दीर्घात्' अर्थात् दीर्घान्त शब्द से उत्तर वरुण हो तो आदि अच् को वृद्धि होती है—

अग्निवरुणीम्

यहाँ 'अग्नि' शब्द को 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' के द्वारा प्राप्त आनङ् के अपवादभूत ईत्व आदेश का 'इद्वृद्धौ' से प्रतिषेध हो गया । 'इ' हो जाने से दीर्घ ईकार से परे वरुण नहीं रहता है ।

प्राचां नगरान्ते 7.3.24

पद.—प्राचाम् 6.3, नगरान्ते 7.1

अनु.—पूर्वपदस्य उत्तरपदस्य अंगस्य वृद्धिः अचः ञ्णिति किति तद्धितेष्वचामादेः ।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् परे रहते प्राच्यदेश में 'नगर' है अन्त में जिसके ऐसे अंग के पूर्वपद और उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है ।

उदा.—(1) सुह्मनगरे भवः-
सुह्मनगर अण्-
सौह्मनागर सु-सौह्मनागरः ।

(2) पुण्ड्रनगर अण्-
पौण्ड्रनागरः ।

जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् 7.3.25

पद.—जङ्गलधेनुवलजान्तस्य 6.1, विभाषितम् 1.1, उत्तरम् 1.1

अनु.—पूर्वपदस्य उत्तरपदस्य अंगस्य वृद्धिः तद्धितेष्वचामादेः अचः ञ्णिति किति ।

अर्थ—तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते जंगल, धेनु तथा वलज शब्द है अन्त में जिसके ऐसे अंगों के पूर्वपद के आदि अच् को वृद्धि होती है तथा उत्तरपद को विकल्प से वृद्धि होती है ।

उदा.—(1) कुरुजङ्गलेषु भवम्-
कुरुजङ्गल अण्-
कौरुजाङ्गलम् ।
पक्ष में—
कौरुजङ्गलम् ।

(2) विश्वधेनु अण्-
वैश्व धैनु अ-
वैश्वधैनो अ-
वैश्वधैनवम् (सु) ।
पक्ष में-
वैश्वधेनवम् ।

(3) सुवर्ण वलज अण्-
सौवर्ण वालज अ-
सौवर्णवालजः ।
पक्ष में-
सौवर्णवलजः ।

अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा 7.3.26

पद.—अर्धात् 5.1, परिमाणस्य 6.1, पूर्वस्य 6.1, तु-अव्य०, वा-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य उत्तरपदस्य वृद्धिः किति तद्धितेष्वचामादेः अचो ञ्णिति ।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते अर्ध शब्द से उत्तर परिमाणवाची उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है तथा पूर्वपद को विकल्प से वृद्धि होती है ।

उदा.—(1) अर्ध द्रोणेन क्रीतम्-
अर्ध द्रोण (अर्धं नपुँसकम्)-
अर्ध द्रोण ठञ् (तेन क्रीतम्)-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्धद्रौणिकम् ।
पक्ष में—
अर्धद्रौणिकम् ।

(2) अर्धकोडु–
अर्धकोडु ठञ्–
आर्धकौडविकम् ।
पक्ष में—
अर्धकौडविकम् ।

विशेष—'परिमाणस्य' अर्थात् **परिमाणवाची** उत्तर पद को आदिवृद्धि होती है—

अर्धक्रोशः प्रयोजनमस्याऽर्थ क्रोशिकम् यहाँ उत्तरपद को आदिवृद्धि न हुई ।

नातः परस्य 7.3.27

पद.—न-अव्य०, अतः 6.1, परस्य 6.1

अनु.—अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा अंगस्य उत्तरपदस्य तद्धितेष्वचामादेः अचः ञ्णिति किति वृद्धिः ।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते 'अर्ध' शब्द से परे परिमाणवाची उत्तरपद के अचों में आदि अच् जो अकार उसके स्थान पर वृद्धि आदेश नहीं होता है, तथा पूर्वपद को विकल्प से वृद्धि होती है ।

उदा.—(1) अर्ध प्रस्थेन क्रीतः–
अर्ध प्रस्थ ठञ् (तेन क्रीतम्)–
आर्ध प्रस्थ इक–
आर्धप्रस्थिकः (सु) ।
पक्ष में—
अर्धप्रस्थिकः ।

(2) अर्ध कंस ठञ् (पूर्ववत्)–
आर्धकंसिकः तथा
अर्धकंसिकः ।

विशेष—1. 'अतः' अर्थात् **ह्रस्व अकार** को आदि वृद्धि नहीं होती है—

आर्ध क्रौडिकः उत्तर पद में आदि अच् अकार नहीं है । अतः वृद्धि हो गई है ।

प्रवाहणस्य ढे 7.3.28

पद.—प्रवाहणस्य 6.1, ढे 7.1

अनु.—अंगस्य उत्तरपदस्य पूर्वस्य तु वा तद्धितेष्वचामादेः अचः वृद्धिः ।

अर्थ—तद्धित संज्ञक 'ढ' प्रत्यय परे रहते प्रवाहण अंग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है तथा पूर्वपद को विकल्प से वृद्धि होती है ।

उदा.—प्रवाहणस्याऽपत्यम्–
प्रवाहण ढक् (शुभादिभ्यश्च)–
प्रवाहण एय–
प्रावाहणेयः तथा–
प्रवाहणेयः ।

तत्प्रत्ययस्य च 7.3.29

पद.—तत्प्रत्ययस्य 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—प्रवाहणस्य अंगस्य वृद्धिः उत्तरपदस्य पूर्वस्य तु वा तद्धितेष्वचामादेः किति अचः ञ्णिति ।

अर्थ—सूत्रस्थ 'तत्' पद के द्वारा 'ढक्' प्रत्यय का ग्रहण होता है ।

तद्धित संज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण अंग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है तथा पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प से वृद्धि होती है ।

उदा.—(1) प्रवाहणेयस्याऽपत्यम्–
प्रवाहणेय ढक्प्रत्ययान्त शब्द है ।
प्रवाहणेय इञ् (अत इञ्)–
प्रावाहणेय इ–
प्रावाहणेयिः (सु) ।
पक्ष में—
प्रवाहणेयिः ।

(2) प्रवाहणेय वुञ् (गोत्रचरणाद् वुञ्)–
प्रावाहणेयकम्
पक्ष में—
प्रवाहणेयकम् ।

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् 7.3.30

पद.—नञः 5.1, शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् 6.3

अनु.—अंगस्य उत्तरपदस्य पूर्वस्य तु वा वृद्धिः तद्धितेष्वचामादेः अचः ञ्णिति किति ।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते नञ् से उत्तर शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण जो शब्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे अंग के उत्तरपद के आदि अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है तथा पूर्वपद के आदि अच् के स्थान पर विकल्प से वृद्धि आदेश होता है।

उदा.—(1) नाऽस्य शुचयो विद्यन्ते–
अशुचि अण् (इगन्ताच्च०)–
आ शौचि अ–
आशौच् अ सु–
आशौचम्।
पक्ष में—
अशौचम्।

(2) अनीश्वर (ब्राह्मणादिगणस्थ)–
अनीश्वर ष्यञ् (गुणवचन०)–
आनैश्वर्यम् (सु)।
पक्ष में—
अनैश्वर्यम्।

(3) अक्षेत्रज्ञ ष्यञ् (पूर्ववत्)–
आक्षैत्रज्ञ्यम्।
पक्ष में—
अक्षैत्रज्ञ्यम्।

(4) अकोशलस्येदम्–
अकोशल अण् (तस्येदम्)–
आकौशल सु–
आकौशलम्।
पक्ष में—
अकौशलम्।

(5) अनिपुण अण् (पूर्ववत्)–
आनैपुणम्।
पक्ष में–
अनैपुणम्।

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण 7.3.31

पद.—यथातथयथापुरयोः 6.2, पर्यायेण 3.1

अनु.—नञः पूर्वस्य उत्तरपदस्य किति तद्धितेष्वचामादेः अचः ञ्णिति अंगस्य वृद्धिः।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित् या कित् प्रत्यय परे रहते नञ् से उत्तर यथातथ तथा यथापुर अंगों के पूर्व पद व उत्तरपद के आदि अचों के स्थान पर पर्यायेण वृद्धि आदेश होता है।

पर्यायेण का अर्थ है—क्रमशः अर्थात् एकबार पूर्वपद को आदिवृद्धि होती है तथा दूसरे पक्ष में उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।

उदा.—(1) अयथातथ ष्यञ् (ब्राह्मणादिगणत्वात्)–
आयथातथ्यम् (पूर्वपद आदि वृद्धि)।
अयाथातथ्यम् (उत्तरपद आदि वृद्धि)।

(2) अयथापुर ष्यञ् (पूर्ववत्)–
आयथापुर्यम्।
अयाथापुर्यम्।

हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32

पद.—हनः 6.1, तः 1.1, अचिण्णलोः 7.2

अनु.—अंगस्य ञ्णिति।

अर्थ—चिण् व णल् को छोड़कर शेष ञित् या णित् प्रत्यय परे रहते हन् अंग को 'त' आदेश होता है।

तकार में अकार उच्चारणार्थ है। अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा तकार 'हन्' के अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर होता है।

उदा.—(1) हन् णिच्–
हत् इ–
घ त् इ (हो हन्ते०)–
घाति (अत उपधायाः। सनाद्यन्ता०)–
घाति शप् तिप्–घातयति।

(2) हन् ण्वुल्–
हत् अक (पूर्ववत्)–
घत् अक–घात् अक–
घातकः (सु)।

(3) हन् णमुल्–(आभीक्ष्ण्ये णमुल्)–
घात् अम् (पूर्ववत्)–
घातंघातम् (आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः–वा०)।

विशेष—'अचिण्णलोः' अर्थात् चिण् व णल् को छोड़कर हन् को तकारादेश होता है—

हन् लुङ् (कर्मणि)–
हन् च्लि ल्–हन् चिण्–
अ घन् इ–अघान् इ–अघानि।

चिण् परे होने से हन् को तकारादेश न हुआ।

हन् णल् (लिट्)–
घन् अ–घन् घन् अ–
घ घन् अ–झ घन् अ–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जघन् अ–जघान ।

णल् परे होने के कारण तकार आदेश न हुआ ।

आतो युक् चिण् कृतोः 7.3.33

पद.—आतः 6.1, युक् 1.1, चिण्कृतोः 7.2

अनु.—अंगस्य ञ्णिति ।

अर्थ—चिण् तथा ञित् णित् कृत् प्रत्यय परे रहते आकारान्त अंग को युक् आगम होता है ।

युक् के ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है ।

युक् के कित् होने से अन्त्य अवयव होता है ।

उदा.—(1) दा लुङ्–अट् दा चिण् (चिण्भाव०)–
अदा युक् इ–अदायि ।

(2) दा ण्वुल्–
दा अक–दा युक् अक–
दायकः (सु) ।

(3) दा घञ्–दा अ–
दा युक् अ–दायः ।

विशेष—'चिण् कृतोः' अर्थात् **चिण्** या ञित् णित् कृत् परे रहते 'युक्' होता है—

दा णल् आकारान्त अंग है परन्तु चिण् परे नहीं है । अतः युक् नहीं होता है—ददौ ।

चौडिः–'बाह्वादिभ्यश्च' से 'इञ्' प्रत्यय हुआ जो ञित् है परन्तु कृत् नहीं है । अतः युक् न हुआ ।

नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः 7.3.34

पद.—न–अव्य०, उदात्तोपदेशस्य 6.1, मान्तस्य 6.1, अनाचमेः 6.1

अनु.—अंगस्य चिण्कृतोः ञ्णिति वृद्धिः ।

अर्थ—उपदेश में जो उदात्त तथा मकारान्त जो धातु को वृद्धि आदेश नहीं होता है चिण् या ञित् णित् कृत् प्रत्यय परे रहते परन्तु आङ् पूर्वक चम् धातु को यह प्रतिषेध नहीं होता है। यहाँ 'अत उपधायाः' से उपधा को वृद्धि होती है । उसी का निषेध किया गया है परन्तु 'आचम्' अंग को वह वृद्धि होती है ।

उदा.—(1) शम् लुङ्–
अशम् च्लि–अशम् चिण्–
अशमि ।

तम् लुङ्–अतमि (पूर्ववत्) ।
दम्–अदमि (पूर्ववत्) ।

(2) शम् घञ्
शम् अ–शम सु–शमः ।
तम् घञ्–तमः ।
दम् घञ्–दमः ।

(3) शम् ण्वुल्–शमकः ।
तम्–तमकः ।
दम्–दमकः ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'उदात्तोपदेशस्य' अर्थात् **उपदेश में जो उदात्त** ऐसी धातु को वृद्धि नहीं होती है—

यम् ण्वुल्–
याम् अक–यामकः

यम् मकारान्त है परन्तु उदात्तोपदेश नहीं है । अतः णित् कृत् (ण्वुल) परे रहते वृद्धि का निषेध न हुआ ।

इसी प्रकार–रामकः ।

2. 'मान्तस्य' अर्थात् **मकारान्त जो** धातु उसे वृद्धि नहीं होती है—

पठ् ण्वुल्–पाठकः

पठ् उदात्तोपदेश है परन्तु मकारान्त नहीं है । अतः णित् कृत् परे रहते वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है ।

3. 'अनाचमेः' अर्थात् **आङ् पूर्वक चम् को छोड़कर** वृद्धि का प्रतिषेध होता है—

आचम् ण्वुल्–आचामकः ।

चम् से वृद्धि निषेध न हुआ ।

आचम्, कम् तथा वम्—इन को वृद्धि का निषेध नहीं होता है[1]—

आ चम् घञ्–आचामः ।
कम् घञ्–कामः ।
वम् घञ्–वामः ।

जनिवध्योश्च 7.3.35

पद.—जनिवध्योः 6.2, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य वृद्धिः न चिण् कृतोः ञ्णिति ।

1. काशि० 7.3.34 (वा०) अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—चिण् अथवा ञित् णित् कृत् परे रहते जन् व वध् अंगों को वृद्धि नहीं होती है।

पूर्ववत् 'अत उपधायाः' से प्राप्त वृद्धि का निषेध होता है।

यहाँ वध हिंसायाम् (भ्वा०) का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) जन् लुङ्–अजन् चिण्–
अजनि (भट्टि० 6.32)
वध लुङ्–अवध चिण्–
अवधि।
(2) जन् ण्वुल्–जनकः।
वध् ण्वुल्–वधकः।
(3) प्र जन् घञ्–
प्रजनः।
वध् घञ्–
वधः।

अर्तिह्वीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ 7.3.36

पद.—अर्तिह्वीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्याताम् 6.3, पुक् 1.1, णौ 7.1

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—'णि' परे रहते ऋ, ह्वी, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी तथा आकारान्त धातुओं को 'पुक्' आगम होता है।

पुक् के ककार की इत्संज्ञा होती है। उकार उच्चारणार्थ है।

कित् होने से पुक् अन्त्य अवयव होता है। ऋ गति-प्रापणयोः (भ्वा०पर०) तथा ऋ गतौ (जुहो० परस्मै०) दोनों का यहाँ ग्रहण होता है।

इसी प्रकार 'री' के द्वारा री गतिरेषणयोः तथा रीङ् श्रवणे (दिवा०आत्म०) दोनों का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) ऋ णिच्–
ऋ पुक् इ–अर्प् इ (पुगन्तलघू०)–
अर्पि शप् तिप्–अर्पयति। द्र० अर्पिपः (भट्टि० 15.16) णिच् लुङ्, म०पु० एक०।
(2) ह्वी णिच्–
ह्वी पुक् इ–ह्वेपि (गुण)–
ह्वेपयति पूर्ववत्। लृट् में—ह्वेपयिष्यति (भट्टि० 16.2)
(3) व्ली णिच्–
व्लेपयति (पूर्ववत्)।
(4) री णिच्–
रेपयति (पूर्ववत्)।
(5) क्नूय् णिच्–
क्नोपयति।
(लोपो व्योर्वलि)।
(6) क्ष्माय् णिच्–
क्ष्मापयति।
(7) दा णिच्–
दा पुक् इ–दापयति।
इसी प्रकार–धापयति।

शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् 7.3.37

पद.—शाच्छासाह्वाव्यावेपाम् 6.3, युक् 1.1

अनु.—अंगस्य णौ।

अर्थ—णि परे रहते शो, छो, षो, ह्वे, वे तथा पा–इन अंगों को 'युक्' आगम होता है। युक् के ककार की इत्संज्ञा है। उकार उच्चारणार्थ है।

कित् होने से 'युक्' अन्त्य अवयव होता है।

उदा.—(1) नि शो णिच्–
नि शा इ (आदेच उप०)–
नि शा युक् इ–
निशायि शप् तिप्–
निशाययति।
(2) अव छो णिच्–
अव छा इ–अव छा युक् इ–
अव तुक् छा य् इ (छे च)–
अवच्छाययति।
(3) अव षो–अव सो (धात्वादेः षः—)
अव सो णिच्–अव सा युक् इ–
अवसाययति।
(4) ह्वे णिच्–ह्वा इ–
ह्वाय् इ–ह्वाययति।
(5) सम् व्ये णिच्–
सम् व्या युक् इ–सम् व्याययति–
संव्याययति।
(6) वे णिच्–वा इ–वा युक् इ–
वाययति।
(7) पा णिच्–
पाययति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी धातु आकारान्त बन जाते हैं। अतः पुक् प्राप्त होता है। निषेध होकर युक् हो जाता है।

सूत्रस्थ 'पा' के द्वारा 'पा पाने' तथा 'पै ओवै शोषणे' का ग्रहण होता है। 'पा रक्षणे' (अदा०) में विकरण का लुक् होता है। अतः इसका ग्रहण यहाँ नहीं होता है।

विशेष—1. रक्षणार्थक 'पा' धातु को 'लुक्' का आगम होता है 'णि' परे रहते[1]—

पा णि–पा लुक् इ–
पा लि शप् ति–पालयति।

2. 'णि' परे रहते 'धू' तथा 'प्री' धातुओं को 'नुक्' आगम होता है[2]—

धू णि–धू नुक् इ–
धूनयति।
प्री णि–प्री नुक् इ–प्रीणयति।

वो विधूनने जुक् 7.3.38

पद.—वः 6.1, विधूनने 7.1, जुक् 1.1

अनु.—णौ अंगस्य।

अर्थ—'विधूनन' अर्थ में 'वा' धातु को 'जुक्' आगम होता है 'णि' परे रहते।

उदा.—उप वा णिच्–उप वा जुक् इ–
उपवाजयति।

यहाँ 'पुक्' प्राप्त था।

विशेष—'विधूनने' अर्थात् **विधूनन** अर्थ में ही 'जुक्' आगम होता है—

आवापयति केशान्

यहाँ 'कम्पाना' अर्थ नहीं है। अतः 'जुक्' न हुआ।

लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने 7.3.39

पद.—लीलोः 6.2, नुग्लुकौ 1.2, अन्यतरस्याम् 7.1, स्नेहविपातने 7.1

अनु.—अंगस्य णौ।

अर्थ—स्नेहादि द्रव्य को पिघलाने अर्थ में 'णि' परे रहते 'ली' तथा 'ला' अंगों को यथासंख्य करके 'नुक्' तथा 'लुक्' आगम विकल्प से होते हैं।

उदा.—(1) वि ली णिच्–वि ली नुक् इ–
विलीनयति (घृतम्)।
पक्ष में–
वि ली णिच्–
वि लै इ–वि ला य् इ–
विलाययति।

(2) वि ला णिच्–वि ला लुक् इ–
विलालयति।

पक्ष में—

वि ला पुक् इ (लुक् अभाव पक्ष में पुक् हो गया)–
विलापयति।

विशेष—1. 'स्नेहविपातने' अर्थात् **द्रव्य को पिघलाने** अर्थ में ही नुक् व लुक् आगम होते हैं—

जतु विलापयति तथा जटाभिरालापयते यहाँ स्नेह का पिघलाना अर्थ नहीं है। अतः नुक् अथवा लुक् नहीं होते हैं।

2. 'ली' यहाँ ईकार प्रश्लिष्ट निर्दिष्ट है। इसका तात्पर्य है कि ईकारान्त 'ली' को ही 'नुक्' होता है।

'विभाषा लीयतेः' के द्वारा 'ली' को विकल्प से आत्व होता है। जिस पक्ष में आत्व होता है उस पक्ष में 'ली' धातु से 'नुक्' नहीं होगा। वहाँ विकल्प से लुक् ही होता है।

3. 'ला' के द्वारा आत्व आदेश प्राप्त 'ली' धातु तथा 'ला' आदाने–दोनों धातुओं का ग्रहण होता है।

भियो हेतुभये षुक् 7.3.40

पद.—भियः 6.1, हेतुभये 7.1, षुक् 1.1

अनु.—अंगस्य णौ।

अर्थ—'हेतुभय' अर्थ में 'णि' परे रहते 'भी' अंग को 'षुक्' आगम होता है। स्वतन्त्र कर्त्ता के प्रयोजक को **हेतु** कहते हैं। उससे होने वाला भय **हेतुभय** कहलाता है।

'भी' इसमें पूर्ववत् ईकार का प्रश्लेष माना जाता है। तब अर्थ होता है कि ईकारान्त 'भी' धातु से ही 'षुक्' होता है।

उदा.—भी णिच्–भी षुक् इ–

भीष् इ शप् त–भीषयते। द्र अभीषयत (भट्टि० 17.81)। भीषयमाणम् (भट्टि० 5.58)।

आत्व पक्ष (बिभेतेर्हेतुभये) में पुक् ही होता है—

भापयते।

1. काशि० 7.3.37 (वा०) लुगागमस्तु तस्य वक्तव्यम्।
2. काशि० 7.3.37 (वा०) धूञ्प्रीभ्योर्नुग्वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—'हेतुभये' अर्थात् **हेतुभय** अर्थ में ही 'षुक्' होता है—

कुञ्चिकयैनं भाययति

यहाँ हेतुभय नहीं है। अतः षुक् न हुआ।

स्फायो वः 7.3.41

पद.—स्फायः 6.1, वः 1.1

अनु.—अंगस्य णौ।

अर्थ—'णि' परे रहते 'स्फाय्' अंग को वकारादेश होता है।

उदा.—स्फाय् णि-स्फाव् इ-

स्फावयति। अपिस्फवत् (भट्टि० 4.33) णिच् लुङ् तथा अस्फावयताम् (भट्टि० 17.43) स्फावयन् (भट्टि० 12.76)।

शदेरगतौ तः 7.3.42

पद.—शदेः 6.1, अगतौ 7.1, तः 1.1

अनु.—अंगस्य, णौ।

अर्थ—'अगति' अर्थ में 'णि' परे रहते 'शद्' अंग को तकारादेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् (दकार) के स्थान पर तकार आदेश होता है।

उदा.—शद् णिच् शत् इ-
शात् इ-शातयति।

पुष्पाणि शातयति (=फूलों को तुड़वाता है या तुड़वाती है)। यहाँ 'गति' अर्थ नहीं है।

इसी प्रकार—अशीशतत् (लङ्)।

विशेष—'अगतौ' अर्थात् **गति अर्थ से अतिरिक्त** अर्थ में ही तकार आदेश होता है—

गाः शादयति गोपालकः (=ग्वाला गायों को दौड़ाता है)-

यहाँ गति अर्थ है। अतः तकार आदेश न हुआ।

रुहः पोऽन्यतरस्याम् 7.3.43

पद.—रुहः 6.1, पः 1.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य णौ।

अर्थ—'णि' परे रहते 'रुह्' अंग को विकल्प से 'प' आदेश होता है।

'प' में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—रुह् णिच्-रुप् इ-
रोपयति।
पक्ष में—रोहयति।

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याऽत इदाप्यसुपः 7.3.44

पद.—प्रत्ययस्थात् 5.1, कात् 5.1, पूर्वस्य 6.1, अतः 6.1, इत् 1.1, आपि 7.1, असुपः 5.1

अर्थ—सुप् से उत्तर नहीं है जो 'आप्' (टाप्, डाप्, चाप्) ऐसे 'आप्' के परे रहते प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार आदेश होता है।

'आप्' के द्वारा टाप्, डाप्, चाप् इन स्त्रीप्रत्ययों का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) कृ ण्वुल्-कारक टाप्-
कारिका सु-कारिका।

'कारक' में रेफोत्तर ह्रस्व अकार प्रत्यय का है तथा ककार से पूर्व है। 'आप्' परे रहते ह्रस्व अकार को इकार हुआ।

(2) मुण्डा क (प्रागिवात्कः)-
मुण्ड क (केऽणः)-
मुण्डक टाप्-मुण्डिका सु-
मुण्डिका।

(3) एतद् (अव्ययसर्वना०)-
एत क च् टाप्-एतिका द्र० एकिकाम् (भट्टि० 6.7)।

विशेष—(क) सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'कात्' अर्थात् **ककार से पर** 'आप्' हो तो इकार आदेश होता है—

मण्डन टाप् यहाँ 'आप्' परे है, प्रत्यय का ह्रस्व अकार (डकारोत्तरवर्त्ती) भी परन्तु 'आप्' ककार से पर नहीं है। अतः ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार नहीं होता है—

मण्डना।

2. 'पूर्वस्य' अर्थात् **पूर्व के** अकार को इकार होता है—

पटु क-पटुक टाप् यहाँ प्रत्यय में स्थित ककार है इससे पर 'आप्' है। ककार से पूर्व अकार नहीं है। अतः इकार आदेश नहीं होता है—

पटुका।

3. 'अतः' अर्थात् **अकार** के स्थान पर ही इकार होता है—गौक टाप्-गौका।

सभी शर्तें पूरी हैं परन्तु ककार से पूर्व अवर्ण नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः इकार न हुआ। 'अत्' में तपर ग्रहण के कारण ह्रस्व अकार के स्थान पर ही इकार होता है—

रा क–राक टाप्–राका

यहाँ प्रत्यय का ककार है। इससे परे 'आप्' है परन्तु ककार से पूर्व ह्रस्व अकार नहीं है। अतः इकार नहीं होता है।

4. 'आपि' अर्थात् **'आप्'** परे रहते ही इकार होता है—

कारक सु–कारकः

यहाँ सभी शर्तें पूरी है परन्तु 'आप्' परे न होने से इकार आदेश न हुआ।

5. 'असुपः' अर्थात् **सुप् से उत्तर न हो** ऐसे 'आप्' के परे रहते ही इकार आदेश होता है—

बहवः परिव्राजका अस्यां मथुरायां सा—इस विग्रह की दशा में 'आप्' प्रत्यय सुबन्त परिव्राजक से परे होता है। अतः ह्रस्व अकार (जकारोत्तरवर्त्ती) के स्थान पर इकार आदेश नहीं होता है— बहुपरिव्राजका मथुरा।

6. 'प्रत्ययस्थ–अर्थात् **प्रत्यय में स्थित** ककार हो तभी अकार को इकार होता है—

शक्नोतीति शका

यहाँ ककार से परे 'आप्' है। इससे पूर्व ह्रस्व अकार है परन्तु ककार प्रत्यय में स्थित नहीं है अपितु धातु का अवयव है।

(ख) मामक और नरक में भी ह्रस्व अकार को इकार होता है[1]— मम इयम्–
मामक टाप्–मामिका।
नरकस्य इयम्–
नारिका।

(ग) प्रत्यय के निषेध में त्यक् और त्यप् का ही निषेध जानना चाहिए[2]—

दक्षिणस्यां दिशि भवा–दाक्षिणात्यिका यहाँ 'दक्षिणापश्चात् पुरुषस्त्यक्' से त्यक् हुआ। तब टाप् हुआ।

इसी प्रकार इह भवा इहत्यिका में त्यप् (अव्ययात् त्यप्) होकर रूप बनता है।

1. काशि० 7.3.44 (वा०) मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात्।
2. काशि० 7.3.44 (वा०) प्रत्ययनिषेधे त्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम्।

न यासयोः 7.3.45

पद.—न–अव्य०, यासयोः 6.2

अनु.—प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य अतः इत् आपि असुपः।

अर्थ—सुप् से उत्तर नहीं है जो 'आप्' ऐसे 'आप्' के परे रहते प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व 'या' तथा 'सा' के ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार आदेश नहीं होता है।

उदा.—(1) यद् (स्त्रीत्व)–य अ (त्यदादीनामः)–
य टाप्–य् अकच् आ (अव्ययसर्व०)–
यक आ–यका
यहाँ इकार न हुआ।

(2) तद् टाप्–त अ आ–स अ आ–
स आ–सक आ–सका।

विशेष—1. या तथा सा के विषय में 'त्यकन्' का भी निषेध होता है[3]—

उपत्यका (उपाधिभ्यां त्यकन्नासः०) यहाँ 'त्यकन्' हुआ। इकार आदेश न हुआ। इसी प्रकार–

अधित्यका में इकार न हुआ।

2. वेद के विषय में 'पावक' आदि शब्दों में इकार आदेश नहीं होता है[4]—

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः (शौ०सं० 1.33.1)

यासु आलोमकाः

'पावक' तथा 'आलोमक' में इकार आदेश नहीं हुआ।

लोक में 'पाविका' आदि बनता है।

3. आशीर्वाद अर्थ में इकार नहीं होता है[5]—

जीवताद्–जीवका।
नदन्ताद्–नन्दका।

4. उत्तरपद के लोप में इकारादेश नहीं होता है[6]—

देवदत्तिका (इकार आदेश)।

देवका–अनजादौ च विभाषा० के द्वारा उत्तरपद लोप होता है। तब इकारादेश नहीं होता है।

3. महा० 7.3.45 (वा०) यासयोरित्त्व प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम्।
4. महा० 7.3.45 (वा०) पावकादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्।
5. महा० 7.3.45 (वा०) आशिषि चोपसंख्यानम्।
6. महा० 7.3.45 (वा०) उत्तरपदलोपेचोपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार—यज्ञदत्तिका (इकारादेश)।

यज्ञका (उत्तरपदलोप की दशा में इकार आदेश न हुआ)।

5. 'क्षिपका' आदि शब्दों के अकार को इकार नहीं होता है[1]—

क्षिपक टाप्–क्षिपका।

ध्रुवक टाप्–ध्रुवका।

6. ज्योतिष् के विषय में 'तारका' शब्द में इकार आदेश नहीं होता है[2]—

तारक टाप्–तारका।

7. तन्तु विकार अर्थमें 'वर्णका' शब्द में इकार आदेश नहीं होता है[3]—

वर्णक टाप्–वर्णका (=एक आच्छादन वस्त्र)। अन्यत्र इकार होता है—

वर्णिका (=वर्णन करने वाली)।

8. प्राग्देशिय विद्वानों के मत में 'पक्षी' अर्थ में 'वर्त्तका' शब्द में इकार नहीं होता है[4]—

वर्त्तक टाप्–वर्त्तका (=बत्तख)।

अन्यत्र 'वर्त्तिका' होता है।

9. पितृदैवत्य नामक वैदिक कार्य विशेष में 'अष्टका' शब्द में इकार नहीं होता है[5]—

अष्टक टाप्–अष्टका।

10. सूतका, पुत्रका तथा वृन्दारका शब्दों में इकार आदेश विकल्प से होता है[6]—

सूतका, सूतिका।
पुत्रका, पुत्रिका।
वृन्दारका, वृन्दारिका।

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः 7.3.46

पद.—उदीचाम् 6.3, आतः 6.1, स्थाने 7.1, यकपूर्वायाः 6.1

अनु.—न प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य अतः इद् आपि असुपः।

अर्थ—यकार तथा ककार पूर्व में है जिस आकार के ऐसे आकार के स्थान पर जो अकार आदेश होता है, प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व उस अकार के स्थान पर उदीच्य विद्वानों के मत में इकार आदेश नहीं होता है, 'आप्' परे रहते। यदि वह 'आप्' प्रत्यय 'सुप्' से उत्तर न हो।

उदा.—(1) इभ्या क (ह्रस्वे)–

इभ्यक (केऽणः)–
इभ्यक टाप्–इभ्यका।
इभ्यिका (पाणिनि मते)।
क्षत्रिया क–
क्षत्रियक टाप्–
क्षत्रियका।
पक्ष में—
क्षत्रियिका।

(2) चटका क–

चटकक (पूर्ववत्)–
चटकका।
चटकिका (पक्ष में)।
मूषिका क–
मूषिकक–
मूषिकका।
मूषिकिका (पक्ष में)।

विशेष—'यकपूर्वायाः' अर्थात् **यकार** अथवा **ककार** पूर्व में है जिसके ऐसी दशा में ही इकार का निषेध होता है—

अश्वा, अश्विका।

यहाँ 'अश्वा क' इस दशा में आकार के स्थान पर अकार हुआ है परन्तु न तो उससे पूर्व यकार है और न ही ककार है। अतः इकार का निषेध न हुआ।

2. 'य' तथा 'क' जिसके पूर्व में है ऐसे धात्वन्त के विषय में इकार नहीं होता है[7]—

सुनयिका यहाँ इकार हुआ है।

णी–नी अच् (एरच्)–
नयः।
शोभनो नयोऽस्याः सा–सुनया।

---

1. महा० 7.3.45 (वा०) छिपकादीनां चोपसंख्यानम्।
2. महा० 7.3.45 (वा०) तारका ज्योतिष्युपसंख्यानम्।
3. महा० 7.3.45 (वा०) वर्णकातान्तव उपसंख्यानम्।
4. महा० 7.3.45 (वा०) वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसंख्यानम्।
5. महा० 7.3.45 (वा०) अष्टका पितृदैवत्य उपसंख्यानम्।
6. महा० 7.3.45 (वा०) वा सूतकापुत्रका वृन्दारकाणामुपसंख्यानम्।
7. महा० 7.3.46 (वा०) यकपूर्वे धात्वन्तप्रतिषेधः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनया क–सुनयक टाप्–सुनयिका ।

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि 7.3.47

पद.—भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वाः 1.3, (षष्ठ्यर्थे प्रथमा), नञ्-पूर्वाणाम् 6.3, अपि–अव्य० ।

अनु.—न उदीचाम् आतः स्थाने प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य अतः इत् आपि असुपः ।

अर्थ—भस्त्रा, एषा, अजा, ज्ञा, द्वा तथा स्वा—ये शब्द नञ् पूर्व वाले अथवा अनञ् पूर्व वाले हों, और इनके आकार के स्थान पर अकार आदेश हुआ हो तो प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व उस (आदेश प्राप्त) अकार को इकार आदेश उदीच्य आचार्यों के मत में इकार आदेश नहीं होता है 'आप्' परे रहते । यदि वह 'आप्' किसी 'सुप्' से परे न हो ।

उदा.—(1) भस्त्रा क–भस्त्रक टाप्–
भस्त्रिका ।
पक्ष में—भस्त्रका ।
(नञ्पूर्वक पक्ष)–
अभस्त्रका, अभस्त्रिका ।
(2) एषा क–एषक टाप्–
एषका ।
एषिका ।
(3) अजा–
अजका (उदीच्य) ।
अजिका (पाणिनीय) ।
(नञ्पूर्वक)–
अनजका ।
अनजिका ।
(4) ज्ञा–
ज्ञका । पक्ष में—ज्ञिका ।
इसी प्रकार—
अज्ञका, अज्ञिका ।
(5) द्वा–
द्वके । पक्ष में—द्विके ।
स्वा–
स्वका । पक्ष में—स्विका ।
इसी प्रकार—
अस्वका, अस्विका ।

अभाषितपुंस्काच्च 7.3.48

पद.—अभाषितपुंस्कात् 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—न नञ्पूर्वाणाम् अपि उदीचाम् आतः स्थाने प्रत्यय-स्थात् कात् पूर्वस्य अतः इत् आपि असुपः ।

अर्थ—नञ् पूर्व में है अथवा नहीं है ऐसे अभाषितपुंस्क शब्द के आकार के स्थान में अकार आदेश हो तो प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व उस (आदेश प्राप्त) अकार के स्थान पर उदीच्य आचार्यों के मत में इकार आदेश नहीं होता है 'आप्' परे रहते, यदि वह 'आप्' किसी 'सुप्' से परे न हो ।

उदा.—(1) खट्वा क–खट्वक–
खट्वक टाप्–खट्वका ।
पक्ष में—
खट्विका ।
नञ् पक्ष में—
अखट्वका ।
अखट्विका ।

आदाचार्याणाम् 7.3.49

पद.—आत् 1.1, आचार्याणाम् 6.3

अनु.—अभाषित पुंस्कात् नञ्पूर्वाणामपि प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य आतः स्थाने अतः आपि असुपः ।

अर्थ—नञ् पूर्व में है अथवा नहीं है ऐसे अभाषितपुंस्क शब्द के आकार के स्थान में अकार आदेश हो तो प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व उस (आदेशभूत) अकार के स्थान में उदीच्य आचार्यों के मत में आकार, आदेश होता है 'आप्' परे रहते यदि वह 'आप्' किसी 'सुप्' से परे न हो ।

उदा.—खट्वा क–खट्वक–
खट्वक टाप्–खट्वाका ।
(नञ् पक्ष में)–
अखट्वका ।

ठस्येकः 7.3.50

पद.—ठस्य 6.1, इकः 1.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ–अंग से पर 'ठ्' के स्थान पर 'इक' आदेश होता है ।

'इक' यह अदन्त आदेश है ।

ठक्, ठञ् आदि प्रत्ययों के अन्त्य हल् की इत्संज्ञा के विषय में कोई विवाद नहीं है परन्तु इनके अकार के विषय में महाभाष्य में दो पक्ष हैं—

(क) वर्ण पक्ष—इसके अनुसार ठकारोत्तरवर्त्ती अकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारणार्थ है। इस पक्ष में प्रकृतसूत्र के द्वारा 'ठ्' को 'इक' आदेश होता है। सूत्रस्थ 'ठस्य' पद के ठकार में भी अकार उच्चारणार्थ माना जायेगा।

(ख) संघातपक्ष—इसके अनुसार 'ठ' प्रत्यय सस्वर है। इस पक्ष में प्रकृतसूत्र के द्वारा होने वाला 'इक' आदेश अकारयुक्त ठकार (अर्थात् 'ठ') के स्थान पर होता है। दोनों पक्ष उचित हैं। द्र० महा० 7.3.50।

उदा.—(1) रेवत्या अपत्यम्–
रेवती ठक्–
(स्त्रीभ्यो ढक्। रेवत्यादिभ्यष्ठक्)
रेवती ठ्–रेवती इक–
(स्थानिवद् भाव से 'इक' कित् हुआ)
रैवती इक
(किति च)
रैवत् इक–
(भसंज्ञा। यस्येति च)
रैवतिकः (सु)।

(2) लवण ठञ्–
(लवणाट् ठञ्)
लावणिकः।

इसुसुक्तान्तात् कः 7.3.51

पद.—इसुसुक्तान्तात् 5.1, कः 1.1

अनु.—अंगस्य ठस्य।

अर्थ—इस्, उस्, उक् प्रत्याहार तथा त्—ये हैं अन्त में जिसके ऐसे अंग से उत्तर 'ठ्' के स्थान पर 'क' आदेश होता है। यहाँ इस् तथा उस् प्रतिपदोक्त गृहीत हैं न कि लाक्षणिक।

सर्पिष् में 'इस्' तथा 'धनुष्' में 'उस्' औणादिक प्रत्ययों द्वारा हैं। अतः ये प्रतिपदोक्त हैं। यहाँ षत्व के असिद्ध होने के कारण ये 'इस्' तथा 'उस्' ही माने जायेंगे।

आशिस्–आशिष् शब्द में 'इस्' लाक्षणिक है। अतः इसके विषय में प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है (द्र० आशिषा चरतीति–आशिषिकः)।[1]

उक् प्रत्याहार–उ, ऋ, ऌ।

उदा.—(1) सर्पिः पण्यम् अस्य–
सर्पिष् ठक्–
(तदस्य पण्यम्)
सर्पिष् ठ्–सार्पिष् क–
(षत्व के असिद्ध होने से सकार को रुत्व आदि। 'किति च' से आदि वृद्धि)
सार्पिरु क–सार्पिः क–
सार्पिष्क–
(इणः षः)
सार्पिष्कः।

(2) धनुः प्रहरणम् अस्य–
धनुष् ठक्–
(प्रहरणम्)
धानुष् ठ्–धानुष् क–
धानुः क–धानुष्कः (पूर्ववत्)।
इसी प्रकार–
याजुष्कः।

(3) सक्तूनां समूहः–
सक्तु ठक्–
(अचित्त हस्ति धेनोष्ठक्)
सक्तु ठ्–साक्तु ठ्–
(किति च)
साक्तु क–
(ठस्येकः। इसुसुक्तान्ता०)
साक्तुकम् (सु)।
इसी प्रकार–
निषादकर्षू ठञ्–
(आर्देशे ठञ्। केऽणः)
निषादकर्षु ठ्–निषादकर्षु क–
नैषादकर्षुकः (किति च। सु)। द्र० औपजानुकौ (भट्टि० 4.25)
उप जानु ठक्–
औपजानुक औ–
औपजानुकौ।
मातृ ठञ्–
(ऋ तष्ठ ञ्)
मातृकम्।
इसी प्रकार–
पितृ ठञ्–पैतृकम् (भट्टि० 3.52)

(4) उदश्वित् ठक्–
(संसृष्टे)
औदश्वित् ठ्–औदश्वित् क–

1. काशि० 7.3.51

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औदश्वित्कः ।
इसी प्रकार–
शाकृत्कः ।
याकृत्कः ।

अन्य उदा.—भवत्या इदम्–
भावत्कम् (भट्टि० 5.69)
'ठक् छसोश्चोय०' से पुँवद्भाव ।

विशेष—'दोष्' से परे 'ठ' को 'क' होता है[1]—
दोर्भ्यां चरति–
दोष् ठक्–दोष् ठ्–
दौष् ठ्–दौष् क–दौष्कः ।

चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52

पद.—चजोः 6.2, कु 1.1, घिण्ण्यतोः 7.2

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—घित् या ण्यत् परे रहते चकार और जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है । चकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

यहाँ दो निमित्त (घित् और णित्) हैं तथा दो ही कार्यी (चकार, जकार) हैं, तदपि यथासंख्य नियम प्रवृत्त नहीं होता है।

'स्थानेऽन्तरतमः' के द्वारा चकार के स्थान पर ककार तथा जकार के स्थान पर गकार होता है ।

घित्–घकार जिसका इत् है ।

उदा.—(1) पच् घञ्–पच् अ–
पाच् अ–पाक् अ–
पाक सु–पाकः ।
त्यज् घञ्–त्याज् अ–
त्याग् अ–त्यागः ।

(2) पच् ण्यत्–पाच् य–
पाक् य–पाक्यम् (सु) ।
मृज् ण्यत्–
(ऋहलोर्ण्यत्)
मार्ज् य–
(मृजेर्वृद्धिः)–
मार्ग् य सु–मार्ग्यः ।

1. 7.3.51 (वा०) दोष उपसंख्यानम् ।

न्यङ्क्वादीनां च 7.3.53

पद.—न्यङ्क्वादीनाम् 6.3, च–अव्य० ।

अनु.—चजोः कु ।

अर्थ—न्यङ्कु आदि शब्दों के चकार या जकार को कवर्ग आदेश होता है ।

उदा.—(1) नि अञ्च् उ–
(नावञ्चेः)
नि अञ् क् उ–
नि अंकु–न्यङ्कुः । (रघु० 13.15)

(2) मस्ज् उ–
(भृमृशी०)
मद् ज् उ–
(झलां जश् झशि)
मद् ग् उ–मद्गुः ।

(3) भ्रस्ज् उ–
(प्रथिभ्रदि० उणा०)
भृस्ज् उ–
भृज् उ (स लोप)–
भृग् उ–भृगुः ।

हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54

पद.—हः 6.1, हन्तेः 6.1, ञ्णिन्नेषु 7.3

अनु.—अंगस्य कु ।

अर्थ—ञित्, णित् अथवा नकार परे रहते 'हन्' अंग के हकार को कवर्ग आदेश होता है ।

'स्थानेऽन्तरतमः' के द्वारा हकार के स्थान पर घकार होता है ।

उदा.—(1) हन् घञ्–हन् अ–
हत् अ (हनस्तोऽचि०)–
घत् अ–घात् अ–घातः (सु) ।

(2) हन् णिच्–हत् इ–
घत् इ–घात् इ–
घाति शप् तिप्–घातयति ।
हन् ण्वुल्–
घातकः ।
समूल हन् णमुल्–समूल हन् अम्–समूल घत् अम्–समूलघातम् (भट्टि० 1.2)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) वृत्रहन् शस्-वृत्रहन् अस्-

(एकाजुत्तरपदे णः के असिद्ध होने से अल्लोपोऽनः से अकार लोप)

वृत्र हन् अस्-वृत्रघ्न् अस्-

वृत्रघ्नः। द्र० शत्रुघ्नान् (भट्टि० 6.113) हस्तिघ्नः (भट्टि० 6.113) हन् झि (लट्)-हन् शप् झि-

हन् झि-हन् अन्ति-

(अदिप्रभृतिभ्यः शपः। झोऽन्तः)

हन् अन्ति-

(गमहनजन०)

घ्न् अन्ति-घ्नन्ति।

इसी प्रकार—हन् झि (लङ्)-

अघ्नन्।

हन् झि (लोट्)-

घ्नन्तु।

(एरुः)।

विशेष—1. 'हः' अर्थात् **हकार के स्थान पर** कवर्ग आदेश होता है। यदि ऐसा न कहते तो अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा आदेश अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर प्राप्त हो जाता।

2. 'हन्तेः' अर्थात् **हन् धातु के** हकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है—

प्र ह ण्वल्-

णित् प्रत्यय परे है परन्तु 'ह' धातु है अतः इसके हकार को कवर्गादेश नहीं होगा। प्रहारः।

अभ्यासाच्च 7.3.55

पद.—अभ्यासात् 5.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य हन्तेः हः कु।

अर्थ—अभ्यास से पर हन् धातु के हकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

उदा.—(1) हन् सन्-हन् स-

(धातोः कर्मणः समान०)

हन् हन् स-हहन् स-

(सन्यङोः। हलादिः शेषः)

झहन् स-जहन् स-

(कुहोश्चु। अभ्यासे चर्च)

जघन् स-जघान् स-

(अभ्यासाच्च। अज्झनगमां०)

जिघान् स-जिघांस-

(सन्यतः। नश्चाऽप०)

जिघांस शप् ति-जिघांसति। द्र० जिघांसू (भट्टि० 6.28)। जिघांसौ (भट्टि० 1.26)।

(2) हन् यङ्-हन् य-

(धातो रेकाचो हलादेः०)

झ हन् य-ज हन् य

(अभ्यासकार्य)

जन् हन् य-

(नुगतोऽनुना०)

जन् घन् य-जंघन् य-जङ्घन्य-जङ्घन्यते।

(3) लिट् लकार में अभ्यास प्राप्त होता है। अतः यहाँ हन् के लिट् के रूप दिखाये जा रहे हैं—

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
म०पु०	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उ०पु०	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

(जघान, जघ्नतुः, जघ्नुः में 'हो हन्ते०' के द्वारा कवर्ग आदेश हुआ है)।

हन् थल्-

(अनुदात्त धातु होने से इट् निषेध, क्रादि नियम से इट् की प्राप्ति, 'उपदेशेऽत्वतः' से इट् का निषेध, भारद्वाज नियम से वैकल्पिक इट्)

जहन् थ (द्वित्वादि)

जघन् थ-जघनिथ।

पक्ष में—जघन्थ।

(जघ्नथुः तथा जघ्न में हो हन्ते० से कवर्ग आदेश होता है)।

उ०पु० एक० में 'णलुत्तमो वा' से 'णल्' विकल्प से णिद्वत् होता है। णिद्वत् पक्ष में 'हो हन्ते०' से तथा अभाव पक्ष में प्रकृतसूत्र के द्वारा कवर्ग आदेश होता है—

जघान, जघन।

(जघ्निव और जघ्निम में 'हो हन्ते०' से कवर्ग आदेश होता है)।

हेरचडि 7.3.56

पद.—हेः 6.1, अचडि 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासात् हः कु।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—यदि चङ् परे न हो तो अभ्यास से उत्तर हि गतौ धातु के हकार को कवर्ग आदेश होता है।

उदा.—(1) हि सन्-हि स-
(अनुदात्तोपदेश होने से इट् का निषेध। इको झल् से सन् कित् हुआ। गुण निषेध)
हि हि स-हि घि स-
हि घी स-
(अज्झनगमां-)
झिघीस-जिघीस शप तिप्-
प्रजिघीषति।

(2) हि यङ्-हि हि य-
हि घि य-
(पूर्ववत्)
जि घि य-
(पूर्ववत्)
जिघीय-
(अकृत् सार्वधातुक०)
जेघीयते
(गुणो यङ्लुकोः)
प्रजेघीयते।

(3) हि णल् (लिट्)-
जि हि अ (पूर्ववत्)-
जि घि अ-जिघाय।

'अचङि' अर्थात् **चङ् परे न हो** तभी कवर्ग आदेश होता है— हि णि (लुङ्)-

('हि' की अंगसंज्ञा हुई। तब निमित्त अर्थात् 'चङ्' परे रहते 'हि' को कवर्ग आदेश प्राप्त ही नहीं है)

अतः 'अचङि' पद व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि चङ् से भिन्न स्थलों अर्थात् सन् आदि में णि सहित 'हि' को कुत्व होता है। यथा—

प्रजिघाय्यिषति यहाँ णिजन्त 'हि' को कुत्व हुआ है सन् परे रहते।

सन्लिटोर्जेः 7.3.57

पद.—सन्लिटोः 7.2, जेः 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासात् कु।

अर्थ—सन् तथा लिट् प्रत्यय परे रहते अभ्यास से उत्तर 'जि' अंग को कवर्ग आदेश होता है।

उदा.—(1) जि सन्-जि स-जि जि स-
जि गि स-जि गी स-
(आदेः परस्य। अज्झनगम०)
जिगीषति

(2) जि णल्-जि जि अ-
जि गि अ-जि गै अ-
जिगाय।
वि जि त-विजिग्ये (भट्टि० 2.39)।

विशेष—'सन्लिटोः' अर्थात् **सन् या लिट्** परे रहते ही 'जि' को कुत्व होता है—
जि यङ्-जेजीयते
यहाँ न सन् परे है और न ही लिट्। अतः कुत्व न हुआ।

विभाषा चेः 7.3.58

पद.—विभाषा 1.1, चेः 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासात् कु सन्लिटोः।

अर्थ—सन् और लिट् प्रत्यय परे रहते अभ्यास से उत्तर 'चि' अंग को विकल्प से कुत्व होता है।

उदा.—(1) चि सन्-चि स-चि चि स-
चि ची स-चिचीषति।
(पूर्ववत्)।
पक्ष में—
चिकीषति।

(2) चि णल्-चि चि अ-
चि चै अ-चिचाय। द्र० आचिचाय (भट्टि० 14.46)।
पक्ष में—चिकाय। द्र० आचिकाय (भट्टि० 14.46)।

'चि' धातु की लिट् लकार में सम्पूर्ण रूपमाला इस प्रकार है। प्रकृतसूत्र के द्वारा वैकल्पिक कुत्व हुआ है।

परस्मैपद

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	चिकाय चिचाय	चिक्यतुः, चिच्यतुः	चिक्युः चिच्युः
म०पु०	चिकयिथ चिकेथ, चिचयिथ, चिचेथ	चिक्यथुः चिच्यथुः	चिक्य चिच्य
उ०पु०	चिकाय चिकय चिचाय चिचय	चिक्यिव चिच्यिव	चिक्यिम चिच्यिम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मनेपद

	एक०	द्विव०	बहुव०
प्र०पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
	चिच्ये	चिच्याते	चिच्यिरे
म०पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिढ्वे
	चिच्यिषे	चिच्याथे	चिक्यिध्वे
			चिच्यिढ्वे
			चिच्यिध्वे
उ०पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे
	चिच्ये	चिच्यिवहे	चिच्यिमहे

द्र० उच्चिक्यिरे (भट्टि० 3.38)

न क्वादेः 7.3.59

पद.—न-अव्य०, क्वादेः 6.1

अनु.—चजोः कु अंगस्य ।

अर्थ—कवर्ग है आदि में जिसके ऐसे अंग के चकार या जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है ।

सर्वत्र 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' से कवर्ग आदेश प्राप्त था । प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया ।

उदा.—कूज् घञ्-कूज सु-कूजः ।
खर्ज् घञ्-खर्जः ।
गर्ज् घञ्-गर्जः ।

अजिव्रज्योश्च 7.3.60

पद.—अजिव्रज्योः 6.2, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य चजोः कु न ।

अर्थ—अंगसंज्ञक अज् तथा व्रज् धातुओं के चकार अथवा जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है ।

उदा.—(1) सम् अज् घञ्-
(हलश्च)
सम् आज् अ
(पूर्ववत् प्राप्त कुत्व का निषेध)
समाज सु-समाजः ।
उद् अज् घञ्-
उदाजः ।

(2) परि व्रज् घञ्-
(भावे)
परिव्राजः (पूर्ववत्) ।

भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः 7.3.61

पद.—भुजन्युब्जौ 1.2, पाण्युपतापयोः 7.2

अनु.—अंगस्य चजोः कु न ।

अर्थ—'हाथ' तथा 'रोग' अर्थों में यथासंख्य करके 'भुज' तथा 'न्युब्ज' शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—(1) भुज् घञ्-
(हलश्च)
भुज् अ-भुज सु-भुजः ।
(कुत्व अभाव तथा गुण अभाव) ।

(2) नि उब्ज् घञ्-
(हलश्च)
न्युब्जः ।
(कुत्व अभाव) ।

विशेष—'पाण्युपतापयोः' अर्थात् **'हाथ'** तथा **'रोग'** अर्थों में ही 'भुज' तथा 'न्युब्ज' शब्दों का निपातन होता है—

भोग-'हाथ' अर्थ नहीं है । कुत्व हो गया । सम् उद्रः-समुद्रः यहाँ भी कुत्व हो गया ।

प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे 7.3.62

पद.—प्रयाजानुयाजौ 1.2, यज्ञाङ्गे 7.1

अनु.—अंगस्य चजोः कु न ।

अर्थ—यज्ञ का अंग-इस अर्थ में 'प्रयाज' तथा 'अनुयाज' शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—(1) प्र यज् घञ्-
(अकर्त्तरि च कारके०)
प्र याज् अ-प्रयाज सु-प्रयाजः ।
(कुत्व अभाव) ।

(2) अनु यज् घञ्-अनुयाजः ।
(पूर्ववत्) ।

ये दर्शपौर्णमास आदि यज्ञों के अंग होते हैं । प्रधान यज्ञ से पूर्व 'प्रयाज' याग तथा पश्चात् 'अनुयाज' याग होता है ।

विशेष—यज्ञांगे, अर्थात् **यज्ञ का अंग** अर्थ होने पर ही उक्त निपातन होता है—प्रयागः, अनुयागः

यहाँ कुत्व हो गया ।

वञ्चेर्गतौ 7.3.63

पद.—वञ्चेः 6.1, गतौ 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य चजोः कु न ।

अर्थ—गति अर्थ में वञ्च् अंग के चकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है ।

उदा.—वञ्च् ण्यत्-
वञ्च् य-वञ्च्य सु-वञ्च्यम् ।

वञ्च्यं वञ्चन्ति वणिजः अर्थात् वणिक् लोग गन्तव्य स्थान को जाते हैं । यहाँ गति अर्थ है । अतः कुत्व का निषेध हो गया ।

विशेष—'गतौ' अर्थात् 'गति' अर्थ में ही 'वञ्च्' धातु को कुत्व नहीं होता है—
वङ्क्यं काष्ठम्-
यहाँ 'गति' अर्थ नहीं है । अतः कुत्व का निषेध न हुआ ।

ओक उचः के 7.3.64

पद.—ओकः 1.1, उचः 6.1, के 7.1

अनु.—चजोः कु अंगस्य ।

अर्थ—'क' प्रत्यय परे रहते 'उच्' धातु से कुत्व होकर 'ओक' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—उच् क-उच् अ-
(इगुपधज्ञा०)
ओक् अ-नि ओकः-न्योकः ।

कर्त्ता अर्थ में 'क' हुआ है ।

ण्य आवश्यके 7.3.65

पद.—ण्ये 7.1, आवश्यके 7.1

अनु.—अंगस्य चजोः कु न ।

अर्थ—'आवश्यक' अर्थ में 'ण्य' परे रहते अंग के चकार या जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है ।

उदा.—(1) अवश्य पच् ण्यत्-
(कृत्याश्च । ऋहलोर्ण्यत् । मयूरव्यंस० से समास । अवश्यमः० से मलोप)
अवश्य पाच् य-अवश्यपाच्यम् ।
(2) अवश्य वच् ण्यत्-
अवश्यवाच्यम् ।
(पूर्ववत्) ।

विशेष—'आवश्यके' अर्थात् आवश्यक अर्थ में ही कुत्व का निषेध होता है—
पच् ण्य-पाक्यम्
यहाँ 'आवश्यक' अर्थ नहीं है । अतः कुत्व का निषेध न हुआ ।

इसी प्रकार-वाक्यम् ।

यजयाचरुचप्रवचर्चश्च 7.3.66

पद.—यजयाचरुचप्रवचर्चः 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—अंगस्य ण्ये चजोः कु न ।

अर्थ—'ण्य' परे रहते यज्, याच्, रुच्, प्र वच् तथा ऋच् अंगों के चकार अथवा जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है ।

उदा.—(1) यज् ण्यत्-यज् य-
याज् य-याज्य सु-याज्यम् ।
(2) याच् ण्यत्-याच्यम् ।
(3) रुच् ण्यत्-रुच् य-
रोच् य-रोच्यम् ।
(4) प्रवच् ण्यत्-प्र वा च् य-
प्रवाच्यम् ।
(5) ऋच् ण्यत्-अर्च् य-
अर्च्यम् ।

विशेष—'ण्यत्' परे रहते 'त्यज्' को कुत्व नहीं होता है[1]— त्यज् ण्यत्-त्याज् य-
त्याज्य सु-त्याज्यम् ।

वचोऽशब्दसंज्ञायाम् 7.3.67

पद.—वचः 6.1, अशब्दसंज्ञायाम् 7.1

अनु.—अंगस्य ण्ये चजोः कु न ।

अर्थ—शब्द की संज्ञा विषय न हो तो ण्य परे रहते वच् अंग के चकार को कुत्व नहीं होता है ।

उदा.—वच् ण्य-वच् य-
वाच्य सु-वाच्यम् ।
इसी प्रकार—
अवाच्यम् ।

विशेष—'अशब्द संज्ञा याम्' अर्थात् शब्द की संज्ञा विषय न हो तभी कुत्व का निषेध होता है—

1. महा० 7.3.66 (वा०) ण्यति प्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवघुषितं वाक्यम् आह—

यहाँ शब्दसमूह विशेष की संज्ञा है। अतः ककार आदेश का निषेध न हुआ।

प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे 7.3.68

पद.—प्रयोज्यनियोज्यौ 1.2, शक्यार्थे 7.1

अनु.—अंगस्य चजोः कु न ण्ये।

अर्थ—शक्य अर्थ में ण्यत् प्रत्ययान्त 'प्रयोज्य' तथा 'नियोज्य' शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) शक्यः प्रयोक्तुम्—
प्रयुज् ण्यत्—प्र युज् य—
प्र योज्य सु—प्रयोज्यम्।
(कुत्व का अभाव)

(2) शक्यो नियोक्तुम्—
नि युज् ण्यत्—नियुज् य—
नियोज् य—नियोज्यम्।
(कुत्व का अभाव)

विशेष—'शक्यार्थे' अर्थात् **शक्य अर्थ में ही** इन शब्दों का निपातन होता है—

प्रयोग्यः, नियोग्यः

यहाँ 'शक्य' अर्थ न होने से कुत्व का निषेध नहीं होता है।

भोज्यं भक्ष्ये 7.3.69

पद.—भोज्यम् 1.1, भक्ष्ये 7.1

अनु.—अंगस्य चजोः कु न ण्ये।

अर्थ—'भक्ष्य' अर्थ में 'भोज्य' शब्द का निपातन किया जाता है।

उदा.—भुज् ण्यत्—भोज् य—
भोज्यम्।
(कुत्व का अभाव)

विशेष—'भक्ष्ये' अर्थात् **भक्ष्य अर्थ** में ही 'भोज्य' शब्द का निपातन होता है—

भोग्यः कम्बलः

यहाँ 'भक्ष्य' अर्थ नहीं है। अतः ककार आदेश का निषेध न हुआ।

घोर्लोपो लेटि वा 7.3.70

पद.—घोः 6.1, लोपः 1.1, लेटि 7.1, वा—अव्य०।

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—लेट् प्रत्यय परे रहते 'घु' संज्ञक अंग का विकल्प से लोप होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् का लोप होता है।

'दाधाघ्वदाप्' से घुसंज्ञा होती है।

लेट् वेद का विषय है। अतः सभी उदाहरण वेद से उद्धृत हैं।

उदा.—(1) दधद् रत्नानि दाशुषे (ऋ० 4.15.3)
धा लेट्—धा शप् तिप्—धा तिप्
(श्लुत्व, द्वित्व)
धा धा त्—द धा त्—
(लेटोऽडाटौ। अन्त्यलोप)
द ध् अट् त्—दधत्।

(2) इसी प्रकार—
सोमो ददद् गन्धर्वाय (ऋ० 10.85.41)

(3) वेद में सभी विधियाँ विकल्प से प्रवृत्त होती हैं। अतः यहाँ अन्त्यलोप न हुआ।

यदग्निरग्नये ददात्।

ओतः श्यनि 7.3.71

पद.—ओतः 6.1, श्यनि 7.1

अनु.—अंगस्य लोपः।

अर्थ—'श्यन्' परे रहते ओकारान्त अंग का लोप होता है।

अलोऽन्त्यपरिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् (ओ) का लोप होता है।

उदा.—(1) नि शो तिप् (लट्)—
नि शो श्यन् ति—निश् यति—निश्यति।
नि शो झि (लङ्)
नि शो श्यन् अन्ति—नि अ श् य अन्त्—
न्यश्यन् (भट्टि० 17.4)

(2) अव छो श्यन् तिप्—
अवछ्यति।

(3) अव दो श्यन् तिप—
अवद्यति।

(4) षो—सो—सो श्यन् तिप्—
अवस्यति।

क्सस्याऽचि 7.3.72

पद.—क्सस्य 6.1, अचि 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—अंगस्य लोपः ।

अर्थ—अजादि प्रत्यय परे रहते 'क्स' का लोप होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् का लोप होता है।

शल इगुपधादनिटः क्सः से 'च्लि' को 'क्स' आदेश होता है ।

'क्स' के ककार की इत्संज्ञा होती है । तब इस का लोप होकर 'स' अकारान्त शेष रहता है । प्रकृतसूत्र के द्वारा इसके अकार का लोप होने पर 'स्' शेष बचता है ।

इसे हलन्त करने का फल है कि 'आताम्' आदि में 'आतो ङितः' की प्रवृत्ति न हो ।

उदा.—दुह् आताम्–दुह् क्स आताम्–
(शल इगुपधादनिटः क्सः)
दुह् स् आताम्–दुघ् स् आताम्–
धुघ् स् आताम्–धुक् स् आताम्–
धुक्ष् आताम्–अधुक्षाताम् ।

इसी प्रकार–अधुक्षाथाम्
दुह् इट्–दुह् क्स इ–दुह् स् इ–
दुघ् स् इ–धु क्ष् इ–अधुक्षि ।

विशेष—1. 'अचि' अर्थात् **अजादि प्रत्यय** परे रहते 'क्स' का लोप होता है—
दुह् क्स तिप्–दुह् स त्–
धुक् स त्–अधुक्षत्

यहाँ अजादि प्रत्यय परे नहीं है । अतः अन्त्यलोप न हुआ ।

2. 'क्स' इस प्रकार ककारयुक्त निर्देश का फल है कि 'क्स' के अन्त्य अल् का लोप होता है । ककाररहित निर्देश की दशा में 'वत्स औ' इस दशा में अन्त्य लोप होकर अनिष्ट रूप प्राप्त होता है ।

3. काशिकाकार आदि प्राचीन वैयाकरण यहाँ 'तङि' पद का अनुवर्त्तन नहीं करते हैं । इस अर्थ में एक दोष उपस्थित होता है । द्र०—

'दृशेः क्सश्च' (वा०) के द्वारा दृश् धातु से 'क्स' किया । तब 'जस्' प्रत्यय में 'तद् दृश् क्स अस्' ऐसी स्थिति बनी । यदि 'तङि' पद का अनुवर्त्तन करेंगे तो यहाँ 'अस्' परे रहते 'क्स' के अन्त्य अकार का लोप होकर अनिष्ट रूप प्राप्त होता है ।

'तङि' का अनुवर्त्तन करने पर यह दोष प्रसक्त नहीं होता है । भट्टोजि प्रभृति नव्य वैयाकरणों ने यहाँ 'तङि' पद का अनुवर्त्तन किया है ।[1]

लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये
7.3.73

पद.—लुक् 1.1, वा–अव्य०, दुहदिहलिहगुहाम् 6.3, आत्मनेपदे 7.1, दन्त्ये 7.1

अनु.—अंगस्य क्सस्य ।

अर्थ—दन्त्यादि आत्मनेपद प्रत्यय परे रहते दुह, दिह, लिह् तथा गुह् धातुओं के 'क्स' का विकल्प से लुक् होता है ।

दन्तस्थान वाले वर्ण को 'दन्त्य' कहते हैं। दन्त्यादि-दन्त्य वर्ण है आदि में जिसके यह 'आत्मनेपदे' का विशेषण है ।

दन्त्यादि आत्मनेपद प्रत्यय चार ही हैं—
त, थास्, ध्वम् तथा वहि ।

'लुक्' कहने से 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' के द्वारा लुक् संज्ञा होकर सम्पूर्ण 'क्स' का लुक् हो जाता है ।

उदा.—(1) दुह् त–दुह् क्स त–
दुह् त–दुघ् त–दुघ् ध–
(दाऽऽदेर्धातो० । झषस्तथो०)
दुग्ध–अट् दुग्ध–अदुग्ध (झलां जश्०) ।
पक्ष में—
अदुह् क्स त–अधुक्षत (एकाचो बशो०) ।

(2) दुह् थास्–दुह् क्स थास्–
दुघ् थास्–दुघ् धास्–दुग्धास्–
(पूर्ववत्)
अदुग्धाः ।
पक्ष में–
अ दुह् क्स थासु–अधुक्षथाः ।

(3) दुह् ध्वम्–दुह् क्स ध्वम्–
दुह् ध्वम्–दुघ् ध्वम्–धुघ् ध्वम्–
धुग् ध्वम्–अधुग्ध्वम् ।
पक्ष में—
अ दुह् क्स ध्वम्–अधुक्षध्वम् ।

(4) दुह् वहि–दुह् क्स वहि–

---

1. वै०सि०कौ० (सूत्र 2337) - अजादौ तङि क्सस्य लोपः स्यात् । द्र० बालमनोरमा - अजादौ तङीत्येव क्वचित्पाठो दृश्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुह् वहि-अदुह्वहि ।
पक्ष में—
दुह् क्स वहि-दुघ् स वहि-
धुक् स वहि-अधुक्षावहि ।

(5) दिह् क्स त-दिह् त-दिघ् त-
अदिघ् ध-अदिग्ध ।
पक्ष में—
अधिक्षत ।

(6) दिह् थास्-
अदिग्धाः ।
पक्ष में—
अधिक्षथाः ।

(7) दिह् ध्वम्-
अधिग्ध्वम् ।
पक्ष में—
अधिक्षध्वम् ।

(8) दिह् वहि-
अदिह्वहि ।
पक्ष में—
अधिक्षावहि ।

(9) लिह् त-लिह् क्सत-लिह् त-
लिढ् त-लिढ् ध-लिढ् ढ-
(हो ढः । झषस्तथो० । स्तोः श्चुना०)
लिढ-अलीढ ।
(ढो ढे लोपः । ढ्रलोपे०)
पक्ष में—
लिह् क्स त-लिह् स त-लिढ् स त-(हो ढः)
लिक् सत-लिक्षत-अलिक्षत ।
(षढोः कः सि) ।

(10) लिह् क्स थास्-लिह् थास्-
लिढ् थास्-लिढ् ढास्-
लि ढास्-लीढास्-अलिढाः ।
पक्ष में-
लिह् क्स थास्-लिढ् स थास्-
लिक् स थास्-अलिक्षथाः ।

(11) लिह् क्स ध्वम्-लिह् ध्वम्-
लिढ् ध्वम्-लिढ् ढ्वम्-लि ढ्वम्-
लीढ्वम्-अलीढ्वम् ।
पक्ष में—
लिह् क्स ध्वम्-लिढ् स ध्वम्-
लिक् स ध्वम्-अलिक्षध्वम् ।

(12) लिह् क्स वहि-लिह् वहि-
अलिह्वहि ।
पक्ष में—
लिह् क्स वहि-अलिढ् स वहि-
अलिक् स वहि-अलिक्षावहि ।

(13) गुह् क्स त-गुह् त-
गुढ् त-गुढ् ढ-गुढ-
गूढ-अगूढ ।
पक्ष में—
गुह् क्स त-गुढ् स त-
गुक् सत-धुक्सत-अधुक्षत ।
इसी प्रकार अन्य रूप होते हैं ।

विशेष—1. 'दुहदिहलिहगुहाम्' अर्थात् दुह् आदि धातुओं के 'क्स' का विकल्प से लुक् होता है—

वि अति युष् क्स त यहाँ लुक् नहीं होता है । व्यत्यपुक्षत ।

2. 'आत्मनेपदे' अर्थात् **आत्मनेपद प्रत्यय** परे रहते ही 'क्स' का लुक् होता है—

दुह् तिप्-दुह् क्स ति-अधुक्षत्

यहाँ परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय परे है । अतः लुक् न हुआ ।

3. 'दन्त्ये' अर्थात् **दन्त्यादि** प्रत्यय परे रहते ही 'क्स' का लुक् होता है—

अधुक्षामहि यहाँ 'महि' प्रत्यय परे है जो आत्मनेपद तो है परन्तु दन्त्यादि नहीं है । अतः 'क्स' का लुक् न हुआ ।

4. यद्यपि 'दन्त्ये' के स्थान पर 'तौ' पाठ करने पर भी तवर्गादि (त, थास्, ध्वम्) का ग्रहण हो जाता है परन्तु 'वहि' प्रत्यय का ग्रहण नहीं होता है । कारण कि, 'व' का उच्चारण-स्थान दन्तोष्ठ है । अतः 'वहि' प्रत्यय का ग्रहण करने के लिए 'तौ' के स्थान पर 'दन्त्ये' पाठ किया गया है ।

शमामष्टानां दीर्घः श्यनि 7.3.74

पद.—शमाम् 6.3, अष्टानाम् 6.3, दीर्घः 1.1, श्यनि 7.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—'श्यन्' परे रहते अंगसंज्ञक 'शम्' आदि आठ धातुओं को दीर्घ होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः' तथा 'अचश्च' के द्वारा 'शम्' आदि के अच् को दीर्घ आदेश होता है।

शम् आदि आठ धातु हैं—शम्, तम्, दम्, श्रम्, भ्रम्, क्षम्, क्लम् तथा मद्।

उदा.—(1) शम् तिप्–शम् श्यन् ति–शाम् य ति–शाम्यति।
(2) तम्–ताम्यति।
(3) दम्–दाम्यति।
(4) श्रम्–श्राम्यति।
(5) भ्रम्–भ्राम्यति।
(6) क्षम्–क्षाम्यति।
(7) क्लम्–क्लाम्यति।
(8) मद्–माद्यति। द्र० प्रामाद्यद् (भट्टि० 17.39)।

विशेष—1. 'अष्टानाम्' अर्थात् पूर्वोक्त **आठ धातुओं** का ही दीर्घ होता है—

अस् श्यन् तिप्–अस्यति।

2. 'श्यनि' अर्थात् **'श्यन्'** परे रहते ही दीर्घ होता है—

भ्रम् शप् तिप्–भ्रमति।

'वा भ्राशभ्लाश०' से विकल्प से 'श्यन्' होता है। यहाँ पक्ष में 'शप्' हुआ है। 'श्यन्' परे न रहने से दीर्घ न हुआ।

ष्ठिवुक्लमुचमां शिति 7.3.75

पद.—ष्ठिवुक्लमुचमाम् 6.3, शिति 7.1

अनु.—अंगस्य दीर्घः।

अर्थ—शित् प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक ष्ठिवु, क्लमु तथा चमु धातुओं को दीर्घ होता है।

उदा.—(1) ष्ठिव् शप् तिप्–
ष्ठीवति।
इसी प्रकार—ष्ठिव् शप् मस् (लोट्)–ष्ठीवाम (भट्टि० 12.18)
(2) क्लम् शप् ति–
क्लामति। द्र० क्लम् तिप् (लङ्)–अक्लाम्यत् (भट्टि० 17.10)
(3) आचम् शप् तिप्–
आचामति।

महाभाष्य के अनुसार आङ्पूर्वक चम् को ही दीर्घ होता है।

क्रमः परस्मैपदेषु 7.3.76

पद.—क्रमः 6.1, परस्मैपदेषु 7.3

अनु.—अंगस्य शिति दीर्घः।

अर्थ—परस्मैपदसंज्ञक शित् प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक क्रम् धातु को दीर्घ होता है।

'वा भ्राशभ्लाश भ्रमु०' के द्वारा 'क्रम्' धातु से विकल्प से 'श्यन्' प्रत्यय होता है। पक्ष में 'शप्' होता है। दोनों शित् प्रत्यय हैं।

उदा.—(1) क्रम् तिप् (लट्)–
क्रम् श्यन् ति–क्राम्यति।
पक्ष में—
कम् शप् तिप्–क्रामति।
(2) क्रम् तिप् (लोट्)–
क्रम् श्यन् तिप्–
क्राम्यतु।
पक्ष में—
क्रम् शप् तिप्–
क्रामतु।
(3) क्रम् तिप् (लङ्)–
क्रम् श्यन् ति–क्राम्यति–
क्राम्यत्–अक्राम्यत्।
पक्ष में—
क्रम् शप् तिप्–
अक्रामत्। द्र० मा स्म व्यतिक्रामः (भट्टि० 17.36)।
(4) क्रम् तिप् (वि०लि०)–
क्रम् श्यन् त्–
क्राम्येत्।
पक्ष में—
क्रम् शप् तिप्–
क्रामेत्।

विशेष—'परस्मैपदेषु' अर्थात् **परस्मैपद प्रत्यय** परे रहते ही 'क्रम्' को दीर्घ होता है—

आ क्रम् शप् त–आक्रमते सूर्यः 'आङ उद्गमने' से आत्मनेपद हुआ। तब आत्मनेपद संज्ञक शित् परे रहते 'क्रम्' को दीर्घ न हुआ।

इषुगमियमां छः 7.3.77

पद.—इषुगमियमाम् 6.3, छः 1.1

अनु.—अंगस्य शिति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—शित् प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक इष्, गम् तथा यम् धातुओं को 'छ' आदेश होता है।

छकार में अकार उच्चारणार्थ है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् के स्थान पर छकार आदेश होता है।

उदा.—(1) इष् तिप्–
इष् श ति–
(तुदादिभ्यः शः)
इछ् अ ति–इतुक् छ् अ ति–
(छे च)
इच्छति।
(स्तोः श्चुना श्चुः)।

(2) इष् तिप् (लोट्)–
इष् श ति–इच्छ् अ तु–
इच्छतु।
(पूर्ववत्)

(3) इष् श तिप् (लङ्)–
इच्छ् अत्–
(पूर्ववत्)
आट् इच्छत्–ऐच्छत्।
(आटश्च)।

(4) इष् तिप् (वि० लिङ्)–
इच्छेत्।

(5) गम् तिप् (लट्)–
गम् शप् ति–गछ् अति–
गत् छ् अति–गच्छति।

(6) गम् शप् तिप् (लोट्)–
गच्छतु।
(पूर्ववत्)।

(7) गम् शप् तिप् (लङ्)–
गच्छ् अ त्–अगच्छत्।
(इकार लोप, अट्)।

(8) गम् शप् ति (वि० लिङ्)–
गच्छेत्।

(9) यम् तिप् (लट्)–
यम् शप् ति–यछ् अति–
यच्छति।

(10) यम् तिप् (लोट्)–
यच्छ् अ ति–यच्छतु।

(11) यम् तिप् (लङ्)–
यम् शप् त्–यछ् अत्–
यच्छ् अत्–अयच्छत्।

(12) यम् तिप् (वि० लिङ्)–
यम् शप् ति–यछ् अ त्–
यच्छ् अत्–यच्छेत्।

पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः

7.3.78

पद.—पाघ्राध्मास्था ... शदसदाम् 6.3, पिबजिघ्रसीदाः 1:3

अनु.—अंगस्य शिति।

अर्थ—शकार है इत् जिसका ऐसा प्रत्यय (=शित्) है आदि में जिसके, ऐसे प्रत्यय के परे रहते अंगसंज्ञक पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दा, दृश्, ऋ, सृ, शद् तथा षद् धातुओं के स्थान पर यथासंख्य करके पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय तथा सीद आदेश होते हैं। सभी आदेश अनेकाल् हैं। अतः सर्वादेश होते हैं।

प्रसंगप्राप्त 'शिति' अधिकार में कर्मधारय समास है। अतः इसका अर्थ होता है—इत् संज्ञक 'श्' है आदि में जिसके ऐसे प्रत्यय के परे रहते।

यदि यहाँ बहुव्रीहि मानेंगे तो 'शित् प्रत्यय (अर्थात् शकार है इत् जिसका) परे रहते' ऐसा अर्थ होता है। लिट् में 'त' के स्थान पर होने वाला आदेश 'एश्' भी शित् है। अतः इस अर्थ के अनुसार 'एश्' प्रत्यय के परे रहते भी 'पिब' आदि आदेश होने लगेंगे। तब—

पा त (कर्मणि)–पापा एश्–पपे बनता है। 'शिति' पद को बहुव्रीहि मान लेने पर 'पिब' आदेश होकर यहाँ अनिष्ट रूप प्राप्त होता है। अतः 'शिति' पद में कर्मधारय मानना ही उचित है।

'पा' के द्वारा 'पा पाने' का ही ग्रहण होता है, 'पा रक्षणे' का नहीं है। द्र०—

(क) लुग्विकरणाऽलुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम् अर्थात् लुग्विकरण व अलुग्विकरण दोनों का विषय होने पर अलुग्विकरण धातु का ही ग्रहण होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पा रक्षणे' अदादिगणीय धातु है। उससे पर 'शप्' का लुक् होता है परन्तु 'पा पाने' से पर 'शप्' का लुक् नहीं होता है। अतः उपर्युक्त परिभाषा के द्वारा 'पा पाने' का यहाँ ग्रहण होता है।

(ख) घ्रा भ्वादिगणीय धातु का पाठ सूत्र में है। इसके साहचर्य से भ्वादिगणीय धातु (पा पाने) का ग्रहण होता है, न कि अदादिगणीय धातु (पा रक्षणे) का।

(ग) यदि अदादिगणीय धातु (पा रक्षणे) का ग्रहण करेंगे तो इससे पर 'शप्' का सर्वत्र लुक् हो जाने से क्वचिदपि 'शित्' उपलब्ध न होगा। अतः उसका ग्रहण यहाँ नहीं किया जा सकता। 'पिब' आदेश अदन्त है। इसे अदन्त करने का प्रयोजन लघूपधगुण का वारण है। यथा–पा तिप्–पा शप् ति–पिब अति–पिबति (अतो गुणे)।

यदि 'पिब' आदेश अदन्त न होकर हलन्त होता तो 'पिब् अ ति' इस दशा में 'पुगन्तलघूपध०' के द्वारा गुण होकर अनिष्ट रूप बन जाता है।

'पिब' को छोड़कर शेष आदेश हलन्त हैं। इनमें अकार उच्चारणार्थ है। 'ऋ' तथा 'सृ' धातु भ्वादिगणीय तथा जुहोत्यादिगणीय हैं। यहाँ केवल भ्वादिगणीय 'ऋ' तथा 'सृ' का ही ग्रहण होता है।

उदा.—(1) पा तिप् (लट्)–
पा शप् ति–पिब अ ति–
पिबति (अतो गुणे)।

(2) घ्रा शप् ति–
जिघ्र् अ ति–जिघ्रति। द्र० आजिघ्रैः (भट्टि० 6.77)।

(3) ध्मा शप् ति–
धम् अ ति–धमति। द्र० उद्धमैः (भट्टि० 6.77)

(4) ष्ठा–स्था–स्था शप् ति–
तिष्ठ् अ ति–तिष्ठति।

(5) म्ना शप् ति–
मन् अ ति–मनति। द्र० आमनन् (भट्टि० 17.30)।

(6) दा शप् ति–
यच्छ् अ ति–यच्छति।

(7) दृश् शप् ति–
पश्य् अ ति–पश्यति।

(8) ऋ शप् ति–
ऋच्छ् अ ति–ऋच्छति।

(9) सृ शप् ति–
धौ अ ति–धावति।

(10) शद् शप् त–
(शदेः शितः)
शीय् अ त–शीयते। द्र० अशीयत (भट्टि० 17.77)।

(11) षद्–सद् शप् ति–
सीद् अ ति–सीदति।

उपर्युक्त सभी उदाहरण लट् लकार के हैं। इसी प्रकार अन्य शित् लकारों में (लोट्, लङ्, वि० लिङ्) भी जानना चाहिए।

पा झि (लट्)–पा शप् अन्ति–
पिब अ अन्ति–

(इस दशा में ध्यान रखें कि प्रथम शप् के अकार को पररूप होता है, पश्चात् 'अन्ति' के अकार को होता है)

पिब अ अन्ति–पिब अन्ति–पिबन्ति।

ज्ञाजनोर्जा 7.3.79

पद.—ज्ञाजनोः 6.2, जा-लुप्तप्रथमान्तरूपम्।

अनु.—अंगस्य शिति।

अर्थ—इत्संज्ञक शकार है आदि में जिसके, ऐसे प्रत्यय के परे रहते अंगसंज्ञक ज्ञा धातु तथा जन् (दिवा) धातु के स्थान पर 'जा' आदेश होता है।

अनेकाल् होने से 'जा' सर्वादेश है।

उदा.—(1) ज्ञा तिप्–ज्ञा श्ना ति–
(क्र्यादिभ्यः श्ना)
जा ना ति–जानाति।

(2) जन् त–जन् श्यन्–त–
(दिवादिभ्यः श्यन्)
जा य त–जायते।

ष्वादीनां ह्रस्वः 7.3.80

पद.—ष्वादीनाम् 6.3, ह्रस्वः 1.1

अनु.—अंगस्य शिति।

अर्थ—शित् परे रहते षूङ् आदि चौबीस धातुओं को ह्रस्व आदेश होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलोऽन्त्य परिभाषा तथा 'अचश्च' के द्वारा अन्त्य अल् तथा अच् के स्थान पर ह्रस्व आदेश होता है। चूँकि प्वादि सभी धातु अजन्त हैं। अतः इनके अन्त्य अच् को ह्रस्व होता है।

धातुपाठ में क्र्यादिगण के अन्तर्गत 'पू' आदि धातुओं का पाठ है। यह उपगण 'पूञ् पवने' से लेकर 'प्ली गतौ वृत्' पर्यन्त माना गया है। इसमें चौबीस धातु सम्मिलित है।

कुछ विद्वानों के अनुसार गण की समाप्ति पर्यन्त प्वादि उपगण माना जाता है।[1]—

उदा.—(1) पू तिप्-पू श्ना ति-
(क्र्यादिभ्यः श्ना)
पू ना ति-पुनाति।

(2) लू श्ना ति-लुनाति। द्र० अलुनात्
(भट्टि० 17.42)

(3) स्तृ श्ना ति-स्तृनाति-
स्तृणाति।

(4) कॄ श्ना ति-कॄना ति-
कॄणाति।

(5) वृ श्ना ति-वृना ति-
वृणाति।

(6) धू श्ना ति-धुनाति।

(7) शॄ श्ना ति-शॄ ना ति-
शॄणाति।

(8) पॄ श्ना ति-पॄ ना ति-
पॄणाति।

(9) वॄ श्ना ति-वॄ ना ति-
वॄणाति।

(10) भॄ श्ना ति-भॄ ना ति-
भॄणाति।

(11) मॄ श्ना ति-मॄ ना ति-
मॄणाति।

(12) दॄ श्ना ति-दॄ ना ति-
दॄणाति।

(13) जॄ श्ना ति-जॄ ना ति-
जॄणाति।

(14) झॄ श्ना ति-झॄ ना ति-
झॄणाति।

(15) धॄ श्ना ति-धॄ ना ति-
धॄणाति।

(16) नॄ श्ना ति-नॄ ना ति-
नॄणाति।

(17) कॄ श्ना ति-कॄ ना ति-
कॄणाति।

(18) ऋॄ श्ना ति-ऋॄ ना ति-
ऋॄणाति।

(19) गॄ श्ना ति-गॄ ना ति-
गॄणाति।

(20) ज्या श्ना ति-ज्य ना ति-
ज्यनाति

(21) री श्ना ति-रि ना ति-
रिणाति।

(22) ली श्ना ति-लि ना ति-
लिनाति।

(23) व्ली श्ना ति-व्लिनाति।

(24) प्ली श्ना ति-प्लिनाति।

मीनातेर्निगमे 7.3.81

पद.—मीनातेः 6.1, निगमे 7.1

अनु.—अंगस्य शिति ह्रस्वः।

अर्थ—निगम के विषय में शित् प्रत्यय परे रहते मीञ् हिंसायाम् को ह्रस्व होता है।

उदा.—मी ति-मी श्ना ति-मिनाति।
द्र० प्रमिणन्ति व्रतानि।

('हिनु मीना' से णत्व तथा 'श्नाभ्यस्तयो०' के द्वारा आकार लोप)

अन्यत्र ह्रस्व नहीं होता है—प्रमीणाति।

मिदेर्गुणः 7.3.82

पद.—मिदेः 6.1, गुणः 1.1

अनु.—अंगस्य शिति।

अर्थ—शित् प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक 'मिद्' को गुण होता है।

1. काशि० 7.3.80 अपरे तु ... आगणान्ताः प्वादय इति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इको गुणवृद्धी' के द्वारा 'मिद्' के इक् (इकार) को गुण होता है।

उदा.—मिद् ति–मिद् श्यन् ति–
मेद् य ति–मेद्यति।

जुसि च 7.3.83

पद.—जुसि 7.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य गुणः।

अर्थ—'जुस्' प्रत्यय परे रहते अंग को गुण होता है।

यहाँ स्थानी का निर्देश नहीं है। अतः यहाँ 'इको गुणवृद्धी' के द्वारा इक् के स्थान पर गुण आदेश होता है।

उदा.—हु झि (लङ्)–हु शप् झि–हु झि–
(जुहोत्यादिभ्यः श्लुः)
हु हु झि–झु हु झि–जु हु झि–
(श्लौ। अभ्यासकार्य)
जु हु जुस्–
(सिजभ्यस्तविदि०)

अब 'हुश्नुवोः०' (पा० 6.4.87) के द्वारा 'यण्' तथा 'जुसि च' (पा० 7.3.83) के द्वारा गुण युगपत् प्राप्त होते हैं। गुण परकार्य है। अतः गुण होता है।

जु हो जुस्–जु हो उस्–
अट् जुहव् उस्–अजुहवुः।

इसी प्रकार—

अबिभयुः तथा अबिभरुः।

विशेष—यहाँ 'क्सस्याऽचि' से 'अचि' पद का अनुवर्त्तन होता है। तब सूत्र का अर्थ होता है—अजादि जुस् परे रहते अंग को गुण हो। यहाँ 'अचि' पद के अनुवर्त्तन का फल 'शृणुयुः' में दृष्टिगोचर होता है—

श्रु लिङ्–श्रु–झि
शृ श्नु झि–शृ नु यासुट् जुस्–
(श्रुवः शृ च)
शृ नु यास् उस्

(यासुट् के ङित् होने से गुण न हुआ। यासुट् जुस् का ही अंग है। अतः जुस् अजादि न रहा, हलादि (युस्) बन गया।

यदि प्रकृतसूत्र में 'अचि' पद का अधिकार नहीं मानते हैं तो यहाँ 'जुस्' (युस्) परे रहते गुण होकर 'शृणोयुः' ऐसा अनिष्ट रूप प्राप्त होता है।

'अचि' पद का अनुवर्त्तन करने से यहाँ अजादि जुस् प्राप्त नहीं है। अतः गुण प्रसक्त नहीं होता है—शृणुयुः।

सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84

पद.—सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.2

अनु.—अंगस्य गुणः।

अर्थ—सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते अंग को गुण होता है।

'इको गुणवृद्धी' से इक् के स्थान पर गुण होगा। 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होती है।

'आर्धधातुकं शेषः' के द्वारा आर्धधातुक संज्ञा कही गई है।

उदा.—(1) जि तिप्–जि शप् ति–
जे अ ति–जयति।

(2) नी शप् तिप्–नी अ ति–
ने अ ति–नयति।

(3) भू तिप्–भू शप् ति–
भो अ ति–भवति।

(4) तृ तिप्–तृ शप् ति–
तर् अति–तरति।

(5) चि तृच्–चेतृ–
चेतृ सु–चेता।

(6) नी तृच्–नेतृ–
नेतृ सु–नेता।

(7) स्तु तृच्–स्तोतृ–
स्तोतृ सु–स्तोता।

(8) कृ तृच्–क र् तृ सु–
कर्त्ता।

विशेष—'सार्वधा०' अर्थात् सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते ही गुण होता है—

अग्नि त्व–अ अग्नित्वम्–

यहाँ 'त्व' न तो सार्वधातुक है तथा न ही आर्धधातुक है। अतः गुण न हुआ।

जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु 7.3.85

पद.—जाग्रः 6.1, अविचिण्णल्ङित्सु 7.3

अनु.—अंगस्य गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः।

अर्थ—वि, चिण्, णल् तथा ङित् को छोड़कर शेष सार्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातुक अथवा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक 'जागृ' को गुण होता है ।

'इको गुणवृद्धी' के द्वारा ऋकार को गुण होगा ।

उदा.—(1) जागृ णिच्–जागर् इ–
जागरि शप् तिप्–जागरयति ।

(2) जागृ क्त–जागृ इट् त–
जागर् इत–जागरित सु–जागरितः ।

विशेष—'अविचिण्०' अर्थात् **वि, चिण्, णल्** तथा **ङित्** प्रत्ययों से अतिरिक्त प्रत्यय के परे रहते ही 'जागृ' को गुण होता है—

1. जागृ क्विन्–
(जृ शृ स्तजागृभ्यः क्विन्)

'वि' परे है । अतः गुण न हुआ—
जागृ वि सु–जागृविः ।

कुछ व्याख्याकारों के अनुसार 'वि' में इकार उच्चारणार्थ है। अतः 'वि' के द्वारा 'क्वसु' आदि के परे रहते भी गुण नहीं होता है ।[1]

यथा—जागृ क्वसु–जजागृ वस्–
ज जागृ वस् सु–जजागृवान् ।

2. जागृ चिण्–अजागार् इ–
अजागारि ।

3. जागृ णल् (लिट्)–जजागृ अ–
(द्वित्व, अभ्यासकार्य)
जजागार ।

4. जागृ तस् (लट्)–जागृ शप् तस्–
जागृ तस्–
(शप् का लुक् । सार्वधातुकमपित्)
जागृतः ।

पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86

पद.—पुगन्तलघूपधस्य 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।

अर्थ—सार्वधातुक अथवा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते पुगन्त या लघूपध अंग को गुण होता है । 'इको गुणवृद्धी' के द्वारा इक् के स्थान पर गुण होता है ।

1. काशि० 7.3.85 'वि' इति केचिदिकारमुच्चारणार्थं वर्णयन्ति । क्वसावपि वकारादौ गुणो न भवति ।

'अर्तिह्वीव्ली०' के द्वारा 'पुक्' का आगम होता है । यह 'पुक्' जिस समुदाय का अन्तावयव होता है, उसे 'पुगन्त' कहा जाता है । जिसकी उपधा में लघुसंज्ञक वर्ण होता है, उसे लघूपध कहा जाता है ।

उदा.—(1) ह्वी णिच् (जुहो० पर०)–ह्वी पुक् इ–
'ह्वीप्' पुगन्त अंग है ।
इसके ईकार को गुण हुआ ।
ह्वेपि तिप्–हेपि शप् ति–ह्वेपयति ।

(2) व्ली णिच्–व्ली प् इ–
व्लेपि–व्लेपयति ।
(पूर्ववत्)

(3) री णिच्–री प् इ–रेपि–
रेपयति ।
(पूर्ववत्)

(4) क्नूय् णिच्–क्नूय् प् इ–
क्नूप् इ–क्नोपि–क्नोपयति ।

(5) भिद् ल्युट्–भिद् अन–
भिद् लघूपध है । गुण हुआ ।
भेद् अन सु–भेदनम् ।

नाऽभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके 7.3.87

पद.—न–अव्य०, अभ्यस्तस्य 6.1, अचि 7.1, पिति 7.1, सार्वधातुके 7.1

अनु.—अंगस्य लघूपधस्य गुणः ।

अर्थ—अजादि पित् सार्वधातुक परे रहते अभ्यस्त संज्ञक अंग की लघूपधा के स्थान पर गुण नहीं होता है ।

उदा.—(1) णिजिर्–णिज्–निज् मिप् (लोट्)–
(णो नः । मेर्निः)
निज् शप् नि–निज् नि–निज् आट् नि–
(शप् को श्लु, आट्)
निज् निज् आनि–नि निज् आनि–
(द्वित्वादि)
नेनिज् आनि–
(निजां त्रयाणां गुणः–)

'उभेऽभ्यस्तम्' से 'नेनिज्' की अभ्यस्तसंज्ञा । अजादि पित् सार्वधातुक (आनि) परे है । प्राप्त लघूपधगुण का प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हुआ ।

नेनिजानि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) णिज्-निज् मिप् (लङ्)-
नेनिज् अम्-अनेनिजम् ।
(पूर्ववत् । गुण निषेध)

(3) विजिर्-विज् मिप् (लोट्)-
वेविजानि ।
(पूर्ववत्)

(4) विज् मिप् (लङ्)-
अवेविजम् ।

(5) विष् मिप् (लोट्)-
परिवेविषाणि ।

(6) विष् मिप् (लङ्)-
अवेविषम् ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'अचि' अर्थात् **अजादि परे** रहते ही लघूपध गुण का निषेध होता है—

निज् तिप् (लङ्)-निज् शप् ति-निज् ति-
(शप्, श्लुत्व, इकार लोप)
निज् त्-निनिज् त्-नेनिज् त्-
(द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास को गुण)
अनेनिज् त्-

(अट् । इस दशा में 'त्' सार्वधातुक है, पित् है परन्तु अजादि नहीं है । अतः अभ्यस्त संज्ञक (नेनिज्) की लघूपधा को प्राप्त गुण का निषेध नहीं होता है ।

अने नेज् त्-अनेनेज्-अनेनेग्-
(हल्ङ्यादि लोप । चोः कुः)
अनेनेग्,-क् ।
(वाऽवसाने)

इसी प्रकार—

निज् तिप् (लट्)-

नेनेक्ति यहाँ पित् सार्वधातुक तो परे है परन्तु वह अजादि नहीं है । अतः गुण का निषेध न हुआ ।

2. 'पिति' अर्थात् **पित्** प्रत्यय परे रहते ही लघूपध गुण का निषेध होता है—

निज् झि-निज् शप् झि-निज् झि-निनिज् झि-नेनिज् झि-नेनिज् अति-
(अदभ्यस्तात्)

इस दशा में 'अति' सार्वधातुक है, अजादि है परन्तु पित् नहीं है । अतः अभ्यस्तसंज्ञक 'नेनिज्' अंग की लघूपधा को प्राप्त गुण का निषेध न होकर गुण प्राप्त हुआ ।

'सार्वधातुकमपित्' से 'अति' ङित् होने से 'क्ङिति' से गुण निषेध हुआ ।

नेनिजति ।

3. 'अभ्यस्तस्य' अर्थात् **अभ्यस्तसंज्ञक** को लघूपध गुण नहीं होता है—

वेदानि यहाँ 'आनि' पित्, अजादि व सार्वधातुक है परन्तु 'विद्' की अभ्यस्त संज्ञा नहीं है । अतः गुणनिषेध न हुआ । वेद में पूर्वोक्त गुणनिषेध की प्रवृत्ति बहुल प्रकार से प्राप्त होती है[1]—

1) जुजोषत् (ऋ० 7.101.5) यहाँ गुण हो गया ।
2) पस्पशाते यहाँ अभ्यास को ह्रस्व हुआ ।

भूसुवोस्तिङि 7.3.88

पद.—भूसुवोः 6.2, तिङि 7.1

अनु.—अंगस्य पिति सार्वधातुके गुणः न ।

अर्थ—पित् सार्वधातुक तिङ परे रहते अंगसंज्ञक 'भू' तथा 'सू' को गुण नहीं होता है ।

धातु पाठ में तीन बार 'सू' धातु का पाठ प्राप्त होता है—

1) षू प्रेरणे (तुदा०) ।
2) षू (दिवा०) ।
3) षूङ् प्राणिगर्भमोचने (अदा०) ।

तुदादिगण में 'श', विकरण तथा दिवादिगण में 'श्यन्' विकरण होता है । दोनों शित् होनें के कारण सार्वधातुक हैं । अपित् होने से दोनों विकरण ङिद्वत् है । इनके परे रहते गुण का स्वतः निषेध प्राप्त होता है । अतः यहाँ 'सू' के द्वारा केवल अदादिगणीय 'षू' का ही ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) भू तिप् (लुङ्)-
भूत्-भू च्लि त्-
(इतश्च, च्लि)-
भू सिच् त्-अ भू स् त्-अभूत्-
(च्लेः सिच् । अट् । गातिस्था घु०)

इस अवस्था में 'त्' पित् सार्वधातुक है । 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से प्राप्त गुण का निषेध हो गया ।

अभूत् ।

1. महा० 7.3.87 (वा०) बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) इसी प्रकार–
भू सिप्–अभूः ।

(3) भू मिप्–
अभूवम् ।

(4) षू–सू इट् (लोट्)–
सू आट् इ–
(प्राप्त गुण का निषेध । उवङ्)
सुव् आ इ–सुव् आ ए–सुवै ।
(आटश्च) ।

(5) इसी प्रकार–
सुवावहै, सुवामहै ।

विशेष—'तिङि' अर्थात् **तिङ्** परे रहते ही गुण का निषेध होता है—

भू तिप्–भू शप् तिप्

इस दशा में सार्वधातुक पित् (शप्) परे है परन्तु वह तिङ् नहीं है । अतः प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है । गुण होकर–भवति ।

उतो वृद्धिर्लुकि हलि 7.3.89

पद.—उतः 6.1, वृद्धिः 1.1, लुकि 7.1, हलि 7.1

अनु.—अंगस्य पिति सार्वधातुके ।

अर्थ—हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते लुक् के विषय में ह्रस्व उकारान्त अंग को वृद्धि आदेश होता है ।

उदा.—(1) यु तिप् (लट्)–यु शप् ति–युति–

शप् का लुक् हुआ है । अतः लुक् का विषय है । 'तिप्' पित् सार्वधातुक है । 'यु' ह्रस्व उकारान्त अंग है । 'ति' हलादि भी है । अतः वृद्धि हो गई–यौति ।

(2) नु शप् तिप्–नौति ।
(3) स्तु तिप्–स्तौति । द्र० स्तौषि (भट्टि० 5.44)
(4) विरौति (भट्टि० 5.54)

विशेष—1. 'उतः' अर्थात् **ह्रस्व उकारान्त** अंग को ही वृद्धि आदेश होता है—

इ तिप्–इ शप् ति–इति–

यहाँ 'तिप्' हलादि पित् सार्वधातुक परे है । लुक् का भी विषय है परन्तु ह्रस्व उकारान्त अंग नहीं है । अतः वृद्धि न हुई । एति ।

2. 'लुकि' अर्थात् **लुक् के विषय** में ही वृद्धि होती है—

सु तिप्–सु श्नुति–सुनुति

यहाँ 'सुनु' ह्रस्व उकारान्त अंग है । हलादि पित् सार्वधातुक (ति) परे है परन्तु लुक् का विषय नहीं है । अतः वृद्धि न हुई । सुनोति ।

3. 'हलि' अर्थात् **हलादि प्रत्यय** परे रहते ही वृद्धि होती है—

यु मिप् (लोट्)–यु आट् मि–

यु आ नि 'आनि' सार्वधातुक है, पित् है परन्तु हलादि नहीं है । अतः वृद्धि न हुई । यो आनि–यवानि ।

ऊर्णोतेर्विभाषा 7.3.90

पद.—ऊर्णोतेः 6.1, विभाषा 1.1

अनु.—अंगस्य हलि पिति सार्वधातुके वृद्धिः ।

अर्थ—हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ऊर्ण् धातु को विकल्प से वृद्धि होती है ।

लट्, लोट्, लङ् तथा वि०लिङ् सार्वधातुक लकार हैं । तिप्, सिप् तथा मिप् हलादि पित् हैं ।

विधिलिङ् में यासुट् आगम होता है जो ङित् है । अतः वि०लिङ् में पित् सार्वधातुक प्राप्त नहीं होता है ।

इस प्रकार प्रकृतसूत्र के स्थल लट्, लोट् व लङ् के तिप्, सिप् व मिप् प्रत्यय हैं ।

उदा.—(1) ऊर्णु तिप् (लट्)–
(शप्, शप् लुक् । उतो वृद्धिर्लुकि० से प्राप्त नित्य वृद्धि का निषेध होकर)

ऊर्णौति ।

पक्ष में—ऊर्णोति (सार्वधातुक गुण) ।

(2) ऊर्णु सिप्–
(पूर्ववत्)
ऊर्णौषि ।
पक्ष में—ऊर्णोषि ।

(3) ऊर्णु मिप्–
(पूर्ववत्)
ऊर्णौमि ।
पक्ष में—ऊर्णोमि ।

(4) ऊर्णु तिप् (लोट्)–
(शप्, शप् का लुक्)
ऊर्णौतु ।
(एरुः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में—ऊर्णोतु ।

(5) ऊर्णु सिप्-ऊर्णु हि-
('हि' अपित् है । अतः प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है) ।
ऊर्णुहि ।

(6) ऊर्णु मिप्-ऊर्णु आट् नि
(आडुत्तमस्य पिच्च । मेर्निः)
आट् पित् है परन्तु हलादि नहीं है । अतः प्रकृत सूत्र प्रवृत्त नहीं होता है ।
ऊर्णवानि ।

(7) ऊर्णु तिप् (लङ्)-
अगला सूत्र देखें ।

(8) ऊर्णु सिप् (लङ्)-
अगला सूत्र देखें ।

(9) ऊर्णु मिप् (लङ्)-
अगला सूत्र देखें ।

गुणोऽपृक्ते 7.3.91

पद.—गुणः 1.1, अपृक्ते 7.1

अनु.—अंगस्य ऊर्णोतेः हलि पिति सार्वधातुके ।

अर्थ—अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते 'ऊर्णु' अंग को गुण होता है ।

लट्, लोट्, लङ् तथा वि०लिङ् सार्वधातुक लकार हैं ।

तिप्, सिप् तथा मिप् हलादि पित् हैं ।

'इतश्च' के द्वारा तिप् आदि के इकार का लोप होता है । तब 'तिप्' के स्थान पर 'त्' तथा 'सिप्' के स्थान पर 'स्' शेष रहता है ।

वि०लिङ् में ङित् यासुट् का आगम होने से पित् उपलब्ध नहीं है ।

लट् व लोट् में अपृक्त हल् प्राप्त नहीं है ।

अतः केवल लङ् के तिप् व सिप् में ही यह सूत्र प्रवृत्त होता है ।

उदा.—(1) ऊर्णु तिप् (लङ्)-ऊर्णु शप् ति-ऊर्णु ति-ऊर्णु त्-
(प्राप्त वैकल्पिक वृद्धि का निषेध होकर)
आट् ऊर्णत्-और्णोत् ।
(आटश्च) ।

(2) ऊर्णु सिप्-ऊर्णु स्-आट् ऊर्णो स्-और्णोः ।
(पूर्ववत्) ।

तृणह इम् 7.3.92

पद.—तृणहः 6.1, इम् 1.1

अनु.—अंगस्य हलि पिति सार्वधातुके ।

अर्थ—हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते 'तृह्' धातु से 'श्नम्' कर चुकने के पश्चात् 'इम्' आगम होता है ।

'तृणहः' श्नम् विकरण कर चुकने के पश्चात् 'तृह्' धातु का षष्ठ्यन्त रूप है । 'इम' के मकार की इत् संज्ञा होती है ।

उदा.—(1) तृह् तिप् (लट्)-
तृ श्नम् ह् ति-
(रुधादिभ्यः श्नम्)
तृन इम् ह् ति-तृ नेह् ति-
तृ ने द् ति-तृनेद् धि-
(हो ढः । झषस्तथो०)
तृनेद्ढि-तृनेढि-तृणेढि ।
(ष्टुना ष्टुः । ढो ढे लोपः । ऋवर्णान्नस्य णत्वं०)

(2) तृह् सिप्-तृ श्नम् इम् ह् सि-तृ नेह् सि-तृनेद् सि-तृनेक् सि-तृनेक्षि-तृणेक्षि ।

(3) तृह् मिप्-तृन इ ह् मि-तृनेह्मि-तृणेह्मि (भट्टि० 6.39) ।

(4) तृह् तिप् (लोट्)-तृ न ह् ति-तृन इम् ह् ति-तृनेह् ति-तृणेढु (भट्टि० 1.19) ।
('तृणेढि' की तरह) ।

(5) तृह् तिप् (लङ्)-तृ श्न इम् ह् त्-
(श्नम् । इम् । इकार लोप)
तृनेह्-तृनेद्-तृनेड्
(अपृक्त प्रत्यय लोप । ढत्व । जश्त्व)
अतृणेड्,-ट् (भट्टि० 17.15) ।

(6) तृह् सिप्-अतृणेड्,-ट् । पूर्ववत् ।

विशेष—'तृणहः' यहाँ श्नम् युक्त निर्देश का फल है कि 'इम्' आगम 'श्नम्' का अपवाद नहीं है । इसका दूसरा प्रयोजन है कि प्रथम 'श्नम्' होता है, पश्चात् 'इम्' होता है ।

ब्रुव ईट् 7.3.93

पद.—ब्रुवः 5.1, ईट् 1.1

अनु.—अंगस्य हलि पिति सार्वधातुके ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'ब्रू' अंग से पर हलादि पित् सार्वधातुक को 'ईट्' का आगम होता है।

टकार की इत् संज्ञा होती है।

हलादि पित् सार्वधातुक नौ स्थल हैं—

लट्-तिप्, सिप्, मिप्,
लोट्-तिप्, सिप्, मिप्,
लङ्-तिप्, सिप्, मिप्,

उदा.—(1) ब्रू तिप्-ब्रू शप् ति-ब्रू ति-
ब्रू ईट् ति-ब्रो ई ति-
(सार्वधातुकार्ध०)
ब्रवीति।

(2) ब्रू सिप्-ब्रवीषि।

(3) ब्रू मिप्-ब्रवीमि।

(4) ब्रू तिप् (लोट्)
ब्रू ईट् तु-ब्रवीतु।
(पूर्ववत्)।

(5) लोट् सिप् को 'हि' अपित् आदेश होता है।
अतः सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है।

(6) लोट् मिप् में आट् होता है। जो अजादि है।
अतः ईट् नहीं होता है।

(7) ब्रू तिप् (लङ्)-
ब्रू ईट् त्-अब्रवीत्।
(पूर्ववत्)।

(8) ब्रू सिप्-अब्रवीः।

(9) लङ् में 'मिप्' को 'अम्' आदेश होता है जो अजादि है। अतः वृद्धि नहीं होती है।

यङो वा 7.3.94

पद.—यङः 5.1, वा-अव्य०।

अनु.—हलि पिति सार्वधातुके ईट्।

अर्थ—यङ् से उत्तर हलादि पित् सार्वधातुक को विकल्प से 'ईट्' आगम होता है।

यङन्त से सदा आत्मनेपद होता है। अतः हलादि पित् उपलब्ध नहीं है। इसलिए यहाँ यङ्लुक् के उदाहरण दिए गए हैं—

उदा.—(1) लालपीति
लप् यङ्-ल लप् य-लालप्य-लालप् ति-लालप् ईट् ति-लालपीति।

(2) इसी प्रकार-वद्-वावदीति।

(3) भू-बोभवीति यहाँ 'ईट्' हुआ है भू यङ्-बोभूय-बोभू ति-बोभू ईट् ति-बोभवीति।
पक्ष में—बोभोति।

तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके 7.3.95

पद.—तुरुस्तुशम्यमः 5.1, सार्वधातुके 7.1

अनु.—अंगस्य हलि ईट् वा।

अर्थ—तु (सौत्र धातु), रु, स्तु, शम् तथा अम् धातुओं से उत्तर हलादि सार्वधातुक को 'ईट्' आगम विकल्प से होता है।

उदा.—(1) तु तिप्-तु ईट् ति-तो ईति-तवीति-उत्तवीति।
पक्ष में—उत्तौति (उतो वृद्धिर्लुकि०)

(2) रु ति-रवीति।
(पूर्ववत्)
पक्ष में—रौति।

(3) स्तु ति-स्तवीति।
पक्ष में—स्तौति।

(4) शम् ध्वम्-शम् ईट् ध्वम्-
शमीध्वम्।
पक्ष में—
शम् ध्वम्-शंध्वम्-शन्ध्वम्।

(5) अम् तिप्-अमीति।
पक्ष में—
अम् ति-अं ति-अन्ति।

अस्तिसिचोऽपृक्ते 7.3.96

पद.—अस्तिसिचः 5.1, अपृक्ते 7.1

अनु.—अंगस्य हलि सार्वधातुके ईट्।

अर्थ—'अस्' धातु से उत्तर तथा 'सिच्' से उत्तर अपृक्त हलादि सार्वधातुक को 'ईट्' आगम होता है।

यहाँ 'अस्ति' के द्वारा अदादिगणीय 'अस्' धातु का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) अस् तिप् (लङ्)-अस् शप् ति-अस् ति-अस् त्-अस् ईट् त्-आ अस् ईत्-आसीत्।

(2) अस् सिप्-अस् स्-
(पूर्ववत्)।
आ अस् ई स्-आसीः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) कृ तिप् (लुङ्)–
कृ च्लि त्–कृ सिच् त्–कृ इ स् ई त्–
कार् इ स् ई त्–अकार्षीत् ।

विशेष—1. 'अपृक्ते' अर्थात् **'अपृक्त'** प्रत्यय को ही 'ईट्' आगम होता है—

अस् तिप् (लट्)–अस् शप् ति–अस् ति हलादि सार्वधातुक (तिप्) परे है परन्तु यह अपृक्त नहीं है । अतः ईट् नहीं हुआ–अस्ति ।

2. सूत्र की उपर्युक्त व्याख्या काशिकासम्मत है जिसमें निम्नलिखित दो दोष उपस्थित होते हैं—

1) अस् लुङ्–भू लुङ्–भू ति–भू त्–अभूत्

यहाँ 'भू' को स्थानिवद्भाव से 'अस्' मान लेने पर 'ईट्' प्राप्त होता है परन्तु एक वार्तिक[1] के द्वारा स्थानिवद्भाव का निषेध हो जाता है । तब 'अभूत्' बन जाता है ।

2) पा लुङ्–पा स् त्–अपात् यहाँ 'गातिस्थाघुपा०' से सिच् का लुक् हुआ है । तब प्रत्ययलक्षण के द्वारा अथवा स्थानिवद्भाव के कारण ईट् आगम प्राप्त होता है । जिसका कोई समाधान नहीं है ।

उपर्युक्त दोषों के समाधान हेतु नव्य वैयाकरणों ने इस सूत्र की व्याख्या अन्य प्रकार से की है । इस सम्बन्ध में हम यहाँ भट्टोजि दीक्षित सम्मत व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं । जिज्ञासु जन इस का भी अनुशीलन करें । भट्टोजि के अनुसार 'अस्ति' पद में 'अस्' धातु का ग्रहण नहीं है अपितु विभक्ति प्रतिरूपक 'अस्ति' अव्यय का ग्रहण जानना चाहिए । इस अव्यय का अर्थ है—विद्यमान ।

'अस्तिसिचः' पद की व्युत्पत्ति निम्नलिखित प्रकार से मानी गई है—

सिच् च अस् च–सिच स् (कुत्व व जश्त्व का सौत्रत्वात् अभाव है)। अस्ति (विद्यमानं) च तत् सिचस्–अस्तिसिचस्। अब 'सुपां सुलुक्०' से यहाँ पञ्चमी का लुक् माना गया है ।

इस व्युत्पत्ति के अनुसार भट्टोजि ने प्रकृतसूत्र का अर्थ इस प्रकार किया है—

विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्याऽपृक्त हल ईडागमः स्यात्

अर्थात् विद्यमान सिच् से परे तथा विद्यमान अस् से परे अपृक्त हल् को ईट् का आगम होता है ।

इस अर्थ के अनुसार 'अभूत्' (अस् वाला) में 'अस्' के विद्यमान न होने से 'ईट्' प्राप्त नहीं होता है ।

अपि च 'अभूत्' (भू वाला) में 'सिच्' के विद्यमान न होने से ईट् की प्राप्ति नहीं होती है ।

इस प्रकार दोषों का निवारण हो जाता है ।

बहुलं छन्दसि 7.3.97

पद.—बहुलम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य अस्तिसिचः अपृक्ते हलि सार्वधातुके ईट् ।

अर्थ—वेद के विषय में अस् तथा सिच् से उत्तर हलादि अपृक्त सार्वधातुक को बहुलता से ईट् आगम होता है ।

उदा.—(1) अस् तिप् (लङ्)–आट् अस् त्–
आ अस्–आः
(हल्ङ्यादिलोप । वृद्धि)
यहाँ ईट् न हुआ ।

(2) आसीत् यहाँ ईट् हुआ है ।

(3) क्षर् तिप् (लुङ्)–क्षर् सिच् त्–
(इट् का अभाव छान्दस जानना चाहिए)
अक्षर् स् त्–अक्षार् स् त्
(अतो ह्रान्तस्य) ।
अक्षार् स्–अक्षाः (ऋ० 9.107.9) ।
(हल्ङ्यादि लोप । रात्सस्य)
यहाँ 'सिच्' को 'ईट्' न हुआ ।

(4) भी लुङ्–अट् भी सिच् ईट् स्–
अभैषीस्–अभैषीः ।
(सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) ।

(5) अत्साः (ऋ० 10.28.4) ।

रुदश्च पञ्चभ्यः 7.3.98

पद.—रुदः 5.1, (बहुवचनस्य स्थाने एकवचनम्) च–अव्य०, पञ्चभ्यः 5.3

अनु.—अंगस्य अपृक्ते हलि सार्वधातुके ।

अर्थ—अंगसंज्ञक 'रुद्' आदि पाँच धातुओं से उत्तर हलादि अपृक्त सार्वधातुक को 'ईट्' आगम होता है ।

रुदादि पाँच धातु ये हैं—
1. रुद्, 2. स्वप्, 3. श्वस्, 4. अन् तथा 5. जक्ष् ।

उदा.—(1) रुद् तिप् (लङ्)–रुद् त्
(शप्, शप् का लुक्, इकार लोप)

1. महा० 1.1.56 (वा०) आहिभुवोरीट् प्रतिषेधः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अट् रुद् ईट्त – अरोदीत् (भट्टि० 17.48)।

(2) स्वप् – अस्वपीत्।

(पूर्ववत्)

(3) श्वस् – अश्वसीत्।

(4) अन् – आट् अन् ईट् त् – आनीत् – प्राणीत्।

(आटश्च। अनितेरन्तः)।

(5) जक्ष् – अजक्षीत्।

विशेष—'पञ्चभ्यः' अर्थात् पाँच धातुओं से उत्तर हलादि अपृक्त को ईट् होता है—

अजागः (भवान्) 'जागृ' रुदादि पाँच में सम्मिलित नहीं है। अतः यहाँ ईट् न हुआ।

अड् गार्ग्यगालवयोः 7.3.99

पद.—अट् 1.1, गार्ग्यगालवयोः 6.2

अनु.—रुदः पञ्चभ्यः अपृक्ते हलि सार्वधातुके अंगस्य।

अर्थ—गार्ग्य तथा गालव आचार्यों के मत में रुद् आदि पाँच धातुओं से उत्तर अपृक्त हलादि सार्वधातुक को 'ईट्' होता है।

उदा.—(1) रुद् तिप् (लङ्)-अरुद् अट् त्-अरोदत् (भट्टि० 17.48)

इसी प्रकार—अरोदः।

(2) अस्वपत्, अस्वपः।

(3) अश्वसत्, अश्वसः।

(4) प्राणत्, प्राणः।

(5) अजक्षत्, अजक्षः।

अदः सर्वेषाम् 7.3.100

पद.—अदः 5.1, सर्वेषाम् 6.3

अनु.—अंगस्य अपृक्ते हलि सार्वधातुके अट्।

अर्थ—सभी आचार्यों के मत में 'अद्' धातु से पर हलादि अपृक्त सार्वधातुक को 'अट्' आगम होता है।

उदा.—(1) अद् तिप्-अद् अट् त्-

(शप्, शप् का लुक्, इकार लोप, अट्)

आ अदत्-आदत्।

(2) अद् सिप्-आदः।

अतो दीर्घो यञि 7.3.101

पद.—अतः 6.1, दीर्घः1.1, यञि 7.1

अनु.—अंगस्य सार्वधातुके।

अर्थ—यञादि सार्वधातुक परे रहते अदन्त अंग को दीर्घ आदेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा दीर्घ अन्त्य अल् (ह्रस्व अकार) के स्थान पर होता है।

उदा.—(1) पच् वस्-पच् शप् वस्-पच वस्-पचावः।

(2) पचामः (पूर्ववत्)।

(3) सेव् वहि-सेव् शप् वहि-सेव वहि-सेवावहि-सेवावहे।

(टित आत्मनेपदानां०)

(4) सेवामहे (पूर्ववत्)।

विशेष—1. 'अतः' अर्थात् **अदन्त** अंग को दीर्घ होता है— चि श्नु वस् – चिनु वस्

'वस्' यञादि सार्वधातुक है परन्तु चिनु अदन्त नहीं है। अतः दीर्घ नहीं होता है—चिनुवः।

2. 'यञि' अर्थात् **यञादि** परे रहते ही दीर्घ होता है—

पच् तस्-पच् शप् तस्-पच तस्।

'पच' अदन्त अंग है परन्तु 'तस्' यञादि नहीं है। अतः दीर्घ नहीं होता है—पचतः।

सुपि च 7.3.102

पद.—सुपि 7.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य अतः दीर्घः यञि।

अर्थ—यञादि सुप् परे रहते अदन्त अंग को दीर्घ आदेश होता है।

यञादि सुप् निम्नलिखित हैं—

1. भ्याम्, 2. भिस्, 3. य (ङे का आदेश), 4. भ्याम्, 5. भ्यस्, 6. भ्याम्, 7. भ्यस्।

उदा.—(1) देव भ्याम्-देवाभ्याम्।

(2) देव ङे -देव य-(ङेर्यः)

'य' को स्थानिवद्भाव से 'सुप्' मानकर दीर्घ आदेश हुआ। देवाय।

(3) देव भिस्, देव भ्यस्-यहाँ प्रकृतसूत्र प्रवृत्त नहीं होता है।

बहुवचने झल्येत् 7.3.103

पद.—बहुवचने 7.1, झलि 7.1, एत् 1.1

अनु.—अंगस्य अतः सुपि।

अर्थ—बहुवचन झलादि सुप् परे रहते अदन्त अंग को एकार आदेश होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा एकार आदेश अन्त्य अल् (ह्रस्व अकार) के स्थान पर होता है।

झलादि बहुवचन सुप् चार हैं—

1. भिस्, 2. भ्यस्,
3. भ्यस्, 4. सुप्।

उदा.—(1) देव भिस् यहाँ 'अतो भिस ऐस्' से 'ऐस्' आदेश होता है। अतः प्रकृतसूत्र प्रवृत्त नहीं होता है।

(2) देव भ्यस्-देव् ए भ्यस्-देवेभ्यः।

(3) देव सुप्-देव सु-देव् ए सु-देवेसु-देवेषु।

विशेष—'सुपि' का अधिकार होने से—

पच् शप् ध्वम्-पच ध्वम्—

यहाँ एकार आदेश नहीं होता है।

'ध्वम्' बहुवचन झलादि तो है परन्तु सुप् नहीं है। अतः अदन्त अंग 'पच' को एकार आदेश नहीं हुआ।

ओसि च 7.3.104

पद.—ओसि 7.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य अतः एत्।

अर्थ—'ओस्' परे रहते अदन्त अंग को एकार आदेश होता है।

उदा.—वृक्ष ओस्-वृक्ष् ए ओस्-वृक्ष योस्-वृक्षयोः। (एचोऽयवायावः। रुत्व, विसर्ग)।

आङि चाऽऽपः 7.3.105

पद.—आङि 7.1, च-अव्य०, आपः 6.1

अनु.—अंगस्य एत् ओसि।

अर्थ—आङ् अथवा ओस् परे रहते 'आप्' को एकार आदेश होता है।

'आप्' से अभिप्राय है—आबन्त अंग। अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा एकार आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

'टा' विभक्ति को ही पूर्वाचार्य 'आङ्' कहते हैं। द्र० आङो नाऽस्त्रियाम् (पा० 7.3.119)।

उदा.—(1) रमा टा - रम् ए आ - रमया।

(2) रमा ओस् - रम् ए ओस् - रमय् ओस् - रमयोः।

सम्बुद्धौ च 7.3.106

पद.—सम्बुद्धौ 7.1, च -अव्य०।

अनु.—अंगस्य आपः एत्।

अर्थ—सम्बुद्धि परे रहते आबन्त अंग को एकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा एकार आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

उदा.—हे माला सु - हे माला स् - हे माल् ए स् - हे माले (एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः)।

अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः 7.3.107

पद.—अम्बार्थनद्योः 6.2, ह्रस्वः 1.1

अनु.—अंगस्य सम्बुद्धौ।

अर्थ—सम्बुद्धि परे रहते माता अर्थ वाले अथवा नदी संज्ञक अंग को ह्रस्व होता है।

ह्रस्व आदेश अन्त्य अल् को होता है।

उदा.—(1) हे अम्बा सु - हे अम्ब स् - हे अम्ब (भाग० 10.25.20)

(एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः)

हे अक्का सु - हे अक्क।

हे अल्ला सु - हे अल्ल।

(2) हे कुमारी सु - हे कुमारि स् - हे कुमारि।

हे वधू सु - हे वधु स् - हे वधु।

विशेष—1. सम्बुद्धि परे रहते नदीसंज्ञक ङ, ल, क वाले शब्दों को ह्रस्व नहीं होता है[1]—

हे अम्बाडा सु - हे अम्बाडे (सम्बुद्धौ च)।

हे अम्बाला सु - हे अम्बाले।

हे अम्बिका सु - हे अम्बिके।

2. वेद के विषय में ङ, ल, क वाले नदीसंज्ञक शब्दों को सम्बुद्धि में ह्रस्व विकल्प होता है[2]—

हे अम्बाड, हे अम्बाडे।

हे अम्बाल, हे अम्बाले।

हे अम्बिक, हे अम्बिके।

3. ङि और सम्बुद्धि परे रहते तल् प्रत्ययान्त शब्द को विकल्प से ह्रस्व होता है[3]—

1. महा० 7.3.107 (वा०) डलकवतीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः।
2. महा० 7.3.107 (वा०) छन्दसि वेति वक्तव्यम्।
3. महा० 7.3.107 (वा०) तलो ह्रस्वो वा ङिसम्बुद्ध्योरिति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता ङि – देवत इ – देवते (ह्रस्व)।
देवता ङि – देवतायाम् (ह्रस्व अभाव, याडापः)।
हे देवता सु – हे देवत स् – हे देवत (ह्रस्व)।
हे देवता सु – हे देवते।

4. सम्बुद्धि परे रहते 'मातृ' शब्दों को 'मात च्' आदेश होता है, पुत्रार्थ अर्ह के लिए[1]—

हे गार्गीमातृ सु–हे गार्गी मातच् स्–हे गार्गीमात।

ह्रस्वस्य गुणः 7.3.108

पद.—ह्रस्वस्य 6.1, गुणः 1.1

अनु.—सम्बुद्धौ अंगस्य।

अर्थ—सम्बुद्धि परे रहते ह्रस्वान्त अंग को गुण आदेश होता है।

गुण आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

उदा.—(1) हे कवि सु – हे कवे स् – हे कवे।
(एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः)
(2) हे साधु सु – हे साधो स् – हे साधो।
(पूर्ववत्)।

जसि च 7.3.109

पद.—जसि 7.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य ह्रस्वस्य गुणः।

अर्थ—'जस्' परे रहते ह्रस्वान्त अंग को गुण होता है। गुणादेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

उदा.—(1) कवि जस् – कवि अस् –
(इको यणचि। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। गुण)
कवे अस् – कवय् अस् – कवयः।
(2) साधु जस् – साधो अस् – साधवः।
(पूर्ववत्)

विशेष—पा० 7.4.1 पर्यन्त वेद के विषय में जसादि परे रहते सभी कार्य विकल्प से होते हैं[2]—

1. अम्ब, अम्बे;

2. शतक्रतवः, शतक्रत्वः (शत० 7.2.4.27), पारयिष्ण्वः (ऋ० 10.97.3); पारयिष्णवः (ऋ० 8.20.1)

3. पशवे, पश्वे। शिश्वा (ऋ० 1.65.10)।

ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः 7.3.110

पद.—ऋतः 6.1, ङिसर्वनामस्थानयोः 7.2

अनु.—अंगस्य गुणः।

अर्थ—ङि अथवा सर्वनामस्थान परे हो तो ऋदन्त अंग के स्थान पर गुण आदेश होता है।

ऋदन्त – ह्रस्व ऋकारान्त।

निम्नलिखित सात विभक्तियों की सर्वनाम स्थान संज्ञा होती है।

1) सुड् अनपुँसकस्य—नपुँसक को छोड़कर पुलिंग व स्त्रीलिंग में सुट् (अर्थात् सु, औ, जस्, अम्, औट्) की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है।

2) शिसर्वनामस्थानम्—नपुँसकलिंग में 'जश्शसोः शिः' के द्वारा 'जस्' और 'शस्' के स्थान पर प्राप्त होने वाले 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है।

अलोऽन्त्य परिभाषा तथा 'इको गुणवृद्धी' के द्वारा यह गुण आदेश अन्त्य ऋवर्ण के स्थान पर होता है।

'उरण् रपरः' से यह गुणादेश रपर भी होता है।

उदा.—(1) पितृ ङि – पितृ इ – पितर् इ – पितरि।
मातृ ङि – मातरि।
कर्तृ ङि – कर्त्तरि।
(2) पितृ औ – पितर् औ – पितरौ।
कर्तृ औ– कर्तर् औ –
(अप्तृन्तृच्स्वसृ०)
कर्त्तारौ।

घेर्ङिति 7.3.111

पद.—घेः 6.1, ङिति 7.1

अनु.—अंगस्य सुपि गुणः।

अर्थ—ङित् सुप् परे रहते घिसंज्ञक अंग को गुण होता है। यह गुण अन्त्यवर्ण के स्थान पर होता है।

'शेषोध्यसखि' से घि संज्ञा होती है।

ङित् चार विभक्तियाँ हैं—
1. ङे, 2. ङसि, 3. ङस्, 4. ङि।

उदा.—(1) कवि ङे – कवे ए – कवय् ए – कवये।
(2) कवि ङसि – कवे अस् – कवेः
(ङसिङसोश्च)

1. महा० 7.3.107 (वा०) मातॄणां मातच् पुत्रार्थमर्हते।
2. महा० 7.3.109 (वा०) जसादिषु छन्दसि वावचनं प्राङ्णौ चङ्युपधाया ह्रस्व इत्येतस्मात्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) कवि ङस् – कवेः । (ङसिङसोश्च)

(4) कवि ङि –

(पूर्ववत् प्राप्त गुण का बाध हो जाता है)

द्र० अच्च घेः (पा० 7.3.118) ।

'ङिति' अर्थात् ङित् सुप् परे रहते ही गुण होता है—

आण्नद्याः 7.3.112

पद.—आट् 1.1, नद्याः 5.1

अनु.—अंगस्य ङिति ।

अर्थ—नद्यन्त अंग से उत्तर ङित् प्रत्यय को आट् आगम होता है ।

आट् के टकार की इत्संज्ञा है ।

टित् होने से यह आदि में होता है ।

उदा.—(1) कुमारी –

(यूस्त्याख्यौ नदी)

कुमारी ङे – कुमारी आ ए – कुमारी ऐ –

(आट् । आटश्च)

कुमार्यै ।

(इको यणचि) ।

वधू ङे – वधू आ ए – वधू ऐ – वध्वै ।

(2) कुमारी ङसि (या ङस्) –

कुमारी आ अस् – कुमारी आस् – कुमार्याः ।

(आटश्च । यण्) ।

वधू अस् – वध्वाः ।

(पूर्ववत्)

(3) कुमारी ङि 'ङेराम्नद्याम्०' (पा० 7.3.116)

कुमार्याम्

याडापः 7.3.113

पद.—याट् 1.1, आपः 5.1

अनु.—अंगस्य ङिति । सुपि ।

अर्थ—आबन्त अंग से उत्तर ङित् सुप् को 'याट्' आगम होता है ।

उदा.—(1) माला ङे–माला याट् ए–मालायै ।

(2) माला ङसि (या ङस्)–माला अस्–माला याट् अस्–मालायाः ।

(3) माला ङि–माला आम्–(ङेराम्नद्याम्नीभ्यः। स्थानिवद्-भाव से 'आम्' ङित् हुआ) ।

माला याट् आम्–मालायाम् ।

सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च 7.3.114

पद.—सर्वनाम्नः 5.1, स्याट् 1.1, ह्रस्वः 1.1

अनु.—अंगस्य आपः ङिति सुपि ।

अर्थ—यहाँ 'आपः' की आवृत्ति करके अर्थ किया जाता है । एक 'आपः' पञ्चम्यन्त तथा दूसरा 'आपः' षष्ठ्यन्त है ।

आबन्त सर्वनाम अंग से पर ङित् सुप् को 'स्याट्' आगम होता है तथा आबन्त अंग को ह्रस्व होता है ।

उदा.—(1) सर्वा ङे – सर्वस्याट् ए – सर्वस्यै ।

(वृद्धिरेचि)

इसी प्रकार—यस्यै, तस्यै, कस्यै आदि ।

(2) सर्वा अस् (ङसि या ङस्) –

सर्व स्याट् अस् – सर्वस्याः ।

इसी प्रकार—यस्याः, तस्याः, कस्याः आदि ।

विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् 7.3.115

पद.—विभाषा 1.1, द्वितीयातृतीयाभ्याम् 5.2

अनु.—अंगस्य ङिति स्याट् ह्रस्वश्च ।

अर्थ—द्वितीया व तृतीया अंग से उत्तर ङित् सुप् को विकल्प से स्याट् आगम होता है तथा अंग को (स्याट् के पक्ष में) ह्रस्व होता है ।

जब स्याट् आगम होगा तभी अंग को ह्रस्व होगा ।

उदा.—(1) द्वितीया ङे – द्वितीय स्याट् ए – द्वितीयस्यै । पक्ष में – द्वितीया ए – द्वितीया याट् ए – द्वितीयायै ।

तृतीया ङे – तृतीयस्यै ।

पक्ष में – तृतीयायै ।

ङेराम्नद्याम्नीभ्यः 7.3.116

पद.—ङेः 6.1, आम् 1.1, नद्याम्नीभ्यः 5.3

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—नद्यन्त, आबन्त तथा नी शब्द – इन अंगों से उत्तर 'ङि' के स्थान पर 'आम्' आदेश होता है । 'आम्' के मकार की इत्संज्ञा का निषेध हो जाता है (द्र० न विभक्तौ तुस्माः) ।

उदा.—(1) कुमारी ङि – कुमारी आम् –

(स्थानिवद्भाव से 'आम्' ङित् है । 'आण्नद्याः' के द्वारा 'आट्' तथा 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से 'नुट्' युगपत् प्राप्त होते हैं । पर कार्य होने से 'आट्' हुआ ।

कुमारी आट् आम् –

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव से 'नुट्' न हुआ)।
कुमार्याम्।
वधू ङि–वधू आम्–वधू आ आम्–
वध्वाम्।
पूर्ववत्।
(2) माला ङि–माला आम्–
(स्थानिवद्भाव से 'आम्' ङित्)
माला याट् आम्–मालायाम्।
(3) सेनानी ङि–सेनानी आम्–
सेनान्याम्।

इदुद्भ्याम् 7.3.117

पद.—इदुद्भ्याम् 5.2

अनु.—ङेराम् नद्याः।

अर्थ—नदी संज्ञक ह्रस्व इकार या उकार से पर 'ङि' के स्थान पर 'आम्' आदेश होता है।

उदा.—(1) मति ङि–मति आम्–
(आण्नद्याः। ह्रस्वनद्यापो नुट्। परत्वात् आट्)
मति आट् आम्–मति आम्–मत्याम्।
(ङिति ह्रस्वश्च' के द्वारा विकल्प से नदीसंज्ञा हुई है। नदीसंज्ञा पक्ष में 'मत्याम्' बनता है तथा नदी संज्ञा अभाव पक्ष में घिसंज्ञा होकर 'अच्च घेः' के द्वारा 'मतौ' बनता है)।
(2) धेनु ङि–धेनु आम्–धेनु आट् आम्–धेन्वाम्।

औदच्च घेः 7.3.118

पद.—औत् 1.1, अत् 1.1, च–अव्य०, घेः 6.1

अनु.—अंगस्य ङेः इदुद्भ्याम्।

अर्थ—इकारान्त उकारान्त अंग से उत्तर 'ङि' सुप् को औकार आदेश होता है तथा घिसंज्ञक अंग को ह्रस्व अकार आदेश होता है।

महाभाष्य में इस सूत्र के योगविभाग का सुझाव दिया गया है। यहाँ हम महाभाष्य के अनुसार सूत्र की व्याख्या कर रहे हैं—(क) औत्,
(ख) अच्च घेः,

औत् (इदुद्भ्याम् ङेः) अर्थात् ह्रस्व इकार व ह्रस्व उकार से उत्तर 'ङि' के स्थान पर 'औ' आदेश होता है।

उदा.—(1) सखि ङि –
(अकः सवर्णे दीर्घः को बाधकर)
सखि औ – सख्यौ।
(इको यणचि)
ध्यान रहे 'औत्' में तपरकरण तत्काल के लिए है।
(2) पति औ – पत्यौ।

अच्च घेः (इदुद्भ्याम् ङेः औत्) अर्थात् ह्रस्व इकार या ह्रस्व उकार से उत्तर 'ङि' के स्थान पर 'औ' आदेश होता है तथा घिसंज्ञक अंग के स्थान पर ह्रस्व अकार आदेश होता है।

उदा.—(1) कवि ङि – कव् अ औ – कवौ।
(2) साधु ङि – साध् अ औ – साधौ।
(3) मति ङि – मत् अ औ – मतौ।
(4) धेनु ङि – धेन् अ औ – धेनौ।

'अत्' यह तपरकरण स्त्रीलिंग में 'टाप्' की निवृत्ति के लिए है।

आङो नाऽस्त्रियाम् 7.3.119

पद.—आङः 6.1, ना– 1.1, अस्त्रियाम् 7.1

अनु.—अंगस्य घेः।

अर्थ—स्त्रीलिंग को छोड़कर घिसंज्ञक अंग से उत्तर 'आङ्' सुप् के स्थान पर 'ना' आदेश होता है।

प्राचीन वैयाकरण 'टा' के लिए 'आङ्' का प्रयोग करते थे। द्र० आङि चाऽऽपः।

उदा.—(1) कवि टा – कवि ना – कविना।
(2) साधु टा – साधु ना – साधुना।

विशेष—'अस्त्रियाम्' अर्थात् **स्त्रीलिंग को छोड़कर** 'ना' आदेश होता है—
1. मति टा –
'मति' घिसंज्ञक अंग है परन्तु स्त्रीलिंग है। अतः 'टा' को 'ना' आदेश न हुआ—मत्या (यण्)।
2. धेनु टा –
'धेनु' घिसज्ञक अंग है परन्तु स्त्रीलिंग है। अतः 'टा' को 'ना' नहीं हुआ – धेन्वा।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां सप्तमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तमाऽध्यायस्य

चतुर्थः पादः

णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः 7.4.1

पद.—णौ 7.1, चङि 7.1, उपधायाः 6.1, ह्रस्वः 1.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—'चङ्' है परे जिसके ऐसे 'णि' के परे रहते अंग की उपधा को ह्रस्व होता है ।

उदा.—(1) कृ णिच्–(हेतुमति च)
कारि ल् (धातु संज्ञा, लुङ्)
कारि तिप्–कारित्–कारि च्लि त्–

(तिप्, इकार लोप, च्लि, 'णेरनिटि' से णिलोप) कार् चङ् त् (णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ्) ।

'चङि' से द्वित्व तथा प्रकृतसूत्र के द्वारा उपधाह्रस्व युगपत् प्राप्त होते हैं । परत्व के कारण उपधा को ह्रस्व हुआ—
कर् अत्
(णौ कृतं स्थानिवद् भवति–से 'कृ' को द्वित्व)
कृ कृ अ त्–कर् कृ अ त्–
च कृ अ त्–चि क र् अ त्–
(सन्वल्लघुनि० । सन्यतः)
ची करत्–अचीकरत् ।
(दीर्घो लघोः । अट्) ।

(2) ह्र णिच्–हारित्–हारि चङ् त्–

हार् अत्–हर् अत्–ह्र ह्र अत्–हर् ह्र अत्–ह्र हर् अत्–झहरत्–जहरत्–जिहरत्–जीहरत्–अजीहरत् । (पूर्ववत्) ।

(3) लू णिच्–लावि चङ् त्–लाव् अत्–लव् अ त्–लिलवत्–अलीलवत् ।

(4) पू–अपीपवत् ।
ह्लाद्—अजिह्लदत् (भट्टि० 15.110)

(5) कम् णिङ्–

कमेर्णिङ् । आयादय आर्धधातुके वा) कामि लुङ्–
काम् इ चङ् त–
(णिङ् पक्ष में, त, च्लि, चङ्)
काम् अत्–कम् अत–
ककम् अत–चकमत–चिकमत–
अचीकमत । द्र० ग्रह् लुङ्–ग्रह् णिच् चङ् त्–अजि ग्रह् अ त् (पूर्ववत् उपधा ह्रस्व, द्वित्वादि होकर)
अजिग्रहत् (भट्टि० 2.42) ।

विशेष—1. 'णौ' अर्थात् **णि परे** रहते ही उपधा ह्रस्व होता है—

अलीलवत् यहाँ वृद्धि आदेश व उपधाह्रस्व युगपत् प्राप्त होते हैं । तब वृद्धि आदेश अन्तरंग होने से प्राप्त होता है परन्तु वचन सामर्थ्य से उपधा ह्रस्व होता है ।

2. 'चङि' अर्थात् **चङ् परक** णि के परे रहते उपधा ह्रस्व होता है—

कारयति यहाँ 'णि' परे है परन्तु वह चङ् परक नहीं है । अतः ह्रस्व न हुआ ।

3. 'उपधायाः' अर्थात् **उपधा** को ही ह्रस्व होता है—

अचकाङ्क्षत् यहाँ चङ्परक 'णि' परे है परन्तु उपधा में अच् नहीं है । अतः ह्रस्व न हुआ ।

नाऽग्लोपिशास्वृदिताम् 7.4.2

पद.—न–अव्य०, अग्लोपिशास्वृदिताम् 6.3

अनु.—अंगस्य णौ चङि उपधायाः ह्रस्वः ।

अर्थ—अक् (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) लोप हुआ है जिस अंग में उसकी, शास् धातु की तथा ऋदित् धातु की उपधा को ह्रस्व नहीं होता है, चङ्परक णि परे रहते ।

उदा.—(1) मालाम् आख्यत्–
माला णिच्–
(तत्करोति तदाचष्टे)
माल् इ–

(णाविष्ठवत् प्राति०। तुरिष्ठेमेयस्सु । अब 'मालि' अग्लोपी धातु हुआ)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालि चङ् त्-
(पूर्ववत् लुङ्, तिप्, च्लि, चङ्)
माल् अत्-माल् माल् अत्-
(उपधा ह्रस्व न हुआ। णि लोप। द्वित्व)
अममालत्।

(2) राजानमतिक्रान्तवान् अति राजन् णिच्-
(प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च (ग०सू०))
अति अर राजत्-अत्यरराजत्।
(अट्। पूर्ववत्)

(3) लोमान्यनुमृष्टवान्-
अनुलोमन् णिच्-
(सत्यापपाशरूप०)
अन्वलुलोमत्।

(4) इसी प्रकार—अशशासत् में उपधा ह्रस्व न हुआ।

(5) बाधृ णिच् चङ् त्-
अबबाधत्।
ऋदित् धातु है।
याचृ-अययाचत्।
ढोकृ-अडुढौकत्।

भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् 7.4.3

पद.—भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडाम् 6.3, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य णौ चङि उपधायाः ह्रस्वः।

अर्थ—'चङ्' परे है जिसके ऐसे 'णि' के परे रहते अंग-संज्ञक भ्राज, भास, भाष, दीप्, जीव्, मील् तथा पीड् की उपधा को विकल्प से ह्रस्व होता है।

उदा.—(1) भ्राज् णिच् चङ् त् (पूर्ववत्)-
भ्राज् अत्-भ्राज् भ्राज् अत्-
बभ्राज् अत्-अबभ्राजत्।
पक्ष में—अबिभ्रजत् (उपधा ह्रस्व)।

(2) भास् णिच् चङ् त्-
अबभासत्।
पक्ष में—अबीभसत्।

(3) भाष् णि चङ् त्-
अबभाषत्।
पक्ष में—अबीभषत्।

(4) दीप् णिच् चङ् त्-
अदिदीपत्।
पक्ष में—अदीदिपत्।

(5) जीव् णिच् चङ् त्-
अजिजीवत्।
पक्ष में—अजीजिवत्।

(6) मील् णिच् चङ् त्-
अमिमीलत्।
पक्ष में—अमीमिलत्।

(7) पीड्-
अपिपीडत्
पक्ष में—अपीपिडत्।

विशेष—'काणि' आदि की उपधा को विकल्प से ह्रस्व होता है[1]—काण् णिच् चङ् त्-
अचीकणत्।
पक्ष में—अचकाणत्।

लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य 7.4.4

पद.—लोपः 1.1, पिबतेः 6.1, ईत् 1.1, च-अव्य०, अभ्यासस्य 6.1

अनु.—अंगस्य णौ चङि उपधायाः।

अर्थ—'चङ्' है परे जिसके ऐसे 'णि' के परे रहते 'पा पाने' अंग की उपधा का लोप होता है तथा अभ्यास को ईत् अर्थात् ईकार आदेश होता है।

उदा.—पा णिच्-पा युक् णिच्-
(शाच्छासाह्वावेपां युक्)
पाय् इ-पायि-
(धातु संज्ञा)
पायि लुङ्-पायि तिप्-
(लुङ्, तिप्)
अट् पायि तिप्-अ पायि त्-
(अट्, अनुबन्ध लोप)
अ पाय् इ च्लि त्-
(च्लि)
अ पाय् इ चङ् त्-अ पाय् इ अ त्-
(चङ्)
अपाय् अत्-

1. काशि० 7.4.3 काण्यादीनां वेति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(णेरनिटि)
अ प् य् अ त्-
(उपधा लोप। 'द्विर्वचनेऽचि' से रूपातिदेश हुआ। 'चङि' से द्वित्व)
अ पा प्य् अत्-अपीप्य् अत्-
(ह्रस्वः को बाधकर अभ्यास को ईकार)
अपीप्यत्।

इसी प्रकार—पा णिच् चङ् तस्-
अपीप्यताम्।
पा णिच् चङ् झि-
अपीप्यन्।

तिष्ठतेरित् 7.4.5

पद.—तिष्ठतेः 6.1, इत् 1.1

अनु.—अंगस्य णौ चङि उपधायाः।

अर्थ—'चङ्' है परे जिसके ऐसे 'णि' के परे रहते 'ष्ठा' अंग की उपधा को इकार आदेश होता है।

उदा.—ष्ठा-स्था-
(धात्वादेः षः सः। निमित्तापाये०)
स्था णिच्-
(हेतुमति च)
स्था पुक् इ-स्थाप् इ-
(अर्तिह्वीव्ली०)
स्थापि लुङ्-स्थापि तिप्-
(धातु संज्ञा, लकार, तिप्)
स्थापि चङ् त्-
(च्लि, चङ्, इकार लोप)
स्थाप् अ त्-
(णिलोप)-
स्थिप् अ त्-
(उपधा को इकार)
स्थिप् स्थिप् अ त्-
(पूर्ववत् द्वित्व)
थि स्थिप् अ त्-
(शर्पूर्वाः खयः)
अ ति स्थिप् अत्-
(अभ्यासे चर्च। अट्)
अतिष्ठिपत्-
(आदेशप्रत्यययोः)
प्र अतिष्ठिपत्। प्रातिष्ठिपत् (भट्टि० 15.1)
(ष्टुना ष्टुः)

इसी प्रकार—स्था पुक् णिच् चङ् तस्-
अतिष्ठिपताम्।

जिघ्रतेर्वा 7.4.6

पद.—जिघ्रते 6.1, वा-अव्य०।

अनु.—अंगस्य णौ चङि उपधायाः इत्।

अर्थ—'चङ्' है परे जिसके ऐसे 'णि' के परे रहते 'घ्रा' अंग की उपधा को विकल्प से इकार आदेश होता है।

उदा.—(1) घ्रा णिच्-
घ्रा पुक् इ-घ्राप् इ त्-
(अर्तिह्वीव्ली०)
घ्राप् इ चङ् त्-घ्राप् अ त्-
(धातु, लुङ्, च्लि, चङ् णिलोप)
घि घ्रिप् अत्-जि घ्रिप् अत्-
(द्वित्व, अभ्यासकार्य)
अजिघ्रिपत्।
इत्व अभाव पक्ष में—अजिघ्रपत्
('णौ चङ्युपधाया०' से उपधा ह्रस्व। सन्वल्लघु०। सन्यतः)।

इस प्रकार दो रूप बनते हैं।

(2) घ्रा णिच् झि-घ्रा णिच् चङ् झि-
घ्राप् इ अ अन्ति-घ्राप् इ अ अन्त्-
घ्रिप् अन्त्-जिघ्रिप् अ अन्त्-
अजिघ्रिपन् तथा अजघ्रपन् (पूर्ववत्)।

उर्ऋत् 7.4.7

पद.—उः 6.1, ऋत् 1.1

अनु.—अंगस्य णौ चङि उपधायाः वा।

अर्थ—'चङ्' है परे जिसके ऐसे 'णि' के परे रहते अंग की उपधाभूत ऋवर्ण के स्थान पर विकल्प से ऋकार आदेश होता है।

पक्ष में गुण (अर्) वृद्धि (आर्) तथा इत्व (इर्) होते हैं।

उदा.—(1) कृत् णिच्-कृत् इ चङ् त्-
(पूर्ववत् चङ् आदि)
च कृत् अत्
('उपधायाश्च' से प्राप्त इत्व का निषेध, प्रकृतसूत्र से 'ऋ' को ऋकार, अभ्यासकार्य)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचीकृतत् ।
पक्ष में 'इर्' हुआ–
कृत् इ अ त्–किर्त् अ त्–
चिकिर्त् अत्–अचिकीर्त्तत् ।
('उपधायाञ्च' से दीर्घ, अट्)

(2) वृत् णिच् चङ् त् (पूर्ववत्)–
ववृत् अत्–विवृतत्–वीवृतत्–अवीवृतत् ।
इसी प्रकार—न्यवीवृतत् (भट्टि० 15.21)
(णिलोप, अभ्यासकार्य, अट्)
पक्ष में 'पुगन्तलघूपधस्य च' से गुण
वर्त् इ अत्–ववर्त्तत्–अववर्त्तत् ।

(3) मृज्–अमीमृजत् (पूर्ववत्) ।
पक्ष में—अममार्जत् ('मृजेर्वृद्धिः से वृद्धि) ।

(4) अवीवृधत् (यजु० 28.23) ।

(5) अमीमृजन्त (तै०ब्रा० 2.6.3.2) ।

नित्यं छन्दसि 7.4.8

पद.—नित्यम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य णौ चङि उपधायाः उः ऋत् ।

अर्थ—वेद के विषय में चङ् है परे जिसके ऐसे णि के परे रहते उपधाभूत ऋवर्ण के स्थान पर नित्य ही ऋकार आदेश होता है ।

उदा.—वृध् णिच् चङ् त्–
वृ वृध् अत्–ववृधत्–
विवृधत्–अविवृधत् ।

दयतेर्दिगि लिटि 7.4.9

पद.—दयतेः 6.1, दिगि–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, लिटि 7.1

अनु.—अंगस्य ।

अर्थ—लिट् लकार परे रहते 'देङ् रक्षणे' को 'दिगि' आदेश होता है ।

उदा.—दे लिट्–दिगि ल्–
दिगि त–दिगि ए–
(दिगि आदेश होने से द्वित्व न हुआ)
दिग्ये–अवदिग्ये ।
(एरनेकाचो०)

'दयतेः' पद के द्वारा 'देङ् रक्षणे' का ग्रहण होता है, 'दय' का नहीं । कारण कि 'दयायासश्च' (पा० 3.1.37) के द्वारा 'दय' को 'आम्' का विधान किया जा चुका है ।

ऋतश्च संयोगादेर्गुणः 7.4.10

पद.—ऋतः 6.1, च-अव्य०, संयोगादेः 6.1, गुणः 1.1

अनु.—अंगस्य लिटि ।

अर्थ—लिट् प्रत्यय परे रहते संयोग है आदि में जिसके ऐसे ऋदन्त (ह्रस्व ऋकारान्त) अंग को गुण होता है ।

उदा.—(1) स्मृ णल्–स्मृ स्मृ अ–
(द्विर्वचनेऽचि)
सृ स्मृ अ–स स्मृ अ
('अचो ञ्णिति' से प्राप्त वृद्धि को बाधकर गुण हुआ)
सस्मर् अ–सस्मार ।
(अत उपधायाः)

इसी प्रकार—हृ–जह्रार ।
ध्वृ–दध्वार ।
स्वृ–सस्वार ।

(2) स्मृ अतुस्–सस्मृ अतुस्–
(असंयोगाल्लिट् कित् । सार्वधातुकार्ध० । क्ङिति च । प्रकृतसूत्र से गुण)
सस्मरतुः ।

इसी प्रकार—जह्रतुः, दध्वरतुः, सस्वरतुः ।

विशेष—1. 'ऋतः' अर्थात् **ऋदन्त** अंग को ही गुण होता है— क्षि अतुस्–चिक्षियतुः ।
यहाँ ऋदन्त अंग नहीं है । अतः गुण न हुआ ।

2. 'संयोगादेः' अर्थात् **संयोगादि** ऋदन्त को ही गुण होता है— कृ अतुस्–चक्रतुः
'कृ' ऋदन्त अंग है परन्तु संयोगादि नहीं है । अतः गुण न हुआ ।
यण् होकर रूप बनता है ।

ऋच्छत्यृताम् 7.4.11

पद.—ऋत्छत्यृताम् 6.3

अनु.—अंगस्य लिटि गुणः ।

अर्थ—'ऋृताम्' में बहुवचन निर्देश से सूचित होता है कि यहाँ 'ऋ' का प्रश्लेष किया गया है । अन्यथा यहाँ द्विवचन (ऋच्छत्यृतोः) का प्रयोग होना चाहिए था ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिट् प्रत्यय परे रहते तौदादिक ऋच्छ् धातु, ऋधातु तथा ऋदन्त धातु के स्थान पर गुण होता है।

'इको गुणवृद्धी' के द्वारा इक् के स्थान पर गुण होता है।

'ऋच्छ्' की उपधा में ऋकार न होने से लघूपध गुण प्राप्त न था।

'ऋ' तथा ऋदन्त धातु से पर लिट् कित् (असंयोगाल्लिट् कित्) है। अतः गुणनिषेध प्राप्त था।

उदा.—(1) ऋच्छ् लिट्-अर्च्छ् अ-
अर्च्छ् अर्च्छ् अ-अ अर्च्छ् अ-
आ अर्च्छ् अ-आन् अर्च्छ् अ-
(अत आदेः। तस्मान्नुड् द्विहलः)
आनर्च्छ।

(2) ऋ ल्-ऋ अ-अर् अ-
अ अर् अ-आ आर् अ-आर।

(3) पॄ अतुस् (जिस पक्ष में ह्रस्व न होगा)-
प पॄ अतुस्-
('उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से प्राप्त उत्व को बाध कर गुण)
पपरतुः।

(4) कॄ अतुस्-निचकरतुः। बहुव में चकरुः (भट्टि० 3.5)

इसी प्रकार—विचकरुः (भट्टि० 14.25)।

शृदॄप्रां ह्रस्वो वा 7.4.12

पद.—शृदॄप्राम् 6.3, ह्रस्वः 1.1, वा-अव्य०।

अनु.—अंगस्य लिटि।

अर्थ—लिट् प्रत्यय परे रहते अंग संज्ञक शॄ, दॄ तथा पॄ धातुओं को विकल्प से ह्रस्व होता है। पक्ष में 'ऋच्छत्यृताम्' से गुण होता है।

उदा.—(1) शॄ-शॄ-शर् अतुस्-
वि शशर् अतुस्-विशशरतुः।
पक्ष में—विशश्रतुः।

(2) दॄ अतुस्-
विददरतुः।
(पूर्ववत्)
पक्ष में—विदद्रतुः।

(3) पॄ अतुस्-
निपपरतुः।
पक्ष में—निपप्रतुः।

केऽणः 7.4.13

पद.—के 7.1, अणः 6.1

अनु.—अंगस्य ह्रस्वः।

अर्थ—'क' परे रहते 'अण्' को ह्रस्व होता है।

उदा.—(1) ज्ञा क-ज्ञ् अ-ज्ञ टाप्-ज्ञा-
(स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् हुआ)
ज्ञा कन्-ज्ञक सु-ज्ञकः।
(प्रागिवात्कः)

(2) कुमारी कन्-कुमारिक-
कुमारिक टाप् सु-कुमारिका।

विशेष—'अणः' अर्थात् 'अण्' को ह्रस्व होता है—
गो कन्-गोक टाप् सु-गोका।
कन् परे रहते अण् नहीं है। अतः ह्रस्व न हुआ।

न कपि 7.4.14

पद.—न-अव्य०, कपि 7.1

अनु.—अंगस्य अणः ह्रस्वः।

अर्थ—'कप्' परे रहते 'अण्' को ह्रस्व नहीं होता है।

उदा.—(1) बहुकुमारी कन्-बहुकुमारीकः
(प्राप्त ह्रस्वादेश का निषेध)

(2) अस्त्रीकः (न विद्यते स्त्री यस्य)
द्र० भट्टि० 4.29

(3) अपत्नीकः (वाम० पु० 6.27)

आपोऽन्यतरस्याम् 7.4.15

पद.—आपः 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य ह्रस्वः कपि न।

अर्थ—'कप्' प्रत्यय परे रहते आबन्त अंग को विकल्प से ह्रस्व नहीं होता है।

उदा.—बहुमाला कन्-
बहुमालक सु-बहुमालकः।
पक्ष में—बहुमालाकः।

ऋदृशोऽङि गुणः 7.4.16

पद.—ऋदृशः 6.1, अङि 7.1, गुणः 1.1

अनु.—अंगस्य।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'अङ्' परे रहते ऋवर्णान्त तथा दृश् अंग को गुण होता है।

उदा.—(1) सृ तिप्-सृ अङ् त्-
(सर्तिशास्त्य०)
असर् अत्-असरत्।

इसी प्रकार—ऋ तस्-ऋ ताम्-अर् शप् ताम्-आट् अर् अताम्-आरताम् (भट्टि० 6.28), अन्वारत् (भट्टि० 15.57)।

(2) दृश् तिप्-दृश् अङ् त्-(इरितो वा)
अदर्शत्।

(3) मा दर्शत (भट्टि० 3.15)

अस्यतेस्थुक् 7.4.17

पद.—अस्यतेः 6.1, थुक् 1.1

अनु.—अंगस्य अङि।

अर्थ—अङ् परे रहते 'असु क्षेपणे' को 'थुक्' आगम होता है।

'थुक्' के ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—अस् तिप् (लुङ्)-
आट् अस् थुक् अङ् त्-
(अस्यतिवक्ति०)
आ स्थ् अत्-आस्थत्।

इसी प्रकार—निरास्थत् (भट्टि० 15.35, 1.3)।

श्वयतेरः 7.4.18

पद.—श्वयतेः 6.1, अः 1.1

अनु.—अंगस्य अङि।

अर्थ—'अङ्' परे रहते 'श्वि' अंग को अकार आदेश होता है।

उदा.—श्वि अङ् त् (लुङ्)
पूर्ववत्-
अट् श्व् अ अ त्-अश्व अत्-अश्वत्।

इसी प्रकार—अश्वताम् (भट्टि० 15.30)।

पतः पुम् 7.4.19

पद.—पतः 6.1, पुम् 1.1

अनु.—अंगस्य अङि।

अर्थ—'अङ्' परे रहते 'पत्' को 'पुम्' आगम होता है।

उदा.—पत् तिप् (लुङ्)-
पत् त्-पत् अङ् त्-
(पुषादिद्युतादि०)
अट् प पुम् त् अ त्-अपप्तत्।

इसी प्रकार—न्यपप्तत् (भट्टि० 15.27)।

वच उम् 7.4.20

पद.—वचः 6.1, उम् 1.1

अनु.—अंगस्य अङि।

अर्थ—'अङ्' परे रहते 'वच्' अंग को 'उम्' आगम होता है।

उदा.—वच् तिप्-वच् च्लि त्-
वच् अङ् त्-
(अस्यतिवक्ति०)
अट् व उम् च् अ त्-अवोचत्।

शीङः सार्वधातुके गुणः 7.4.21

पद.—शीङः 6.1, सार्वधातुके 7.1, गुणः।

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो 'शी' अंग को गुण होता है।

उदा.—(1) शी त-शेत-शेते।

(2) शी त (लोट्)-शेताम्।

(3) शी त (लङ्)-
अट् शेत-अशेत।

(4) शी त (वि० लिङ्)-
शे सीयुट् त-शे ईय् त-
शयीत।

विशेष—'सार्वधातुके' अर्थात् **सार्वधातुक परे रहते** ही गुण होता है—
शी लिट्-शी त-शी ए-
शी शी ए-शिश्ये।

'ए' सार्वधातुक नहीं है। अतः गुण न हुआ।

अयङ् यि क्ङिति 7.4.22

पद.—अयङ् 1.1, यि 7.1, क्ङिति 7.1

अनु.—अंगस्य शीङः।

अर्थ—यकारादि कित् या ङित् परे रहते 'शी' को 'अयङ्' आदेश होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—(1) शी यक् त (कर्मवाच्य)-
(सार्वधातुके यक्)
श् अयङ् य त-शय्यते ।
(ङिच्च) ।

(2) शी यङ्-श् अयङ् यत-
शय् शय् यत-शशय्यते ।

विशेष—1. 'यि' अर्थात् **यकारादि** परे रहते 'अयङ्' होता है—

शी त (लिट्)-शी ए-शी शी ए-('ए' कित् है परन्तु यकारादि नहीं है) ।

शिश्ये ।

2. 'क्ङिति' अर्थात् **कित्** या **ङित्** परे रहते 'अयङ्' होता है—

शी यत्-शेयम्

'यत्' यकारादि तो है परन्तु न तो कित् है और न ही ङित् है ।

उपसर्गाद्ध्रस्वः ऊहतेः 7.4.23

पद.—उपसर्गात् 5.1, ह्रस्वः 1.1, ऊहतेः 6.1

अनु.—अंगस्य यि क्ङिति ।

अर्थ—यकारादि कित् या ङित् परे रहते उपसर्ग से उत्तर 'ऊह्' धातु को ह्रस्व आदेश होता है ।

उदा.—सम् ऊह् यक् त-
सम् उह् यत-समुह्यते ।

विशेष—1. 'उपसर्गात्' अर्थात् **उपसर्ग से उत्तर** को ही ह्रस्व आदेश होता है—

ऊह् यक् त-ऊह्यते

'यक्' यकारादि कित् प्रत्यय परे है । परन्तु 'ऊह्' उपसर्ग से उत्तर नहीं है । अतः ह्रस्व न हुआ ।

2. 'ऊहतेः' अर्थात् **'ऊह्'** को ह्रस्व होता है—सम् ईह् यक् त-समीह्यते

यकारादि कित् परे है । धातु उपसर्ग से उत्तर भी है परन्तु 'ऊह्' अंग नहीं है । अतः ह्रस्व न हुआ ।

एतेर्लिङि 7.4.24

पद.—एतेः 6.1, लिङि 7.1

अनु.—अंगस्य उपसर्गात् ह्रस्वः यि क्ङिति ।

अर्थ—कित् लिङ् परे रहते उपसर्ग से उत्तर 'इण्' धातु को ह्रस्व होता है ।

'किदाशिषि' से आशीर्लिङ् कित् है ।

उदा.—इ तिप् (आ०लिङ्)-
इ यासुट् त्-
इ यास् त्-इयात्-ईयात्
(अकृत्सार्वधातुकयो०)

उपसर्ग के योग में ह्रस्व होता है—
निर् ईयात्-निरियात् ।
सम् ईयात्-समियात् ।

अभि ईयात्-अभीयात् (अकः सवर्णे दीर्घः । 'अन्तादिवच्च' से 'ई' को पर का आदि भाग मानकर 'ईयात्' हुआ तथा 'ई' को पूर्व का अन्तभाग मानकर 'अभि' उपसर्ग हुआ ।

परन्तु 'उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्' (परि०) के द्वारा एक ही वर्ण में पूर्वान्तवद्भाव तथा परादिवद्भाव युगपत् नहीं होते हैं । अतः यहाँ ह्रस्व नहीं होता है ।

समाधान यह है कि वर्ण सम्बन्धी कार्य से अंगसम्बन्धी कार्य बलवान् होता है । अतः प्रथम ह्रस्व आदेश कर पुनः सवर्ण दीर्घ किया जाये ।

अभि ईयात्-अभि इयात्-अभीयात् ।

अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः 7.4.25

पद.—अकृत्सार्वधातुकयोः 7.2, दीर्घः 1.1

अनु.—अंगस्य यि क्ङिति ।

अर्थ—यकारादि कित् या ङित् परे रहते अंग को दीर्घ आदेश होता है परन्तु कृत् या सार्वधातुक परे रहते (दीर्घ) नहीं होता है ।

उदा.—(1) सुख क्यङ्-सुख य-
(सुखादिभ्यः-)
सुखाय शप् त-सुखायते ।

(2) चि यक् त-चीयते ।

(3) चि यङ्-चेचीयते ।

(4) स्तु यक् त-स्तूयते ।

(5) चि तिप् (लिङ्)
चि यासुट् त्-चि यास्त्-
चियात्-चीयात्

(6) प्रौर्णोनूयत (भट्टि० 17.75)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दीर्घ हो गया है)।

विशेष—1. 'अकृत्सार्व०' अर्थात् कृत् या सार्वधातुक परे रहते दीर्घ नहीं होता है—

प्र कृ ल्यप्-प्रकृत्य

'ल्यप्' कित् यकारादि है परन्तु कृत् है।

अतः दीर्घ न हुआ।

चि श्नु तिप् (लिङ्)-
चि नु यासुट् त्-चिनुयात्

'यासुट्' यकारादि ङित् है परन्तु सार्वधातुक है। अतः 'चिनु' अंग को दीर्घ न हुआ।

च्वौ च 7.4.26

पद.—च्वौ 7.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य दीर्घः।

अर्थ—च्वि प्रत्यय परे रहते अंग को दीर्घ होता है।

उदा.—(1) शुचि कृ-शुचि च्वि कृ-
(कृभ्वस्तियोगे०)
शुची कृ तिप्-शुचीकरोति।
शुचि च्वि भू-शुचीभवति।
शुचि च्वि अस्-शुचीस्यात्।

(2) पटु च्वि कृ-
पटूकरोति।
(पूर्ववत्)
पटूभवति।
पटूस्यात्।

(3) श्रेणि च्वि भू-श्रेणीभूतानि (भट्टि० 5.80)

रीङ् ऋतः 7.4.27

पद.—रीङ् 1.1, ऋतः 6.1

अनु.—अंगस्य च्वौ यि अकृत्सार्वधातुकयोः।

अर्थ—कृत् या सार्वधातुक को छोड़कर यकारादि प्रत्यय अथवा 'च्वि' परे रहते ऋकारान्त अंग को 'रीङ्' आदेश होता है।

'रीङ्' के ङकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—(1) मातृ क्यच्-मात् रीय-
(सुप आत्मनः क्यच्)
मात्रीयति।
(लट्, तिप्, शप्)

(2) मातृ क्यङ् त-मात्रीयते।
(कर्तुः क्यङ्—)

(3) मातृ च्वि भू-मात् री भू-
मात्रीभू क्त सु-मात्रीभूतः।

(4) पितृ क्यप्-पित् री य-
पित्री य-पित्र्य सु-पित्र्यम्।

विशेष—'ऋतः' में तपरकरण का प्रयोजन है कि 'चेकीर्यते' में 'रीङ्' न हो।

रिङ् शयग्लिङ्क्षु 7.4.28

पद.—रिङ् 1.1, शयग्लिङ्क्षु 7.3

अनु.—अंगस्य ऋतः यि असार्वधातुके।

अर्थ—'यि' पद 'लिङि' का विशेषण है।

भृषीष्ट (भृ सीयुट् सुट् त) यहाँ 'रिङ्' न हुआ। कारण कि लिङ् परे है परन्तु यकारादि नहीं है। इसी प्रकार 'असार्वधातुके पद भी 'लिङि' का विशेषण है। यथा—'बिभृयात्' यहाँ यकारादि लिङ् तो है परन्तु आर्धधातुक नहीं है। अतः 'रिङ्' न हुआ।

सूत्रार्थ इस प्रकार है—सार्वधातुक भिन्न (अर्थात् आर्धधातुक) यकारादि लिङ् परे रहते, श अथवा यक् प्रत्यय परे रहते ऋदन्त अंग के स्थान पर 'रिङ्' आदेश होता है।

'रिङ्' के ङकार की इत्संज्ञा होती है। अतः ङित् होने से अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

उदा.—(1) आङ् दृ (तुदा०) त-
आ दृ श त-आद् रिङ् अते-
(तुदादिभ्यः शः)
आद्रियते
(अचि श्नु०)
इसी प्रकार—आध्रियते।

(2) कृ त-कृ यक् त-
(सार्वधातुके यक्)
क् रिङ् यते-क्रियते।
इसी प्रकार—ह्रियते।

(3) भृ तिप् (लिङ्)-
भृ यासुट् त्-भ् रि यास्त्-
('यास्' की 'लिङाशिषि' के द्वारा आर्धधातुक संज्ञा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रियास्त्-ध्रियात् ।

यहाँ 'अकृत्सार्वधातुकयोः' के द्वारा दीर्घ नहीं होता । कारण कि, प्रकृतसूत्र में 'रीङ्' ऋतः' से 'रीङ्' का अनुवर्त्तन सुलभ होने पर भी 'रिङ्' का निर्देश ज्ञापित करता है कि आचार्य को यहाँ दीर्घ करना इष्ट नहीं है ।

(4) ध्रिये (भट्टि० 6.19) ।

गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः 7.4.29

पद.—गुणः 1.1, अर्त्तिसंयोगाद्योः 6.2

अनु.—अंगस्य असार्वधातुके शयग्लिङ्क्षु ऋतः ।

अर्थ—'ऋ' धातु तथा संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण होता है यक् प्रत्यय परे रहते अथवा यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे रहते ।

चूँकि तुदादिगण में न तो 'ऋ' धातु है और न ही संयोगादि ऋदन्त धातु है । अतः इनसे परे 'श' प्रत्यय सम्भव न होने से अर्थ में नहीं दिया गया है । 'ऋ' धातु का भ्वादिगण में तथा जुहोत्यादि में–दो स्थानों पर पाठ उपलब्ध होता है । यहाँ दोनों का ग्रहण है ।

उदा.—(1) ऋ यक्–अर् य त–अर्यते

(कित् होने से 'सार्वधातुकार्ध०' से गुण प्राप्त न था) ।

(2) स्मृ यक् त–स्मर्यते–
स्मर्यते ।

इसी प्रकार—ह्वर्यते ।

(3) ऋ यासुट् तिप्–
अर्यात् ।

(4) स्मृ यासुट् तिप्–
स्मर्यात् ।
ह्वृ यासुट् त्–ह्वर्यास्त्–
ह्वर्यात् ।

विशेष—'संयोगादेः' अर्थात् संयोग है आदि में जिसके ऐसे ऋदन्त अंग को गुण होता है—

कृ यास् त्–क्रियात्

'कृ' ऋदन्त है परन्तु संयोगादि नहीं है । अतः यकारादि आर्धधातुक लिङ् (यासुट्) परे रहते गुण न हुआ ।

यङि च 7.4.30

पद.—यङि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य ऋतः गुणः अर्त्तिसंयोगाद्योः ।

अर्थ—'यङ्' परे रहते 'ऋ' धातु तथा संयोगादि ऋदन्त अंग को गुण होता है ।

उदा.—(1) ऋ यङ्–अर्य–अर् अर्य–अरार्य शप् त–अरार्यते ।

(2) स्वृ यङ्–स्वर्य–
स स्वर्य–सास्वर्य–
(दीर्घोऽकितः)
सास्वर्यते ।
ध्वृ यङ्–दाध्वर्यते ।
स्मृ यङ्–सास्मर्यते ।

विशेष—हिंसा अर्थ में 'हन्' धातु को 'घ्नी' होता है, यङ् परे रहते[1]—

हन् यङ्–घ्नी यङ्–घ्नी घ्नी य–घी घ्नीय–झीघ्नीय–जीघ्नीय–जेघ्नीय–जेघ्नीयते ।

हिंसा अर्थ न हो तो 'घ्नी' नहीं होता है—

हन् यङ्–जङ्घन्यते ।

ई घ्राध्मोः 7.4.31

पद.—ई–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, घ्राध्मोः 6.2

अनु.—अंगस्य यङि ।

अर्थ—यङ् परे रहते 'घ्रा' तथा 'ध्मा' अंग को ईकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) घ्रा यङ्–घ्री य–घी घ्री य–
जीघ्रीय–जेघ्रीय शप् त–जेघ्रीयते ।

(2) ध्मा यङ्–ध्मीय–ध्मीध्मीय–दीध्मीय–देध्मीय शप् त–
देध्मीयते ।

'गुणो यङ्लुकोः' से गुण होता है ।

अस्य च्वौ 7.4.32

पद.—अस्य 6.1, च्वौ 7.1

अनु.—अंगस्य ई ।

अर्थ—'च्वि' परे रहते अवर्णान्त अंग को ईकार आदेश होता है ।

'अस्य' में तपर न होने से सभी सवर्णों (ह्रस्वादि) का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) शुक्ल भू–शुक्ल च्वि भू–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लीभवति (लुट् आदि)।

(2) खट्वा च्वि कृ–खट्वीकरोति।

(3) सुमनीभवन्ति (भट्टि० 2.54)।

(4) नीरजीकारित° (भट्टि० 2.55)।

क्यचि च 7.4.33

पद.—क्यचि 7.1, च–अव्य०।

अनु.—अंगस्य अस्य ई।

अर्थ—'क्यच्' परे रहते अवर्णान्त अंग को ईकार आदेश होता है।

यह 'अकृत्सार्वधातुकयोः' का अपवाद है।

उदा.—(1) पुत्र क्यच्–
(सुप आत्मनः क्यच्)
पुत्रय–पुत्रीय–
(धातु संज्ञा)
पुत्रीयति।

(2) माला क्यच्–
मालीयति।

अशनायोदन्यधनायां बुभुक्षापिपासागर्धेषु 7.4.34

पद.—अशनायोदन्यधनाया 1.3, बुभुक्षापिपासागर्धेषु 7.3

अनु.—अंगस्य क्यचि।

अर्थ—बुभुक्षा, पिपासा तथा गर्ध अर्थों में यथासंख्य करके अशनाय, उदन्य तथा धनाय शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) अशन क्यच्–
(प्राप्त ईकार का बाध, निपातन से आकार)
अशनाय–अशनायति।
द्र० च्युताऽशनायः
(भट्टि० 3.40)।
'बुभुक्षा' से अन्य अर्थ में–अशनीयति।

(2) उदक क्यच्–उदन् य–
उदन्यति
अन्यत्र–उदकीयति।

(3) धन क्यच्–धनाय–धनायति।
(पूर्ववत्)
अन्यत्र–धनीयति।

न च्छन्दस्यपुत्रस्य 7.4.35

पद.—न–अव्य०, छन्दसि 7.1, अपुत्रस्य 6.1

अनु.—अंगस्य अस्य क्यचि।

अर्थ—वेद के विषय में 'पुत्र' शब्द को छोड़कर अवर्णान्त अंग को ईकारादेश आदि नहीं होते हैं क्यच् परे रहते।

'क्यचि च' से ईकार आदेश तथा 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से दीर्घ आदेश होता है।

उदा.—(1) मित्र क्यच्–मित्रय–
(क्यचि च। अकृत्सार्व०। दोनों का निषेध)
मित्रयुः (मै०सं० 2.6.12)। अमित्रयन्तम् (ऋ० 1.131. 7)।

(2) सुम्नयुः (ऋ० 3.27.1)। हिरण्ययुः (ऋ० 7.31. 3)।

(3) वेद में सभी विधियाँ विकल्प से होती है। अतः उक्त निषेध कई स्थलों पर नहीं होता है—
जनीयन्तः।
यहाँ ईकारादेश हो गया है।

विशेष—1. 'अपुत्रस्य' अर्थात् 'पुत्र' शब्द को छोड़कर निषेध होता है—
पुत्रीयन्तः (ऋ० 7.96.4)
यहाँ निषेध न हुआ।

2. पुत्र आदि शब्दों को छोड़कर निषेध होता है[1]—
जनीयन्तः
यहाँ निषेध न हुआ।

दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यतिरिषण्यति 7.4.36

पद.—दुरस्युः 1.1, द्रविणस्युः 1.1, वृषण्यति–क्रियापदम्, रिषण्यति–क्रियापदम्।

अनु.—अंगस्य छन्दसि क्यचि।

अर्थ—वेद के विषय में क्यच् प्रत्ययान्त दुरस्यु, द्रविणस्यु, वृषण्यति तथा रिषण्यति शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) दुष्टम् इच्छति–
दुष्ट क्यच्–दुरस् य–

1. महा० 7.4.35 (वा०) अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निपातन से दुरस् आदेश)
दुरस्युः (क०सं० 2.5)
लोक में 'दुष्टीयति' बनता है।
'क्याच्छन्दसि' से 'उ' प्रत्यय हुआ है।

(2) द्रविण क्यच्-द्रविणस्य-
(निपातन से 'द्रविणस्' आदेश)
द्रविणस्युः (ऋ० 6.16.34)
लोक में-द्रविणीयति।

(3) वृष क्यच्-वृषण् य-
(निपातन)
वृषण्यति (ऋ० 9.5.6)।
वृषण्यतः (शौ० 6.70.1)।
लोक में-वृषीयति।

(4) रिष्ट क्यच्-रिषण् य-
(निपातन)
रिषण्यति (ऋ० 2.23.12)।
रिषण्यवः (ऋ० 1.148.5)
लोक में-रिष्टीयति।

अश्वाऽघस्यात् 7.4.37

पद.—अश्वाऽघस्य 6.1, आत् 1.1

अनु.—अंगस्य छन्दसि क्यचि।

अर्थ—वेद के विषय में क्यच् परे रहते 'अश्व' तथा 'अघ' अंगों को आकार आदेश होता है। आकार आदेश अन्त्य अल् को होता है। यह 'क्यचि च' का अपवाद है।

उदा.—अश्व क्यच्-अश्वाय-अश्वायति।
द्र० अश्वायन्तः (ऋ० 7.32.23, यजु० 27.36)
अघ क्यच्-अघाय-अघायति।
द्र० अघायतः (ऋ० 4.2.6)

देवसुम्नयोर्यजुषि काठके 7.4.38

पद.—देवसुम्नयोः 6.2, यजुषि 7.1, काठके 7.1

अनु.—अंगस्य छन्दसि क्यचि आत्।

अर्थ—यजुर्वेद की काठक संहिता के विषय में 'क्यच्' प्रत्यय परे रहते देव और सुम्न अंगों को आकार आदेश होता है।

उदा.—देव क्यच्-देवाय-देवायति। द्र०
सुम्न क्यच्-सुम्नायति।
सुम्नायन्तः (काठ सं० 8.17)।

विशेष—1. 'यजुषि' अर्थात् **यजुर्वेद में ही** आकार आदेश होता है—
सुम्नयुः (ऋ० 3.27.1)
यह यजुर्वेद का विषय नहीं है। अतः अंग को आकार आदेश न हुआ।

2. 'काठके' अर्थात् **काठक संहिता के विषय** में ही आकार अन्तादेश होता है—
सुम्नयुः (तै०सं० 2.5.7.12)
यह यजुर्वेद का विषय तो है परन्तु काठक का विषय नहीं है। अतः आकार न हुआ।

कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः 7.4.39

पद.—कव्यध्वरपृतनस्य 6.1, ऋचि 7.1, लोपः 1.1

अनु.—अंगस्य छन्दसि क्यचि।

अर्थ—ऋचा अर्थात् पादबद्ध मन्त्र के विषय में क्यच् परे रहते अंगसंज्ञक कवि, अध्वर तथा पृतना का लोप होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् का लोप होता है।

उदा.—कवि क्यच्-कव् य-कव्यति।
द्र० कव्यन् (तै०सं० 7.1.20.1)।
अध्वर क्यच्-अध्वर् य-अध्वर्यन्ता (ऋ०1.181.1)।
पृतना क्यच्-पृतन् य-पृतन्यति (ऋ० 9.53.3)।

द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति 7.4.40

पद.—द्यतिस्यतिमास्थाम् 6.3, इत् 1.1, ति 7.1, किति 7.1

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक दो, षो, मा तथा स्था को इकार आदेश होता है।

इकार आदेश अन्त्य अल् को होता है।

उदा.—(1) दो क्त-दो त-दि त सु-
दितः-इसी प्रकार-निस् दो क्त-निर्दित सु-निर्दितः।
(2) षो-सो क्त-सि त-सितः-अवसितः।
(3) मा क्त-मितः।
(4) स्था क्त-स्थितः।
इसी प्रकार 'क्तवतु' में रूप जानने चाहिए।

(1) 'ति' अर्थात् **तकारादि** प्रत्यय परे रहते ही इकार आदेश होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव दो ल्यप्–

'ल्यप्' कित् है परन्तु तकारादि नहीं है । अतः इकार अन्तादेश नहीं होता है—अवदाय ।

(2) 'किति' अर्थात् कित् प्रत्यय परे रहते ही इकार अन्त आदेश होता है—

अव दो तृच्–

'तृ' तकारादि है परन्तु कित् नहीं है । अतः इकार अन्त आदेश नहीं होता है–अवदाता ।

शाच्छोरन्यतरस्याम् 7.4.41

पद.—शाच्छोः 6.2, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—अंगस्य किति ति इत् ।

अर्थ—तकारादिच कित् परे रहते अंगसंज्ञक 'शो' तथा 'छो' को विकल्प से इकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) शो क्त–शा त–
(आदेच उपदेशेऽशिति)
शित–निशित सु–निशितम् । (नी०श० 11)।
पक्ष में—निशातम् । (भाग० 1.17.28)

(2) छो क्त–छा त–
(पूर्ववत्)
छित–अव छित–अव तुक् छित–
अवच्छित सु–अवच्छितम् ।
(छे च । स्तोः श्चुना श्चुः)

विशेष—'व्रत' अर्थ में 'शो' को नित्य इकार होता है [1]—

सम् शो क्त–संशितो ब्राह्मणः

यहाँ इकार हुआ है ।

महाभाष्यकार के अनुसार इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है । यहाँ व्यवस्थित विभाषा मान लेने पर 'संशित' में नित्य इकार आदेश हो जाता है ।

दधातेर्हिः 7.4.42

पद.—दधातेः 6.1, हिः 1.1

अनु.—अंगस्य ति किति ।

अर्थ—तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक 'धा' को 'हि' आदेश होता है । अनेकाल् होने से 'हि' सर्वादेश होता है ।

1. 7.4.41 (वा०) श्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति वक्तव्यम् ।

उदा.—धा क्त (घुमास्था० से ईकार आदेश प्राप्त हुआ । इसे बाधकर—) हित–हित सु–हितः ।

धा क्त्वा–हित्वा । पुरोहित० (भट्टि० 3.28) विहित्रिम (भट्टि० 1.13)

जहातेश्च क्त्वि 7.4.43

पद.—जहातेः 6.1, च–अव्य०, क्त्वि 7.1

अनु.—अंगस्य हिः ।

अर्थ—क्त्वा प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक 'ओहाक् त्यागे' को 'हि' आदेश होता है ।

उदा.—हा क्त्वा–हि त्वा–हित्वा (भट्टि० 3.36, मे० 96) यहाँ भी पूर्ववत् ईकार आदेश प्राप्त था ।

विभाषा छन्दसि 7.4.44

पद.—विभाषा 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य जहातेः क्वि हिः ।

अर्थ—वेद के विषय में 'क्त्वा' परे रहते ओहाक् अंग को विकल्प से 'हि' आदेश होता है ।

उदा.—हा क्त्वा–हित्वा (ऋ० 5.53.14) ।
पक्ष में—हा क्त्वा–हात्वा ।

सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च 7.4.45

पद.—सुधित० इति प्रत्येकं लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य छन्दसि ।

अर्थ—वेद के विषय में सुधित, वसुधित, नेमधित, धिष्व और धिषीय शब्दों का निपातन किया जाता है । प्रथम तीन प्रयोगों (सुधित, वसुधित, नेमधित) में निपातन से 'क्त' को इट् होता है अथवा धातु को इकार आदेश होता है ।

इट् आगम की दशा में 'आतो लोपः—' से धातु के आकार का लोप होता है ।

उदा.—(1) सु धा क्त–सु धित–
(कुगतिप्रादयः)
सुधित सु–सुधितम् (ऋ० 10.27.16) ।

(2) वसु धा क्त–वसु धित–
(विशेषणं विशेष्येण०)
वसुधित सु–वसुधित

(3) नेम धा क्त–नेम धित–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सामि)
नेमधित सु–नेमधितः ।
द्र० नेमधिताः (ऋ० 10.93.13) ।

(4) धा थास् (लोट्)–
(शप्, शप् को श्लुत्व परन्तु निपातन से द्वित्व का अभाव)
ध् इ थास्–धि से–धिस्व–
(थासः से । सवाभ्यां वामौ)
लोक में–धत्स्व होता है ।

(5) धा इट् (आ०लिङ्)–
धा अत्–धि सीयुट्–
(इटोऽत्)
धि सीय् अ–धिषीय ।
लोक में–धासीय होता है ।

दो दद् घोः 7.4.46

पद.—दः 6.1, दद् 1.1, घोः 6.1

अनु.—अंगस्य ति किति ।

अर्थ—तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते घुसंज्ञक 'दा' धातु के स्थान पर 'दद्' आदेश होता है । 'दद्' अनेकाल् होने से सर्वादेश है ।

उदा.—दा क्त–दद् त–दत्त सु–दत्तः ।
(खरि च)
इसी प्रकार—दा क्तिन्–दत्तिः । दत्तिम् (भट्टि० 1.13)

विशेष—1. 'दः' अर्थात् **'दा' को** 'दद्' होता है—
धा क्त–धात सु–धातः
यहाँ 'दद्' न हुआ ।

2. 'घोः' अर्थात् **घुसंज्ञक** 'दा' को ही 'दद्' होता है—
'दाप् लवने' क्त–दात्तम् ।
दा धातु है परन्तु इसकी घुसंज्ञा नहीं है । अतः 'दद्' आदेश न हुआ ।

प्रकृतसूत्र के पदविच्छेद की विभिन्न सम्भावनाओं के अनुसार विधीयमान आदेश का चार प्रकार का स्वरूप सम्भव है ।

(क) तान्त–दः दत् घोः ।
(ख) दान्त–दः दद् घोः ।
(ग) धान्त–दः दध् घोः ।
(घ) थान्त–दः दथ् घोः ।

इस आदेश के उक्त स्वरूपों के विषय में महाभाष्य में निम्नलिखित कारिका प्राप्त होती है । द्र०

तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद्, दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् ।
धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिस्, थान्तेऽदोषस्तस्मात्थान्तः ॥[1]

कारिका का अर्थ इस प्रकार है—

(क) तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्यात् अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप तान्त ('दत्') मान लिया जाये तो 'विदत्तम्' इस दशा में 'दस्ति' सूत्र के द्वारा दीर्घादेश अनिष्ट रूप प्राप्त होता है ।

ध्यान रहे 'दस्ति' सूत्र का दो प्रकार से अर्थ किया जाता है । यथा—

1) 'दा' धातु के स्थान पर विहित तकारान्त उत्तरपद परे रहते इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होता है ।

2) 'दा' धातु के स्थान पर विहित तकारादि उत्तरपद परे रहते इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होता है ।

इस प्रकार प्रथम अर्थ की दशा में 'विदत्तम्' में दीर्घादेश प्राप्त होता है ।

काशिकाकार इस दोष का परिहार करते हुए 'दस्ति' सूत्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

'दा' धातु के स्थान पर विहित तकारादि उत्तर पद के परे रहते उपसर्ग के इक् को दीर्घ होता है ।

'वि दत्तम्' में तकारादि उत्तरपद के न रहने से दीर्घ आदेश (अनिष्ट रूप) प्राप्त न होगा ।[2]

(ख) दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप दान्त (दद्) मानते हैं तो 'दद्त' इस दशा में 'रदाभ्यां निष्ठातो०' के द्वारा नत्व होकर अनिष्ट रूप बनता है ।

काशिकाकार ने इस दोष का परिहार सन्निपात लक्षण परिभाषा के द्वारा कर दिया है ।[3]

(ग) धान्ते दोषो धत्व प्राप्तिः अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप धान्त (दध्) मानते हैं तो 'दध्त' इस दशा में 'झषस्तथोर्धोऽधः' के द्वारा तकार के स्थान पर धकार होकर

---

1. काशि० 7.4.46
2. काशि० 7.4.46 यदि तु दस्ति इति तकारादौ ... ।
3. काशि० 7.4.46 यदि तु इति नत्वधत्वे न भविष्यतः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिष्ट रूप बनता है । काशिकाकार ने इस दोष का परिहार भी सन्निपात लक्षण परिभाषा के द्वारा कर दिया है ।[1]

(घ) थान्तेऽदोषस्तस्मात् थान्तः अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप थान्त (दथ्) मानते हैं तो कोई दोष नहीं है।

भाव यह है कि विधीयमान आदेश का पूर्वोक्त चारों स्वरूपों में से उसे किसी भी प्रकार का (अर्थात् तान्त, थान्त, दान्त, धान्त) मान लें कहीं कोई दोष नहीं होता है ।

अच उपसर्गात्तः 7.4.47

पद.—अचः 5.1, उपसर्गात् 5.1, तः 1.1

अनु.—अंगस्य दः घोः ति किति ।

अर्थ—अजन्त उपसर्ग से उत्तर घुसंज्ञक 'दा' अंग के स्थान पर तकार आदेश होता है तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते ।

तकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—प्र दा क्त–प्र द् त् त–प्रत् त् त–
(खरि च)
प्र त् त् त् त–
('अनचि च' के द्वारा द्वित्व)
प्र त् त–प्रत्त सु–प्रत्तम् (भट्टि० 22.23)
(झरो झरि सवर्णे)

विशेष—1. 'अचः' अर्थात् **अजन्त** उपसर्ग से उत्तर 'दा' को तकार अन्तादेश होता है—निर् दा त–यहाँ 'निर्' उपसर्ग अजन्त नहीं है । अतः तकार आदेश नहीं होता है—

निर्दत्तम् ।

2. 'उपसर्गात्' अर्थात् **उपसर्ग** से उत्तर 'दा' को तकार आदेश होता है—

दधि दत्तम्–'दधि' अजन्त है परन्तु उपसर्ग नहीं है । अतः तकार आदेश नहीं होता है ।

3. 'दो' धातु के इत्व आदेश की अपेक्षा विप्रतिषेध से अच् का तकार आदेश होता है[2]—अवत्तम् ।

इसी प्रकार—प्रत्तम् ।

अपो भि 7.4.48

पद.—अपः 6.1, भि 7.1

अनु.—अंगस्य तः ।

अर्थ—भकारादि प्रत्यय के परे रहते 'अप्' अंग को तकार आदेश होता है ।

तकार आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है ।

उदा.—(1) अप् भिस्–अत् भिस्–अद्भिः ।
(झलां जशोऽन्ते)
(2) अप् भ्यस्–अद्भ्यः ।
(पूर्ववत्)

विशेष—1. 'भि' अर्थात् **भकारादि** प्रत्यय परे रहते ही तकार आदेश होता है—

अप् सुप्–

यहाँ 'सुप्' भकारादि नहीं है । अतः तकार अन्तादेश न हुआ ।

2. वेद के विषय में भकारादि प्रत्यय परे रहते स्ववस्, स्वतवस्, मास् तथा उषस् को तकार आदेश होता है[3]—

स्ववस् भिस्–स्ववद्भिः
स्वतवस् भिस्–स्वतवद्भ्यः (यजु० 24.16) ।

मास् भिस्–माद्भिः (ऋ० 2.24.5) समुषस् भिस्–समुषद्भिः (ऋ० 1.6.3) ।

उषस् भिस्–उषद्भिः (ऋ० 1.6.3) ।

सः स्यार्धधातुके 7.4.49

पद.—सः 6.1, सि 7.1, आर्धधातुके 7.1

अनु.—अंगस्य तः ।

अर्थ—सकारादि आर्धधातुक के परे रहते सकारान्त अंग के स्थान पर तकार आदेश होता है । तकार आदेश अन्त्य अल् (सकार) के स्थान पर होता है ।

उदा.—(1) वस् तिप् (लृट्)–वस् स्यति–वत्स्यति–वत्स्यति ।
(2) वस् तिप् (लृङ्)–
वस् स्य त्–अवत् स्यत्–
अवत्स्यत् ।
(स्य, इकार लोप, अट्, तकार)
(3) वस् सन्–वत्स–

1. काशि० 7.4.46 यदि तु इति नत्वधत्वे न भविष्यतः ।
2. महा० 7.4.47 (वा०) द्यतेरित्वादचस्त इत्येतद् भवति विप्रतिषेधेन ।
3. महा० 7.4.48 (वा०) स्ववः स्वतवसोर्मास उषसश्च तकारादेश इष्यते छन्दसि भकारादौ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व वत्स–विवत्स–विवत्सति ।

(4) घस् स–घत्स–
(लुङ् सनोर्घस्लृ)
घ घ त् स–झघत्स–
जघत्स–जिघत्स–जिघत्सति ।

विशेष—1. 'सः' अर्थात् **सकार** के स्थान पर ही तकार होता है—वच् स्यति–

सकारादि आर्धधातुक (स्य) परे है, परन्तु 'वच्' में सकार नहीं है । अतः तकार न हुआ—वक्ष्यति ।

2. 'सि' अर्थात् **सकारादि** परे रहते ही तकार आदेश होता है—वस् घञ्–

'घञ्' आर्धधातुक प्रत्यय है परन्तु सकारादि नहीं है । अतः इसके परे रहते 'वस्' के सकार को तकार न हुआ—

वास् अ–वास सु–वासः ।

3. 'आर्धधातुके' अर्थात् **आर्धधातुक** परे रहते ही तकार आदेश होता है—

आच्छादनार्थ 'वस्' से 'थास्' करने पर–वस् थास्–वस् से

इस दशा में सकारादि प्रत्यय परे है परन्तु वह आर्धधातुक नहीं है । अतः 'वस्' के सकार को तकार नहीं हुआ—

वस्से ।

तासस्त्योर्लोपः 7.4.50

पद.—तासस्त्योः 6.2, लोपः 1.1

अनु.—अंगस्य सः सि ।

अर्थ—सकारादि प्रत्यय परे रहते अंगसंज्ञक 'तास्' और 'अस्' का लोप होता है ।

तास् और अस् के सकार का लोप होता है ।

उदा.—(1) भू लुट्–भू तिप्–
भू तास् सि–
(स्यतासी ऌलुटोः)
भू इट् तास् सि–भवितास् सि–
भविता सि–भवितासि । प्रया तास् सि–प्रयातासि
(भट्टि० 22.01) (2) अस् सिप्–
अस् शप् सि–अस् सि–असि ।

रि च 7.4.51

पद.—रि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य तासस्त्योः सः लोपः ।

अर्थ—रेफादि प्रत्यय परे रहते 'तास्' और 'अस्' के सकार का लोप होता है ।

उदा.—(1) कृ तस्–कृ तास् तस्–
कृ तास् रौ–कर् तास् रौ–
(लुटः प्रथमस्य डारौ रसः)
कर्त्ता रौ–कर्त्तारौ ।
कृ झि–कृ तास् झि–
कृ तास् रस्–कर्तास् रस्–
कर्तारः ।

(2) काशिका में 'अस्' धातु का 'व्यतिरे' उदाहरण दर्शाया गया है परन्तु यह उचित नहीं है (द्र० काशिका तथा न्यास) ।

ह एति 7.4.52

पद.—हः 1.1, एति 7.1

अनु.—अंगस्य तासस्त्योः सः लोपः ।

अर्थ—एकार परे रहते 'तास्' और 'अस्' के सकार के स्थान पर हकार होता है ।

यद्यपि प्रकृतसूत्र में 'लोपः' पद की अनुवृत्ति प्राप्त है तदपि विधान सामर्थ्य के अनुसार यहाँ सम्बद्ध नहीं होती है ।

उदा.—(1) कृ इट् (लुट्)–
कृ तास् इ–कृ तास् ए–
(टित आत्मनेपदानां टेरे०)

कर्त्तास् ए–कर्त्ताह् ए–कर्त्ताहे । लभ् तास् इ–लब्धास् ए–लब्धाहे (भट्टि० 22.17) ।

(2) व्यति अस् इट्–
व्यति अस् ए–व्यतिहे ।
(श्नसोरल्लोपः) ।

यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः 7.4.53

पद.—यीवर्णयोः 7.2, दीधीवेव्योः 6.2

अनु.—अंगस्य लोपः ।

अर्थ—यकारादि तथा इकारादि प्रत्यय परे हो तो दीधीङ् तथा वेवीङ् अंग का लोप होता है । यी = यि + इ । 'यि' में इकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—(1) आ दीधी ल्यप्–
आ दी ध् य–आदीध्य ।
(2) आ वे वी ल्यप्–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवेव् य–आवेव्य ।

(3) आ दीधी यक् त (कर्मणि)–
आदीध्यते ।

(4) आ वेवी यक् त (कर्मणि)–
आवेव्यते ।

(5) आ दी धी तृच्–
आदीधी इट् तृ–आदीध् इतृ–
आदीधिता (सु) ।

(6) आ वेवी इट् तृ–आवेविता ।

विशेष—'यीवर्ण्योः' अर्थात् **यकारादि** अथवा **इकारादि** प्रत्यय परे रहते अंग का लोप होता है—

आ दी धी ल्युट्–

यहाँ न तो यकारादि परे है और न ही इकारादि परे है । अतः अन्त्यलोप न हुआ । यथा—आदीध्यनम् ।

इसी प्रकार—आवेव्यनम् ।

सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् 7.4.54

पद.—सनि 7.1, मीमाघुरभलभशकपतपदाम् 6.3, अचः 6.1, इस् 1.1

अनु.—अंगस्य सि ।

अर्थ—सकारादि सन् प्रत्यय परे रहते मी, मा, घुसंज्ञक धातु, रभ, लभ्, शक्, पत् तथा पद् अंगों के 'अच्' के स्थान पर 'इस्' आदेश होता है ।

सकारादि सन् से अभिप्राय है कि जहाँ सन् को इट् आगम न हुआ हो वहाँ ही उक्त 'इस्' आदेश होता है ।

उदा.—(1) मीञ् सन्–म् इस् स–
मित् स–मिमित्स–मित्सति ।
(सः स्यार्धधातु० । अत्र लोपोऽभ्या०)

इसी प्रकार—डुमिञ्–मित्सति ।

(2) 'मा' के द्वारा मा, माङ् तथा मेङ् तीनों का ग्रहण होता है ।

मेङ् को 'आदेच उपदेशेऽशिति' से 'मा' बन जाता है ।
मा सन्–मिस् स–
मित्सते ।
(पूर्ववत्)

(3) दा सन्–दिस् स–
दित्स–दिदित्स–दित्सति ।
द्र०–दित्सुः (भट्टि० 2.43) ।
धा सन्–धित्सति ।

(4) रभ् सन्–र् इस् भ् स–
र् इस् प् स–रिप् स–
(खरि च । स्कोः संयोगा०)
रिरिप्स–रिप्सते–आरिप्सते ।
(अभ्यास लोप) ।

(5) लभ् सन्–आलिप्सते ।

इसी प्रकार—लभ् सन्–लिप्स उ–लिप्सुः (भट्टि० 6.27) ।

(6) शक् सन्–श् इस् क् स–
शिक् स–शिक्षति ।

(7) पत् सन्–पिस् त् स–
पित्स–पित्सति । अभ्यास लोप ।

(8) पद् सन्–पिस् द् स–पिस् त् स–पित् स–
पित्सते–प्रपित्सते ।

विशेष—1. 'सनि' अर्थात् सकारादि **सन् परे** रहते ही 'इस्' होता है—

दा स्य ति–यहाँ सन् परे नहीं है । अतः 'इस्' न हुआ । दास्यति ।

2. तन् पत् व दरिद्रा धातु से उत्तर सन् को विकल्प से इट् आगम होता है [1]—

पत् सन्–पिपतिषति ।

3. हिंसा अर्थ में सन् परे रहते 'राध्' के अच् को 'इस्' होता है [2]—

राध् सन्–रिस् ध् स–रिस् त् स–रित्स–रिरित्स–रित्सति–प्रतिरित्सति ।

जहाँ हिंसा अर्थ न होगा वहाँ 'आरिरात्सति' बनता है ।

आप्ज्ञप्यृधामीत् 7.4.55

पद.—आप्ज्ञप्यृधाम् 6.3, ईत् 1.1

अनु.—अंगस्य अचः सः सनि ।

---

1. महा० 7.4.54 (वा०) तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानम् ।
2. महा० 7.4.54 (वा०) सनि राधो हिंसायामच इस् वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—सकारादि सन् परे रहते आप्, ज्ञप् तथा ऋध् अंगों के अच् को ईकार आदेश होता है।

उदा.—(1) आप् सन्-ईप् स-ई ईप्स-
ईप्सति।
(अभ्यास लोप)

(2) ज्ञप् स-ज्ञीप् स-ज्ञीप्सति।

(3) ऋध् स-ईर् ध् स-ईर् त् स-ईर्त्सति।

दम्भ इच्च 7.4.56

पद.—दम्भः 6.1, इत् 1.1, च-अव्य०।

अनु.—अंगस्य सः अचः सनि ईत्।

अर्थ—सकारादि सन् परे रहते 'दम्भ्' अंग के अच् के स्थान पर इकार व ईकार पर्यायेण होते हैं।

उदा.—दम्भ् सन्-दम्भ् स-दिम्भ् स-
(दम्भ इच्च। 'हलन्ताच्च' से सन् कित् हुआ। अनिदितां हल०)
दिभ् स-दि दिभ् स-दिभ् स-धिभ् स-
(द्वित्व, अत्र लोपोऽभ्यास०। एकाचो बशो०)
धिप् स तिप्-धिप्स अति-धिप्सति।
(खरि च। तिप्। शप्)
धीप्सति (ईकार होकर)

मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा 7.4.57

पद.—मुचः 6.1, अकर्मकस्य 6.1, गुणः 1.1, वा-अव्य०।

अनु.—अंगस्य सः सनि।

अर्थ—सकारादि सन् प्रत्यय परे रहते अकर्मक 'मुच्' धातु को विकल्प से गुण होता है।

उदा.—मुच् सन्-मोच् स-मोक् स-मोक्षते।

कर्मकर्त्ता में 'मुच्' अकर्मक होता है।

पक्ष में—मुमुक्षते।

'हलन्ताच्च' से सन् कित् था।

अकर्मक न होने पर 'मुमुक्षति' बनता है।

अत्र लोपोऽभ्यासस्य 7.4.58

पद.—अत्र-अव्य०, लोपः 1.1, अभ्यासस्य 6.1

अनु.—अंगस्य।

अर्थ—इस प्रकरण में सन् परे रहते जो जो कार्य का विधान किया गया है, वहाँ अभ्यास का लोप होता है।

इस प्रकरण में 'सनि मीमाघुरभ०' से लेकर 'मुचोऽकर्मकस्य०' तक इस्, ईत्, इत् तथा गुण आदि का विधान किया गया है। इन सभी प्रसंगों में अभ्यास लोप होता है। उदाहरण 'सनि मीमा०' आदि सूत्रों पर देखें।

ह्रस्वः 7.4.59

पद.—ह्रस्वः 1.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य।

अर्थ—अभ्यास को ह्रस्व होता है।

ह्रस्व आदेश अच् के स्थान पर होता है। 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्यास संज्ञा होती है।

उदा.—(1) ढोक् त-ढौढौक् त-डौढौक् ए-डुढौके।
(2) भू णल्-भू भू व् अ-भुभूव् अ-बभूव।

अन्य उदा.—
नि ली झ-निलिल्यिरे (वाम०पु० 5.24)

विशेष—1. अच् परे रहते अभ्यासकार्य (अर्थात् लोप) नहीं होता है[1]—
चर् यङ्-चर् आ चर्-
('वा चरि चलि०' वा० के द्वारा अभ्यास को 'आक्' आगम)
चराचर सु-चराचरः।
इसी प्रकार—चलाचलः।

हलादिः शेषः 7.4.60

पद.—हलादिः 1.1, शेषः 1.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य।

अर्थ—अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है तथा अन्य हलों का लोप होता है।

'हलादिः' पद का दो प्रकार से विग्रह सम्भव है—

(क) हलाम् आदिः (ष०तत्पु०) इस की दशा में 'अक्ष् णल्-अक् अक्ष अ' इस प्रकार अभ्यास का ककार शेष रहता

1. काशि० 7.4.60 (पद० टीका)
कर्मधारयपक्षे स्यादादिशब्दस्य पूर्वता।
षष्ठीसमासे त्वानक्षेत्यादौ शेषः प्रसज्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और अनिष्ट रूप बनता है । कारण कि ककार हलों में आदि है । अतः ष०तत्पु० मानना उचित नहीं है ।

(ख) हल् चाऽसावादिश्च (कर्म०) इस दशा में 'आदि' शब्द का पूर्व निपात होकर 'आदिहल्' ऐसा सूत्र पाठ होना चाहिए था ।

इससे सिद्ध होता है कि 'हलादिः' समस्त पद नहीं है ।

उदा.—पठ् णल्–पठ् पठ् अ–पपठ् अ–पपाठ् अ–पपाठ ।

अन्य उदा.—

बुन्द् णल्–बुबुन्द (भट्टि० 14.72)
भज् णल्–बभाज (भट्टि० 14.72)
बुध् त–बुबुधे (भट्टि० 14.71)
त्विष् झि–तित्विषुः (भट्टि० 14.70)
द्रम् झि–दद्रमुः (भट्टि० 14.70)
प्लु त–पुप्लुवे (भट्टि० 14.66)
वि क्षुभ् झि–विचुक्षुभुः (भाग० 7.8.32)
विक्रुश् झि–विचुक्रुशुः (भाग० 7.8.32)
ध्वन् झि–दध्वनुः (भट्टि० 14.3)
प्र द्रु णल्–प्रदुद्राव (वाम० 5.10)
सम् त्रस् झि–सन्तत्रसुः (भाग० 10.6.17)
ज्वल् झि–जज्वलुः (भाग० 7.3.5)
ध्वस् झ–दध्वंसिरे (भट्टि० 14.55)

विशेष—प्रकृतसूत्र में अनुवृत्त अभ्यासस्य' में 'अभ्यास' शब्द को जातिवाचक माना गया है ।[1] इस का अर्थ हुआ कि अभ्यास जाति में कहीं वह हलादि होता है तो कहीं अजादि ।

उन सभी प्रकार के अभ्यासों को एक ही जाति का मान लिया जाता है । अतः सूत्र की प्रवृत्ति हो जाती है । उदाहरण के लिए 'अत् अत् अ' इस दशा में अजादि अभ्यास है । तदपि तकार का लोप होता है ।

भाव यह है कि जातिवाचक अभ्यास में आदि में हल् हुआ तो वह शेष रहता है तथा अन्य हलों का लोप होता है और आदि में अच् हुआ तो केवल अन्य हलों का लोप होता है, कोई हल् शेष नहीं रहता ।

कुछ व्याख्याकार अष्टाध्यायी के संहितापाठ का आश्रय करके प्रकृतसूत्र का अर्थ अन्य प्रकार से किया करते हैं । यथा—'ह्स्वो हलादिः शेषः' इस संहिता पाठ का दो प्रकार का पदच्छेद सम्भव है—

(क) ह्स्वः हलादिः शेषः इसके अनुसार अर्थ पीछे दिखाया जा चुका है ।

(ख) ह्स्वः अहलादिः शेषः—ह्स्वः अहल् आदि शेषः– इसके अनुसार 'अहल्' का अर्थ है कि अभ्यास हल् से रहित होता है । 'आदिः शेषः' का अर्थ है कि अभ्यास में आदि हल् शेष रहता है । 'आदिः शेषः' पद 'अहल्' का अपवाद हुआ ।

इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है कि अभ्यास हलों से रहित होता है यदि आदि में हल् हो तो वह शेष रहता है । इस अर्थ के अनुसार अजादि अभ्यास के प्रसंग में कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है ।

शर्पूर्वाः खयः 7.4.61

पद.—शर्पूर्वाः 1.3, खयः 1.3

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य शेषः ।

अर्थ—शर् है पूर्व में जिसके ऐसा खय् अभ्यास में शेष रहता है ।

यहाँ 'आदिः' पद का अधिकार होने से अन्य हलों का लोप हो जाता है—यह फलितार्थ होता है ।

'शर्' प्रत्याहार में श, ष, स–ये तीन वर्ण होते हैं ।

'खय्' प्रत्याहार में वर्गों के प्रथम व द्वितीय वर्ण होते हैं ।

उदा.—(1) श्च्युत् स–श्च्युत् इस–
श्च्युत् श्च्युत् इस–

(यहाँ 'शर्' (शकार) पूर्व में है । अतः 'खय्' (चकार) शेष रहता है । अन्य हलों (श्, य) का लोप हो जाता है ।

चुश्च्युतिस शप् ति–
चुश्च्युतिषति ।

(2) ष्ठा–स्थासन्–स्था स्था स–था स्था स–थ स्था स–तस्था स–तिष्ठासति ।

(3) स्पदि–स्पन्द् इस–स्पन्द् स्पन्द् इस–पस्पन्द् इस–पिस्पन्दिस–पिस्पन्दिषते ।

(4) स्तृ णल्–स्तृ स्तृ अ–
स्तर् स्तृ अ–तस्तृ अ–
(उरत्)
तस्तार (रघु० 4.63) ।
अवतस्तार (वाम० 8.24)

अन्य उदा.—प्र स्कन्द् णल्–प्रचस्कन्द
(वाम० 7.63)

1. ' काशि० 7.4.60 अभ्यासजातेराश्रयणात् क्वचिदपि ....।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभि स्तु णल्–अभितुष्टाव (भट्टि० 14.38)
श्च्युत् णल्–चुश्च्योत (भट्टि०14.40)
स्तम्भ् त–तस्तम्भे (भट्टि० 14.55)
स्फुट् तिप्–पुस्फोट (भट्टि० 14.56)
विस्तन् तिप्–वितस्तान (भट्टि० 14.60)
स्फुर् झि–पुस्फुरुः (भट्टि० 14.०6)
प्रस्खल् झि–प्रचस्खलुः (भट्टि० 14.98)
नि ष्ठिव् झि–निटिष्ठिवुः (भट्टि० 14.100)

विशेष—1. 'शर्पूर्वाः' अर्थात् 'शर्' है पूर्व में जिसके ऐसा 'खय्' शेष रहता है—

पच् पच् अ–

अभ्यास में खय् (पकार) से पूर्व शर् नहीं है।

पपाच।

2. 'खयः' अर्थात् **खय् वर्ण** ही शेष रहता है—

स्रंस् त–सस्रंसे (भट्टि० 14.72)

शर् (सकार) पूर्व में है परन्तु उससे उत्तर खय् नहीं है। 'अतः' हलादिः शेषः की प्रवृत्ति हुई है।

परि स्वज् झ–परिषस्वजिरे
(भाग० 10.82.33)
वि स्मि झि–विसिस्म्युः
(भाग० 10.84.०1)।

स्ना णल्–स्ना स्ना अ

'स्ना' में सकार शर् है परन्तु उससे उत्तर नकार 'खय्' नहीं है। अतः नकार शेष नहीं रहा—

सा स्ना अ–स स्ना औ–सस्नौ (वाम० 3.50)

3. खर् पूर्वक खय् शेष रहते हैं—[1]

उच्छ् सन्–उच्छ् इस–उचिच्छीष (अन्तरंग होने के कारण प्रथम तुक् हुआ। द्वित्व। 'हलादिः शेषः' से अभ्यास में तकार का श्रवण होने लगेगा।

प्रकृत वार्त्तिक के द्वारा लोप हो गया।

उचिच्छीषति।

कुहोश्चुः 7.4.62

पद.—कुहोः 6.2, चुः 1.1

अनु.—अभ्यासस्य।

अर्थ—अभ्यास के कवर्ग तथा हकार के स्थान पर चवर्ग आदेश होता है।

स्थानी छह (क, ख, ग, घ, ङ, ह) हैं तथा आदेश पाँच (च, छ, ज, झ, ञ) हैं। अतः यथासंख्य परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है।

तब 'स्थानेऽन्तरतमः' से आदेश होना चाहिए। चूँकि सभी स्थानी कण्ठ्य हैं तथा आदेश तालव्य हैं। अतः स्थान-कृत आन्तर्य सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त हकार का आभ्यन्तरयत्न ईषद्विवृत तथा कवर्ग के वर्णों का स्पृष्ट है।

फलतः पारिशेष्यात् बाह्य प्रयत्न के द्वारा आदेश होता है। यथा—क् (विवार, श्वास, अघोष, अल्पप्राण) के स्थान पर च् (विवार, श्वास, अघोष, अल्प प्राण होता है)।

ख् (विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण) के स्थान पर छ् (विवार, श्वास, अघोष महाप्राण) होता है।

ग् (संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण) के स्थान पर ज् (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) होता है।

घ् (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) के स्थान पर झ (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) होता है।

ङ् (संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण) के स्थान पर ञ् (संवार, नाद, घोष, अल्प्रपाण) होता है।

ह् (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) के स्थान पर झ् (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) होता है।

उदा.—(1) कृ णल्–कृ कृ अ–कर कृ अ–ककृअ–च कृ अ–चकार। क्लम् णल्–चक्लाम (भट्टि० 5.102)।

(2) खन् णल्–खन् खन् अ–खखन् अ–चखन् अ–चखान् अ–चखान।

(3) गम् णल्–गम् गम् अ–गगम् अ–जगम् अ–जगाम।

(4) अद् लिट्–घस् अ–घघस् अ–झघस् अ–जघस् अ–जघास।

(5) हृ अ–झ हृ अ–ज हृ अ–जहार।

अन्य उदा.—

प्रस्कन्द् णल्–प्र क स्कन्द् अ–प्रचस्कन्द
(वाम० 7.63)
उद् हा थास्–उज्जिहीषे (भट्टि० 18.27)
(शप्, श्लु, द्वित्व)
वि क्षुभ् झि–विचुक्षुभुः (भाग० 7.8.32)

1. काशि० 7.4.61 (वा०) खपूर्वा खय इति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि क्रुश् झि–विचुक्रुशुः (भाग० 7.8.32)
क्षिप् त–चिक्षिपे (वाम० 8.23)
घुर् झि–जुघुरुः (भट्टि० 14.40)
ह्री झि–जिह्रियुः (भट्टि० 14.41)
ग्रस् त–जग्रसे (भट्टि० 14.43)
कुप् णल्–चुकोप (भट्टि० 14.44)
हस् णल्–जहास (भट्टि० 14.44)
नि ग्रह् णल्–निजग्राह (भट्टि० 14.45)
गुजि–गुञ्ज् (इदितो नुम्–)–गुञ्ज् णल्–जुगुञ्ज (भट्टि० 2.19)।

न कवतेर्यङि 7.4.63

पद.—न–अव्य०, कवतेः 6.1, यङि 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य चुः ।

अर्थ—यङ् परे रहते कुङ् अंग के अभ्यास को चुत्व नहीं होता है ।

यहाँ 'कुङ्' (भ्वा०) का ग्रहण किया जाता है ।

उदा.—कु यङ्–कु कु य–कोकुय–
(गुणो यङ्लुकोः)
कोकूय त–कोकूयते ।
(अकृत्सार्व०)
कोकूय त (लुङ्)–अकोकूयिष्ट (भट्टि० 15.114)
(पूर्ववत् धातु संज्ञा) ।

विशेष—'यङि' अर्थात् यङ् परे रहते ही चुत्व का निषेध होता है—

कु त (लिट्)–कु ए–कु कु ए–चुकुवे ।

यहाँ यङ् परे नहीं है । अतः चुत्व का निषेध न हुआ ।

कृषेश्छन्दसि 7.4.64

पद.—कृषेः 6.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य न चुः यङि ।

अर्थ—वेद के विषय में कृष् अंग के अभ्यास को चुत्व नहीं होता है, यङ् परे रहते ।

उदा.—कृष् यङ्–कृष् कृष् य–
कृ कृष् य–क कृष् य–करी कृष् य–
करीकृष्यते ।

लोक में 'चरीकृष्यते' होता है ।

दाधर्त्तिदर्धर्त्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्-संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्-दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृजन्-मर्मृज्यागनीगन्तीति च 7.4.65

पद.—दाधर्त्ति इति प्रत्येकं पृथक् पृथक् पदानि, इति–अव्य०, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य छन्दसि अभ्यासस्य ।

अर्थ—वेद के विषय में दाधर्त्ति, दर्धर्त्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य तथा आगनीगन्ति शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—(1) धृणि शप् ति–धृ धृ ति
(शप्, श्लु, णिलुक्, द्वित्व)
दाधर्त्ति ।

(2) धृणि, तिप्–धृइ शप् ति–धृ इति–
(शप्, श्लु, 'बहुलं छन्दसि')
धृ धृ इ ति–ध र्धृ इति–दर्धर् ति–दर्धर्त्ति ।
(निपातन से णिलुक् रुक् आगम, अभ्यास को दीर्घ)

(3) धृ णिच् सिप्–दर्धर्षि (ऋ० 5.84.3)
(पूर्ववत्)

(4) भू यङ्–भू–भू भू–बुभू–बोभू–तिप् (लोट्)
बोभूति–बोभूतु ।

(5) तिज् यङ्–तेतिक् त–तेतिक्ते ।
(यङ्लुक् । निपातन से आत्मनेपदत्व
चोः कुः । खरि च) ।

(6) ऋ (जुहो०)–ऋ सिप्–ऋशप् सिप्–ऋ सिप्–अर् अर् सि
(निपातन से अनादि हल् रेफ शेष रहा । अभ्यास के रेफ को निपातन से लत्व)
अल् अर्सि–अलर्षि । (ऋ० 8.1.7)

(7) आङ् फण् यङ्–आफण्–आ फ फ ण्–
आ प फण् शतृ–आ प नीक् फण् अत्–आपनीफणत्
(ऋ० 4.40.4)
(अभ्यास को निपातन से नीक् आगम)

(8) सम् स्यन्द्–सम् स स्यन्द् शतृ–
(पूर्ववत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं स निक् ष्यदत्

(निपातन से 'निक्' आगम तथा षत्व । अनिदितां हल उपधायाः० से अनुनासिक लोप)

संसनिष्यदत्

(9) कृ यङ्–कृ कृ शतृ–क रिक् कृ अत्–
('कुहोश्चुः' से प्राप्त चुत्व का अभाव, रिक्) करिक्रत् ।

(10) क्रन्द् लुङ्–क्रन्द् अङ् ति–क्रन्द् क्रन्द् अ ति–क क्रन्द् अ त्–कनिक्रदत् (ऋ० 1.128.3)
(निपातन से चुत्व का अभाव, निक् आगम)

(11) भृ यङ्–भृ भृ शतृ–भ भृ अत्–
(अभ्यासे चर्च' से प्राप्त जश्त्व का अभाव)
भरिभ्रत् (ऋ० 2.4.4)
(रिक् आगम)

(12) ध्वृ यङ्–ध्वृ ध्वृ शतृ–धृ ध्वृ अत्–
धध्वृ अत्–द विक् ध्वृ अत्–दविध्वत् जस्–
निपातन से विक् आगम, ऋकार का लोप ।
दविध्वतः (ऋ० 4.13.4) ।
(उगिदचा० । नाऽभ्यस्ताच्छतुः)

(13) द्युत् यङ्–द्युत् द्युत् शतृ–
(द्युतिस्वाप्योः–से प्राप्त सम्प्रसारण का अभाव)
दु द्युत् अत्–दविद्युतत् (ऋ० 7.10.1, शत० 8.6. 3.20) (अभ्यास को अत्व, विक् आगम)

(14) तृ शतृ–तृ शप् शतृ–तृ शतृ–तृ तृ अत्
(शप्, श्लु, रिक् आगम)
त रि तृ अत्–तरि त्रत् ङस्–तरित्रतः (ऋ० 4.40.3, शत० 5.1.5.20)

(15) सृप् शतृ–सृ सृ प् अत्–ससृप् अत्–
(पूर्ववत् शप्, श्लु, अभ्यासकार्य)
सरी सृपत् अम्–सरीसृपतम्
(रीक् आगम)

(16) वृज् शतृ–वरीवृजत् (तै०ब्रा० 2.4.3.6) ।
(पूर्ववत्)

(17) मृज् णल्–ममृज्–मर् मृज् अ–
(अभ्यासकार्य, रुक् आगम)
मर्मज्य् अ–मर्मृज्य
(युक् आगम)

(18) आङ् गम् लट्–आगम् ति–आगगम् ति–
(शप्, श्लु, अभ्यासकार्य)
आगनीगन्ति (ऋ० 6.75.3) यजु० 29.40)

(चुत्व का अभाव, नीक् आगम, गम् के मकार को अनुस्वार तथा पर सवर्ण) ।

उरत् 7.4.66

पद.—उः 6.1, अत् 1.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य ।

अर्थ—(प्रत्यय परे रहते) अभ्यास के ऋवर्ण के स्थान पर 'अत्' होता है ।

उदा.—वृत् त (लिट्)–वृत् ए–वृ वृत् ए–वर् वृत् ए–ववृते ।

विशेष—व्रश्च् तिप्–व्रश्च् अ–व्रश्च् व्रश्च् अ
(लिट्, णल्, द्वित्व)–
वृश्च् व्रश्च् अ–वृव्रश्च् अ–वव्रश्च् अ
(लिट्यभ्यासस्यो० से अभ्यास के रेफ को सम्प्रसारण । उरत्)
व व्रश्च् अ

इस दशा में 'लिट्यभ्यास०' से अभ्यास के वकार को सम्प्रसारण प्राप्त होता है । चूँकि 'उरत्' से अत् आदेश हो जाने के कारण सम्प्रसारण परे न रहने से 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' से निषेध भी नहीं होता है ।

'अत्' आदेश परले प्रत्यय (णल्' को मानकर हुआ है । अतः परनिमित्तक अजादेश हुआ । तब 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' के द्वारा स्थानिवत् हुआ । 'अत्' स्थानिवद्भाव से सम्प्रसारण हुआ । फलतः 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' के द्वारा वकार को प्राप्त सम्प्रसारण का निषेध होता है—

वव्रश्च ।

इसी लिए 'प्रत्यय परे रहते' ऐसा सूत्रार्थ किया गया है ।

द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् 7.4.67

पद.—द्युतिस्वाप्योः 6.2, सम्प्रसारणम् 1.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य ।

अर्थ—द्युत् धातु तथा स्वापि (णिजन्त स्वप्) धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है ।

'इग्यणः सम्प्रसारणम्' के द्वारा 'यण्' के स्थान पर सम्प्रसारण 'इक्' होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—(1) द्युत् त (लिट्)-द्युत् ए-द्युत् द्युत् ए-द्यु द्युत् ए-दिद्युते (भट्टि० 14.104)

(2) द्युत् णिच् लुङ्-द्युत् इ अङ् त्-(च्लि, चङ्, णिलोप)
द्युत् द्युत् अत्-दि द्युत त्-अदिद्युतत् ।

(3) द्युत् सन्-द्युत् इ स-द्युत् द्युत् इस-दि द्युत् इस-दिद्योतिषते ।
पक्ष में—दिद्युतिषते ।

('रलो व्युपधा०' से सन् को विकल्प से किद्वत् होता है)

(4) स्वप् णिच्-स्वाप् इ सन्-स्वापि इट् स-स्वाप् स्वापि इस-सु स्वापि इस-सुष्वापयिषति ।

द्विर्वचन करते समय 'णौ कृतं स्थानिवद् भवति' (पा० 1.1.57 पर भाष्यज्ञापक) से अद्विर्वचननिमित्तक 'णि' के 'इ' के परे रहते भी रूपातिदेश होकर 'स्वप् स्वापि इस' इस प्रकार द्वित्व होता है ।

व्यथो लिटि 7.4.68

पद.—व्यथः 6.1, लिटि 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य सम्प्रसारणम् ।

अर्थ—लिट् परे रहते 'व्यथ्' अंग के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है ।

उदा.—व्यथ् त (लिट्)-व्यथ् व्यथ् ए-व्य व्यथ् ए वि व्यथ् ए-विव्यथे (भट्टि० 14.60)

(न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्) ।

'लिटि' अर्थात् **लिट् परे** रहते ही सम्प्रसारण होता है—

व्यथ् यङ् व व्यथ्य-वाव्यथ्यते ।

यहाँ लिट् परे है । अतः सम्प्रसारण न हुआ ।

दीर्घ इणः किति 7.4.69

पद.—दीर्घः 1.1, इणः 6.1, किति 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य लिटि ।

अर्थ—कित् लिट् परे रहते इण् अंग के अभ्यास को दीर्घ होता है ।

'असंयोगाल् लिट् कित्' से लिट् किद्वत् होता है ।

उदा.—इ अतुस्-इ इ अतुस्
(अतुस् कित् है । आर्धधातुक गुण का निषेध हो गया)

ई इ अतुस्-ई य् अतुस्-ईयतुः प्रकृतसूत्र के द्वारा दीर्घ हुआ । 'अकः सवर्णे दीर्घः' को बाधकर 'इणो यण्' से 'यण्' हुआ । वार्णादांगं बलीयः (प०)

इसी प्रकार—ईयुः (भट्टि० 3.40) ईयथुः । ईय । ईयिव । ईयिम ।

'किति' अर्थात् **कित्** परे रहते ही दीर्घ होता है—

इ णल्-इ इ अ-इ आय् अ-इयाय यहाँ लिट् कित् नहीं है । अतः दीर्घ आदेश न हुआ ।

अत आदेः 7.4.70

पद.—अतः 6.1, आदेः 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य दीर्घः लिटि ।

अर्थ—लिट् परे रहते अभ्यास के आदि ह्रस्व अकार को दीर्घ आदेश होता है ।

उदा.—अत् णल्-अत् अ-अत् अत् अ-अ अत् अ ('अतो गुणे' से प्राप्त पररूप एकादेश को बाधकर अभ्यास को दीर्घ हुआ)

आ अत् अ-आआत् अ-आत ।

(अत उपधायाः । अकः सवर्णे दीर्घः) अंह् झ (लिट्)-आनंहिरे ।

(भट्टि० 3.46) । आनंहे (भट्टि० 14.51)

अश् झ-अ अश् इरे-आनशिरे (भट्टि० 14.19)

विशेष—1. 'आदेः' अर्थात् **आदि** अकार को ही दीर्घ होता है—पच् णल्-पपच् अ-

इस दशा में अभ्यास में ह्रस्व अकार है परन्तु वह आदि में नहीं है । अतः दीर्घ न हुआ—पपाच ।

2. 'लिटि' का अनुवर्त्तन होने से 'अरर्त्ति' में दीर्घ नहीं होता है । द्र०—

ऋ यङ्-ऋ-अर् अर् तिप् (लिट् परे नहीं है । अतः दीर्घ न हुआ) अरर्त्ति ।

3. 'अतः' में तपरकरण के प्रयोजन के विषय में दो मत हैं—

(क) कुछ व्याख्याकार इसे मुखसुखार्थ मानते हैं । अतः उनके मत में 'आनाञ्छ' रूप साधु है ।

(ख) न्यासकार प्रभृति विद्वान् 'अत्' में तपरकरण के द्वारा एक ज्ञापक सिद्ध करते हैं । उनके अनुसार 'ह्रस्वः' के द्वारा अभ्यास को ह्रस्व आदेश होता है फलतः अभ्यास में आकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध ही नहीं होता है । तब प्रकृतसूत्र के द्वारा तपरकरण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि जहाँ शुद्ध अर्थात् स्वाभा-विक ह्रस्व अकार अभ्यास में होता है, वहाँ पर ही प्रकृतसूत्र के द्वारा दीर्घ आदेश होता है तथा जहाँ 'ह्रस्वः' सूत्र के द्वारा सम्पादित ह्रस्व अकार होता है, वहाँ यह सूत्र प्रवृत्त नहीं होता है ।[1] यथा—

आछि–आञ्छ् लिट्–आ आञ्छ् अ – अ आञ्छ् अ–

इस दशा में अभ्यास में ह्रस्व अकार 'ह्रस्वः' सूत्र के द्वारा सम्पादित है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा दीर्घ आदेश नहीं होगा—आञ्छ

यदि प्रकृतसूत्र के द्वारा अभ्यास को दीर्घ कर दिया जायेगा तो 'तस्मान्नुड् द्विहलः' से 'नुट्' होकर 'आनाञ्छ' ऐसा अनिष्ट रूप बनता है ।

तस्मान्नुड् द्विहलः 7.4.71

पद.—तस्मात् 5.1, नुट् 1.1, द्विहलः 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य लिटि ।

अर्थ—लिट् परे रहते दो हल् वाले धातु के दीर्घीभूत अभ्यास के अकार से उत्तर अंग को 'नुट्' आगम होता है ।

यहाँ 'अत आदेः' के द्वारा दीर्घीभूत आकार का ग्रहण है ।

उदा.—(1) अर्च् लिट्–अर्च् णल्–अर्च् अर्च् अ–अ अर्च् अ–आ अर्च् अ

(दीर्घीभूत 'आ' से उत्तर 'अर्च्' अंग है । इसे 'नुट्' होता है)

आ न् अर्च् अ–आनर्च ।

(2) अगि–अङ्ग् णल्–अ अङ्ग् अ–

आ नुट् अङ्ग् अ–आनङ्ग ।

'द्वि हलः' अर्थात् दो हल् वाले धातु के विषय में ही अंग को नुट् होता है—अट् णल्–अ अट् अ–आ अट् अ

यहाँ दीर्घीभूत 'आ' से उत्तर 'अट्' अंग है परन्तु दो हल् वाला धातु नहीं है । अतः नुट् न हुआ ।

आ आट् अ–आट ।

अश्नोतेश्च 7.4.72

पद.—अश्नोतेः 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य तस्मात् नुट् लिटि ।

अर्थ—लिट् परे रहते 'अशू' धातु के दीर्घीभूत आकार से उत्तर अंग को 'नुट्' होता है ।

उदा.—(1) अश् त (लिट्)–अश् ए–अश् अश् ए–अ अश् ए–आ अश् ए–आ नुट् अश् ए–आनशे–व्यानशे ।

(2) अश् झ (लिट्)–अ अश् इरेच्–आन् अश् इरे–आन-शिरे (भट्टि० 14.19) ।

भवतेरः 7.4.73

पद.—भवतेः 6.1, अः 1.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य लिटि ।

अर्थ—लिट् परे रहते अंगसंज्ञक 'भू' के अभ्यास को अकार आदेश होता है ।

उदा.—भू लिट्–भू णल्–भू व् अ–

(भूवो वुक् लुङ्लिटोः)

भूव् भूव् अ–भू भू व् अ–

(पूर्वोऽभ्यासः । हलादिः शेषः)

भु भू व् अ–भ भू व् अ–

(ह्रस्वः । भवतेरः)

बभूव (अभ्यासे चर्च)

लिट् की रूपमाला

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
म०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम

धातु को श्तिप् से निर्दिष्ट करने के कारण यह सूत्र यङ्लुक् में प्रवृत्त न होगा ।

'भवतेः' में 'भू' अनुकरण परक शब्द है । अतः धातुत्वेन अभिमत यावन्मात्र 'भू' शब्द का ग्रहण इष्ट है ।

फलतः 'अस्तेर्भूः' से विहित 'भू', चौरादिक 'भू' और 'कृञ्चाऽनुप्रयुज्यते लिटि' से अनुप्रयुक्त 'भू'–इन सभी में यह सूत्र प्रवृत्त होता है ।

ससूवेति निगमे 7.4.74

पद.—ससूव–तिङन्तपदम्, इति–अव्य०, निगमे 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य अः लिटि ।

अर्थ—वेद के विषय में 'ससूव' शब्द का लिट् में निपातन

---

1. काशि० 7.4.70 तपरकरणं स्वभावत (न्यास)
एव यो ह्रस्वस्तस्य दीर्घो यथा स्यात् ।
तेनोपदेशे यो दीर्घस्तस्य ह्रस्वत्वे कृतेऽपि दीर्घो न भवति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है ।

उदा.—षू-सू लिट्-सू तिप्-सू णल्-
(निपातन से परस्मैपदत्व)
सू वुक् अ-सूव् सू व् अ-
(निपातन से वुक् आगम)
सू सू व् अ-सु सू व् अ-स सूव (ऋ० 4.18.10)
(अभ्यास को अकार आदेश निपातन से)

णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ 7.4.75

पद.—णिजाम् 6.3, त्रयाणाम् 6.3, गुणः 1.1, श्लौ 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य ।

अर्थ—णिज् आदि तीन धातुओं (णिजिर्, विजिर्, विष्लृ) के अभ्यास के स्थान पर गुण होता है । 'श्लु' परे रहते ।

'इको गुणवृद्धी' के द्वारा गुण आदेश इक् के स्थान पर होता है ।

लट्, लोट्, लङ् तथा विधिलिङ में शप् होता है तथा शप् को श्लु होता है । अतः उक्त चार लकारों में ही श्लु होगा ।

उदा.—(1) णिज्-निज् तिप् (लट्)-निज् शप् तिप्-निज् ति-नि नि ज् ति-
(श्लु, द्वित्व, अभ्यासकार्य)
नेनिज् ति-नेनेज् ति-नेनेक्ति ।
(पुगन्तलघूपध० । चोः कुः)
निज् त-निज् निज् त-निनिज् त-नेनिज् त-
नेनिक्ते
(टित आत्मनेपदानां टे०)

(2) विज् शप् तिप्-विज् ति-विविज् ति-वे विज् ति-वेवेक्ति ।

(3) विष् ति-विविष् ति-
(शप्, श्लु)
वेविष् ति-वेवेष्टि ।

अभ्यास के लिए उपर्युक्त चारों लकारों में णिजिर् धातु की सम्पूर्ण रूपमाला दर्शाई जा रही है ।

लट् लकार (परस्मैपद)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	नेनेक्ति	नेनिक्तः	नेनिजति
म०पु०	नेनेक्षि	नेनिक्थः	नेनिक्थ
उ०पु०	नेनेज्मि	नेनिज्वः	नेनिज्मः

लट् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	नेनिक्ते	नेनिजाते	नेनिजते
म०पु०	नेनिक्षे	नेनिजाथे	नेनिग्ध्वे
उ०पु०	नेनिजे	नेनिज्वहे	नेनिज्महे

लोट् लकार (परस्मै०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	नेनेक्तु, नेनिक्तात्	नेनिक्ताम्	नेनिजतु
म०पु०	नेनिग्धि, नेनिक्तात्	नेनिक्तम्	नेनिक्त
उ०पु०	नेनिजानि	नेनिजाव	नेनिजाम

लोट् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	नेनिक्ताम्	नेनिजाताम्	नेनिजताम्
म०पु०	नोनिक्ष्व	नेनिजाथाम्	नेनिग्ध्वम्
उ०पु०	नोनिजै	नेनिजावहै	नेनिजामहै

लङ् लकार (परस्मै०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	अनेनेक्, अनेनेग्	अनेनिक्ताम्	अनेनिजुः
म०पु०	अनेनेक्, अनेनेग्	अनेनिक्तम्	अनेनिक्त
उ०पु०	अनेनिजम्	अनेनिज्व	अनेनिज्म

लङ् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	अनेनिक्त	अनेनिजाताम्	अनेनिजत
म०पु०	अनेनिक्थाः	अनेनिजाथाम्	अनेनिग्ध्वम्
उ०पु०	अनेनिजि	अनेनिज्वहि	अनेनिज्महि

विधि लिङ् लकार (परस्मै०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	नेनिज्यात्	नेनिज्याताम्	नेनिज्युः
म०पु०	नेनिज्याः	नेनिज्यातम्	नेनिज्यात
उ०पु०	नेनिज्याम्	नेनिज्याव	नेनिज्याम

विधि लिङ् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	नेनिजीत	नेनिजीयाताम्	नेनिजीरन्
म०पु०	नेनिजीथाः	नेनिजीयाथाम्	नेनिजीध्वम्
उ०पु०	नेनिजीय	नेनिजीव	नेनिजीम

विशेष—1. 'णिजाम्' के स्थान पर 'निजाम्' इस प्रकार नकार घटित रूप भी प्राप्त होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. 'श्लौ' अर्थात् **श्लु** परे रहते ही अभ्यास को गुण होता है—

णिज्-निज् लिट्-निज् अ
(लिट् परे है। अतः श्लु प्राप्त नहीं है)
नि निज् अ-निनेज
(अभ्यास को गुण न हुआ)

भृञामित् 7.4.76

पद.—भृञाम् 6.3, इत् 1.1

अनु.—अंगस्य त्रयाणाम् अभ्यासस्य श्लौ।

अर्थ—श्लु परे रहते भृञ् आदि तीन धातुओं (भृञ्, माङ्, ओहाङ्) के अभ्यास को ह्रस्व इकार आदेश होता है। अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् के स्थान पर इकार होता है।

उदा.—(1) भृ शप् ति-भृति-भृ भृ ति-
भर् भृति-भभृति-बभृति-
(श्लु, अभ्यासकार्य)
बिभृति-बिभर्ति-बिभर्ति।

(2) माङ् त-मामात-म मा त-
(शप्, श्लु, अभ्यासकार्य)
मि मा त-मिमीते (ई हल्यघोः)।

(3) ओहाङ्-झ हा त-ज हा त-
(पूर्ववत्)
जि हा त-जिहीते।

(पूर्ववत्)। उद् हा शानच्-उद् ज हा आन-
(शप्, श्लु, द्वित्व)
उज्जिहान सु-उज्जिहानः (भट्टि० 3.47)

उद् हा थास्-उज्जिहीषे (भट्टि० 18.27) अभ्यास के लिए उक्त तीनों धातुओं की सम्पूर्ण रूपमाला (लट्, लोट्, लङ्, विधि लिङ् लकारों में) नीचे दिखाई जा रही है तथा विशेष सूत्रों का यथावसर निर्देश कर दिया गया है।

भृञ्

लट् लकार (परस्मै०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति
म०पु०	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ
उ०पु०	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः

लट् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
म०पु०	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उ०पु०	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लोट् लकार (परस्मै०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	बिभर्तु, बिभृतात्	बिभृताम्	बिभ्रतु
म०पु०	बिभृहि, बिभृतात्	बिभृतम्	बिभृत
उ०पु०	बिभराणि	बिभराव	बिभराम

लोट् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
म०पु०	बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
उ०पु०	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

लङ् लकार (परस्मै०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः (भट्टि०17.53)
म०पु०	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत
उ०पु०	अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम

लङ् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
म०पु०	अबिभृथाः	अबिभ्राथाम्	अबिभृध्वम्
उ०पु०	अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

विधिलिङ् लकार (परस्मै०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः
म०पु०	बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात
उ०पु०	बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम,

विधिलिङ् लकार (आत्मने०)

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	बिभ्रीत	बिभ्रीयाताम्	बिभ्रीरन्
म०पु०	बिभ्रीयाः	बिभ्रीयाथाम्	बिभ्रायध्वम्
उ०पु०	बिभ्रीय	बिभ्रीयावहि	बिभ्रीयामहि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माङ्

लट् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	मिमीते	मिमाते	मिमते
म०पु०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
उ०पु०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे

लोट् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
म०पु०	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
उ०पु०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै

लङ् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
म०पु०	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
उ०पु०	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि

विधिलिङ् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
म०पु०	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
उ०पु०	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि

ओहाङ्

लट् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	जिहीते	जिहाते	जिहते
म०पु०	जिहीषे	जिहाथे	जिहीध्वे
उ०पु०	जिहे	जिहीवहे	जिहीमहे

लोट् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	जिहीताम्	जिहाताम्	जिहताम्
म०पु०	जिहीष्व	जिहाथाम्	जिहीध्वम्
उ०पु०	जिहै	जिहावहै	जिहामहै

लङ् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	अजिहीत	अजिहाताम्	अजिहत
म०पु०	अजिहीथाः	अजिहाथाम्	अजिहीध्वम्
उ०पु०	अजिहि	अजिहीवहि	अजिहीमहि

वि०लिङ् लकार

	एकव०	द्विव०	बहु०
प्र०पु०	जिहीत	जिहीयाताम्	जिहीरन्
म०पु०	जिहीथाः	जिहीयाथाम्	जिहीध्वम्
उ०पु०	जिहीय	जिहीवहि	जिहीमहि

अर्त्तिपिपर्त्त्योश्च 7.4.77

पद.—अर्त्तिपिपर्त्त्योः 6.2, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य श्लौ इत् ।

अर्थ—श्लु परे रहते ऋ तथा पॄ धातु के अभ्यास को इकार आदेश होता है ।

इकार आदेश अन्त्य वर्ण को होता है ।

उदा.—(1) ऋ ति–ऋ शप् ति–ऋ ति–ऋ ऋ ति–इर् ऋ ति–इ ऋ ति–इ अर् ति–

(गुण)

इय् अर् ति–इयर्त्ति ।

(इयङ्, तकार को द्वित्व)

(2) पॄ पॄ ति–पिर् पॄ ति–पि पॄ ति–

(पूर्ववत्)

पि पर् ति–पिपर्त्ति ।

न्यास के अनुसार परत्व के कारण प्रथम गुण तथा पश्चात् द्वित्व होता है—

पॄ ति–पर् ति–पर् पर् ति–पपर् ति–पिपर्त्ति ।[1]

बहुलं छन्दसि 7.4.78

पद.—बहुलम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य इत् श्लौ ।

अर्थ—वेद के विषय में श्लु परे रहते अभ्यास को बहुल करके इकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) वश्–ववश् ति–विवश् ति–

(पूर्ववत् श्लु)

विवष्टि–विवष्टि । ऋ० 7.16.11) ।

(व्रश्चभ्रस्ज० । ष्टुना ष्टुः)

(2) वच्–वि वच् ति–विवक्ति । ऋ० 9.97.7) ।

(पूर्ववत्)

1. काशि० (न्यास) 7.4.77

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) षच्-सच् ति-सिसक्ति
(पूर्ववत्)
सिषक्ति (ऋ० 1.38.8)।

(4) दा ति-ददाति

यहाँ अभ्यास को इकार आदेश न हुआ।

सन्यतः 7.4.79

पद.—सनि 7.1, अतः 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य इत्।

अर्थ—सन् परे रहते अभ्यास के ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार आदेश होता है।

उदा.—(1) पठ् सन्-पठ् इ स-पठ् पठ् इ स-
(सन्, इट्, द्वित्व)
प पठि स-पिपठिषति
(सन्वद्भाव। इकार आदेश)

(2) पच्-पिपक्षति
(चोः कुः)

(3) यज्-य यज् स-
(पूर्ववत्)
यि यज् स-यि य ष् स-यियक् स-
(व्रश्चभ्रस्ज०। षढोः कः—)
यियक्षति।

(4) ष्ठा-स्था स्था स-थ स्था स-
त स्था स-तिस्था स-तिस्थासति-

तिष्ठासति। इसी प्रकार—अचिक्रमन् (क्रम् णिच् चङ् झि) द्र० भट्टि० 15.3 रिरंसुः ; भाग० 7.1.10)।

विशेष—1. 'सनि' अर्थात् **सन् परे** रहते अभ्यास को इकार होता है—प पच् अ (लिट्)-
यहाँ सन् परे नहीं है। अतः इकार न हुआ—
पपाच।

2. 'अतः' अर्थात् **ह्रस्व अकार** के स्थान पर इकार होता है— लू सन्-लुलूस-

यहाँ सन् परे है परन्तु अभ्यास में ह्रस्व अकार नहीं है। अतः इकार न हुआ-लुलूषति।

3. 'अतः' में तपरकरण का फल है कि **ह्रस्व अकार** के स्थान पर ही इकार होता है—पच् यङ्-पापच्य सन्-पा पच् स (य लोप)।
पा पच् इट् स-पापचिषते

अभ्यास में अ वर्ण तो है परन्तु ह्रस्व नहीं है। अतः इकार न हुआ।

ओः पुयण्ज्यपरे 7.4.80

पद.—ओः 6.1, पुयण्जि 7.1, अपरे 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य इत् सनि।

अर्थ—सन् परे रहते जो अंग, उसके अवयव अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार आदेश होता है यदि प वर्ग, यण् व जकार परे हो और इनसे परे अकार हो। 'अपरे' पद 'पुयण्जि' का विशेषण है।

उदा.—(1) पू सन्-पू इ स-पविष
(स्मिपूङ्०)
पू पविष-पुपविष-पिपविषति।
('द्विर्वचनेऽचि' से रूपातिदेश)

'पु' अभ्यास है। ह्रस्व उकार है। 'पुपविष' अंग का अवयव है। अभ्यास के उकार से परे पवर्ग (प्) है। इससे परे अकार है। अतः उकार को इकार हुआ।

(2) पू णिच्-पावि सन्-पावि इस-
पावयिष-पू पावयिष-
(रूपातिदेश)
पुपावयिष-पिपावयिषति।
(ह्रस्व, इकार)

(3) भू णिच्-भू भू इ-भुभू इ-
(द्विर्वचनेऽचि)
बु भू इ-अट् बुभू इ अ त-
(लुङ् में चङ्)
अ बु भाव् इ अत्-अबुभव् अत्-

(णौ चङ्युपधा०। णेरनिटि 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से स्थानिवद्भाव प्राप्त होता है परन्तु वचनसामर्थ्य से नहीं होता है। यदि इस प्रकार स्थानिवद्भाव मानेंगे तो कहीं भी ह्रस्व अकार उपलब्ध न होगा। तब प्रकृतसूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि ऐसे स्थानों पर स्थानिवद्भाव नहीं होता है।

अबिभवत्
(सन्वल्लघुनि चङ्परे०)

'बु' अभ्यास है। उकार से उत्तर पवर्ग (भ्) है। इससे उत्तर अकार है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) यु सन्–यु इ स–यविस–युयविष–यियविषति

(पूर्ववत् । अभ्यास के उकार से पर यण् 'य्' है । इससे पर अकार है)

(5) यु णिच्–यावि सन्–यु यावयिष–यियावयिषति ।

(6) रु–रिरावयिषति

अभ्यास के उकार से पर यण् 'र्' है । उससे पर अकार है। अत: उकार को इकार हो गया ।

(7) लू–लिलावयिषति ।

अभ्यास के उकार से पर यण् 'ल्' है । उससे पर अकार है। अत: उकार को इकार हो गया ।

(8) जु णिच्–जावि स–जुजावयिष ।

(अभ्यास के उकार से उत्तर जकार है । उससे उत्तर अकार है)

जिजावयिषति ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'ओ:' अभ्यास के **उकार** के स्थान पर इकार होता है—पच् यङ्–पापच्य सन्–पापचिषते ।

यहाँ अभ्यास से उत्तर पवर्ग 'प्' है । उससे उत्तर अकार है परन्तु अभ्यास में उकार नहीं है । अत: इकार न हुआ ।

2. 'पुयणजि' अर्थात् उकार से पर **पवर्ग** या **यण्** अथवा **जकार** हो तभी इकार होता है—

हु–हु णिच्–हावि सन्–जुहावयिषति यहाँ अभ्यास में उकार है । इससे पर न पवर्ग है, न यण् वर्ण है तथा न ही जकार है। अत: इकार न हुआ ।

3. 'अपरे' **अपरक** पु, यण् तथा जकार परे रहते ही उकार को इकार होता है—

भू सन्–बुभूषति

अभ्यास में उकार है । उससे पर पवर्ग है परन्तु उससे पर अकार नहीं है । अत: उकार को इकार न हुआ ।

स्रवतिश्रृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा 7.4.81

पद.—स्रवति श्रृणोति ... च्यवतीनाम् 6.3, वा–अव्य० ।

अनु.—अभ्यासस्य ओ: इत् पुयण् ज्यपरे सनि ।

अर्थ—सन् परे रहते स्रु, श्रु, द्रु, प्रु, प्लु तथा च्यु अंग, उसके अवयव अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार आदेश विकल्प से होता है यदि पवर्ग, यण् व जकार परे हो और इनसे परे अकार हो ।

उदा.—(1) स्रु णिच्–स्रावि सन्–स्रावयिष–
सु स्रावयिष–सिस्रावयिषति । सुस्रावयिषति ।
(पूर्ववत्)

वचन सामर्थ्य से उवर्णान्त अभ्यास तथा अकारपरक यण् के मध्य व्यवधान होने पर भी इकार हो जाता है ।

(२) श्रु णिच्–श्रावि सन्–श्रावयिष–शुश्रावयिष–शिश्रावयिषति । शुश्रावयिषति ।
(पूर्ववत्)
श्रु णिच् झि (लुङ्)–
अशिश्रवन् (भट्टि० 3.25; 15.71) ।

(3) द्रु णिच्–द्रावि सन्–द्रावयिष–दुद्रावयिष–दिद्रावयिषति । दुद्रावयिषति ।
(पूर्ववत्)

(4) प्रु–पिप्रावयिषति । पुप्रावयिषति ।
पूर्ववत् ।

(5) प्लु–पिप्लावयिषति । पुप्लावयिषति । इसी प्रकार—अपिप्लवन् (भट्टि० 15.42) यह 'प्लु' का लुङ् प्र०पु० बहुव० का रूप है ।

(6) च्यु–चिच्यावयिषति । चुच्यावयिषति ।

गुणो यङ्लुको: 7.4.82

पद.—गुण: 1.1, यङ्लुको: 7.2

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य ।

अर्थ—यङ् या यङ्लुक् परे रहते अभ्यास को गुण आदेश होता है ।

साहचर्यवशात् 'लुक्' के द्वारा 'यङ्लुक्' का ग्रहण होता है ।

गुण आदेश इक् के स्थान पर होता है ।

उदा.—(1) चि यङ्–चि चि य–
चे चि य–चे ची य–चेचीयते
(अकृत्सार्वधातु०)

(2) क्षि–चेक्षीयते ।

(3) छिद्–चेच्छिद्यते ।

(4) जि–जेजीयते ।

(5) दीप्–देदीप्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) घुष्–जोघुष्यते ।

(7) तुद्–तोतुद्यते ।

(8) दुह्–दोदुह्यते ।

(9) भुज्–बोभुज्यते ।

(10) भू यङ्–भू भू य–भु भूय–बुभूय–
(सार्वधातुकार्धधातु० । क्ङिति च । सन्यङो)
बोभूय शप् त–बोभूयते ।

(11) धू–दोधूयते ।

(12) पू–पोपूयते ।

(13) हु यङ्–हु–हु हु–जु हु ति–
जो हु ति–जो हो ति–जोहवीति
(यङ्लुक्) ।

(14) क्रुश्–चोक्रुशीति ।

(15) रू यङ्–रोरूयते (भाग० 9.6.31) ।

दीर्घोऽकितः 7.4.83

पद.—दीर्घः 1.1, अकितः 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य यङ्लुकोः ।

अर्थ—यङ् तथा यङ्लुक् परे रहते कित् भिन्न अभ्यास को दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) पच् यङ्–प पच् य–पापच्यते ।

(2) पच् य–पच्–पपच्–पापच् ई ति–पापचीति
(यङ्लुक्) ।

(3) यज्–यायज्यते ।

(4) यज्–यायजीति ।

विशेष—'अकितः' अर्थात् **कित् भिन्न** अभ्यास को दीर्घ होता है—

यम् यङ्–य यम् य–यन् यम्य–

(नुगतोऽनुनासि० से नुक् आगम हुआ । अभ्यास कित् हो गया । अतः दीर्घ न हुआ)
यंयम्यते ।
यङ्लुक् में–यंयमीति ।

नीग् वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् 7.4.84

पद.—नीक् 1.1, वञ्चुस्रंसु ... स्कन्दाम् 6.3

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य यङ्लुकोः ।

अर्थ—यङ् अथवा यङ्लुक् परे रहते वञ्च्, स्रंस्, ध्वंस्, भ्रंस्, कस्, पत्, पद् तथा स्कन्द् धातुओं के अभ्यास को 'नीक्' आगम होता है । नीक् के ककार की इत्संज्ञा है । कित् होने से अभ्यास का अन्त अवयव होता है ।

उदा.—(1) वञ्च् यङ्–वच् य–व वच्य–
(अनिदितां हल उपधाया–)
व नीक् वच्य–वनीवच्यते ।
यङ्लुक् में–
वनीवञ्चीति ।

(2) स्रंस् यङ्–सस्रस्य–
(पूर्ववत्)
सनीस्रस्यते ।
(नीक्)
यङ्लुक् में–
सनीस्रंसीति ।

(3) ध्वंस्–दध्वस् य–दनीध्वस्यते
(पूर्ववत्)
यङ्लुक् में–
दनीध्वंसीति ।

(4) भ्रंस्–बनीभ्रस्यते ।
यङ्लुक् में–
बनीभ्रंसीति ।

(5) कस् यङ्–चकस्य–चनीकस्यते ।
(पूर्ववत्)
यङ्लुक् में–
चनीकसीति ।

(6) पत् यङ्–पनीपत्यते ।
यङ्लुक् में
पनीपतीति ।

(7) पद् यङ्–पनीपद्यते ।
यङ्लुक् में–
पनीपदीति ।

(8) स्कन्द् यङ्–क स्कन्द् य–
(शर्पूवाः खयः)
चस्कद् य–चनीस्कद्यते ।
यङ्लुक् में–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चनीस्कन्दीति ।

नुगतोऽनुनासिकान्तस्य 7.4.85

पद.—नुक् 1.1, अतः 6.1, अनुनासिकान्तस्य 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य यङ्लुकोः ।

अर्थ—यङ् अथवा यङ्लुक् परे रहते अनुनासिकान्त अंग का जो अकारान्त अभ्यास उसको 'नुक्' आगम होता है ।

'नुक्' के ककार व उकार की इत्संज्ञा है । कित् होने से 'नुक्' अन्त अवयव होता है ।

उदा.—(1) गम् यङ्–ग गम्य–जगम्य–
(यङ्, द्वित्व, अभ्यासकार्य)
ज नुक् गम्य शप् त–जङ्गम्यते ।
(नश्चाऽपदान्त० । अनुस्वारस्य ययि०)
यङ्लुक् में–
जङ्गमीति । जङ्गम् अच्–जङ्गमा (भट्टि० 2.47)

(2) यम् य–य यम् य–यन् यम् य–यंयम्यते
यङ्लुक् में–
यंयमीति ।

(3) रम्–रंरम्यते ।
यङ्लुक् में–रंरमीति ।

(4) क्रम्–चङ्क्रम्यते ।
यङ्लुक् में–
चङ्क्रमीति ।
इसी प्रकार—चङ्क्रमावान् (भट्टि० 5.64)

(5) नम्–नन्नम्यते ।
यङ्लुक् में–
नन्नमीति ।
इसी प्रकार—नम् यङ्–नन्नम्य शनच्–नन्नम्यमान
जस्–नन्नम्यमानाः (भट्टि० 2.25)।
भ्रम्–बम्भ्रम्यते
यङ्लुक् में–
बम्भ्रमीति ।

(6) तन्–तन्तन्यते ।
यङ्लुक् में–
तन्तनीति ।

(7) जन्–जञ्जन्यते ।
यङ्लुक् में–
जञ्जनीति ।

(8) खन्–चङ्खन्यते ।
–चाखायते (पक्ष में)
यङ्लुक् में–
चङ्खनीति ।

विशेष—1. 'अतः' अर्थात् **ह्रस्व अकारान्त अभ्यास** को ही 'नुक्' होता है—

तिम् यङ्–ति तिम् य–तेतिम्यते ।

अभ्यास में अकार नहीं है । अतः नुक् न हुआ ।

2. 'अनुनासिकान्तस्य'–अर्थात् **अनुनासिकान्त** जो अंग उसके अकारान्त अभ्यास को 'नुक्' होता है—

पच् य–पापच्यते

अंग अनुनासिकान्त नहीं है । अतः 'नुक्' न हुआ ।

3. प्रकृतसूत्र के द्वारा होने वाले 'नुक्' आगम के स्थान पर होने वाला अनुस्वार पदान्तवत् होता है ।[1] इसका फल है कि 'वा पदान्तस्य' के द्वारा विकल्प से परसवर्ण होता है ।

जपजभदहदशभञ्जपशां च 7.4.86

पद.—जप ... पशाम् 6.3, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य नुक् यङ्लुकोः ।

अर्थ—यङ् अथवा यङ्लुक् परे रहते जप्, जभ्, दह्, दंश्, भञ्ज् तथा पश् इन अंगों के अभ्यास को नुक् होता है ।

'दंश' के स्थान पर 'दश्' निर्देश से सूचित होता है कि नुक् आगम के साथ-साथ अनुनासिक लोप भी होता है । फलतः यङ्लुक् में भी अनुनासिक लोप होता है ।

उदा.—(1) जप् यङ्–ज जप्य–ज नुक् जप्यते–जंजप्यते–जञ्जप्यते । लुपसद० से यङ् । यङ्लुक् में—
जञ्जपीति । इसी प्रकार—जञ्जपूकः (भट्टि० 5.61) ।

(2) जभ्–जजभ्य–जन् जभ्य–जंजभ्य–जञ्जभ्यते ।
यङ्लुक् में–
जञ्जभीति ।

(3) दह् यङ्–द दह् य–दंदह्य–दन्दह्य–दन्दह्यते ।
यङ्लुक् में–
दन्दहीति ।

(4) दंश् यङ्–द दश् य–दन्दश्य–दंदश्य–दन्दश्यते ।
यङ्लुक् में–

1. महा० 7.4.85 (वा०) पदान्तवच्चेति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दन्दशीति ।

(5) भञ्ज् य–ब भज् य–बन् भज्य–बंभज्य–बम्भज्यते ।
यङ्लुक् में–बम्भञ्जीति ।

(6) पश् यङ्–प पश्य–पम्पश्यते ।
यङ्लुक् में–पम्पशीति ।

चरफलोश्च 7.4.87

पद.—चरफलोः 6.2, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य नुक् यङ् लुकोः ।

अर्थ—यङ् अथवा यङ्लुक् परे रहते 'चर्' तथा 'फल्' अंग के अभ्यास को 'नुक्' होता है ।

'फल्' के द्वारा 'ञिफला विशरणे' तथा 'फल निष्पत्तौ' दोनों का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) चर् यङ्–च चर् य–च नुक् चर् य–चन् चूर्य–चंचूर्य–चञ्चूर्यते
यङ्लुक् में–
चञ्चुरीति ।

(2) फल् य–प फल् य–पन् फल् य–पम्फल्य–पम्फुल्यते ।
यङ्लुक् में–पम्फुलीति ।

उत्परस्याऽतः 7.4.88

पद.—उत् 1.1, परस्य 6.1, अतः 1.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य चरफलोः यङ्लुकोः ।

अर्थ—यङ् तथा यङ्लुक् परे रहते चर् तथा फल् धातुओं के अभ्यास से पर जो अकार उसके स्थान पर उकार होता है ।

उदा.—(1) चञ्चूर्यते, चञ्चुरीति । चञ्चूर्यमाणाः (भट्टि० 4.19)।

(2) पम्फुल्यते, पम्फुलीति ।
सिद्धि पा० 7.4.87 पर देखें ।

विशेष—(1) 'परस्य' अर्थात् **अभ्यास से पर** आकार को उकार होता है । इसका भाव है कि अभ्यास के अकार को नहीं होता है ।

(2) 'अतः' अर्थात् **ह्रस्व अकार** को ही उकार होता है । तात्पर्य यह है कि अन्त्य अल् के स्थान पर नहीं होता है ।

ति च 7.4.89

पद.—ति–7.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य चरफलोः अतः उत् ।

अर्थ—तकारादि प्रत्यय परे रहते 'चर्' और 'फल्' अंग के अकार के स्थान पर उकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) चर् क्तिन्–चर् ति–चुर् ति–चूर्ति–चूर्तिः ।
(उत्परस्याऽतः लि च । अचो रहाभ्यां०)

(2) प्र फल् क्तिन्–प्रफुल्ति–प्रफुल्तिः ।

रीगृदुपधस्य च 7.4.90

पद.—रीक् 1.1, ऋदुपधस्य 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य यङ्लुकोः ।

अर्थ—यङ् अथवा यङ्लुक् में ऋकार उपधा वाले अंग के अभ्यास को 'रीक्' आगम होता है ।

'रीक्' के ककार की इत्संज्ञा है । कित् होने से 'रीक्' अन्त अवयव बनता है ।

उदा.—(1) वृत् ऋदुपध है । वृत् यङ्–वृ वृत् य–वर् वृत् य–ववृत्य–वरीवृत्य शप् त–वरीवृत्यते ।
यङ्लुक् में–वरीवृतीति ।

(2) वृध्–वरीवृध्य–वरीवृध् ध् य–
(अनचि च)
वरीवृद्ध्यते ।
(झलां जश् झशि)
यङ्लुक् में–वरीवृधीति ।

(3) नृत्–नरीनृत्यते ।
यङ्लुक् में–नरीनृतीति ।

(4) दृश्–दरीदृश्यते ।
यङ्लुक् में–दरीदृशीति ।

(5) मृज्–मरीमृज्यते ।
यङ्लुक् में–मरीमृजीति ।

(6) सृज्–सरीसृज्यते ।
यङ्लुक् में–सरीसृजीति ।

(7) सृप्–सरीसृप्यते ।
यङ्लुक् में–सरीसृपीति ।

विशेष—ह्रस्व ऋकारवान् धातु को भी पूर्वोक्त 'रीक्' आगम होता है[1]—
व्रश्च् यङ्–वरीवृश्च्यते ।

1. महा० 7.4.90 (वा०) रीगृत्वत इति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रच्छ् यङ्–परीपृच्छ्यते ।

रुग्रिकौ च लुकि 7.4.91

पद.—रुग्रिकौ 1.2, च–अव्य०, लुकि 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य ऋदुपधस्य रीक् ।

अर्थ—यङ्लुक् में ह्रस्व ऋकार उपधा वाले अंग के अभ्यास को रुक्, रिक् तथा रीक् आगम पर्यायेण होते हैं ।

रुक् के उकार व ककार की इत्संज्ञा है । रीक् व रिक् के ककार की इत्संज्ञा होती है। सभी आगम कित् हैं । अतः अन्त अवयव होते हैं ।

उदा.—(1) नृत्–न नृत्–
(यङ्, लुक्, द्वित्व)
न र् नृत् ति–नर्नर्त्ति ।
(रुक्, गुण,)
न नृत्–न रि नर् त् ति–
नरिनर्त्ति ।
(रिक्, गुण)
न नृत्–नरी नर्त् ति–नरीनर्त्ति ।
(रीक्, गुण)

(2) वृत्–वर्वर्त्ति ।
(पूर्ववत्, रुक्)
वृत्–वरिवर्त्ति ।
(रिक्)
वृत्–वरीवर्त्ति ।
(रीक्)

विशेष—यङ् में 'मर्मृज्यते' तथा 'मर्मृज्यमानास' शब्दों का निपातन किया जाता है[1]—
मृज् यङ्–म मृज्य–म रु क् मृज्य–
(निपातन से रुक् आगम)
मर्मृज्यते ।
मर्मृज्य–
(पूर्ववत् रुक् आगम)

मर्मृज्य शानच्–मर्मृज्य मुक् आन मर्मृज्यमान जस्–मर्मृज्य-मान असुक् जस्–(शानच्, मुक् आगम, जस्, आज्जसेरसुक्) मर्मृज्यमानासः ।

1. महा० 7.4.91 (वा०) मर्मृज्यते मर्मृज्यमानास इत्युपसंख्यानम् ।

ऋतश्च 7.4.92

पद.—ऋतः 6.1, च–अव्य० ।

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य लुकि रुग्रिकौ रिक् ।

अर्थ—यङ्लुक् में ऋकारान्त अंग के अभ्यास को रुक्, रिक् व रीक् आगम पर्यायेण होते हैं ।

उदा.—(1) कृ–कृ यङ्–कृ–क कृ–कर् कृ ति–(रुक्, गुण)
चर्कर्त्ति ।
क रिक् कर् ति–चरिकर्त्ति ।
(रिक् आगम)
क रीक् कर् ति–चरीकर्त्ति ।

(2) हृ यङ्–हृ–
जर्हर्त्ति (रुक्)
जरिहर्त्ति (रिक्)
जरीहर्त्ति (रीक्) ।

विशेष—'ऋतः' अर्थात् **ह्रस्व ऋकारान्त** अंग के अभ्यास को ही उक्त आगम होते हैं—
कृ यङ्–कृ–चाकर्त्ति
'कृ' दीर्घ ऋकारान्त है । अतः अभ्यास को उक्त आगम नहीं हुए हैं ।

सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे 7.4.93

पद.—सन्वत्–अव्य०, लघुनि 7.1, चङ्परे 7.1, अनग्लोपे 7.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य ।

अर्थ—चङ् है परे जिससे ऐसे णि के परे रहते जो अंग, उसके लघुपरक अभ्यास को सन्वद्भाव होता है परन्तु 'णि' को निमित्त मानकर अक् का लोप न हुआ हो । इसका तात्पर्य है कि उस अभ्यास को वे सभी कार्य होते हैं जो सन् परे रहते किसी अंग को हुआ करते हैं ।

लघुपरक का अर्थ है—लघु वर्ण है परे जिसके ।

सन् परे रहते निम्नलिखित कार्य होते हैं ।

(क) सन्यतः–इकार आदेश,

(ख) ओः पुयण्ज्यपरे–इकार आदेश,

(ग) स्रवतिशृणोति०–विकल्प से इकार आदेश ।

उदाहरण तत् तत् सूत्रों पर देखें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—1. 'अनग्लोपे' अर्थात् जहाँ 'णि' को निमित्त मानकर **अक् का लोप न हुआ हो**, वहाँ ही अभ्यास को सन्वद्भाव होता है—

कथ णिच्–कथ् इ लुङ्–
(चुरादिगणी अदन्त धातु है)
कथि चङ् त्–क कथ् इ अत्–
(तिप्, च्लि, चङ्, द्वित्वादि)
अट् च कथ् अत्–

(णिलोप, 'णि' को मानकर अकार का लोप हुआ है। अतः अभ्यास सन्वत् न हुआ)

अचकथत्।
कमु–कम् णिङ्–काम् इ–
(उपदेशेऽजनुनासिक इत् कमेर्णिङ्)
काम् इ अ त–
(धातु संज्ञा, चङ् आदि)
काम् अत

('एरनेकाचः–' से प्राप्त यण् को बाधकर णिलोप हुआ)

कम् अत–चकम् अत

(णौ चङ्युपधा०। द्वित्वादि)

यहाँ अक् लोप (उकार) हुआ है परन्तु वह णि को निमित्त मानकर नहीं हुआ है। अतः सन्वद्भाव होकर—

अचिकमत–अचीकमत।

2. 'लघुनि' अर्थात् **लघुपरक** अभ्यास को ही सन्वद्भाव होता है—

रक्ष् णि चङ् त्–र रक्ष् अत्–

इस दशा में 'संयोगे गुरु' से पूर्ववर्त्ती अच् (अकार) लघु न रहा। अतः अभ्यास (र) लघुपरक नहीं है। इसके कारण सन्वद्भाव न हुआ—

अररक्षत्।

इसी प्रकार—अततक्षत्।

3. 'चङ् परे' अर्थात् **चङ् है परे जिससे** ऐसे णि के परे रहते ही अभ्यास को सन्वद्भाव होता है—

पच् णि लिट्–पच् णल् (उ०पु०एक०)–
पपच–

'णल् उत्तमो वा' से अणित् पक्ष में रूप बनता है। चङ् परे नहीं है। अतः सन्वद्भाव न हुआ।

दीर्घो लघोः 7.4.94

पद.—दीर्घः 1.1, लघोः 6.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य लघुनि चङ्परे अनग्लोपे।

अर्थ—चङ् है परे जिसके ऐसे णि के परे रहते अंग के लघुपरक अभ्यास के लघु वर्ण को दीर्घ आदेश होता है यदि 'णि' को निमित्त मानकर अक् वर्ण का लोप न हुआ हो।

उदा.—(1) कृ णिच्–कारि चङ् त्–कार् इ अत्–कार् अत्–कर् अत्–चकरत्–चिकरत्–अचीकरत्।

(2) हृ–अजीहरत्।

(3) पच्–अपीपचत्।

(4) लू–अलीलवत्।

(5) अवीवदन् (भट्टि० 15.4)।

(6) अबूबुधत (भट्टि० 15.5)।

(7) अपूपुजत् (भट्टि० 2.26)।

विशेष—'लघोः' अर्थात् **लघुवर्ण** को ही दीर्घ आदेश होता है—

भ्राज् णिच्–भ्राजि चङ् त्–ब भ्रज् अत्–अबिभ्रजत्

'संयोगे गुरु' से बकारोत्तरवर्त्ती इकार की गुरु संज्ञा है। अतः दीर्घ न हुआ।

अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् 7.4.95

पद.—अत् 1.1, स्मृदृत्वर ... स्पशाम् 6.3

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य चङ्परे।

अर्थ—चङ् है परे जिससे ऐसे 'णि' के परे रहते स्मृ, दृ, त्वर्, प्रथ्, म्रद्, स्तृ और स्पश् अंगों के अभ्यास को अकार आदेश होता है।

'अत्' में तकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—(1) स्मृ णिच्–स्मार् इ चङ् त्–
(पूर्ववत्)
सृ स्मार् इ अत्–सस्मर् अत्–असस्मरत्।

(2) दृ–अददरत्।

(3) त्वर्–अतत्वरत्। (भट्टि० 15.60)।

(4) प्रथ्–अपप्रथत्। (भट्टि० 15.72)।

(5) म्रथ्–अमम्रदत्।

(6) स्तृ–अतस्तरत्। (भट्टि० 15.48)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) स्पश्–अपस्पशत् ।

'अत्' में तपरकरण सामर्थ्य से 'दीर्घो लघोः' से दीर्घ नहीं होता है ।

विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः 7.4.96

पद.—विभाषा 1.1, वेष्टिचेष्ट्योः 6.2

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य चङ्परे अत् ।

अर्थ—चङ् है परे जिससे ऐसे 'णि' परे रहते 'वेष्ट्' तथा 'चेष्ट्' अंगों के अभ्यास को अकार आदेश विकल्प से होता है ।

पक्ष में 'ह्रस्वः' से ह्रस्व आदेश होता है ।

उदा.—(1) वेष्ट् णिच्–वेष्टि चङ् त्–वे वेष्ट् अत् (णि लोप, द्वित्व)

अववेष्टत् ।
(पाक्षिक अकार)
अविवेष्टत्
(पक्ष में अभ्यास को ह्रस्व आदेश) ।

(2) चेष्ट् णिच्–चेष्टि चङ् त्–
चेष्ट् अ त्–
चे चेष्ट् अत्–अचचेष्टत् ।
(पूर्ववत्)
अचिचेष्टत् ।
(पक्ष में ह्रस्व आदेश) ।

ई च गणः 7.4.97

पद.—ई–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, च–अव्य०, गणः 1.1

अनु.—अंगस्य अभ्यासस्य चङ्परे अत् ।

अर्थ—चङ् है परे जिससे ऐसे 'णि' के परे रहते 'गण' अंग के अभ्यास को ईकार तथा ह्रस्व अकार पर्यायेण होते हैं ।

दोनों आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होते हैं ।

उदा.—गण णिच्–गण् इ

(अतो लोपः । 'अत उपधायाः' से प्राप्त वृद्धि आदेश का बाध हो जाता है । 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से अकारलोप स्थानिवत् हो जाता है) ।

गणि चङ् त्–जगण् अ त्–
(णेरनिटि । चङि)
अजीगणत् (भट्टि० 2.53; 15.5) ।

पक्ष में—अजगणत् ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायां सप्तमाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

॥ समाप्तश्चाऽयं सप्तमोऽध्यायः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाऽष्टमाऽध्यायस्य

प्रथमः पादः

सर्वस्य द्वे 8.1.1

पद.—सर्वस्य 6.1, द्वे 1.2

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार 'पदस्य' से पहले पहले चलता है।

यहाँ से लेकर सभी के स्थान पर द्वित्व होता है।

तस्य परमाम्रेडितम् 8.1.2

पद.—तस्य 6.1, परम् 1.1, आम्रेडितम् 1.1

अनु.—सर्वस्य द्वे।

अर्थ—द्वित्व किए हुए के पर वाले शब्द की आम्रेडित संज्ञा होती है।

उदा.—(1) चौर-चौर चौर3
(वाक्यादेराम०)
'आम्रेडितं भर्त्सने' से प्लुत।

(2) वृषल वृषल3
(पूर्ववत्)

अनुदात्तं च 8.1.3

पद.—अनुदात्तम् 1.1, च-अव्य०।

अनु.—आम्रेडितम्।

अर्थ—आम्रेडित संज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

उदा.—भुङ्क्ते-
('नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व)
भुङ्क्ते भुङ्क्ते।

नित्यवीप्सयोः 8.1.4

पद.—नित्यवीप्सयोः 7.2

अनु.—सर्वस्य द्वे।

अर्थ—नित्यता और वीप्सा अर्थ में जो शब्द उस सम्पूर्ण शब्द को द्वित्व होता है।

उदा.—(1) पचति-
पचति पचति।

(2) भुक्त्वा-
भुक्त्वा भुक्त्वा।

(3) स्मृत्वा-
स्मृत्वा स्मृत्वा (स्वप्न० 4.7)।

(4) ग्रामः-
ग्रामो ग्रामो रमणीयः।

(5) पुरुषः-
पुरुषः पुरुषः।

(6) खिन्नः खिन्नः।
क्षीणः क्षीणः (मे०13)।

(7) काले काले (मे० 12)।

परेर्वर्जने 8.1.5

पद.—परेः 6.1, वर्जने 7.1

अनु.—सर्वस्य द्वे।

अर्थ—वर्जन अर्थ में वर्त्तमान 'परि' शब्द को द्वित्व होता है।

उदा.—परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः
अपपरी वर्जने। पञ्चम्यपाङ्-। विभाषाऽप परिबह०।

प्रसमुपोदः पादपूरणे 8.1.6

पद.—प्रसमुपोदः 6.1, पादपूरणे 7.1

अनु.—सर्वस्य द्वे।

अर्थ—पाद की पूर्ति करनी हो तो प्र, सम्, उप तथा उद् उपसर्गों को द्वित्व होता है।

उदा.—(1) प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे (ऋ० 7.8.4)
(2) संसमिद्युवसे (ऋ० 10.191.1)
(3) उपोप मे परामश (ऋ० 1.126.7)
(4) किं नोदुदुहर्ष से दातवा उ (ऋ० 4.21.9)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्यध्यधसः सामीप्ये 8.1.7

पद.—उपर्यध्यधसः 6.1, सामीप्ये 7.1

अनु.—सर्वस्य द्वे ।

अर्थ—समीपता अर्थ में उपरि, अधि तथा अधस् को द्वित्व होता है ।

उदा.—(1) उपर्युपरि ग्रामम् ।
(2) अध्यधि ग्रामम् ।
(3) अधोऽधः नगरम् ।

'सामीप्ये' अर्थात् **समीपता अर्थ** में ही उपरि, अधि और अधस् को द्वित्व होता है—

उपरि चन्द्रमाः

यहाँ सामीप्य अर्थ नहीं है । अतः द्वित्व न हुआ ।

वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽसूयासम्मतिकोपकुत्सन-भर्त्सनेषु 8.1.8

पद.—वाक्यादेः 6.1, आमन्त्रितस्य 6.1, असूयासम्मति-कोपकुत्सनभर्त्सनेषु 7.3

अनु.—सर्वस्य द्वे ।

अर्थ—यदि वाक्य के द्वारा असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन तथा भर्त्सन गम्यमान हो तो वाक्य के आदि के आमन्त्रित को द्वित्व होता है ।

उदा.—(1) माणवक3 माणवक रिक्तं ते आभिरूप्यम्–
असूया अर्थ है ।

(2) माणवक3 माणवक शोभनः खल्वसि–
सम्मति अर्थ है ।

(3) माणवक3 माणवक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म–
कोप अर्थ है ।

(4) शक्तिके3 शक्तिके रिक्ता ते शक्तिः–
कुत्सन अर्थ है ।

(5) चौर3 चौर घातयिष्यामि त्वाम्–
भर्त्सन अर्थ है ।

विशेष—1. 'वाक्यादेः' अर्थात् **वाक्य के आदि** में ही द्वित्व होता है—

शोभनः खल्वसि माणवक–वाक्य के आदि में न होने से द्वित्व न हुआ ।

2. 'आमन्त्रितस्य' अर्थात् **आमन्त्रित को** ही द्वित्व होता है–
उदारो माणवकः–
'माणवकः' आमन्त्रित संज्ञक नहीं है । अतः द्वित्व न हुआ ।

3. 'असूयादिषु' अर्थात् **असूया आदि अर्थों** में द्वित्व होता है—देवदत्त गामभ्याज शुक्लाम् ।

यहाँ असूयादि अर्थ नहीं हैं । अतः द्वित्व न हुआ ।

एकं बहुव्रीहिवत् 8.1.9

पद.—एकम् 1.1, बहुव्रीहिवत्–अव्य०

अर्थ—द्वित्व किए हुए 'एक' शब्द को बहुव्रीहि के समान कार्य होता है ।

उदा.—(1) एकैकम् अक्षरं पठति–

'नित्यवीप्सयोः' के द्वारा द्वित्व हुआ । बहुवव्रीहिवद्भाव हुआ । एक अम् एक अम् यहाँ जो 'अम्' विभक्ति थी उसका लुक् हुआ (सुपो धातुप्राति०) ।

एकैक अम्–एकैकम् ।
(अतोऽम्)

(2) एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति–
एकया एकया–एका एकाटा–एक एकाटा (स्त्रियाः पुंवद्०) एकैकया ।

आबाधे च 8.1.10

पद.—आबाधे 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—सर्वस्य द्वे बहुव्रीहिवत् ।

अर्थ—पीड़ा अर्थ में द्वित्व होता है तथा उस शब्द को बहुव्रीहिवद्भाव होता है ।

उदा.—गतगतः ।
नष्टनष्टः ।

यहाँ सुप् लुक् आदि कार्य होते हैं ।

कर्मधारयवदुत्तरेषु 8.1.11

पद.—कर्मधारयवत्–अव्य०, उत्तरेषु 7.3

अनु.—सर्वस्य द्वे ।

अर्थ—यहाँ से आगे द्वित्व करने में कर्मधारयवद्भाव होता है ।

इसका फल है—1) सुप् का लुक्,
2) पुँवद्भाव,
3) अन्तोदात्तत्व ।

उदा.—(1) पटु सु पटु सु–पटुपटु–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटुपटु सु-पटुपटुः ।

(2) पटु ङीष्-
(वोतो गुणवचनात्)
पट्वी सु पट्वी सु-पट्वी पट्वी-पटुपट्वी ।

(3) पटुपटुः ।
अन्तोदात्त हुआ ।

प्रकारे गुणवचनस्य 8.1.12

पद.—प्रकारे 7.1, गुणवचनस्य 6.1

अनु.—सर्वस्य द्वे कर्मधारयवत् ।

अर्थ—प्रकार अर्थ में गुणवचन शब्द को जो द्वित्व हुआ उसे कर्मधारयवद्भाव होता है । 'प्रकार' शब्द सादृश्यवाची है ।

उदा.—पटुपटुः

यहाँ प्रकार अर्थ में गुणवचन 'पटु' शब्द है । इसे द्वित्व हुआ । कर्मधारयवद्भाव हुआ ।

इसी प्रकार—पण्डित-पण्डितः ।
चकितचकितम् (मे० 14) ।
अल्पाऽल्पभासम् (मे० 86) ।

विशेष—1. 'प्रकारे' अर्थात् **प्रकार** अर्थ में ही द्वित्व व कर्मधारयवद्भाव होता है—

पटुर्देवदत्तः यहाँ प्रकार अर्थ नहीं है । अतः द्वित्व न हुआ ।

2. चापल अर्थ में द्वित्व होता है[1]—

अहिरहिः बुध्यस्व बुध्यस्व

यहाँ चपलता अर्थ है । अतः द्वित्व हो गया ।

3. क्रियासमभिहार अर्थ में द्वित्व होता है[2]—

सः भवान् लुनीहि लुनीहि इत्येवाऽयं लुनाति यहाँ क्रिया समभिहार है । अतः द्वित्व हुआ ।

4. आभीक्ष्ण्य अर्थ में द्वित्व होता है[3]—

भुक्त्वा भुक्त्वा ।
भोजं भोजम् ।

5. डाच् परे रहते द्वित्व होता है[4]—

पटत् पटत् करोति-पटपटाकरोति । 'अव्यक्तानुकरणाद्०' से 'डाच्' हुआ है ।

6. 'पूर्व' तथा 'प्रथम' शब्दों को अतिशय अर्थ में द्वित्व होता है[5]—

पूर्वं पूर्वं पुष्यन्ते ।
प्रथमं प्रथमं पच्यन्ते ।

7. यदि सम के सम्प्रसारण में स्त्रीलिंग शब्द से सम्पन्नता कही जाये तो डतर व डतम प्रत्ययान्त शब्दों को द्वित्व होता है[6]—

कतराकतरा अनयोर् आढ्यता ।
कतमाकतमा एषाम् आढ्यता ।

8. कर्मव्यतिहार में सर्वनाम का द्वित्व होता है ।[7] वह बहुल रूप से समासवत् होता है, तब पूर्वपद का प्रथमा एकवचन होता है—

अन्यम् अन्यम् इमे ब्राह्मणाः ।
अन्योऽन्यम् इमे ब्राह्मणाः ।
अन्योऽन्यस्य ब्राह्मणाः ।

9. स्त्रीलिंग तथा नपुँसकलिंग शब्दों में उत्तरपद की विभक्ति का विकल्प से आम्भाव होता है[8]—

अन्योऽन्याम् इमे ब्राह्मण्यौ ।

पक्ष में—अन्योऽन्यम् इमे ।

अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् 8.1.13

पद.—अकृच्छ्रे 7.1, प्रियसुखयोः 6.2, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—सर्वस्य द्वे कर्मधारयवत् ।

अर्थ—'कष्ट न होना' अर्थ में प्रिय तथा सुख शब्दों को विकल्प से द्वित्व होता है और द्वित्व पक्ष में कर्मधारयवद्भाव होता है ।

उदा.—प्रियप्रियेण ददाति—

---

1. महा० 8.1.12 (वा०) चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।
2. महा० 8.1.12 (वा०) क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।
3. महा० 8.1.12 (वा०) आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।
4. महा० 8.1.12 (वा०) डाचि द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।
5. महा० 8.1.12 (वा०) पूर्वप्रथमयोरर्थातिशय विवक्षायां द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।
6. महा० 8.1.12 (वा०) डतरडतमयोः समसम्प्रसारणयोः स्त्रीनिगदे भावे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।
7. महा० 8.1.12 (वा०) कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।
8. महा० 8.1.12 (वा०) स्त्रीनपुँसकयोरुत्तरपदस्य चाऽम् भावो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(= अत्यन्त निर्धन होने पर भी कोई वस्तु अनायास प्रसन्नता से दे देता है)

पक्ष में—प्रियेण ददाति ।

'अकृच्छ्रे' अर्थात् **'कष्ट न होना'** अर्थ में ही द्वित्व होता है—

प्रियः पुत्रः—यहाँ न हुआ ।

यथास्वे यथायथम् 8.1.14

पद.—यथास्वे 7.1, यथायथम् 1.1

अनु.—सर्वस्य द्वे कर्मधारयवत् ।

अर्थ—'यथास्व' अर्थ में यथायथम् शब्द का निपातन किया जाता है तथा कर्मधारयवद्भाव भी होता है ।

उदा.—यथा-यथा यथा-यथा यथ-यथायथम्
(द्वित्व तथा नपुँसकलिंगता निपातन से) ।

द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्र-प्रयोगाभिव्यक्तिषु 8.1.15

पद.—द्वन्द्वम् 1.1, रहस्यमर्यादा .... व्यक्तिषु 7.3

अनु.—सर्वस्य द्वे कर्मधारयवत् ।

अर्थ—रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्र प्रयोग तथा अभिव्यक्ति—इन अर्थों में 'द्वन्द्व' शब्द का निपातन किया जाता है और इसे कर्मधारयवद्भाव होता है ।

उदा.—द्वि-द्वि द्वि-
(कर्मधारयवद्भाव होकर सुप् लुक्)
द्वम् द्वि-
(निपातन से पूर्वपद को अम्भाव)
द्वम् द्व-द्वंद्व-द्वन्द्व सु-द्वन्द्वम् ।
(अत्, नपुँसकता का निपातन)

(1) रहस्य = एकान्त ।
द्वन्द्वं मन्त्रयन्ते (= दो दो मिलकर मन्त्रणा करते हैं)

(2) मर्यादावचन = स्थिति का अनतिक्रमण । आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते (= चौथी पीढी तक ये पशु परस्पर मैथुन करते हैं) ।

(3) व्युत्क्रमण = पृथक् अवस्थिति भेद ।
द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः (= दो दो वर्ग बनाकर चले गए) ।

(4) यज्ञपात्रप्रयोग—द्वन्द्वं न्यञ्चि यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति धीरः (= धीर उलटे यज्ञ-पात्रों को दो दो को एकत्र वेदि पर रखता है) ।

(5) अभिव्यक्ति = साहचर्य ।

द्वन्द्वं नारदपर्वतौ (= नारद और पर्वत दोनों का साहचर्य)।

पदस्य 8.1.16

पद.—पदस्य 6.1

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है । 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' (पा० 8.3.55) से पूर्व तक इसका अधिकार जाता है ।

अर्थ यह है कि आगे वक्ष्यमाण कार्य पद के स्थान पर होते हैं ।

पदात् 8.1.17

पद.—पदात् 5.1

अनु.—पदस्य ।

अर्थ—यह अधिकारसूत्र है । 'कुत्सने च०' (पा० 8.1.69) से पूर्व तक इसका अधिकार चलता है ।

अर्थ यह है कि आगे वक्ष्यमाण कार्य पद से उत्तर के स्थान पर होते हैं ।

अनुदात्तं सर्वमपादादौ 8.1.18

पद.—अनुदात्तम् 1.1, सर्वम् 1.1, अपादादौ 7.1

अर्थ—यह भी अधिकार सूत्र है । 'तिङि चोदा०' (पा० 8.1.71) से पूर्व तक इसका अधिकार चलता है ।

इसका अर्थ है कि यहाँ से आगे वक्ष्यमाण कार्य यदि पाद के आदि में न हों तो सारा अनुदात्त होता है ।

'पाद' शब्द के द्वारा ऋक्पाद अथवा श्लोकपाद का ग्रहण होता है ।

आमन्त्रितस्य च 8.1.19

पद.—आमन्त्रितस्य 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तं सर्वम् अपादादौ ।

अर्थ—यदि पाद के आदि में वर्त्तमान न हो तो पद से उत्तर आमन्त्रित संज्ञक पद को सर्वानुदात्त होता है ।

उदा.—पचसि देवदत्त ।

'आमन्त्रितस्य च' को बाधकर सारा अनुदात्त होता है ।

युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ 8.1.20

पद.—युष्मदस्मदोः 6.2, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः 6.2, वान्नावौ 1.2

अनु.—पूर्ववत् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—पद से उत्तर परन्तु पद के आदि में जो स्थित न हो ऐसे षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त व द्वितीयान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर यथासंख्य करके 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश होते हैं एवं उन आदेशों को अनुदात्त भी होता है।

पा० 8.1.21, 22 के द्वारा इन विभक्तियों में क्रमशः बहुवचन तथा एकवचन में भिन्न आदेश होते हैं। अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा कहे गये 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश द्विवचन में ही जानने चाहिए।

उदा.—(1) ग्रामो युवयोः स्वम्–
ग्रामो वां स्वम्।
जनपद आवयोः स्वम्–
जनपदो नौ स्वम्।

(2) ग्रामो युवाभ्यां दीयते–
ग्रामो वां दीयते।
जनपद आवाभ्यां दीयते–
जनपदो नौ दीयते।

(3) ग्रामो युवां पश्यति–
ग्रामो वां पश्यति।
जनपद आवां पश्यति–
जनपदो नौ पश्यति।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'पदात्' का अधिकार होने से **पद से उत्तर** स्थित होने पर ही 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश होते हैं—

युवयोः धनम् इदम्।
आवयोः धनम् इदम्।
युवाभ्याम् ईशो ददाति।
आवाभ्याम् ईशो ददाति।
युवाम् ईशो रक्षतु।
आवाम् ईशो रक्षतु।

सर्वत्र पद से उत्तर न रहने पर 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश नहीं होते हैं।

2. 'अपादादौ' का अधिकार होने से श्लोक के **पाद के आदि** में 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश नहीं होते हैं।

3. 'षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थयोः' अर्थात् **षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त व द्वितीयान्त** को ही 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश होते हैं—

ग्रामे युवाभ्यां कृतम्

तृतीयान्त है। अतः 'वाम्' आदेश न हुआ।

4. 'स्थ' पद के ग्रहण का प्रयोजन है कि षष्ठ्यादि विभक्तियों **के साथ रहने पर** ही 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश होते हैं तथा समास में विभक्ति का लुक् हो जाने पर नहीं होते हैं—

इमौ युवयोः पुत्रौ गच्छतः—

इस दशा में समास होकर 'युष्मत्पुत्रौ' बनता है। चूँकि समास की दशा में सुप् (ओस्) का लुक् हो जाने से यहाँ षष्ठी विभक्ति के साथ 'युष्मद्' शब्द नहीं है। अतः 'वाम्' आदेश न हुआ।

इसी प्रकार—'अस्मत्पुत्रौ' में जानना चाहिए।

बहुवचनस्य वस्नसौ 8.1.21

पद.—बहुवचनस्य 6.1, वस्नसौ 1.2

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थयोः।

अर्थ—पद से उत्तर परन्तु पद के आदि में जो स्थित न हो ऐसे षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त व द्वितीयान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों को बहुवचन में यथासंख्य करके 'वस्' तथा 'नस्' आदेश होते हैं एवं उन आदेशों को अनुदात्त भी होता है।

उदा.—(1) गावो युष्माकं सन्ति।
गावो वः सन्ति।
अजा अस्माकं सन्ति।
अजा नः सन्ति।

(2) ग्रामो युश्मभ्यं दीयते।
ग्रामो वः दीयते।
ग्रामो अस्मभ्यं दीयते।
ग्रामो नः दीयते।

(3) गावो युष्मान् पश्यन्ति।
गावो वः पश्यन्ति।
अजा अस्मान् पश्यन्ति।
अजा नः पश्यन्ति।

तेमयावेकवचनस्य 8.1.22

पद.—तेमयौ 1.2, एकवचनस्य 6.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थयोः।

अर्थ—पद से उत्तर परन्तु पद के आदि में जो स्थित न हो ऐसे षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त व द्वितीयान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों को एकवचन में यथासंख्य करके 'ते' तथा 'मे' आदेश होते हैं एवं उन आदेशों को अनुदात्त भी होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'त्वामौ द्वितीयायाः' (पा० 8.1.23) यह अग्रिम सूत्र प्रकृतसूत्र का अपवाद है। अतः 'ते' तथा 'मे' आदेश केवल षष्ठी व चतुर्थी विभक्तियों में ही प्राप्त होते हैं।

उदा.—(1) ग्रामस्तव स्वम्।
ग्रामस्ते स्वम्।
ग्रामो मम स्वम्।
ग्रामो मे स्वम्।
(2) ग्रामस्तुभ्यं दीयते।
ग्रामस्ते दीयते।
ग्रामो मह्यं दीयते।
ग्रामो मे दीयते।

त्वामौ द्वितीयायाः 8.1.23

पद.—त्वामौ 1.2, द्वितीयायाः 6.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ युष्मदस्मदोः एकवचनस्य।

अर्थ—पद से उत्तर परन्तु पद के आदि में जो स्थित न हो ऐसे द्वितीयान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों को एकवचन में यथासंख्य करके 'त्वा' तथा 'मा' आदेश होते हैं और उन आदेशों को अनुदात्त भी होता है।

उदा.—लोकस्त्वां पश्यति।
लोकस्त्वा पश्यति।
लोको मां पश्यति।
लोको मा पश्यति।

नीचे एक श्लोक दिया जा रहा है जिसमें युष्मद् तथा अस्मद् को विहित 'वाम्' आदि सभी आदेशों का संग्रह है:—

श्रीशस्त्वाऽवतु माऽपीह,
दत्तात् ते मेऽपि शर्मः सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः,
पातु वाम् अपि नौ हरिः॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः,
पतिर्वाम् अपि नौ हरिः।
सोऽव्याद् वो नः, शिवं वो नो दद्यात्
सेव्योऽत्र वः स नः॥

विशेष—युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान पर होने वाले 'वाम्' तथा 'नौ' आदि आदेश एक वाक्य में होते हैं[1]—

वाक्य की परिभाषा है—एक तिङ् वाक्यम् अर्थात् जिसमें एक तिङ् हो, वह वाक्य कहलाता है।

शालीनान्ते ओदनं दास्यामि यहाँ निमित्त 'शालीनाम्' एक ही वाक्य में स्थित है। अतः 'तुभ्यम्' के स्थान पर 'ते' आदेश हो गया है। ओदनं पच तव भविष्यति–यहाँ 'ओदनं पच' एक वाक्य है तथा 'तव भविष्यति' दूसरा वाक्य है।

आदेश का निमित्त पद 'पच' प्रथम वाक्य में है तथा निमित्ती 'ते' आदि दूसरे वाक्य में स्थित है। वाक्य भेद होने से आदेश न हुआ।

न चवाहाहैवयुक्ते 8.1.24

पद.—न-अव्य०, चवाहाहैवयुक्ते 7.1

अनु.—पदस्य पदात् युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थयोः।

अर्थ—च, वा, ह, अह तथा एव-इनके योग में षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त व द्वितीयान्त युष्मद् और अस्मद् शब्दों को पूर्वोक्त (वाम् आदि) आदेश नहीं होते हैं।

उदा.—(चयोगे) (1) ग्रामस्तव च स्वम्।
ग्रामो मम च स्वम्।
ग्रामो युवयोश्च स्वम्।
ग्राम आवयोश्च स्वम्।
ग्रामो युष्माकं च स्वम्।
ग्रामोऽस्माकं च स्वम्।
(2) ग्रामस्तुभ्यं च दीयते।
ग्रामो मह्यं च दीयते।
ग्रामो युवाभ्यां च दीयते।
ग्राम आवाभ्यां च दीयते।
ग्रामो युष्मभ्यं च दीयते।
ग्रामोऽस्मभ्यं च दीयते।
(3) ग्रामस्त्वां च पश्यति।
ग्रामो मां च पश्यति।
ग्रामो युवां च पश्यति।
ग्राम आवां च पश्यति।
ग्रामो युष्मांश्च पश्यति।
ग्रामोऽस्मांश्च पश्यति।
(वायोगे) (4) ग्रामस्तव वा स्वम्।
ग्रामो मम वा स्वम्।
ग्रामो युवयोर्वा स्वम्।

1. वै०सि०कौ० (भाग-I) सूत्र 407 (वा०) समानवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम आवयोर्वा स्वम् ।
ग्रामो युष्माकं वा स्वम् ।
ग्रामोऽस्माकं वा स्वम् ।

(5) ग्रामस्तुभ्यं वा दीयते ।
ग्रामो मह्यं वा दीयते ।
ग्रामो युवाभ्यां वा दीयते ।
ग्राम आवाभ्यांम् वा दीयते ।
ग्रामो युष्मभ्यं वा दीयते ।
ग्रामोऽस्मभ्यं वा दीयते ।

(6) ग्रामस्त्वां वा पश्यति ।
ग्रामो मां वा पश्यति ।
ग्रामो युवां वा पश्यति ।
ग्राम आवां वा पश्यति ।
ग्रामो युष्मान् वा पश्यति ।
ग्रामोऽस्मान् वा पश्यति ।

(हयोगे) (7) ग्रामस्तव ह स्वम् ।
ग्रामो मम ह स्वम् ।
ग्रामो युवयोर्ह स्वम् ।
ग्राम आवयोर्ह स्वम् ।
ग्रामो युष्माकं ह स्वम् ।
ग्रामोऽस्माकं ह स्वम् ।

(8) ग्रामस्तुभ्यं ह दीयते ।
ग्रामो मह्यं ह दीयते ।
ग्रामो युवाभ्यां ह दीयते ।
ग्राम आवाभ्यां ह दीयते ।
ग्रामो युष्मभ्यं ह दीयते ।
ग्रामोऽस्मभ्यं ह दीयते ।

(9) ग्रामस्त्वां ह पश्यति ।
ग्रामो मां ह पश्यति ।
ग्रामो युवां ह पश्यति ।
ग्राम आवां ह पश्यति ।
ग्रामो युष्मान् ह पश्यति ।
ग्रामोऽस्मान् ह पश्यति ।

(अहयोगे) (10) ग्राम स्तवाह स्वम् ।
ग्रामो ममाह स्वम् ।
ग्रामो युवयोरह स्वम् ।
ग्राम आवयोरह स्वम् ।
ग्रामो युष्माकमह स्वम् ।
ग्रामोऽस्माकमह स्वम् ।

(11) ग्रामस्तुभ्यमह दीयते ।
ग्रामो मह्यमह दीयते ।
ग्रामो युवाभ्यामह दीयते ।
ग्राम आवाभ्यामह दीयते ।
ग्रामो युष्मभ्यमह दीयते ।
ग्रामोऽस्मभ्यमह दीयते ।

(12) ग्रामस्त्वामह पश्यति ।
ग्रामो मामह पश्यति ।
ग्रामो युवामह पश्यति ।
ग्राम आवामह पश्यति ।
ग्रामो युष्मान् अह पश्यति ।
ग्रामोऽस्मान् अह पश्यति ।

(एवयोगे) (13) ग्रामस्तवैव स्वम् ।
ग्रामो ममैव स्वम् ।
ग्रामो युवयोरेव स्वम् ।
ग्राम आवयोरेव स्वम् ।
ग्रामो युष्माकमेव स्वम् ।
ग्रामोऽस्माकमेव स्वम् ।

(14) ग्रामस्तुभ्यमेव दीयते ।
ग्रामो मह्यमेव दीयते ।
ग्रामो युवाभ्यामेव दीयते ।
ग्राम आवाभ्यामेव दीयते ।
ग्रामो युष्मभ्यमेव दीयते ।
ग्रामोऽस्मभ्यमेव दीयते ।

(15) ग्रामस्त्वामेव पश्यति ।
ग्रामो मामेव पश्यति ।
ग्रामो युवामेव पश्यति ।
ग्राम आवामेव पश्यति ।
ग्रामो युष्मान् एव पश्यति ।
ग्रामोऽस्मान् एव पश्यति ।

पश्यार्थैश्चानालोचने 8.1.25

पद.—पश्यार्थैः 3.1, च-अव्य० । अनालोचने 7.1

अनु.—पदस्य पदात्-युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थयोः न ।

अर्थ—'न देखना' अर्थ में दर्शनार्थक अर्थात् ज्ञानार्थक धातुओं के योग में षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त व द्वितीयान्त युष्मद्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर 'वाम्' आदि आदेश नहीं होते हैं।

'दृश्' के दो अर्थ है—दर्शन व ज्ञान। सूत्र में 'अनालोचन' पद के द्वारा 'दर्शन' अर्थ का निषेध कर दिए जाने पर यहाँ 'ज्ञान' अर्थ सम्बद्ध होता है।

उदा.—ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः।
ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः।
इसी प्रकार द्विवचन व बहुवचन में जाने।
ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः।
ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः।
ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः।
ग्रामो मां समीक्ष्यागतः।

विशेष—'अनालोचने' अर्थात् **'आलोचन' से भिन्न** अर्थ में ही 'वाम्' आदि आदेश नहीं होते हैं—

ग्रामस्त्वा पश्यति।
ग्रामो मा पश्यति।

यहाँ 'दर्शन' अर्थ है। अतः निषेध न हुआ।

सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा 8.1.26

पद.—सपूर्वायाः 5.1, प्रथमायाः 5.1, विभाषा 1.1

अनु.—पदस्य पदात् युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थयोः न।

अर्थ—(कोई पद) विद्यमान है पूर्व में जिसके ऐसे प्रथमान्त पद से उत्तर षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त तथा द्वितीयान्त युष्मद् व अस्मद् शब्दों को विकल्प से 'वाम्' आदि आदेश नहीं होते हैं।

उदा.—ग्रामे कम्बलस्ते त्वम्।

'कम्बलः' प्रथमान्त पद पूर्व में विद्यमान है। 'तव' षष्ठ्यन्त पद के स्थान पर 'ते' आदेश विकल्प से हुआ।

पक्ष में न हुआ—
ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्।
इसी प्रकार—ग्रामे कम्बलो मे स्वम्।
ग्रामे कम्बलो मम स्वम्।

इसी प्रकार द्विवचन व बहुवचन में जानें।
ग्रामे कम्बलस्ते दीयते।
ग्रामे कम्बलस्तुभ्यं दीयते।
ग्रामे कम्बलो मे दीयते।
ग्रामे कम्बलो मह्यं दीयते।
ग्रामे छात्रास्त्वा पश्यन्ति।
ग्रामे छात्रास्त्वां पश्यन्ति।
ग्रामे छात्राः मा पश्यन्ति।
ग्रामे छात्राः मां पश्यन्ति।

विशेष—1. 'सपूर्वायाः' अर्थात् (कोई पद) **विद्यमान है पूर्व में** जिसके ऐसे प्रथमान्त पद से उत्तर पूर्वोक्त आदेश विकल्प से होते हैं—
कम्बलस्ते स्वम्।
कम्बलो में स्वम्।

यहाँ 'कम्बलः' प्रथमान्त शब्द से पूर्व कोई पद नहीं है। अतः विकल्प न हुआ। पूर्वोक्त आदेश नित्य ही हो गये हैं।

2. 'प्रथमायाः' अर्थात् **प्रथमान्त से उत्तर** पूर्वोक्त आदेश विकल्प से होते हैं—
कम्बलो ग्रामे ते स्वम्।
कम्बलो ग्रामे मे स्वम्।

'ग्रामे' शब्द से पूर्व 'कम्बलः' पद विद्यमान है परन्तु 'ग्रामे' शब्द प्रथमान्त नहीं है। अतः इससे उत्तर 'ते' आदि आदेश पाक्षिक नहीं हुए हैं।

3. अन्वादेश न होने पर युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर पूर्वोक्त नौ आदेश विकल्प से होते हैं।[1] भाव यह है कि अन्वादेश में ये आदेश नित्य होते हैं।

यदि किसी कार्य का विधान करने के लिए जिसका पूर्व ग्रहण हो चुका हो तथा दूसरे कार्य का विधान करने के लिए उसी का पुनः ग्रहण किया जाये तो यह पुनर्ग्रहण 'अन्वादेश' कहलाता है। यथा—अनेन छात्रेण व्याकरणम् अधीतम्, एवं दर्शनम् अध्यापय अर्थात् इस छात्र ने व्याकरण की शिक्षा पूरी कर ली है, इसे सम्प्रति दर्शनशास्त्र पढायें।

यहाँ 'अनेन' पद का प्रथम बार ग्रहण हुआ है। इसी का पुनर्ग्रहण 'अन्वादेश' हुआ।
धाता ते भक्तोऽस्ति।
धाता मे भक्तोऽस्ति।
पक्ष में—धाता तव भक्तोऽस्ति।
धाता मम भक्तोऽस्ति।

अन्वादेश में नित्य होते हैं—
योऽग्निस्तस्मै ते नमः।

1. महा० 8.1.26 (वा०) युष्मदस्मदोर०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्णययोः 8.1.27

पद.—तिङः 5.1, गोत्रादीनि 1.3, कुत्सनाभीक्ष्णययोः 7.2

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ ।

अर्थ—निन्दा तथा आभीक्ष्ण्य अर्थों में तिङन्त पद से उत्तर गोत्रादि शब्दों को अनुदात्त होता है । गोत्रादि एक गण है ।

उदा.—(1) पचति गोत्रम् (=पुरुषार्थ विहीन व्यक्ति जो कुल की दुहाई देकर जीवन यापन करता है)

यहाँ कुत्सन अर्थ है ।

इसी प्रकार—जल्पति गोत्रम् ।

(2) पचति पचति गोत्रम् (= विवाहादि विषय में जो पुनः पुनः गोत्र का उल्लेख करता है) यहाँ आभीक्ष्ण्य अर्थ है ।

'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व हुआ है ।

विशेष—1. 'तिङः' अर्थात् तिङ् से उत्तर को ही अनुदान होता है—

कुत्सितं गोत्रम् यहाँ 'गोत्रम्' शब्द तिङ् से उत्तर नहीं है । अतः अनुदात्त न हुआ ।

2. 'गोत्रादीनि' अर्थात् तिङ् से उत्तर **गोत्र आदि शब्दों** को अनुदात्त होता है—

पचति पापम्–तिङ् (पचति) से उत्तर 'पाप' शब्द है जो गोत्रादिगण में नहीं है । अतः अनुदात्त नहीं हुआ ।

3. 'कुत्सनाभीक्ष्णययोः' अर्थात् **कुत्सन** और **आभीक्ष्ण्य** अर्थों में ही अनुदात्त होता है—

खनति गोत्रं समेत्य कूपम् ।

यहाँ तिङ् (खनति) से उत्तर 'गोत्र' शब्द है परन्तु वह न तो 'कुत्सन' अर्थ में है और न ही 'आभीक्ष्ण्य' अर्थ में है । अतः अनुदात्त न हुआ ।

तिङ्ङतिङः 8.1.28

पद.—तिङ् 1.1, अतिङः 5.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ ।

अर्थ—अतिङ् पद से उत्तर जो तिङ् पद उसे अनुदात्त होता है ।

उदा.—देवदत्तः पचति

'देवदत्तः' तिङ् नहीं है । अतः इससे उत्तर तिङ् 'पचति' को सर्वानुदात्त हुआ ।

विशेष—1. 'तिङ्' अर्थात् **तिङ् को ही** अनुदात्त होता है— नीलम् उत्पलम्–

'नीलम्' अतिङ् है । इससे उत्तर तिङ् नहीं है । अतः 'उत्पलम्' को अनुदात्त न हुआ ।

2. 'अतिङः' **तिङ् भिन्न से उत्तर को ही** अनुदात्त होता है— भवति पचति–

'भवति' तिङ् है । अतः इससे उत्तर तिङ् (पचति) को अनुदात्त न हुआ ।

न लुट् 8.1.29

पद.—न अव्य०, लुट् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् ।

अर्थ—लुङन्त तिङ् को सर्वानुदात्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) श्वः कर्त्ता

'कर्त्ता' लुट् का रूप है । अतः 'श्वः' पद से उत्तर रहने पर भी सर्वानुदात्त न हुआ ।

निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चणत्कच्चिद्यत्रयुक्तम् 8.1.30

पद.—निपातैः 3.3, यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चणत्कच्चिद्यत्र-युक्तम् 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न ।

अर्थ—यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण, कच्चित् तथा यत्र—इन निपातों से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) यत् करोति, यत् पचति
(2) यदि करोति, यदि पचति ।
(3) हन्त करोति, हन्त पचति ।
(4) कुवित् करोति, कुवित् पचति ।
(5) नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम ।
(6) स चेद् भुङ्क्ते स चेद् अधीते ।
(7) अयं च मरिष्यति ।
(8) कच्चिद् भुङ्क्ते, कच्चिदधीते ।
(9) यत्र भुङ्क्ते यत्राधीते ।

विशेष—1. 'निपातैः' अर्थात् **निपातसंज्ञकों के योग** में ही अनुदात्तत्व का निषेध होता है—

यत् कूजति शकटम्–'यत्' निपात नहीं है । अतः निषेध न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. 'युक्तम्' अर्थात् युक्त होने पर ही अनुदात्तत्व का निषेध होता है—

यत्र क्व च ते मनो–'यत्र' युक्त नहीं है। अतः अनुदात्त का निषेध न हुआ।

नह प्रत्यारम्भे 8.1.31

पद.—नह–अव्य०, प्रत्यारम्भे 7.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—प्रत्यारम्भ अर्थ में 'नह' से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—नह भोक्ष्यसे, –नहाऽध्येष्यसे खाओ या पढो–ऐसी आज्ञा देने के पश्चात् मना कर देने पर क्रोधपूर्वक 'नह भोक्ष्यसे' (= नहीं खाओगे अर्थात् खाना पड़ेगा) कथन प्रत्यारम्भ है। अतः अनुदात्त न हुआ।

विशेष—'प्रत्यारम्भे' अर्थात् **'प्रत्यारम्भ'** अर्थ में ही अनुदात्त नहीं होता है—

नह वै तस्मिंश्च लोके दक्षिणामिच्छन्ति यहाँ प्रत्यारम्भ नहीं है। अतः अनुदात्त का निषेध न हुआ।

सत्यं प्रश्ने 8.1.32

पद.—सत्यम् 1.1, प्रश्ने 7.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—प्रश्न अर्थ में 'सत्य' शब्द से युक्त तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—सत्यं भोक्ष्यसे अर्थात् क्या सचमुच खाओगे। यहाँ प्रश्न है तथा 'सत्यम्' शब्द से युक्त 'भोक्ष्यसे' तिङ् को अनुदात्त न हुआ।

विशेष—प्रश्ने अर्थात् 'प्रश्न' **अर्थ में ही** अनुदात्त का निषेध होता है—

सत्यं वक्ष्यामि नाऽनृतम् (अथ०4.9.7) यहाँ प्रश्न नहीं है। अतः अनुदात्त का निषेध न हुआ।

अङ्गप्रातिलोम्ये 8.1.33

पद.—अङ्ग–अव्य०, अप्रातिलोम्ये 7.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—अनुकूलता अर्थ में 'अंग' शब्द से युक्त तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—अङ्ग कुरु–(अर्थात् हाँ, तुम करो) यहाँ अनुकूलता अर्थ है। 'अंग' शब्द से युक्त तिङ् 'कुरु' को अनुदात्त न हुआ।

इसी प्रकार—अङ्ग पच।

विशेष—'अप्रातिलोम्ये' अर्थात् **अनुकूलता** अर्थ में ही अनुदात्त का निषेध होता है—अङ्ग कूज वृषल3 इदानीं ज्ञास्यति जाल्म–

यहाँ 'अनुकूलता' अर्थ नहीं है। अतः निषेध न हुआ।

हि च 8.1.34

पद.—हि अव्य०, च–अव्य०।

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न अप्रातिलोम्ये।

अर्थ—अनुकूलता अर्थ में 'हि' से युक्त तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—त्वं हि कुरु यहाँ अनुकूलता अर्थ है।

अतः अनुदात्त न हुआ।

छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् 8.1.35

पद.—छन्दसि 7.1, अनेकम् 1.1, अपि–अव्य०, साकाङ्क्षम् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ हि तिङ् न।

अर्थ—वेद के विषय में 'हि' से युक्त साकाङ्क्ष अनेक तिङन्तों को भी तथा एक तिङन्त को भी अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा एनं विपुनाति।

यहाँ 'वदति' तथा 'विपुनाति' दोनों तिङन्त हेतुहेतुमेद्भाव होने से साकांक्ष हैं तथा दोनों 'हि' से युक्त हैं।

मत्त (=पागल) असत्य बोलता है। अतः पागलपन उसे शुद्ध करता है।

यहाँ दोनों साकांक्ष तिङों को अनुदात्त नहीं होता है।

(2) अग्निर्हि अग्रे उदजयत् तमिन्द्रोऽनूदजयत्।

यहाँ 'उदजयत्' तथा 'अनूदजयत्' दोनों तिङ् है तथा दोनो 'हि' से युक्त हैं तथा दोनों पूर्ववत् साकांक्ष है।

'अपि' पद के ग्रहण से एक तिङ् (उदजयत्) को ही अनुदात्त का निषेध हुआ।

द्वितीय तिङ् 'अनूदजयत्' को 'तिङतिङः' से निघात हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यावद्यथाभ्याम् 8.1.36

पद.—यावद्यथाभ्याम् 3.2

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न ।

अर्थ—'यावत्' तथा 'यथा' इनसे युक्त तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है ।

उदा.—देवदत्तः पचति यावत् ।
देवदत्तः पचति यथा ।

पूजायां नाऽनन्तरम् 8.1.37

पद.—पूजायाम् 7.1, न-अव्य०, अनन्तरम् 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ यावद्-यथाभ्याम् तिङ् न ।

अर्थ—पूजा के विषय में यावत् तथा यथा से युक्त अव्यवहित तिङन्त को अनुदात्त का निषेध नहीं होता है ।

उदा.—(1) यावत् पचति शोभनम्, यावत् करोति चारु ।
(2) यथा पचति शोभनम्, यथा करोति चारु ।
'तिङतिङः' से दोनों स्थलों पर निघात हो गया ।

विशेष—1. 'पूजायाम्' अर्थात् **पूजा अर्थ** में ही अनुदात्त निषेध नहीं होता है—

यावद् भुङ्क्ते । यथा भुङ्क्ते यहाँ पूजा अर्थ नहीं है । अतः अनुदात्त न हुआ ।

2. 'अनन्तरम्' अर्थात् **अव्यवहित** तिङ् को ही अनुदात्त होता है—

यावद् देवदत्तः पचति शोभनम् । यथा देवदत्तः करोति चारु ।

यहाँ अनुदात्त निषेध न हुआ ।

उपसर्गव्यपेतं च 8.1.38

पद.—उपसर्गव्यपेतम् 1.1, च-अव्य० ।

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ यावद् यथाभ्याम् पूजायाम् न अनन्तरम् तिङ् न ।

अर्थ—पूजा के अर्थ में यावत् तथा यथा से युक्त एवं उपसर्ग से व्यवहित अनन्तर तिङ् को अनुदात्तनिषेध नहीं होता है ।

उदा.—(1) यावत् प्रपचति शोभनम् ।
(2) यथा प्रपचति शोभनम् ।

दोनों स्थलों पर क्रमशः यावत् तथा यथा एवं तिङ् के मध्य में 'प्र' उपसर्ग का व्यवधान है ।

तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम् 8.1.39

पद.—तुपश्यपश्यताहैः 3.3, पूजायाम् 7.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न ।

अर्थ—पूजा अर्थ में तु, पश्य, पश्यत तथा अह—इनसे युक्त तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम् ।
(2) पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम् ।
(3) पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम् ।
(4) अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम् ।

सर्वत्र यथाप्राप्त स्वर हुआ है ।

अहो च 8.1.40

पद.—अहो-अव्य०, च-अव्य० ।

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न पूजायाम् ।

अर्थ—पूजा के विषय में 'अहो' से युक्त तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है ।

उदा.—अहो देवदत्तः पचति शोभनम् ।

शेषे विभाषा 8.1.41

पद.—शेषे 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न अहो ।

अर्थ—पूजा के विषय में 'अहो' से युक्त तिङन्त को शेष विषयों में विकल्प से अनुदात्त होता है ।

पक्ष में यथाप्राप्त अनुदात्त होता है ।

उदा.—कटमहो करिष्यसि मम गेहमेष्यसि 'करिष्यसि' आदि का 'स्य' प्रत्ययस्वर से उदात्त है । पित् स्वर से 'सि' अनुदात्त था । पश्चात् स्वरित हो गया ।

पक्ष में—

कटमहो करिष्यसि मम गेहमेष्यसि ।

अनुदात्त हो गया ।

पुरा च परीप्सायाम् 8.1.42

पद.—पुरा-अव्य०, च-अव्य०, परीप्सायाम् 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ विभाषा तिङ् न।

अर्थ—'शीघ्रता' अर्थ में 'पुरा' से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—अधीष्व माणवक पुरा विद्योतते विद्युत्-भविष्यत् के अर्थ में 'यावत् पुरा०' के द्वारा लट् हुआ।

'पुरा' शब्द भविष्यत् की आसन्नता को सूचित करता है। अतः 'परीप्सा' अर्थ हुआ।

तिङन्त 'विद्योतते' का 'ते' 'तास्यनुदात्तेन्ङिद०' से अनुदात्त है। 'द्योतते' धातु से स्वर से आद्युदात्त है। 'तिङि चोदात्तवति' से 'वि' अनुदात्त है।

पक्ष में—पुरा विद्योतते विद्युत्।

विशेष—'परीप्सायाम्' अर्थात् **परीप्सा** अर्थ में ही अनुदात्त का निषेध होता है—

नडेन स्म पुराधीयते।

यहाँ अनुदात्त निषेध न हुआ।

नन्वित्यनुज्ञैषणायाम् 8.1.43

पद.—ननु—अव्य०, इति-अव्य०, अनुज्ञैषणायाम् 7.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—प्रार्थना अर्थ में 'ननु' शब्द से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—ननु करोमि भोः (= श्रीमन्, क्या मैं करूँ?) यहाँ प्रार्थना अर्थ है।

विशेष—'अनुज्ञैषणायाम्' अर्थात् **प्रार्थना अर्थ में ही** अनुदात्त निषेध होता है—

अकार्षीः कटं देवदत्त (=देवदत्त, क्या तुमने चटाई बना ली है?)

ननु करोमि भो (= हाँ, मैं करता हूँ) यहाँ प्रार्थना अर्थ नहीं है। अतः अनुदात्त हो गया।

किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् 8.1.44

पद.—किम् 1.1, क्रियाप्रश्ने 7.1, अनुपसर्गम् 1.1, अप्रतिषिद्धम् 1.1

अनु.—पदात्, पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—क्रिया के प्रश्न में वर्त्तमान जो 'किम्' शब्द उससे युक्त उपसर्ग से रहित तथा प्रतिषेध से रहित तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—किं देवदत्तः पचति आहोस्विद् भुङ्क्ते? (=क्या देवदत्त पकाता है अथवा खाता है?) 'किम्' पद के द्वारा क्रिया के विषय में प्रश्न है। 'पचति' तथा 'भुङ्क्ते' आदि तिङन्त उपसर्ग से रहित हैं तथा प्रतिषेध से रहित हैं।

अनुदात्त का निषेध हुआ। यथाप्राप्त स्वर हुआ।

लोपे विभाषा 8.1.45

पद.—लोपे 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ किं क्रियाप्रश्ने अनुपसर्गप्रतिषिद्धम् तिङ् न।

अर्थ—ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर क्रिया प्रश्न के विषय में वर्त्तमान 'किम्' शब्द का लोप हो जाने पर उपसर्ग से रहित और प्रतिषेध से रहित तिङन्त पद को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—देवदत्तः पचति आहोस्वित् पठति–

ऋचा के पाद के आदि में नहीं है।

'देवदत्त' पद से परवर्त्ती क्रियाप्रश्न है, 'किम्' पद का लोप हो गया है।

उपसर्ग और प्रतिषेध से रहित तिङन्त (पचति तथा पठति) हैं। इन्हें अनुदात्त न हुआ।

पक्ष में सर्वानुदात्त हुआ—

देवदत्तः पचति आहोस्विद् पठति?

एहिमन्ये प्रहासे लट् 8.1.46

पद.—एहिमन्ये 1.1, प्रहासे 7.1, लट् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—ऋचा के पादादि में अविद्यमान परिहास अर्थ में पद से उत्तर 'एहि मन्ये' शब्दों से युक्त लट् प्रत्ययान्त तिङन्त को सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) कोई परिहास में कहता है—

एहि त्वं मन्येऽहम् ओदनं भोक्ष्यसे (अर्थात् आओ, तू मानता है कि मैं भात खाऊँगा)

न हि भोक्ष्यसे (= तुम नहीं खा पाओगे)–

भुक्तः सोऽतिथिभिः (= कारण कि, उसे तो अतिथि लोग खा गये)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ ऋचा का पादादि नहीं है। 'ओदन' पद से उत्तर 'एहि मन्ये' से युक्त लृट् प्रत्ययान्त तिङन्त (भोक्ष्यसे) को प्रहास अर्थ में सर्वानुदात्त का निषेध हो गया। यथाप्राप्त स्वर हुआ।

विशेष—'प्रहासे' अर्थात् **परिहास अर्थ में** ही सर्वानुदात्त का निषेध होता है—

एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये यहाँ परिहास अर्थ नहीं है। अतः सर्वानुदात्त का निषेध न हुआ।

जात्वपूर्वम् 8.1.47

पद.—जातु-अव्य०, अपूर्वम् 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—ऋचा के पादादि में अविद्यमान पद से उत्तर अविद्यमान पूर्वी 'जातु' शब्द से युक्त तिङन्त को सर्वानुदात्त का निषेध होता है।

उदा.—जातु भोक्ष्यसे (= तू कब भोजन करेगा) अपूर्वी 'जातु' से युक्त तिङन्त (भोक्ष्यसे) को अनुदात्त का निषेध हो गया।

विशेष—'अपूर्वम्' अर्थात् **अपूर्वी** 'जातु' से युक्त तिङन्त को अनुदात्त का निषेध होता है—

कटं जातु करिष्यसि-

यहाँ निषेध न हुआ। सर्वानुदात्त हो गया।

किंवृत्तं च चिदुत्तरम् 8.1.48

पद.—किंवृत्तम् 1.1, च-अव्य०, चिदुत्तरम् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ अपूर्वम् तिङ् न।

अर्थ—ऋचा के पादादि में अविद्यमान पद से उत्तर अपूर्वी चित् शब्द जिसके उत्तर में है उसे 'किम्' शब्द के विभक्त्यन्त तथा डतर डतम प्रत्ययान्त शब्द से युक्त तिङन्त शब्द को सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—कश्चिद् भोजयति।
केनचिद् करोति।
कस्मैचिद् ददाति।
कतरश्चित् करोति।
कतमश्चिद् भुङ्क्ते।

विशेष—'किंवृत्त' के द्वारा किम् शब्द के विभक्त्यन्त शब्दों तथा डतर डतम प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण होता है।

'चिदुत्तरम्' अर्थात् **'चित्' शब्द है उत्तर** में जिसके ऐसे शब्द से युक्त तिङन्त को सर्वानुदात्त का निषेध होता है—

को भुङ्क्ते?

यहाँ 'कः' शब्द है। इससे उत्तर 'चित्' शब्द नहीं है। अतः 'भुङ्क्ते' को सर्वानुदात्त का निषेध न हुआ।

आहो उताहो चानन्तरम् 8.1.49

पद.—आहो-अव्य०, उताहो-अव्य०, च-अव्य०, अनन्तरम् 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ अपूर्वम् तिङ् न।

अर्थ—ऋचा के पादादि में अविद्यमान पद से उत्तरवर्त्ती 'आहो' तथा 'उताहो' शब्दों से युक्त व्यवधान से रहित तिङन्त पद को सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) आहो भुङ्क्ते। आहो पठति।
अथवा वह खाता है अथवा वह पढ़ता है यहाँ यथापूर्व स्वर हो गया।

(2) उताहो भुङ्क्ते। उताहो पठति।
यहाँ भी यथापूर्व स्वर हो गया।

विशेष—'अनन्तरम्' अर्थात् **अव्यवहित** तिङन्त को सर्वानुदात्त का निषेध होता है। व्यवहित रहने पर 'शेषे विभाषा' प्रवृत्त होता है।

शेषे विभाषा 8.1.50

पद.—शेषे 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ आहो उताहो अपूर्वम् तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तरवर्त्ती अविद्यमान पूर्वी आहो तथा उताहो शब्दों से युक्त शेष (अर्थात् व्यवधान) विषय में तिङन्त पद सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—आहो देवदत्तः पचति।
उताहो देवदत्तः पठति।

यहाँ सर्वानुदात्त का निषेध हुआ। यथाप्राप्त स्वर हुआ।

गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वाऽन्यत् 8.1.51

पद.—गत्यर्थलोटा 3.1, लृट् 1.1, न-अव्य०, चेत्-अव्य०, कारकम् 1.1, सर्वान्यत् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान गत्यर्थक धातु के लोट् लकार से युक्त लृट् प्रत्ययान्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है। यदि कारक सम्पूर्ण अन्य न हो।

सूत्रस्थ 'कारकम्' पद के द्वारा कर्त्ता व कर्म का ग्रहण होता है।

'सर्वान्यत्' का अर्थ है कि जिस कारक (अर्थात्-कर्त्ता व कर्म) में लोट् प्रत्ययान्त शब्द हो, उसी कारक में यदि लृट् प्रत्ययान्त शब्द हो।

उदा.—आगच्छ देवदत्त ग्रामम् ओदनं भोक्ष्यसे यहाँ 'आगच्छ' लोट् प्रत्ययान्त है तथा 'भोक्ष्यसे' लृट् प्रत्ययान्त है। दोनों का वाच्य एकसमान (अर्थात् कर्त्ता) है।

अतः अनुदात्त न हुआ।

विशेष—1. 'गत्यर्थ०' अर्थात् **गत्यर्थक** धातु का लोट् प्रत्ययान्त शब्द हो—

पच देवदत्त ओदनं भोक्ष्यसे यहाँ 'पच' गत्यर्थक नहीं है। लोङन्त है। 'भोक्ष्यसे' को सर्वानुदात्त का निषेध न हुआ।

2. 'लृट्' अर्थात् **लृट् प्रत्ययान्त** को सर्वानुदात्त का निषेध होता है—

आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्यसि यहाँ गत्यर्थक धातु का लोट् प्रत्ययान्त शब्द (आगच्छ) है। परन्तु लृट् प्रत्ययान्त नहीं है। अतः सर्वानुदात्त का निषेध न हुआ।

लोट् च 8.1.52

पद.—लोट् 1.1, च-अव्य०।

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ गत्यर्थ लोटा न चेत् कारकम् सर्वान्यत् तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर गत्यर्थक धातु के लोट् प्रत्यय से युक्त लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त पद को सर्वानुदात्त नहीं होता है। यदि कारक सारा अन्य न हो।

उदा.—आगच्छ देवदत्त, ग्रामं पश्य।

यह पाद के आदि में नहीं है। 'ग्रामम्' पद से उत्तरवर्त्ती लोट् प्रत्ययान्त 'पश्य' को सर्वानुदात्त न हुआ।

विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् 8.1.53

पद.—विभाषितम् 1.1, सोपसर्गम् 1.1, अनुत्तमम् 1.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ लोट् गत्यर्थ लोटा न चेत् कारकम् सर्वान्यत् तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर गत्यर्थक धातु के लोट् प्रत्यय से युक्त उपसर्ग सहित उत्तमपुरुष से भिन्न लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त पद को विकल्प से सर्वानुदात्त नहीं होता है यदि कारक सारा भिन्न न हो।

उदा.—आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रविश-

पाद के आदि में नहीं है। 'ग्रामम्' पद से उत्तरवर्त्ती 'प्रविश' को सर्वानुदात्त हुआ। पक्ष में सर्वानुदात्त निषेध होता है—

'सोपसर्गम्' अर्थात् **उपसर्गसहित** को होता है—

विशेष—1. प्रविंश आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्य-यहाँ 'पश्य' उपसर्गरहित है। अतः अनुदात्त न हुआ।

2. 'अनुत्तमम्' अर्थात् **उत्तम को छोड़कर** ही होता है—

आगच्छानि देवदत्त ग्रामं प्रविशानि यहाँ उत्तमपुरुष है। अतः निषेध न हुआ।

हन्त च 8.1.54

पद.—हन्त अव्य०, च-अव्य०।

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ लोट् तिङ् न विभाषितम् सोमसर्गमनुत्तमम्।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर 'हन्त' शब्द से युक्त उपसर्गसहित उत्तम पुरुष से रहित लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त पद विकल्प से सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—हन्त प्रविश
पक्ष में—हन्त प्रविंश।

आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके 8.1.55

पद.—आमः 5.1, एकान्तरम् 1.1, आमन्त्रितम् 1.1, अनन्तिके 7.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान 'आम्' पद से उत्तर एकपद के अन्तर वाला अति निकट से भिन्न विषय में आमन्त्रित संज्ञक पद को सर्वानुदात्त का निषेध होता है।

उदा.—आम् पचसि देवदत्त। आम् भो देवदत्त। 'आम्' पद से उत्तर 'पचसि' इस पद का अन्तर है। देवदत्त की आमन्त्रित संज्ञा है। अतः इसे सर्वानुदात्त न हुआ।

यद्धितुपरं छन्दसि 8.1.56

पद.—यद्धितुपरम् 1.1, छन्दसि 7.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—वेद के विषय में पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तरवर्ती यत्परक, हिपरक तथा तुपरक तिङन्त पद को सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः (ऋ० 2.23.18)।
इन्दवो वामुशन्ति हि (ऋ० 1.2.4)।
आख्यास्यामि तु ते।

चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः 8.1.57

पद.—चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेषु 7.3, अगतेः 5.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान गतिसंज्ञक से भिन्न पद से उत्तर तिङन्त पद को चन, चित्, इव, गोत्रादिशब्द, तद्धित प्रत्यय तथा आम्रेडित शब्दों के परे रहते अनुदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) देवदत्तः पचति चन यहाँ 'चन' परे रहते 'पचति' तिङन्त को सर्वानुदात्त न हुआ।

(2) देवदत्तः पचति चित्–
पूर्ववत्।

(3) देवदत्तः पचतीव–
(पूर्ववत्)।

(4) देवदत्तः पचति गोत्रम्–
'गोत्र' शब्द परे रहते।

(5) देवदत्तः पचति कल्पम्–
तद्धित प्रत्यय 'कल्प' परे रहते सर्वानुदात्त न हुआ।
इसी प्रकार—देवदत्तः पचतिरूपम्।

(6) देवदत्तः पचति पचति–
आम्रेडित संज्ञक 'पचति' के परे रहते 'पचति' को सर्वानुदात्त न हुआ।

विशेष—'अगतेः' अर्थात् **गतिसंज्ञक से भिन्न** पद से उत्तर तिङन्त को सर्वानुदात्त नहीं होता है—

देवदत्तः प्रपचति चन–
'चन' परे है। गतिसंज्ञक 'प्र' शब्द है। इससे उत्तर 'पचति' को सर्वानुदात्त हुआ।

चादिषु च 8.1.58

पद.—चादिषु 7.3, च–अव्य०।

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ अगतेः तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान गतिसंज्ञक से भिन्न पद से उत्तर तिङन्त को सर्वानुदात्त नहीं होता है 'च' आदि शब्द परे रहते।

उदा.—(1) देवदत्तः पचति च खादति च–
'देवदत्त' की गतिसंज्ञा नहीं है। इससे पर तिङन्त 'पचति' को सर्वानुदात्त न हुआ 'च' परे रहते।

(2) देवदत्तः पचति वा खादति वा—(पूर्ववत्)

(3) देवदत्तः पचति ह खादति ह—(पूर्ववत्)

(4) देवदत्तः पचत्यह खादत्यह—(पूर्ववत्)

चवायोगे प्रथमा 8.1.59

पद.—चवायोगे 7.1, प्रथमा 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर 'च' तथा 'वा' का योग होने पर प्रथमा तिङ् विभक्ति को सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) स गर्दभाँश्च कालयति वीणां च वादयति 'च' का योग है। इससे उत्तर तिङन्त प्रथमा विभक्ति 'कालयति' को सर्वानुदात्त नहीं होता है।

(2) स गर्दभान् वा कालयति वीणां वा वादयति–(पूर्ववत्)

हेति क्षियायाम् 8.1.60

पद.—ह–अव्य०, इति–अव्य०, क्षियायाम् 7.1

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ प्रथमा तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर 'ह' इस शब्द के योग में निन्दा अर्थ में प्रथमा तिङ् विभक्ति को सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) स्वयं ह रथेन याति3 उपाध्यायं पदाति गमयति–
'रथेन' पद से उत्तर 'ह' शब्द के योग में तथा 'निन्दा' अर्थ में प्रथमा तिङन्त 'याति' पद को सर्वानुदात्त नहीं हुआ।

अहेति विनियोगे च 8.1.61

पद.—अह–अव्य०, इति–अव्य०, विनियोगे 7.1, च–अव्य०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ क्रियायाम् प्रथमा तिङ् न ।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर 'अह' इस शब्द के योग में निन्दा तथा विनियोग अर्थ में प्रथमा तिङ् विभक्ति को सर्वानुदात्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) त्वमह ग्रामं गच्छ३ त्वमहाऽरण्यं गच्छ–

'ग्राम' पद से उत्तर 'अह' शब्द के योग में 'गच्छ' प्रथमा तिङन्त है जो विनियोग अर्थ की अभिव्यक्ति है । 'गच्छ' को सर्वानुदात्त न हुआ ।

(2) स्वयम् अह रथेन यातिं ३ उपाध्यायं पदातिं गमयति– (पूर्ववत्) ।

चाहलोप एवेत्यवधारणम् 8.1.62

पद.—चाहलोपे 7.1, एव–अव्य०, इति–अव्य०, अवधारणम् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ प्रथमा तिङ् न ।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर 'च' तथा 'अह' शब्दों का लोप होने पर प्रथम तिङ् को अनुदात्त नहीं होता है, यदि 'एव' शब्द वाक्य में अवधारण अर्थ में प्रयुक्त हो ।

उदा.—(1) देवदत्त एवं ग्रामं गच्छंतु देवदत्त एवाऽरण्यं गच्छतु–

'ग्राम' पद से उत्तरवर्त्ती 'गच्छतु' है । 'च' का लोप है । अतः अवधारण अर्थ में 'एव' का प्रयोग हुआ है । अतः सर्वानुदात्त न हुआ ।

(2) देवदत्त ग्रामं गच्छंतु यज्ञदत्त एवाऽरण्यं गच्छतु–

'अह' का लोप है । पूर्ववत् सर्वानुदात्त का प्रतिषेध हो गया ।

विशेष—'अवधारणम्' अर्थात् **'अवधारण'** अर्थ में ही सर्वानुदात्त का निषेध होता है—

देवदत्तः क्वेव भोक्ष्यते–यहाँ 'एव' अवधारण अर्थ में नहीं है । अतः सर्वानुदात्त का प्रतिषेध न हुआ ।

चादिलोपे विभाषा 8.1.63

पद.—चादिलोपे 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ प्रथमा तिङ् न ।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर प्रथम तिङन्त को सर्वानुदात्त विकल्प से नहीं होता है, च, वा, ह, अह, तथा एव–शब्दों का लोप होने पर ।

उदा.—(1) शुक्ला व्रीहयो भवंन्ति श्वेता गा आ ज्याय दुहन्ति । 'व्रीहयः' पद से उत्तर 'भवन्ति' तिङन्त पद है । 'च' शब्द का लोप हुआ है ।

पक्ष में—शुक्ला व्रीहयो भवन्ति, श्वेता गा आज्याय दुहान्ति ।

(2) व्रीहिभिर्यजेत यवैर्यजेत–यहाँ 'वा' का लोप हुआ है ।

पक्ष में—व्रीहिभिर्यजेत यवैर्यजेत ।

इसी प्रकार अन्यत्र जानना चाहिए ।

वैवावेति च च्छन्दसि 8.1.64

पद.—वैवाव–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, इति–अव्य०, च–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ प्रथमा विभाषा तिङ् न ।

अर्थ—वेद के विषय में पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर प्रथम तिङ् को विकल्प से सर्वानुदात्त का निषेध होता है, यदि 'वै' तथा 'वाव' शब्दों का योग हो ।

उदा.—(1) अहर्वै देवानाम् आसींत् रात्रीरसुराणाम् आसीत्

'वै' का योग है । 'देवानाम्' से उत्तर 'आसीत्' प्रथम तिङ् को विकल्प से निषेध हुआ ।

पक्ष में—अहर्वै देवानाम् आसीत् रात्रीरसुराणाम् आसीत् ।

(2) अयं वाव ह आसींत् नेतर आसीत् । (पूर्ववत्) ।

पक्ष में—अयं वाव ह आसीत् नेतर आसीत् ।

एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम् 8.1.65

पद.—एकान्याभ्याम् 3.2, समर्थाभ्याम् 3.2

अनु.—पदात् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ छन्दसि विभाषा प्रथमा तिङ् न ।

अर्थ—वेद के विषय में पाद के आदि में अविद्यमान पद से उत्तर प्रथम तिङन्त जो समानार्थक 'एक' व 'अन्य' शब्द के योग में हो, उसे विकल्प से सर्वानुदात्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) प्रजाम् एकां जिन्वंति ऊर्जम् एका रक्षति 'एका' पद से उत्तर प्रथम तिङन्त 'जिन्वति' को विकल्प से सर्वानुदात्त का निषेध हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में—प्रजाम् एकां जिन्वति ऊर्जम् एका रक्षति। सर्वानुदात्त हुआ।

(2) तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति (ऋ० 1.164.20)।

(पूर्ववत्)

पक्ष में—

सर्वानुदात्त होता है। यथा—

अत्ति।

विशेष—'समर्थाभ्याम्' अर्थात् समान अर्थ वाले 'एक' या 'अन्य' शब्द के योग में विकल्प से सर्वानुदात्त नहीं होता है—

एको देवानुपातिष्ठत्–

यहाँ 'एक' शब्द समानार्थक नहीं है।

यद्वृत्तान्नित्यम् 8.1.66

पद.—यद्वृत्तात् 5.1, नित्यम् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ तिङ् न।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान 'यत्' शब्द से निष्पन्न पद से उत्तर तिङन्त पद को सदा सर्वानुदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) यो भुङ्क्ते।

(2) यं भोजयति।

(3) येन भुङ्क्ते।

(4) यस्मै ददाति।

(5) यत्कामास्ते जुहुमः।

सर्वत्र सर्वानुदात्त का निषेध हो गया।

पूजनात् पूजितमनुदात्तम् 8.1.67

पद.—पूजनात् 5.1, पूजितम् 1.1, अनुदात्तम् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पूजनवाची पद से उत्तर पूजितवाची शब्द को अनुदात्त होता है।

उदा.—दारुणाध्यापकः।

इसी प्रकार—दारुणाभिरूपकः।

'मलोपश्च' (पा० 8.1.67 वा०) के द्वारा 'दारुणम्' के मकार का लोप हो गया है।

'काष्ठादिभिः' यह वार्तिक का अंश है। काशिका में इसे मूल सूत्र के साथ पढा है। इसके अनुसार काष्ठादि पूजनवाची पद से उत्तर शब्द को अनुदात्त होता है। यथा—

काष्ठाऽध्यापकः।

सगतिरपि तिङ् 8.1.68

पद.—सगतिः 1.1, अपि–अव्य०, तिङ् 1.1

अनु.—पदस्य पदात् अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ पूजनात् पूजितम्।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान पूजनवाची पद से उत्तर गतिसंज्ञक शब्द सहित तथा गतिसंज्ञक शब्द से रहित तिङन्त पद सर्वानुदात्त होता है।

उदा.—(1) यत् काष्ठं पचति

यहाँ गतिसंज्ञक शब्द नहीं है। 'पचति' तिङन्त को निघात हुआ।

(2) यद् दारुणं प्रपचति—

'प्र' गतिसंज्ञक शब्द है। 'पचति' को निघात स्वर हुआ।

कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ 8.1.69

पद.—कुत्सने 7.1, च–अव्य०, सुपि 7.1, अगोत्रादौ 7.1

अनु.—सगतिरपि तिङ् पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ।

अर्थ—पाद के आदि में अविद्यमान सगतिक एवं अगतिक तिङन्तों को सर्वानुदात्त होता है, गोत्रादि गणपठित शब्दों को छोड़कर शेष निन्दावाची सुबन्त शब्द के परे रहते।

उदा.—पचति पूति–

अगतिक 'पचति' को सर्वानुदात्त हो गया। निन्दावाची शब्द 'पूति' परे है। 'पूति' के 'सु' का 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् हुआ है।

प्रपचति पूति–

सगतिक 'पचति' को सर्वानुदात्त हुआ है।

इसी प्रकार—पचति मिथ्या।

प्रपचति मिथ्या।

विशेष—1. 'कुत्सने' अर्थात् **निन्दावाची शब्द के परे** रहते सर्वानुदात्त होता है—

पचति शोभनम् यहाँ 'शोभन' शब्द परे है जो निन्दावाची नहीं है। अतः निघात स्वर न हुआ।

2. 'सुपि' अर्थात् **सुबन्त परे रहते** ही सर्वानुदात्त होता है—

पचति क्लिश्नाति–यहाँ सुबन्त परे नहीं है। अतः सर्वानुदात्त न हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. 'अगोत्रादौ' अर्थात् **गोत्रादि गणपठित** शब्दों को छोड़ कर अन्य के परे रहते ही सर्वानुदात्त होता है—

पचति गोत्रम् यहाँ 'गोत्र' शब्द परे है। अतः 'पचति' को सर्वानुदात्त न हुआ।

गतिर्गतौ 8.1.70

पद.—गतिः 1.1, गतौ 7.1

अनु.—पदस्य अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ।

अर्थ—पाद के आदि में जो विद्यमान नहीं है ऐसे गति संज्ञक पद को सर्वानुदात्त होता है, गतिसंज्ञक शब्द परे रहते।

उदा.—अभ्युद्धरति।
समुदानयति।

'उद्' गति संज्ञक के परे रहते 'अभि' गति संज्ञक को सर्वानुदात्त हुआ। 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' से 'अभि' को छोड़कर सब आद्युदात्त हुआ।

इसी प्रकार सम् को सर्वानुदात्त हुआ।

विशेष—1. 'गतिः' अर्थात् **गतिसंज्ञक को ही** सर्वानुदात्त होता है—

देवदत्तः प्रपचति यहाँ 'प्र' गतिसंज्ञक पद परे है। 'देवदत्तः' गति संज्ञक नहीं है। अतः सर्वानुदात्त नहीं हुआ। 'कारकादत्त०' से अन्तोदात्त होता है।

2. 'गतौ' अर्थात् **गतिसंज्ञक परे रहते ही** सर्वानुदात्त होता है—

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः यहाँ 'मन्द्र' शब्द परे है जो गतिसंज्ञक नहीं है। अतः गतिसंज्ञक 'आ' को निघात स्वर न हुआ।

तिङि चोदात्तवति 8.1.71

पद.—तिङि 7.1, च-अव्य०, उदात्तवति 7.1

अनु.—पदस्य गतिः अनुदात्तम् सर्वम् अपादादौ।

अर्थ—पाद के आदि में जो विद्यमान नहीं है। ऐसे गतिसंज्ञक को सर्वानुदात्त होता है। उदात्तवान् तिङन्त के परे रहते।

उदा.—यत् प्रपचति।
यत् प्रकरोति।

'पचति' तथा 'करोति' तिङन्तों को 'निपातैर्यद्यदि०' अथवा 'यद्वृत्तान्नित्यम्' के द्वारा निघात का निषेध होता है। अतः ये उदात्तवान् हैं।

इन उदात्तवान् तिङन्तों के क्रमशः परे रहते गतिसंज्ञक 'प्र' को सर्वानुदात्त हुआ।

आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् 8.1.72

पद.—आमन्त्रितम् 1.1, पूर्वम् 1.1, अविद्यमानवत्-अव्य०।

अनु.—पदस्य।

अर्थ—(जिसे निघातादि कार्य का विधान किया गया है ऐसे) पद से पूर्व जो आमन्त्रित संज्ञक पद वह अविद्यमान के समान होता है।

भाव यह है कि उस आमन्त्रित को मानकर जो कार्य प्राप्त हों, वे कार्य न हों तथा उसके न रहने पर जो कार्य प्राप्त हों, वे हो जायें।

उदा.—(1) देवदत्त। यज्ञदत्त।

यहाँ आमन्त्रित संज्ञक 'यज्ञदत्त' से पूर्व 'देवदत्त' है। इसकी आमन्त्रित संज्ञा है। तब 'आमन्त्रितस्य च' (पा० 8.1.19) से 'यज्ञदत्त' को अनुदात्त नहीं होता है अपितु 'आमन्त्रितस्य च' (पा० 8.1.19) के द्वारा आद्युदात्त होता है।

(2) देवदत्त पचसि-'पचति' के परे रहते आमन्त्रित संज्ञक 'देवदत्त' के अविद्यमानवत् होने से 'तिङ् अतिङः' से सर्वानुदात्त नहीं होता है।

(3) देवदत्त, तव ग्रामः स्वम्। देवदत्त, मम ग्रामः स्वम्-

यहाँ 'तव' तथा 'मम' के परे रहते आमन्त्रित संज्ञक 'देवदत्त' अविद्यमानवत् हो गया।

अतः 'ते मयावेकवचनस्य' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

(4) यावद् देवदत्तः पचसि यहाँ 'पचसि' के परे रहते आमन्त्रितसंज्ञक 'देवदत्त' अविद्यमानवत् हुआ।

'पूजायां नानन्तरम्' के द्वारा से 'पचसि' को सर्वानुदात्त हुआ।

(5) देवदत्त, जातु पचसि-

पूर्ववत्। 'जात्वपूर्वम्' से 'देवदत्त' को सर्वानुदात्त का निषेध हुआ।

(6) आहो देवदत्त पचसि-

पूर्ववत्। 'आहो उताहो चानन्तरम्' से 'पचसि' को सर्वानुदात्त का निषेध हुआ।

(7) आम् भोः पचसि देवदत्त-

'पचसि' के परे रहते आमन्त्रितसंज्ञक 'भोः' अविद्यमानवत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ । आमन्त्रितसंज्ञक 'देवदत्त' पचसि पद से एकपदान्तरित हुआ । 'आम एकान्तरमामन्त्रित०' से सर्वानुदात्त न हुआ ।

नाऽऽमन्त्रिते समानाधिकरणे 8.1.73

पद.—न-अव्य०, आमन्त्रिते 7.1, समानाधिकरणे 7.1

अनु.—पदस्य आमन्त्रितम् पूर्वम् अविद्यमानवत् ।

अर्थ—समान अधिकरण वाले आमन्त्रितसंज्ञक पद के परे रहते आमन्त्रित संज्ञक पद अविद्यमान वत् नहीं होता है ।

उदा.—अग्नें गृहपते-

दोनों पदों की आमन्त्रित संज्ञा है । दोनों पद समान अधिकरण वाले हैं । पूर्व सूत्र के द्वारा 'अग्ने' को अविद्यमानवद्भाव प्राप्त हुआ । प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया ।

'आमन्त्रितस्य च' के द्वारा 'गृहपते' को निघातस्वर हुआ ।

सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने 8.1.74

पद.—सामान्यवचनम् 1.1, विभाषितम् 1.1 विशेषवचने 7.1

अनु.—पदस्य आमन्त्रिते समानाधिकरणे आमन्त्रितम् पूर्वम् अविद्यमानवत् ।

अर्थ—विशेषवाची समानाधिकरण आमन्त्रित के परे रहते सामान्यवचन आमन्त्रित विकल्प से अविद्यमानवत् होता है ।

उदा.—देवाः शरण्याः । देवा शरण्याः । आमन्त्रित 'देव' शब्द सामान्य रूप से सभी देवत्व गुणवालों को कहता है । अतः सामान्यवचन हुआ । 'शरण्य' विशेषवाची आमन्त्रित-शब्द परे है ।

दोनों शब्द समानाधिकरण वाले हैं । 'देव' शब्द को विकल्प से अविद्यमानवद् भाव हुआ ।

विद्यमानवद् पक्ष में 'आमन्त्रितस्य च' (पा० 8.1.19) के द्वारा 'शरण्य' शब्द को निघात स्वर हुआ ।

अविद्यमानवद्भाव पक्ष में 'आमन्त्रितस्य च' (पा० 6.1.192) के द्वारा दोनों पदों को आद्युदात्त हुआ ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायामष्टमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टमाऽध्यायस्य

द्वितीयः पादः

पूर्वत्राऽसिद्धम् 8.2.1

पद.—पूर्वत्र-अव्य०, असिद्धम् 1.1

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। यह अधिकार ग्रन्थ की समाप्ति पर्यन्त (पा० 8.4.67) जाता है। फलतः आठवें अध्याय के तीन पाद (द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ) इसके अधिकार में आते हैं।

सवा सात अध्यायों के प्रति त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं तथा त्रिपादी में भी प्रत्येक सूत्र पूर्वशास्त्र (अर्थात् अपने से पूर्व आए हुए) के प्रति असिद्ध होता है।

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। प्रकृतसूत्र से पूर्व सात अध्याय व आठवें अध्याय का एक पाद हैं। इसे सपाद सप्ताध्यायी कहते हैं। शेष तीन पादों को त्रिपादी कहा जाता है।

सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के सूत्र असिद्ध हैं तथा त्रिपादी के सूत्र अपने से पूर्व पूर्व सूत्रों के प्रति असिद्ध हैं।

भाव यह है कि त्रिपादी में आया हुआ सूत्र सपादसप्ताध्यायी के प्रति तो असद्धि है ही, अपितु त्रिपादी में भी अपने से पूर्ववर्त्ती सभी सूत्रों के प्रति असिद्ध है।

'असिद्ध' का अर्थ है—न होना अर्थात् तत् तत् सूत्र की दृष्टि में वह कार्य न हुआ है—ऐसा जानना चाहिए।

उदा.—(1) हरे इह-हरय् इह
(एचोऽयवायावः)
हर इह-
(लोपः शाकल्यस्य—पा० 8.3.19)

इस दशा में 'आद् गुणः' की प्राप्ति हुई। लोपकार्य त्रिपादी का है और गुण कार्य (पा० 6.1.84) सपादसप्ताध्यायी का है। अतः लोपकार्य गुणकार्य के प्रति असिद्ध है अर्थात् 'आद् गुणः' सूत्र की दृष्टि में **य लोप** हुआ ही नहीं है।

भाव यह है कि 'आद् गुणः' को यहाँ यकार (वस्तुतः जिसका लोप हो चुका है) खड़ा दिखाई देता है। तब रेफोत्तरवर्त्ती अकार और इकार के मध्य यकार का (कृत्रिम) व्यवधान होने से गुणादेश न हुआ।

हर इह।

(2) किम् उ उक्तम्-
किम् व् उक्तम्-किम्वुक्तम्।

(मय उञो वो वा—पा० 8.3.33) अब 'मोऽनुस्वारः' (पा० 8.3.23) के द्वारा अनुस्वार आदेश प्राप्त होता है। 'मञ उञो वो वा' तथा 'मोऽनुस्वारः' दोनों सूत्र त्रिपादी के हैं। त्रिपादी में परवर्त्ती सूत्र अपने पूर्ववर्त्ती सूत्रों के प्रति असिद्ध हुआ करता है।

वकार आदेश अनुस्वार आदेश की दृष्टि में असिद्ध है अर्थात् 'मोऽनुस्वारः' की दृष्टि में वकार आदेश हुआ ही नहीं, वहाँ उकार ही है। अतः अनुस्वार न हुआ।

नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति 8.2.2

पद.—न लोपः 1.1, सुप् स्वर...विधिषु 7.3, कृति 7.1

अनु.—असिद्धः।

अर्थ—सुब् विधि, स्वरविधि, संज्ञाविधि और कृत् प्रत्यय परक तुग् विधि में ही नकार लोप असिद्ध होता है। भाव यह है कि नकार लोप को सूत्रोक्त विधियों के करने में ही असिद्धवत् मानना चाहिए, अन्य स्थलों पर नहीं।

यहाँ नकार लोप के असिद्ध होने से आभाव, एभाव तथा ऐस्भाव (अतो भिस ऐस्) नहीं होता है।

सुपो विधिः-सुब्विधिः शेष में षष्ठी है। अतः इसका अर्थ है—सुप् सम्बन्धी विधि। यह दो प्रकार की होती है—

1) सुप् के स्थान पर-राजभिः (व्याख्या नीचे देखें),

2) सुप् परे रहते-राजभ्याम् (व्याख्या नीचे देखें)।

स्वरस्य विधिः स्वरविधिः यहाँ कर्म में शेषत्व की विवक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में षष्ठी है । इसका अर्थ है—स्वर को विधान करने में (न लोप असिद्ध होता है) । संज्ञाया विधिः संज्ञाविधिः पूर्ववत् षष्ठी है । इसका अर्थ हुआ–संज्ञा को विधान करने में (नलोप असिद्ध होता है) ।

तुको विधिः–तुग्विधिः–तुक् कर्म में शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी है । इसका अर्थ है—

कृत् परे रहते तुक् को विधान करने में (नलोप असिद्ध होता है) ।

पूर्वोक्त सभी विधियाँ सपाद सप्ताध्यायी में हैं तथा न लोप त्रिपादी में है । अतः इनके प्रति नलोप स्वतः असिद्ध था परन्तु प्रकृतसूत्र नियम करता है कि यदि नलोप को असिद्ध माना जाये तो केवल प्रकृतसूत्रोक्त विधियों में उसे असिद्ध माना जाये ।

उदा.—(1) राजन् भिस्–राज भिस्
(पद संज्ञा, नलोप)

अब 'अतो भिस ऐस्' के द्वारा ऐस् आदेश प्राप्त होता है परन्तु नलोप के असिद्ध होने से ऐस् न हुआ ।

राजभिः ।
राजन् भ्याम्–राजभ्याम्

नलोप के असिद्ध होने से 'सुपि च' से प्राप्त दीर्घ आदेश नहीं होता है ।

राजन् सुप्–राजसु

यहाँ नलोप के असिद्ध होने से 'बहुवचने झल्येत्' से प्राप्त एकार आदेश नहीं होता है ।

(2) राजन् मतुप्–राजमत्–राजवत् ङीप्–राजवती सु–राजवती—स्वरविधि में नलोप के असिद्ध होने से 'अतोऽवत्याः' से प्राप्त अन्तोदात्त नहीं होता है ।

(3) पञ्च ब्राह्मण्यः–

नलोप के पश्चात् नान्त न रहा । परन्तु नलोप के असिद्ध होने से नान्त होकर षट्संज्ञा हो गई । तब 'पञ्च' को प्राप्त 'टाप्' का 'न षट्स्वस्रा०' के द्वारा निषेध हो गया ।

(4) वृत्रहन् भ्याम्–वृत्रहभ्याम्

नलोप हुआ । नलोप असिद्ध हुआ । 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' के द्वारा प्राप्त तुक् न हुआ ।

विशेष—'कृति' अर्थात् कृत् परे रहते ही तुग्विधि में नलोप असिद्ध होता है—

वृत्रहन् छत्र–वृत्रह छत्र—इस दशा में 'छे च' से तुक् होता है । यहाँ 'छ' परे रहते तुक् हुआ है । चूँकि कृत् परे नहीं है । अतः तुक् विधि में नलोप असिद्ध न हुआ । 'सु' होकर–वृत्रहच्छत्रम् ।

न मु ने 8.2.3

पद.—न अव्य०, मु–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, ने 7.1

अनु.—असिद्धः ।

अर्थ—'ना' भाव करना हो या कर चुके हों तो 'मु' आदेश असिद्ध नहीं होता है ।

भाव यह है कि 'ना' के विषय में अथवा 'ना' परे होने पर 'मु' आदेश सिद्ध रहता है ।

उदा.—अदस् टा–अद अ आ–अद आ–

'अदसोऽसेः पा० 8.2.80 के असिद्ध होने से प्रथम विभक्ति कार्य ('टा' को 'इन') प्राप्त होता है तथापि प्रकृतसूत्र के द्वारा वचन सामर्थ्य से नहीं हुआ । अमु आ

'मु' भाव के असिद्ध होने से 'शेषो घ्यसखि' द्वारा घि संज्ञा न हुई । तब 'आङो नाऽस्त्रियाम्' की प्रवृत्ति नहीं होती है ।

प्रकृतसूत्र के द्वारा 'मु' भाव असिद्ध हो गया । 'ना' आदेश हुआ—अमुना ।

अब 'सुपि च' के द्वारा 'अमु' अंग को दीर्घादेश प्राप्त होता है जो 'मु' भाव के सिद्ध हो जाने से न हुआ ।

विशेष—1. 'रु' का उत्व करने की दशा में संयोगान्त लोप सिद्ध होता है[1]—

हरि मतुप्–हरि मत्–हरिवत्–
(छन्दसीरः)
हरिवत् सु–हरिवन्त् स्–हरिवन्त्–
(नुम्, सुलोप)
हरिवन्–हरिवरु–हरिव उ–हरिवो

(संयोगान्त लोप, 'मतुवसो रु सम्बुद्धौ०' से रुत्व । हशि च । आद् गुणः)

यहाँ संयोगान्त लोप के असिद्ध होने से उत्व व गुण न हो पाता । प्रकृत वार्तिक के द्वारा लोप सिद्ध हो गया ।

2. एकादेश करने में सिच् लोप सिद्ध होता है[2]—

---

1. काशि० 8.2.3 (वा०) संयोगान्तस्य लोपो रोरुत्वे सिद्धो वक्तव्यः ।
2. काशि० 8.2.3 (वा०) सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत् लुङ्–अत् तिप्–अत् च्लि त्–अत् सिच् त्–आ अत् स् त्–आत् स् त्–

(अत् धातु से लुङ, सिच्, आट्, वृद्धि)

आत् इस् त्–आत् इ स् ई त्–

(इट्, ईट्)

आत् इ ई त्–आतीत्

('इट ईटि' पा० 8.2.28 से सिच् लोप। 'अकः सवर्णे दीर्घः' पा० 6.1.97 की प्रवृत्ति न हुई, कारण कि दीर्घ एकादेश की दृष्टि में सिच् लोप असिद्ध है। प्रकृत वार्तिक के द्वारा सिच् लोप सिद्ध हुआ। तब दीर्घ आदेश हुआ)।

इसी प्रकार—लू लुङ्–अ लू इ स् ई त्–अलावीत् (सिच् लोप सिद्ध होकर रूप बना)।

3. षत्व, स्वर और प्रत्यय की विधि में तथा इट् की विधि में निष्ठा प्रत्यय का आदेश सिद्ध होता है[1]—

(क) व्रश्च् क्त–वृश्च् त–वृश् क् त–

(ग्रहिज्या० से सम्प्रसारण, 'चोः कुः' से कुत्व)

वृस्क् त–वृक् त–वृक् न–

(निमित्ताऽपाये० से सकार, 'स्कोः संयोगा०' से सकार-लोप। ओदितश्च)

वृक् ण सु–वृक्णः

निष्ठा आदेश 'न' के सिद्ध होने के कारण झल् परे नहीं रहा। अतः 'व्रश्चभ्रस्ज०' (पा० 8.2.36) की प्रवृत्ति नहीं होती है।

(ख) क्षीब् क्त–क्षीब् त–क्षीब् इत–क्षीब् अ–क्षीबः। अब 'इ' तथा 'त्' का लोप निपातन से किया जाता है। 'इत्' का लोप असिद्ध है। 'निष्ठा च द्व्यजनात्' (पा० 6.1.200) से आद्युदात्त नहीं होता है।

क्षीबे तरति–इस अर्थ में द्व्यच् मान कर ठन् प्रत्यय (नौ द्व्यचष्ठन्) न हुआ। जब केवल तकार लोप का निपातन किया जाता है तो तलोप के असिद्ध हो जाने से इट् आगम प्राप्त होता है।

4. छ परे रहते तुक् विधि में प्लुत सहित विकार सिद्ध होता है[2]—

अग्ने छत्रम्–अग्ना 3 इ छत्रम्–

(एचोऽप्रगृह्यस्याद्० से एकार के पूर्व अर्ध भाग का अकार आदेश, उत्तर अर्ध भाग का 'इ' हो जाता है तथा अकार को प्लुत होता है। अब 'छे च' से तुक् प्राप्त होता है। प्लुत सहित होने वाले विकार के असिद्ध हो जाने से तुक् न हुआ। इस विकार को सिद्ध मान लेने पर तुक् हो गया—

अग्ना 3 इच्छत्रम्।

5. धुट् परे रहते श्चुत्व सिद्ध होता है[3]—

'श्च्युत्' धातु श्चुत्व होकर निष्पन्न हुआ है (द्र० स्च्युत्–श्च्युत्)

'अट् श्च्योतति' इस दशा में श्चुत्व के सिद्ध होने से 'डः सि धुट्' से 'धुट्' आगम न हुआ। यदि इसे असिद्ध मान लें तो 'धुट्' आगम होकर अनिष्ट रूप बनता है।

6. एत्व तथा तुक् की कर्त्तव्यता में अभ्यास को जश्त्व व चर्त्व आदेश सिद्ध होते हैं।[4] 'अभ्यासे चर्च' के द्वारा जश्त्व व चर्त्व होता है। यथा—

भण् अतुस् (लिट्)–बभणतुः

'जश्त्व असिद्ध होने के कारण' अत एक हल्०' से एत्व व अभ्यास लोप होकर अनिष्टरूप बनता है। प्रकृत वार्तिक के द्वारा जश्त्व के सिद्ध हो जाने पर एत्व तथा अभ्यास लोप की प्राप्ति नहीं होती है।

छिद् सन्–चिच्छित्स

इस दशा में चर्त्व के असिद्ध रहने से 'छे च' प्रवृत्त नहीं होता है। प्रकृत वार्तिक के द्वारा चर्त्व के सिद्ध होने पर 'तुक्' होकर चिच्छित्सति' बनता है।

7. द्वित्व करने में परसवर्णता सिद्ध होती है[5]—

यम् लोकम्–यल्ँ लोकम्

परसवर्ण हुआ। परसवर्ण के असिद्ध होने से 'अनचि च' प्रवृत्त नहीं होता है। अतः प्रकृत वार्तिक के द्वारा पर सवर्ण के सिद्ध हो जाने से 'अनचि च' से यर् का द्वित्व होकर 'यल्ँल्लोकम्' बन गया।

---

1. काशि० 8.2.3 (वा०) निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययविधीड्-विधिषु सिद्धो वक्तव्यः।
2. काशि० 8.2.3 (वा०) प्लुतविकारस्तुग्विधौ छे सिद्धो वक्तव्यः।
3. काशि० 8.2.3 (वा०) श्चुत्वं धुटि सिद्धं वक्तव्यम्।
4. काशि० 8.2.3 (वा०) अभ्यासजश्त्वचर्त्वे एत्वतुकोः सिद्धे वक्तव्ये।
5. काशि० 8.2.3 (वा०) द्विर्वचने परसवर्णत्वं सिद्धं वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. पदाधिकार में लत्व, घत्व, ढत्व, नत्व, रुत्व, षत्व, णत्व, अनुनासिकत्व और छत्व सिद्ध होते हैं[1]—

(क) गलो गलः–
गॄ अच्–गर् अ–गल (अचि विभाषा) लत्व के सिद्ध होने से द्वित्व आदि होकर रूप बनता है।

(ख) द्रुह् तृच्–द्रोग्धा
(वा द्रुहमुह० । झषस्तथो० । गुण)
घत्व सिद्ध है। द्वित्व होकर–द्रोग्धा द्रोग्धा।

(ग) द्रुह् तृच्–द्रुढ् तृ–द्रुढ् ढृ–
('वा द्रुहमुह०' से पाक्षिक घत्व हुआ। घत्व अभाव पक्ष में 'हो ढः' से ढत्व, ष्टुत्व) द्रुढृ–द्रोढृ सु–द्रोढा। ढत्व सिद्ध हो गया। द्रोढा–द्रोढा–द्वित्व हुआ।

(घ) नुद् क्त–नुद् न–
(नुदविद० से निष्ठा को नत्व)
नुन्न सु–नुन्नः
नत्व सिद्ध हुआ। द्वित्व होकर—
नुन्नः नुन्नः।

(ङ) भिद् लङ्–अभिनः (सिप्)
सिपि धातो रुर्वा। दश्च।
दकार का रुत्व हुआ। अतो रोरप्लुताद०।
रुत्व के सिद्ध होने पर तथा द्वित्व होकर 'अभिनोऽभिनः' बन गया।

च) मातुः स्वसा–मातुष्वसा
(मातुपितुर्भ्यामन्यत० से षत्व)
षत्व सिद्ध हुआ। द्वित्व हुआ—
मातुष्वसा मातुष्वसा।

छ) माषवापानि–माषवापाणि–
(प्रातिपदिकान्तनुम् विभक्तिषु० से णत्व)
णत्व सिद्ध हुआ। द्वित्व होकर–
माषवापाणि–माषवापाणि।

ज) वाक् नयनम्–वाङ्नयनम्–
(यरोऽनुनासिके० से)
अनुनासिकत्व सिद्ध हुआ।
द्वित्व होकर–वाङ्नयनम् वाङ्नयनम्।

झ) वाच् शयनम्–वाक् शयनम्–
(कुत्व)
वाक्छयनम् वाक्छयनम्।
(छत्व सिद्ध हुआ। द्वित्व हुआ)।

१. काशि० 8.2.3 (वा०) पदाधिकारश्चेल्लत्व०।

उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य 8.2.4

पद.—उदात्तस्वरितयोः 6.2, यणः 5.1, स्वरितः 1.1, अनुदात्तस्य 6.1

अनु.—पूर्ववत्।

अर्थ—उदात्त तथा स्वरित के स्थान में जो यण् उससे उत्तर अनुदात्त के स्थान में स्वरित आदेश होता है।

उदा.—(1) 'कुमारी' यह शब्द उदात्तनिवृत्तिस्वर के कारण अन्तोदात्त है।

कुमारी आट् अस्–कुमारी आस्–

'ई' के स्थान पर अनुदात्त 'आस्' परे रहते अण् आदेश होता है। यह उदात्त के स्थान पर हुआ है। अतः इससे उत्तर अनुदात्त 'आस्' को स्वरित होता है—कुमार्यास्।

(2) खल पू–खलपू ङि
(उपपदमतिङ्)

'गतिकारको०' के द्वारा प्रकृतिस्वर से अन्तोदात्त हुआ। उदात्त ऊकार के स्थान पर अनुदात्त 'इ' के परे रहते यणादेश हुआ।

अनुदात्त 'इ' को प्रकृतसूत्र के द्वारा स्वरित हो गया।

खलप्व्यि आशा–

'आशा' शब्द परे रहते स्वरित 'इ' के स्थान पर यणादेश हुआ। 'आशाया अदिगाख्या चेत्' (फिट्०18) से 'आशा' शब्द अन्तोदात्त है। 'अनुदात्तं पद.' से 'आ' अनुदात्त हुआ।

खलप्व्याशा

इकार के स्थान पर हुए स्वरित यण् से उत्तर 'आशा' के अनुदात्त 'आ' को स्वरित हुआ।

एकादेश उदात्तेनोदात्तः 8.2.5

पद.—एकादेशः 1.1, उदात्तेन 3.1, उदात्तः 1.1

अनु.—अनुदात्तस्य।

अर्थ—उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश, वह उदात्त होता है।

उदात्त और अनुदात्त का एकादेश आन्तरतम्य से स्वरित होता है। प्रकृतसूत्र के द्वारा उदात्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—अग्नि औ–

'अग्नि' शब्द प्रकृतिस्वर से अन्तोदात्त है। 'औ' अनुदात्त है।

'अग्नी'

एकादेश 'ई' उदात्त हुआ।

विशेष—उदात्तेन अर्थात् उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश वह उदात्त होता है—

पच् झि–पच् अ अन्ति–पचन्ति यहाँ उदात्त न हुआ।

स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ 8.2.6

पद.—स्वरितः 1.1, वा–अव्य०, अनुदात्ते 7.1, पदादौ 7.1

अनु.—अनुदात्तस्य एकादेशः उदात्तेन।

अर्थ—पदादि अनुदात्त के परे रहते उदात्त के साथ में हुआ एकादेश, विकल्प से स्वरित होता है।

उदा.—सु उत्थितः–सूत्थितः

'सुः पूजायाम्' से 'सु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। 'कुगति प्रादयः' से समास।

'तत्पुरुषे तुल्या०' से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर अर्थात् 'निपाता आद्यु०' से उदात्तत्व होकर शेष पद को 'अनुदात्तं पदमेक०' से अनुदात्त हो गया।

पद के आदि में उकार अनुदात्त परे हैं। दोनों को एकादेश हुआ। उसे विकल्प से स्वरित स्वर हुआ।

पक्ष में—सूत्थितः।

विशेष—1. 'अनुदात्ते' अर्थात् **अनुदात्त परे रहते** ही एकादेश स्वरित होता है—

देवदत्तोऽत्र–यहाँ स्वरित न हुआ।

2. 'पदादौ' अर्थात् **पदादि** अनुदात्त परे रहते एकादेश स्वरित होता है—

वृक्षौ–यहाँ न हुआ।

न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7

पद.—न-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, लोपः 1.1, प्रातिपदिक-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, अन्तस्य 6.1

अनु.—पदस्य।

अर्थ—प्रातिपदिक संज्ञक जो पद उसके अन्त्य नकार का लोप होता है।

उदा.—राजन् सु–राजान् स्–राजान्–

(प्रकृतसूत्र के द्वारा नलोप)

राजा।

राजन् भ्याम्–राजभ्याम्।

(पूर्ववत्)

विशेष—'प्रातिपदिक' इसके ग्रहण का फल है कि—

1. 'अहन्' (लङ् प्र०पु० एक०) इस दशा में नलोप नहीं होता है। कारण कि, 'अहन्' पद संज्ञक तो है परन्तु 'प्रातिपदिक' नहीं है।

2. 'पदस्य' अधिकार का फल है कि 'राजन् औ' इस दशा में नलोप नहीं होता है। कारण कि, 'राजन्' प्रातिपदिक तो है परन्तु 'पद' नहीं है।

3. अहन् के नकार का लोप नहीं होता है[1]—

अहन् सु–अहन्–अहः

रोऽसुपि। अहन्। रेफ और रुत्व के असिद्ध होने से नलोप प्राप्त होता है।

न ङिसम्बुद्ध्योः 8.2.8

पद.—न–अव्य०, ङिसम्बुद्ध्योः 7.2

अनु.—पदस्य न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य।

अर्थ—'ङि' अथवा सम्बुद्धिसंज्ञक प्रत्यय परे रहते नकार का लोप नहीं होता है।

उदा.—(1) परमे व्योमन् (ऋ० 1.164.39)

('सुपां सुलुक्–' से ङि का लुक् हुआ। नलोप प्राप्त हुआ। प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया)।

इसी प्रकार—रोहिते चर्मन् (काठ० 24.2)।

(2) हे राजन् सु–हे राजन्

'स्' का लोप हुआ। प्रत्ययलक्षण से सम्बुद्धि संज्ञक 'सु' परे है। प्राप्त नलोप का निषेध हो गया।

विशेष—1. ङि परे उत्तरपद परे रहते नलोप निषेध नहीं होता है[2]—

चर्मणि तिला अस्य सः–चर्मतिलः समास करने पर प्रत्यय-लक्षण के द्वारा ङि परे मानकर नलोप का प्रतिषेध प्राप्त हुआ। प्रकृत वार्तिक के द्वारा निषेध का निषेध हुआ।

---

1. महा० 8.2.7 (वा०) अह्नो नलोप प्रतिषेधो वक्तव्यः।
2. महा० 8.2.8 (वा०) ङावुत्तरपदे प्रतिषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. नपुँसकों के नकार का लोप विकल्प से होता है[1]—
हे चर्मन्, हे चर्म

सम्बोधन में नकार का लोप विकल्प से होता है—
हे चर्म।

पक्ष में नकार लोप नहीं होता है—हे चर्मन्।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः 8.2.9

पद.—मात् 5.1, उपधायाः 5.1, च-अव्य०, मतोः 6.1, वः 1.1, अयवादिभ्यः 5.3

अनु.—पदस्य।

अर्थ—जो मकारान्त अथवा अवर्णान्त है एवं जिसकी उपधा में मकार अथवा अवर्ण है, ऐसे प्रातिपदिक संज्ञक शब्द से उत्तर 'मतुप्' के स्थान पर वकार आदेश होता है परन्तु यव आदि शब्दों से उत्तर 'मतुप्' को वकार आदेश होता है।

'मतुप्' के पकार व उकार की इत्संज्ञा होती है। 'मत्' शेष रहता है।

'आदेः परस्य' के द्वारा 'मत्' के मकार के स्थान पर वकार होता है।

'मात्' पद में तदन्त होता है तथा यह सामर्थ्य से 'उपधायाः' का भी विशेषण बनता है। तब सूत्रार्थ होता है—मकारान्त, अकारान्त, मकारोपध, अवर्णोपध शब्द से उत्तर।

उदा.—(1) किम् मतुप्-किम् मत्-
'किम्' मकारान्त शब्द है। इससे उत्तर मत् के मकार को वकार हो गया-
किम् वत्-किंवत् सु-किंवान्।

(2) शमी मतुप्-शमी मत्-
'शमी' की उपधा में मकार है।
'मत्' के मकार को वकार हो गया—
शमीवत् सु-शमीवान्।

(3) वृक्ष मतुप्-वृक्षवत् सु-वृक्षवान्।
'वृक्ष' अवर्णान्त शब्द है।

(4) पयस् मतुप्-पयस्वत्-
'पयस्' की उपधा में अकार है। अतः वकार हुआ है। इसकी पद संज्ञा नहीं होती है। भंसज्ञा (तसौ मत्वर्थे) होती है। अतः 'स सजुषो रुः' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

विशेष—1. 'अयवादिभ्यः' अर्थात् **'यव' आदि शब्दों को छोड़कर** शेष शब्दों से उत्तर 'मतुप्' को ही वकार होता है— यव मतुप्-यवमत्-यवमान्

'यव' अकारान्त शब्द है। अतः इससे पर मतुप् के मकार को वकार प्राप्त होता है। प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया।

2. 'मादुपधायाः' अर्थात् **मकारोपध** व अकारोपध से उत्तर मतुप् को वकार आदेश होता है—अग्निमान्-

यहाँ उपधा में न तो मकार है और न ही अकार है।

झयः 8.2.10

पद.—झयः 5.1

अनु.—पदस्य मतोः वः।

अर्थ—झय् वर्ण से उत्तर 'मतुप्' (के मकार) को वकार आदेश होता है।

'झय्' एक प्रत्याहार है। इसमें वर्गों के चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय तथा प्रथम अक्षर होते हैं।

उदा.—अग्निचित् मतुप्-अग्निचित्वत्-

'अग्निचित्' के अन्त में तकार है जो 'झय्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है।

मतुप् के मकार के स्थान पर वकार हो गया—
अग्निचित् वत् सु-अग्निचित्वान्

इसी प्रकार—विद्युत्वान्। मरुत्वान्। सोमसुत्वतः (भट्टि० 5.11)।

संज्ञायाम् 8.2.11

पद.—संज्ञायाम् 7.1

अनु.—पदस्य मतोः वः।

अर्थ—संज्ञा के विषय में 'मतुप्' को वकार आदेश होता है।

उदा.—अहि मतुप्-अहिमत्-
(नद्यां मतुप्)
अहीमत्-अहीवत् ङीप्-
(शरादीनां च)
अहीवती सु-अहीवती।
(उगितश्च)।
कुमुद्वती (भट्टि० 2.4)।

आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षी-वद्रुमण्वच्चर्मण्वती 8.2.12

पद.—आसन्दीवत् अष्ठीवत् चक्रीवत् कक्षीवत् रुमण्वत्-प्रत्येकं लुप्तप्रथमान्तम्, चर्मण्वती 1.1

1. महा० 8.2.8 (वा०) वा नपुँसकानामिति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—संज्ञायाम् ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वत् तथा चर्मण्वती–इन शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—(1) आसन मतुप्–आसन्दीवत्
(यहाँ 'आसन्दी' आदेश हुआ है) ।

(2) अस्थि मतुप्–अष्ठीवत् ।
('अष्ठी' आदेश) ।

(3) चक्र मतुप्–चक्रीवत् ।
(पूर्ववत्)

(4) कक्ष्या मतुप्–कक्षीवत्
(निपातन से सम्प्रसारण)

(5) लवण मतुप्–रुमण्वत् ।
('रुमण्' भाव का निपातन है)

(6) चर्मन् मतुप्–चर्मण्वत्–
(नकार लोप का अभाव । णत्वनिषेध का अभाव)
रषाभ्यां नो णः समानपदे । पदान्तस्य ।

उदन्वानुदधौ 8.2.13

पद.—उदन्वान् 1.1, उदधौ 7.1

अनु.—संज्ञायाम् ।

अर्थ—संज्ञा तथा उदधि के विषय में 'उदन्वान्' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—उदक मतुप्–उदन् मत्–उदन्वत् सु–
उदन्वान् (इस नाम का एक ऋषि था । यह समुद्र के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है) ।

विशेष—'उदधौ' अर्थात् **उदधि के विषय** में ही 'उदन्वान्' का निपातन होता है—उदकवान् घटः—
यहाँ 'उदधि' अर्थ नहीं है । अतः 'उदन्' आदेश न हुआ ।

राजन्वान् सौराज्ये 8.2.14

पद.—राजन्वान् 1.1, सौराज्ये 7.1

अर्थ—सौराज्य अर्थ में 'राजन्वान्' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—राजन् मतुप्–राजन्वत्–राजन्वान् । (नकार लोप प्राप्त था परन्तु निपातन से नलोप का अभाव हो गया) । द्र० राजन्वती (रघु० 6.22) ।

छन्दसीरः 8.2.15

पद.—छन्दसि 7.1, इरः 5.1

अनु.—मतोः वः ।

अर्थ—वेद के विषय में इवर्णान्त तथा रेफान्त शब्दों से उत्तर मतुप् को वकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) हरि मतुप्–हरिवत्–हरिवन्–
(मतुवसो—)
हरिवः (ऋ० खि०पा० 10.128.1)

(2) गिर् मतुप्–गिर् वत्–
(र्वोरुपधायाः—)
गीर्वत् सु–गीर्वान् ।

(3) आशिष् मतुप्–
आशिर् वत्–आशीर्वत् सु–आशीर्वान्
(ऋ० 8.95.7) ।

अनो नुट् 8.2.16

पद.—अनः 5.1, नुट् 1.1

अनु.—छन्दसि मतोः ।

अर्थ—वेद के विषय में 'अन्' है अन्त में जिसके ऐसे शब्द से उत्तर 'मतुप्' को 'नुट्' आगम होता है ।

उदा.—(1) अक्षन् मतुप्–अक्षन् वत् जस्–अक्षण्वन्तः (ऋ० 10.71.7) ।

(2) अस्थि मतुप्–अस्थन्वत् अम्–अस्थन्वन्तम् (ऋ० 1.164.4) ।

नाद् घस्य 8.2.17

पद.—नात् 5.1, घस्य 6.1

अनु.—छन्दसि नुट् ।

अर्थ—वेद के विषय में नकारान्त शब्द से उत्तर घसंज्ञक को 'नुट्' आगम होता है ।

'तरप्तमपौ घः' से घसंज्ञा होती है ।

उदा.—(1) सुपथिन् तरप्–सुपथिन्तर सु–(नुट् हुआ, नकार लोप) सुपथिन्तरः ।

(2) दस्यु हन् तमप्–दस्युहन् न् तम–दस्युहन् तम सु–दस्युहन्तमः ।

विशेष—1. भूरिदावन् शब्द से उत्तर घसंज्ञक को तुट् आगम होता है[1]—

1. महा० 8.2.17 (वा०) भूरिदाव्नस्तुड् वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूरिदावन् तरप्-भूरिदावन् तुट् तर-भूरिदावत् तर (तुट् आगम, नकार लोप)

भूरि दावत् तर सु-भूरिदावत्तरः (ऋ० 8.5.39)

2. रथिन् को ईकार आदेश होता है, 'घ' परे रहते[1]—

रथिन् तरप्-रथि तर-रथीतर सु-
रथीतरः (ऋ० 1.84.6)

रथोऽस्ति अस्य इस अर्थ में 'रथिन्' शब्द बनता है। 'रथिन्' से 'तरप्' होकर 'रथीतर' बनता है।

कृपो रो लः 8.2.18

पद.—कृपः 6.1, रः 6.1, लः 1.1

अर्थ—'कृप्' धातु के रेफ को लकार आदेश होता है। सूत्रस्थ 'र' के द्वारा रेफ वर्ण तथा ऋकार में श्रूयमाण 'र' दोनों का ग्रहण होता है।

उदा.—कृप् तिप्-कृप् तास् ति-
(लुट्, तास्)
कल्प् तास् डा-कल्प्ता।
(लुटि च क्लृपः)
सङ्क्लृप्तम् (भट्टि० 3.44)।

उपसर्गस्याऽयतौ 8.2.19

पद.—उपसर्गस्य 6.1, अयतौ 7.1

अनु.—रः लः।

अर्थ—अय धातु के परे रहते उपसर्ग का जो रेफ उसे लकार आदेश होता है।

उदा.—(1) प्र अयते-प्ल अयते-प्लायते।
(2) परा अयते-पलायते।
(3) परि अयते-पल्ययते।
(4) पलायाञ्चक्रे (भट्टि० 5.106)।

ग्रो यङि 8.2.20

पद.—ग्रः 6.1, यङि 7.1

अनु.—रः लः।

अर्थ—'यङ्' परे रहते गृ धातु के रेफ को लकार आदेश होता है।

उदा.—गृ यङ्-गिल् य-जि गिल् य-
(लुपसदचरजप० । ऋत इद्धातोः)
जेगिल्य शप् त-जेगिल्यते।

इसी प्रकार—जेगिल्येते।
जेगिल्यन्ते।

अचि विभाषा 8.2.21

पद.—अचि 7.1, विभाषा 1.1

अनु.—ग्रः रः लः।

अर्थ—अजादि प्रत्यय परे रहते गृ धातु के रेफ के स्थान पर विकल्प से लकार होता है।

उदा.—गृ तिप्-गृ ति-गृ श ति-
(तुदादिभ्यः शः)
गृ अ ति-गिर् अ ति-
(प्राप्त गुण को बाधकर 'ऋत इद्धातोः' से इत्व हुआ)
गिल् अति-गिलति।

पक्ष में—गिरति।

परेश्च घाङ्कयोः 8.2.22

पद.—परेः 6.1, च-अव्य०, घाङ्कयोः 7.2

अनु.—'घ' तथा 'अंक' परे रहते 'परि' के रेफ को विकल्प से लकार होता है।

साहचर्यवशात् 'घ' के द्वारा 'घ' शब्द का ग्रहण होता है न कि घसंज्ञक प्रत्यय का।

उदा.—(1) परि हन् अप्-परि घ अ-
(परौ घः)
परि घ् अ-परिघ सु-परिघः।
(टिलोप)

(2) अकि-अङ्क् अच्-
(नुम्, परसवर्ण, पचादि होने से अच्)
अङ्क सु-अङ्कः।
परि अङ्कः-पल्यङ्कः, पर्यङ्कः।
(कुगतिप्रादयः)

विशेष—'योग' शब्द परे रहते 'परि' को विकल्प से लकार आदेश होता है[1]—
परि योग-पलियोग सु-पलियोगः।
पक्ष में—परियोगः।

---

1. महा० 8.2.17 (वा०) ईद् रथिनः।

1. महा० 8.2.22 (वा०) योगे वेति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23

पद.—संयोगान्तस्य 6.1, लोपः 1.1

अनु.—पदस्य ।

अर्थ—संयोग है अन्त में जिसके ऐसे पद का लोप होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् का लोप होता है।

उदा.—(1) गो मतुप्–गोमत् सु–गोम नुम् त् स्–गोमान् त् स्–गोमान् त्–
(हल्ङ्यादिलोप)
गोमान् त्
(संयोगान्त लोप) । गोमान् ।

(2) इसी प्रकार—यवमान् ।

सर्वत्र 'हलोऽनन्तराः संयोगः' से संयोगसंज्ञा होती है ।

रात् सस्य 8.2.24

पद.—रात् 5.1, सस्य 6.1

अनु.—पदस्य संयोगान्तस्य लोपः ।

अर्थ—संयोग है अन्त में जिसके ऐसे पद के रेफ से उत्तर सकार का लोप होता है ।

यह नियमसूत्र है । यह नियम करता है कि रेफ से उत्तर संयोगान्त लोप करना हो तो वह सकार का ही होता है, अन्य का नहीं ।

उदा.—(1) पितृ अस् (ङसि या ङस्)–पितुर् अस्–
(ऋत उत् । उरण् रपरः)
पितुर्–पितुः ।

इसी प्रकार—मातुः ।

विशेष—रेफ से उत्तरवर्ती **सकार** का ही संयोगान्त लोप होता है—
ऊर्ज् सु (नपुँसक में)
ऊर्ज्–ऊर्क् ।

(सु लुक्, 'संयोगान्तस्य लोपः' से जकार का लोप प्राप्त होता है । प्रकृतसूत्र के द्वारा न हुआ)

धि च 8.2.25

पद.—धि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—सस्य लोपः ।

अर्थ—धकारादि प्रत्यय परे रहते सकार का लोप होता है ।

उदा.—(1) एध् ध्वम् (लुट्)
एध् तास् ध्वम्–एध् इतास् ध्वम्–
एधिता ध्वम्–एधिताध्वे
(टित आत्मनेपदानां–)

(2) लू लुङ्–लू ति–लू सिच् ध्वम्–
(लुङ्, सिच्, इकार लोप)
अट् लू इट् स् ध्वम्–अलो इस् ध्वम्–
(अट् इट् गुण)
अलवि ध्वम्–अलविढ्वंम् ।
(विभाषेटः)
पक्ष में—अलविध्वम् ।

(3) नि वस् (आच्छादने) ध्वम्–
निवध्वम् (भट्टि० 3.44) ।

(4) आस् ध्वम्–आध्वम् (भट्टि० 3.44) ।

विशेष—काशिकाकार ने प्रकृतसूत्र में 'प्रत्यये' का अधिकार स्वीकार किया है । इसका प्रयोजन है कि यहाँ पर सकारलोप न हो—
पयस् धर–पयोधर–पयोधरः
पयस् धि–पयोधिः

यहाँ धकारादि परे है परन्तु वह प्रत्यय नहीं है । अतः सकारलोप न हुआ ।

झलो झलि 8.2.26

पद.—झलः 5.1, झलि 7.1

अनु.—सस्य लोपः ।

अर्थ—झल् से पर सकार का लोप होता है झल् परे रहते।

उदा.—(1) भिद् लुङ्–भिद् त–भिद् सिच् त–(सिच्)
अ भिद् स् त–अभित् त–अभित्त
(सलोप, खरि च)

(2) उपालब्ध (भट्टि० 3.30)
उप आ लभ् त ।

(3) प्रयुक्थाः (भट्टि० 3.54)
प्र युज् स् थास् ।

(4) बुध लुङ्–अबुद्ध (भट्टि० 15.5)

(5) अलिप्त (भट्टि० 6.22)

(6) छिद् त–छिद् स् त–
अछिद् त–अछित् त–अच्छित्त ।
(छे च)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) वस् लुङ्-वस् तस्-वस् ताम्-
अ वस् ताम्-अ वस् सिच् ताम्-अवस् ताम्-
(सिच्, सलोप)
अ वा स् ताम्-अ वात् ताम्-अवात्ताम् ।

(वदव्रजहलन्तस्य० से वृद्धि । 'सः स्यार्धधातुके' पा० 7.4.49 की दृष्टि में सलोप असिद्ध है । अतः सकार को तकार हो गया)

विशेष—1. ध्यान रहे कि इस प्रकरण में 'पदस्य' का अधिकार है । अतः धि च, झलो झलि इत्यादि सूत्रों की प्रवृत्ति एकसमानपद की दशा में ही होती है । तब 'सोमसुत् स्तोता' यहाँ झल् (तकार) से पर सकार का लोप न हुआ झल् (तकार) परे रहते । कारण कि प्रथम झल् तथा उत्तर झल् दोनों एक पद में स्थित नहीं हैं ।

2. 'झलः' अर्थात् **झल् से उत्तर** सकार का लोप होता है—

मन् लुङ्-मन् त-मन् सिच् त-
(लुङ्, सिच्)
अ मन् स् त-

(झल् तकार परे है परन्तु सकार झल् से उत्तर नहीं है । अतः सकारलोप न हुआ) अमंस्त ।

इसी प्रकार—अचैष्टाम् ।

3. 'झलि' अर्थात् **झल्** परे रहते ही सकार का लोप होता है—

भिद् लुङ्-भिद् आताम्-भिद् स् आताम्-(सिच्)
अभिद् स् आताम्-

(झल् दकार से उत्तर सकार है परन्तु परे झल् नहीं है । अतः सकारलोप न हुआ)

अभित्साताम् ।

(खरि च) । इसी प्रकार—असैत्सीत् ।

ह्रस्वादङ्गात् 8.2.27

पद.—ह्रस्वात् 5.1, अङ्गात् 5.1

अनु.—झलि सस्य लोपः ।

अर्थ—ह्रस्व अंग से उत्तर सकार का लोप होता है झल् परे रहते ।

महाभाष्यकार के अनुसार यहाँ सिच् के सकार का लोप होता है । इसका फल है कि निम्नलिखित में सलोप न होः—

द्वि सुच्-
(द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्)
द्विस् तरप्-द्विस् तर आमु-
(सुच् का सकार होने से लोप न हुआ)
द्विष्टराम् ।

उदा.—कृ लुङ्-कृ त-कृ स् त-अकृस् त-(सिच्, अट्)
अकृत ।

इसी प्रकार—प्रत्यवास्थित (भट्टि० 15.33) ।

विशेष—1. 'ह्रस्वात्' अर्थात् **ह्रस्व** से उत्तर सकार का लोप होता है—

च्यु त-च्युस् त-च्योस् त-('च्यो' ह्रस्व अंग नहीं है । अतः इससे उत्तर सलोप न हुआ) ।

अच्योस् त-अच्योष्ट ।

2. अंगात्' अर्थात् **अंग** से उत्तर सकार का लोप होता है—

लू आताम्-लू स् आताम्-लू इस आताम् (सिच्, इ)
अ लौ इ स् आताम्

(सकार अंग से परे नहीं है । इकार का व्यवधान है । अतः सकार लोप न हुआ ।

अलाविष्टाम् ।

इट ईटि 8.2.28

पद.—इटः 5.1, ईटि 7.1

अनु.—सस्य लोपः ।

अर्थ—ईट् परे रहते इट् से उत्तर सकार का लोप होता है ।

उदा.—(1) दिव् लुङ्-दिव् त्-दिव् स् त-(सिच्)
दिव् इ स् ई त्-देव् इ ई त्-
(इट्, ईट्, सलोप)
अदेवीत्

('नेटि' से वृद्धि निषेध । सिज्लोप एकादेश सिद्धो वक्तव्यः)

(2) अत् तिप्-अत् त्-आट् अत् स् त्-आ अत् इ स् ई त्-आत् इ ई त्-आतीत् ।

(पूर्ववत्)

(3) अभाणीत् (भट्टि० 15.15) ।

विशेष—1. 'इटः' अर्थात् **इट् से उत्तर** सकार लोप होता है—

कृ तिप्-कृ स् त्-कृ स् ई त्-कार् स् ई त् (इट् से उत्तर न होने से सलोप न हुआ)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकार्षीत् ।

2. 'ईटि' अर्थात् **ईट् परे रहते** सकार लोप होता है—

लू ताम्–लू स् ताम्–लू इस् ताम्–(सिच्, इट्)
अ लौ इ स् ताम्–अलौ इ स् ताम्–
(ईट् परे न रहने पर सलोप न हुआ)
अलाविष्टाम् ।

स्कोः संयोगाद्योरन्ते च 8.2.29

पद.—स्कोः 6.2, संयोगाद्योः 6.2, अन्ते 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—पदस्य झलि लोपः ।

अर्थ—पदान्त में या झल् परे रहते संयोग के आदि वाले सकार व ककार का लोप होता है ।

यह सूत्र 'संयोगान्तस्य लोपः' की दृष्टि में असिद्ध है । तदपि वचनसामर्थ्य से उसका अपवाद है ।

उदा.—(1) लस्ज् क्त–लस्ज् त–लज् त–

('स्ज्' संयोग है । इसके आदि में सकार है । संयोग से परे झल् है । सकारलोप हुआ)

ल ज् न–लग् न सु–लग्नः ।
(ओदितश्च । चोः कुः)

(2) साधु लस्ज् क्विप्–साधु लस्ज् सु–साधुलस्ज्–साधुलज्–

(सुलोप, पदान्त में संयोग है । इसके आदि सकार का लोप हुआ)

साधुलक्,–ग् ।
(चोः कुः । वाऽवसाने)

इसी प्रकार—

भृस्ज् सु–भृस्ज् स्–भृस्ज्–भृज् (पूर्ववत्)
भृष्–भृड्–भृड्, भृट् ।
(व्रश्चभ्रस्ज० । झलां जशोऽन्ते)

(3) तक्ष् क्त–तष् त–

('क्ष्' संयोग है । इससे परे झल् तकार है । संयोगादि ककार का लोप हो गया)

तष् ट सु–तष्टः ।

(4) काष्ठ तक्ष् क्विप्–काष्ठतक्ष् सु–काष्ठतक्ष्–काष्ठतष्–

(पदान्त में संयोग है । आदि ककार का लोप हुआ)

काष्ठतड्,–तट् ।

विशेष—1. 'स्कोः' अर्थात् **सकार या ककार** का ही लोप होता है—

वृत् यङ्–वृत्–वृत् वृत्–वर्वर्त्ति

(यङ्लुक् । 'र्त्' संयोग है । इससे परे झल् तकार है । परन्तु संयोग के आदि में रेफ है । अतः लोप न हुआ)

2. 'संयोगाद्योः' अर्थात् **संयोग के आदि का** ही लोप होता है—

पयस् शक्–पयःशक्

(यहाँ ककार है परन्तु वह संयोग के आदि में नहीं है । अतः ककार का लोप न हुआ)

3. झल् में सङ् परे रहते उक्त लोप होता है । सङ् एक प्रत्याहार है । जिसके अन्तर्गत 'सन्' से लेकर 'महिङ्' पर्यन्त आते हैं । यथा—

काष्ठश कि स्थाता–काष्ठशक्स्थाता–(सप्तमी का लुक् । 'क्स्' की संयोग संज्ञा है । इससे परे झल् 'थ' है । ककार संयोग के आदि में है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा ककारलोप की प्राप्ति हुई । वार्तिक के द्वारा निषेध हो गया । कारण कि 'सङ्' परे नहीं है) ।

चोः कुः 8.2.30

पद.—चोः 6.1, कुः 1.1

अनु.—पदस्य झलि अन्ते ।

अर्थ—झल् परे रहते या पदान्त में चवर्ग के स्थान पर कवर्ग होता है ।

उदा.—(1) पच् तृच्–पच् तृ–पक् तृ सु–पक्ता ।
(झल् में कुत्व हुआ)
वच् तुमुन्–वक्तुम् ।
(पूर्ववत्)
भ्रस्ज् सन्–बि भ्र क्ष उ सु–
बिभ्रक्षुः (भट्टि० 5.57)

(2) सु युज् सु–सुयुज् स्–सु युज्–सुयुग्, क् ।
(पदान्त में कुत्व हुआ)
ओदन पच् सु–ओदनपच्–ओदनपक् ।
वाच् सु–वाच्–वाग्,–क् ।

हो ढः 8.2.31

पद.—हः 6.1, ढः 1.1

अनु.—अन्ते, पदस्य, झलि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—झल् परे रहते या पदान्त में हकार के स्थान पर ढकार होता है।

ढकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—(1) सह् तृच्-सद् तृ-सोद् तृ-
(सहिवहोरोद०)
सोद् ढृ-सोढृ सु-सोढा।
(ष्टुनाष्टुः। ढो ढे लोपः)
झल् परे रहते ढकार हुआ है।

(2) लिह् क्विप्-लिह् सु-लिह्-लिढ्-
(पदान्त में ढकार हुआ)
लिड्-लिड्,-ट्।
(झलां जशोऽन्ते। वाऽवसाने)
तुराषाह्-तुराषाढ्-तुराषाड्,-ट्।
वि ग्रह् सन्-वि ग्रह् स-
विग्रद् स-वि गृद् स-विघृद् स-
(हो ढः। सम्प्रसारण। एकाचो बशो०)
विघृक् स-वि जृघृक् स-वि जिघृक्ष-
(द्वित्व, अभ्यासकार्य, सन्यतः)
विजिघृक्ष उ सु-विजिघृक्षुः (भट्टि० 5.45)।

दादेर्धातोर्घः 8.2.32

पद.—दादेः 6.1, धातोः 6.1, घः 1.1

अनु.—पदस्य अन्ते झलि हः।

अर्थ—उपदेश में जो दकारादि धातु उसके हकार के स्थान पर घकार होता है, झल् परे रहते या पदान्त में।

घकार में अकार उच्चारणार्थ है। यह सूत्र 'हो ढः' की दृष्टि में असिद्ध है तदसि वचनसामर्थ्य से यह उसका अपवाद है।

उदा.—(1) दह् तृच्-दघ् तृ-दघ् धृ
(दह् उपदेश में दादि है झल् परे है)
दग् धृ-दग्धा।
(सु होकर)
दुह् तृ-दोग्धा।
(पूर्ववत्)

(2) गोदुह् सु-गोधुक्। कामधुक् (गीता० 10.28)
(सिद्धि पा० 8.2.37 पर देखें)

काष्ठदुह् सु-काष्ठधुक्। (सिद्धि पा० 8.2.37 पर देखें)

(3) दह् सन्-द धघ् स-दिधक्स-दिधक्ष णि शतृ जस्-दिधक्षयन्तः (भट्टि० 3.33) (धातु संज्ञा)

(4) भूत द्रुह् सु-भूतद्रुह्-भूत द्रुघ्-भूतध्रुघ्-भूतध्रुग्-भूतध्रुक् (भाग० 10.10.10)

दादेर्धातोर्घः। एकाचो बशो भष्०।

(5) इसी प्रकार—इष्टकामधुक् (गीता० 3.10)

(6) हविर्दुघाः (भाग० 10.4.40)

विशेष—1. 'दादेः' अर्थात् दकार है आदि में जिसके ऐसी धातु के हकार को घकार होता है—

लिह् तुमुन्-लिढ् तुम्-लिढ् दुम्-
(यह दकारादि धातु नहीं है। अतः घकार न हुआ)
लेढ् दुम्-लेढुम्।

2. भाष्यकार के व्याख्यान से उपदेश में ही 'दादि' का ग्रहण किया जाता है। यथा—

दुह् लङ्-अदोह् त्-अदोह्
(तिप्, अट्, शप् का लुक्, गुण, अपृक्त तकार का लोप)

'यदागमास्तद्गुणीभूता०' (प०) के द्वारा अट् 'दुह्' का ही अवयव है। अतः धातु अजादि बन गई। परन्तु उपदेश काल में 'दुह्' धातु दादि है। अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा हकार को घकार होकर 'अधोक्' बन गया।

इसी प्रकार—

'दामलिह्' शब्द में लिह्[1] धातु दकारादि है। अतः हकार को घकार प्राप्त होता है परन्तु लिह् धातु उपदेश में दकारादि नहीं है। अतः प्रकृतसूत्र प्रवृत्त नहीं होता है, तब 'हो ढः' से ढकार होकर—दामलिड्, -ट्।

वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् 8.2.33

पद.—वा-अव्य०, द्रुह ... ष्णिहाम् 6.3

अनु.—पदस्य अन्ते धातोः हः घः झलि।

अर्थ—झल् परे रहते या पदान्त में द्रुह्, मुह्, ष्णुह् तथा ष्णिह् धातुओं के हकार को विकल्प से घकार होता है।

'द्रुह्' में 'दादेर्धातोर्घः' से नित्य घत्व प्राप्त है। प्रकृतसूत्र के द्वारा विकल्प कहा गया है। मुह्, ष्णुह् तथा ष्णिह् में दादि न होने से घकार आदेश प्राप्त न था। प्रकृतसूत्र के द्वारा विकल्प कर दिया। अतः यह प्राप्तांप्राप्त विभाषा है।

उदा.—(1) द्रुह् तृ-द्रोह् तृ-द्रोघ् तृ-द्रोग्ध् धृ-

1. दाम लेढीति—दामलिट्। दामलिहम् आत्मान इच्छतीति—दामलिट्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पाक्षिक घत्व । झषस्तथो०)
द्रोग्धृ सु–द्रोग्धा ।
(झलां जश् झशि)
पक्ष में—द्रोह् तृ–द्रोढ् ढृ–द्रोढृ सु–
(हो ढः । ढो ढे लोपः)
द्रोढा ।

(2) द्रुह् सु–द्रुह् स्–द्रुह्–द्रुघ्
(पाक्षिक घकार हुआ)
ध्रुघ्–ध्रुग्–ध्रुग्, ध्रुक् ।
एकाचो बशो भष्० । झलां जशोऽन्ते ।
इसी प्रकार—मित्रध्रुक् (भाग० 10.78.5)।
पक्ष में (घकार अभाव)
द्रुढ्–ध्रुढ्–ध्रुड्–ध्रुड्,–ट् ।
(हो ढः । एकाचो बशो भष्०)

(3) मुह् सु–मुह्–मुघ्–मुग्,–क् ।
(पूर्ववत्)
घकार अभाव पक्ष–
मुह्–मुढ्–मुढ्,–ट् ।

(4) ष्णुह्–स्नुह्–स्नुघ्, स्नुग्, क्
(धात्वादेः षः सः । निमित्ताऽपाये०)
घकार अभाव पक्ष में—
स्नुह्–स्नुड्,–स्नुट् ।

(5) ष्णिह्–स्निह्–स्निघ्–स्निग्,–क् ।
(घकार अभाव पक्ष में)
स्निह्–स्निढ्–स्निढ्,–ट् ।

नहो धः 8.2.34

पद.—नहः 6.1, धः 1.1

अनु.—पदस्य अन्ते धातोः हः झलि ।

अर्थ—झल् परे रहते या पदान्त में नह् के हकार को धकार हो जाता है ।

उदा.—(1) नह् तुमुन्–नह् तुम्–नध् तुम्–नध् धुम्–
(झषस्तथो० । झलां जश् झशि)
नद्धुम् ।

(2) उप नह् क्विप्–उपनह्–उपानह्–
(सम्पदादिभ्यः क्विप्–वा० । नहिवृतिवृषि०)
उपानह् स्–उपानह्–उपानध्–उपानद्, उपानत् ।
सम् नह् मिप् (लट्)
सम् नध् स्य मि–सम् नत् स्य मि–
सं नत् स्य मि–सन्नत् स्य मि–
सन्नत्स्यामि (भट्टि० 16.29) ।
सम् नह् तिप् (लुङ्)–समनात्सीत् (भट्टि० 15.111)।

आहस्थः 8.2.35

पद.—आहः 6.1, थः 1.1

अनु.—धातोः हः झलि ।

अर्थ—झल् परे रहते 'आह्' धातु के हकार को थकार होता है ।

उदा.—आह् थ–आथ् थ–आत्थ ।

विशेष—वेद के विषय में 'ह्' तथा 'ग्रह्' धातुओं के हकार को भकार होता है[1]—

सम् ह् ति–सम् भृ शप् ति–सम्भरति (तै०सं० 5.1.5.5)
ग्रह् घञ्–ग्राह् अ–ग्राभः
द्र० उद्ग्राभम् (तै०सं० 1.1.13.1) ।

व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः 8.2.36

पद.—व्रश्चभ्रस्ज ... च्छशाम् 6.3, षः 1.1

अनु.—पदस्य धातोः झलि अन्ते ।

अर्थ—झल् परे रहते या पदान्त में व्रश्च, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज् तथा भ्राज् धातुओं को तथा छकारान्त और शकारान्त को षकार आदेश होता है ।

अलोऽन्त्य से षकार अन्त आदेश होता है ।

उदा.—(1) व्रश्च् तृच्–व्रश्च् तृ–व्रस् ष् (चकार को षकार हो गया । शकार को सकार मूलस्वरूप हो गया । स्कोः संयोगा० से सकार का लोप हो गया)–व्र ष् तृ–व्रष्टा (सु होकर) झल् परे रहते 'ष्' हुआ है ।

(2) मूलव्रश्च् सु–मूलव्रश्च्–मूलवृश्च्–मूलवृष्–मूलवृड्–मूलवृट् ।
(चकार को षकार, शकार मूलरूप में सकार हुआ । 'स्कोः संयोगाद्यो०' से सकार लोप)

(3) भ्रस्ज् तृच्–भ्रज् तृ–भ्रष् तृ–भ्रष्टा
(झल् परे रहते पूर्ववत्)

(4) घानाभ्रस्ज् सु–घाना भ्रस्ज्–घानाभ्रज्–घानाभ्रष्–घानाभृड्–घानाभृड्,–ट् ।

1. महा० 8.2.35 (वा०) ह्मग्रहोर्भश्छन्दसि हस्येति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग्रहिज्या० से सम्प्रसारण)

(5) स्रज् तृ-स्रष् तृ-स्रष्टा-स्रष्टा
(पूर्ववत्)

(6) विश्वस्रज् सु-विश्वस्रज्-विश्व सृज्-विश्व सृष्-विश्व सृड्,-ट्। सिसृक्षुः (भाग० 7.1.10)।

(7) मृज् तुमुन्-मार्ज् तुम्-मार्ष् तुम्-मार्ष्टुम्।
(पूर्ववत्)

(8) परिमृज् सु-परिमृड्,-ट्।
(पूर्ववत्)

(9) यज् तुमुन्-यष्टुम्। अयष्ट (भट्टि० 1.2)।

(10) उपयज् स्-उपयड्,-ट्।

(11) राज् सु-राड्,-ट्।
सम्राज् सु-सम्राड्,-ट्। सुरराट् (भाग० 10.74.51)।
इसी प्रकार—विराड्,-ट्।

(12) विभ्राज् सु-विभ्राड्,-ट।

(13) प्रच्छ् तुमुन्-प्रष् तुम्-प्रष्टुम्।
(झल् परे रहते)

(14) शब्द प्रच्छ्-शब्द प्राच्छ् सु-शब्द प्राच्छ्-

(क्विब्वचिप्रच्छ्यायतो० पा० 3.2.76 (वा०) के द्वारा क्विप्, दीर्घ, सम्प्रसारण का अभाव)।

शब्द प्राष्-शब्दप्राड्,-ट्।

(15) लिश् तुमुन्-लेष्टुम्।
(पूर्ववत्)

(16) विश् तुमुन्-वेष्टुम्।

(17) दंश् झि (लुङ्)-
अदाङ्क्षुः (भट्टि० 15.4)
(सिच्, अट् आदि)

(18) लग्नेश् सु-लग्नेश्-लग्नेष्-लग्नेड्-लग्नेट् (मु० चि० 6. 86)

(19) असुरद्विष् स्-असुरद्विड् (भाग० 10.4.42)

(20) कृष्णद्विष् स्-कृष्णद्विड् (भाग० 10.52.25)

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः
8.2.37

पद.—एकाचः 6.1, बशः 6.1, भष् 1.1, झषन्तस्य 6.1, स्ध्वोः 7.2

अनु.—पदस्य अन्ते धातोः झलि।

अर्थ—सकार अथवा 'ध्व' परे रहते अथवा पदान्त में धातु का अवयव जो झषन्त एकाच्, उसके बश् को भष् होता है।

झष् प्रत्याहार में पाँच वर्ण (झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्) हैं।
बश् प्रत्याहार में चार वर्ण (ब्, ग्, ड्, द्) होते है।
भष् प्रत्याहार में चार वर्ण (भ्, घ्, ढ्, ध्) होते हैं।

'धातोः' पद तथा 'एकाचः झषन्तस्य' पदों में सामानाधिकरण्य नहीं हैं। इनमें अवयवाऽवयविसम्बन्ध है। अतः सूत्रार्थ है—

धातु का अवयव जो एकाच् व झषन्त, उसके बश् को भष् होता है, 'स्' तथा 'ध्व' परे रहते।

यदि इन पदों में समानाधिकरण मान लिया जाये तो सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है—

एकाच् वाले झषन्त धातु के बश् को भष् होता है, 'स्' तथा 'ध्व' परे रहते। इस अर्थ में निम्नलिखित दोष है—

गर्दभ णिच् क्विप्-गर्दभ्-
(तत्करोति तदाचष्टे-ग०सू०। धातुसंज्ञा)

चूँकि धातु एकाच् नहीं है। अतः इसके बश् को भष् नहीं होता है, जो अनिष्ट है। यदि अवयवाऽवयविसम्बन्ध मानकर अर्थ करते हैं तो भष् भाव होकर 'गर्धप्' शब्द बन जाता है।

उदा.—(1) बुध् ल्रट्-बुध् त-बुध् स्य त-भुध् स्य त-भुत् स्य त-भोत्स्यते।
(भष्भाव, खरि च, गुण)

(2) बुध् ध्वम्-अ बुध् ध्वम्-अभुध् ध्वम्-अभुद्ध्वम्।
('ध्व' परे रहते भष्भाव हुआ)

(3) अर्थ बुध् सु-अर्थ बुध्-अर्थभुध्-अर्थभुद्,-त्।

(4) गुह्-गुह् स्य ते-गुढ् स्य ते-घुढ् स्यते-घुक् स्यते-घुक्ष्यते
(हो ढः। षढोः कः सि)

(5) गुह्-गुह् ध्वम्-गुढ् ध्वम्-घुढ् ढ्वम्-घुढ्वम्-अघूढ्वम्।
(ढो ढे लोपः। ढ्रलोपे पूर्वस्य०)

(6) पर्णदुह् सु-पर्ण दुह्-पर्ण धुह्-पर्णधुढ्-पर्णधुड्,-ट।

(7) दुह् स्य त-धोक्ष्यते।
(भष् भाव, घकार, चर्त्व)

(8) दुह् ध्वम्-धुह् ध्वम्-धुघ् ध्वम्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधुघ् ध्वम्–अधुग्ध्वम् ।

(9) गोदुह् सु–गोदुह् स्–गोदुह्–गोदुघ् गोधुघ्–गोधुक्–ग्।

(10) गृध् यङ्–गृ गृ ध्–
(यङ्, यङ्लुक्, द्वित्व)
जृगृध्–जर् गृध्–जगृध्–जर् गृध्–जर्गृध् सिप्–जर्गृध् शप् सि–
(उरत् । रुग्रिकौ च लुकि । लङ् । सिप् । शप्)
अजर्गर्ध् स्–
(पुगन्तलघूप० । चर्करीतञ्च)
अ जर्गर्ध्–
(हल्ङ्याब्भ्यो० । एकाचो बशो०)
अजर्घर्द्–अजर्घर् रु–
(झलां जशोऽन्ते । दश्च)
अजर्घर्–अजर्घार्–अजर्घाः ।
(रोरि । ढ्रलोपे पूर्वस्य० । खरवसानयो०)

विशेष—1. 'एकाचः' अर्थात् **एक अच् वाले** के अवयव बश् को भष् होता है—

दामलिहम् आत्मन इच्छति–दामलिह्य (क्यच् हुआ । धातु संज्ञा । अप्रत्यय क्विप् । सर्वापहार लोप) अलोप । यलोप ।

दामलिह्य्–दामलिह्–
दामलिह् सु–दामलिह्–दामलिढ्–दामलिड्,–ट्

यह धातु अनेकाच् होने से भष् भाव न हुआ ।

2. 'बशः' अर्थात् **बश् को** ही 'भष्' होता है—

क्रुध् ल्रट्–क्रुध् स्य ति–

इस दशा में 'क्रुध्' धातु का अवयव एकाच् झषन्त 'क्रुध्' है । इसमें बश् उपलब्ध नहीं है । अतः **स परे** रहते भष् न हुआ । 'खरि च' से चर्त्व हुआ—

क्रुत् स्य ति–क्रोत्स्यति ।

3. 'झषन्तस्य' अर्थात् धातु का अवयव जो **झषन्त** उसके बश् को भष् होता है—

दास्यति–

'दा' धातु का एकाच् अवयव 'दा' है । 'स' परे है । इसके बश् 'द्' को भष् न हुआ । कारण कि, अवयव 'दा' झषन्त नहीं है ।

4. 'ष्ध्वोः' अर्थात् **सकार अथवा 'ध्व'** परे रहते ही बश् को भष् होता है—

बुध् तुमुन्–बोद्धुम्

'बुध्' धातु का एकाच् व झषन्त अवयव 'बुध्' है । इससे परे न तो 'स्' है तथा न ही 'ध्व' है । अतः इसके बश् (ब्) को भष् (भ्) न हुआ ।

धक्ष्यति (भट्टि० 16.17)
दह् स्य ति ।

दधस्तथोश्च 8.2.38

पद.—दधः 6.1, तथोः 7.2, च–अव्य० ।

अनु.—धातोः झषन्तस्य बशः भष् झलि स्ध्वोः ।

अर्थ—दध जो झषन्त धातु उसके बश् के स्थान पर भष् होता है तकार, थकार, झलादि सकार व ध्वम् परे रहते ।

सूत्र में डुधाञ् धातु का द्विर्वचन करके 'दध' इस प्रकार निर्देश है ।

उदा.—(1) धा–धा धा–ध धा–दधा–दध्
(द्वित्व, जश्त्व, श्नाभ्यस्तयो० से आलोप)
'दध्' झषन्त है—
दध् तस्–ध ध् तस्–धत् तस्–धत्तः
(भष्भाव)

(2) दध् थास्–दध् से–धध् से–धत्से ।

(3) दध् थास्–दध् से–दध् स्व–ध ध् स्व–धत्स्व । इसी प्रकार—अन्तर्धत्स्व (भट्टि० 5.32) ।

(4) दध् ध्वम्–धध् ध्वम्–धद्ध्वम् ।

विशेष—1. 'झषन्तस्य' का अधिकार होने से झषन्त धा धातु के बश् को भष् होता है—

दधाति–तकार परे है, 'दधा' यह द्वित्व रूप भी है परन्तु झषन्त नहीं है । अतः भष्भाव न हुआ ।

2. 'तथोश्च' अर्थात् **तकार, थकार, सकार** व **ध्व** परे रहते ही भष्भाव होता है—

दध्यात्–यहाँ 'धा' धातु को द्वित्व हुआ है ।

वह झषन्त (दध्) भी है । उससे पर न तकार, न थकार, न सकार तथा न ही 'ध्व' है । अतः भष्भाव न हुआ ।

झलां जशोऽन्ते 8.2.39

पद.—झलाम् 6.3, जशः 1.3, अन्ते 7.1

अनु.—पदस्य ।

अर्थ—पद के अन्त में झल् के स्थान पर जश् होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झल् प्रत्याहार में वर्गों के चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्ण तथा ऊष्म वर्ण होते हैं। जश् प्रत्याहार में वर्गों के तृतीय अक्षर हैं। यहाँ स्थानेऽन्तरतमः के द्वारा आदेश होता है निम्न-लिखित तालिका से यह स्पष्ट हो जायेगा—

स्थानी (झल्)	आदेश (जश्)
झ् ज् छ् च् श्	ज्
भ् ब् फ् प्	ब्
घ् ग् ख् क् ह्	ग्
ढ् ड् ठ् ट् ष्	ड्
ध् द् थ् त् स्	द्

उदा.—(1) अच् अन्तः-अजन्तः।

(2) सुप् अन्तः-सुबन्तः।
त्रिष्टुप् अत्र-त्रिष्टुबत्र।

(3) वाच्-वाक् ईशः-वागीशः।

(4) सम्राट् इच्छति-सम्राड् इच्छति।
षष् आगच्छन्ति-षड् आगच्छन्ति।
त्विष् भ्याम्-त्विड्भ्याम्।
श्वलिट् अत्र-श्वलिडत्र।

(5) जगत् ईशः-जगदीशः।

विशेष—1. 'खरि च' (पा० 8.4.54) तथा 'स्तोः श्चुना श्चुः (पा० 8.4.40) सूत्र प्रकृतसूत्र की दृष्टि में असिद्ध हैं। अतः इनके युगपत् प्राप्त होने पर प्रथम चर्त्व (अथवा श्चुत्व) कर लेना चाहिए। पश्चात् जश्त्व करें।

2. 'हो ढः' सूत्र प्रकृतसूत्र का अपवाद है। अतः हकार को जश्त्व न होकर ढकार होता है।

झषस्तथोर्द्धोऽधः 8.2.40

पद.—झषः 5.1, तथोः 6.2, धः 1.1, अधः 5.1

अर्थ—झष् से उत्तर तकार व थकार के स्थान पर धकार आदेश होता है परन्तु डुधाञ् धातु से उत्तर नहीं होता है।

झष् एक प्रत्याहार है।

उदा.—(1) लभ् तुमुन्-लभ् धुम्-लब्धुम्।
(झलां जश् झशि)

(2) दुह् तुमुन्-दुघ् तुम्-दुघ् धुम्-दोघ् धुम्-दोग्धुम्।

(3) लिह् तुम्-लिढ् तुम्-लिढ् तुम्-लेढ् ढुम्-लेढुम्।

(4) बुध् तुमुन्-बुध् धुम्-बोध् धुम्-बोद्धुम्।

(5) आ रभ् थास्-आरभ् धास्-आरब्धाः (भट्टि० 5.38) (झलो झलि)

विशेष—'अधः' अर्थात् 'धा' से उत्तर धकार नहीं होता है—

धा तस्-धधा तस्-ध ध् तस्-ध त् त स्-धत्तः।

यहाँ धकार न हुआ।

षढोः कः सि 8.2.41

पद.—षढोः 6.2, कः 1.1, सि 7.1

अर्थ—सकार परे रहते षकार व ढकार के स्थान पर 'क' आदेश होता है।

उदा.—(1) पिष् ति-पिष् स्य ति-पिक् स्यति-(लृट्, स्य, ककार)
पेक्ष्यति।
पिष् लृङ्-अपेक्ष्यत्।
पिष् सन्-पिपिष् स-पिपिक् स-पिपिक्षति।

(2) लिह् लृट्-लिह् स्य ति-लिढ् स्यति-लिक् स्यति-लेक्ष्यति।
लिह् लृङ्-अलेक्ष्यत्।
लिह् सन्-लिलिक्षति।

इसी प्रकार—अदाड्क्षुः-दंश् लुङ्-दंश् झि-अदङ् क् स् उस् (भट्टि० 15.4)

(पूर्ववत्)। सिसृक्षुः (भाग० 7.1.10)।

विशेष—'सि' अर्थात् सकार परे रहते ही ककार होता है—

पिष् ति (लट्)-पि श्नम् ष् ति-
पि नष् टि-पिनष्टि

षकार से परे सकार नहीं है। अतः ककार न हुआ।

लिह् ति-लिढ् ति-लिढ् ढि-लेढ् ढि-लेढि

परे सकार न होने से ढकार को ककार न हुआ।

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः 8.2.42

पद.—रदाभ्याम् 5.2, निष्ठातः 6.1, नः 1.1, पूर्वस्य 6.1, च-अव्य०, दः 6.1

अर्थ—रेफ या दकार से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है तथा (निष्ठा से) पूर्व (धातु) के दकार को भी नकार होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—(1) शृ क्त–शृ त–

(आर्धधातुक इट् का 'श्र्युकः किति' से निषेध आर्धधातुक गुण का 'क्ङिति च' से निषेध) शिर् त–शीर् त–शीर् न–

(ऋत इद् धातोः । हलि च)

शीर्ण सु–शीर्णः ।

जॄ–जीर्णः । तॄ–तीर्णः । स्तॄ–स्तीर्णः । गॄ–गीर्णः । गुर्–गूर्णः ।

(2) भिद् क्त–भिद् न–भिन् न–भिन्नः । (भट्टि० 4.42)।

छिद्	–	छिन्नः ।
स्विद्	–	स्विन्नः ।
खिद्	–	खिन्नः ।
मिद्	–	मिन्नः ।
क्षुद्	–	क्षुण्णः ।
उद्पद्	–	उत्पन्नः ।
प्र सद्	–	प्रसन्नः ।
अभि अर्द्	–	अभ्यर्णः (भट्टि० 2.22)।
क्षुद्	–	क्षुन्नः (भट्टि० 4.42)।
विपद्	–	विपन्नः (भट्टि० 4.42)।

विशेष—1. 'रदाभ्याम्' अर्थात् **रेफ या दकार** से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है—

कृतः—

यहाँ निष्ठा न तो रेफ से उत्तर है और न ही दकार से उत्तर। अतः नत्व न हुआ ।

2. 'निष्ठातः' अर्थात् **निष्ठा के तकार** को ही नकार होता है—

कृ तृच्–कर् तृ–कर्त्ता (सु) ।

यहाँ रेफ से उत्तर तकार को नकार न हुआ । कारण कि वह निष्ठा का तकार नहीं है।

3. 'तः' अर्थात् **तकार के** स्थान पर ही नकार होता है—

चर् क्त–चर् इ त–चरितम्

यहाँ रेफ से उत्तर निष्ठा है परन्तु उसका तकार इकार से व्यवहित है । अतः नकार न हुआ ।

संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8.2.43

पद.—संयोगादेः 5.1, आतः 5.1, धातोः 5.1, यण्वतः 5.1

अनु.—निष्ठातः नः ।

अर्थ—संयोग है आदि में जिसके ऐसी आकारान्त यण्वान् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है ।

यण्वान् का अर्थ है—यण् वाला धातु ।

उदा.—(1) द्रा क्त–

('द्रा' के आदि में संयोग है । रेफवान् होने से यह धातु यण् वाला है । आकारान्त है)

द्रा न–द्रा ण सु–द्राणः ।

(2) ग्लै क्त–ग्ला त–

(प्रत्यय की विवक्षामात्र में 'आदेच उपदेशऽशिति' से आकार हुआ । पूर्ववत् नकार)

ग्ला न–ग्लानः ।

(3) म्लै–म्लानः ।

(4) आप्यै क्त–आप्यान० (भट्टि० 5.56) ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. संयोगादेः अर्थात् **संयोग है आदि में** जिसके, ऐसी धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है—

या क्त–यात सु–यातः ।

'या' यण् वाला धातु है । आकारान्त है परन्तु इसके आदि में संयोग नहीं है । अतः तकार को नकार न हुआ ।

2. 'आतः' अर्थात् **आकारान्त** धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है—

च्यु क्त–च्युतः ।

'च्यु' यण् वाला धातु है । इसके आदि में संयोग भी है परन्तु यह आकारान्त नहीं है । अतः नकार न हुआ ।

3. 'यण्वतः' अर्थात् **यण् वाले धातु** से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है—

स्ना क्त–स्नातः

'स्ना' आकारान्त है । इसके आदि में संयोग है परन्तु यह यण् वाला धातु नहीं है । अत; तकार को नकार न हुआ ।

4. 'धातोः' अर्थात् **धातु** से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है—

निर् या क्त–निर्यातः ।

'या' आकारान्त धातु है तथा यण् वाला भी है । इसके आदि में संयोग है परन्तु वह धातु का नहीं है अपितु उपसर्ग सहित धातु का संयोग है । अतः नकार न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार 'निर्वातः' में जानना चाहिए।

ल्वादिभ्यः 8.2.44

पद.—ल्वादिभ्यः 5.3

अनु.—निष्ठातः नः।

अर्थ—लू आदि धातुओं से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है।

'लूञ् छेदने' से लेकर 'वृञ् वरणे' तक सभी धातु ल्वादि के द्वारा गृहीत हैं।

उदा.—(1) लू क्त–लून–लूनः

(2) ज्या क्त–जि त–जीत–जीनः
(ग्रहिज्या० । हलः । सु)

(3) धू क्त–धूनः।

विशेष—1. ऋकारान्त और ल्वादि धातुओं से परे क्तिन् प्रत्यय निष्ठा के समान होता है[1]— अर्थात् इसके तकार को नकार होता है। यथा—

कृ क्तिन्–किर् ति–कीर् ति–कीर्णिः।
(रदाभ्यां निष्ठातो०)
गृ क्तिन्–गीर्णिः।
(पूर्ववत्)
शृ क्तिन्–शीर्णिः
(पूर्ववत्)
लू क्तिन्–लूनिः।
(ल्वादिभ्यः)
पू क्तिन्–पूनिः।
(ल्वादिभ्यः)
धू क्तिन्–धूनिः।
(ल्वादिभ्यः)

2. दु और गु धातुओं से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार और धातुओं को दीर्घ होता है[2]—

आ दु क्त–आ दू न सु–आदूनः।
वि गु क्त–वि गू न सु–विगूनः।

3. विनाश अर्थ में पूञ् से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है[3]—

पू क्त–पून–पू न जस्–पूनाः (=नष्ट)

विनाश से भिन्न अर्थ में 'पूतः' बनता है।

4. ग्रास जिसका कर्म कर्त्ता है ऐसे षिञ् बन्धने धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है[4]—

षि–सि क्त–सिनः ग्रासः स्वयम् एव।

ओदितश्च 8.2.45

पद.—ओदितः 5.1, च–अव्य०।

अनु.—निष्ठातः नः।

अर्थ—ओकार है इत् जिसका ऐसे धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है।

उदा.—(1) भुजो–भुज् क्त–भुज् न–भुग् न सु–भुग्नः। सम् भुज् क्त–सम्भुग्नः (भट्टि० 4.42)।

(2) ओलस्जी–लस्ज् क्त–लस्ज् न–लज् न–लग्न सु–लग्नः।

(3) ओविजी–विज् क्त–विज्न–विग्नः।

(4) ओप्यायी–प्या क्त–प्यान–पीनः
(प्यायः पी)

(5) टु ओश्वि–श्वि क्त–श्वि न–शून–
(श्वीदितो निष्ठायाम्। वचिस्वपि०)
उद् शून सु–उच्छूनः
(स्तोः श्चुना श्चुः। खरि च। शश्छोऽटि)

(6) ओ हा–हा क्त–हीनः।
(घुमास्था०)

(7) ओव्रश्चू–व्रश्च् क्त–व्रश्च् न–
व्राच् न–वृच् न–वृक् न–
('स्कोः संयोगा० । ग्रहिज्या० । चोः कुः)
वृक्णः (भट्टि० 4.42)।

क्षियो दीर्घात् 8.2.46

पद.—क्षियः 5.1, दीर्घात् 5.1

अनु.—निष्ठातः नः।

अर्थ—दीर्घ 'क्षि' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है।

उदा.—क्षि क्त–क्षी न–क्षीणः।

---

1. महा० 8.2.44 (वा०) ऋकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद् भवतीति वक्तव्यम्।
2. महा० 8.2.44 (वा०) दुग्वोर्दीर्घश्चेति वक्तव्यम्।
3. महा० 8.2.44 (वा०) पूञो विनाश इति वक्तव्यम्।
4. महा० 8.2.44 (वा०) सिनोतेर्ग्रास कर्मकर्तृकस्येति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निष्ठायाम०)
क्षीणो जाल्मः ।
(वाऽक्रोशदै०)

विशेष—'दीर्घात्' अर्थात् दीर्घ क्षि से उत्तर निष्ठा को ही नकार होता है—

अक्षितम् यहाँ तकार को नकार न हुआ ।

श्योऽस्पर्शे 8.2.47

पद.—श्यः 5.1, अस्पर्शे 7.1

अनु.—निष्ठातः नः ।

अर्थ—स्पर्श अर्थ को छोड़कर अन्यत्र 'श्यै' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है ।

श्यै क्त-शीनम् ।
(द्रवमूर्तिस्पर्श० । हलः)

विशेष—'अस्पर्शे' अर्थात् स्पर्श अर्थ में उक्त नकार आदेश नहीं होता है—

शीतं वर्तते ।

यहाँ नकार न हुआ ।

अञ्चोऽनपादाने 8.2.48

पद.—अञ्चः 5.1, अनपादाने 7.1

अनु.—निष्ठातः नः ।

अर्थ—यदि अञ्चु के विषय में अपादान कारक का प्रयोग न हो रहा हो तो अञ्च् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है ।

उदा.—सम् अञ्च् क्त-सम् अच् त-समच् न-(अनिदितां हल० । यस्य विभाषा)

समक् न औ-समक्नौ पादौ शकुनेः ।

इसी प्रकार—न्यक्नाः पशवः ।

विशेष—'अनपादाने' अर्थात् अपादान कारक का प्रयोग न हो रहा हो तो निष्ठा के तकार को नकार होता है—

उदक्तम् उदकं कूपात्

यहाँ अपादान का प्रयोग है । अतः नकार न हुआ ।

दिवोऽविजिगीषायाम् 8.2.49

पद.—दिवः 5.1, अविजिगीषायाम् 7.1

अनु.—निष्ठातः नः ।

अर्थ—अविजिगीषा अर्थ में दिव् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है ।

उदा.—आ दिव् क्त-आ दि ऊठ् त-
('च्छ्वोः शूड०)
आ द्यू न सु-आद्यूनः ।

इसी प्रकार—परिद्यूनः ।

विशेष—'अविजिगीषायाम्' अर्थात् विजिगीषा अर्थ को छोड़कर निष्ठा के तकार को नकार होता है—

द्यूतं वर्तते यहाँ विजिगीषा अर्थ है । अतः नकार नहीं हुआ ।

निर्वाणोऽवाते 8.2.50

पद.—निर्वाणः 1.1, अवाते 7.1

अनु.—निष्ठातः नः ।

अर्थ—'वात' अर्थ न हो तो निर्वाण शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—निस् वा क्त-निर् वा न-निर्वाणः ।

विशेष—'अवाते' अर्थात् वात अर्थ हो तो तकार को नकार होता है—

निर्वातो वातः ।

यहाँ नकार न हुआ ।

शुषः कः 8.2.51

पद.—शुषः 5.1, कः 1.1

अनु.—निष्ठातः ।

अर्थ—शुष् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को ककार होता है ।

ककार में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—शुष् क्त-शुष् क सु-शुष्कः ।

पचो वः 8.2.52

पद.—पचः 5.1, वः 1.1

अनु.—निष्ठातः ।

अर्थ—पच् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को वकार होता है ।

उदा.—पच् क्त-पच् व-पक् व सु-
पक्वः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चोः कुः)।

क्षायो मः 8.2.53

पद.—क्षायः 5.1, मः 1.1

अनु.—निष्ठातः।

अर्थ—क्षै धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को मकार होता है।

उदा.—क्षै–क्षा क्त–क्षाम सु–क्षामः (भट्टि० 6.60)
(आदेच उपदेशेऽशिति)।

प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् 8.2.54

पद.—प्रस्त्यः 5.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—निष्ठातः मः।

अर्थ—प्र उपसर्गपूर्वक स्त्यै धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को मकार विकल्प से होता है।

प्र स्त्यै क्त–प्र स्ती म–
(आदेच उपदेशे०। स्त्यः प्रपूर्वस्य)
प्रस्तीम सु–प्रस्तीमः।

पक्ष में—प्रस्तीतः।

अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः 8.2.55

पद.—अनुपसर्गात् 5.1, फुल्ल ... ल्लाघाः 1.3

अनु.—निष्ठातः।

अर्थ—अनुपसर्ग से उत्तर फुल्ल, क्षीब, कृश तथा उल्लाघ शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) ञिफला–फल् क्त–फल् ल–फुल् ल–(ति च)
फुल्ल सु–फुल्लः।
('आदितश्च' से इट् आगम का अभाव)

(2) क्षीब् क्त–क्षीब् त–क्षीब् अ–क्षीबः।

(तकार का लोप। तकार लोप के असिद्ध होने से आर्धधातुक इट् की प्राप्ति हुई। निपातन से इट् का निषेध)

(3) कृश् क्त–कृश् त–कृश् अ–कृशः।
(पूर्ववत्)

(4) उद् लाघ् क्त–उद् लाघ् त–उद् लाघ् अ–उल्लाघ सु–उल्लाघः।
(तोर्लि)।

विशेष—'अनुपसर्गात्' अर्थात् **उपसर्ग से उत्तर** होने पर फुल्ल आदि शब्द नहीं होते हैं—

प्र फल् क्त–प्रफुल्तः।
प्र क्षीब् क्त–प्रक्षीबितः।
प्र कृश् क्त–प्रकृशितः।
प्र उद् लाघ्–क्त–प्रोल्लाघितः।

उत्फुल्ल तथा सम्फुल्ल शब्दों का भी निपातन होता है[1]—

उत्फुल्लः। सम्फुल्लः।

नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् 8.2.56

पद.—नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यः 5.3, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—निष्ठातः नः।

अर्थ—नुद्, विद्, उन्द्, त्रै, घ्रा तथा ह्री–इन धातुओं से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार विकल्प से होता है।

उदा.—(1) नुद् क्त–नुद् न–नुन्न सु–नुन्नः।
पक्ष में—नुद् क्त–नुत् त–नुत्तः।

(2) विद् क्त–विद् न–विन्नः।
पक्ष में—विद् त–वित्तः।

(3) उन्द् क्त–उन्द् त–उद् त–उन्नः
(अनिदितां हल—)
पक्ष में—सम् उन्द् त–समुत्तः।
(अनिदितां हल—)

(4) त्रै क्त–त्रात–त्रान–त्राणः
(आदेच उपदेशे०)
पक्ष में—त्रै त–त्रातः।
(आदेच उपदेशे०)

(5) घ्रा क्त–घ्रा न–घ्राणः।
(संयोगादेरातो०)
पक्ष में—घ्रा त–घ्रातः।

(6) ह्री क्त–ह्रीन–ह्रीणः।
पक्ष में—ह्रीतः।
यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् 8.2.57

पद.—न–अव्य०, ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् 6.3

1 महा० 8.2.55 (वा०) उत्फुल्लसम्फुल्लयोरिति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—निष्ठातः नः ।

अर्थ—ध्यै, ख्या, पॄ, मुर्च्छ् तथा मद् धातुओं के निष्ठा के तकार को नकार नहीं होता है । 'ख्या' के द्वारा ख्या मूल धातु तथा आदिष्ट 'ख्या' धातु (चक्षिङः ख्याञ्)-दोनों का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) ध्यै क्त-ध्या त-ध्यात सु-ध्यातः ।
(आदेच उपदेशे० । संयोगादेरातो०) ।

(2) ख्या क्त-ख्यातः ।
(पूर्ववत्) ।

(3) पॄ-पुर् त-पूर् त-पूर्तः ।
(उदोष्ठ्य० । श्र्युकः किति । हलि च, रदाभ्यां०) ।

(4) मुर्च्छ् त-मुर् त-मूर्तः ।
('राल्लोपः' से छकार का लोप । चकार की निवृत्ति । रदाभ्यां निष्ठातो० । निषेध । 'आदितश्च' से इट् आगम का प्रतिषेध) ।

(5) मद् क्त-मत्तः ।
(श्वीदितो निष्ठा० । रदाभ्यां निष्ठातो०) ।
इसी प्रकार 'क्तवतु' में जानना चाहिए

वित्तो भोगप्रत्यययोः 8.2.58

पद.—वित्तः 1.1, भोगप्रत्यययोः 7.2

अनु.—निष्ठातः नः न ।

अर्थ—भोग तथा प्रतीति अर्थों में 'वित्त' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—विद् क्त-
('रदाभ्यां निष्ठातो'० से नत्व प्राप्त था । निपातन से नत्व का अभाव) ।
वि त् त-वित्तः ।
वित्तम् अस्य बहु = इसके पास अत्यधिक धन है ।
वित्तोऽयं मनुष्यः = यह मनुष्य ज्ञात है । **भोग** और **प्रतीति** अर्थ न होने पर 'वित्र' बनता है ।

भित्तं शकलम् 8.2.59

पद.—भित्तम् 1.1, शकलम् 1.1

अनु.—निष्ठातो नः न ।

अर्थ—'खण्ड' अर्थ में 'भित्तम्' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—भिद् क्त-भित् त-भित्तम् (= टुकड़ा)
(नत्व का अभाव) ।

ऋणमाधमर्ण्ये 8.2.60

पद.—ऋणम् 1.1, आधमर्ण्ये 7.1

अनु.—निष्ठातः नः ।

अर्थ—आधमर्ण्य अर्थ में 'ऋण' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—ऋक्त-ऋ न-ऋण सु-ऋणम् ।
(नत्व का निपातन । ऋवर्णान्नस्य णत्वं०)
आधमर्ण्य अर्थ न होने पर नत्व नहीं होता है—
ऋतं (=सत्यं) वक्ष्यामि-
यहाँ आधमर्ण्य अर्थ नहीं है । अतः नत्व न हुआ ।

नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि छन्दसि 8.2.61

पद.—नसत्तनिषत्त ... गूर्त्तानि 1.3, छन्दसि 7.1

अनु.—निष्ठातः नः न ।

अर्थ—वेद के विषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त तथा गूर्त शब्दों का निपातन किया जाता है ।

उदा.—(1) नञ् सद् क्त-न सद् त-न सत्त सु-नसत्तम् ।
(धात्वादेः षः सः । नत्व का अभाव)

(2) नि सद् क्त-नि सत्त सु-निसत्तः-निषत्तः
(ऋ० 1.58.3, 146.1, अथ० 18.1.46) ।
(नत्व का अभाव । सदिरप्रतेः—) ।

(3) नञ् उन्द् त-अन् उद् त-अनुत्त सु-अनुत्तः (ऋ० 1.80.7) ।
द्र० अनुत्तमा ते मघवन् (ऋ० 1.165.9)
(नत्व का अभाव, अनुनासिक लोप) ।

(4) प्र त्विरा (अथवा तुर्व्)-प्र त्वर् क्त-प्र त् ऊठ् र् त-प्रतूर्त-प्रतूर्त्तम् (यजु० 11.12, तै० 4.1.2.1) ।
(ज्वरत्वर० । नत्व का अभाव)
प्र तूर्व् क्त-प्र तू र् त-प्रतूर्तम् ।
(राल्लोपः । हलि च) ।

(5) सॄ क्त-सुर् त-सूर्त्तः
(निपातन से उत्व तथा नत्व का अभाव) ।

(6) गुर् क्त-गुर् त-गूर्त्त (ऋ० 1.173.2) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्विन् प्रत्ययस्य कुः 8.2.62

पद.—क्विन्प्रत्ययस्य 6.1, कुः 1.1

अनु.—पदस्य ।

अर्थ—क्विन् प्रत्यय हुआ है जिस धातु से, उसको पदान्त में कवर्ग आदेश होता है।

'क्विन् प्रत्ययस्य' पद में बहुव्रीहि समास है । इसका अर्थ है—क्विन् प्रत्यय हुआ है जिससे ।

इसका तात्पर्य है कि यदि कहीं क्विन् प्रत्यय हो चुका हो तो क्विन् से अतिरिक्त प्रत्ययान्त शब्द को भी कवर्ग अन्तादेश हो जाता है ।

उदा.—(1) घृत स्पृश् क्विन्-घृतस्पृश्-घृतस्पृश् सु-घृतस्पृश्-

(सर्वापहार लोप)

घृतस्पृग्,-क् ।

(2) क्रुञ्च् भ्याम्-क्रुन् भ्याम्-

(संयोगान्तस्य लोपः)

क्रुङ् भ्याम् ।

(क्विन्प्रत्ययस्य कुः)

इसी प्रकार—क्रुङ्भिः (भट्टि० 6.73) ।

नशेर्वा 8.2.63

पद.—नशेः 6.1, वा-अव्य० ।

अनु.—पदस्य कुः अन्ते ।

अर्थ—पदान्त में नश् शब्द को कवर्ग अन्तादेश विकल्प से होता है ।

उदा.—नश् क्विप्-नश्-नश् सु-नश् स्-नश्-नष्-नड्-नड्, नट् ।

('नशेर्वा' पा० 8.2.63 के असिद्ध होने से 'व्रश्चभ्रस्ज०' पा० 8.2.36 से षकार, 'झलां जशोऽन्ते' से डकार तथा 'वाऽवसाने' से चर्त्व होकर) ।

पक्ष में (कवर्ग आदेश)—नश्-नग्-नग्, नक्

इस प्रकार चार रूप बनते हैं ।

मो नो धातोः 8.2.64

पद.—मः 6.1, नः 1.1, धातोः 6.1

अनु.—पदस्य अन्ते ।

अर्थ—पदान्त में धातु के मकार को नकार होता है । नकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—प्रशम् क्विप्-प्रशम्-प्रशाम् सु-

सर्वापहार लोप । अनुनासिकस्य क्विझलो० से उपधा दीर्घ । एकदेशविकृतमनन्यवत् (प०) से 'शाम्' को 'शम्' धातु माना गया)

प्रशाम्-प्रशान् ।

प्रकृतसूत्र 'न लोपः प्रातिप०' (पा० 8.2.7) की दृष्टि में असिद्ध है । अतः नकार लोप नहीं होता है ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'मः' अर्थात् **मकार के** स्थान पर नकार होता है—

भिद् सु-भिद् ।

यहाँ मकार नहीं था । अतः नकार न हुआ ।

2. 'धातोः' अर्थात् **धातु** के मकार को नकार होता है—

इदम्-

पदान्त में मकार है परन्तु धातु का नहीं है । अतः नकार न हुआ ।

इसी प्रकार 'किम्' में नहीं होता है ।

म्वोश्च 8.2.65

पद.—म्वोः 7.2, च-अव्य० ।

अनु.—मो नः धातोः ।

अर्थ—मकार या वकार परे रहते मकारान्त धातु के मकार को नकार आदेश होता है ।

उदा.—गम् क्वसु-जगम् वस्

(छन्दसि लिट् । क्वसुश्च । आर्धधातुक इट् का 'नेड्वशि कृति' से निषेध । क्रादि नियम से इट् । 'वस्वेकाजाद्घसाम्' से इट् निषेध । 'विभाषा गमहनविद०' से पाक्षिक इट् । इट् अभाव पक्ष में)

जगन्वस् सु-जगन्वान् ।

ससजुषो रुः 8.2.66

पद.—ससजुषोः 6.2, रुः 1.1

अनु.—पदस्य ।

अर्थ—पदान्त सकार तथा सजुष् शब्द के षकार के स्थान पर 'रु' आदेश होता है ।

सकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा यह आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

'रु' के उकार की इत्संज्ञा है।

उदा.—(1) हरिस् अत्र–हरिरु अत्र–हरिर् अत्र–हरिरत्र।

(2) सजुष् ऋषिभिः–सजुरु ऋषिभिः–
सजूर्ऋषिभिः
(वोरुपधायाः)

यह सूत्र जश्त्व का अपवाद है।

अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च 8.2.67

पद.—अवयाः श्वेतवाः पुरोडाः प्रत्येकं प्रथमान्तरूपम्, च–अव्य०।

अनु.—पदस्य।

अर्थ—अवयाः, श्वेतवाः तथा पुरोडाः–ये दीर्घ किए हुए शब्द सम्बुद्धि में निपातित हैं।

उदा.—(1) अव यज् ण्विन्–अवयज् डस्–
(अवे यजः। श्वेतावहादी०–वा०)
अव य् अ स् सु–अवयाः
(अत्वसन्तस्य)

(2) श्वेत वह् ण्विन्–श्वेतवाः।
(मन्त्रे श्वेतवही०)

(3) पुरस् दाश् ण्विन्–
पुरो डाश् डस–पुरोडाः।
(पूर्ववत्)

अहन् 8.2.68

पद.—अहन्, लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्।

अनु.—रुः पदस्य अन्ते।

अर्थ—पद के अन्त में 'अहन्' शब्द के स्थान पर 'रु' आदेश होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर आदेश होता है।

उदा.—अहन् भ्याम्–अहरु भ्याम्–
(पद संज्ञा)
अहर्भ्याम्–अहोभ्याम्।
(हशि च। आद् गुणः)

इसी प्रकार—अहन् भिस्–अहोभिः।

विशेष—रूप, रात्रि तथा रथन्तर शब्द परे रहते 'अहन्' के नकार को 'रु' होता है[1]—

अहन् रूप–अहो रूप सु–अहोरूपम्।
अहन् रात्रि–अहोरात्रः।
अहन् रथन्तर–अहरु रथन्तर–अहो
रथन्तर सु–अहोरथन्तरम्।

रोऽसुपि 8.2.69

पद.—रः 1.1, असुपि 7.1,

अनु.—अहन्।

अर्थ—अहन् शब्द को रेफ आदेश होता है परन्तु सुप् परे रहते नहीं होता है।

रेफ में अकार उच्चारणार्थ है।

अलोऽन्त्य परिभाषा से रेफ आदेश अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर होता है।

उदा.—(1) अहन् अहन्–अहर् अहन्
(नित्यवीप्सयोः। सुप् लुक् 'स्वमोर्नपुँस०' से)
अहर् अहर् ('न लुमताङ्गस्य' से प्रत्ययलक्षण का निषेध होने से रेफ आदेश)
अहरहः।

(2) अहन् भुङ्क्ते–अहर्भुङ्क्ते।

(3) अहन् गण–अहर्गण सु–अहर्गणः।

(4) अहर्निशम् (भट्टि० 6.2)
अहन् अपि–अहरपि (मे० 113)।

विशेष—'असुपि' अर्थात् **सुप् परे रहते** रेफ आदेश नहीं होता है। यहाँ प्रसज्य प्रतिषेध है—

अहन् भ्याम्–अहोभ्याम्

सुप् परे है। रेफ आदेश न हुआ। 'अहन्' से 'रु' हो गया।

अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि 8.2.70

पद.—अम्नरूधरवर्–प्रत्येकम् लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, इति अव्य०, उभयथा–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—पदस्य रुः रः।

अर्थ—वेद के विषय में पद के अन्त में अम्नस्, ऊधस्

1. काशि० 8.2.68 (का०वा०) अह्नो रुविधौ रूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानं कर्त्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अवस् इन शब्दों को दोनों प्रकार से आदेश होता है ।

'उभयथा' पद के द्वारा प्रसंगप्राप्त 'रेफ' व 'रु' दोनों आदेशों का ग्रहण होता है ।

उदा.—(1) अम्नस् एव–अम्नरु एव–अम्न य् एव–(भोभगो०)
अम्न एव (काठ० 6.5) ।
अम्नस् एव–अम्नर् एव–अम्नरेव ।

(2) ऊधस् एव–ऊध एव ।
ऊधरेव ।
ऊधस् अघ्न्या–ऊधरघ्न्या (ऋ० 9.93.3)

(3) अवस् एव–अव एव ।
अवस् एव–अवरेव ।
अवस् दिवा–अवो दिवा (यजु० 29.17) ।

विशेष—1. वेद में तथा भाषा में राजन् शब्द परे रहते 'प्रचेतस्' को रेफ आदेश विकल्प से होता है[1]—

प्रचेतस् राजन्–प्रचेत र् राजन्–प्रचेता राजन् सु–प्रचेता राजन् । (रेफ, रेफ लोप । ढ्रलोपे पूर्व० । सु विभक्ति)

पक्ष में 'रु' होकर–प्रचेतो राजन् ।

2. पति आदि शब्दों के परे रहते 'अहन्' आदि शब्दों को विकल्प से 'रु' होता है[2]—

अहर्पतिः,	अहः पतिः ।
गीर्पतिः,	गीः पतिः ।
धूर्पतिः,	धूः पतिः ।

भुवश्च महाव्याहृतेः 8.2.71

पद.—भुवः–लुप्तविभक्तिकरूपम्, च–अव्य०, महाव्याहृतेः 6.1

अनु.—छन्दसि उभयथा पदस्य रुः रः ।

अर्थ—वेद के विषय में महाव्याहृति जो 'भुवस्' शब्द उसे 'रु' तथा 'रेफ' दोनों आदेश होते हैं ।

अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (सकार) के स्थान पर ये आदेश होते हैं ।

उदा.—भुवस् इति–भुवरु इति–भुव इति ।
भुवस् इति–भुवर् इति–भुवरिति ।

वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः 8.2.72

पद.—वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहाम् 6.3, दः 1.1

अनु.—पदस्य । सः

अर्थ—पद के अन्त में सान्त वसुप्रत्ययान्त को, स्रंसु को, ध्वंसु को तथा अनडुह् को दकार आदेश होता है ।

दकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा से दकार आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है ।

उदा.—(1) विद्वस् भ्याम्–विद्वद्भ्याम् ।
पपिवस् भ्याम्–पपिवद्भ्याम् ।

(2) (स्रंसु)–उखास्रंस् भ्याम्–उखास्रद्भ्याम्
(अनुनासिकलोप । दकार आदेश)

(3) पर्णध्वंस् भ्याम्–पर्णध्वद्भ्याम्
(पूर्ववत्)

(4) अनडुह् भ्याम्–अनडुद्भ्याम् ।

(व्यपदेशिवद्भाव से अथवा पदांगाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' (प०) के द्वारा दकार हुआ)

विशेष—'ससजुषो रुः' से 'सः' पद का अनुवर्त्तन होकर 'सान्त वस्वन्त' कहा गया है । यदि ऐसा न करते तो 'विद्वान्' को भी दकार अन्तादेश प्राप्त हो जाता । कारण कि, 'विद्वान्' वस्वन्त है ।

चूँकि 'विद्वान्' शब्द वस्वन्त है, परन्तु सान्त नहीं है । अतः दकार आदेश न होगा ।

तिप्यनस्तेः 8.2.73

पद.—तिपि 7.1, अनस्तेः 6.1

अनु.—दः पदस्य सः ।

अर्थ—तिप् परे रहते सकारान्त पद को दकार आदेश होता है परन्तु अस् को नहीं होता है ।

उदा.—(1) चकास् लङ्–चकास् शप् ति–चकास् ति–चकाद् ति–चकाद् त्–
(शप्, शप् का लुक्, दकार, तकार लोप)
अचकाद् ।

(2) अनुशास् ति–अनु अ शाद् ति–अन्वशाद् त–अन्वशाद्।

1. महा० 8.2.70 (वा०) छन्दसि भाषायां च विभाषा प्रचेतसो राजन्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ।
2. महा० 8.2.70 (वा०) अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्ववत्)

(3) हिंसि-हि नुम् स्-हि श्नम् न् स् ति-हिनस् त्-नुम्, श्नम्, नकार लोप)
अहिनस्-अहिनद्,-त् ।
(हल्ङ्यादि लोप)

विशेष—'अनस्तेः' अर्थात् **अस् भिन्न** पदान्त सकार को दकार होता है—सलिलं सर्वम् आ इदम् (ऋ० 10.129.3)
यहाँ दकार न हुआ ।

सिपि धातो रुर्वा 8.2.74

पद.—सिपि 7.1, धातोः 6.1, रुः 1.1, वा-अव्य० ।

अनु.—पदस्य सः दः ।

अर्थ—सिप् परे रहते सकारान्त पद जो धातु उसे विकल्प से 'रु' आदेश होता है ।

पक्ष में दकार होता है । प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार 'वसुस्रंसुध्वस्वन०' से 'दः' पद का अनुवर्त्तन होता है । अतः पक्ष में दकार हो जाता है ।

नागेशभट्ट प्रभृति विद्वानों के अनुसार पक्ष में 'झलां जशोऽन्ते' से दकार होता है ।

उदा.—(1) चकास् सि-चकारु स्-चकार्-अचकाः ।
(शप्, शप् का लुक्, रु, विसर्जनीय)
अचकाद् ।
(पक्ष में दकार)

(2) हिंसि-हि नुम् स्-हि श्नम् न् स् सि-हिनस् स्
(नुम्, श्नम्, नकारलोप; इकार लोप)
अ हि न स्-अहिनरु-अहिनः ।
पक्ष में—अहिनद्,-त् ।

दश्च 8.2.75

पद.—दः 6.1, च-अव्य० ।

अनु.—पदस्य सिपि धातोः रुः वा ।

अर्थ—सिप् परे रहते दकारान्त पद जो धातु उसे विकल्प से 'रु' होता है ।

उदा.—भिद्-भि श्नम् द् सि-भिनरु सि-भिनरु स्
(श्नम्, रु)
अट् भिनर् स्-अभिनः
(पक्ष में दकार)
अभिनत् ।

वोरुपधाया दीर्घ इकः 8.2.76

पद.—वोः 6.2, उपधायाः 6.1, दीर्घः 1.1, इकः 6.1

अनु.—पदस्य धातोः ।

अर्थ—पदान्त में रेफान्त व वकारान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) गिर् क्विप्-गिर् सु-गिर्-गीर्-गीः
('क्विबन्ता धातुत्वं न जहति' प० के द्वारा धातु के अन्त में रेफ है । उपधा इक् (इकार) को दीर्घ हुआ)

(2) पॄ क्विप्-पुर् सु-पूः ।
(पूर्ववत्)

(3) धुर् सु-धुर्-धूर्-धूः ।

(4) आशिष् सु-आशिष्-आशिर्-आशीः ।

(5) पिपठि ष-पिपठिष् सु
(सन् प्रत्यय । क्विप् । अतो लोपः)
पिपठिष्-पिपठिर्-पिपठीः ।

(6) वकारान्त के उदाहरण अगले सूत्र पर देखें ।

हलि च 8.2.77

पद.—हलि 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—धातोः वोः उपधायाः इकः दीर्घः ।

अर्थ—हल् परे रहते रेफान्त तथा वकारान्त धातु की उपधा में जो इक् उसे दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) आ स्तॄ क्त-आ स्तिर् त-आस्तिर् न-आस्तीर् न-आस्तीर्ण सु-आस्तीर्णः ।
(ऋत इद् धातोः)
वि शॄ क्त-विशिर् त-विशिर् न विशीर्न-विशीर्णः ।
पॄ तस्-पि पॄ तस्-पि पुर् तस् ।
(शप्, श्लु, ऋत इद्धातोः, उदोष्ठ्य०, उरण्रपरः)
पिपूर्तस्-पिपूर्तः ।
(हलि च)

(2) दिव् ति-दिव् श्यन् ति-दीव्यति ।
सिव् ति-सीव्यति ।

(3) चर् यङ्-चञ्चुर्य-
(द्वित्वादि, धातु संज्ञा)
चञ्चूर्य मुक् शानच् जस्-
चञ्चूर्यमाणाः (भट्टि० 4.19) ।

(4) जॄ क्त-जीर्णम् (भट्टि० 5.42)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपधायां च 8.2.78

पद.—उपधायाम् 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—धातोः इकः उपधायाः दीर्घः वोः हलि ।

अर्थ—हल् परे रहते धातु की उपधा में जो रेफ या वकार, उनके उपधाभूत इक् के स्थान पर दीर्घ होता है ।

उदा.—(1) हुर्छ् तृ–हूर्छिता ।

'हुर्छ्' धातु की उपधा में रेफ है । उस रेफान्त 'हुर्' शब्द की उपधा में इक् (उकार) है । उसे हल् (तकार) परे रहते दीर्घ हो गया ।

मुर्छ्–मूर्छिता ।

(2) उर्व्–ऊर्विता ।

उपधा में रेफ है । उसकी उपधा में इक् (उकार) है । उसे दीर्घ हो गया ।

(3) वकारोपध का कोई उदाहरण नहीं है ।

न भकुर्छुराम् 8.2.79

पद.—न–अव्य०, भकुर्छुराम् 6.3

अनु.—धातोः वोः उपधायाः इकः दीर्घः ।

अर्थ—भसंज्ञक जो रेफान्त व वकारान्त उसकी उपधा को तथा कुर् व छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है ।

उदा.—(1) धुरं वहति–धुर्यः ।
('हलि च' से दीर्घ प्राप्त था । निषेध हो गया)

(2) कृ तिप्–कृ त्–कृ यासुट् त्–कृ यास् त्–
कुर् यास्त्–कुर्यात् ।
(हलि च । निषेध हो गया)

(3) छुर्–छुर्यात् ।

अदसोऽसेर्दादुदो मः 8.2.80

पद.—अदसः 6.1, असेः 6.1, दात् 5.1, उ–लुप्त-प्रथमान्तरूपम्, दः 6.1, मः 1.1

अर्थ—जिसके अन्त में सकार न हो ऐसे 'अदस्' शब्द के दकार से पर वर्ण को उकार तथा ऊकार होता है तथा दकार को मकार होता है ।

मकार में अकार उच्चारणार्थ है । 'असि' में इकार उच्चारणार्थ है ।

असान्त अदस् शब्द के दकार से उत्तर प्रायः ह्रस्व या दीर्घ स्वर पाया जाता है । अतः 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के द्वारा ह्रस्व के स्थान पर ह्रस्व उकार तथा दीर्घ के स्थान पर दीर्घ ऊकार हुआ करता है ।

उदा.—(1) अदस् औ–अद अ औ–अद औ–अदौ–
(त्यदादीनाम् अः । अतो गुणे । वृद्धि)
अमू ।

(प्रकृतसूत्र के द्वारा दकार को मकार तथा औकार के स्थान पर दीर्घ ऊकार हो गया) ।

(2) अदस् अम्–अद अ अम्–अद अम्–
(पूर्ववत्)

अब 'अदसोऽसेर्दा०' (पा० 8.2.80) के द्वारा उत्वमत्व तथा 'अमि पूर्वः' (पा० 6.1.103) से पूर्वरूप युगपत् प्राप्त होते हैं ।

उत्व मत्व पूर्व रूप की दृष्टि में असिद्ध है । प्रथम पूर्वरूप होकर उत्वमत्व होते हैं—

अदम्–अमुम् ।

(3) अदस् शस्–अद अ अस्–अद अस्–
(पूर्ववत्)

अदास्–अदान्–अमून् ।
(विभक्तिकार्य । उत्व मत्व)

(4) अदस् टा–अद अ टा–अद आ–

(उत्व मत्व के असिद्ध होने के कारण प्रथम विभक्ति कार्य वश 'टा' को 'इन' आदेश प्राप्त हुआ । 'न मुने' के द्वारा निषेध हुआ । तब उत्व मत्व हुआ)

अमु आ

('मु' भाव के असिद्ध होने से घि संज्ञा नहीं होती है । 'न मुने' के द्वारा 'मु' भाव सिद्ध हुआ । घिसंज्ञा होकर—)

अमुना ।
(आङो नाऽस्त्रियाम्)

(5) अदस् भ्याम्–अद अ भ्याम्–अदभ्याम्–
(पूर्ववत्)

अदाभ्याम्–अमूभ्याम् ।
(सुपि च । उत्व, मत्व)

विशेष—1. 'असे' अर्थात् जिसके अन्त में सकार न हो ऐसे अदस् के दकार से उत्तर वर्ण को उकार या ऊकार होता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद इच्छति-अदस्यति इस अर्थ में 'अदस् क्यच्' होकर उत्व मत्व न हुए।

2. अदस् के ओकार, सकार व रेफ को छोड़कर ही सूत्रोक्त आदेश होता है[1]—

अदोऽत्र यहाँ ओकार अन्त में है। अतः उत्व मत्व नहीं हुआ।

अदः कुलम्-यहाँ न हुआ।

3. 'दात्' अर्थात् **दकार से उत्तर वर्ण को ही** उकार या ऊकार होता है—

अदस् टा-अद अ टा-अद टाप् (स्त्रीत्वे) टा-अदा आ-अदे आ-अदय् आ-अमुया। 'दात्' कहने से दकार से उत्तर अकार के स्थान पर उकार हुआ। यदि 'दात्' न कहते तो 'अलोऽन्त्यस्य' से अन्त्य अल् (यकार) को उकार होकर अनिष्ट रूप बनता है। इसी प्रकार 'अमुयोः' में जानना चाहिए।

एत ईद् बहुवचने 8.2.81

पद.—एतः 6.1, ईत् 1.1, बहुवचने 7.1

अनु.—अदसः असेः दात् दः मः।

अर्थ—बहुवचन की विवक्षा में अदस् शब्द के दकार से पर एकार को ईकार होता है तथा दकार के स्थान पर मकार होता है।

उदा.—(1) अदस् जस्-अद अ जस्-अद् जस्-अद् शी-
(पूर्ववत्)
अदे-अमी।
('अदसोऽसे०' से प्राप्त उत्व मत्व को बाधकर)

(2) अदस् भिस्-अद अ भिस्-अदभिस्
(अतो भिस ऐस्। नेदमदसोरकोः। बहुवचने झल्येत्)
अदे भिस्-अमीभिः।

(3) अदस् भ्यस्-अद् अ भ्यस्-अदभ्यस्-
(पूर्ववत्)
अदेभ्यः-अमीभ्यः
(बहुवचने झल्येत्)

(4) अदस् आम्-अद अ आम्-अद आम्-अद सुट् आम्-अदे साम्-
(पूर्ववत्। आमि सर्वनाम्नः सुट्)
अमीषाम्।
(बहुवचने झल्येत्। एत ईद् बहुवचने)

(5) अदस् सुप्-अदेषु-
(पूर्ववत्)
अमीषु-
(पूर्ववत्)

वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः 8.2.82

पद.—वाक्यस्य 6.1, टेः 6.1, प्लुतः 1.1, उदात्तः 1.1

अनु.—पदस्य।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार पाद की समाप्ति (पा० 8.2.108) पर्यन्त जाता है। वाक्य की टि को प्लुत व उदात्त होता है।

उदा.—अभिवादये देवदत्तोऽहम् भोः।
आयुष्मान् एधि देवदत्त 3।

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे 8.2.83

पद.—प्रत्यभिवादे 7.1, अशूद्रे 7.1

अनु.—वाक्यस्य टेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—अशूद्र विषय में प्रत्यभिवाद वाक्य के पद की टि को प्लुत होता है और वह उदात्त होता है।

जिसे अभिवादन किया जाता है, वह उत्तर स्वरूप आशीर्वचन कहता है। यह आशीर्वचन ही 'प्रत्यभिवादन' कहलाता है।

उदा.—पा० 8.2.82 पर देखें।

दूराद्धूते च 8.2.84

पद.—दूरात् 5.1, हूते 7.1, च-अव्य०।

अनु.—वाक्यस्य टेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—दूर से बुलाने में प्रयुक्त वाक्य की टि को प्लुत व उदात्त होता है।

उदा.—आगच्छ भो माणवक देवदत्त 3।
एहि देवदत्त 3।

हैहेप्रयोगे हैहयोः 8.2.85

पद.—हैहेप्रयोगे 7.1, हैहयोः 6.2

अनु.—दूरात् हूते पदस्य प्लुतः उदात्तः।

1. महा० 8.2.80 (वा०) अदसोऽनोऽत्र इति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'है' तथा 'हे' के प्रयोग में दूर से बुलाने में प्रयुक्त वाक्य में 'है' तथा 'हे' को ही प्लुत व उदात्त होता है।

उदा.—है 3 देवदत्त।
देवदत्त है 3।
हे 3 देवदत्त।
देवदत्त हे 3।

गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् 8.2.86

पद.—गुरोः 6.1, अनृतः 6.1, अनन्त्यस्य 6.1, अपि-अव्य०, एकैकस्य 6.1, प्राचाम् 6.3

अनु.—पदस्य वाक्यस्य टेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—प्राचीन आचार्यों के मत में ऋकार को छोड़कर वाक्य के अनन्त्य गुरुसंज्ञक वर्ण को पर्यायेण तथा अन्त्य के टि को प्लुत व उदात्त होता है।

अनन्त्य–जो अन्त में न हो।

उदा.—आयुष्मान् एधि दे3वदत्त।
देवद3त्त।
देवदत्त3।

अन्तिम रूप पाणिनि के मत में है। प्राचीन आचार्यों के मत में—
दे3वदत्त (एकार की गुरु संज्ञा है)।
देवद3त्त ('संयोगे गुरु' से अकार की गुरु संज्ञा है)

ओमभ्यादाने 8.2.87

पद.—ओम्–अव्य०, अभ्यादाने 7.1

अनु.—पदस्य प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—अभ्यादान में 'ओम्' शब्द को प्लुत व उदात्त होता है।

अभ्यादान का अर्थ है—वैदिक मन्त्र का प्रारम्भ।

उदा.—ओ3म् अग्निमीळे पुरोहितम् (ऋ० 1.1.1)
'अभ्यादाने' अर्थात् **प्रारम्भ में ही** 'ओम्' को प्लुत व उदात्त होता है—

ओमित्येतदक्षरम् उद्गीथ—यहाँ वैदिक मन्त्र का प्रारम्भ नहीं है। अतः 'ओम्' को प्लुत न हुआ।

ये यज्ञकर्मणि 8.2.88

पद.—ये–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, यज्ञकर्मणि 7:1

अनु.—पदस्य प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—यज्ञ की क्रिया में 'ये' शब्द को प्लुत व उदात होता है।

श्रौत यज्ञकर्म में जिस मन्त्र से आहुति दी जाती है; उसे 'याज्या' कहते हैं। याज्या के प्रारम्भ में 'ये' को प्लुत किया जाता है—

उदा.—ये3यजामहे।

विशेष—'यज्ञकर्मणि' अर्थात् **यज्ञकर्म में ही** 'ये' को प्लुत होता है—

ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम्

यहाँ यज्ञकर्म नहीं है। सामान्य कथन है। अतः प्लुत न हुआ।

प्रणवष्टेः 8.2.89

पद.—प्रणवः 1.1, टेः 6.1

अनु.—यज्ञकर्मणि वाक्यस्य प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—यज्ञकर्म में वाक्य की 'टि' को 'ओम्' आदेश होता है और वह प्लुत व उदात्त होता है। प्रणव का अर्थ है—ओङ्कार।

यज्ञकर्म में सामिधेन्यादि ऋचा विशेषों में ही टिभाग को प्रणव आदेश होता है। सर्वत्र यज्ञकर्म में प्रणव आदेश नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त ध्यान रखना चाहिए कि पाठमात्र में ही उक्त प्रणव आदेश होता है। प्रणव आदेश कर चुकने पर 'स्वाहा' आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता है।

उदा.—(1) अपां रेतांसि जिन्वतो3म् (ऋ० 8.44.16)
ऋचा का मूल स्वरूप इस प्रकार है—

अपां रेतांसि जिन्वति यहाँ इकार की टिसंज्ञा है। इसके स्थान पर प्लुत व उदात्त प्रणव आदेश हो गया है।

(2) देवान् जिगाति सुम्नयो3म्।

याज्यान्तः 8.2.90

पद.—याज्यान्तः 1.1

अनु.—यज्ञकर्मणि वाक्यस्य पदस्य टेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—याज्या नामक ऋचाओं के अन्त की 'टि' को यज्ञकर्म में प्लुत व उदात्त होता है।

याज्यानुवाक्याकाण्ड में पठित मन्त्रों को 'याज्या' कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मन्त्र मैत्रायणी संहिता (4.10-44) में एकत्र पठित हैं। इसे ही याज्यानुवाक्याकाण्ड कहते हैं। अन्यत्र संहिताओं में ये मन्त्र इतस्ततः बिखरे हुए हैं।

श्रौतकर्म में जिन मन्त्रों के द्वारा आहुति प्रदान की जाती है, उन्हें 'याज्या' कहते हैं।

उदा.—स्तोमैर्विधेमाग्ना३इ (ऋ० 8.43.11)
जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहा३म् (ऋ० 10.8.6)

ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः 8.2.91

पद.—ब्रूहि प्रेष्य ... वहानाम् 6.3, आदेः 6.1

अनु.—यज्ञकर्मणि पदस्य प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—यज्ञ कर्म में ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट् तथा आवह—इन शब्दों के आदि को प्लुत व उदात्त होता है।

उदा.—(1) अग्नयेऽनुब्रू३हि
(2) अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य।
(3) अस्तु श्रो३षट्।
(4) सोमस्याग्ने व्रीहि वौ३षट्।
(5) अग्निमा३वह।

अग्नीत् प्रेषणे परस्य च 8.2.92

पद.—अग्नीत्प्रेषणे 7.1, परस्य 6.1, च-अव्य०।

अनु.—यज्ञकर्मणि पदस्य आदेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—अग्नीध के प्रेषण में पद के आदि को प्लुत व उदात्त होता है। तथा उससे परे शब्द को भी प्लुत व उदात्त होता है, यज्ञ कर्म में।

उदा.—आ३श्रा३वय।
ओ३श्रा३वय।

विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः 8.2.93

पद.—विभाषा 1.1, पृष्टप्रतिवचने 7.1, हेः 6.1

अनु.—पदस्य प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—प्रश्न के प्रत्युत्तर स्वरूप वाक्य में जो 'हि' उसे प्लुत व उदात्त विकल्प से होता है।

उदा.—अकार्षीः कटं देवदत्त (=देवदत्त, क्या तुमने चटाई बना ली?) यह प्रश्न है। अकार्षं हि 3 (= हाँ, मैंने बना ली) यह प्रत्युत्तर है। 'हि' को प्लुत हुआ है।

पक्ष में प्लुत नहीं होता है—अकार्षं हि।

निग्रह्याऽनुयोगे च 8.2.94

पद.—निग्रह्य-अव्य०, अनुयोगे 7.1, च-अव्य०।

अनु.—वाक्यस्य टेः पदस्य विभाषा प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—निग्रह के पश्चात् अनुयोग में वर्त्तमान जो वाक्य उसकी 'टि' को प्लुत व उदात्त विकल्प से होता है।

उदा.—तर्क या हेतु के द्वारा परपक्ष का खण्डन करना 'निग्रह' कहलाता है।

'अनित्यः शब्दः' यह पूर्वपक्ष है। इसका खण्डन किया गया। यह 'निग्रह' हुआ।

जिस पक्ष से वह निगृहीत हुआ है, उसी मत का शब्दों के द्वारा प्रकाशन 'अनुयोग' है। अनित्यः शब्द इत्यात्थ३-यह अनुयोग हुआ। अतः 'टि' को प्लुत हुआ।

आम्रेडितं भर्त्सने 8.2.95

पद.—आम्रेडितम् 1.1, भर्त्सने 7.1

अनु.—प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—भर्त्सन अर्थ में आम्रेडित संज्ञक शब्द की 'टि' को प्लुत व उदात्त होता है।

उदा.—चौर चौर३

यहाँ 'तस्य परम् आम्रेडितम्' से द्वितीय 'चौर' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है। इसकी 'टि' को प्लुत व उदात्त हुआ।

इसी प्रकार—दस्यो दस्यो३

भर्त्सन अर्थ में पर्यायेण प्लुत होता है[1]—
चौर चौर३।
चौर३ चौर।

अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् 8.2.96

पद.—अङ्गयुक्तम् 1.1, तिङ् 1.1, आकाङ्क्षम् 1.1

अनु.—भर्त्सने प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—निन्दा अर्थ में अंग शब्द से युक्त जो आकांक्षा वाला तिङन्त पद, उसकी 'टि' को प्लुत होता है।

उदा.—अङ्ग कूज३, अङ्गव्याहर३ यहाँ 'कूज' तथा 'व्याहर' तिङन्त पद हैं। ये 'अंग' शब्द से युक्त भी हैं। इन तिङन्त पदों को अन्य पद की आकांक्षा है। वह आकांक्ष्य पद है—इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

---

1. काशि० 8.2.95 (वा०) भर्त्सने पर्यायेणेति वक्तव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः 'कूज' तथा 'व्याहर' पदों की 'टि' को प्लुत हो गया।

विचार्यमाणानाम् 8.2.97

पद.—विचार्यमाणानाम् 6.3

अनु.—वाक्यस्य टेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—विचार्यमाण वाक्य के 'टि' को प्लुत व उदात्त होता है।

उदा.—होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ।
तिष्ठेद्यूपा३इ।
अनुप्रहरेद् यूपा३इ।

यहाँ 'टि' को प्लुत व उदात्त हुआ है।

पूर्वं तु भाषायाम् 8.2.98

पद.—पूर्वम् 1.1, तु-अव्य०, भाषायाम् 7.1

अनु.—विचार्यमाणानाम् वाक्यस्य टेः पदस्य प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—विचार्यमाण वाक्यों के पूर्व वाले वाक्य की 'टि' को प्लुत व उदात्त होता है, लोक में।

यह नियम सूत्र है। यह नियम करता है कि पूर्व वाले वाक्य की 'टि' को ही प्लुत होता है, पर वाले को नहीं।

उदा.—अहिर्नु३, रज्जुर्नु।
लोष्टो नु३, कपोतो नु।

प्रतिश्रवणे च 8.2.99

पद.—प्रतिश्रवणे 7.1, च-अव्य०।

अनु.—वाक्यस्य पदस्य टेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—प्रतिश्रवण में वर्त्तमान वाक्य की 'टि' को प्लुत व उदात्त होता है।

प्रतिश्रवण के दो अर्थ है—वादा करना तथा अच्छी प्रकार सुनना।

उदा.—गां मे देहि भोः।
अहं ते ददामि३।

इसी प्रकार—देवदत्त भोः।
किमात्थ३ ?

अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः 8.2.100

पद.—अनुदात्तम् 1.1, प्रश्नान्ताऽभिपूजितयो 7.2

अनु.—पदस्य वाक्यस्य टेः प्लुतः।

अर्थ—प्रश्नान्त तथा अभिपूजित में विधीयमान प्लुत को अनुदात्त होता है।

प्रश्नान्त-प्रश्न किए जाने वाले वाक्य का अन्तिम पद।

उदा.—(1) अगम॑:३ पूर्वा॑३न् ग्रामा॑३न् अग्निभूता३ इ यह प्रश्नान्त में हुआ।

(2) शोभनः खल्वसि माणवक ३

यह अभिपूजित अर्थ में हुआ है।

चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने 8.2.101

पद.—चित्-अव्य०, इति-अव्य०, च-अव्य०, उपमार्थे 7.1, प्रयुज्यमाने 7.1

अनु.—पदस्य वाक्यस्य टेः प्लुतः अनुदात्तम्।

अर्थ—यदि उपमा अर्थ में 'चित्' निपात प्रयुक्त हो तो वाक्य के 'टि' को प्लुत अनुदात्त होता है।

उदा.—(1) अग्निचित् भाया॒३त् (=अग्नि के समान प्रकाशित होवे)

यहाँ उपमा अर्थ में 'चित्' का प्रयोग है। अतः वाक्य की 'टि' को प्लुत व अनुदात्त हो गया।

(2) इसी प्रकार—राजचिद् भाया३त्।

विशेष—1. 'उपमार्थे' अर्थात् **उपमा के अर्थ में** ही 'चित्' का प्रयोग होने पर अनुदात्त व प्लुत होता है—

कथञ्चिद् आहुः

यहाँ 'चित्' निपात का प्रयोग उपमा अर्थ में नहीं है। अतः वाक्य की 'टि' को प्लुत व अनुदात्त न हुआ।

2. 'प्रयुज्यमाने' अर्थात् चित् का **प्रयोग होने** की दशा में ही प्लुत व अनुदात्त होता है—

अग्निर्माणवको भायात् (=अग्नि के समान बालक प्रकाशित हो)

यहाँ उपमा अर्थ है परन्तु 'चित्' का प्रयोग न होने पर प्लुत व उदात्त न हुआ।

उपरिस्विदासीदिति च 8.2.102

पद.—उपरि-अव्य०, स्वित्-अव्य०, आसीत्-तिङन्त-पदम्, इति-अव्य०, च-अव्य०।

अनु.—वाक्यस्य टेः प्लुतः अनुदात्तम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—'उपरिस्विदासीत्' इसकी 'टि' को प्लुत व अनुदात्त होता है।

यह वेद मन्त्र का अंश है।

'स्वित्' अव्यय वितर्क अर्थ में है।

उदा.—अधस्विदासी३त् ?
उपरि स्विदासी३त् ? (ऋ० 10.129.5)

स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु 8.2.103

पद.—स्वरितम् 1.1, आम्रेडिते 7.1, असूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु 7.3

अनु.—टेः प्लुतः।

अर्थ—असूया, पूजा, क्रोध तथा निन्दा अर्थों में पूर्वपद की 'टि' को प्लुत व स्वरित होता है, आम्रेडित संज्ञक पद परे रहते।

उदा.—(1) माणवक३ माणवक, रिक्तं ते आभिरूप्यम् यहाँ असूया अर्थ है।

(2) माणवक३ माणवक, शोभनः खल्वसि–यहाँ प्रशंसा अर्थ है।

(3) माणवक३ माणवक, इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म यहाँ क्रोध अर्थ है।

(4) शाक्तीक३ शाक्तीक, रिक्ता ते शक्तिः–

यहाँ निन्दा अर्थ है।

महाभाष्य में एक वार्तिक है। द्र०—

असूयादिषु वावचनं वक्तव्यम् अर्थात् असूया आदि अर्थों में प्लुतत्व विकल्प से होता है, इसके अनुसार पक्ष में प्लुत रहित रूप होते हैं।

क्षियाशीः-प्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् 8.2.104

पद.—क्षियाशीः प्रैषेषु 7.3, तिङ् 1.1, आकाङ्क्षम् 1.1

अनु.—टेः प्लुतः स्वरितम्।

अर्थ—आचार का उल्लंघन, आशीः तथा प्रैष अर्थों में आकांक्ष तिङन्त के 'टि' को प्लुत व स्वरित होता है।

उदा.—(1) स्वयं रथेन यातिं३ उपाध्यायं पदातिं गमयति–यहाँ आचार का उल्लंघन है।

(2) सुताँश्च लप्सीष्ठा३ धनं च तात–यहाँ आशीर्वचन है।

(3) कटं कुरु३ ग्रामं च गच्छ–यहाँ प्रैष अर्थ है।

विशेष—'आकाङ्क्षम्' अर्थात् **आकांक्ष** तिङन्त की 'टि' को प्लुत स्वरित होता है—

दीर्घं ते आयुरस्तु यहाँ आशीर्वचन है, परन्तु आकांक्ष तिङन्त न होने से 'टि' को प्लुत न हुआ।

अनन्त्यस्याऽपि प्रश्नाख्यानयोः 8.2.105

पद.—अनन्त्यस्य 6.1, अपि–अव्य०, प्रश्नाख्यानयोः 7.2

अनु.—पदस्य वाक्यस्य टेः प्लुतः उदात्तः।

अर्थ—अनन्त्य हो अथवा अन्त्य हो–दोनों की 'टि' को स्वरित व प्लुत होता है, प्रश्न तथा आख्यान के विषय में।

उदा.—(1) अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ यहाँ 'प्रश्न' है। अतः स्वरित व प्लुत हुआ।

(2) अगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न् भो३ः यहाँ 'आख्यान' है। अतः 'टि' को प्लुत व स्वरित हुआ।

आख्यान का अर्थ है—उत्तर।

प्लुतावैच इदुतौ 8.2.106

पद.—प्लुतौ 1.2, ऐचः 6.1, इदुतौ 1.2

अनु.—प्लुतः।

अर्थ—ऐच् के स्थान पर विधीयमान प्लुत आदेश (उस ऐच् के अवयवभूत) इकार व उकार को होता है।

ए, ऐ, ओ, औ सन्ध्यक्षर कहलाते हैं। ए,ऐ अक्षर अकार व इकार के मेल से तथा ओ, औ अक्षर अकार व उकार के मेल से बने हैं।

'दूराद्धूते च' इत्यादि सूत्रों के द्वारा प्लुतत्व का विधान किया गया है। प्रस्तुतसूत्र का भाव है कि जब ऐच् वर्ण को प्लुतत्व करना हो तो इकार या उकार को किया जाये।

उदा.—ऐ३तिकायन।
औ३पगव।

यहाँ 'गुरोरनृतो०' से प्लुतत्व हुआ है।

एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ 8.2.107

पद.—एचः 6.1, अप्रगृह्यस्य 6.1, अदूरात् 5.1, हूते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7.1, पूर्वस्य 6.1, अर्धस्य 6.1, आत् 1.1, उत्तरस्य 6.1, इदुतौ 1.2

अनु.—प्लुतः ।

अर्थ—दूर के बुलाने के विषय में जो विद्यमान न हो, ऐसे अप्रगृह्यसंज्ञक एच् के पूर्वार्ध भाग को आकार आदेश होता है और वह प्लुत होता है तथा उत्तर भाग को इकार व उकार आदेश होते हैं ।

एच् प्रत्याहार में ए,ओ,ऐ, औ—ये चार वर्ण हैं । ये समाहार होते हैं । इनके पूर्व भाग में अवर्ण होता है । प्रकृतसूत्र के द्वारा इस वर्ण को आकार आदेश का विधान किया गया है ।

एच् वर्णों के उत्तरभाग में इकार अथवा उकार होता है । प्रकृतसूत्र के द्वारा उत्तरभाग में इकार या उकार होता है ।

उदा.—(1) अगम३: पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ एकार के पूर्वभाग को प्लुत आकार हो गया है तथा उत्तर भाग को इकार हुआ ।

(2) पटा३उ–

यहाँ पूर्वभाग को प्लुत आकार तथा उत्तरभाग को उकार हो गया है ।

विशेष—1. 'अप्रगृह्यस्य' अर्थात् जिसकी प्रगृह्य संज्ञा नहीं है ऐसे 'एच्' के पूर्व भाग को प्लुत आकार तथा उत्तरभाग को इकार या उकार होता है—

शोभने खलु स्तः खट्वे३

'खट्वे' की प्रगृह्य संज्ञा है । अतः पूर्वभाग को प्लुत आकार न हुआ ।

2. वेद के विषय में आमन्त्रित संज्ञक में यह प्लुत विकार होता है[1]—

अग्ना३इ पत्नी वा३: (यजु० 8.10)

तयोर्य्वावचि संहितायाम् 8.2.108

पद.—तयोः 6.2, य्वौ 1.2, अचि 7.1, संहितायाम् 7.1

अनु.—प्लुतः ।

अर्थ—प्लुत के प्रसंग में एच् के उत्तरार्ध में विधीयमान इकार व उकार के स्थान में क्रमशः यकार व वकार होते हैं, अच् परे रहते सन्धि के विषय में ।

पूर्वसूत्र के द्वारा विधीयमान इकार व उकार 'इको यणचि' की दृष्टि में असिद्ध हैं । अतः यणादेश की प्रवृत्ति नहीं होती है । प्रकृतसूत्र के द्वारा यणादेश कहा गया है ।

उदा.—(1) अग्ने आशा–

आग्ना३इ आशा–अग्ना३याशा ।

(2) पटो आशा–

पटा३उ आशा–पटा३वाशा ।

(1) 'अचि' अर्थात् **अच् परे रहते** यकार वकार होता है—

अग्ने–अग्ना३इ ।

अच् परे नहीं है । अतः यकार न हुआ ।

पटो–पटा३उ (पूर्ववत्) ।

(2) 'संहितायाम्' अर्थात् **संहिता के विषय में** ही यकार–वकार होते हैं—

अग्ना३इ इन्द्रम् यहाँ संहिता का विषय न होने से यकार न हुआ ।

इसी प्रकार—पटा३उ उदकम्–यहाँ वकार न हुआ ।

1. महा० 8.2.107 (वा०) आमन्त्रिते छन्दस्युपसंख्यानम् ।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायामष्टमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टमाऽध्यायस्य

तृतीयः पादः

मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि 8.3.1

पद.—मतवसोः 6.2, रु–लुप्तप्रथमान्तरूपम्, सम्बुद्धौ 7.1, छन्दसि 7.1

अनु.—पदस्य संहितायाम् ।

अर्थ—वेद में तथा संहिता के विषय में मतुप्प्रत्ययान्त तथा वसु प्रत्ययान्त तथा वसु प्रत्ययान्त पद को 'रु' आदेश होता है सम्बुद्धि परे रहते ।

'वसु' के द्वारा 'क्वसु' का ग्रहण किया जाता है तथा 'मतु' के द्वारा 'मतुप्' का ।

उदा.—(1) मरुत् मतुप्–मरुत् वस् त् सु–
मरुत् वत्–मरुत् वरु–मरुत् वर्–
मरुत्वः (ऋ० 3.51.7, तै०सं० 1.4.18.1) ।
(रु, रेफ, विसर्जनीय)

इसी प्रकार—हरि मतुप्–
हरिवः (तै०सं० 4.7.14.4) ।

(2) मिह् लिट्–मिह् क्वसु–
(निपातन से द्वित्व का अभाव)
मिह् वस्–मीढ्वस् सु–
मीढ् व न् स् स्–मीढ्वन् स्–मीढ्वन्–
(हल्ङ्यादिलोप)
मीढ्वरु–मीढ्वः (ऋ० 2.33.14)

विशेष—1. 'मतुवसोः' अर्थात् **मतुप् प्रत्ययान्त व क्वसु** प्रत्ययान्त को ही 'रु' होता है—

ब्रह्मन्–

यहाँ न 'मतुप्' है और न 'क्वसु' है । अतः 'रु' न हुआ ।

2. 'सम्बुद्धौ' अर्थात् **सम्बुद्धि परे रहते** ही 'रु' होता है–

विद्वान्–

'विद्वस्' वसु प्रत्ययान्त है परन्तु सम्बुद्धि परे नहीं है । अतः 'रु' नहीं हुआ ।

3. 'छन्दसि' अर्थात् **वेद में ही** होता है—

हे पपिवन्–

वसु प्रत्ययान्त है । परन्तु वेद में न होने के कारण 'रु' न हुआ ।

हे गोमन्–

मतुप् प्रत्ययान्त है । परन्तु वेद में न होने के कारण 'रु' न हुआ ।

4. 'वन्' प्रत्यय के 'न्' को 'रु' होता है[1]—

प्रातर् इण् क्वनिप्–प्रातरित्वन्–
प्रातरित्वः (ऋ० 1.125.2)
'न्' को 'रु' हो गया है ।

5. भवत् भगवद् तथा अघवद्–इनके अन्त्य को 'स्' आदेश और 'अव' के स्थान पर 'ओ' आदेश विकल्प से होते हैं ।[2] वेद में तथा भाषा में भवद्, भगवद् और अघवद्–इनका विकल्प से 'रु' आदेश होता है और 'अव' इसे ओकार आदेश होता है । यथा—

हे भवन् ! हे भगवन् ! हे अघवन् !

अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा 8.3.2

पद.—अत्र–अव्य०, अनुनासिकः 1.1, पूर्वस्य 6.1, तु–अव्य०, वा०–अव्य० ।

अनु.—रु संहितायाम् ।

अर्थ—इस 'रु' प्रकरण में 'रु' से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है ।

'अत्र' पद प्रस्तुत 'रु' प्रकरण में प्रवृत्त होता है । अतः प्रकृतसूत्र 'ससजुषो रुः' के द्वारा विधीयमान 'रु' के स्थल पर प्रवृत्त नहीं होता है ।

---

1. महा० 8.3.1 (वा०) वन उपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ।
2. महा० 8.3.1 (वा०) विभाषा भवद्भगवदघतामोच्चावस्य ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—सम् कृ तृ च्–सँस्स्कर्त्ता, संस्स्कर्त्ता । सिद्धि पा० 8.3.4 पर देखें ।

इसी प्रकार—सम् कृ तुमुन्–सँस्स्कर्तुम्, संस्स्कर्तुम् सम् कृ तव्यत्–सँस्स्कर्त्तव्यम्, संस्स्कर्त्तव्यम् की सिद्धि जानना चाहिए ।

आतोऽटि नित्यम् 8.3.3

पद.—आतः 6.1, अटि 7.1, नित्यम् 1.1

अनु.—अनुनासिकः पूर्वस्य रु संहितायाम् ।

अर्थ—अट् परे रहते 'रु' से पूर्व आकार को नित्य अनुनासिक होता है ।

यहाँ 'नित्य' पद 'प्रायेण' के अर्थ में प्रयुक्त है । अतः क्वचित् अनुस्वार भी होता है ।

उदा.—(1) महान् असि–महारु असि–
(दीर्घादटि समानपदे)
महा य् असि–महा असि–महाँ असि ।
(भो भगो० । प्रकृतसूत्र के द्वारा अनुना०)

(2) महान् इन्द्रः–महाँ इन्द्रः ।

विशेष—1. 'आतः' अर्थात् आकार के स्थान पर ही अनुनासिक होता है—

वनस्पतीन् अनु–वनस्पतीरनु (वा०सं० 13.7) यहाँ नकार को 'रु' हुआ । 'रु' से पूर्व आकार नहीं है । अतः इसे अनुनासिक न हुआ ।

2. 'अटि' अर्थात् अट् परे रहते ही अनुनासिक होता है—

भवान् चरति–भवाँश्चरति

नकार को 'रु' हुआ । 'रु' से पूर्व आकार को अनुनासिक न हुआ । कारण कि, इससे परे अट् नहीं है ।

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः 8.3.4

पद.—अनुनासिकात् 5.1, परः 1.1, अनुस्वारः 1.1

अनु.—संहितायाम् पूर्वस्य रु ।

अर्थ—जहाँ अनुनासिक होता है उस पक्ष को छोड़ कर अन्य पक्ष में 'रु' से पूर्व से परे अनुस्वार का आगम होता है ।

'अनुनासिकात्' यहाँ ल्यब् लोप में पंचमी हुई है । इसका अर्थ है—अनुनासिकं विहाय अर्थात् अनुनासिक पक्ष को छोड़कर ।

उदा.—सम् कृ तृच्–सम् सुट् कृतृ–
(सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे)
सम् स् कर्तृ–सरुस् कर्तृ–
(गुण । समः सुटि)
सँर् स्कर्तृ—
(अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य० से पाक्षिक अनुनासिक)
सँः स्कर्तृ—
(खरवसानयोर्विस०)
सँस्स्कर्तृ सु–सँस्स्कर्त्ता ।
(विसर्जनीयस्य सः । वा शरि । सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः महा० 8.3.5 वा०
(जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होता)
संर्स्कर्तृ–सः स्कर्तृ–
(अनुनासिकात्०)
संस्स्कर्तृ सु–संस्स्कर्त्ता ।
(पूर्ववत् सकार)

विशेष—1. महाभाष्य (पा० 2.2.27) में एक वार्तिक प्राप्त होता है—'समो वा लोपमेके' । इस वार्तिक के द्वारा मकार का लोप विकल्प से कहा गया है । लोप पक्ष में एक सकारवान् रूप बनते हैं—

सँस्कर्त्ता, संस्कर्त्ता ।

समः सुटि 8.3.5

पद.—समः 6.1, सुटि 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य रु ।

अर्थ—संहिता के विषय में सुट् परे रहते 'सम्' के स्थान पर 'रु' आदेश होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (मकार) को आदेश होता है ।

उदा.—सम् कर्तृ–सँस्स्कर्त्ता, संस्स्कर्त्ता । सिद्धि पा० 8.3.4 पर देखें ।

विशेष—1. 'समः' अर्थात् 'सम्' के स्थान पर ही 'रु' होता है—उपस्कर्तृ सु–उपस्कर्त्ता ।

यहाँ 'रु' न हुआ ।

2. 'सुटि' अर्थात् सुट् परे रहते ही 'रु' होता है—

समृ कृति–सङ् कृति सु–सङ्कृतिः । यहाँ सुट् परे नहीं है । अतः 'रु' न हुआ ।

पुमः खय्यम्परे 8.3.6

पद.—पुमः 6.1, खयि 7.1, अम्परे 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—संहितायाम् पदस्य रु ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'अम्' परे है जिससे ऐसे 'खय्' के परे रहते 'पुम्' को 'रु' आदेश होता है । अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा अन्त्य अल् (मकार) को आदेश होता है ।

'पुंस्' के सकार का समास की अवस्था में संयोगान्त लोप हो जाता है । उस दशा में 'निमित्ताऽपाये नैमित्तकस्याऽप्यपायः' के द्वारा अनुस्वार को मकार हो जाता है । प्रकृतसूत्र में उसी 'पुम्' का ग्रहण है ।

अम् प्रत्याहार में सभी स्वर, अन्तःस्थ वर्ण, वर्गों के पंचम अक्षर तथा हकार सम्मिलित हैं ।

खय् प्रत्याहार में वर्गों के द्वितीय एवं प्रथम अक्षर, ऊष्मवर्ण तथा हकार आते हैं ।

उदा.—(1) पुम् को किल–पुरु कोकिल–

(अम् (ओकार) परे है खय् (ककार) से । इस खय् के परे रहते मकार को 'रु' हुआ) ।

पुँर् कोकिल
(अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य०)
पुँः कोकिल–पुँस्कोकिलः
(सकार । सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः)
(जिस पक्ष में अनुनासिक न हुआ)
पुंर् कोकिल–पुंः कोकिल सु–
(अनुनासिकात् परो०)
पुंस्कोकिलः ।
(पूर्ववत्) ।

अब दोनों स्थलों पर 'अनचि च' से विकल्प से द्वित्व होकर चार रूप बनते हैं ।

पुँस्कोकिलः (अनुनासिक),
पुंस्कोकिलः (अनुस्वार),
पुँस्स्कोकिलः (अनुनासिक, दो सकार),
पुंस्स्कोकिलः (अनुस्वार, दो सकार) ।

(2) पुम् काम–
पुँस्कामा,
पुंस्कामा,
पुँस्स्कामा,
पुंस्स्कामा ।

(3) पुम् चली–
पुँश्चली,
पुंश्चली,
पुँश्चली,
पुंश्चली ।

सर्वत्र श्चुत्व हो गया है ।

विशेष—1. 'खयि' अर्थात् **'खय्' परे रहते** ही 'रु' आदेश होता है—

पुम् गव–गकार परे है जो 'खय्' नहीं है । अतः 'रु' न हुआ–पुङ्गव सु–पुङ्गवः ।

2. 'अम्परे' अर्थात् **अम्परक** खय् परे रहते 'रु' होता है—

पुम् क्षीरम्–('खय्' (क्) परे है परन्तु उस खय् से परे अम् नहीं है । अतः मकार को 'रु' नहीं हुआ । पुङ्क्षीरम् ।

3. 'पर' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन है कि पुम् आचारः में 'म्' को 'रु' न हुआ । चकार खय् परे है । इससे पर अम् आकार है । परन्तु पुम् के मकार और खय् चकार के मध्य 'आ' का व्यवधान है ।

नश्छव्यप्रशान् 8.3.7

पद.—नः 6.1, छवि 7.1, अप्रशान् 1.1 (षष्ठ्यर्थे प्रथमा)

अनु.—संहितायाम् पदरु अम् परे ।

अर्थ—संहिता के विषय में अम् है परे जिससे ऐसे छव् के परे रहते नकारान्त पद को 'रु' होता है, परन्तु 'प्रशान्' शब्द को नहीं होता है । अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा यह आदेश अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर होता है ।

उदा.—(1) चक्रिन् त्रायस्व–

(छव् (तकार) से परे अम् (रेफ) है । नकार को 'रु' हो गया)

चक्रिँ रु त्रायस्व–चक्रिँः त्रायस्व–
(अनुनासिक हुआ)
चक्रिँस्त्रायस्व
(विसर्जनीयस्य सः)
अनुस्वार पक्ष में—
चक्रिंस्त्रायस्व ।

(2) भवान् चिनोति–
भवारु चिनोति–भवाँश्चिनोति
पक्ष में—
भवांश्चिनोति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) भवान् टीकते–
भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते ।

विशेष—1. 'छवि' अर्थात् **'छव्'** परे रहते ही 'रु' होता है—भवान् करोति–'भवान्' नकारान्त पद है । ककारोत्तरवर्ती अकार परे है परन्तु इससे पूर्व 'छव्' नहीं है । अतः 'रु' न हुआ ।

2. 'अप्रशान्' अर्थात् **'प्रशान्'** शब्द के नाकर को 'रु' नहीं होता है—

प्रशान् छदयति–अम् (अकार) परक छव् (छकार) परे है । 'प्रशान्' के नकार को 'रु' नहीं हुआ । प्रशाञ्छदयति ।

उभयथर्क्षु 8.3.8

पद.—उभयथा–अव्य०, ऋक्षु 7.2

अनु.—संहितायाम् पदस्य रु नः अम्परे छवि ।

अर्थ—ऋङ्मन्त्र के विषय में अम् परक छव् परे रहते नकारान्त पद को दोनों प्रकार से होता है । तात्पर्य यह है कि एक पक्ष में 'रु' तथा दूसरे पक्ष में नकार रहता है ।

उदा.—तस्मिन् त्वा–तस्मिंस्त्वा ।
('रु' हो गया)
तस्मिँस्त्वा
('रु' तथा अनुनासिक हुआ)
पक्ष में—तस्मिन्त्वा ।

विशेष—'ऋक्षु' अर्थात् **ऋङ्मन्त्रों** में ही विकल्प से 'रु' होता है—ताँस्वं (यजु० 11.78) ।

ऋङ्मन्त्र न होने से विकल्प न हुआ ।

दीर्घादटि समानपादे 8.3.9

पद.—दीर्घात् 5.1, अटि 7.1, समानपादे 7.1

अनु.—ऋक्षु संहितायाम् पदस्य नः रु ।

अर्थ—ऋङ्मन्त्र के विषय में समान पाद में अट् परे रहते दीर्घ से उत्तर नकारान्त पद को 'रु' होता है ।

इस सूत्र की शर्त के अनुसार निमित्त व निमित्ती का एक पाद में होना अनिवार्य है ।

उदा.—(1) परिधीन् अति–
परिधीँरति (ऋ० 9.107.19)
(2) देवान् अच्छा–
देवाँ अच्छा (ऋ० 3.1.1)
('रु' को 'य्' तथा यकार लोप हुआ)
(3) महान् इन्द्रः–
महाँ इन्द्रः (ऋ० 8.6.1)

नॄन् पे 8.3.10

पद.—नॄन्-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, पे 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य नः रु ।

अर्थ—संहिता के विषय में पकार परे रहते 'नॄन्' शब्द को 'रु' आदेश विकल्प से होता है ।

अलोऽन्त्य परिभाषा से यह आदेश अन्त्य अल् (नकार) के स्थान पर होता है ।

'नॄन्' द्वितीया बहुवचन का रूप है ।

उदा.—(1) नॄन् पाहि–
नॄ रु पाहि–नॄँ र् पाहि–
(अनुनासिक)
नॄँः पाहि–नॄँ≍पाहि, नॄँः पाहि
(कुप्वोः≍क०ँ से उपध्मानीय व विसर्ग हो गये हैं)
ये दो रूप अनुनासिक पक्ष के हैं ।
इसी प्रकार दो रूप अनुस्वार पक्ष में बनते हैं—
नॄं≍पाहि, नॄंः पाहि ।
(2) नॄन् प्रीणीहि–
नॄँ≍प्रीणीहि,
नॄँः प्रीणीहि,
नॄं≍प्रीणीहि,
नॄंः प्रीणीहि ।

विशेष—'पे' अर्थात् **पकार परे रहते** ही 'रु' विकल्प से होता है—नॄन् भोजयति–

पकार परे नहीं है । अतः 'नॄन्' के नकार को 'रु' न हुआ ।

स्वतवान् पायौ 8.3.11

पद.—स्वतवान्-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, पायौ 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य रु नः ।

अर्थ—पायु शब्द परे रहते स्वतवान् शब्द को 'रु' आदेश होता है, संहिता के विषय में ।

उदा.—स्वतवाँ पायुरग्ने (ऋ० 4.2.6)

कानाम्रेडिते 8.3.12

पद.—कान्-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, आम्रेडिते 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य नः रु ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—संहिता के विषय में आम्रेडित संज्ञक पद परे रहते 'कान्' शब्द को 'रु' आदेश होता है। अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (नकार) को 'रु' होता है।

'कान्' शब्द 'किम्' के द्वितीया बहुवचन का रूप है।

उदा.—कान् कान्-

(द्वितीय 'कान्' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है। इसके परे रहते प्रथम 'कान्' के नकार को 'रु' हो गया)

का रु कान्-काँस्कान्, कांस्कान्।

(पूर्ववत्)

ढो ढे लोपः 8.3.13

पद.—ढः 6.1, ढे 7.1, लोपः 1.1

अनु.—संहितायाम्।

अर्थ—संहिता के विषय में ढकार परे रहते ढकार का लोप होता है।

'ढे' में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—(1) लिह् क्त-लिद् त-

(हो ढः)

लिद् ढ-लिढ-लीढ सु-

(ष्टुना ष्टुः। ढकार लोप। ढ्रलोपे पूर्वस्य०)

लीढः।

(2) उप गुह् क्त-उपगुढ्-

उपगुढ-उपगूढ सु-उपगूढम्।

पूर्ववत्।

लिह्-क्त-लीढः।

गुह्-क्त-गुढः।

मुह्-क्त-मूढः।

मिह्-क्त-मीढः।

तृह्-तृह् तिप् (लोट्)-तृश्नम् ह् ति-तृ न ईम् ह् ति-तृणेह् ति-तृणेद् ति-तृणेद् ढि-तृणे ढि-तृणेदु (भट्टि० 1.19)।

रो रि 8.3.14

पद.—रः 6.1, रि-7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य लोपः।

अर्थ—संहिता के विषय में रेफ परे रहते रेफ का लोप होता है।

उदा.—(1) निस् रजस्-निर् रजस्-

नि रज-नीरज सु-नीरजम्।

(ढ्रलोपे पूर्वस्य०)

(2) अग्निः रथ-अग्निर् रथ-

अग्नीरथ सु-अग्नीरथः।

(3) पुनर् रमते-पुनारमते।

प्रातर् रमते-प्राता रमते।

(4) चक्षुष् राग-चक्षू राग सु-

चक्षू रागः।

अन्य उदा.—नीरन्ध्रम् (शि० 8.3)

विजिग्राहयिषु रामम् (भट्टि० 4.34)

स्यू रत्नानि (मु०चि० 4.10)

अर्थहानी रसभे (मु०चि० 3.18)।

मनुभी रेखा (मु०चि० 6.71)।

भद्रतिथी रविज० (मु०चि०2.49)।

सत्यायू रयः (भाग० 9.15.1)।

राहुकेत्वो रौप्यम् (मु० चि० 4.11)

खरवसानयोर्विसर्जनीयः 8.3.15

पद.—खरवसानयोः 7.2, विसर्जनीयः 1.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य रः।

अर्थ—संहिता के विषय में खर् परे रहते या अवसान में रेफान्त पद को विसर्जनीय होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा यह अन्त्य अल् (रेफ) के स्थान पर ही होता है।

उदा.—(1) बालस् तरति-बाल रु तरति-

बालर् तरति-बालः तरति-बालस्तरति।

(विसर्ग हुआ। 'विसर्जनीयस्य सः' से पुनः सकार हुआ)

(2) बाल सु-बालस्-बाल रु-बालर्-बालः।

('विरामोऽवसानम्' से अवसान संज्ञा। रेफ को विसर्जनीय हुआ)

विशेष—'खरवसानयोः' अर्थात् **खर् परे रहते** अथवा **अवसान में** ही विसर्ग होता है—

अग्निर् नयति-

रेफ से परे न तो 'खर्' है तथा न ही रेफ अवसान में है। अतः विसर्ग न हुआ।

अग्निर्नयति।

रोः सुपि 8.3.16

पद.—रोः 6.1, सुपि 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—संहितायाम् रः विसर्जनीयः ।

अर्थ—सुप् परे रहते 'रु' के स्थान पर विसर्जनीय होता है, संहिता के विषय में ।

'सुप्' के द्वारा सप्तमी बहुवचन का 'सुप्' प्रत्यय गृहीत है।

यह विसर्जनीय आदेश 'रु' के रेफ के स्थान पर होता है, अन्य रेफ के स्थान पर नहीं ।

यह नियम सूत्र है । यह नियम करता है कि सुप् परे रहते 'रु' के रेफ को ही विसर्ग होता है, अन्य रेफ को नहीं ।

उदा.—(1) पयस् सु–पय रु सु–
पयर् सु–पयःसु ।
(2) यशस् सु–यशःसु ।
(3) मनस् सु–मनःसु ।
(4) सर्पिस् सु–सर्पिःषु ।

विशेष—'रः' अर्थात् 'रु' के रेफ को ही विसर्ग होता है—
चतुर् सुप्–
(खरवसानयो० से प्राप्त विसर्ग का बाध हो गया । कारण कि, यहाँ 'रु' का रेफ नहीं है) चतुर्षु ।

(आदेशप्रत्यययोः । अचो रहाभ्यां द्वे । शरोऽचि)

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि 8.3.17

पद.—भोभगोअघोअपूर्वस्य 6.1, यः 1.1, अशि 7.1

अनु.—संहितायाम् रोः रः ।

अर्थ—संहिता के विषय में भो, भगो, अघो तथा अवर्ण–ये हैं पूर्व में जिसके ऐसे 'रु' के रेफ के स्थान पर 'य्' आदेश होता है 'अश्' परे रहते ।

यकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

अश् प्रत्याहार में सभी स्वर, अन्तःस्थ, हकार, वर्गों के पंचम, चतुर्थ व तृतीय अक्षर आते हैं ।

उदा.—(1) भोस् अत्र–भो रु अत्र–भोय् अत्र–
('ओतो गार्ग्यस्य' से यलोप)
भो अत्र ।
भोस् देवाः–भो देवाः ।
('हलि सर्वेषाम्' से यलोप)
(2) भगोस् अत्र–
भगो अत्र ।
(पूर्ववत्)
(3) अघोस् अत्र–
अघो अत्र ।
(पूर्ववत्)
(4) कस् आस्ते–क रु आस्ते–
('रु' से पूर्व अवर्ण (अकार) है । अश् (आकार) परे है । 'य्' हुआ) ।
कय् आस्ते–क आस्ते ।
(लोपः शाकल्यस्य)
देवास् इह–देवा इह ।
बालास् गच्छन्ति–बाला गच्छन्ति ।
(पूर्ववत्)

विशेष—1. 'भोभगोअघोअपूर्वस्य' अर्थात् 'भो' आदि से उत्तर रेफ को 'य्' होता है—
अग्निस् अत्र–अग्निरत्र
यहाँ पूर्वोक्त शर्त पूरी नहीं है । अतः 'य्' न हुआ ।

2. 'अशि' अर्थात् 'अश्' परे रहते ही 'य्' होता है—
बालः–
यहाँ अकार पूर्व में है परन्तु 'रेफ' से उत्तर अश् वर्ण नहीं है । अतः 'य्' न हुआ ।

व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य 8.3.18

पद.—व्योः 6.2, लघुप्रयत्नतरः 1.1, शाकटायनस्य 6.1,

अनु.—संहितायाम् पदान्तस्य भोभगोअघोअपूर्वस्य अशि ।

अर्थ—अश् परे रहते भो, भगो, अघो तथा अकारपूर्व वाले जो पदान्त उनके वकार तथा यकार के स्थान पर लघु-प्रयत्नतर आदेश होता है, शाकटायन आचार्य के मत में । तात्पर्य यह है कि यह विकल्प से होता है ।

जिस वर्ण के उच्चारण में थोड़ा बल लगे, उसे 'लघु-प्रयत्न' कहा जाता है । अतिशय लघुप्रयत्न को 'लघुप्रयत्नतर' कहते हैं ।

संस्कृत में वकार तथा यकार का त्रिविध उच्चारण प्रचलित था । इसे ही गुरु, लघु तथा लघुतर कहा जाता है । पद के आदि में पूर्ण प्रयत्न से उच्चारित 'गुरु' होता है । पद के मध्य में लघुप्रयत्न वाला 'लघु' होता है तथा पद के अन्त में लघुतर प्रयत्न वाला 'लघुतर' कहलाता है ।

माध्यन्दिन परम्परा में गुरु वकार को द्वित्व करके लिखा जाता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार गुरु यकार को भी द्वित्व करके लिखा जाता है। द्र०—

य्यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवम्।

कालान्तर में इस यकार को मध्योदर रेखा से युक्त लिखने की परम्परा चल पड़ी। द्र०–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्।

उदा.—(1) भो स् अत्र–भोय् अत्र–भोयत्र
(उच्चारण सामर्थ्य से यकार लोप न हुआ)
(2) भगोय् अत्र–भगोयत्र।
(3) अघोय् अत्र–अघोयत्र।
(सर्वत्र लघुप्रयत्नतर यकार हुआ है)
(4) कय् आस्ते–कयास्ते, क आस्ते।
(5) द्वौ अत्र–द्वावत्र, द्वा अत्र।

लोपः शाकल्यस्य 8.3.19

पद.—लोपः 1.1, शाकल्यस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य व्योः अपूर्वस्य अशि।

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्ण है पूर्व में जिससे ऐसे पदान्त यकार तथा वकार का लोप होता है अश् परे रहते शाकल्य आचार्य के मत में।

'शाकल्य' ग्रहण से लोप विकल्प से होता है?

उदा.—(1) कस् आस्ते–कय् आस्ते–
क आस्ते।
(यलोप। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ की प्राप्ति हुई परन्तु यलोप सवर्ण दीर्घ की दृष्टि में असिद्ध है। अतः दीर्घ न हुआ)
पक्ष में—कयास्ते।
(2) हरे इह–हरय् इह–हर इह–
(एचोऽयवायावः। यलोप। 'आद् गुणः' से प्राप्त गुण यलोप के असिद्ध होने से न हुआ)
हर इह।
पक्ष में—हरयिह।

ओतो गार्ग्यस्य 8.3.20

पद.—ओतः 5.1, गार्ग्यस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य व्योः लोपः अशि।

अर्थ—ओकार से उत्तर यकार का लोप होता है अश् परे रहते गार्ग्य आचार्य के मत में।

उदा.—भोस् अत्र–भो अत्र।

शेष उदा.—पा० 8.3.17 पर देखें।

गार्ग्य ग्रहण सम्मान के लिए है। अतः विकल्प प्रवृत्त नहीं होता है।

उञि च पदे 8.3.21

पद.—उञि 7.1, च–अव्य०, पदे 7.1

अनु.—संहितायाम् अपूर्वस्य व्योः लोपः।

अर्थ—संहिता के विषय में अवर्ण है पूर्व में जिसके ऐसे पदान्त 'य्' तथा 'व्' का लोप होता है, उञ् परे रहते।

उदा.—स स् उ एकाग्निः–स्र रु उ एकाग्निः–स य् उ एकाग्निः।

अकार पूर्व में है। यकार पदान्त में है। उञ् पद परे है। अतः 'य्' का लोप न हुआ।

हलि सर्वेषाम् 8.3.22

पद.—हलि 7.1, सर्वेषाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् पदस्य भोभगोअघोअपूर्वस्य व्योः लोपः।

अर्थ—संहिता के विषय में भो, भगो, अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले पदान्त 'य्' का लोप सभी आचार्यों के मत में होता है, हल् परे रहते।

उदा.—भोस् हसति–भो हसति।
भगोस् हसति–भगो हसति।
अघोस् हसति–अघो हसति।
बालकास् गच्छन्ति–बालका गच्छन्ति।

मोऽनुस्वारः 8.3.23

पद.—मः 6.1, अनुस्वारः 1.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य हलि।

अर्थ—हल् परे रहते पदान्त में मकार के स्थान पर अनुस्वार होता है, संहिता के विषय में।

उदा.—जलम् वहति–जलं वहति।
हरिम् वन्दे–हरिं वन्दे।

विशेष—'हलि' अर्थात् हल् परे रहते ही अनुस्वार होता है—

गृहम् आगच्छति–

यहाँ हल् परे नहीं है। अतः अनुस्वार न हुआ।

नश्चाऽपदान्तस्य झलि 8.3.24

पद.—नः 6.1, च–अव्य०, अपदान्तस्य 6.1, झलि 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—संहितायाम् मः अनुस्वारः ।

अर्थ—संहिता के विषय में झल् परे रहते अपदान्त नकार तथा मकार के स्थान पर अनुस्वार आदेश होता है ।

उदा.—(1) पयस् जस्-पयस् शि-पय नुम् स् इ-पयन् स् इ-पयान् स् इ-

नकार अपदान्त में है । इससे परे झल् (सकार) है । अतः अनुस्वार हो गया—

पयांसि ।

धनुष् जस्-धनूंषि ।

(पूर्ववत्) ।

(2) आक्रम् त-आक्रम् स्य त-

आक्रम् स्यते-आक्रंस्यते ।

विशेष—1. 'अपदान्तस्य' अर्थात् जो **पदान्त में नहीं** है ऐसे नकार व मकार के स्थान पर अनुस्वार होता है—

राजन् पाहि-

नकार पदान्त में है । अतः झल् परे रहते भी अनुस्वार न हुआ ।

2. 'झलि' अर्थात् झल् परे रहते ही अनुस्वार होता है—

गम् यते-

मकार पदान्त में नहीं है । परन्तु परे झल् नहीं है । अतः अनुस्वार न हुआ-गम्यते ।

हन् यते-

इसी प्रकार नकार को अनुस्वार न हुआ ।

मो राजि समः क्वौ 8.3.25

पद.—मः 1.1, राजि 7.1, समः 6.1, क्वौ 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य मः ।

अर्थ—संहिता के विषय में क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु परे रहते 'सम्' के मकार के स्थान पर मकार आदेश होता है । 'क्वि' के द्वारा क्विप् का ग्रहण होता है ।

उदा.—सम् राट्-

('राट् क्विप् प्रत्ययान्त 'राज्' है । 'सम्' अव्यय है । अतः पदसंज्ञक है । 'मोऽनुस्वारः' से मकार को अनुस्वार प्राप्त था । इसका बाध हो गया)

सम्राट् ।

विशेष—1. 'राजि' अर्थात् **'राज्' धातु के** परे रहते ही मकार होता है—

सम् यत्-

यत् क्विबन्त है । 'राज्' धातु परे न होने से 'सम्' के मकार को मकार नहीं हुआ । अनुस्वार हो गया—

संयत् ।

2. 'सम्' अर्थात् **'सम्' के मकार को** ही मकार होता है—किम् राट्-

'राट्' क्विबन्त 'राज्' परे है । परन्तु 'सम्' का मकार नहीं है । अतः इस मकार के स्थान पर मकार न हुआ—किंराट् ।

3. 'क्वौ' अर्थात् **क्विबन्त** राज् परे रहते ही मकार होता है—सम् राजते-

'राज्' धातु परे है परन्तु वह क्विप् प्रत्ययान्त नहीं है । अतः 'सम्' के मकार को मकार न हुआ । मोऽनुस्वारः ।

संराजते ।

हे मपरे वा 8.3.26

पद.—हे 7.1, मपरे 7.1, वा-अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् पदस्य मः मः ।

अर्थ—संहिता के विषय में मकार है परे जिससे ऐसे हकार के परे रहते मकार के स्थान पर मकार विकल्प से होता है ।

पक्ष में अनुस्वार होता है ।

उदा.—किम् ह्लयति-

(हकार से परे मकार है । अतः इसके परे रहते मकार को पाक्षिक मकार हुआ)

किम् ह्लयति ।

पक्ष में—किं ह्लयति ।

इसी प्रकार—कथम् ह्लयति

कथम् ह्लयति, कथं ह्लयति ।

विशेष—यकार, वकार अथवा लकार है परे जिसके ऐसे हकार के परे रहते मकार के स्थार पर विकल्प से क्रमशः यकार, वकार तथा लकार होते हैं ।[1]

तात्पर्य यह है कि यकारपरक हकार के परे रहते मकार को यकार होता है । वकार परक हकार परे रहते मकार को वकार होता है ।

लकारपरक हकार परे रहते मकार को लकार होता है ।

इस प्रकार—'यथासख्यमनुदेशः' के द्वारा आदेश होते हैं । काशिकाकार प्रभृति विद्वानों के अनुसार मकार के स्थान पर

1. काशि० 8.3.26 (वा०) यवलपरे यवला वा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने वाले य्, व्, ल् आदेश 'स्थानेऽन्तरतमः' से अनुनासिक आदेश (यँ, वँ, लँ) होते हैं।[1]

यद्यपि विधीमान यण् अपने सवर्णी का ग्राहक नहीं होता है। तदपि इन विद्वानों का मत है कि विधीयमान अण् कभी कभी सवर्णी का ग्राहक होता है। इस विषय में आचार्य पाणिनि का 'ऋत उत्' सूत्र ज्ञापक है।

यहाँ विधीयमान उकार का तपरकरण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि कभी-कभी विधीयमान अण् अपने सवर्णी का भी ग्राहक होता है। अतः यहाँ अनुनासिक आदेश (यँ, वँ, लँ) ही होते हैं।

नागेशभट्ट का मत इन सभी व्याख्याकारों से भिन्न है। उनके अनुसार विधीयमान अण् अपने सवर्णी के ग्राहक नहीं होते हैं। इसमें आचार्य का सूत्रपाठ प्रमाण है। यथा—

'अर्थवदधातुरप्रत्यय०' तथा 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' सूत्रपाठ में मतुप् के मकार के स्थान पर निरनुनासिक वकार (द्र० अर्थवद्, यण्वतः) हुआ है। अतः यहाँ निरनुनासिक आदेश (य्, व्, ल्) ही होते हैं।

उदा.—(1) किम् ह्यः–
किय्ँ ह्यः, किं ह्यः।
पक्ष में—'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार होता है।
(2) किम् ह्लयति, किं ह्लयति।
किव्ँ ह्लयति, किं ह्लयति–
(3) किम् ह्लादयति–
किल्ँ ह्लादयति, किं ह्लादयति।

इसी प्रकार—इदम् ह्यस्तनम्,
इदय्ँ ह्यस्तनम्, इदं ह्यस्तनम्।
किम् ह्वयतु–
किव्ँ ह्वयतु, किं ह्वयतु।
मित्रम् ह्लादते–
मित्रल्ँ ह्लादते, मित्रं ह्लादते।

नपरे नः 8.3.27

पद.—नपरे 7.1, नः 1.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य हे मः वा।

अर्थ—संहिता के विषय में नकार है परे जिससे ऐसे हकार के परे रहते मकार के स्थान पर नकार विकल्प से होता है।

पक्ष में अनुस्वार होता है।

नकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—किम् ह्नुते–
किन् ह्नुते, किं ह्नुते।

इसी प्रकार—कथम् ह्नुते–
कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।

ङ्णोः कुक् टुक् शरि 8.3.28

पद.—ङ्णोः 6.2, कुक् टुक् 1.1, शरि 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य वा।

अर्थ—संहिता के विषय में शर् परे रहते ङकार का व णकार को यथासंख्य करके कुक् व टुक् का आगम विकल्प से होता है।

कुक् व टुक् के ककार व उकार की इत्संज्ञा है। दोनों आगम कित् है। अतः अन्त अवयव होते हैं।

यथासंख्य करके ङकार को कुक् व णकार को टुक् होता है।

उदा.—(1) प्राङ् षष्ठः–
प्राङ् कुक् षष्ठः–प्राङ्क्षष्ठः–
प्राङ्क्षष्ठः।
पक्ष में—प्राङ् षष्ठः।
प्राङ् शेते–
प्राङ् क्शेते।
पक्ष में—प्राङ् शेते।
प्राङ् साये–
प्राङ् क्साये, प्राङ् साये।
(2) सुगण् षष्ठः–
सुगण् टुक् षष्ठः–सुगण्ट्षष्ठः।
पक्ष में—सुगण् षष्ठः।
वण् शेते–
वण्ट् शेते, वण् शेते।

ङः सि धुट् 8.3.29

पद.—ङः 5.1, सि 7.1, धुट् 1.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य वा।

अर्थ—ङकार से उत्तर सकार परे रहते 'धुट्' आगम विकल्प से होता है।

---

1. काशि० (पद०) 8.3.26 ... आन्तरतम्याद् अनुनासिका भवन्ति।
काशि० (न्यास) 8.3.26 ... आन्तरतम्याद् सानुनासिका एव भवन्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ङः' पंचम्यन्त पद है। अतः 'तस्मादित्युत्तरस्य' से डकार से उत्तर पर को 'धुट्' प्राप्त होता है।

'सि' में सप्तमी विभक्ति है। अतः 'तस्मिन्निति—' के द्वारा सकार से पूर्व को 'धुट्' प्राप्त होता है। जहाँ पंचमी तथा सप्तमी दोनों विभक्तियों का निर्देश होता है, वहाँ पञ्चमी ही बलवान् होती है। द्र०—उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्। अतः डकार से उत्तर अव्यवहित पर (अर्थात् सकार) का अवयव 'धुट्' होगा।

धुट् के धकार व टकार की इत्संज्ञा है। अतः यह आदि अवयव होता है।

उदा.—(1) षड् सन्त-षड् ध् सन्तः-
('खरि च' असिद्ध है।
अतः प्रथम 'धुट्' आगम हुआ)
षड्त् सन्तः-
(खरि च)
षट्त् सन्तः।
(खरि च)

पक्ष में—षड्सन्तः-षट् सन्तः।
(धुट् न हुआ। 'न पदान्ताट् टोरनाम्' से ष्टुत्व का निषेध हुआ है)।

ध्यान रहे कि चर्त्व के असिद्ध होने से दोनों रूपों में 'चयो द्वितीयाः शरि-पा० 8.4.48 वा० की प्रवृत्ति नहीं होती है।

अन्य उदा.—मधुलिह् सुप्-
मधुलिट् त्सु, मधुलिट् सु।

नश्च 8.3.30

पद.—नः 5.1, च-अव्य०।

अनु.—संहितायाम् पदस्य सि धुट् वा।

अर्थ—नकारान्त से उत्तर सकार को धुट् आगम विकल्प से होता है।

उदा.—(1) भवान् साये-भवान् ध् साये-
भवान्त्साये।
(खरि च)
पक्ष में—भवान् साये।
(2) सन् स-सन् ध् सः-सन्त् सः।
पक्ष में—सन् सः।
(3) भवान् सहज०-
भवान्त्सहज० (वेणी० 6.24)।

शि तुक् 8.3.31

पद.—शि 7.1, तुक् 1.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य वा नः।

अर्थ—शकार परे रहते पदान्त नकार को 'तुक्' आगम विकल्प से होता है।

'तुक्' के तकार व उकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा.—(1) भवान् शेते-भवान् त् शेते-
(कित् होने से 'तुक्' अन्त अवयव होता है)
भवान् च् शेते-
(स्तोः श्चुना श्चुः)
भवाञ् च् शेते-
(स्तोः श्चुना श्चुः)
भवाञ् च् छेते-
('शश्छोऽटि' से विकल्प छकार)
भवाञ् छेते (क)
('झरो झरि सवर्णे' से चकार का विकल्प से लोप)
भवाञ् च् छेते (ख)
(चकार लोप अभाव पक्ष)
भवाञ् च् शेते (ग)
(छकार अभाव पक्ष)
भवाञ् शेते (घ)
(तुक् अभाव पक्ष में)
इस प्रकार चार रूप बनते हैं।

(2) सन् शम्भुः-
सञ् छम्भुः। सञ् च् छम्भुः। सञ् च् शम्भुः। सञ् शम्भुः।

(3) ब्रह्मन् शार्वः-
ब्रह्मञ् छार्वः। ब्रह्मञ् च्छार्वः (वाम० 6.71)
ब्रह्मञ् च्शम्भुः। ब्रह्मञ् शम्भुः।

(4) रम्यान् शरीरे-
रम्याञ् छरीरे (वाम० 6.104)। रम्याञ् च् छरीरे। रम्याञ् च् शरीरे। रम्याञ् शरीरे।

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् 8.3.32

पद.—ङमः 5.1, ह्रस्वात् 5.1, अचि 7.1, ङमुट् 1.1, नित्यम् 1.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—ह्रस्व से उत्तर जो ङम्, वह है अन्त में जिसके, ऐसे पद से उत्तर अच् को ङमुट् का नित्य आगम होता है।

ङमुट् के टकार व उकार की इत्संज्ञा होती है। 'ङम्' एक प्रत्याहार हैं। इसमें ङ्, ण्, न् ये तीन अक्षर हैं। तीनों संज्ञियों के साथ टित्त्व का सम्बन्ध होकर ङुट्, णुट्, नुट् ये तीन आगम प्राप्त होते हैं।

'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' से ये आदेश यथासंख्य करके होते हैं।

भाव यह है कि ङकार से उत्तर अच् को ङुट् आगम, णकार से उत्तर अच् को णुट् आगम तथा नकार से उत्तर अच् को नुट् आगम होता है।

उदा.—(1) प्रत्यङ् आत्मा–

(यकारस्थ अकार ह्रस्व है। इससे उत्तर ङम् (ङ्) है। वह 'प्रत्यङ्' इस पद के अन्त में है। इससे उत्तर अच् (आकार) को ङुट् आगम हुआ)

प्रत्यङ् ङ् आत्मा–प्रत्यङ्ङात्मा।

(2) सुगण् ईशः–

सुगण् णुट् ईशः–सुगण्णीशः।

(3) सन् अच्युतः–

सन् नुट् अच्युतः–सन्नच्युतः।

कुर्वन् न् आस्ते–कुर्वन्नास्ते।

राजन् एवम्–राजन्नेवम् (भाग० 11.2.10) तस्मिन् अद्रौ–तस्मिन्नद्रौ (मे० 2)। गच्छन् ऊर्ध्वमगच्छन्नूर्ध्वम् (तर० 2.164)।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'ङमः' अर्थात् 'ङम्' है अन्त में जिसके ऐसे पद से उत्तर अच् को 'ङमुट्' होता है—त्वम् आस्से–

'त्वम्' में अन्त्य मकार है जो 'ङम्' नहीं है। अतः अच् (आकार) को ङमुट् आगम नहीं हुआ–त्वमास्से।

2. 'ह्रस्वात्' अर्थात् **ह्रस्व से उत्तर** जो ङम्, वह है अन्त में जिसके उससे उत्तर अच् को ङमुट् होता है—

प्राङ् आस्ते–

अन्त में ङकार (ङम्) है परन्तु वह ह्रस्व से उत्तर नहीं है। अतः अच् (आकार) को ङुट् आगम न हुआ—

प्राङास्ते।

3. 'अचि' अर्थात् **अच् को ही** ङमुट् आगम होता है—

प्रत्यङ् करोति–

ह्रस्व (यकारस्थ अकार) से उत्तर ङम् (ङकार) है। वह ङकार प्रत्यङ् के अन्त में है। उससे उत्तर अच् नहीं है। अतः ङुट् आगम न हुआ।

4. प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त 'नित्यम्' पद 'प्रायः' का समानार्थक है। इसमें आचार्य पाणिनि की प्रवृत्ति ही प्रमाण है। यथा—'सुप्तिङन्तं पदम्' (ङुट् का अभाव), 'इको यणचि' (णुट् का अभाव) तथा 'सनाद्यन्ता धातवः' (नुट् का अभाव) इत्यादि सूत्रपाठ से ज्ञापित होता है कि आचार्य को 'ङमुट्' आगम प्रायशः अभीष्ट है।

मय उञो वो वा 8.3.33

पद.—मयः 5.1, उञः 6.1, वः 1.1, वा–अव्य०।

अनु.—संहितायाम् अचि।

अर्थ—संहिता के विषय में 'मय्' प्रत्याहार से उत्तर उञ् निपात को विकल्प से 'व्' आदेश होता है अच् परे रहते।

वकार में अकार उच्चारणार्थ है।

'मय्' प्रत्याहार में ञकार को छोड़कर सभी वर्गीय अक्षर आते हैं।

उदा.—(1) शम् उ अस्ति–

शम् व् अस्ति–शम्वस्ति।

'मोऽनुस्वारः' (पा० 8.3.23) की दृष्टि में प्रकृतसूत्र असिद्ध है। अतः अनुस्वार नहीं होता है।

पक्ष में—शमु उक्तम्।

(2) किम् उ उक्तम्–

किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

सर्वत्र 'उञ ऊँ' से प्रगृह्य संज्ञा होकर 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' से प्रकृतिभाव तथा 'इको यणचि' से यणादेश प्राप्त था।

विसर्जनीयस्य सः 8.3.34

पद.—विसर्जनीयस्य 6.1, सः 1.1

अनु.—संहितायाम्, खरि (मण्डूकगत्या)।

अर्थ—संहिता के विषय में खर् परे रहते विसर्जनीय के स्थान पर सकार होता है।

सकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा.—(1) बालः तरति–

बालस् तरति–बालस्तरति।

(2) वृक्षः छादयति–वृक्षस् छादयति–

वृक्षश्छादयति

(स्तोः श्चुना श्चुः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) बालः टीकते–बालस् टीकते–
बालष्टीकते ।
(ष्टुना ष्टुः)

शर्परे विसर्जनीयः 8.3.35

पद.—शर्परे 7.1, विसर्जनीयः 1.1

अनु.—संहितायाम् विसर्जनीयस्य खरि ।

अर्थ—संहिता के विषय में शर् है परे जिससे ऐसे खर् के परे रहते विसर्ग के स्थान पर विसर्ग होता है ।

'शर् में श्, ष्, स्–ये तीन वर्ण होते हैं ।

उदा.—(1) शशः क्षुरम्–

खर् (ककार) परे है । खर् से परे शर् (षकार) है । अतः विसर्ग के स्थान पर विसर्ग हो गया है ।

(2) पुरुषः त्सरुः–
(पूर्ववत्)

प्रकृतसूत्र के द्वारा विसर्ग के स्थान पर विसर्ग कथन का अभिप्राय है कि सत्व (विसर्जनीयस्य सः) तथा जिह्वामूलीय या उपध्मानीय (कुप्वोः ≍क≍पौ च) नहीं होते हैं ।

यदि केवल सकार का निवारण ही आचार्य को इष्ट होता तो 'शर्परे विसर्जनीयः' के स्थान पर 'शर्परे न' ऐसा सूत्रपाठ कर देते ।

वा शरि 8.3.36

पद.—वा–अव्य०, शरि 7.1

अनु.—संहितायाम् विसर्जनीयस्य विसर्जनीयः ।

अर्थ—शर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग विकल्प से होता है। पक्ष में सकार होता है ।

उदा.—(1) बालाः सन्ति–
बालाः सन्ति, बालास्सन्ति ।
(2) बालः शेते–
बालः शेते, बालस् शेते–बालश्शेते ।
(3) कवयः षट्–
कवयः षट्,
कवयस् षट्–कवयष्षट् ।

विशेष—खर् है परे जिससे ऐसे शर् परे रहते विसर्ग का विकल्प से लोप होता है[1]—

वृक्षाः स्थातारः यहाँ खर् (थकार) परक शर् (सकार) परे है । अतः विसर्ग का विकल्प से लोप हुआ–**वृक्षा स्थातारः** ।

पक्ष में 'वा शरि' से विकल्प से विसर्ग हुआ–

वृक्षाः स्थातारः ।

विसर्ग अभाव पक्ष में 'विसर्जनीयस्य सः' से सकार हुआ–**वृक्षास्स्थातारः** ।

कुप्वोः ≍क≍पौ च 8.3.37

पद.—कुप्वोः 7.2, ≍क≍पौ 1.2

अनु.—संहितायाम् विसर्जनीयस्य विसर्जनीयः ।

अर्थ—कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते विसर्ग के स्थान पर क्रमशः जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय आदेश होते हैं तथा पक्ष में विसर्ग होता है । भाव यह है कि कवर्ग परे रहते जिह्वामूलीय होता है तथा पवर्ग परे रहते उपध्मानीय होता है ।

उदा.—(1) बालः करोति–
बाल≍करोति । बालः करोति ।
(2) बालः खनति–
बाल≍खनति । बालः खनति ।
(3) बालः पचति–
बाल≍पचति । बालः पचति ।
(4) वृक्षः फलति–
वृक्ष≍फलति । वृक्षः फलति ।

सोऽपदादौ 8.3.38

पद.—सः 1.1, अपदादौ 7.1

अनु.—विसर्जनीयस्य कुप्वोः संहितायाम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में अपदादि कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते विसर्जनीय के स्थान पर सकार होता है ।

उदा.—(1) पयस् पाशप्
('याप्ये पाशप्' से 'पाशप्' हुआ)
पचरु पाश–पयः पाश–पयस्पाश सु–पयस्पाशम् ।
(2) पयस् कल्प–पयः कल्प–पयस्कल्प सु–पयस्कल्पम् ।
(ईषदसमाप्तौ०)
(3) यशस् काम्यच्–यशः काम्य–
(काम्यच्च)
यशस्काम्यति ।

विशेष—1. 'अपदादौ' अर्थात् अपदादि कवर्ग या पवर्ग परे रहते ही सकार होता है—

पयः कामयते–

1. महा० 8.3.36 (वा०) खपरे शरि वा लोपो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पदादि में ककार है जिसके परे रहते सकार न हुआ)
पय✕कामयते ।
पयः पिबति–
(पूर्ववत् सकार न हुआ)
पय✕पिबति ।

2. अपदादि क वर्ग या पवर्ग परे रहते अव्यय से भिन्न शब्द के विसर्जनीय को सकार होता है[1]—

प्रातः कल्पम्–अपदादि कवर्ग (ककार) परे है । अतः प्रकृत-सूत्र के द्वारा विसर्ग को सकार प्राप्त हुआ परन्तु प्रकृत वार्तिक के द्वारा सकार न हुआ । कारण कि, विसर्ग अव्यय का है ।

3. काम्य परे रहते 'रु' के रेफ का ही सकार होता है । द्र० काशिका० 8.3.38

गीः काम्यति–यहाँ सकार न हुआ ।

इणः षः 8.3.39

पद.—इणः 5.1, षः 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदादौ विसर्जनीयस्य कुप्वोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में पद के इण् से उत्तर विसर्जनीय के स्थान में सकार आदेश होता है, अपदादि कवर्ग या पवर्ग परे रहते ।

उदा.—(1) सर्पिस् कल्पम्–सर्पिःकल्पम्–सर्पिष्कल्पम् ।
(2) सर्पिस् काम्यति–सर्पिष्काम्यति ।
(3) सर्पिस् पाशम्–
सर्पिः पाशम्–सर्पिष्पाशम्
(4) यजुस् पाशम्–
यजुः पाशम्–
यजुष्पाशम् ।

नमस्पुरसोर्गत्योः 8.3.40

पद.—नमस्पुरसोः 6.2, गत्योः 6.2

अनु.—संहितायाम् विसर्जनीयस्य सः कुप्वोः ।

अर्थ—नमस् तथा पुरस् गतिसंज्ञक शब्दों के विसर्ग को सकार होता है, कवर्ग या पवर्ग परे रहते ।

उदा.—(1) नमस् कर्तृ–
('साक्षात् प्रभृतीनि च' से गतिसंज्ञा)
नमः कर्तृ–नमस्कर्त्ता ।
('सु' हो गया)
(2) पुरस् कर्तुम्–
पुरः कर्तुम्–पुरस्कर्तुम् ।
('पुरोऽव्ययम्' से गति संज्ञा)

विशेष—'गत्योः' अर्थात् **गति संज्ञक** नमस् तथा पुरस् के विसर्ग को सकार होता है—पुरःकरोति—

यहाँ 'पुर् शस्–पुरस्' शब्द है जिसकी गतिसंज्ञा नहीं है । अतः सकार न हुआ ।

इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य 8.3.41

पद.—इदुदुपधस्य 6.1, च–अव्य०, अप्रत्ययस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् कुप्वोः विसर्जनीयस्य षः ।

अर्थ—इकार और उकार हैं उपधा में जिसके ऐसे प्रत्यय-भिन्न समुदाय के विसर्जनीय को षकार होता है, कवर्ग या पवर्ग परे रहते ।

उदा.—(1) निस् कृतम्–
निः कृतम्–निष्कृतम् ।
('निस्' की उपधा में इकार है) ।
(2) निस् पीतम्–
निः पीतम्–निष्पीतम् ।
(3) दुस् कृतम्–दुष्कृतम् ।
दुस् पीतम्–दुष्पीतम् ।
(4) प्रादुस् कृतम्–प्रादुष्कृतम् ।
(5) प्रादुस् पीतम्–प्रादुष्पीतम् ।

विशेष—1. 'अप्रत्ययस्य' अर्थात् **प्रत्ययभिन्न के** विसर्जनीय को षकार होता है—

अग्निः करोति–उपधा में इकार है । इसका विसर्ग प्रत्यय (सु) से निष्पन्न है । अतः ककार परे रहते षकार न हुआ ।

इसी प्रकार 'वायुः करोति' में षकार न हुआ ।

2. पुम् तथा मुहुस् के विसर्ग को षत्व नहीं होता है[2]—

पुंस्कामा ।
मुहु✕कामा ।

तिरसोऽन्यतरस्याम् 8.3.42

पद.—तिरसः 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

1. महा० 8.3.38 (वा०) सोऽपदादावित्यनव्ययस्येति वक्तव्यम् ।

2. महा० 8.3.41 (वा०) पुम्मुहुसोः प्रतिषेधो वक्तव्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—संहितायाम् पदस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोः सः ।

अर्थ—कवर्ग या पवर्ग परे रहते 'तिरस्' के विसर्जनीय को विकल्प करके सकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) तिरस् कर्त्ता–तिरः कर्त्ता–तिरस्कर्त्ता ।
पक्ष में—तिरःकर्त्ता ।

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे 8.3.43

पद.—द्विस्त्रिश्चतुः–अविभक्त्यन्तरूपम्, इति–अव्य०, कृत्वोऽर्थे 7.1

अर्थ—कृत्वसुच् के अर्थ में द्विस्, त्रिस् तथा चतुर्–इनके विसर्ग को विकल्प से षकार आदेश होता है, कवर्ग या पवर्ग परे रहते ।

उदा.—(1) द्वि सुच्–द्विस्–
(द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्)
द्विस्करोति–द्विःकरोति–
द्विष्करोति ।
पक्ष में—द्विःकरोति ।

(2) त्रिस्करोति–
त्रिष्करोति ।
पक्ष में—त्रिःकरोति ।

(3) चतुस्करोति–
चतुष्करोति ।
पक्ष में—चतुःकरोति ।

(4) द्विस् पचति–
द्विष्पचति । द्विःपचति ।

(5) त्रिस् पचति–
त्रिष्पचति । त्रिःपचति ।

(6) चतुस्पचति–
चतुष्पचति । चतुः पचति ।

विशेष—'कृत्वोर्थे' अर्थात् **कृत्वसुच् के अर्थ** में ही षकार होता है—
चतुस् कपालम्
यह कृत्वसुच् अर्थ में नहीं है ।
चतुष्कपालम् ।

इसुसोः सामर्थ्ये 8.3.44

पद.—इसुसोः 6.2, सामर्थ्ये 7.1

अनु.–संहितायाम् विसर्जनीयस्य कुप्वोः षः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में परस्पर एकार्थी भाव होने पर कवर्ग या पवर्ग परे रहते पदान्त में इस् और उस् के विसर्ग के स्थान पर विकल्प से षकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) सर्पिस् करोति–सर्पिःकरोति–
सर्पिष्करोति ।
पक्ष में—सर्पिः करोति ।

(2) यजुस्करोति–
यजुष्करोति । यजुःकरोति ।

नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य 8.3.45

पद.—नित्यम् 1.1, समासे 7.1, अनुत्तरपदस्थस्य 6.1,

अनु.—संहितायाम् विसर्जनीयस्य इसुसोः कुप्वोः षः ।

अर्थ—संहिता के विषय में समास में अनुत्तरपदस्थ इस्, उस् के विसर्जनीय को नित्य षकार होता है कवर्ग या पवर्ग परे रहते । जो उत्तरपद में स्थित न हो उसे अनुत्तरपदस्थ कहते हैं ।

उदा.—(1) सर्पिषः कुण्डिका–
सर्पिस् कुण्डिका–सर्पिष्कुण्डिका
('सर्पिस्' उत्तरपद में नहीं है । अतः षकार हो गया)।

(2) धनुष् कपालम्–
धनुष्कपालम् ।
इसी प्रकार—धनुष्खण्ड० (मे० 15)।

(3) सर्पिस् पानम्–
सर्पिष्पानम् ।

(4) धनुष् फलम्–
धनुष्फलम् ।

विशेष—'अनुत्तरपदस्थस्य' अर्थात् जो **उत्तरपद में** स्थित नहीं है, उसके विसर्जनीय को षकार होता है—
परमसर्पिः कुण्डिका ।
परमधनुः कपालम् ।

अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य 8.3.46

पद.—अतः 5.1, कृकमि...कर्णीषु 7.3, अनव्ययस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् विसर्जनीयस्य समासे अनुत्तरपदस्थस्य नित्यम् सः ।

अर्थ—कृ, कम्, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा तथा कर्णी शब्दों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के परे रहते ह्रस्व अकार से उत्तर अनुत्तरपदस्थ अव्यय भिन्न विसर्ग को समास में नित्य सकार होता है ।

उदा.—(1) अयस् कारः–अयःकारः–अयस्कारः ।
(2) अयस् कामः–अयस्कामः ।
(3) अयस् कंसः–अयस्कंसः ।
(4) अयस् कुम्भः–अयस्कुम्भः ।
(5) अयस् पात्रम्–अयस्पात्रम् ।
(6) अयस् कुशा–अयस्कुशा ।
(7) अयस् कर्णी–अयस्कर्णी ।

सूत्र की शर्त के अनुसार—

विशेष—1. 'अतः' अर्थात् **अवर्ण से उत्तर** विसर्ग को सकार होता है—

गिर् कारः–गीर् कारः–गीःकारः ।

'कृ' परे है । समास है । विसर्ग अव्यय का अवयव नहीं है । परन्तु विसर्ग अवर्ण से उत्तर नहीं है । अतः सकार न हुआ।

2. तपरकरण का प्रयोजन है कि **ह्रस्व** अकार से उत्तर विसर्ग को सकार होता है—भास् करणम्–भाःकरणम् ।

कृ (करण) परे है । समास है । विसर्ग अव्यय का अवयव नहीं है परन्तु वह ह्रस्व अकार से उत्तर नहीं है । अतः सकार न हुआ ।

3. 'अनव्ययस्य' अर्थात् **अव्यय से भिन्न** का अवयव जो विसर्ग, उसे सकार होता है—श्वस् कारः—श्वःकारः समास है । 'कार' परे है । ह्रस्व अकार से उत्तर विसर्ग है परन्तु अव्यय (श्वः) का अवयव होने से सकार न हुआ । इसी प्रकार 'पुनःकारः' में सकार न हुआ ।

4. 'समासे' का अधिकार होने से–यशः करोति में सकार नहीं होता है । ह्रस्व अकार से उत्तर विसर्ग है । विसर्ग अनव्यय का अवयव है । 'कृ' परे है परन्तु समास न होने से सकार न हुआ ।

5. 'कृ आदिषु' अर्थात् **'कृ' आदि** के परे रहते ही सकार होता है—

पयः पानम् यहाँ सूत्र की सभी शर्तें पूरी हैं । केवल कृ आदि शब्द परे नहीं हैं । अतः सकार न हुआ ।

6. 'अनुत्तरपदस्थस्य' का अधिकार होने से उत्तरपदस्थ विसर्ग को सकार नहीं होता है—परमपयः कामः

यहाँ 'कामः' शब्द परे हैं । ह्रस्व अकार से उत्तर विसर्ग है जो अव्यय का अवयव नहीं है । परन्तु उत्तरपद में स्थित होने से सकार न हुआ ।

अधःशिरसी पदे 8.3.47

पद.—अधःशिरसी 1.2 (षष्ठ्यर्थे), पदे 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य विसर्जनीयस्य नित्यम् समासे अनुत्तरपदस्थस्य सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में समास में पद शब्द परे रहते अनुत्तरपदस्थ अधस् तथा शिरस् के विसर्ग को सकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) अधस् पदम्–अधः पदम्–
समास है । अनुत्तरपदस्थ विसर्ग है । अतः सकार हुआ–
अधस्पदम् ।

(2) शिरस् पदम्–शिरः पदम्–शिरस्पदम् ।

कस्कादिषु च 8.3.48

पद.—कस्कादिषु 7.3, च–अव्य० ।

अनु.—पदस्य संहितायाम् विसर्जनीयस्य सः षः कुप्वोः ।

अर्थ—संहिता के विषय में कवर्ग या पवर्ग परे रहते कस्कादि गणपठित शब्दों के विसर्ग को सकार और षकार होता है ।

'इणः षः' से षकार होता है तथा अन्यत्र सकार होता है ।

उदा.—(1) कः कः–कस्कः ।
(नित्यवीप्सयोः)

(2) कुतः कुतः–कुतस्कुतः–
(वीप्सा । सकार)
कुतस्कुत अण्–कुतस्कुत् अ–
(तत आगतः । अव्ययानां भमात्रे टिलोपः वा०)
कौतस्कुत सु–कौतस्कुतः ।

(3) सद्यः कालः–सद्यस्कालः ।

(4) शुनः कर्णः–शुनस्कर्णः ।

छन्दसि वाऽप्राऽऽप्रेडितयोः 8.3.49

पद.—छन्दसि 7.1, वा–अव्य०, अप्राप्रेडितयोः 7.2

अनु.—संहितायाम् पदस्य कुप्वोः सः ।

अर्थ—वेद के विषय में कवर्ग अथवा पवर्ग के परे रहते विसर्ग को विकल्प से सकार होता है, परन्तु 'प्र' तथा आप्रेडित पद के परे रहते नहीं होता है ।

उदा.—(1) अयःपात्रम्–
(सकार न हुआ)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयस्पात्रम्–
(सकार हो गया)

(2) उरुणस्कारः ।

विशेष—'अप्राऽऽम्रेडितयोः' अर्थात् **'प्र' अथवा आम्रेडित संज्ञक** पद के परे रहते सकार नहीं होता है—

अग्निः प्रविद्वान् (शौ० सं० 5.26.1)

यहाँ 'प्र' परे है । अतः सकार न हुआ ।

परुषः परुषस्परि–

द्वितीय 'परुष' शब्द की आम्रेडितसंज्ञा है । अतः उसके परे रहते विसर्ग को सकार न हुआ ।

कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः 8.3.50

पद.—कः करत् .... कृतेषु 7.3, अनदितेः 6.1

अनु.—छन्दसि संहितायाम् पदस्य सः ।

अर्थ—वेद के विषय में कः, करत्, करति, कृधि तथा कृत शब्दों के परे रहते विसर्ग को सकार होता है परन्तु 'अदिति' शब्द के विसर्ग को सकार नहीं होता है ।

उदा.—(1) विश्वतः कः–विश्वतस्कः
(सकार हुआ)
(2) विश्वतस्करत्
(3) पयस्करति
(4) उरुणस्कृधि (ऋ० 8.75.11)
(5) सदस्कृतम्

विशेष—'अनदितेः' अर्थात् **अदिति** के विसर्ग को सकार आदेश नहीं होता है 'कः' आदि के परे रहते यथा नो अदितिः करत् (ऋ० 1.43.2) यहाँ सकार न हुआ ।

पञ्चम्याः परावध्यर्थे 8.3.51

पद.—पञ्चम्याः 6.1, परौ 7.1, अध्यर्थे 7.1

अनु.—संहितायाम् पदस्य सः छन्दसि ।

अर्थ—वेद के विषय में 'अधि' के अर्थ में वर्त्तमान जो 'परि' शब्द उसके परे रहते पंचमी के विसर्ग को सकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) दिवस्परि (ऋ० 10.45.1)

'दिवः' पचम्यन्त पद है । 'परि' अधि के अर्थ में है । अतः सकार हुआ ।

(2) हिमवतस्परि (अथ० 4.9.9)

विशेष—1. 'पञ्चम्याः' अर्थात् **पंचमी** के विसर्ग को ही सकार होता है—

भोगैः पर्येति (ऋ० 6.75.14) ।

'भोगैः' तृतीयान्त पद है । अधि अर्थ में 'परि' शब्द परे है । सकार न हुआ ।

2. 'परौ' अर्थात् **परि** शब्द परे रहते ही सकार होता है—

एतल्लोकेभ्यः प्रजापतिः

यहाँ 'लोकेभ्यः' पंचम्यन्त पद है परन्तु 'परि' परे नहीं है । अतः सकार न हुआ ।

3. 'अध्यर्थे' अर्थात् **अधि अर्थ में जो** 'परि' शब्द उसके परे रहते सकार होता है—

दिवः स्पृथिव्याः परि (ऋ० 6.47.27)

'पृथिव्याः' पंचम्यन्त पद है । 'परि' शब्द परे है । 'परि' शब्द 'सर्वतोभाव' अर्थ में है । अतः सकार न हुआ ।

पातौ च बहुलम् 8.3.52

पद.—पातौ 7.1, च–अव्य०, बहुलम् 1.1

अनु.—छन्दसि संहितायाम् पदस्य पञ्चम्याः सः ।

अर्थ—वेद के विषय में संहिता में 'पा' धातु के परे रहते पञ्चमी के विसर्ग को बहुलता से सकार होता है ।

उदा.—(1) दिवः पातु–दिवस्पातु ।
राज्ञः पातु–राज्ञस्पातु ।
(2) परिषदः पातु ।
(यहाँ सकार न हुआ)

षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु 8.3.53

पद.—षष्ठ्याः 6.1, पतिपुत्र ... योषेषु 7.3

अनु.—संहितायाम् पदस्य छन्दसि सः ।

अर्थ—वेद के विषय में संहिता में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष शब्दों के परे रहते षष्ठी विभक्ति के विसर्ग को सकार होता है ।

उदा.—(1) वाचः पतिम्–वाचस्पतिम् (ऋ० 10.81.7)
(2) दिवस्पुत्राय (ऋ० 10.37.1)
(3) दिवस्पृष्ठे (अथ० 13.2.37)
(4) तमसस्पारम् (यजु० 12.73)
(5) इळस्पदे (ऋ० 10.191.1)
(6) दिवस्पयः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) रायस्पोषम् (ऋ० 8.59.7)

सर्वत्र षष्ठी का विसर्ग है। इसे सकार हो गया है।

विशेष—'षष्ठ्याः' अर्थात् **षष्ठी के** विसर्ग को ही सकार होता है—

मनुः पुत्रेभ्यः दायम्–'मनुः' यहाँ प्रथमा का विसर्ग है। 'पुत्र' शब्द परे रहते सकार न हुआ।

इडाया वा 8.3.54

पद.—इडायाः 6.1, वा–अव्य०।

अनु.—संहितायाम् छन्दसि पदस्य षष्ठ्याः विसर्जनीयस्य सः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु।

अर्थ—वेद के विषय में संहिता में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष शब्द परे रहते 'इडा' के षष्ठी विभक्ति के विसर्ग को सकार विकल्प से होता है।

उदा.—(1) इडायाः पतिः–
इडायास्पतिः, इडायाः पतिः।

(2) इडायाः पुत्रः–
इडायास्पुत्रः, इडायाः पुत्रः।

(3) इडायाः पृष्ठम्–
इडायास्पृष्ठम्, इडायाः पृष्ठम्।

(4) इडायाः पारम्–
इडायास्पारम्, इडायाः पारम्।

(5) इडायाः पदम्–
इडायास्पदम्, इडायाः पदम्।

(6) इडायाः पयः–
इडायास्पयः, इडायाः पयः।

(7) इडायाः पोषम्–
इडायास्पोषम्, इडायाः पोषम्।

अपदान्तस्य मूर्धन्यः 8.3.55

पद.—अपदान्तस्य 6.1, मूर्धन्यः 1.1

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। पाद की समाप्ति (पा० 8.3.119) पर्यन्त यह अधिकार चलता है। जो पदान्त में नहीं है उसे मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण अगले सूत्रों में देखें।

सहेः साडः सः 8.3.56

पद.—सहेः 6.1, साडः 6.1, सः 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः।

अर्थ—संहिता के विषय में 'सह्' धातु से निष्पन्न 'साड्' रूप को मूर्धन्य आदेश होता है। सकार के स्थान पर आन्तर्य से ईषद्विवृत प्रयत्न वाला षकार आदेश होता है।

उदा.—(1) जल षह्–जल सह् ण्वि–जल सह्–
(छन्दसि सहः। सर्वापहार लोप)
जल साह्–जलसाढ्–जलसाड्–
(अत उपधायाः। हो ढः)
जलासाड्–जलाषाड्।
(अन्येषामपि दृश्यते)

(2) तुरासाह्–तुरासाड्–तुराषाड्।

(3) पृतनासाह्–पृतनासाड्–पृतनाषाड्।

इण्कोः 8.3.57

पद.—इण्कोः 5.1

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। पाद की समाप्ति पर्यन्त इसका अधिकार है।

इससे आगे जो भी कार्य हो वह इण् अथवा कवर्ग से उत्तर हो।

उदा.—(1) षिच् सिच् णल्–सिसिच् अ–
सिसेच–सिषेच
(इण् कोः। मूर्धन्य आदेश)

(2) हरि सुप्–हरि सु–हरिषु।
(इण्कोः। आदेशप्रत्यययोः)

(3) वायु सुप्–वायुषु।

(4) वाच् सुप्–वाक् सु–
(चोः कुः)
वाक्षु
(इण् कोः। आदेश प्रत्यययोः)

नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि 8.3.58

पद.—नुम्विसर्जनीयशर्व्यवाये 7.1, अपि–अव्य०।

अनु.—इण्कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः संहितायाम् सः।

अर्थ—संहिता के विषय में नुम्, विसर्जनीय तथा शर्–इनमें से किसी एक का व्यवधान होने पर भी इण् अथवा कवर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—(1) सर्पिस् जस्–सर्पिस् शि–
(जश्शसोः शिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पि नुम् स् इ-सर्पीन् स् इ-
(नुम्। दीर्घ) सर्पींषि।
(नुम् का व्यवधान होने पर भी मूर्धन्य)
यजुस् शि-यजुन् स् इ-
(पूर्ववत्)
यजून् स इ-यजूंषि।

(2) पिपठिष् सु-पिपठिर् सु-

(रुत्व। 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्य आदेश तथा 'खर-वसानयोः' से विसर्ग आदेश प्राप्त होते हैं। षत्व के असिद्ध होने से विसर्ग हुआ। 'वा शरि' के द्वारा विकल्प से विसर्ग हुआ। पक्ष में 'विसर्जनीयस्य सः' से सकार हुआ।

पिपठिः सु, पिपठिस्सु

(दोनों स्थलों पर क्रमशः विसर्ग तथा शर् (सकार) का व्यवधान होने पर प्रकृतसूत्र के द्वारा मूर्धन्य आदेश हो गया)

पिपठिः षु, पिपठिष्षु।

(3) यजुस् सुप्-यजुः सु-यजुःषु।
(पक्ष में सकार का व्यवधान)
यजुष्षु।
हविस् सु-हविःषु।
(पूर्ववत्)
हविष्षु
(सकार का व्यवधान होने पर मूर्धन्य)

आदेशप्रत्यययोः 8.3.59

पद.—आदेशप्रत्यययोः 6.2

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् प्रत्याहार अथवा कवर्ग से उत्तर अपदान्त जो आदेश रूप सकार अथवा प्रत्यय का अवयव सकार, उसके स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—(1) षिच्-सिच् णल् (लिट्)-
सि सिच् अ-सिसेच-सिषेच।

(इण् (इकार) से उत्तर अपदान्त आदेश रूप सकार को मूर्धन्य (षकार) हो गया)।

(2) अग्नि सुप्-अग्निषु।
(इण् इकार से उत्तर मूर्धन्य हुआ)
वायु सुप्-वायुषु।
(इण् उकार से उत्तर मूर्धन्य हुआ)
कर्तृ सुप्-कर्तृषु।
(इण् ऋकार से उत्तर मूर्धन्य हुआ)
राम सुप्-रामे सु-रामेषु
(इण् एकार से उत्तर मूर्धन्य हुआ)
वाच् सु-वाक् सु-वाक्षु
(कवर्ग ककार से उत्तर मूर्धन्य हुआ)

शासिवसिघसीनां च 8.3.60

पद.—शासिवसिघसीनाम् 6.3, च-अव्य०।

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः नुम् विसर्जनीयशर्

अर्थ—संहिता के विषय में नुम् विसर्जनीय तथा शर् का व्यवधान होने पर भी इण् वर्ण अथवा कवर्ग से उत्तर शास्, वस् तथा घस् धातुओं के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। वस् आच्छादने (अदा०) में मूर्धन्य के पूर्वनिमित्त 'इण्कु' के अभाव से षत्व को अवकाश नहीं है।

इसी प्रकार चौरादिक तथा दैवादिक वस् का भी ग्रहण नहीं होता है। अतः यहाँ केवल भौवादिक 'वस्' धातु का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) शष् तिप्-शाष् त्-शिष् अङ् त्-
(लुङ्। सर्तिशास्त्यर्ति०। शास इदङ्हलोः)
अशिषत्-अनु अशिषत्-
अन्वशिषत्।

इसी प्रकार—आशिषत् (भट्टि० 6.4)
शास् क्त-शास्त-शिस्त-
(पूर्ववत्-इदङ्)
शिष्त-शिष्ट-
शिष्ट सु-शिष्टः।

(2) वस् क्त-उस्त-
(वचिस्वपि०)
उस् इत-उषित सु-उषितः।
(वसति०)
वस् क्त्वा-उस् इत्वा-उषित्वा।
(पूर्ववत्)

(3) अद् लिट्-अद् तस्-अद् अतुस्-घस् अतुस्-
(परस्मैपदानां णलतुसुस् ०। लिट्यन्यतरस्याम्)
घ् स् अतुस्-जघस् अतुस्-
(गमहन०। 'द्विर्वचनेऽचि' से अलोप को स्थानिवद्भाव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जक्स् अतुस्-जक्ष् अतुस्-
(अभ्यासे चर्च । खरि च । मूर्धन्य आदेश)
जक्षतुः ।

इसी प्रकार—जक्षुः (भट्टि० 2.25)।

स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् 8.3.61

पद.—स्तौतिण्योः 6.2, एव-अव्य०, षणि 7.1, अभ्यासात् 5.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः । आदेशप्रत्यययोः ।

अर्थ—'इण्कोः' का अनुवर्त्तन होता है परन्तु यहाँ केवल 'इण्' का ही सम्बन्ध होता है ।

इसी प्रकार 'आदेशप्रत्यययोः' की अनुवृत्ति होती है परन्तु यहाँ केवल 'आदेश' पद सम्बद्ध होता है ।

संहिता के विषय में अभ्यास के इण् से उत्तर 'स्तु' तथा ण्यन्त धातु के आदेश स्वरूप सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, षत्वभूत 'सन्' परे रहते ।

सन् को षत्व तथा णत्व करने पर 'षण्' बनता है । यह नियम सूत्र है । यह नियम करता है कि षत्वभूत सन् के परे रहते तथा अभ्यास के इण् से उत्तर यदि षत्व होता है तो वह 'स्तु' तथा ण्यन्त धातु को ही हो ।

इसका फल है कि 'सिसिक्षति' में नहीं होता है ।

उदा.—(1) ष्टु-स्टु-स्तु-सन्-तुस्तुस-तुस्तुष-
(सन्, द्वित्व आदि)
तुस्तूष-तुष् तूष-तुष्टूषति
(अभ्यास के इण् उकार से उत्तर 'स्तु' के सकार को मूर्धन्य हो गया)

(2) षिच्-सिच् णिच्-सेच् इ सन्-
(णिच्, सन्)
सि सेच् इ इट् स-सिसेचयिष-
(इट्, गुण, अय् आदेश)
सिषेचयिषति ।
(मूर्धन्य आदेश)
षञ्ज् णिच् सन्-सिसञ्जयिष-
(पूर्ववत्)
सिषञ्जयिषति ।

विशेष—'षणि' अर्थात् **षत्वभूत सन् के परे** रहते ही मूर्धन्य होता है—

सिच् लिट्-सिच् तिप्-सिच् णल्-सेच् णल्-सिसेच् अ-
(णल्, गुण, द्वित्व, अभ्यासकार्य) सिषेच ।

'षणि' ऐसा न कहने से प्रत्ययमात्र में नियम हो जायेगा । तब 'सिषेच' में षत्व प्राप्त न होगा । 'षणि' का कथन होने से यह नियम सन् से अतिरिक्त में प्रवृत्त नहीं होता है ।

सः स्विदिस्वदिसहीनां च 8.3.62

पद.—सः 1.1, स्विदिस्वदिसहीनाम् 6.3, च-अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य षणि अभ्यासात् इण्कोः सः णेः ।

अर्थ—षत्वभूत सन् के परे रहते अभ्यास के इण् से उत्तर स्विद्, स्वद् तथा सह्-इन णिच् प्रत्ययान्त धातुओं के सकार को सकार होता है ।

उदा.—(1) ष्विद्-स्विद् णिच्-स्वेदि सन्-
(पूर्ववत्)
सिस्वेदयिष-सिस्वेदयिषति ।

('स्तौतिण्योरेव०' से प्राप्त मूर्धन्य का बाध होकर सकार हुआ) ।

(2) ष्वद्-स्वद् णिच्-स्वादि सन्-सिस्वादयिष-
(पूर्ववत्)
सिस्वादयिषति
(प्राप्त मूर्धन्य आदेश को बाधकर सकार हुआ) ।

प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि 8.3.63

पद.—प्राक्-अव्य०, सितात् 5.1, अड्व्यवाये 7.1, अपि-अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः ।

अर्थ—सित शब्द से पहले पहले अट् का व्यवधान हो चाहे न हो—दोनों अवस्थाओं में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

इस सूत्र के 'प्राक् सितात्' की अवर अवधि 'उपसर्गात् सुनोति०' पा० 8.3.65 में पठित 'सुनोति' धातु है तथा उत्तम अवधि के लिए 'सित' पद के द्वारा 'परिनिविभ्यः सेवसित०' का 'सित' लिया जाता है ।

अतः सु, सू, सो, स्तु, स्तुभ्, स्था, सेनय, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, स्तम्भ्, स्वन्, और सेव्—ये पन्द्रह धातु ही षत्व निमित्तों के साथ यहाँ इष्ट हैं ।

इस सूत्र का सार यह है कि 'उपसर्गात् सुनोति०' 'सदि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रप्रतेः' 'स्तन्भेः', 'अवाच्चालम्बना०' 'वेश्च स्वनो०' तथा 'परिनिविभ्यः सेव०' सूत्रों के द्वारा विहित मूर्धन्य आदेश अट् के व्यवधान में भी होता है।

उदा.—(1) अभ्यषुणोत्
(अट् का व्यवधान है)
पर्यषुणोत्
(पूर्ववत्)
(2) अभिषुणोति।
(अट् का व्यवधान नहीं है)
परिषुणोति।
(पूर्ववत्)
(3) अभ्यषिचन् (भट्टि० 15.3; 6.21)
(4) पर्यष्वजत (भट्टि० 17.47)

स्थादिष्वभ्यासेन चाऽभ्यासस्य 8.3.64

पद.—स्थादिषु 7.3, अभ्यासेन 3.1, च-अव्य० । अभ्यासस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्य इण्कोः सः प्राक् सितात् अड्व्यवायेऽपि।

अर्थ—'सित' से पहले पहले स्था आदि धातुओं में (अर्थात् स्था से लेकर सित पर्यन्त) अभ्यास का व्यवधान होने पर भी मूर्धन्य आदेश होता है तथा अभ्यास सकार को भी मूर्धन्य होता है।

यहाँ 'उपसर्गात् सुनोति०' में पठित 'स्था' का ग्रहण होता है।

उदा.—(1) अभितष्ठौ-

अभ्यास का व्यवधान (तकार) होने पर भी मूर्धन्य हो गया। ष्टुत्व होकर ठकार बन गया।

(2) अभिषिषेणयिषति

('णाविष्ठवत् प्राति०' से टिलोप। गुण। अय् आदेश) 'सेन' शब्द में आदेश का सकार न होने से षकार प्राप्त न था। प्रकृतसूत्र के द्वारा हो गया।

(3) अभिषिषिक्षति-अभि सिच् सन्-अभिसिसिच् स-अभि-षिषिक् ष-अभिषिषिक्षति। (तिप् इत्यादि होकर)

उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभति-स्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् 8.3.65

पद.—उपसर्गात् 5.1, सुनोति ... स्वञ्जाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः स्थादिषु अभ्यासेन अभ्यासस्य अड्व्यवायेऽपि इण्कोः सः।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर सुनोति, सुवति, स्यति, स्तौति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज तथा स्वञ्ज-इन धातुओं के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, अट् का व्यवाय में तथा स्था आदियों के अभ्यास के व्यवाय में तथा अभ्यास को भी।

उदा.—(1) अभिषुणोति।
(यहाँ मूर्धन्य हो गया)
इसी प्रकार—परिषुणोति।
अभ्यषुणोत्।
(अट् का व्यवधान है)
(2) अभि षू-अभि सू-लट्-अभिषुवति
(अचि श्नुधातु०)
अभ्यषुवत्।
(लङ्। अट् का व्यवधान)
(3) अभिष्यति
(पूर्ववत् मूर्धन्य हुआ)
अभ्यष्यत्
(अट् का व्यवधान हुआ)
(4) अभिष्टौति।
इसी प्रकार—अभ्यष्टौत्।
(5) अभिष्टोभते।
अभ्यष्टोभत।
(6) अभिष्ठास्यति।
अभ्यष्ठात्। प्रतिष्ठासाञ्चक्रे (भट्टि० 14.72)।
(7) अभितष्ठौ।
(अभ्यास का व्यवधान है)
(8) अभिषेणयति।
अभ्यषेणयत्
(लङ् लकार)
अभिषिषेणयिषति
(सन् में रूप है)
(9) अभिषेधति।
अभ्यषेधत्।
(लङ् में अट् का व्यवधान है)
अभिषिषेध।
(10) अभिषिञ्चति।
अभ्यषिञ्चत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्ववत्)।
अभिषिषिक्षति।
(11) अभिषजति।
अभ्यषजत्।
अभिषिषङ्क्षति।
(12) अभिष्वजते।
अभ्यष्वजत।
अभिषिष्वङ्क्षते।

सदिरप्रतेः 8.3.66

पद.—सदिः 1.1, (षष्ठ्यर्थे), अप्रतेः 5.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः उपसर्गात् स्थादिष्वभ्यासेन अभ्यासस्य अड्व्यवायेऽपि।

अर्थ—'प्रति' को छोड़कर अन्य उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर सद् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, अट् के व्यवधान में तथा अभ्यास के व्यवधान में भी।

'सात्पदाद्योः' से प्रतिषेध प्राप्त था।

उदा.—(1) नि सद् तिप्-नि सद् शप् ति-निसीदति-(पाघ्राध्मा०)
निषीदति।

(2) नि सद् तिप्-नि असीदत्-(लङ्, अट्, सीद् आदेश)
न्यषीदत्।

(3) नि सद् णल्-निषसाद।
(पूर्ववत्)

विशेष—'अप्रतेः' अर्थात् **प्रति को छोड़कर** अन्य उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर 'सद्' के सकार को मूर्धन्य होता है-
प्रतिसीदति-

यहाँ 'प्रति' उपसर्ग से उत्तर 'सद्' है। अतः षत्व न हुआ।

स्तन्भेः 8.3.67

पद.—स्तन्भेः 6.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः उपसर्गात् स्थादिष्वभ्यासेन अभ्यासस्य अड्व्यवायेऽपि इण्कोः सः।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर 'स्तन्भ्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, अट् के व्यवाय में तथा अभ्यास के व्यवाय में भी। 'स्तन्भ्' सौत्र धातु है।

उदा.—(1) अभि स्तन्भ् श्ना ति-
('स्तन्भुस्तुन्भु०' से 'श्ना')
अभि स्तभ् नाति-अभिष्टभ्नाति।
('अनिदितां हलः'-से अनुनासिक लोप, मूर्धन्य)
(2) अभ्यष्टभ्नात्।
(लङ्। अट् का व्यवधान)।
द्र० व्यष्टभ्नात् (भट्टि० 17.19)
(3) अभितष्टम्भ।
(शर्पूवाः खयः)।

अवाच्चाऽऽलम्बनाऽऽविदूर्ययोः 8.3.68

पद.—अवात् 5.1, च-अव्य०, आलम्बनाविदूर्ययोः 7.2

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः उपसर्गात् स्तन्भेः इण्कोः सः।

अर्थ—'अव' उपसर्ग से उत्तर 'स्तन्भ्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, आलम्बन तथा आविदूर्य अर्थों में।

आलम्बन का अर्थ है—आश्रयण।

आविदूर्य का अर्थ है—समीपता।

उदा.—(1) अवष्टभ्याऽऽस्ते (=आश्रय करके बैठा है)
अव स्तन्भ् ल्यप्-अवष्टभ्य।
(मूर्धन्य, ष्टुत्व)

(2) अवष्टब्धा सेना (= सेना पास है)
अव स्तन्भ् क्त-अव स्तभ् त-अवस्तभ् ध-
(अनुनासिक लोप, झषस्तथो०)
अवस्तब्ध टाप् सु-अवष्टब्धा।
('झलां जश् झशि' से जश्त्व)

विशेष—'आलम्बनाविदूर्योः' अर्थात् **आलम्बन** तथा **आविदूर्य** अर्थों में ही मूर्धन्य होता है—

अवस्तब्धो वृषलः शीतेन (=शीत के प्रकोप से दुष्ट जकड़ गया है)

यहाँ न तो आलम्बन अर्थ है और न ही आविदूर्य अर्थ है। अतः षत्व न हुआ।

वेश्च स्वनो भोजने 8.3.69

पद.—वेः 5.1, च-अव्य०, स्वनः 6.1, भोजने 7.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः उपसर्गात् अवात् स्थादिष्वभ्यासेन अभ्यासस्य अड्व्यवायेऽपि इण्कोः सः।

अर्थ—भोजन अर्थ में वर्त्तमान 'वि' तथा 'अव' उपसर्गों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उत्तर 'स्वन्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, अट् के व्यवधान में तथा अभ्यास के व्यवधान में भी।

उदा.—(1) वि स्वन् ति–विस्वन् शप् ति–विष्वणति (मूर्धन्य, अट्कुप्वाङ्नुम्०)
(2) अव स्वन् ति–अवष्वणति। (पूर्ववत्)
(3) वि अ स्वन् अत्–व्यष्वणत्। (लङ्, अट् का व्यवधान)
(4) अव अस्वनत्–अवाष्वणत्। (पूर्ववत्)
(5) वि स्वन् णल्–विषष्वाण। (अभ्यास का व्यवधान)
(6) अव स्वन् णल्–अवषष्वाण। (पूर्ववत्)

विशेष—'भोजने' अर्थात् **भोजन अर्थ** में ही मूर्धन्य होता है–
विस्वनति मृदङ्गः यहाँ स्वनन तो है परन्तु भोजन अर्थ नहीं है। अतः षत्व न हुआ।

परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्-स्तुस्वञ्जाम् 8.3.70

पद.—परिनिविभ्यः 5.3, सेवसि ... स्वञ्जाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः उपसर्गात् स्थादिष्वभ्यासेन अभ्यासस्य प्राक्सितात् अड्व्यवायेऽपि इण्कोः सः।

अर्थ—संहिता के विषय में परि, नि तथा वि उपसर्ग से उत्तर सेव, सित, सय, सिव्, सह, सुट्, स्तु तथा स्वञ्ज् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, सित शब्द से पहले-पहले अट् के व्यवधान में तथा अभ्यास के व्यवधान में भी।

'सेव' के द्वारा 'षेवृ' का ग्रहण होता है।

षिञ् का निष्ठान्त रूप ही सूत्र में 'सित' के रूप में पठित है।

षिञ् अच्–सय ('एरच्' से अच् हुआ है)
इस 'सय' का सूत्र में निर्देश है।

उदा.—(1) परि सेव् शप् त–परिषेवते।
निषेवते।
विषेवते।
(2) पर्यषेवत, न्यषेवत, व्यषेवत अट् के व्यवधान में मूर्धन्य हुआ है।
(3) परिषिषेविषते, निषिषेविषते, विषिषेविषते—यहाँ अभ्यास के व्यवधान में मूर्धन्य हुआ है।
(4) परिषितः, निषितः, विषितः– पूर्ववत्।
(5) परिषयः, निषयः, विषयः (पूर्ववत्)
(6) परिषीव्यति, निषीव्यति, विषीव्यति (पूर्ववत्)
(7) पर्यषीव्यत्, न्यषीव्यत्, व्यषीव्यत्– (अट् के व्यवधान में मूर्धन्य)
पर्यसीव्यत्, न्यसीव्यत्, व्यसीव्यत्– ('सिवादीनां वाड्व्यवायेऽपि' के द्वारा अट् के व्यवधान में षत्व विकल्प से होता है)
(8) परिषहते, निषहते, विषहते। (पूर्ववत्)
(9) पर्यषहत, न्यषहत, व्यषहत। (अट् का व्यवधान है)
पर्यसहत, न्यसहत, व्यसहत। (पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश का विकल्प)
(10) परिष्करोति। (सम्परिभ्यां—)
(11) पर्यष्करोत्। पक्ष में—पर्यस्करोत्।
(12) परिष्टौति, निष्टौति, विष्टौति। (पूर्ववत्)
(13) पर्यष्टौत्, न्यष्टौत्, व्यष्टौत्। (पूर्ववत्; अट् का व्यवधान)
पक्ष में—
पर्यस्तौत्, न्यस्तौत्, व्यस्तौत्। (मूर्धन्य आदेश न हुआ)
(14) परिष्वजते, निष्वजते, विष्वजते (पूर्ववत्)।
इसी प्रकार—पर्यष्वजत (भट्टि० 17.47)।
(15) पर्यष्वजत, न्यष्वजत, व्यष्वजत
पक्ष में—पर्यस्वजत, न्यस्वजत, व्यस्वजत।

सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि 8.3.71

पद.—सिवादीनाम् 6.3, वा–अव्य०, अड्व्यवाये 7.1, अपि–अव्य०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः उपसर्गात् परि-निविभ्यः इण्कोः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में परि, नि तथा वि उपसर्गों से उत्तर 'सिव्' आदि धातुओं के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है अट् का व्यवधान भी रहते ।

उदा.—सूत्र पा० 8.3.70 पर देखें ।

अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु 8.3.72

पद.—अनुविपर्यभिनिभ्य 5.3, स्यन्दतेः 6.1, अप्राणिषु 7.3

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः वा उपसर्गात् इण्कोः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में अनु, वि, परि, अभि तथा नि उपसर्गों से उत्तर 'स्यन्द्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है परन्तु 'प्राणि' अर्थ वाच्य हो तो मूर्धन्य नहीं होता है ।

1. अनु स्यन्द् शप् त–
   अनुष्यन्दते ।
   पक्ष में—अनुस्यन्दते ।
2. विष्यन्दते ।
   पक्ष में—विस्यन्दते ।
3. परिष्यन्दते ।
   पक्ष में—परिस्यन्दते ।
4. अभिष्यन्दते ।
   पक्ष में—अभिस्यन्दते ।
5. निष्यन्दते ।
   पक्ष में—निस्यन्दते ।

विशेष—'अप्राणिषु' अर्थात् **'प्राणि' अर्थवाच्य** न हो तो मूर्धन्य आदेश होता है—

'अनुस्यन्दते मत्स्य उदके' यहाँ प्राणी अर्थ है । अतः मूर्धन्य न हुआ ।

वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् 8.3.73

पद.—वेः 5.1, स्कन्देः 6.1, अनिष्ठायाम् 7.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः उपसर्गात् इण्कोः सः वा ।

अर्थ—'वि' उपसर्ग से उत्तर 'स्कन्द्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है परन्तु निष्ठा परे रहते नहीं होता है ।

उदा.—(1) वि स्कन्द् तुमुन्–विस्कन्त् तुम्–विष्कन्तुम्
पक्ष में—विस्कन्तुम् ।

(2) विस्कन्द् तव्यत्–विष्कन्तव्यम् ।
(विभक्ति होकर)
विस्कन्तव्यम् ।
(पक्ष में मूर्धन्य आदेश न हुआ)

विशेष—'अनिष्ठायाम्' अर्थात् **निष्ठा परे रहते** मूर्धन्य आदेश नहीं होता है—

वि स्कन्द् क्त–विस्कन्न सु–विस्कन्नः । निष्ठा परे है । अतः मूर्धन्य न हुआ ।

परेश्च 8.3.74

पद.—परेः 5.1, च–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः स्कन्देः उपसर्गात् इण्कोः सः वा ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'परि' उपसर्ग से उत्तर 'स्कन्द्' के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) परि स्कन्द् तुमुन्–परिष्कन्त्तुम् ।
पक्ष में—परिस्कन्त्तुम् ।

(2) परि स्कन्द् क्त–परिस्कद्त–परिस्कन्न–
(अनिदितां हलः–। रदाभ्यां निष्ठातो—)
परिष्कण्णः
(मूर्धन्य । अट्कुप्वाङ्नुम्० । सु)
पक्ष में—परिस्कन्नः ।

परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु 8.3.75

पद.—परिस्कन्दः 1.1, प्राच्यभरतेषु 7.3

अर्थ—प्राच्य भरत देश के प्रयोग के विषय में 'परिस्कन्द' शब्द का निपातन किया जाता है ।

परि स्कन्द् अ–परिस्कन्दः ।

(पूर्व सूत्र से प्राप्त षत्व का निपातन से निषेध हो गया)

स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः 8.3.76

पद.—स्फुरतिस्फुलत्योः 6.2, निर्निविभ्यः 5.3

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः उपसर्गात् इण्कोः सः वा ।

अर्थ—संहिता के विषय में निस्, नि तथा वि उपसर्गों से उत्तर स्फुरति व स्फुलति के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है ।

उदा.–(1) निस् स्फुरति–निष् स्फुरति–निष्फुरति, निष्फुरति
(मूर्धन्य, ष्टुत्व)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में मूर्धन्य अभाव–
निस्स्फुरति ।

(2) निस्फुरति–निष्फुरति ।
(पूर्ववत्)
निस्फुरति
(मूर्धन्य आदेश का अभाव)

(3) वि स्फुरति–विष्फुरति ।
पक्ष में—विस्फुरति ।

(4) निस् स्फुलति–निष्फुलति, निष्फुलति ।

(मूर्धन्य, ष्टुत्व, 'खपरे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' से पाक्षिक विसर्ग लोप)

निस्स्फुलति ।
(पूर्ववत्)

(5) निस्फुलति–निष्फुलति ।
पक्ष में—निस्फुलति ।

(6) विस्फुलति–विष्फुलति ।
पक्ष में—विस्फुलति ।

वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् 8.3.77

पद.—वेः 5.1, स्कभ्नातेः 6.1, नित्यम् 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य, मूर्धन्यः उपसर्गात् इण्कोः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'वि' उपसर्ग से उत्तर 'स्कन्भ्' धातु के सकार को नित्य मूर्धन्य आदेश होता है ।

स्कन्भ् सौत्रधातु है ।

उदा.—(1) वि स्कन्भ् तिप्–विस्कन्भ् श्नाति–
(स्तन्भुस्तुन्भु०)
विस्कभ् नाति–विस्कभ्नाति–विष्कभ्नाति ।
(अनिदितां हलः—)

(2) वि स्कन्भ् तुमुन्–विस्कभ् इतुम्–
विस्कभितुम्–विष्कभितुम् ।

इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् 8.3.78

पद.—इणः 5.1, षीध्वंलुङ्लिटाम् 6.3, धः 6.1, अङ्गात् 5.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः ।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् प्रत्याहार अन्त वाले अंग से उत्तर षीध्वम् (आ०लिङ्) के, लुङ् के तथा लिट् के धकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

'इण्' प्रत्याहार परले णकार से लिया जाता है । अतः इसमें इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य्, व्, र् तथा ल्–ये तरेह वर्ण आते हैं ।

स्थानी धकार (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) है । आदेश आठ वर्ण (टवर्ग, ऋ र् तथा ष्) हैं । इनमें ढकार ही संवार, नाद, घोष तथा महाप्राण यत्न वाला है । अतः धकार के स्थान पर ढकार होता है ।

उदा.—(1) नी सीयुट् ध्वम् (आ०लिङ्)–नी सी ध्वम्–नेषीढ्वम् ।

'नी' इण्णन्त अंग है । इससे परे 'षीध्वम्' है । ढकार हो गया ।

च्यु सीय् ध्वम्–च्योषीढ्वम् ।
('च्यु' इण्णन्त अंग है)
प्लोषीढ्वम् ।
भृ षी ध्वम्–भृषीढ्वम् ।
ह्व षीध्वम्–ह्वषीढ्वम् ।

(2) नीध्वम् (लुङ्)–अनी सिच् ध्वम्–अनीध्वम्–('धि च' से सिच् लोप)
अनेढ्वम् ।
च्यु ध्वम्–अच्योढ्वम् ।
प्लु ध्वम्–अप्लोढ्वम् ।
भृ ध्वम्–अभृढ्वम् ।
ह्व ध्वम्–अह्वढ्वम् ।

(3) कृ ध्वम् (लिट्)–चकृढ्वे ।
इसी प्रकार—बभृढ्वे, जह्वढ्वे ।

विशेष—1. 'इणः' अर्थात् **इण्णन्त** से उत्तर को ही मूर्धन्य आदेश होता है—

पच् सीयुट् ध्वम्–पच् सीध्वम्—इस दशा में 'षीध्वम्' से पूर्व इण्णन्त अंग नहीं है । अतः मूर्धन्य नहीं होता है—

पच् षीध्वम्–पक् षीध्वम्–पक्षीध्वम् ।

2. 'षीध्वंलुङ्लिटाम्' अर्थात् **षीध्वम्, लुङ् तथा** लिट् के धकार को मूर्धन्य होता है—

स्तुध्वम् (लट्)–स्तुध्वे

यहाँ इण्णन्त अंग से परे षीध्वम्, लुङ् या लिट् का धकार नहीं है । अतः मूर्धन्य न हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार—स्तुध्वम् (लोट्), अस्तुध्वम् (लङ्) में मूर्धन्य न हुआ।

3. 'अङ्गात्' अर्थात् **अंग से परे** धकार को मूर्धन्य आदेश होता है—

परि विष् (जुहो०) ध्वम् (वि०लिङ्)–परि वि विष् सीयुट् ध्वम्–परिवेविष् सीध्वम्–

(शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास को गुण)

परिवेविषीध्वम्—इस दशा में 'परिवेवि' इस इण्णन्त से परे 'षीध्वम्' है परन्तु 'परिवेवि' की अंगसंज्ञा नहीं है। वस्तुतः 'वेविष्' की अंग संज्ञा है परन्तु उससे परे 'षीध्वम्' नहीं है। अतः मूर्धन्य नहीं होता है—परिवेविषीढ्वम्।

विभाषेटः 8.3.79

पद.—विभाषा 1.1, इटः 5.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इणः षीध्वंलुङ्लिटाम् धः।

अर्थ—इण् से उत्तर जो इट्, उससे उत्तर जो षीध्वम्, लुङ् तथा लिट् के धकार को विकल्प से मूर्धन्य होता है।

उदा.—(1) लू ध्वम्–लू सीयुट् ध्वम्–लू इट् सीय् ध्वम्–
(सीयुट्, इट्)
लो इ सी ध्वम्–लविषीध्वम्–लविषीढ्वम्।
(यकारलोप, मूर्धन्य, धकार को मूर्धन्य)
लविषीध्वम्।
(पक्ष में मूर्धन्य न हुआ)
इसी प्रकार—पविषीढ्वम्, पविषीध्वम्।

(2) लू ध्वम्–(लुङ्)–लू इ ध्वम्–लो इध्वम्–
(इट्, गुण)
अट् लव् इध्वम्–अलविढ्वम्।
(धकार को मूर्धन्य)
अलव् इध्वम्–अलविध्वम्।
(पक्ष में मूर्धन्य न हुआ)
इसी प्रकार—पू–अपविढ्वम्, अपविध्वम्।

(3) लू ध्वम्–लू इध्वम्–लू लू इध्वम्–
(लिट्, इट्, द्वित्व)
लु लुव् इ ध्वम्–लुलुविढ्वे।
(उवङ्, ढकार)
लू लू इध्वम्–लुलुविध्वे।
मूर्धन्य न हुआ।

विशेष—इस सूत्र में 'अंगात्' की अनुवृत्ति नहीं लाई गई है। इससे दिदीयिढ्वे, दिदीयिध्वे में मूर्धन्य का विकल्प होता है। अन्यथा 'दीङो युडचि क्ङिति' द्वारा युट् हुआ। 'युट्' लिट् का अवयव हुआ। इण्णन्त अंग 'दिदी' से परे इट् के मध्य में व्यवधान होने से मूर्धन्य आदेश का विकल्प न हो सकेगा।

समासेऽङ्गुलेः सङ्गः 8.3.80

पद.—समासे 7.1 अङ्गुलेः 5.1, सङ्गः 1.1 (षष्ठ्यर्थे)

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः नुम्विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि सः।

अर्थ—संहिता में समास में अंगुलि शब्द से उत्तर संग शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—अङ्गुलेः सङ्गः–अङ्गुलिसङ्गः–अङ्गुलिषङ्गः।
'सात्पदाद्योः' से प्रतिषेध प्राप्त था।

विशेष—'समासे' अर्थात् **समास** में ही संग के सकार को मूर्धन्य होता है—

अंगुलेः संगं पश्य

यहाँ समास नहीं है। अतः मूर्धन्य न हुआ।

भीरोः स्थानम् 8.3.81

पद.—भीरोः 5.1, स्थानम् 1.1 (षष्ठ्यर्थे)

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः समासे नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।

अर्थ—भीरु शब्द से उत्तर स्थान शब्द के सकार को समास में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—भीरोः स्थानम्–
भीरु स्थान–भीरुष्ठान सु–भीरुष्ठानम्
(मूर्धन्य, ष्टुत्व)

अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः 8.3.82

पद.—अग्नेः 5.1, स्तुत्स्तोमसोमाः 1.3

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः समासे नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि सः।

अर्थ—संहिता के विषय में समास में अग्नि शब्द से उत्तर स्तुत्, स्तोम तथा सोम शब्दों के सकार को मूर्धन्य होता है।

उदा.—(1) अग्नि स्तुत्–अग्नि ष् तुत्–अग्निष्टुत् सु–अग्निष्टुत्।
(मूर्धन्य, ष्टुत्व)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) अग्नि स्तोम-अग्निष्टोम सु-अग्निष्टोमः ।

(3) अग्नि सोम-अग्नि षोम-अग्नीषोम-
(ईदग्नेः सोम०)
अग्नीषोम औ-अग्नीषोमौ ।

विशेष—दीर्घीकृत 'अग्नी' शब्द से परे ही 'सोम' शब्द के सकार को मूर्धन्य होता है । द्र० काशि० 8.3.82 ।

ज्योतिरायुषः स्तोमः 8.3.83

पद.—ज्योतिरायुषः 5.1, स्तोमः 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः समासे सः नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में समास में 'ज्योतिस्' तथा 'आयुस्' शब्दों से उत्तर 'स्तोम' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—(1) ज्योतिस् स्तोम-ज्योतिः स्तोम-ज्योतिस् स्तोम-
('वा शरि' से विकल्प से सकार)
ज्योति स् ष्टोम-ज्योतिष्टोमः ।
(मूर्धन्य, ष्टुत्व, सकार को षकार)

पक्ष में—ज्योतिःष्टोमः ।

(स्तोम के सकार को मूर्धन्य, ज्योतिस् के सकार को विसर्ग ही रहा) ।

(2) आयुस् स्तोम-आयुष्टोमः ।
(पूर्ववत्)
आयुः ष्टोमः ।
(पूर्ववत्)

मातृपितृभ्यां स्वसा 8.3.84

पद.—मातृपितृभ्याम् 5.2, स्वसा 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः समासे नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में समास में मातृ तथा पितृ शब्दों से उत्तर स्वसृ शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—(1) मातृ स्वसृ-मातृष्वसृ सु-मातृष्वसा ।
(2) पितृ स्वसृ सु-पितृष्वसा ।

मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् 8.3.85

पद.—मातुःपितुर्भ्याम् 5.2, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः समासे स्वसा सः नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में तथा समास में 'मातुर्' तथा 'पितुर्' शब्दों से उत्तर स्वसृ के सकार को विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—(1) मातुर् स्वसृ सु-मातुःष्वसा ।

पक्ष में—मातुःस्वसा ।

(2) इसी प्रकार—पितुःष्वसा तथा पितुःस्वसा ।

'वा शरि' से पाक्षिक सकार होकर—

मातुष्ष्वसा तथा पितुष्ष्वसा ।

अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् 8.3.86

पद.—अभिनिसः 5.1, स्तनः 6.1, शब्दसंज्ञायाम् 7.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः अन्यतरस्याम् नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में शब्द की संज्ञा गम्यमान हो तो अभि तथा निस् से उत्तर स्तन धातु के सकार को विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है ।

अभि तथा निस् पर्यायेण नहीं, अपितु समुदित रूप से होते हैं ।

उदा.—(1) अभिनिस् स्तानः-
अभिनिष्टानः वर्णः ।
(मूर्धन्य तथा ष्टुत्व हुआ है)

अभिनिष्टान विसर्जनीयरूपवर्ण विशेष की संज्ञा है ।

इसी प्रकार—अभिनिष्टानः विसर्जनीयः ।

पक्ष में—अभिनिस्तानो वर्णः ।
अभिनिस्तानो विसर्जनीयः ।

विशेष—'शब्दसंज्ञायाम्' अर्थात् **शब्द की संज्ञा** गम्यमान हो तो मूर्धन्य आदेश होता है—अभिनिस्तनति मृदङ्गः ।

यहाँ शब्द संज्ञा नहीं है । अतः मूर्धन्य न हुआ ।

उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः 8.3.87

पद.—उपसर्ग प्रादुर्भ्याम् 5.2, अस्तिः 1.1, यच्परः 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः नुम्विसर्जनीय-शर्व्यवायेऽपि इण्कोः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग से स्थित निमित्त से उत्तर अथवा प्रादुस् से उत्तर अस् धातु का जो सकार उसे मूर्धन्य आदेश होता है यदि उस सकार से परे यकार अथवा अच् हो ।

उदा.—(1) अभि स्यात्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभि' उपसर्ग में निमित्त (इकार) से उत्तर अस् धातु का सकार है। इस सकार से परे यकार है। अतः सकार को मूर्धन्य आदेश हुआ।

अभिष्यात्।

इसी प्रकार—निष्यात्, विष्यात्।

(2) अभि सन्ति–

'अभि' उपसर्ग में स्थित निमित्त (इकार) से उत्तर 'अस्' धातु का सकार है। सकार से परे अकार है। सकार को मूर्धन्य आदेश हुआ।

अभिषन्ति।

इसी प्रकार—निषन्ति, विषन्ति।

(3) प्रादुस् स्यात्–प्रादुःष्यात्

प्रादुस् से उत्तर 'अस्' का सकार है। सकार से परे यकार है। सकार को मूर्धन्य आदेश हो गया।

(4) प्रादुस् सन्ति–प्रादुःषन्ति।

सकार से परे अच् है। सकार को मूर्धन्य आदेश हो गया।

विशेष—1. 'उपसर्गात्' अर्थात् **उपसर्ग में स्थित** निमित्त से उत्तर मूर्धन्य होता है—

दधि स्यात्–'दधि' में मूर्धन्य का निमित्त 'इण्' है परन्तु 'दधि' शब्द उपसर्ग नहीं है। अतः मूर्धन्य न हुआ।

2. उपसर्ग से अव्यवहित उत्तर 'अस्' के सकार को मूर्धन्य होता है—

अभि असि, प्रादुस् असि यहाँ 'अस्' का सकार अकार के द्वारा व्यवहित है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ।

3. 'अस्तिः' अर्थात् **अस् के सकार** को मूर्धन्य आदेश होता है—अनु सृतम्–

यहाँ 'अस्' का सकार नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ।

4. 'यच्परः' अर्थात् 'य्' अथवा **अच्** है परे जिससे ऐसे 'अस्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है—

निस्तः–

यहाँ सकार से परे तकार है अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ।

इसी प्रकार—अभिस्तः, विस्तः, प्रादुस्तः में मूर्धन्य आदेश न हुआ।

सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः 8.3.88

पद.—सुविनिर्दुर्भ्यः 5.3, सुपिसूतिसमाः 1.3

अनु.—संहितायाम् नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः।

अर्थ—संहिता के विषय में सु, वि, निर् तथा दुर् से उत्तर सुपि, सूति तथा सम के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—(1) सु स्वप् क्त–सु सुप् त–सुसुप्त–
(वचि स्वपि यजादी०)
सुषुप्त सु–सुषुप्तः
('सात् पदाद्योः' से प्राप्त पदादिलक्षण निषेध को बाधकर मूर्धन्य आदेश हो गया है)
(2) वि सुप्तः–विषुप्तः।
(3) निस् सुप्तः–निः षुप्तः।
(4) दुस् सुप्तः–दुः षुप्तः।
(5) सु षू–सु सू क्तिन्–सु सू ति–सुषूति–
(मूर्धन्य हो गया)
सुषूतिः
(विभक्ति होकर)
(6) वि सूतिः–विषूतिः।
(7) निस् सूतिः–निःषूतिः।
(8) दुस् सूतिः–दुःषूतिः।
(9) सु सम सु–सुषमम्।
(10) वि स म सु–विषमम्।
(11) निस् सम सु–निःषमम्।
(12) दुस् सम सु–दुःषमम्।

निनदीभ्यां स्नातेः कौशले 8.3.89

पद.—निनदीभ्याम् 5.2, स्नातेः 6.1, कौशले 7.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि सः।

अर्थ—संहिता के विषय में कुशलता गम्यमान हो तो 'नि' तथा 'नदी' शब्दों से उत्तर 'स्ना' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

यहाँ 'सात्पदाद्योः' के द्वारा निषेध प्राप्त था।

उदा.—(1) नि स्ना क्त–नि स्नात–निष्नात–
(मूर्धन्य आदेश)
निष्णात सु–निष्णातः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(णत्व)
इसी प्रकार—आतिथ्यनिष्णाः (भट्टि० 2.26)।

(2) नदी स्ना क–नदी स्न् अ–
(सुपि स्थः । आतो लोप०)
नदीष्णः (भट्टि० 2.43)
(विभक्ति होकर)

विशेष—'कौशले' अर्थात् **कुशलता** गम्यमान हो तभी मूर्धन्य आदेश होता है—

निस्नातः यहाँ 'कौशल' अर्थ इष्ट नहीं है । अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ ।

इसी प्रकार—'नद्यां स्नातः–नदीस्नातः' में मूर्धन्य आदेश नहीं होता है ।

सूत्रं प्रतिष्णातम् 8.3.90

पद.—सूत्रम् 1.1, प्रतिष्णातम् 1.1

अनु.—संहितायाम् सः मूर्धन्यः ।

अर्थ—'सूत्र' अर्थ में 'प्रतिष्णात' शब्द का निपातन किया जाता है ।

प्रति स्ना क्त–प्रतिष्णातम् ।

कपिष्ठलो गोत्रे 8.3.91

पद.—कपिष्ठलः 1.1, गोत्रे 7.1

अनु.—संहितायाम् मूर्धन्यः सः ।

अर्थ—'गोत्र' अर्थ में 'कपिष्ठल' शब्द का निपातन किया जाता है ।

विशेष—'गोत्रे' अर्थात् **'गोत्र' अर्थ** में ही मूर्धन्य आदेश का निपातन है—

कपेः स्थलम्–कपिस्थलम् यहाँ गोत्र अर्थ गम्यमान नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ ।

प्रष्ठोऽग्रगामिनि 8.3.92

पद.—प्रष्ठः 1.1, अग्रगामिनि 7.1

अनु.—संहितायाम् सः मूर्धन्यः ।

अर्थ—'अग्रगामी' अर्थ में 'प्रष्ठ' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—प्र स्थ क–प्रष्ठ सु–प्रष्ठः ।
(सुपि स्थः)
प्रष्ठः अश्वः (अर्थात् अग्रग्रामी घोड़ा) । (भट्टि० 1.24)।

विशेष—'अग्रगामिनि' अर्थात् **'अग्रगामी'** अर्थ में ही 'प्रष्ठ' शब्द का निपातन होता है—

प्रस्थो व्रीहिणाम्—यहाँ 'प्रस्थ' शब्द माप का वाचक है न कि अग्रगामी अर्थ में प्रयुक्त है । अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ है ।

वृक्षासनयोर्विष्टरः 8.3.93

पद.—वृक्षासनयोः 7.2, विष्टरः 1.1

अनु.—संहितायाम् सः मूर्धन्यः ।

अर्थ—'वृक्ष' तथा 'आसन' अर्थ गम्यमान हों तो 'विष्टर' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.—वि स्तृ अप्–विस्तर् अ–विष् तर–
(ऋदोरप्)
विष्टर सु–विष्टरः (वृक्षः)
विष्टरम् आसनम् । (भट्टि० 2.26)।

विशेष—'वृक्षासनयोः' अर्थात् **वृक्ष तथा आसन** वाच्य हो तभी 'विष्टर' शब्द का निपातन होता है—

विस्तरः यहाँ न 'वृक्ष' अर्थ गम्य है तथा न ही 'आसन' अर्थ गम्य है । अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ ।

छन्दोनाम्नि च 8.3.94

पद.—छन्दोनाम्नि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् मूर्धन्यः सः विष्टरः ।

अर्थ—'छन्द का नाम' अभिधेय हो तो 'विष्टार' शब्द का निपातन किया जाता है ।

उदा.–विस्तृ घञ्–विस्तार् अ–विष्तार–विष्टार सु–विष्टारः ।

छन्द शब्द के द्वारा विष्टारपंक्ति आदि छन्दों के नाम गृहीत हैं ।

विशेष—'छन्दोनाम्नि' अर्थात् **छन्द का नाम** गम्यमान हो तभी 'विष्टार' शब्द होता है—

पटस्य विस्तारः—यहाँ मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ है ।

गवियुधिभ्यां स्थिरः 8.3.95

पद.—गवियुधिभ्याम् 5.2, स्थिरः 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में गवि तथा युधि शब्दों से उत्तर स्थिर शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—(1) गवि स्थिर–गविष्ठिर–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुपो धातु प्राति० निपातन से अलुक्)
गविष्ठिर सु-गविष्ठिरः ।

(2) युधि स्थिर-युधिष्ठिरः ।
(हलदन्तात्०) ।

विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् 8.3.96

पद.—विकुशमिपरिभ्यः 5.3, स्थलम् 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में वि, कु, शमि तथा परि से उत्तर 'स्थल' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

'कुगतिप्रादयः' से सर्वत्र समास होगा ।

उदा.—(1) वि स्थल-विष्ठल सु-विष्ठलम् ।
(2) कु स्थल-कुष्ठलम् ।
(3) शमि स्थल-शमिष्ठलम् ।
(4) परि स्थल-परिष्ठलम् ।

अम्बाऽम्बगोभूमिसव्याऽपद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गु-मञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः 8.3.97

पद.—अम्बा ... ग्निभ्यः 5.3, स्थः 1.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में अम्बा, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शंकु, अंगु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि तथा अग्नि—इन शब्दों से उत्तर 'स्था' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—(1) अम्बा स्थाक-अम्बास्थ् अ-अम्बस्थ सु-
(सुपि स्थः । आतो लोप इटि च ङ्यापो संज्ञाया०)
अम्बष्ठः ।
(2) आम्ब स्थ-आम्बष्ठ सु-आम्बष्ठः ।
(पूर्ववत्)
(3) गो स्थ-गोष्ठः (घत्रर्थे कविधानम् वा०) (भट्टि० 2.14)
(4) भूमि स्थ-भूमिष्ठः (भट्टि० 5.13) ।
(5) सव्ये स्थ-सव्येष्ठः ।
(हलदन्तात्०)
(6) अप स्थ-अपष्ठः ।
(7) द्वि स्थ-द्विष्ठः ।
(8) त्रि स्थ-त्रिष्ठः ।
(9) कु स्थ-कुष्ठः ।
(10) शेकु स्थ-शेकुष्ठः ।
(11) शंकु स्थ-शङ्कुष्ठः ।
(12) अङ्गु स्थ-अङ्गुष्ठः ।
(13) मंजि स्थ-मञ्जिष्ठः ।
(14) पुंजि स्थ-पुञ्जिष्ठः ।
(15) परमे स्थ-परमेष्ठः ।
(16) बर्हिस् स्थ-बर्हिःष्ठः ।
(17) दिवि स्थ-दिविष्ठः (भट्टि० 4.33) ।
(18) अग्नि स्थ-अग्निष्ठः ।

विशेष-स्था, स्थिन् तथा स्थून् के सकार को मूर्धन्य होता है[1]— सव्ये स्थाः-सव्येष्ठाः ।
परमे स्थिन् सु-परमेष्ठी ।
सव्ये स्थून्-सव्येष्ठ ।

सुषामादिषु च 8.3.98

पद.—सुषमादिषु 7.3, च-अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः ।

अर्थ—सुषाम आदि शब्दों के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—(1) सुषामा ब्राह्मणः ।
(2) निष्षामा ।
(3) दुष्षामा ।

एति संज्ञायामगात् 8.3.99

पद.—एति 7.1, संज्ञायाम् 7.1, अगात् 5.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः नुम्-विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में एकार परे रहते इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है परन्तु गकार से उत्तर को नहीं होता है ।

उदा.—(1) हरयः सेना अस्य-
हरिसेन सु-हरिषेणः ।

इसी प्रकार—वारिषेणः, जानुषेणी ।

'गोस्त्रियोरुपसर्ज०' से ह्रस्वादेश होता है ।

विशेष—1. 'एति' अर्थात् **एकार परे रहते** मूर्धन्य आदेश होता है—

1. महा० 8.3.97 (वा०) स्थः स्थास्थिन्स्थूणामिति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिसक्थम् यहाँ सकार से परे एकार नहीं है। अतः मूर्धन्य न हुआ।

2. 'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय में ही** मूर्धन्य आदेश होता है—पृथ्वी सेना यस्य सः पृथुसेनः।

यहाँ संज्ञा का विषय नहीं है। अतः मूर्धन्य न हुआ।

3. 'अगात्' अर्थात् **गकार से उत्तर** सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है—

विष्वग्सेन यहाँ गकार से उत्तर सकार है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ। 'खरि च' से ककार हुआ–विष्वक्सेनः।

नक्षत्राद् वा 8.3.100

पद.—नक्षत्रात् 5.1, वा–अव्य०।

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः एति संज्ञायाम् अगात् इण् कोः सः नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संज्ञा के विषय में एकार परे रहते नक्षत्रवाची शब्दों से उत्तर सकार को विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है परन्तु गकार से उत्तर को नहीं होता है।

काशिका में यह सूत्र गणसूत्र के रूप में पठित है।

उदा.—रोहिणीषेणः, रोहिणीसेनः
विकल्प से मूर्धन्य आदेश हो गया है।

इसी प्रकार—भरणीषेणः, भरणीसेनः।

ह्रस्वात्तादौ तद्धिते 8.3.101

पद.—ह्रस्वात् 5.1, तादौ 7.1, तद्धिते 7.1

अनु.—संहितायाम् इण्कोः सः नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संहिता के विषय में तकारादि तद्धित परे रहते ह्रस्व इण् से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—(1) सर्पिस् तरप्–सर्पिष् तर–सर्पिष् टर सु–सर्पिष्टरम्।
यजुस् तरप्–यजुष्टरम्।
(पूर्ववत्)
(2) सर्पिस् तमप्–सर्पिष्टमम्।
यजुस् तमप्–यजुष्टमम्।
(3) चतुर् तयप्–चतुः तयप्–चतुस् तयप्–
(सङ्ख्याया अवयवे०)
चतुष्टय सु–चतुष्टयम्।
(4) सर्पिस् त्व–सर्पिष्ट्वम्।
(5) आविस् त्यप्–आविष्ट्यः।
(आविसश्छन्दसि)

विशेष—1. 'ह्रस्वात्' अर्थात् **ह्रस्व** इण् से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है—

गिर् तरप्–गीर् तर–गीः तर–गीसतर–

दीर्घ इण् से उत्तर सकार को मूर्धन्य न हुआ–गीस्तर टाप् सु–गीस्तरा।

इसी प्रकार—धुर् तर–धूस्तरा।

2. 'तादौ' अर्थात् **तकारादि** परे रहते सकार को मूर्धन्य आदेश होता है—

सर्पिस् साद्भवति–ह्रस्व इण् से उत्तर सकार है। सकार से परे तकारादि नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ।

सर्पिस्साद्भवति।

3. 'तद्धिते' अर्थात् **तद्धित प्रत्यय** परे रहते मूर्धन्य आदेश होता है—सर्पिस् तरति–सर्पिस्तरति।

ह्रस्व इण् से उत्तर सकार है। सकार से परे तकारादि है, परन्तु वह तद्धित नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ।

4. तिङन्त के सकार को मूर्धन्य नहीं होता है[1]—

भिन्द्युः तरप्–भिन्द्युस्तराम्

यहाँ मूर्धन्य आदेश न हुआ।

निसस्तपतावनासेवने 8.3.102

पद.—निसः 6.1, तपतौ 7.1, अनासेवने 7.1

अनु.—संहितायाम् मूर्धन्यः सः।

अर्थ—संहिता के विषय में आसेवन अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ में वर्त्तमान निस् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है 'तपति' परे रहते।

उदा.—निस् तपति–निष्टपति सुवर्णम् (= सोने को एक बार तपाता है)

विशेष—'अनासेवने' अर्थात् **अनासेवन** अर्थ में ही मूर्धन्य आदेश होता है—

निस्तपति सुवर्णम् (= सोने को बार-बार तपाता है)

यहाँ आसेवन अर्थ है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ।

युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम् 8.3.103

पद.—युष्मत्तत्ततक्षुःषु 7.3, अन्तःपादम् 1.1

अनु.—संहितायाम् इण्कोः सः तादौ नुम्विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि तादौ मूर्धन्यः।

---

1. महा० 8.3.101 (वा०) तिङन्तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—संहिता के विषय में इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है तकारादि युष्मद्, तद् तथा ततक्षुस् परे रहते यदि वह सकार पाद के मध्य में हो।

'तादौ' युष्मद् का विशेषण है। अतः युष्मद् के स्थान पर विहित तकारादि आदेश के परे रहते ही मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—(1) अग्निः त्वम्–अग्निस् त्वम्–
('त्वम्' युष्मद् का तकारादि रूप है)
अग्निष्ट्वम्।
(2) अग्निः त्वा–अग्निष्ट्वा।
(3) अग्निः ते–अग्निष्टे।
(4) सधिस् तव–सधिष्टव।
(5) अग्निः तत्–अग्निस् तत्–अग्निष्टत्।
(6) निस् ततक्षुः–निष्टतक्षुः।

विशेष—'अन्तःपादम्' अर्थात् **पाद के मध्य में** ही मूर्धन्य होता है—यन्म आत्मनो मिन्दाभूदग्निस्तत् पुनराहार्जात–
(तै०सं० 3.2.5.4)

'अग्निः' शब्द पाद के अन्त में है। अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ।

यजुष्येकेषाम् 8.3.104

पद.—यजुषि 7.1, एकेषाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् इण्कोः सः मूर्धन्यः युष्मत्तत्ततक्षुःषु तादौ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।

अर्थ—यजुर्वेद के विषय में कुछ आचार्यों के मत में तकारादि युष्मद्, तद् तथा ततक्षुस् परे रहते इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

यह आदेश विकल्प से प्रवृत्त होता है।

उदा.—(1) अर्चिभिस् त्वम्–अर्चिभिष्ट्वम्।
(पूर्ववत् मूर्धन्य हुआ)
पक्ष में—अर्चिभिस्त्वम्।
(2) अग्निस् ते–अग्निष्टे।
पक्ष में—अग्निस्ते।
(3) अग्निस् तत्–अग्निष्टत्। अग्निस्तत्।
(4) अर्चिभिस् ततक्षुः–अर्चिभिष्टतक्षुः।
पक्ष में—अर्चिभिस्ततक्षुः।

स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि 8.3.105

पद.—स्तुतस्तोमयोः 6.2, छन्दसि 7.1

अनु.—संहितायाम् एकेषाम् इण्कोः सः मूर्धन्यः अपदान्तस्य नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।

अर्थ—वेद के विषय में कुछ आचार्यों के मत में इण् तथा कवर्ग से उत्तर स्तुत तथा स्तोम शब्दों के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। यह आदेश विकल्प से प्रवृत्त होता है। पदादिलक्षण (सात् पदाद्योः) से प्रतिषेध प्राप्त था।

उदा.—(1) त्रिभिस् स्तुतस्य–त्रिभिष् स्तुतस्य–त्रिभिष् ष्टुतस्य –त्रिभिःष्टुतस्य।
पक्ष में—त्रिभिःस्तुतस्य।
(2) गोस् स्तोमम्–गोष्टोमम् (तै०सं० 7.4.11.1)
पक्ष में—गोस्तोमम्।

पूर्वपदात् 8.3.106

पद.—पूर्वपदात् 5.1

अनु.—छन्दसि एकेषाम् इण् कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि सः।

अर्थ—पूर्वपद में स्थित निमित्त इण् अथवा कवर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। कई आचार्यों के मत में वेद में।

उदा.—(1) द्वि सन्धि–द्विषन्धि सु–द्विषन्धिः (मै०सं० 3.8.2) पक्ष में—द्विसन्धिः।
(2) त्रि सन्धिः–त्रिषन्धिः (मै०सं० 3.8.2)
त्रिसन्धिः।
(3) मधु स्थान–मधुष्ठान सु–मधुष्ठानम्।
पक्ष में—मधुस्थानम्।

सुञः 8.3.107

पद.—सुञः 6.1

अनु.—संहितायाम् छन्दसि अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि पूर्वपदात्।

अर्थ—वेद के विषय में पूर्वपद में स्थित निमित्त इण् अथवा कवर्ग से उत्तर सुञ् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा.—(1) अभि सु नः–अभी सु नः–अभीषुणः (ऋ० 4.31.3)
(इकः सुञि। नश्च धातुस्थो०)
(2) ऊर्ध्व ऊ षु णः (ऋ० 1.36.13)
पूर्ववत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनोतेरनः 8.3.108

पद.—सनोतेः 6.1, अनः 6.1

अनु.—संहितायाम् छन्दसि पूर्वपदात् इण्कोः सः अपदान्तस्य मूर्धन्यः नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में वेद में पूर्वपद में स्थित निमित्त इण् अथवा कवर्ग से उत्तर अनकारान्त सन् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है । यह नियमसूत्र है ।-यह नियम करता है कि अनकारान्त सन् के स्थान पर ही मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—गो सन् विट्–गो सन्–
(जनसनखनक्रम० । सर्वापहारीलोप)
गो स आ–गोसा सु–गोषा (ऋ० 9.2.10)
(विड्वनोरनुनासिक०)
इसी प्रकार—नृषा (ऋ० 9.2.10) ।

विशेष—'अनः' अर्थात् **नकारान्त नहीं है** जो सन्, उसे ही मूर्धन्य आदेश होता है—

गोसनिं वाचमुदेयम् (अथ० 3.20.10) यहाँ नकारान्त 'सन्' धातु है । अतः मूर्धन्य आदेश न हुआ ।

सहेः पृतनर्ताभ्यां च 8.3.109

पद.—सहेः 6.1, पृतनर्ताभ्याम् 5.2, च-अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् छन्दसि पूर्वपदात् अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः ।

अर्थ—संहिता के विषय में वेद में पूर्वपद में स्थित पृतना तथा ऋत शब्दों से उत्तर 'सह्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा.—(1) पृतना सह् ण्वि–पृतना साह्–
(छन्दसि सहः)
पृतना षाह्–पृतनाषाड् ।
(मूर्धन्य, विभक्ति होकर)

(2) ऋत सह् ण्वि–ऋत साह्–
(छन्दसि सहः । अत उपधायाः)
ऋता साह्–ऋताषाह्–ऋताषाड् । (अन्येषामपि०)।

न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् 8.3.110

पद.—न-अव्य०, रपरसृपि सृजि .... वनादीनाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् इण्कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः नुम्-विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् अथवा कवर्ग से उत्तर रेफ है परे जिससे ऐसे सकार को तथा सृप्, सृज्, स्पृश्, स्पृह् इन धातुओं के सकार को तथा सवनादि गण पठित शब्दों के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है ।

उदा.—(1) विस्रंसिकायाः काण्डं जुहोति–

'वि' पूर्वपद में निमित्त (इकार) से पर सकार है परन्तु इससे परे रेफ है । अतः 'पूर्वपदात्' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध हो गया ।

इसी प्रकार—विस्रब्धः वि स्रम्भ् क्त–विस्रभ्त (अनिदितां हल उपधाया—)–विस्रभ्ध (झषस्तथो०) विस्रब्ध (झलां जश् झशि) सु–विस्रब्धः 'यस्य विभाषा' से इट् का निषेध ।

मूर्धन्य आदेश न हुआ ।

(2) पुरा क्रूरस्य विसृपः
यहाँ 'सृप्' धातु के सकार को मूर्धन्य न हुआ ।

(3) वाचे विसर्जनात्
'सृज्' के सकार को षत्व न हुआ ।

(4) दिविस्पृशम्
(स्पृशोऽनुदके ...)
मूर्धन्य आदेश न हुआ ।

(5) निस्पृह् अच् (एरच्)–निस्पृह अम्–निस्पृहम्
(स्पृह् के सकार को मूर्धन्य न हुआ)

(6) सवने सवने–
सवनादि गण में पठित होने से मूर्धन्य न हुआ ।

इसी प्रकार—सूते सूते, सामे सामे में मूर्धन्य आदेश नहीं होता है ।

सात्पदाद्योः 8.3.111

पद.—सात्पदाद्योः 6.2

अनु.—संहितायाम् इण्कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः नुम्-विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि न ।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् अथवा कवर्ग से उत्तर सात् के सकार को तथा पदादि के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है ।

उदा.—(1) अग्निसात्–अग्निसात् ।
(विभाषा साति कात्स्न्र्ये)
'आदेश प्रत्यययोः' से प्राप्त षत्व का निषेध हो गया ।
दधिसात् । मधुसात् ।

(2) दधि सिञ्चति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वपद में निमित्त (इकार) से पर पदादि का सकार विद्यमान है। 'आदेशप्रत्यययोः' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध हो गया।

सिचो यङि 8.3.112

पद.—सिचः 6.1, यङि 7.1

अनु.—संहितायाम् इण् कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः न।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् अथवा कवर्ग से उत्तर सिच् के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है यङ् परे रहते।

उदा.–(1) सिच् यङ्–सिच्य–सिसिच्य–सेसिच्य–सेसिच्यते।
यङ्। द्वित्व, अभ्यासकार्य। लकार। तङ्।
'आदेशप्रत्यययोः' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध।
(2) अभिसेसिच्यते–
'उपसर्गात् सुनोति०' से प्राप्त षत्व का निषेध हो गया।

विशेष—'यङि' अर्थात् **'यङ्' परे रहते** सिच् के सकार को मूर्धन्य नहीं होता है—
अभिषिक्षिति यहाँ यङ् नहीं है। अतः निषेध न हुआ।

सेधतेर्गतौ 8.3.113

पद.—सेधतेः 6.1, गतौ 7.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः न।

अर्थ—संहिता के विषय में 'गति' अर्थ में इण् अथवा कवर्ग से उत्तर 'षिधु गत्याम्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा.—अभि षिध्–अभि सिध् णिच्–अभि सेधि शप् तिप्–अभिसेधयति।
यहाँ 'उपसर्गात् सुनोति०' से प्राप्त षत्व का निषेध हो गया।
इसी प्रकार—परिसेधयति।

विशेष—'गतौ' अर्थात् **'गति' अर्थ** में वर्त्तमान 'सिध्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है—
शिष्यम् अकार्यात् प्रतिषेधयति यहाँ गति अर्थ नहीं है। अतः षत्व का प्रतिषेध न हुआ।

प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च 8.3.114

पद.—प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ 1.2, च-अव्य०।

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः न सः।

अर्थ—संहिता के विषय में 'प्रतिस्तब्ध' तथा 'निस्तब्ध' शब्दों का निपातन किया जाता है।

उदा.—(1) प्रति स्तम्भ क्त–प्रतिस्तभ्त–
(अनिदितां हल उप०)
प्रतिस्तभ् ध–प्रतिस्तब्ध–
(झषस्तथो०)
प्रतिस्तब्ध सु–प्रतिस्तब्धः
'स्तन्भेः' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध हो गया है।
(2) निस्तन्भ् त–निस्तब्धः
(पूर्ववत्)।

सोढः 8.3.115

पद.—सोढः 6.1

अनु.—संहितायाम् इण् कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः न।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् अथवा कवर्ग से उत्तर 'सोढ्' के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

'सह्' धातु को ढत्व तथा ओत्त्व करने के पश्चात् जो 'सोढ्' रूप बनता है, सूत्र में उसी का निर्देश है।

उदा.—(1) परि सह् तुमुन्–परिसोढ् तुम्–
(सहिवहोरोद०)
परि सोढ् ढुम्–परिसोढुम्।
'परिनिविभ्यः सेवसित०' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध हो गया है।
इसी प्रकार—परिसोढव्यम्।

विशेष—'सोढ्' का ग्रहण होने से निम्नलिखित स्थल पर मूर्धन्य आदेश का निषेध नहीं होता है—परिषहते।

स्तम्भुसिवुसहां चङि 8.3.116

पद.—स्तम्भुसिवुसहाम् 6.3, चङि 7.1

अनु.—संहितायाम् इण्कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः न।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् अथवा कवर्ग से उत्तर स्तम्भ्, षिवु तथा षह धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है चङ् परे रहते।

उदा.—(1) स्तम्भ् णिच्–स्तम्भ् इ लुङ्–स्तम्भ् इ चङ् त्–तस्तम्भ् अत्–
(णिच्, धातु संज्ञा, लुङ्, चङ्, द्वित्व, शर्पूर्वाः खयः, णिलोप)
परि अट् तस्तम्भत्–पर्यतस्तम्भत्
'स्तन्भेः' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध हो गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) सिव् णिच् चङ् त्–असीषिवत्–परि अ सीषिवत्–पर्यसीषिवत्–

'परिनिविभ्यः—' से प्राप्त षत्व का निषेध हो गया। उपसर्ग से उत्तर अभ्यास के सकार को 'स्थादिष्वभ्यासेन चा०' तथा 'सिवादीनां—' से अट् के व्यवधान में भी षत्व प्राप्त था। निषेध हो गया है।

अभ्यास से उत्तर को 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्य आदेश हुआ है।

(3) षह्–सह्–असीषहत्–
(पूर्ववत्)
पर्यसीषहत्
(सन्वत् कार्य)।

सुनोतेः स्यसनोः 8.3.117

पद.—सुनोतेः 6.1, स्यसनोः 7.2

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः नः।

अर्थ—संहिता के विषय में इण् अथवा कवर्ग से उत्तर सुनोति के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है स्य तथा सन् परे रहते।

उदा.—(1) अभिसोष्यति।
(लृट्, स्य, 'उपसर्गात् सुनोति०' से प्राप्त षत्व का निषेध)
अभ्यसोष्यत्
(लृङ्, पूर्ववत् निषेध)

(2) अभि षू–अभि सू सन्–अभि सु सू स–अभिसुसूष–
(द्वित्व, धातु संज्ञा)
अभिसुसूष क्विप्–अभिसुसूष–
(क्विप्, सर्वापहारलोप)
अभिसुसूष्–अभिसुसूः
(अतो लोपः। षत्व के असिद्ध होने से सकार को विसर्जनीय)।

विशेष—'स्यसनोः' अर्थात् **स्य तथा सन् के परे** रहते ही मूर्धन्य आदेश का निषेध होता है—

सुषाव यहाँ न तो 'स्य' परे है और न ही 'सन्' परे है। अतः मूर्धन्य आदेश का निषेध न हुआ।

सदेः परस्य लिटि 8.3.118

पद.—सदेः 6.1, परस्य 6.1, लिटि 7.1

अनु.—संहितायाम् इण् कोः अपदान्तस्य मूर्धन्यः सः न।

अर्थ—संहिता के विषय में लिट् परे रहते इण् अथवा कवर्ग से उत्तर 'षद' धातु के पर वाले सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा.—षद्–सद् लिट्–सद् णल्–ससाद् अ–अभिससाद–अभिषसाद।

द्वित्व करने पर दो सकार प्राप्त हुए हैं। 'स्थादिष्वभ्या०' से अभ्यास (पूर्व सकार) का व्यवधान होने पर भी परले सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त हुआ। प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया। 'सदिरप्रतेः' के द्वारा पूर्व वाले सकार को मूर्धन्य आदेश हो गया।

इसी प्रकार—परिषसाद, निषसाद, विषसाद।

निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि 8.3.119

पद.—निव्यभिभ्यः 5.3, अड्व्यवाये 7.1, वा–अव्य०, छन्दसि 7.1

अनु.—संहितायाम् अपदान्तस्य मूर्धन्यः इण्कोः सः न।

अर्थ—संहिता के विषय में वेद में नि, वि तथा अभि उपसर्गों से उत्तर सकार को अट् का व्यवधान होने पर भी विकल्प से मूर्धन्य आदेश नहीं होता है। भाव यह है कि विकल्प से आदेश होता है।

उदा.—(1) सद् लङ्–सीद् अ तिप्–असीदत्–नि असीदत् –न्यषीदत्। पक्ष में—न्यसीदत्।

(2) व्यषीदत्।
पक्ष में—व्यसीदत्।

(3) अभ्यष्टौत्।
अभ्यस्तौत्।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायामष्टमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टमाऽध्यायस्य

चतुर्थः पादः

रषाभ्यां नो णः समानपदे 8.4.1

पद.—रषाभ्याम् 5.2, नः 6.1, णः 1.1, समानपदे 7.1

अनु.—संहितायाम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में एक ही पद में रेफ अथवा षकार से उत्तर नकार को णकार होता है । तात्पर्य यह है कि यदि (रेफ अथवा षकार) तथा निमित्ती (नकार) एक ही पद में विद्यमान हों तभी सूत्रोक्त णत्व होता है । रेफ, षकार तथा णकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—(1) आ स्तृ क्त–आस्तिर् त–आस्तिर् न–आस्तीर् न–आस्तीर्णम् ।

(2) चतुर् नुट् आम्–चतुर्णाम् ।

पक्ष में णकार को द्वित्व होता है—

चतुर्ण्णाम् (अचो रहाभ्यां द्वे)

(3) पुष् ति–पुष् श्ना ति–पुष्णाति ।

इसी प्रकार—कुष्णाति ।

विशेष—1. 'समानपदे' अर्थात् **अखण्डपद** में ही णत्व होता है—वायुर्नयति

रेफ से उत्तर नकार है परन्तु दोनों भिन्न-भिन्न पदों में वर्त्तमान हैं । अतः णत्व न हुआ ।

इसी प्रकार 'चतुर्नवतिः' में न हुआ ।

2. (ऋकारगत रेफश्रुति को मानकर) ऋवर्ण से उत्तर नकार को णत्व होता है[1]—

तिसृ नुट् आम्–तिसृणाम् ।

चतसृ नाम्–चतसृणाम् ।

मातृ नाम्–मातॄणाम् ।

पितृ नाम्–पितॄणाम् ।

---

1. महा० 8.4.1 (वा०) ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् ।

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि 8.4.2

पद.—अट्कुप्वाङ् ... व्यवाये 7.1, अपि–अव्य० ।

अनु.—रषाभ्याम् नः णः संहितायाम् समानपदे ।

अर्थ—संहिता के विषय में अखण्डपद में रेफ या षकार से उत्तर नकार को णकार होता है चाहे (निमित्त व निमित्ती के मध्य) अट् वर्ण, कवर्ग, पवर्ग, आङ् तथा नुम् का व्यवधान हो ।

यह व्यवधान समुदित रूप में भी हो सकता है अर्थात् यह व्यवधान व्यस्त या समस्त किसी भी प्रकार का हो सकता है । इतना ही नहीं, सूत्रोक्त अट् आदि का यथासम्भव दो, तीन या चारों का मिलकर भी व्यवधान हो सकता है । सभी अवस्थाओं में नकार को णकार होता है । इस मत की पुष्टि में आचार्य पाणिनि का सूत्रपाठ प्रमाण है—

करणे यजः—यहाँ एक वर्ण का व्यवधान है ।

कर्मणि द्वितीया—यहाँ दो वर्णों का व्यवधान है ।

सरूपाणाम् एकशेष एकविभक्तौ—यहाँ तीन वर्णों का व्यव-धान है ।

उदा.—(क) (अट्व्यवाये)

(1) कृ ल्युट्–कर् अन–करन–करण सु–करणम् ।
रेफ व नकार के मध्य अकार का व्यवधान है ।

(2) करिन् टा–करिणा–
रेफ व नकार के मध्य इकार का व्यवधान है ।

(3) गुरु टा–गुरु ना–गुरुणा–
उकार का व्यवधान है ।

(4) अर्ह टा–अर्ह इन–अर्हेण–
हकार तथा एकार का व्यवधान है ।

(ख) (कुव्यवाये)—

(1) अर्क टा–अर्केण ।

(2) मूर्ख टा–मूर्खेण ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) गर्ग टा–गर्गेण ।

(4) अर्घ टा–अर्घेण ।

(ग) (पुव्यवाये)

(1) दर्प टा–दर्पेण ।

(2) रेफ टा–रेफेण ।

(3) गर्भ टा–गर्भेण ।

(4) चर्मन् टा–चर्मणा ।
वर्मणा । रामेण ।

(घ) (आङ्व्यवाये)

(1) परि आ नह् क्त–पर्यानद्ध–पर्याणद्ध सु–पर्याणद्धम् ।
इसी प्रकार—निराणद्धम् ।

(ङ) (नुम्व्यवाये)
बृंह् ल्युट्–बृंहण सु–बृंहणम् ।
नुम् का व्यवधान है

(च) (यथासम्भवं मिलितैर्व्यवाये)

(1) राम नुट् आम्–रामा नाम्–रामाणाम् आकार, मकार तथा आकार का व्यवधान है ।

पूर्वपदात् संज्ञायामगः 8.4.3

पद.—पूर्वपदात् 5.1, संज्ञायाम् 7.1, अगः 5.1

अनु.—रषाभ्याम् नः णः संहितायाम् अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में पूर्वपद में स्थित निमित्त रेफ या षकार से उत्तर नकार को अट् आदि के व्यवधान में भी णकार होता है परन्तु गकार का व्यवधान होने पर णत्व नहीं होता है।

उदा.—(1) द्रुनस–द्रुणस सु–द्रुणसः ।
यह एक संज्ञा है ।

(2) वार्धीणसः ।
(पूर्ववत्)

(3) खरणसः ।
(पूर्ववत्)

(4) शूर्पणखा ।
उपर्युक्त सभी संज्ञाएँ हैं ।

विशेष—1. 'संज्ञायाम्' अर्थात् **संज्ञा के विषय में ही** नकार को णकार होता है । यथा—चर्मनासिकः ।
यह संज्ञा नहीं है । अतः णत्व न हुआ ।

2. 'अगः' अर्थात् **गकार से भिन्न** वर्ण का व्यवधान होने पर ही णत्व होता है—

ऋच् अयन–ऋक् अयन–ऋग् अयन सु–ऋगयनम् ।

ऋकार से उत्तर अट् गकार है परन्तु गकार होने से णकार न हुआ ।

वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः 8.4.4

पद.—वनम् 1.1 (षष्ठ्यर्थे), पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः 5.3

अनु.—संहितायाम् संज्ञायाम् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में पुरगा, मिश्रका, सिध्रका, शारिका, कोटरा तथा अग्रे–इन शब्दों से उत्तर 'वन' शब्द के नकार का णकार आदेश होता है ।

उदा.—(1) पुरगा वन–पुरगावण सु–पुरगावणम् ।
(2) मिश्रका वन–मिश्रकावणम् ।
(3) सिध्रका वन–सिध्रकावणम् ।
(4) शारिका वन–शारिकावणम् ।
(5) कोटरा वन–कोटरावणम् ।
(6) अग्रे वन–अग्रेवणम् ।

प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि 8.4.5

पद.—प्रनिरन्तः श ... यूक्षाभ्यः 5.3, असंज्ञायाम् 7.1, अपि–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्याम् नः णः वनम् अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संज्ञा तथा असंज्ञा दोनों विषय में प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर तथा पीयूक्षा–इन शब्दों से उत्तर 'वन' शब्द के नकार को णकार होता है ।

उदा.—(1) प्र वन ङि–प्रवणे
(कुगतिप्रादयः) ।
(2) निर् वन–निर्वण इ–निर्वणे ।
(3) अन्तर्वणे ।
(विभक्ति अर्थ में अव्ययीभाव)
(4) शरवणम् । (मे० 49)
(पूर्ववत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) इक्षुवणम् ।
(6) प्लक्षवणम् ।
(7) आम्रवणम् ।
(8) कार्ष्यवणम् ।
(9) खदिरवणम् ।
(10) पीयूक्षावणम् ।

विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः 8.4.6

पद.—विभाषा 1.1, ओषधिवनस्पतिभ्यः 5.3

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात्-रषाभ्याम् नः णः वनम् अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में ओषधिवाची तथा वनस्पतिवाची जो पूर्वपद उसमें स्थित रेफ या षकार से उत्तर 'वन' शब्द के नकार को णकार विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) दूर्वा वन-दूर्वावणम् ।
पक्ष में—दूर्वावनम् ।
मूर्वावणम्, मूर्वावनम् ।
(2) शिरीषवणम्, शिरीषवनम् ।
बदरीवणम्, बदरीवनम् ।

विशेष—1. सूत्रोक्त णकार दो अच् वाले अथवा तीन अच् वाले शब्द से उत्तर 'वन' शब्द में ही होता है[1]—

देवदारुवनम्—यहाँ चार अच् वाले 'देवदारु' शब्द से उत्तर 'वन' शब्द है । अतः णत्व न हुआ ।

2. इरिका आदि शब्दों से उत्तर 'वन' के नकार को णकार नहीं होता है[2]—

इरिकावनम्-णत्व का निषेध हो गया ।

इसी प्रकार—मिरिकावनम् ।

अह्नोऽदन्तात् 8.4.7

पद.—अह्नः 1.1 (षष्ठ्यर्थे), अदन्तात् 5.1

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—ह्रस्व अकारान्त जो पूर्वपद उसमें स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर अह्न के नकार को णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—(1) पूर्व अह्नः-
पूर्वाह्णः ।
(2) अपर अह्नः-
अपराह्णः ।

विशेष—'अदन्तात्' अर्थात् **ह्रस्व अकारान्त** पूर्वपद से उत्तर नकार को णकार होता है—निर् अह्नः-निरह्नः ।

यहाँ पूर्वपद 'निर्' है जो अदन्त नहीं है । अतः णत्व न हुआ ।

वाहनमाहितात् 8.4.8

पद.—वाहनम् 1.1, आहितात् 5.1

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्याम् नः पाः अट्कुप्वाङ्नुम्व्य वायेऽपि ।

अर्थ—संज्ञा के विषय में आहितवाची जो पूर्वपद उसमें स्थित रेफ या षकार से उत्तर 'वाहन' शब्द के नकार को णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—(1) इक्षूणां वाहनम्-
इक्षुवाहणम् ।
(2) शर वाहन सु-शरवाहणम् ।
(3) दर्भवाहणम् ।

विशेष—'आहितात्' अर्थात् **आहितवाची** पूर्वपद से उत्तर नकार को णकार होता है—

दाक्षिवाहनम् ।

'दाक्षि' पूर्वपद है । इसमें णत्व का निमित्त षकार विद्यमान है परन्तु 'दाक्षि' पद आहितवाची नहीं है । अतः णत्व न हुआ ।

पानं देशे 8.4.9

पद.—पानम् 1.1, देशे 7.1

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में पूर्वपद में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर 'पान' शब्द के नकार को णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी यदि 'देश' अर्थ गम्यमान हो तो ।

उदा.—(1) क्षीरं पानं येषां ते-क्षीरपान जस्-
क्षीरपाणाः (उशीनराः)
यह देशविशेष का अभिधान है ।
(2) सुरापाणाः प्राच्याः ।
(3) कषायपाणाः गान्धाराः ।

---

1. महा० 8.4.6 (वा०) द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्यः ।
2. महा० 8.4.6 (वा०) इरिकादिभ्यः प्रतिषेधः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—'देशे' अर्थात् देश का अभिधान हो तो 'पान' के नकार को णकार होता है—

दाक्षीणां पानम्–दाक्षिपानम्

यहाँ देश का अभिधान नहीं है। अतः णत्व न हुआ।

वा भावकरणयोः 8.4.10

पद.—वा–अव्य०, भावकरणयोः 7.2

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संहिता के विषय में पूर्वपद में स्थित रेफ या षकार से उत्तर, भाव या करण अर्थ में वर्त्तमान 'पान' शब्द के नकार को विकल्प से णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी।

उदा.—भाव में–पीतिः पानम्।
करण में–पीयतेऽनेनेति पानः।
'करणाधिकरणयोश्च' से ल्युट् हुआ।
(1) क्षीरपाणम्।
पक्ष में—क्षीरपानम्।
(2) सुरापाणम्।
सुरापानम्।

विशेष—गिरिनदी आदि शब्दों में विकल्प से नकार को णकार होता है[1]—

गिरिणदी, गिरिनदी।
चक्रणदी, चक्रनदी।
चक्रणितम्बा, चक्रनितम्बा।

प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च 8.4.11

पद.—प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु 7.3, च–अव्य०।

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् वा रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संहिता के विषय में पूर्वपद में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर प्रातिपदिक के अन्त में जो नकार, नुम् का नकार तथा विभक्ति में जो नकार इन नकारों के स्थान पर विकल्प से णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी।

उदा.—(1) माष वप णिनि–माषवापिन्–
(बहुलम् आभीक्ष्ण्ये)
माषवापिन् औ – माषवापिणौ
पक्ष में—माषवापिनौ।
(2) माष वप् अण्–माषवाप–
(कर्मण्यण्)
माषवाप जस्–माषवापानि–
(नुम्, दीर्घ)
माषवापाणि, माषवापानि।
(3) माषवाप टा–माषवाप इन–
(विभक्ति का नकार है)
माषवापेण, माषवापेन।

विशेष—पूर्वपद से उत्तर 'युवन्' आदि शब्दों के नकार को णकार होता है[2]—

आर्य युवन् टा–आर्ययूना
(णकार न हुआ)
प्रपक्व जस्–प्रपक्वानि।

एकाजुत्तरपदे णः 8.4.12

पद.—एकाजुत्तरपदे 7.1, णः 1.1

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्यां नः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु।

अर्थ—एक अच् वाला उत्तरपद है जिसका ऐसे समास के पूर्वपद में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर प्रातिपदिकान्त, नुम् व विभक्ति के नकार को णकार होता है अट् आदि के व्यवधान में भी।

उदा.—(1) वृत्रहन् औ–
उपपद समास है। उत्तरपद 'हन्' एकाच् है।
पूर्वपद (वृत्र) में णत्व का निमित्त (रेफ) विद्यमान है। रेफ से उत्तर प्रातिपदिकान्त नकार को णकार हो गया।

वृत्रहणौ।

(2) क्षीरं पिबन्ति–क्षीर पा क–
(आतोऽनुपसर्गा०)
क्षीरप् अ–क्षीरप नुम् शि–
(आतो लोप इटि च। जस्। शि। नुम्)

उत्तरपद (प) एकाच् है। पूर्वपद में निमित्त रेफ है। उससे उत्तर 'नुम्' के णकार को णकार हुआ।

क्षीरपाणि।

(3) क्षीरप टा–क्षीरपेण।

पूर्ववत् विभक्ति में स्थित नकार को णकार हो गया।

---

1. महा० 8.4.10 (वा०) वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनाम् उपसंख्यानम्।

2. महा० 8.4.11 (वा०) युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमति च 8.4.13

पद.—कुमति 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु ।

अर्थ—संहिता के विषय में पूर्वपद में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर प्रातिपदिक के अन्त में स्थित नकार, नुम् के नकार तथा विभक्ति के नकार को अट् आदि के व्यवधान में भी णकार होता है, कवर्ग वाले शब्द के उत्तरपद रहते ।

कु मतुप्–कुमत् ङि–कुमति अर्थात् कवर्ग वाले शब्द के उत्तरपद रहते ।

उदा.—(1) वस्रयुग इनि–वस्रयुगिन् औ–पूर्वपद (वस्र) में णत्व का निमित्त (रेफ) विद्यमान है । उससे उत्तर 'युगिन्' शब्द के अन्त में प्रातिपदिकान्त नकार है परन्तु 'युगिन्' एकाच् नहीं है । अतः इसके नकार को पूर्वसूत्र से णकार प्राप्त नहीं है ।

'युगिन्' कवर्ग (गकार) वाला है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा णकार हो गया ।

वृत्रयुगिणौ ।

(2) वस्रयुग जस्–वस्रयुगन् इ–वस्रयुगान इ–

पूर्ववत् नुम् के नकार को णकार हो गया–वस्रयुगाणि ।

(3) वस्र युग टा–वस्रयुगेण ।

(4) वर्षभोग्येण (मे०1) ।

पूर्ववत् विभक्ति के नकार को णकार हो गया ।

उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य 8.4.14

पद.—उपसर्गात् 5.1, असमासे 7.1, अपि–अव्य०, णोपदेशस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर णकारोपदेश धातु के नकार को समास तथा असमास दोनों अवस्थाओं में अट् आदि का व्यवधान होने पर भी णकार होता है ।

णकारोपदेश का अर्थ है—(वह धातु) जो उपदेश काल में णकार वाला था ।

'पूर्वपदादसंज्ञायामगः' से 'पूर्वपदात्' पद का अनुवर्त्तन होता है । अतः इसकी निवृत्ति के लिए 'असमासेऽपि' का ग्रहण किया गया है । यदि ऐसा न कहते तो यह णत्व समास में ही प्राप्त होता ।

उदा.—(1) णम्–नम्–प्रनम् शप् ति–प्रणमति

णम् धातु उपदेश में णकार वाला है । अतः असमास की अवस्था में णकार हो गया ।

प्रनी शप् ति–प्रणयति ।

(पूर्ववत्) प्राणशत् (भट्टि० 15.49)।

अभिप्रणीतः (भट्टि० 1.4)

(2) प्र नायकः–प्रणायकः ।

इसी प्रकार—प्रणाशम् (भट्टि० 3.14)।

'कुगतिप्रादयः' से समास हुआ है ।

इसी प्रकार—

(3) परिणामः, प्रणामः ।

विशेष—1. उपसर्गात् अर्थात् **उपसर्ग से उत्तर** णकारोपदेश धातु के नकार को णकार होता है—

प्रगता नायका अस्माद् देशात्–प्रनायको देशः । यहाँ 'प्र' की उपसर्ग संज्ञा नहीं है । अतः इस से उत्तर नकार को णकार नहीं हुआ ।

2. 'असमासेऽपि' अर्थात् **असमास में भी** नकार को णकार होता है । पूर्वसूत्र से जो पूर्वपद का अनुवर्त्तन होता है, उसकी निवृत्ति के लिए 'असमासेऽपि' का ग्रहण किया गया है ।

3. 'णोपदेशस्य' अर्थात् **उपदेश में जो णकारवान्** धातु है, उसके नकार को ही णत्व होता है—

प्रनर्दति यहाँ 'प्र' उपसर्ग है । इसमें रेफ विद्यमान है । इससे उत्तर 'नर्द्' धातु के नकार को णकार न हुआ । कारण कि यह उपदेश में णकार वाला धातु नहीं है ।

हिनुमीना 8.4.15

पद.—हिनु, मीना–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम् ।

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः अटकुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर 'हिनु' तथा 'मीना' के नकार को अट् आदि के व्यवधान में भी णकार होता है ।

हि गतौ (स्वा०) से 'श्नु' करने पर 'हिनु' स्वरूप प्राप्त होता है ।

मीञ् (क्र्यादि०) से 'श्ना' करने पर 'मीना' बनता है ।

उदा.—(1) प्र हि श्नु ति–प्रहिणोति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(णत्व तथा गुण)

प्र हि श्नु तस्-प्रहिणुतः ।

(2) प्र मी ति-प्र मी श्ना ति-प्रमीणाति ।

इसी प्रकार—प्र मी श्ना त-प्रमीणीते ।

आनि लोट् 8.4.16

पद.—आनि-लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्, लोट्-लुप्तषष्ठ्यन्त रूपम् ।

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर लोट् के स्थान पर आदेश जो 'आनि' उसके नकार को णकार होता है अट् आदि के व्यवधान में भी ।

लोट् उ०पु०एक० के 'मिप्' को 'मेर्निः' के द्वारा 'नि' आदेश होता है । 'आडुत्तमस्य पिच्च' के द्वारा इस 'नि' को 'आट्' आगम होता है । आट् टित् होने से 'नि' का आदि अवयव होकर 'आनि' बनता है ।

इसी 'आनि' के नकार को णकार होता है ।

उदा.—(1) प्र वप् शप् मि-प्र वप आट् नि-प्रवपाणि 'उपसर्गाः क्रियायोगे' से 'प्र' की उपसर्ग संज्ञा हुई । उपसर्ग (प्र) में निमित्त रेफ विद्यमान है । इससे उत्तर लोट् के आनि के नकार को णकार हो गया है ।

(2) प्र भू मिप्-प्रभवाणि ।

(3) परि या मि-परियाणि ।

विशेष—'लोट्' अर्थात् **लोट् के आदेश** स्वरूप 'आनि' के नकार के णकार होता है—

प्रकृष्टा वपा येषां तानि इस अर्थ में प्रथ० बहुव० में 'प्रवपानि' बनता है ।

यहाँ 'आनि' है परन्तु वह लोट् का आदेश नहीं है । अतः 'आनि' के नकार को णकार न हुआ ।

नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्साति-वपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च 8.4.17

पद.—नेः 6.1, गदनदपत ... देग्धिषु 7.3, च-अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः उपसर्गात् अट्-कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर 'नि' के नकार को णकार होता है, गद्, नद्, पत्, पद्, घुसंज्ञक धातु, मा, षो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि तथा दिह् के परे रहते तथा अट् आदि का व्यवधान होने पर भी ।

उदा.—(1) प्र नि गदति-

'प्र' की उपसर्ग संज्ञा है । इसमें रेफ विद्यमान है । रेफ से उत्तर 'नि' है । इससे पर 'गद्' धातु है । णकार हुआ-

(1) प्रणिगदति, परिणिगदति ।

(2) प्रणिनदति, परिणिनदति ।

(3) प्रणिपतति, परिणिपतति ।

(4) प्रणिपद्यते, परिणिपद्यते ।

(5) प्रणिददाति, परिणिददाति ।
प्रणिदधाति, परिणिदधाति ।

(6) प्रणिमिमीते, परिणिमिमीते ।

(7) प्रणिमयते, परिणिमयते ।

(8) प्रणिष्यति, परिणिष्यति ।
(उपसर्गात् सुनोति०)

(9) प्रणिहन्ति, परिणिहन्ति ।
द्र० प्रणिहन्मि (भट्टि० 2.35)

(10) प्रणियाति, परिणियाति ।

(11) प्रणिवाति, परिणिवाति ।

(12) प्रणिद्राति, परिणिद्राति ।

(13) प्रणिप्साति, परिणिप्साति ।

(14) प्रणिवपति, परिणिवपति ।

(15) प्रणिवहति, परिणिवहति ।

(16) प्रणिशाम्यति, परिणिशाम्यति ।

(17) प्रणिचिनोति, परिणिचिनोति ।

(18) प्रणिदेग्धि, परिणिदेग्धि ।

विशेष—सूत्रोक्त 'गद्' आदियों में प्रथम चार धातुओं का निर्देश 'शप्' के द्वारा किया गया है तथा 'स्यति' आदि ग्यारह धातुओं का निर्देश 'श्तिप्' के द्वारा किया गया है । शप् तथा श्तिप् के द्वारा कहा गया कार्य यङ्लुक् में नहीं होता है । अतः प्रकृतसूत्र के द्वारा विहित णत्व यहाँ नहीं हुआ—

प्रनिजागदीति ।

इसी प्रकार अन्यत्र जानें ।

शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे 8.4.18

पद.—शेषे 7.1, विभाषा 1.1, अकखादौ 7.1, अषान्ते 7.1, उपदेशे 7.1

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर नकार को विकल्प से णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी यदि उस नकार से परे पूर्वसूत्रोक्त गद् आदि धातु न हों तथा उपदेश काल में जो ककारादि खकारादि या षकारान्त धातु, वे परे न हों ।

सूत्र की शर्तें इस प्रकार हैं—

1) संहिता का विषय हो,
2) उपसर्ग में रेफ या षकार विद्यमान हो,
3) उस उपसर्ग से उत्तर नकार हो, चाहे मध्य में अट् आदि का व्यवधान हो,
4) नकार से पर 'नेर्गदनद०' सूत्रोक्त कोई धातु न हो,
5) नकार से पर कोपदेश धातु न हो,
6) नकार से पर खोपदेश धातु न हो,
7) उपदेश में जो षकारान्त ऐसा धातु परे न हो ।

उदा.—(1) प्रनि पचति–

'प्र' उपसर्ग में रेफ है । उससे पर 'नि' है । इसके नकार से परे 'पच्' धातु है जो न तो उपदेश में ककारादि-खकारादि है तथा न ही अन्त में षकार है । अतः णकार हो गया ।

प्रणिपचति ।

पक्ष में णकार न हुआ—प्रनिपचति ।

(2) इसी प्रकार—प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति ।

विशेष—1.'अकखादौ' अर्थात् **उपदेश में जो ककारादि या खकारादि** धातु उसके परे रहते नकार को णकार नहीं होता है—प्रनिकरोति ।

ककारादि धातु परे होने से णकार न हुआ ।

इसी प्रकार 'प्रनिखादति' में णकार न हुआ ।

2. 'अषान्ते' अर्थात् **उपदेश में जो षकारान्त** उसके परे रहते नकार को णकार नहीं होता है—प्रनिपिनष्टि ।

'पिष्' धातु उपदेश में षान्त है । अतः इसके परे रहते णकार न हुआ ।

अनितेरन्तः 8.4.19

पद.—अनितेः 6.1, अन्तः 1.1

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर उत्तरपद के अन्त में वर्त्तमान 'अन्' धातु के नकार को णकार होता है अट् आदि के व्यवधान में भी ।

महाभाष्य में 'अन्तः' शब्द को समीपवाची मानकर भी अर्थ किया गया है ।

इस दशा में सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है—

रेफ अथवा षकार के समीपस्थ 'अन्' धातु के नकार को णकार होता है ।

इस अर्थ के अनुसार एकवर्ण का व्यवधान रहते तो णकार (प्राणिति) हो जाता है परन्तु एकाधिक वर्ण का व्यवधान होने पर णकार नहीं होता है (द्र० पर्यनिति) ।

उदा.—(1) हे प्राण्–

प्र अन् क्विप्–प्रान् सु–हे प्राण् ।

उपसर्ग (प्र) में रेफ है । इससे पर 'अन्' धातु का नकार है जो पद के अन्त में स्थित है । अतः णकार हो गया है ।

(2) हे पराण् ।
(पूर्ववत्)

(3) प्राणिवः (भट्टि० 4.38) ।

उभौ साऽभ्यासस्य 8.4.20

पद.—उभौ 1.2, साभ्यासस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् अनितेः रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ या षकार से उत्तर अभ्यास सहित अन् धातु के दोनों नकारों को णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—(1) अन् सन्–अन् इट् स–अनिनिषति–प्र अनिनि-षति–प्राणिणिषति ।

अभ्यास के नकार को णकार हो गया । अभ्यास का व्यवधान होने पर भी प्रकृतसूत्र के द्वारा अभ्यास से उत्तर नकार को भी णकार हो गया ।

(2) प्र अन् णिच् लुङ्–प्र अन् इ चङ् त्–

प्राणिणत् ।

पूर्ववत् दोनों नकारों को णकार हो गया ।

(3) पराणिणिषति ।

(4) पराणिणत् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हन्तेरत्पूर्वस्य 8.4.21

पद.—हन्तेः 6.1, अत्पूर्वस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर हन् धातु उस हन् के नकार को जिसके पूर्व में ह्रस्व अकार नहीं है, णकार होता है । अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—(1) प्र हन् यक् (कर्मवाच्य)–
प्रहण्यते ।

उपसर्ग (प्र) में रेफ है । उससे पर 'हन्' धातु है । हन् के नकार से पूर्व ह्रस्व अकार है । अतः हन् के नकार को णकार हो गया ।

(2) परिहण्यते ।

(3) प्र हन् ल्युट्–प्रहणनम् । सु होकर ।

(4) परिहन् ल्युट्–परिहणनम् ।

विशेष—1. 'अत्पूर्वस्य' अर्थात् **ह्रस्व अकार है पूर्व में** जिसके ऐसे नकार को णकार होता है—

प्र हन् झि–प्रघ्नन्ति
(शप्, शप् का लुक्, गमहनजन०)

यहाँ उपधा का लोप होने से 'हन्' के नकार से पूर्व ह्रस्व अकार नहीं है । अतः णकार न हुआ ।

2. 'अत्' में तपरकरण का प्रयोजन है कि नकार से पूर्व **ह्रस्व** अकार होने पर ही णत्व होता है—प्राघानि ।

यह चिण् का रूप है । नकार से पूर्व अवर्ण है परन्तु ह्रस्व नहीं है । अतः णकार न हुआ ।

वमोर्वा 8.4.22

पद.—वमोः 7.2, वा–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् हन्तेः अत्पूर्वस्य रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ या षकार से उत्तर जो हन् धातु उसके नकार को विकल्प से णकार होता है वकार, मकार परे रहते तथा अट् आदि के व्यवधान में भी यदि उस नकार से पूर्व ह्रस्व अकार हो ।

उदा.—(1) प्र हन् वस्–प्रहण्वः, प्रहन्वः । उपसर्ग (प्र) में रेफ स्थित है । उससे उत्तर 'हन्' धातु है । हन् से परे वकार है । हन् के नकार से पूर्व ह्रस्व अकार है । अतः नकार को णकार विकल्प से हो गया है ।

(2) प्रहण्मः, प्रहन्मः ।
(पूर्ववत्)

(3) परिहण्वः, परिहन्वः ।

(4) परिहण्मः, परिहन्मः ।

अन्तरदेशे 8.4.23

पद.—अन्तर्–अव्य०, अदेशे 7.1

अनु.—संहितायाम् हन्तेः अत्पूर्वस्य रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'देश' अभिधेय न हो तो 'अन्तर्' शब्द से उत्तर जो हन् धातु उसके नकार को णकार आदेश होता है अट् आदि के व्यवधान में भी यदि उस नकार से पूर्व ह्रस्व अकार हो ।

उदा.—(1) अन्तर् हन् त–अन्तर् हन् यक् त–अन्तर्हण्यते– 'अन्तर्' शब्द से उत्तर हन् धातु है । हन् के नकार से पूर्व ह्रस्व अकार है । अतः नकार को णकार हो गया ।

(2) अन्तर् हन् ल्युट् सु–अन्तर्हणनम् ।
(पूर्ववत्)

'अन्तरपरिग्रहे' से गति संज्ञा । कुगतिप्रादयः ।

विशेष—'अदेशे' अर्थात् 'देश' अभिधेय न हो तो नकार को णकार नहीं होता है—अन्तर्हननो देशः ।

यहाँ 'देश' अभिधेय है । अतः णकार न हुआ ।

अयनं च 8.4.24

पद.—अयनम् 1.1, च–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः अन्तर् अदेशे अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में 'देश' अभिधेय न हो तो 'अन्तर्' शब्द से उत्तर 'अयन' शब्द के नकार को णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—अन्तर् अयनम्–अन्तरयणम् ।
यहाँ णकार हो गया ।

छन्दस्यृदवग्रहात् 8.4.25

पद.—छन्दसि 7.1, ऋदवग्रहात् 5.1

अनु.—संहितायाम् पूर्वपदात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—वेद के विषय में ऋकारान्त अवगृह्यमाण पूर्वपद से उत्तर नकार को णकार होता है ।

उदा.—नृमणाः ।
यहाँ णकार हो गया है ।
पितृयाणम् । (पूर्ववत्)

पदपाठ काल में जिसका अवग्रह (अर्थात् पृथक्) किया जाये, उसे 'अवगृह्यमाण' कहते हैं ।

नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः 8.4.26

पद.—नः-लुप्तविभक्त्यन्तरूपम्, च-अव्य०, धातुस्थोरुषुभ्यः 5.3

अनु.—छन्दसि संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—वेद के विषय में धातु में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर तथा 'उरु' व 'षु' शब्दों से उत्तर 'नस्' के नकार को णकार होता है ।

'बहुवचनस्य वस्नसौ' के द्वारा विहित 'नस्' का यहाँ ग्रहण है ।

उदा.—(1) अग्ने रक्षाणः (ऋ० 7.15.13)
(2) शिक्षा णो अस्मिन् (ऋ० 7.32.26)
(3) उरुणस्कृधि (ऋ० 8.75.11)
(4) अभी षु णः (ऋ० 4.31.3)
(5) ऊर्ध्व ऊ षु णः (ऋ० 1.36.13)

उपसर्गादनोत्परः 8.4.27

पद.—उपसर्गात् 5.1, अनोत्परः 1.1

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नःणः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि नः ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ या षकार से उत्तर जो ओकार से परे नहीं है नस्, उसके नकार को णकार होता है ।

ओकारः परोऽस्मात्-ओत्परः (बहु०)। न ओत्परोऽनोत्परः ।
'ओत्पर' का अर्थ है—ओकार है पर इससे ।

उदा.—(1) प्रणः शूद्रः ।
(2) प्रणसः ।
(3) प्रणो राजा ।

कृत्यचः 8.4.28

पद.—कृति 7.1, अचः 5.1

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ या षकार से उत्तर जो अच् उससे उत्तर कृत् प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार होता है ।

निम्न कृत् प्रत्ययों में ही नकार प्राप्त होता है । अतः इस नकार को ही णकार होता है—

1) ल्युट्-यु-अन ।
2) शानच्-आन, मान (मुक् सहित) ।
3) अनीयर्-अनीय ।
4) अनि ।
5) इनि-इन् ।
6) क्त-न (रदाभ्यां० इत्यादि) ।
7) क्तवतु-नवतु (पूर्ववत्) ।

उदा.—(1) प्र या ल्युट्-प्रयाण सु-प्रयाणम् ।
परि या ल्युट्-परियाणम् ।

(2) प्र या य शानच्-प्रयायमाणः (कर्मणि)।
परियायमाणः ।

(3) प्र या अनीयर्-प्रयाणीयम् ।
(विभक्ति)
परियाणीयम् ।

(4) अप्रयाणिः ।

(5) प्रयायिन् औ-प्रयायिणौ ।
परियायिणौ ।

(6) प्र हा क्त-प्र हीण सु-प्रहीणः ।
परिहीणः ।
प्रहीणवान् । परिहीणवान् ।

णेर्विभाषा 8.4.29

पद.—णेः 5.1, विभाषा 1.1

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः कृत्यचः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर जो णिच् प्रत्ययान्त धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय, उस प्रत्यय में स्थित अच् से परे नकार को णकार आदेश विकल्प से होता है, अट् आदि का व्यवधान होने पर भी । सूत्र का विशद अर्थ इस प्रकार है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1) सन्धि का विषय हो,

2) उपसर्ग में रेफ या षकार हो,

3) उपसर्गस्थ रेफ या षकार से उत्तर णिच् प्रत्ययान्त धातु हो,

4) णिजन्त धातु से विहित कृत् प्रत्यय हो,

5) कृत् प्रत्यय में जो नकार वह अच् से उत्तर हो,

6) उस नकार को विकल्प से णकार होता है।

अट् आदि का व्यवधान होने पर भी।

उदा.—(1) प्र या णिच् ल्युट्–
(णिच्, ल्युट्)
प्र या प् अन–प्रयापणम्
(अर्तिह्री० । युवोरनाकौ । णिलोप । विभक्ति)
पक्ष में—प्रयापनम्।

(2) प्र या णिच् शानच्–प्र याप् इ यक् आन–प्रयाप्यमान सु–प्रयाप्यमाणम्।
(णिच्। शानच्। यक्। णिलोप। मुक्)
पक्ष में—प्रयाप्यमानम्।
इसी प्रकार—परियाप्यमाणम्।
पक्ष में—परियाप्यमानम्।

हलश्चेजुपधात् 8.4.30

पद.—हलः 5.1, च–अव्य०, इजुपधात् 5.1

अनु.—संहितायाम् कृत्यचः उपसर्गात् रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि विभाषा।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर इजुपध जो हलादि धातु, उससे विहित कृत् प्रत्यय, उस प्रत्यय में स्थित अच् से उत्तर नकार को विकल्प से णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी।

इजुपध–इच् वर्ण (इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ) हैं उपधा में जिसके।

सूत्र की निम्नलिखित शर्तें हैं—

1) सन्धि का विषय हो,

2) उपसर्ग में रेफ या षकार हो,

3) णत्व के निमित्त से उत्तर इजुपध तथा हलादि धातु हो,

4) उस धातु से विहित कृत् प्रत्यय हो,

5) कृत् प्रत्यय का जो नकार वह अच् से उत्तर हो,

6) नकार को विकल्प से णकार होता है, अट् आदि का व्यवधान होने पर भी।

उदा.—(1) प्र कुप् ल्युट्–प्रकुप् अन–

उपसर्ग (प्र) में रेफ है। इससे उत्तर 'कुप्' धातु है जिसकी उपधा में इच् वर्ण (उकार) है तथा जो हलादि भी है।

कुप् से विहित ल्युट् (अन) के नकार से पूर्व अकार अच् है। अतः नकार को णकार हुआ—

प्रकोपणम्।
पक्ष में—प्रकोपनम्।

(2) परिकोपणम्।
परिकोपनम्।

विशेष—1. 'हलः' अर्थात् **हलादि धातु** से विहित कृत् के नकार को णकार होता है—

प्र ईह् ल्युट्–प्र ई ह् अन–

उपसर्ग (प्र) में रेफ है। उससे उत्तर 'ईह्' धातु है जिसकी उपधा में इच् (ईकार) है परन्तु यह धातु हलादि नहीं है।

अतः 'ईह्' से विहित कृत् प्रत्यय (ल्युट्) के अच् से उत्तर नकार को णकार का विकल्प न हुआ—

प्रेहण सु–प्रेहणम्।

इसी प्रकार 'प्रोहणम्' में जानना चाहिए। 'कृत्यचः' से नित्य णकार हो गया है।

2. 'इजुपधात्' अर्थात् **इच् वर्ण है उपधा में** जिसके ऐसे धातु से विहित कृत् के नकार को णकार होता है—

प्र वप् ल्युट्–प्र वप् अन–

उपसर्ग (प्र) में रेफ है। उससे उत्तर 'वप्' धातु है जो हलादि है परन्तु उसकी उपधा में इच् वर्ण नहीं है।

अतः 'वप्' से विहित कृत् प्रत्यय (ल्युट्) के अच् से उत्तर नकार को णकार का विकल्प न हुआ—

प्रवपणम्

'कृत्यचः' से नित्य णकार हो गया।

इजादेश्च सनुमः 8.4.31

पद.—इजादेः 5.1, च–अव्य०, सनुमः 5.1

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् हलः कृत्यचः रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ या षकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उत्तर इजादि, नुम् सहित, हलन्त जो धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय उस प्रत्यय का अच् से उत्तर नकार, उसे णकार होता है।

'कृत्यचः' से णकार सिद्ध था। प्रकृतसूत्र नियमार्थ है। यह नियम करता है कि नुम् सहित इजादि धातु से उत्तर ही कृत् के अच् से उत्तर नकार को णकार होता है, अन्य धातु से विहित कृत् के नकार को णकार न हो।

पूर्व सूत्र से 'हलः' पद का अनुवर्त्तन होता है। वहाँ 'हलः' का अर्थ 'हलादि' है परन्तु प्रकृतसूत्र में 'इजादेः' कथन से 'हलः' में आदि अर्थ प्राप्त नहीं होता है। तब तदन्त विधि होकर 'हलः' का अर्थ 'हलन्तात्' होता है।

उदा.—(1) प्र ईखि-प्र इ नुम् ख्-प्र इंख्-

'प्र' में रेफ है। इससे उत्तर 'इखि' धातु है। यह इजादि, हलन्त तथा नुम् सहित है।

अतः 'इङ्ख्' से विहित कृत् के अच् से उत्तर नकार को णकार हो गया है—

प्र इङ्ख ल्युट्-प्रेङ्खणम्।

(इदितो नुम्धातोः। नश्चाऽप०। अनुस्वारस्य ययि०। सु विभक्ति)

(2) प्र इगि ल्युट्-प्रेङ्गणम्।

(3) प्रोम्भणम्।

यहाँ 'उम्भ्' धातु है जिसमें 'इदितो नुम् धातोः' से नुम् नहीं हुआ है। इसे धातु पाठ में नुम् सहित पढ़ा गया है। अतः णकार हो गया।

वा निंसनिक्षनिन्दाम् 8.4.32

पद.—वा-अव्य०, निंसनिक्षनिन्दाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् कृत्यचः रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर जो निंस्, निक्ष्, निन्द् धातु उनके नकार को विकल्प से णकार होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी, यदि इन धातुओं से परे अच् पूर्वक कृत् विहित हो।

उदा.—(1) प्र निंस् ल्युट्-प्रणिंस् अन सु-प्रणिंसनम् उपसर्ग (प्र) में रेफ है। उससे पर 'निंस्' धातु है। उससे पर कृत् प्रत्यय (अन) है। अतः धातु के नकार को विकल्प से णकार हो गया।

पक्ष में—प्रनिंसनम्।

(2) प्र निक्ष् ल्युट्-प्रणिक्षणम्।
(पूर्ववत्)
पक्ष में—प्रनिक्षणम्।

(3) प्र निन्द् ल्युट्-प्रणिन्दनम्।
(पूर्ववत्)
पक्ष में—प्रनिन्दनम्।

न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् 8.4.33

पद.—न-अव्य०, भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् 5.3

अनु.—संहितायाम् उपसर्गात् कृत्यचः रषाभ्याम् नः णः अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ या षकार से उत्तर भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी तथा वेप्-ये धातु, इनसे विहित जो कृत् प्रत्यय उसका अच् से उत्तर जो नकार उसे णकार नहीं होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी।

'कृत्यचः' से सर्वत्र णत्व प्राप्त था।

उदा.—(1) प्र भा ल्युट्-प्रभान सु-प्रभानम्।

उपसर्ग (प्र) में रेफ है। उससे उत्तर 'भा' धातु है। उससे कृत् (ल्युट्-अन) विहित है। इसके अच् (अकार) से उत्तर नकार को णकार न हुआ।

(2) प्र भू ल्युट्-प्रभवनम्।
(पूर्ववत्)

(3) प्र पू ल्युट्-प्रपवनम्।
(पूर्ववत्)

(4) प्र कम् ल्युट्-प्रकमनम्।
(पूर्ववत्)

(5) प्र गम् ल्युट्-प्रगमनम्।
(पूर्ववत्)

(6) प्र प्याय् ल्युट्-प्रप्यायनम्।
(पूर्ववत्)

(7) प्रवेप् ल्युट्-प्रवेपनम्।

विशेष—णिच् प्रत्ययान्त भा आदि धातुओं से भी पूर्ववत् नकार को णकार नहीं होता है[1]—

प्र भा णिच्-प्रभा पुक् णिच् ल्युट्-
(अर्त्तिह्री०)

1. काशि० 8.4.34 (वा०) ण्यन्तानां भादीनामुपसंख्यानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभापनम् ।
इसी प्रकार—प्रभावनम् इत्यादि ।

षात्पदान्तात् 8.4.34

पद.—षात् 5.1, पदान्तात् 5.1

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः न अट्कुप्वाङ्-नुम्व्यवायेऽपि । कृत्यचः ।

अर्थ—संहिता के विषय में पदान्त में स्थित षकार से उत्तर धातु से विहित जो कृत् प्रत्यय, उसके अच् से उत्तर नकार को णकार नहीं होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—(1) निस् पा ल्युट्–निस् पान–
(रु, विसर्जनीय, इदुदुपधस्य०' से षत्व)
निष्पान सु–निष्पानम् ।

पद (निष्) के अन्त में षकार है । इससे उत्तर पा धातु से कृत् प्रत्यय (ल्युट्) विहित है । इसके अच् (अकार) से परे नकार को 'कृत्यचः' से णकार आदेश प्राप्त था । प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया है ।

(2) दुस् पा ल्युट्–दुष्पानम् ।
(पूर्ववत्)

(3) सर्पिस् पान–सर्पिष्पानम् ।
(पूर्ववत्)

विशेष—1. 'षात्' अर्थात् **षकार से उत्तर** कृत् प्रत्यय के नकार को णकार नहीं होता है—

निर् नी अ–निर् नय सु–निर्णयः ।

यहाँ 'निर्' में षकार नहीं है । अतः णत्व का निषेध न हुआ ।

2. 'पदान्तात्' अर्थात् **पदान्त से उत्तर** कृत् के नकार को णकार का निषेध होता है—

कुष्णाति–

'कुष्' यहाँ षकार है । इससे उत्तर प्रत्यय का नकार है । परन्तु षकार पदान्त में नहीं है । अतः णत्व का निषेध न हुआ ।

नशेः षान्तस्य 8.4.35

पद.—नशेः 6.1, षान्तस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः न अट्कुप्वाङ्नुम्-व्यवायेऽपि उपसर्गात् ।

अर्थ—संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तर षकारान्त जो नश् धातु उसके नकार को णकार नहीं होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—(1) णश्–नश्–न नुम् श् त–नन्ष् त–
(क्त । मस्जिनशोर्झलि । व्रश्चभ्रस्ज०)
नष्त–नष्ट–प्रनष्ट सु–प्रनष्टः
(अनिदितां हलः–। ष्टुना ष्टुः । णत्व निषेध)

(2) परि नश् क्त–परिनष्टः ।

पदान्तस्य 8.4.36

पद.—पदान्तस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः न अट्कुप्वाङ्नुम्-व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में रेफ अथवा षकार से उत्तर पदान्त में जो नकार उसे णकार नहीं होता है, अट् आदि के व्यवधान में भी ।

उदा.—(1) राम शस्–राम अस्–रामास्–
(प्रथमयोः पूर्वसवर्णः—)
रामान् ।
(तस्माच्छसो नः पुंसि । अट्कुप्वाङ्० । पदान्तस्य)

(2) वृक्ष शस्–वृक्षान् ।

(3) हरि शस्–हरीन् ।

(4) ऋषि शस्–ऋषीन् ।

(5) गुरु शस्–गुरून् ।

(6) इक्षु शस्–इक्षून् ।

पदव्यवायेऽपि 8.4.37

पद.—पदव्यवाये 7.1, अपि–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः न अट्कुप्वाङ्नुम्-व्यवायेऽपि ।

अर्थ—संहिता के विषय में रेफ अथवा षकार से उत्तर नकार को णकार नहीं होता है यदि निमित्त तथा निमित्ती के मध्य पद का व्यवधान हो ।

उदा.—(1) माषकुम्भवापेन—

णत्व का निमित्त (षकार) प्रथम पद में स्थित है तथा णत्व का निमित्ती (नकार) तृतीय पद में है । दोनों के मध्य अट् आदि अनेक वर्णों (अकार, ककार, उकार, मकार, भकार, अकार, वकार, आकार, पकार, एकार) का व्यवधान होने पर भी 'प्रातिपदिकान्त०' से णत्व प्राप्त हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमित्त एवं निमित्ती के मध्य एक पद (कुम्भ) का व्यवधान है। अतः प्राप्त णत्व का प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया।

(2) चत्वारि अंगानि यस्य सः चतुरङ्गः तेन योगः चतुरङ्ग-योगस्तेन-चतुरङ्गयोगेन।

यहाँ 'कुमति च' से प्राप्त णत्व का पूर्ववत् निषेध हो गया। 'अंग' पद का व्यवधान है।

(3) प्र अव नद्धम्-प्रावनद्धम्
(कुगतिप्रादयः। उपसर्गाद्०। णत्व का निषेध)

(4) इसी प्रकार 'प्रगान्नयामः' में जानना चाहिए।

विशेष—तद्धितभिन्न पद का व्यवधान होने पर ही सूत्रोक्त निषेध होता है[1]—

आर्द्रगोमयेण यहाँ तद्धितपद (गोमय) का व्यवधान है। अतः णत्व का निषेध न हुआ।

क्षुभ्नादिषु च 8.4.38

पद.—क्षुभ्नादिषु 7.3, च-अव्य०।

अनु.—संहितायाम् रषाभ्याम् नः णः न अट्कुप्वाङ्नुम्-व्यवायेऽपि।

अर्थ—क्षुभ्नादिगणपठित शब्दों के नकार को णकार आदेश नहीं होता है।

उदा.—(1) क्षुभ् तिप् (लट्)-
क्षुभ् श्ना ति-क्षुभ्नाति
अट्कुप्वाङ्नुम्० से प्राप्त णत्व का निषेध हो गया।

(2) क्षुभ् श्ना तस् (लट्)-
क्षुभ्नीतः।
(ई हल्यघोः। णत्व का पूर्ववत् निषेध)

(3) क्षुभ् श्ना झि (लट्)-
क्षुभ् ना अन्ति-क्षुभ् न् अन्ति-
(झोऽन्तः। श्नाऽभ्यस्तयोरातः)
क्षुभ्नन्ति
(णत्व का पूर्ववत् निषेध)

(4) नृन् (= मनुष्यान्) नमयति-
नृ नमन सु-नृनमनः
(पूर्वपदात्० अथवा छन्दस्यृदव०)

(5) नृत् यङ्-नरीनृत्यते

1. काशि० 8.4.37 (वा०) पदव्यवायेऽतद्धित इति वक्तव्यम्।

यहाँ णकार आदेश न हुआ।
क्षुभ्नादि गण एक आकृतिगण है।

स्तोः श्चुना श्चुः 8.4.39

पद.—स्तोः 6.1, श्चुना 3.1, श्चुः 1.1

अनु.—संहितायाम्।

अर्थ—संहिता के विषय में सकार तथा तकार का शकार और चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) के साथ योग होने पर सकार तथा तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के स्थान पर शकार तथा चवर्ग हों।

यहाँ पूर्व में छह वर्ण (स्, त्, थ्, द्, ध्, न्) कहें हैं तथा पर में भी छह वर्ण (श्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) कहें गए हैं। इसी प्रकार आदेश भी छह (श्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) ही हैं। अतः समान होने के कारण 'यथासंख्यमनु०' परिभाषा के द्वारा ये आदेश क्रमशः होते हैं अर्थात् स् के स्थान पर श्, त् के स्थान पर च्, थ् के स्थान पर छ्, द् के स्थान पर ज्, ध् के स्थान पर झ् तथा न् के स्थान पर ञ् होता है।

ध्यान रहे, आदेश के सम्बन्ध में यथासंख्य नियम कार्य करता है परन्तु योग के सम्बन्ध में यथासंख्य नियम कार्य नहीं करता है अर्थात् आवश्यक नहीं है कि स् व श् का, त् व च् का, थ् व छ् का—इसी प्रकार स्थानी व निमित्त का योग हो।

यहाँ स्थानी और निमित्त का योग किसी भी प्रकार से हो सकता है अर्थात् स् का योग श्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्—इन छह वर्णों में से किसी एक के साथ होने पर भी 'श्चुत्व' होगा ही।

दूसरी बात ध्यान देने की है कि यह भी आवश्यक नहीं है कि स्थानी (स्, त्, थ्, द्, ध्, न्) पूर्व स्थान में हों तथा निमित्त (श्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) पर स्थान में हो तभी श्चुत्व होगा।

तात्पर्य है कि शकारादि चाहे सकारादि के आगे आवें चाहे पीछे आवें-दोनों ही अवस्थाओं में सकारादि के स्थान पर 'श्चुत्व' होगा ही। इसका भाव यह है कि सकारादि व शकारादि का योग होना चाहिए तथा इस योग में पूर्व पर की अपेक्षा नहीं है।

इसी प्रकार योग में यथासंख्य नियम की भी अपेक्षा नहीं है। किसी भी वर्ण के साथ किसी भी वर्ण का योग हो सकता है। इसमें प्रमाण अग्रिम सूत्र 'शात्' है। 'शात्' के अनुसार शकार से पर तवर्ग हो तो श्चुत्व नहीं होगा। यदि 'स्तोः श्चुना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्नुः' सूत्र के द्वारा सकारादि से पर शकारादि होने पर ही श्नुत्व होता तो शकार से पर तवर्ग को श्नुत्व प्राप्त ही न होता। तब 'शात्' सूत्र के द्वारा किसका निषेध होता अर्थात् 'शात्' सूत्र व्यर्थ हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि 'स्तोः' सूत्र के अनुसार जो योग कहा गया है वहाँ स्थानी व निमित्त में पूर्वापर स्थिति नियत नहीं है।

निष्कर्ष यह है कि 'शात्' के द्वारा शकार से पर तवर्ग को श्नुत्व का जो निषेध किया गया है वह प्रमाण है कि 'स्तोः श्नुना०' सूत्र के द्वारा विहित योग में यथासंख्य नियम अपेक्षित नहीं है। यदि यहाँ यथासंख्य नियम कार्य करता तो शकार के साथ सकार का ही योग होने पर श्नुत्व होता तथा शकार से पर तवर्ग होने पर (यथासंख्य के अभाव में) श्नुत्व नहीं होता। तब 'शात्' के द्वारा निषेध की आवश्यकता ही न होती अर्थात् 'शात्' सूत्र व्यर्थ हो जाता। इससे सिद्ध होता है कि 'स्तोः श्नुना०' सूत्र के द्वारा जो योग कहा गया है उसमें यथासंख्य नियम की अपेक्षा नहीं है।

उदा.—(1) बालस् शेते–बालश्शेते।
बालस् चलति–बालश्चलति।
बालस् छादयति–बालश्छादयति।
(2) तत् चक्रम्–तच्चक्रम्।
तत् छत्रम्–तच्छत्रम्।
तत् ज्वालायाम्–तज्ज्वालायाम्।
तत् झंकारे–तज्झंकारे।
तद् जाड्यम्–तज्जाड्यम् (नी०श० 15)
(3) उद् ज्वलति–उज्ज्वलति।
शार्ङ्गिन् जय–शार्ङ्गिञ्जय।

सम्बुद्धि का प्रयोग है। नकार के स्थान पर चवर्ग का अनुनासिक अक्षर (ञ्) हो गया।

याच् नङ् टाप्–याच् ञ टा–
याच्ञा सु–याच्ञा।
किञ्चित् ज्ञः–किञ्चिज्ज्ञः (नी०श० 8)।
(4) लोकान् शशि०–लोकाञ्शशि० (तर० 1.282)।

ष्टुना ष्टुः 8.4.40

पद.—ष्टुना 3.1, ष्टुः 1.1

अनु.—संहितायाम् स्तोः।

अर्थ—संहिता के विषय में षकार और ट वर्ग के योग में सकार तथा तवर्ग के स्थान पर षकार तथा टवर्ग होता है।

यहाँ पर भी स्थानी तथा आदेश के विषय में पूर्ववत् यथासंख्य परिभाषा लागू होती है तथा योग के विषय में नहीं। इसमें आचार्य का 'तोः षि' सूत्र प्रमाण है।

यदि 'ष्टुना ष्टुः' के द्वारा सकार से परे षकार तथा तवर्ग से परे टवर्ग रहते ही ष्टुत्व होता तो षकार के परे रहते तवर्ग प्राप्त ही नहीं होता। तब 'तोः षि' सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र में योग के विषय में यथासंख्य परिभाषा लागू नहीं होती है।

सकार के स्थान पर षकार होता है षकार तथा टवर्ग के योग में।

तवर्ग के स्थान पर ट वर्ग होता है षकार तथा टवर्ग के योग में।

विशेष व्याख्या के लिए पूर्वसूत्र का विशद अर्थ देखिए।

उदा.—(1) बालस् षष्ठः–बालष्षष्ठः।
(2) बालस् टीकते–बालष्टीकते।
(3) ततस् ठक्कुरः–ततष्ठक्कुरः।
(4) ततस् ठकारः–ततष्ठकारः।
(5) देवस् टीकते–देवष्टीकते।
(6) ततस् णकारः–ततष्णकारः।
(7) तद् टीका, तड्टीका–'खरि च' से–तट्टीका।
(8) अग्निचित् ठकारः–अग्निचिट्ठकारः।
(9) सोमसुत् डीनः–सोमसुड्डीनः।
(10) अग्निचित् ढौकते–अग्निचिड्ढौकते।
(11) अग्निचित् णकारः–अग्निचिण्णकारः।
(12) चक्रिन् ढौकसे–चक्रिण्ढौकसे
(नकार को णकार हो गया)
चक्रिन् सम्बुद्धि का रूप है।
(13) पिष् तृच्–पेष् तृ–पेष्टृ सु–पेष्टा।

न पदान्ताट्टोरनाम् 8.4.41

पद.—न–अव्य०, पदान्तात् 5.1, टोः 5.1, अनाम्–लुप्तषष्ठ्यन्तरूपम्।

अनु.—संहितायाम् स्तोः ष्टुः।

अर्थ—संहिता के विषय में पदान्त में टवर्ग से उत्तर सकार तथा तवर्ग को षकार तथा टवर्ग नहीं होता है परन्तु 'नाम्' शब्द परे हो तो इसके नकार को णकार होता है।

1. षड्ते–'खरि च' (पा० 8.4.54) के असिद्ध होने से 'ष्टुना ष्टुः' (पा० 8.4.50) से तकार को ष्टुत्व (टकार) प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया।

षट्ते-(खरि च)।

2. षड् सन्तः-'डः सि धुट्' से पाक्षिक धुट् हुआ। धुट् अभाव पक्ष में 'खरि च' के असिद्ध होने से प्रथम 'ष्टुना ष्टुः' से ष्टुत्व प्राप्त हुआ। इसका निषेध हुआ। अब 'खरि च' से चर् हुआ-षट्सन्तः।

विशेष—1. 'पदान्तात्' अर्थात् **पदान्त में** जो टवर्ग उससे उत्तर सकार तथा तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है—ईड्ते-

ईड् का डकार पदान्त में नहीं है। अतः तकार परे रहते ष्टुत्व का निषेध न हुआ। ईड्टे-ईट्टे। खरि च।

2. 'टोः' अर्थात् **टवर्ग से उत्तर** सकार व तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है—

सर्पिस् तमप्-सर्पिष् तम-सर्पिष्टम सु-सर्पिष्टमम्। 'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते' से षकार हुआ। चूँकि पदान्त में टवर्ग नहीं है। अतः षकार से उत्तर तकार को ष्टुत्व का निषेध न हुआ।

3. पदान्त टवर्ग से परे नाम्, नवति, नगरी-इनके नकार को छोड़कर अन्य सकार व तवर्ग के स्थान पर ष्टुत्व का निषेध होता है[1]—

षष् आम्-षष् न् आम्-षड् नाम्-षड् णाम्-
(ष्णान्ता षट्। षट्चतुर्भ्यश्च। झलां जशोऽन्ते। ष्टुना ष्टुः)
षण्णाम्
(प्रत्यये भाषायां नित्यम्)

षड्नवतिः-षड्णवतिः-षड्णवतिः, षण्णवतिः
(यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा)
षड् नगर्यः-षड्णगर्यः, षण्णगर्यः।
(पूर्ववत्)

तोः षि 8.4.42

पद.—तोः 6.1, षि 7.1

अनु.—संहितायाम् न।

अर्थ—षकार परे रहते तवर्ग के स्थान पर षकार तथा टवर्ग नहीं होता है।

उदा.—तत् षण्डे-

यहाँ तकार के स्थान पर ष्टुत्व न हुआ। भवान् षण्डे-

पूर्ववत् ष्टुत्व न हुआ।

1. महा० 8.4.41 (वा०) अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्।

इसी प्रकार—आवसथात्ष्ठल्० (पा० 4.4.74)। यहाँ ष्टुत्व न हुआ।

शात् 8.4.43

पद.—शात् 5.1

अनु.—संहितायाम् तोः न।

अर्थ—संहिता के विषय में शकार से उत्तर तवर्ग के स्थान पर श्चुत्व नहीं होता है।

उदा.—(1) प्रच्छ्नङ् (यजयाचयतविच्छ०)-प्रश् न (च्छ्वोः शूडनुनासिके०)-प्रश्न सु-प्रश्नः 'स्तोः श्चुना श्चुः' से प्राप्त जकार का निषेध हो गया।

'ग्रहिज्यावायि०' के द्वारा सम्प्रसारण नहीं होता है। यहाँ 'प्रश्ने चाऽऽसन्नकाले' प्रमाण है।

(2) विश् नङ्-विश्नः।
(पूर्ववत्)

(3) अश् नित्यम्-अश्नित्यम्।

(4) ज़श् त्वम्-जश्त्वम्।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा 8.4.44

पद.—यरः 6.1, अनुनासिके 7.1, अनुनासिकः 1.1, वा-अव्य०।

अनु.—संहितायाम् पदान्तात् (मण्डूकप्लुतगत्या)।

अर्थ—अनुनासिक परे रहते पदान्त में यर् के स्थान पर अनुनासिक विकल्प से होता है।

पक्ष में 'झलां जशोऽन्ते' से जश्त्व होता है। यर् प्रत्याहार में हकार को छोड़कर सभी व्यंजन होते हैं।

अनुनासिक अच् और हल् दोनों होते हैं परन्तु पदान्त यर् से परे अनुनासिक अच् उपलब्ध नहीं होता है। अतः हल् अनुनासिकों (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) के परे रहते उदाहरण दिए गऐ हैं।

उदा.—(1) वाच् नयति-वाक् नयति-वाङ्नयति-ककार के स्थान पर उसी वर्ग का पंचम अक्षर (ङकार) हुआ।

पक्ष में जश्त्व हो गया—

वाग्नयति।

इसी प्रकार—रुग् निधने-रुङ्निधने (मु०चि० 10.3)
पक्ष में—रुग्निधने।
दिग्नागः-दिङ्नागः, दिग्नांगः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) श्वलिट् नयति–श्वलिण्नयति ।
पक्ष में—श्वलिड्नयति ।
आट् नद्याः
आण्नद्याः । पक्ष में—आड्नद्याः ।
लग्नेट् नगा०–लग्नेण्नगा० (मु०चि० 11.56)
पक्ष में—लग्नेड्नगाः ।

(3) अग्निचित् नयति–अग्निचिन्नयति ।
पक्ष में—अग्निचिद्नयति ।

(4) त्रिष्टुप् नयति–त्रिष्टुम्नयति ।
पक्ष में—त्रिष्टुब्नयति ।

(5) एतद् मुरारिः–एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः ।
(स्थानेऽन्तरतमः)

विशेष—लोक में अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहते पदान्त यर् को नित्य अनुनासिक होता है[1]—

वाच् मय–वाक्मय–वाङ्मय सु–वाङ्मयम् ।
तद्मात्र–तन्मात्रम् ।
चित् मय सु–चिन्मयम् ।

अचो रहाभ्यां द्वे 8.4.45

पद.—अचः 5.1, रहाभ्याम् 5.2, द्वे–1.2

अनु.—संहितायाम् यरः वा ।

अर्थ—संहिता के विषय में अच् से उत्तर जो रेफ या हकार उससे उत्तर यर् वर्ण को द्वित्व विकल्प से होता है ।

उदा.—(1) अर्क्कः–अर्कः ।

अच् (अकार) से उत्तर रेफ है । उससे उत्तर यर् (ककार) को पाक्षिक द्वित्व हो गया । पक्ष में द्वित्व न हुआ–अर्कः ।

शर्मा–शर्म्मा, शर्मा ।
धर्मः–धर्म्मः, धर्मः ।

अर्ज्जुनः, अर्जुनः । गर्ब्भः, गर्भः । अर्घ्घ्यः, अर्घ्यः । मूर्च्छा, मूर्छा । मूर्ख्खः, मूर्खः ।

(2) ब्रह्मा–ब्रह्म्मा ।

अच् (अकार) से उत्तर हकार है । उससे उत्तर यर् (मकार) को विकल्प से द्वित्व हुआ ।

पक्ष में—ब्रह्मा ।
अपह्नुते–अपह्नुते, अपह्नुते ।

आह्ल्लादः, आह्लादः ।

विशेष—1. 'अचः' अर्थात् **अच्** से उत्तर रेफ या हकार से उत्तर यर् को द्वित्व होता है—

किन् ह्नुते–हकार अच् से उत्तर नहीं है । अतः इससे उत्तर यर् (नकार) को द्वित्व न हुआ ।

इसी प्रकार—किम् ह्यालयति–पूर्ववत् यर् को द्वित्व न हुआ ।

अनचि च 8.4.46

पद.—अनचि 7.1, च–अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् अचः यरः द्वे वा ।

अर्थ—संहिता के विषय में अच् से उत्तर यर् को द्वित्व विकल्प से होता है परन्तु अच् परे रहते नहीं होता है ।

उदा.—(1) दधि अत्र–दध् य् यत्र

'इको यणचि' से यकार । अच् (अकार) से उत्तर यर् (धकार) से परे अच् नहीं है । अतः धकार को विकल्प से द्वित्व हुआ ।

दध्ध् यत्र–दद्ध्यत्र ।
(झलां जश् झशि)
पक्ष में द्वित्व न हुआ–दध्यत्र ।
मधु अत्र–मद्ध्वत्र, मध्वत्र ।

विशेष—1. 'अनचि' अर्थात् **अच् परे न हो तो** अच् से उत्तर यर् को द्वित्व होता है—

मधु–यहाँ अच् से उत्तर यर् (धकार) है परन्तु इससे परे अच् है । अतः यर् को द्वित्व न हुआ ।

2. 'अनचि च' में प्रसज्य प्रतिषध है । इस प्रकार होता है—'अच् परे न हो' । तात्पर्य यह है कि हल् परे हो तो द्वित्व हो जायेगा । अपि च, अवसान में भी द्वित्व हो जायेगा । यथा–वाक्क्, वाक् ।

यदि यहाँ पर्युदास प्रतिषेध मानेंगे तो सदृश का ग्रहण होगा । तब अच् सदृश अर्थात् हल् के परे रहते ही द्वित्व होगा । अन्यत्र द्वित्व न होगा । फलतः व्याख्याकारों ने यहाँ प्रसज्य प्रतिषेध माना है ।

3. यण् से उत्तर मय् को द्वित्व होता है[2]—

उल्का–उल्क्का

---

1. महा० 8.4.44 (वा०) प्रत्यये भाषायां नित्यम् ।

2. काशि० 8.4.47 (वा०) यणो मयो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यण् (लकार) से उत्तर मय् (ककार) है। अतः ककार को द्वित्व हो गया।

इसी प्रकार—वल्म्मीकः।

4. मय् से उत्तर यण् को द्वित्व होता है[1]—

दध्यत्र-दध्य्यत्र।
मध्वत्र-मध्व्वत्र।

5. शर् से उत्तर खय् को द्वित्व होता है तथा खय् से उत्तर शर् को द्वित्व होता है[2]—

स्थाली-स्त्थाली।

शर् (सकार) से उत्तर खय् (थकार) को द्वित्व हुआ। 'खरि च' से चर्त्व हो गया है।

वत्सः-वत्स्सः।

खय् (तकार) से उत्तर शर् (सकार) को द्वित्व हुआ है।

नाऽऽदिन्याक्रोशे पुत्रस्य 8.4.47

पद.-न-अव्य०, आदिनी-लुप्तसप्तम्यन्तनिर्देशः, आक्रोशे 7.1, पुत्रस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् द्वे।

अर्थ—संहिता के विषय में आक्रोश गम्यमान हो तो आदिनी शब्द परे रहते 'पुत्र' शब्द को द्वित्व नहीं होता है।

उदा.—पुत्रान् अत्तुं शीलम् अस्याः-पुत्रादिनी यहाँ द्वित्व न हुआ।

विशेष—1. 'आक्रोशे' अर्थात् **आक्रोश गम्यमान हो** तभी पुत्र शब्द को द्वित्व नहीं होता है—

पुत्रान् अत्ति-पुत्रादिनी

यहाँ सत्य कथन है, आक्रोश नहीं। अतः द्वित्व हो गया है।

2. 'पुत्रादिनी' शब्द परे रहते भी 'पुत्र' को द्वित्व नहीं होता है[3]—

पुत्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे।

यहाँ द्वित्व का निषेध हो गया है।

3. हत तथा जग्ध शब्दों के परे रहते भी 'पत्र' को द्वित्व विकल्प से होता है[4]—

पुत्रहती, पुत्रहती।
पुत्रजग्धी, पुत्रजग्धी।

4. पौष्करसादि आचार्य के मत में शर् परे रहते चय् को द्वितीय वर्ण का आदेश होता है[5]—

चय् प्रत्याहार में वर्गीय प्रथम अक्षर आते हैं।
वत्सः-वथ्सः, वत्सः (पक्ष में)।
अप्सरा-अफ्सरा, अप्सरा (पक्ष में)।
क्षमा-ख्षमा, क्षमा।
अक्षि-अख्षि, अक्षि।
संवत्सरः-संवथ्सरः, संवत्सरः।

शरोऽचि 8.4.48

पद.—शरः 6.1, अचि 7.1

अनु.—संहितायाम् द्वे न।

अर्थ—संहिता के विषय में अच् परे रहते शर् को द्वित्व नहीं होता है।

उदा.—(1) आदर्शः-

अच् (दकारोत्तरवर्त्ती अकार) से उत्तर रेफ है। उससे उत्तर यर् (शकार) है। 'अचो रहाभ्यां द्वे' से शकार को द्वित्व प्राप्त हुआ। प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया।

(2) आकर्षः—

पूर्ववत् द्वित्व प्राप्त हुआ। प्रकृतसूत्र के द्वारा निषेध हो गया।

चतुर् सु-चतुर् षु-चतुर्षु (द्वित्व न हुआ)।

विशेष—'अचि' अर्थात् **अच्** परे रहते ही शर् को द्वित्व का निषेध होता है—दर्श्यते।

यहाँ शर् (शकार) से परे अच् नहीं है। अतः शर् के द्वित्व का निषेध न हुआ-दर्श्यते।

त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य 8.4.49

पद.—त्रिप्रभृतिषु 7.3, शाकटायनस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् द्वे न।

अर्थ—तीन संयुक्त वर्णों को द्वित्व नहीं होता है, शाकटायन आचार्य के मत में।

उदा.—(1) इन्द्रः-

अच् (इकार) से उत्तर यर् (नकार) है। उससे परे अच्

---

1. काशि० 8.4.47 (वा०) यणो मयो द्वे भवत इति वक्तव्यम्।
2. काशि० 8.4.47 (वा०) शरः खयो द्वे भवत इति वक्तव्यम्।
3. काशि० 8.4.48 (वा०) तत्परे चेति वक्तव्यम्।
4. काशि० 8.4.48 (वा०) वा हतजग्धपर इति वक्तव्यम्।
5. काशि० 8.4.48 (वा०) चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। अतः 'अनचि च' से नकार को विकल्प से द्वित्व की प्राप्ति हुई। न् द् र्–ये तीनों संयुक्त हैं। अतः द्वित्व न हुआ।

इसी प्रकार—'चन्द्रः' में द्वित्व न हुआ।

(2) उष्ट्रः–
पूर्ववत् द्वित्व न हुआ।

(3) राष्टम्–
(पूर्ववत्)।

सर्वत्र शाकल्यस्य 8.4.50

पद.—सर्वत्र–अव्य०, शाकल्यस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् द्वे न।

अर्थ—संहिता के विषय में तीन संयुक्त वर्णों को अथवा असंयुक्त वर्णों को शाकल्य के मत में द्वित्व नहीं होता है।

उदा.—(1) अर्कः।
'अचो रहाभ्यां द्वे' से प्राप्त द्वित्व न हुआ।

(2) ब्रह्मा।
(पूर्ववत्)।

दीर्घादाचार्याणाम् 8.4.51

पद.—दीर्घात् 5.1, आचार्याणाम् 6.3

अनु.—संहितायाम् द्वे न।

अर्थ—दीर्घ वर्ण से उत्तर को द्वित्व नहीं होता है, सभी आचार्यों के मत में।

उदा.—(1) दात्रम्।
अच् (आकार) से उत्तर यर् (तकार) है। इससे परे अच् नहीं है। अतः 'अनचि च' के द्वारा यर् को पाक्षिक द्वित्व प्राप्त हुआ।

चूँकि यह तकार दीर्घ वर्ण से उत्तर है। अतः द्वित्व न हुआ।

(2) सूत्रम्। (पूर्ववत्)।

इसी प्रकार पात्रम् तथा मूत्रम् में द्वित्व न हुआ।

झलां जश् झशि 8.4.52

पद.—झलाम् 6.3, जश् 1.1, झशि 7.1

अनु.—संहितायाम्।

अर्थ—संहिता के विषय में झश् परे रहते झल् वर्णों के स्थान पर जश् वर्ण होते हैं। झल् प्रत्याहार में वर्गों के पंचम अक्षरों व अन्तःस्थों को छोड़कर सभी व्यंजन अक्षर आ जाते हैं। झश् प्रत्याहार में वर्गों के चतुर्थ व तृतीय अक्षर आते हैं।

जश् में वर्गीय तृतीय वर्ण होते हैं।

लभ् तुमुन्–लभ् तुम्–लभ् धुम्–लब् धुम्–लब्धुम्।

झश् (धकार) परे रहते झल् (भकार) के स्थान पर जश् (बकार) हो गया।

उदा.—(1) दह् तुमुन्–दह् तुम्–दघ् धुम्–दग्धुम्। धकार के स्थान पर गकार हो गया।

बुध् तुमुन्–बुध् धुम्–बोद्धुम्। धकार को दकार हो गया।

विशेष—'झशि' अर्थात् झश् परे रहते ही द्वित्व होता है—दद् तस् (लट्)
(शप्, शप् को श्लुत्व, द्वित्व)

झल् (दकार) से परे झश् नहीं है। अतः दकार को जश् न हुआ।

दत् तस्–दत्तः।

अभ्यासे चर्च 8.4.53

पद.—अभ्यासे 7.1, चर् 1.1, च–अव्य०।

अनु.—संहितायाम् झलाम् जश्।

अर्थ—अभ्यास में वर्त्तमान झल् के स्थान पर चर् तथा जश् होते हैं।

चर् प्रत्याहार में आठ वर्ण (वर्गीय प्रथम अक्षर—क्, च्, ट्, त्, प् तथा श्, ष्, स्) होते हैं।

सूत्र का तात्पर्य इस प्रकार है—

(क) वर्गीय चतुर्थ वर्णों के स्थान पर वर्गीय तृतीय अक्षर होते हैं।

(ख) वर्गीय तृतीय वर्णों के स्थान पर वर्गीय तृतीय वर्ण होते हैं।

(ग) वर्गीय द्वितीय अक्षरों के स्थान पर वर्गीय प्रथम अक्षर होते हैं।

(घ) वर्गीय प्रथम अक्षरों के स्थान पर वर्गीय प्रथम अक्षर होते हैं।

(ङ) श्, ष्, स् के स्थान पर श्, ष्, स् आदेश होते हैं।

च) हकार के स्थान पर प्रथम झकार (कुहोश्चुः) होता है पश्चात् उसी वर्ग का तृतीय अक्षर (जकार) होता है।

उदा.—(1) झम् णल् (लिट्)–झझाम् अ–जझाम।
ढौक् त (लिट्)–ढौ ढौक् ए–ढुढौके–डुढौके।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लिटस्तझयो० । ह्रस्वः । अभ्यासे चर्च)
धा णल्-धा धा अ-ध धा अ-दधा औ-
दधौ । उद्दुधुवुः (भट्टि० 14.53)
भज् णल्-बभाज (भट्टि० 14.72) भण्-बभाण (भट्टि० 14.46) ।
भिद् णल्-भेद् अ-भे भेद् अ-भिभेद् अ-बिभेद । द्र० निर्बिभेद (वाम० 8.6) ।
भाष् त (लिट्)-बभाषे (तर० 1.136)। भी णल्-बिभाय (भट्टि० 5.103)।
(2) जीव् णल्-जिजीव ।
डी त-डी डी ए-डिड्ये ।
दा णल्-द दा औ-ददौ । परिदिदेविरे (भट्टि० 14.48)।
बुध् त-बुबुध् ए-बुबुधे ।
(3) खद् णल्-चखाद ।
(कुहोश्चुः) ।
इसी प्रकार—खन्-चखान ।
छिद् णल्-छेद् अ-छे छेद् अ-छिच्छेद् अ-चिछेद् अ-चिच्छेद (वाम० 7.54) ।
(तुक् होकर)
थुड् णल्-थुथोड् अ-तुथोड ।
फण् णल्-फफाण-पफाण ।
(4) चर्व् णल्-चचर्व । आचचक्षे (भट्टि० 14.52) ।
चल् णल्-चचाल (कु० 5.85)
टौक्-टुटौके ।
तन्-ततान ।
तुद्-तुतोद ।
पा णल्-पपौ (कु० 3.10)
(5) ह्री णल् -जिह्राय (भट्टि० 5.103)।

विशेष—अभ्यास में कवर्गीय अक्षरों के स्थान पर चवर्गीय अक्षर होते हैं । द्र० 'कुहोश्चुः' (पा० 7.4.62) । 'अभ्यासे चर्च' (पा० 8.4.53) पर होने से बलवान् है परन्तु चुत्व की दृष्टि में चर्त्व असिद्ध होने से प्रथम चुत्व होता है । यथा—

कट् णल्-क कट् अ-ककाट् अ-
चकाट् अ-चकाट ।

अब 'पर्यन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः' के द्वारा 'अभ्यासे चर्च' से चर्त्व होता है । अतः अभ्यास में कवर्गीय अक्षरों की दशा में इस प्रकार आदेश होते हैं—

क्-च्-च् । कुप्-चुकोप (भट्टि० 14.44)
ख्-छ्-च् ।
ग्-ज्-ज् । ग्रस्-जग्रसे (भट्टि० 14.43)
घ्-झ्-ज् । घुर् झि-जुघुरुः (भट्टि० 14.40)
यथा—कट्-चकाट । क्रन्द्-चक्रन्दुः (भट्टि० 14.48)
खिद्-चिखेद ।
गद्-जगाद । ग्रह्-निजग्राह (भट्टि० 14.45)
घृ-जघार । घस्-जघास ।

खरि च 8.4.54

पद.—खरि 7.1, च-अव्य० ।

अनु.—संहितायाम् झलाम् चर् ।

अर्थ—संहिता के विषय में खर् परे रहते झल् के स्थान पर चर् होता है ।

वर्गीय प्रथम-द्वितीय अक्षर तथा श्, ष्, स् वर्ण 'खर्' हैं । 'चर्' प्रत्याहार में वर्गीय प्रथम अक्षर तथा श्, ष्, स् वर्ण आते हैं ।

भाव यह है कि श्, ष्, स् इन झलों के स्थान पर श्, ष्, स् ही चर् होते हैं । 'हो ढः' से खर् से पूर्व हकार को ढकार हो जाता है । अतः खर् से पूर्व हकार उपलबध नहीं होता है । शेष झल् हैं—वर्गीय अक्षर । उनके स्थान पर 'स्थानेऽन्तरतमः' से उसी वर्ग का प्रथम अक्षर हो जायेगा ।

यथा—घ्, ग्, ख्, क्-इन झलों के स्थान पर कवर्गीय प्रथम अक्षर (ककार) होगा । झ्, ज्, छ्, च् इन झलों के स्थान पर चकार होगा । ढ्, ड्, ठ्, ट्-इनके स्थान पर टकार होगा । ध्, द्, थ्, त्-इनके स्थान पर तकार तथा भ्, ब्, फ्, प्-इनके स्थान पर पकार होगा ।

उदा.—(1) दह् ति (ल्रट्)-दह् स्य ति-दघ् स्य ति-धघ्-स्यति-धक् स्यति-(दाऽऽदेर्धातो० । एकाचो बशो०) धक्ष्यति ।
(2) त्यज् तिप् (ल्रट्)-त्यज् स्यति-त्यक्ष्यति ।
(3) भिद् तुम्-भेद् तुम्-भेत्तुम् ।
युध् सन्-युयुध् स-युयुत्सते
(द्वित्व, खरि च; शप् आदि) ।
(4) आ लभ् सन्-आलिभ् स-आलिप्सते ।
(अभ्यास लोप, इकार आदेश, खरि च) ।

वाऽवसाने 8.4.55

पद.—वा-अव्य०, अवसाने 7.1

अनु.—संहितायाम् झलाम् चर् ।

अर्थ—अवसान में वर्त्तमान जो झल् उसके स्थान पर विकल्प से चर् होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में 'झलां जशोऽन्ते' से जश् होता है ।

उदा.—(1) वाच् सु–वाच्–वाक्, वाग् ।
इसी प्रकार—त्वच्–त्वक्, त्वग् ।
(2) मधुलिह् सु–मधुलिह्–मधुलिद्–
(हो ढः)
मधुलिट्,–लिड् ।
(3) सरित् सु–सरित्, सरिद् ।
(4) त्रिष्टुभ् सु–त्रिष्टुभ्–त्रिष्टुप्, त्रिष्टुब् ।

अणोऽप्रगृह्यस्याऽनुनासिकः 8.4.56

पद.—अणः 6.1, अप्रगृह्यस्य 6.1, अनुनासिकः 1.1

अनु.—संहितायाम् अवसाने वा ।

अर्थ—अवसान में वर्त्तमान अण् जिसकी प्रगृह्य संज्ञा नहीं है, उस अण् को विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है ।

'ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्' के द्वारा प्रगृह्य संज्ञा कही गई है ।

उदा.—(1) दधि, दधिँ ।

दधि का अण् (इकार) अवसान में वर्त्तमान है । इसकी प्रगृह्य संज्ञा भी नहीं है । अतः विकल्प से अनुनासिक हुआ ।

(2) मधु, मधुँ ।
(पूर्ववत्)

विशेष—1. 'अणः' अर्थात् **अण्** को ही अनुनासिक होता है—कर्तृ–

यहाँ ऋकार की प्रगृह्यसंज्ञा नहीं है परन्तु यह अण् नहीं है । अतः अनुनासिक न हुआ ।

2. 'अप्रगृह्यस्य' अर्थात् **प्रगृह्यसंज्ञा नहीं** है जिसकी ऐसे अण् को अनुनासिक होता है—

अग्नी यहाँ 'ई' की प्रगृह्य संज्ञा है । अतः इसके अण् होने पर भी अनुनासिक नहीं होता है ।

इसी प्रकार 'वायू' में अनुनासिक न हुआ ।

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः 8.4.57

पद.—अनुस्वारस्य 6.1, ययि 7.1, परसवर्णः 1.1

अनु.—संहितायाम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में यय् परे रहते अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है । यय् प्रत्याहार में अन्तःस्थ वर्ण (य्, व्, र्, ल्) तथा वर्गीय सभी अक्षर होते हैं ।

उदा.—(1) शकि–शन् क् तुमुन्–शन् क् इतुम्–
(इदितो नुम् धातोः । इट्)
शंकितुम्–शङ्कितुम् ।
(नश्चाऽपदान्त० । परसवर्ण–ङकार) ।
इसी प्रकार—गम् गा–गंगा–गङ्गा ।

(2) उछि–उन् छ् तुमुन्–उंछ् तुम्–
उंछ् इ तुम्–उञ्छितुम् ।
(पूर्ववत्)

(3) कुडि–कुन्ड्–कुण्ड् इ तुम्–कुण्डितुम् ।
(पूर्ववत् परसवर्ण)

(4) नदि–नन्द्–नंद्–नन्द् इ तुम्–नन्दितुम् ।
शाम् तः–शान्तः ।

(5) क न् प् इ त–कंप् इत–कम्पितः ।
(विभक्ति होकर) ।

विशेष—'ययि' अर्थात् **यय्** परे रहते ही परसवर्ण होता है—आक्रम् स्य ते (ल्ट्)–आक्रंस्यते ।

इस दशा में यय् परे न होने के कारण अनुस्वार को परसवर्ण न हुआ ।

वा पदान्तस्य 8.4.58

पद.—वा–अव्य०, पदान्तस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।

अर्थ—संहिता के विषय में पदान्त में जो अनुस्वार उसे विकल्प से परसवर्ण आदेश होता है यय् परे रहते ।

उदा.—(1) त्वम् करोषि–त्वं करोषि–
त्वङ्करोषि ।
पक्ष में परसवर्ण न हुआ–
त्वं करोषि ।

(2) त्वम् चिनोषि–त्वं चिनोषि–
त्वञ्चिनोषि, त्वं चिनोषि ।

(3) त्वम् टीक से–
त्वण्टीकसे, त्वं टीकसे ।

(4) त्वम् तनोषि–
त्वन्तनोषि, त्वं तनोषि ।

(5) त्वम् पिबसि
त्वम्पिबसि, त्वं पिबसि ।

(6) य्, व्, ल् अक्षर अनुनासिक भी होते हैं । धनम् यच्छति–धनयँ यच्छति, धनंयच्छति। सम् वत्सरः–सवँ् वत्सरः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत्सरः । त्वम् लिखसि–त्वलँ् लिखसि, त्वं लिखसि ।

काशिका में एक अतीव रोचक वाक्य दिया है—

(परसवर्ण पक्ष में)

तङ्कथञ्चित्रपर्णपडयमानन्नभःस्थम्पुरुषोऽवधीत्

(परसवर्ण अभाव पक्ष में)

तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषोऽवधीत् ।

तोर्लि 8.4.59

पद.—तोः 6.1, लि 7.1

अनु.—संहितायाम् परसवर्णः ।

अर्थ—संहिता के विषय में लकार परे रहते तवर्ग के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है । लकार का सवर्ण लकार ही होता है । तवर्गीय अनुनासिक (नकार) के स्थान पर अनुनासिक लकार (लँ्) होता है ।

उदा.—(1) तद्लय–तल्लय सु–तल्लयः ।

(2) महान् लाभः–महालँ्लाभः ।

(3) विद्वान् लिखति–विद्वालँ्लिखति ।

(4) जगत् लीयते–जगद्लीयते–जगल्लीयते । 'झलां जशोऽन्ते' की दृष्टि में प्रकृतसूत्र असिद्ध है । अतः प्रथम जश्त्व हुआ ।

(5) वारान् लग्नम्–वारालँ् लग्नम् (मु०चि० 5.17) ।

(6) सद् लग्ने–सँल्लग्ने (मु०चि० 6.7) ।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य 8.4.60

पद.—उदः 5.1, स्थास्तम्भोः 6.2, पूर्वस्य 6.1

अनु.—संहितायाम् सवर्णः ।

अर्थ—संहिता के विषय में उद् उपसर्ग से उत्तर 'स्था' तथा 'स्तम्भ' को पूर्वसवर्ण आदेश होता है । 'तस्मादित्युत्तरस्य' तथा 'आदेः परस्य' के द्वारा यह आदेश पर (अर्थात् स्था अथवा स्तम्भ) के आदि वर्ण (सकार) को होता है । 'स्थानेऽन्तरतमः' के द्वारा सकार (अघोष, महाप्राण) के स्थान पर तवर्ग में थकार (अघोष, महाप्राण) होता है ।

उदा.—(1) उद् स्थान–

उद् से परे अव्यवहित 'स्था' विद्यमान है । अतः इसे पूर्व सवर्ण होगा ।

उद् थ् थान–उद् थान–उत् थान सु–उत्थानम् ।

(झरो झरि सवर्णे खरि च) ।

पक्ष में (जहाँ झर् का लोप नहीं होता है)–

उद् थ् थान–उत्थ्थान सु–उत्थ्थानम्

'खरि च' से दकार को तकार हो गया । प्रथम थकार 'खरि च' की दृष्टि में असिद्ध है । अतः इसके स्थान पर चर्त्व न हुआ ।

इस प्रकार दो रूप बनते हैं—उत्थानम्, उत्थ्थानम् ।

(2) उद् स्तम्भ–उद् थ् तम्भन–उद् तम्भन सु–

(पूर्ववत्)

उत्तम्भनम् ।

(झरो झरि सवर्णे)

पक्ष में—उद् थ् तम्भन–उत् थ् तम्भनम् ।

(पूर्ववत्)

दो रूप बने हैं–उत्तम्भनम्, उत्थ्तम्भनम् ।

विशेष—1. 'स्थास्तम्भोः' अर्थात् **स्थास्तम्भ** को ही पूर्व सवर्ण होता है—

उद् स्नाता–उत्स्नाता

यहाँ 'उद्' से उत्तर न तो 'स्था' है और न ही स्तम्भ है । अतः पूर्वसवर्ण न हुआ । 'खरि च' से चर्त्व हो गया ।

2. वेद में उद् पूर्वक 'स्कन्द्' का पूर्वसवर्ण होता है[1]—

अग्ने दूरम् उत्कन्दः

यहाँ पूर्वसवर्ण होकर रूप बनता है ।

झयो होऽन्यतरस्याम् 8.4.61

पद.—झयः 5.1, हः 6.1, अन्यतरस्याम् 7.1

अनु.—संहितायाम् पूर्वस्य सवर्णः ।

अर्थ—संहिता के विषय में झय् वर्ण से उत्तर हकार के स्थान पर पूर्वसवर्ण आदेश विकल्प से होता है ।

यह आदेश 'स्थानेऽन्तरतमः' के द्वारा होता है ।

झय् प्रत्याहार में वर्गीय पंचम अक्षरों को छोड़कर शेष सभी वर्गीय अक्षर आते हैं ।

भाव यह है कि हकार (महाप्राण, घोष) के स्थान पर वर्गीय चतुर्थ अक्षर (महाप्राण, घोष) होता है । यथा—

कवर्ग + ह्—कवर्ग + घ् ।

1. काशि० 8.4.59 (वा०) उत्पूर्वस्य स्कन्देश्छन्दस्युपसंख्यानम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चवर्ग + ह्—चवर्ग + झ् ।
टवर्ग + ह्—टवर्ग + ढ् ।
तवर्ग + ह्—तवर्ग + ध् ।
पवर्ग + ह्—पवर्ग + भ् ।

उदा.—(1) वाच् हरि–वाक् हरि–वाग् हरि–
(चोः कुः । झलां जशोऽन्ते)
वाग् घरि सु–वाग्घरिः ।
पक्ष में—वाग्हरिः ।

(2) अच् हीन सु–अज्झीनः, अज्हीनः ।
अच् हल् औ–अज्झलौ, अज्हलौ ।

(3) मधुलिड् हसति–मधुलिड्ढसति, मधुलिड्हसति ।
स्याड् ह्रस्वः–स्याड्ढ्रस्वः स्याड्ह्रस्वः ।
इसी प्रकार—पञ्चषड्हायनाः–पञ्चषड्ढायनाः
(भाग० 7.1.36) ।
अमरराट् हुताशः–अमरराड्ढुताशः ।

(4) सम्पद् हर्षः–सम्पद्धर्षः, सम्पद्हर्षः ।
दूराद् हूते–दूराद्धूते, दूराद्हूते ।
उद् हरति–उद्धरति, उद्हरति इसी प्रकार शुष्यद्
ह्रदाः–शुष्यद्ध्रदाः (भाग० 10.90.23) ।

(5) त्रिष्टुप् हसति–त्रिष्टुब्भसति, त्रिष्टुब्हसति ।

विशेष—'झयः' अर्थात् **झय् से परे** हकार को विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है—

भवान् हसति–हकार झय् से पर नहीं है । अतः पूर्वसवर्ण न हुआ ।

शश्छोऽटि 8.4.62

पद.—शः 6.1, छः 1.1, अटि 7.1

अनु.—संहितायाम् झयः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में झय् से उत्तर शकार को छकार विकल्प से होता है अट् परे रहते । छकार में अकार उच्चारणार्थ है ।

उदा.—(1) वाक् शेते–वाक्छेते ।

झय् (ककार) से उत्तर शकार को छकार हो गया अट् (एकार) परे रहते ।

पक्ष में—वाक्शेते ।

इसी प्रकार—दिक्शूल–दिक्छूल (मु०चि० 1.56)

(2) तद् शिवः–तज् शिवः–तच् शिवः–
स्तोः श्चुना श्चुः । खरि च) ।

झय् (चकार) से उत्तर शकार को अट् (इकार) परे रहते छकार हो गया—तच्छिवः

पक्ष में—तच्शिवः ।

'शश्छोऽटि' (पा० 8.4.62) सूत्र 'स्तोः श्चुना श्चुः' (पा० 8.4.39) तथा 'खरि च' (पा० 8.4.54) दोनों की दृष्टि में असिद्ध है । अतः सबसे अन्त में 'शश्छोऽटि' प्रवृत्त होता है ।

'खरि च' सूत्र 'स्तोः श्चुना श्चुः' की दृष्टि में असिद्ध है । अतः प्रथम श्चुत्व करना चाहिए, पश्चात् चर्त्व तथा अन्त में छत्व करना चाहिए ।

(3) इसी प्रकार—जगत् शान्तिः–जगच्छान्तिः, जगच्-शान्तिः । तस्माद् शिशुः–तस्माच्छिशुः (वाम० 2.49) सुहृत् शूरो–सुहृच्छूरो (वेणी० 5.12) ।

षड्शरत्रिके–षट्छरत्रिके (मु०चि० 5.37) ।

दर्शनात् श्रमः–दर्शनाच्छ्रमः (तर० 3.420)। भगवान् श्यामः–भगवाञ्छ्यामः (भाग० 11.5.27)। पर्यटन् शश०–पर्यटञ्छश० (नी०श० 5)। पश्यन् शृण्वन्–पश्यञ्छृण्वन् (मु०चि० 11.90) । पश्यञ् शृण्वन् (गीता० 5.8)।

विशेष—पदान्त झय् से उत्तर शकार को विकल्प से छकार होता है अम् परे रहते[1]—

तद् श्लोकेन–तज् श्लोकेन–तच् श्लोकेन–
(श्चुत्व, चर्त्व)

झय् (चकार) से उत्तर शकार है । उससे परे अम् (लकार) है । अतः पाक्षिक छकार हुआ—तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन ।

इसी प्रकार—एतच्छ्मश्रुः, एतच्श्मश्रु । प्रहसन् श्लक्ष्णया –प्रहसञ्छ्लक्ष्णया (भाग० 10.85.21)।

हलो यमां यमि लोपः 8.4.63

पद.—हलः 5.1, यमाम् 6.3, यमि 7.1, लोपः 1.1

अनु.—संहितायाम् अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में हल् वर्ण से यम् वर्ण का लोप विकल्प से होता है, यम् परे रहते । 'हल्' प्रत्याहार में सभी व्यंजन होते हैं ।

'यम्' में अन्तःस्थ (य्, व्, र्, ल्) तथा वर्गीय पञ्चम अक्षर (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) होते हैं ।

1. महा० 8.4.61 (वा०) छत्वममीति वाच्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदा.—(1) शि क्यप् (क्यप् संज्ञायाम्०)–शयङ् य (अयङ् यि०)–शय्या

'अनचि च' से विकल्प से द्वित्व हुआ–शय्य्या ।

पक्ष में—शय्या ।

प्रकृतसूत्र के द्वारा तीन यकारों में से मध्य गत यकार का लोप हुआ–शय्या ।

पक्ष में तीन यकार वाला रूप रहा–शय्य्या ।

इस प्रकार दो ही रूप बनते हैं—

शय्या–अयङ् आदेश, यकार द्वित्व पक्ष, यकार लोप पक्ष। अथवा द्वित्व अभाव पक्ष । शय्य्या–अयङ्, द्वित्व पक्ष, य लोप अभाव पक्ष ।

(2) अदितेरपत्यम्–आदित्यः–

(दित्यादित्या० से ण्य)

आदित्य्यः

(यणो मयो द्वे भवतः)

आदित्यः

(यकार लोप हुआ)

अब 'साऽस्य देवता' से 'ण्य' होकर दो यकारवान् रूप बनता है—आदित्य्यः ।

आदित्य्य्यः–

(वार्त्तिक से द्वित्व)

आदित्य्यः ।

(यकार लोप)

विशेष—1. 'हलः' अर्थात् **हल्** से उत्तर यम् का लोप होता है—अन्नण (अन्नाण्णः)–आन्नम्

यहाँ अच् से परे यम् (नकार) है । इससे परे यम् (नकार) है । अतः पूर्व नकार का लोप न हुआ ।

2. 'यमान्' अर्थात् हल् से उत्तर **यम्** का ही लोप होता है—

कृत्स्नः यहाँ हल् (तकार) से उत्तर सकार है जो यम् नहीं है । इससे परे यम् नकार है तदपि सकार का लोप न हुआ ।

इसी प्रकार 'अर्घ्यम्' में जानना चाहिए ।

यहाँ काशिका में 'अग्निः' प्रत्युदाहरण दर्शाया गया है । जो सूत्र की शर्त के अनुसार उचित नहीं है ।

3. 'यमि' अर्थात् **यम् परे रहते** ही यम् का लोप होता है—

शार्ङ्गम् यहाँ हल् (रेफ) से उत्तर यम् (ङकार) है । इससे परे गकार है जो यम् नहीं है । अतः लोप न हुआ ।

झरो झरि सवर्णे 8.4.64

पद.—झरः 6.1, झरि 7.1, सवर्णे 7.1

अनु.—संहितायाम् हलः लोपः अन्यतरस्याम् ।

अर्थ—संहिता के विषय में हल् से उत्तर झर् का विकल्प से लोप होता है सवर्ण झर् परे रहते । निमित्त (झर्) व निमित्ती (झर्)–दोनों समान संख्या वाले हैं । परन्तु यहाँ यथासंख्य नियम लागू नहीं होता है ।

यह आवश्यक नहीं है कि झ् से परे झ् होने पर ही झ् का लोप होता है । अपितु सवर्ण झर् परे रहते झर् का लोप होता है । इस प्रकार 'झ्' से परे कोई भी सवर्ण झर् परे रहते 'झ्' का लोप हो जायेगा ।

उदा.—पा० 8.4.60 पर उदाहरण देखें ।

विशेष—सूत्र की शर्त के अनुसार—

1. 'झरः' अर्थात् सवर्ण झर् परे रहते **झर् का ही लोप** होता है—शार्ङ्गम्–हल् (रेफ) से उत्तर ङकार है जो झर् नहीं है । अतः इससे उत्तर सवर्ण झर् (गकार) रहते ङकार का लोप न हुआ ।

2. 'झरि' अर्थात् **झर् परे** रहते ही झर् का लोप होता है—प्रियपञ्चा यहाँ हल् (ञकार) से उत्तर झर् (चकार) है । चकार से परे ञकार है जो झर् नहीं है । अतः चकार का लोप न हुआ ।

3. 'सवर्णे' अर्थात् **सवर्ण** झर् परे रहते ही झर् का लोप होता है—

तृप् तुमुन्–तर्प्तुम्

हल् (रेफ) से उत्तर झर् (पकार) है । उससे उत्तर झर् (तकार) है, परन्तु वह सवर्ण नहीं है । अतः झर् पकार का लोप न हुआ ।

4. 'हलः' का अधिकार होने से **हल्** से उत्तर झर् का लोप होता है सवर्ण झर् परे रहते—वाग्ग्मी (शि० 2.27, पंच० 3.86) झर् (गकार) है । इससे पर झर् (द्वितीय गकार) है । प्रथम झर् हल् से उत्तर नहीं है । अतः प्रथम झर् का लोप न हुआ ।

इसी प्रकार पत्त्रम्, तत्त्वम्, सत्त्वम्, छत्त्रम्, छात्त्रः तथा पुत्त्रः में झर् लोप नहीं होता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः 8.4.65

पद.—उदात्तात् 5.1, अनुदात्तस्य 6.1, स्वरितः 1.1

अर्थ—उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित होता है।

उदा.—गर्ग यञ्-गार्ग्य सु-गार्ग्यः

'ञ्नित्यादि०' से आद्युदात्त है। 'अनुदात्तं पद.' तथा प्रकृतसूत्र के द्वारा स्वरित हो गया।

नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् 8.4.66

पद.—न-अव्य०, उदात्तस्वरितोदयम् 1.1, अगार्ग्य-काश्यपगालवानाम् 6.3

अनु.—अनुदात्तस्य स्वरितः।

अर्थ—उदात्त परे है जिससे तथा स्वरित परे है जिससे, ऐसे अनुदात्त को स्वरित आदेश नहीं होता है, गार्ग्य काश्यप तथा गालव आचार्यों के मत को छोड़कर।

भाव यह है कि इन आचार्यों के मत में स्वरित होता है।

उदा.—(1) गार्ग्यस्तत्र

'तत्र' शब्द त्रल् प्रत्ययान्त है।

लित् स्वर से आद्युदात्त है।

'गार्ग्य' का 'य' जो पूर्ववत् अनुदात्त था उससे परे उदात्त का 'त' है। प्राप्त स्वरित का निषेध हो गया।

(2) गार्ग्यः क्व

'क्व' शब्द स्वरित है। 'य' पूर्ववत् अनुदात्त है। प्राप्त स्वरित का निषेध हो गया।

अ अ 8.4.67

पद.—अ-अव्य०, अ-अव्य०।

अर्थ—विवृत अकार संवृत अकार होता है।

'विवृतकरणाः स्वराः' के अनुसार स्वर का विवृत प्रयत्न कहा गया है। 'संवृतस्त्वकारः' से अकार का संवृत प्रयत्न है। इस प्रकार दीर्घ अवर्ण (आ) तथा प्लुत अवर्ण (अ 3) का विवृत प्रयत्न होता है।

अवर्ण के ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत भेदों का प्रयत्नभेद होने से 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' के द्वारा इनकी सवर्ण संज्ञा नहीं हो सकती।

फलतः ग्रहणक शास्त्र के द्वारा ह्रस्व अकार के द्वारा दीर्घ-प्लुत अकार का ग्रहण नहीं होता है। इस दोष के निराकरण हेतु आचार्य पाणिनि ने शास्त्र के प्रारम्भ में प्रत्याहारसूत्र 'अ इ उ ण्' में अकार का विवृत रूप में पाठ किया है। जिसके परिणामस्वरूप विवृत ह्रस्व अकार का विवृत दीर्घप्लुत अकार के साथ सवर्णता सिद्ध होकर शास्त्रकार्य निर्बाध चलता है।

परन्तु आचार्य की इस प्रतिज्ञा में एक दोष है कि लोक में भी ह्रस्व अकार विवृत प्राप्त होता है। इस दोष के निवारण हेतु आचार्य ने शास्त्र के अन्त में प्रकृतसूत्र का पाठ किया है।

भाव यह है आचार्य ने शास्त्रकार्य के निर्वाह हेतु ह्रस्व अकार के जो विवृत प्रयत्न की प्रतिज्ञा की थी वह लोक में पूर्ववत् संवृत प्रयत्न वाला हो जाये अर्थात् प्रकृतसूत्र के द्वारा आचार्य पाणिनि ने 'अ इ उ ण्' प्रत्याहार सूत्र में प्रतिज्ञात विवृत अकार की सम्प्रति लोक में प्रयोग के लिए संवृत प्रत्यापत्ति कर दी है।

॥ इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्याय्याश्चन्द्रलेखाऽऽख्यायां टीकायामष्टमाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

॥ समाप्तश्चाऽयमष्टमोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ॥

॥ इति शम् ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविधपरिशिष्टानि

(क) अष्टाध्यायीसूत्रपाठः

(कोष्ठकस्थसङ्ख्ययाऽनुवृत्तेरवधिर्निर्दिष्टा)

माहेश्वरसूत्राणि

1 अइउण्
2 ऋलृक्
3 एओङ्
4 ऐऔच्
5 हयवरट्
6 लण्
7 ञमङणनम्
8 झभञ्
9 घढधष्
10 जबगडदश्
11 खफछठथचटतव्
12 कपय्
13 शषसर्
14 हल्

॥ इति माहेश्वरसूत्राणि ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य

प्रथमः पादः

1 वृद्धिरादैच् (3)
2 अदेङ् गुणः (3)
3 इको गुणवृद्धी (6)
4 न धातुलोप आर्धधातुके (6)
5 क्ङिति च
6 दीधीवेवीटाम्
7 हलोऽनन्तराः संयोगः
8 मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः
9 तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् (10)
10 नाऽज्झलौ
11 ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् (12,19)
12 अदसो मात्
13 शे
14 निपात एकाजनाङ् (15)
15 ओत् (16)
16 सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (18)
17 उञ ऊँ
18 ईदूतौ च सप्तम्यर्थे
19 दाधा घ्वदाप्
20 आद्यन्तवदेकस्मिन्
21 तरप्तमपौ घः
22 बहुगणवतुडति संख्या (24)
23 ष्णान्ता षट् (24)
24 डति च
25 क्तक्तवतू निष्ठा
26 सर्वादीनि सर्वनामानि (31,35)
27 विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ (28)
28 न बहुव्रीहौ (31)
29 तृतीयासमासे (31)
30 द्वन्द्वे च (31)
31 विभाषा जसि (35)
32 प्रथमचरमतयाल्पार्धकति पयनेमाश्च
33 पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसञ्ज्ञायाम्
34 स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्
35 अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः
36 स्वरादिनिपातमव्ययम् (40)
37 तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः
38 कृन्मेजन्तः
39 क्त्वातोसुन्कसुनः
40 अव्ययीभावश्च
41 शि सर्वनामस्थानम् (42)
42 सुडनपुंसकस्य
43 न वेति विभाषा
44 इग्यणः सम्प्रसारणम्
45 आद्यन्तौ टकितौ
46 मिदचोऽन्त्यात् परः
47 एच इग्घ्रस्वादेशे (54)
48 षष्ठी स्थानेयोगा (54)
49 स्थानेऽन्तरतमः
50 उरण् रपरः
51 अलोऽन्त्यस्य (53,52)
52 ङिच्च
53 आदेः परस्य
54 अनेकाल्शित् सर्वस्य
55 स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ (58)
56 अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (57)
57 नपदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वर सवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु
58 द्विर्वचनेऽचि
59 अदर्शनं लोपः (60)
60 प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः
61 प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् (62)
62 न लुमताऽङ्गस्य
63 अचोऽन्त्यादि टि
64 अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा
65 तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (66)
66 तस्मादित्युत्तरस्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

67 स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसञ्ज्ञा (71)
68 अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः (69)
69 तपरस्तत्कालस्य
70 आदिरन्त्येन सहेता
71 येन विधिस्तदन्तस्य
72 वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् (74)
73 त्यदादीनि च
74 एङ् प्राचां देशे

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् (4)
2 विज इट् (3)
3 विभाषोर्णोः
4 सार्वधातुकमपित् (5)
5 असंयोगाल्लिट् कित् (6,26)
6 इन्धिभवतिभ्यां च
7 मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा (8)
8 रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च (10)
9 इको झल् (11,13)
10 हलन्ताच्च (11)
11 लिङ्सिचावात्मनेपदेषु (13,17)
12 उश्च
13 वा गमः
14 हनः सिच् (17)
15 यमो गन्धने (16)
16 विभाषोपयमने
17 स्थाध्वोरिच्च
18 न क्त्वा सेट् (26)
19 निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः (22)
20 मृषस्तितिक्षायाम्
21 उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम्
22 पूङः क्त्वा च (26)
23 नोपधात् थफान्ताद् वा (26)
24 वञ्चिलुञ्चृतश्च
25 तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य
26 रलो व्युपधाद्धलादेः सँश्च
27 ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः (31,28)
28 अचश्च
29 उच्चैरुदात्तः
30 नीचैरनुदात्तः
31 समाहारः स्वरितः
32 तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्
33 एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ (39)
34 यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु (35)
35 उच्चैस्तरां वा वषट्कारः
36 विभाषा छन्दसि
37 न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः (38)
38 देवब्रह्मणोरनुदात्तः
39 स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् (40)
40 उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः
41 अपृक्त एकाल् प्रत्ययः
42 तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः
43 प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् (44)
44 एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते
45 अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (46)
46 कृत्तद्धितसमासाश्च
47 ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (48)
48 गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (49)
49 लुक् तद्धितलुकि (50)
50 इद् गोण्याः
51 लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने (52)
52 विशेषणानां चाजातेः
53 तदशिष्यं सञ्ज्ञाप्रमाणत्वात् (57)
54 लुब्योगाप्रख्यानात्
55 योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात्
56 प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् (59)
57 कालोपसर्जने च तुल्यम्
58 जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम् (59,60,62)
59 अस्मदो द्वयोश्च (61)
60 फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे (62)
61 छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् (62)
62 विशाखयोश्च
63 तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्
64 सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ (73)
65 वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः (66,69)
66 स्त्री पुंवच्च
67 पुमान् स्त्रिया
68 भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्
69 नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चाऽस्याऽन्यतरस्याम् (71)
70 पिता मात्रा
71 श्वशुरः श्वश्रूवा
72 त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्
73 ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 भूवादयो धातवः
2 उपदेशेऽजनुनासिक इत् (9)
3 हलन्त्यम् (4)
4 न विभक्तौ तुस्माः
5 आदिर्ञिटुडवः (8)
6 षः प्रत्ययस्य (8)
7 चुटू
8 लशक्वतद्धिते
9 तस्य लोपः
10 यथासंख्यमनुदेशः समानाम्
11 स्वरितेनाऽधिकारः
12 अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (77)
13 भावकर्मणोः
14 कर्तरि कर्मव्यतिहारे (93,16)
15 न गतिहिंसार्थेभ्यः (16)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16 इतरेतराऽन्योऽन्योपपदाच्च
17 नेर्विशः
18 परिव्यवेभ्यः क्रियः
19 विपराभ्यां जेः
20 आङो दोऽनास्यविहरणे (21)
21 क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च
22 समवप्रविभ्यः स्थः (26)
23 प्रकाशनस्थेयाऽऽख्ययोश्च
24 उदोऽनूर्ध्वकर्मणि
25 उपान्मन्त्रकरणे (26)
26 अकर्मकाच्च (29)
27 उद्विभ्यां तपः
28 आङो यमहनः
29 समो गम्यृच्छिभ्याम्
30 निसमुपविभ्यो ह्वः (31)
31 स्पर्धायामाङः
32 गन्धनाऽवक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः (35)
33 अधेः प्रसहने
34 वेः शब्दकर्मणः (35)
35 अकर्मकाच्च
36 सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरण ज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः (37)
37 कर्तृस्थे चाऽशरीरे कर्मणि
38 वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः (39,43)
39 उपपराभ्याम्
40 आङः उद्गमने
41 वेः पादविहरणे
42 प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्
43 अनुपसर्गाद् वा
44 अपह्नवे ज्ञः (46)
45 अकर्मकाच्च
46 सम्प्रतिभ्यामनाध्याने
47 भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्न विमत्युपमन्त्रणेषु वदः (50)
48 व्यक्तवाचां समुच्चारणे (50)
49 अनोरकर्मकात्
50 विभाषा विप्रलापे
51 अवाद् ग्रः (52)
52 समः प्रतिज्ञाने
53 उदश्चरः सकर्मकात् (54)
54 समस्तृतीययुक्तात् (55)
55 दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे
56 उपाद्यमः स्वकरणे
57 ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः (59)
58 नानोर्ज्ञः (59)
59 प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः
60 शदेः शितः (61)
61 म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च
62 पूर्ववत् सनः
63 आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य
64 प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु
65 समः क्ष्णुवः
66 भुजोऽनवने
67 णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्सकर्त्ताऽनाध्याने (71)
68 भीस्म्योर्हेतुभये
69 गृधिवञ्चेः प्रलम्भने (70)
70 लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च
71 मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे
72 स्वरितञितः कर्त्रभिप्रायेक्रियाफले (77)
73 अपाद्वदः
74 णिचश्च
75 समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे
76 अनुपसर्गाज्ज्ञः
77 विभाषोपपदेन प्रतीयमाने
78 शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् (93)
79 अनुपराभ्यां कृञः
80 अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः
81 प्राद्वहः
82 परेर्मृषः
83 व्याङ्परिभ्यो रमः (85)
84 उपाच्च
85 विभाषाऽकर्मकात्
86 बुधयुधनशजनेङ्भ्रुद्रुस्रुभ्यो णेः (89)
87 निगरणचलनार्थेभ्यश्च
88 अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्
89 न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः
90 वा क्यषः (93)
91 द्युद्भ्यो लुङि
92 वृद्भ्यः स्यसनोः (93)
93 लुटि च क्लृपः

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

1 आ कडाराद् एका सञ्ज्ञा (2.2.38)
2 विप्रतिषेधे परं कार्यम्
3 यू स्त्र्याख्यौ नदी (6)
4 नेयङुवङ्स्थानावस्त्री (6)
5 वाऽऽमि (6)
6 ङिति ह्रस्वश्च (7)
7 शेषो घ्यसखि (9)
8 पतिः समास एव (9)
9 षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा
10 ह्रस्वं लघु (11)
11 संयोगे गुरु (12)
12 दीर्घञ्च
13 यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्
14 सुप्तिङन्तं पदम् (17)
15 नः क्ये
16 सिति च
17 स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (18)
18 यचि भम् (20)
19 तसौ मत्वर्थे
20 अयस्मयादीनि छन्दसि
21 बहुषु बहुवचनम्
22 द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने
23 कारके (55)
24 ध्रुवमपायेऽपादानम् (31)
25 भीत्रार्थानां भयहेतुः
26 पराजेरसोढः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

27 वारणार्थानामीप्सितः
28 अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति
29 आख्यातोपयोगे
30 जनिकर्तुः प्रकृतिः (31)
31 भुवः प्रभवः
32 कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (41)
33 रुच्यर्थानां प्रीयमाणः
34 श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः
35 धारेरुत्तमर्णः
36 स्पृहेरीप्सितः
37 क्रुधद्रुहेर्ष्याऽसूयार्थानां यं प्रति कोपः (38)
38 क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म
39 राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः
40 प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता (41)
41 अनुप्रतिगृणश्च
42 साधकतमं करणम् (44)
43 दिवः कर्म च
44 परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्
45 आधारोऽधिकरणम् (48)
46 अधिशीङ्स्थासां कर्म (48)
47 अभिनिविशश्च
48 उपान्वध्याङ्वसः
49 कर्तुरीप्सिततमं कर्म (53)
50 तथायुक्तं चाऽनीप्सितम्
51 अकथितञ्च
52 गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द कर्माकर्मकाणा मणि कर्त्ता स णौ (53)
53 हृक्रोरन्यतरस्याम्
54 स्वतन्त्रः कर्त्ता (55)
55 तत्प्रयोजको हेतुश्च
56 प्राग्रीश्वरान्निपाताः (96)
57 चादयोऽसत्त्वे (58)
58 प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे (59,78)
59 गतिश्च (78)
60 ऊर्यादिच्विडाचश्च
61 अनुकरणं चानितिपरम्
62 आदराऽनादरयोः सदसती
63 भूषणेऽलम्
64 अन्तरपरिग्रहे
65 कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते
66 पुरोऽव्ययम् (68)
67 अस्तञ्च
68 अच्छ गत्यर्थवदेषु
69 अदोऽनुपदेशे
70 तिरोऽन्तर्द्धौ (71)
71 विभाषा कृञि (75,78)
72 उपाजेऽन्वाजे
73 साक्षात्प्रभृतीनि च
74 अनत्याधान उरसिमनसी (75)
75 मध्ये पदे निवचने च
76 नित्यं हस्ते पाणावुपयमने
77 प्राध्वं बन्धने
78 जीविकोपनिषदावौपम्ये
79 ते प्राग् धातोः (81)
80 छन्दसि परेऽपि (81)
81 व्यवहिताश्च
82 कर्मप्रवचनीयाः (97)
83 अनुर्लक्षणे (85)
84 तृतीयार्थे
85 हीने (86)
86 उपोऽधिके च
87 अपपरी वर्जने
88 आङ् मर्यादावचने
89 लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (91)
90 अभिरभागे
91 प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः
92 अधिपरी अनर्थकौ
93 सुः पूजायाम् (94)
94 अतिरतिक्रमणे च
95 अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु
96 अधिरीश्वरे (97)
97 विभाषा कृञि
98 लः परस्मैपदम् (99)
99 तङानावात्मनेपदम्
100 तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः (103)
101 तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः (102)
102 सुपः (103)
103 विभक्तिश्च
104 युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः (107,105)
105 प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तमः एकवच्च
106 अस्मद्युत्तमः
107 शेषे प्रथमः
108 परः सन्निकर्षः संहिता
109 विरामोऽवसानम्

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

द्वितीयाध्यायस्य

प्रथमः पादः

1 समर्थः पदविधिः
2 सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे (2.2.29)
3 प्राक् कडारात् समासः (2.2.38)
4 सह सुपा (2.2.22)
5 अव्ययीभावः (20)
6 अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाऽभावाऽत्ययाऽसम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु (8)
7 यथाऽसादृश्ये
8 यावदवधारणे
9 सुप् प्रतिना मात्रार्थे
10 अक्षशलाकासंख्याः परिणा
11 विभाषाऽपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या (2.2.29) (12)
12 आङ् मर्यादाऽभिविध्योः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13 लक्षणेनाऽभिप्रती आभिमुख्ये (15)
14 अनुर्यत्समया (15)
15 यस्य चाऽऽयामः
16 तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च
17 पारे मध्ये षष्ठ्या वा
18 संख्या वंश्येन (19)
19 नदीभिश्च (20)
20 अन्यपदार्थे च सञ्ज्ञायाम्
21 तत्पुरुषः (2.2.22)
22 द्विगुश्च
23 द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः (28)
24 स्वयं क्तेन (27)
25 खट्वा क्षेपे
26 सामि
27 कालाः (28)
28 अत्यन्तसंयोगे च
29 तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन (34)
30 पूर्वसदृशसमोनाऽर्थकलहनिपुणमिश्र-श्लक्ष्णैः
31 कर्तृकरणे कृता बहुलम् (32)
32 कृत्यैरधिकार्थवचने
33 अन्नेन व्यञ्जनम्
34 भक्ष्येण मिश्रीकरणम्
35 चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः
36 पञ्चमी भयेन (38)
37 अपेतापोढमुक्तपतिता पत्रस्तैरल्पशः
38 स्तोकाऽन्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन
39 सप्तमी शौण्डैः (47)
40 सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च
41 ध्वाङ्क्षेण क्षेपे
42 कृत्यैर्ऋणे
43 सञ्ज्ञायाम्
44 क्तेनाऽहोरात्रावयवाः (46)
45 तत्र
46 क्षेपे (47)
47 पात्रे समितादयश्च
48 पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन (71)
49 दिक्संख्ये सञ्ज्ञायाम् (50)
50 तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च
51 संख्यापूर्वो द्विगुः
52 कुत्सितानि कुत्सनैः
53 पापाणके कुत्सितैः
54 उपमानानि सामान्यवचनैः
55 उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे
56 विशेषणं विशेषेण बहुलम् (57)
57 पूर्वापरप्रथमचरमजघनसमानमध्य-मध्यमवीराश्च
58 श्रेण्यादयः कृतादिभिः
59 क्तेन नञ्विशिष्टेनाऽनञ्
60 सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः
61 वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्
62 कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने
63 किं क्षेपे
64 पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टि धेनु-वशावेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाऽध्यापक-धूर्तैर्जातिः (65)
65 प्रशंसावचनैश्च
66 युवा खलतिपलितवलिन जरतीभिः
67 कृत्यतुल्याख्या अजात्या
68 वर्णो वर्णेन
69 कुमारः श्रमणादिभिः
70 चतुष्पादो गर्भिण्या
71 मयूरव्यंसकादयश्च

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाऽधिकरणे (3)
2 अर्धं नपुंसकम्
3 द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्
4 प्राप्तापन्ने च द्वितीयया
5 कालाः परिमाणिना
6 नञ्
7 ईषदकृता
8 षष्ठी (17)
9 याजकादिभिश्च
10 न निर्द्धारणे (16)
11 पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमाना-धिकरणेन
12 क्तेन च पूजायाम् (13)
13 अधिकरणवाचिना च
14 कर्मणि च
15 तृजकाभ्यां कर्तरि (16)
16 कर्तरि च
17 नित्यं क्रीडाजीविकयोः (20)
18 कुगतिप्रादयः
19 उपपदमतिङ् (22)
20 अमैवाव्ययेन (21)
21 तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् (22)
22 क्त्वा च
23 शेषो बहुव्रीहिः (28)
24 अनेकमन्यपदार्थे (29)
25 संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये
26 दिङ्नामान्यन्तराले
27 तत्र तेनेदमिति सरूपे
28 तेन सहेति तुल्ययोगे
29 चाऽर्थे द्वन्द्वः
30 उपसर्जनं पूर्वम् (31,38)
31 राजदन्तादिषु परम्
32 द्वन्द्वे घि (34)
33 अजाद्यदन्तम्
34 अल्पाच्तरम्
35 सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ (37)
36 निष्ठा (37)
37 वाऽऽहिताग्न्यादिषु (38)
38 कडाराः कर्मधारये

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 अनभिहिते (73)
2 कर्मणि द्वितीया (3,5)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3 तृतीया च होश्छन्दसि
4 अन्तराऽन्तरेणयुक्ते
5 **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (7,6)
6 अपवर्गे तृतीया
7 सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये
8 **कर्मप्रवचनीययुक्ते** द्वितीया (11)
9 यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी
10 **पञ्चम्यपाङ्परिभि:** (11)
11 प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्
12 गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि
13 **चतुर्थी** सम्प्रदाने (17)
14 क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन:
15 तुमर्थाच्च भाववचनात्
16 नम:स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च
17 मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु
18 कर्तृकरणयोस्तृतीया (25)
19 सहयुक्तेऽप्रधाने
20 येनाऽङ्गविकार:
21 इत्थम्भूतलक्षणे
22 सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि
23 **हेतौ** (27)
24 अकर्तर्यृणे **पञ्चमी** (25)
25 विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्
26 **षष्ठी हेतुप्रयोगे** (27)
27 सर्वनाम्नस्तृतीया
28 अपादाने **पञ्चमी** (35)
29 अन्यारादितरर्तेदिक् शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते
30 षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन
31 एनपा **द्वितीया** (32)
32 पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् (33,33)
33 करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्याऽसत्त्ववचनस्य
34 दूरान्तिकार्थै: षष्ठ्यन्यतरस्याम्
35 **दूरान्तिकार्थेभ्यो** द्वितीया च (36)
36 **सप्तम्यधिकरणे** च (45)
37 **यस्य च भावेन भावलक्षणम्** (38)
38 **षष्ठी** चाऽनादरे (41)
39 स्वामीश्वराधिपतिदायाद साक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च
40 आयुक्तकुशलाभ्यां चाऽसेवायाम्
41 **यतश्च निर्धारणम्** (42)
42 पञ्चमी विभक्ते
43 साधुनिपुणाभ्यामर्चायां **सप्तम्य**प्रते: (45)
44 प्रसितोत्सुकाभ्यां **तृतीया** च (45)
45 नक्षत्रे च लुपि
46 प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण वचनमात्रे **प्रथमा** (49)
47 **सम्बोधने च** (49)
48 साऽऽमन्त्रितम्
49 एकवचनं सम्बुद्धि:
50 **षष्ठी शेषे** (73,66)
51 ज्ञोऽविदर्थस्य करणे
52 अधीगर्थदयेशां **कर्मणि** (61)
53 कृञ: प्रतियत्ने
54 रुजार्थानां भाववचनानामज्वरे:
55 आशिषि नाथ:
56 जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्
57 **व्यवहृपणो:** समर्थयो: (58)
58 **दिवस्तदर्थस्य** (60)
59 विभाषोपसर्गे
60 द्वितीया ब्राह्मणे
61 प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने
62 चतुर्थ्यर्थे **बहुलं छन्दसि** (63)
63 यजेश्च करणे
64 कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे
65 कर्तृकर्मणो: कृति
66 उभयप्राप्तौ कर्मणि
67 **क्तस्य** च वर्तमाने (68)
68 अधिकरणवाचिनश्च
69 न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (70)
70 अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययो:
71 कृत्यानां कर्तरि वा
72 तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्
73 चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितै:

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य तृतीय: पाद: ॥

चतुर्थ: पाद:

1 द्विगुरेकवचनम् (17)
2 **द्वन्द्वश्च** प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (16)
3 अनुवादे चरणानाम्
4 अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम्
5 अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम्
6 जातिरप्राणिनाम्
7 विशिष्टलिङ्गो नदी देशोऽग्रामा:
8 क्षुद्रजन्तव:
9 येषां च विरोध: शाश्वतिक:
10 शूद्राणामनिरवसितानाम्
11 गवाश्वप्रभृतीनि च
12 **विभाषा** वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जन पशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापरा धरोत्तराणाम् (13)
13 विप्रतिषिद्धं चाऽनधिकरण वाचि
14 **न** दधिपयआदीनि (15)
15 **अधिकरणैतावत्त्वे** च (16)
16 विभाषा समीपे
17 **स नपुँसकम्** (25)
18 अव्ययीभावश्च
19 **तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय:** (25)
20 सञ्ज्ञायां कन्थोशीनरेषु
21 उपज्ञोक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्
22 छाया बाहुल्ये
23 **सभा** राजाऽमनुष्यपूर्वा (24)
24 अशाला च
25 विभाषा सेनासुराच्छायाशाला निशानाम्
26 परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:
27 **पूर्ववदश्ववडवौ** (28)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28 हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि
29 रात्राह्नाहाः पुंसि
30 अपथं **नपुंसकम्** (31)
31 अर्धर्चाः पुंसि च
32 **इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ** (34,33)
33 एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चाऽनुदात्तौ (34)
34 द्वितीयाटौस्स्वेनः
35 **आर्धधातुके** (57)
36 अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति (40)
37 लुङ्सनोर्घस्लृ (40)
38 घञपोश्च
39 बहुलं छन्दसि
40 **लिट्यन्यतरस्याम्** (41)
41 वेञो वयिः
42 **हनो वध लिङि** (44)
43 **लुङि** च (44)
44 आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्
45 **इणो** गा लुङि (47)
46 **णौ गमिरबोधने** (48,47)
47 **सनि** च (48)
48 **इङश्च** (51)
49 **गाङ् लिटि** (51)
50 **विभाषा लुङ्लृङोः** (51)
51 णौ च सँश्चङोः
52 अस्तेर्भूः
53 ब्रुवो वचिः
54 **चक्षिङः ख्याञ्** (55)
55 वा लिटि
56 **अजेर्व्यघञपोः** (57)
57 वा यौ
58 ण्यक्षत्रियार्षञितो **यूनि लुगणिञोः** (61,84)
59 पैलादिभ्यश्च
60 इञः प्राचाम्
61 न तौल्वलिभ्यः
62 तद्राजस्य **बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम्** (70)
63 यस्कादिभ्यो **गोत्रे** (70)
64 यञञोश्च
65 अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाऽङ्गिरोभ्यश्च
66 बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु
67 न गोपवनादिभ्यः
68 तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे
69 उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे
70 आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्
71 सुपो धातुप्रातिपदिकयोः
72 **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** (73,76)
73 बहुलं छन्दसि
74 यङोऽचि च
75 जुहोत्यादिभ्यः **श्लुः** (76)
76 बहुलं छन्दसि
77 गातिस्थाघुपाभूभ्यः **सिचः परस्मैपदेषु** (79,78)
78 **विभाषा** घ्राधेट्शाच्छासः (79)
79 तनादिभ्यस्तथासोः
80 मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्-कृगमिजनिभ्यो लेः (81)
81 आमः
82 अव्ययादाप् **सुपः** (84)
83 नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः (84)
84 तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्
85 लुटः प्रथमस्य डारौरसः

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य

प्रथमः पादः

1 **प्रत्ययः** (5.4.160)
2 **परश्च** (5.4.160)
3 **आद्युदात्तश्च** (5.4.160)
4 अनुदात्तौ सुप्पितौ
5 गुप्तिज्किद्भ्यः **सन्** (7)
6 मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाऽभ्यासस्य
7 धातोः **कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** (10,9,22)
8 **सुप आत्मनः क्यच्** (11,9,10)
9 काम्यच्च
10 **उपमानादाचारे** (11)
11 कर्तुः **क्यङ्** सलोपश्च (18)
12 भृशादिभ्यो **भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः** (13)
13 लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्
14 कष्टाय क्रमणे
15 **कर्मणो** रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः (20)
16 वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने
17 शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः **करणे** (21)
18 सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्
19 नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्
20 पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्
21 मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्र हल-कलकृततूस्तेभ्यो णिच्
22 धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् (90,24)
23 नित्यं कौटिल्ये गतौ (24)
24 लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्
25 सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेना-लोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो **णिच्** (26)
26 हेतुमति च
27 कण्ड्वादिभ्यो यक्
28 गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः
29 ऋतेरीयङ्
30 कमेर्णिङ्
31 आयादय आर्धधातुके वा
32 सनाद्यन्ता धातवः
33 स्यतासी लृलुटोः
34 सिब् बहुलं लेटि
35 कास्प्रत्ययादाममन्त्रे **लिटि** (42,39)
36 इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः
37 दयायासश्च
38 उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् (39)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

39 भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च
40 कृञ्चाऽनुप्रयुज्यते लिटि
41 विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् (42)
42 अभ्युत्सादयाम्प्रजनयाञ्चिकयांरमया-मकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति च्छन्दसि
43 च्लि लुङि (66)
44 च्लेः सिच् (66)
45 शल इगुपधादनिटः क्सः (47)
46 श्लिष आलिङ्गने
47 न दृशः
48 णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् (51)
49 विभाषा धेट्श्व्योः (50)
50 गुपेश्छन्दसि (51)
51 नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः
52 अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् (59)
53 लिपिसिचिह्नश्च (54)
54 आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्
55 पुषादिद्युताद्यृलृदितः परस्मैपदेषु (58)
56 सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च
57 इरितो वा (58)
58 जृस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च
59 कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि
60 चिण् ते पदः (65,66)
61 दीपजनबुधपरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् (63)
62 अचः कर्मकर्त्तरि (65)
63 दुहश्च
64 न रुधः (65)
65 तपोऽनुतापे च
66 चिण् भावकर्मणोः (67)
67 सार्वधातुके यक् (82)
68 कर्त्तरि शप् (88)
69 दिवादिभ्यः श्यन् (72)
70 वा भ्राशम्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः (72)
71 यसोऽनुपसर्गात्
72 संयसश्च
73 स्वादिभ्यः श्नुः (76)
74 श्रुवः शृ च
75 अक्षोऽन्यतरस्याम् (76)
76 तनूकरणे तक्षः
77 तुदादिभ्यः शः
78 रुधादिभ्यः श्नम्
79 तनादिकृञ्भ्य उः (80)
80 धिन्विकृण्व्योर च
81 क्र्यादिभ्यः श्ना (82)
82 स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च
83 हलः श्नः शानज्झौ (84)
84 छन्दसि शायजपि (86)
85 व्यत्ययो बहुलम्
86 लिङ्याशिष्यङ्
87 कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः (90)
88 तपस्तपः कर्मकस्यैव
89 न दुहस्नुनमां यक्चिणौ
90 कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च
91 धातोः (3.4.117)
92 तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (94)
93 कृदतिङ् (3.4.77)
94 वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्
95 कृत्याः (133)
96 तव्यत्तव्यानीयरः
97 अचो यत् (106)
98 पोरदुपधात्
99 शकिसहोश्च
100 गदमदचरयमश्चाऽनुपसर्गे (108)
101 अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्याऽनिरोधेषु
102 वह्यं करणम्
103 अर्यः स्वामिवैश्ययोः
104 उपसर्या काल्या प्रजने
105 अजर्यं सङ्गतम्
106 वदः सुपि क्यप् च (108,121)
107 भुवो भावे (108)
108 हनस्त च
109 एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्
110 ऋदुपधाच्चाऽक्लृपिचृतेः
111 ई च खनः
112 भृञोऽसञ्ज्ञायाम्
113 मृजेर्विभाषा
114 राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः
115 भिद्योद्ध्यौ नदे
116 पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे
117 विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु
118 प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः (119)
119 पदास्वैरिबाह्यपक्ष्येषु च
120 विभाषा कृवृषोः
121 युग्यं च पत्रे
122 अमावस्यदन्यतरस्याम्
123 छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि
124 ऋहलोर्ण्यत् (131)
125 ओरावश्यके
126 आसुयुवपिरपिलपिन्रपि चमश्च
127 आनाय्योऽनित्ये
128 प्रणाय्योऽसम्मतौ
129 पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु
130 क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ
131 अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः
132 चित्याऽग्निचित्ये च
133 ण्वुल्तृचौ
134 नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः
135 इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः (136)
136 आतश्चोपसर्गे (137)
137 पाघ्राध्माधेट्दृशः शः (139)
138 अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च (141)
139 ददातिदधात्योर्विभाषा (140)
140 ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः (143)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

141 श्याद्व्यधास्रुसंस्रवतीण वसा-वहलिहश्लिषश्वसश्च
142 दुन्योरनुपसर्गे
143 विभाषा ग्रहः (144)
144 गेहे कः
145 शिल्पिनि ष्वुन् (147)
146 गस्थकन् (147)
147 ण्युट् च (148)
148 हश्च व्रीहिकालयोः
149 प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् (150)
150 आशिषि च

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 कर्मण्यण् (58,2)
2 ह्लावामश्च
3 आतोऽनुपसर्गे कः (60,7)
4 सुपि स्थः (83)
5 तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः
6 प्रे दाज्ञः
7 समि ख्यः
8 गापोष्टक्
9 हरतेरनुद्यमनेऽच् (11,15)
10 वयसि च
11 आङि ताच्छील्ये
12 अर्हः
13 स्तम्बकर्णयोः रमिजपोः
14 शमि धातोः सञ्ज्ञायाम्
15 अधिकरणे शेते (16)
16 चरेष्टः (17,23)
17 भिक्षासेनादायेषु च
18 पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः (19)
19 पूर्वे कर्त्तरि
20 कृञो हेतुताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु (24)
21 दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्ता-नन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबि-बलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्या जङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुरुषु
22 कर्मणि भृतौ
23 न शब्दश्लोककलहगाथा-वैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु
24 स्तम्बशकृतोरिन् (27)
25 हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ
26 फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च
27 छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्
28 एजेः खश् (37)
29 नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः (30)
30 नाडीमुष्ट्योश्च
31 उदि कूले रुजिवहोः
32 वहाभ्रे लिहः
33 परिमाणे पचः (34)
34 मितनखे च
35 विध्वरुषोस्तुदः
36 असूर्यललाटयोर्दृशितपोः
37 उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च
38 प्रियवशे वदः खच् (47)
39 द्विषत्परयोस्तापेः
40 वाचि यमो व्रते
41 पूःसर्वयोर्दारिसहोः
42 सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः
43 मेघर्त्तिभयेषु कृञः (44)
44 क्षेमप्रियमद्रेऽण् च
45 आशिते भुवः करणभावयोः
46 सञ्ज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः (47)
47 गमश्च (48)
48 अन्ताऽत्यन्ताऽध्वदूरपारसर्वाऽनन्तेषु डः (50)
49 आशिषि हनः (55)
50 अपे क्लेशतमसोः
51 कुमारशीर्षयोर्णिनिः
52 लक्षणे जायापत्योष्टक् (54)
53 अमनुष्यकर्तृके च
54 शक्तौ हस्तिकपाटयोः
55 पाणिघताडघौ शिल्पिनि
56 आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्ना-ऽन्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् (57)
57 कर्त्तरि भुवः खिष्णुच् खुकञौ
58 स्पृशोऽनुदके क्विन् (60)
59 ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च
60 त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च
61 सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजि-नीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् (77)
62 भजो ण्विः (64)
63 छन्दसि सहः (67)
64 वहश्च (66)
65 कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् (66)
66 हव्येऽनन्तःपादम्
67 जनसनखनक्रमगमो विट् (69)
68 अदोऽनन्ने (69)
69 क्रव्ये च
70 दुहः कब् घश्च
71 मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् (72)
72 अवे यजः (73)
73 विजुपे छन्दसि (75,76)
74 आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च (75)
75 अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते
76 क्विप् च (77)
77 स्थः क च
78 सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये (83,86)
79 कर्त्तर्युपमाने
80 व्रते
81 बहुलमाभीक्ष्ण्ये
82 मनः (83)
83 आत्ममाने खश्च
84 भूते (122)
85 करणे यजः
86 कर्मणि हनः (92,88)
87 ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् (92)
88 बहुलं छन्दसि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

89 सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः
90 सोमे सुञः
91 अग्नौ चेः (92)
92 कर्मण्यग्न्याख्यायाम्
93 कर्मणीनि विक्रियः
94 दृशेः क्वनिप् (96)
95 राजनि युधिकृञः (96)
96 सहे च
97 सप्तम्यां जनेर्डः (101)
98 पञ्चम्यामजातौ
99 उपसर्गे च सञ्ज्ञायाम् (100)
100 अनौ कर्मणि
101 अन्येष्वपि दृश्यते
102 निष्ठा
103 सुयजोर्ङ्वनिप्
104 जीर्यतेरतृन्
105 छन्दसि लिट् (107)
106 लिटः कानज्वा (109)
107 क्वसुश्च (109)
108 भाषायां सदवसश्रुवः
109 उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च
110 लुङ्
111 अनद्यतने लङ् (122)
112 अभिज्ञावचने लृट् (114)
113 न यदि
114 विभाषा साकाङ्क्षे
115 परोक्षे लिट् (118,117)
116 हशश्वतोर्लङ् च (117)
117 प्रश्ने चासन्नकाले
118 लट् स्मे (122,119)
119 अपरोक्षे च
120 ननौ पृष्टप्रतिवचने (121)
121 नन्वोर्विभाषा (122)
122 पुरि लुङ् चाऽस्मे
123 वर्त्तमाने लट् (3.3.1)
124 लटः शतृशानचावप्रथमा-समानाधिकरणे (126)
125 सम्बोधने च
126 लक्षणहेत्वोः क्रियायाः
127 तौ सत्
128 पूङ्यजोः शानन्
129 ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्
130 इङ्धार्य्योः शत्रकृच्छ्रिणि (133)
131 द्विषोऽमित्रे
132 सुञो यज्ञसंयोगे
133 अर्हः प्रशंसायाम्
134 आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधु-कारिषु (178)
135 तृन्
136 अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् (138)
137 णेश्छन्दसि (138)
138 भुवश्च (131)
139 ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः
140 त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः
141 शमित्यष्टाभ्यो घिनुंण् (145)
142 सम्पृचाऽनुरुधाङ्यमाङ्यस-परिसृसंसृजपरिदेविसंज्वर-परिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदह-परिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजाति-चरापचरामुषाभ्याहनश्च
143 वौ कषलसकत्थस्नभ्नः (144)
144 अपे च लषः
145 प्रे लपसृद्रुमथवदवसः
146 निन्दहिंसक्लिशखादविनाश-परिक्षिपपरिरटपरिवादि-व्याभाषासूयो वुञ् (147)
147 देविक्रुशोश्चोपसर्गे
148 चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् (149,153)
149 अनुदात्तेतश्च हलादेः
150 जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधि-ज्वलशुचलषपतपदः
151 क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च
152 न यः (153)
153 सूददीपदीक्षश्च
154 लषपतपदस्थाभूवृषहनकम-गमशॄभ्य उकञ्
155 जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन्
156 प्रजोरिनिः (157)
157 जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यम-परिभूप्रसूभ्यश्च
158 स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्रा-श्रद्धाभ्य आलुच्
159 दाधेट्सिशदसदो रुः
160 सृघस्यदः क्मरच्
161 भञ्जभासमिदो घुरच्
162 विदिभिदिच्छिदेः कुरच्
163 इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप् (164)
164 गत्वरश्च
165 जागरूकः (166)
166 यजजपदशां यङः
167 नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः
168 सनाशंसभिक्ष उः (170)
169 विन्दुरिच्छुः
170 क्याच्छन्दसि (171)
171 आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च
172 स्वपितृषोर्नजिङ्
173 शृवन्द्योरारुः
174 भियः क्रुक्लुकनौ
175 स्थेशभासपिसकसो वरच् (176)
176 यश्च यङः
177 भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् (179)
178 अन्येभ्योऽपि दृश्यते
179 भुवः सञ्ज्ञाऽन्तरयोः (180)
180 विप्रसम्भ्यो ड्वसञ्ज्ञायाम्
181 धः कर्मणि ष्ट्रन् (183)
182 दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे (186)
183 हलसूकरयोः पुवः
184 अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः (186)
185 पुवः सञ्ज्ञायाम् (186)
186 कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

187 जीतः क्तः (188)
188 मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 उणादयो बहुलम् (3)
2 भूतेऽपि दृश्यन्ते
3 भविष्यति गम्यादयः (15)
4 यावत्पुरानिपातयोर्लट् (9)
5 विभाषा कदाकर्ह्योः (9)
6 किंवृत्ते लिप्सायाम्
7 लिप्स्यमानसिद्धौ च
8 लोडर्थलक्षणे च (9)
9 लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके
10 तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् (134)
11 भाववचनाश्च
12 अण् कर्मणि च
13 लृट् शेषे च (15)
14 लटः सद्वा
15 अनद्यतने लुट्
16 पदरुजविशस्पृशो घञ् (57)
17 सृ स्थिरे
18 भावे (112)
19 अकर्त्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम् (112)
20 परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः
21 इङश्च
22 उपसर्गे रुवः
23 समि युद्रुदुवः
24 श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे
25 वौ क्षुश्रुवः
26 अवोदोर्नियः
27 प्रे द्रुस्तुस्रुवः
28 निरभ्योः पूल्वोः
29 उन्योर्ग्रः (30)
30 कृ धान्ये
31 यज्ञे समि स्तुवः
32 प्रे स्त्रोऽयज्ञे (34)
33 प्रथने वावशब्दे (34)
34 छन्दोनाम्नि च
35 उदि ग्रहः (36)
36 समि मुष्टौ
37 परिन्योर्नीणोर्धूताप्रेषयोः
38 परावनुपात्यय इणः
39 व्युपयोः शेतेः पर्याये
40 हस्तादाने चेरस्तेये (36)
41 निवासचितिशरीरोपसमाधाने-ष्वादेश्च कः (42)
42 सङ्घे चानौत्तराधर्ये
43 कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्
44 अभिविधौ भाव इनुण्
45 आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः (47)
46 प्रे लिप्सायाम्
47 परौ यज्ञे
48 नौ वृ धान्ये
49 उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः
50 विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः (55)
51 अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे (53)
52 प्रे वणिजाम् (54)
53 रश्मौ च
54 वृणोतेराच्छादने
55 परौ भुवोऽवज्ञाने
56 एरच्
57 ऋदोरप् (87)
58 ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च
59 उपसर्गेऽदः (60)
60 नौ ण च
61 व्यधजपोरनुपसर्गे (65)
62 स्वनहसोर्वा (65)
63 यमः समुपनिविषु च
64 नौ गदनदपठस्वनः (65)
65 क्वणो वीणायां च
66 नित्यं पणः परिमाणे
67 मदोऽनुपसर्गे
68 प्रमदसम्मदौ हर्षे
69 समुदोरजः पशुषु
70 अक्षेषु ग्लहः
71 प्रजने सर्तेः
72 ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु (75)
73 आङि युद्धे
74 निपानमाहावः
75 भावेऽनुपसर्गस्य (76)
76 हनश्च वधः (87)
77 मूर्तौ घनः
78 अन्तर्घनो देशे
79 अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च
80 उद्घनोऽत्याधानम्
81 अपघनोऽङ्गम्
82 करणेऽयोविद्रुषु (84)
83 स्तम्बे क च
84 परौ घः
85 उपघ्न आश्रये
86 सङ्घोद्घौ गणप्रशंसयोः
87 निघो निमितम्
88 ड्वितः क्त्रिः
89 टि्वतोऽथुच्
90 यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षा नङ्
91 स्वपो नन्
92 उपसर्गे घोः किः (93)
93 कर्मण्यधिकरणे च
94 स्त्रियाँ क्तिन् (112,97)
95 स्थागापापचो भावे (96)
96 मन्त्रे वृषेषपचमनविद्भूवीरा उदात्तः (100)
97 ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च
98 व्रजयजोर्भावे क्यप् (100)
99 सञ्ज्ञायां समजनिषदनिपत-मनविदषुञ्शीङ्भृञिणः
100 कृञः श च (101)
101 इच्छा
102 अ प्रत्ययात् (103)
103 गुरोश्च हलः
104 षिद्भिदादिभ्योऽङ् (106)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

105 चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च
106 आतश्चोपसर्गे
107 ण्यासश्रन्थो युच्
108 रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् (110)
109 सञ्ज्ञायाम्
110 विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च
111 पर्यायार्हणोत्पत्तिषु ण्वुच्
112 आक्रोशे नञ्यनिः
113 कृत्यलुटो बहुलम्
114 नपुंसके भावे क्तः (116)
115 ल्युट् च (117)
116 कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखम्
117 करणाधिकरणयोश्च (125)
118 पुंसि सञ्ज्ञायां घः प्रायेण (125,119)
119 गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापण-निगमाश्च
120 अवे तॄस्त्रोर्घञ् (125)
121 हलश्च
122 अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च
123 उदङ्कोऽनुदके
124 जालमानायः
125 खनो घ च
126 ईषदुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् (127,128,129,130)
127 कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः
128 आतो युच् (130)
129 छन्दसि गत्यर्थेभ्यः (130)
130 अन्येभ्योऽपि दृश्यते
131 वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा (132)
132 आशंसायां भूतवच्च (133)
133 क्षिप्रवचने ल्रट्
134 आशंसावचने लिङ्
135 नाऽनद्यतनवत् क्रियाप्रबन्ध-सामीप्ययोः (138)
136 भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् (139,138,137)
137 कालविभागे चाऽनहोरात्राणाम् (138)
138 परस्मिन् विभाषा
139 लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ (141)
140 भूते च (141)
141 वोताप्योः (141)
142 गर्हायां लडपिजात्वोः (144,143)
143 विभाषा कथमि लिङ् च
144 किंवृत्ते लिङ्लृटौ (145)
145 अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि (148)
146 किंकिलास्त्यर्थेषु ल्रट्
147 जातुयदोर्लिङ् (150)
148 यच्चयत्रयोः (150)
149 गर्हायाञ्च
150 चित्रीकरणे च (151)
151 शेषे लृडयदौ
152 उताप्योः समर्थयोर्लिङ् (155)
153 कामप्रवेदनेऽकच्चिति
154 सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे (155)
155 विभाषा धातौ सम्भावनवचने-ऽयदि (156)
156 हेतुहेतुमतोर्लिङ्
157 इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ (159)
158 समानकर्तृकेषु तुमुन् (159)
159 लिङ् च (160)
160 इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्त्तमाने
161 विधिनिमन्त्रणाऽऽमन्त्रणाऽधीष्ट-सम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् (162)
162 लोट् च (163)
163 प्रैषाऽतिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च (165)
164 लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके (165)
165 स्मे लोट् (166)
166 अधीष्टे च
167 कालसमयवेलासु तुमुन् (168)
168 लिङ् यदि (169)
169 अर्हे कृत्यतृचश्च
170 आवश्यकाऽऽधमर्ण्ययोर्णिनिः (171)
171 कृत्याश्च (172)
172 शकि लिङ् च
173 आशिषि लिङ्लोटौ
174 क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्
175 माङि लुङ् (176)
176 स्मोत्तरे लङ् च

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

1 धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः (6)
2 क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः (3)
3 समुच्चयेऽन्यतरस्याम्
4 यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् (5)
5 समुच्चये सामान्यवचनस्य
6 छन्दसि लुङ्लङ्लिटः (17)
7 लिङर्थे लेट् (8)
8 उपसंवादाऽऽशङ्कयोश्च
9 तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेन-ध्यैअध्यैन् कध्यैकध्यैन्शध्यै-शध्यैन्तवैतवेङ् तवेनः (13)
10 प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै
11 दृशे विख्ये च
12 शकि णमुल् कमुलौ
13 ईश्वरे तोसुन्कसुनौ
14 कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः (15)
15 अवचक्षे च
16 भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरि-हुतमिजनिभ्यस्तोसुन् (17)
17 सृपितृदोः कसुन्
18 अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा (24)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19 उदीचां माङो व्यतीहारे
20 परावरयोगे च
21 **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** (26)
22 **आभीक्ष्ण्ये णमुल् च** (23,24)
23 न यद्यनाकाङ्क्षे
24 विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु
25 कर्मण्याक्रोशे **कृञः** खमुञ् (28)
26 स्वादुमि **णमुल्** (58)
27 अन्यथैवंकथमित्थंसु **सिद्धा-प्रयोगश्चेत्** (28)
28 यथातथयोरसूयाप्रतिवचने
29 **कर्मणि** दृशिविदोः साकल्ये (36)
30 यावति विन्दजीवोः
31 चर्मोदरयोः **पूरेः** (32)
32 **वर्षप्रमाण** ऊलोपश्चाऽस्याऽन्यतरस्याम् (33)
33 चेले क्नोपेः
34 निमूलसमूलयोः कषः
35 शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः
36 समूलाऽकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः
37 **करणे** हनः (40)
38 स्नेहने पिषः
39 हस्ते वर्तिग्रहोः
40 स्वे पुषः
41 अधिकरणे **बन्धः** (42)
42 संज्ञायाम्
43 **कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः** (45)
44 ऊर्ध्वे शुषिपूरोः
45 उपमाने कर्मणि च
46 कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः
47 उपदंशस्तृतीयायाम् (51)
48 हिंसार्थानाञ्च समानकर्मकाणाम्
49 **सप्तम्यां** चोपपीडरुधकर्षः (51)
50 समासत्तौ
51 प्रमाणे च
52 अपादाने **परीप्सायाम्** (53)
53 **द्वितीयायाञ्च** (58)
54 **स्वाङ्गेऽध्रुवे** (55)
55 परिक्लिश्यमाने च
56 विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमाना-सेव्यमानयोः
57 अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु
58 नाम्न्यादिशिग्रहोः
59 अव्ययेऽयथाभिप्रेताऽऽख्याने **कृञः क्त्वाणमुलौ** (60,64)
60 तिर्यच्यपवर्गे
61 स्वाङ्गे तस्प्रत्यये **कृभ्वोः** (62)
62 नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे
63 तूष्णीमि **भुवः** (64)
64 अन्वच्यानुलोम्ये
65 शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रम-सहार्हास्त्यर्थेषु **तुमुन्** (66)
66 पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु
67 **कर्तरि** कृत् (69)
68 भव्यगेयप्रवचनोपस्थानीय-जन्याप्लाव्यापात्या वा
69 लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः
70 तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः
71 आदिकर्मणि **क्तः कर्त्तरि** च (72)
72 गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्था-सवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च
73 दाशगोघ्नौ, सम्प्रदाने
74 भीमादयोऽपादाने
75 ताभ्यामन्यत्रोणादयः
76 क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगति-प्रत्यवसानार्थेभ्यः
77 **लस्य** (117)
78 तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्ता-ताञ्झथासाथान्ध्वमिड्वहिमहिङ्
79 **टित** आत्मनेपदानां टेरे (80)
80 थाससे
81 लिटस्तझयोरेशिरेच् (82)
82 **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथु-सणल्वमाः** (84)
83 विदो लटो वा (84)
84 ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः
85 **लोटो** लङ्वत् (93)
86 एरुः
87 **सेर्ह्यपिच्च** (88)
88 वा छन्दसि
89 मेर्निः
90 आमेतः (91)
91 सवाभ्यां वामौ
92 **आडुत्तमस्य** पिच्च (93)
93 एत ऐ
94 लेटोऽडाटौ (98)
95 आत ऐ (96)
96 वैतोऽन्यत्र (98)
97 इतश्च **लोपः** परस्मैपदेषु (100)
98 **स उत्तमस्य** (99)
99 **नित्यं ङितः** (100,101)
100 इतश्च
101 तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः
102 **लिङः** सीयुट् (108)
103 **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो** ङिच्च (104)
104 किदाशिषि
105 झस्य रन्
106 इटोऽत्
107 सुट् तिथोः
108 **झेर्जुस्** (112)
109 सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च
110 **आतः** (111)
111 **लङः शाकटायनस्यैव** (112)
112 द्विषश्च
113 तिङ्शित् सार्वधातुकम्
114 **आर्धधातुकं शेषः** (117)
115 लिट् च
116 लिङाशिषि
117 छन्दस्युभयथा

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायस्य

प्रथमः पादः

1 **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** (5.4.16)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2 स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्
3 स्त्रियाम् (81)
4 अजाद्यतष्टाप्
5 ऋन्नेभ्यो ङीप् (24)
6 उगितश्च
7 वनो र च
8 पादोऽन्यतरस्याम् (9)
9 टाबृचि (10)
10 न षट्स्वस्रादिभ्यः (12)
11 मनः (13)
12 अनो बहुव्रीहेः (13)
13 डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्
14 अनुपसर्जनात् (81)
15 टिड्ढाऽणञ्द्वयसज्दध्नञ्मात्रच्तयपठक्ठञ्कञ्क्वरपः
16 यञश्च (18)
17 प्राचां ष्फस्तद्धितः (19)
18 सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः
19 कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च
20 वयसि प्रथमे
21 द्विगोः (24)
22 अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि (24)
23 काण्डान्तात् क्षेत्रे
24 पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्
25 बहुव्रीहेरूधसो ङीष् (29,26)
26 संख्याऽव्ययादेर्ङीप् (27)
27 दामहायनान्ताच्च
28 अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् (29)
29 नित्यं संज्ञाच्छन्दसोः (31)
30 केवलमामकभागधेयपापाऽपरसमानाऽऽर्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च
31 रात्रेश्चाऽजसौ
32 अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्
33 पत्युर्नो यज्ञसंयोगे (35)
34 विभाषा सपूर्वस्य
35 नित्यं सपत्न्यादिषु
36 पूतक्रतोरै च (37)
37 वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः (38)
38 मनोरौ वा (39)
39 वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः (40)
40 अन्यतो ङीष् (65)
41 षिद्गौरादिभ्यश्च
42 जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुक-कबराद् वृत्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु
43 शोणात् प्राचाम्
44 वोतो गुणवचनात् (45)
45 बह्वादिभ्यश्च (46)
46 नित्यं छन्दसि (47)
47 भुवश्च
48 पुंयोगादाख्यायाम् (49)
49 इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमाऽरण्ययवयवनमातुलाऽऽचार्याणामानुक्
50 क्रीतात् करणपूर्वात् (51)
51 क्तादल्पाख्यायाम् (53)
52 बहुव्रीहेश्चाऽन्तोदात्तात् (53)
53 अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा (55)
54 स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् (58)
55 नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च
56 न क्रोडादिबह्वचः (58)
57 सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च
58 नखमुखात् संज्ञायाम्
59 दीर्घजिह्वी चच्छन्दसि
60 दिक्पूर्वपदान्ङीप्
61 वाहः
62 सख्यशिश्वीति भाषायाम्
63 जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (64)
64 पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च
65 इतो मनुष्यजातेः (66)
66 ऊङुतः (72)
67 बाह्वन्तात् संज्ञायाम्
68 पङ्गोश्च
69 ऊरूत्तरपदादौपम्ये (70)
70 संहितशफलक्षणवामादेश्च
71 कद्रुकमण्डलूवोश्छन्दसि (72)
72 संज्ञायाम्
73 शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्
74 यङश्चाप् (75)
75 आवट्याच्च
76 तद्धिताः (5.4.160)
77 यूनस्तिः
78 अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे (79,81,80)
79 गोत्रावयवात्
80 क्रौड्यादिभ्यश्च
81 दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्
82 समर्थानां प्रथमाद्वा (5.2.140)
83 प्राग्दीव्यतोऽण् (4.4.2)
84 अश्वपत्यादिभ्यश्च
85 दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण् ण्यः
86 उत्सादिभ्योऽञ्
87 स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् (5.2.1)
88 द्विगोर्लुगनपत्ये
89 गोत्रेऽलुगचि (91)
90 यूनि लुक् (91)
91 फक्फिञोऽन्यतरस्याम्
92 तस्याऽपत्यम् (176)
93 एको गोत्रे
94 गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्
95 अत इञ् (97)
96 बाह्वादिभ्यश्च
97 सुधातुरकङ् च
98 गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् (111)
99 नडादिभ्यः फक् (103)
100 हरितादिभ्योऽञः
101 यञिञोश्च
102 शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

103 द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्
104 अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्
105 गर्गादिभ्यो यञ् (109)
106 मधुबभ्रवोर्ब्राह्मणकौशिकयोः
107 कपिबोधादाङ्गिरसे (109)
108 वतण्डाच्च (109)
109 लुक् स्त्रियाम्
110 अश्वादिभ्यः फञ् (111)
111 भर्गात् त्रैगर्ते
112 शिवादिभ्योऽण् (119)
113 अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः
114 ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च
115 मातुरुत् संख्यासम्भद्रपूर्वायाः
116 कन्यायाः कनीन च
117 विकर्णशुङ्गच्छगलाद् वत्सभरद्वाजात्रिषु
118 पीलाया वा
119 ढक् च मण्डूकात्
120 स्त्रीभ्यो ढक् (121,127)
121 द्व्यचः (122)
122 इतश्चाऽनिञः
123 शुभ्रादिभ्यश्च
124 विकर्णकुषीतकात् काश्यपे
125 भ्रुवो वुक् च
126 कल्याण्यादीनामिनङ् च (127)
127 कुलटाया वा
128 चटकाया ऐरक्
129 गोधाया ढ्रक् (130,131)
130 आरगुदीचाम्
131 क्षुद्राभ्यो वा
132 पितृष्वसुश्छण् (133,134)
133 ढकि लोपः (134)
134 मातृष्वसुश्च
135 चतुष्पाद्भ्यो ढञ् (136)
136 गृष्ट्यादिभ्यश्च
137 राजश्वशुराद् यत्
138 क्षत्राद् घः
139 कुलात् खः (140)
140 अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ (142)
141 महाकुलादञ्खञौ
142 दुष्कुलाड् ढक्
143 स्वसुश्छः (144)
144 भ्रातुर्व्यच्च (145)
145 व्यन् सपत्ने
146 रेवत्यादिभ्यष्ठक् (147)
147 गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च (149)
148 वृद्धाट् ठक् सौवीरेषु बहुलम् (149,150)
149 फेश्छ च
150 फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ
151 कुर्वादिभ्यो ण्यः (152)
152 सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च (153)
153 उदीचामिञ्
154 तिकादिभ्यः फिञ् (159)
155 कौसल्यकार्मार्याभ्यां च
156 अणो द्व्यचः
157 उदीचां वृद्धादगोत्रात् (159)
158 वाकिनादीनां कुक्च (159)
159 पुत्रान्तादन्यतरस्याम्
160 प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्
161 मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च
162 अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् (165)
163 जीवति तु वंश्ये युवा (164,165)
164 भ्रातरि च ज्यायसि
165 वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति
166 जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् (174,167)
167 साल्वेयगान्धारिभ्यां च
168 द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्
169 वृद्धेत्कोसलाजादाञ् ञ्यङ्
170 कुरुनादिभ्यो ण्यः
171 साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्
172 ते तद्राजाः (174)
173 कम्बोजाल्लुक् (174)
174 स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च (173)
175 अतश्च
176 न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 तेन रक्तं रागात् (13,2,2)
2 लाक्षारोचनाट् ठक्
3 नक्षत्रेण युक्तः कालः (6)
4 लुबविशेषे (5)
5 संज्ञायां श्रवणाऽश्वत्थाभ्याम्
6 द्वन्द्वाच्छः
7 दृष्टं साम (9)
8 वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ
9 परिवृतो रथः (11)
10 पाण्डुकम्बलादिनिः
11 द्वैपवैयाघ्रादञ्
12 कौमारापूर्ववचने
13 तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः (19)
14 स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते
15 संस्कृतं भक्षाः (19)
16 शूलोखाद्यत्
17 दध्नष्ठक् (18)
18 उदश्वितोऽन्यतरस्याम्
19 क्षीराट् ढञ्
20 साऽस्मिन् पौर्णमासीति (22)
21 आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् (22)
22 विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः
23 साऽस्य देवता (34)
24 कस्येत्
25 शुक्राद् घन्
26 अपोनप्त्रपात्नप्तृभ्यां घः (25)
27 छ च (28)
28 महेन्द्राद् घाऽणौ च
29 सोमाट् ट्यण्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

30 वाय्वृतुपित्रुषसो यत् (31)
31 द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोम-वास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च
32 अग्नेर्ढक्
33 कालेभ्यो भववत्
34 महाराजप्रोष्ठपदाट्टञ्
35 पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः
36 तस्य समूहः (53,50)
37 भिक्षादिभ्योऽण्
38 गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्र-वत्समनुष्याजाद् वुञ् (39)
39 केदाराद् यञ्च (40)
40 ठञ् कवचिनश्च
41 ब्राह्मणमाणववाडवाद् यन्
42 ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्
43 अनुदात्तादेरञ् (44)
44 खण्डिकादिभ्यश्च
45 चरणेभ्यो धर्मवत्
46 अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्
47 केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्
48 पाशादिभ्यो यः (49)
49 खलगोरथात्
50 इनित्रकट्यचश्च
51 विषयो देशे (53)
52 राजन्यादिभ्यो वुञ्
53 भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ
54 सोऽस्याऽऽदिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु (55)
55 सङ्ग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः
56 तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः
57 घञः साऽस्यां क्रियेति ञः
58 तदधीते तद्वेद (65)
59 क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट् ठक्
60 क्रमादिभ्यो वुन्
61 अनुब्राह्मणादिनिः
62 वसन्तादिभ्यष्ठक्
63 प्रोक्ताल्लुक् (65,64)
64 सूत्राच्च कोपधात्
65 छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि
66 तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि (69)
67 तेन निर्वृत्तम्
68 तस्य निवासः (69)
69 अदूरभवश्च
70 ओरञ् (75)
71 मतोश्च बह्वजङ्गात्
72 बह्वचः कूपेषु (73)
73 उदक् च विपाशः
74 सङ्कलादिभ्यश्च
75 स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु
76 सुवास्त्वादिभ्योऽण् (78)
77 रोणी
78 कोपधाच्च
79 वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्यय-फक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहण-कृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्म-सखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्-वराहकुमुदादिभ्यः
80 जनपदे लुप् (82)
81 वरणादिभ्यश्च
82 शर्कराया वा (83)
83 ठक्छौ च
84 नद्यां मतुप् (85)
85 मध्वादिभ्यश्च
86 कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्
87 नडशादाड् ड्वलच्
88 शिखाया वलच्
89 उत्करादिभ्यश्छः (90)
90 नडादीनां कुक् च
91 शेषे
92 राष्ट्रावारपाराद् घखौ
93 ग्रामाद् यखञौ
94 कत्र्यादिभ्यो ढकञ् (95)
95 कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु
96 नद्यादिभ्यो ढक्
97 दक्षिणापश्चात् पुरसस्त्यक्
98 कापिश्याः ष्फक् (99)
99 रङ्कोरमनुष्येऽण् च
100 द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्
101 कन्थायाष्ठक् (102)
102 वर्णी वुक्
103 अव्ययात्त्यप् (104)
104 ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्
105 तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ
106 दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः (107)
107 मद्रेभ्योऽञ् (108)
108 उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्
109 प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् (112)
110 कण्वादिभ्यो गोत्रे (112)
111 इञश्च (112)
112 न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु
113 वृद्धाच्छः (117)
114 भवतष्ठक् छसौ
115 काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ (117)
116 वाहीकग्रामेभ्यश्च
117 विभाषोशीनरेषु
118 ओर्देशे ठञ्
119 वृद्धात् प्राचाम् (125)
120 धन्वयोपधाद् वुञ् (129)
121 प्रस्थपुरवहान्ताच्च
122 रोपधेतोः प्राचाम्
123 जनपदतदवध्योश्च (124)
124 अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् (125)
125 कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात्
126 धूमादिभ्यश्च
127 नगरात् कुत्सन प्रावीण्ययोः
128 अरण्यान् मनुष्ये
129 विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्
130 मद्रवृज्योः कन्
131 कोपधादण् (132)
132 कच्छादिभ्यश्च (133)
133 मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् (134,135)
134 अपदातौ साल्वात् (135)
135 गोयवाग्वोश्च
136 गर्त्तोत्तरपदाच्छः (4.3.1)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

137 गहादिभ्यश्च
138 प्राचां कटादेः
139 राज्ञः क च
140 वृद्धादकेकान्तखोपधात् (141)
141 कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्
142 पर्वताच्च (143)
143 विभाषाऽमनुष्ये
144 कृकणपर्णाद् भारद्वाजे

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च (3)
2 तस्मिन्नणि च युष्माकाऽस्माकौ (3)
3 तवकममकावेकवचने
4 अर्थाद् यत् (7,6)
5 परावराधमोत्तमपूर्वाच्च
6 दिक्पूर्वपदाट् ठञ् (7)
7 ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ
8 मध्यान्मः (9)
9 अ साम्प्रतिके
10 द्वीपादनुसमुद्रं यञ्
11 कालाट् ठञ् (24,15)
12 श्राद्धे शरदः (13)
13 विभाषा रोगाऽऽतपयोः (15)
14 निशाप्रदोषाभ्यां च
15 श्वसस्तुट् च
16 सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्
17 प्रावृष एण्यः
18 वर्षाभ्यष्ठक् (19)
19 छन्दसि ठञ् (21)
20 वसन्ताच्च
21 हेमन्ताच्च (22)
22 सर्वत्राऽण् च तलोपश्च
23 सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च (24)
24 विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्
25 तत्र जातः (51,37)
26 प्रावृषष्ठप्
27 संज्ञायां शरदो वुञ् (28)
28 पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन् (31)
29 पथः पन्थ च
30 अमावास्याया वा (31)
31 अ च
32 सिन्ध्वपकराभ्यां कन् (33)
33 अणञौ च
34 श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्य-पुनर्वसुहस्तविशाखाषाढा बहुलाल् लुक् (37)
35 स्थानाऽन्तगोशालखरशालाच्च
36 वत्सशालाऽभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा
37 नक्षत्रेभ्यो बहुलम्
38 कृतलब्धक्रीतकुशलाः
39 प्रायभवः (40)
40 उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्
41 सम्भूते (43)
42 कोशाड् ढञ्
43 कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु (50)
44 उप्ते च (46)
45 आश्वयुज्या वुञ्
46 ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्
47 देयमृणे (50)
48 कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्
49 ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्
50 संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च
51 व्याहरति मृगः
52 तदस्य सोढम्
53 तत्र भवः (73)
54 दिगादिभ्यो यत् (55)
55 शरीरावयवाच्च
56 दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् (57)
57 ग्रीवाभ्योऽण् च
58 गम्भीराञ् ञ्यः (59)
59 अव्ययीभावाच्च (61)
60 अन्तःपूर्वपदाट् ठञ् (61)
61 ग्रामात् पर्य्यनुपूर्वात्
62 जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः
63 वर्गान्ताच्च (64)
64 अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्
65 कर्णललाटात् कनलङ्कारे
66 तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः (73)
67 बह्वचोऽन्तोदात्ताट् ठञ्
68 क्रतुयज्ञेभ्यश्च
69 अध्यायेष्वेवर्षेः
70 पौरोडाशपुरोडशात् ष्ठन्
71 छन्दसो यदणौ
72 द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाऽध्वर-पुरश्चरणनामाख्याताट् ठक्
73 अणृगयनादिभ्यः
74 तत आगतः (84,82)
75 ठगायस्थानेभ्यः
76 शुण्डिकादिभ्योऽण्
77 विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् (78)
78 ऋतष्ठञ् (79)
79 पितुर्यच्च
80 गोत्रादङ्कवत्
81 हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः (82)
82 मयट् च
83 प्रभवति (84)
84 विदूराञ् ञ्यः
85 तद् गच्छति पथिदूतयोः (88)
86 अभिनिष्क्रामति द्वारम्
87 अधिकृत्य कृते ग्रन्थे (88)
88 शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः
89 सोऽस्य निवासः (100)
90 अभिजनश्च (94)
91 आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते
92 शण्डिकादिभ्यो ञ्यः
93 सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

94 तूदीशलातुरवर्म्मतीकूचवाराड् ढक्छण्ढञ्यकः
95 **भक्तिः** (100)
96 अचित्ताद् अदेशकालाट् ठक्
97 महाराजाट् ठञ्
98 वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्
99 गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्
100 जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने
101 **तेन प्रोक्तम्** (111)
102 तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्
103 काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां **णिनिः** (106)
104 कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च
105 पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु
106 शौनकादिभ्यश्छन्दसि
107 कठचरकाल्लुक्
108 कलापिनोऽण्
109 छगलिनो ढिनुक्
110 पाराशर्यशिलालिभ्यां **भिक्षु-नटसूत्रयोः** (111)
111 कर्मन्दकृशाश्वादिनिः
112 **तेनैकदिक्** (118,114)
113 **तसिश्च** (114)
114 उरसो यच्च
115 उपज्ञाते
116 **कृते ग्रन्थे** (118)
117 **संज्ञायां** कुलालादिभ्यो वुञ् (118)
118 क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्
119 **तस्येदम्** (132)
120 **रथाद्** यत् (121)
121 पत्रपूर्वादञ् (122)
122 पत्राध्वर्युपरिषदश्च
123 हलसीराट् ठक्
124 द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः
125 गोत्रचरणाद् वुञ्
126 **सङ्घांकलक्षणेष्वञ्ञिञामण्** (127)
127 शकलाद्वा
128 छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः
129 न दण्डमाणवाऽन्तेवासिषु
130 रैवतिकादिभ्यश्छः
131 **तस्य विकारः** (165)
132 **अवयवे** च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः (165)
133 बिल्वादिभ्योऽण् (138)
134 कोपधाच्च
135 त्रपुजतुनोः षुक्
136 ओरञ् (138)
137 अनुदात्तादेश्च
138 पलाशादिभ्यो वा
139 शम्याष्टलञ्
140 **मयड्** वैतयोर्भाषायामभक्ष्याऽऽच्छादनयोः (148,141)
141 नित्यं वृद्धशरादिभ्यः
142 गोश्च पुरीषे
143 **पिष्टाच्च** (144)
144 संज्ञायां कन्
145 व्रीहेः पुरोडाशे
146 असंज्ञायां तिलयवाभ्याम्
147 **द्व्यचश्छन्दसि** (148)
148 नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात्
149 तालादिभ्योऽण् (150)
150 जातरूपेभ्यः परिमाणे
151 प्राणिरजतादिभ्योऽञ् (152)
152 ञितश्च तत्प्रत्ययात्
153 क्रीतवत् परिमाणात्
154 उष्ट्राद् वुञ् (155)
155 उमोर्णयोर्वा
156 एण्या ढञ्
157 गोपयसोर्यत् (158)
158 **द्रोश्च** (159)
159 माने वयः
160 **फले** लुक् (162)
161 प्लक्षादिभ्योऽण् (162)
162 **जम्ब्वा वा** (163)
163 **लुप्** च (164)
164 हरीतक्यादिभ्यश्च
165 कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

1 प्राग्वहतेष्ठक् (76)
2 तेन दीव्यति खनति जयति जितम् (27)
3 **संस्कृतम्** (4)
4 कुलत्थकोपधादण्
5 **तरति** (7)
6 गोपुच्छाट् ठञ्
7 नौद्व्यचष्ठन्
8 **चरति** (11)
9 आकर्षात् ष्ठल्
10 पर्पादिभ्यः **ष्ठन्** (11)
11 श्वगणाट् ठञ् च
12 वेतनादिभ्यो **जीवति** (14)
13 वस्नक्रयविक्रयाट् **ठन्** (14)
14 आयुधाच्छ च
15 हरत्युत्सङ्गादिभ्यः (18)
16 भस्त्रादिभ्यः **ष्ठन्** (17)
17 विभाषा विवधात्
18 अण् कुटिलिकायाः
19 **निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः** (21)
20 क्त्रेर्मन्नित्यम्
21 अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ
22 **संसृष्टे** (25)
23 चूर्णादिनिः
24 लवणाल्लुक्
25 मुद्गादण्
26 व्यञ्जनैरुपसिक्ते
27 ओजः सहोऽम्भसा **वर्त्तते** (29)
28 तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् (46)
29 परिमुखं च
30 **प्रयच्छति गर्ह्यम्** (31)
31 कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

32 उञ्छति
33 रक्षति
34 शब्ददर्दुरं करोति
35 पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति
36 परिपन्थं च तिष्ठति
37 माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति (38)
38 आक्रन्दाट् ठञ्च
39 पदोत्तरपदं गृह्णाति (40)
40 प्रतिकण्ठार्थललामं च
41 धर्मं चरति
42 प्रतिपथमेति ठंश्च
43 समवायान् समवैति (45)
44 परिषदो ण्यः (45)
45 सेनाया वा
46 संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति
47 तस्य धर्म्यम् (50,49)
48 अण् महिष्यादिभ्यः
49 ऋतोऽञ्
50 अवक्रयः
51 तदस्य पण्यम् (65,54)
52 लवणाट् ठञ्
53 किशरादिभ्यः ष्ठन् (54)
54 शलालुनोऽन्यतरस्याम्
55 शिल्पम्
56 मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम्
57 प्रहरणम् (59)
58 परश्वधाट् ठञ् च
59 शक्तियष्ट्योरीकक्
60 अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः
61 शीलम् (62)
62 छत्रादिभ्यो णः
63 कर्माध्ययने वृत्तम् (64)
64 बह्वच् पूर्वपदाट् ठच्
65 हितं भक्षाः
66 तदस्मै दीयते नियुक्तम् (68)
67 श्राणामांसौदनाट् ठिन्
68 भक्ताद्अण्यतरस्याम्
69 तत्र नियुक्तः (74,70)
70 अगारान्ताट् ठन्
71 अध्यायिन्यदेशकालात्
72 कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति
73 निकटे वसति (74)
74 आवसथात् ष्ठल्
75 प्राग्घिताद्यत् (5.1.5)
76 तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम् (86,82)
77 धुरो यड्ढकौ
78 खः सर्वधुरात् (79)
79 एकधुराल्लुक् च
80 शकटादण्
81 हलसीराट् ठक्
82 संज्ञायां जन्याः
83 विध्यत्यधनुषा
84 धनगणं लब्धा (85)
85 अन्नाण्णः
86 वशं गतः
87 पदमस्मिन् दृश्यम्
88 मूलमस्यावर्हि
89 संज्ञायां धेनुष्या
90 गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः
91 नौवयोधर्मविषमूलमूलसीता-तुलाभ्यस्तार्यतुल्य प्राप्यवद्ध्या-नाम्यसमसमितसंमितेषु
92 धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते
93 छन्दसो निर्मिते (94)
94 उरसोऽण् च
95 हृदयस्य प्रियः (96)
96 बन्धने चर्षौ
97 मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु
98 तत्र साधुः (119,106)
99 प्रतिजनादिभ्यः खञ्
100 भक्ताण् णः
101 परिषदो ण्यः
102 कथादिभ्यष्ठक्
103 गुडादिभ्यष्ठञ्
104 पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्
105 सभाया यः (106)
106 ढश्छन्दसि
107 समानतीर्थे वासी
108 समानोदरे शयित ओ चोदात्तः (109)
109 सोदराद्यः
110 भवे छन्दसि (118,144)
111 पाथोनदीभ्यां ड्यण्
112 वेशन्तहिमवद्भ्यामण्
113 स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ
114 सगर्भसयूथसनुताद्यन्
115 तुग्राद् घन्
116 अग्राद् यत् (117)
117 घच्छौ च
118 समुद्राभ्राद् घः
119 बर्हिषिदत्तम्
120 दूतस्य भागकर्मणी
121 रक्षोयातूनां हननी
122 रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये
123 असुरस्य स्वम् (124)
124 मायायामण्
125 तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्ट-कासु लुक् च मतोः (126)
126 अश्विमानण्
127 वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप्
128 मत्वर्थे मासतन्वोः (132)
129 मधोर्ञ च
130 ओजसोऽहनि यत्खौ
131 वेशोयशआदेर्भगाद्यल् (132)
132 ख च
133 पूर्वैः कृतमिनयौ च
134 अद्भिः संस्कृतम्
135 सहस्रेण सम्मितौ घः (136)
136 मतौ च
137 सोममर्हति यः (138)
138 मये च (140)
139 मधोः
140 वसोः समूहे च
141 नक्षत्राद् घः
142 सर्वदेवात् तातिल् (144)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

143 शिवशमरिष्टस्य करे (144)
144 भावे च

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य

प्रथमः पादः

1 प्राक् क्रीताच्छः (35)
2 उगवादिभ्यो यत् (4)
3 कम्बलाच्च संज्ञायाम्
4 विभाषा हविरपूपादिभ्यः
5 तस्मै हितम् (11)
6 शरीरावयवाद्यत् (7)
7 खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च
8 अजाविभ्यां थ्यन्
9 आत्मन्विश्वजनभोगोत्तर पदात् खः
10 सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ
11 माणवचरकाभ्यां खञ्
12 तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ (15)
13 छदिरुपधिबलेर्ढञ्
14 ऋषभोपानहोर्व्यः
15 चर्मणोऽञ्
16 तदस्य तदस्मिन् स्यादिति (17)
17 परिखाया ढञ्
18 प्राग्वतेष्ठञ् (114)
19 आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट् ठक् (64)
20 असमासे निष्कादिभ्यः
21 शताच्च ठन्यतावशते
22 सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन् (23)
23 वतोरिड् वा
24 विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम्
25 कंसाट् टिठन्
26 शूर्पादञन्यतरस्याम्
27 शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्
28 अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् (35,31)
29 विभाषाकार्षापणसहस्राभ्याम् (31)
30 द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् (31)
31 बिस्ताच्च
32 विंशतिकात् खः
33 खार्या ईकन्
34 पणपादमाषशताद् यत् (35)
35 शाणाद्वा (35)
36 तेन क्रीतम्
37 तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ (40)
38 गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् (39)
39 पुत्राच्छ च
40 सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ (42)
41 तस्येश्वरः
42 तत्र विदित इति च (43)
43 लोकसर्वलोकाट्ठञ्
44 तस्य वापः (45)
45 पात्रात् ष्ठन्
46 तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते (48)
47 पूरणार्द्धाट् ठन् (48)
48 भागाद्यच्च
49 तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः (54,50)
50 वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ
51 सम्भवत्यवहरति पचति (54)
52 आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् (53)
53 द्विगोः ष्ठंश्च
54 कुलिजाल्लुक् खौ च
55 सोऽस्यांशवस्नभृतयः
56 तदस्य परिमाणम् (61)
57 सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु
58 पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्
59 पञ्चद्दशतौ वर्गे वा (60)
60 सप्तनोऽञ् छन्दसि
61 त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण्
62 तदर्हति (75,70)
63 छेदादिभ्यो नित्यम् (64)
64 शीर्षच्छेदाद् यच्च (69)
65 दण्डादिभ्यः
66 छन्दसि च
67 पात्राद् घंश्च
68 कडङ्करदक्षिणाच्छ च
69 स्थालीबिलात्
70 यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ
71 पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति
72 संशयमापन्नः
73 योजनं गच्छति (76)
74 पथः ष्कन् (75)
75 पन्थो ण नित्यम्
76 उत्तरपथेनाहृतं च
77 कालात् (96)
78 तेन निर्वृत्तम्
79 तमधीष्टो भृतो भूतो भावी
80 मासाद्वयसि यत्खञौ (88,82)
81 द्विगोर्यप् (82)
82 षण्मासाण्ण्यच्च (83)
83 अवयसि ठंश्च
84 समायाः खः (85,87)
85 द्विगोर्वा (88,87)
86 राज्यहःसंवत्सराच्च
87 वर्षाल्लुक् च (88)
88 चित्तवति नित्यम्
89 षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते
90 वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि (91)
91 सम्परिपूर्वात् ख च
92 तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्
93 तदस्य ब्रह्मचर्यम्
94 तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः
95 तत्र च दीयते कार्यं भववत् (96,97)
96 व्युष्टादिभ्योऽण्
97 तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ
98 सम्पादिनि (99)
99 कर्मवेषाद्यत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

100 तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः (102)
101 योगाद्यच्च
102 कर्मण उकञ्
103 समयस्तदस्य प्राप्तम् (113,106)
104 ऋतोरण् (105)
105 छन्दसि घस्
106 कालाद्यत् (107)
107 प्रकृष्टे ठञ्
108 प्रयोजनम् (113)
109 विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः
110 अनुप्रवचनादिभ्यश्छः (111)
111 समापनात् सपूर्वपदात्
112 ऐकागारिकट् चौरे
113 आकालिकडाद्यन्तवचने
114 तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः (117)
115 तत्र तस्येव
116 तदर्हम्
117 उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे
118 तस्य भावस्त्वतलौ (135)
119 आ च त्वात् (135)
120 न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसंगतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः
121 पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा (122)
122 वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च (123)
123 गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (135)
124 स्तेनाद्यन्नलोपश्च
125 सख्युर्यः
126 कपिज्ञात्योर्ढक्
127 पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्
128 प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्
129 हायनान्तयुवादिभ्योऽण् (130)
130 इगन्ताच्च लघुपूर्वात्
131 योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ् (134)
132 द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च
133 गोत्रचरणाच्छ्लाघात्या कारतदवेतेषु
134 होत्राभ्यश्छः
135 ब्रह्मणस्त्वः

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् (4)
2 व्रीहिशाल्योर्ढक्
3 यवयवकषष्टिकाद् यत् (4)
4 विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः
5 सर्वचर्मणः कृतः खखञौ
6 यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः (15)
7 तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति (27)
8 आप्रपदं प्राप्नोति
9 अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु
10 परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति
11 अवारपारात्यन्तानुकामं गामी
12 समां समां विजायते (13)
13 अद्यश्वीनाऽवष्टब्धे
14 आगवीनः
15 अनुग्वलंगामी (17)
16 अध्वनो यत्खौ (17)
17 अभ्यमित्राच्छ च
18 गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे (23)
19 अश्वस्यैकाहगमः
20 शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः
21 व्रातेन जीवति
22 साप्तपदीनं सख्यम्
23 हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्
24 तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ (25)
25 पक्षात्तिः
26 तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ
27 विनञ्भ्यां नानाञौ न सह
28 वेः शालच्छङ्कटचौ (29)
29 सम्प्रोदश्च कटच् (30)
30 अवात् कुटारच्च (31)
31 नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः (33,34)
32 नेर्बिडज्बिरीसचौ (33)
33 इनच्पिटच्चिकचि च
34 उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढगोः
35 कर्मणि घटोऽठच्
36 तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् (38)
37 प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः (38)
38 पुरुषहस्तिभ्यामण् च
39 यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् (41)
40 किमिदम्भ्यां वो घः (41)
41 किमः संख्यापरिमाणे डति च
42 संख्याया अवयवे तयप्
43 द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा (44)
44 उभादुदात्तो नित्यम्
45 तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः (46)
46 शदन्तविंशतेश्च
47 संख्यायाः गुणस्य निमाने मयट् (58)
48 तस्य पूरणे डट् (58,53)
49 नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् (50)
50 थट् च छन्दसि
51 षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्
52 बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक्
53 वतोरिथुक्
54 द्वेस्तीयः (55)
55 त्रेः सम्प्रसारणञ्च
56 विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् (58)
57 नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च
58 षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः
59 मतौ छः सूक्तसाम्नोः (62)
60 अध्यायानुवाकयोर्लुक् (65)
61 विमुक्तादिभ्योऽण्
62 गोषदादिभ्यो वुन् (63)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

63 तत्र कुशलः पथः (67,64)
64 आकर्षादिभ्यः कन् (82)
65 धन हिरण्यात् कामे
66 स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते (67)
67 उदराट् ठगाद्यूने
68 शस्येन परिजातः
69 अंशं हारी
70 तन्त्रादचिरापहृते
71 ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्
72 शीतोष्णाभ्यां कारिणि
73 अधिकम्
74 अनुकाभिकाभीकः कमिता
75 पार्श्वेनान्विच्छति (76)
76 अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ
77 तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा
78 स एषां ग्रामणीः
79 शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे
80 उत्क उन्मनाः
81 कालप्रयोजनाद्रोगे
82 तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम् (83)
83 कुल्माषादञ्
84 श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते
85 श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ (88)
86 पूर्वादिनिः (87,91)
87 सपूर्वाच्च
88 इष्टादिभ्यश्च
89 छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि
90 अनुपद्यन्वेष्टा
91 साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्
92 क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः
93 इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा
94 तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (140)
95 रसादिभ्यश्च
96 प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् (99)
97 सिध्मादिभ्यश्च
98 वत्सांसाभ्यां कामबले
99 फेनादिलच्च
100 लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः
101 प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः
102 तपःसहस्राभ्यां विनीनी (103)
103 अण् च (105)
104 सिकताशर्कराभ्यां च (105)
105 देशे लुबिलचौ च
106 दन्त उन्नत उरच्
107 ऊषसुषिमुष्कमधो रः
108 घुद्रुभ्यां मः
109 केशाद्वोऽन्यतरस्याम् (110)
110 गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्
111 काण्डाण्डादीरन्नीरचौ
112 रजः कृष्यासुतिपरिषदो वलच् (113)
113 दन्तशिखात् संज्ञायाम् (114)
114 ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः
115 अत इनिठनौ (117)
116 व्रीह्यादिभ्यश्च
117 तुन्दादिभ्य इलच्च
118 एकगोपूर्वाट् ठञ् नित्यम् (119)
119 शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्
120 रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्
121 अस्मायामेधास्रजो विनिः (122)
122 बहुलं छन्दसि
123 ऊर्णाया युस्
124 वाचो ग्मिनिः (125)
125 आलजाटचौ बहुभाषिणि
126 स्वामिन्नैश्वर्ये
127 अर्श आदिभ्योऽच्
128 द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः (137)
129 वातातीसाराभ्यां कुक् च
130 वयसि पूरणात्
131 सुखादिभ्यश्च
132 धर्मशीलवर्णान्ताच्च
133 हस्ताज्जातौ
134 वर्णाद् ब्रह्मचारिणि
135 पुष्करादिभ्यो देशे
136 बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्
137 संज्ञायां मन्माभ्याम्
138 कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः
139 तुन्दिवलिवटेर्भः
140 अहंशुभमोर्युस्

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 प्राग्दिशो विभक्तिः (26)
2 किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः (27)
3 इदम इश् (4)
4 एततौ रथोः
5 एतदोऽन्
6 सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि
7 पञ्चम्यास्तसिल् (9)
8 तसेश्च
9 पर्यभिभ्यां च
10 सप्तम्यास्त्रल् (22)
11 इदमो हः
12 किमोऽत् (13)
13 वा ह च च्छन्दसि
14 इतराभ्योऽपि दृश्यते
15 सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा (22)
16 इदमो र्हिल् (18)
17 अधुना.
18 दानीं च (19)
19 तदो दा च
20 तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि
21 अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्
22 सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः
23 प्रकारवचने थाल् (26)
24 इदमस्थमुः (25)
25 किमश्च (26)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

26 था हेतौ च च्छन्दसि
27 दिक्शब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः (41)
28 दक्षिणोत्ताराभ्यामतसुच् (29)
29 विभाषा परावराभ्याम्
30 अञ्चेर्लुक्
31 उपर्युपरिष्टात्
32 पश्चात्
33 पश्च पश्चा च च्छन्दसि
34 उत्तराधरदक्षिणादातिः (35)
35 एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः (39)
36 दक्षिणादाच् (37,38)
37 आहि च दूरे (38)
38 उत्तराच्च
39 पूर्वाधरावराणामसिपुर धवश्चैषाम् (40)
40 अस्तात् च (41)
41 विभाषाऽवरस्य
42 संख्याया विधार्थे धा (43,46)
43 अधिकरणविचाले च
44 एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् (46)
45 द्वित्र्योश्च धमुञ् (46)
46 एधाच्च
47 याप्ये पाशप्
48 पूरणाद् भागे तीयादन् (49,51)
49 प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि (50)
50 षष्ठाऽष्टमाभ्यां ञ च (51)
51 मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च (52)
52 एकादाकिनिच्चाऽसहाये
53 भूतपूर्वे चरट् (54)
54 षष्ठ्या रूप्य च
55 अतिशायने तमबिष्ठनौ (57,56)
56 तिङश्च (71)
57 द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ
58 अजादी गुणवचनादेव (65)
59 तुश्छन्दसि
60 प्रशस्यस्य श्रः (61)
61 ज्य च (62)
62 वृद्धस्य च
63 अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ
64 युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्
65 विन्मतोर्लुक्
66 प्रशंसायां रूपप्
67 ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः (68)
68 विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु (69)
69 प्रकारवचने जातीयर्
70 प्रागिवात्कः (96)
71 अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः (72)
72 कस्य च दः
73 अज्ञाते
74 कुत्सिते (75)
75 संज्ञायां कन्
76 अनुकम्पायाम् (82)
77 नीतौ च तद्युक्तात् (81,80)
78 बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा (80,82,80)
79 घनिलचौ च (80)
80 प्राचामुपादेरडज् वुचौ च
81 जातिनाम्नः कन् (82)
82 अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च (84)
83 ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः (84)
84 शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्
85 अल्पे
86 ह्रस्वे (87)
87 संज्ञायां कन्
88 कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः
89 कुत्वा डुपच्
90 कासूगोणीभ्यां ष्टरच् (91)
91 वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे
92 किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् (93,94)
93 वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् (94)
94 एकाच्च प्राचाम्
95 अवक्षेपणे कन् (100)
96 इवे प्रतिकृतौ (111,100)
97 संज्ञायां च (100)
98 लुम्मनुष्ये (100)
99 जीविकार्थे चाऽपण्ये
100 देवपथादिभ्यश्च
101 वस्तेर्ढञ्
102 शिलाया ढः
103 शाखादिभ्यो यत्
104 द्रव्यं च भव्ये
105 कुशाग्राच्छः (106)
106 समासाच्च तद्विषयात्
107 प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि
108 शर्करादिभ्योऽण्
109 अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् (109)
110 एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम्
111 कर्कलोहितादीकक्
112 पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् (113)
113 व्रातच्फञोरस्त्रियाम्
114 आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् (117)
115 वृकाट् टेण्यण्
116 दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः
117 पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ
118 अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रुमदणो यञ्
119 ञ्यादयस्तद्राजाः

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

1 पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च (2)
2 दण्डव्यवसर्गयोश्च
3 स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् (6)
4 अनत्यन्तगतौ क्तात् (5)
5 न सामिवचने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6 बृहत्या आच्छादने
7 अषडक्षाशितङ्ग्वलंकर्मालंपुरुषाऽध्युत्तरपदात् **खः** (8)
8 विभाषाऽञ्जेरदिक्स्त्रियाम्
9 जात्यन्ताच्छ **बन्धुनि** (10)
10 स्थानान्ताद् विभाषा सस्थानेनेति चेत्
11 **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** (12)
12 अमु च च्छन्दसि
13 अनुगादिनष्ठक्
14 णचः स्त्रियामञ्
15 **अणिनुणः** (16)
16 विंसारिणो मत्स्ये
17 **संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्** (18,20)
18 द्वित्रिचतुर्भ्यः **सुच्** (19)
19 एकस्य सकृच्च
20 विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले
21 **तत् प्रकृतवचने मयट्** (25)
22 समूहवच्च बहुषु
23 अनन्तावसथेतिहभेषजाञ् ञ्यः
24 देवतान्तात्तादर्थ्ये **यत्** (26,25)
25 पादार्घाभ्यां च
26 अतिथेर्ञ्यः
27 देवात् तल्
28 अवेः कः
29 यावादिभ्यः **कन्** (33)
30 **लोहितान्मणौ** (32)
31 **वर्णे चानित्ये** (33)
32 **रक्ते** (33)
33 कालाच्च
34 विनयादिभ्यष्ठक् (35)
35 वाचो **व्याहृतार्थायाम्** (36)
36 तद्युक्तात् कर्मणोऽण् (38)
37 ओषधेरजातौ
38 प्रज्ञादिभ्यश्च
39 मृदस्तिकन् (40)
40 सस्नौ **प्रशंसायाम्** (41)
41 वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि
42 बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् (43,49)
43 संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्
44 प्रतियोगे **पञ्चम्यास्तसिः** (45,49)
45 अपादाने चाहीयरुहोः
46 **अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्त्तरि तृतीयायाः** (47)
47 हीयमानपापयोगाच्च
48 **षष्ठ्या व्याश्रये** (49)
49 रोगाच्चाऽपनयने
50 **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः** (57,52,51)
51 अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च
52 **विभाषा साति कात्स्न्र्ये** (53,55)
53 अभिविधौ **सम्पदा** च (55)
54 **तदधीनवचने** (55)
55 देये त्रा च (56)
56 देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्तेभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्
57 अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ **डाच्** (67)
58 **कृञो** द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् **कृषौ** (67,59)
59 संख्यायाश्च गुणान्तायाः
60 समयाच्च यापनायाम्
61 सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने
62 निष्कुलान्निष्कोषणे
63 सुखप्रियादानुलोम्ये
64 दुःखात् प्रातिलोम्ये
65 शूलात् पाके
66 सत्यादशपथे
67 मद्रात् परिवापणे
68 **समासान्ताः** (160)
69 न पूजनात् (72)
70 किमः क्षेपे
71 **नञस्तत्पुरुषात्** (72)
72 पथो विभाषा
73 बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्
74 ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे
75 **अच्** प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः (87)
76 अक्ष्णोऽदर्शनात्
77 अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनड्वहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः
78 ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः
79 अवसमन्धेभ्यस्तमसः
80 श्वसो वसीयः श्रेयसः
81 अन्ववतप्ताद्रहसः
82 प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्
83 अनुगवमायामे
84 द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः
85 उपसर्गादध्वनः
86 **तत्पुरुषस्याऽङ्गुलेः संख्याव्ययादेः** (105,88)
87 अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः
88 **अह्नोऽह्न एतेभ्यः** (90)
89 न संख्यादेः समाहारे
90 उत्तमैकाभ्यां च
91 राजाऽहःसखिभ्यष्टच् (112)
92 गोरतद्धितलुकि
93 अग्राख्यायामुरसः
94 अनोश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः
95 ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः
96 अतेः **शुनः** (97)
97 **उपमानादप्राणिषु** (98)
98 उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः
99 **नावो द्विगोः** (100,101)
100 **अर्द्धाच्चं** (101)
101 खार्याः प्राचाम्
102 द्वित्रिभ्यामञ्जलेः
103 अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

104 ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् (105)
105 कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्
106 द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे
107 अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः (112)
108 अनश्च (109)
109 नपुँसकादन्यतरस्याम् (111)
110 नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः
111 झयः
112 गिरेश्च सेनकस्य
113 बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् (160,114)
114 अङ्गुलेर्दारुणि
115 द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः
116 अप् पूरणीप्रमाण्योः (117)
117 अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः
118 अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चाऽस्थूलात् (121,119)
119 उपसर्गाच्च
120 सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्टपदाः
121 नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् (122)
122 नित्यमसिच् प्रजामेधयोः (123)
123 बहुप्रजाश्छन्दसि
124 धर्मादनिच् केवलात् (126)
125 जम्भा सुहरितृणसोमेभ्यः
126 दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे
127 इच् कर्मव्यतिहारे (128)
128 द्विदण्ड्यादिभ्यश्च
129 प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः (130)
130 ऊर्ध्वाद् विभाषा
131 ऊधसोऽनङ् (133)
132 धनुषश्च (133)
133 वा संज्ञायाम्
134 जायाया निङ्
135 गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः (136)
136 अल्पाख्यायाम्
137 उपमानाच्च (138)
138 पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः
139 कुम्भपदीषु च
140 संख्यासुपूर्वस्य (141)
141 वयसि दन्तस्य दतृ (145)
142 छन्दसि च
143 स्त्रियां संज्ञायाम्
144 विभाषा श्यावारोकाभ्याम् (145)
145 अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च
146 ककुदस्याऽवस्थायां लोपः (150)
147 त्रिककुत् पर्वते
148 उद्विभ्यां काकुदस्य (149)
149 पूर्णाद् विभाषा
150 सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः
151 उरःप्रभृतिभ्यः कप् (160)
152 इनः स्त्रियाम्
153 नद्यृतश्च
154 शेषाद् विभाषा
155 न संज्ञायाम् (160)
156 ईयसश्च
157 वन्दिते भ्रातुः
158 ऋतश्छन्दसि नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे
160 निष्प्रवाणिश्च

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अथ षष्ठाऽध्यायस्य

प्रथमः पादः

1 एकाचो द्वे प्रथमस्य (11)
2 अजादेर्द्वितीयस्य (11)
3 न न्द्राः संयोगादयः
4 पूर्वोऽभ्यासः
5 उभे अभ्यस्तम् (6)
6 जक्षित्यादयः षट्
7 तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य
8 लिटि धातोरनभ्यासस्य (11)
9 सन्यङोः
10 श्लौ
11 चङि
12 दाश्वान् साह्वान् मीढ्वाश्च
13 ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे (14,31)
14 बन्धुनि बहुव्रीहौ
15 वचिस्वपियजादीनां किति (17,16)
16 ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च (17)
17 लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्
18 स्वापेश्चङि
19 स्वपिस्यमिव्येञां यङि (21)
20 न वशः
21 चायः की
22 स्फायः स्फी निष्ठायाम् (28)
23 स्त्यः प्रपूर्वस्य
24 द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः (26)
25 प्रतेश्च
26 विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य (28)
27 शृतं पाके
28 प्यायः पी (29)
29 लिड्यङोश्च (30)
30 विभाषा श्वेः (31)
31 णौ च संश्चङोः (32)
32 ह्वः सम्प्रसारणमभ्यस्तस्य च (33,43)
33 बहुलं छन्दसि (34,35)
34 चायः की
35 अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेति त्याजश्राताः श्रितमाशीराशीर्त्ताः
36 न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् (43)
37 लिटि वयो यः (39)
38 वश्चाऽस्याऽन्यतरस्यां किति
39 वेञः (40)
40 ल्यपि च (43)
41 ज्यश्च
42 व्यश्च (43)
43 विभाषा परेः
44 आदेच उपदेशेऽशिति (56,64)
45 न व्यो लिटि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

46 स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि
47 क्रीङ्जीनां **णौ** (48)
48 सिध्यतेरपारलौकिके
49 मीनातिमिनोतिदीङां **ल्यपि च** (50)
50 **विभाषा** लीयतेः (55)
51 खिदेश्छन्दसि
52 अपगुरो णमुलि
53 चिस्फुरोर्णौ (56)
54 प्रजने वीयतेः
55 बिभेतेर्हेतुभये (56)
56 नित्यं स्मयतेः
57 सृजिदृशोर्झल्यमकिति (58)
58 अनुदात्तस्य चर्दुपधस्याऽन्यतरस्याम्
59 **शीर्षश्छन्दसि** (60)
60 ये च तद्धिते
61 पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्य-कञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु
62 **धात्वादेः** षः सः (63)
63 णो नः
64 **लोपो** व्योर्वलि (68)
65 वेरपृक्तस्य
66 हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुति स्यपृक्तं **हल्** (67)
67 एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः
68 शेश्छन्दसि बहुलम्
69 **ह्रस्वस्य** पिति कृति **तुक्** (71,74)
70 **संहितायाम्** (151)
71 **छे** च (74)
72 आङ्माङोश्च
73 दीर्घात् पदान्ताद् वा
74 इको यणचि (121)
75 **एचोऽयवायावः** (80)
76 **वान्तो यि प्रत्यये** (77,80)
77 धातोस्तन्निमित्तस्यैव (80)
78 क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे
79 क्रय्यस्तदर्थे
80 भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि
81 **एकः पूर्वपरयोः** (107)
82 अन्तादिवच्च
83 षत्वतुकोरसिद्धः
84 **आद् गुणः** (93)
85 **वृद्धिरेचि** (89,86)
86 एत्येधत्यूठ्सु
87 आटश्च
88 **उपसर्गादृति धातौ** (91,89,91)
89 वा सुप्यापिशलेः
90 औतोऽम्शसोः
91 एङि पररूपम् (97)
92 ओमाङोश्च
93 उस्यपदान्तात् (94)
94 अतो गुणे
95 **अव्यक्तानुकरणस्याऽत इतौ** (97,96)
96 नाऽऽम्रेडितस्याऽन्त्यस्य तु वा
97 **अकः** सवर्णे **दीर्घः** (103,102)
98 प्रथमयोः **पूर्वसवर्णः** (102)
99 तस्माच्छसो नः पुंसि
100 **नाऽऽदिचि** (101,102)
101 **दीर्घाज्जसि च** (102)
102 वा च्छन्दसि
103 अमि **पूर्वः** (106)
104 सम्प्रसारणाच्च
105 **एङः** पदान्तादति (106,109)
106 **ङसिङसोश्च** (108)
107 ऋत उत् (110)
108 ख्यत्यात् परस्य
109 **अतो रोरप्लुतादप्लुते** (110)
110 हशि च
111 **प्रकृत्याऽन्तःपादम्** (126,112)
112 अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रताय मवन्त्ववस्युषु च
113 यजुष्युरः (117)
114 आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे अम्बे अम्बाल अम्बिके पूर्वे
115 अङ्ग इत्यादौ च
116 **अनुदात्ते** च कुधपरे (117)
117 अवपथासि च
118 **सर्वत्र विभाषा गोः** (119,120)
119 **अवङ्** स्फोटायनस्य (120)
120 इन्द्रे च
121 प्लुतप्रगृह्या **अचि नित्यम्** (126)
122 आङोऽनुनासिकश्छन्दसि बहुलम्
123 इकोऽसवर्णे **शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** (124)
124 ऋत्यकः
125 **अप्लुतवदुपस्थिते** (126)
126 ई३ चाक्रवर्मणस्य
127 दिव उत्
128 एतत्तदोः **सुलोपोऽकोरनञ्** समासे हलि (130,129)
129 स्यश्छन्दसि बहुलम्
130 सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्
131 **सुट् कात् पूर्वः** (151)
132 **सम्परिभ्यां करोतौ** भूषणे (133,134)
133 समवाये च
134 उपात्प्रतियत्नवैकृत वाक्याध्याहारेषु (136)
135 **किरतौ** लवने (137)
136 हिंसायां प्रतेश्च
137 अपाच्चतुष्पाच्छ कुनिष्वालेखने
138 कुस्तुम्बुरूणि जातिः
139 अपरस्पराः क्रियासातत्ये
140 गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु
141 आस्पदं प्रतिष्ठायाम्
142 आश्चर्यमनित्ये
143 वर्चस्केऽवस्करः
144 अपस्करो रथाङ्गम्
145 विष्किरः शकुनौ वा
146 ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे
147 प्रतिष्कशश्च कशेः
148 प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी
149 मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः
150 कास्तीराजस्तुन्दे नगरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151 पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्
152 अनुदात्तं पदमेकवर्जम्
153 कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः (179,214)
154 उञ्छादीनां च
155 अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः
156 धातोः
157 चितः (158)
158 तद्धितस्य (159)
159 कितः
160 तिसृभ्यो जसः
161 चतुरश्शसि
162 सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः (163,178)
163 अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे (171)
164 अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् (169)
165 ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः
166 अष्टनो दीर्घात्
167 शतुरनुमो नद्यजादी (169)
168 उदात्तयणो हल्पूर्वात् (169)
169 नोङ्धात्वोः
170 ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् (171)
171 नामन्यतरस्याम् (181)
172 ङ्याश्छन्दसि बहुलम्
173 षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः (175)
174 झल्युपोत्तमम् (175)
175 विभाषा भाषायाम्
176 न गोश्वन्साववर्णराडङ्कुङ्कृद्भ्यः (178)
177 दिवो झल् (178)
178 नृ चाऽन्यतरस्याम्
179 तित् स्वरितम्
180 तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमहन्विङोः (186)
181 आदिः सिचोऽन्यतरस्याम् (182)
182 स्वपादिहिंसामच्यनिटि (183)
183 अभ्यस्तानामादिः (188,185)
184 अनुदात्ते च
185 सर्वस्य सुपि
186 भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्रा जागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति (187)
187 लिति
188 आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् (190)
189 अचः कर्तृयकि
190 थलि च सेटीडन्तो वा
191 ञ्नित्यादिर्नित्यम् (210)
192 आमन्त्रितस्य च
193 पथिमथोः सर्वनामस्थाने
194 अन्तश्च तवै युगपत्
195 क्षयो निवासे
196 जयः करणम्
197 वृषादीनां च
198 संज्ञायामुपमानम् (199)
199 निष्ठा च द्व्यजनात्
200 शुष्कधृष्टौ
201 आशितः कर्ता
202 रिक्ते विभाषा (203)
203 जुष्टार्पिते च च्छन्दसि (204)
204 नित्यं मन्त्रे
205 युष्मदस्मदोर्ङसि (206)
206 ङयि च
207 यतोऽनावः
208 ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः
209 विभाषा वेण्विन्धानयोः (210)
210 त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम्
211 उपोत्तमं रिति (212)
212 चङ्यन्यतरस्याम्
213 मतोः पूर्वमात् संज्ञायां स्त्रियाम् (215)
214 अन्तोऽवत्याः (217)
215 ईवत्याः
216 चौ
217 समासस्य

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् (63,109)
2 तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः (24)
3 वर्णो वर्णेष्वनेते
4 गाधलवणयोः प्रमाणे
5 दायाद्यं दायादे
6 प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः
7 पदेऽपदेशे
8 निवाते वातत्राणे
9 शारदेऽनार्तवे
10 अध्वर्युकषाययोर्जातौ
11 सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये
12 द्विगौ प्रमाणे
13 गन्तव्यपण्यं वाणिजे
14 मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुँसके
15 सुखप्रिययोर्हिते (16)
16 प्रीतौ च
17 स्वं स्वामिनि
18 पत्यावैश्वर्ये (20)
19 न भूवाक्चिद्दिधिषु
20 वा भुवनम्
21 आशङ्काबाधनेदीयस्सु सम्भावने
22 पूर्वे भूतपूर्वे
23 सविधसनीडसमर्याद सवेशसदेशेषु सामीप्ये
24 विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु
25 श्रज्यावमकन्पापवत्सुभावे कर्मधारये (28)
26 कुमारश्च (28)
27 आदिः प्रत्येनसि (28)
28 पूगेष्वन्यतरस्याम्
29 इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ (30,31)
30 बह्वन्यतरस्याम् (31)
31 दिष्टिवितस्त्योश्च
32 सप्तमी सिद्धशुष्कपक्व बन्धेष्वकालात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

33 परिप्रत्युपापा वर्ज्यमानाहो रात्रावयवेषु
34 राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धक वृष्णिषु (37)
35 सङ्ख्या
36 आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासी
37 कार्त्तकौजपादयश्च
38 महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबाल भारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु (39)
39 क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे
40 उष्ट्रः सादिवाम्योः
41 गौः सादसादिसारथिषु
42 कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्य श्लीलदृढरूपापारेवडवातैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च
43 चतुर्थी तदर्थे (45)
44 अर्थे
45 क्ते च (49)
46 कर्मधारयेऽनिष्ठा
47 अहीने द्वितीया
48 तृतीया कर्मणि (49)
49 गतिरनन्तरः (52,51)
50 तादौ च निति कृत्यतौ
51 तवै चाऽन्तश्च युगपत्
52 अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये (53)
53 न्यधी च
54 ईषदन्यतरस्याम् (63)
55 हिरण्यपरिमाणं धने
56 प्रथमोऽचिरोपसम्पत्तौ
57 कतरकतमौ कर्मधारये (59)
58 आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः (59)
59 राजा च (60)
60 षष्ठी प्रत्येनसि
61 क्ते नित्यार्थे
62 ग्रामः शिल्पिनि (63)
63 राजा च प्रशंसायाम्
64 आदिरुदात्तः (91)
65 सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे
66 युक्ते च
67 विभाषाऽध्यक्षे (68)
68 पापं च शिल्पिनि
69 गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे
70 अङ्गानि मैरेये
71 भक्ताख्यास्तदर्थेषु
72 गोविडालसिंहसैन्धवेषूपमाने
73 अके जीविकार्थे (74)
74 प्राचां क्रीडायाम्
75 अणि नियुक्ते (77)
76 शिल्पिनि चाऽकृञः (77)
77 संज्ञायां च
78 गोतन्तियवं पाले
79 णिनि (80)
80 उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव
81 युक्तारोह्यादयश्च
82 दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे (83)
83 अन्त्यात् पूर्वं बह्वचः
84 ग्रामेऽनिवसन्तः
85 घोषादिषु च
86 छात्र्यादयः शालायाम्
87 प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् (88)
88 मालादीनां च
89 अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम्
90 अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच् (91)
91 न भूताधिकसंजीवमद्राश्म कज्जलम्
92 अन्तः (110)
93 सर्वं गुणकात्स्न्यें
94 संज्ञायां गिरिनिकाययोः
95 कुमार्यां वयसि
96 उदकेऽकेवले
97 द्विगौ क्रतौ
98 सभायां नपुँसके
99 पुरे प्राचाम् (101)
100 अरिष्टगौडपूर्वे च
101 न हास्तिनफलकमार्देयाः
102 कुसूलकूपकुम्भशालं बिले
103 दिक्शब्दा ग्रामजनपदा ख्यानचानराटेषु (105)
104 आचार्योपसर्जनश्चाऽन्ते वासिनि
105 उत्तरपद ददद
106 बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (120,108)
107 उदराश्वेषुषु (108)
108 क्षेपे
109 नदी बन्धुनि
110 निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम्
111 उत्तरपदादिः (199,142)
112 कर्णो वर्णलक्षणात् (113)
113 संज्ञौपम्ययोश्च (115)
114 कण्ठपृष्ठग्रीवाजंघं च
115 शृङ्गमवस्थायां च
116 नञो जरमरमित्रमृताः
117 सोर्मनसी अलोमोषसा (120)
118 क्त्वादयश्च
119 आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि (120)
120 वीरवीर्यौ च
121 कूलतीरतूलमूलशालाक्षसमम-व्ययीभावे
122 कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ
123 तत्पुरुषे शालायां नपुँसके (137,125)
124 कन्था च (125)
125 आदिश्चिहणादीनाम्
126 चेलखटकटुककाण्डं गर्हायाम्
127 चीरमुपमानम्
128 पललसूपशाकं मिश्रे
129 कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम्
130 अकर्मधारये राज्यम् (131)
131 वर्ग्यादयश्च
132 पुत्रः पुम्भ्यः (133)
133 नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः
134 चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः (135)
135 षट् च काण्डादीनि
136 कुण्डं वनम्
137 प्रकृत्या भगालम् (142)
138 शितेर्नित्याबह्वज् बहुव्रीहावभसत्
139 गतिकारकोपपदात् कृत्
140 उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् (142)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

141 **देवताद्वन्द्वे** च (142)
142 नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवी-रुद्रपूषमन्थिषु
143 **अन्तः** (199)
144 थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्
145 सूपमानात् **क्तः** (149)
146 **संज्ञायामनाचितादीनाम्** (148)
147 प्रवृद्धादीनां च
148 **कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि** (151)
149 इत्थम्भूतेन कृतमिति च
150 अनो भावकर्मवचनः
151 मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासन-स्थानयाजकादिक्रीताः
152 सप्तम्याः पुण्यम्
153 ऊनार्थकलहं **तृतीयायाः** (154)
154 मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ
155 **नञो गुणप्रतिषेधे** संपाद्यर्हहिताल-मर्थास्तद्धिताः (161,156)
156 ययतोश्चातदर्थे
157 **अच्कावशक्तौ** (158)
158 **आक्रोशे** च (159)
159 संज्ञायाम्
160 कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च
161 विभाषा तृन्नतीक्ष्णशुचिषु
162 **बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः**-प्रथमपूरणयोः क्रियागणने (177)
163 **संख्यायाः स्तनः** (164)
164 विभाषा छन्दसि
165 संज्ञायां मित्राजिनयोः
166 व्यवायिनोऽन्तरम्
167 **मुखं स्वाङ्गम्** (169)
168 नाव्ययदिक्छब्दगोमहत्-स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः
169 निष्ठोपमानादन्यतरस्याम्
170 **जातिकालसुखादिभ्योऽना**-च्छादनात् क्तोऽकृतमित-प्रतिपन्नाः (171)
171 वा जाते
172 **नञ्सुभ्याम्** (174)
173 **कपि** पूर्वम् (174)
174 ह्रस्वान्तेऽन्त्यात् पूर्वम्
175 **बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि** (176)
176 न गुणादयोऽवयवाः
177 **उपसर्गात्** स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु (196)
178 **वनं** समासे (179)
179 अन्तः
180 **अन्तश्च** (181)
181 न निविभ्याम्
182 परेरभितोभाविमण्डलम्
183 प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम्
184 निरुदकादीनि च
185 अभेर्मुखम् (186)
186 **अपाच्च** (187)
187 स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षि-सीरनामनाम च
188 अधेरुपरिस्थम्
189 अनोरप्रधानकनीयसी (120)
190 पुरुषश्चान्वादिष्टः
191 अतेरकृत्पदे
192 नेरनिधाने
193 प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे (196)
194 उपाद् द्वयजजिनमगौरादयः
195 सोरवक्षेपणे
196 **विभाषोत्पुच्छे** (198)
197 द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ
198 सक्थं चाक्रान्तात्
199 परादिश्छन्दसि बहुलम्

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 **अलुगुत्तरपदे** (23,138)
2 पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः
3 ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः (6)
4 मनसः संज्ञायाम् (5)
5 आज्ञायिनि च
6 **आत्मनश्च** (7)
7 वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः परस्य च
8 **हलदन्तात् सप्तम्याः** संज्ञायाम् (17,19)
9 कारनाम्नि च प्राचां हलादौ
10 मध्याद् गुरौ
11 अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे
12 बन्धे च विभाषा
13 तत्पुरुषे कृति बहुलम्
14 प्रावृट्शरत्कालदिवां जे (15)
15 **विभाषा** वर्षक्षरशरवरात् (17)
16 घकालतनेषु कालनाम्नः
17 शयवासवासिष्वकालात्
18 नेन्सिद्धबध्नातिषु च (19)
19 स्थे च भाषायाम्
20 **षष्ठ्या आक्रोशे** (23,21)
21 पुत्रेऽन्यतरस्याम्
22 **ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः** (23,24)
23 विभाषा स्वसृपत्योः
24 **आनङ् ऋतो द्वन्द्वे** (25)
25 **देवताद्वन्द्वे च** (30)
26 ईदग्नेः सोमवरुणयोः
27 इद् वृद्धौ
28 **दिवो द्यावा** (29)
29 दिवसश्च पृथिव्याम्
30 उषासोषसः
31 मातरपितरावुदीचाम्
32 पितरामातरा च च्छन्दसि
33 **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्**-समानाधिकरणे स्त्रियापूरणीप्रियादिषु (41,40,42,41)
34 तसिलादिष्वाकृत्वसुचः
35 क्यङ् मानिनोश्च
36 न कोपधायाः (42)
37 संज्ञापूरण्योश्च
38 वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्त-विकारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

39 स्वाङ्गाच्चेतः
40 जातेश्च
41 पुंवत् कर्मधारयजातीय देशीयेषु
42 घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्र-मतहतेषु ङ्योनेकाचो ह्रस्वः (44)
43 नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम् (44)
44 उगितश्च
45 आन्महतः समानाधिकरण जातीययोः (48)
46 द्व्यष्टनः संख्यायामबहु-व्रीह्यशीत्योः (48)
47 त्रेस्त्रयः (48)
48 विभाषा चत्वारिंशत् प्रभृतौ सर्वेषाम्
49 हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु (50)
50 वा शोकष्यञ्रोगेषु
51 पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु (55)
52 पद्यत्यतदर्थे (55)
53 हिमकाषिहतिषु च
54 ऋचः शे
55 वा घोषमिश्रशब्देषु
56 उदकस्योदः संज्ञायाम् (59)
57 पेषंवासवाहनधिषु च
58 एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम् (60)
59 मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभार हारवीवधगाहेषु
60 इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य (65)
61 एकतद्धिते च
62 ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् (63)
63 त्वे च
64 इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु
65 खित्यनव्ययस्य (68,66)
66 अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् (71)
67 इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च
68 वाचंयमपुरन्दरौ च
69 कारे सत्यागदस्य
70 श्येनतिलस्य पाते ञे
71 रात्रेः कृति विभाषा
72 नलोपो नञः (76)
73 तस्मान्नुडचि
74 नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचि-नकुलनखनपुंसकनक्षत्र-नक्रनाकेषु प्रकृत्या (76)
75 एकादिश्चैकस्य चादुक्
76 नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्
77 सहस्य सः संज्ञायाम् (82,88)
78 ग्रन्थान्ताधिके च
79 द्वितीये चानुपाख्ये
80 अव्ययीभावे चाकाले
81 वोपसर्जनस्य
82 प्रकृत्याऽशिषि
83 समानस्य छन्दस्यमूर्द्ध-प्रभृत्युदर्केषु (87)
84 योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूप-स्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु
85 चरणे ब्रह्मचारिणि
86 तीर्थे ये (87)
87 विभाषोदरे
88 दृग्दृशवतुषु (90)
89 इदङ्किमोरीश्की
90 आ सर्वनाम्नः (91)
91 विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये (94)
92 समः समि
93 तिरसस्तिर्यलोपे
94 सहस्य सध्रिः (95)
95 सधमादस्थयोश्छन्दसि
96 द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् (97)
97 ऊदनोर्देशे
98 अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सु-कोतिकारकरागच्छेषु (99)
99 अर्थे विभाषा
100 कोः कत्तत्पुरुषेऽचि (107,102)
101 रथवदयोश्च
102 तृणे च जातौ
103 का पथ्यक्षयोः (107)
104 ईषदर्थे
105 विभाषा पुरुषे (107)
106 कवं चोष्णे (107)
107 पथि च च्छन्दसि
108 पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्
109 संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याह्न-न्यतरस्यां ङौ
110 ह्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः 111, (6.4.18)
111 सहिवहोरोदवर्णस्य
112 साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे
113 संहितायाम् (134)
114 कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणि-भिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य
115 नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ
116 वनगिर्योः संज्ञायां कोटर-किंशुलुकादीनाम् (119)
117 वले
118 मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् (119)
119 शरादीनां च
120 इको वहेऽपीलोः
121 उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् (123)
122 इकः काशे (123)
123 दस्ति
124 अष्टनः संज्ञायाम् (125)
125 छन्दसि च
126 चितेः कपि
127 विश्वस्य वसुराटोः (129)
128 नरे संज्ञायाम्
129 मित्रे चर्षौ
130 मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ (131)
131 ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम्
132 ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रो रुष्याणाम् (135)
133 इकः सुञि
134 द्व्यचोऽतस्तिङः
135 निपातस्य च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

136 अन्येषामपि दृश्यते
137 चौ
138 सम्प्रसारणस्य (6.4.2)

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

1 अङ्गस्य (7.4.97)
2 हलः
3 नामि (7)
4 न तिसृचतसृ (5)
5 छन्दस्युभयथा (6)
6 नृ च
7 नोपधायाः (18)
8 सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ (11,14)
9 वा षपूर्वस्य निगमे
10 सान्तमहतः संयोगस्य
11 अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्
12 इन्हन्पूषार्यम्णां शौ (13)
13 सौ च (14)
14 अत्वसन्तस्य चाधातोः
15 अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति (21)
16 अज्झनगमां सनि (17)
17 तनोतेर्विभाषा (18)
18 क्रमश्च क्त्वि
19 च्छ्वोः शूडनुनासिके च (21,20)
20 ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च
21 राल्लोपः
22 असिद्धवदत्राभात् (175)
23 श्नान्नलोपः (55)
24 अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति (34)
25 दंशसञ्जस्वञ्जां शपि (26)
26 रञ्जेश्च (27)
27 घञि च भावकरणयोः (29)
28 स्यदो जवे
29 अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः
30 नाञ्जेः पूजायाम् (33)
31 त्क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः (32)
32 जान्तनशां विभाषा (33)
33 भञ्जेश्च चिणि
34 शास इदङ्हलोः (35)
35 शा हौ (36)
36 हन्तेर्जः
37 अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति (39,40)
38 वा ल्यपि
39 न क्तिचि दीर्घश्च
40 गमः क्वौ
41 विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् (45)
42 जनसनखनां सञ्झलोः (43)
43 ये विभाषा (44)
44 तनोतेर्यकि
45 सनः क्तिचि लोपश्चाऽन्यतरस्याम्
46 आर्धधातुके (69)
47 भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्
48 अतो लोपः (54)
49 यस्य हलः (50)
50 क्यस्य विभाषा
51 णेरनिटि (57)
52 निष्ठायां सेटि
53 जनिता मन्त्रे
54 शमिता यज्ञे
55 अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु (57)
56 ल्यपि लघुपूर्वात् (59)
57 विभाषाऽऽपः
58 युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि (61)
59 क्षियः (61)
60 निष्ठायामण्यदर्थे (61)
61 वाऽऽक्रोशदैन्ययोः
62 स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च
63 दीङो युडचि क्ङिति (64,68)
64 आतो लोप इटि च (69)
65 ईद् यति (66)
66 घुमास्थागापाजहातिसां हलि (69)
67 एर्लिङि (68)
68 वाऽन्यस्य संयोगादेः
69 न ल्यपि (70)
70 मयतेरिदन्यतरस्याम्
71 लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (75,72)
72 आडजादीनाम् (75)
73 छन्दस्यपि दृश्यते
74 न माङ्योगे
75 बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि (76)
76 इरयो रे
77 अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ (100,78,80)
78 अभ्यासस्याऽसवर्णे
79 स्त्रियाः (80)
80 वाऽम् शसोः
81 इणो यण् (87)
82 एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य (87)
83 ओः सुपि (84)
84 वर्षाभ्वश्च
85 न भूसुधियोः (86)
86 छन्दस्युभयथा
87 हुश्नुवोः सार्वधातुके
88 भुवो वुग् लुङ्लिटोः
89 ऊदुपधाया गोहः (91,100)
90 दोषो णौ (91,94)
91 वा चित्तविरागे
92 मितां ह्रस्वः (93)
93 चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्
94 खचि ह्रस्वः (97)
95 ह्लादो निष्ठायाम्
96 छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य (97)
97 इस्मन्त्रन्क्विषु च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

98 गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि (100,126)
99 तनिपत्योश्छन्दसि (100)
100 घसिभसोर्हलि च (101)
101 हुझल्भ्यो हेर्धिः (103)
102 श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि (103)
103 अङितश्च
104 चिणो लुक् (106)
105 अतो हेः (106)
106 उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् (118,107)
107 लोपश्चाऽस्यान्यतरस्यां म्वोः (109,108)
108 नित्यं करोतेः (109,110)
109 ये च
110 अत उत् सार्वधातुके (119)
111 श्नसोरल्लोपः (112)
112 श्नाऽभ्यस्तयोरातः (113,114)
113 ई हल्यघोः (116)
114 इद् दरिद्रस्य (116)
115 भियोऽन्यतरस्याम् (117)
116 जहातेश्च (118)
117 आ च हौ
118 लोपो यि
119 ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च (121,126)
120 अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि (126,121)
121 थलि च सेटि (126)
122 तृफलभजत्रपश्च
123 राधो हिंसायाम्
124 वा जृभ्रमुत्रसाम् (125)
125 फणां च सप्तानाम्
126 न शसददवादिगुणानाम्
127 अर्वणस्त्रसावनञः (128)
128 मघवा बहुलम्
129 भस्य (175)
130 पादः पत्
131 वसोः सम्प्रसारणम् (133)
132 वाह ऊठ्
133 श्वयुवमघोनामतद्धिते
134 अल्लोपोऽनः (145,137)
135 षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि
136 विभाषा ङिश्योः
137 न संयोगाद् वमन्तात्
138 अचः (139)
139 उद ईत्
140 आतो धातोः
141 मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः
142 ति विंशतेर्डिति (143)
143 टेः (145)
144 नस्तद्धिते (149)
145 अह्नष्टखोरेव
146 ओर्गुणः (147)
147 ढे लोपोऽकद्र्वाः (155)
148 यस्येति च (150)
149 सूर्यतिष्याऽगस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः (152,150)
150 हलस्तद्धितस्य (152)
151 आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति (152,153)
152 क्यच्व्योश्च
153 बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्
154 तुरिष्ठेमेयस्सु (163)
155 टेः
156 स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः
157 प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्ध-तृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फव-र्बहिगर्वर्षिवन्द्राघिवृन्दाः
158 बहोर्लोपो भू च बहोः (159)
159 इष्ठस्य यिट् च
160 ज्यादादीयस्सः
161 र ऋतो हलादेर्लघोः (162)
162 विभाषर्जोश्छन्दसि
163 प्रकृत्यैकाच् (170)
164 इनण्यनपत्ये (166,171)
165 गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च
166 संयोगादिश्च
167 अन् (170)
168 ये चाऽभावकर्मणोः
169 आत्माध्वानौ खे
170 न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः
171 ब्राह्मोऽजातौ
172 कार्म्मस्ताच्छील्ये
173 औक्षमनपत्ये
174 दाण्डिनायनहास्तिनायनाथ-र्वणिकजैह्माशिनेयवाशिना-यनिभ्रौणहत्यधैवत्यसार-वैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि
175 ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वी-हिरण्ययानि च्छन्दसि

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अथ सप्तमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः

1 युवोरनाकौ
2 आयनेयीनीयियः फढखच्छघां प्रत्ययादीनाम् (5)
3 झोऽन्तः (7)
4 अदभ्यस्तात् (7)
5 आत्मनेपदेष्वनतः
6 शीङो रुट् (8)
7 वेत्तेर्विभाषा
8 बहुलं छन्दसि
9 अतो भिस ऐस् (17,11)
10 बहुलं छन्दसि
11 नेदमदसोरकोः
12 टाङसिङसामिनात्स्याः
13 ङेर्यः (14)
14 सर्वनाम्नः स्मै (17)
15 ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ (16)
16 पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा
17 जसः शी (19)
18 औङ आपः (19)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19 नपुँसकाच्च (20)
20 जश्शसोः शिः (22)
21 अष्टाभ्य औश्
22 षड्भ्यो लुक् (23)
23 स्वमोर्नपुँसकात् (26)
24 अतोऽम्
25 अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः (26)
26 नेतराच्छन्दसि
27 युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् (33)
28 ङे प्रथमयोरम्
29 शसो न
30 भ्यसो भ्यम् (31)
31 पञ्चम्या अत् (32)
32 एकवचनस्य च
33 साम आकम्
34 आत औ णलः
35 तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् (37)
36 विदेः शतुर्वसुः
37 समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् (38)
38 क्त्वाऽपि च्छन्दसि (50)
39 सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया-डाड्यायाजालः
40 अमो मश्
41 लोपस्त आत्मनेपदेषु
42 ध्वमो ध्वात्
43 यजध्वैनमिति च
44 तस्य तात् (45)
45 तप्तनप्तनथनाश्च
46 इन्दतो मसि
47 क्त्वो यक् (49)
48 इष्ट्वीनमिति च
49 स्नात्व्यादयश्च
50 आज्जसेरसुक् (52,51)
51 अश्वक्षीरवृषलवणाना मात्मप्रीतौ क्यचि
52 आमि सर्वनाम्नः सुट् (57)
53 त्रेस्त्रयः
54 ह्रस्वनद्यापो नुट् (57)
55 षट्चतुर्भ्यश्च
56 श्रीग्रामण्योश्छन्दसि
57 गोः पादान्ते
58 इदितो नुम् धातोः (83)
59 शे मुचादीनाम्
60 मस्जिनशोर्झलि
61 रधिजभोरचि (64)
62 नेट्यलिटि रधेः
63 रभेरशब्लिटोः (64)
64 लभेश्च (69)
65 आङो यि (66)
66 उपात् प्रशंसायाम्
67 उपसर्गात् खल्घञोः (68)
68 न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम्
69 विभाषा चिण् णमुलोः
70 उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (72)
71 युजेरसमासे
72 नपुँसकस्य झलचः (77)
73 इकोऽचि विभक्तौ (74,75)
74 तृतीयादिषु भाषितपुँस्कं पुँवद् गालवस्य (75)
75 अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम-नङुदात्तः (77,76)
76 छन्दस्यपि दृश्यते (77)
77 ई च द्विवचने
78 नाऽभ्यस्ताच्छतुः (79,81)
79 वा नपुँसकस्य (80)
80 आच्छीनद्योर्नुम् (81,82)
81 शप्श्यनोर्नित्यम्
82 सावनडुहः (85)
83 दृक्स्ववःस्वतवसां छन्दसि
84 दिव औत्
85 पथिमथ्यृभुक्षामात् (88)
86 इतोऽत् सर्वनामस्थाने (98)
87 थो न्थः
88 भस्य टेर्लोपः
89 पुँसोऽसुङ्
90 गोतो णित् (92)
91 णलुत्तमो वा
92 सख्युरसम्बुद्धौ (93,95)
93 अनङ् सौ (94)
94 ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च
95 तृज्वत् क्रोष्टुः (97)
96 स्त्रियां च
97 विभाषा तृतीयादिष्वचि
98 चतुरनडुहोरामुदात्तः (99)
99 अम् सम्बुद्धौ
100 ऋत इद् धातोः (103,101,103)
101 उपधायाश्च
102 उदोष्ठ्यपूर्वस्य (103)
103 बहुलं छन्दसि

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु (7)
2 अतो ल्रान्तस्य
3 वदव्रजहलन्तस्याऽचः (4)
4 नेटि (7)
5 ह्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्
6 ऊर्णोतेर्विभाषा (7)
7 अतो हलादेर्लघोः
8 नेड् वशि कृति (34,9)
9 तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च
10 एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् (11)
11 श्र्युकः किति (12)
12 सनि ग्रहगुहोश्च
13 कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि
14 श्वीदितो निष्ठायाम् (34)
15 यस्य विभाषा
16 आदितश्च (17)
17 विभाषा भावादिकर्मणोः
18 क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्ट-विरिब्धफाण्टबाढानि मन्थ-मनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरा-नायासभृशेषु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19 धृषिशसी वैयात्ये
20 दृढः स्थूलबलयोः
21 प्रभौ परिवृढः
22 कृच्छ्रगहनयोः कषः
23 घुषिरविशब्दने
24 अर्देः सन्निविभ्यः (25)
25 अभेश्चाविदूर्ये
26 णेरध्ययने वृत्तम् (27)
27 वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्ट-
च्छन्नज्ञप्ताः (29)
28 रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम्
29 ह्वषेर्लोमसु
30 अपचितश्च
31 हु ह्वरेश्छन्दसि (34)
32 अपरिह्वृताश्च
33 सोमे ह्वरितः
34 ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्त-
विकस्ता विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृत-
रूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरि-
तिक्षमितिवमित्यमितीति च
35 आर्धधातुकस्येड् वलादेः (75,78)
36 स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते
37 ग्रहोऽलिटि दीर्घः (38,40)
38 वृतो वा (42)
39 न लिङि (40)
40 सिचि च परस्मैपदेषु
41 इट् सनि वा (43)
42 लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु (43)
43 ऋतश्च संयोगादेः
44 स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा (51)
45 रधादिभ्यश्च
46 निरः कुषः (47)
47 इण्निष्ठायाम्
48 तीषसहलुभरुषरिषः
49 सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णु-
भरज्ञपिसनाम्
50 क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः (54)
51 पूङश्च
52 वसतिक्षुधोरिट्
53 अञ्चेः पूजायाम्
54 लुभो विमोहने
55 जृव्रश्च्योः क्त्वि (56)
56 उदितो वा (57)
57 सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः (60)
58 गमेरिट् परस्मैपदेषु (60)
59 न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः (65)
60 तासि च क्लृपः (63)
61 अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम्
(66,63)
62 उपदेशेऽत्वतः
63 ऋतो भारद्वाजस्य
64 बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे
65 विभाषा सृजिदृशोः
66 इडत्यर्तिव्ययतीनाम्
67 वस्वेकाजाद्घसाम् (69)
68 विभाषा गमहनविदविशाम्
69 सनिंससनिवांसम्
70 ऋद्धनोः स्ये
71 अञ्जेः सिचि (73)
72 स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु (73)
73 यमरमनमातां सक् च
74 स्मिपूङ्रञ्वशां सनि (75)
75 किरश्च पञ्चभ्यः
76 रुदादिभ्यः सार्वधातुके (81)
77 ईशः से (78)
78 ईडजनोर्ध्वे च
79 लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य
80 अतो येयः (82,81)
81 आतो ङितः
82 आने मुक् (83)
83 ईदासः
84 अष्टन आ विभक्तौ (89,113)
85 रायो हलि
86 युष्मदस्मदोरनादेशे (98,89)
87 द्वितीयायाश्च
88 प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्
89 योऽचि
90 शेषे लोपः
91 मपर्यन्तस्य (98)
92 युवावौ द्विवचने
93 यूयवयौ जसि
94 त्वाहौ सौ
95 तुभ्यमह्यौ ङयि
96 तवममौ ङसि
97 त्वमावेकवचने (98)
98 प्रत्ययोत्तरपदयोश्च
99 त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ
100 अचि र ऋतः (101)
101 जराया जरसन्यतरस्याम्
102 त्यदादीनामः
103 किमः कः (105)
104 कु तिहोः
105 क्वाति
106 तदोः सः सावनन्त्ययोः (108)
107 अदस औ सुलोपश्च
108 इदमो मः (113,109)
109 दश्च
110 यः सौ (111)
111 इदोऽय् पुंसि (113)
112 अनाप्यकः
113 हलि लोपः
114 मृजेर्वृद्धिः (7.3.35)
115 अचो ञ्णिति (7.3.31;35)
116 अत उपधायाः
117 तद्धितेष्वचामादेः (7.3.31)
118 किति च

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्र-
श्रेयसामात्
2 केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः
3 न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ
तु ताभ्यामैच् (5,4)
4 द्वारादीनां च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5 न्यग्रोधस्य च केवलस्य
6 न कर्मव्यतिहारे (9)
7 स्वागतादीनां च
8 श्वादेरिञि (9)
9 पदान्तस्याऽन्यतरस्याम्
10 उत्तरपदस्य (31)
11 अवयवाद् ऋतोः
12 सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य (13)
13 दिशोऽमद्राणाम् (14)
14 प्राचां ग्रामनगराणाम्
15 संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च (17)
16 वर्षस्याऽभविष्यति
17 परिमाणान्तस्याऽसंज्ञाशाणयोः
18 जे प्रोष्ठपदानाम्
19 हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च (25)
20 अनुशतिकादीनां च
21 देवताद्वन्द्वे च (23)
22 नेन्द्रस्य परस्य (23)
23 दीर्घाच्च वरुणस्य
24 प्राचां नगरान्ते
25 जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषित-मुत्तरम्
26 अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा (27,31,30)
27 नातः परस्य
28 प्रवाहणस्य ढे (29)
29 तत्प्रत्ययस्य च
30 नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् (31)
31 यथातथयथापुरयोः पर्यायेण
32 हनस्तोऽचिण्णलोः
33 आतो युक् चिण् कृतोः (35)
34 नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः (35)
35 जनिवध्योश्च
36 अर्तिह्वीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ (43)
37 शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्
38 वो विधूनने जुक्
39 लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने
40 भियो हेतुभये षुक्
41 स्फायो वः
42 शदेरगतौ तः
43 रुहः पोऽन्यतरस्याम्
44 प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याऽत इदाप्यसुपः (49,48)
45 न यासयोः
46 उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः (48,49)
47 भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि
48 अभाषितपुंस्काच्च (49)
49 आदाचार्याणाम्
50 ठस्येकः (51)
51 इसुसुक्तान्तात् कः
52 चजोः कु घिण्ण्यतोः (69)
53 न्यङ्क्वादीनां च
54 हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु (55,56)
55 अभ्यासाच्च (58)
56 हेरचङि
57 सन्लिटोर्जेः (58)
58 विभाषा चेः
59 न क्वादेः (69)
60 अजिव्रज्योश्च
61 भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः
62 प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे
63 वञ्चेर्गतौ
64 ओक उचः के
65 ण्य आवश्यके (69)
66 यजयाचरुचप्रवचर्चश्च
67 वचोऽशब्दसंज्ञायाम्
68 प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे
69 भोज्यं भक्ष्ये
70 घोर्लोपो लेटि वा (72)
71 ओतः श्यनि
72 क्सस्याऽचि (73)
73 लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये 943
74 शमामष्टानां दीर्घः श्यनि (76)
75 ष्ठिवुक्लमुचमां शिति (82)
76 क्रमः परस्मैपदेषु
77 इषुगमियमां छः
78 पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्त्तिशद-सदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्य-र्च्छधौशीयसीदाः
79 ज्ञाजनोर्जा
80 प्वादीनां ह्रस्वः (81)
81 मीनातेर्निगमे
82 मिदेर्गुणः (88)
83 जुसि च
84 सार्वधातुकार्धधातुकयोः (86)
85 जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु
86 पुगन्तलघूपधस्य च (87)
87 नाऽभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके (88,94,101)
88 भूसुवोस्तिङि
89 उतो वृद्धिर्लुकि हलि (90,100)
90 ऊर्णोतेर्विभाषा (91)
91 गुणोऽपृक्ते
92 तृणह इम्
93 ब्रुव ईट् (98)
94 यङो वा (95)
95 तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके
96 अस्तिसिचोऽपृक्ते (97,100)
97 बहुलं छन्दसि
98 रुदश्च पञ्चभ्यः (99)
99 अङ् गार्ग्यगालवयोः (100)
100 अदः सर्वेषाम्
101 अतो दीर्घो यञि (104,102)
102 सुपि च (103)
103 बहुवचने झल्येत् (106)
104 ओसि च (105)
105 आङि चाऽऽपः (106)
106 सम्बुद्धौ च (108)
107 अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

108 ह्रस्वस्य गुणः (109,111)
109 जसि च
110 ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः
111 घेर्ङिति (115)
112 आण्नद्याः
113 याडापः (114)
114 सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च (115)
115 विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम्
116 ङेराम्नद्याम्नीभ्यः (118,117)
117 इदुद्भ्याम् (118)
118 औदच्च घेः (119)
119 आङो नाऽस्त्रियाम्

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

1 णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः (8,3)
2 नाऽग्लोपिशास्वृदिताम्
3 भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडा-मन्यतरस्याम्
4 लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य
5 तिष्ठतेरित् (6)
6 जिघ्रतेर्वा (7)
7 उर्ऋत् (8)
8 नित्यं छन्दसि
9 दयतेर्दिगि लिटि (11)
10 ऋतश्च संयोगादेर्गुणः (12)
11 ऋच्छत्यृताम्
12 शृदृप्रां ह्रस्वो वा (15)
13 केऽणः (14)
14 न कपि (15)
15 आपोऽन्यतरस्याम्
16 ऋदृशोऽङि गुणः (20)
17 अस्यतेस्थुक्
18 श्वयतेः
19 पतः पुम्
20 वच उम्
21 शीङः सार्वधातुके गुणः (22)
22 अयङ् यि क्ङिति (29,25)
23 उपसर्गाद्ध्रस्वः ऊहतेः (24)
24 एतेर्लिङि
25 अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः (29,26)
26 च्वौ च (27)
27 रीङ् ऋतः (30)
28 रिङ् शयग्लिङ्क्षु (29)
29 गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः (30)
30 यङि च (31)
31 ई घ्राध्मोः (33)
32 अस्य च्वौ (35)
33 क्यचि च (39)
34 अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु
35 न च्छन्दस्यपुत्रस्य (39)
36 दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यतिरिषण्यति
37 अश्वाऽघस्यात् (38)
38 देवसुम्नयोर्यजुषि काठके
39 कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः
40 द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति (41,47)
41 शाच्छोरन्यतरस्याम्
42 दधातेर्हिः (44)
43 जहातेश्च क्त्वि (44)
44 विभाषा छन्दसि (45)
45 सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च
46 दो दद् घोः (47)
47 अच उपसर्गात तः (49)
48 अपो भि
49 सः स्यार्धधातुके (52,57)
50 तासस्त्योर्लोपः (52,53)
51 रि च
52 ह एति
53 यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः
54 सनि मीमाघुरभलभशकपत-पदामच इस् (57,56)
55 आप्ज्ञप्यृधामीत् (56)
56 दम्भ इच्च
57 मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा
58 अत्र लोपोऽभ्यासस्य (97)
59 ह्रस्वः
60 हलादिः शेषः (61)
61 शर्पूर्वाः खयः
62 कुहोश्चुः (64)
63 न कवतेर्यङि (64)
64 कृषेश्छन्दसि (65)
65 दाधर्त्तिदर्धर्त्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्ते-ऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करि-क्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युत-त्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्या-गनीगन्तीति च
66 उरत्
67 द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् (68)
68 व्यथो लिटि (74)
69 दीर्घ इणः किति (70)
70 अत आदेः
71 तस्मान्नुड् द्विहलः (72)
72 अश्नोतेश्च
73 भवतेरः (74)
74 ससूवेति निगमे
75 णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ (73,78)
76 भृञामित् (81)
77 अर्त्तिपिपर्त्त्योश्च
78 बहुलं छन्दसि
79 सन्यतः (81)
80 ओः पुयण्ज्यपरे (81)
81 स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवति-च्यवतीनां वा
82 गुणो यङ्लुकोः (90)
83 दीर्घोऽकितः
84 नीग् वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपत-पदस्कन्दाम्
85 नुगतोऽनुनासिकान्तस्य (87)
86 जपजभदहदशभञ्जपशां च
87 चरफलोश्च (87)
88 उत्परस्याऽतः (89)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

89 ति च
90 रीगृदुपधस्य च (92,91)
91 रुग्रिकौ च लुकि (92)
92 ऋतश्च
93 सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे (94,97)
94 दीर्घो लघोः
95 अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् (97)
96 विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः
97 ई च गणः

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अथ अष्टमाऽध्यायस्य

प्रथमः पादः

1 सर्वस्य द्वे (15)
2 तस्य परमाम्रेडितम् (3)
3 अनुदात्तं च
4 नित्यवीप्सयोः
5 परेर्वर्जने
6 प्रसमुपोदः पादपूरणे
7 उपर्यध्यधसः सामीप्ये
8 वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽसूयासम्मति कोपकुत्सन-भर्त्सनेषु
9 एकं बहुव्रीहिवत् (10)
10 आबाधे च
11 कर्मधारयवदुत्तरेषु (15)
12 प्रकारे गुणवचनस्य
13 अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम्
14 यथास्वे यथायथम्
15 द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमण यज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु
16 पदस्य (8.3.54)
17 पदात् (69)
18 अनुदात्तं सर्वमपादादौ (74)
19 आमन्त्रितस्य च
20 युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीया-स्थयोर्वान्नावौ (26,22)
21 बहुवचनस्य वस्नसौ
22 तेमयावेकवचनस्य (23)
23 त्वामौ द्वितीयायाः
24 न चवाहाहैवयुक्ते (26)
25 पश्यार्थैश्चानालोचने
26 सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा
27 तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः
28 तिङ्ङतिङः (66)
29 न लुट् (66)
30 निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण् कच्चिद्यत्रयुक्तम्
31 नह प्रत्यारम्भे
32 सत्यं प्रश्ने
33 अङ्गप्रातिलोम्ये (34)
34 हि च (35)
35 छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्
36 यावद्यथाभ्याम् (38)
37 पूजायां नाऽनन्तरम् (38)
38 उपसर्गव्यपेतं च
39 तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम् (40)
40 अहो च (41)
41 शेषे विभाषा (42)
42 पुरा च परीप्सायाम्
43 नन्वित्यनुज्ञैषणायाम्
44 किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गम-प्रतिषिद्धम् (45)
45 लोपे विभाषा
46 एहिमन्ये प्रहासे लट्
47 जात्वपूर्वम् (49)
48 किंवृत्तं च चिदुत्तरम्
49 आहो उताहो चानन्तरम् (50)
50 शेषे विभाषा
51 गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वाऽन्यत् (53)
52 लोट् च (54)
53 विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् (54)
54 हन्त च
55 आम एकान्तरमामन्त्रित-मनन्तिके
56 यद्धितुपरं छन्दसि
57 चनचिदिवगोत्रादितद्धिता म्रेडितेष्वगतेः (58)
58 चादिषु च
59 चवायोगे प्रथमा (65)
60 हेति क्षियायाम् (68)
61 अहेति विनियोगे च
62 चाहलोप एवेत्यवधारणम्
63 चादिलोपे विभाषा (65)
64 वैवावेति च च्छन्दसि (65)
65 एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्
66 यद्वृत्तान्नित्यम्
67 पूजनात् पूजितमनुदात्तम् (68)
68 सगतिरपि तिङ् (69)
69 कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ
70 गतिर्गतौ (71)
71 तिङि चोदात्तवति
72 आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् (74)
73 नाऽऽमन्त्रिते समानाधिकरणे (74)
74 सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

1 पूर्वत्राऽसिद्धम् (8.4.67)
2 नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति
3 न मु ने
4 उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितो-ऽनुदात्तस्य (6)
5 एकादेश उदात्तेनोदात्तः (6)
6 स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ
7 न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य (8)
8 न डिसम्बुद्ध्योः
9 मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः (16,15)
10 झयः
11 संज्ञायाम् (16)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12 आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षी-
वद्रुमण्वच्चर्मण्वती
13 उदन्वानुदधौ
14 राजन्वान् सौराज्ये
15 छन्दसीरः (17)
16 अनो नुट् (17)
17 नाद् घस्य
18 कृपो रो लः (22)
19 उपसर्गस्याऽयतौ
20 ग्रो यङि (21)
21 अचि विभाषा (22)
22 परेश्च घाङ्कयोः
23 संयोगान्तस्य लोपः (24,29)
24 रात् सस्य (28)
25 धि च
26 झलो झलि (38)
27 ह्रस्वादङ्गात्
28 इट ईटि
29 स्कोः संयोगाद्योरन्ते च (38)
30 चोः कुः
31 हो ढः (35)
32 दादेर्धातोर्घः (38,33)
33 वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्
34 नहो धः
35 आहस्थः
36 व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज
भ्राजच्छशां षः
37 एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः
(38)
38 दधस्तथोश्च
39 झलां जशोऽन्ते
40 झषस्तथोर्द्धोऽधः
41 षढोः कः सि
42 रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य
च दः (61)
43 संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः
44 ल्वादिभ्यः
45 ओदितश्च
46 क्षियो दीर्घात्
47 श्योऽस्पर्शे
48 अञ्चोऽनपादाने
49 दिवोऽविजिगीषायाम्
50 निर्वाणोऽवाते
51 शुषः कः
52 पचो वः
53 क्षायो मः (54)
54 प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्
55 अनुपसर्गात् फुल्लक्षीब कृशोल्लाघाः
56 नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्
57 न ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम् (61)
58 वित्तो भोगप्रत्ययोः
59 भित्तं शकलम्
60 ऋणमाधमर्ण्ये
61 नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि
छन्दसि
62 क्विन् प्रत्ययस्य कुः (63)
63 नशेर्वा
64 मो नो धातोः (65)
65 म्वोश्च
66 ससजुषो रुः (71)
67 अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च
68 अहन् (69)
69 रोऽसुपि (71)
70 अम्नरूधरवरित्युभयथा
छन्दसि (71)
71 भुवश्च महाव्याहृतेः
72 वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः (75)
73 तिप्यनस्तेः
74 सिपि धातो रुर्वा (75,79,75)
75 दश्च
76 वोरुपधाया दीर्घ इकः
(79,78,79)
77 हलि च (78)
78 उपधायां च
79 न भकुर्छुराम्
80 अदसोऽसेर्दादुदो मः (81)
81 एत ईद् बहुवचने
82 वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः (98)
83 प्रत्यभिवादेऽशूद्रे
84 दूराद्धूते च (86)
85 हैहेप्रयोगे हैहयोः
86 गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य
प्राचाम्
87 ओमभ्यादाने
88 ये यज्ञकर्मणि (92)
89 प्रणवष्टेः (90)
90 याज्यान्तः
91 ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः
(92)
92 अग्नीत् प्रेषणे परस्य च
93 विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः (94)
94 निग्रह्याऽनुयोगे च
95 आम्रेडितं भर्त्सने (96)
96 अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम्
97 विचार्यमाणानाम् (98)
98 पूर्वं तु भाषायाम्
99 प्रतिश्रवणे च
100 अनुदात्तं प्रश्नान्ताभि पूजितयोः
(102)
101 चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने
102 उपरिस्विदासीदिति च
103 स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मति
कोपकुत्सनेषु (105)
104 क्षियाशीः प्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्
105 अनन्त्यस्याऽपि प्रश्नाख्यानयोः
106 प्लुतावैच इदुतौ
107 एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्या-
र्धस्यादुत्तरस्येदुतौ
108 तयोर्य्वावचि संहितायाम्
(8.4.64)

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य
द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

1 मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि (12)
2 अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा (3)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3 आतोऽटि नित्यम्
4 अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः
5 समः सुटि
6 पुमः खय्यम्परे (8)
7 नश्छव्यप्रशान् (12,8)
8 उभयथर्क्षु
9 दीर्घादटि समानपादे
10 नॄन् पे
11 स्वतवान् पायौ
12 कानाम्रेडिते
13 ढो ढे लोपः (14)
14 रो रि (15)
15 खरवसानयोर्विसर्जनीयः (16)
16 रोः सुपि (17)
17 भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि (22,24)
18 व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य (21)
19 लोपः शाकल्यस्य (22)
20 ओतो गार्ग्यस्य
21 उञि च पदे
22 हलि सर्वेषाम् (23)
23 मोऽनुस्वारः (24)
24 नश्चाऽपदान्तस्य झलि
25 मो राजि समः क्वौ (27)
26 हे मपरे वा (27,31)
27 नपरे नः
28 ङ्णोः कुक् टुक् शरि (30)
29 ङः सि धुट् (30)
30 नश्च (31)
31 शि तुक्
32 ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् (33)
33 मय उञो वो वा
34 विसर्जनीयस्य सः (54)
35 शर्परे विसर्जनीयः (36)
36 वा शरि
37 कुप्वोः ×क×पौ च (54)
38 सोऽपदादौ (54,39)
39 इणः षः (48)
40 नमस्पुरसोर्गत्योः
41 इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य
42 तिरसोऽन्यतरस्याम् (44)
43 द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे
44 इसुसोः सामर्थ्ये (45)
45 नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य (54,47)
46 अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशा कर्णीष्वनव्ययस्य
47 अधःशिरसी पदे
48 कस्कादिषु च
49 छन्दसि वाऽप्राऽऽम्रेडितयोः (54)
50 कः करत्करतिकृधि कृतेष्वनदितेः
51 पञ्चम्याः परावध्यर्थे (52)
52 पातौ च बहुलम्
53 षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपद-पयस्पोषेषु (54)
54 इडाया वा
55 अपदान्तस्य मूर्धन्यः (110)
56 सहेः साडः सः (119)
57 इण्कोः (119)
58 नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि (59)
59 आदेशप्रत्यययोः
60 शासिवसिघसीनां च
61 स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् (62)
62 सः स्विदिस्वदिसहीनां च
63 प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि (70)
64 स्थादिष्वभ्यासेन चाऽभ्यासस्य (65)
65 उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यति-स्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेध-सिचसञ्जस्वञ्जाम् (77)
66 सदिरप्रतेः
67 स्तन्भेः (68)
68 अवाच्चाऽऽलम्बनाऽऽविदूर्ययोः (69)
69 वेश्च स्वनो भोजने
70 परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवु सहसुट्स्तुस्वञ्जाम् (71)
71 सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि (76)
72 अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु
73 वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् (75)
74 परेश्च
75 परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु
76 स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः
77 वेः स्कभ्नातेर्नित्यम्
78 इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् (79)
79 विभाषेटः
80 समासेऽङ्गुलेः सङ्गः (85)
81 भीरोः स्थानम्
82 अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः
83 ज्योतिरायुषः स्तोमः
84 मातृपितृभ्यां स्वसा (85)
85 मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् (86)
86 अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्
87 उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः
88 सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः
89 निनदीभ्यां स्नातेः कौशले
90 सूत्रं प्रतिष्णातम्
91 कपिष्ठलो गोत्रे
92 प्रष्ठोऽग्रगामिनि
93 वृक्षासनयोर्विष्टरः (94)
94 छन्दोनाम्नि च
95 गवियुधिभ्यां स्थिरः
96 विकुशमिपरिभ्यः स्थलम्
97 अम्बाऽम्बगोभूमिसव्याऽपद्वित्रिकुशेकु-शङ्कवङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमे-बर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः
98 सुषामादिषु च
99 एति संज्ञायामगात् (100)
100 नक्षत्राद् वा
101 ह्रस्वात्तादौ तद्धिते (104)
102 निसस्तपतावनासेवने
103 युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम् (104)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

104 यजुष्येकेषाम् (106)
105 स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि (109)
106 पूर्वपदात् (109)
107 सुञः
108 सनोतेरनः
109 सहेः पृतनर्ताभ्यां च
110 न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहि सवनादीनाम् (119)
111 सात्पदाद्योः
112 सिचो यङि
113 सेधतेर्गतौ
114 प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च
115 सोढः
116 स्तम्भुसिवुसहां चङि
117 सुनोतेः स्यसनोः
118 सदेः परस्य लिटि
119 निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

1 रषाभ्यां नो णः समानपदे (38)
2 अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि
3 पूर्वपदात् संज्ञायामगः (13,4)
4 वनं पुरगामिश्रकासिध्रका शारिकाकोटराग्रेभ्यः (6)
5 प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्र कार्ष्यखदिर-पीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामि
6 विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः
7 अह्नोऽदन्तात्
8 वाहनमाहितात्
9 पानं देशे (10)
10 वा भावकरणयोः (11)
11 प्रातिपदिकान्तनुम्-विभक्तिषु च (13)
12 एकाजुत्तरपदे णः
13 कुमति च
14 उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य (23)
15 हिनुमीना
16 आनि लोट्
17 नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्ति यातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहति-शाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च (18)
18 शेषे विभाषाऽकखा दावषान्त उपदेशे
19 अनितेरन्तः (20)
20 उभौ साऽभ्यासस्य
21 हन्तेरत्पूर्वस्य (22)
22 वमोर्वा
23 अन्तरदेशे (24)
24 अयनं च
25 छन्दस्यृदवग्रहात् (26)
26 नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः (27)
27 उपसर्गादनोत्परः (33)
28 कृत्यचः (33,30)
29 णेर्विभाषा (30)
30 हलश्चेजुपधात् (31)
31 इजादेश्च सनुमः
32 वा निंसनिक्षनिन्दाम्
33 न भाभूपूकमिगमिप्यायी वेपाम् (38)
34 षात्पदान्तात्
35 नशेः षान्तस्य
36 पदान्तस्य
37 पदव्यवायेऽपि
38 क्षुभ्नादिषु च
39 स्तोः श्चुना श्चुः (41,43)
40 ष्टुना ष्टुः (43)
41 न पदान्ताट्टोरनाम् (44)
42 तोः षि (43)
43 शात्
44 यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (46)
45 अचो रहाभ्यां द्वे (46,51)
46 अनचि च
47 नाऽऽदिन्याक्रोशे पुत्रस्य (51)
48 शरोऽचि
49 त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य
50 सर्वत्र शाकल्यस्य
51 दीर्घादाचार्याणाम्
52 झलां जश् झशि (55)
53 अभ्यासे चर्च (55)
54 खरि च
55 वाऽवसाने (56)
56 अणोऽप्रगृह्यस्याऽनुनासिकः
57 अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (58,64)
58 वा पदान्तस्य
59 तोर्लि
60 उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य (61)
61 झयो होऽन्यतरस्याम् (62,64)
62 शश्छोऽटि
63 हलो यमां यमि लोपः (64)
64 झरो झरि सवर्णे
65 उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः (66)
66 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्य-काश्यपगालवानाम्
67 अ अ

॥ इति पाणिनीयसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः अध्यायश्च ॥

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) अष्टाध्यायीस्थसूत्राणामकाराद्यनुक्रमेणाऽनुक्रमणिका

(अत्र अध्यायपादसूत्रसंख्या निर्दिष्टाऽस्ति)

अ

अंशंहारी 5.2.69
अ अ 8.4.67
अक: सवर्णे दीर्घ: 6.1.97
अकथितं च 1.4.51
अकर्तरि च० 3.3.19
अकर्तर्यृणे पंचमी 2.3.25
अकर्मकाच्च 1.3.26
अकर्मकाच्च 1.3.35
अकर्मकाच्च 1.3.45
अकर्मधारये 6.2.129
अकृच्छ्रप्रियसुख० 8.1.13
अकृत्सार्वधातु० 7.4.25
अके जीविकार्थे 6.2.73
अकेनोर्भविष्य० 2.3.70
अक्षशलाका० 2.1.10
अक्षेषु ग्लह: 3.3.70
अक्षोऽन्यतरस्याम् 3.1.75
अक्ष्णोऽदर्शनात् 5.4.76
अगारान्ताट्ठन् 4.4.70
अगारैकदेशे 3.3.79
अग्नीत्प्रेषणे 8.2.92
अग्ने: स्तुत्स्तोमा: 8.3.82
अग्नेर्ढक् 4.2.32
अग्नौ चे: 3.2.91
अग्नौ परि० 3.1.131
अग्राख्यायामुरस: 5.4.93
अग्राद्यत् 4.4.116
अग्रान्तशुद्ध० 5.4.145
अङितश्च 6.4.103
अङ्ग इत्यादौ च 6.1.115
अङ्गयुक्तं तिङ् 8.2.96
अङ्गस्य 6.4.1
अङ्गानि मैरेये 6.2.70
अङ्गात्प्रातिलोम्ये 8.1.33
अङ्गुलेर्दारुणि 5.4.114
अङ्गुल्यादि० 5.3.108
अ च 4.3.31
अच उपसर्गात्त: 7.4.47
अच: 6.4.138
अच: कर्तृयकि 6.1.189
अच: कर्मकर्तरि 3.1.62
अच: परस्मिन्० 1.1.56
अचतुरविचतुर० 5.4.77
अचश्च 1.2.28
अचस्तास्वत्थल्य 7.2.61
अचित्तहस्तिधेनो० 4.2.46
अचित्ताददेश० 4.3.96
अचिर ऋत: 7.2.100
अचि विभाषा 8.2.21
अचि श्नुधातु० 6.4.77
अचोऽञ्णिति 7.2.115
अचोऽन्त्यादि टि 1.1.63
अचो यत् 3.1.97
अचो रहाभ्यां द्वे 8.4.45
अच्कावशक्तौ 6.2.153
अच्छ गत्यर्थवदेषु 1.4.68
अच्प्रत्यन्वव० 5.4.75
अजर्यं संगतम् 3.1.105
अजादी गुण० 5.3.58
अजादेर्द्वितीयस्य 6.1.2
अजाद्यतष्टाप् 4.1.4
अजाद्यदन्तम् 2.2.33
अजाविभ्यां थ्यन् 5.1.8
अजिनान्तस्योत्तर 5.3.82
अजिव्रज्योश्च 7.3.60
अजेर्व्यघञपो: 2.4.53
अज्झनगमां सनि 6.4.16
अज्ञाते 5.3.73
अञ्चे: पूजायाम् 7.2.53
अञ्चेर्लुक् 5.3.30
अञ्चेश्छन्दस्य० 6.1.164
अञ्चोऽनपादाने 8.2.48
अञ्ने: सिचि 7.2.71
अञ्नासिकाया: 5.4.118
अट्कुप्वाङ्० 8.4.2
अड् गार्ग्य० 7.3.99
अणञौ च 4.3.33
अणावकर्म० 1.3.88
अणिञोरनार्ष० 4.1.78
अणि नियुक्ते 6.2.75
अणिनुण: 5.4.15
अणुदित्सवर्णस्य० 1.1.68
अणृगयनादिभ्य: 4.3.73
अणो द्व्यच: 4.1.156
अणोऽप्रगृह्य० 8.4.56
अण्कर्मणि च 3.3.12
अण्कुटिलिकाया: 4.4.18
अण्च 5.2.103
अण्महिष्यादिभ्य: 4.4.48
अत आदे: 7.4.70
अत इञ् 4.1.95
अत इनिठनौ 5.2.115
अत उत्सार्व० 6.4.110
अत उपधाया: 7.2.116
अत एकहल्० 6.4.120
अत: कृकमि० 8.3.46
अतश्च 4.1.175
अतिग्रहाव्यथन० 5.4.46
अतिथेर्ब्य: 5.4.26
अतिरतिक्रमणे च 1.4.94
अतिशायने 5.3.55
अते: शुन: 5.4.96
अतेरकृत्पदे 6.2.190
अतो गुणे 6.1.94
अतो दीर्घो यञि 7.3.101
अतो भिस ऐस् 7.1.9
अतोऽम् 7.1.24
अतो येय: 7.2.80
अतो रोरप्लुताद० 6.1.109
अतो लोप: 6.4.48
अतो ल्रान्तस्य 7.2.2
अतो हलोदेर्लघो: 7.2.7
अतो हे: 6.4.105
अत्यन्तसंयोगे च 2.1.28
अत्र लोपोऽभ्यास० 7.4.58
अत्रानुनासिक: 8.3.2
अत्रिभृगुकुत्स० 2.4.65
अत्वसन्तस्य 6.4.14
अत्स्मृदृत्वरप्रथ० 7.4.95
अद: सर्वेषाम् 7.3.100
अदभ्यस्तात् 7.1.4
अदर्शनं लोप: 1.1.59
अदस औ सु० 7.2.107
अदसो मात् 1.1.12
अदसोऽसेर्दादु० 8.2.80
अदिप्रभृतिभ्य: 2.4.72
अदूरभवश्च 4.2.69
अदेङ्गुण: 1.1.2
अदो जग्धिर्ल्यप्ति० 2.4.36
अदोऽनन्ने 3.2.68
अदोऽनुपदेशे 1.4.69

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदड्डुतरादिभ्यः	7.1.125	अनवक्लृप्त्यमर्ष०	3.3.145	अनुर्लक्षणे	1.4.83	अन्येभ्योऽपि	3.2.178
अद्भिः संस्कृतम्	4.4.134	अनश्च	5.4.108	अनुवादे चरणानाम्	2.4.3	अन्येभ्योऽपि	3.3.130
अद्यश्वीनावष्टब्धे	5.2.13	अनसन्तान्नपुं०	5.4.103	अनुविपर्यभिनि०	8.3.72	अन्येभ्योऽपि	3.2.75
अधःशिरसी पदे	8.3.47	अनाप्यकः	7.2.112	अनुशतिकादीनां	7.3.20	अन्येषामपि	6.3.137
अधिकम्	5.2.73	अनिगन्तोऽञ्चतौ	6.2.52	अनुस्वारस्य	8.4.57	अन्येष्वपि	3.2.101
अधिकरणवाचि०	2.3.68	अनितेरन्तः	8.4.19	अनृष्यानन्तर्ये	4.1.104	अन्वच्यानुलोम्ये	3.4.64
अधिकरणवाचि०	2.2.13	अनिदितां हल०	6.4.24	अनेकमन्यपदार्थे	2.2.24	अन्ववतप्ताद्रहसः	5.4.81
अधिकरणविचाले	5.3.43	अनुकम्पायाम्	5.3.76	अनेकाल्शित्०	1.1.54	अपगुरो णमुलि	6.1.52
अधकरणे बन्धः	3.4.41	अनुकरणं चानिति०	1.4.61	अनो नुट्	8.2.16	अपघनोऽङ्गम्	3.3.81
अधिकरणे शेतेः	3.2.15	अनुकाभिका०	5.2.74	अनो बहुव्रीहेः	4.1.12	अपचितश्च	7.2.30
अधिकरणैतावत्त्वे	2.4.15	अनुगवमायामे	5.4.83	अनो भावकर्म०	6.2.150	अपत्यं पौत्र०	4.1.162
अधिकृत्य कृते	4.3.87	अनुगादिनष्ठक्	5.4.13	अनोरकर्मकात्	1.3.49	अपथं नपुंसकम्	2.4.30
अधिपरी अनर्थकौ	1.4.92	अनुग्वलंगामी	5.2.15	अनोरप्रधान०	6.2.189	अपदातौ साल्वात्	4.2.134
अधिरीश्वरे	1.4.96	अनुदात्तं सर्वम०	8.1.18	अनोश्मायः	5.4.94	अपदान्तस्य मूर्ध०	8.3.55
अधिशीङ्स्था०	1.4.46	अनुदात्तङित०	1.3.12	अनौ कर्मणि	3.2.100	अपपरी वर्जने	1.4.87
अधीगर्थदयेशां	2.3.52	अनुदात्तं च	8.1.3	अन्तः	6.292	अपमित्ययाचिता०	4.4.21
अधीष्टे च	3.3.166	अनुदात्तं पद०	6.1.152	अन्तः	6.2.143	अपरस्पराः	6.1.139
अधुना	5.3.17	अनुदात्तं प्रश्ना०	8.2.100	अन्तः	6.2.179	अपरिमाणबिस्ता०	4.1.22
अधेः प्रसहने	1.3.33	अनुदात्तस्य च	6.1.155	अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्	4.3.60	अपरिहृवृताश्च	7.2.32
अधेरुपरिस्थम्	6.2.187	अनुदात्तस्य चर्दुप०	6.1.58	अन्तरं बहिर्योगो०	1.1.35	अपरोक्षे च	3.2.119
अध्ययनतोऽवि०	2.4.5	अनुदात्तादेरञ्	4.2.43	अन्तरदेशे	8.4.23	अपवर्गे तृतीया	2.3.6
अध्यर्धपूर्व०	5.1.28	अनुदात्तादेश्च	4.3.137	अन्तरपरिग्रहे	1.4.64	अपस्करो रथ०	6.1.144
अध्यायन्यायो०	3.3.112	अनुदात्ते च	6.1.184	अन्तरान्तरेण युक्ते	2.3.4	अपस्पृधेथामा०	6.1.35
अध्यायानुवाक०	5.2.60	अनुदात्ते च कु०	6.1.116	अन्तर्घनो देशे	3.3.78	अपह्नवे ज्ञः	1.3.44
अध्यायिन्यदेश०	4.4.71	अनुदात्तेतश्च	3.2.149	अन्तर्धौ येना०	1.4.28	अपाच्च	6.2.186
अध्यायेष्वेवर्षेः	4.3.69	अनुदात्तोपदेश०	6.4.37	अन्तर्बहिर्भ्यौ	5.4.117	अपाच्चतुष्पा०	6.1.137
अध्वनो यत्खौ	5.2.116	अनुदात्तौ सुप्पितौ	3.1.4	अन्तर्वत्पति०	4.1.32	अपादाने चाहीय०	5.4.45
अध्वर्युकषाय०	6.2.10	अनुनासिकस्य	6.4.15	अन्तश्च	6.2.180	अपादाने पंचमी	2.3.28
अध्वर्युक्रतुर०	2.4.4	अनुनासिकात्०	8.3.4	अन्तश्च तवै	6.1.194	अपादाने परी०	3.4.52
अन्	6.4.167	अनुपदसर्वान्नाया०	5.2.9	अन्तात्यन्ताध्व०	3.2.48	अपाद्वदः	1.3.73
अन उपधालोपि०	4.1.28	अनुपद्यन्वेष्टा	5.2.90	अन्तादिवच्च	6.1.82	अपिः पदार्थ सं०	1.4.95
अनङ सौ	7.1.93	अनुपराभ्यां कृञः	1.3.79	अन्तिकबाढयोर्नेद०	5.3.63	अपूर्वपदादन्य०	4.1.140
अनचि च	8.4.46	अनुपसर्गाज्ञः	1.3.76	अन्तोदात्तादु०	6.1.163	अपृक्त एकाल्०	1.2.41
अनत्यन्तगतौ क्तात्	5.4.4	अनुपसर्गात्फुल्ल०	8.2.55	अन्तोवत्याः	6.1.214	अपे क्लेशतमसोः	3.2.50
अनत्याधान०	1.4.74	अनुपसर्गाद्वा	1.3.43	अन्त्यात्पूर्वे बह्वचः	6.2.83	अपे च लषः	3.2.144
अनद्यतने लङ्	3.2.111	अनुपसर्गाल्लिम्प०	3.1.138	अन्नाण्णः	4.4.85	अपेतापोढमुक्त०	2.1.37
अनद्यतने लुट्	3.3.15	अनुपसर्जनात्	4.1.14	अन्नेन व्यंजनम्	2.1.33	अपोनप्त्रपांनप्तृ	4.2.26
अनद्यतनेहिंल्०	5.3.21	अनुप्रतिगृणश्च	1.4.41	अन्यतो ङीष्	4.1.40	अपो भि	7.4.48
अनन्तावसथ०	5.4.23	अनुप्रवचनादि०	5.1.110	अन्यथैवंकथमि०	3.4.27	अप्तृन्तृच्स्वसृ०	6.4.11
अनन्त्यस्यापि	8.2.105	अनुब्राह्मणादिनिः	4.2.61	अन्यपदार्थे च	2.1.20	अप्पूरणीप्रमा०	5.4.116
अनभिहिते	3.1.1	अनुर्यत्समया	2.1.14	अन्यारादितरर्ते	2.3.29	अ प्रत्ययात्	3.3.102

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्लुतवदुप०	6.1.125	अरुर्मनश्चक्षुश्चे०	5.4.51	अवात्कुटारच्च	5.2.30	असंयोगाल्लिट्	1.2.5
अभाषित पुंसकाच्चं	7.3.48	अर्तिपिपर्त्योश्च	7.4.77	अवाद् ग्रः	1.3.51	असंज्ञायां तिल०	4.3.146
अभिजनश्च	4.3.90	अर्तिलूधूसूखन०	3.2.184	अवारपारात्य०	5.2.11	असमासे निष्का०	5.1.20
अभिजिद्विदभृ०	5.3.118	अर्तिह्रीव्लीरी०	3.3.36	अवृद्धादपि बहु०	4.2.124	अ सांप्रतिके	4.3.9
अभिज्ञावचने	3.2.112	अर्थवदधातुर०	1.2.45	अवृद्धाभ्यो नदी०	4.1.113	असिद्धवदत्राभात्	6.4.22
अभिनिविशश्च	1.4.47	अर्थे	6.2.44	अवेः कः	5.4.28	असुरस्य स्वम्	4.4.123
अभिनिष्क्रामति	4.3.83	अर्थे विभाषा	6.3.100	अवे ग्रहो वर्ष०	3.3.51	असूर्यललाटयोर्दृ०	3.2.36
अभिनिसः स्तनः	8.3.86	अर्देः संनिविभ्यः	7.2.24	अवे तॄस्त्रीर्घञ्	3.3.120	अस्तं च	1.4.67
अभिप्रत्यतिभ्यः	1.3.80	अर्धे नपुंसकम्	2.2.2	अवे यजः	3.2.72	अस्ताति च	5.3.40
अभिरभागे	1.4.90	अर्धर्चाः पुंसि च	2.4.31	अवोदैधौद्मप्रश्रथ०	6.4.29	अस्तिनास्ति०	4.4.60
अभिविधौ भाव	3.3.44	अर्धाच्च	5.4.100	अवोदोनिंयः	3.3.26	अस्तिसिचोऽपृक्ते	7.3.96
अभिविधौ सम्पदा	5.4.53	अर्धात्परिमाणस्य	7.3.26	अव्यक्तानुकरण०	6.1.95	अस्तेर्भूः	2.4.52
अभेर्म्मुखम्	6.2.185	अर्धाद्यत्	4.3.4	अव्यक्तानुकरणाद्	5.4.57	अस्थिदधिसक्थ्य०	7.1.75
अभेश्चाविदूर्ये	7.2.25	अर्मे चावर्णे द्व्याच्	6.2.90	अव्ययं विभक्ति०	2.1.6	अस्मदो द्वयोश्च	1.2.59
अभ्यमित्राच्छ च	5.2.17	अर्यः स्वामि०	3.1.103	अव्ययसर्वना०	5.3.71	अस्मद्युत्तमः	1.4.106
अभ्यस्तानामा०	6.1.183	अर्वणस्त्रसाव०	6.4.127	अव्ययात्त्यप्	4.2.103	अस्मायामेधा०	5.2.121
अभ्यासस्यासवर्णे	6.4.78	अर्शआदिभ्यो०	5.2.127	अव्ययादाप्सुपः	2.4.82	अस्य च्वौ	7.4.32
अभ्यासाच्च	7.3.55	अर्हः	3.2.12	अव्ययीभावः	2.1.5	अस्यतितृषोः	3.4.57
अभ्यासे चर्च	8.4.53	अर्हः प्रशंसायाम्	3.2.133	अव्ययीभावश्च	1.1.40	अस्यतिवक्तिख्या०	3.1.52
अभ्युत्सादयांप्रज०	3.1.42	अर्हे कृत्यतृचश्च	3.3.169	अव्ययीभावश्च	2.4.18	अस्यतेस्थुक्	7.4.17
अमनुष्यकर्तृके च	3.2.53	अलंकृञ्निराकृ०	3.2.136	अव्ययीभावाच्च	4.3.59	अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा	4.1.53
अमहन्नवं नगरे०	6.2.89	अलंखल्वोः	3.4.18	अव्ययीभावे चा०	6.3.81	अहः सर्वैकदेश०	5.4.87
अमावस्यदन्य०	3.1.122	अलुगुत्तरपदे	6.3.1	अव्ययीभावे शर०	5.4.107	अहंशुभयोर्युस्	5.2.140
अमावास्याया वा	4.3.30	अलोऽन्त्यस्य	1.1.51	अवययेऽयथाभिप्रे०	3.4.59	अहन्	8.2.68
अमि पूर्वः	6.1.103	अलोऽन्त्यात्पूर्व	1.1.64	अव्यादवद्यादव०	6.1.112	अहीने द्वितीया	6.2.47
अमु च च्छन्दसि	5.4.12	अल्पांख्यायाम्	5.4.136	अशनायोदन्यध०	7.4.34	अहेतिविनियोगे च	8.1.61
अमूर्धमस्तका०	6.3.11	अल्पाच्तरम्	2.2.34	अशब्दे यत्खाव०	4.3.64	अहो च	8.1.40
अमैवाव्ययेन०	2.2.20	अल्पे	5.3.85	अशाला च	2.4.24	अह्नष्टखोरेव	6.4.145
अमो मश्	7.1.40	अल्लोपोऽनः	6.4.134	अश्नोतेश्च	7.4.72	अह्नोऽदन्तात्	8.4.7
अम्नरूधरवरित्यु०	8.2.70	अवक्रयः	4.4.50	अश्वक्षीरवृषलव०	7.1.51	अह्नोऽह्न एतेभ्यः	5.4.88
अम्बाम्बगोभू०	8.3.97	अवक्षेपणे कन्	5.3.95	अश्वपत्यादिभ्यश्च	4.1.84		
अम्वार्थनद्यो०	7.3.107	अवङ् स्फोटा०	6.1.119	अश्वस्यैकाहगमः	5.2.19	आ	
अम् संबुद्धौ	7.1.99	अवचक्षे च	3.4.15	अश्वाघस्यात्	7.4.37	आकडारादेका संज्ञा	1.4.1
अयः शूलदण्डा०	5.2.76	अवद्यपण्यवर्या	3.1.101	अश्वादिभ्यः फञ्	4.1.110	आकर्षात्लुक्	4.4.9
अयङ्यि क्ङिति	7.4.22	अवपथासि च	6.1.117	अश्विमानण्	4.4.126	आकर्षादिभ्यः कन्	5.2.64
अयनं च	8.4.24	अवयवादृतोः	7.3.11	अषडक्षाशितंग्वलं०	5.4.7	आकालिकडा०	5.1.113
अयस्मयादीनि	1.4.20	अवयवे च	4.3.132	अषष्ठ्यातृतीयास्थ०	6.3.99	आक्रन्दाट्टञ्च	4.4.38
अयामन्ताल्वाय्ये०	6.4.55	अवयसि ठंश्च	5.1.83	अष्टन आ विभक्तौ	7.2.84	आक्रोशे च	6.2.158
अरण्यान्मनुष्ये	4.2.128	अवयाः श्वेतवाः	8.2.67	अष्टनः संज्ञायाम्	6.3.125	आक्रोशे नञ्यनिः	3.3.112
अरिष्टगौडपूर्वे च	6.2.100	अवसमन्धेभ्य०	5.4.79	अष्टनो दीर्घात्	6.1.166	आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः	3.3.45
अरुर्द्विषदजन्तस्य	6.3.67	अवाच्चालम्बना०	8.3.68	अष्टाभ्य औश्	7.1.21	आ क्वेस्तच्छील०	3.2.134

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख्यातोपयोगे	1.4.29	आतो लोप इटि च	6.4.64	आम एकान्तर०	8.1.55	आहस्थः	8.2.35
आगवीनः	5.2.14	आत्मनश्च	6.3.6	आमः	2.4.81	आहि च दूरे	5.3.37
आगस्त्यकौण्डि०	2.4.70	आत्मनेपदेष्वनतः	7.1.5	आमन्त्रितं पूर्वम०	8.1.72	आहो उताहो	8.1.49
आग्रहायण्यश्व०	4.2.21	आत्मनेपदेष्व०	2.4.44	आमन्त्रितस्य च	6.1.192		
आङ उद्गमने	1.3.40	आत्मनेपदेष्व०	3.1.54	आमन्त्रितस्य च	8.1.19	इ	
आङि चापः	7.3.105	आत्मन्विश्वजन०	5.1.9	आमि सर्वनाम्नः	7.1.52	इकः काशे	6.3.123
आङि ताच्छील्ये	3.2.11	आत्ममाने खश्च	3.2.83	आमेतः	3.4.90	इकः सुञि	6.3.134
आङि युद्धे	3.3.73	आत्माध्वानौ खे	6.4.169	आम्प्रत्ययवत्०	1.3.63	इको गुणवृद्धी	1.1.3
आङो दोऽनास्य०	1.3.20	आदरानादरयोः	1.4.62	आम्रेडितं भर्त्सने	8.2.95	इकोऽचि विभक्तौ	7.1.73
आङो नाऽस्त्रियाम्	7.3.119	आदाचार्याणाम्	7.3.49	आयनेयीनीयियः	7.1.2	इको झल्	1.2.9
आङोऽनुनासि०	6.1.122	आदिः प्रत्येनसि	6.2.27	आयादय आर्ध०	3.1.31	इको यणचि	6.1.74
आङो यमहनः	1.3.28	आदिः सिचो०	6.1.181	आयुक्तकुशला०	2.3.40	इको बहेऽपीलोः	6.3.121
आङो यि	7.1.65	आदिकर्मणि क्त	3.4.71	आयुधजीविभ्य०	4.3.91	इकोऽसवर्णे शाक०	6.1.123
आङ् मर्यादाभि०	2.1.12	आदितश्च	7.2.16	आयुधजीवि०	5.3.114	इको ह्रस्वोऽङ्यो०	6.3.61
आङ् मर्यादावचने	1.4.88	आदिरन्तेन	1.1.70	आयुधाच्छ च	4.4.14	इगन्तकालकपाल०	6.2.29
आङ्माङोश्च	6.1.72	आदिरुदात्तः	6.2.64	आरगुदीचाम्	4.1.130	इगन्ताच्च लघु०	5.1.130
आ च त्वात्	5.1.119	आदिर्ञिटुडवः	1.3.5	आर्धधातुकं शेषः	3.4.114	इगुपधज्ञाप्रीकिरः	3.1.135
आ च हौ	6.4.117	आदिर्णमुल्यन्य०	6.1.188	आर्धधातुकस्ये०	7.2.35	इग्यणः संप्रसारणम्	1.1.44
आचार्योपसर्जन०	6.2.104	आदिश्चिहणा०	6.2.125	आर्धधातुके	2.4.35	इङश्च	2.4.48
आचार्योपसर्जन०	6.2.36	आदृगमहनजनः	3.2.171	आर्धधातुके	6.4.46	इङश्च	3.3.21
आच्छीनद्योर्नुम्	7.1.80	आदेः परस्य	1.1.53	आर्यो ब्राह्मणकु०	6.2.58	इङ्धार्योः	3.2.130
आज्जसेरसुक्	7.1.50	आदेच उपदेशे०	6.1.44	आर्हादगोपुच्छ०	5.1.19	इच एकाचोऽम्प्र०	6.3.68
आज्ञायिनि च	6.3.5	आदेशप्रत्यययोः	8.3.59	आलजाटचौ	5.2.125	इच्कर्मव्यतिहारे	5.4.127
आटश्च	6.1.87	आद् गुणः	6.1.84	आवट्याच्च	4.1.75	इच्छा	3.3.101
आडजादीनाम्	6.4.72	आद्यन्तवदेकस्मिन्	1.1.20	आवश्यकाधम०	3.3.170	इच्छार्थेभ्यो	3.3.160
आडुत्तमस्य पिच्च	3.4.92	आद्यन्तौ टकितौ	1.1.45	आवसथात्ठल्	4.4.74	इच्छार्थेषु लिङ्०	3.3.157
आढकाचित०	5.1.52	आद्युदात्तं द्व्यच्छ०	6.2.119	आशंसायां	3.3.132	इजादेश्च सनुमः	8.4.31
आढ्यसुभगस्थूल०	3.2.56	आद्युदात्तश्च	3.1.3	आशंसावचने	3.3.134	इजादेश्च गुरुमतो०	3.1.36
आण् नद्या	7.3.112	आधारोऽधिकरणम्	1.4.45	आशङ्काबाधने०	6.2.21	इञः प्राचाम्	2.4.60
आत ऐ	3.4.95	आनङृतो द्वन्द्वे	6.3.25	आशितः कर्ता	6.1.201	इञश्च	4.2.111
आत औ णलः	7.1.34	आनाय्योऽनित्ये	3.1.127	आशिते भुवः	3.2.45	इट ईटि	8.2.28
आतः	3.4.110	आनि लोट्	8.4.16	आशिषि च	3.1.150	इटोऽत्	3.4.106
आतश्चोपसर्गे	3.1.136	आने मुक्	7.2.82	आशिषि नाथः	2.3.55	इट् सनि वा	7.2.41
आतश्चोपसर्गे	3.3.106	आन्महतः	6.3.46	आशिषि लिङ्०	3.3.173	इडत्यर्तिव्ययती०	7.2.66
आतो ङितः	7.2.81	आपत्यस्य च	6.4.151	आशिषि हनः	3.2.49	इडाया वा	8.3.54
आतोऽटि नित्यम्	8.3.3	आपो जुषाणो०	6.1.114	आश्चर्यमनित्ये	6.1.142	इणः षः	8.3.39
आतो धातोः	6.4.140	आपोऽन्यतर०	7.1.15	आश्वयुज्या वुञ्	4.3.45	इणः षीध्वंलुङ्०	8.3.78
आतोऽनुपसर्गे कः	3.2.3	आप्ज्ञप्यृधामीत्	7.4.55	आसन्दीवदष्ठी०	8.2.12	इणो गा लुङि	2.4.45
आतो मनिन्०	3.2.74	आप्रपदं प्राप्नोति	5.2.8	आ सर्वनाम्नः	6.3.91	इणो यण्	6.4.81
आतो युक् चिण्	7.3.33	आबाधे च	8.1.10	आसुयुवपिरपि०	3.1.126	इण्कोः	8.3.57
आतो युच्	3.3.128	आभीक्ष्ण्ये णमुल्च	3.4.22	आस्पदं प्रतिष्ठा०	6.1.141	इण्नशजिसर्ति०	3.2.163

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्निष्ठायाम् 7.2.47
इतराभ्योऽपि 5.3.14
इतरेतरान्योन्यो० 1.3.16
इतश्च 3.4.100
इतश्च लोपः 3.4.97
इतश्चानिञः 4.1.122
इतोऽत्सर्वनाम० 7.1.86
इतो मनुष्यजातेः 4.1.65
इत्थंभूतलक्षणे 2.3.21
इत्थंभूतेन कृत० 6.2.149
इदंकिमोरीश्की 6.3.90
इदन्तो मसि 7.1.46
इदम् इश् 5.3.3
इदमस्थमुः 5.3.24
इदमोऽन्वादेशे० 2.4.32
इदमो मः 7.2.108
इदमोहिंल् 5.3.16
इदमो हः 5.3.11
इदितो नुम् धातोः 7.1.58
इदुदुपधस्य चा० 8.3.41
इदुद्भ्याम् 7.3.117
इदोऽय् पुंसि 7.2.111
इद् गोण्याः 1.2.50
इद्दरिद्रस्य 6.4.114
इद् वृद्धौ 6.3.28
इनः स्त्रियाम् 5.4.152
इनच्पिटच्चिकचि 5.2.33
इनण्यनपत्ये 6.4.164
इनित्रकट्यचश्च 4.2.50
इन्द्रवरुणभवशर्व० 4.1.49
इन्द्रियमिन्द्रलिङ्ग० 5.2.93
इन्द्रे च 6.1.120
इन्धिभवतिभ्यां च 1.2.6
इन्हन्पूषार्यम्णां 6.4.12
इरयोरे 6.4.76
इरितो वा 3.1.57
इवे प्रतिकृतौ 5.3.96
इषुगमियमां छः 7.3.77
इष्टकेषीका० 6.3.65
इष्टादिभ्यश्च 5.2.88
इष्ट्वीनमिति च 7.1.48
इष्ठस्य यिट् च 6.4.159
इसुसुक्तान्तात्कः 7.3.51
इसुसोः सामर्थ्ये 8.3.44
इस्मन्नन्विन्वषु च 6.4.97

ई

ई घ्राध्मोः 7.4.31
ई च खनः 3.1.111
ई च गणः 7.4.97
ई च द्विवचने 7.1.77
ईडजनोर्ध्वे च 7.2.78
ईडवन्दवृशंसदु० 6.1.208
ईदग्नेः सोमवरुण० 6.3.27
ईदासः 7.2.83
ईदूतौ च सप्तम्यर्थे 1.1.18
ईदूदेद् द्विवचनं 1.1.11
ईद्यति 6.4.65
ईयसश्च 5.4.156
ईवत्याः 6.1.215
ईशः से 7.2.77
ईश्वरे तोसुन्कसुनौ 3.4.13
ईषदकृता 2.2.7
ईषदन्यतरस्याम् 6.2.54
ईषदर्थे 6.3.105
ईषदसमाप्तौ कल्प० 5.3.67
ईषद्दुःसुषु कृच्छ्रा० 3.3.126
ई हल्यघोः 6.4.113
ई ३ चाक्रवर्म० 6.1.126

उ

उगवादिभ्यो यत् 5.1.2
उगितश्च 4.1.6
उगितश्च 6.3.45
उगिदचां सर्व० 7.1.70
उग्रंपश्येरंमद० 3.1.37
उच्चैरुदात्तः 1.2.29
उच्चैस्तरां वा 1.2.35
उञः ऊँ 1.1.17
उञि च पदे 8.3.21
उञ्छति 4.4.32
उञ्छादीनां च 6.1.154
उणादयो बहुलम् 3.3.1
उतश्च प्रत्ययाο 6.4.106
उताप्योः समο 3.3.152
उतो वृद्धिर्लुकि 7.3.89
उत्क उन्मनाः 5.2.80
उत्करादिभ्यश्छः 4.2.89
उत्तमैकाभ्यां च 5.4.90
उत्तरपथेनाहृ० 5.1.76
उत्तरपदवृद्धौ 6.2.105
उत्तरपदस्य 7.3.10
उत्तरपदादिः 6.2.111
उत्तरमृगपूर्वाच्च 5.4.98
उत्तराच्च 5.3.38
उत्तराधरदक्षिण० 5.3.34
उत्परस्यातः 7.4.88
उत्सादिभ्योञ् 4.1.86
उद ईत् 6.4.139
उदः स्थास्तम्भोः 8.4.60
उदकस्योदः 6.3.57
उदकेऽकेवले 6.2.96
उदक्च विपाशः 4.2.73
उदङ्कोऽनुदके 3.3.123
उदन्वानुदधौ च 8.2.13
उदराट्ठगाद्यूने 5.2.67
उदराश्वेषुषु 6.2.107
उदश्चरः सकर्मο 1.3.53
उदश्वितोऽन्यतरο 4.2.18
उदात्तयणोο 6.1.168
उदात्तस्वरितο 1.2.40
उदात्तस्वरितο 8.2.4
उदात्तादनुदात्तο 8.4.65
उदि कूले रुजिο 3.2.31
उदि ग्रहः 3.3.35
उदितो वा 7.3.56
उदि श्रयतियौतिο 3.3.49
उदीचां वृद्धाο 4.1.157
उदीचामातः 7.3.46
उदीचामिञ् 4.1.153
उदीचां माङोο 3.4.19
उदीच्यग्रामाच्च 4.2.108
उदुपधाद्भावादिο 1.2.21
उदोऽनूर्ध्वकर्मणि 1.3.24
उदोष्ठ्यापूर्वस्य 7.1.102
उद्धनोऽत्याधानम् 3.3.80
उद्विभ्यां काकु० 5.4.148
उद्विभ्यां तपः 1.3.27
उन्योर्ग्रः 3.3.29
उपकादिभ्योο 2.4.69
उपघ्न आश्रये 3.3.85
उपजानूपकर्णोο 4.3.40
उपज्ञाते 4.3.115
उपज्ञोपक्रमं तदाο 2.4.21
उपदेशेऽजनुनासिο 1.3.2
उपदेशेऽत्वतः 7.2.62
उपधायां च 8.2.78
उपधायाश्च 7.1.101
उपपदमतिङ् 2.2.19
उपपराभ्याम् 1.3.39
उपमानं शब्दार्थο 6.2.80
उपमानाच्च 5.4.137
उपमानादप्राणिषु 5.4.97
उपमानादाचारे 3.1.10
उपमानानि साο 2.1.54
उपमाने कर्मणि च 3.4.45
उपमितं व्याघ्राο 2.1.55
उपरिस्विदाο 8.2.102
उपर्यध्यधसः साο 8.1.7
उपर्युपरिष्टात् 5.3.31
उपसंवादाशयोश्च 3.4.8
उपसर्गप्रादुर्भ्याο 8.3.87
उपसर्गव्यपेतं च 8.1.38
उपसर्गस्य 6.3.122
उपसर्गस्यायतौ 8.2.19
उपसर्गाच्च 5.4.119
उपसर्गाच्छन्दο 5.1.117
उपसर्गात्खल्घञोः 7.1.67
उपसर्गात्सुनोतिο 8.3.65
उपसर्गात्वाङ्गं 6.2.177
उपसर्गादध्वनः 5.4.85
उपसर्गादसमासेο 8.4.14
उपसर्गादृति धातौ 6.1.88
उपसर्गाद्ध्रस्व 7.4.23
उपसर्गादनोत्परः 8.4.27

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसर्गे घोः किः 3.3.92
उपसर्गे च संज्ञा० 3.2.99
उपसर्गेऽदः 3.3.59
उवसर्गे रुवः 3.3.22
उपसर्जनं पूर्वम् 2.2.30
उपसर्या काल्या० 3.1.104
उपाच्च 1.3.84
उपाजेऽन्वाजे 1.4.72
उपात्प्रतियत्न० 6.1.134
उपात्प्रशंसायाम् 7.1.66
उपाद् द्व्यजजि० 6.2.194
उपाद्यमः स्वकरणे 1.3.56
उपाधिभ्यां त्यक० 5.2.34
उपान्मन्त्रकरणे 1.3.25
उपान्वध्याङ्वसः 1.4.48
उपेयिवानना० 3.2.109
उपोत्तमं रिति 6.1.211
उपोऽधिके च 1.4.86
उप्ते च 4.3.44
उभयथर्क्षु 8.3.8
उभयप्राप्तौ कर्मणि 2.3.66
उभादुदात्तो 5.2.44
उभे अभ्यस्तम् 6.1.5
उभे वनस्पत्या० 6.2.140
उभौ साभ्यासस्य 8.4.20
उमोर्णयोर्वा 4.3.155
उरः प्रभृतिभ्यः 5.4.151
उरण् रपरः 1.1.50
उरत् 7.4.66
उरसोऽण्च 4.4.94
उरसो यच्च 4.3.114
उर्ऋत् 7.4.7
उश्च 1.2.12
उषविदजागृ० 3.1.38
उषासोषसः 6.3.31
उष्ट्रः सादिवा० 6.2.40
उष्ट्राद् वुञ् 4.3.154
उस्यपदान्तात् 6.1.93

ऊ

ऊकालोऽज्झ्रस्व० 1.2.27
ऊङुतः 4.1.66
ऊडिदंपदाद्यप् 6.1.165
ऊतियूतिजूतिसा० 3.3.97
ऊदनोर्देशे 6.3.98
ऊदुपधाया० 6.4.89
ऊधसोऽङ् 5.4.131
ऊनार्थकलहं० 6.2.153
ऊरूत्तरपदादौपम्ये 4.1.69
ऊर्णाया युस् 5.2.123
ऊर्णोतेर्विभाषा 7.2.6
ऊर्णोतेर्विभाषा 7.3.90
ऊर्ध्वाद्विभाषा 5.4.130
ऊर्ध्वे शुषिपूरोः 3.4.44
ऊर्यादिच्विडाचश्च 1.4.60
ऊषसुषिमुष्क० 5.2.107

ऋ

ऋक्पूरब्धूः पथा० 5.4.74
ऋचः शे 6.3.55
ऋचितुनुघम० 6.3.133
ऋच्छत्यृताम् 7.4.11
ऋणमाधमर्ण्ये 8.2.60
ऋत उत् 6.1.107
ऋतश्च 7.4.92
ऋतश्च संयोगादेः 7.2.43
ऋतश्च संयोगा० 7.4.10
ऋतश्छन्दसि 5.4.158
ऋतष्ठञ् 4.3.78
ऋतेरीयङ् 3.1.29
ऋतो ङिसर्वना० 7.3.110
ऋतोऽञ् 4.4.49
ऋतो भारद्वाजस्य 7.2.63
ऋतोरण् 5.1.104
ऋतो विद्यायोनि० 6.3.23
ऋत्यकः 6.1.124
ऋत्विग्दधृषश्च 3.2.59
ऋत्व्यवास्त्व्य० 6.3.175
ऋदुपधाच्चाक्लृ० 3.1.110
ऋदुशनस्पुरुदं० 7.1.94
ऋदृशोऽङि गुणः 7.4.16
ऋद्धनोः स्ये 7.2.70
ऋन्नेभ्यो ङीप् 4.1.5
ऋषभोपानहो० 5.1.14
ऋष्यन्धक० 4.1.114
ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124

ॠ

ॠ इद्धातोः 7.1.100
ॠदोरप् 3.3.57

ए

एकः पूर्वपरयोः 6.1.81
एकगोपूर्वाट्ठञ् 5.2.118
एकतद्धिते च 6.3.62
एकधुराल्लुक्च 4.4.79
एकं बहुवीहिवत् 8.1.9
एकवचनं संबुद्धिः 2.3.49
एकवचनस्य च 7.1.32
एकविभक्ति चा० 1.2.44
एकशालायाष्ठज० 5.3.109
एकश्रुति दूरात्० 1.2.33
एकस्य सकृच्च 5.4.19
एकहलादौ पूर० 6.3.59
एकाच उपदेशे 7.2.10
एकाचो द्वे प्रथमस्य 6.1.1
एकाचो बशो 8.2.37
एकाच्च प्राचाम् 5.3.94
एकाजुत्तरपदे णः 8.4.12
एकादाकिनिच्चास० 5.3.52
एकादिश्चैकस्य 6.3.76
एकादेश उदात्तेन० 8.2.5
एकाद्धो ध्यमु० 5.3.44
एकान्याभ्यां 8.1.65
एको गोत्रे 4.1.93
एङः पदान्ता० 6.1.105
एङि पररूपम् 6.1.91
एङ् प्राचां देशे 1.1.74
एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः 6.1.67
एच इग्घ्रस्वादेशे 1.1.47
एचोऽप्रगृह्यस्या० 8.2.107
एचोऽयवायावः 6.1.75
एजेः खश् 3.2.28
एण्या ढञ् 4.3.156
एत ईद् बहुवचने 8.2.81
एत ऐ 3.4.93
एतत्तदोः सुलो० 6.1.128
एतदस्त्रतसोस्त्रत० 2.4.33
एतदोऽन् 5.3.5
एति संज्ञायाम० 8.3.99
एतिस्तुशास्वृ० 3.1.109
एतेतौ रथोः 5.3.4
एतेर्लिङि 7.4.24
एत्येधत्यूठ्सु 6.1.86
एधाच्च 5.3.46
एनपा द्वितीया 2.3.31
एनबन्यतरस्याम० 5.3.35
एरच् 3.3.56
एरनेकाचोऽसं० 6.4.82
एरुः 3.4.86
एर्लिङि 6.4.67
एहि मन्ये प्रहासे 8.1.46

ऐ

ऐकागारिकट्० 5.1.112
ऐषमोह्यःश्वसो० 4.2.104

ओ

ओः पुयण्ज्यपरे 7.4.80
ओः सुपि 6.4.83
ओक उचः के 7.3.64
ओजः सहोऽम्भसा० 4.4.27
ओजःसहोऽम्भस्त० 6.3.3
ओजसोऽहनि 4.4.130
ओत् 1.1.15
ओतः श्यनि 7.3.71
ओतो गार्ग्यस्य 8.3.20
ओदितश्च 8.2.45
ओमभ्यादाने 8.2.87
ओमाङोश्च 6.1.92
ओरञ् 4.2.70
ओरञ् 4.3.136
ओरावश्यके 3.1.125
ओर्गुणः 6.4.146
ओर्देशे ठञ् 4.2.118
ओषधेरजातौ 5.4.37

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधेश्च वि० 6.3.132
ओसि च 7.3.104

औ

औक्षमनपत्ये 6.4.173
औङ आपः 7.1.18
औतोऽम्शसोः 6.1.90
औदच्च घेः 7.3.118

क

कः करत्करति० 8.3.50
कंशंभ्यां बभयु० 5.2.138
कंसमन्थशूर्प० 6.2.122
कंसाट्टिठन् 5.1.25
कंसीयपरशव्य० 4.3.165
ककुदस्यावस्था० 5.4.146
कच्छाग्निवक्त्र० 4.2.125
कच्छादिभ्यश्च 4.2.132
कठचरकाल्लुक् 4.3.107
कठिनान्तप्रस्ता० 4.4.72
कडङ्करदक्षिणा० 5.1.68
कडाराः कर्मधा० 2.2.38
कणेमनसी श्रद्धा० 1.4.65
कण्ठपृष्ठग्रीवा० 6.2.114
कण्ड्वादिभ्यो यक् 3.1.27
कण्वादिभ्यो 4.2.110
कतरकतमौ कर्म० 6.2.57
कतरकतमौ जा० 2.1.63
कत्र्यादिभ्यो ढ० 4.2.94
कथादिभ्यष्ठक् 4.4.102
कद्रुकमण्डल्वो० 4.1.71
कन्था च 6.2.124
कन्थपलद० 4.2.141
कन्थायाष्ठक् 4.2.101
कन्यायाः क० 4.1.116
कपिज्ञात्योर्ढक् 5.1.126
कपि पूर्वम् 6.2.173
कपिबोधादा० 4.1.107
कपिष्ठलो गोत्रे 8.3.91
कमेर्णिङ् 3.1.30
कम्बलाच्च संज्ञा० 5.1.3
कम्बोजाल्लुक् 4.1.173
करणाधिकरण० 3.3.117
करणे च स्तो० 2.3.33
करणे यजः 3.2.85
करणेऽयोविद्रुषु 3.3.82
करणे हनः 3.4.37
कर्कलोहितादी० 5.3.110
कर्णललाटात्मक० 4.3.65
कर्णे लक्षण० 6.3.115
कर्णो वर्णलक्ष० 6.2.112
कर्तरि कर्मव्य० 1.3.14
कर्तरि कृत् 3.4.67
कर्तरि च 2.2.16
कर्तरि चर्षिदे० 3.2.186
कर्तरि भुवः 3.2.57
कर्तरि शप् 3.1.68
कर्तर्युपमाने 3.2.79
कर्तुः क्यङ् सलो० 3.1.11
कर्तुरीप्सिततमं 1.4.49
कर्तृकरणयो० 2.3.18
कर्तृकरणे कृता० 2.1.31
कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65
कर्तृकर्मणोश्च 3.3.127
कर्तृस्थे चाशरीरे 1.3.37
कर्नोजींवपुरुष० 3.4.43
कर्मण उकञ् 5.1.102
कर्मणा यमभि० 1.4.32
कर्मणि घटोऽठच् 5.2.35
कर्मणि च 2.2.14
कर्मणि च येन 3.3.116
कर्मणि दृशि० 3.4.29
कर्मणि द्वितीया 2.3.2
कर्मणि भृतौ 3.2.22
कर्मणि हनः 3.2.86
कर्मणीनि 3.2.93
कर्मणो रोमन्थ० 3.1.15
कर्मण्यग्न्या० 3.2.92
कर्मण्यण् 3.2.1
कर्मण्यधिकरणे 3.3.93
कर्मण्याक्रोशे 3.4.25
कर्मधारयवदु० 8.1.81
कर्मधारयेऽनिष्ठा 6.2.46
कर्मन्दकृशा० 4.3.111
कर्मप्रवचनीययुक्ते० 2.3.8
कर्मप्रवचनीयाः 1.4.82
कर्मवत्कर्मणा 3.1.87
कर्मवेषाद्यत् 5.1.99
कर्मव्यतिहारे 3.3.43
कर्माध्ययने वृत्तम् 4.4.63
कर्षात्वतो घ० 6.1.153
कलापिनोऽण् 4.3.108
कलापिवैशम्पा० 4.3.104
कलाप्यश्वत्थय० 4.3.48
कल्याण्यादी० 4.1.126
कवं चोष्णे 6.3.107
कव्यध्वरपृतन० 7.4.39
कव्यपुरीषपुरी० 3.2.65
कषादिषु यथा० 3.4.46
कष्टाय क्रमणे 3.1.14
कस्कादिषु च 8.3.48
कस्य च दः 5.3.72
कस्येत् 4.2.24
काण्डाण्डादी० 5.2.111
काण्डान्तात्क्षेत्रे 4.1.23
कानाम्रेडिते 8.3.12
का पथ्यक्षयोः 6.3.104
कापिश्याः ष्फक् 4.2.98
कामप्रवेदने० 3.3.153
काम्यच्च 3.1.9
कारकाद्दत्त० 6.2.148
कारके 1.4.23
कारनाम्नि च 6.3.10
कारे सत्यागदस्य 6.3.70
कार्तकौजपादय० 6.2.37
कार्मस्ताच्छील्ये 6.4.172
कालप्रयोजना० 5.2.81
कालविभागे 3.3.137
कालसमयवे० 3.3.167
कालाः 2.1.27
कालाः परिमा० 2.2.5
कालाच्च 5.4.33
कालाट्ठञ् 4.3.11
कालात् 5.1.77
कालात्साधुपु० 4.3.43
कालाद्यत् 5.1.106
कालाध्वनोरत्यन्त० 2.3.5
कालेभ्यो भववत् 4.2.33
कालोपसर्जने च 1.2.57
काश्यपकौशि० 4.3.103
काश्यादिभ्य० 4.2.115
कासूगोणीभ्यां० 5.3.90
कास्तीराजस्तु० 6.1.150
कास्प्रत्ययादाम० 3.1.35
किंकिलास्त्य० 3.3.146
किं क्रियाप्रश्ने० 8.1.44
किं क्षेपे 2.1.63
किंयत्तदो निर्धा० 5.3.92
किंवृत्तं च चिदु० 8.1.48
किंवृत्ते लिङ्० 3.3.144
किंवृत्ते लिप्सा० 3.3.6
किंसर्वनामबहु० 5.3.2
कितः 6.1.159
किति च 7.2.118
किदाशिषि 3.4.104
किमः कः 7.2.103
किमः क्षेपे 5.4.70
किमः संख्याप० 5.2.41
किमश्च 5.3.25
किमिदंभ्यां वो 5.2.40
किमेत्तिङव्य० 5.4.11
किमोऽत् 5.3.12
किरतौ लवने 6.1.135
किरश्च पञ्चभ्यः 7.2.75
किसरादिभ्यः० 4.4.53
कुगतिप्रादयः 2.2.18
कुटीशमीशुण्डा० 5.3.88
कुण्डं वनम् 6.2.136
कु तिहोः 7.2.104
कुत्वा डुपच् 5.3.89
कुत्सने च 8.1.69
कुत्सितानि 2.1.52
कुत्सिते 5.3.74
कुप्वोः क पौ च 8.3.37
कुमति च 8.4.13

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमहद्भ्याम०	5.4.105	कृत्यैरधिकार्थ०	2.1.32	क्त्वि स्कन्दिस्य०	6.4.31	क्षीराड्ढञ्	4.2.19
कुमारःश्रमणादि०	2.1.69	कृत्यैर्ऋणे	2.1.42	क्त्वो यक्	7.1.47	क्षुद्रजन्तवः	2.4.8
कुमारशीर्षयो०	3.2.51	कृत्योकेष्णुच्चा०	6.2.160	क्यङ्मानिनोश्च	6.3.36	क्षुद्राभ्यो वा	4.1.131
कुमारश्च	6.2.26	कृत्वोर्थप्रयोगे	2.3.64	क्यचि च	7.4.33	क्षुद्राभ्रमरवट०	4.3.118
कुमार्या वयसि	6.2.95	कृदतिङ्	3.1.93	क्यच्व्योश्च	6.4.152	क्षुब्धस्वान्त०	7.2.18
कुमुदनडवेतसे०	4.2.86	कृन्मेजन्तः	1.1.38	क्यस्य विभाषा	6.4.50	क्षुभ्नादिषु च	8.4.38
कुम्भपदीषु च	5.4.139	कृपो रो लः	8.2.18	क्याच्छन्दसि	3.2.170	क्षुल्लकश्च वैश्व०	6.2.39
कुरुगार्हपतरि०	6.2.42	कृभ्वस्तियोगे	5.4.50	क्रतुयज्ञभ्यश्च	4.3.68	क्षेत्रियच्परक्षेत्रे	5.2.92
कुरुनादिभ्यो०	4.1.170	कृमृदृरुहिभ्यश्छ०	3.1.59	क्रतूक्थादिसूत्रा०	4.2.59	क्षेपे	2.1.46
कुर्वादिभ्योण्यः	4.1.151	कृषेश्छन्दसि	7.4.64	क्रतौ कुण्डपा०	3.1.130	क्षेपे	6.2.108
कुलकुक्षिग्रीवा०	4.2.95	कृसृभृवृस्तुद्रु०	7.2.13	क्रत्वादयश्च	6.2.118	क्षेमप्रियमद्रे०	3.2.44
कुलटाया वा	4.1.127	कॄ धान्ये	3.3.30	क्रमः परस्मैप०	7.3.76	क्सस्याचि	7.3.72
कुलत्थकोपधादण्	4.4.4	केकयमित्रयुप्र०	7.3.2	क्रमश्च क्त्वि	6.4.18	ख	
कुलात्खः	4.1.139	केऽणः	7.4.13	क्रमादिभ्यो	4.2.60	खः सर्वधुरात्	4.4.78
कुलिजाल्लुक्खौ	5.1.54	केदाराद्यञ्च	4.2.39	क्रय्यस्तदर्थे	6.1.79	ख च	4.4.132
कुल्माषादञ्	5.2.83	केवलमामक०	4.1.30	क्रव्ये च	3.2.69	खचि ह्रस्वः	6.4.94
कुशाग्राच्छः	5.3.105	केशाद्वोऽन्यतर०	5.2.109	क्रियार्थोपपदस्य	2.3.14	खट्वा क्षेपे	2.1.25
कुषिरजोः प्राचां	3.1.90	केशाश्वाभ्यां य०	4.2.47	क्रियासमभिहारे	3.4.2	खण्डिकादि०	4.2.44
कुसीददशैकाद०	4.4.31	कोः कत्तत्पुरु०	6.3.101	क्रीङ्जीनां णौ	6.1.47	खनो घ च	3.3.125
कुसूलकूपकुम्भ०	6.2.102	कोपधाच्च	4.2.78	क्रीडोऽनुसंपरि०	1.3.21	खरवसानयोर्वि०	8.3.15
कुस्तुम्बुरूणि	6.1.138	कोपधाच्च	4.3.134	क्रीतवत्परिमा०	4.3.153	खरि च	8.4.54
कुहोश्चुः	7.4.62	कोपधादण्	4.2.131	क्रीतात्करणपूर्वात्	4.1.50	खलगोरथात्	4.2.49
कूलतीरतूल०	6.2.121	कोशाट्ठञ्	4.3.42	क्रुधद्रुहेर्ष्यासू०	1.4.37	खलयवमाषतिल०	5.1.7
कूलसूदस्थल०	6.2.129	कौमारापूर्ववचने	4.2.12	क्रुधद्रुहोरुपसृष्ट०	1.4.38	खर्या ईकन्	5.1.33
कृकणपर्णाद्भार०	4.2.144	कौरव्यमाण्डूका०	4.1.19	क्रुधमण्डार्थेभ्य०	3.2.151	खार्याः प्राचाम्	5.4.101
कृच्छ्रगहनयोः	7.2.22	कौशल्यकार्मा०	4.1.155	क्रौड्यादिभ्यश्च	4.1.80	खित्यनव्ययस्य	6.3.66
कृञः प्रतियत्ने	2.3.53	क्ङिति च	1.1.5	क्र्यादिभ्यः श्ना	3.1.81	खिदेश्छन्दसि	6.1.51
कृञः श च	3.3.100	क्तक्तवतू निष्ठा	1.1.25	क्लिशः क्त्वा०	7.2.50	ख्यत्यात्परस्य	6.1.108
कृञो द्वितीयतृ०	5.4.58	क्तस्य च वर्तमाने	2.3.67	क्वणो वीणायां च	3.3.65	ग	
कृञो हेतुताच्छी०	3.2.20	क्तादल्पाख्यायाम्	4.1.51	क्वसुश्च	3.2.107	गतिकारकोप०	6.2.139
कृञ्चानुप्रयुज्य०	3.1.40	क्तिच्क्तौ च सं०	3.3.174	क्वाति	7.2.105	गतिबुद्धिप्रत्यव०	1.4.52
कृतलब्धक्रीत०	4.3.38	क्ते च	6.2.45	क्विन्प्रत्ययस्य०	8.2.62	गतिरनन्तरः	6.2.49
कृते ग्रन्थे	4.3.116	क्तेन च पूजायाम्	2.2.12	क्विप् च	3.2.76	गतिर्गतौ	8.1.70
कृत्तद्धितसमा०	1.2.46	क्तेन नञ्विशि०	2.1.59	क्षत्राद्घः	4.1.138	गतिश्च	1.4.59
कृत्यचः	8.4.28	क्तेनाहोरात्रा०	2.1.44	क्षयो निवासे	6.1.195	गत्यर्थकर्मणि	2.3.12
कृत्यतुल्याख्या०	2.1.67	क्ते नित्यार्थे	6.2.61	क्षय्यजय्यौ श०	6.1.78	गत्यर्थलोटा	8.1.51
कृत्यल्युटो बहु०	3.3.113	क्तोऽधिकरणे च	3.4.76	क्षायो मः	8.2.53	गत्यर्थाकर्मक०	3.4.72
कृत्याः	3.1.95	क्त्रेर्मम् नित्यम्	4.4.20	क्षिप्रवचने लृट्	3.3.133	गत्वरश्च	3.2.164
कृत्यानां कर्तरि	2.3.71	क्त्वा च	2.2.22	क्षियः	6.4.59	गदमदचरयम०	3.1.100
कृत्यार्थे तवैके	3.4.14	क्त्वातोसुन्क०	1.1.39	क्षियाशीःप्रैषेषु०	8.2.104	गन्तव्यपण्यं	6.2.13
कृत्याश्च	3.3.171	क्त्वापि च्छन्द०	7.1.38	क्षियो दीर्घात्	8.2.46		

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धनावक्षेपण० 1.3.32
गन्धस्येदुत्पूति० 5.4.135
गम: क्वौ 6.4.40
गमश्च 3.2.47
गमहनजनखन० 6.4.98
गमेरिट् परस्मै० 7.2.58
गम्भीरान: 4.3.58
गर्गादिभ्यो यञ् 4.1.105
गर्तोत्तरपदा० 4.2.136
गर्हायां लडपि० 3.3.142
गर्हायां च 3.3.149
गवाश्वप्रभृतीनि 2.4.11
गवियुधिभ्यां 8.3.95
ग: स्थकन् 3.1.146
गहादिभ्यश्च 4.2.137
गाङ्कुटादिभ्यो० 1.2.1
गाङ् लिटि 2.4.49
गाण्ड्यजगात्० 5.2.110
गातिस्थाघुपा० 2.4.77
गाथिविदथिके० 6.4.165
गाधलवणयो: 6.2.4
गापोष्टक् 3.2.8
गिरेश्च सेनक० 5.4.112
गुडादिभ्यष्ठञ् 4.4.103
गुणवचनब्राह्म० 5.1.123
गुणोऽपृक्ते 7.3.91
गुणो यङ्लुको: 7.4.82
गुणोऽर्तिसंयो० 7.4.29
गुपूधूपविच्छि० 3.1.28
गुपेश्छन्दसि 3.1.50
गुप्तिज्किद्भ्य: सन् 3.1.5
गुरोरनृतोऽनन्त्य० 8.2.86
गुरोश्च हल: 3.3.103
गृधिव योः प्र० 1.3.69
गृष्ट्यादिभ्यश्च 4.1.136
गृहपतिना संयुक्ते 4.4.90
गेहे क: 3.1.144
गो: पादान्ते 7.1.57
गोचरसंचरव० 3.3.119
गोतन्तियवं पाले 6.2.78
गोतो णित् 7.1.90
गोत्रक्षत्रियाख्ये० 4.3.99
गोत्रचरणा० 5.1.133
गोत्रचरणाद्वुञ् 4.3.125
गोत्रस्त्रिया: 4.1.147
गोत्रादवत् 4.3.80
गोत्राद्यून्यस्त्रि० 4.1.94
गोत्रान्तेवासि० 6.2.69
गोत्रावयवात् 4.1.79
गोत्रे कुञ्जादिभ्य:० 4.1.98
गोत्रेऽलुगचि 4.1.89
गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र० 4.2.38
गोद्व्यचोऽसंख्या० 5.1.38
गोधाया ढ्रक् 4.1.129
गोपयसोर्यत् 4.3.157
गोपुच्छाट्ठञ् 4.4.6
गोयवाग्वोश्च 4.2.135
गोरतद्धितलुकि 5.4.92
गोबिडालसिंह० 6.2.72
गोश्च पुरीषे 4.3.142
गोषदादिभ्यो 5.2.62
गोष्ठात्खञ्भूत० 5.2.18
गोष्पदं सेविता० 6.1.140
गोस्त्रियोरुपस० 1.2.48
गौ: सादसादि० 6.2.41
ग्रन्थान्ताधिके 6.3.79
ग्रसितस्कभित० 7.2.34
ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च० 3.3.58
ग्रहिज्यावयिव्य० 6.1.16
ग्रहोऽलिटि दीर्घ: 7.2.37
ग्राम: शिल्पिनि 6.2.62
ग्रामकौटाभ्यां च 5.4.95
ग्रामजनपदैकदे० 4.3.7
ग्रामजनबन्धुभ्य० 4.2.42
ग्रामात्पर्यनुपूर्वात् 4.3.61
ग्रामाद्यखञौ 4.2.93
ग्रामेऽनिवसन्त: 6.2.84
ग्राम्यपशुसङ्घेष्व० 1.2.73
ग्रीवाभ्योऽण्च 4.3.57
ग्रीष्मवसन्ताद० 4.3.46
ग्रीष्मावरसमाद् 4.6.49
ग्रोयङि 8.2.20
ग्लाजिस्थश्च 3.2.139

घ

घकालतनेषु 6.3.17
घच्छौ च 4.4.117
घञ: सास्यां 4.2.57
घञपोश्च 2.4.38
घञि च भाव० 6.4.27
घनिलचौ च 5.3.79
घरूपकल्पचेलड्० 6.3.43
घसिभसोर्हलि 6.4.100
घुमास्थागापा० 6.4.66
घुषिरविशब्दने 7.2.23
घेर्डिति 7.3.111
घोर्लोपो लेटि 7.2.70
घोषादिषु च 6.2.85
घ्वसोरेद्धाव० 6.4.119

ङ

ङमो ह्रस्वादचि 8.3.32
ङयि च 6.1.206
ङसिङसोश्च 6.1.106
ङसिङ्यो: स्मा० 7.1.15
ङिच्च 1.1.52
ङिति ह्रस्वश्च 1.4.6
ङेप्रथमयोरम् 7.1.28
ङेराम्नद्याम्नीभ्य: 7.3.116
ङेर्य: 7.1.13
ङ्णो: कुक्टुक्शरि 8.3.28
ङ्यापो: संज्ञा० 6.3.63
ङ्याप्रातिपादि० 4.1.1
ङ्याश्छन्दसि 6.1.172

च

चक्षिङ: ख्याञ् 2.4.54
चङि 6.1.11
चङ्यन्यतर० 6.1.212
चजो: कु घिण्यतो: 7.3.52
चटकाया ऐरक् 4.1.128
चतुर: शसि 6.1.161
चतुरनडुहोरा० 7.1.98
चतुर्थी चाशिष्या० 2.3.73
चतुर्थी तदर्था० 2.1.35
चतुर्थो तदर्थे 6.2.43
चतुर्थी संप्रदाने 2.3.13
चतुर्थ्यर्थे बहुलं 2.3.62
चतुष्पादो गर्भि० 2.1.70
चतुष्पाद्भ्यो० 4.1.135
चनचिदिव० 8.1.57
चरणे ब्रह्मचा० 6.3.86
चरणेभ्यो धर्म० 4.2.45
चरति 4.4.8
चरफलोश्च 7.4.87
चरेष्ट: 3.2.16
चर्मणोऽञ् 5.1.15
चर्मोदरयो: पूरे: 3.4.31
चलनशब्दा० 3.2.148
चवायोगे प्रथमा 8.1.59
चादयोऽसत्वे 1.4.57
चादिलोपे विभा० 8.1.63
चादिषु च 8.1.58
चाय: की 6.1.21
चाय: की 6.1.34
चार्थे द्वन्द्व: 2.2.29
चाहलोप एवे० 8.1.62
चिणो लुक् 6.4.104
चिण्णमुलोर्दीर्घो० 6.4.93
चिण्ते पद: 3.1.60
चिण्भावकर्मणो: 3.1.66
चित: 6.1.157
चिते: कपि 6.3.127
चित्तवति नित्यम् 5.1.88
चित्याग्निचि० 3.1.132
चित्रीकरणे च 3.3.150
चिदिति चोप० 8.2.101
चिन्तिपूजि० 3.3.105
चिस्फुरोर्णौ 6.1.53
चीरमुपमानम् 6.2.127
चुटू 1.3.7
चूर्णादिनि: 4.4.23
चूर्णादीन्यप्रा० 6.2.134
चेलखेटकटुक० 6.2.126
चेले क्नोपे: 3.4.33
चो: कु: 8.2.30

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौ 6.1.216
चौ 6.3.137
च्छ्वोः शूडनु० 6.4.19
च्लि लुङि 3.1.43
च्लेः सिच् 3.1.44
च्वौ च 7.4.26

छ

छगलिनो ढि० 4.3.109
छ च 4.2.27
छत्रादिभ्यो णः 4.4.62
छदिरुपधिबलेर्ढञ् 5.1.13
छन्दसि गत्यर्थे० 3.3.129
छन्दसि घस् 5.1.105
छन्दसि च 5.1.66
छन्दसि च 5.4.142
छन्दसि च 6.3.126
छन्दसि ञ्वुञ् 4.3.19
छन्दसि निष्ट० 3.1.123
छन्दसि परि० 5.2.89
छन्दसि परेऽपि 1.4.80
छन्दसि पुनर्व० 1.2.61
छन्दसि लिट्० 3.2.105
छन्दसि लुङ्लङ्० 3.4.6
छन्दसि वनसः 3.2.27
छन्दसि वा प्रा० 8.3.49
छन्दसि शायज० 3.1.84
छन्दसि सहः 3.2.63
छन्दसीरः 8.2.15
छन्दसो निर्मिते 4.4.93
छन्दसो यदणौ 4.3.71
छन्दस्यनेकमपि० 8.1.35
छन्दस्यपि दृश्यते 6.4.73
छन्दस्यपि दृश्यते 7.1.76
छन्दस्युभयथा 3.4.117
छन्दस्युभयथा 6.4.5
छन्दस्युभयथा 6.4.86
छन्दस्यृदवग्रहात् 8.4.25
छन्दोगौक्थि० 4.3.128
छन्दोनाम्नि च 3.3.34
छन्दोनाम्नि च 8.3.94
छन्दोब्राह्मणानि 4.2.65
छात्र्यादयः शा० 6.2.86
छादेर्घेऽद्व्युपस० 6.4.96
छाया बाहुल्ये 2.4.22
छे च 6.1.71
छेदादिभ्यो नि० 5.1.63

ज

जश्शसोः शिः 7.1.20
जक्षित्यादयः षट् 6.1.6
जङ्गलधेनुवल० 7.3.25
जनपदतद० 4.2.123
जनपदशब्दा० 4.1.166
जनपदिनां ज० 4.3.100
जनपदे लुप् 4.2.80
जनसनखन० 3.2.67
जनसनखनां स० 6.4.42
जनिकर्तुः प्रकृतिः 1.4.30
जनिता मन्त्रे 6.4.53
जनिवध्योश्च 7.3.35
जपजभदहदश० 7.4.86
जम्ब्वा वा 4.3.162
जम्भासुहरित० 5.4.125
जयः करणम् 6.1.196
जराया जरस० 7.2.101
जल्पभिक्षकुट्ट० 3.2.155
जसः शी 7.1.17
जसि च 7.3.109
जहातेश्च 6.4.116
जहातेश्च क्त्वि 7.4.43
जागरूकः 3.2.165
जाग्रोऽविचिण्ण० 7.3.85
जातरूपेभ्यः 4.3.150
जातिकालसु० 6.2.170
जातिनाम्नः कन् 5.3.81
जातिरप्राणिनाम् 2.4.6
जातुयदोर्लिङ 3.3.147
जातेरस्त्रीविष० 4.1.63
जातेश्च 6.3.41
जात्यन्ताच्छ ब० 5.4.9
जात्याख्यायाम० 1.2.58
जात्वपूर्वम् 8.1.47
जानपदकुण्ड० 4.1.42
जान्तनशां वि० 6.4.32
जायाया निङ् 5.4.134
जालमानायः 3.3.124
जासिनिप्रहण० 2.3.56
जिघ्रतेर्वा 7.4.6
जिदृक्षिविश्री० 3.2.157
जिह्वामूलाङ्गु० 4.3.62
जीर्यतेरतृन् 3.2.104
जीवति तु 4.1.163
जीविकार्थे चा० 5.3.99
जीविकोपनिष० 1.4.78
जुचङ्क्रम्यद० 3.2.150
जुष्टार्पिते च 6.1.203
जुसि च 7.3.83
जुहोत्यादिभ्यः 2.4.75
जृव्रश्च्योः क्त्वि 7.2.55
जृस्तम्भुम्रुचुम्लु० 3.1.58
जे प्रोष्ठपदानाम् 7.3.18
ज्ञाजनोर्जा 7.3.79
ज्ञाश्रुस्मृदृशां 1.3.57
ज्ञोऽविदर्थस्य 2.3.51
ज्य च 5.3.61
ज्यश्च 6.1.41
ज्यादादीयसः 6.4.160
ज्योतिरायुषः 8.3.83
ज्योतिर्जनपदरा० 6.3.85
ज्योत्स्नातमि० 5.2.114
ज्वरत्वरस्रिव्य० 6.4.20
ज्वलितिक० 3.1.140

झ

झयः 5.4.111
झयः 8.2.10
झयो होऽन्यतर० 8.4.61
झरो झरि सवर्णे 8.4.64
झलां जशोऽन्ते 8.2.39
झलां जश्झशि 8.4.52
झलो झलि 8.2.26
झल्युपोत्तमम् 6.1.174
झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40
झस्य रन् 3.4.105
झेर्जुस् 3.4.108
झोऽन्तः 7.1.3

ञ

ञितश्च तत्प्रत्य० 4.3.152
ञीतः क्तः 3.2.187
ञ्नित्यादि० 6.1.191
ञ्यादयस्तद्रा० 5.3.119

ट

टाङसिङसामि० 7.1.12
टाबृचि 4.1.9
टिड्ढाणञ्द्वय० 4.1.15
टित आत्मनेप० 3.4.79
टेः 6.4.143
टेः 6.4.155
टितोऽथुच् 3.3.89

ठ

ठक् छौ च 4.2.83
ठगायस्थानेभ्यः 4.3.75
ठञ्कवचिनश्च 4.2.40
ठस्येकः 7.3.50
ठाजादावूर्ध्वं द्वि० 5.3.83

ड

डः सि धुट् 8.3.29
डति च 1.1.24
डाबुभाभ्याम० 4.1.13
ड्वितः क्त्रिः 3.3.88

ढ

ढकि लोपः 4.1.133
ढक्च मण्डूकात् 4.1.119
ढश्छन्दसि 4.4.106
ढे लोपोऽकद्र्वाः 6.4.147
ढो ढे लोपः 8.3.13
ढ्रलोपे पूर्वस्य० 6.3.111

ण

णचः स्त्रियामञ् 5.4.14

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णलुत्तमो वा	7.1.91	तत्र भव:	4.3.53	तनिपत्योश्छन्द०	6.4.99	तस्य भावस्त्व०	5.1.118
णितश्च	1.3.74	तत्र विदित इति	5.1.42	तनूकरणे तक्ष:	3.1.76	तस्य लोप:	1.3.9
णिजां त्रयाणां	7.4.75	तत्र साधु:	4.4.98	तनोतेर्यकि	6.4.44	तस्य वाप:	5.1.44
णिनि	6.2.79	तत्रोद्धृतममत्रे०	4.2.13	तनोतेर्विभाषा	6.4.17	तस्य विकार:	4.3.131
णिश्रिद्रुस्रु०	3.1.48	तत्रोपपदं सप्त०	3.1.92	तन्त्रादचिराप०	5.2.70	तस्य व्याख्यान	4.3.66
णेरणौ यत्कर्म	1.3.67	तत्सवदि:	5.2.7	तप:सहस्राभ्यां	5.2.102	तस्य समूह:	4.2.36
णेरध्ययने वृत्तम्	7.2.26	तथायुक्तं चानी०	1.4.50	तपरस्तत्कालस्य	1.1.69	तस्यादित उदा०	1.2.32
णेरनिटि	6.4.51	तदधीते तद्वेद	4.2.58	तपस्तप:कर्म०	3.1.88	तस्यापत्यम्	4.1.92
णेर्विभाषा	8.4.29	तदधीनवचने	5.4.54	तपोऽनुतापे	3.1.65	तस्येदम्	4.3.119
णेश्छन्दसि	3.2.137	तदर्थे विकृते:	5.1.12	तप्तनप्तनथनाश्च	7.1.45	तस्येश्वर:	5.1.41
णो न:	6.1.63	तदर्हति	5.1.62	तमधीष्टो भृतो	5.1.79	ताच्छील्यव०	3.2.129
णौ गमिरबोधने	2.4.46	तदर्हम्	5.1.116	तयोरेव कृत्य०	3.4.70	तादौ च निति	6.2.50
णौ चङ्युपधाया	7.4.1	तदशिष्यं संज्ञा०	1.2.53	तयोर्दार्हिलौ च	5.3.20	तान्येकवचन०	1.4.101
णौ च संश्चङो:	2.4.51	तदस्मिन्नधिक०	5.2.45	तयोर्य्वावचि	8.2.108	ताभ्यामन्यत्रो०	3.4.75
णौ च संश्चङो:	6.1.31	तदस्मिन्नन्नं०	5.2.82	तरति	4.4.5	तालादिभ्योऽण्	4.3.149
ण्य आवश्यके	7.3.65	तदस्मिन्नस्ती०	4.2.66	तरप्तमपौ घ:	1.1.21	तावतिथं ग्रहण०	5.2.77
ण्यक्षत्रियार्ष०	2.4.58	तदस्मिन्वृ०	5.1.46	तवकममकावेक०	4.3.3	तासस्त्योर्लोप:	7.4.50
ण्यासश्रन्थो०	3.3.107	तदस्मै दीयते	4.4.66	तवममौ ङसि	7.2.96	तासि च क्लृप:	7.2.60
ण्युट् च	3.1.147	तदस्य तदस्मि०	5.1.16	तवै चान्तश्च	6.2.51	तास्यनुदात्ते०	6.1.180
ण्वुल्तृचौ	3.1.133	तदस्य पण्यम्	4.4.51	तव्यत्तव्यानीयर:	3.1.96	तिककितवादि०	2.4.68
		तदस्य परिमाणम्	5.1.56	तसिलादिष्वाकृ०	6.3.35	तिकादिभ्य:	4.1.154
त		तदस्य ब्रह्मचर्यम्	5.1.93	तसिश्च	4.3.113	तिङश्च	5.3.56
तङानावात्मने०	1.4.99	तदस्य संजातं	5.2.36	तसेश्च	5.3.8	तिङस्त्रीणि त्री०	1.4.100
तत आगत:	4.3.74	तदस्य सोढम्	4.3.52	तसौ मत्वर्थे	1.4.19	तिङि चोदात्त०	8.1.71
तत्पुरुष:	2.1.21	तदस्यां प्रहरण०	4.2.56	तस्थस्थमिपां	3.4.101	तिङो गोत्रादी०	8.1.27
तत्पुरुष: समा०	1.2.42	तदस्यास्त्य०	5.2.94	तस्माच्छसो न:	6.1.99	तिङ्ङतिङ:	8.1.28
तत्पुरुषस्याङ्गु	5.4.86	तदो: स: सा०	7.2.106	तस्मादित्युत्तरस्य	1.1.66	तिङ्शित्सार्व०	3.4.113
तत्पुरुषे कृति	6.3.14	तदो दा च	5.3.19	तस्मान्नुडचि	6.3.74	ति च	7.4.89
तत्पुरुषे तुल्यार्थ०	6.2.2	तद् गच्छति पथि०	4.3.85	तस्मान्नुड् द्विहल:	7.4.71	तितुत्रतथसिसुसर०	7.2.9
तत्पुरुषे शाला०	6.2.123	तद्धरति वहत्या०	5.1.49	तस्मिन्नणि च	4.3.2	तित्तिरिवरत०	4.3.102
तत्पुरुषोऽनञ्०	2.4.19	तद्धितश्चासर्व०	1.1.37	तस्मिन्निति	1.1.65	तित्स्वरितम्	6.1.179
तत्प्रकृतवचने	5.4.21	तद्धितस्य	6.1.158	तस्मै प्रभवति	5.1.100	तिप्तस्झिसिप्थ०	3.4.78
तत्प्रत्यनु०	4.4.28	तद्धिता:	4.1.76	तस्मै हितम्	2.1.5	तिप्यनस्ते:	8.2.73
तत्प्रत्ययस्य	7.3.29	तद्धिताथोंत्तर०	2.1.50	तस्य च दक्षि०	5.1.94	तिरसस्तिर्यलोपे	6.3.94
तत्प्रयोजको०	1.4.54	तद्धितेष्वचामा०	7.2.117	तस्य तात्	7.1.44	तिरसोऽन्यतर	8.3.42
तत्र	2.1.45	तद्युक्तात्कर्मणो०	5.4.36	तस्य धर्म्यम्	4.4.47	तिरोऽन्तर्धौ	1.4.70
तत्र कुशल:	5.2.63	तद्राजस्य बहुषु०	2.4.62	तस्य निमित्तं	5.1.37	तिर्यच्यपवर्गे	3.4.60
तत्र च दीयते	5.1.95	तद्वहति रथयुग०	4.4.76	तस्य निवास:	4.2.68	ति विंशतेर्डिति	6.4.142
तत्र जात:	4.3.25	तद्वानासामुप०	4.4.125	तस्य परमाम्रेडि०	8.1.2	तिष्ठतेरित्	7.4.5
तत्र तस्येव	5.1.115	तनादिकृञ्भ्य०	3.1.79	तस्य पाकमूले	5.2.24	तिष्ठद्गुप्रभृतीनि	2.1.16
तत्र तेनेदमिति	2.2.27	तनादिभ्यस्त०	2.4.79	तस्य पूरणे ड्	5.2.48	तिष्यपुनर्वस्वो०	1.2.63
तत्र नियुक्त:	4.4.69						

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिसृभ्यो जसः 6.1.160
तीररूप्योत्तरप० 4.2.105
तीर्थे ये 6.3.87
तीषसहलुभरुष० 7.2.48
तुग्राद्धन् 4.4.115
तुजादीनां दीर्घो० 6.1.7
तुदादिभ्यः शः 3.1.77
तुन्दशोकयोः परि० 3.2.5
तुन्दादिभ्य 5.2.117
तुन्दिबलिवटे० 5.2.139
तुपश्यपश्यताहैः 8.1.39
तुभ्यमह्यौ ङयि 7.2.95
तुमर्थाच्च भाववः 2.3.15
तुमर्थे सेसेनसेऽसे० 3.4.9
तुमुन्ण्वुलौ क्रि० 3.3.10
तुरिष्ठेमेयःसु 6.4.154
तुरुस्तुशम्यमः 7.3.95
तुल्यार्थैरतुलो० 2.3.72
तुल्यास्यप्रयत्नं 1.1.9
तुश्छन्दसि 5.3.59
तुह्योस्ताङ्ङा० 7.1.35
तूदीसलातुरवर्म० 3.4.94
तूष्णीमि भुवः 3.4.63
तृजकाभ्यां कर्तरि 2.2.15
तृज्वत्क्रोष्टुः 7.1.95
तृणह इम् 7.3.92
तृणे च जातौ 6.3.103
तृतीया कर्मणि 6.2.48
तृतीया च होश्छ० 2.3.3
तृतीया तत्कृता० 2.1.29
तृतीयादिषु भा० 7.1.74
तृतीयाप्रभृतीन्यो० 2.2.21
तृतीयार्थे 1.4.84
तृतीयासप्तम्योः 2.4.84
तृतीयासमासे 1.1.29
तृन् 3.2.135
तृषिमृषिकृषेः 1.2.25
तृफलभजत्रपश्च 6.4.122
ते तद्राजाः 4.1.172
तेन क्रीतम् 5.1.36
तेन तुल्यं क्रि० 5.1.114
तेन दीव्यति 4.4.2
तेन निर्वृत्तम् 4.2.67
तेन निर्वृत्तम् 5.1.78
तेन परिजय्यल० 5.1.92
तेन प्रोक्तम् 4.3.101
तेन यथाकथा 5.1.97
तेन रक्तं रागात् 4.2.1
तेन वित्तश्चु० 5.2.26
तेन सहेति तुल्य० 2.2.28
तेनैकदिक् 4.3.112
ते प्राग्धातोः 1.4.79
तेमयावेकवचन० 8.1.22
तोः षि 8.4.42
तोर्लि 8.4.59
तौ सत् 3.2.127
त्यदादिषु दृशो० 3.2.60
त्यदादीनामः 7.2.102
त्यदादीनि च 1.1.73
त्यदादीनि सर्वै० 1.2.72
त्यागरागहास० 6.1.210
त्रपुजतुनोः षुक् 4.3.135
त्रसिगृधिधृषि० 3.2.140
त्रिंशच्चत्वारिंश० 5.1.61
त्रिककुत्पर्वते 5.4.147
त्रिचतुरोः स्त्रियां 7.2.99
त्रिप्रभृतिषु शा० 8.4.49
त्रेः संप्रसारणं च 5.2.55
त्रेस्त्रयः 6.3.48
त्रेस्त्रयः 7.1.53
त्वमावेकवचने 7.2.97
त्वामौ द्वितीयायाः 8.1.23
त्वाहौ सौ 7.2.94
त्वे च 6.3.64

थ

थट् च च्छन्दसि 5.2.50
थलि च सेटि 6.4.121
थलि च सेटीड० 6.1.190
थाथघञ्क्ताजबि० 6.2.144
थासः से 3.4.80
था हेतौ चच्छ० 5.3.26
थो न्थः 7.1.87

द

दंशसञ्जस्वञ्जां 6.4.25
दक्षिणादाच् 5.3.36
दक्षिणापश्चात्पुर० 4.2.97
दक्षिणेर्मा लुब्ध० 5.4.126
दक्षिणोत्तराभ्या० 5.3.28
दण्डव्यवसर्गयोश्च 5.4.2
दण्डादिभ्यः 5.1.65
ददातिदधात्यो० 3.1.139
दधस्तथोश्च 8.2.38
दधातेर्हिः 7.4.42
दध्नष्ठक् 4.2.17
दन्त उन्नत 5.2.106
दन्तशिखात्सं० 5.2.113
दम्भ इच्च 7.4.56
दयतेर्दिगिलिटि 7.4.9
दयायासश्च 3.1.37
दश्च 7.2.109
दश्च 8.2.75
दस्ति 6.3.124
दाणश्च सा चेच्च० 1.3.55
दाण्डिनायन० 6.4.174
दादेर्धातोर्घः 8.2.32
दाधर्तिदर्धर्ति० 7.4.65
दाधा ध्वदाप् 1.1.19
दाधेट्सिशदस० 3.2.159
दानीं च 5.3.18
दामन्यादित्रि० 5.3.116
दामहायनान्ताच्च 4.1.27
दाम्नीशसयुयुज० 3.2.182
दायाद्यं दायादे 6.2.5
दाशगोघ्नौ सं० 3.4.73
दाश्वान्साह्वा० 6.1.12
दिक्शब्दा ग्राम० 6.2.103
दिक्शब्देभ्यः 5.3.27
दिक्पूर्वपदाट्टञ् 4.3.6
दिक्पूर्वपदाद० 4.2.106
दिक्पूर्वपदान्डीप् 4.1.60
दिक्संख्ये संज्ञा० 2.1.49
दिगादिभ्यो० 4.3.54
दिङ्नामान्यन्त० 2.2.26
दित्यदित्यादि० 4.1.85
दिव उत् 6.1.127
दिव औत् 7.1.84
दिवः कर्म च 1.4.43
दिवसश्च पृथि० 6.3.30
दिवस्तदर्थस्य 2.3.58
दिवादिभ्यः 3.1.69
दिवात्रिभानि० 3.2.21
दिवो झल् 6.1.177
दिवो द्यावा 6.3.29
दिवोऽविजिगी० 8.2.49
दिशो मद्राणाम् 7.3.13
दिष्टिवितस्त्यो० 6.2.31
दीङो युडचि 6.4.63
दीधीवेवीटाम् 1.1.6
दीपजनबुधपूरि० 3.1.61
दीर्घ इणः किति 7.4.69
दीर्घकाशतुषभ्रा० 6.2.82
दीर्घजिह्वी च 4.1.59
दीर्घं च 1.4.12
दीर्घाच्च वरुणस्य 7.3.23
दीर्घाज्जसि च 6.1.101
दीर्घात् पदान्ताद्वा 6.1.73
दीर्घादटि समान० 8.3.9
दीर्घादाचार्या० 8.4.51
दीर्घोऽकितः 7.4.83
दीर्घो लघोः 7.4.94
दुःखात्प्रातिलो० 5.4.64
दुन्योरनुपसर्गे 3.1.142
दुरस्युर्द्रविण० 7.4.36
दुष्कुलाड्ढक् 4.1.142
दुहः कब्घश्च 3.2.70
दुहश्च 3.1.63
दूतस्य भागक० 4.4.120
दूराद्धूते च 8.2.84
दूरान्तिकार्थेभ्यो 2.3.35
दूरान्तिकार्थैः 2.3.34
दृक्स्ववस्वत० 7.1.83
दृग्दृशवतुषु 6.3.89

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृढः स्थूलबल०	7.2.20	द्वारादीनां च	7.3.4	द्व्यष्टनः संख्याया०	6.3.47	नक्षत्राद्धः	4.4.141
दृतिकुक्षिकल०	4.3.56	द्विगुरेकवचनन्	2.4.1	द्व्येकयोर्द्विवचनै०	1.4.22	नक्षत्राद्वा	8.3.100
दृशेः क्वनिप्	3.2.94	द्विगुश्च	2.1.22			नक्षत्रे च लुपि	2.3.45
दृशे विख्ये च	3.4.11	द्विगोः	4.1.21	ध		नक्षत्रेण युक्तः	4.2.3
दृष्टं साम	4.2.7	द्विगोः ष्ठंश्च	5.1.53	धः कर्मणि ष्ट्रन्	3.2.181	नक्षत्रेभ्यो बहु०	4.3.37
देयमृणे	4.3.47	द्विगोर्यप्	5.1.81	धनगणं लब्धा	4.4.84	नखमुखात्संज्ञा०	4.1.58
देये त्रा च	5.4.55	द्विगोर्लुगनपत्ये	4.1.88	धनहिरण्यात्कामे.	5.2.65	न गतिहिंसार्थे०	1.3.15
देवताद्वन्द्वे च	6.2.141	द्विगोर्वा	5.1.85	धनुषश्च	5.4.132	नगरात्कुत्सन०	4.2.127
देवताद्वन्द्वे च	6.3.26	द्विगौ क्रतौ	6.2.97	धन्वयोपधाद्वुञ्	4.2.120	न गुणादयोऽव०	6.2.175
देवताद्वन्द्वे च	7.3.21	द्विगौ प्रमाणे	6.2.12	धर्मे चरति	4.4.41	न गोपवनादि०	2.4.67
देवतान्तात्ता०	5.4.24	द्वितीयतृतीयच०	2.2.3	धर्मपथ्यर्थन्या०	4.4.92	न गोऽप्राणिष्व	6.3.77
देवपथादिभ्य०	5.3.100	द्वितीयाटौस्स्वेनः	2.4.34	धर्मशीलवर्णा०	5.2.132	न गोश्वन्सा०	6.1.176
देवब्रह्मणोरनु०	1.2.38	द्वितीया ब्राह्मणे	2.3.60	धर्मादनिच्केव०	5.4.124	न ङिसंबुद्ध्योः	8.2.8
देवमनुष्यपुरुष०	5.4.56	द्वितीयायां च	3.4.53	धातुसंबन्धे प्रत्य०	3.4.1	न चवाहाहैवयुक्ते	8.1.24
देवसुम्नयोर्यजुषि०	7.4.38	द्वितीयायां च	7.2.87	धातोः	3.1.91	न च्छन्दस्य	7.4.35
देवात्तल्	5.4.27	द्वितीयाश्रिता०	2.1.23	धातोः	6.1.156	नञ्	2.2.6
देविकार्शिशपा०	7.3.1	द्वितीये चानुपाख्ये	6.3.80	धातोः कर्मणः	3.1.7	नञः शुचीश्वर०	7.3.30
देविक्रुशोश्चोप०	3.2.147	द्वित्रिचतुर्भ्यः	5.4.18	धातोरेकाचो०	3.1.22	नञस्तत्पुरुषात्	5.4.71
देशे लुबिलचौ०	5.2.105	द्वित्रिपूर्वान्नि०	5.1.30	धातोस्तन्निमि०	6.1.77	नञो गुणप्रतिषे०	6.2.155
दैवयज्ञिशौचि०	4.1.81	द्वित्रिभ्यां	5.4.115	धात्वादेः षः सः	6.1.62	नञो जरमरमि०	6.2.116
दो दद्धोः	7.4.46	द्वित्रिभ्यां तय०	5.2.43	धान्यानां भवन	5.2.1	नञ्दुःसुभ्यो	5.4.121
दोषो णौ	6.4.90	द्वित्रिभ्यामंजलेः	5.4.102	धारेरुत्तमर्णः	1.4.35	नञ्सुभ्याम्	6.2.172
द्यतिस्यतिमा०	7.4.40	द्वित्रिभ्यां पाद्द०	6.2.197	धि च	8.2.25	नडशादाड्ड्व०	4.2.87
द्यावापृथिवीशु०	4.2.31	द्वित्र्योश्च धमुञ्	5.3.45	धिन्विकृण्व्योर०	3.1.80	नडादिभ्यः फक्	4.1.99
द्युतिस्वाप्योः	7.4.67	द्विदण्ड्यादिभ्य०	5.4.128	धुरो यड्ढकौ	4.4.77	नडादीनां कुक्च	4.2.90
द्युद्भ्यो लुङि	1.3.91	द्विर्वचनेऽचि	1.1.58	धूमादिभ्यश्च	4.2.126	न तिसृचतसृ	6.4.4
द्युद्रुभ्यां मः	5.2.108	द्विवचनविभ०	5.3.57	धृषिशसी वैया०	7.2.19	नते नासिकायाः	5.2.31
द्युप्रागपागुदक्प्र०	4.2.100	द्विषत्परयोस्ता०	3.2.39	ध्रुवमपायेऽपादा०	1.4.24	न तौल्वलिभ्यः	2.4.61
द्रवमूर्तिस्पर्शयोः	6.1.24	द्विषश्च	3.4.112	ध्वमो ध्वात्	7.1.42	न दण्डमाणवा०	4.3.129
द्रव्यं च भव्ये	5.3.104	द्विषोऽमित्रे	3.2.131	ध्वाङ्क्षेण क्षेपे	2.1.41	न दधिपयआदीनि	2.4.14
द्रोणपर्वतजीव०	4.1.103	द्विस्तावा त्रिः	5.4.84			नदीपौर्णमास्या०	5.4.110
द्रोश्च	4.3.158	द्विस्त्रिश्चतुरि०	8.3.43	न		नदी बन्धुनि	6.2.109
द्वन्द्वं रहस्यम०	8.1.15	द्वीपादनुसमुद्रं	4.3.10	नः क्ये	1.4.15	नदीभिश्च	2.1.19
द्वन्द्वमनोज्ञा०	5.1.132	द्वेस्तीयः	5.2.54	न कपि	7.4.14	न दुहस्नुनमा	3.1.89
द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य०	2.4.2	द्वैपवैयाघ्रादञ्	4.2.11	न कर्मव्यतिहारे	7.3.6	न दृशः	3.1.47
द्वन्द्वाच्चुदषहा०	5.4.106	द्व्यचः	4.1.121	न कवतेर्यङि	7.4.63	नद्याः शेषस्या०	6.3.44
द्वन्द्वाच्छः	4.2.6	द्व्यचश्छन्दसि	4.3.147	न कोपधायाः	6.3.37	नद्यादिभ्यो ढक्	4.2.96
द्वन्द्वादुन् वैर०	4.3.124	द्व्यचोऽतस्तिङः	6.3.135	न क्तिचि दीर्घश्च	6.4.39	नद्यां मतुप्	4.2.84
द्वन्द्वे घि	2.2.32	द्व्यजृद्ब्राह्मण०	4.3.72	न क्त्वा सेट्	1.2.18	नद्यृतश्च	5.4.153
द्वन्द्वे च	1.1.30	द्व्यञ्मगधकलि०	4.1.168	न क्रोडादिबह्वचः	4.1.56	न द्व्यचः प्राच्य०	4.2.112
द्वन्द्वोपतापगर्ह्या०	5.2.128	द्व्यन्तरूपसर्गेभ्यो०	6.3.97	न क्वादेः	7.3.59	न धातुलोप आर्ध०	1.1.4

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न ध्याख्यापॄमू०	8.2.57	नरे संज्ञायाम्	6.3.129	नाडीमुष्ट्योश्च	3.2.30	नित्यवीप्सयोः	8.1.4
न नञ्पूर्वात्तत्पु०	5.1.120	न लिङि	7.2.39	नातः परस्य	7.3.27	निनदीभ्यां	8.3.89
न निर्धारणे	2.2.10	न लुट्	8.1.29	नादिचि	6.1.100	निन्दहिंसक्लि०	3.2.146
न निविभ्याम्	6.2.181	न लुमताङ्गस्य	1.1.62	नादिन्याक्रोश	8.4.47	निपात एकाजनाङ्	1.1.14
ननौ पृष्टप्रति०	3.2.121	न लोकाव्यय०	2.3.69	नाद्धस्य	8.2.17	निपातस्य च	6.3.136
नन्दिग्रहिपचा०	3.1.134	नलोपः प्रातिपदि०	8.2.7	नाधार्थप्रत्यये	3.4.62	निपातैर्यद्यदिहं०	8.1.30
न न्द्राः संयोगादयः	6.1.3	नलोपः सुप्स्वर०	8.2.2	नानद्यतनवत्	3.3.134	निपानमाहावः	3.3.74
नन्वित्यनुज्ञैष०	8.1.43	नलोपो नञः	6.3.73	नानार्ज्ञः	1.3.58	निमूलसमूलयोः	3.4.34
नन्वोर्विभाषा	3.2.121	न ल्यपि	6.4.69	नान्तादसंख्या०	5.2.49	निरः कुषः	7.2.46
न पदान्तद्विर्व०	1.1.57	न वशः	6.1.20	नाभ्यस्तस्याचि०	7.3.87	निरभ्योः पूल्वोः	3.3.28
न पदान्ताट्टोर०	8.4.41	न विभक्तौ तुस्माः	1.3.4	नाभ्यस्ताच्छतुः	7.1.78	निरुदकादीनि	6.2.184
नपरे नः	8.3.27	न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः	7.2.59	नामन्त्रिते समा०	8.1.73	निर्वाणोऽवाते	8.2.50
न पादम्याङ्या०	1.3.89	नवेति विभाषा	1.1.43	नामन्यतरस्याम्	6.1.171	निर्वृत्तेऽक्षद्यूता०	4.4.19
नपुंसकमनपुंसके	1.2.69	न व्यो लिटि	6.1.45	नामि	6.4.3	निवाते वातत्राणे	6.2.8
नपुंसकस्य झलचः	7.1.72	न शब्दश्लोक०	3.2.23	नाम्न्यादिशि०	3.4.58	निवासचितिशरी०	3.3.41
नपुंसकाच्च	7.1.19	न शसददवादि०	6.4.126	नाम्रेडितस्या०	6.1.96	निव्यभिभ्यों०	8.3.119
नपुंसकादन्यत०	5.4.109	नशेः षान्तस्य	8.4.35	नावों द्विगोः	5.4.99	निशाप्रदोषाभ्यां	4.3.14
नपुंसके भावे	3.3.114	नशेर्वा	8.2.63	नाव्ययदिक्०	6.2.168	निष्कुलत्रिष्को०	5.4.62
न पूजनात्	5.4.69	नश्च	8.3.30	नाव्ययीभावाद्०	2.4.83	निष्ठा	2.2.36
न प्राच्यभर्गा०	4.1.176	नश्च धातुस्थो०	8.4.26	नासिकास्त	3.2.29	निष्ठा	3.2.102
न बहुव्रीहौ	1.1.28	नश्चापदान्तस्य	8.3.24	नासिकोदरौ०	4.1.55	निष्ठा च द्व्यज०	6.1.199
न भकुर्छुराम्	8.2.79	नश्छव्यप्रशान्	8.3.7	निकटे वसति	4.4.73	निष्ठायां सेटि	6.4.52
न भाभूपूकमि०	8.4.33	न षट्स्वस्रादिभ्यः	4.1.10	निगरणचलना०	1.3.87	निष्ठायामण्यदर्थे	6.4.60
न भूताधिकसं०	6.2.91	न संयोगाद्वम०	6.4.137	निगृह्यानुयोग च	8.2.94	निष्ठा शीङ्स्वि०	1.2.19
न भूवाक्चि०	6.2.19	न संख्यादेः	5.4.89	निघो निमितम्	3.3.87	निष्ठोपमानाद०	6.2.169
न भूसुधियोः	6.4.85	न संज्ञायाम्	5.4.155	नित्यं करोतेः	6.4.108	निष्ठोपसर्गपूर्व०	6.2.110
न भ्राण्नपान्न०	6.3.75	नसत्तनिषत्तानु०	8.2.61	नित्यं कौटिल्ये	3.1.23	निष्प्रवाणिश्च	5.4.160
नमः स्वस्तिस्वा०	2.3.16	न संप्रसारणे सं०	6.1.36	नित्यं क्रीडाजी०	2.2.17	निसमुपविभ्यो०	1.3.30
न मपूर्वोऽपत्ये०	6.4.170	न सामि वचने	5.4.5	नित्यं ङितः	3.4.99	निसस्तपताव०	8.3.102
नमस्पुरसोर्गत्योः	8.3.40	न सुदुभ्यों केव०	7.1.68	नित्यं छन्दसि	4.1..46	नीम्बञ्चुम्रंसु०	7.4.84
न माङ्योगे	6.4.74	न सुब्रह्मण्यायां	1.2.37	नित्यं छन्दसि	7.4.8	नीचैरनुदात्तः	1.2.30
नमिकम्पिस्म्य०	3.2.167	नस्तद्धिते	6.4.144	नित्यं पणः परि०	3.3.66	नीतौ च तद्युक्तात्	5.3.77
न मुने	8.2.3	नह प्रत्यारम्भे	8.1.31	नित्यं मन्त्रे	6.1.204	नुगतोऽनुनासि०	7.4.85
नमोवरिवश्चित्र०	3.1.19	न हास्तिनफ०	6.2.101	नित्यं वृद्धशरा	4.3.141	नुदविदोन्दत्रा०	8.2.56
न यः	3.2.152	नहिवृतिवृषि०	6.3.116	नित्यं शतादिमा०	5.2.57	नुम्विसर्जनीय०	8.3.58
न यदि	3.2.113	नहो धः	8.2.34	नित्यं संज्ञाछन्द०	4.1.29	नृ च	6.4.6
न यद्यनाकाः	3.4.23	नाग्लोपिशास्वृ०	7.4.2	नित्यं सपत्न्या०	4.1.34	नृ चान्यतर०	6.1.178
न यासयोः	7.3.45	नाचार्यराजर्त्वि०	6.2.133	नित्यं समासे०	8.3.45	नृन्पे	8.3.10
न य्वाभ्यां पदा०	7.3.3	नाञ्जलौ	1.1.10	नित्यं स्मयतेः	6.1.56	नेटि	7.2.4
न रपरसृपिसृ०	8.3.110	नाञ्चेः पूजायाम्	6.4.30	नित्यं हस्ते पा०	1.4.76	नेट्यलिटि रधेः	7.1.62
न रुधः	3.1.64	नाडीतन्त्र्योः	5.4.159	नित्यमसिच्प्र०	5.4.122	नेड्वशि कृति	7.2.8

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेतराच्छन्दसि	7.1.26	पणपादमाषशता०	5.1.34	परिखाया ढञ्	5.1.17	पात्रात्ठन्	5.1.45
नेदमदसोरकोः	7.1.11	पतः पुम्	7.4.19	परनिविभ्यः	8.3.70	पात्राद् घंश्च	5.1.67
नेन्द्रस्य परस्य	7.3.22	पतिः समास एव	1.4.8	परिन्योर्नीणोर्ध्रू०	3.3.37	पात्रेसमितादयश्च	2.1.47
नेन्सिद्धबध्नाति०	6.3.19	पत्यन्तपुरोहि०	5.1.127	परिपन्थं च तिष्ठति	4.4.36	पाथोनदीभ्यां	4.4.111
नेयङुवङ्स्थाना०	1.4.4	पत्यावैश्वर्ये	6.2.18	परिप्रत्युप्रापा०	6.2.33	पादः पत्	6.4.130
नेरनिधाने	6.2.192	पत्युर्नो यज्ञसं०	4.1.33	परिमाणाख्यायां	3.3.20	पादशतस्य	5.4.1
नेर्गदनदपतपद०	8.4.17	पत्रपूर्वादञ्	4.3.121	परिमाणान्तस्या०	7.3.17	पादस्य पदाज्या०	6.3.52
नेर्बिडज्बिरीस०	5.2.32	पत्राध्वर्युपरि०	4.3.122	परिमाणे पचः	3.2.33	पादस्य लोपो०	5.4.138
नेर्विशः	1.3.17	पथः पन्थ च	4.3.29	परिमुखं च	4.4.29	पादार्घाभ्यां च	5.4.25
नोङ्धात्वोः	6.1.169	पथः ष्कन्	5.1.74	परिवृतो रथः	4.2.9	पादोऽन्यतर०	4.1.8
नोत्तरपदेऽनु०	6.2.142	पथि च छन्दसि	6.3.108	परिव्यवेभ्यः क्रियः	1.3.18	पानं देशे	8.4.9
नोत्वद्वर्ध्रबि०	4.3.148	पथिमथोः सर्व०	6.1.193	परिषदो ण्यः	4.4.44	पापं च शिल्पिनि	6.2.68
नोदात्तस्वरितो०	8.4.66	पथिमथ्यृभुक्षा०	7.1.85	परिषदो ण्यः	4.4.101	पापाणके कुत्सितैः	2.1.53
नोदात्तोपदेश०	7.3.34	पथो विभाषा	5.4.72	परिस्कन्दः प्राचा०	8.3.75	पाय्यसांनाय्य०	3.1.129
नोनयतिध्वनय०	3.1.51	पथ्यतिथिवस०	4.4.104	परेरभितो भावि०	6.2.182	पारस्करप्रभृ०	6.1.151
नोपधात्थफा०	1.2.23	पदमस्मिन्दृश्यम्	4.4.87	परेर्मृषः	1.3.82	पारायणतुराय०	5.1.71
नोपधायाः	6.4.7	पदरुजविशस्पृ०	3.3.16	परेर्वर्जने	8.1.5	पाराशर्यशि०	4.3.110
नौगदनदपङ्गस्वनः	3.3.64	पदव्यवायेऽपि	8.4.37	परेश्च	8.3.74	पारेमध्ये षष्ठ्या	2.1.17
नौ ण च	3.3.60	पदस्य	8.1.16	परेश्च घाङ्कयोः	8.2.22	पार्श्वेनान्विच्छति	5.2.75
नौ द्व्यचष्ठन्	4.4.7	पदात्	8.1.17	परोक्षे लिट्	3.2.115	पाशादिभ्यो यः	4.2.48
नौवयोधर्मविष०	4.4.91	पदान्तस्य	8.4.36	परोवरपरंपर०	5.2.10	पितरामातरा च	6.3.33
नौ वृ धान्ये	3.3.48	पदान्तस्यान्यतर०	7.3.9	परौ घः	3.3.84	पिता मात्रा	1.2.70
न्यग्रोधस्य च	7.3.5	पदास्वैरिबा०	3.1.119	परौ भुवोऽवज्ञाने	3.3.55	पितुर्यच्च	4.3.79
न्यङक्वादीनां च	7.3.53	पदेऽपदेशे	6.2.7	परौ यज्ञे	3.3.47	पितृव्यमातुल०	4.2.35
न्यधी च	6.2.53	पदोत्तरपदं गृह्णाति	4.4.39	पर्पादिभ्यः ष्ठन्	4.4.10	पितृष्वसुश्छण्	4.1.132
		पद्दन्नोमास्हृ०	6.1.61	पर्यभिभ्यां च	5.3.9	पिष्टाच्च	4.3.143
प		पद्यत्यतदर्थे	6.3.53	पर्याप्तिवचनेष्व०	3.4.66	पीलाया वा	4.1.118
पक्षात्तिः	5.2.25	पन्थो ण नित्यम्	5.1.75	पर्यायार्हणोत्प०	3.3.111	पुंयोगादाख्यायाम्	4.1.48
पक्षिमत्स्यमृगा०	4.4.35	परः सन्निकर्षः	1.4.108	पर्वताच्च	4.2.142	पुंवत्कर्मधारय०	6.3.42
पङ्क्तिर्विंशति०	5.1.58	परवल्लिङ्गं द्वन्द्व०	2.4.26	पर्श्वादियौधेया	5.3.117	पुंसि संज्ञायां	3.3.118
पङ्गोश्च	4.1.68	परश्च	3.1.2	पललसूपशाकं	6.2.128	पुंसोऽसुङ्	7.1.89
पचो वः	8.2.52	परश्वधाङ्गञ्च	4.4.58	पलाशादिभ्यो वा	4.3.138	पुगन्तलघूपधस्य	7.3.86
पञ्चद्दशतौ वर्गे	5.1.59	परस्मिन्विभाषा	3.3.138	पश्चपश्चा च	5.3.33	पुच्छभाण्डचीव०	3.1.20
पञ्चमी भयेन	2.1.36	परस्मैपदानां	3.4.82	पश्चात्	5.3.32	पुत्रः पुम्भ्यः	6.2.132
पंचमी विभक्ते	2.3.42	पराजेरसोढः	1.4.26	पश्यार्थैश्चाना०	8.1.25	पुत्राच्छ च	5.1.39
पंचम्यपाङ्परिभिः	2.3.10	परादिश्छन्दसि	6.2.199	पाककर्णपर्णपुष्प०	4.1.64	पुत्रान्तादन्य०	4.1.159
पंचम्या अत्	7.1.31	परावनुपात्यय	3.3.38	पाघ्राध्माधेट्०	3.1.137	पुत्रेऽन्यतरस्याम्	6.3.22
पंचम्याः पराव०	8.3.51	परावरयोगे च	3.4.20	पाघ्राध्मास्था०	7.3.78	पुमः खय्यम्परे	8.3.6
पंचम्याः स्तोका०	6.3.2	परावराधमोत्तम०	4.3.5	पाणिघताडघौ	3.2.55	पुमान्स्त्रिया	1.2.67
पंचम्यामजातौ	3.2.98	परिक्रयणे संप्र०	1.4.44	पाण्डुकम्बला०	4.2.10	पुरा च परीप्सा०	8.1.42
पंचम्यास्तसिल्	5.3.7	परिक्लिश्यमाने	3.4.55	पातौ च बहुलम्	8.3.52	पुराणप्रोक्तेषु	4.3.105

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरि लुङ् चास्मे	3.2.122	पूर्वैः कृतमिनयौ	4.4.133	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः	3.1.118	प्रस्थोत्तरपद०	4.2.109
पुरुषश्चान्वा०	6.2.190	पूर्वोऽभ्यासः	6.1.4	प्रत्यभिवादे०	8.2.83	प्रहरणम्	4.4.57
पुरुषहस्तिभ्या०	5.2.38	पृथग्विनाना०	2.3.32	प्रत्ययः	3.1.1	प्रहासे च मन्यो०	1.4.105
पुरुषात्प्रमाणे०	4.1.24	पृथ्वादिभ्य०	5.1.121	प्रत्ययलोपे प्रत्य०	1.1.61	प्राक् कडारात्	2.1.3
पुरे प्राचाम्	6.2.99	पृषोदरादीनि	6.3.109	प्रत्ययस्थात्का०	7.3.44	प्राक् क्रीताच्छः	5.1.1
पुरोऽग्रतोऽग्रेषु	3.2.18	पेषं वासवाहन०	6.3.58	प्रत्ययस्य लुक्	1.1.60	प्राक्सितादड्०	8.3.63
पुरोऽव्ययम्	1.4.66	पैलादिभ्यश्च	2.4.59	प्रत्ययोत्तरपद०	7.2.98	प्रागिवात्कः	5.3.70
पुवः संज्ञायाम्	3.2.185	पोटायुवतिस्तो०	2.1.64	प्रत्याङ्भ्यां	1.3.59	प्रागेकादशभ्यो०	5.3.49
पुषादिद्युता०	3.1.55	पोरदुपधात्	3.1.98	प्रत्याङ्भ्यां	1.4.40	प्राग्घिताद्यत्	4.4.75
पुष्करादिभ्यो	5.2.135	पौराडाशपुरो०	4.3.70	प्रथने वावशब्दे	3.3.33	प्राग्दिशो विभक्तिः	5.3.1
पुष्यसिद्ध्यौ	3.1.116	प्यायः पी	6.1.28	प्रथनमचरम०	1.1.32	प्राग्दीव्यतोऽण्	4.1.83
पूःसर्वयोर्दारि०	3.2.41	प्रकारवचने जाती०	5.3.69	प्रथमयोः पूर्व०	6.1.98	प्राग्रीश्वरान्निपाताः	1.4.56
पूगाञ्ञ्योऽग्रा०	5.3.112	प्रकारवचने थाल्	5.3.23	प्रथमानिर्दिष्टं	1.2.43	प्राग्वतेष्ठञ्	5.1.18
पूगेष्वन्यतर०	6.2.28	प्रकारे गुणवचनस्य	8.1.12	प्रथमायाश्च	7.2.88	प्राग्वहतेष्ठक्	4.4.1
पूङः क्त्वा च	1.2.22	प्रकाशनस्थेया०	1.3.23	प्रथमोऽचिरोप०	6.2.56	प्राचां कटादेः	4.2.138
पूङश्च	7.2.51	प्रकृत्यान्तः०	6.1.111	प्रधानप्रत्ययार्थ०	1.2.56	प्राचां क्रीडायाम्	6.2.74
पूङ्यजोः शानन्	3.2.128	प्रकृत्या भगा०	6.2.137	प्रनिरन्तःशरेक्षु०	8.4.5	प्राचां ग्रामनगरा०	7.3.14
पूतनात्पूजित०	8.1.67	प्रकृत्याशिषि	6.3.83	प्रभवति	4.3.83	प्राचां नगरान्ते	7.3.24
पूजायां नान०	8.1.37	प्रकृत्यैकाच्	6.3.163	प्रभौ परिवृढः	7.2.21	प्राचां ष्फतद्धितः	4.1.17
पूतक्रतोरै च	4.1.36	प्रकृष्टे ठञ्	5.1.107	प्रमदसंमदौ	3.3.68	प्राचामवृद्धा०	4.1.160
पूरणगुणसुहि०	2.2.11	प्रजने वीयतेः	6.1.54	प्रमाणे च	3.4.51	प्राचामुपादेरड०	5.3.80
पूरणाद्भागे	5.3.48	प्रजने सर्तेः	3.3.71	प्रमाणे द्वयस०	5.2.37	प्राणभृज्जाति०	5.1.128
पूरणार्धाट्ठन्	5.1.47	प्रजोरिनिः	3.2.156	प्रयच्छति गर्ह्यम्	4.4.30	प्राणिरजतादि०	4.3.151
पूर्णाद्विभाषा	5.4.149	प्रज्ञादिभ्यश्च	5.4.38	प्रयाजानुयाजौ	7.3.62	प्राणिस्थादातो	5.2.96
पूर्वे तु भाषायाम्	8.2.98	प्रज्ञाश्रद्धार्चा०	5.2.101	प्रयै रोहिष्यै	3.4.10	प्रातिपदिकान्त०	8.4.11
पूर्वकालैकसर्व०	2.1.48	प्रणवष्टेः	8.2.89	प्रयोजनम्	5.1.108	प्रातिपदिकार्थ०	2.3.46
पूर्वत्रासिद्धम्	8.2.1	प्रणाय्यो	3.1.128	प्रयोज्यनियो०	7.3.68	प्रादयः	1.4.58
पूर्वपदात्	8.3.106	प्रतिः प्रतिनि०	1.4.91	प्रवाहणस्य ढे	7.3.28	प्रादस्वाङ्गं संज्ञा०	6.2.183
पूर्वपदात्संज्ञाया०	8.4.3	प्रतिकण्ठार्थल०	4.4.40	प्रवृद्धादीनां च	6.2.147	प्राद्वहः	1.3.81
पूर्वपरावरदक्षि०	1.1.33	प्रतिजनादिभ्यः	4.4.99	प्रशंसायां रूपम्	5.3.66	प्राध्वं बन्धने	1.4.77
पूर्ववत्सनः	1.3.62	प्रतिनिधिप्रति०	2.3.11	प्रशंसावचनैश्च	2.1.65	प्राप्तापन्ने च द्वितौ०	2.2.4
पूर्ववदश्ववडवौ	2.4.27	प्रतिपथमेति	4.4.42	प्रशस्यस्य श्रः	5.3.60	प्रायभवः	4.3.39
पूर्वसदृशसमो०	2.1.30	प्रतिबन्धि चिर०	6.2.6	प्रश्ने चासन्न०	3.2.117	प्रावृट्शरत्काला०	6.3.15
पूर्वादिनिः	5.2.86	प्रतियोगे पंचम्याः	5.4.44	प्रष्ठोऽग्रगामिनि	8.3.92	प्रावृष एण्यः	4.3.17
पूर्वादिभ्यो नव०	7.1.16	प्रतिश्रवणे च	8.2.99	प्रसमुपोदः पाद०	8.1.6	प्रावृषष्ठप्	4.3.26
पूर्वाधरावराणा०	5.3.39	प्रतिष्कशश्च	6.1.147	प्रसंभ्यां जानु०	5.4.129	प्रियवशे वदः	3.2.38
पूर्वापरप्रथमचरम०	2.1.57	प्रतिस्तब्धनिस्त०	8.3.114	प्रसितोत्सुकाभ्यां	2.3.44	प्रियस्थिरस्फि०	6.4.157
पूर्वापराधरोत्तर०	2.2.1	प्रतेरंश्वादयस्त०	6.2.193	प्रस्कण्वहरि०	6.1.148	प्रीतौ च	6.2.16
पूर्वाह्णापराह्णा०	4.3.28	प्रतेरुरसः सप्तमी०	5.4.82	प्रस्त्योऽन्यतर०	8.2.54	प्रुसृल्वः सम०	3.1.149
पूर्वे कर्तरि	3.2.19	प्रतेश्च	6.1.25	प्रस्थपुरवहा०	4.2.121	प्रे दाज्ञः	3.2.6
पूर्वे भूतपूर्वे	6.2.22	प्रत्नपूर्वविश्वे०	5.3.111	प्रस्थेऽवृद्धमक०	6.2.87	प्रे द्रुस्तुस्रुवः	3.3.27

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रे वणिजाम् 3.3.52
प्रे लपसृद्रुमथ० 3.2.145
प्रे लिप्सायाम् 3.3.46
प्रेष्यब्रुवोर्हविषो 2.3.61
प्रे स्त्रोऽयज्ञे 3.3.32
प्रैषातिसर्गप्राप्त० 3.3.163
प्रोक्ताल्लुक् 4.2.63
प्रोपाभ्यां युजे० 1.3.64
प्रोपाभ्यां समर्था० 1.3.42
प्लक्षादिभ्योऽण् 4.3.161
प्लुतप्रगृह्या 6.1.121
प्लुतावैच इदुतौ 8.2.106
प्वादीनां ह्रस्वः 7.3.80

फ

फक्फिञोरन्य० 4.1.91
फणां च सप्ता० 6.4.125
फलेग्रहिरात्मं० 3.2.26
फले लुक् 4.3.160
फल्गुनीप्रोष्ठ० 1.2.60
फाण्टांह्रतिमि० 4.1.150
फेनादिलच्च 5.2.99
फेश्छ च 4.1.149

ब

बन्धने चर्षौ 4.4.96
बन्धुनि बहुव्रीहौ 6.1.14
बन्धे च विभाषा 6.3.13
बभूथाततन्थ० 7.2.64
बर्हिषि दत्तम् 4.4.119
बलादिभ्यो 5.2.136
बहुगणवतुडति 1.1.22
बहुपूगगण० 5.2.52
बहुप्रजाश्छ० 5.4.123
बहुलं छन्दसि 2.4.39
बहुलं छन्दसि 2.4.73
बहुलं छन्दसि 2.4.76
बहुलं छन्दसि 3.2.88
बहुलं छन्दसि 5.2.122
बहुलं छन्दसि 6.1.33
बहुलं छन्दसि 7.1.8
बहुलं छन्दसि 7.1.10
बहुलं छन्दसि 7.1.103
बहुलं छन्दसि 7.3.97
बहुलं छन्दसि 7.4.78
बहुलं छन्दस्य० 6.4.75
बहुलमाभीक्ष्ण्ये 3.2.81
बहुवचनस्य 8.1.21
बहुवचने झल्येत 7.3.103
बहुव्रीहाविद० 6.2.162
बहुव्रीहेरूधसौ 4.1.25
बहुव्रीहेश्चान्तो० 4.1.52
बहुव्रीहौ प्रकृत्या 6.2.1
बहुव्रीहौ विश्वं 6.2.106
बहुव्रीहौ सक्थ्य० 5.4.113
बहुव्रीहौ संख्ये० 5.4.73
बहुषु बहुवचनम् 1.4.21
बहोर्नञ्वदुत्तर० 6.2.175
बहोर्लोपो भू च 6.4.158
बह्वच इञः 2.4.66
बह्वचः कूपेषु 4.2.72
बह्वचोऽन्तो० 4.3.67
बह्वचो मनुष्य० 5.3.78
बह्वच्पूर्वपदा० 4.4.64
बह्वन्यतरस्याम् 6.2.30
बह्वल्पार्थाच्छ० 5.4.42
बह्वादिभ्यश्च 4.1.45
बाष्पोष्मभ्या० 3.1.16
बाह्वन्तात्संज्ञा० 4.1.67
बाह्वादिभ्यश्च 4.1.96
बिभेतेर्हेतुभये 6.1.55
बिल्वकादिभ्य० 6.4.153
बिल्वादिभ्यो० 4.3.133
बिस्ताच्च 5.1.31
बृहत्या आच्छा० 5.4.6
बुधयुधनशज० 1.3.86
ब्रह्मणस्त्वः 5.1.135
ब्रह्मणो जान० 5.4.104
ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु 3.2.87
ब्रह्महस्तिभ्यां 5.4.78
ब्राह्मणकोष्णिके 5.2.71
ब्राह्मणमाणव 4.2.41
ब्राह्मोऽजातौ 6.4.171
ब्रुव ईट् 7.3.93
ब्रुवः पञ्चाना० 3.4.84
ब्रुवो वचिः 2.4.53
ब्रूहिप्रेष्यश्रौष० 8.2.91

भ

भक्ताख्यास्त० 6.2.71
भक्ताण्णः 4.4.100
भक्तादणन्य० 4.4.68
भक्तिः 4.3.95
भक्ष्येण मिश्री० 2.1.34
भजो ण्विः 3.2.62
भंजभासमिदो 3.2.161
भंजेश्च चिणि 6.4.33
भय्यप्रवय्ये च 6.1.80
भर्गात्त्रैगर्ते 4.1.111
भवतष्ठक्छसौ 4.2.114
भवतेरः 7.4.73
भविष्यति गम्यादयः 3.3.3
भविष्यति मर्यादा० 3.3.136
भवे छन्दसि 4.4.110
भव्यगेयप्रवचनी० 3.4.68
भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् 4.4.16
भस्त्रैषाजाज्ञा० 7.3.47
भस्य 6.4.129
भस्य टेर्लोपः 7.1.88
भागाद्यच्च 5.1.48
भावकर्मणोः 1.3.13
भावलक्षणे 3.4.16
भाववचनाश्च 3.3.11
भावे 3.3.18
भावे च 4.4.144
भावेऽनुपसर्गस्य 3.3.75
भाषायां सदव० 3.2.108
भासनोपसंभा० 1.3.47
भिक्षादिभ्योऽण् 4.2.37
भिक्षासेनादायेषु 3.2.17
भित्तं शकलम् 8.2.59
भिद्योद्धौ नदे 3.1.115
भियः क्रुक्लुकनौ 3.2.174
भियोऽन्यतर० 6.4.115
भियो हेतुभये 7.3.40
भीत्रार्थानां भयहेतुः 1.4.25
भीमादयोऽपा० 3.4.74
भीरोः स्थानम् 8.3.81
भीस्म्योर्हेतुभये 1.3.68
भीह्रीभृहुमद० 6.1.186
भीह्रीभृहुवां 3.1.39
भुजन्युब्जौ 7.3.61
भुजोऽनवने 1.3.66
भुवः प्रभवः 1.4.31
भुव संज्ञान्तः० 3.2.179
भुवश्च 3.2.138
भुवश्च 4.1.47
भुवश्च महा० 8.2.71
भुवो भावे 3.1.107
भुवो वुग्लुङ्० 6.4.88
भूतपूर्वे चरट् 5.3.53
भूते 3.2.84
भूते च 3.3.140
भूतेऽपि दृश्यन्ते 3.3.2
भूवादयो धातवः 1.3.1
भूषणेऽलम् 1.4.63
भूसुवोस्तिङि 7.3.88
भृञामित् 7.4.76
भृञोऽसंज्ञायाम् 3.1.112
भृशादिभ्यो 3.1.12
भोज्यं भक्ष्ये 7.3.69
भोभगोअघो० 8.3.17
भौरिक्याद्येषु० 4.2.53
भ्यसो भ्यम् 7.1.30
भ्रस्जो रोपध० 6.4.47
भ्राजभासधु० 3.2.177
भ्राजभासभाष० 7.4.3
भ्रातरि च 4.1.164
भ्रातुर्व्यच्च 4.1.144
भ्रातृपुत्रौ स्वसृ० 1.2.68
भ्रुवो वुक्च 4.1.125

म

मघवा बहुलम् 6.4.128
मड्डुकझर्झराद० 4.4.56
मतजनहलात्० 4.4.97

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतिबुद्धिपूजा० 3.2.188
मतुवसो रु संबुद्धौ 8.3.1
मतोः पूर्व० 6.1.213
मतोश्च बह्वजङ्गात् 4.2.71
मतौ च 4.4.136
मतौ छः सूक्त० 5.2.59
मतौ बह्वचो० 6.3.119
मत्वर्थे मास० 4.4.128
मदोऽनुपसर्गे 3.3.67
मद्रवज्योः कन् 4.2.130
मद्रात्परिवापणे 5.4.67
मद्रेभ्योऽञ् 4.2.107
मधुबभ्रोर्ब्राह्म 4.1.106
मधोः 4.4.139
मधोर्ञ च 4.4.129
मध्याद् गुरौ 6.3.11
मध्यान्मः 4.3.8
मध्ये पदे निवेचने 1.4.75
मध्वादिभ्यश्च 4.2.85
मनः 3.2.82
मनः 4.1.11
मनसः संज्ञायाम् 6.3.4
मनुष्यतत्स्थ० 4.2.133
मनोरौ वा 4.1.38
मनोज्ञाताव० 4.1.161
मन्क्तिन्व्याख्या० 6.2.151
मन्त्रे घसह्वर० 2.4.80
मन्त्रे वृषेषपच० 3.3.96
मन्त्रे श्वेतवहो० 3.2.71
मन्त्रेष्वाङ्यादे० 6.4.141
मन्त्रे सोमा० 6.3.131
मन्थौदनसक्तु 6.3.60
मन्यकर्मण्यना० 2.3.17
मपर्यन्तस्य 7.2.91
मय उञो वो वा 8.3.33
मयट् च 4.3.82
मयड्वैतयो० 4.3.140
मयतेरिदन्य० 6.4.70
मयूरव्यंसकाद० 2.1.71
मये च 4.4.138
मस्करमस्क० 6.1.149
मस्जिनशोर्झलि 7.1.60
महाकुलाद० 4.1.141
महान्व्रीह्यप० 6.2.38
महाराजप्रोष्ठ० 4.2.34
महाराजाट्टञ् 4.3.97
महेन्द्राद्घाणौ च 4.2.2
माङि लुङ् 3.3.175
माणवचरकाभ्यां 5.1.11
मातरपितरा० 6.3.32
मातुःपितुर्भ्यामः 8.3.85
मातुरुत्संख्या० 4.1.115
मातृपितृभ्यां 8.3.84
मातृष्वसुश्च 4.1.134
मात्रोपज्ञोपक्रम० 6.2.14
माथोत्तरपद० 4.4.37
मादुपधायाश्च 8.2.9
मानपश्वङ्गयोः 5.3.51
माने वयः 4.3.159
मान्बधदान्शान्० 3.1.6
मायायामण् 4.4.124
मालादीनां च 6.2.88
मासाद्वयसि 5.1.80
मितनखे च 3.2.34
मितां ह्रस्वः 6.4.92
मित्रे चर्षौ 6.3.130
मिथ्योपपदा० 1.3.71
मिदचोऽन्त्या० 1.1.46
मिदेर्गुणः 7.3.82
मिश्रं चानुपसर्ग० 6.2.154
मीनातिमिनो० 6.1.49
मीनातेर्निगमे 7.3.81
मुखं स्वांगम् 6.2.167
मुखनासिकावच० 1.1.8
मुचोऽकर्मकस्य 7.4.57
मुण्डमिश्रश्ल० 3.1.21
मुद्गादण् 4.4.25
मूर्तौ घनः 3.3.77
मूलमस्याबर्हि 4.4.88
मृजेर्विभाषा 3.1.113
मृजेर्वृद्धिः 7.2.114
मृडमृदगुध० 1.2.7
मृदस्तिकन् 5.4.39
मृषस्तिति० 1.2.20
मेघर्तिभयेषु कृञः 3.2.43
मेर्निः 3.4.89
मोऽनुस्वारः 8.3.23
मो नो धातोः 8.2.64
मो राजि समः 8.3.25
म्रियतेर्लुङ्लि० 1.3.61
म्वोश्च 8.2.65

य

यः सौ 7.2.110
यङश्चाप् 4.1.74
यङि च 7.4.30
यङोऽचि च 2.4.74
यङो वा 7.3.94
यचि भम् 1.4.18
यच्चयत्रयोः 3.3.148
यजजपदशां यङः 3.2.166
यजध्वैनमिति च 7.1.43
यजयाचयत० 3.3.90
यजयाचरुचप्रव० 7.3.66
यजुष्युरः 6.1.113
यजुष्येकेषाम् 8.3.104
यजेश्च करणे 2.3.63
यज्ञकर्मण्यजप० 1.2.34
यज्ञर्त्विग्भ्यां 5.1.70
यज्ञे समि स्तुवः 3.3.31
यञञोश्च 2.4.64
यञश्च 4.1.76
यञिञोश्च 4.1.101
यतश्च निर्धारणम् 2.3.41
यतोऽनावः 6.1.207
यत्तदेतेभ्यः परि० 5.1.39
यथातथयथापुर० 7.3.31
यथातथयोरसू० 3.4.28
यथामुखसंमु० 5.2.6
यथाविध्यनुप्र० 3.4.4
यथासंख्यमनु० 1.3.10
यथासादृश्ये 2.1.7
यथास्वे यथा० 8.1.14
यद्धितुपरं छन्दसि 8.1.56
यद्वृत्तान्नित्यम् 8.1.66
यमः समुपनिविषु 3.3.63
यमरमनमातां 7.2.73
यमो गन्धने 1.2.15
ययतोश्चातदर्थे 6.2.156
यरोऽनुनासिके० 8.4.44
यवयवकषष्टिका० 5.2.3
यश्च यङः 3.2.176
यसोऽनुपसर्गात् 3.1.71
यस्कादिभ्यो गोत्रे 2.4.63
यस्मात्प्रत्ययवि० 1.4.13
यस्मादधिकं यस्य 2.3.9
यस्य च भावेन 2.3.37
यस्य चायामः 2.1.15
यस्य विभाषा 7.2.15
यस्य हलः 6.4.49
यस्येति च 6.4.148
याजकादिभिश्च 2.2.9
याज्यान्तः 8.2.90
याडापः 7.3.113
याप्ये पाशप् 5.3.47
यावति विन्द० 3.4.30
यावत्पुरानिपात० 3.3.4
यावदवधारणे 2.1.8
यावद्यथाभ्याम् 8.1.36
यावादिभ्यः कन् 5.4.29
यासुट् परस्मै० 3.4.103
यीवर्णयोर्दीधीवे० 7.4.53
युक्तारोह्यादयश्च 6.2.81
युक्ते च 6.2.66
युग्यं च पत्रे 3.1.121
युजेरसमासे 7.1.71
युप्लुवोदीर्घ० 6.4.58
युवा खलतिप० 2.1.66
युवाल्पयोः कन० 5.3.64
युवावौ द्विव० 7.2.92
युवोरनाकौ 7.1.1
युष्मत्ततक्षु० 8.3.103
युष्मदस्मदोः 8.1.20
युष्मदस्मदोरना० 7.2.86

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युष्मदस्मदोरन्य० 4.3.1
युष्मदस्मदोर्ङसि 6.1.205
युष्मदस्मद्भ्यां 7.1.27
युष्मद्युपपदे स० 1.4.104
यूनस्तिः 4.1.77
यूनि लुक् 4.1.90
यूयवयौ जसि 7.2.93
यूस्त्र्याख्यौ नदी 1.4.3
ये च 6.4.109
ये च तद्धिते 6.1.60
ये चाभावकर्म० 6.4.168
येन विधिस्तदन्त० 1.1.71
येनांगविकारः 2.3.20
ये यज्ञकर्मणि 8.2.88
ये विभाषा 6.4.43
येषां च विरोधः 2.4.9
योगप्रमाणे च० 1.2.55
योगाद्यच्च 5.1.101
योऽचि 7.2.89
योजनं गच्छति 5.1.73
योपधाद्गुरु० 5.1.131

र

ऋतो हलादे० 6.4.161
रक्ते 5.4.32
रक्षति 4.4.33
रक्षोयातूनां ह० 4.4.121
रोरमनुष्ये० 4.2.99
रजःकृष्यासु० 5.2.112
रञ्जेश्च 6.4.26
रथवदयोश्च 6.3.102
रथाद्यत् 4.3.120
रदाभ्यां निष्ठातो 8.2.42
रधादिभ्यश्च 7.2.45
रधिजभोरचि 7.1.61
रभेरशब्लिटोः 7.1.63
रलो व्युपधाद्ध० 1.2.26
रश्मौ च 3.3.53
रषाभ्यां नो णः 8.4.1
रसादिभ्यश्च 5.2.95
राजदन्तादिषु 2.2.31
राजनि युधि० 3.2.95
राजन्यबहुवचन० 6.2.34
राजन्यादिभ्यो 4.2.52
राजन्वान्सौराज्ये 8.2.14
राजश्वशुराद्यत् 4.1.137
राजसूयसूर्य० 3.1.114
राजा च 6.2.59
राजा च प्रशंसा० 6.2.63
राजानःसखि० 5.4.91
राज्ञः क च 4.2.139
रात्राह्नाहाः पुं० 2.4.29
रात्रेः कृति वि० 6.3.72
रात्रेश्चाजसौ 4.1.31
रात्र्यहःसंवत्स० 5.1.86
रात्सस्य 8.2.24
राधीक्ष्योर्यस्य० 1.4.39
राधो हिंसायाम् 6.4.123
रायो हलि 7.2.85
राल्लोपः 6.4.21
राष्ट्रावारपारा० 4.2.92
रिक्ते विभाषा 6.1.202
रिङ् शयग्लिङ्षु 7.4.28
रि च 7.4.51
रीगृदुपधस्य च 7.4.90
रीङृतः 7.4.27
रुग्रिकौ च लुकि 7.4.91
रुच्यर्थानां प्रीय० 1.4.33
रुजार्थानां भाव० 2.3.54
रुदविदमुषग्रहि० 1.2.8
रुदश्च पंचभ्यः 7.3.98
रुदादिभ्यः सार्व० 7.2.76
रुधादिभ्यः श्नम् 3.1.78
रुष्यमत्वरसंघु० 7.2.28
रुहः पोऽन्यतर० 7.3.43
रुपादाहतप्र० 5.2.120
रेवतीजगती० 4.4.122
रेवत्यादिभ्य० 4.1.146
रैवतिकादिभ्य० 4.3.130
रोः सुपि 8.3.16
रोगाख्यायां 3.3.108
रोगाच्चापनयने 5.4.49
रोणी 4.2.78
रोपधेतोः प्राचां 4.2.122
रो रि 8.3.14
रोऽसुपि 8.2.69
वोंरुपधाया० 8.2.76

ल

लः कर्मणि च 3.4.69
लः परस्मैपदम् 1.4.98
लक्षणहेत्वोः 3.2.126
लक्षणे जायाप० 3.2.52
लक्षणेत्थंभूता० 1.4.89
लक्षणेनाभिप्रती० 2.1.13
लङः शाकटायन० 3.4.111
लटः शतृशान० 3.2.124
लट् स्मे 3.2.118
लभेश्च 7.1.64
लवणाट्ठञ् 4.4.52
लवणाल्लुक् 4.4.24
लशक्वतद्धिते 1.3.8
लषपतपदस्था० 3.2.154
लस्य 3.4.77
लाक्षारोचनाट्ठक् 4.2.2
लिङः सलोपोऽन० 7.2.79
लिङः सीयुट् 3.4.102
लिङर्थे लेट् 3.4.7
लिङाशिषि 3.4.116
लिङ् च 3.3.159
लिङ् चोर्ध्वमौहू० 3.3.9
लिङ्चोर्ध्वमौहू० 3.3.164
लिङ्निमित्ते 3.3.139
लिङ् यदि 3.3.168
लिङ्याशिष्यङ् 3.1.86
लिङ्सिचावात्म० 1.2.11
लिङ्सिचोरात्म० 7.2.42
लिटः कानज्वा 3.3.106
लिटस्तझयोरेशि० 3.4.81
लिटि धातोरनभ्या० 6.1.8
लिटि वयो यः 6.1.37
लिट् च 3.4.115
लिट्यन्यतरस्याम् 2.4.40
लिट्यभ्यासस्यो० 6.1.17
लिड्यङोश्च 6.1.29
लिति 6.1.187
लिपिसिचिह्वश्च 3.1.53
लिप्स्यमानसि० 3.3.7
लियः संमानन० 1.3.70
लीलोर्नुग्लुकाव० 7.3.39
लुक्तद्धितलुकि 1.2.49
लुक् स्त्रियाम् 4.1.109
लुग्वा दुहदिह० 7.3.73
लुङ् 3.2.110
लुङि च 2.4.43
लुङ्लङ्लृङ्० 6.4.71
लुङ्सनोर्घस्लृ 2.4.37
लुटः प्रथमस्य 2.4.85
लुटि च क्लृपः 1.3.93
लुपसदचरजप० 3.1.24
लुपि युक्तवद्व्या० 1.2.51
लुप् च 4.3.163
लुबविशेषे 4.2.4
लुब्योगाप्रख्या० 1.2.54
लुभो विमोहने 7.2.54
लुम्मनुष्ये 5.3.98
लृटः सद्वा 3.3.14
लृट् शेषे च 3.3.13
लेटोऽडाटौ 3.4.94
लोकसर्वलोका० 5.1.43
लोटो लङ्वत् 3.4.85
लोट् च 3.3.162
लोट् च 8.1.52
लोडर्थलक्षणे च 3.3.8
लोपः पिबतेरी० 7.4.4
लोपः शाकल्यस्य 8.3.19
लोपश्चास्यान्य० 6.4.107
लोपस्त आत्मने० 7.1.41
लोपे विभाषा 8.1.45
लोपो यि 6.4.118
लोपो व्योर्वलि 6.1.64
लोमादिपामा० 5.2.100
लोहितादिडा० 3.1.13
लोहितान्मणौ 5.4.30

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ल्यपि च 6.1.40
ल्यपि लघुपूर्वात् 6.4.56
ल्युट् च 3.3.115
ल्वादिभ्यः 8.2.44

व

वच उम् 7.4.20
वचिस्वपियजादी० 6.1.15
वचोऽशब्दसंज्ञा० 7.3.67
वञ्चिलु गृतश्च 1.2.24
वञ्चेर्गतौ 7.3.63
वतण्डाच्च 4.1.108
वतोरिड् वा 5.1.23
वतोरिथुक् 5.2.53
वत्सरान्ताच्छ० 5.1.90
वत्सशालाभि० 4.3.36
वत्सांसाभ्यां 5.2.98
वत्सोक्षाश्वर्षभे० 5.3.91
वदः सुपि क्यप्० 3.1.106
वदव्रजहलन्तस्या० 7.2.3
वनं समासे 6.2.178
वनगिर्योः संज्ञा० 6.3.117
वनं पुरगामिश्रका० 8.4.4
वनो र च 4.1.7
वन्दिते भ्रातुः 5.4.157
वमोर्वा 8.4.22
वयसि च 3.2.10
वयसि दन्तस्य 5.4.141
वयसि पूरणात् 5.2.130
वयसि प्रथमे 4.1.20
वयस्यासु मूर्ध्नो 4.4.127
वरणादिभ्यश्च 4.2.81
वर्गान्ताच्च 4.3.63
वर्ग्यादयश्च 6.2.130
वर्चस्केऽवस्करः 6.1.143
वर्णदृढादिभ्यः 5.1.122
वर्णादनुदात्तात्तो० 4.1.39
वर्णाद् ब्रह्मचा० 5.2.134
वर्णे चानित्ये 5.4.31
वर्णो वर्णेन 2.1.68
वर्णो वर्णेष्वनेते 6.2.3
वर्णौ वुक् 4.2.102
वर्तमानसामीप्ये 3.3.131
वर्तमाने लट् 3.2.123
वर्षप्रमाण ऊलोप० 3.4.32
वर्षस्याभविष्यति 7.3.16
वर्षाभ्यष्ठक् 4.3.18
वर्षाभ्वश्च 6.4.84
वर्षाल्लुक्च 5.1.87
वले 6.3.118
वशं गतः 4.4.86
वश्चास्यान्यतर० 6.1.38
वसतिक्षुधोरिट् 7.2.52
वसन्ताच्च 4.3.20
वसन्तादिभ्यष्ठक् 4.2.62
वसुस्रंसुर्ध्वस्वन० 8.2.72
वसोः समूहे च 4.4.140
वसोः संप्रसार० 6.4.131
वस्तेर्ढञ् 5.3.101
वस्नक्रयविक्रया० 4.4.13
वस्नद्रव्याभ्यां 5.1.50
वस्वेकाजाद्धसाम् 7.2.67
वहश्च 3.2.64
वहाभ्रे लिहः 3.2.32
वह्यं करणम् 3.1.102
वाकिनादीनां 4.1.158
वा क्यषः 1.3.90
वाक्यस्य टेः प्लुत० 8.2.82
वाक्यादेरामन्त्रि० 8.1.8
वा क्रोशदैन्ययोः 6.4.61
वा गमः 1.2.13
वा घोषमिश्र० 6.3.56
वाचंयमपुरं० 6.3.69
वा चित्तविरागे 6.4.91
वाचि यमो व्रते 3.2.40
वाचो ग्मिनिः 5.2.124
वाचो व्याहृता० 5.4.35
वा छन्दसि 3.4.88
वा छन्दसि 6.1.102
वा जाते 6.2.171
वा जृभ्रमुत्रसाम् 6.4.124
वातातीसारा० 5.2.129
वा दान्तशान्त० 7.2.27
वा द्रुहमुहष्णुह० 8.2.33
वा नपुंसकस्य 7.1.79
वा निंसनिक्षनि० 8.4.32
वान्तो यि प्रत्यये 6.1.76
वान्यस्मिन्स० 4.1.168
वान्यस्य संयोगादेः 6.4.68
वा पदान्तस्य 8.4.59
वा बहूनां जाति० 5.3.93
वा भावकरणयोः 8.4.10
वा भुवनम् 6.2.20
वा भ्राशभ्लाशव 3.1.70
वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ 4.2.8
वामि 1.4.5
वाम्शसोः 6.4.80
वा यौ 2.4.57
वाय्वृतुपित्रुषसो 4.2.30
वारणार्थानामी० 1.4.27
वा लिटि 2.4.55
वा ल्यपि 6.4.38
वावसाने 8.4.55
वा शरि 8.3.36
वा शोकष्यञ्रोगेषु 6.3.51
वा षपूर्वस्य निगमे 6.4.9
वाष्पोष्म 3.1.16
वा संज्ञायाम् 5.4.133
वासरूपोऽस्त्रि० 3.1.94
वासुदेवार्जुनाभ्यां 4.3.98
वा सुप्यापिशलेः 6.1.89
वाह ऊठ् 6.4.132
वाहः 4.1.61
वा ह च छन्दसि 5.3.13
वाहनमाहितात् 8.4.8
वाहिताग्न्यादिषु 2.2.37
वाहीकग्रामेभ्यश्च 4.2.116
विंशतिकात्खः 5.1.32
विंशतित्रिंशद्भ्यां 5.1.24
विंशत्यादिभ्य० 5.2.56
विकर्णकुषीतका 4.1.124
विकर्णशुङ्गच्छ० 4.1.117
विकशमिपरिभ्यः 8.3.96
विचार्यमाणानाम् 8.2.97
विज इट् 1.2.2
विजुपे छन्दसि 3.2.73
विड्वनोरनुनासि० 6.4.41
वित्तो भोगप्रत्य० 8.2.58
विदांकुर्वन्त्वित्य० 3.1.41
विदिभिदिच्छि० 3.2.162
विदूराञ्ज्यः 4.3.84
विदेः शतुर्वसुः 7.1.36
विदो लटो वा 3.4.83
विद्यायोनिसंब० 4.3.77
विधिनिमन्त्र० 3.3.161
विध्यत्यधनुषा 4.4.83
विध्वरुषोस्तुदः 3.2.35
विनञ्भ्यां नाना० 5.2.27
विनयादिभ्यष्ठक् 5.4.34
विन्दुरिच्छुः 3.2.169
विन्मतोर्लुक् 5.3.65
विपराभ्यां जेः 1.3.19
विपूयविनीयजि० 3.1.117
विप्रतिषिद्धं चान० 2.4.13
विप्रतिषेधे परं कार्यम् 1.4.2
विप्रसंभ्यो ड्वसं० 3.2.180
विभक्तिश्च 1.4.103
विभाषर्जोश्छ० 6.4.162
विभाषा 2.1.11
विभाषा कथमि० 3.3.143
विभाषा कदाकर्ह्योः 3.3.5
विभाषाऽकर्मकात् 1.3.85
विभाषा कार्षाप० 5.1.29
विभाषा कुरुयुग० 4.2.129
विभाषा कृञि 1.4.71
विभाषा कृञि 1.4.97
विभाषा कृवृषोः 3.1.120
विभाषाख्यान० 3.3.110
विभाषा गमहन० 7.2.68
विभाषा गुणे० 2.3.25
विभाषा ग्रहः 3.1.143
विभाषाऽग्रे प्रथम० 3.4.24
विभाषा घ्राधे० 2.4.78
विभाषा ङि रुप्लु० 3.3.50

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाषा ङिश्योः०	6.4.136	विभाषा सपूर्वस्य	4.1.34	वृद्धस्य च	5.3.62	व्यथो लिटि	7.4.68
विभाषा चत्वारिं०	6.3.49	विभाषा समीपे	2.4.16	वृद्धाच्छः	4.2.113	व्यधजपोरनुप०	3.3.61
विभाषा चिण्ण०	7.1.69	विभाषा साकां०	3.2.114	वृद्धाट्ठक्सौवीरे०	4.1.148	व्यन्सपत्ने	4.1.145
विभाषा चेः	7.3.58	विभाषा साति	5.4.52	वृद्धात्प्राचाम्	4.2.119	व्यवहिताश्च	1.4.81
विभाषा छन्दसि	1.2.36	विभाषा सुपो	5.3.68	वृद्धादकेकान्त०	4.2.140	व्यवह्रपणोः सम०	2.3.57
विभाषा छन्दसि	6.2.164	विभाषा सृजिदृशोः	7.2.65	वृद्धिनिमित्तस्य	6.3.39	व्यवायिनोऽन्त०	6.2.166
विभाषा छन्दसि	7.4.44	विभाषा सेनासु०	2.4.25	वृद्धिरादैच्	1.1.1	व्यश्च	6.1.42
विभाषा जसि	1.1.31	विभाषा स्वसृप०	6.3.24	वृद्धिरेचि	6.1.85	व्याङ्परिभ्यो	1.3.83
विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रि०	5.4.8	विभाषा हविरपू०	5.1.4	वृद्धिर्यस्याचामा०	1.1.72	व्याहरति मृगः	4.3.51
विभाषा तिलमा०	5.2.4	विभाषितं सोप०	8.1.53	वृद्धेत्कोसलाजा०	4.1.169	व्युपयोः शेतेः	3.3.39
विभाषा तृतीया०	7.1.97	विभाषेटः	8.3.79	वृद्धो यूना तल्लक्ष०	1.2.65	व्युष्टादिभ्योऽण्	5.1.95
विभाषा तृन्न०	6.2.161	विभाषोत्पुच्छे	6.2.196	वृद्ध्यः स्यसनोः	1.3.92	व्योर्लघुप्रयत्नतरः	8.3.18
विभाषा दिक्स०	1.1.27	विभाषोदरे	6.3.88	वृन्दारकनाग०	2.1.61	व्रजयजोर्भावे	3.3.98
विभाषा द्वितीया०	7.3.115	विभाषोपपदेन	1.3.77	वृषाकप्यग्निकु०	4.1.37	व्रते	3.2.80
विभाषा धातौ	3.3.155	विभाषोपयमने	1.2.16	वृषादीनां च	6.1.197	व्रश्च भ्रस्जसृजमृ०	8.2.36
विभाषा धेट्श्व्योः	3.1.49	विभाषोपसर्गे	2.3.59	वृतो वा	7.2.38	व्रातच्फञोर०	5.3.113
विभाषाध्यक्षे	6.2.67	विभाषोर्णोः	1.2.3	वेः पादविहरणे	1.3.41	व्रातेन जीवति	5.2.21
विभाषापः	6.4.57	विभाषोशीनरेषु	4.2.118	वेः शब्दकर्मणः	1.3.34	व्रीहिशाल्योर्ढक्	5.2.2
विभाषा परावरा०	5.3.29	विभाषौषधिवन०	8.4.6	वेः शलच्छटचौ	5.2.28	व्रीहेः पुरोडाशे	4.3.145
विभाषा परेः	6.1.43	विमुक्तादिभ्योऽण्	5.2.61	वेः स्कन्देरनिष्ठा०	8.3.73	व्रीह्यादिभ्यश्च	5.2.116
विभाषा पुरुषे	6.3.106	विरामोऽवसानम्	1.4.109	वेः स्कभ्नातेर्नि०	8.3.77		
विभाषा पूर्वा०	4.3.24	विशाखयोश्च	1.2.62	वेञः	6.1.39	श	
विभाषा पृष्टप्रति०	8.2.93	विशाखाषाढा०	5.1.109	वेञो वयिः	2.4.41	शकटादण्	4.4.80
विभाषा फाल्गु०	4.2.22	विशिपतिपदि०	3.4.56	वेतनादिभ्यो	4.4.12	शकधृषज्ञाग्ला०	3.4.65
विभाषा बहोर्धा	5.4.20	विशिष्टलिङ्गो नदी०	2.4.7	वेत्तेर्विभाषा	7.1.7	शकलाद्वा	4.3.127
विभाषा भावा०	7.2.17	विशेषणं विशेष्ये०	2.1.56	वेरपृक्तस्य	6.1.65	शकि णमुल्कमुलौ	3.4.12
विभाषा भाषा०	6.1.175	विशेषणानां चा०	1.2.52	वेशन्तहिमव०	4.4.112	शकि लिङ् च	3.3.172
विभाषाभ्यवपूर्व०	6.1.26	विश्वस्य वसुरा०	6.3.128	वेशोयशआदेर्भ०	4.4.131	शकिसहोश्च	3.1.99
विभाषा मनुष्ये	4.2.143	विषयो देशे	4.2.51	वेश्च स्वनो भोजने	8.3.69	शक्तियष्ट्योरीकक्	4.4.59
विभाषा रोगा०	4.3.13	विष्किरः शकुनौ०	6.1.145	वैतोऽन्यत्र	3.4.96	शक्तौ हस्तिक०	3.2.54
विभाषा लीयतेः	6.1.50	विष्वग्देवयोश्च	6.3.92	वैयाकरणाख्यायां	6.3.7	शण्डिकादिभ्यो०	4.3.92
विभाषा लुङ्लृङोः	2.4.50	विसर्जनीयस्य	8.3.34	वैवावेति च	8.1.65	शतमानविंशति०	5.1.27
विभाषावरस्य	5.3.41	विसारिणो मत्स्ये	5.4.16	वोताप्योः	3.3.141	शतसहस्रान्ता०	5.2.119
विभाषा वर्षक्षर०	6.3.16	विस्पष्टादीनि०	6.2.24	वोतो गुणवचनात्	4.1.44	शताच्च ठन्यता०	5.1.21
विभाषा विप्रलापे	1.3.50	वीरवीर्यौ च	6.2.120	वोपसर्जनस्य	6.3.82	शतुरनुमो नद्य०	6.1.167
विभाषा विवधात्	4.4.17	वुञ्छण्कठजिलसे०	4.2.79	वो विधूनने चुक्	7.3.38	शदन्तविंशतेश्च	5.2.46
विभाषा वृक्षमृ०	2.4.12	वृकज्येष्ठाभ्यां	5.4.41	वौ कषलसकत्थ०	3.2.143	शदेः शितः	1.3.60
विभाषा वेण्वि०	6.1.209	वृकाट्टेण्यण्	5.3.115	वौ क्षुश्रुवः	3.3.25	शदेरगतौ तः	7.3.42
विभाषा वेष्टिचे०	7.4.96	वृक्षासनयोर्विष्टरः	8.3.93	व्यक्तवाचां समु०	1.3.48	शप्श्यनोर्नित्यम्	7.1.81
विभाषा श्यावा०	5.4.114	वृणोतेराच्छादने	3.3.54	व्यंजनैरुपसिक्ते	4.4.26	शब्ददर्दुरं करोति	4.4.34
विभाषा श्वेः	6.1.30	वृत्तिसर्गतायनेषु	1.3.38	व्यत्ययो बहुलम्	3.1.85	शब्दवैरकलहा०	3.1.17

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शमामष्टानां दीर्घः	7.3.74	शीङः सार्वधातु०	7.4.21	श्याद्व्यधाम्रुसं०	3.1.141	षष्ठी	2.2.8
शमिता यज्ञे	6.4.54	शीङो रुट्	7.1.6	श्येनतिलस्य पाते	6.3.71	षष्ठी चानादरे	2.3.38
शमित्यष्टाभ्यो	3.2.141	शीतोष्णाभ्यां	5.2.72	श्योऽस्पर्शे	8.2.47	षष्ठी प्रत्येनसि	6.2.60
शमि धातोः	3.2.14	शीर्षेश्छन्दसि	6.1.59	श्रज्यावमकन्	6.2.25	षष्ठीयुक्तश्छन्दसि	1.4.9
शम्याष्ट्यलञ्	4.3.139	शीर्षच्छेदाद्यच्च	5.1.64	श्रविष्ठाफल्गु०	4.3.34	षष्ठी शेषे	2.3.50
शयवासवासि०	6.3.18	शीलम्	4.4.61	श्राणामांसौदना०	4.4.67	षष्ठी स्थानेयोगा	1.1.48
शरद्वच्छुनकद०	4.1.102	शुक्राद् घन्	4.2.25	श्राद्धमनेन भुक्त०	5.2.85	षष्ठी हेतुप्रयोगे	2.3.26
शरादीनां च	6.3.120	शुण्डिकादि०	4.3.76	श्राद्धे शरदः	4.3.12	षष्ठ्यातसर्थ०	2.3.30
शरीरावयवाच्च	4.3.55	शुभ्रादिभ्यश्च	4.1.123	श्रिणीभुवोऽनु०	3.3.24	षष्ठ्या आक्रोशे	6.3.21
शरीरावयवाद्यत्	5.1.6	शुषः कः	8.2.51	श्रीग्रामण्योश्छ०	7.1.56	षष्ठ्याः पतिपुत्र०	8.3.53
शरोऽचि	8.4.48	शुष्कचूर्णरूक्षेषु	3.4.35	श्रुवः शृ च	3.1.74	षष्ठ्या रूप्य च	5.3.54
शर्करादिभ्योऽण्	5.3.107	शुष्कधृष्टौ	6.1.200	श्रुशृणुपृकृवृ०	6.4.102	षष्ठ्या व्याश्रये	5.4.48
शर्कराया वा	4.2.82	शूद्राणामनिर०	2.4.10	श्रेण्यादयः कृता०	2.1.58	षात्पदान्तात्	8.4.34
शपरे विसर्जनीयः	8.3.35	शूर्पादञन्यतर०	5.1.26	श्रोत्रियंश्छन्दो०	5.2.84	षिद्गौरादिभ्यश्च	4.1.41
शर्पूर्वाः खयः	7.4.61	शूलात्पाके	5.4.65	श्र्युकः किति	7.2.11	षिद्भिदादिभ्यो	3.3.104
शल इगुपधादनि०	3.1.45	शूलोखाद्यत्	4.2.16	इलाघहनुङ्स्था०	1.4.34	ष्टुना ष्टुः	8.4.40
शलालुनोऽन्यतर०	4.4.54	शृङ्गालमस्य	5.2.79	श्लिष आलिङ्गने	3.1.46	ष्ठिवुक्लमुचमां	7.3.75
शश्छोऽटि	8.4.62	शृङ्गमवस्थायां च	6.2.115	श्लौ	6.1.10	ष्णान्ता षट्	1.1.23
शसो न	7.1.29	शृतं पाके	6.1.27	श्वगणाट्टञ्	4.4.11	ष्यङः संप्रसार०	6.1.13
शाखादिभ्यो यत्	5.3.103	शृदृप्रां ह्रस्वो वा	7.4.12	श्वयतेरः	7.4.18		
शाच्छासाह्वाव्या०	7.3.37	शृवन्द्योरारुः	3.2.173	श्वयुवमघोना०	6.4.133	स	
शाच्छोरन्यतर०	7.4.41	शे	1.1.13	श्वशुरः श्वश्रूवा	1.2.71		
शाणाद्वा	5.1.35	शे मुचादीनाम्	7.1.59	श्वसस्तुट् च	4.3.15	स उत्तमस्य	3.4.98
शात्	8.4.43	शेवलसुपरिवि०	5.3.84	श्वसोवसीयः	5.4.80	स एषां ग्रामणीः	5.2.78
शारदेऽनार्तवे	6.2.9	शेश्छन्दसि बहु०	6.1.68	श्वादेरिञि	7.3.8	सः स्यार्धधातुके	7.4.49
शाङ्गरवाद्यञौ	4.1.73	शेषात्कर्तरि पर०	1.3.78	श्वीदितो निष्ठा०	7.2.14	सः स्विदिस्वदि०	8.3.62
शालीनकौपीने	5.2.20	शेषाद्विभाषा	5.4.154			संयसश्च	3.1.72
शास इदङ्हलोः	6.4.34	शेषे	4.2.91	ष		संयोगादिश्च	6.4.166
शासिवसिघसीनां	8.3.60	शेषे प्रथमः	1.4.107			संयोगादेरातो	8.2.43
शा हौ	6.4.35	शेषे लृडयदौ	3.3.151	षः प्रत्ययस्य	1.3.6	संयोगान्तस्य	8.2.23
शिखाया वलच्	4.2.88	शेषे लोपः	7.2.90	षट्कतिकतिपय०	5.2.51	संयोगे गुरु	1.4.11
शि तुक्	8.3.31	शेषे विभाषा	8.1.41	षट्च काण्डा०	6.2.135	संवत्सराग्रहा०	4.3.50
शितेर्नित्याबहुव०	6.2.138	शेषे विभाषा	8.1.50	षट्चतुर्भ्यश्च	7.1.55	संशयमापन्नः	5.1.72
शिलाया ढः	5.3.102	शेषे विभाषाकखा०	8.4.18	षट्त्रिचतुर्भ्यो०	6.1.173	संसृष्टे	4.4.22
शिल्पम्	4.4.55	शेषो घ्यसखि	1.4.7	षड्भ्यो लुक्	7.1.22	संस्कृतम्	4.4.3
शिल्पिनि चा०	6.2.76	शेषो बहुव्रीहिः	2.2.23	षढोः कः सि	8.2.41	संस्कृतं भक्षाः	4.2.15
शिल्पिनि ष्वुन्	3.1.145	शौणात्राचाम्	4.1.43	षण्मासाण्ण्यच्च	5.1.82	संहितशफल०	4.1.70
शिवराजरिष्टस्य	4.4.143	शौनकादिभ्य०	4.3.106	षत्वतुकोरसिद्धः	6.1.83	संहितायाम्	6.1.70
शिवादिभ्योऽण्	4.1.112	श्नसोरल्लोपः	6.4.111	षपूर्वहन्धृत०	6.4.135	संहितायाम्	6.3.114
शिशुक्रन्दयम०	4.3.88	श्नान्नलोपः	6.4.23	षष्टिकाः षष्टिरा०	5.1.89	सक्थं चाक्नां०	6.2.198
शि सर्वनामस्था०	1.1.41	श्नाभ्यस्तयो०	6.4.112	षष्ठादेश्चासंख्या०	5.2.58	सङ्ख्यशिश्वीति०	4.1.62
				षष्ठाष्टमाभ्यां ञ	5.3.50	सङ्ख्यसंबुद्धौ	7.1.92

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सख्युर्यः	5.1.125	संज्ञायां गिरि	6.2.94	सप्तमीपंचम्यौ	2.3.7	समि मुष्टौ	3.3.36
सगतिरपि तिङ्	8.1.68	संज्ञायां च	5.3.97	सप्तमीविशेषणे	2.2.35	समि यद्रुदुवः	3.3.23
सगर्भसयूथस०	4.4.114	संज्ञायां च	6.2.76	सप्तमी शौण्डैः	2.1.39	समुच्चयेऽन्यतर०	3.4.3
संकलादिभ्यश्च	4.2.74	संज्ञायां जन्या	4.4.82	सप्तमी सिद्धशु०	6.2.32	समुच्चये सामान्य०	3.4.5
संख्यवाव्ययास०	2.2.25	संज्ञायां धेनुष्या	4.4.89	सप्तमीहारिणौ	6.2.65	समुदाङ्भ्यो०	1.3.75
संख्या	6.2.35	संज्ञायामना०	2.1.43	सप्तम्यधिकरणे च	2.3.36	समुदोरजः पशुषु	3.3.69
संख्यापूर्वो द्विगुः	2.1.51	संज्ञायामुपमा०	6.1.198	सप्तम्याः पुण्यम्	6.2.152	समुद्राभ्राद् घः	4.4.118
संख्याया अति०	5.1.22	संज्ञायां भृतृवृजि०	3.2.46	सप्तम्यां चोप०	3.4.49	समूलाकृतजीवे०	3.4.36
संख्याया अवयवे०	5.2.42	संज्ञायां मन्मा०	5.2.137	सप्तम्यां जनेर्डः	3.2.97	समूहवच्च बहुषु	5.4.22
संख्यायाः क्रिया०	5.4.17	संज्ञायां मित्रा०	6.2.165	सप्तम्यास्त्रल्	5.3.10	समो गम्यृच्छि०	1.3.29
संख्यायाः संवत्०	7.3.15	संज्ञोऽन्यतर०	2.3.22	सभायां नपुंसके	6.2.98	संपरिपूर्वात्ख च	5.1.91
संख्यायाः संज्ञा०	5.1.57	संज्ञौपम्ययोश्च	6.3.113	सभाया यः	4.4.105	संपरिभ्यां करोतौ	6.1.132
संख्यायाः स्तनः	6.2.163	सत्यं प्रश्ने	8.1.32	सभा राजामनु०	2.4.23	संपादिनि	5.1.98
संख्याया गुणस्य	5.2.47	सत्यादशपथे	5.4.66	समः क्ष्णुवः	1.3.65	संपृचानुरुधा०	3.2.142
संख्याया विधार्थे	5.3.42	सत्यापपाशरूपवी०	3.1.25	समः प्रतिज्ञाने	1.3.52	संप्रतिभ्यामना०	1.3.46
संख्यायाश्च गुणा०	5.4.59	सत्सूद्विषद्रुह०	3.2.61	समः समि	6.3.92	संप्रसारणस्य	6.3.138
संख्या वंश्येन	2.1.18	सदिरप्रतेः	8.3.66	समः सुटि	8.3.5	संप्रसारणाच्च	6.1.104
संख्याविसाय०	6.3.110	सदृशप्रतिरूपयोः	6.2.11	समयस्तदस्य०	5.1.103	संप्रोदश्च कटच्	5.2.29
संख्याऽव्ययादे०	4.1.26	सदेः परस्य लिटि	8.3.118	समयाच्च यापना०	5.4.60	संबुद्धौ च	7.3.106
संख्यासुपूर्वस्य	5.4.140	सद्यः परुत्परार्यैषमः	5.3.22	समर्थः पदविधिः	2.1.1	संबुद्धौ शाक०	1.1.16
संख्यैकवचना०	5.4.43	सध मादस्थयो०	6.3.96	समर्थानां प्रथ०	4.1.82	संबोधने च	2.3.47
संग्रामे प्रयोजन०	4.2.55	सनः क्तिचि लो०	6.4.45	समवप्रविभ्यः	1.3.22	संबोधने च	3.2.125
संघाङ्कलक्षणे०	4.3.126	स नपुंसकम्	2.4.17	समवायान्समवै०	4.4.43	संभवत्यवहर०	5.1.51
संघे चानौत्तरा०	3.3.42	सनाद्यन्ता धातवः	3.1.32	समवाये च	6.1.133	संभावनेऽलमि०	3.3.154
संघोद्धौ गणप्र०	3.3.86	सनाशंसभिक्ष उः	3.2.168	समस्तृतीया०	1.3.54	संभूते	4.3.41
संज्ञापूरण्योश्च	6.3.38	सनिंससनिवांसम्	7.2.69	समां समां विजा०	5.2.12	संमाननोत्संजना०	1.3.36
संज्ञायाम्	2.1.43	सनि ग्रहगुहोश्च	7.2.12	समानकर्तृकयोः	3.4.21	सरूपाणामेकशे०	1.2.64
संज्ञायाम्	3.3.109	सनि च	2.4.47	समानकर्तृकेषु	3.3.158	सर्तिशास्त्यर्ति०	3.1.56
संज्ञायाम्	3.4.42	सनि मीमाघुर०	7.4.54	समानतीर्थेवासी	4.4.107	सर्वकूलाभ्रकरीषे	3.2.42
संज्ञायाम्	4.1.72	सनीवन्तर्धभ्रस्ज०	7.2.49	समानस्य छन्द०	6.3.83	सर्वगुणकात्स्न्र्ये	6.2.93
संज्ञायाम्	4.3.117	सनोतेरनः	8.3.108	समानोदरे श०	4.4.108	सर्वचर्मणः कृतः	5.2.5
संज्ञायाम्	6.2.159	संधिवेलाद्यृतुनक्ष०	4.3.16	समापनात्स०	5.1.111	सर्वत्र लोहितादि०	4.1.18
संज्ञायाम्	8.2.11	सन्महत्परमोत्त०	2.1.60	समायाः खः	5.1.84	सर्वत्र विभाषा	6.1.118
संज्ञायां ललाट०	4.4.46	सन्यङोः	6.1.9	समासत्तौ	3.4.50	सर्वत्र शाकल्यस्य	8.4.50
संज्ञायां शरदो०	4.3.27	सन्यतः	7.4.79	समासस्य	6.1.217	सर्वत्राण् च	4.3.22
संज्ञायां श्रवणा०	4.2.5	सन्लिटोर्जः	7.3.57	समासाच्च तद्वि०	5.3.106	सर्वदेवात्तातिल्	4.4.142
संज्ञायां समज०	3.3.99	सन्वल्लघुनि चङ०	7.4.93	समासान्ताः	5.4.68	सर्वनामस्थाने	6.4.8
संज्ञायां कन्	4.3.144	सपत्ननिष्पत्रा०	5.4.61	समासेऽङ्गुलेः सङ्गः	8.3.80	सर्वनाम्नः स्मै	7.1.14
संज्ञायां कन्	5.3.75	सपूर्वाच्च	5.2.87	समासेऽनञ्पूर्वे०	7.1.37	सर्वनाम्नः स्याड्०	7.3.114
संज्ञायां कन्	5.3.87	सपूर्वायाः प्रथमा०	8.1.26	समाहारः स्वरितः	1.2.31	सर्वनाम्नस्तृती०	2.3.27
संज्ञायां कन्थोशी०	2.4.20	सप्तनोऽञ्छन्दसि	5.1.60	समि० ख्यः	3.2.7	सर्वपुरुषाभ्यां	5.1.10

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वभूमिपृथि०	5.1.40	सावेकाचस्तृती०	6.1.162	सुबामन्त्रितेपरा०	2.1.2	स्तन्भे:	8.3.67
सर्वस्य द्वे	8.1.1	सास्मिन्पौर्णमा०	4.2.20	सुयजोर्ङ्वनिप्	3.2.103	स्तुतस्तोमयो०	8.3.105
सर्वस्य सुपि	6.1.185	सास्य देवता	4.2.23	सुवास्त्वादिभ्यो०	4.2.76	स्तुसुधूञ्भ्य: पर०	7.2.72
सर्वस्य सोऽन्यत०	5.3.6	सिकताशर्करा०	5.2.104	सुविनिर्दुर्भ्य: सुपि०	8.3.88	स्तेनाद्यन्नलोपश्च	5.1.124
सर्वादीनि सर्वना०	1.1.26	सिचि च परस्मैप०	7.2.40	सुषामादिषु च	8.3.98	स्तो: श्चुना श्चु:	8.4.39
सर्वैकान्यर्किय०	5.3.15	सिचि वृद्धि: परस्मै०	7.2.1	सुसर्वार्धाज्जनपद०	7.3.12	स्तोकान्तिकदूरा०	2.1.38
सवाभ्यां वामौ	3.4.91	सिचो यङि	8.3.112	सुहृद् दुर्हृदौ	5.4.150	स्तौतिण्योरेव ष०	8.3.61
सविधसनीडस०	6.2.23	सिजभ्यस्तवि०	3.4.109	सूत्रं प्रतिष्णातम्	8.3.90	स्त्य: प्रपूर्वस्य	6.1.23
ससजुषो रु:	8.2.66	सिति च	1.4.16	सूत्राच्च कोपधात्	4.2.64	स्त्रिया:	6.4.79
ससूवेति निगमे	7.4.74	सिद्धशुष्कपक्व०	2.1.40	सूददीपदीक्षश्च	3.2.153	स्त्रिया: पुंवद्भाषि०	6.3.33
सस्नौ प्रशंसायाम्	5.4.40	सिध्मादिभ्यश्च	5.2.97	सूपमानात् क्त:	6.2.145	स्त्रियाम्	4.1.3
सस्येन परिजात:	5.2.68	सिध्यतेरपारलौ०	6.1.48	सूर्यतिष्याग०	6.4.149	स्त्रियां संज्ञायाम्	5.4.143
सहनञ्विद्यमान०	4.1.57	सिन्धुतक्षशिला०	4.3.93	सृघस्यद: क्मरच्	3.2.160	स्त्रियां क्तिन्	3.3.94
सहयुक्तेऽप्रधाने	2.3.19	सिन्ध्वपकराभ्यां	4.3.32	सृजिदृशोर्झल्य०	6.1.57	स्त्रियां च	7.1.96
सह सुपा	2.1.4	सिपि धातो रुर्वा	8.2.74	सृपितृदो: कसुन्	3.4.17	स्त्रियामवन्तिकु०	4.1.174
सहस्य स: संज्ञा०	6.3.77	सिब्बहुलं लेटि	3.1.34	सृ स्थिरे	3.3.17	स्त्री पुंवच्च	1.2.66
सहस्य सध्रि:	6.3.94	सिवादिनां वाड्०	8.3.71	सेधतेर्गतौ	8.3.113	स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्०	4.1.87
सहस्रेण संमितौ	4.4.135	सु: पूजायाम्	1.4.93	सेनान्तलक्षण०	4.1.152	स्त्रीभ्यो ढक्	4.1.120
सहिवहोरोदव०	6.3.101	सुकर्मपापमन्त्र०	3.2.89	सेनाया वा	4.4.45	स्त्रीषु सौवीरसा०	4.2.75
सहे: पृतनर्ता०	8.3.109	सुखप्रियायोहिते	6.2.15	सेहर्यपिच्च	3.4.87	स्थ: क च	3.2.77
सहे: साड: स:	8.3.56	सुखप्रियादानुलो०	5.4.63	सेऽसिचि कृतचृत०	7.2.57	स्थण्डिलाच्छयि०	4.2.14
सहे च	3.2.96	सुखादिभ्य: कर्तृ०	3.1.18	सोऽचि लोपे	6.1.130	स्थागापापचो०	3.3.95
साक्षात्प्रभृतीनि	1.4.73	सुखादिभ्यश्च	5.2.131	सोढ:	8.3.115	स्थाध्वोरिच	1.2.27
साक्षाद् द्रष्टरि	5.2.91	सुञ:	8.3.107	सोदराद्य:	4.4.109	स्थादिष्वभ्यासेन०	8.3.64
साढ्यै साढ्वा	6.3.112	सुञो यज्ञसंयोगे	3.2.132	सोऽपदादौ	8.3.38	स्थानान्तगोशाल०	4.3.35
सात्पदाद्यो:	8.3.111	सुट् कात्पूर्व:	6.1.131	सोममर्हति य:	4.4.137	स्थानान्ताद्विभा०	5.4.10
साधकतमं करणम्	1.4.42	सुट् तिथो:	3.4.107	सोमाट्ट्यण्	4.2.29	स्थानिवदादेशो०	1.1.55
साधुनिपुणाभ्या०	2.3.43	सुडनपुंसकस्य	1.1.42	सोमे सुञ:	3.2.90	स्थानेऽन्तरतम:	1.1.49
सान्तमहत: संयो०	6.4.10	सुधातुरकङ् च	4.1.97	सोमे ह्वरित:	7.2.33	स्थालीबिलात्	5.1.69
साप्तपदीनं सख्यम्	5.2.22	सुधितवसुधितने०	7.4.45	सोरवक्षेपणे	6.2.195	स्थूलदूरयुवह्र०	6.4.156
साम आकम्	7.1.33	सुनोते: स्यसनो:	8.3.117	सोर्मनसी अलो०	6.2.117	स्थूलादिभ्य: प्रका०	5.4.3
सामन्त्रितम्	2.3.48	सुप आत्मन: क्यच	3.1.8	सोऽस्य निवास:	4.3.89	स्थे च भाषायाम्	6.3.20
सामान्यवचनं विभाषितं	8.1.74	सुप:	1.4.102	सोऽस्यां शवस्नभृ०	5.1.55	स्थेशभासपिस०	3.2.175
सामि	2.1.25	सुपां सुलुक्पूर्वस०	7.1.39	सोऽस्यादिरिति	4.2.54	स्नात्व्यादयश्च	7.1.49
सायंचिरंप्राके प्रगे०	4.3.23	सुपि च	7.3.102	सौ च	6.4.13	स्नुक्रमोरनात्म०	7.2.36
सार्वधातुकमपित्	1.2.4	सुपि स्थ:	3.2.4	स्को: संयोगाद्यो०	8.2.29	स्नेहने पिष:	3.4.38
सार्वधातुकार्धधा०	7.3.84	सुपो धातुप्रातिप०	2.4.71	स्तम्भुस्तुम्भुस्क०	3.1.82	स्पर्धायामाङ:	1.3.31
सार्वधातुके यक्	3.1.67	सुप्तिङन्तं पदम्	1.4.14	स्तम्बकर्णयोरमि०	3.2.13	स्पृशोऽनुदके क्विन्	3.2.58
साल्वावयवप्र०	4.1.171	सुप्रातिना मात्रार्थे	2.1.9	स्तम्बशकृतोरिन्	3.2.24	स्पृहिगृहिपतिद०	3.2.158
साल्वेयगान्धा०	4.1.167	सुप्यजातौ णिनि०	3.2.78	स्तम्बे क च	3.3.83	स्पृहेरीप्सित:	1.4.36
सावनड्वह:	7.1.82	सुप्रातसुश्वसुदि०	5.4.120	स्तम्भुसिवुसहां०	8.3.116	स्फाय: स्फी नि०	6.1.22

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फायो वः 7.3.41
स्फिगपूतवीणा० 6.2.187
स्फुरतिस्फुल० 6.1.46
स्फुरतिस्फुलत्यो० 8.3.76
स्मिपूङ्रञ्जवशां० 7.2.74
स्मे लोट् 3.3.165
स्मोत्तरे लङ् च 3.3.176
स्यतासी लुलृटोः 3.1.33
स्यदो जवे 6.4.28
स्यश्छन्दसि बहु० 6.1.129
स्यसिच्सीयुट्ता० 6.4.62
स्रवतिशृणोतिद्र० 7.4.81
स्रोतसो वि० 4.4.113
स्वं रूपं शब्दस्या० 1.1.67
स्वं स्वामिनि 6.2.17
स्वतन्त्रः कर्ता 1.4.54
स्वतवान् पायौ 8.3.11
स्वनहसोर्वा 3.3.62
स्वपादिहिं० 6.1.182
स्वपितृषोर्नजि० 3.2.172
स्वपिस्यमिव्येजां 6.1.19
स्वपो नन् 3.3.91
स्वमज्ञातिध० 1.1.34
स्वमोर्नपुंसकात् 7.1.33
स्वयं क्तेन 2.1.24
स्वरतिसूतिसू० 7.2.44
स्वरादिनिपात० 1.1.36
स्वरितञितः कर्त्र० 1.3.72
स्वरितमाम्रेडिते० 8.2.103
स्वरितात्संहिता० 1.2.39
स्वरितेनाधिकारः 1.3.11
स्वरितो वानुदात्ते० 8.2.6
स्वसुश्छः 4.1.143
स्वागतादीनां च 7.3.7
स्वाङ्गाच्चेतः 6.3.39
स्वाङ्गाच्चोपस० 4.1.54
स्वाङ्गे तस्प्रत्यये 3.4.61
स्वाङ्गेऽध्रुवे 3.4.54
स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते 5.2.66
स्वादिभ्यः श्नुः 3.1.73
स्वादिष्वसर्व० 1.4.17
स्वादुमि णमुल् 3.3.26
स्वापेश्चङि 6.1.18
स्वामिन्नैश्वर्ये 5.2.126
स्वामीश्वराधि० 2.3.39
स्वे पुषः 3.4.40
स्वौजसमौट्छष्टा० 4.1.2

ह

ह एति 7.4.52
हनः सिच् 1.2.14
हनश्च वधः 3.3.76
हनस्त च 3.1.108
हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32
हनो वध लिङि 2.4.42
हन्त च 8.1.54
हन्तेरत्पूर्वस्य 8.4.21
हन्तेर्जः 6.4.36
हरतेरनुद्यमनेऽच् 3.2.9
हरतेर्दृतिनाथयोः 3.2.25
हरत्युत्सङ्गादिभ्यः 4.4.15
हरितादिभ्योऽञः 4.1.100
हरीतक्यादिभ्यश्च 4.3.164
हलः 6.4.2
हलःशनःशानज्झौ 3.1.83
हलदन्तात्सप्त० 6.3.8
हलन्ताच्च 1.2.10
हलन्त्यम् 1.3.3
हलश्च 3.3.121
हलश्चेजुपधात् 8.4.30
हलसीराट्टक् 4.3.123
हलसीराट्टक् 4.4.81
हलसूकरयोः पु० 3.2.183
हलस्तद्धितस्य 6.4.150
हलादिः शेषः 7.4.60
हलि च 8.2.77
हलि लोपः 7.2.113
हलि सर्वेषाम् 8.3.22
हलोऽनन्तराः सं० 1.1.7
हलो यमां यमि 8.4.63
हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घा० 6.1.66
हव्येऽनन्तःपादम् 3.2.66
हशश्वतोर्लङ् च 3.2.116
हशि च 6.1.110
हश्च व्रीहिका० 3.1.148
हस्ताज्जातौ 5.2.133
हस्तादाने चेर० 3.3.40
हस्ते वर्तिग्रहोः 3.4.39
हायनान्तयुवा० 5.1.129
हिंसायां प्रतेश्च 6.1.136
हिंसार्थानां च स० 3.4.48
हि च 8.1.34
हितं भक्षाः 4.4.65
हिनु मीना 8.4.15
हिमकाषिहतिषु च 6.3.54
हिरण्यपरिमाणं ध० 6.2.55
हीने 1.4.85
हीयमानपापयो० 5.4.47
हुझल्भ्यो हेर्धिः 6.4.101
हुश्नुवोः सार्वधा० 6.4.87
हक्रोरन्यतरस्याम् 1.4.53
हृदयस्य प्रियः 4.4.95
हृदयस्य हृल्ले० 6.3.49
हृद्भगसिन्ध्वन्ते पू० 7.3.19
हृषेर्लोमसु 7.2.29
हेति क्षियायाम् 8.1.60
हेतुमति च 3.1.26
हेतुमनुष्येभ्यो० 4.3.81
हेतुहेतुमतोर्लिङ् 3.3.156
हेतौ 2.3.23
हेमन्तशिशिराव० 2.4.28
हेमन्ताच्च 4.3.21
हे मपरे वा 8.3.26
हेरचङि 7.3.56
हैयङ्गवीनं संज्ञा० 5.2.23
हैहेप्रयोगे हैहयोः 8.2.85
हो ढः 8.2.31
होत्राभ्यश्छः 5.1.134
हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54
ह्यन्तक्षणश्वसजा 7.2.5
ह्रस्वः 7.4.59
ह्रस्वं लघु 1.4.10
ह्रस्वनद्यापो नुट् 7.1.54
ह्रस्वनुड्भ्यां म० 6.1.170
ह्रस्वस्य गुणः 7.3.108
ह्रस्वस्य पिति कृ० 6.1.69
ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तर० 6.1.146
ह्रस्वात्तादौ त० 8.3.101
ह्रस्वादङ्गात् 8.2.27
ह्रस्वान्तेऽन्त्या० 6.2.174
ह्रस्वे 5.3.86
ह्रस्वो नपुंसके० 1.2.47
ह्रुह्वरेश्छन्दसि 7.2.31
ह्लादो निष्ठायाम् 6.4.95
ह्वः संप्रसारणम् 6.1.32
ह्वः संप्रसारणं च 3.3.72
ह्वावामश्च 3.2.2

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) ग्रन्थेऽस्मिन् व्याख्यातानां वार्त्तिकानामकाराद्यनुक्रमेणाऽनुक्रमणिका

(अत्र ग्रन्थस्य पृष्ठसंख्या निर्दिष्टाऽस्ति)

अ

अकर्मक धातु 129
अकाकारयो 216
अकारान्तोत्त 169, 225
अक्षादूहिन्यां 687
अग्नीध 521
अग्नीध्र 633
अग्रपश्चा 502
अङ्गगात्र 439
अचः परस्यै 855
अच् प्रकरणे 307
अजपथ 568
अजवरि 212
अञ्चतेश्चो 423
अञ्जस उपस 750
अञ्विधौ 365
अटाऽट्टा 258
अडभ्यासण्य 701
अण् क्रुंचा 456
अण् प्रक 597, 634
अतेर्धा 748
अत्यन्ताप 334
अत्यादयः क्रान्ता 183
अत्रापि 252
अदसोऽनो 1040
अदेः प्रतिषेध 104
अद्यतन्यां 811
अधिकरण 255
अध्वनः 203
अध्वपरिमाणे 685
अनजादौ 622
अनयोरेव 192
अनर्थकस्या 70
अनाचमि 929
अनाम्नवति 1094
अनिदिता 786
अनुत्पत्ता 582
अनुसू 481
अनेकत्र 190
अनेकशफे 78
अनेकाच 691
अनेकान्त 497
अनोनका 820
अन्तः शब्दं 135
अन्ताच्चे 502
अन्तिकस्य 825
अन्तोदात्ता० 437
अन्येभ्योऽपि 316
अपरस्यार्धे पश्चभावो 172
अपादाने 358
अपि प्रधा 654
अपिशब्दा० 285
अपीत्वा 775
अपुत्रादी 970
अप्राणि 443
अबुनञ् 437
अ ब्राह्मण 239
अभितः परितः 195
अभूततद्भाव 637
अभ्यर्हितं च 192
अभ्यासज 1017
अरण्याण्णः 490
अर्णसो 599
अर्थाच्चा 604
अर्थेन नित्यसमासो 164
अर्धपूर्व० 18
अर्धाच्च 558
अर्धोन्तर 612
अर्यक्षत्रियाभ्यां वा 436
अलङ्कृ 339
अवक्षेपे 766
अवरस्योप 162
अवर्णनग 680
अवादयः कुष्टाद्यर्थे 183
अवान्तर 570
अवेर्दु 475
अव्ययप्र 218
अव्ययानां च 187
अश्मनो विकारे 823
अश्ववृषयो 849
अष्टनः 760
अष्टका 934
अष्टाचत्वा० 571
अस्तुसत्या 765
अहरादी 1037
अह्नः सम् 823
अह्नो नलो 1018
अह्नो रूवि 1036

आ

आकलाट् 574
आगमे क्षमायाम् 87
आङ स्थ 87
आङि नु 87
आङोऽन्य 822
आङ् पूर्वा 294
आङ् याज 847
आचारेऽवगल्भ 256
आचार्यादणत्वं 436
आदिकर्मणि निष्ठा 63, 330
आद्युदात्त 730
आभीक्ष्ण्ये 928, 997
आमनडुह 433, 863
आमुष्यायणमुष्य 632
आरा श 375
आलस्य सु 555
आलुचि शी 345
आविशश्छ 490
आशाया 252
आशास 666
आशिषि चो 933
आशिषि नाथ 87
आशिषि तुन 177
आख्य विहरण 86
आहत प्रक 507
आहि भुवो 955
आहो प्रभूता 777

इ

इकः प्लुत 684
इकारादि 922
इक् कृ 376
इक्शितपौ धातुनिर्देशे 376
855
इच्छासन्न 253
इणजा 376
इण्वदिक इति 233
इत्येऽन 765
इत्वमन 770
इत्वोत्वाभ्यां 555

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदम इश् 610
इदमोऽश 610
इनि प्रक 604
इयङुव 763
इयङुव 802
इयङुव 824
इयाडियाजी 847
इरइत्संज्ञा वाच्या 277
इ रिकादिभ्यो 1082
इषेर 376
इषेस्तका 887

ई

ईकक् च 448
ईकञ् छन्दसि 448
ईक्षिक्षमि 305
ईदादीना 14
ईद् रथिनः 1021
ईयसो बहुव्रीहेर्न 71
ईष्येतेस्तृतीयस्येति 666

उ

उक प्रतिषेधे 218
उच्चय 361
उतश्च 809
उत्तर पदलोपे 933
उत्तरादाहञ् 490
उत्पातेन ज्ञा पिते च 198
उत्पूर्वस्य 1100
उत्प्रतिभ्या 325
उत्फुल्लसम्फु 1033
उद ईहाया 88
उपमानात्पक्षाच्च 440
उपाद् देव 88
उभय प्राप्तौ 219
उरसो लोपश्च 316
उवर्णाल्ल 622
उष्णाय 766

ऊ

ऊङ् च गमादीनामिति 790
ऊचग 790
ऊधसोऽनङ् 657
ऊर्णो ते 267
ऊर्णोर्णुवद्भावो वाच्यः

ऋ

ऋ लृ वर्णयो 13
ऋकार 372
ऋकारल्वा 1031
ऋचि त्रे 674
ऋण दशा 688
ऋतुनक्षत्र 191
ऋते च तृ 688
ऋवर्णाच्चे 1080

लृ

लृति ल् लृ वा 691

ए

एकतरात्पग्रतिषेधः 842
एकाक्षर 622
एवे चानियोगे 689

ओ

ओजसोऽप्सरसो 256
ओत्वोष्ठ्यो: 689

औ

औङ श्यां प्रतिः 840

क

ककारः 585
कछ्वा ह्रस्वत्वं च 598
कटच् प्र 584
कण्ठवादी 664
कद्भावे 771
कन् प्रक 628
कबर मणि विषश 440
कमलादि 478
कमेरूप 273
कम्बोजादिभ्य इति 467
कर्तृ कर्म 381
कर्मव्यातिहा 997
काकिण्याश्चो 560
काण्यादीनां 962
कादेशः 624
कामप्रवेदन इति 388
कारकार्हा 206
कारिकाशब्दस्योप133, 182
कार्षापणा 558
कालात् सप्तमी 122
कास्यनेकाच आम 266
किंयत्तद् 310
किकिनावु 348
किरते र्ह 87
कुक्कुट् यादीनाम् 758
कृत्रादीना 667
कृत्रोऽसु 875
कृत्यग्रहणे 163
कृन्द्या प्र 759
क्लृपि सम्प 198
केलिभर उपस 291
केवलाया 560
कौख्य 427
किङति रमाग 792
क्तिनि नि 879
क्तिन्न पी 372
क्तिन्नाबा 372
क्यब् विधौ 294
क्रिययायम 122
क्रिया समन्त्रि 997
क्रुकन्नापि 348
क्लिन्नस्य 585
क्विप् प्रत्य 788
क्विवचिप्रच्छ्या 349
क्वौ च 788
क्षत्रिय 465
क्षदेश्च 339
क्षिपकादीनां च 934
क्षीरलवणयोर्ला 849

ख

खच् प्रकरणे 314
खनो डड 380
खपूर्वा ख 979
खरु संयोगोप 434
खरिशरि वा 1057
खलादिभ्य इनिर्व 478
खश् प्रकरणे 313
खुरखराभ्यां 654

ग

गजसहायाभ्यां वा 477
गड्वादेः परा 234
गणात्तरेण 180
गणिकाया यञ् 476
गतिकारका 804
गमादीनामिति व 790
गमेः सुपि वा 313
गम्यमाना 122
गम्यादीना 159
गवादिषुविन्देः 302
गवि च 760
गापोर्ग्रह 245
गिरौ डश्छ 309
गिलगिले 766
गिलेऽगि 765
गुग्गुलु 444
गुणवचने 596
गुहा गि 375
गोपालिका 435
गोष्ठ जादयः 584
गौणकर्म 215
गौर्यूतौ 685
ग्लाम्ला 372

घ

घञर्थे कविधानम् 365
घट्टि वन्दि 376
घस्लृ भावे 231
घिनुणि च 786
घोषग्रहण मपिक 522

ङ

ङावुत्तर 1018
ङीप् प्रकर 431

च

चटकादिति वाच्यम् 458

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुरश्छयतावाद्य 589
चतुर्थी 198
चतुर्थादृ 622
चतुर्थ्यर्थ 562
चतुर्मासा 571
चतुर्वर्णादीनां 577
चतुष्पाज् 175
चयोद्वितीया 1096
चरणाद्धर्माम्नाययोः 522
चरि चलि 667
चरेराङि चागु 292
चर्मि वर्मि 463
चातुर्मास्या 571
चापले द्वे 997
चारौ वा 316
चिरपरुत्परारिभ्य 502
चीवरादर्जने परि 259
चुल्लादेशो 585

छ

छत्वममीति वाच्यम् 1101
छन्दसि च 654
छन्दसि नि 360
छन्दसि भा 1037
छन्दसि वि 601
छन्दसि वे 957
छन्दसीति तृच्च 339
छन्दसीव 599
छन्दस्यामि 814
छप्रकरणे 473
छिदा द्वै 375
छिपकादी 934

ज

जवसवौ 365
जसादिषु 958
जागर्ते 374
जिघ्रतेः 301
जुगुप्सावि 119
जुहोते 350

ठ

ठक् छसो 757
ठक् ठञो 426
ठक् प्रक 532
ठञ् प्रक 474

ड

डच् प्रक 643
डतरड 997
ड प्रकरणे 316
डलकव 957
डाचि बहुलं द्वे 105
डु प्रकरणे 350
डे च बिहायसोवि 314

ण

णाविष्ठव 826
ण्यति प्रति 941
ण्यन्तभादीनामु 1090
ण्यादयो 448

त

तकिशसि 292
तच्चरती 570
तत्परे चे 1096
तत्स्थैश्च 180
तदन्ताच्च 604
तदन्ताद 588
तद् युक्तात् 203
तनियति दरिद्रा 976
तनोतेर्ण 302
तलो ह्रस्वो 957
तसि प्रकर 636
तस्य निमित्तं 561
तारका ज्योतिषि 934
तिङन्तस्य 1075
तिडां ति 846
तितुत्रत 870
तिलान्नि 475
तिष्यपुष्य 825
तीयादीनकक्स्वार्थ 615
तृन्विधावृ 339
त्यक्त्यपोश्च 933
त्यदादीनां मिथ 78
त्यदादीनां वा 463
त्रेश्च प्र 708
त्वतलोर्गुणव 757

द

दंशेश्छ 340
दम्भेश्च 814
दरिद्रातेरार्धधातुके 811
दारजारौ 357
दासाच्छ 431
दिक्पूर्व 612
दिक् शब्द 772
दिग्धसह 308
दुग्वोर्दीर्घ 1031
दुरो दाश 772
दृग्दृश 769
दृन्कर पुनः पूर्वस्य 804
दृशेरग्व 288
दृशेश्चे 899
दोष उप 937
द्यतेरित्वा 974
द्युतिगमि 350
द्युश्चोभयाद् 610
द्वन्द्वे दे 515
द्विगुप्राप्तान्न 227
द्वितीयाद 622
द्वितीयानु 723
द्वित्वे गोयुगच् 584
द्वित्रिपूर्वा 560
द्विर्वचन 666
द्विर्वचने 1016
द्विषः शतुर्वा 218, 337
द्व्यक्षर 1082

ध

धमुञन्तात् 614
धर्मादिष्वनियमः 190
धात्वर्थनिर्देशेण्वुल् 376
धारा प्र 375
धासु वा 772
धूञ्श्रीञोर्नुग् 931
धृषेश्चेति 348
धेनोर्भ 765
ध्यायतेः संप्र० 350

न

नकारग्र 707
नगयांसुपाण्डुम्भरच 598
नञोऽस्त्यर्थानां वा 187
नञ् स्नञोर्कक्च् 426
नन्दिवाशि 300
नपुंसके 217
नरक 478
नराच्च 540
नवस्य नू 632
नशिमन्यो 814
नश्च पुरा 633
नस् नासिका 554, 680
नान्तस्य 823
नासिकायां 312
नित्यमाम्रेडिते डा 105
नित्यं ञ्यन्त 535
निमित्त कारण 203
निमित्तात्कर्मयोग 206
निमीमिलि 677
निरादयः क्रान्ता 71, 183
निरोदेशे 316
निष्के चेति 762
निष्ठायाः 193
निष्ठायां 375
निष्ठादे 1016
नीलाद् 433
नील्या 468
नुमचिर तृज्व 862
नेतुर्नक्ष 654
नौकाकाका 200
नोलिम्पे 301

प

पक्षेऽच् 655

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचजनादुप 508
पंचमी 203
पत्राद् वा 521
पथः संख्या 225
पथ्य ध्याय 494
पदव्य वा 1092
पदादिषु 680
पदान्तव 990
पद् भावे 762
परस्त्री 453
परस्परोपपदाच्येति 85
परस्मादे 610
परिचर्या 374
परेर्वा 376
परोक्षे च 333
पर्यादयो ग्लानाद्य 183
पर्यायवच 226
पर्वमरुद् 602
परर्वाण 476
पल्यराजभ्यां 645
पाणिगृ 437
पाणौ सृजे 295
पाण्डोर्जन 466
पाटेर्णिलु 667
पादशत 628
पादिषु 105
पार्श्वादिषू यस 308
पालकान्तान्न 435
पावकादी 933
पात्राद् वा 521
पिंजश्छ 475
पितृमा 475
पिशंगा 432
पिशाचाच्च 603
पीतात्कन् 468
पीवोपव 772
पुवँद्भा 759
पुंसानुज 750
पुण्याहवा 573
पुनश्चनसौ 133
पुम् मुहु 1058
पुरुषाद् वध 555
पुष्पमूलेषु बहुलम् 531
पूञो विनाशे 1031
पूर्णमा 474
पूर्वपूर्व 610
पूर्व प्रथम 997
पूर्वादिभ्य 478
पूर्वान्यायतर 610
पृच्छतौ सुस्नाता 532
पृथिव्या 448
प्रकरणे 598
प्रकृत्यर्थ 584
प्रकृत्या अके 830
प्रकृत्यादिभ्य उप 200
प्रगस्य 502
प्रतिपदवि 180
प्रतिवेशा 775
प्रतिशब्दश्चा 558
प्रतिषेधे 85
प्रत्ययनि 933
प्रत्ययान्त 309
प्रत्यये भाषा 1095
प्रथमलिंग ग्रहणं च 109
प्रवत्सतरकम्बल 688
प्रश्नाख्यान 203
प्रहरणार्थे 193
प्राक्शता 761
प्राग्दीव्य 474
प्राग् बहु 642
प्रादिभ्योधा 659
प्रादूहो 688
प्लुतवि 1016

फ

फल बर्हाभ्यामि 602
फल्गुन्य 504
फेनाच्चेति वक्तव्यम् 257

ब

बकारस्या 664
बलादूल 602
बहिषष्टिलोपो 448
बहुपूर्वाच्च 559
बहुप्रकृ 223
बहुलं छन्द् 951
बाल्ह् यु 489
बृहन्म 707
ब्रह्मवर्चसा 561

भ

भक्षस्य छ 765
भगे च 314
भयभीत 164
भर्त्स नेप 1042
भवने क्षे 584
भस्याढे तद्धिते 757
भागरूपनामभ्यो 633
भाण्डात्समाचयने 259
भाषाया 348
भाषायां 382
भिदा 375
भूरिदाव्न 1020
भ्राष्ट्राग्न्यो 765
भ्रुकुंसा 763

म

मत्वर्था 376
मत्स्यस्य 825
मधुकम 568
मनुष्य लुपि 73
मरुच्छब्दस्य 133
मर्मणश्चे 602
महदात्त्वे 760
महाजना 555
महानाम्न्या 570
महिषा 486
माङ्याक्रो 336
मातरि 475
मातुलोपाध्याययो 436
मातृच्मा 668
मातृपि 475
मातृणां 958
मामकनरकयो 933
मासाद् 654
मित्राच्छ 633
मुद्गला 436
मेधारथ्या 599

य

यकपूर्वे 934
यक्यिणो 289
यजिवप्यो 814
यज्ञर्त्विग्भ्या 567
यज्ञादी 241
यणो मयोद्वे 96, 1095
यतश्चाध्व 203
यदा य 386
यदि तु लो 828
यन्नक 476
यप् प्रक 601
यमाच्चे 448
यवनाल्लिप्याम् 436
यवलपरे 1053
यवाद्दोषे 436
यस्येत्या 824
यासयो 933
युवादीना 1083
युमद 1002
योगे वेति 1021
योपध प्रतिषेधे 442

र

रजकर 786
रञ्जेर्णौ 786
रथ सी 521
रयेर्मतौ 674
राजघ उपसंख्यानम् 317
राजाचार्या 555
राज्ञो जातावेव 459
रादिफः 376

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीगृत्वत इति वा 991
रेशब्दा 708
रोगे चा 603

ल

लध्वक्षरं पूर्वम् 191
लुक् प्रक 504
लुगागम 931
लुप् प्रक 531
लुबाख्या 515
लोकस्य 765
लोपः पूर्वपद 622
लोपापवा 828
लोम्नोऽपत्येषु बहु 448
लोहित 638

व

वडवा 456
वन उप 1046
वनो न इशइति 423
व प्रकरणे 599
वयस्यचरमइति 427
वर्णका तान्तवे 934
वर्णात्कारः 376
वर्णानामानु 192
वर्तका शकुनौ 934
वलच् प्र 599
वशिख्यो 365
वसते 332
वसेरश्यर्थ 126
वसेस्तव्य 291
वहीनर 920
वा केशेषु 679
वागोम 494
वाङ्मति 448
वाचो वा 772
वाच्य 267
वातात्स 602
वाताद् 476
वा नपुँस 1019
वा नामधा 664
वानामधेयस्य 492
वा प्रकरणे 1083
वाऽऽबन्तः 225
वामर 462
वा लिप्सा 88
वा हतज 1096
विकारे स्ने 584
विगृही 487, 581
विद्या च 480
विद्यालक्षणक 480
विनापिपू 612
विनाऽपि 622
विपरीता 581
विपर्या 269
विभक्तिनि 704
विभक्तिस्व 704
विभाज 540
विभाषा भ 1046
विशसि 540
विशिपूरि 573
विश्वजना 684
विस्तारे पट्च 584
विस्मित 879
वुग्युटा वुड्यणो 785
वृक्षादौ 223
वृद्धाच्चेति वक्तव्यम् 476
वृद्धिदीर्घा 793
वृषण्वस्व 117
वेति वक्त 667
वेनाच्छ 462
वेर्ग्रो वक्तव्य 655
वैरे दे 522
व्यधेः 345
व्यवहि 269
व्याधिम् 357
व्यास वरूड 451
व्रीहिवत्सयो 311

श

शकन्ध्वादिषु पर 689
शकलकर्दमा 468
शतरू 473
शतष 481
शतसहस्रयो 165
शताच्चेति 560
शन् शतो 564
शप उपालभ्र 87
शरः खयो 1096
शसि बहव 757
शाकपार्थिवादीनां 174
शिक्षेर्जिज्ञासा 87
शीतोष्णतृप्रे 602
शीलिका 305
शृंग वृन्दाभ्यामा 602
शृ वायु 358
शे तृम्फादीनां 852
श्चुत्वं धु 1016
श्यतेरि 972
श्रच्छब्दस्यो० 133
श्रदन्त 375
श्रन्थिग्रन्थि 57
श्रन्थेश्चे 816
श्रविष्ठा 505
श्रुयुजि 372
श्रेण्यादिषु 375
श्रोत्रियस्य यलोप 578
श्वशुरस्योकाराकार 443
श्वेतवहादीनां 323

ष

षष उ 772
षष्ठ्यर्थे 214
षाच्च यञः 445

स

संयोगान्त 1015
संवहे 521
संख्या प्रयोगे 75
संख्याया अल्पीय 192
सग्रते कटच् 584
सञ्ज्ञाया 433
संज्ञायाम 571
संज्ञायामु 762
सत्रकष्टकक्ष 257
सनिराधो 976
सपूर्व 499
सप्तमी 206
सप्तम्याः 193
सप्तम्याऋ 248
समव 295
समशब्दा 632
समानवा 1000
समानस्य 610
समाना 320
समाप 770
समास 160
समिधा 521
समुदाय 187
समोऽकूजने 87
सम्पदादिभ्य क्विप् 372
सम्बन्धि 451
सर्वजनाट् 555
सर्वत्र 448
सर्वत्राम 602
सर्वनामसंख्य 192
सर्व प्रातिपदिके 256
सर्वप्रादिपदिके 849
सर्वसा 481
सर्वाण्णो 555
सर्वादेश्चे 604
सर्वेवि 286
सवर्णदी 691
सहायाद् 579
सहित सहाभ्याम् च 444
सहिवहि 348
साक्षात् प्रभृ 137
सादकार 775
साधुका 325
साध्वसाधु प्रयोगे च 206
सि च आ 709

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिज्लोप एकादेश	1015	सुवर्णशत	559	स्त्री नपुंसयो	997	हन्तेर्घ	667
सिद्धश्च	811	सूचि सूत्रि	259	स्थाम्ना	448	हरतेरग	87
सिनोते ग्रास	1031	सूतोग्र	766	स्थस्थास्थिन्	1074	हरतेरप्र	85
सिब्बहुलंणि	266	सूत्रान्तान्तु अकल्पा	480	स्थेणोर	220	हरिद्रामहाराज	468
सीमन्तः	689	सूत्रे च	307	स्पृशमृश्	271	हर्ष जीवि	702
सुग्वक्त	849	सूर्याऽग	824	स्वरो रो	772	हस्ति सूचकयो	308
सुदिनदुर्दि	258	सूर्याद् देवताया चाप	435	स्वर्गादिभ्य	573	हितयोगे	198
सुदुरोरधिकरणे	316	स्ववः स्व	974	स्वांगकर्मकाच्चेति	86, 89	हिमाच्चे	602
सुपां सुपो	846	सोऽपदा	1058	स्वादीरेरिणो	688	हिमारण्य	436
सुबधिकारे	187	स्तने धेटो	312	ह		हग्रहोर्ऋ	1026
सुब्धातुष्ठिवुष्व	680	स्तोमेड विधि	564	हनुचलन इति वा	257	हृदयाच्चा	602
सुराशी	307	स्त्रियामपत्ये	458	हनो वा	292	हृदय्या	686

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) ग्रन्थेऽस्मिन् प्रदर्शितानामुदाहरणानां प्रत्युदाहरणानाम-कारादनुक्रमेणाऽनुक्रमणिका

(प्रक्रियाज्ञानार्थं निर्दिष्टा पृष्ठसंख्या द्रष्टव्या)

अ

अंशकः 592
अंशहरः 307
अंसलः 597
अंहति 434
अंहती 434
अँ 11
अ 132
अ अपेहि 15
अकटीत् 867
अकणीत् 868
अकण्डूयत 263
अकरणिः 377
अकरम् 277,394
अकरवीत् 867
अकरिष्यत् 265
अकर्तिष्यत् 892
अकर्तीत् 893
अकर्त्त 743
अकर्त्ता 743
अकर्त्स्यत् 892
अकल्पिष्यत 106,107
अकल्प्स्यत् 106,107
अकाणीत् 868
अकारि 278,809
अकारि तत्पूर्व० 280
अकार्क्षीत् 271
अकार्णवे 742
अकार्षं हि३ 1042
अकार्षीत् 5,7,270 865,955,1024
अकुमारी 745
अकुरुताम् 35
अकृक्षत् 271
अकृत 60,278 884,1023
अकृतकारं 400
अकृता 438
अकृतिः 377
अकृत्वा 846
अकेशभार्यः 758
अकेशा 440
अकोकूयिष्ट 980
अकोषीत् 272,867
अकौशलम् 928
अक्रन् 246
अक्राक्षीत् 271,678
अक्रामत् 945
अक्राम्यत् 945
अक्लाम्यत् 945
अक्षकितवः 165
अक्षणीत् 867
अक्षण्वता 708
अक्षण्वता 857
अक्षण्वन्तः 1020
अक्षति 283
अक्षद्युवा 707
अक्षद्यूः 783
अक्षधूः 644
अक्षन् 42,246
अक्षपरि 155
अक्षभिः 857
अक्षय्यः 685
अक्षरम् 869
अक्षशौण्डः 68,165 751
अक्षशौण्डः 715
अक्षाः 955
अक्षारीत् 866
अक्षि 1096
अक्षितम् 1032
अक्षिनिका 403
अक्षिभ्रुव 645
अक्षी 857
अक्षीभ्याम् 857
अक्षुत्त 276
अक्षुदत् 276
अक्षैत्रज्ञ्य 928
अक्षौत्सीत् 276
अक्षौत्सुः 276
अक्षौहिणी 688
अक्ष्णा 857
अक्ष्णा काणः 161,201
अक्ष्णुवन्ति 805
अक्ष्णोति 283
अखट्वका 935
अखट्विका 935
अखनिकवकः 380
अख्षि 1096
अगः 767
अगच्छत् 333,946
अगदङ्का 765
अगदीत् 868
अगमः३ 1043,1045
अगमत् 276,332 807
अगमिष्यत् 893
अगस्तयः 242
अगात् 233,244
अगादीत् 868
अगार्दभ 742
अगासाताम् 245
अगासीत् 245
अगीष्ट 234
अगूढ 944
अगोपायिष्टम् 273
अगोपायीत् 867
अगोपिष्टम् 273
अगोपीत् 867
अगोष्पद 702
अगौः 642
अगौप्तम् 273
अगौप्सीत् 867
अग्नये 111
अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य 1042
अग्नये गोमयानि० 214
अग्नये छागं 214
अग्नये छागस्य० 214
अग्नयेऽनुब्रूहि 1042
अग्ना३इ 1045
अग्ना३इ इन्द्रम् 1045
अग्ना३इ च्छत्रम् 1016
अग्ना३याशा 1045
अग्नायी 431
अग्निचिट्ठकारः 1093
अग्निचिड्ढौकते 1093
अग्निचिण्णकारः 1093
अग्निचित् 46,328, 855
अग्निचित्या 299
अग्निचित्वान् 1019
अग्निचिद् नयति 1095
अग्निचिन्नयति 1095
अग्नित्वम् 949
अग्निदेवत्य 632
अग्निर्न 1050
अग्निः पवि० 352
अग्नि भूता३इ 1043 1045
अग्निमभि 155
अग्निमान् 1019
अग्निमान्द्यम् 180
अग्निमा३वह 1042
अग्निं प्रति 155
अग्निरत्र 1051
अग्निर्माण 712
अग्निर्हि अग्रे 1004
अग्निवरु 926
अग्निषु 1063
अग्निष्टत् 1076
अग्निष्टुत् 1070
अग्निष्टे 1076
अग्निष्टो 739
अग्निष्टोम० 326
अग्निष्टोमः 1071
अग्निष्ट्वम् 1076
अग्निष्ट्वा 1076
अग्निष्ठः 1074
अग्निसात् 1077
अग्निसात् करो 638
अग्निसाद्भ 639
अग्निसाद्भव 638
अग्निस्तत् 1076
अग्निस्ते 1076
अग्निस्तोकः 173
अग्नी 1018
अग्नी इति 14,698
अग्नीनाम् 708
अग्नीभव 639

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नीरथः 773,1050
अग्नीषोमी 474
अग्नीषोमौ 1071
अग्नीषोम्य 474
अग्ने 210
अग्ने गृहपते 1013
अग्ने रक्षणा 1088
अग्न्याहितः 193
अग्मन् 246
अग्रणीः 320
अग्रतस्सरः 309
अग्रन्थिष्ट 289
अग्रहीत् 867,882
अग्रहीषाताम् 796
अग्रहीष्ट 882
अग्रहीष्यत् 882
अग्रहीष्यत 796,882
अग्राहिष्यत् 796
अग्राहिषाताम् 796
अग्रिमः 502
अग्रियम् 549
अग्रीयम् 549
अग्रुचत् 277
अग्रेगाः 322,790
अग्रेगावा 324
अग्रेगूः 790
अग्रे भुक्त्वा 398
अग्रेभूः 790
अग्रे भोजं 398
अग्रेवणम् 1081
अग्रेसरः 309
अग्रोचीत् 277
अग्र्यः 546
अग्र्यम् 549
अग्लुचत् 277
अग्लुञ्चत् 277
अग्लुञ्चीत् 277
अग्लोचीत् 277
अघसत् 231,807
अघानि 928
अघानिषाताम् 796
अघानिष्यत 796
अघायति 971
अघायवः 347
अघुक्षत 944
अघूढ्वम् 1027
अघृक्षत 271
अघो अत्र 1051
अघोयत्र 1052
अघ्नन् 938
अघ्रात् 245
अघ्रासीत् 245
अङ्कः 1021
अङ्कुशग्रहः 307
अङ्क्ता 900
अङ्गकुरू 1004
अङ्गकूज३ 1042
अङ्गकूज 1004
अङ्ग पच 1004
अङ्गमेजयः 312
अङ्गविद्यः 480
अङ्गव्याहर३ 1042
अङ्ग स्म 389
अङ्गाः 240,485
अङ्गारीया 555
अङ्गिरस्वत् 116
अङ्गिरस्वते 117
अङ्गीरसः 241
अङ्गुलिक 626
अङ्गुलित्रम् 306
अङ्गुलिषङ्गः 1070
अङ्गुलीयम् 510
अङ्गुष्ठः
अङ्घ्रिपः 306
अचकथत् 993
अचकाः 1038
अचकाङ्क्ष 961
अचकाण 962
अचकाद् 1037,1038
अचचेष्टत् 994
अचतुरः 644
अचर्त्तिष्यत् 892
अचर्त्स्यत् 892
अचायिषाताम् 796
अचायिष्यत 796
अचारुः 743
अचिकीर्त्त 964
अचिक्रमन् 987
अचिचेष्टत् 994
अचित्रीयत 258
अचीकण 962
अचीकमत 272,961
993
अचीकरत् 113,272
289,961
अचीकृतत् 964
अचेषाताम् 796
अचेष्ट 59
अचेष्यत 796
अचैषीत् 6, 270,865
अचैष्टाम् 1023
अच्छगत्य 136
अच्छर्दिष्ट 276
अच्छर्दीत् 276
अच्छा 778
अच्छात् 245
अच्छावाकीय 579
अच्छासीत् 245
अच्छित्त 1022
अच्छिदत् 276
अच्छृदत् 276
अच्छैत्सीत् 276,866
अच्छैदि 742
अच्छोद्य 136
अच्यते 280
अच्योढ्वम् 1069
अच्योष्ट 865,1023
अछर्त्स्य 892
अछर्दिष्य 892
अजः 329
अजकना 401
अजकम् 476
अजका 935
अजक्षः 956
अजक्षत् 956
अजक्षीत् 956
अजक्षीर 764
अजगणत् 994
अजगवम् 599
अजग्रप् 963
अजतुन्द 704
अजत्वम् 764
अजथ्या 554
अजनि 278,809
अजनिष्ट 278
अजन्तः 1029
अजपद 655
अजपृष्ठः 734
अजरः 735
अजरत् 277
अजर्घाः 1028
अजर्यम् 293
अजल्पीत् 868
अजस्तुन्द 704
अजस्रम् 346
अजा 422
अजागः 956
अजागरीत् 867
अजागारि 950
अजात्व 764
अजारीत् 277
अजाविकम् 223
अजिका 935
अजिग्रहत् 961
अजिघ्रपत् 963
अजिघ्रिपत् 963
अजिघ्रिपन् 963
अजिजीव 962
अजिरम् 237
अजिरव 775
अजिरवती 714
अजिह्रदत् 961
अजीगणत् 994
अजीजिव 962
अजीहरत् 961,993
अजुगूपाम 274
अजुहवुः 418,949
अजुहूषत् 673
अजूगुपः 274
अजूगुपतम् 273
अजूगुपताम् 274
अजूहवत् 673
अजैषीत् 5
अजैषुः 418
अज्झलौ 1101
अज्झीनः 1101
अज्ञः 179
अज्ञका 935
अज्ञत 246
अज्ञिका 935
अज्वालीत् 866
अज्हलौ 1101
अज्हीनः 1101
अञ्चितः 891
अञ्चितम् 787
अञ्चित्वा 891
अञ्जनागि 731
अञ्जसा 750
अञ्जिजिष 253,902
अञ्जिता 900
अञ्जिस 749
अटाट्यते 260
अटाट्यमानो 260
अटाट्या 374
अटायते 258
अटिटिष 663
अटीत् 866
अट्टायते 258
अट्टालिका 401
अडुढौक 962
अड्डिडि 664
अण् 52
अणकनापितः 170
अणव्यम् 580
अण्डीरः 599

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः 607
अतक्षीत् 868
अतत 245,789
अततक्षत् 993
अतत्वरत् 993
अतथाः 245
अतनिष्ट 245
अतनिष्ट यूयम् 245
अतनिष्ठाः 245
अतमि 929
अतर्त्स्यत् 892
अतर्दिष्ट 276
अतर्दिष्यत् 892
अतर्दीत् 276
अतस्तरत् 993
अतार्प्सीत् 271
अतायि 278
अतायिष्ट 278
अति 132
अतिकशः 748
अतिकायाद्० 205
अतिकार 748
अतिकेशा 438,439
अतिकेशी 438,439
अतिक्रम्य 397
अतिक्षिपति 103
अतिखट्वः 71
अतिगवः 642
अतिगा 748
अतिगौः 642
अतिङ् 184
अतिचारी 341
अतिचिक्ली 391
अतितराम् 630
अतितैसृक 152
अतिधीव 423
अतिनिद्रम् 152
अतिनु 28,66
अतिनु कुलम् 71
अतिपदा 748
अतिमालः 69,71,183
682
अतिमालः 715
अतियासीः 901
अतिरः 394
अतिराज्ञी 424
अतिरात्र 647
अतिरात्र 731
अति रिः 28
अतिरि 66
अतिरि कुलम् 71
अतिविदे 396
अतिश्वः 650
अतिष्ठिपत् 963
अतिष्ठिपता 963
अतिसिक्त 142
अतीक्ष्ण 743
अतीसारः 357
अतीसारकी 603
अतृणेड् 952
अतृदत् 276
अतृपत् 271
अतोभवान् 609
अत्तव्यम् 231
अत्ति 104,242
अत्यङ्कु 748
अत्यङ्गु 647
अत्यध्वः 646
अत्यन्तगः 316
अत्यन्तीन 581
अत्ययी 344
अत्यरा 962
अत्यादित्य 183
अत्यायः 302
अत्यूध्नी 429
अत्र 607
अत्रत्यः 489
अत्रभवान् 609
अत्रयः 241
अत्रा 777
अत्राप्सीत् 271
अत्रिभर 522
अत्रे राम 773
अत्साः 955
अत्सारीत् 866
अथच्छाया 683
अथो अत्र० 230
अथो आतो० 230
अथो इटि 15
अथो एनं० 230
अथो एनयोः 230
अदः कुलम् 1040
अदः कृत्य 136
अदः कृत्वा 136
अददत् 993
अदधः 797
अदधत् 273
अदन्त्य 742
अदमरः 345
अदमि 929
अदयिष्ट 211
अदरत् 277
अदरिद्रा 811
अदरिद्री 811
अदर्शत् 272,966
अदर्शिषा 797
अदर्शिष्य 796
अदस्यति 1040
अदाङ्क्षुः 1027,1029
अदात् 17,244
अदार्प्सीत् 271
अदायि 929
अदारीत् 277
अदिग्ध 944
अदिग्धाः 944
अदित 17,61
अदिदीपत् 962
अदिद्युतत् 982
अदिध्वनत् 274
अदिह्वहि 944
अदीदिप 962
अदीपि 278,809
अदीपिष्ट 278
अदुः 418,690
अदुग्ध 288,943
अदुग्धा गौः 278
अदुग्धाः 943
अदुद्यूष 784
अदुद्रुवत् 272
अदुद्वहि 944
अदुह्व 847,836
अदुह्वत 836,847
अदूरदशाः 188
अदूरविंशा 188
अदृपत् 271
अदृश्रन् 836
अदृश्रम् 836
अदेवत 742
अदेवीत् 867,868, 1023
अदोऽत्र 1040
अदोहि 289
अदोहि गौः० 278
अद्धर्यम् 499
अद्भिः 974
अद्भ्यः 974
अद्य 610
अद्यतनः 502
अद्यतनम् 35
अद्यते 231
अद्य भुक्त्वा० 196
अद्यश्वीना 582
अद्यायतः 971
अद्यित 61
अद्युतत् 105,276
अद्येव 689
अद्योढा 690
अद्योतिष्ट 105,106
276
अद्रक्षाता 797
अद्रक्ष्यत 796
अद्राक्षीत् 59,272,678
अद्राप्सीत् 271
अद्विषन् 419
अद्विषुः 419
अधः 613
अधमम् 499
अधमार्ध्य 499
अधमार्द्ध्य 499
अधर 839
अधरकायः 176
अधराः 22
अधरात् 13,612
अधरापरौ 223
अधरे 22
अधरेण 613
अधरेद्यु 610
अधरोत्तरम् 223
अधरोत्तरे 223
अधरोष्ठी 690
अधर्मजुगुप्सुः 165
अधविष्ट 901
अधस्तात् 611,613
614
अधस्पदम् 1060
अधस्विदासीत्३त् 1044
अधात् 17,244,273
अधाद् 245
अधावीत् 900
अधासीत् 245,273
अधि 132
अधिकदशाः 188
अधिकम् 592
अधिकरिष्य 143
अधिकर 747
अधिकरोति 91
अधिकविंशाः 188
अधिकर्ण 747
अधिकार्मम् 730
अधिकुमारि 151
अधिकुरुते 91
अधिक्षत 944
अधिक्षथाः 944
अधिक्षावहि 944
अधिगुणे 151

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिग्ध्वम् 944
अधिजगे 234
अधिजग्मुषः 331,332
अधिजिगां 783
अधिजिगापयि० 234
अधिजिगांसते 234
अधिज्यधन्वा 657
अधिज्यम् 187
अधित 17
अधितिष्ठ 126
अधित्यका 585,933
अधिद 747
अधि पञ्चाले 143
अधि ब्रह्मदत्ते 143
अधिमर्म 151
अधियीय 388
अधिवसति 127
अधिशिश्रिय 670
अधिशेते 126
अधिसाम 652
अधिस्त्रि 24,151,225
अधिस्नु 680
अधिहरि 24,151,166
225,247
अधीचः 724
अधीतिनी 595
अधीती 595
अधीती व्याकरणे 206
अधीते 121
अधीयति 338
अधीयन् 338
अधीयानो० 337
अधीष्व माणवक 1006
अधुक्षत् 271,943,944
अधुक्षत 943
अधुक्षथाः 943
अधुक्षध्वम् 943
अधुक्षाताम् 943
अधुक्षामहि 944
अधुक्षावहि 944
अधुक्षि 943
अधुग्ध्वम् 943,1028
अधुना 609
अधेनवम् 477
अधो एनेन० 230
अधोक् 46,1025
अधोऽग्रे 696
अधोऽधः 996
अधोष्ट 901
अधो हसति 1052
अध्यगात् 233
अध्यगीष्ट 55,234,799
अध्यगीष्यत 234
अध्यजीगपत् 234
अध्यधि 996
अध्यध्व 652
अध्ययन 741
अध्ययनाय वसति 201
अध्याययेन वसति 201
अध्यर्धकंसम् 558
अध्यर्ध काकि 560
अध्यर्धकार्षापण 559
अध्यर्धकार्षापणि 559
अध्यर्धखारी 560
अध्यर्धपण्य 560
अध्यर्धपाद्य 560
अध्यर्धमाष्य 560
अध्यर्ध विंशति 559
अध्यर्धशत 559,560
अध्यर्धशत्य 560
अध्यर्धशाण 560
अध्यर्धशाण्य 560
अध्यर्धशात 559
अध्यर्धशूर्पम् 558
अध्यर्धसहस्र 559
अध्यर्धसाहस्र 559
अध्यर्धसुवर्ण 559
अध्यर्धसौव 559
अध्यागच्छ 142
अध्यात्म 652
अध्यात्मम् 24
अध्यापय 675
अध्यापयति 104,130
अध्यापयतु 389
अध्यापयेत् 388
अध्यापिपत् 234
अध्यापिपयि० 234
अध्यायः 358,380
अध्यास्ते 126
अध्येता 248
अध्येतारः 248
अध्येतारौ 248
अध्येषणा 376
अध्यैष्ट 234
अध्यैष्यत 234
अध्वगः 316
अध्वगत् 790
अध्वना 820
अध्वनीनः 582,831
अध्वन्यः 582
अध्वरिषा 884
अध्वर्यः 298
अध्वर्यन्ता 971
अध्वर्युः 443
अध्वृषाता 884
अनक्ति 785
अनजका 935
अनजिका 935
अनड्दुद्भ्याम् 1037
अनडुही 433,863
अनड्वन् 863
अनड्वा 858
अनड्वान् 863
अनड्वाहः 863
अनड्वाहम् 863
अनड्वाही 433,863
अनड्वाहौ 863
अनर्त्स्य 893
अनन्तकरः 310
अनन्तगः 316
अनन्नम् 743
अनभ्याश 765
अनयोः 917
अनर्तिष्य 893
अनर्थकरम् 310
अनर्वाणौ 818
अनश्वः 766
अनंसीत् 901
अनंस्त 289
अनहः 743
अनागा 743
अनाढ्य 743
अनाश्वान् 332
अनासिका 440
अनिक्त 276
अनिजत् 276
अनिराक 743
अनु 132
अनु....अग्मन् 139
अनुकच्छम् 152
अनुकनख 151
अनुकनी 747
अनुकम् 592
अनुकरोति 103
अनुकामीन 581
अनुकूलम् 153
अनुक्रीडते 86
अनुगङ्ग 156
अनुगव 646
अनुगवीन 582
अनुगादिक 630
अनुगिरम् 151
अनुगु 646
अनुगुणम् 153
अनुगृणाति 125
अनुगृभाय 285
अनुजः 329
अनुजातः 408
अनुजिज्ञा 96
अनुजीर्णः 408
अनुज्ये 747
अनुज्येष्ठम् 153
अनुतट० 151
अनुतूलयति 262
अनुत्तः 1034
अनुत्तमा 1034
अनुनदि 152
अनुनाथति 87
अनुपथ 652
अनुपदम् 152
अनुपदी 595
अनुपदीना 581
अनुपर्वत 156
अनुपुरु 748
अनुप्रपात 404
अनुप्रपाद 404
अनुप्रवच 573
अनुप्रवे 404
अनुप्रहरेद यूपा३इ 1043
अनुब्राह्मणी 481
अनुमालिनी 152
अनुयागः 940
अनुयाजः 940
अनुयायिन् 325
अनुरथम् 152
अनुरहस 646
अनुराधः 504
अनुरूपम् 153
अनुरोधी 341
अनुलिम्प 809
अनुलोम 644,652
अनुलोमयति 262
अनुवदति 94
अनुवदते 94
अनुवन 156
अनुवनान्त 151
अनुवसति 127
अनुवाकः 229
अनुविष्णु 152
अनुशाकटा 140
अनुशाधि 788
अनुष्ट्या 847
अनुष्ठुया 847
अनुष्यन्दते 1068
अनुसाम 644

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुस्यन्दते 1068
अनुहरन्ते 87
अनुहरिं 140
अनूचानः 332
अनूवाच 332
अनूवास 332
अनूषितः 408
अनूषिवान् 332
अनृक्साम 643
अनृचः 643
अनृतं हि 1004
अनेकधा 614
अनेद्वम् 1069
अनेन
अनेनिजम् 950
अनेनिज् 950
अनेनित् 950
अनेनेग् 950
अनेशम् 814
अनेषः दे 699
अनेहा 861
अनैक्षीत् 276
अनैपुण 928
अनैश्वर्य 928
अनैषीत् 6,7,865
अन्तकरः 310
अन्तगः 316
अन्तमः 825
अन्तर 839
अन्तरयणम् 1087
अन्तरा 23
अन्तरा तक्षशिलां 195
अन्तरीप 770
अन्तरीपम् 33,49,644
अन्तरे 23
अन्तर्गिर 653
अन्तर्गिरम् 151
अन्तर्गिरि 653
अन्तर्घनः 368
अन्तर्घातः 368
अन्तर्णयति 135
अन्तर्द्धत्ते 120
अन्तर्द्धा 135,375
अन्तर्द्धिः 135,371
अन्तर्धत्स्व 121,810, 1028
अन्तर्भवन० 151
अन्तर्लोम 654
अन्तर्वणः 746
अन्तर्वणम् 166
अन्तर्वणे 1081
अन्तर्वत्नी 430
अन्तर्हणनम् 1087
अन्तर्हण्यते 1087
अन्तर्हत्य 135
अन्तर्हत्वा 135
अन्तर्हन 1087
अन्तःस्थीय 496
अन्तादिवच्च 190
अन्तादी 190
अन्ति 954
अन्तिका 750
अन्तिकादागतः 165
अन्तितः 825
अन्तितमः 825
अन्तिमः 502
अन्तियः 825
अन्तेगुरु 752
अन्त्यः 507
अन्धकव 516
अन्धङ्करणम् 318
अन्धतमस 645
अन्धम्भविष्णुः 318
अन्धम्भावुकः 318
अन्धो नाम 386
अन्नदाय 287
अन्नबुभुक्ष 158
अन्नम् 236
अन्नमय 632
अन्नादः 322
अन्यत् 842
अन्यतरत् 842
अन्यतरेद्यु 610
अन्यत्का 771
अन्यथा 610
अन्यथाकारं 398
अन्यदर्थ 771
अन्यदा 609
अन्यदाशा 771
अन्यदाशीः 770
अन्यदास्था 771
अन्यदास्थि 771
अन्यदी 771
अन्यदु 771
अन्यदू 771
अन्यदागः 771
अन्यादृक् 320
अन्यादृक्षः 320
अन्यादृशः 320
अन्यार्थम् 771
अन्याशीः 771
अन्यास्थि 771
अन्येद्युः 610
अन्योऽन्यम् 997
अन्योन्यस्य 85
अन्वग्भावं 406
अन्वग्भूत्वा 406
अन्वग्भूय 406
अन्वब्रवीत् 332
अन्वभावि 796
अन्वलुलो 962
अन्ववसत् 332
अन्ववातप्त० 279
अन्ववात्सीत् 332
अन्ववोचत् 332
अन्वशाद् 1037
अन्वशिषत् 1063
अन्वाजेकृत्य 137
अन्वाजेकृत्वा 137
अन्वारत् 276,966
अन्वारुद्ध गौः० 279
अन्वीपम् 770
अन्वेतवै 396
अन्वेषणा 376
अप 132
अपः 706
अपकरः 703
अपकरकः 504
अपकिर 701,702
अपकिरति 87
अपकुक्षि 747
अपगारमप 677
अपगोरमप 677
अपघनः 369
अपचः 742
अपचः 742
अपचसि 766
अपचामहि 416
अपचायितः 879
अपचारी 341
अपचितः 879
अपचितिः 879
अपचे 690
अपचेताम् 905
अपचेथाम् 905
अपजानानः 93
अपजानीते 93
अपठः 415
अपठत् 145,282,415
अपठत 416
अपठतम् 416
अपठताम् 416
अपठन् 415
अपठम् 416
अपठाम 415
अपठाव 415
अपठिष्म 415
अपठिष्यः 415
अपठिष्यत् 415
अपठिष्यत 280,416
अपठिष्यतम् 416
अपठिष्यताम् 416
अपठिष्यन् 415
अपठिष्यम् 416
अपठिष्याम 415
अपठिष्याव 415
अपठिष्व 415
अपठ्यत 280
अपत्नीकः 965
अपत्रपिष्णुः 339
अपत्रिग 720
अपत्रिगर्त्त 155
अपत्रिगर्त्तेभ्यो 197
अपत्रिगर्त्ते 140
अपथः 229
अपथम् 229,643
अपनाम 747
अपन्थाः 229
अपन्थाः 643
अपपूत 747
अपप्तत् 966
अपप्रथत् 993
अपभर्तवै 395
अपमन्युः 187
अपमाय 800
अपमित्य 397,800
अपमित्यक 535
अपमुखः 747
अपमृषितम् 62
अपर 839
अपरकायः 176
अपरपा 923
अपरपुरुषः 171
अपररात्र 647
अपरस्य 702
अपराः 22
अपरा 430
अपररात्रकृतम् 167
अपराह्णः 176,228, 648,1082
अपराह्णक 503
अपराह्णे 773
अपराह्णेतन 503
अपरी 430
अपरे 22

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरेधतुः 816
अपरेधि 816
अपलांग 747
अपलाषी 341
अपलाषुकः 344
अपलुपम् 395
अपवदति 102
अपवदते 102
अपविद्ध्वम् 1070
अपविध्वम् 1070
अपवीण 747
अपष्ठः 1074
अपसीर 747
अपसेचन 377
अपस्करः 703
अपस्किर 87,701
अपस्पृधेथाम् 673
अपस्फि 747
अपस्यश 994
अपहल 747
अपहनुते 1095
अपह्नुते
अपह्वृताः 879
अपाकर्त्तोः 396
अपाक्षीत् 866,867
अपाच्यम् 489
अपाङ्गः 747
अपाठि 280
अपाठिष्यत 280
अपाणिनी 742
अपात् 244
अपाद्यम् 742
अपाध्वा 747
अपान्नप्त्रि 473
अपान्नप्त्री 473
अपामार्गः 380
अपामार्ग 775
अपायिन् 603
अपारिष्टा 883
अपारीत् 883
अपाश्या 742
अपासीत् 245
अपास्पर्धे 673
अपि 132
अपिगृह्यम् 297
अपिग्राह्यम् 297
अपि तत्र 385
अपि पठेत् 386
अपि पर्वतं 387
अपिपीड 962
अपिप्लवन् 988
अपिसिञ्च 143
अपिसिञ्चेत् 143
अपिस्तुहि 143
अपिस्फव 932
अपीपचत् 667,993
अपीपवत् 961
अपीपिड 962
अपीप्यत् 963
अपीप्यन् 963
अपुः 418,690
अपुषत् 276
अपुस्फुर 677
अपूपीयम् 554
अपूपुजत् 993
अपूप्यम् 554
अपूरि 278
अपूरिष्ट 278
अपेक्ष्यत् 1029
अपोनप्त्रि 473
अपोनप्त्री 473
अप्यम् 551
अप्यायि 278
अप्यायिष्ट 278
अप्रजाः 655
अप्रयाणिः 1088
अप्राप्य 397
अप्लोढ्वम् 1069
अप्लोष्ट 884
अप्सरा 1096
अप्सरायते 256
अप्सासी 901
अफ्सरा 1096
अबबाधत् 962
अबभासत् 962
अबभ्राजत् 962
अबिभयुः 949
अबिभरुः 949
अबिभवत् 987
अबिभ्रजत् 962,993
अबीभषत् 962
अबीभसत् 962
अबुद्ध 59,278,1022
अबूबुधत 993
अबेभिदि 793
अबोधि 278,809
अब्जाः 322,790
अब्रभीत् 866
अब्रवीः 954
अब्रवीतन 848
अब्रवीत् 952
अब्राह्म 766
अब्राह्मणः 179
अब्राह्मणः 715
अभङ्सि 788
अभनक् 785
अभवत् 800
अभवताम् 29
अभस्त्रका 935
अभस्त्रिका 935
अभाजि 785,788
अभाणीत् 1023
अभासीत् 901
अभि 132
अभिकम् 593
अभिक्रुध्यति 124
अभिक्षिपति 103
अभिक्षिपन्तम् 103
अभिचरि 396
अभिजानासि० 333
अभितः 607
अभितष्टम्भ 1066
अभितष्ठौ 1065
अभितुष्टाव 978
अभित्त 59,1022
अभित्थाः 801
अभित्साताम् 1023
अभिदत् 276
अभिद्रुह्यति 124
अभिधत्ते 129
अभिनः 1038
अभिनत् 1038
अभिनिवि० 127
अभिनिविश 85
अभिनिस्तानो वर्णः 1071
अभिनिस्तानो विसर्जनीयः 1071
अभिनोऽभिनः 1017
अभिप्लुत्य 795
अभिभङ्क्षा 708
अभिमुख 747
अभिरमते 103
अभिलावः 359
अभिलाषो मे 386
अभिवादय 131
अभिविष्य 800
अभिशीन 672
अभिश्यान 672
अभिषज 106
अभिषन्ति 1072
अभिषसाद 1079
अभिषिक्षि० 1078
अभिषिञ्चति 1065
अभिषिष० 1066
अभिषिषि० 1066
अभिषिषिक्षति 1065
अभिषिषेणयिषति 1065
अभिषिषेध 1065
अभिषिष्व 1066
अभिषुणोति 1065
अभिषुवति 1065
अभिषेणयति 262,1065
अभिषेधति 1065
अभिष्टम् नाति 1066
अभिष्टोभते 1065
अभिष्टौति 1065
अभिष्ठास्यति 1065
अभिष्यति 1065
अभिष्यन्दते 1068
अभिष्यनः विसर्जनीयः 1071
अभिष्यात् 141,1072
अभिष्वज 1066
अभिसुसूः 1079
अभिसेधयति 1078
अभिसेसिच्यते 1078
अभिसोष्यति 1079
अभिस्तः 1072
अभिस्यन्दते 1068
अभिहवः 367,368
अभीकम् 593
अभीयात् 967
अभीरुक् 774
अभीषयत 931
अभीषु 777
अभीषुणः 1076,1088
अभुध्वम् 1027
अभूः 950
अभूतन 848
अभूत् 244,800, 950,955
अभूवन् 805
अभूवम् 950
अभृद्ध्वम् 1069
अभृत 60
अभैत्सीत् 272,276 682,866
अभैषीः 955
अभ्यङ्काः 156
अभ्यग्नि 155
अभ्यणा 878
अभ्यमितः 878
अभ्यमित्रीण 582
अभ्यमित्रीय 582
अभ्यमित्र्य 582

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यमी	344	अमरत्	277	अमृतः	735	अयस्पात्रम्	1060	अरुधत्	276
अभ्ययोध्यम्	156	अमरराड्ढु	1101	अमृताश्म	649	अयस्मय	117	अरुन्तुद	764
अभ्यर्णः	1030	अमराव	775	अमेधाः	655	अयाची	300	अरुन्तुदः	313
अभ्यर्हि	751	अमरिष्यत्	97	अम्नरेव	1037	अयाथात	928	अरुष्करः	310
अभ्यषज	106	अमंस्त	1023	अम्ब	958	अयाथापु	928	अरूभव	638
अभ्यषिचन्	1065	अमाङ्क्षीत्	852	अम्बष्ठः	1074	अयान्	419	अरूस्या	638
अभ्यषिञ्चत्	1065	अमात्यः	489	अम्बाड	957	अयासिष्टा	901	अरैक्षीत्	276
अभ्यषुणोत्	1065	अमार्क्षीत्	271	अम्बाडे (हे)	957	अयासीत्	901	अरोकदन्	659
अभ्यषुवत्	1065	अमावस्य	504	अम्बाल	957	अयुः	419	अरोकदन्त	659
अभ्यषेणयत्	1065	अमावस्यक	504	अम्बाले	957	अयुक्त	276	अरोदः	956
अभ्यषेधत्	1065	अमावस्या	297	अम्बिक	957	अयुजत्	276	अरोदत्	956
अभ्यष्टभ्नात्	1066	अमावास्यः	504	अम्बिके	957	अयोघनः	369	अरोदीत्	956
अभ्यष्टोभत	1065	अमावास्यक	504	अम्बे	958	अयोदती	659	अरौत्सीत्	276,277
अभ्यष्टौत्	1065,1079	अमावास्या	297	अम्बे अम्बा	696	अयोमय	118		866
अभ्यष्ठात्	1065	अमिति	880	अम्बे अम्बि	696	अयौक्षीत्	276	अर्कः	1095,1097
अभ्यष्यत्	1065	अमित्रः	735	अम्भसाकृ	750	अरक्षीत्	868	अर्काश्वमेधम्	220
अभ्यष्व	1066	अमित्रयन्त	970	अम्भोज	478	अरगीत्	868	अर्केण	1080
अभ्यसो	1079	अमिमील	962	अम्राक्षीत्	271	अरण्यातीतः	159	अर्क्कः	1095
अभ्यस्तौत्	1079	अमी	1040	अम्रियत	97	अरण्यानी	436	अर्घ्यः	1095
अभ्याघाती	341	अमी अत्र	14	अम्रोचीत्	277	अरण्ये	751	अर्घेण	1081
अभ्यान्तः	878	अमी ईशाः	14	अम्लुचत्	277	अरण्येतिलकाः	166	अर्घ्यः	1095
अभ्याशा	750	अमीति	954	अम्लोचीत्	277	अरण्येमाषाः	166	अर्घ्यम्	632
अभ्यासादागतः	165	अमीभिः	837,1040	अयः	365	अररक्षत्	794,993	अर्चनाः	655
अभ्युत्सादयामकः	269	अमीभ्यः	1040	अयं च	1003	अरर्त्तिः	982	अर्चा	374
अभ्युदसीषदत्	269	अमीमिल	962	अयच्छत्	946	अरविन्दः	302	अर्चावान्	597
अभ्युद्धरति	1012	अमीमृजत्	964	अयं नु	356	अराजा	642	अर्चिचि	664
अभ्यूष	377	अमीमृजन्त	964	अयः पात्रम्	1060	अराजा	743	अर्चिभिष्टतक्षुः	1076
अभ्यैः	688,800	अमीषाम्	1040	अयम्	916,917	अरार्य	664	अर्चिभिष्ट्वम्	1076
अभ्र आँ	698	अमीषु	1040	अययाच	962	अरार्यते	260,969	अर्चिभिस्ततक्षुः	1076
अभ्रंलिह	764	अमुकैः	837	अयवः	745	अरिक्त	276	अर्चिभिस्त्वम्	1076
अभ्रंलिहः	313	अमुना	1015,1039	अयवको	745	अरिचत्	276	अर्च्यते	280
अभ्रँ आ	79	अमुम्	1039	अयं वाव	1010	अरित्रम्	351	अर्च्यम्	941
अभ्रङ्कषः	315	अमुया	1040	अयष्ट	1027	अरित्र	715	अर्जयन् वसति०	337
अभ्रविलि	437	अमुष्मै	29	अयंसीत्	901	अरिन्दमः	315	अर्जुनः	1095
अभ्रायते	258	अमू	915,1039	अयस्कर्णी	1060	अरिरिष	253,901	अर्जुनक	517
अभ्रियः	549	अमू अत्र	14	अयस्कंसः	1060	अरिष्टता	552	अर्जुनगृह्याः	297
अमन्थीत्	868	अमू आसाते	14	अयस्कामः	1060	अरिष्टश्रि	732	अर्जुनतः	636
अममार्जत्	964	अमून्	1039	अयस्कारः	1060	अरीरमत्	270	अर्जुनतः प्रति	142
अममालत्	962	अमूभ्याम्	29,1039	अयस्कुम्भः	1060	अरुकरो	638	अर्ज्जुनः	1095
अममृदत्	993	अमृक्षत्	271	अयस्कुशा	1060	अरुक्षत्	277	अर्णवः	599
अमरः	735	अमृत	97,277	अयस्पा	1061	अरुंतुद	764	अर्तिता	264

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्तित्वा 64
अर्त्तीयित्वा 64
अर्थकरः 310
अर्थकामौ 190
अर्थ–गौरवम् 180
अर्थ धर्मौ 190
अर्थ भुद् 1027
अर्थवान् 604
अर्थहानी रसभे 1050
अर्थी 604
अर्थ्यम् 546
अर्थ्यामर्थ 208
अर्दयीत् 274
अर्दितः 878
अर्द्धपिप्पली 227
अर्द्धर्चः 643
अर्द्धर्चम् 643
अर्द्धखार 650
अर्द्धखारी 650
अर्द्धनाव 650
अर्द्धपिप्पली 177
अर्द्ध पिप्पलीनाम् 177
अर्द्धमासतमः 591
अर्द्धरूप्यकम् 177
अर्द्धशरीरम् 177
अर्द्धासनम् 177
अर्द्धिकः 558
अर्धकंसि 927
अर्धकौड 927
अर्धद्रौणि 927
अर्धपञ्चमशूर्पः 18
अर्धपाञ्चा 923
अर्धप्रस्थ 927
अर्धभाक् 321
अर्धर्चः 229
अर्धर्चम् 229
अर्धाः 22
अर्धे 22
अर्ध्यम् 499
अर्णवः 599
अर्पयति 930
अर्पितः 713
अर्पिपः 930
अम्रुचत् 277
अर्यते 280,969
अर्यमा 782
अर्यमिक 622
अर्यः वैश्यः 293
अर्यः स्वामी 293
अर्या 436
अर्याणी 436
अर्यात् 969
अर्यी 436
अर्रायते 260
अर्वन्तौ 818
अर्वा 818
अर्वाक् 629
अर्वाचीन 629
अर्शस 603
अर्हणा 376
अर्हति चौरो० 338
अर्हति भो 406
अर्हन्निह० 338
अर्हेण 1080
अलं....गत्वा 397
अलङ्करिष्णुः 339,340
अलङ्कर्मी 629
अलङ्कुमारिः 227
अलङ्कृत्य 135
अलं देवदत्तः 387
अलं दैत्येभ्यो० 199
अलं भुक्त्वा 135
अलं भोक्तुं 406
अलं महीपाल 122
अलभ्युरु 629
अलम्भि 854
अलर्षि 980
अलविद्ध्वम् 1022
1070
अलविध्वम् 1022
1070
अलं....श्रमेण 202
अलं हसितेन 199
अलाबूः 443
अलाबूकट 584
अलाभि 854
अलाविष्टाम् 1023
1024
अलावीत् 6,7,865
1016
अलासीत् 901
अलिक्षत् 271
अलिक्षत 944
अलिक्षथाः 944
अलिक्षध्वम् 944
अलिक्षावहि 944
अलिढाः 944
अलिपत् 275
अलिपत 275
अलिप्त 275,1022
अलिह्वहि 944
अलीढ 944
अलीढ्वम् 944
अलीलवत् 961,993
अलुनात् 948
अलेक्ष्यत् 1029
अल्पशः 635,757
अल्पस्य हेतो० 202
अल्पाः 22
अल्पा 997
अल्पान् मुक्तः 205,165
750
अल्पे 22
अल्पेन मुक्तः 205
अल्ल (हे) 957
अवः 614
अव 132
अवएव 1037
अवकटम् 585
अवकरः 703
अवकुटार 585
अवकोकिलः 183
अवक्रीणीते 85
अवगल्भते 256
अवगल्भायते 256
अवगाहे 396
अवगिरते 94
अवगृह्यं पदम् 297
अवग्रहः 363,364
अवग्राहः 363,364
अवघुषि 877
अवचक्षे 396
अवचिनोति 129
अवचूर्णयति 262
अवच्छाय 930
अवच्छित 972
अवछ्यति 942
अवटीटम् 585
अवततार 120
अवतप्तेन० 163
अवतप्तेनकु० 167
अवतमस 645
अवतस्तार 978
अवतानः 302
अवतारः 379
अवतिष्ठते 87
अवत्तम् 974
अवत्सी 742
अवत्स्यत् 974
अवदत्त 132
अवदाता 972
अवदाय 972
अवदिग्ये 964
अवद्यति 942
अवद्यम् 293
अवधि 930
अवधिषा 796
अवधिष्टाम् 233
अवधीत् 37,233,871
अवनाटम् 585
अवनायः 359
अवन्ती 467
अवभृथः 740
अवभ्रटम् 585
अवमम् 499
अवमंस्थाः 801
अवमीत् 867
अवमूर्द्धाशयः 309
अवयाः 323,1036
अवर 838
अवरतः 611
अवरस्तात् 614
अवरहस 646
अवराः 22
अवरिष्ट 60,884
अवरीष्ट 60,884
अवरुणद्धि 129
अवरे 22
अवरेव 1037
अवर्तिष्ट 59
अवर्तिष्यत 106
अवर्त्स्यत् 106,894
अवलोम 644
अववर्त्तत् 964
अववेष्टत् 993
अवशीन 672
अवश्यपा 941
अवश्यलाव्य 685
अवश्यवा 941
अवश्यान 672
अवश्यायः 302
अवष्ष्वाण 1067
अवष्टब्धा 1066
अवष्टभ्या 1066
अवष्वणति 1067
अवसन्निह० 335
अवसाम 644
अवसायः 302
अवसाय 800,930
अवसितः 971
अवस्करः 503,702
अवस्तात् 611,614
अवस्तारः 379
अवस्था 373
अवस्यति 942

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्राव 377
अवहननायो० 164
अवहारः 302
अवाचा 706
अवाच्यम् 941
अवात्ताम् 1023
अवात्सु० 335
अवादी 300
अवादीत् 866
अवान् 419
अवान्तरदी 571
अवारपारीण 487,581
अवारिष्टाम् 883
अवारीणः 487
अवारीण 581
अवारीत् 883
अवावन् 790
अवासी 300
अवास्थित 88
अविकः 633
अविकट 584
अविकटो 751
अविक्त 276
अविघ्नम् 152
अविचत् 276
अविथ्या 554
अविदुः 418
अविदूसम् 475
अविद्यमानः 187
अविपट 584
अविमरीस 475
अविलिखः 742
अविवृधत् 964
अविवेकः 179
अविवेष्टत् 993
अविसोढ 475
अवीवदन् 993
अवीवृतत् 964
अवीवृधत् 964
अवुः 419
अवृत 884

अवेदिषुः 270
अवेविजम् 950
अवेविषम् 950
अवैक्षीत् 276
अवोचत् 274,966
अवोचत 289
अवोढाम् 773
अवो दिवा 1037
अवोदुः 787
अव्यथि 395
अव्यथी 344
अव्यथ्यः 296
अव्ययीः 867
अव्ययीत् 867
अव्याहारी 300
अव्राजी 300
अव्राजीत् 866
अशकत् 276
अशनुः 735
अशत्स्यत् 97
अशनायति 970
अशनीयति 970
अशमयि 796
अशमयिष्य 796
अशमि 806,929
अशमिषा 796
अशमिष्य 796
अशर्त्स्यत् 894
अशशास 962
अशात् 245
अशामिषा 796
अशामिष्य 796
अशायि भवता 279
अशाश्यते 260
अशासीत् 245
अशिक्षत 121
अशिखा 439
अशिशिष 253,902
अशिश्रवंन् 667,988
अशिश्रियत्–तः 272
अशिश्वयत् 673

अशिश्वियत् 273,277
अशिश्वी 441
अशिश्वीयि 664
अशिषत् 276,788
अशीतिः 565
अशीयत 947
अशीशतत् 932
अशुचिः 743
अशुषत् 276
अशूशवत् 673
अशेत 966
अशोचीत् 868
अशौचम् 928
अश्नित्यम् 1094
अश्मना 820
अश्ममयः 525
अश्मरः 485
अश्मार्मम् 730
अश्रन्थिष्ट 289
अश्राद्धभोजी 326
अश्रौषीत् 7
अश्लील 722
अश्वक 619
अश्वकः 620,624
अश्वक्रीती 184
अश्वग्रीवः 734
अश्वजङ्घः 734
अश्वत् 273,277,966
अश्वतर 623
अश्वता 578
अश्वताम् 966
अश्वति 256
अश्वत्थः 469
अश्वत्थक 507
अश्वत्था 472
अश्वत्थामा 323,509
अश्वत्वम् 578
अश्वपाद 658
अश्वपालि 435
अश्वप्रपत 573
अश्वमहिषम् 222

अश्वयीत् 273,277
867
अश्वयुक् 320
अश्वरथेन्द्राः 191
अश्वलव 715
अश्वल्लीत् 866
अश्ववडव 223
अश्ववडवम् 223
अश्ववडवौ 223,228
अश्वसः 956
अश्वसत् 956
अश्वसीत् 867
अश्वस्थानः 505
अश्वस्यति 849
अश्वा 422,650,934
अश्वाची 769
अश्वायति 971
अश्वायन्तः 971
अश्वावृषे 191
अश्वाध्यक्ष 726
अश्वायते 256
अश्वावती 777
अश्विकः 534
अश्विका 934
अश्वितत् 276
अश्वियम् 802
अश्वीयम् 477
अश्वीयियि 664
अश्वीयिष 664
अश्वेन गच्छति 197
अश्वेन्द्ररथा 191
अश्वोरस 649
अश्व्यम् 802
अषडक्षीण 629
अषाढः 504
अषाढा 505
अष्ट 840
अष्टकः 482
अष्टकम् 564
अष्टकर्णः 774
अष्टका 934

अष्टच 761
अष्टत्वम् 906
अष्टधा 614
अष्टपुत्रः 776
अष्टभिः 906
अष्टभ्यः 906
अष्टमः 589,615,616
अष्टसु 906
अष्टाक 760
अष्टाकपा 776
अष्टागव 776
अष्टागवे 760
अष्टाच 761
अष्टाचत्वारिंश 571
अष्टाचत्वारिंशी 571
अष्टादश 760
अष्टाध्यायी 169,427
अष्टानाम् 851,906
अष्टापदी 776
अष्टाभिः 707
अष्टाभिः 906
अष्टावक्रः 776
अष्टौ 840
अष्ट्रावी 601
अष्ठीवत् 1020
असकौ 619
असक्थ 655
असक्थि 655
असखा 642
असञ्जात 659
असत्कृत्य 134
असत्कृत्वा 134
असत्याः 767
असः दे 699
असनिष्ट 791
असरत् 276,966
असंव्याहारी 300
असस्मर 993
असात् 245
असात 791
असान्ता 742

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असावीत् 900
असासीत् 245
असि 975
असिक्त 275
असिक्नी 432
असिग्राहं 403
असिचत् 275
असिचत 275
असिछिन्नः 162
असिता 341,432
असिना छिनत्ति 200
असिना छिन्नवान् 162
असिपत्र 774
असुरद्विड् 1027
असुर्यम् 549
असुस्रुवत् 272
असूतजर 722
असूयकः 342
असूयति 124
असूयियि 664
असूर्यम्प 313
असूर्यम्पश्या 313
असूषुप 671
असृङ्मि 840
असेधीत् 868
असेवीत् 867,868
असैत्सीत् 1023
असोष्ट 201
असौ 916
अस्कभाय 286
अस्तं कृत्वा 136
अस्तङ्कृत्य 136
अस्तभत् 277
अस्तम्भीत् 277
अस्तरिष्ट 884
अस्तरीष्ट 884
अस्तारिष्टा 883
अस्तावि 900
अस्तावीत् 900
अस्तिद्विजः 336
अस्तिभोक्तुं 406
अस्तीष्ट 884
अस्तुङ्का 765
अस्तुध्व 1070
अस्तु ही३ 699
अस्तु ही 699
अस्तोष्ट 900
अस्त्रीकः 965
अस्थन्व 857
अस्थन्वन्तम् 1020
अस्थिभिः 857
अस्थात् 244
अस्थिहरः 307
अस्थुः 418
अस्थ्ना 857
अस्नोष्ट 289
अस्पर्धे 673
अस्पाक्षीत् 271
अस्पृक्षत् 271
अस्माक्षीत् 271
अस्फाव 932
अस्मत् 844,907,909, 910
अस्मत्पुत्रौ 998
अस्मदीयः 492,498
अस्मदीयम् 54
अस्मभ्यम् 843,908 909,910
अस्मरिषा 884
अस्माकम् 844,911
अस्मात् 607
अस्मान् 843,908
अस्माभिः 907
अस्मासु 907
अस्मिन् 607
अस्मृषा 884
अस्मे 847
अस्मे इन्द्रा० 14
अस्यति 945
अस्यते 280
अस्यन्तस्य 894
अस्यवामीय 591
अस्युद्यतः 193
अस्राक्षीत् 59
अस्वका 935
अस्वपः 956
अस्वपत् 956
अस्वपीत् 956
अस्विका 935
अह 1005
अहः 1018
अहः पतिः 1037
अहंतु० 335
अहं ते ददामि 1043
अहं न्व० 335
अहं ब्रवीमि 75
अहन् 681
अहनिष्य 796
अहन्नहिम 394
अहम् 605,842,909, 910,912
अहरतिसृताः 160
अहरपि 1036
अहं रामायणं० 279
अहरहः 1036
अहर्गणः 1036
अहर्दिव 645
अहर्पतिः 1037
अहर्भुङ्क्ते 1036
अहर्वै 1010
अहल 655
अहलि 655
अहल्यायै जारः 214
अहसाताम् 796
अहसीत् 867
अहस्करः 310
अहस्सङ्क्रान्ताः 160, 161
अहारम्य 773
अहार्षीत् 6
अहिः 434
अहिनः 1038
अहिनकुलम् 222
अहिनद् 1038
अहिनाः 655
अहिरहिः 997
अहिर्नु३ 1043
अहिहतः 723
अही 434
अहीनः 476
अहीवती 714
अहीवती 1019
अहृद्वम् 1069
अहृत 60
अहृवत 275
अहृवास्त 275
अहो अद्य शीतम् 15
अहो अधुना 15
अहो आश्चर्यम् 15
अहो ईशा 15
अहो देवदत्तः 1005
अहोभिः 1036
अहोभ्याम् 1036
अहोरथन्तरम् 1036
अहोरात्रः 228,647 1036
अहोरात्राः 228
अहोरात्राणि 228
अहोरात्रौ 228
अहोरूपम् 1036
अह्नाऽनुवा 196
अह्नि शेते 215
अह्नालीत् 866
अह्नुतभ 879

आ

आँ 11
आः 955
आंनहे 982
आ ऋच्छत् 699
आकरः 379
आकरिक 540
आकरिकः 512,540
आकर्णया 794
आकर्षः 1096
आकर्षक 591
आकर्षश्च 650
आकर्षिकी 534
आकायः 362
आकालिकः 573,574
आकुमार 141
आकुमारे 141,197
आकौशल 928
आक्रन्दिक 538
आक्रमते 92,945
आक्रंस्यते 1099,1053
आक्रामति 92
आक्रीडते 86
आक्रीडी 341
आक्रोशकः 342
आक्रोशिक 542
आक्शातव्यम् 236
आक्शाता 236
आक्शातुम् 236
आक्षद्यूति 535
आक्षिकः 919,532
आक्षिकाः 533
आक्षिकी 425
आक्षिपते 103
आक्षीणः 795
आक्षैत्रज्ञ्य 928
आखः 380
आखनः 380
आखरः 380
आखरिकः 380
आखा 329
आखानः 380
आखुः 434,442
आखुघातः 317
आख्यत् 274
आख्यन् 274
आख्यातव्यम् 236
आख्याता 236
आख्यातिकः 512
आख्यातुम् 236
आख्यानिकः 480

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख्यास्यामि	1009	आचामति	945	आद्यकु	834	आत्रेयीयाः	449	आध्वम्	1022
आगच्छ	1008	आचाम्यम्	298	आद्यकुली	460	आत्रेयौ	241	आध्वरिकः	512
आगच्छानि	1008	आचारनिपुणः	162	आद्यङ्करः	426	आथर्वणि	832	आध्वर्यव	521
आगण्डलम्ब	155	आचारश्लक्ष्णः	162	आद्यङ्करणम्	318	आदः	231,956	आनक्	800
आगतरो	729	आचार्यः	293	आद्यचरः	616	आद	232	आनङ्ग	983
आगत्य	38,790	आचार्यकः	513	आद्यतराः	617	आदत्	956	आनञ्जिथ	896
आगनीग	981	आचार्यपु	738	आद्यपूर्व	718	आदतुः	232	आनट्	
आगमत्	394	आचार्यपु	754	आद्यम्भविष्णुः	318	आदत्ते	86	आनडुहं चर्म	13
आगामी	354	आचार्यभोगीनः	555	आद्यम्भावुकः	318	आदयते	104	आनन्त्य	632
आगामुकः	218,344	आचार्या	436	आद्यीकुर्व	318	आदर्शः	1096	आनर्च	673,983
आगम्य	790	आचार्यानी	436	आद्यीभविता	318	आदायचरः	309	आनर्च्छ	965
आगवीनः	582	आचार्यो गवां०	181	आण्नद्याः	1095	आदिः	371,376	आनर्हुः	673
आगस्ती	825	आचिकाय	939	आणवीनम्	580	आदिकरः	310	आनशिरे	982,983
आगस्त्यः	242	आचिचाय	939	आत	982	आदितः	636	आनंहिरे	982
आग्नावै	755	आचितिकः	563	आततन्थ	897	आदित्यः	448,1102	आनाञ्छ	982
आग्निमा	755,925	आचितीनः	563	आततान	330	आदित्यम्	448	आनाटयः	299
आग्निमि	765	आचोषखा	377	आ तत्	15	आदित्यः	1102	आनायः	380
आग्निवा	755	आच्छादन	377	आतनुहि	809	आदित्य्य	1102	आनिरुद्धः	455
आग्निवारु	925	आच्छादय	684	आतपशुष्कः	166	आदिथ	898	आनीत्	956
आग्निशामः	822	आच्छाय	684	आ तमितोः	396	आदिमः	499	आनुकूलिकः	536
आग्निष्टो	480,511	आच्छाया	684	आतिः	376	आदिवान्	898	आनुग्रामि	570
आग्निष्टोमि	571	आजकरो	484	आतिथेयः	547	आदीधिता	976	आनुपदिकः	538
आग्नीध्र	633	आजक्रन्द	493	आतिथेयी	547	आदीध्य	975	आनुलोमि	536
आग्नीध्रम्	521	आजन्म	155	आतिथ्य०	1073	आदीध्यकः	10	आनुशाति	925
आग्नेन्द्रः	755,925	आजमीद	493	आतिथ्यम्	633	आदीध्यते	976	आनुष्टुभः	479
आग्नेयम्	50,474	आजमेराद्	15	आतिष्ठते	87	आदीध्यन	976	आनुसाँव	925
आग्रभोज	542	आजाद्यः	466	आतीत्	1016,1023	आदीध्यनम्	10	आनुसुकः	481
आग्रहाय	472,507	आजिः	376	आतृदः	24,396	आदीध्ये	38	आनुहौडि	925
आघातुकः	344	आजिघ्रैः	947	आत्थ	412	आदूनः	1031	आनृचु	673
आङ्	132	आजिथ	237	आत्मना	751,821,	आदृत्यः	294	आनृहुः	673
आङ्गः	465	आजपथिकः	568		822	आदेवकः	342	आनेयः	299
आङ्गकः	493	आजुघूर्णु	663	आत्मनीनः	831	आद्यः	507	आनैपुणः	928
आङ्गकम्	517	आज्ञाकरः	310	आत्मनीनम्	554	आद्यन्तौ	190	आनैश्वर्यः	928
आङ्गी	467	आज्यम्	294	आत्मने	751	आद्यूनः	1032	आन्तर्गेहि	509
आङ्ग्यः स्त्रियः	240	आञ्छ	983	आत्मपोषं	401	आद्रियते	968	आन्तर्वेशिम	509
आचख्यौ	237	आञ्जीत्	900	आत्मभुवौ	804	आधक्	246	आन्नः	81,545
आचचक्षे	237,1098	आट	983	आत्ममानी	326	आधर्मिकः	539	आन्नम्	1102
आचतुर्यम्	576	आटिटत्	43,794	आत्मम्भरिः	311	आधिदैवि	509	आन्वीपिकः	536
आचर्यम्	702	आटीत्	868	आत्मवत्	574	आधिभौति	509	आपः	781.
आचामः	929	आड् नद्याः	1095	आत्मान्तर	744	आध्यात्मिक	509	आपकरः	504
आचामकः	929	आढकिकः	563	आत्रेयः	241,449,457	आध्रियते	968	आपटवम्	576

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपणः 379
आपणिकः 512,540
543
आपदम् 702
आपद्गतः 159
आपनीफणत् 980
आपन्नजीविकः 178,227
आपन्नजीविका 178
आपमित्य 535
आपरम 923
आपरमद्रः 491
आपराह्णिकः 503
आपाटलि 140,141,
155
आपाति 809
आपात्यः 407
आपादि 278,809
आपिप्ये 672
आपिशलः 482
आपिशलः 721
आपिशलम् 578
आपूपिकः 477,516
540,542
आपृचे 396
आपृच्छते 87
आपृच्छ्यः 298
आपेपीयः 672
आपो अघ्न्या 696
आपो अस्मान् 696
आप्तः 712
आप्तिः 372,375
आप्नुयात् 802
आप्नुवन्ति 805
आप्यते 280
आप्यात 672
आप्यान० 1030
आप्रदानात् 155
आप्रपदीन 581
आप्रसादात् 155
आप्रा 246
आप्लवः 364
आप्लावः 364
आप्लाव्य 407
आप्लुत्य 795
आभात् 322
आभिजितः 505,627
आभिजित्य 627
आभिसारः 493
आभु....वत् 420
आभ्याम् 18,917
आभ्याम् 706
आ मथुरा 141
आमनन् 947
आ मन्द्रैरिन्द्र 1012
आ मन्यसे 15
आमयः चौरस्य० 212
आमयावी 602
आमलकः 530
आमावस्यः 504
आमावास्यः 504
आमिक्षीयम् 554
आमिक्ष्यम् 554
आमित्र 634
आमुक्तेः संसारः 197
आमुञ्च 809
आमुष्यकु 753
आमुष्यपु 753
आमुष्यपुत्रि 632
आमुष्याय 753
आमुष्यायण 632
आ मृत्योः 15
आमोषी 341
आम् पचसि 1008
आम्बष्ठः 1074
आम्बष्ठ्यः 466
आम्बष्ठ्या 445
आम्भसिकः 536
आम्रगुप्ताय 463
आम्रगुप्तिः 463
आम्रमयः 526
आम्रवण 1082
आयच्छति 89
आयच्छते 89,102
आयतीगव 156
आयथात 928
आयथापु 928
आ....यन्तु 139
आयः [illegible] 593
आयाम[illegible] 105
आयामी 341
आयासयते 105
आयासी 341,354
आ....याहि 139
आयुक्तः 207
आयुधजी 515
आयुधम् 365
आयुधिकः 534
आयुधीयः 534
आयुनक् 800
आयुर्वेदि 547
आयुः ष्टोमः 1071
आयुष्ष्टोमः 1071
आयुष्यं 219
आयुष्यम् 573
आयेजे 814
आयोमुखी 497
आर 965
आरडवम् 483
आरण्यकः 494
आरण्याः 490,494
आरत् 276
आरताम् 966
आरब्धा 1029
आरभते 853
आरभते भो 406
आरमति 103
आरम्भय 853
आरवः 364
आरा 375
आरावः 364
आरिथ 898
आरिप्सते 976
आरिरात्स 976
आरिष्टीय 484
आरीहणक 484
आरीहरण 496
आरुक्षन् 271
आरुणप 518
आरुणिनः 518
आरुहत् 277
आरुहम् 277
आरुहेम 420
आरुहेयम् 288
आरूढः 408
आरेभे 853
आरेमुः 103
आरेवान् 708
आरोहन्ति 99
आरोहयते 99
आर्क्षोदाः 516
आर्गयनः 512
आर्चिकः 512
आर्च्चाभिनः 518
आर्जिजत् 663
आर्जुनावः 482
आर्तभागी 446
आर्तवम् 572
आर्त्तिः 375
आर्त्विजीनः 567
आर्त्विजीनम् 567
आर्थिकः 539
आर्दिदत् 274
आर्दिधि 888
आर्द्धमासि 506
आर्द्रकः 503
आर्द्रकोपः 402
आर्द्रगोम 1092
आर्धकंसि 927
आर्धकौड 927
आर्धद्रौणि 927
आर्धप्रस्थि 927
आर्ध्नौत् 686
आर्यकुमा 725
आर्यकृता 430
आर्यकृती 430
आर्यक्षत्रि 725
आर्यब्राह्म 725
आर्यमिश्राः 171
आर्यशीः 788
आर्यसङ्गतम् 293
आर्षभ्यम् 556
आर्षिकः 495
आलप्यालम् 397
आलम्बिनः 518
आलम्भ्या 853
आलयः 379
आलानम् 677
आलापय 931
आलापयते 100
आलिप्सते 976,1098
आलोमका 933
आवः 246,800,801
आवट्या 445
आवधिषाताम् 233
आवधिष्ट 233,289
आवन्त्यः 466,467
आवयोः 908,909,911
आवरस 507
आवसति 127
आवसथ 740
आवसथिक 543
आवसथ्य 632
आवां ब्रूवः 75
आवापय 931
आवाभ्याम् 907,909
911
आवाम् 843,908,911
आवाष्वणत् 1067
आविधः 365
आविध्य 809
आविष्टयः 1075
आविष्ट्य 490
आवेपे 814
आवेविता 976
आवेव्य 976

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवेव्यकः 10
आवेव्यते 976
आवेव्यनम् 10
आव्यतिकर 182
आव्याधा 366
आशयत् 243
आशयति 104
आशंसुः 346
आशासत 835
आशास्ते 788
आशास्य 788
आशिका 376
आशितः 712
आशितङ्क्वी 629
आशितम् 712
आशितम्भवः 315
आशितम्भवम् 315
आशिवान् 898
आशिषत् 788,1063
आशीः 674,788 1038
आशीरः 674
आशीर्वान् 1020
आशुः 353
आशुश्रूष 96
आशृणोति 125
आशौच 928
आश्चर्यम् 702
आश्चर्यो गवां० 216
आश्मः 524,823
आश्मनः 524
आश्मनम् 525
आश्मम् 525
आश्मकिः 466
आ३श्रा३वय 1042
आश्लिक्षत् 272
आश्वत्थामः 448
आश्वत्थिकः 472
आश्वपत 521
आश्वपतः 450
आश्वपतम् 447
आश्वपथि 497
आश्वपालिकः 461
आश्वम् 477,521,578
आश्वयुजः 505
आश्वयुजक 506
आश्वयुजी 506
आश्वरथ 521
आश्वस्तः 876
आश्वायनः 454
आश्विकः 561
आश्विन्यः 550
आश्वीनः 583
आषाढः 573
आषाढीयः 505
आष्टमः 615, 16
आष्टमा 761
आसना 376
आसनात् प्रेक्षते 203
आसनि 679
आसन्दीवत् 1020
आसन्नदशाः 188
आसन्नविंशा 188
आसयति 104,130
आसवानि 879
आसाञ्चक्रे 267
आसाव्यम् 298
आसिकः 541
आसितो बालः 408
आसिसिषते 97
आसीः 954
आसीत् 954,955
आसीनः 32,49,906
आसुतीवलः 599,775
आसुरायणिः 427
आसुरिः 427
आसुरी 550
आसेदुषः 813
आस्तरण 864
आस्तरिष्ट 884
आस्तरीष्ट 884
आस्तारक 864
आस्तिकः 541
आस्तीर्णः 863,1038
आस्तीर्णम् 1080
आस्तीष्ट 884
आस्ते 83,104,709
आस्तेयम् 508
आस्थत् 966
आस्ना 679
आस्पदम् 702
आस्माकः 498
आस्माकीनः 498
आस्यते 280
आस्रावः 302
आस्वान्त 879
आह 412
आहत 60,233
आहतुः 412
आहते 89,289
आहत्य 790
आहार 412
आहन्ति 89
आहवः 368
आहसत 60
आहसाताम् 60,233
आहारः 357
आहावः 368
आहिताग्निः 193
आहिमत 483
आहुः 412
आहुवध्यै 395
आहेयम् 508
आ होतोः 396
आहो देवदत्तः 1007
आहो पठति 1007
आहो भुङ्क्ते 1009
आह्वः 476
आह्विकम् 568,823
आह्लादः
आह्लादकरः 310
आह्ल्लादः
आह्वजालिका 492
आह्वजालिकी 492
आह्वजालीया 492
आह्वत् 275
आह्वयति 90
आह्वयते 90
आह्वरकन्थम् 225
आह्वायः 368

इ

इ 132
इ इन्द्रम् 15
इ इयँ ह्म 1054
इक् 52
इक्षुः 869
इक्षुच्छायम् 226
इक्षुभक्षि 727
इक्षुभक्षिका 181
इक्षुमती 483
इक्षुमती 714
इक्षुवणम् 1082
इक्षुवाहणम् 1082
इक्षुशाकट 584
इक्षुशाकिन 584
इक्षून् 1091
इच्छति 388,946
इच्छतु 946
इच्छन् क 388
इच्छा 374
इच्छामि भ 387
इच्छा मे 388
इच्छुः 347
इच्छेत् 388,946
इच्छेयम् 388
इज्यते 281
इज्या 373
इज्यात् 417
इडायाः पतिः 1062
इडायाः पदम् 1062
इडायाः पयः 1062
इडायाः पारम् 1062
इडायाः पुत्रः 1062
इडायाः पृष्ठम् 1062
इडायाः पोषम् 1062
इडायास्प 1062
इडायास्पा 1062
इडायास्पु 1062
इडायास्पृ 1062
इडायास्पो 1062
इतः 33
इतरत् 842
इतरथा 610
इतरम् 842
इतरेतरस्य 85
इतरेद्युः 610
इतस्त्यः 489
इतिपाणिनि 152
इतिविष्णु 152
इतिह चकार 334
इतिहरि 152
इति हाकरोत् 334
इत्थम् 607,610
इत्यः 294,683
इत्या 373
इत्यात्थ३ 1042
इत्यादि 82
इत्वरः 346
इत्वरी 425
इदन्द्वि 743
इदम् 1035
इदमीयः 492
इदमीयम् 54
इदमेषां० 181,217 409
इदमेषां आज्यम् 181
इदमेषां भुक्तम् 181
इदम्र 743
इदं ह्यस्त 1054
इदा 609
इदानीन्तन 503
इदानीम् 609
इदामति 782
इदावत्सरीयः 570
इध्मप्रव्र 378

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इध्मप्रव्रश्चनः 179
इनसभम् 226
इनीमसि 848
इन्दवो वामुशन्ति 1009
इन्दाञ्चकार 267
इन्दिद्रीयि 663
इन्दुदिवाकरौ 190,191
इन्द्रः 1096
इन्द्रजननी 515
इन्द्रजाः 322
इन्द्रजित् 320
इन्द्रप्र 729
इन्द्रबलिः 164
इन्द्रवायू 191
इन्द्राग्नी 191
इन्द्राग्नी 739
इन्द्राणी 436
इन्द्राबृ 754
इन्द्राय स्वाहा 199
इन्द्राव 739
इन्द्रावरु 754
इन्द्रावा 739
इन्द्रासो 739
इन्द्रासो 754
इन्द्रियग्रामः 475
इन्द्रियम् 595
इन्द्रियाव 777
इन्धानः 713
इभपोटा 173
इभयुवति 173
इभ्यका 934
इभ्या 442
इभ्यिका 934

इमकयोः 917
इमकेन 917
इमकैः 837
इमथा 626
इमम् 917
इमं मे गङ्गे 68
इमान् 917
इमामनूनाः 208
इमे 917
इमेऽध्या 698
इमौ 915,917
इयं नु 356
इयम् 916,917
इयर्ति 802,985
इयष्ठ 896
इयाज 670
इयान् 587,764
इयाय 802,982
इयेष 802
इरम्मदः 313
इरिकाव 1082
इलास्पदे 1061
इषीकतू 764
इषुकावती 483
इषुधिः 372
इषुवज्रौ 221
इष्टः 26,669
इष्टकचि 764
इष्टकामधुक् 1025
इष्टम् 693
इष्टिः 372,373
इष्टी 595
इष्ट्वीन 849
इष्यते 280
इह 606
इहत्यः 489
इहत्यिका 933
इहस्थोऽयं० 196
इहि 809
इहेव 689

ई

ईकेन्यः 396
ईक्षते 124
ईक्षाञ्चक्रे 98
ईचिक्षि 664
ईचिक्षिष 253
ईजतुः 56
ईजानाः 330
ईट्टे 1094
ईडिध्वम् 903
ईडिध्वे 903
ईडिषे 903
ईडिष्व 903
ईड्यम् 713
ईदृक् 769
ईदृङ् 858
ईदृशः 769
ईधे 56
ईप्सति 253,977
ईय 982
ईयतुः 802
ईयते 280
ईयथुः 982
ईयात् 967
ईयिम 982
ईयिव 982
ईयुः 982
ईर्त्सति 888,977
ईर्ष्यति 124
ईर्ष्यियि 664
ईर्ष्यिषि 664
ईशकृष्णौ 191
ईशिषे 902
ईशिष्व 903
ईशे 394
ईशै 414
ईश्वरः 349,869
ईश्वरपु 738
ईश्वरसभम् 226
ईश्वराधीनः 165
ईषत् कडा 724
ईषत्करः 218,381
ईषत्कर 739
ईषत्पानः 218
ईषत् प्र 854
ईषत्प्रम 677
ईषदाढ्य 381
ईषदाढ्यम्भ 381
ईषदुन्नतः 179
ईषद्वि 677
ईषन्निम 677
ईषा अक्ष 698
ईष्टे 211
ईहत 801
ईहा 374
ईहांचक्रे 246
ईहाञ्चक्रे 98,113, 267
ईहिष्ट 801

उ

उ 132
उ इति 16
उ उत्तिष्ठ 15
उक्तः 26,669
उक्थशाः 323
उक्षतर 623
उखास्रद्भ्याम् 1037
उखास्रत् 324,423
उखास्रस् 682
उख्यम् 471
उग्रदुहि 766
उग्रपुत्री 766
उग्रम्पश्यः 313
उचिच्छीष 978
उच्चकैः 620
उच्चक्षूकरो 638
उच्चक्षूभव 638
उच्चक्षू स्या 638
उच्चयः 361
उच्चरति 95
उच्चरते 95
उच्चिक्यि 803
उच्चिक्यिरे 940
उच्चैः का 404
उच्चैः कारम् 185
उच्चैकृत्य 185,404
उच्चैःकृत्वा 404
उच्चैर्मुखः 187
उच्चैर्मु 744
उच्चैस्तम 630
उच्चैस्तमा 630
उच्छिष्यः 298
उच्छिष्यम् 298
उच्छूनः 1031
उच्छ्रायः 358,363
उच्यते 281
उच्यात् 417
उज्ज्वलि 880
उज्जिघ्रः 301
उज्जिहान 985
उज्जिहीषे 978
उज्ज्वलति 1093
उज्झाञ्चकार 267
उज्झ्यते 280
उञ्छः 704
उञ्छितुम् 1099
उडुलोमाः 448
उतः 669,779
उत त्व पश्य 394
उत दण्डः 386
उत द्विषो 386
उत पठेत् 386
उतस्य 700
उताहो अनिष्टम् 15
उताहो असत्यम् 15
उताहो देवदत्तः 1007
उताहो पठति 1007
उताहो भुङ्क्ते 1007
उत्कः 593
उत्कटम् 584
उत्कन्दः 1100
उत्करः 359
उत्करीयम् 487
उत्काकुत् 659
उत्कारः 359
उत्कुरुते 90
उत्कृष्टपुरुषः 172
उत्तपति 89
उत्तपते 89
उत्तभितः 880
उत्तमः 705
उत्तमपुरुषः 172

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमरथ्यः	521	उत्पुच्छयते	59,258	उदतारीत्	865	उदेजयः	301	उन्नः	1033
उत्तम वा	717		259,289	उदधिः	372,762	उदेतोः	24,396	उन्नयः	359
उत्तमार्द्धर्च	499	उत्फुल्लः	1033	उदन्यति	970	उदौदन	763	उन्नयते	91
उत्तमार्ध्य	499	उत्सहते भो	406	उदन्वान्	1020	उद्	132	उन्नसः	655
उत्तम्भनम्	1100	उत्सहेय	903	उदपत्साता	278	उद्गतकाकु	660	उन्नायः	359
उत्तरकायः	176	उत्साहव	599	उदपा	762	उद्गतशृङ्गः	734	उन्नीयः	298
उत्तरतः	611,612	उत्स्नाता	1100	उदपादि	278	उद्गन्धि	657	उन्न्यौ	803
उत्तरपश्चात्	612	उदकः	380	उदपुपुच्छत	289	उद्गाता	339	उन्मत्तगङ्ग	158
उत्तरपश्चार्ध	612	उदककु	762	उदपेषं	400,762	उद्गारः	359	उन्मतगङ्गम्	248
उत्तरपूर्वस्यै	21	उदकगा	763	उदबि	763	उद्गीतिः	373	उन्मदिष्णुः	339
उत्तरपूर्वा	188	उदकगिरि	762	उदभार	763	उद्ग्राभं	360	उन्मनीकरो	638
उत्तरपूर्वायै	21	उदकप	763	उदमन्थ	763	उद्ग्राभम्	1026	उन्मनीभव	638
उत्तररात्र	647	उदकपा	762	उदमेध	762	उद्ग्राहः	360	उन्मनी स्या	638
उत्तरसक्थ	650	उदकबि	763	उदरपूरं	399	उद्घः	370	उन्मादः	367
उत्तराः	22	उदकभा	763	उदरम्भरिः	311	उद्घनः	369	उन्मादी	341
उत्तराः वृक्षाः	168	उदकमन्थ	763	उदरशयः	308	उद्दालकः	377	उन्मुखीभिः	439
उत्तरात्	612	उदकव	763	उदरेम	752	उद्दालकपुष्प०	182	उप	132
उत्तराहि	613	उदकवान्	1020	उदव	763	उद्दुधुवुः	1098	उपकः	621
उत्तराह्नः	176	उदकवी	763	उदवास	762	उद्द्रावः	363	उपकरोति	701
उत्तरे	22	उदकस	763	उदवाहन	762	उद्धमः	301	उपकलमकाः	242
उत्तरेण	200,612	उदकसाद्भ	638	उदवी	763	उद्धमैः	947	उपकाः	242
उत्तरेद्युः	610	उदकस्था	763	उदश्वित् कति०	173	उद्धयः	301	उपकिरति	701
उत्तवीति	954	उदकस्पृशः	319	उदश्वित्वान्	117	उद्धयः	296	उपकुम्भम्	151
उत्तानशयः	308	उदकहा	763	उदसक्तु	763	उद्धयेरावति	221	उपकुरुते	90
उत्तिष्ठति	88	उदकीभव	639	उदहा	763	उद्धयो नदः	296	उपकूल	735
उत्तिष्ठते	88	उदकीयति	970	उदाकुरुते	90	उद्धरति	1101	उपकृष्णम्	68,225,
उत्तेरिथ	815	उदकुम्भ	762	उदाचरते	95	उद्धुनी	811		247,248
उत्तौति	954	उदकौद	763	उदाजः	940	उद्धृतौदना	186	उपकृष्णे	248
उत्थः	301	उदक्तम्	787,891,	उदानयते	91	उद्धृत्य	846	उपकृष्णेन	248
उत्थानम्	1100		1032	उदायत	60	उद्नः	679	उपक्रमते	92
उत्थ्तम्भनम्	1100	उदक्याः	566	उदायसत	60	उद्यच्छते	102	उपक्रामति	92
उत्थ्थानम्	1100	उदखनीत्	868	उदायस्त	60	उद्यते	280,281	उपखार्यां	140
उत्पचिष्णुः	339	उदगा	763	उदासारिण्यः	325	उद्यावः	363,380	उपखार्य्याः	197
उत्पतिष्णुः	339	उदगात्०	220	उदितः	669	उद्युङ्क्ते	99	उपगणाः	643
उत्पन्नः	1030	उदगात् कठ०	220	उदित्वा	57	उद्वतः	575	उपगिर	653
उत्पलग	658	उदङ्	319	उदीचः	821	उद्वती	599	उपगिरि	653
उत्पलमा	764	उदङ्कः	380	उदीच्यम्	489	उद्वा	599	उपगुः	28
उत्पश्यः	301	उदजः	367	उदुम्बरा	775	उद्विजिता	55	उपगु	66,225
उत्पावः	363	उदञ्चनः	724	उदुम्बराव	486	उद्हरति	1101	उपगूढम्	773,1050
उत्पिबः	301	उदञ्चिक्रे	267	उदुम्बराव	714	उन्दाञ्चकार	267	उपगेयम्	288
उत्पुच्छ	749	उदतापि सुवर्णं	279	उदुस्य	700	उन्दिदि	664	उपगौर	748

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपघातः 370
उपघ्नः 370
उपचतुराः 645
उपचर्म 652
उपचस्कार 701
उपचाय्य 298
उपचाय्यः 299
उपचाय्यपृडः 298
उपचाय्यपृडम् 298
उपजरस 652
उपजापः 366
उपजीविनाम् 325
उपडः 621
उपतटम् 151
उपतिष्ठति 88
उपतिष्ठते 88
उपतीर 735
उपतूल 735
उपतैष 748
उपत्यका 585,933
उपदधामि 138
उपदशं० 224
उपदशाः 188,224, 643
उपदाता 677
उपदानम् 797
उपदाय 677
उपदिदी 785
उपदृषद 653
उपदृषद् 653
उपदेदीय 797
उपदेव 748
उपधा 375
उपधिः 371
उपनद 652
उपनदि 652
उपनयते 91
उपनिषत्कृ 138
उपपादुकः 344
उपपूर्वरा 720
उपपूर्वाह्ण 720
उपपौर्णमास 652
उपपौर्णमासि 652
उपप्रयन्तो 696
उपबहवः 643
उपभुङ्क्ष्व 99
उपभैमि 151
उपमाति० 312
उपमूल 735
उपयच्छति 96
उपयच्छते 96
उपयजः 323
उपयड् 323,1027
उपयड्भिः 323
उपयड्भ्यः 323
उपयमः 366
उपयुङ्क्ते 98
उपरमति 103,104
उपरमते 104
उपराज 652
उपराजम् 822
उपरि 612
उपरिष्टाद् 612
उपरि स्विदासी उत् 1044
उपर्कारीय 689
उपर्यध्यधसः 194
उपर्युपरि० 194
उपर्युपरि 996
उपर्युपरि लोकं० 194
उपर्षभी 689
उपलभ्यम् 853
उपलभ्या 853
उपल्कारी 689
उपवस 740
उपवसति 127
उपवाज 931
उपविंशा 188
उपविंशाः 643
उपवीणयति 261
उपशयः 361
उपशयितः 408
उपशरद 652
उपशाकटा 140
उपशायः 361
उपशाल 735
उपशुनम् 645
उपशुश्राव 332
उपशुश्रुवान् 332
उपश्लिष्टा 408
उपश्लोकयति 262
उपसमित् 653
उपसमिध 653
उपसरः 367
उपसरज 81
उपसरजः 729
उपसर्या 293
उपसुरेषु 140
उपसेदिवान् 332
उपस्कर्त्ता 1047
उपस्किर 701
उपस्कुरुते 90
उपस्कृतम् 701
उपस्थानी 407
उपस्थायुकः 344
उपस्थितः 408
उपस्थेयम् 287
उपस्थेयाम 420
उपहनिष्य 900
उपहवः 367
उपहृतपशुः 186
उपह्वयते 90
उपाक्षम् 736
उपागात् 332
उपाग्नि 24,152
उपाग्रहायण 652
उपाग्रहायणि 652
उपाचरध्यै 395
उपाजिन 748
उपाजेकृत्य 137
उपाजेकृत्वा 137
उपाध्यायः 358
उपाध्याय 383
उपाध्याय 738
उपाध्यायश्चे 355
उपाध्यायश्चेद् 383
उपाध्याया 436
उपाध्यायानी 436
उपाध्यायी 436
उपानत् 774,1026
उपानस 649
उपायत 60
उपायतः 636
उपायंस्त 60
उपाप्नोति 688
उपार्षभी 689
उपालब्ध 1022
उपालम्भि 854
उपाल्कारी 689
उपाविक्षत् 271
उपावृट् 774
उपावृत् 774
उपाशृणोत् 332
उपाश्रौषीत् 332
उपासदत् 332
उपासनम् 378
उपाससाद 332
उपासितः 408
उपासीदत् 332
उपास्किर 701
उपास्थित 61
उपास्थिषाताम् 61
उपिकः 621
उपियः 621
उपिलः 621
उपेतः 687,688
उपेन्द्रः 686
उपेन्द्रदत्तक 621
उपेयाय 332
उपेयिवान् 332
उपैति 687
उपैत् 332
उपैधते 687
उपोप 995
उपोषति 689
उप्तः 669
उप्तम् 693
उप्त्रिमम् 371,535
उप्त्वा 61
उप्यते 281
उब्जाञ्चकार 267
उब्जिजिष 664
उभक 20
उभकौ 20
उभयः 588
उभयकौ 20
उभयतः 636
उभयावी 601
उभयी 588
उभयेद्यु 610
उभयोः 20
उभाभ्याम् 20
उभौ 20
उभ्यते 280
उमाकट 584
उमामहेश्वरौ 191
उम्यम् 580
उरगः 316
उरःपेषं 403
उररीकरोति 182
उररीकृत्य 182
उरश्छदः 379
उरश्छद 806
उरसिकृत्य 137
उरसिकृत्वा 137
उरसिलो 752
उरस्तः 520
उरस्यः 520,546
उरस्यम् 508
उरामथिः 312
उरुणस्का 1061
उरुणस्कृधि 1061,1088
उरुया 847
उरुष्याः 777
उरो अन्तरिक्ष 696
उर्दारणी 596

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्ध्व ऊषुणः 1076
उर्ध्व ऊ षुणः 1088
उर्विया 847
उलूकपक्षी 440
उलूकपुच्छी 440
उल्का 1095
उल्क्का 1095
उल्लाघः 1033
उल्लापयते 100
उवाच 670
उवाद 670
उवाप 670
उवाय 232,670,674
उवाश 670
उवास 670
उवाह 670
उवोख 802
उवोष 268,802
उशना 861
उशितः 669
उश्यते 281
उषासान 755
उषासासू 755
उषितः 669,890, 1063
उषितवा 890
उषित्वा 57,890,1063
उष्टः 669
उष्ट्रः 1097
उष्ट्रकम् 476
उष्ट्रक्रोशी 325,728
उष्ट्रखरम् 191
उष्ट्रगोयुग 584
उष्ट्रवामी 722
उष्ट्रसादि 722
उष्ट्रिका 624
उष्णाकः 592
उष्णाङ्कर 766
उष्णाभोजी 325
उष्णालु 602
उष्णिक् 319
उष्णिका 592
उष्यते 281
उह्यते 281

ऊ

ऊः 784
ऊँ इति 16
ऊढः 669,773
ऊतिः 373,784
ऊधन्यम् 553
ऊधरध्न्या 1037
ऊधरेव 1037
ऊनयीः 274,801
ऊयतुः 232,669,674
ऊयते 281
ऊयुः 232,674
ऊरव्याः 545
ऊरीकृत्य 133,134
ऊरुदघ्न 586
ऊरुदघ्नी 425
ऊरुद्वयस 586
ऊरुद्वयसी 425
ऊरुबली 604
ऊरुभिन्नी 438
ऊरुमात्रम् 586
ऊरुमात्री 425
ऊर्क् 349,1022
ऊर्जस्वल 600
ऊर्जस्वी 600
ऊर्णवानि 950
ऊर्णविता 55
ऊर्णायुः 115,602,834
ऊर्णासू 764
ऊर्णुनवि 889
ऊर्णुनाव 664,66
ऊर्णुनुवि 889
ऊर्णुनूष 889
ऊर्णुद्वि 950
ऊर्णुविता 55
ऊर्णूयते 280
ऊर्णोतु 950
ऊर्णोनूयते 260
ऊर्णोमि 950
ऊर्णोषि 950
ऊर्णोति 950
ऊर्णोतु 950
ऊर्णोमि 950
ऊर्णोषि 950
ऊर्दयीत् 801
ऊर्ध्वजानु 657
ऊर्ध्वजु 657
ऊर्ध्वपूरं 401
ऊर्ध्वशो 401
ऊर्मिका 624
ऊर्वष्ठीव 645
ऊर्विता 1039
ऊवतुः 232,674
ऊवुः 232
ऊषरम् 598
ऊषु 777
ऊषुरिह० 335
ऊष्मायते 257
ऊहा 374
ऊहाञ्चक्रे 113,267
ऊह्यते 967

ऋ

ऋक्वता 117
ऋक्वभिः 117
ऋक्सामं 644
ऋगयन 1081
ऋग्यजु 645
ऋचीकरत् 993
ऋच्छति 947
ऋजिष्ठः 829,830
ऋजीय 830
ऋजीयसी 830
ऋजुः 434
ऋजुबा 749
ऋज्वी 434
ऋणम् 1034
ऋणाति 948
ऋणार्णम् 688
ऋतं 1034
ऋतव्य 473
ऋताषाड् 1077
ऋतिङ्करः 315
ऋतित्वा 64
ऋतीयते 264,265
ऋतीयिता 264
ऋतीषट् 774
ऋतेऽपित्वां० 204
ऋत्वा 789
ऋत्विकपु 738
ऋत्विक् 319
ऋत्वियः 115,572
ऋत्व्यम् 833
ऋभुक्षः 859
ऋभुक्षा 781
ऋभुक्षाः 859
ऋभुक्षाणः 859
ऋभुक्षाण 859
ऋभुक्षाणौ 859
ऋषभतर 623
ऋषिवत् 575
ऋषिषाड् 321
ऋषीन् 1091
ऋषीवह 775
ऋष्यकः 484
ऋष्यशृङ्गः 734

ए

एकः 21,210,616, 615
एककः 616
एककरः 310
एकचिती 776
एकतमः 20,624
एकतरः 20,624
एकतरम् 842
एकत्व 763
एकदा 609
एकदुग्ध 763
एकधा 614
एकधुरः 544
एकधुरीणः 544
एकपत्नी 431
एकपरि 155
एकमूर्ध्नी 430
एकम् 21
एकरात्र 647
एकविंशति 156
एकविंशं शतं 588
एकवेणी 758
एकवैद्यः 167
एकशालिक 626
एकसप्तत 591
एकसप्तति 591
एकाग्नि 1052
एकादशः 588,589
एकादश 721
एकादशं शत 588
एकादून 767
एकान्न 767
एकाह 648
एकाहगम 582
एकिका 932
एकेन 21
एकैक 996
एकैकया 996
एको देवानुपा 1011
एजाञ्चक्रे 267
एटं छागः 230
एडका 422
एणीपद 655
एतङ्कार 399
एतच्छम 1101
एतच्श 1101
एतत्र 743
एतदीयः 492
एतदीयम् 54
एतद्द्वि 743
एतद्मुरारि 1095
एतन्मुरारि 1095
एतयोश्छागयोः 230
एतर्हि 606,607
एतस्माच्छाग० 230

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतस्मिन् 607
एतस्मिन् ग्रामे० 230
एता 432
एतान् न ह 388
एतायते 757
एतावतिथः 590
एतावान् 587
एति 950
एतिका 932
एतिजीवन्तम्० 212
एतेन छागेण० 230
एतेऽर्चय 695
एतौ गावौ 700
एदिधिषते 97
एधँ 79
एधः 787
एधताम् 413
एधते 410,414
एधतै 414
एधध्वम् 413
एधन्ताम् 413
एधन्ते 836
एधसे 410
एधस्व 413
एधाञ्चकृ 410
एधाञ्चक्रि 410
एधाञ्चक्रे 267,410
एधाते 414
एधातै 414
एधामहै 414
एधावहै 414
एधि 785,808,813
एधिता 343
एधिताध्वे 1022
एधितासे 410
एधिषीया 418
एधिषीष्टि 418
एधिषीष्ठाः 418
एधिषैते 414
एधिषैथे 414
एधिष्यसे 410
एधेत 416
एधेताम् 413
एधेधाः 416
एधेध्वम् 416
एधेभ्योयाति० 198
एधेमहि 416
एधेय 416,417
एधेयाताम् 416
एधेयाथाम् 416
एधेरन् 416,417
एधेवहि 416
एधोदकस्य० 211
एधोदकस्यो० 701
एनी 432
एभिः 837,918
एभ्यः 918
एवा ते 778
एषः 915,916
एषका 935
एषको दे० 699
एष देवः 699
एषाम् 918
एषिका 935
एषिता 886
एषित्वा 65
एषिषिष 253
एषिषिषति 65
एषु 918
एषोऽत्र 700
एष्टा 886
एहकि 620
एहि 15
एहि त्वं 1006
एहि मन्ये 146

ऐ

ऐकचक्र 493
ऐकशतिक 601
ऐकशालिक 626
ऐकागारिक 573
ऐकान्यिक 542
ऐक्षत 688,800
ऐक्षिष्ट 800
ऐक्षिष्यत 800
ऐक्ष्वाकः 465,495
833
ऐणेयक 529
ऐणेयम् 529
ऐच्छत् 946
ऐतिकायनः 70
ऐ३तिकायन 1044
ऐतिहासि 481
ऐतिह्य 632
ऐन्द्रप्रस्थ 519
ऐन्द्रम् 472
ऐन्द्र्याम् 611
ऐन्द्रवक्त्र 494
ऐन्द्रवेणु 497
ऐन्द्रावरु 926
ऐन्द्रालिश 528
ऐन्द्री 425,472
ऐरावतः 455
ऐरावत 493
ऐलः 454
ऐलयीः 274
ऐलिलः 274
ऐश्वर्यम् 577
ऐषमस्तन 490
ऐषमस्त्यः 490
ऐषुकारिभ 479
ऐषुकावत 483
ऐषे 394
ऐष्टिकः 512
ऐहलौकिक 509

ओ

ओचिखिष 253
ओजसाकृ 750
ओजसीनम् 551
ओजस्यम् 551
ओजस्या 550
ओजायते 256
ओढा 690
ओतुः 784
ओदन 741
ओदनं पचति 197
ओदनं पचन् 218
ओदनं पचमानः 216, 218
ओदनपा 726
ओदनपाकी 442
ओदनं पेचानः 218
ओदनं पेचिवान् 218
ओदनं भुङ्क् 394
ओद्मः 787
ओ३म् 1041
ओषधिः 777
ओषधिप 777
ओषधीभ्य 777
ओषाञ्चकार 268
ओष्ठकः 592
ओष्ठ्यम् 508
ओष्णम् 15
ओ३श्रा३वय 1042

औ

औक्थिकः 480
औक्थिक्य 523
औक्षक 476
औक्षम् 432
औक्ष्णः 820,832
औखीयाः 518
औजसिक 536
औडुपिक 533
औडुपिकः 534
औडुलोमिः 448,451
औणावत्य 627
औत्तरपथिक 567
औत्तरपद 496
औत्तरपदि 538
औत्तराहम् 490
औत्सः 449,450,503 507,512
औत्सङ्गि 534
औत्सी 425
औदनिक 543
औदपानः 449,513
औदमेयी 443
औदरिकः 592
औदश्वितः 471
औदश्वित्क 471,937
औदुम्बरः 482
औदुम्बरिः 466
औदुम्बरिः पिता 239
औदुम्बरिः पुत्रः 239
औद्गात्रम् 578
और्ध्वदेहि 509
और्ध्वन्दमि 509
औनयीत् 867
औनिनः 274
औपकर्णिक 505
औपकायनला० 242
औपकायनाः 242
औपगवः 18,70,447 450,451,919
औपगव513,521,522
औ३पगव 1044
औपगवक 476,517
औपगविः 461,463
औपगवीयः 54
औपजानु 936
औपजानुक 505
औपनीविक 505
औपयिक 634
औपरिष्टः 490
औपाध्याय 513
औपानह्यः 556
औब्जीत् 688
औमकम् 529
औमम् 529
औमीनम् 580
औम्भेयक 488
औरभ्रक 476
औरसः 546
और्णकम् 529
और्णम् 529
और्णवीत् 868

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और्णावीत् 868
और्णोः 950
और्णोत् 950
और्दायनी 489
औलपिनः 518
औषध 634
औषधेयम् 556
औष्ट्रकः 529
औष्ट्रकम् 529
औष्ट्रम् 521
औष्ट्ररथ 521

क

कंय्यु 605
कंसिकः 558
कः 915
क आस्ते 1051,1052
ककुदावर्त्ती 603
कक्षीवत् 1020
कङ्कचित् 328
कचाकचि 656,778
कच्चिज्जी 386
कच्चिद् 1003
कच्छपः 306
कच्छपी 185
कच्छुरः 598
कज्जलार्म 730
कटकरणस्य आयुक्तः 207
कटकरणस्य निपुणः 207
कटकरणे निपुणः 207
कटं करू३ 1044
कटं करोति 210,211
कटं कर्त्ता 339
कटकवल 603
कटं कारको० 218
कटं कृतवान् 218
कटः कृतोऽनेन 193
कटं कृत्वा 218
कटं जातु 1007
कटनगरी 496
कटपल्वली 496
कटप्रुवौ 804
कटमहो 1005
कटयोषी 496
कटान् कर्ता० 218
कटी 433
कटुकबदरी 73
कटुकाश्वः 733
कटे आस्ते 206
कठकौथुमं 220
कठजा 758
कठदे 758
कठधूर्तः 173
कठप्रवक्ता 173
कठवृ 758
कठाः 518,519
कठाऽध्यापकः 173
कठाध्वर्यु 716
कठिनविषमाम् 171
कठीभार्य 758
कठोश्रोत्रियः 173
कडङ्करीयः 566
कडङ्कर्यः 566
कडारजैमिनिः 193
कणिता 10
कणेहत्य 135
कणेहत्वा 135
कण्ठच्युत 164
कण्ठेका 752
कण्ठेकालः 187,192
कण्ठ्यम् 508,554
कण्डूः 681
कण्डूति 39
कण्डूयति 265
कण्डूयति,-ते 263
कण्डूयि 664
कण्वायते 258
कतमः 20,624
कतमकठः 173
कतमकठ 725
कतमत् 842
कतमं भ 354
कतमश्चिद् 1007
कतमाकतमा 997
कतमो नाम 385
कतरः 20,623
कतरकठः 173
कतरकठ 725
कतरकतमाः 21
कतरकतमे 21
कतरत् 822
कतरद् 683
कतरं भ 354
कतरश्चित् 1007
कतराकतरा 997
कतरो नाम 385
कति 19,47,587
कतिकः 18,557
कतिकृत्वः 18
कतितिष्ठन्ति 19
कतिथः 589
कतिधा 18
कतिपय 635
कतिपयथः 589
कतिपयाः 22
कतिपये 22
कतिपश्य 19
कतिशः 18
कतीहनिघ्नानाः 338
कतीह मुण्ड० 337
कतीहशिखण्डं० 337
कत्तृणा 771
कत्रयः 771
कथङ्कारं 399
कथं नाम 385
कथम् 611
कथयति 37
कथं ह्नुते 1054
कथं ह्मल 1053
कथम् ह्मल 1053
कथा 375,611
कथाभीरम 773
कथ्यते 280
कदजः 771
कदा 609,610
कदा भुङ्क् 354
कदा भोक्ता 354
कदा भोक्ष्यते 354
कदुष्णम् 772
कद्रथः 771
कद्रुः 444
कद्रूः 444
कद्वदः 771
कनिक्रदत् 981
कनिष्ठः 618
कनीयान् 618
कन्तः 605
कन्तारातीतः 723
कन्तिः 605
कन्तुः 605
कन्थिकः 489
कन्या 210,427
कन्यादर्शं 399
कपाटघ्नः 317
कपिः 434
कपि ऋक्षा 698
कपिकुञ्जरः 171
कपिञ्जला 730
कपिद्विप 171
कपिभिः गृहीता० 206
कपिभिः लङ्कायाम् 207
कपिषु लङ्कां० 206,207
कपिस्थ 1073
कपी 434
कपोतपाकी 626
कपोतमय 526
कबरपुच्छी 440
कबरा 433
कबरी 433
कं भवान् 354
कमण्डलव्या 553
कमण्डलुः 444
कमण्डलुना छात्रः 201
कमण्डलू 444
कमलखण्ड 478
कमलनालाय० 256
कमललो 440
कमिता 264
कम्पयति 104
कम्पितः 1099
कम्प्रः 346
कम्बः 605
कम्बलदः 306,798
कम्बलार्ण 688
कम्बोजः 467
कम्मः 605
कयास्ते 1052
करः 365
करग्राहं 400
करणम् 1080
करणीय 714
करणीयम् 250,291
करभोरूः 444
करभ्वौ 804
करवर्त्तं 400
करिणा 1080
करिक्रत् 981
करिष्ठः 617,826
करिष्यति 114,265
900
करिष्यन्तम् 356
करिष्यमाणं 356
करिष्यामि 356
करिस्कन्ध 478
करीकृष्यते 980
करीषग 658
करीषङ्कषा 315
करोति 56,284
कर्कन्धुः 689
कर्कन्धूः 443
कर्कीप्रस्थ 729
कर्णकः 82
कर्णजाहः 583
कर्णिका 510
कर्णे जपः 308

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णे जपै 752
कर्णेभिः 837
कर्ण्यम् 508,510
कर्ता 300
कर्तारौ 709
कर्तासि 248
कर्तृकरः 310
कर्तृणी 855
कर्तृणाम् 779
कर्त्तरि 958
कर्त्तवे 395
कर्त्तव्यः 389
कर्त्तव्यः कटः 215
कर्त्तव्यम् 250,291
कर्त्ता 31,70,114,248
406,419,675,781
861,949
कर्त्ताः 290
कर्त्तारः 248,975
कर्त्तारौ 248,958,975
कर्त्तहि 975
कर्त्तिता 893
कर्त्तृषु 1063
कर्त्रा 707
कर्त्री 423
कर्त्री 707
कर्त्वः 396
कर्त्स्यति 892
कर्पूरगौरं० 170
कर्मकरः 311
कर्मकारः 311
कर्मकारान् 93
कर्मकृत् 327
कर्मठः 586
कर्मणा 821
कर्मण्यः 546,831
कर्मण्यम् 572
कर्मन्दिनः 519
कर्शित्वा 64
कर्षः 704
कर्ष्टा 678
कर्हि 610
कर्हि भुङ्क्ते 354
कर्हि भोक्ता 354
कर्हि भोक्ष्य 354
कलयति 259
कलहकारः 311
कलहायते 258
कलापकः 506
कलिङ्गाः 485
कल्पना 376
कल्पनाऽपोढः 165
कल्पिता 106,107
कल्पिष्यते 106,107
कल्प्ता 106,107,894
1021
कल्प्यम् 295
कल्प्स्यति 106,894
कल्माषी 432
कल्याणक्रो 440
कल्याणखु 440
कल्याणगु 440
कल्याणघो 440
कल्याणधर्मा 656
कल्याणन 440
कल्याणभू 749
कल्याणाचारः 305
कल्याणी 756
कल्याणीप 756
कल्याणीपञ्च 653
कल्याणीप्र 756
कल्याणीप्रि 756
कवचहर 307
कवपथ 772
कवयः 958
कवयः ष 1057
कवयष्षट् 1057
कवये 958
कवर्गीयः 510
कवर्गीयम् 510
कविना 960
कवीनां श्रेष्ठः 180
कवेः 958
कवे 958
कवोष्णताम् 183
कवोष्णम् 183,772
कवौ 959,960
कव्यति 971
कव्यन् 971
कव्यवाहनः 321
कश्चिकेत 394
कश्चिद 1007
कषायपाणाः
गान्धाराः 1082
कषायपायिनो० 326
कषितम् 877
कष्टः 877
कष्टमुक्तः 165
कष्टश्रित 159
कष्टश्रित 723
कष्टानि 877
कष्टायते 257
कस्कः 1060
कस्मात् 838
कस्मात् कारणात् 203
कस्मात् त्वम् 122,203
कस्मिन् 608,838
कस्मिन् कारणे 203
कस्य हेतो० 202
कस्मै 837
कस्मै कारणाय 203
कस्मैचिद 1007
कस्य कारणस्य 203
कस्याः 959
कस्यै 959
कस्वरः 349
काँस्कान् 1050
कांस्कान् 1050
कांस्यः
कांस्यम् 529
का ईमिरे 698
काक ऋक्ष 698
काकगुहाः 306
काकताल 625
काकतालीय 625
काकतीर 490
काकन्दक 493
काकन्दी 484
काकपेया 163
काकबलिः 164
काकम् 475
काकशाव 759
काकस्य काष्ण्यम् 180
काकिणीक 560
काकुः 353
काकैः पातव्या 163
काकोलूकि 522
काकोलूकम् 222
काक्ष 653
काक्षतवम् 483
काङ्क्ष्यते 280
काच्छः 495
काच्छकः 495
काञ्चनध 724
काञ्चनम 526
काठकम् 522
काणिकः 537
काणेयः 459
काणेरः 459
काण्डप्लवि 533
काण्डरीः 599
काण्डलावः 305,356
काण्डलावः 728
काण्डाग्न 494
काण्वाः 491
काण्व्यः 491
कातीरम् 704
कात्रेयक 488
काथिकः 547
काद्रवेयः 824
कानि सन्ति 39
कानीनः 455
कान्तारपथि 568
कान्तीपुरक 493
कान्थकः 489
कापटवः 114
कापटवक 513,517
कापटवीयः 54
कापथः 771,772
कापित्थम् 525
कापिलवर 483
कापिशायन 489
कापिशायनी 489
कापुरुष 772
कापेयः 454
कापेयम् 578
कापोतः 524
कापोतपाक्य 626
कापोतम् 526,528
529
काप्यः 454
काभ्याम् 34
कामः 929
कामक्रोधौ 224
कामण्डले 824
कामण्डलेयः 459
कामदुघा 322
कामधुक् 320,1025
कामधुर 771
कामधुरम् 183
कामना 376
कामम् ऊनयीः 274
कामम् ऐलयीः 274
कामयति 388
कामयते 264,265
कामयिता 264
कामयेत 388
कामलिनः 518
कामार्थी 190
कामुकः 344
कामुका 433
कामुकी 433
काम्पिल्य 720
काम्पिल्य 753,825
काम्पिल्यक 493

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम्पिल्यम् 485
काम्बलः 470
कायः 362
कायम् 472
कारः 918
कारकः 31,70,290
300,794,834,933
कारकरः 310
कारकवान् 600
कारको व्रजति 199
कारणा 376,794
कारयति 131,263
कारयते 102
कारयते कटः 289
कारयाञ्च 794
कारयिता 794
कारस्कर 704
काराः 357
काराभ्वौ 804
कारिः 377
कारिका 377,932
कारिकाकृ 133,182
कारिकेयः 461
कारिकेयी 825
कारिषेणिः 462
कारिषेण्यः 462
कारिष्यते 797
कारीरम् 524
कारीषग 778
कारीष गन्धी 668
कारीषगन्ध्या 68,445
446,668,850
कारुः 353
कारुणिक 542
कारूषी 467
कार्कटल 483
कार्कणः 513
कार्कणम् 497
कार्कवाक 484
कार्कीक 626
कार्णच्छिद्रि 484
कार्णवेष्टक 484
कार्णवेष्टकि 571
कार्णायनि 485
कार्तिक्याः आम्र० 203
कार्त्तः 510
कार्त्तकौ 721
कार्त्तिकः 472
कार्त्तिकिकः 472
कार्तिक्याः आ 122
कार्त्रः 463
कार्त्रायणिः 463
कार्दमम् 468
कार्दमिक 468
कार्पासम् 526
कार्मार 634
कार्मार्याय 463
कार्मुकम् 520,572
कार्म्मः 832
कार्यः 389
कार्यते 794
कार्यम् 297,298
कार्यम् 709
कार्यशब्दि 532
कार्शाश्वीय 484
कार्श्यम् 577
कार्षपणिकः 558
कार्षापणश 636
कार्षापणोनम् 162
कार्षीत् 391
कार्ष्टाम् 709
कार्ष्टाम् 709
कार्ष्यवण 1082
कालः 390
कालक 634
कालकूटिः 466
कालः क्लीब० 389
कालञ्जर 494
कालवण 772
कालवणम् 1,83
कालशेय 508
काला 433
कालापक 477,522
कालापाः 518,519
823
कालायंसम् 649
कालिकः 507
कालिक 572
कालिकम् 500
कालिङ्गक 493
कालिदासस्य 215
कालिम्म 759,764
काली 433
काले काले 995
कालेजः 752
कालेयः 474
कालो भोक्तुं 389
काल्यः 572
काल्याणिनेयः 458
कावचिक 476
काव्यम् 578
काशकृत्स्न 520
काशजः 729
काशपुष्प 594
काशिकः 492
काशिका 492
काशिकी 492
काशिराज्ञे 648
काशिलम् 484
काशीयाः 491
काश्यपः 453
काश्यपिनः 518
काषायबृ 758
काषायम् 468
काषायी 758
काष्ठतङ् 1024
काष्ठधुक् 1025
काष्ठभित् 320
काष्ठम् 869
काष्ठसभा 226
काष्ठेविद्धी 447
काष्ठेविद्धया 447
काष्ठैः पचतितराम् 162
कासतः 637
कासाञ्चक्रे 266
कासूतरी 623
कास्तीर 704
किं कलिङ्गे 334
किं कारणं 203
किं देवदत्तः 1006
किं नोदुदु 995
किंराजा 173,642
किंराट् 1053
किंवान् 1019
किं वाऽभवि– 384
किंशारुकः 344
किंशुलुका 774
किंसखः 642
किंसखा 173,642
किं हनुते 1054
किं ह्मल 1053
किं ह्मलयति 1053
किं ह्मः 1054
किं ह्माद 1054
किं ह्मादयति 1054
किं ह्मलयति 1054
किङ्करः 310
किङ्कव 642
किञ्चिज्ज्ञः 1093
किन्तमाम् 630
किन् ह्नुते 1054,1095
किमात्थ३ 1043
किमीयम् 54
किमु उक्तम् 1056
किम्वुक्तम् 1014,1056
किम् ह्मल 1053
किम् ह्मलयति 1053
किम् ह्माल 1095
कियान् 587,769
किरः 301
किरति 31,863
किरिः 376
किर्योः 43
किल तत् 15
किल्लँ ह्माद 1054
किशरिकः 541
किशोरी 427
कीटपिपी० 222
कीदृक् 769
कीदृक्षः 320
कीदृशः 769
कीर्णिः 1031
कीर्ण्णिः 372
कीर्तिः 373
कीर्त्तयति 863
कीर्त्यते 280
कीर्यते 280
कीलालपः 821
कीलालपाः 323
कीलालपे 324
कुक्कुटम० 77
कुक्कुटमयू० 222,227
कुक्कुटा 758
कुक्कुटार्म 730
कुक्कुटिक 539
कुक्षिः 869
कुक्षिम्भरिः 311
कुखः 72
कुञ्जरः 598
कुटिता 55
कुटितुम् 55
कुटीजः 729
कुटीनिं वा 716
कुटीमय 526
कुटीरः 623
कुटुम्बभारः 315
कुटुम्बिनी 478
कुट्टाकः 81,344
कुट्टिमम् 535
कुड्मलाग्रदन् 659
कुड्यच्छायम् 227
कुड्यच्छाया 226,227
कुण्डकृत 745
कुण्डपाय्यः 299
कुण्डेन अटन् 149

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्डप्र 729,745
कुण्डभि 745
कुण्डमिदमानय० 230
कुण्डलहि 722
कुण्डलहिरण्यम् 164
कुण्डलिनी 478
कुण्डशः 840
कुण्डा 113,433
कुण्डितुम् 1099
कुण्डिनाः 242
कुण्डी 433
कुण्डोदरः 733
कुण्डोघ्नी 428,657
कुण्ड् 851
कुण्ड्यच्छा 717
कुतः 607,915
कुतस्त्यम् 490
कुतुपम् 623
कुतृणा 771
कुतो भवान् 203
कुत्र 606,608,915
कुत्सकुशि 522
कुत्साः 241
कुत्सितो ब्राह्मणः 170
कुथुमाः 823
कुध्रः 306
कुन्ती 467
कुन्त्यः 467
कुन्दावदाताः 170
कुन्देन्दुतुषारः 170
कुपथः 772
कुपितः 61
कुपित्वा 65
कुपुरुषः 182,772
कुप्यम् 296
कुबेरबलि 722
कुब्जखञ्जः 171
कुब्रह्मः 651
कुब्रह्मा 651
कुब्राह्म 748
कुब्राह्मणः 715
कुब्राह्मण
कुमारघाती 317
कुमारचा 720
कुमारता 578
कुमारत्वम् 578
कुमारप्र 719
कुमारश्रमणा 175
कुमारश्रम 719
कुमारिका 965
कुमारितमा 18
कुमारितरा 18
कुमारिदा 763
कुमारि (हे) 957
कुमारी 65,68,427, 681,692
कुमारी 705
कुमारी अत्र 14
कुमारीणा 850
कुमार्याः 959,1017
कुमार्याम् 959,960
कुमार्यै 109,959
कुमार्यौ 693
कुमुद 478
कुमुदम् 306
कुमुदिक 484
कुमुद्वती 486,1019
कुमुद्वान् 486
कुम्बा 375
कुम्भकारः 184,290 305,310,728
कुम्भकार 537
कुम्भकारी 425
कुम्भपदी 658
कुम्भबिल 732
कुम्भिकः 533
कुम्भीक 738
कुम्भीपक्वः 166
कुम्भीभ् 738
कुम्भीय 720
कुरवः 485
कुरु 809
कुरुकुरुक्षे 221
कुरुगार्ह 722
कुरुगार्ह 722
कुरुचरः 309
कुरुचर 752
कुरुचरी 81,309
कुरुतः 56,810
कुरुपञ्चा 721
कुरूः 443,467
कुर्मः 810
कुर्याः 903
कुर्यात् 810,903 1039
कुर्युः 903
कुर्वः 810
कुर्वती 858
कुर्वन्नास्ते 1056
कुर्वीत 903
कुलकरं धनम् 310
कुलटा 689
कुलीनः 460
कुलेयकः 488
कुल्माषखादः 326
कुल्यः 460,485
कुवलम् 71,530
कुवित् 1003
कुशकाशम् 223
कुशकाशाः 223
कुशखाशाः 224
कुशा 433
कुशाग्रीया 625
कुशिकासो अव 695
कुशी 433
कुषित्वा 57
कुष्ठः 1074
कुष्ठम् 869
कुष्ठलम् 1074
कुष्ठी 603
कुष्णाति 1080,1091
कुष्यते 289
कुसितायी 431
कुसीदायी 431
कुसीदिक 537
कुसुमसुरभिः 161
कुसूलबि 732
कुसूलस्वा 732
कुस्तुम्बु 702
कुहः 714
कुह 966
कूजः 940
कूटबन्धं 401
कूटस्थः 753
कूपकः 624
कूपखाः 322,790
कूपपतित 159
कूपबिल 732
कूपमण्डूकः 167
कूपाऽत्यस्त 159
कूपेपिशाचकाः 166
कूमनः 777
कूलङ्कषा 315
कूलमुद्रजः 313
कूलमुद्वहः 313
कूष्ट्रः 771
कृकणीय 497
कृच्छ्रगत 159
कृच्छ्रान् 750
कृच्छ्रान्मुक्तः 165
कृच्छ्रायते 257
कृच्छ्रेण धार० 338
कृच्छ्रेणाऽधीते 338
कृणाति 948
कृणु 809
कृणुत 848
कृणुतात् 848
कृणोति 284
कृतः 09
कृतकटः 193
कृतकृत्यः 193
कृतज्ञः 306
कृतपूर्वी 594
कृतपूर्वी कटम् 215
कृतम् 683
कृतम् 712
कृतयति 259
कृतयशाः 735
कृतवान् 82
कृता 709
कृताकृतम् 172
कृतिः 372,373,377
कृतिकारोहि 191
कृत्यः 389
कृत्यम् 297,297
कृत्या 373,377
कृत्रिमम् 371
कृत्वा 247,82
कृत्वी 849
कृधि 808
कृपा 375
कृशः 301,1033
कृशाश्विनः 509
कृशित्वा 64
कृशोदरा 439
कृशोदरी 439
कृषिः 376,409
कृषीवलः 599
कृषीवल 775
कृषीष्ट 60,884,903
कृष्टपच्या 296
कृष्टसमीकृतम् 167
कृष्णः 70
कृष्णगङ्ग 158
कृष्णगिरि 774
कृष्णचतुर्दशी 18
कृष्णति 256,265
कृष्णतिला 715
कृष्णम् उभयतः 194
कृष्णर्द्धिः 687
कृष्णं विना 205
कृष्णावेणा 158
कृष्णाशबलः 174
कृष्णाशार. 174
कृष्णश्रितः 68

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णसर्पः 70,171
कृष्णसार 715
कृष्णसारङ्ग 174
कृष्णस्य० 219
कृष्णस्योपमा० 219
कृष्णा 422
कृष्णात्परि 142
कृष्णात् रामः० 208
कृष्णात् विना 205
कृष्णाद् ऋते 204
कृष्णाद्विड् 1027
कृष्णिमा 577
कृष्णिष्ठः 829
कृष्णैकत्व 687
कृष्णो रात्रिये 214
कृष्णो रात्र्यै 214
कृष्यते 280
के 839
केकयी 435
केकावान् 600
केकी 600
केन 34
केन कारणेन 203
केनचिद 1007
केन हेतुना० 202
केवला 430
केवलान्नम् 168
केवली 430
केशकः 592
केशग्राहं 402
केशचण 584
केशचुञ्चु 584
केशचूडा 187
केशलूनी 437
केशवः 599
केशवान् 599
केशाकेशि 186,189
656,778
केशिकः 599
केशी 599
केशेषु प्रसितः 209
केशेषूत्सुकः 209
केशैः प्रसितः 209
केशैरुत्सुकः 209
केशैर्ग्राहं 402
कैः 34
कैकयः 465,920
कैतवायनि 462
कैदारक 476
कैदार्यम् 476
कैरविणी 478
कैशिकम् 477
कैशिनः 830
कैश्यम् 477
कोकिलस्य० 217
कोकूयते 980
कोटः 55
कोटकः 55
कोटराव 774
कोटरावणम् 1081
को नाम वृष 385
कोपित्वा 65
कोप्यम् 292
कोशातकी
कोषिता 690
कोषितुम् 886
कोष्णम् 772
कोऽस्य 686
कौकिलः 456
कौक्कुटिक 539
कौक्षः 488
कौक्षेयकः 488
कौक्षेयम् 508
कौचवार्य 516
कौञ्चः 456
कौञ्चब 401
कौञ्चम् 469
कौञ्जायनाः 452
कौञ्जायना 705
कौञ्जायन्यः 81,452
कौञ्जायन्य 626
कौञ्जिः 452
कौटः 649
कौटतक्ष 649
कौटिलिकः 535
कौटिशिखी 497
कौटुम्बिक 537
कौण्डिन्यः 242
कौण्डीबृस्य 626
कौतस्कु 823
कौतस्कुतः 1060
कौनटिपु 737
कौनटिमा 737
कौन्तेयः 456
कौन्त्यः 466
कौपीनम् 583
कौबलम् 449
कौमारः 466
कौमारम् 578
कौमारी 470
कौमुदिक 485
कौम्भकारि 462
कौम्भकार्यः 462
कौम्भाः 471
कौरवक 495
कौरव्यः 238,462,466
467
कौरव्यः पिता 238
कौरव्याः पुत्रः 238
कौरव्याय 427
कौरुजङ्ग 926
कौलः 488
कौलटिनेयः 458
कौलटेयः 458
कौलटेरः 458
कौलत्थम् 533
कौलाल 634
कौलालक 520
कौलेयकः 460
कौल्माषी 594
कौल्यम् 454
कौशाम्बी 482
कौशिकिनः 518
कौशेयम् 506
कौषीतकिः 457
कौषीतकेयः 457
कौसल्याय 463
कौ स्तः 39
कौहडिः पुत्रः 239
क्नूतम् 681
क्नूयिता 343
क्नोपयति 950
क्रथः 714
क्रन्त्वा 783,891
क्रन्द्यते 280
क्रमः 346
क्रमते 92,93
क्रमिकः 481
क्रमित्वा 891
क्रम्यम् 292
क्रयः 365
क्रयिकः 534
क्रय्यः 686
क्रव्यात् 322
क्रशिमा 829
क्रशिष्ठः 829
क्रशीयान् 829
क्रष्टा 678
क्रान्त्वा 783,891
क्रापयति 675
क्रामति 93,283,945
क्रामतु 945
क्रामेत् 945
क्राम्यति 282,945
क्राम्यतु 945
क्राम्येत् 945
क्रियते 280,968
क्रिया 373,377
क्रियात् 969
क्रीणन्ति 810
क्रीणाति 285
क्रीणीतः 811
क्रीणीहि 808
क्रीत्रिमम् 371
क्रीणन्ति० 334
क्रीणीहि 285
क्रुङ् 319
क्रुङ्भिः 1035
क्रुञ्चकीय 487
क्रुञ्चकीया 826
क्रुञ्चा 709
क्रुध्यति 124
क्रोत्स्यति 1028
क्रोधनः 343
क्रोपयति 930
क्रोशं कुटिला० 195
क्रोशं गिरिः 195
क्रोशमास्ते 129
क्रोशम् अधीते 195
क्रोशस्यैकदेशे० 196
क्रोशेनाऽधीतो० 196
क्रोष्टरि 862
क्रोष्टवे 862
क्रोष्टा 342,861
क्रोष्टारः 862
क्रोष्टारम् 862
क्रोष्टारौ 862
क्रोष्टीभ्याम् 862
क्रोष्टुः 862
क्रोष्टुना 862
क्रोष्टुभ्याम् 862
क्रोष्टूनाम् 862
क्रोष्टोः 862
क्रोष्टौ 862
क्रोष्ट्रा 862
क्रोष्ट्री 862
क्रोष्ट्रे 862
क्रोष्ट्रोः 862
क्रोष्ट्वोः 862
क्रौञ्चकाः 826
क्रौड्या 447
क्रौशशतिक 567
क्लमी 341
क्लामति 283,945
क्लाम्यति 283,945

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लिशितः 890
क्लिशित 890
क्लिशित्वा 57,890
क्लिश्नीतः 811
क्लिष्टः 890
क्लिष्ट्वा 890
क्लीबते 256
क्लीबायते 256
क्लेशाऽपहः 316
क्व 608,916
क्वणः 366
क्वत्यः 489
क्वाणः 366
क्षणदाचर० 309
क्षत्ता 339,781
क्षत्तृभ्यः 339
क्षत्रियः 82,834
क्षत्रियत्व 579
क्षत्रिया 436
क्षत्रियाणी 436
क्षत्रियी 436
क्षत्रवनिम् 312
क्षत्रिय 460
क्षत्रियका 934
क्षत्रियजम् 329
क्षत्रियवत् 575
क्षत्रिया 442
क्षत्रियिका 934
क्षत्वा 789
क्षमा 375,1096
क्षमिति 880
क्षयः 365
क्षयः 711
क्षयी 344
क्षय्यः 685
क्षरजः 752
क्षरिति 880
क्षरेजः 752
क्षवः 359
क्षवथुः 371
क्षात्रविद्यः 480
क्षात्रिः 460
क्षामः 1033
क्षामी 341
क्षाम्यति 945
क्षारशुक्लः 161
क्षितः 795
क्षितायुः 795
क्षित्वा 789
क्षिपका 934
क्षिप्नुः 340
क्षिप्यते 280
क्षीणः 795,1031
क्षीणः क्षीणः 995
क्षीणायुः 795
क्षीणो जाल्मः 1032
क्षीपरेण 1083
क्षीबः 1016,1033
क्षीयते 280
क्षीरपाणम् 1083
क्षीरपाणाः 1082
क्षीरपाणि 1083
क्षीरपानम् 1083
क्षीरपायी० 326
क्षीरपेण 686
क्षीरस्यति 849
क्षीरी 596
क्षीरोद 762
क्षीरौदनः 163
क्षुण्णः 1030
क्षुधितः 891
क्षुधितवा 891
क्षुधित्वा 65,891
क्षुत्रः 1030
क्षुब्धः 876
क्षुभितम् 876
क्षुभ्नन्ति 1092
क्षुभ्नाति 1092
क्षुभ्नीतः 1092
क्षुल्लकवै 722
क्षूयते 280
क्षेत्रकरः 310
क्षेत्रियः 595
क्षेत्रे विव 93
क्षेपिमा 827
क्षेपिष्ठः 827
क्षेपीयान् 827
क्षेमः 603
क्षेमकारः 315
क्षेमङ्करः 315
क्षेयः 685
क्षैरेयी 471
क्षोदिमा 827
क्षोदिष्ठः 827
क्षोदीयान् 827
क्षोधित्वा 65
क्षौत्रम् 578
क्षौद्रम् 520
क्ष्णूयते 281
क्ष्मापयति 930
क्ष्मायिता 343
क्ष्विण्णः 352

ख

खञ्जकुब्जः 171
खञ्जपाचकः 171
खट्वका 935
खट्वच्छति 688
खट्वाः 821
खट्वा 442
खट्वाका 935
खट्वानाम् 850
खट्वापा 763
खट्वाप्लुतः 160
खट्वाभा 756
खट्वारूढः 160
खट्वावती 714
खट्वावान् 600
खट्विका 935
खट्वीकरो 970
खट्वेऽ 1045
खट्वे इति 698
खट्वेन्द्रः 699
खणः 342
खण्डता 576
खण्डत्वम् 576
खण्डिकम् 477
खण्डिकीया 518
खण्डिमा 576
खदिरव 775
खदिरवण 1082
खनकः 303
खनकी 433
खनति 835
खनति गोत्रं 1003
खनित्रम् 351
खन्यते 791
खन्याः 298
खरः 598
खरकुटी 712
खरणस 655
खरणसः 1081
खरणाः 655
खरनादी 325
खरनादी 728
खरशालः 505
खरिन्धमः 313
खरिन्धयः 313
खरुः 434
खर्जः 940
खलप्वौ 804
खलप्व्याशा 1017
खलिनी 478
खल्यम् 554
खल्या 478
खशयः 308,753
खाट्कृत्य 134
खाण्डकः 494
खाण्ड्यम् 576
खातः 791
खादकः 342
खादयति 130
खादिरः 482
खादिरम् 525
खान्यः 298
खायते 281,791
खारिम्पचः 313
खारीकम् 560
खिन्नः 1030
खिन्नः खिन्नः 995
खुरणस 655
खेचरः 309
खेयम् 295
खेशयः 753
खौनाति 783
ख्यातः 1034
ख्षमा 1096

ग

गंस्यते 893
गङ्गा 1099
गङ्गादुकूलम् 170
गङ्गापार 156
गङ्गामध्य 156
गङ्गामनु 156
गङ्गायमुने 221
गङ्गायाः अनु 156
गङ्गायाः पा 156
गङ्गायाः म 156
गङ्गाशोणम् 221
गङ्गे अमू 14
गङ्गोर्मि 687
गङ्गौघः 687
गच्छति 683,946
गच्छति (ग्रामं) 127
गच्छतु 388,389,845 946
गच्छन्ति 118
गच्छन्नूर्ध्व 1056
गच्छेत् 388,946
गजगामी 325
गजता 477
गजनासोरूः 444
गजेन 837
गंडुकण्ठः 193
गणकः 18,557
गणका 435

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणकी 435
गणकृत्वः 18
गणतिथः 590
गणधा 18
गणना 376
गणशः 18
गण्डयन्तः 794
गण्यः 545
गण्यते 281
गतगतः 996
गतम् 378
गतवान् 782
गत्वरः 346
गत्वा 24,789
गद्यम् 292
गन्तवे 395
गन्तव्यम् 893
गन्तव्या० 219
गन्तव्यो ग्रामः 291
गन्ता 783,789
गन्तुम् 247,893
गभीर आँ 698
गमः 365
गमनक 719
गमनचिर 716
गमननेदी 718
गमनपा 719
गमनप्रिय 717
गमनम् 807
गमनश्रे 719
गमनश्रेय 719
गमनसुख 717
गमनाबाध 718
गमनाव 719
गमयता 848
गमयति 130,233
गमयाञ्चकार 266
गमिष्यति 893
गमी 354
गमेम 288
गम् 48,79
गम्यते 281,783
गम्यम् 292
गरः 359,365
गरः 704
गरिमा 576,828
गरिष्ठः 828
गरीयान् 828
गर्गकुलम् 241
गर्गत्रिरा 731
गर्गरूप्य 449
गर्गाः 47,240
गर्गेण 1081
गर्जः 940
गर्त्यः 566
गर्दभक 620
गर्दभति 256
गर्दभाण्ड 591
गर्दभाण्डीय 591
गर्दभायते 256
गर्दभोच्चा 729
गर्द्धनः 343
गर्धयति 100
गर्धयते 100
गर्भ्मः 1095
गर्भः 1095
गर्भिणयः 287
गर्भेण 1081
गर्वितः 586
गर्हणा 376
गले चोपकः 162
गलो गलः 1017
गवयी 442
गवा 709
गवां कृष्णा० 208
गवाक्षः 644
गवां गोत्रमु 1009
गवाऽग्रम् 32
गवाग्रम् 697
गवादिनी 714
गवाध्यक्ष 726
गवां प्रसूतः 207
गवाम् 851
गवाश्वम् 223
गवां सम्पन्नः 180
गवां स्वामी 207
गवि 697
गविष्ठः 262
गनिस्थिरः 1073
गवेन्द्रः 687
गव्यः 561
गव्यति गोपः 255
गव्यम् 448,527,553
685,530
गव्या 478
गव्यूतिः 685
गहीयः 496
गां दीव्यधा० 214
गां मे देहि भोः 1043
गाः 689,692
गाङ्गः 454
गाङ्गेयः 457
गाढा 885
गाणिक्यम् 476
गाणिनः 831
गाण्डीवधन्वा 657
गाण्डीवम् 599
गात्रम् 237
गाथकः 303
गाथाकारः 311
गाथिनः 830
गान्धार० 465
गाम् 689,860
गाम् अस्य० 214
गाम्भीर्यम् 508
गाम्मन्य 765
गायनः 303
गारेधका 463
गारेधिः 463
गार्गः 461,522
गार्गकम् 825
गार्गायते 826
गार्गिका 579
गार्गी 426,461
गार्गीपु 763
गार्गीपुत्रः 738
गार्गीपुत्रका 464
गार्गीपुत्रा 464
गार्गीपुत्रिः 464
गार्गीब 733
गार्गीभूतः 826
गार्गीमात 958
गार्गीयः 492
गार्गीयति 826
गार्गीयाः 449,450
गार्गेयः 461
गार्ग्यः 116,449,451
452,453,462
711,819,825
गार्ग्यकुलम् 241
गार्ग्य क्वः 1103
गार्ग्यस्तत्र 1103
गार्ग्यायणः 82,451
452,465,750,826
गार्ग्यायणी 426,433
गार्ग्यौ 76,77
गार्दभम् 521
गार्दभर 742
गार्दभरथ 521
गार्भिणम् 475,830
गार्मुतम् 528
गार्ष्टेयः 459
गार्हयत्यः 545
गावः 78,860
गावौ 860
गाहिता 885
गिरति 94,863,1021
गिरिकल्प 619
गिरिणदी 1083
गिरिनदी 1083
गिरिशः 309
गिर्योः 43
गिलः 306
गिलगिल 766
गिलति 1021
गीः 1038
गीः काम्य 1058
गीः कारः 1060
गीः पतिः 1037
गीयते 281,799
गीर्णः 1030
गीर्णः 1031
गीर्णिः 372
गीर्पतिः 1037
गीर्यते 281
गीर्वान् 1020
गीस्तरा 1075
गुग्गलूः 444
गुञ्ज् 851
गुडधानाः 163
गुडधाना 741
गुडपलल 737
गुडपृथुकाः 163
गुडप्रियः 193
गुडमि 741
गुडमिश्रः 162
गुडमैरे 727
गुडसम्मि 741
गुडसम्मिश्राः 162
गुडापूपिका 594
गुडोदक 731
गुणग्रामः 475
गुणानुरोधेन० 205
गुण्याः 601
गुथितः 61
गुधितम् 63
गुधित्वा 57
गुप्तः 712
गुफित्वा 63
गुम्फित्वा 63
गुरुः 434
गुरुचरणा 171
गुरुणा 1080
गुरुतराः 617
गुरुतल्पगः 316

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुता 575,576
गुरुत्वम् 575,576
गुरुशुश्रूषु 160
गुरुसेवं 401
गुरून् 1091
गुर्वी 434
गुहा 375
गुह्य 294
गूढः 876,1050
गूर्णः 1030
गूर्त्त 1034
गृणाति 948
गृध्नुः 340
गृभाय 285
गृहः 303
गृहप्रवेश 573
गृह्याव्यः 794
गृहयालुः 345,794
गृहा३इ 1043
गृहाण 285
गृहान्तः 166
गृहीतः 26,61,669
गृहीतम् 693
गृहीत्वा 57,881
गृह्णाति 669
गृह्यका 297
गृह्यते 281
गृह्यान्तै 414
गेयः 407
गेयम् 291
गेयात् 799
गेयो माणवकः० 219
गेहं गेह 404
गेहानुप्र 404
गेहानुप्रपा 403
गेहानुप्रवे 403
गेहे क्ष्वेडी 167
गेहेमेही 167
गेहे वदते 93
गेहे शूरः 167
गो अग्रम् 687
गो इति 16
गोकर्णः 734
गोका 965
गोकुञ्जरः 172
गोक्रीतः 741
गोगर्भिणी 175
गोगृष्टिः 173
गोगोष्ठ 584
गोऽग्रम् 697
गोग्रासः 164
गोघ्नः 408
गोचरः 379
गोजाः 322,790
गोतमाः 241
गोत्रा 478
गोत्रेण कौशिकः 200
गोदः 306
गोदायः 356
गोदोहमास्ते 129
गोदोहनी 378
गोदौ 73
गोधुक् 1025,1028
गोधेनुः 173
गोनर्दीयः 54
गोनागः 172
गोनाम् 851
गोपा 435
गोपायञ्चक्रे 266
गोपायति 263,265
गोपायति 704
गोपायिता 264
गोपालः 728
गोपालक 627
गोपालपशु 579
गोपालस 731
गोपालिका 435
गोपिता 264,885
गोपी 435
गोपुच्छिक 557
गोपोषम् 401
गोप्ता 264,885
गोप्यम् 292
गोप्रकाण्डम् 173
गोफित्वा 64
गोबल्लव 726
गोभिर्वपावान् 161
गोमचर्चिका 173
गोमतल्लिका 173
गोमती 596
गोमत्यति 854
गोमयम् 527
गोमहिषम् 223
गोमहिषाः 223
गोमान् 595,1022
गोमी 600
गोयानम् 685
गोयूतिः 685
गोरक्ष 728
गोरक्षित 723
गोरक्षितम् 164
गोवशा 173
गोवष्कयणी 173
गोवाली 442
गोविन्दः 302
गोवृन्दारकः 172
गोवृषः 740
गोवेहत् 173
गोव्याघ्रम् 222
गोशालः 505
गोशालम् 227
गोशाला 227
गोषदक 591
गोषाः 322,790
गोषा 1077
गोषु कृष्णा० 208
गोषु दुग्धा० 207
गोषु दुह्यमाना 207
गोषु प्रसूतः 207
गोषु स्वामी 207
गोष्टोमम् 1076
गोष्ठः 1074
गोष्ठश्वः 645
गोष्ठान् 306
गोष्ठीनः 582
गोष्ठेपण्डितः 167
गोष्पदः 702
गोष्पदपू 399
गोष्पदप्रं 399
गोष्पदमा 702
गोष्पदायते 256
गोसंख्यः 307
गोसनिं 1077
गोसनिम् 312
गोसन्दायः 306
गोसादः 722
गोसादि 722
गोसारथि 722
गोसुखम् 164
गोस्तोमम् 1076
गोस्थानः 505
गोस्थान 741
गोहत्या 294
गोहितम् 164
गोहितम् 723
गोह्य 294
गौः 38,860,918
209
गौकक्षाः 523
गौडभृत्य 732
गौडिकः 547
गौणमुख्य 515
गौणा 433
गौणी 433
गौणीतरी 623
गौधारः 458
गौधूमिक 537
गौधेरः 45,458
गौपवनाः 241
गौपालिशाल० 222
गौपुच्छिक 533
गौपेयः 457
गौप्तः 483
गौमथिक 485
गौरमु 744
गौरमुखा 440
गौरमुखी 441
गौरसक्थ 653,749
गौरवम् 576
गौरिव गवयः 219
गौरी 65,433,681
824
गौरी अधिश्रितः 16
गौरीणाम् 850
गौरीमुमां 199
गौरु तल्पि 532
गौर्यम् 693
गौर्यै 109
गौर्य्यपि 684
गौलक्षणि 480
गौशतिक 601
ग्धिः 41
ग्रथित्वा 63
ग्रथ्नीते 289
ग्रथ्यते 281
ग्रन्थित्वा 63
ग्रसितः 880
ग्रहः 303,365,367
ग्रहः 712
ग्रहीतव्य 881
ग्रहीता 797,881
ग्रहीतुम् 881
ग्रहीषीष्ट 797,881
ग्रहीष्यति 881
ग्रहीष्यते 796
ग्राभः 1026
ग्रामं गच्छति 197
ग्रामं गमी 218
ग्रामं निकषा 195
ग्रामं परितः 195
ग्रामगः 316
ग्रामं समया 195
ग्रामं सर्वतः० 194
ग्रामं सर्वतः जलम् 194
ग्रामं गतः 217

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामः गतः 408
ग्रामगतः 723
ग्रामगमी 158
ग्रामगामी 158
ग्रामगृह्या सेना 297
ग्रामणि 756
ग्रामणिना 857
ग्रामणिनी 857
ग्रामणिपु 763
ग्रामणीः 320
ग्रामणी 682
ग्रामणीनाम् 851
ग्रामणीपु 763
ग्रामण्या 856
ग्रामण्ये 110
ग्रामण्यौ 803
ग्रामतक्ष 649
ग्रामता 477
ग्रामनापि 725
ग्रामम् अभितः 195
ग्रामम् उत्तरेण 205
ग्रामरथ्या 726
ग्रामवास 753
ग्रामवासी 753
ग्रामस्य अन्तिकम् 205
ग्रामस्य अन्तिकस्य 205
ग्रामस्य अन्तिकात् 205
ग्रामस्य अन्तिके 206
ग्रामस्य उत्तरेण 204
ग्रामस्य दक्षिणतः 204
ग्रामस्य दूरम् 205
ग्रामस्य दूरस्य 205
ग्रामस्य दूरात् 205
ग्रामस्य दूरे 206
ग्रामस्य पुरस्तात् 204
ग्रामात् पूर्वः 204
ग्रामात् पृथक् 205
ग्रामात् प्राक् 204
ग्रामाद् अन्तिकम् 205
ग्रामाद् आयाति 203
ग्रामाद् दक्षिणा 204
ग्रामाद् दक्षिणाहि 204
ग्रामाद् दूरम् 205
ग्रामाञ्ञ् 1043,1045
ग्रामाय गच्छति 197
ग्रामार्द्धः 177
ग्रामीकरो 638
ग्रामीणः 82,487,503
512,515,834
ग्रामीणा भार्य 488
ग्रामेण पृथक् 205
ग्रामेयकः 487
ग्रामेवास 753
ग्रामे वासी 753
ग्रामो ग्रामो 995
ग्राम्यः 487,503,515
ग्रावस्तुत् 349
ग्राहः 303
ग्राहितम् 882
ग्राहिता 797
ग्राहिषीष्ट 797
ग्राहिष्यते 796
ग्राही 300
ग्रीवालः 596
ग्रीवावान् 596
ग्रीष्मवस० 191
ग्रीष्मात् पूर्वः 204
ग्रैवः 488
ग्रैवम् 508
ग्रैवेयकः 488
ग्रैवेयम् 508
ग्रैष्मः 506
ग्रैष्म 517
ग्रैष्मक 507
ग्रैष्मम् 501
ग्लहः 367
ग्लाता 675
ग्लानः 1030
ग्लानिः 372
ग्लायति 675
ग्लायते 798
ग्लायत्यध्ये 406
ग्लायात् 799
ग्लासीष्ट 799
ग्लास्नुः 82,340
ग्लुचुकाय 464
ग्लेयात् 799
ग्लौचुकाय 461,517
522
ग्लौचुकायनः 461
ग्लौचुकिः 464

घ

घटग्रहः 307
घटते शयि 406
घटत्वम् 578
घटमृत्तिका 164
घटयति 262,806
घटस्य कर्त्ता 181
घटिकः 533
घटिन्धमः 313
घटिन्धयः 313
घटीग्रहः 307
घटोध 657
घटोध्नी 429,657
घट्टना 376
घनः 368
घनश्यामः 170
घनाघन 667
घसत् 246
घस्ताम् 231
घस्मरः 345
घा 777
घाण्टिकः 541
घातः 937
घातकः 928,937
घातंघात 928
घातयति 928,937
घानाभृड् 1026
घानिता 797
घानिषीष्ट 797
घानिष्यते 796
घार्त्तम् 471
घार्त्तिकम् 533
घासः 231,366
घासम् 231
घुक्ष्यते 1027
घुषित्वा 65
घुष्टा 877
घूर्णति 835
घृतपावा 323
घृतसूपः 737
घृतस्पृक् 68,318
घृतस्पृग् 1035
घृतस्य यजते 215
घृतेन पाटवम् 161
घृतेन यजते 215
घृत्वा 789
घोषित्वा 65
घ्नन्ति 938
घ्नन्तु 938
घ्राणः 1033
घ्रातः 1033
घ्रायते 281
घ्रायात् 799
घ्रेयात् 799

ङ

ङ् 11

च

च 23,132
चकर 861
चकरुः 965
चकाट 1098
चकारः 376
चकार 861,978
चकासति 665
चकासयति 919
चकासाञ्च 266
चकासि 919
चकित 997
चकृद्वे 1069
चकृम 875
चकृव 875
चक्रणित 1083
चक्रतुः 43,802,964
चक्रनदी 1083
चक्रनित 1083
चक्रपादी 1083
चक्रबद्ध 753
चक्रबन्धः 720
चक्रबन्ध 752
चक्रबन्धं 401
चक्रबन्धः 166
चक्रसक्थ 749
चक्राणः 330
चक्रिः 348
चक्रि अन्न 698
चक्रिण्ढौकसे 1093
चक्रिंः त्राय 1048
चक्रिरे 801
चक्रिंस्रा 1048
चक्रिंस्रा 1048
चक्रीवत 1020
चक्रुः 44,690
चक्रेबन्ध 752
चक्र्यत्र 698
चक्लाम 978
चक्षतुः 807
चक्षूरागः 1050
चखनतुः 813
चखाद 677,1098
चखान 978,1098
चख्नतुः 807
चख्याः 553
चङ्क्रमणः 343
चङ्क्रमावा 990
चङ्क्रमीति 990
चङ्क्रम्य 260
चङ्क्रम्यते 260,990
चङ्खनीति 990
चङ्खन्य 791,260
चङ्खन्यते 990
चचर्व 1098
चचाल 1098
चञ्चत्क 629
चञ्चा 625

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चञ्चा 712
चञ्चुरीति 991
चञ्चूर्यते 260,991
चञ्चूर्यमाण 991
चञ्चूर्यमाणाः 1038
चटकका 934
चटका 458
चटकिका 934
चण्डता 576
चण्डत्वम् 576
चण्डिमा 576
चतसृणा 779,780
1080
चतसृभिः 708
चतसृभिः 913,914
चतसृणा 780
चतस्रः 708
चतस्रः 913
चतुःकरोति 1059
चतुःपचति 1059
चतुःभुङ् 631
चतुरः 706
चतुरङ्गयोगेन 1092
चतुरश्र 655
चतुर्णाम् 708
चतुर्णाम् 1080
चतुर्ण्णाम् 851,1080
चतुर्थः 589
चतुर्नव 1080
चतुर्भिः 708
चतुर्भिः 708
चतुर्भुङ् 631
चतुर्मुखः 186
चतुर्युगम् 225,427
चतुर्षु 1051,1096
चतुर्हायणी 429
चतुष्कपा 1059
चतुष्करोति 1059
चतुष्टयम् 587,1075
चतुष्टयी 587
चतुष्प 1059
चतुष्पदा 424
चतुःसूत्री 427
चतुःस्त 744
चतूरसः 773
चतूरात्रः 228
चत्तः 880
चत्यम् 292
चत्वारः 862
चत्वारि 863
चत्वारिंशत् 565
चत्वारो हस्तपादाः 224
चनीकसीति 989
चनीकस्य 260
चनीकस्यते 989
चनीस्कद्यते 989
चनीस्कन्दी 990
चनोहितः 133
चन्दनसा 357
चन्दनाऽनु 437
चन्द्रः 1097
चन्द्रभागी 434
चन्द्रमुखा 438
चन्द्रमुखी 438,441
चन्द्रलेखा 187
चन्द्रवद 440
चप्यक 736
चमित्वा 891
चयः 83,365
चयनम् 82,685
चरः 667
चरकाः 519
चरमपुरुषः 171
चरमाः 22
चरमे 22
चरसे 394
चराचर 667
चराचरः 977
चराति 266,414
चरिकर्त्ति 992
चरितम् 1030
चरित्रम् 351
चरिष्णुः 339
चरीकर्त्ति 992
चरीकृष्यते 980
चरीचृत्य 260
चर्कर्त्ति 992
चर्चा 375
चर्तिष्यति 892
चर्त्यम् 295
चर्त्स्यति 892
चर्म 353,409,1019
चर्मणा 820,1081
चर्मणाम् 780
चर्मणि द्वीपिनं 206
चर्मण्वत् 1020
चर्मतिलः 1018
चर्मन् 846,1019
चर्मनासि 1081
चर्मपूरं 399
चर्मायति 114
चर्मायते 114
चर्यते 281
चर्यम् 292
चलः 302,667
चलनः 342
चलयति 104
चलाचल 667
चलाचलः 977
चलाचले 733
चलीक्लप्य 260
चवर्गीयम् 510
चषलं मे० 287
चाकर्त्ति 992
चाकाङ्क्ष्य 260
चाक्रगर्त्त 494
चाक्रवर्मणः 832
चाक्रिकः 541
चाखाद्यते 260
चाखायते 260,791
990
चाचलिः 348
चाचल्यते 260
चाटकैरः 458
चाटुकारः 311
चाण्डाल 634
चाण्ड्यम् 576
चातुरी 577
चातुर्दशि 543
चातुर्मासक 571
चातुर्मासी 571
चातुर्मास्या 571
चातुर्वर्ण्यम् 577
चातुष्टयः 482
चात्वारिंशत्कः 557
चात्वारिंशानि 565
चान्त्वा 891
चान्द्रभागेयः 455
चान्द्रमसी 425
चान्द्रम् 518
चान्द्रायणिक 567
चायकः 685
चाययति 677
चायिता 797
चायिषीष्ट 797
चायिष्यते 796
चारकीणम् 555
चारुकर्णा 440
चारुकर्णी 440
चार्मः 823
चार्मणः 470,823,832
चार्मिकाय 463
चार्वाघाटः 316
चालः 302
चिकय 939
चिकयामक 269
चिकयिथ 939
चिकरिष 902
चिकर्तिष 253,892
चिकर्तिषति 253
चिकल्पिषते 106,107
चिकाय 939
चिकित्सति 251
चिकिनः 585
चिकीर्षकः 39,793
चिकीर्षकः 710
चिकीर्षति 58,97,252
253,783
चिकीर्षा 290,374,377
चिकीर्षा देवस्य० 216
चिकीर्षिता 792
चिकीर्षुः 218,346
चिकीर्ष्यते 793
चिकीर्ष्यम् 709
चिकीर्ष्यात् 904
चिकीषति 253,939
चिकीषते 253
चिकृक्षति 253
चिकृक्षते 253
चिकृत्सति 253,892
चिक्लृप्सति 106,107
894
चिकेथ 939
चिक्कः 585
चिक्य 939
चिक्याते 940
चिक्याथे 940
चिक्यानः 330
चिक्यिढ्वे 940
चिक्यिध्वे 940
चिक्यिम 939
चिक्यिमहे 940
चिक्यिरे 940
चिक्यिव 939
चिक्यिवहे 940
चिक्यिषे 940
चिक्युः 930
चिक्ये 940
चिक्रमिष 253
चिक्लमिष 253
चिक्लिद 667
चिक्षिपिष 253
चिक्षिपे 980
चिक्षियतुः 801
चिक्षियतु 964

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिखनिष 253
चिखेद 677,1098
चिचयिष 939
चिचरिष 253
चिचर्त्तिष 892
चिचाय 939
चिचीषति 58,253,783
939
चिचीषते 253
चिचृत्सति 892
चिचेथ 895,939
चिच्छत्सति 253
चिच्छर्दिष 892
चिच्छित्स 1016
चिच्छिदतुः 56
चिच्छृत्स 892
चिच्छेद 1098
चिच्छेदिथ 896
चिच्य 939
चिच्याते 940
चिच्याथे 940
चिच्यावयिष 988
चिच्यिढ्वे 940
चिच्यिध्वे 940
चिच्यिम 939
चिच्यिमहे 940
चिच्यिरे 940
चिच्यिव 939
चिच्यिवहे 940
चिच्यिषे 940
चिच्युः 939
चिच्युषे 674
चिच्ये 940
चितः 9
चितिः 372
चितित्वा 65
चित्पतिः 718
चित्यः 299
चित्रकरः 310
चित्रगुः 71,192,756
चित्रग्वग्र 697
चित्रग्विन्द्र 697
चित्रा 504
चित्रीयते 258
चिनु 809
चिनुतः 9,56
चिनुयात् 968
चिनुवः 956
चिनुही ३ 699
चिनुहीद 699
चिन्ता 375
चिन्तितः 712
चिन्त्यते 281
चिन्मय 1095
चिन्वते 835
चिन्वन्ति 835
चिपिटः 585
चिरंजीवितं० 219
चिरण्टी 427
चिरत्नम् 502
चिरन्तन 502
चिराय 132
चिरेण 132
चिल्लः 585
चीकरताम् 714
चीयते 66,281,967
चीयात् 967
चीरजटाजि 603
चुकुवे 980
चुकोप 980,1098
चुकोपिष 253
चुक्षुभिषति 253
चुक्षोभिष 253
चुच्यावयिष 988
चुच्युविषे 674
चुलुम्पाञ्च 266
चुल्लः 585
चुश्च्युतिष 978
चुश्च्योत 978
चूडालः 596
चूडावान् 596
चूर्णपेषं 400
चूर्णिनः 536
चूर्त्तिः 991
चेकीतः 671
चेकीयते 671
चेकीर्यते 968
चेक्रायते 260
चेक्रीड्यते 260
चेक्रीयते 260
चेक्षीयते 260,988
चेचियः 8
चेचीयते 260,967,988
चेच्छिद्यते 988
चेतयः 301
चेतव्यम् 290
चेता 675,792,797
949
चेतित्वा 65
चेयम् 53,290
चेयम् 713
चेलक्नोपं 400
चेषीष्ट 59,797
चेष्टा 374
चेष्यति 797,893
चेष्यते 796
चैत्रः 472
चैत्रिकः 472
चैदिः 491
चैदीयाः 491
चैयातकः 491
चोकूर्यते 260
चोक्रुशोति 989
चोच्छिद्यते 260
चोदना 376
चोपनः 342
चोपयति 104
चोरकबन्धं 401
चोरङ्कारं 398
चोरयति 262,265
चोरी 425
चोर्यते 281
चोलः 467
चौडिः 929
चौरः 542
चौरघातो 317
चौर चौर ३ 1042
चौर ३ चौर 1042
चौर चौर 995,996
चौरं ज्वरयति० 212
चौरतः 636
चौरं विहन्ति 213
चौरं सन्तापयति० 212
चौरं हिन० 213
चौरं द्विषन् 218
चौरभयम् 164
चौरम् उज्जा० 213
चौरस्य 753
चौरस्य० 337
चौरस्य उज्जा० 212
चौरस्य उन्नाट० 212
चौरस्य क्राथ० 213
चौरस्य द्विषन् 218
चौरस्य पिनष्टि 213
चौरस्य प्रहन्ति० 212
चौराद् भयम् 164
च्यावयाति 414
च्युतः 1030
च्युताऽशना 970
च्युतित्वा 65
च्योतित्वा 65
च्योषीद्वम् 1069
च्योषीष्ट 884

छ

छत्त्रम् 1102
छत्रधारः 728
छत्रम् 807
छत्रोपाह 651
छदः 379
छदिः 807
छद्म 807
छन्तधा 741
छन्दस्यः 546,572
छन्दस्समा 573
छन्दोऽधीष्व 393
छन्दोव्या 741
छन्नः 878
छर्त्स्यति 892
छर्दिष्यति 892
छागलः 456
छागलिः 456
छागलेयि 519
छाग्यायनि 463
छात्त्रः 1102
छात्रः 542
छात्रस्य हसि० 217
छात्रहसितम् 181
छात्राणां पञ्चम 180
छात्राणां मैत्रः० 208
छात्रिशाला 729
छात्रेषु मैत्रः० 208
छादितः 878
छादिषेया 556
छान्दसः 480,512
छान्दसवै 721
छान्दोग्यः 523
छायाशुष्कः 166
छित् 349
छिदा 375
छिदिः 376
छिदुरः 345
छिद्यते 281
छिनत्ति 125,835
छिन्द्धि 808
छिन्न 1030
छुर्यात् 1039
छैदिकः 565

ज

जक्षत् 857
जक्षति 665
जक्षतुः 39,42,232
1063
जक्षितः 710
जक्षिति 902
जक्षिवान् 331,898

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जक्षुः 232,807,1064
जगच्छान्ति 1101
जगच्शान्ति 1101
जगणतुः 813
जगत् 350
जगतीच्छ 764
जगत्यम् 549
जगद 861
जगदतुः 813
जगदिति 691
जगदीशः 1029
जगन्वान् 899,1035
जगल्लीयते 1100
जगाद 861
जगाम 666,978
जगाम देवदत्तः 334
जगुरिः 347,864
जगृभ्रे 801
जगृभ्म 897
जगृहिम 882
जगृहिव 882
जगृहिषे 882
जग्धः 230
जग्धवान् 230
जग्ध्वाय 849
जग्मतुः 43,807
जग्मवे 347
जग्मिः 347,348
जग्मिवान् 331,899
जग्मुः 43,44
जग्रसे 980,1098
जग्रहिथ 882
जग्राह 670
जग्ले 420
जग्लौ 844
जघनिथ 938
जघन्थ 938
जघन्यपुरुषः 171
जघन्वान् 899
जघान 929
जघार 1098
जघास 232,978
1098
जघ्नतुः 43,807
जघ्निः 347
जघ्निम 938
जघ्निव 938
जघ्निवान् 899
जघ्नुः 43
जङ्गम्मा 990
जङ्गम्मीति 990
जङ्गम्यते 260,990
जङ्घन्यते 261,938
969
जङ्घाकरः 310
जङ्घालः 596
जङ्घावा 726
जङ्घावान् 596
जजनत् 710
जजागार 268,950
जजागृवान् 950
जज्ञि 347
जज्ञिः 348
जज्ञे 807
जज्वरतुः 813
जज्वलतुः 813
जज्वलुः 978
जज्झाम 1097
जञ्जनीति 990
जञ्जन्य 791
जञ्जन्यते 260,990
जञ्जपीति 990
जञ्जपूकः 346
जञ्जपूक 990
जञ्जप्यते 260,990
जञ्जभीति 990
जञ्जभ्यते 260,990
जटाभिस्तापसः 201
जडता 577
जडत्वम् 577
जडिमा 577
जतुने 857
जतूः 444
जतूनि 25
जनः 712
जनकः 930
जनकीय 496
जनकीयम् 509
जनता 477
जनमेज 764
जनमेजयः 312
जनयति 104
जनार्दनः 300
जनिता 794
जनिध्वम् 903
जनिध्वे 903
जनिषे 903
जनिष्ठाः 801
जनिष्व 903
जनीयन्तः 970
जनुषा 750
जनैक्यम् 687
जन्मतः 636
जन्मन आरभ्य० 204
जन्मनः प्रभृति० 204
जन्यः 407,546
जन्यते 281,791
जन्यम् 292
जन्या 544
जपः 366
जपमनु 139
जप्यम् 292
जम्बुफल 530
जम्बूनि 530
जम्बूफल 530
जम्भयति 853
जयः 53,365
जयः 712
जयति 7,129,949
जयी 344
जय्यः 685
जरत्कु 731
जरद्धस्ती 168
जरन् 330
जरसः 914
जरसौ 914
जरा 375
जराः 914
जरित्वा 891
जरिहर्त्ति 992
जरीगृह्यते 260
जरीत्वा 891
जरीहर्त्ति 992
जरे 914
जर्हर्त्ति 992
जलजाक्ष 653
जलदः 306
जलधिः 372
जलपथः 644
जलम् 841
जलं वहति 1052
जलसरस 649
जलानि 27,840
जलानीमानि 29
जलाषाट् 778
जलाषाड् 1062
जले 824,840,855
जलेजा 752
जलोर्मिः 687
जलौघः 687
जल्पति गोत्रम् 1003
जल्पनम् 378
जल्पयति 131
जल्पाकः 81,344
जल्पितम् 378
जवः 365
जवनः 343
जश्त्वम् 1094
जहति 810
जहार 978
जहास 980
जहाहि 812
जहि 785,789
जहितः 812
जहिहि 812
जहीतः 17
जहीहि 812
जह्रद्ध्वे 1069
जह्यात् 812
जह्वरतुः 964
जह्वार 964
जांगलपथि 568
जागतः 479
जागद्यते 260
जागरयति 950
जागरा 374
जागराञ्चकार 268
जागरितः 950
जागरुकः 346
जागर्यते 281
जागर्या 374
जागर्यात् 417
जागार 666
जागृतः 950
जागृयात् 417
जागृविः 681,950
जाग्रति 665
जाग्लायते 798
जाजलाः 823
जाजायते 791
जाज्ञायते 260
जाज्वल्यते 259,260
जाड्यम् 577
जाड्यात् बद्धः 202
जाड्येन बद्धः 202
जातः 790
जातु तत्र 385
जातु भोक्ष्यसे 1007
जातुषम् 27,524
जातोक्षः 645
जानपदी 433
जानवादि 547
जानाति 947
जानाति भोक्तुं 406
जानीते 102

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानुदघ्न 586,835
जानुदघ्नी 586
जानुद्वयस 586
जानुद्वयसी 586
जानुप्रह्व 535
जानुमात्र 586
जानुमात्री 586
जानुषेणी 1074
जापयति
जाबालिः पिता 239
जाबालिः पुत्रः 239
जाम्बवकः 493
जाम्बवम् 530
जाम्ववशालू० 222
जाम्बेयः 459,824
जायते 281,791,947
जायाघ्नः 317
जायुः 353
जारः 358
जारुषी 484
जालिकः 533,534
जिगमिष 253,893
जिगमिषति 234
जिगमिषि 893
जिगरिष 902
जिगरिषति 253
जिगांसते 253
जिगाय 939
जिगीषति 253,939
जिघत्सति 231,975
जिघत्सोः 231
जिघांसति 254,783
938
जिघाय 939
जिघांसुः 783
जिघांसुवेदं 399
जिघांसू 938
जिघांसौ 938
जिघृक्षति 57,253,874
जिघृक्षते 253
जिघ्रति 947
जिजनिष 791
जिजनिषते 253
जिजयिष 253
जिजीव 1098
जिज्ञपयि 889
जिज्ञासते 96,253
जिज्यौ 670
जितम् 683
जितेन्द्रियः 186
जित्यः 296
जित्वरः 346
जिन्वतोऽम् 1041
जिष्णुः 9,340
जिहासति 254
जिहीतः 812
जिहीते 984
जिहीर्षकः 40
जिहीर्षति 58,254,783
जिह्रयाञ्चकार 268
जिह्राय 268,1098
जिह्रियुः 980
जिह्रेति 121,667
जिह्रेति 710
जिह्रेषि 667
जिह्रामूली 510
जिह्रालः 596
जिह्रावान् 596
जीनः 669,779,1031
जीयते 281
जीरदानु 681
जीर्णः 330,1030
जीर्णम् 1038
जीर्णवान् 330
जीर्ण्णिः 372
जीर्यते 281
जीव 845
जीवकः 304
जीवका 933
जीवग्राहं 400
जीवतात् 845
जीवति 390
जीवतु 845
जीवनाशं 401
जीवपुत्र 728
जीवसे 394
जीवाति 266
जीविकां कृ 138
जीविकाकृ 138
जीविकाऽऽपन्ना 178
जीविकाप्राप्ता 178
जीविकाम् आपन्ना 178
जीवितमरणं 224
जीवितमरणे 224
जीव्यात् 681
जुगुप्स 851,980
जुगुप्सते 119,251
265
जुगुप्सनः 343
जुगुप्सिष 666
जुघुक्षति 253,874
जुघुक्षते 253
जुघुरुः 980
जुघुरु 1098
जुजावयिष 988
जुजुष्टन 848
जुजोषत् 950
जुषाणो अप्तु 696
जुषित्वा 65
जुष्टः 713
जुष्यः 294
जुहवाञ्चकार 268
जुहाव 268,673
जुहावयिष 673,988
जुहुतः 47
जुहुताम् 808
जुहुधि 413,807
जुहुवतुः 805
जुहूः 350
जुहूषति 673
जुहोतन 848
जुहोति 7,46,244,667
जुहोति 710
जुहोथ 895
जुहोधि 413
जुह्वति 805
जूः 349,350,784
जूतिः 373
जूर्तिः 784
जृणाति 948
जेगिल्यते 260,1021
जेगिल्यन्ते 1021
जेगिल्येन्ते 1021
जेगीयते 799
जेधीयते 939
जेघ्नीयते 261,969
जेघ्रीयते 260,969
जेजीयते 260,939
988
जेतव्य 390
जेजीव्यते 260
जेतव्य 390
जेता 07
जेयः 685
जेयतुः 814
जेयम् 53,291,296
जेरतुः 816
जेरिथ 816
जेहिस्यते 261
जेहीयते 261,799
जैत्वनः 831
जैमिनिकडारः 193
जैवन्तायनः 453
जैवन्तिः 453
जैह्माशिने 833
जोघुष्यते 260,989
जोषित्वा 65
जोषिषत् 266,394
414
जोहवीति 872,989
जोहूयते 673
ज्ञः 301
ज्ञकः 965
ज्ञका 935
ज्ञपयति 806
ज्ञपितः 878
ज्ञप्तः 878
ज्ञातिपु 738
ज्ञातेयम् 578
ज्ञानम् ऋते 205
ज्ञानाद् ऋते 205
ज्ञानेन ऋते 205
ज्ञासीः
ज्ञिका 935
ज्ञीप्सति 890,977
ज्या इयम् 698
ज्यानिः 372
ज्यायः 617
ज्यायान् 618,617
829
ज्येष्ठः 617,618
ज्येष्ठताति 635
ज्योतिः ष्टोमः 1071
ज्योतिष्टोमः 1071
ज्यौत्स्नः 597
ज्योत्स्ना 600
ज्वरः 712
ज्वलः 302
ज्वलनः 343
ज्वालः 302

झ

झटिति 690
झार्झरः 541
झार्झरिकः 541
झृणाति 948

ञ

ञिइन्धि 80
ञिक्ष्विदा 80
ञिधृषा 80
ञिमिदा 80

ट

टवर्गीयम् 510
टुओश्वि 80
टुटौके 1098
टुनदि 80

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टुवम 80
टुवेपृ 80

ड

डाकिनी 478
डिड्ये 1098
डुकृञ् 80
डुढौके 977,1097
डुपचष् 80
डुवप् 80
डेडीयते 260

ढ

ढौकते 835

ण

ण् 11

त

तक्यम् 292
तक्षकीय 487
तक्षणम् 781
तक्षति 283,846
तक्षवान् 117
तक्षाणम् 781
तक्षाऽयस्क 223
तक्ष्णा 820,821
तक्ष्णोति 283
तच्चक्रम् 1093
तच्छत्रम् 1093
तच्छिवः 1101
तच्छ्लोके 1101
तच्शिवः 1101
तच्श्लोके 1101
तज्जाड्यम् 1093
तज्ज्वालायाम् 1093
तज्झंकारे 1093
तटः 210
तटगते 158
तटम् 210
तटी 210,442
तट्टीका 1093
तण्डुलीयम् 554
तण्डुल्यम् 554
ततः 23,607,756
तत आयु 608
ततक्ष 394
ततन्वान् 420
ततमः 20
ततरः 20,623
ततष्ठक्कुरः 1093
ततष्डमरूः 1093
ततष्णकारः 1093
ततान 1098
ततुरिः 347,864
ततो दीर्घायुः 608
ततो भवता 608
ततो भवते 608
ततो भवन्तम् 608
ततोभवान् 608
तत्करः 310,704
तत्त्वम् 1102
तत्निरे 801,807
तत्प्रथमः 743
तत्याज 674
तत्र 23,606,608
756
तत्रत्यः 489
तत्र दीर्घायुः 608
तत्रपीतम् 167
तत्रभवता 608
तत्रभवते 608
तत्रभवन्तम् 608
तत्रभवान् 608
तत्रभुक्तम् 167
तत्र शालायाम् 247
तत्रसतुः 817
तत्रसिथ 817
तत्रायुष्मा 608
तत्रास्ति 29
तत्वा 789,892
तत् षण्डे 1094
तत्सरतुः 813
तथा 607,610
तदनु 196
तदा 10,23,609
तदानीम्
तदीयम् 54,492
तद्दर्शः 320
तद्द्वितीं 743
तद्बहुः 743
तद्र्यङ् 769
तनित्वा 891
तनुः 434
तनुच्छिदम् 683
तनुवम् 802
तनू इति 16
तनोति 284
तन्तनीति 990
तन्तन्य 791
तन्तन्यते 260,990
तन्तिः 390,391,869
तन्तिपालः 728
तन्तुः 409
तन्तुवायः 305
तन्तुवायः 728
तन्त्रकः 592
तन्द्रालुः 345
तन्मात्र 1095
तन्यते 281,791
तन्वम् 802
तन्वी 434
तपनः 300
तपस्यः 550
तपस्यति 115,257
तपस्यन्ति 257
तपस्वी 117,597
तपोवनम् 164
तप्यते तपस्ता० 288
तप्यम् 292
तमः 929
तमकः 929
तमसस्पारम् 1061
तमसाकृ 750
तमित्वा 891
तमी 341
तमोऽपहः 316
तयोरन्यः 1011
तरङ्गाऽपत्रस्तः 165
तरङ्गेभ्योड० 165
तरणिः 353
तरति 864,949
तरलीकरो 638
तरित्रतः 981
तरीतृप्यते 261
तरुणी 426
तरुता 880
तरुषन्तः 266
तरुषेम 286
तरूता 880
तर्त्स्यति 892
तर्दिष्यति 892
तर्पणम् 678
तर्पिता 678,886
तर्प्ता 678
तर्प्तुम् 1102
तर्षित्वा 64
तर्हि 609,610
तलुनी 426
तल्लयः 1100
तव 842,911,912
तव 713
तवल्कारः 687
तष्टः 1024
तस्करः 704
तस्तम्भे 978
तस्तार 978
तस्तीर्षीष्ट 882
तस्थिवान् 898
तस्थिवांसम् 331
तस्थौ 884
तस्माच्छि 1101
तस्माच्शि 1101
तस्मिंस्त्वा 1049
तस्मिँस्त्वा 1049
तस्मिन्त्वा 1049
तस्मिन्नद्रौ 1056
तस्मिन् वनं० 207
तस्याः 959
तस्यै 959
ताक्रम् 471
ताक्रिकम् 535
ताक्षण्यः 820
ताक्षशिलः 516
ताक्ष्णः 820
ताऽघः 317
ताच्छील्य० 337
ताडना 376
ताड्यते 281
ताण्डिनः 518
तातन्यते 260
तातप्यते 260
तात्यज्यते 261
तादः 463
तादृक् 320,769
तादृक्षः 320
तादृक्ष 769
तादृङ् 858
तादृशः 320,769
ताद् ब्राह्म 846
तान्त्वा 891
तापः 6
तापः 705
तापसः 542,597
तापसी 425
तामिस्रः 597
तामिस्रा 600
ताम्यति 945
ताम्रनखी 441
ताम्रमुखी 441
ताम्रौष्ठ 690
तायते 281,791
तारकितम् 586
तारव 525
तारिषत् 266,394,414
तार्क्कवम् 524
तार्णबिन्द 461,473
तालभञ्जि 377
तालम् 528

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालव्यम् 508
तावकः 498
तावकीनः 498
तावच्छः 18
तावतिकः 557
तावतिथः 590
तावत्कः 18,557
तावत्कृत्वः 18
तावद्धा 18
तावान् 587,769
तासाम् 850
तास्कर्यम् 577
तिककितवाः 241
तितंसति 783
तितनिषति 253
तितरिष 883
तितर्दिष 892
तितर्पिषति 253
तितांस 783
तितांसति 253
तितिक्षते 251
तितीर्षति 253,883
तितृत्सति 892
तितृप्सति 253
तित्तिरिः 442
तित्यक्षति 253
तित्याज 674
तित्विषु 978
तिमिङ्गि 765
तिमिङ्गिल 766
तिरःकर्त्ता 1059
तिरःकृत्य 137
तिरःकृत्वा 137
तिरश्चा 770
तिरस्कर्त्ता 1059
तिरस्कृ 137
तिरोभूय 136
तिरोभूत्वा 137
तिर्यक्का 405
तिर्यक्कृ 405
तिर्यक्कृत्य 405
तिर्यङ् 770
तिलकट 584
तिलका 620
तिलतैल 584
तिलन्तुदः 312
तिलपल 738
तिलपिञ्जः 475
तिलपेजः 475
तिलमय 527
तिलाः 530
तिलेभ्यः प्रति 197
तिलेषु तैलम् 206
तिलोदरा 439
तिलोदरी 439
तिल्पिञ्जः 475
तिल्यम् 580
तिष्ठति 123,947
तिष्ठतु 389
तिष्ठन् मूत्रयति० 337
तिष्ठासति 58,254,978
तिष्ठेद्यूपा३इ 1043
तिष्यः 504
तिष्यपुन० 75
तिष्यपुन 469
तिसृणाम् 779,880
1080
तिसृभिः 708
तिसृभिः 708
तिसृभिः 913,914
तिसृणा 781
तिस्तरि 883
तिस्तरी 883
तिस्तीर्ष 883
तिस्थासति 987
तिस्रः 913
तीक्ष्णशृङ्गा 440
तीर्णः 873,1030
तीर्थकाकः 166
तीर्थतः 636
तीर्थध्वाङ्क्षः 166
तीर्थवायसः 166
तीर्थे ध्वांक्षः 166
तीर्यते 281
तुग्रियः 549
तुङ्गनासि 654
तुङ्गनासिका 439
तुङ्गनासिकी 439
तुण्डघातं 400
तुतुक्षति 253
तुतुत्सति 253
तुतोद 1098
तुथोड 1098
तुदतः 709
तुदता 707
तुदताम् 858
तुदति 284,852
तुदती 707
तुदती 858
तुदद्भ्यां 707
तुदन्ती 707
तुदन्ती 858
तुन्दपरिमृजः 306
तुन्दावान् 601
तुन्दिकः 601
तुन्दिभ 605
तुन्दिल 601
तुन्दी 601
तुन्नवायः 728
तुभ्यम् 713,842,910
912
तुम्बुरव 855
तुरङ्गस्क 478
तुराषाड् 321,1025
1062
तुरीयः 589
तुर्यः 589
तुलयितुम् 256
तुला 375
तुल्यम् 546
तुल्यलोहि 715
तुल्यवयस्क 661
तुल्यवया 661
तुल्यश्वेतः 174
तुषजः 729
तुष्टुध्वे 874
तुष्टुम 874,875
तुष्टुमहे 874
तुष्टुव 874,875
तुष्टुवहे 874
तुष्टुषे 874
तुष्टूषति 58,253,783
1064
तुष्टोथ 874
तूः 784
तू 777
तूतुजान 666
तूर्णः 784,879
तूर्तिः 784
तूष्णीम्भावं 405
तूष्णीम्भूत्वा 405
तूष्णीम्भूय 405
तृचम् 674
तृढः 773
तृणकाण्ड 478
तृणजम्भा 656
तृणमय 526
तृणसः 485
तृणसिंह 727
तृणेक्षि 952
तृणेढि 952
तृणेदु 412,952,1050
तृणेदिम 952
तृण्या 478
तृतीयः 590
तृतीय 615
तृतीयभिक्षा 177
तृतीयव 510
तृतीयस्यै 959
तृतीयाक 640
तृतीयायै 959
तृत्वा 789
तृप्तः 678
तृप्तालु 602
तृप्यते 281
तृम्फति 852
तृषित्वा 64
तृष्णक् 348
ते 1002
तेजस्वत् 601
तेजस्विन् 601
तेतिक्ते 980
तेतिम्यते 990
तेतीर्यते 261
तेन स्थितम् 409
तेनिरे 801
तेनुः 813
तेरतुः 815
तेरिथ 815
तेषाम् 850
तेष्ठीयते 261,799
तैकायनिः 450,462
तैकायनिः पिता 238
तैकायनिः पुत्रः 238
तैकायनीयः 450
तैङः 510
तैतिलक 722
तैतिलाः 823
तैत्तिरः 524
तैत्तिरम् 477,528
तैत्तिरिक 537
तैत्तिरीयाः 518
तैन्तिडीक 524
तैन्तिडीक 533
तैलक 622
तैलखलिः 466
तैलपेषं 400
तैलम् 527
तैलम्पा 766
तैलम्पाता 480
तैलस्यन्दः 787
तैलिकम् 533
तैलीनम् 580
तैषम् 501,824
तोतुद्यते 261,989

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोत्रम् 351
तोमरग्रहः 307
तोयदागम० 296
तोष्टूयते 261
तौ 78,690
तौदेयः 516
तौम्बुरवि 518
तौरायणिकः 567
तौल्वलायनः पुत्रः 240
तौल्वलिः पिता 240
तौषायणः 485
त्मनम् 822
त्मना 821
त्मनि 822
त्मने 822
त्यक्ष्यति 1098
त्यदीयम् 54
त्यस्मात् 839
त्यस्मिन् 839
त्यागः 5,357,937
त्यागः 714
त्यागिमम् 535
त्यागी 341
त्याज्यम् 941
त्यादायनिः 463
त्यादृशः 320
त्रपा 375
त्रपिष्ठः 828
त्रपीयान् 828
त्रपूणि 25
त्रप्ता 678,886
त्रयः 913
त्रयःपञ्चा 761
त्रयम् 587
त्रयस्त्रिंश 761
त्रयाणाम् 708
त्रयाणाम् 850
त्रयाणि 587
त्रयोदश 721
त्रयोदश 761
त्रय्यः 587
त्रसति 283
त्रस्नुः 340
त्रस्यति 283
त्राणः 1033
त्रातः 712
त्रातः 1033
त्राते 243
त्राध्वम् 243
त्रापुषम् 27,524
त्राप्यम् 298
त्रिंशं शतं 588
त्रिंशत् 565
त्रिककुत् 659
त्रिककुद 659
त्रिकटु 428
त्रिकरः 310
त्रिःकरोति 1059
त्रिकसः 736
त्रिकाः 482
त्रिचतुराः 645
त्रितयम् 587
त्रिदाम्नी 429
त्रिधा 614,615
त्रिनैष्किकम् 559
त्रिः पचति 1059
त्रिपञ्चा 761
त्रिपथम् 225
त्रिपादी 427
त्रिफला 427
त्रिभिः 708
त्रिभिः ष्टुतस्य 1076
त्रिभिः स्तुतस्य 1076
त्रिभुवनम् 225,427
त्रिभ्यः 708
त्रिमन्थः 736
त्रिमूर्ध 653
त्रिरात्रः 228
त्रिर्भुङ् 631
त्रिलोकनाथः 174
त्रिलोकी 427
त्रिवतीः 708
त्रिवर्षः 569
त्रिवर्षीणः 569
त्रिवार्षिकः 569
त्रिवेदः 449
त्रिशाणम् 560
त्रिशाण्यम् 560
त्रिषन्धिः 1076
त्रिष्करोति 1059
त्रिष्टुप् 1099
त्रिष्टुबत्र 1029
त्रिष्टुब् 1099
त्रिष्टुब्नयति 1095
त्रिष्टुब्भसति 31,1101
त्रिष्टुब्ह 1101
त्रिष्टुब् हसति 31
त्रिष्टुम्नयति 1095
त्रिष्ठः 1074
त्रिष्पच 1059
त्रिसन्धिः 1076
त्रिसाँवत्स 929
त्रिस्तना 743
त्रिस्तावती 646
त्रिस्तावा 646
त्रिहायणी 429
त्रीणाम् 850
त्रुटति 283
त्रुट्यति 283
त्रेधा 615
त्रेपे 816
त्रेष्थि 816
त्रेसतुः 817
त्रेसिथ 817
त्रैगर्तक 493
त्रैधम् 614,615
त्रैपुष्कर 635
त्रैमातुरः 455
त्रैयह्निकः 569
त्रैवणः 454
त्रैवर्षिक 924
त्रैवार्षिकम् 569
त्रैविद्यः 480
त्रैशङ्कव 484
त्रैशाणम् 560
त्रैशानि 565
त्र्यङ्गुला 774
त्र्यञ्जल 651
त्र्यन्याय 21
त्र्यम्बक 802
त्र्यहः 159,228
त्र्यहजातः 178
त्र्यहीणः 569
त्र्यहीनः 823
त्र्यायुष 645
त्र्यूषणम् 225,427
त्वं करोषि 1099
त्वं चिनोषि 1099
त्वं टीकसे 1099
त्वं तनोषि 1099
त्वं पिबसि 1099
त्वं लिख 1100
त्वं हि कुरू· 1004
त्वक् 1099
त्वग् 1099
त्वङ् करोषि 1099
त्वङ् मन्त्र 765
त्वङ् मय 526
त्वचति 256
त्वचयति 262
त्वचीयान् 618
त्वत् 844,910,912
त्वत्तरः 913
त्वदीयः 492,498,913
त्वदीयम् 54
त्वद्यति 913
त्वद्यते 913
त्वम् 842,909,910
911
त्वमह ग्रामं 1010
त्वयका 620
त्वया 706
त्वया 909,912
त्वया सार्द्धम् 201
त्वयि 909,912
त्वरितः 879
त्वर्ल्लि 1100
त्वष्टा 339,781
त्वां तृणं० 200
त्वा 1002
त्वाम् 843,908,912
त्विङ्भ्याम् 1029
त्वे इति 14
त्सरुकः 591

द

दंशमशकम् 222
दंष्ट्रा 351
दक्षिण 838
दक्षिग्रामः 729
दक्षिणतः 611,613
दक्षिणता 772
दक्षिणती 772
दक्षिणपश्चात् 612
दक्षिणपश्चार्ध 612
दक्षिणपा 923
दक्षिणपूर्वस्यै 21
दक्षिणपूर्वाः 21,188
दक्षिणपूर्वायै 21
दक्षिणपूर्वे 21
दक्षिणाः 22
दक्षिणा 613
दक्षिणात् 612,613
दक्षिणायाः 287,846
दक्षिणाहि 613
दक्षिणीयः 566
दक्षिणे 22
दक्षिणेन 200,613
दक्षिणेन ग्रामम् 204
दक्षिणेर्मा 656
दक्षिणो वा 204
दक्षिण्यः 566
दग्धजानि 729
दग्धा 1025
दग्धुम् 1097
दङ्क्षणुः 340

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डपाणिः 193
दण्डयति 128
दण्डवती 600
दण्डवान् 600
दण्डहस्तः 13
दण्डादण्डि 656
दण्डादाण्डि 189
दण्डिक 600
दण्डिनी 423
दण्डी 596,600,782
दण्डेन घटः 201
दण्डेनोप 402
दण्डोपधा 402
दण्ड्यः 566
दतः 391,679 811,973,1097
दतः 712
दत्तक 621,622
दत्तजाती 758
दत्तदेशी 758
दत्तवृन्दा 758
दत्तहस्ता 187
दत्तातरा 759
दत्ताभा 757
दत्तायते 757
दत्तार्थम् 730
दत्तिः 973
दत्त्रिम् 973
दत्त्वाय 849
ददः 302
ददत् 665,857,942
ददति 710
ददति 835,858
दददे 817
ददन्ति 857
ददरतु 817
ददरिथ 817
ददर्श 330,331
ददर्शिथ 898
ददात् 942
ददाति 122,987
ददाति 710
ददिः 347
ददिर्गाः 218
ददुः 799
ददृत् 350
ददृशिवान् 899
ददृश्वान् 899
ददौ 844,929,1098
दद्धयत्र 39,1095
दद्रमुः 978
दद्रष्ठ 898
दधः 302
दधद् 942
दधनत् 710
दधनि 820
दधातन 848
दधाति 1028
दधानः 905
दधिँ 1099
दधिः 348
दधि 48
दधि अत्र 698
दधिकटु 736
दधिक्राः 322,790
दधिघृतम् 223
दधिघृते 223
दधिच्छत्रम् 65
दधिपयसी 224
दधिशीतम् 13
दधिसात् 1077
दधि सिञ्चति 1077
दधिस्यति 849
दधि हरति 13
दधीचः 706
दधीचः 714
दधीचा 714
दधीनि 25
दधृक् 319
दधौ 1098
दध्ना 820,857
दध्नि 820
दध्यत्र 684,691,698, 1095
दध्यस्यति 849
दध्यात् 1028
दध्योदनः 163
दध्य्यत्र 1096
दध्र 801
दध्रे 801
दध्वंसिरे 978
दध्वनतुः 817
दध्वनिथ 817
दध्वनुः 978
दध्वरतुः 964
दध्वार 964
दनीध्वंसः 243
दनीध्वंसीति 989
दनीध्वस्य 261
दनीध्वस्यते 989
दन्तकः 592
दन्तच्छद 379,806
दन्तजातः 745
दन्तजाता 437
दन्तलेख 727
दन्तवान् 598
दन्तानां राजा 190
दन्तावल 599,775
दन्तुरः 598
दन्त्यम् 508,554
दन्दशीति 991
दन्दशूकः 346
दन्दश्यते 260,261 990
दन्दहीति 990
दन्दह्यते 260,261,990
दन्द्रमणः 343
दन्द्रम्यते 260,261
दमः 929
दमकः 929
दमनः 300
दमयते 105
दमितः 878
दमित्वा 891
दमी 341
दम्पतीव 14
दयते 211
दयाकरः 310
दयाञ्चक्रे 267
दयालुः 345
दरः 365
दरः 705
दरद् 442,467
दरिद्रः 811
दरिद्रति 665,811
दरिद्रति 710
दरिद्राञ्च 266
दरिद्राति 710
दरिद्राति 811
दरिद्रितः 811
दरी 344
दरीदृप्यते 261
दरीदृशीति 991
दरीदृश्यते 261,991
दर्धर्त्ति 980
दर्धर्षि 980
दर्पिता 678,886
दर्पेण 1081
दर्पा 678,886
दर्भकाण्ड 738
दुर्भकुण्ड 738
दर्भचीर 738
दर्भमय 527
दर्भमूली 442
दर्भवाहणम् 1082
दर्शको याति 355
दर्शनम् 678
दर्शनीय 739,743
746
दर्शनीय 757
दर्शनीयमानी 326
दर्शनीयो 717
दर्शप्रौर्ण 221
दर्शयति 131
दर्शयते 131
दर्शिषीष्ट 797
दर्शिष्यते 796
दर्श्यते 1096
दर्श्यते 1096
दवथुः 371
दविद्युतत् 981
दविध्वतः 981
दविष्ठः 827
दवीयान् 827
दश 18,841
दशकः 565
दशकपाल 720
दशकाः 482
दशगोणिः 72
दशति 786
दशत् 565
दशनाः 351
दशभगाल 720
दशमः 589,615
दशमास्य 720
दशमूर्धा 653
दशमूलम् 427
दशरथी 427
दशशराव 720
दशानाम् 780,851
दशार्णम् 688
दशाश्वः 720
दशिता 797
दशौकाद 537
दश्यते 281
दस्तः 878
दस्युः 353
दस्युहन्तमः 1020
दस्यो दस्यो ३ 1042
दाक्षः 522
दाक्षाः 491,523
दाक्षायणः 239,451 452,457,463
दाक्षायणः पुत्रः 240
दाक्षिः 116,239,451

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

453,457,824
दाक्षिकटः 729
दाक्षिकन्था 226
दाक्षिकन्थी 497
दाक्षिकर्षः 737
दाक्षिकू 737
दाक्षिग्रामी 497
दाक्षिघोषः 729
दाक्षिणशा 490
दाक्षिणात्यः 488
दाक्षिणार्त्य 933
दाक्षिणार्द्धा 499
दाक्षिणार्द्धि 499
दाक्षिणाद्धर्य 499
दाक्षिनग 497
दाक्षिपल 497
दाक्षिपान 1083
दाक्षिः पिता 240
दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः 180
दाक्षिप्र 729
दाक्षिवाह 1082
दाक्षिहृदी 497
दाक्षी 442,824
दागव्याय 463
दाण्डकीय 627
दाण्डम् 830
दाण्डमाथि 538
दाण्डा 479
दाण्डाजिनि 593
दाण्डाय 737
दाण्डिकः 534,541
दाण्डिनाय 832
दातव्य 390
दाति 244,666
दात्तः 483
दात्तम् 973
दात्तामित्री 484,493
दात्तेयः 457
दात्यौहम् 920
दात्रम् 351,774,1097
दात्राक 774
दात्राकर्णः 734
दाधर्त्ति 980
दाधार 394
दाधाव्यते 261
दाधिकः 533,536
दाधिकम् 35,471,533
535
दाधित्थ 525
दाधित्थम् 528
दाध्यायते 261
दाध्वर्यते 969
दानीयः 377
दान्तः 878
दान्त्वा 891
दापयति 930
दामनीय 627
दामलिड् 1025,1028
दामा 424,425
दामिनी 605
दामोदरः 733
दाम्यति 945
दायः 302,929
दायकः 300,929
दारगव 645
दारदः 456
दारदी 514
दाराः 358
दारुः 353
दारुकच्छ 494
दारुणाध्यापकः 1011
दारुमयी 526
दारुवह 775
दारूः 345
दार्ढ्यम् 577
दार्त्तेयम् 508
दार्दभक 533
दार्दुरिक 537
दार्दुरूक 524
दार्भक 526
दार्भायणः 453
दार्भिः 453
दार्वकः 493
दार्वाघाटः 316
दावः 303
दाविकम् 920
दाशः 408
दाश्वान् 667
दासपत्नी 431
दासितः 878
दासीपुत्र 754
दासीफली 442
दासीभार 722
दासीय 798
दासीष्ट 799
दासीश्रो 726
दासीसभम् 227
दासेयः 459
दासेरः 459
दास्यति 976,1028
दास्याः कामुकः 218
दास्याः पु 754
दिक् 319
दिक्छूल 1101
दिक्शूल 1101
दिग्धसहशयः 308
दिग्नागः 1094
दिङ्नागः 1094
दिजार्था 164
दित्यवाट् 321
दित्यवाह् 321
दित्यौहः 819
दित्यौही 441
दित्सति 253
दित्सते 976
दित्सुः 976
दिदम्भिष 889
दिदरिद्रि 253
दिदरिष 902
दिदरिषते 253
दिदर्पिषति 253
दिदिवतुः 813
दिदिवान् 681
दिदीयिद् 1070
दिदीयिध् 1070
दिदीये 797
दिदृक्षते 96
दिदृक्षेण्यः 396
दिदृप्सति 253
दिदेविष 253,888
दिद्युत् 350
दिद्युतिष 253,982
दिद्युतिषते 64
दिद्युते 982
दिद्योतिष 982
दिद्योतिषते 64
दिद्रावयिष 988
दिद्रासति 665
दिधक्षयन्तः 1025
दिधरिष 902
दिधरिषते 253
दिधिषूपति 718
दिवः 707
दिवस्पयः 1061
दिवस्परि 1061
दिवस्पा 1061
दिवस्पुत्राय 1061
दिवस्पृष्ठे 1061
दिवा 709
दिवाकरः 310
दिवानतम् 502
दिवा भोजी 325
दिवामन्या 764
दिविजः 752
दिविष्ठ 752
दिविष्ठः 1074
दिविस्पृ 751
दिविस्पृशम् 1077
दिवोदास 730
दिवोदास 754
दिवौ 699
दिव्यम् 489
दिशोद 753
दिश्यम् 507
दीक्षिता 343
दीदांसते 251
दीधितिभी 773
दीध्यते 665
दीनान् दयते 211
दीपयाम 848
दीपिता 343
दीप्तः 875
दीप्ताप्त 657
दीप्तिः 372,869
दीप्रः 346,869
दीयते 281,798
दीर्घके 758
दीर्घकेशी 758
दीर्घजङ्घा 440
दीर्घजङ्घी 440
दीर्घजिह्वी 441
दीर्घमु 744
दीर्घसक्थ 653
दीर्घसत्र 920
दीर्घैकार 690
दीर्घोकार 690
दीर्यते 281
दीव्यति 82,125,282
1038
दीव्यते 281
दीव्यन्ती 858
दुःखजः 329
दुःखजाता 438
दुःखहः 316
दुःखाकरो 641
दुःखापन्नः 159
दुःखेन वस० 200
दुग्धाम् 847
दुग्धे 288
दुदुह्रे 801
दुद्यूषति 253,888
दुद्राव 665
दुद्रावयिष 988
दुद्रुम 875
दुद्रुव 875

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुद्रोथ 874
दुधुक्षति 253
दुधुविव 873
दुर् 132
दुरस्युः 971
दुराद्यङ्क 381,408
दुरारोहः 381
दुरुपस्थान 381
दुर्गः 316
दुर्जनाः 236
दुर्दर्शन 382
दुर्दिनायते 258
दुर्धर्षण 382
दुर्निग्रह 381
दुर्मगधम् 152
दुर्मर्षण 382
दुर्मेधाः 655
दुर्यवनम् 152
दुर्योधन 382
दुर्योधनाय भीमो० 199
दुर्लभम् 854
दुर्लाभः 854
दुर्हल 655
दुर्हलि 655
दुर्हृद् 660
दुर्हृदय 660
दुलयते 133
दुःशकम् 152
दुःशासन 382
दुःषमम् 1072
दुःषुप्तः 1072
दुःषूतिः 1072
दुष्करः 381
दुष्कुलीनः 460
दुष्कृतम् 1058
दुष्क्रीता 437
दुष्टस्य निप्र० 212
दुष्टीयति 971
दुष्पानः 381
दुष्पानम् 1091
दुष्पीतम् 1058
दुष्प्रजाः 655
दुष्प्रधर्षः 381
दुष्प्राप 381
दुष्प्रामा 1074
दुःसक्थ 655
दुःसक्थि 655
दुःसन्धान 381
दुस् 132
दुहितुःय 754
दुहितृप 754
दुह्यते 129
दुह्याम् 294
दुह्यन्ति 847
दुह्याम् 847
दुह्ये 847
दूडभः 772
दूडाशः 772
दूद्यः 772
दूणाशः 772
दूत्यः 549
दूत्यम् 549,577
दूरगः 316
दूरादा 750
दूरादाग 740
दूरादागतः 165
दूराद्धूते 1101
दूराद्हूते 1101
दूरेत्यः 490
दूर्वावणम् 1082
दूर्वावनम् 1082
दूषणः 300
दूषयति 806
दृंहितः 877
दृक्पथः 644
दृढः 877
दृढता 577
दृढत्वम् 577
दृढधूः 644
दृढमुष्टिना 112
दृढशाल 736
दृणाति 948
दृतिकः 533
दृतिहरिः 311
दृतिहारः 311
दृन्ह्वौ 804
दृशे 395
दृशेयम् 288
दृश्यम् 295
दृषत्समि 651
दृषद् 854
दृषदं धार० 340
दृषदिमा 751
दृष्टः 678
देदिवीति 872
देदीप्यते 259,261
988
देदीयते 261,798
देद्युत्यते 261
देद्विष्यते 261
देधीयते 261,798
देध्मीयते 969
देभतुः 814
देयम् 798
देयात् 17,799
देवः 118,242
देवः 712
देव ऋषि 698
देवकी 435
देवकीय 496
देवखाता 740
देवः ग्रामं 194
देवः ग्रामं गच्छति 194
देवचर 616
देवच्छन्दस 651
देवत 958
देवता 633
देवताति 552
देवतायाम् 958
देवते 958
देवत्राग 639
देवत्राव ३ 639
देवदत्त 66,1040
1041
देवदत्त 513
देवदत्त 711
देवदत्तः 740
देवदत्तः 1003,1009
देवदत्त३ अत्रन्वसि 65
देवदत्त एवं 1010
देवदत्तक 621,622
626
देवदत्तका 593
देवदत्त ग्रामं 1010
देवदत्तः पचति 1006
देवदत्तम 514
देवदत्तरू 514
देवदत्तस 719
देवदत्त हे ३ 1041
देवदत्त हे ३ 1041
देवदत्ता 435,697
देवदत्तिका 933
देवदत्तीयः 492
देवदत्तोऽग० 334
देवदत्तौष्ठ 690
देवदारु 1082
देवद्र्य 769
देवं नाना 205
देवपथ 625
देवपाठम्० 335
देवपालि 740
देवपूजकः 179
देवब्राह्मणः 174
देवभि 744
देवयज्यया 298
देवयज्या 298
देवयिता 342
देवयुः 347
देवरूप्य 616
देवलोकस्य जिष्णुः 218
देववत् 574
देवष्ढौकते 1093
देवसू 737
देवस्य० 219
देवस्य 837
देवस्य आयु० 219
देवस्य कटः० 219
देवस्य कुर्वन् 218
देवस्य तुल्यः 219
देवस्य सदृशः 219
देवहूति 722
देवहूयः 297
देवहूये 297
देव हे 210
देवाः 118,145
देवाँ अ 1049
देवा इह 1051
देवात् नाना 205
देवाद् अन्यः 204
देवाद् इतरः 204
देवाद् भिन्नः 204
देवान् 692
देवानाम् 850
देवानाम्रि 753
देवा ब्रह्मण आगच्छत 68
देवाभ्याम् 956
देवा मरुतः पृश्निमातरोऽप 68
देवाय 34,35,956
देवायति 971
देवालयः 691
देवाः शरण्याः 1013
देवाः हे 210
देवासः 849
देवाऽसुर 522
देवासुरम् 515
देविकः 621
देविक 621
देविता 890
देवित्वा 61,891
देविय 621
देविल 621
देवी 425
देवीं वसुमती० 195
देवेन कटः० 219

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवेन कर्त्तव्य 219
देवेन कृतम् 218
देवेन ग्रामः० 194,200
देवेन तुल्यः 219
देवेन भुक्तः 200
देवेन सदृशः 219
देवेभ्यः 957
देवेषु 957
देवैः 33,52,837
देवैश्वर्य 687
देवो याति 695
देवो वद 695
देवो हस 695
देवौ 118
देवौ हे 210
देहः 705
देहतुः 814
देहि 17,813
दैत्यः 448,450
दैत्यक्षये 386
दैनिकः 500
दैप्यः 500
दैर्घवरत्रः 483
दैवत 635
दैवदत्तः 492,517
दैवदत्तम् 513
दैवदारव 525,528
दैवम् 448,512
दैवयज्ञी 447
दैवयज्ञ्या 447
दैवागारि 543
दैव्यम् 448,508
दोग्धा 1025
दोग्धि 128
दोग्धुम् 1029
दोदुह्यते 261,989
दोदूयते 261
दोधूयते 261,989
दोषतन 502
दोषयति 806
दोषामन्य 764
दोषी 341
दोष्ण 679
दोही 341
दोहीयसी 617,826
दोह्यम् 294
दोह्या 713
दौर्भागिने 925
दौर्भागिनेयः 458
दौवारपा 921
दौवारिक 716
दौवारिकः 921
दौष्कः 937
दौष्कुलेयः 460
दौष्टिकः 541
दौष्यन्तिः 451
दौहितृकः 513
दौहित्रः 453
द्याः 689
द्याम् 689
द्यावाक्षा 755
द्यावापृ 739
द्यावापृथिवी 473
द्यावापृथिव्य 473
द्यावाभू 755
द्युकामः 36
द्युक्षः 801
द्युतितम् 63
द्युतित्वा 64
द्युभिः 709
द्युमः 598
द्यूतं 1032
द्यूतः 784
द्यूत्वा 891
द्योतते 106
द्योतितम् 63
द्योतित्वा 64
द्यौः 8,31,859
द्रक्षीष्ट 797
द्रक्ष्यते 796
द्रढयति 262
द्रढिमा 577,829
द्रढिष्ठः 262,829
द्रढीयान् 829
द्रप्ता 678,886
द्रवः 359
द्रविणस्युः 971
द्रविणीयति 971
द्रव्यः 625
द्रव्यकः 563
द्रव्यम् 530
द्रष्टा 678,797
द्रष्टुं याति 355
द्राघयन्ति 828
द्राघिमवन्ति 828
द्राघिमा 828
द्राघिष्ठः 828
द्राघीयान् 828
द्राणः 1030
द्रावयति 104
द्रियते 281
द्रुघणः 369
द्रुघनः 369
द्रुणस 654
द्रुणसः 1081
द्रुमः 598
द्रुमवती 714
द्रुमशैलम् 221
द्रुवयम् 530
द्रुह्यति 124
द्रोग्धा 886,1026
द्रोग्धा द्रोग्धा 1017
द्रोढा 886,1026
द्रोढा-द्रोढा 1017
द्रोणः 210
द्रोणम्पचः 313
द्रोणायनः 453
द्रोणिः 453
द्रोणो व्रीहि 210
द्रोहिता 886
द्रोही 341
द्रौघणक 484
द्रौघणकी 496
द्रौणः 563
द्रौणिकः 563
द्रौपदेयः 456
द्वके 935
द्वन्द्वम् 998
द्वयम् 587
द्वा अत्र 1052
द्वाचत्वा 761
द्वादश 192,721,760
द्वादशवार्षि 569
द्वादशान्यं 542
द्वारकाष्ठम् 169
द्वारपालि 435
द्वारमपिधा 386
द्वावत्र 1052
द्विकंसः 736
द्विकंसम् 558
द्विकम्बला 428
द्विकरः 310
द्विः करोति 1059
द्विकांस्यपात्रे० 215
द्विकाकिणी 560
द्विकाण्डः 736
द्विकाण्डा 428
द्विकार्षापणि 559
द्विकुलिजा 564
द्विकुलिजिकी 564
द्विकुलिजीना 564
द्विके 935
द्विकौडवि 924
द्विखारम् 650
द्विखारि 650
द्विगुणाकरो 640
द्विचत्वा 761
द्विजः 329
द्विजार्थः 164
द्विजार्थम् 164
द्वितयम् 587
द्वितयाः 22
द्वितये 22
द्वितीयः 590
द्वितीय 615
द्वितीयकः 593
द्वितीयक 593
द्वितीयगामी 159
द्वितीयभिक्षा 177
द्वितीयस्यै 959
द्वितीयाक 640
द्वितीयायै 959
द्वित्राः 188,643,760
द्विदण्डि 656
द्विदन् 658,749
द्विदाम्नी 429
द्विधा 614,615
द्विधाभाव 405
द्विधाभूत्वा 405
द्विधाभूय 405
द्विनाव 650
द्विनावधन 650
द्विनैष्किक 924
द्विनैष्किकम् 559
द्विपः 306
द्विः पच 1059
द्विः पचति 1059
द्विपण्यम् 560
द्विपदः 819
द्विपदा 424
द्विपदिका 628
द्विपदी 423
द्विपात् 423,749
द्विपात्रा 564
द्विपात्रिकी 564
द्विपात्रीणा 564
द्विपाद् 658,819
द्विपाद्यम् 560
द्विपाय्यः 736
द्विपुरुषा 428
द्विपुरुषी 428
द्विबिस्तम् 559
द्विबिस्ता 428
द्विबैस्तिकम् 559
द्विमन्थः 736

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विमयम् 588
द्विमाष्यम् 560
द्विमास्यः 568
द्विमुनि 156
द्विमुसलि 656
द्विमूर्ध 653,749
द्विमूर्धा 749
द्विमोदकिका 628
द्वियमुन 158
द्विरदगामी 325
द्विरह्नोऽधी 215
द्विरह्नो भुङ्क्ते० 215
द्विरात्रः 228
द्विरात्रीण 569
द्विरात्रौ 647
द्विर्भुङ् 631
द्विवर्षः 569
द्विवर्षीणः 569
द्विवार्षि 924
द्विवेदः 481
द्विशः 636
द्विशतम् 560,761
द्विशतिका 628
द्विशत्य 560
द्विशत्यम् 560
द्विशाणम् 560
द्विशाण्यम् 560
द्विशिरा 744
द्विशुक्लः 192
द्विशूर्पः 736
द्विषन् 338
द्विषन्तपः 314,764
806
द्विषन्धिः 1076
द्विष्करोति 1059
द्विष्टात् 845
द्विष्ठः 1074
द्विष्पच 1059
द्विसन्धिः 1076
द्विसमीनः 569
द्विसंवत्सरी 569
द्विसाँवत्स 924
द्विसांवत्सरि 569
द्विसाप्तति 924
द्विसुवर्ण 724
द्विसौवर्णि 924
द्विस्तना 743
द्विस्तावती 646
द्विस्तावा 646
द्विहायना 429
द्विहायनी 429
द्वीपः 33
द्वीपम् 49,644,770
द्वेधा 615
द्वेषी 341
द्वेष्टा 59
द्वेष्टि 242
द्वेष्टि अस्मान् 124
द्वेष्टि औषधं 124
द्वेष्टि भार्या० 338
द्वैगुणिक 537
द्वै देवदत्तिः 449
द्वैधम् 614,15
द्वैपः 470
द्वैप 500
द्वैपक 500
द्वैप्यहैमा 721
द्वैप्या 426,500
द्वैमातुरः 31,455
द्वैमातुर 31,761
द्वैरात्रिक 569
द्वैशाणम् 560
द्वैसमिक 569
द्वैहायन 578
द्वौ 210,915
द्व्यङ्गुल 159,647,653
द्व्यङ्गुलो 403
द्व्यञ्जल 651
द्व्यन्यः 192
द्व्यन्याय 21
द्व्यशीति 760
द्व्यहः 159,228,648
823
द्व्यहजातः 178
द्व्यहतर्षं 404
द्व्यहनि 773
द्व्यहपूर्वाय 21
द्व्यहात्या 404
द्व्यह्न 648
द्व्यह्नजातः 179
द्व्यह्नि 773
द्व्याचिता 428,564
द्व्याचितिकी 564
द्व्याचितीना 564
द्व्याढकिकी 564
द्व्याढकी 428
द्व्याढकीना 564
द्व्यायुष 645
द्व्यूध्नी 429
ध
धक्ष्यति 1028,1098
धत्तः 1028,1029
धत्से 1028
धत्स्व 973,1028
धद्ध्वम् 1028
धनकः 591
धनक्रीता 437
धनदाया 716
धनपतिगृहान्० 204
धनपोषम् 401
धनम् 70
धनमदः 367
धनं यच्छति 1099
धनायति 970
धनीयति 970
धनुर्ग्रहः 307
धनुश्छाय 717
धनुष्कपालम् 1059
धनुष्करः 310
धनुष् खण्ड 1059
धनुष्खा 740
धनुष्फलम् 1059
धनूंषि 1053
धनेन कुलम् 201,202
धन्यः 545
धमति 947
धमनिः 434
धमनी 434
धमनीलः 597
धरणिः 353
धर्मः 1095
धर्मणा 821
धर्मार्थी 190
धर्मे 126
धर्म्मः 1095
धर्म्यम् 546
धर्षितः 877
धविता 885
धवित्रम् 351
धातः 973
धाता 675
धातुः 244
धाति 244
धात्रीः 356
धानका 620
धानाः पिनष्टि 213
धानाशष्कुलि 221
धानुर्दण्डि 534
धानुष्कः 534,541
936
धान्यमायः 305
धान्यार्थः 161
धान्यार्थी 605
धापयति 930
धापयेते 105
धामच्छत् 807
धायः 302
धाय्याः 299
धारयः 301
धारयति 123
धारयन्नृप० 338
धारा 375
धारुः 345
धारो अयं 695
धार्त्तराष्ट्राः 455
धार्मविद्य 480
धार्मिकः 539,573
धार्यम् 298
धावति 947
धावन्नध्वगानां० 180
धासीय 973
धिग् दुष्टम् 194
धित्सति 253,976
धिनुहि 809
धिनोति 284
धिप्सति 59,253,889
धिषीय 973
धिस्व 973
धीः 350
धीती 846
धीत्या 846
धीप्सति 59,889,977
धीमान् 782
धीयते 17,798
धीवरी 423
धीवा 324
धुक्षीष्ट 59
धुरीणः 544
धुर्यः 544
धूः 349,1038
धूनः 1031
धूनि 1031
धूः पतिः 1037
धूपाय 809
धूपायति 263
धूमज्योति० 191
धूममय 528
धूमाद् अग्निमान् 202
धूमायन्ते 257
धूमायस्व 257
धूर्तः 869
धूर्पतिः 1037
धूर्यः 1039
धूस्तरा 1075
धृणाति 948

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृतराज्ञः 820
धृष्टः 352
धृष्टः 712
धृष्णम् 348
धृष्णुः 340
धृष्णुया 847
धृष्णोति भो 406
धेनवे 111
धेनुकम् 477
धेनुष्म 765
धेनुष्या 545
धेनौ 960
धेन्वनड्वु 644
धेन्वा 960
धेन्वाम् 960
धेन्वै 111
धेयात् 17,799
धेहि 17
धैनवम् 525
धैवत्यम् 833
धोक्ष्यते 1027
धोता 885
धौमकः 494
धौरेयः 544
ध्मायते 281
ध्मायात् 799
ध्मेयात् 799
ध्यातः 1034
ध्यायात् 799
ध्येयात् 799
ध्रुक् 1026
ध्रुड् 1026
ध्रुयका 934
ध्वंसिता 786
ध्वंसित्वा 64
ध्वनयीत् 274
ध्वनितम् 876
ध्वरिषीष्ट 884
ध्वस्त 786
ध्वस्तिः 372
ध्वस्यते 281
ध्वांक्षरावी 325
ध्वाङ्क्षरा 728
ध्वाङ्क्षेण 166
ध्वाजम् 491
ध्वान्तम् 876
ध्वृषीष्ट 884

न

नंष्टव्यम् 852
नंष्टा 852,885
नंष्टुम् 852
नंष्ट्वा 788
नः 35,998
नकुलः 767
नक्तञ्चरः 309
नक्तन्दिव 645
नक्रः 767
नक्षत्रम् 767
नक्षत्रिया 552
नः क्षुद्रः 680
नखनिर्भिन्नः 163
नखम् 767
नखमुचानि 306
नखम्पचा० 313
नखराज
नखोपधा 402
नग् 1035
नगः 767
नगरकाकः 167
नगरखे 736
नगरम् 598
नगरसिद्धः 166
नगरात् प्रत्यम् 204
नग्नङ्करणम् 318
नग्नम्भविष्णुः 318
नग्नम्भावुकः 318
नङ्क्ष्यति 852
नच्छायाम् 684
नटमाध्नानः 218
नड् 1035
नडकीयम् 487
नडसः 485
नडेन स्म 1006
नड्वलः 486
नड्वान् 486
नत्वा 789
न त्वां काकः 200
न त्वां तृणः 200
न त्वां तृणाय 200
न त्वां नावः 200
न त्वाम् अन्नं 200
न त्वां शुकः 200
न त्वां शृगालः 200
न त्वां श्वानं० 200
नदि 682
नदी 425
नदीकूल 738
नदीकूलानि 212
नदीदोह 751
नदीनाम् 708
नदीन्द्रः 691
नदीमनु 139
नदीशः 691
नदीष्णः 1073
नदीस्नात 1073
नद्धुम 1026
नद्ध्रम् 351
नद्यौः 837
ननंष्ठ 852
ननु अपठीत्० 335
ननु करोमि भोः 1006
नन्दकः 304
नन्दकपाञ्चन्यौ० 224
नन्दका 933
नन्दथुः 371
नन्दनः 300,834
नन्दितुम् 1099
नन्दोपक्रमम् 226
नन्नम्यते 990
नन्नम्यमा 990
न पठामि 335
नपात् 767
नपुँसक 767
नप्ता 781
नभस्यः 550
नभस्वत् 116
नभस्वान् 117
नभ्यः 553
नभ्राट् 767
नमति 680
न मर्षयामि 385,386
नमस्कर्त्ता 1058
नमस्यति देवान् 258
नमस्यामो देवान् 199
नमुचि 767
न मेथेते 394
नम्यते 281,789
नम्यम् 292
नम्रः 346
नयः 934
नयति 7,129,680
949
नयते 91
नयनम् 82
नरपतिपथे 644
नरम्भ 765
नरस्कन्ध 478
नरिनर्त्ति 992
नरीनर्त्ति 992
नरीनृतीति 991
नरीनृत्यते 261,991
1092
नरेन्द्रः 7
नरेशः 686
नर्तकः 303
नर्तकी 433
नर्तित्वा 65
नर्त्तकी 81
नर्त्तयते 105
नर्त्तिष्यति 892
नर्त्स्यति 892
नलिनी 478
नव 18,841
नवग्रहाः 168
नवतिः 565
नवनीतकोमला० 170
नवमः 589,615
नवानाम् 780,851
नवान्नम् 168
नवीनम् 633
नवेदाः 767
नशनम् 852
नशिता 885
नशित्वा 788
नश्वरः 346
नष्टनष्टः 996
नष्ट्वा 788
नसत्तम् 1034
न सम्भावयामि 385
नसा 679
नस्तः 680
नस्यम् 554,680
नह भोक्ष्यसे 1004
नह वै तास्मंश्च 1004
न हि भोक्ष्यसे 1006
नह्यते 786
नाकपृष्ठः 734
नाकम् 767
नाकुलः 455
नाकुलकः 517
नाक्या 847
नागनासोरूः 444
नागरकः 494
नागराः 494
नागराज्ञा 648
नागरिकः 537
नागा 433
नागी 433
नाट्यम् 523
नाट्यशाला 164
नाडायनः 452,834
919
नाडायनः 705
नाडायनक 513
नाडिन्ध 764

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाडिन्धम	312	नारिका	933	निग्राभं	360	निपत्या	373	निर्बिभेद	1098
नाडिन्धयः	312	नारी	445,540	निग्राहः	363	निपदः	679	निर्मक्षिक	152
नाडीजङ्घः	734	नार्मदः	455	निघसः	366	निपदः	706	निर्मशक	152
नाथते	212	नाऽवकल्प्य.	385	निघाः	371	निपपरतुः	965	निर्यातः	1030
नाथहरिः	311	नावयशिक	474	निघातः	371	निपप्रतुः	965	निर्वर्णे	1081
नाथहारः	311	नाविकः	533,600	निघ्नाशाः	144	निपरण	864	निर्वातः	1031
नादेयः	515	नावौ	692	निचकरतु	965	निपाठः	366	निर्वातो	1032
नादेयम्	521	नाव्यः	685	निचख्ने	807	निपानम्	368	निर्वाराणसिः	69
नाद्यः	548	नाव्यम्	546	निचयः	362	निपारकः	864	निर्विघ्नम्	152
नानति	872	नाव्यम्	713	निचायः	357	निप्रहन्ति	213	निर्विन्ध्यां	183
नानदीति	872	नाश	332	निचिक्यु	673	निबिडम्	585	निर्हिमम्	152
नानद्यते	261	नाशयति	104	निच्चाय	673	निबिरीस	585	निलयः	379
नानन्द्य	786	नाशीत्	332	निजग्राह	980,1098	निमाता	677	निलाल्ये	803
नानह्यते	261,786	नाश्नात्	332	निजेगिल्यते	260	निमाय	677	निलिम्पाः	301
नाना	584	नासत्याः	767	नितिष्ठिवु	978	निमूलकाषं	400	निलिल्यिरे	977
नानाकारं	405	नासिकन्धमः	312	नित्यः	490	निमूलम्	748	निलीयते	120
नानाकृत्य	405	नासिकन्धयः	312	नित्यप्रह	725	नियमः	366	निवचनेकृ	138
नानाकृत्वा	405	नासिक्य	680	नित्यप्रहा	725	निया	821	निवध्वम्	1022
नानान्द्रः	453	नास्तिकः	541	निदण्डः	748	नियुङ्क्ते	99	निवरा	363
नानाभावम्	405	नास्ति घटः०	202	निद्रालुः	345	नियोग्यः	942	निवर्त्स्यति	894
नानाभूत्वा	405	नास्ति सत्यात्	208	निधनशु	720	नियोज्यम्	942	निवर्त्स्यन्	894
नानाभूय	405	नाऽहं कलि०	334	निधिः	371	नियौ	801,803	निवस्स्व	413
नान्दीक	764	नि	132	निनङ्क्षति	253	निर्	132	निवासी	300
नान्दीकरः	310	निकय्यः	299	निनङ्क्षु	852	निरक्षित्	271	निविविक्षते	58,97
नान्दीघो	764	निकरः	359	निनत्सति	253	निरक्षी	300	निविशते	85,126
नान्दीपुर	493	निकषः	379	निनदः	366	निरगात्	233	निशाकरः	310
नान्नम्यते	261	निकायः	362	निनय	43,44	निरङ्गुल	647	निशाचरः	309
नापितवास्तु	493	निकारो	359	निनर्तिष	893	निरध्वः	646	निशातम्	972
नापित्यः	462	निकुचितिः	870	निनंसति	253	निरस्यति	90	निशाता	675
नाभा	847	निक्वणः	366	निनादः	366	निरस्यते	90	निशायय	930
नाभिमात्र	586	निक्वाणः	366	निनाय	43	निरह्व	648	निशायी	300
नाभ्यम्	554	निगदः	366	निनीषति	253	निरह्वः	1082	निशि	679
नामग्राहं	404	निगमः	379	निनृत्सति	253,893	निराकरिष्णुः	339	निशितम्	972
नामधेयम्	633	निगादः	366	निनेज	985	निरास्थत्	966	निःशीतम्	152
नामादेशं	404	निगारः	359	निनेथ	895	निरियात्	967	निश्चयः	365
नामिकः	512	निगारयति	104	निन्दकः	342	निरुदक	747	निश्यति	942
नाम्ना ईश्वर०	200	निगूहकः	805	निन्द्यते	281	निरुपल	747	निश्रावी	300
नायः	303,358	निगूहति	805	निन्यतुः	803	निर्घृणः	187	निःश्रेयस	645
नायकः	5,82	निगूहम्	805	निन्ये	43	निर्णयः	1091	निषत्तः	1034
नाययति	130	निगृहीतिः	870	निपठः	366	निर्दत्तम्	974	निषद्य	846
नारकः	778	निग्रहः	363	निपठितिः	870	निर्दितः	971	निषद्या	373

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निषन्ति 1072
निःषमम् 1072
निषयः 1067
निषसाद 1066,1079
निषहते 1067
निषादः 775
निषितः 1067
निषिषेविषते 1067
निषीदति 1066
निषीव्यति 1067
निःषुप्त 1072
निःषूतिः 1072
निषेदुषी 332
निषेवते 1067
निष्कमाला 724
निष्कुलाक 641
निष्कुषितः 886
निष्कुषित 886
निष्कुष्यति 289
निष्कृतम् 1058
निष्कोषि 886
निष्कोष्टु 886
निष्कौशाम्बिः 69,71
183
निष्कौशाम्बि 682
निष्टर्क्यः 297
निष्टतक्षुः 1076
निष्टपति सुवर्णम् 1075
निष्टौति 1067
निष्ट्यः 490
निष्णातः 1072
निष्पत्राक 641
निष्पानम् 1091
निष्पावः 357,359
निष्पीतम् 1058
निष्प्रवाणि 662
निष्फुर 1068
निष्फुरति 1069
निष्फुलति 1069
निष्यन्दते 1068
निष्यात् 1072
निष्वजते 1067
निष्षामा 1074
निष्ष्फुर 1068
निष्ष्फुलति 1069
निस् 132
निस्तपति 1075
निस्तब्धः 1078
निःस्तोकः 750
निस्त्रिंशानि 643
निस्पृहम् 1077
निस्फुरति 1069
निस्यन्दते 1068
निस्वनः 366
निस्वानः 366
निस्स्फुरति 1069
निस्स्फुलति 1069
निहन्ति 213
निहराणि 394
निहवः 367
निह्वयते 90
नीकाशः 776
नीचकैः 620
नीचैः 210
नीचैःकार 404
नीचैःकृत्यः 404
नीतिः 375
नीत्तम् 776
नीपम् 770
नीयते 129
नीरजम् 1050
नीरजीकारि 970
नीरन्ध्र 1050
नीरुक् 774
नीलकण्ठः 734
नीलग्रीवः 734
नीलम् 468
नीला 433
नीली 433
नीलोत्पलम् 171
नीवाराः 363
नीवृत् 774
नीहारायते 258
नुत्तः 1033
नुनुत्सति 253
नुन्नः 1033
नुन्नः नुन्नः 1017
नु मन्यसे 15
नू 777
नूतनम् 633
नून्नम् 633
नूयते 281
नृचक्षाः रक्षः 236
नृणाति 948
नृणां ब्राह्मणः 208
नृणाम् 780
नृणां श्रेष्ठः 180
नृत्तम् 378
नृत्यते 281
नृपः 306
नृभिः 709
नृभिः 709
नृमणाः 1088
नृषाः 322
नृषा 1077
नृषु ब्राह्मणः 208
नृणाम् 780
नृनमनः 1092
नृः पाहि 1049
नृँः पाहि 1049
नृँः पाहि 1049
नृंः पाहि 1049
नृः प्रीणी 1049
नृंःप्रीणी 1049
नृँ प्रीणी 1049
नृँःप्रीणी 1049
नेज्जिह्मायन्तो 1003
नेतव्या ग्रामम् 219
नेता 7,871,949
नेता अश्व० 215
नेत्रकल्प 619
नेत्रम् 351
नेदिथ 815
नेदिष्ठः 618
नेदीयान् 618
नेनिक्ते 984
नेनिजति 950
नेनिजानि 950
नेनीयते 261,786
नेनेक्ति 244,984
नेमकृत 629
नेमतुः 814
नेमधितः 973
नेमधिताः 973
नेमाः 22
नेमि 348
नेमिः 348
नेमे 22
नेशिथ 852
नेषतु 286
नेषीद्वम् 1069
नेष्टा 339,781
नेष्टोद्गा 754
नैकटिकः 543
नैत्यशब्दि 532
नैपुणी 577
नैयग्रोधः 921
नैयग्रोध 530
नैयायिकः 921
नैरुक्तः 480
नैलीनकः 491
नैवारिकः 537
नैशः 507
नैशः छात्र 507
नैशम् 500
नैशिकः 507
नैशिकः छा 507
नैशिकम् 500
नैशिकी 500
नैषधः 515
नैषधीयम् 515
नैषध्यः 466
नैषाद 634
नैषादकर्षु 493,936
नैषादकिः 452
नैष्कशतिक 601
नैष्कसह 601
नैष्किकः 529
नैष्किकम् 557
नो अवन्तु 695
नो अव्रता 695
नो इदानीम् 15
नोनाव 266
नोनुद्यते 261
नोऽवन्तु 695
नौ 998
नौति 950
नौमान् 600
नौयानम् 685
न् 11
न्यक्षम् 748
न्यग्रोधकः 484
न्यग्रोधमू 922
न्यङ्कुः 937
न्यङ्कः 724
न्यन्तः 746
न्यपप्तत् 966
न्यमाङ्क्षी 852
न्यमीलीत् 866
न्ययम् 361
न्यर्णः 877
न्यवीवृतत् 964
न्यश्यन् 942
न्यश्वसिषुः 867
न्यषहत 1067
न्यषीदत् 1066,1079
न्यषीव्यत् 1067
न्यषेवत 1067
न्यष्टौत् 1067
न्यष्वजत 1067
न्यसहत 1067
न्यसीदत् 1079
न्यसीव्यत् 1067
न्यस्तौत् 1067
न्यस्वजत 1067

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याचम् 395
न्यादः 366
न्यायः 361,380
न्याय्यम् 546
न्युब्जः 940
न्योकः 941
न्रर्थः 921
न्रार्थिः 921

प

पक् 349
पकारः 376
पक्तिः 373
पक्त्रिः 535
पक्त्रिमम् 371,535
पक्वः 790,1032
पक्वेष्ट 764
पक्षतिः 583
पक्षीध्वम् 1069
पङ्क्तिः 373,565
पङ्गूः 443
पङ्गूभा 756
पचः 300
पचतः 956
पचतकि 620,622
पचता चैत्रेण 336
पचति 128
पचतिः 376
पचतिकल्प 618
पचति गोत्रम् 1003
पचतितमा 630
पचतितमाम् 616
पचतितराम् 617
पचतिदेशीय 618
पचतिदेश्य 618
पचतिपचति 995
पचतिपूति 1011
पचतिमिथ्या 1011
पचतिरूप 618
पचध्वम् 957
पचन् 854
पचन्तः 336
पचन्ति 690,905
1018
पचन्ती 423,858
पचमानः 905
पचमानं चैत्रः 336
पचमानेन० 336
पचसि 998
पचामः 956
पचावः 956
पचावहै 905
पचे 690
पचेत् 904
पचेताम् 905
पचेते 905
पचेते इति 14
पचेथाम् 905
पचेथे 905
पचेय 417
पचेरन् 45
पच्छः 762
पच्छब्दः 762
पञ्च 18,424,841
पञ्चकः 557,563, 564
565
पञ्चकपा 449
पञ्चकपालः 169,227
पञ्चकम् 561,564
पञ्चकमा 654
पञ्चकुमारि 428
पञ्चकृत्व 631
पञ्चकृत्वोऽह्नो० 215
पञ्चकेन० 200
पञ्चकोशाः 168
पञ्चखट्वम् 225
पञ्चखट्वी 225
पञ्चगङ्ग 158
पञ्चगव 649
पञ्चगवधनः 169
पञ्चगवम 649
पञ्चगोणिः 72
पञ्चजनीनम् 555
पञ्चतक्षं 225
पञ्चतक्षी 225
पञ्चतथः 589
पञ्चतयम् 587
पञ्चतयी 425
पञ्चदन्त 659
पञ्चदशः 564,761
पञ्चदशिनः 564
पञ्चदाम्नी 430
पञ्चदिष्टि 720
पञ्चधा 614
पञ्चधेनु 428
पञ्चध्यम् 614
पञ्चनद 158
पञ्चपात्र 427
पञ्चपात्रम् 225
पञ्चपूली 220,427
पञ्च ब्राह्मणाः 168,188
पञ्चभिः 708
पञ्चभिः 708
पञ्चभिः 708
पञ्चमः 589,615
पञ्चमजा 758
पञ्चमवान् 604
पञ्चमहायज्ञाः 168
पञ्चमिकः 562
पञ्चमी 604
पञ्चमीभा 757
पञ्चमीय 757
पञ्चमूली 225
पञ्चराज 159
पञ्चलव 427
पञ्चवटी 427
पञ्चवर्षः 619
पञ्चवर्षक 619
पञ्चवर्षदेशी 619
पञ्चवर्षदेश्य 619
पञ्चवाक् 651
पञ्चवितस्ति 720
पञ्चव्याक० 481
पञ्चशराः 168
पञ्चशष्कुलम् 71
पञ्चषड्ढा 1101
पञ्चषड्हा 1101
पञ्चषाः 188,192
पञ्चसूचिः 72
पञ्चाङ्गु 647,653
पञ्चानाम् 708
पञ्चानाम् 780,851
पञ्चारत्नि 720
पञ्चालाः 72,73,485
पञ्चालेषु वसति 209
पञ्चाशत् 565
पञ्चाश्वा 428
पञ्चाश्वी 428
पञ्चेन्द्रः 71
पटदत्र 691
पटपटा 134
पटपटाक 640
पटपटाकरोति 182,997
पटपटाकृ 133
पटपटाकृत्य 182
पटपटाभ 640
पटपटायति 105
पटपटायते 105,257
पटपटास्या 640
पटयति 37,262,826
पटहशब्द 714
पटा३उ 1045
पटिमा 576
पटा३वाशा 1045
पटिति 690
पटिमा 826
पटिष्ठ 616,826,829
पटिष्ठः 616, 617
पटिष्ठा 262
पटीयान् 617,826
पटुः 434
पटुकल्प 619
पटुका 932
पटुगुप्तौ 112
पटुजाती 619
पटुजातीय 714
पटुतम 616
पटुतरः 617
पटुतरः (कृष्णात्) 208
पटुता 576,757
पटुत्वम् 576,757
पटुदेशी 619
पटुदेश्य 619
पटुपटुः 996
पटुपट्वी 997
पटुभार्य 758
पटूकरो 968
पटूभव 968
पटूस्यात् 968
पट्विका 759
पट्वितरा 759
पट्वी 434
पठ् 79
पठ 413,809
पठतः 118
पठत 412
पठतम् 412
पठताम् 412
पठति 118,250,282
336
पठति 705
पठतु 282,389,412
पठनीयः 389,390
पठनीय 390
पठन्ति 835
पठन्तु 412
पठानि 413
पठाम 412,413
पठाव 412,413
पठितव्य 390
पठिता 27,240,300
390,419,425
पठितुम् 419
पठिषीष्ट 280
पठिष्यते 280,797
पठेः 415

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठेत् 390,282,415
417
पठेत 416
पठेतम् 416
पठेताम् 416,417
पठेम 415
पठेयम् 416
पठेयुः 418
पठेरन् 417
पठेव 415
पठ्यताम् 280
पठ्यते 83,280
पठ्यासुः 418
पणायति 263
पण्डितः 586
पण्डित-पण्डितः 997
पण्डितमानी 326
पण्डितम्मन्यः 326
पण्डितायते 255
पण्यः 293
पण्यकम्ब 722
पण्या 293
पतः 667
पतञ्जलिः 689
पतनः 343
पतयालुः 345
पतयालूः 444
पतये 113
पताकावान् 600
पताकी 600
पतति 266,394,414
पतापत 667
पताम 394
पतिः 431
पतिंवरा 315
पतिघ्नी 317
पतितजम्भ 656
पतिमती 431
पतिवत्नी 430
पतीनाम् 850
पत्काषि 762
पत्त्रम् 869,1102
पत्नी 431
पत्नीवः३ 1045
पत्या 112,113
पत्युः 694
पत्ये शेते 122
पत्यौ 960
पत्त्रम् 351
पथः 859
पथकः 591
पथः प्रविचल 120
पथा 711
पथिकः 567
पथिप्रज्ञः 306
पथिरक्षी 312
पथ्यम् 546
पदकः 481
पदकक्रमकम् 221
पदकारः 311
पदग 761
पदनः 343
पदष्ठीव 645
पदाजिः 761
पदातिः 761
पदिकः 534,762
पदेकृत्वा 138
पद्ग 761
पद्घोष 762
पद्धतिः 434,762
पद्धती 434
पद्धिम 762
पद्मः 229
पद्मगन्धि 658
पद्मम् 229,478
पद्मिनी 478
पद्याः 544,761
पनायति 263
पनीपतीति 989
पनीपत्यते 261,989
पनीपदीति 989
पनीपद्यते 989
पन्थकः 503
पन्थाः 711
पन्थाः 846,859
पन्थानः 859
पन्थानम् 859
पन्थानंगच्छः 197
पन्थानौ 859
पन्नगः 316
पन्नागाराः 241
पन्निष्क 762
पन्मिश्र 762
पपक्थ 411,815,896
897
पपच 411
पपठे 280
पपतुः 43,44,797
पपरतुः 965
पपरिथ 817
पपस्यते 256
पपाच 411,663,978
982,987,989
पपाठ 82
पपात 663
पपाथ 798
पपिः 347
पपिथ 798
पपिवद्भ्याम् 1037
पपिवान् 330,331
पपुः 44,797
पपुरिः 347,864
पपुषः 785
पपौ 52,844,1098
पप्तिम 807
पप्रितम 864
पफणतुः 817
पफणिथ 817
पम्पशीति 991
पम्पश्यते 991
पम्फुलीति 911
पम्फुल्यते 261,991
पयःका 1058
पयः पि 1058
पयःपि 1058
पयः शक् 1024
पयसाऽग्नि० 195
पयःसु 1051
पयस्करति 1061
पयस्कल्पम् 1057
पयस्पाशम् 1057
पयस्यते 255
पयस्वती 117
पयांसि 27,855,1053
पयायते 255,256
पयोदः 306
पयोधरः 1022
पयोधिः 372,1022
पयोमय 530
पर 838
परकीय 496
परकीयम् 509
परतः 611
परन्तपः 314,806
परमकषा 716
परमकंस 736
परमकु 725,731
परमकू 736,737
परमकृ 715
परमगवः 649
परमगाध 716
परमगि 731
परमची 737
परमचू 738
परमचे 737
परमदाया 716
परमधनुः 1059
परमना 725,726
परमनैदी 718
परमनैष्किकम् 557
परमप 737
परमपुरुष 172
परमपूर्व 718
परमप्रिय 717
परमब्रा 725
परममै 727
परमरथ्य 521
परमरा 737
परमराज 648
परमर्त्तः 688
परमर्पि 1059
परमलव 719
परमवा 706
परमवा 706
परमवाणि 717
परमशरा 720
परमशार 716
परमश्वेत 730
परमसदृ 717
परमसप्त 717
परमसि 727
परमसुख 717
परमस्वा 718
परमाध्वर्यु 716
परमाध्वा 647
परमाह 648
परमे व्योमन् 1018
परमेष्ठः 1074
परमेष्ठी 1074
परम्परीण 581
परलोकदृश्वा 328
परशतानि 165
परशतानि 165
परसहस्राणि 165
परस्तात् 611
परस्परेण 384
परस्मै 751
परस्सहस्रा 165
पराः 22
परा 132
पराकरोति 103
पराकुर्वन् 103
पराक्रमते 92
पराजयते 86,120
पराजयसे 86

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजिग्ये	86	परिणिया	1085	परियाणम्	1088	परिष्यति	882	पर्पिकः	534
पराण्	1086	परिणिव	1085	परियाणि	1085	परिष्यन्दते	1068	पर्यङ्कः	1021
पराणिणत्	1086	परिणिवा	1085	परियाणीयम्	1088	परिष्वजते	1067	पर्यङ्कीयति०	255
पराणिणिषति	1086	परिणिशा	1085	परियाप्यमाणम्	1089	परिष्वङ्गन	378	पर्यतस्तम्भत्	1078
परापम्	770	परिणिष्य	1085	परियाप्यमानम्	1089	परिसर्या	374	पर्यध्ययनः	183
परारित्नम्	502	परिणिह	1085	परियायमाणः	1088	परिसारी	341	पर्यन्तः	746
परार्द्ध्य	499	परितः	607	परियायिणौ	1088	परिसेधयति	1078	पर्ययः	361
परार्ध्यम्	499	परिता	882	परियोगः	1021	परिसोढव्यम्	1078	पर्यरमत्	103
परावर्क्	246	परितार	746	परिरमति	103	परिसोढुम्	1078	पर्यश्रुणी	187
परि	132	परित्रिग	720	परिराटकः	342	परिस्क	1068	पर्यषहत	1067
परिकोपणम्	1089	परित्रिगर्त्त	155	परिराटी	341	परिस्कन्त्	1068	पर्यषीव्यत्	1067
परिकोपनम्	1089	परित्रिगर्त्तेभ्यो०	197	परिलघु	182	परिस्यन्दते	1068	पर्यषुणोत्	1065
परिकूल	746	परिदाही	341	परिवत्सरीण	570	परिस्वज	786	पर्यषेवत	1067
परिक्रीडते	86	परिदेवकः	342	परिवत्सरीय	570	परिहणनम्	1087	पर्यष्करोत्	1067
परिक्रीणी	85	परिदेवी	341	परिवादकः	342	परिहण्मः	1087	पर्यष्टौत्	1067
परिक्रीतः	126	परिद्यूनः	1032	परिवादी	341	परिहण्यते	1087	पर्यष्वजत	1065,1067
परिक्रोशकः	342	परिद्रुत्	705	परिवीय	675	परिहण्वः	1087	पर्यसहत	1067
परिक्षेपकः	342	परिधातवै	396	परिवृढः	877	परिहन्मः	1087	पर्यसीव्यत्	1067
परिक्षेपी	341	परिधापयित्वा	846	परिवृहि	877	परिहन्वः	1087	पर्यसीष	1079
परिखा	329	परिधीरति	1049	परिवेवि	950,1070	परिहीणः	1088	पर्यसीषि	1079
परिगृही	740	परिनष्टः	1091	परिव्राजः	940	परिहीणवान्	1088	पर्यस्करोत्	1067
परिग्रहः	363	परिनाभि	151	परिषदः पातु	1061	परीणत्	774	पर्यस्तौत्	1067
परिग्राहः	363	परिपन्थि	595	परिषद्वल	599	परीतत्	774	पर्यस्वजत	1067
परिघः	369,1021	परिपन्थिन्	595	परिषयः	1067	परीता	882	पर्यागच्छ	142
परिचर्या	374	परि परि	995	परिषसाद	1079	परीत्तम्	776	पर्याचित	740
परिचाय्यः	299	परिपरिण	595	परिषस्वजि	978	परीपृच्छ्य	992	पर्याणद्ध	1081
परिजाः	329	परिपरिन्	595	परिषहते	1067,1078	परीष्टिः	376	पर्याप्तं भो	406
परिणम	806	परिपातवै	724	परिषिञ्च	140,141	परीष्यति	882	पर्याप्तो भो	406
परिणयः	361	परिपुच्छयते	259	परिषितः	1067	परीस्पृश्य	261	पर्यायः	361
परिणह	774	परीपृच्छ्य	261	परिषिषेविषते	1067	परुत्नम्	502	पर्यास्थत	274
परिणामः	1084	परिप्लूय	795	परिषीव्यति	1067	परुषस्परि	1061	पर्येषणा	376
परिणायः	361	परिभवः	364	परिषुणोति	1065	परे	22	पर्वणा	820
परिणिगदति	1085	परिभवी	344	परिषेवते	1067	परे द्यवि	610	पर्वत	602,753
परिणिचि	1085	परिभावः	364	परिष्क	1068	परोक्ष	652	पर्वतीयः	497
परिणिद	1085	परिमय	1085	परिष्कन्त्	1068	परोवरीण	581	पर्वतोपघ्नः	370
परिणिदे	1085	परिमार्ग्यः	295	परिष्करोति	1067	पर्णधुङ्	1027	पलाण्डुभक्षि	438
परिणिद्रा	1085	परिमृज्यः	295	परिष्कर्त्ता	700	पर्णध्वत्	324	पलायते	1021
परिणिन	1085	परिमृड्	1027	परिष्कृतम्	701	पर्णध्वद्भ्याम्	1037	पलायाञ्चक्रे	267,1021
परिणिप	1085	परिमृष्यन्तम्	103	परिष्टुत्	705	पर्णमयः	527	पलाशाशा	378
परिणिप्सा	1085	परिमोहय	105	परिष्टौति	1067	पर्णमयी	527	पलाशाशा	379
परिणिमि	1085	परिमोही	341	परिष्ठलम्	1074	पर्णीयम्	497	पलिक्नी	432

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलिघः 369
पलितङ्करणम् 318
पलितम् 603
पलितम्भः 318
पलितम्भावुकः 318
पलिता 432
पलियोगः 1021
पल्यङ्कः 1021
पल्ययते 1021
पल्यवर्चस 645
पवः 359,365
पवनः 82
पवमानः 337
पवितः 63,890
पवितवान् 63,890
पवित्रम् 351
पवित्रोऽयम्० 352
पवित्वा 63,890
पविषीढ्वम् 1070
पविषीध्वम् 1070
पविष्यति 871
पशपालसे 731
पशवे 958
पशुपालिका 435
पशुरक्षिः 312
पश्च 612
पश्चा 612
पश्चात् 612
पश्चार्धः 612
पश्चिमः 502
पश्यः 301
पश्य 1005
पश्यञ्छृ 1101
पश्यञ् शृण्वन् 1101
पश्यत 1005
पश्यति 947
पश्यतोह 753
पश्वे 958
पष्ठौही 441
पस्पशाते 950
पांशुरम् 598
पाकः 199,357,919
937
पाकः 704
पाकयज्ञि 511
पाकयज्ञिक 474
पाकायग 356
पाकिमम् 535
पाक्तिः 793
पाक्यम् 292,298,937
941
पाक्षायणः 485
पाक्षिकः 537
पाङ्क्तः 479
पाचकः 406,919
पाचकखञ्जः 171
पाचकजा 758
पाचकदे 758
पाचकपाठकः 171
पाचकवृ 758
पाचयाञ्चकार 269
पाचयामास 269
पाचयाम्बभूव 269
पाचिकाभा 757
पाञ्चजन्य 508
पाञ्चलौहितिक 558
पाञ्चहोतृ 512
पाञ्चालः 465
पाञ्चालाः 517
पाञ्चालिः 465
पाञ्चाली 467
पाटलिपु 493
पाटवम् 576
पाटूपट 668
पाठः 6
पाठकः 300,929
पाठकपाचकः 171
पाठं पठितवान् 330
पाठम् अपठी० 335
पाठयति 919
पाठिता 280
पाठिषीष्ट 280
पाठिष्यते 280
पाठ्यम् 298
पाणः 367
पाणविक 541
पाणावुप 402,408
पाणिकम् 557
पाणिगृहीता 437
पाणिगृहीती 437
पाणिघः 317
पाणिघातः 317
पाणिनः 831
पाणिना कुणिः 201
पाणिनिकृ 741
पाणिनीयः 517
पाणिनीय 520
पाणिनीयम् 481,482
517
पाणिनोप 402
पाणिनोप 717
पाणिनोपरो 402
पाणिन्धमः 313
पाणिन्युपज्ञम् 226
पाणिपादम् 220
पाणौकृत्य 138
पाण्डुः 434
पाण्डुकम्ब 470
पाण्डुत्वम् 578
पाण्डुरम् 598
पाण्ड्यः 466
पाण्युपक 402
पाण्युपरो 402
पातः 6
पातवै 395
पात्रिकः 563
पात्रिकम् 563
पात्रियः 566
पात्रीणः 563
पात्रे समिताः 167
पात्र्यः 566
पाथेयम् 547
पाथेयवत् 547
पाथ्यः 548
पादः 356
पादघोष 762
पादनिष्क 762
पादपः 306
पादपम् 521
पादमिश्र 762
पादविकः 538
पादव्याख्या 512
पादशः 762
पादशब्द 762
पादहारकः 162
पादुका 624
पादेन खञ्जः 201
पादोपघातं 400
पाद्यम् 632,762
पानः 381
पानम् 378,1083
पानसैन्ध 727
पानीयशी 715
पानीयशीतम् 174
पान्थः 567
पान्नागाराः 491
पान्नागारिः पिता 239
पान्नागारिः पुत्रः 239
पापकृत् 327
पापचिषते 987,988
पापचीति 989
पापच्यते 259,261
666,989,990
पापठीति 243
पापठ्यते 259,261
पापतिः 348
पापनापि 726
पापनापितः 170
पापम् 603
पापा 430
पापी 430
पापे (अभि–) 126
पामनः 597
पामवान् 597
पामा 424,425
पामानः 425
पामानौ 425
पामे 425
पाम्पानि 483
पायते 281
पाययति 930
पाययते 105
पायसिकः 516
पायुः 353
पाय्यम् 299
पारगः 316
पारदृश्वा 328
पारयः 301
पारयिष्ण 795
पारयिष्णवः 958
पारयिष्ण्वः 958
पारलौकि 509
पारशवः
पारशबः 453,529
पारश्वधि 541
पारस्कर 704
पारस्तः 490
पारायणिकः 567
पारावारीणः 487
पारावारीण 581
पाराशरम् 519
पाराशरि 519
पारिखेयी 556
पारिग्रामि 509
पारिपन्थि 538
पारिमुखि 536
पारिमुख्य 508
पारिषदः 491
पारिषदम् 521
पारिषद्य 539,547
पारिहनव्य 508
पारीणः 487
पारीण 581
पारेगङ्ग 156
पारे व 722

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारेसमु 156
पार्णम् 497
पार्थः 451,456
पार्थवम् 576
पार्थिवः 448,561,562
पार्थिवा 448
पार्थिवी 448
पार्दायनी 489
पार्याप्तिक 532
पार्वतः 482
पार्वतानि 497
पार्वतायनः 453
पार्वतिः 453
पार्शव 627
पार्श्वकः 593
पार्श्वतीय 496
पार्श्वम् 476
पार्श्वशयः 308
पार्श्वोपपी 402
पार्ष्णिग्रम् 306
पालङ्गिनः 518
पालदः 491
पालयति 931
पालाशक 485
पालाशम् 525,528
पाल्वलती 490
पावकः 5,82,685
पावका 933
पावयाङ्क्रि 270
पाविका 933
पाव्यम् 298
पाव्यात् 270
पाशुपतम् 472
पाश्चात्यः 488
पाश्या 478
पाश्वतीय 509
पास्पर्ध्यते 261
पाहि 809
पिचव्यः 553
पिच्छलः 597
पिच्छवान् 597
पिण्डग्रः 782
पिण्डपत्नी 431
पिण्डाश्म 649
पिण्ढि 40
पितरामा 755
पितरि 958
पितरि असाधुः 206
पितरि साधु 206
पितरौ 958
पिता 861
पितामहः 475
पितामही 475
पितुः 694,1022
पितुः यु 754
पितुरन्ते 754
पितुःष्वसा 1071
पितुष्वसाय 1071
पितुः स्वसा 1071
पितृघातः 327
पितृघाती 327
पितृदेवत्य 632
पितृपिता 754
पितृप्रति 767
पितृभीरा 773
पितृभोगीणः 555
पितृभ्यः स्वधा 199
पितृयाणम् 1088
पितृव्यः 475
पितृष्व 1071
पितृसद् 717
पितृसमः 162
पितृसुखम् 164
पितृस्थान 630
पितृस्थानीय 630
पितृहा 327
पितृणाम् 11,850,863
1080
पित्तघ्नम् 317
पित्राज्ञा 82,684
पित्र्यम् 473,513,968
पित्सति 976
पित्सते 253
पिनष्टि 1029
पिनाकपाणि 388
पिपक्षति 253,666,987
पिपठिष 987
पिपठिषति 252,253
पिपठिःषु 1063
पिपठिष्षु 1063
पिपठिःसु 1063
पिपठिस्सु 1063
पिपठीः 1038
पिपतिषति 253,976
पिपरतुः 818
पिपर्त्ति 986
पिपविष 901
पिपविषति 987
पिपविषते 253
पिपावयिष 987
पिपासति 58,253
पिपीलिका 442
पिपूर्त्तः 1038
पिपृच्छिष 253,902
पिपृच्छिषति 57
पिप्रावयिष 988
पिप्लावयि 988
पिबति 947
पिबध्यै 395
पिबन्ति 947
पिशङ्गी 432
पिशाचकी 603
पिशाचसभम् 226
पिष्टकः 527
पिष्टमय 527
पिस्पन्दिष 978
पिस्पृक्षति 254
पीडा 375
पीतकम् 468
पीतापीतम् 172
पीतिः 375,1083
पीत्वा यी 398
पीत्वी 849
पीत्वीनम् 849
पीनः 1031
पीनम् 672
पीनस्तना 439
पीनस्तनी 439
पीयते 281,799
पीयूक्षाव 1082
पीलुवह 775
पीलूकुण 583
पिल्लः 585
पीवरोरूः 444
पीवा 324
पीवोपव 772
पुङ्क्षीर 1048
पुङ्गवः 1048
पुञ्जिष्ठः 1074
पुण्ड्रनग 730
पुण्ड्राः 240,485
पुण्यकृत् 327
पुण्यरात्र 647
पुण्यार्धः 161
पुण्याहम् 225
पुण्याहवा 573
पुण्येन धनिकः 201
पुण्येन हरिः 201
पुण्येन हरिर्दृष्टः 201
पुतित्री 664
पुत्रः 1102
पुत्रजग्धी 1096
पुत्रहती 1096
पुत्रादिनी 1096
पुत्रकः 620
पुत्रका 934
पुत्रकाम्यति 255,265
पुत्रकाम्या 374
पुत्रचेल 736
पुत्रजातः 745
पुत्रपत्नी 431
पुत्रपुत्रा 1096
पुत्रपौत्रीण 581
पुत्रहती 1096
पुत्रह्वायः 305
पुत्रात् जायते 121
पुत्रादिनी 1096
पुत्रिका 934
पुत्रीयः 561
पुत्रीयति 242,254,255
265,970
पुत्रीयन्तः 970
पुत्रीया 374
पुत्रीयिता 254
पुत्रीयियि 664
पुत्रीयिषि 664
पुत्रेण सह 189
पुत्रेण सह० 200
पुत्रेण सार्द्धम् 200
पुत्रेण हर्षः 201
पुत्रौ 77
पुत्र्यः 561
पुनरुत् 133
पुनर्भ्वौ 804
पुनर्वसुः 504
पुनर्वसुर्नक्षत्रमदिति 75
पुनर्वसू 75
पुनर्वसू नक्षत्रमदिति 75
पुनाति 948
पुनारम 1050
पुना रमते 773
पुपविथ 817
पुपुक्षति 253
पुपुतित्री 664
पुपुत्रीयि 664
पुपूर्षति 863
पुप्रावयिष 988
पुप्लावयि 988
पुप्लुवे 978
पुमनुजः 329
पुमांसः 860
पुमांसम् 860
पुमांसौ 860
पुमान् 860
पुरः 613

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरः कृत्वा 136
पुरगावणम् 1081
पुरन्दरः 314,765,806
पुरस्कर्तुम् 1058
पुरस्कृत्य 136
पुरस्तात् 611,614
पुरस्सरः 309
पुरा....करो 354
पुराक्रूरस्य० 218
पुराणावसथम् 168
पुरातनः 502
पुराऽनुशे 354
पुरा भुङ्क्ते 354
पुरा....वि 354
पुरा विद्योतते 1006
पुरीषवाहणः 321
पुरीष्यवाहणः 321
पुरुत्राग 639
पुरुत्राव 639
पुरुदंसा 861
पुरुषः 70
पुरुषतः 636
पुरुषत्राग 639
पुरुषत्राव 639
पुरुषःत्सरुः 1057
पुरुषदघ्न 586
पुरुषद्वयस 586
पुरुषः पुरुषः 995
पुरुषमात्र 586
पुरुषमृगश्च० 214
पुरुषवाह 401
पुरुषव्याघ्रः 170
पुरुषायु 645
पुरुषार्थम् 195
पुरुषोत्तमः 180
पुरोडाः 323,1036
पुरोडाशीयः 554
पुरोडाश्यः 554
पुरोहित० 972
पुलकितम् 586
पुँश्चली 1048
पुंश्चली 1048
पुंश्चली 1048
पुंश्चली 1048
पुषाण 285
पुष्करवान् 604
पुष्करा 775
पुष्करायते 255
पुष्करिणी 604
पुष्टिकरं मधु 310
पुष्णाति 1080
पुष्पधन्व 820
पुष्पधन्वा 657
पुष्पफलवान् 603
पुष्पाहरः 308
पुष्यः 296,469
पुष्येण पायस० 209
पुष्ये पायस० 209
पुष्ये शनिः 209
पुंसा 706
पुंसानु 750
पुँस्कामा 1048
पुंस्कामा 1058
पुँस्कोकि 1048
पुंस्कोकि 1048
पुंस्ता 575
पुंस्त्वम् 575
पुस्फुरुः 978
पुस्फोट 978
पुँस्स्का 1048
पुंस्स्का 1048
पुँस्स्को 1048
पुंस्स्को 1048
पूः 349,1038
पूगकृता 723
पूगतिथः 590
पूजा 375
पूजार्हः 308
पूजार्हा 308
पूतः 890,1031
पूतक्रतायी 431
पूतवान् 890
पूतिगन्धि 657
पूत्वा 890
पूनाः 1031
पूनिः 372,1031
पूरितः 878
पूरुषः 778
पूर्णः 878
पूर्णकुकु 659
पूर्णकाकुत् 660
पूर्णकाकुद 660
पूर्त्तः 1034
पूर्द्धिः 808
पूर्यते 281
पूर्वकाण्ड 478
पूर्वकायः 176
पूर्वचान 732
पूर्वधा 626
पूर्वपञ्चा 732
पूर्वपञ्चा 923
पूर्वपदिकः 481
पूर्वपराणाम् 21
पूर्वपाञ्चा 733
पूर्वपाञ्चा 923
पूर्वपाटलि 923
पूर्वपाणि 732
पूर्वपाणि 733
पूर्वपुरुष 171
पूर्व पूर्व 997
पूर्वयाया 732
पूर्वरात्रकृ 167
पूर्वरात्रे कृ 167
पूर्ववयसो ब्राह्मणाः 75
पूर्ववया ब्राह्मणो 75
पूर्ववाट् 321
पूर्ववार्षि 923
पूर्वशालाप्रियः 169
पूर्वशिष्याः 733
पूर्वसक्थ 650
पूर्वसरः 309
पूर्वसारः 309
पूर्वस्मात् 838
पूर्वस्मिन् 611,838
पूर्वहैम 923
पूर्वाः 22
पूर्वात् 838
पूर्वाह्ण 1043,1045
पूर्वापरम् 223
पूर्वापरे 223
पूर्वाः प्रोष्ठपदाः 75
पूर्वाः फल्गुन्यः 75
पूर्वाह्णः 228,1082
पूर्वाह्ण 720
पूर्वाह्णक 503
पूर्वाह्णका 753
पूर्वाह्णकृतम् 167
पूर्वाह्णत 753
पूर्वाह्णश 753
पूर्वाह्णे 773
पूर्वाह्णे कृ 167
पूर्वाह्णे त 753
पूर्वाह्णेतन 503
पूर्वाह्णे तमा 630
पूर्वाह्णः 176,648
पूर्विणैः 551
पूर्वी 594
पूर्वीणैः 551
पूर्वे 22,838
पूर्वेद्यु 610
पूर्वे प्रोष्ठपदे 75
पूर्वे फल्गुन्यौ 75
पूर्वेषुका 923
पूर्वेषु काम 490
पूर्वेषुकाम 732
पूर्वेषु कामशमी 168
पूर्वोत्तरा 188,223
पूर्व्यैः 551
पूषा 7,82
पूषा अवि 698
पृच्छति 129,670
पृच्छ्यते 281
पृणाति 948
पृतनाषाड् 1062,1077
पृतन्यति 971
पृत्सु 680
पृथकत् 620
पृथिवी 448
पृथुः 434
पृथुजघ 440
पृथुता 575,76
पृथुत्वम् 575, 76
पृथुसेन 1075
पृथ्वी 434
पृष्टः 670,783
पृष्ट्वा 57
पृष्ठतः 636
पृष्ठशयः 308
पृष्ठेन कुब्जः 201
पृष्ठ्यः 476
पेक्ष्यति 1029
पेच 411
पेचतुः 411
पेचथुः 411
पेचिथ 420,815,896
पेचिम 411
पेचिरन् 814
पेचिव 411
पेचिवान् 898
पेचुः 411
पेठतुः 813
पेतिम 807
पेपीयते 261,799
पेयात् 799
पेष्टा 1093
पेस्वरः 349
पैङ्गाक्षीपु 473
पैङ्गी 518
पैङ्गीयाः 491
पैठरिकः 541
पैठसर्पाः 823
पैतामहकः 513
पैतृकः 513
पैतृकम् 513,936
पैतृमत्यम् 448

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैतृष्वसेयः 459
पैतृष्वस्रीयः 459
पैप्पलक 494
पैप्पलाद 522
पैलः 239,456
पैलः पिता 239
पैल पुत्रः 239
पैलुवहक 493
पैलेयः 456
पोतः 869
पोता 339,781
पोत्रम् 351
पोपुवः 8,243
पोपूयते 261,989
पोषणम् 296
पोषयिष्णुः 340
पौंस्नः 450
पौंस्नम् 449,475,575
पौंस्नी 426
पौणिक्या 446
पौण्ड्रः 466
पौण्ड्रकः 517
पौण्ड्रनाग 926
पौतृकः 513
पौत्तिकम् 520
पौत्रः 453
पौत्रम् 540
पौनःपुनि 823
पौरवः 465
पौरवे वसुमतीं 207
पौरश्चरणि 512
पौरस्तः 490
पौरस्त्यः 488
पौराणिकः 481
पौरुषम् 586
पौरुषयः 555
पौरुषेयः 555
पौरुषेयम् 555
पौरोडाशि 511
पौरोडाशिकः 511
पौरोहित्य 578

पौर्णमासी 474
पौर्वपदि 538
पौर्वमद्रः 491
पौर्वमद्र 923
पौर्ववर्षि 923
पौर्वशालः 169,490
पौर्वार्द्धा 499
पौर्वार्द्धिक 499
पौर्वार्द्धिका 499
पौर्वार्द्ध्य 499
पौर्वार्धा 499
पौर्वार्धिक 499
पौर्वार्धिका 499
पौर्वार्ध्य 499
पौर्वाह्णिक 503
पौषः 469,472
पौषम् 469,501
पौषी 469,472
पौष्कलः 483
पौष्कीयाः 491
प्र 132
प्र इंख् 1090
प्रकटम् 584
प्रकण्वः 703
प्रकमनम् 1090
प्रकर्त्ता 723
प्रकारक 739
प्रकाशः 776
प्रकुरुते 90
प्रकृतः 723
प्रकृतः क 408
प्रकृतः प्रकृतवान् 330
प्रकृता 432
प्रकृत्य 34,133,846
968
प्रकृत्या 200
प्रकृत्या दर्शनीय० 200
प्रकृशितः 1033
प्रकोपणम् 1089
प्रकोपनम् 1089
प्रकोष्ठम् 747

प्रकोष्ठे 126
प्रक्रमते 92
प्रक्रमते भो 406
प्रक्रमितु 881
प्रक्रंसीष्ट 881
प्रक्रामति 92
प्रक्षालयैनत् 230
प्रक्षालित 744
प्रक्षीणः 795
प्रक्षीबितः 1033
प्रक्षीय 795
प्रक्ष्वेदितः 62
प्रक्ष्वेदितवान् 62
प्रख्ये 395
प्रगमनम् 1090
प्रगाद्यम् 292
प्रगात्रया 1092
प्रगाय 800
प्रगृहम् 747
प्रगृह्यं पदम् 297
प्रगेतनम् 502
प्रग्रहः 363,364,
प्रग्रहेण 364
प्रग्राहः 364
प्रग्राह 363
प्रग्राहेण 364
प्रघणः 369
प्रघसः 231,366
प्रघाणः 269
प्रघातः 294,369
प्रघ्नन्ति 1087
प्रचयः 361
प्रचयेषु 365
प्रचरितोः 396
प्रचस्कन्द 978
प्रचस्खलु 978
प्रचायः 361
प्रचेता राजन् 1037
प्रचेतो राजन् 1037
प्रच्छदः 806
प्रच्छिद् 320

प्रच्छर्दिका 376
प्रजग्ध्य 230
प्रजनः 930
प्रजनयाम 269
प्रजनयिष्णु 340
प्रजनिष्णुः 339
प्रजयः 740
प्रजल्पाक 723
प्रजवी 344
प्रजाः 329
प्रजानाति 102
प्रजापालि 435
प्रजाभ्यः स्वस्ति 199
प्रजामेका 1010,1011
प्रजिघाय 939
प्रजिघीष 939
प्रजित् 320
प्रजेघीयते 939
प्रज्ञः 301,656
प्रज्ञया मुक्तः 202
प्रज्ञा 375
प्रज्ञावान् 597
प्रज्वलः 302
प्रणक् 246
प्रणम् 633
प्रणमति 1084
प्रणम्य 35
प्रणयः 303,358
प्रणयति 1084
प्रणः शूद्रः 1088
प्रणसः 655,1088
प्रणामः 357,1084
प्रणायकः 1084
प्रणाय्यः 299
प्रणाशम् 1084
प्रणिक्षणम् 1090
प्रणिगदति 1085
प्रणिचिनो 1085
प्रणिददा 1085
प्रणिददाति 17
प्रणिदधा 1085

प्रणिदधाति 17
प्रणिदयते 17
प्रणिदे 1085
प्रणिद्यति 17
प्रणिद्राति 1085
प्रणिधयते 17
प्रणिनद 1085
प्रणिन्दनम् 1090
प्रणिपचति 1086
प्रणिपत 1085
प्रणिपद्य 1085
प्रणिप्सा 1085
प्रणिभिनति 1086
प्रणिमय 1085
प्रणिमि 1085
प्रणियच्छति 17
प्रणिया 1085
प्रणिवय 1085
प्रणिवह 1085
प्रणिवाति 1085
प्रणिशाम्य 1085
प्रणिष्यति 1085
प्रर्णिसनम् 1090
प्रणिहन्ति 213,1085
प्रणिहन्मि 1085
प्रणीः 320
प्रणीयः 298
प्रणोराजा 1088
प्रतनम् 633
प्रतरम् 630
प्रतस्थे 88
प्रति 132
प्रतिकः 558
प्रतिकर्म 652
प्रतिकश 703
प्रतिक्षिपति 103
प्रतिगृणाति 125
प्रतिगृह्यम् 297
प्रतिग्राह्यम् 297
प्रतिजनः 748
प्रतिजानीते 93

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिदान	142	प्रत्नम्	502,633	प्रद्युम्नः कृष्णात्०	197	प्रफुल्लिः	991	प्रयाणम्	1088
प्रतिदीव्ना	39,821	प्रत्यक्	821	प्रद्योतितः	63	प्रबाहवा	847	प्रयाणीयम्	1088
प्रतिपत्	372	प्रत्यक्षम्	652	प्रद्रावः	359	प्रभवः	358	प्रयातासि	975
प्रतिपथ	652	प्रत्यग्नि	24,155	प्रद्विट्	320	प्रभवनम्	1090	प्रयापणम्	1089
प्रतिपथि	539	प्रत्यङ्	319	प्रधर्षितः	62	प्रभवति	121	प्रयापनम्	1089
प्रतिपूर्वरा	720	प्रत्यङ्ङाः	156	प्रधर्षितवान्	62	प्रभवाणि	1085	प्रयाप्यमाणम्	1089
प्रतिपूर्वा	720	प्रत्यङ्ङात्मा	1056	प्रधाय	800	प्रभाक्	321	प्रयाप्यमानम्	1089
प्रतिबोधी	354	प्रत्यञ्चः	724	प्रधावयाञ्चकार	266	प्रभाकरः	310	प्रयायमाणः	1088
प्रतिभुवौ	804	प्रत्यर्थम्	153	प्रधिः	371	प्रभातकल्प	619	प्रयायिणौ	1088
प्रतिभूः	350	प्रत्यर्पयित्वा	846	प्रधुक्	320	प्रभानम्	1090	प्रयुक्	320
प्रतियायी	354	प्रत्यवादि	809	प्रधौतमु	733	प्रभापनम्	1091	प्रयुक्ताः	740
प्रतियुव	652	प्रत्यवास्थित	1023	प्रध्यौ	803	प्रभावनम्	1091	प्रयुक्थाः	1022
प्रतियोगी	354	प्रत्यंशुः	748	प्रध्रुक्	320	प्रभावुकः	344	प्रयुङ्क्ते	98
प्रतियोधी	354	प्रत्यहः	652	प्रनर्दति	1084	प्रभित्	320	प्रयै	395
प्रतिरित्स	976	प्रत्यहम्	652	प्रनष्टः	1091	प्रभूः	350	प्रयोग्यः	942
प्रतिरोधः	775	प्रत्यात्मम्	831	प्रनिकरो	1086	प्रभूतशः	635	प्रयोज्यम्	942
प्रतिरोधी	354	प्रत्याययति	233	प्रनिक्षणम्	1090	प्रभेद	740	प्ररि	28
प्रतिलोम	644	प्रत्यासारि०	325	प्रनिखादति	1086	प्रभोदयः	51	प्ररुता	432
प्रतिविपाश	652	प्रत्युरः	646	प्रनिजाग	1085	प्रभ्वी	434	प्रलपिता	724
प्रतिवेशः	775	प्रत्युरस	646	प्रनिन्दनम्	1090	प्रमत्तः	120	प्रललाटः	746
प्रतिशरद	652	प्रथमपुरुषः	171	प्रनिपच	1086	प्रमत्य	790	प्रलवः	740
प्रतिशीन	652	प्रथमं प्रथमं	997	प्रनिपिन	1086	प्रमदः	367	प्रलवित्र	740
प्रतिशुश्रू	96	प्रथमवै	724,25	प्रनिभिनति	1086	प्रमाणक	661	प्रलापी	342
प्रतिशृणोति	125	प्रथमाः	22	प्रनिरन्तः शरे०	166	प्रमाथी	342	प्रलिपः	301
प्रतिषीव्यः	298	प्रथमिनी	605	प्रनिंसनम्	1090	प्रमादः	367	प्रवकः	304
प्रतिषेधय	1078	प्रथमे	22	प्रपचति	1012	प्रमादी	341	प्रवचनीयः	407
प्रतिष्कशः	703	प्रथयति	826	प्रपचति पूति	1011	प्रमाद्यति	120	प्रवणम्	746
प्रतिष्ठते	87	प्रथिमा	575,576,829	प्रपतित	186	प्रमाय	677,800	प्रवणे	1081
प्रतिष्ठासा	1065	प्रथिष्ठः	829	प्रपतितप	187	प्रमिणन्ति	948	प्रवदितोः	396
प्रतिष्णा	1073	प्रथीयान्	829	प्रपर्णः	187	प्रमिन्नः	876	प्रवपाणि	1085
प्रतिसाम	644	प्रदः	302	प्रपवनम्	1090	प्रमीणाति	948,1085	प्रवपानि	1085
प्रतिसीद	1066	प्रदवः	303	प्रपा	365	प्रमीणीते	1085	प्रवयणः	238
प्रतिस्किर	701	प्रदहः	24,396	प्रपात्य	795	प्रमेदितः	62,876	प्रवय्य	686
प्रतिस्तब्धः	1078	प्रदा	375,798	प्रपापूरणी	573	प्रमेदितवान्	62	प्रवरः	364
प्रतीक्षा	374	प्रदाय	800	प्रपाय	800	प्रयत्य	790	प्रवरा	364
प्रतीच्यम्	489	प्रदावी	342	प्रपित्सते	976	प्रयन्तो अध्व	695	प्रवर्षुकः	344
प्रतीरोधः	775	प्रदिः	371	प्रपीठम्	747	प्रयन्धि	808	प्रवहति	103
प्रतीवेशः	775	प्रदुद्राव	978	प्रपीतिः	373	प्रयम्य	790	प्रवाच्यम्	941
प्रतूर्त्तम्	1034	प्रदोषकः	503	प्रप्यायनम्	1090	प्रयवः	358	प्रवादी	342
प्रत्तम्	974	प्रद्यु	28	प्र प्रायमग्नि	995	प्रयागः	940	प्रवाद्यम्	294
प्रत्नथा	626	प्रद्युतितः	63	प्रफुल्त	1033	प्रयाजः	940	प्रवाय	675

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी 342
प्रवाहणे 927
प्रवाहणेय 927
प्रवाहणेयि 927
प्रवाहिका 376
प्रवाहेमूत्रितम् 167
प्रवित् 320
प्रविलयः 365
प्रविशति 85
प्रवृद्धम् 740
प्रवृद्धवि 438
प्रवेता 237
प्रवेपनम् 1090
प्रव्याय 675
प्रव्रश्चनः 378
प्रशमय्य 795
प्रशाखः 746
प्रशाञ्छद 1049
प्रशान् 782,1035
प्रशास्ता 781,880
प्रश्नः 371,783,1094
प्रश्रथः 358,787
प्रष्टुम् 1027
प्रष्ठः 1073
प्रष्ठः अश्वः 1073
प्रष्ठवाट् 321
प्रष्ठौहः 687,819
प्रष्ठौहः 706
प्रसत् 320
प्रसन्नः 1030
प्रसविता 885
प्रसवी 344
प्रसाधनम् 379
प्रसारी 342
प्रसूः 320
प्रसूता 435
प्रसेचक 734
प्रसेवः 357
प्रसोता 885
प्रस्कण्व 703
प्रस्कन्दन 377
प्रस्तरः 360
प्रस्तारः 360
प्रस्तावः 359
प्रस्तीत 671
प्रस्तीमः 1033
प्रस्तीम 671
प्रस्थः 301,365,1073
प्रस्थधन 724
प्रस्थम्पचा 313
प्रस्थाय 800
प्रस्थायी 354
प्रस्थितिः 373
प्रस्नः 365
प्रस्नवितु 881
प्रस्नीषी 881
प्रस्नुते 289
प्रस्रावः 359
प्रस्वानः 366
प्रस्वेदितः 62
प्रस्वेदितवान् 62
प्रहणनम् 1087
प्रहण्मः 1087
प्रहण्यते 1087
प्रहण्वः 1087
प्रहन्ति 213
प्रहन्मः 1087
प्रहन्वः 1087
प्रहरणः 379
प्रहसञ्छ् 1101
प्रहस्तम् 747
प्रहाय 800
प्रहारयः 938
प्रहासः 366
प्रहिणुतः 1085
प्रहिणोति 1084
प्रहीणः 1088
प्रहीणवान् 1088
प्रह्लादय 806
प्रह्लायः 368
प्राक् 629
प्राकारः 775
प्राकारीयाः 555,556
प्राक् क्रोडा 441
प्राक्तनः 503
प्राग् 611
प्रागद्यम् 485
प्राग्गुल्फा 441
प्राग्ग्रामम् 155
प्राग्जघना 441
प्राघानि 1087
प्राङ् 319,785,787
854
प्राङ् क्शाये 1054
प्राङ् क्शेते 1054
प्राङ् क्षष्ठः 1054
प्राङ्नासि 441
प्राङ्नासिका 441
प्राङ्मु 744
प्राङ्मुखा 441
प्राङ्मुखी 441
प्राङ् शेते 1054
प्राङ् षष्ठः 1054
प्राङ् साये 1054
प्राचः 778,821
प्राची 423,611
प्राचीनं 629
प्राचीन 629
प्राचीना 629
प्राच्यम् 489
प्राच्यसप्त 717
प्राजनः 238
प्राजापत्यम् 576,578
प्राजावतम् 540
प्राजिता 237
प्राजीजनत् 261
प्राज्ञः 597
प्राञ्चा 709
प्राण् 1086
प्राणः 956
प्राणत् 956
प्राणयति 1084
प्राणशत् 1084
प्राणिणत् 1086
प्राणिणि 664
प्राणिणिषति 1086
प्राणिति 902
प्राणिवः 902,1086
प्राणीत् 956
प्राणो अङ्गे 696
प्रातर 23
प्रातरित्वः 1046
प्रातरित्वा 324
प्रातरित्वानौ 324
प्रातः स्ना 390
प्रातारम 1050
प्रातिकण्ठि 538
प्रातिकूलिक 536
प्रातिकूलिकी 536
प्रातिजनी 547
प्रातिपथि 539
प्रातिलोमि 536
प्रातिष्ठिप 963
प्रातीपिकः 536
प्रात्यग्रथिः 466
प्राथमिकः 512
प्रादः 231
प्रादुद्रुवन् 273
प्रादुः षन्ति 1072
प्रादुष्कृतम् 1058
प्रादुष्पीतम् 1058
प्रादुः ष्यात् 1072
प्रादुस्तः 1072
प्रादोषः 507
प्रादोषम् 500
प्रादोषिकः 507
प्रादोषिक 500
प्राध्वः 646
प्राध्वङ् कृ 138
प्राध्वम् 832
प्रापम् 770
प्रापयति 263
प्रापय्य 795
प्राप्तः 746
प्राप्तजीविकः 178,227
प्राप्तोदकः 186
प्राप्तोधाः 429
प्राप्नुहि 809
प्राप्य 795
प्राभूतिकः 532
प्रामाद्यत् 945
प्रायेण याज्ञि० 200
प्रार्च्छति 688
प्रार्णम् 688
प्रालेयः 920
प्रावनद्धम् 1092
प्रावयति 104
प्रावरष्टि 883
प्रावारः 364
प्रावाहणे 927
प्रावाहणेयि 927
प्रावुवूर्षुः 783,864,883
प्रावृट् 774
प्रावृट्शर 651
प्रावृषिकः 503
प्रावृषिज 752
प्रावृषेण्यः 501,507
571
प्रासः 357
प्रासंग्यः 705
प्रासङ्ग्य 544
प्रासादः 775
प्रासाददध्न 586
प्रासाददध्यस 586
प्रासादमात्र 586
प्रासादात् प्रेक्षते 203
प्रासादारोह 573
प्रासिकः 541
प्रास्तारिक 543
प्रास्थकीय 496
प्रास्थिकः 564
प्रास्थिकम् 561,562
563
प्रास्थिकी 425
प्रास्नोष्ट 289

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राह्नेतन	502	प्रोर्णोनूयते	260	फल्गुनः	504	बब्धाम्	42,807	बहिर्ग्रामात्	155
प्राह्नेतमाम्	630	प्रोल्लाघितः	1033	फल्गुनी	505	बभणतुः	813,1016	बहिर्लोम	654
प्रियः	301	प्रोषिवान्	898	फाण्टम्	876	बभर्ज	792	बहुः	434
प्रियकारः	315	प्रोष्ठपाद	924	फाण्टाहृत	462	बभस्ति	807	बहुकः	18,557
प्रियगुडः	193	प्रौढः	688	फाण्टाहृताः	450	बभाज	978,1098	बहुकपा	720
प्रियङ्करः	315	प्रौढिः	688	फाण्टाहृता	462	बभाण	1098	बहुकरः	310
प्रियङ्करणम्	318	प्रौर्णोनूयत	967	फालकुद्दाल	603	बभार	268	बहुकर्तृक	661
प्रियपञ्चमा	1102	प्रौष्ठपद	655	फाल्गुनः	472	बभाषे	1098	बहुकुमा	745
प्रियप्रियेण	997	प्रौष्ठपदः	924	फाल्गुनिकः	472	बभूथ	897	बहुकुमारिक	661
प्रियमि	744	प्रौष्ठपदिक	474	फुल्लः	1033	बभूर्षति	889	बहुकुमारी	965
प्रियम्भविष्णुः	318	प्रौष्ठीयाः	491	फेणतुः	817	बभूव	56,785,805	बहुकुलीन	460
प्रियम्भावुकः	318	प्रौहः	688	फेणिथ	817		977,983	बहुकुल्यः	460
प्रियलक्ष्मी	660	प्लक्षकीय	487	फेणुः	817	बभूवतुः	983	बहुकृता	438
प्रियलक्ष्मीक	660	प्लक्षन्य	739	फेनलः	597	बभूवथुः	983	बहुकृत्वः	18
प्रियंवदः	82,314	प्लक्षन्यग्रोधम्	223	फेनवान्	597	बभूविथ	56,895,983	बहुक्षमः	305
प्रियवादी	325	प्लक्षन्यग्रोधा	223	फेनायते	257	बभूविम	983	बहुखट्व	661
प्रियविश्वाय	21	प्लक्षन्यग्रोधौ	191,224	फेनिलः	597	बभूविव	873,983	बहुखट्वक	42
प्रियसख	648	प्लक्षवण	1082	फेलतुः	815	बभूवुः	983	बहुखट्वाक	661
प्रियसर्पि	660	प्लविकः	533	फेलिथ	815	बभृद्वे	1069	बहुगुणा	746
प्रियाकरो	641	प्लाक्षम्	530	फेलुः	813	बभृम	875	बहुतः	607
प्रियोभयाय	21	प्लाक्षाः	491	ब		बभृव	875	बहुतन्त्री	662
प्रीणम्	633	प्लाक्षी	442	बंहिमा	828	बभ्रज्ज	670,792	बहुतन्त्रीका	662
प्रीणयति	931	प्लायते	1021	बंहिष्ठः	827	बभ्रमिथ	816	बहुतिथः	590
प्रीणीहि	808	प्लिनाति	948	बंहीयान्	828	बभ्राजे	817	बहुत्र	606,608
प्रेक्षते	121	प्लुषाण	809	बकुलम्	71	बभ्राशे	817	बहुत्राजी	639
प्रेक्षी	485	प्लोषीद्वम्	1069	बङ्गाः	240,485	बभ्लाशे	817	बहुदण्डिका	660
प्रेङ्खणम्	1090	प्लोषीष्ट	884	बदरम्	71,530	बम्भज्यते	991	बहुदण्डी	660,782
प्रेङ्गणम्	1090	फ		बदराऽऽमलके	224	बम्भञ्जीति	991	बहुधा	18
प्रेजते	689	फफाण	1098	बदराऽऽमलकम्	223	बम्भ्रमीति	990	बहुनाडि	662
प्रेत्य	686	फलकपु	732	बदरीवणम्	1082	बम्भ्रम्यते	261,990	बहुनाडीक	662
प्रेदिधत्	687	फलकसक्थ	650	बदरीवनम्	1082	बर्हिणः	602	बहुनिष्क	559
प्रेमा	827	फलति	835.	बधान	285	बर्हिःष्ठः	1074	बहुनैष्किक	559
प्रेयान्	827	फलहारी	728	बध्नाति	127	बर्हिष्यम्	594	बहुपटु	619
प्रेषे	394	फलानां सुहितः	180	बध्यते	281	बलवान्	605,782	बहुपरिव्रा	933
प्रेष्ठः	827	फलानि	855	बनीभ्रंसीति	989	बलाका	442	बहुपूषा	782
प्रेहणम्	1089	फलानि आह०	198	बनीभ्रस्य	989	बलिकरः	310	बहुप्रजः	656
प्रैषः	688	फलासव	727	बनीभ्रस्यते	261	बली	605	बहुप्रजा	656
प्रैषकरः	310	फलाहरः	308	बन्दिग्राहं	401	बलूल	602	बहुभगाल	720
प्रोदयंसी	901	फलिनः	602	बन्धः	380	बल्यः	485	बहुमत्स्या	429
प्रोम्भणम्	1090	फलेग्रहिः	311	बन्धुता	477	बल्वजमय	526	बहुमनाः	745
प्रोर्णुवीत्	868	फलेभ्यो याति	198	बप्सति	807	बहवः	210	बहुमालकः	965

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुमालाकः 965
बहुमास्य 720
बहुमूर्ध्नः 653
बहुयज्वा 424
बहुयवः 745
बहुयुवा 446
बहुराजा 429,850
बहुराजाना 850
बहुराशी 429
बहुलः 504
बहुवृत्र 782
बहुशः 18,635,757
बहुशरा 720
बहुश्रेयसी 661
बहुश्रेयस्यै 109
बहुश्रेयान् 661
बहुसूक्त 746
बर्हूर्जि 855
बर्हूर्ञ्जि 855
बर्ह्यरत्नि 720
बर्ह्यर्यमा 782
बह्वी 434
बह्वी 434
बह्वीनाम् 708
बह्वृची 442
बाकम् 475
बाङ्गः 466
बाङ्गकः 493,517
बाढम् 876
बादरम् 449
बादरिकः 537
बाधयति 252
बाभ्रवः 453
बाभ्रव्यः 453,685,824
बाभ्रव्यशा 522
बार्हिणम् 528
बालः 1050
बाल×क 1057
बालः करोति 1057
बालका गच्छन्ति 1052
बाल×ख 1057
बालः खनति 1057
बालता 576
बालत्वम् 576
बाल×प 1057
बालः पचति 1057
बालः पितरं० 201
बालः पितुः 211
बालः पित्रा सङ्ग० 201
बालम् 576
बालरोदं 401
बालः शे 1057
बालश्चलति 1093
बालश्छादयति 1093
बालश्शेते 1057
बालश्शेते 1093
बालष्टीकते 1057
बालष्टीकते 1093
बालष्षष्ठः 1093
बालस्त 1050
बालस्तरति 1056
बालहितम् 164
बाला 427,681
बालाक्या 446
बाला ग 1051
बालाः सन्ति 1057
बालास्सन्ति 1057
बालिमा 576
बालेयः 824
बालेयम् 556
बालेयार्द्धि 499
बालेयार्धि 499
बालो रोदि 695
बाल्मीकि० 226
बाल्वजः 482
बाल्हायनी 489
बाहविः 451
बाहीकः 448
बाहुकः 533
बाहुकरः 310
बाहुकुलेय 460
बाहुगर्त 494
बाहुबली 604
बाहुरूप्य 490
बाहूपपी 402
बाह्यः 448,507,823
बाह्यम् 508
बाह्यच्य 523
बिदाः 240
बिभयाञ्चकार 268
बिभराञ्चकार 268
बिभरामास 268
बिभरिष 889
बिभर्क्षति 888
बिभर्जिष 888
बिभर्ज्जिष 888
बिभर्त्ति 244,984
बिभर्ति 710
बिभाय 268,1098
बिभित्सति 58,253
बिभिदतुः 56
बिभीतः 812
बिभृयात् 968
बिभेति 120,667,812
बिभेति 710
बिभेत्यस्मदिति० 203
बिभेद 682,1098
बिभेदिथः 56
बिभेदिथ 895,896
बिभ्यति 812
बिभ्रक्षति 888
बिभ्रक्षुः 1024
बिभ्रज्जिष 253,888
बिभ्रति 811
बिभ्रमिष 253
बिम्बाधरा 440
बिम्बोष्ठा 439
बिम्बोष्ठी 439,690
बिम्बौष्ठा 439
बिम्बौष्ठी 439,690
बिल्वसप्त 731
बीजयोनी 773
बीजाकरो 640
बीभत्सते 251
बुद्धिः 374
बुद्धिजः 329
बुद्धिमान् 47
बुधः 301
बुधित्वा 65
बुबुधे 978,1098
बुबुन्द 978
बुभुक्षति 253
बुभुक्षते 253
बुभुजे 99
बुभुत्सति 58
बुभुत्सते 253
बुभुषितं न० 195
बुभूषति 58,874,988
बृंहणम् 1081
बृहता 707
बृहतिका 629
बृहती 629
बृहती 707
बृहत्क 729
बृहत्पति 704
बृहदर्भ 730
बृहस्पति 704
बृहस्पति 739
बृहस्पतिक 622
बृहस्पतिने 654
बेभिदाञ्च 793
बेभिदाञ्चक्रे 266
बेभिदिता 872
बेभिदितु 793
बेभिद्यते 261
बेभीयते 261
बैकुलिश 494
बैदः 453,522
बैदः पिता 238
बैदः पुत्रः 238
बैदमय 529
बैदिः 453
बैदी 445
बैदी 705
बैम्बकिः 452
बैल्वः 524,526,528
बैल्वकाः 826
बैल्वमय 529
बोद्धुम् 1028,1029, 1097
बोधयति 104,130
बोधित्वा 65
बोबुध्यते 261
बोभवीति 954
बोभुज्यते 261,989
बोभूतु 980
बोभूयते 259,265,989
बोभोति 954
बौधिः 454
बौधिः पिता 239
बौधिः पुत्रः 239
बौध्यः 454
ब्रवीतन 848
ब्रवीति 412,954
ब्रवीतु 952
ब्रवीमि 952
ब्रवीषि 412,952
ब्रह्म ऋषि 698
ब्रह्म ऋषी 698
ब्रह्मञ्च्छा 1055
ब्रह्मञ्च्श 1055
ब्रह्मञ्छा 1055
ब्रह्मञ् शम्भुः 1055
ब्रह्मण्यम् 554
ब्रह्मत्वम् 579
ब्रह्मबन्धुक 759
ब्रह्मबन्धुगो 759
ब्रह्मबन्धुचे 759
ब्रह्मबन्धुत 759
ब्रह्मबुन्धुपु 763
ब्रह्मबन्धुब्रु 759
ब्रह्मबन्धुम 759
ब्रह्मबन्धुरू 759
ब्रह्मबन्धुह 759
ब्रह्मबन्धू 756,850

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मबन्धूक 759
ब्रह्मबन्धूगो 759
ब्रह्मबन्धूचे 759
ब्रह्मबन्धूत 759
ब्रह्मबन्धूपु 763
ब्रह्मबन्धूबु 759
ब्रह्मबन्धूम 759
ब्रह्मबन्धूरू 759
ब्रह्मबन्धूह 759
ब्रह्मबन्ध्वः 693
ब्रह्मबन्ध्वा 707
ब्रह्मबन्ध्वौ 693
ब्रह्मभूयम् 294
ब्रह्मर्षिः 698
ब्रह्मवद्यम् 294
ब्रह्मवर्चस 645
ब्रह्मवर्चस्य 561
ब्रह्मवादी 325
ब्रह्मवाद्यः 298
ब्रह्मवाद्यम् 298
ब्रह्महत्या 294
ब्रह्महा 327,681
ब्रह्मा 1095,1097
ब्रह्मीभव 638
ब्रह्मोद्यम् 294
ब्रह्म्मा 1095
ब्रह्महा 327
ब्राह्मण 742
ब्राह्मणः 832
ब्राह्मणकः 592
ब्राह्मणकु 753
ब्राह्मणक्षत्रिय० 192
ब्राह्मणक्षत्रियौ० 222
ब्राह्मणजः 329
ब्राह्मणता 577
ब्राह्मणत्राक 639
ब्राह्मणत्वम् 577
ब्राह्मणं दीव्यति 213
ब्राह्मणधर्मी 604
ब्राह्मणनि 731
ब्राह्मणमि 735
ब्राह्मणया 741
ब्राह्मणयाजक 179
ब्राह्मणरा 737
ब्राह्मणवत् 574
ब्राह्मणवर्णी 604
ब्राह्मणवेदं 399
ब्राह्मणशा 736
ब्राह्मणशा 736
ब्राह्मणशीली 604
ब्राह्मणशूरः 173
ब्राह्मणसात् 639
ब्राह्मणसु 717
ब्राह्मणसे 731
ब्राह्मणसे 736
ब्राह्मणसेनम् 227
ब्राह्मणसेना 227
ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् 180
ब्राह्मणस्य कुर्वन् 180
ब्राह्मणस्य कृत्वा 180
ब्राह्मणाः 81
ब्राह्मणाक्षि 644
ब्राह्मणाय अन्नं० 197
ब्राह्मनाय हितम् 198
ब्राह्मणार्थः 164
ब्राह्मणास 849
ब्राह्मणिक 512,759
ब्राह्मणिगो 759
ब्राह्मणिचे 759
ब्राह्मणित 759
ब्राह्मणितमा 18
ब्राह्मणितरा 18
ब्राह्मणिब्रु 759
ब्राह्मणिम 759
ब्राह्मणिरू 759
ब्राह्मणिह 759
ब्राह्मणी 445
ब्राह्मणेषु 206
ब्राह्मणेष्वधी० 207
ब्राह्मणौ 77
ब्राह्मण्यम् 476,577
ब्रुवन्ति 412
ब्रूतः 412
ब्रूते 129,289
ब्रूथः 412

भ

भक्तिः 374
भक्तिकरः 310
भक्तिच्छेदः 683
भक्तिर्ज्ञानाय 198
भक्षः 705
भक्षङ्कार 765
भक्षयति 130
भक्षितम् 794
भगन्दरः 314
भगो अत्र 1051
भगो यत्र 1052
भगो हसति 1052
भङ्गाकट 584
भङ्गुरः 345
भङ्गुरम् 705
भङ्गुरम् 82
भङ्ग्यम् 580
भञ्जया 848
भद्रङ्कर 766
भद्रचर 752
भद्रतिथी र 1050
भद्रपादः 924
भद्रबाहू 443
भद्रमु 744
भयङ्करः 315
भयत्रा 726
भयम् 365
भयानकः 409
भय्य 686
भरटिकः 534
भरणीषेणः 1075
भरणीसेनः 1075
भरतशत्रुघ्नः 191
भरता 777
भरिभ्रत् 981
भर्त्ता 7
भर्ष्टा 792
भवत् 801
भवतः 854
भवतात् 390
भवति 7,82,419,949
950
भवतिः 376
भवति भोक्तुं 406
भवती 423
भवदीयः 115,492
757
भवदीयम् 54
भवन्तं पृच्छामि 334
भवन्ती 423
भवाँश्चर 1047
भवाँश्चि 1048
भवांश्चि 1048
भवांष्टी 1049
भवाँष्टी 1049
भवाञ् च् छेते 1055
भवाञ् च् शेते 1055
भवाञ् छेते 1055
भवाञ् शेते 1055
भवाति 414
भवान् 782,854
भवान् षण्डे 1094
भवान् त् साये 1055
भवान् त्स 1055
भवान् साये 1055
भवानी 436
भवामि 114
भवितव्यः 34
भवितव्य 419
भवितव्यम् 235
भविता 235,343,895
भवितासि 975
भवितुम् 33,235
भविषाम 415
भविषामः 415
भविषाव 415
भविषावः 415
भविष्णुः 340
भव्यः 406
भस्त्रका 935
भस्त्रिकः 534
भस्म 353,869
भस्मनि हुतम् 167
भस्मसाच्च 638
भस्मसात्कु 638
भस्मसितः 161
भाः 349
भाः करण 1060
भाक्तः 543,547
भाक्तिकः 543
भागः 29,357,919
भागधेयम् 633
भागधेया 430
भागधेयी 430
भागवित्ता० 461
भागवित्ताः 450
भागवित्तिकः 461
भागहरः 307
भागिकम् 562
भागी 341
भाग्यम् 562
भाजा 433
भाजी 433
भाद्रः 479
भानवे 111
भानुः 112
भानुदत्तक 622
भानुल 622
भानूदयः 29,691
भानूर्ध्वम् 11
भान्विति 48
भापयते 677,931
भाययति 678,932
भाया३त् 1043
भारतः 479
भारद्वाजः 453
भारहारः 307
भार्गव 698
भार्गायणः 454

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भार्गी 467
भार्यः 295
भाल्लविनः 518
भावः 358
भावतः 492
भावत्कः 492,757
भावत्कम् 937
भावी 354
भाव्यः 298
भाव्यम् 298
भासुरः 345
भास्करः 310,349
भस्त्रिका 935
भाषाः 530
भाषते 129
भिक्षा 374
भिक्षाकः 81,344
भिक्षाकंस 727
भिक्षाचरः 309
भिक्षाभिरुषितः 162
भिक्षामा 726
भिक्षामात्र 717
भिक्षार्थः 162
भिक्षाविद्रा 727
भिक्षुः 346
भित् 349
भिद् 48,1035
भित्तम् 1034
भित्सीष्ट 59
भिदा 375
भिदिः 376
भिदुरः 345
भिद्यः 296
भिद्यते 711
भिद्यते काष्ठं० 288
भिद्यो नदः 296
भिनत्ति 682
भिन्तः 810
भिन्द्युस्त 1075
भिन्नः 876
भिन्नक 629
भिन्ननौक 660
भिषक् पाश 615
भीमः 353,409
भीमः 712
भीयते 281,812
भीरुः 348
भीरुकः 348
भीरुष्ठानम् 1070
भीलुकः 348
भीषयते 27,100,678
931
भीषयमा 931
भीष्मः 409
भुक्तः 19,82
भुक्तपूर्व्यो 215
भुक्तम् 217,378
भुक्तवान् 19
भुक्ताभुक्तम् 172
भुत्त्वा 997
भुत्त्वा भुत्त्वा 995
भुग्नः 1031
भुङ्क्ताम् 389
भुङ्क्ते 99,127
भुङ्क्ते भुङ्क्ते 995
भुजः 940
भुज्युः 834
भुञ्जते 99
भुत्सीष्ट 59
भुनक्ति 99
भुव इति 1037
भुवनपति 718
भुवरिति 1037
भू 79
भूतध्रुक् 1025
भूतबलिः 164
भूतपूर्वः 150
भूतये ग 356
भूतार्मम् 730
भूतिः 373,375
भूत् 801
भूपतये 112
भूपतिः 718
भूपालिका 435
भूभृत् 324
भूमयन्ति 828
भूमा 828
भूमिष्ठः 1074
भूम्युपरि 48
भूयते 280
भूयात् 420
भूयान् 828
भूयिष्ठः 828,829
भूरिदावत्तरः 1021
भूरिदावा 323
भूरिशः 635
भूषणः 343
भूष्णुः 9,340
भृगवः 241
भृगुः 937
भृज्जति 670
भृज्ज्यते 281
भृड् 1024
भृणाति 948
भृतकाण्डः 736
भृत्यः 295
भृत्या 373
भृशायते 256
भृशी भवति 256
भृषीढ्वम् 1069
भृषीष्ट 60
भृष्टः 670,792
भेजतुः 816
भेजिथ 816
भेत्ता 108,113,678
भेत्तुम् 1098
भेदकः 919
भेदति 286
भेदनम् 950
भेदिका रुद्रस्य० 216
भेदितम् 876
भेषजा 430
भेषजी 430
भैक्षम् 475
भैमरथी 515
भैषज्य 632
भो अत्र 1051,1052
भोगः 705
भोगोपरतः 165
भोग्यः 942
भोजदु 766
भोजं भोजम् 997
भोजनः 378
भोजयति 104,130
भोजयु 766
भोज्यम् 942
भोज्योष्णम् 174
भोत्स्यते 1027
भो देवाः 1051
भो यत्र 1052
भो हसति 1052
भौणिक्या 446
भौरिकि वि 479
भौलिङ्गिः 466
भौशुण्डिकः 541
भ्रकुंस 763
भ्रकुटिः 763
भ्रमति 282,945
भ्रमरक 624
भ्रमित्वा 891
भ्रमी 341
भ्रम्यति 282
भ्रम्यम् 292
भ्रशिमा 829
भ्रशिष्टः 829
भ्रशीयान् 829
भ्रश्यते 281
भ्रष्टा 792,1026
भ्राजथुः 371
भ्राजिष्णुः 340
भ्रातरौ 77
भ्राता 861
भ्रातुष्पुत्र 738
भ्रातृकः 513
भ्रातृपत्नी 431
भ्रातृबल 599
भ्रातृव्यः 460,461
भ्रात्रीयः 460
भ्रान्त्वा 891
भ्रामरम् 520
भ्राम्यति 282,945
भ्राशते 282
भ्राश्यते 282
भ्राष्टमट 393
भ्राष्ट्रजः 729
भ्राष्ट्रमटति 393
भ्रास्नूभि 765
भ्राष्ट्राः 471
भ्रियते 281
भ्रियात् 969
भ्रुकुंस 763
भ्रुकुटी 763
भ्रुवम्म 765
भ्रुवे 111
भ्रुवै 111
भ्रूः (हे) 110
भ्रूकुल 763
भ्रूणघ्नः 820
भ्रूणहा 327
भ्रूविक्षेपं 403
भ्रेजिरे 814
भ्रेजे 817
भ्रेमतुः 816
भ्रेमिथ 816
भ्रेशे 817
भ्रौणहत्यः 833
भ्रौवेयः 457
भ्लाशते 282
भ्लाश्यते 282
भ्लेशे 817

म

मकरः 703
मकरी 703
मक्षिका 442
मक्षू 777

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगधाः 72,485
मघवा 818
मघवान् 818
मघवानम् 599
मघासुग्रहः 209
मघोनः 819
मङ्क्तव्य 852
मङ्क्ता 852
मङ्क्तुम् 852
मज्जनम् 852
मज्जथुः 371
मञ्जिष्ठः 1074
मडरक 736
मणिकः 633
मणिकर्णः 734
मणिचरी 484
मणिपुच्छी 440
मणिमान् 597
मणिलः 597
मणिवः 599
मणीव 14
मण्डनः 343
मण्डना 932
मण्डूकसर 649
मत् 844,910,912
मतये 111,112
मतिः 372,373
मतिद्वैधानि 615
मतौ 111,960
मत्तः 1034
मत्तरः 913
मत्पुत्रः 913
मत्प्रिया 913
मत्यम् 546
मत्या 960
मत्याम् 960
मत्यै 111
मत्वर्थीयः 376
मत्वा 789
मत्सी 433,442,825
मत्स्यचू 738
मत्स्याः 485
मथः 859
मथा 711
मथुरावत् 574
मथ्नाति 129
मथ्यते 281
मदनः 82,300
मदर्थसन्देशमृणा० 164
मदीयः 492,498,913
मदीयम् 54
मद्गुः 937
मद्ध्वत्र 39,1095
मद्यति 913
मद्यते 913
मद्यम् 292
मद्रकः 495
मद्रकारः 315
मद्रकेकयाः 221
मद्रङ्करः 315
मद्रचरी 81,425
मद्रबाहुक 621
मद्रवाणिज 717
मद्रसदे 719
मद्रसनी 719
मद्रसविध 719
मद्राकरो 642
मद्रार्मम् 730
मद्राश्मा 730
मद्रिकाय 757
मद्री 467
मद्वर्गीणः 510
मद्वर्गीयः 510
मद्वर्ग्यः 510
मधव्यः 552
मधव्या 551
मधु 112,841
मधुँ 1099
मधु अपि 147
मधु अस्ति 698
मधुच्छत्तम् 65
मधुनी 855
मधुपिपा० 158
मधुमान् 486
मधुमैरे 727
मधुरः 598
मधुलिट् 47,324
1099
मधुलिट्त् 1055
मधुलिट्स् 1055
मधुलिड् 1099
मधुलिड्ढ 1101
मधुलिड्हसति 1101
मधुलिह् 48
मधुष्ठानम् 1076
मधुसर्पिषी 224
मधुसात् 1077
मधुसूदनः 300
मधुस्थानम् 1076
मधूः 444
मधूनि 25,855
मध्यः 499
मध्यतः 636
मध्यपुरुषः 171
मध्यमः 499
मध्यमपुरुषः 171
मध्यमीय 496,509
मध्यरात्रकृतम् 167
मध्याह्नः 176,228
मध्याह्नकृ 167
मध्यीयः 509
मध्येकृत्य 138
मध्येकृत्वा 138
मध्येक्षा 752
मध्येगङ्ग 156
मध्येगु 751
मध्वत्र 684,1095
मध्वस्ति 698
मध्व् वत्र 1096
मनति 947
मनस् 48
मनसाज्ञा 751
मनसाहरिं० 197
मनसिकृत्य 137
मनसिकृत्वा 137
मनसिजम् 329
मनःसु 1051
मनस्मय 117
मनांसि 781
मनायी 432
मनावी 432
मनीषा 689
मनुः 432
मनुभी रे 1050
मनुषी 442
मनुष्यः 464
मनुष्वत् 116,117
मनोजम् 329
मनोदत्ता 750
मनोहत्य 135
मन्त्रकारः 311
मन्त्रकृत् 327
मन्त्रणा 376
मन्त्रयैते 414
मन्त्रस्पृक् 318
मन्थः 705
मन्थाः 711
मन्थाः 859
मन्थानः 859
मन्थानम् 859
मन्थानौ 859
मन्दायते 256
मन्दायमाना० 256
मन्दिषत् 266,394,414
मन्दुरजः 81,329
मन्या 373
मन्युः 353
मम 713
मम 842,911,912
ममङ्क्थ 852
ममज्जिथ 852
ममत्तु 710
मम बहुमता० 216
मम शायिका 182
ममार 394
मम्ले 675
मया 909,912
मया रामायणं० 279
मया सुप्यते 279
मयि 909,912
मयूरव्यंसकः 175
मयूरस्य नृत्तं० 217
मयूरिका 401
मयूरी 441
मरडिति 691
मरिष्यति 97
मरीचिका 624
मरीमृजः 8,243
मरीमृजीति 991
मरीमृज्य 261
मरीमृज्यते 991
मरीमृश्य 261
मरुतः 602
मरुत्वः 1046
मरुत्वती 474
मरुत्वत्य 474
मरुत्वान् 1019
मर्त्यत्राग 639
मर्त्यत्राव 639
मर्दनम् 378
मर्मः 298
मर्मा 298
मर्मावित् 774
मर्मावी 602
मर्मृज्य 981
मर्मृज्यते 992
मर्मृज्यमाना 992
मर्षितः 62
मर्षितवान् 62
मर्षित्वा 64
मलिन 600
मलीमस 600
मल्लग्राम 729
मल्लाः 627
मल्लिका 530

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मव्यिता 793
मसूरचू 738
मस्कर 703
मस्करी 703
महता 707
महती 707
महत्पुत्र 760
महर्षिः 7
महाँ असि 1047
महाँ इन्द्र 1047
महाँ इन्द्रः 1049
महाकर 760
महाकुली 460
महागृष्टि 721
महाघास 760
महाजाती 760
महाजावा 721
महाधुर 644
महाधुरा 644
महान् 781
महानस 649
महानाम्निक 571
महापराह्ण 721
महापात्रा 435
महापात्री 435
महापुरुषः 172
महाप्रवृ 721
महाब्रह्म 651
महाब्रह्मा 651
महाब्रा 727
महाभारः 721
महाभारत 721
महायशस्क 661
महायशा 661
महायु 744
महाराज 648,760
महाराजान 648
महाराजिक 517
महारौरव 721
महाललाटा 440
महालूँ लाभः 1100

महाविशि 760
महावैश्व 722
महाव्रीहिः 721
महाहैलि 721
महिष्मान् 486
महिष्यः 78
महीध्रः 306
महेन्द्रिय 473
महेन्द्रीय 473
महेशः 686
महेषुः 733
महेष्वास 721
महोक्षः 645
महोदयः 687
महोधा 657
महौत्सुक्य 687
मह्यम् 713
मह्यम् 842,910,912
मा 1002
मा...अस्तु 391
मा...उत्पा 397
माकन्दक 493
माकन्दी 484
मा कार्षीः 397
मा...कुर्याः 391
माक्षिकम् 520
मागद्यम् 485
मागधः 466
मा...गमि० 391
माघः 472
माघवनः 819
माघी 469,472
माङ्गिष्ठम् 468
माठरकः 494
माड्डूकिक 541
माणवक 996
माणवक ३ 1043
1044
माणवकम्० 212
माणवकस्तु 1005
माणवकाय पुरो० 214

माणवीनम् 555
माणव्यम् 476
माण्डवपु 491
माण्डूकः 456
माण्डूकम् 524
माण्डूकाय 427
माण्डूकिः 456
माण्डूकेयः 456
मातरपि 755
मातरं प्रति 141
मातरम् अभि 141
मातरं स्मरति 211
मातरापि 755
मातरि 958
मातरि निपुणः 208
मातरिश्व 820
मातरि साधुः 208
माता 861
मातापित 754,755
मातापितरौ 32,78,192
मातापित्रोः 754
मातामहः 475
मातामहक 513
मातामही 475
मातुः 1022
मातुलः 475
मातुलकः 513
मातुलघा० 327
मातुलानी 436
मातुली 436
मातुःष्व 754
मातुःष्वसा 1071
मातुष्ष्वसा 1017,1071
मातुःस्व 754
मातुःस्वसा 1071
मातृकः 513
मातृकल्पि 480
मातृधायं 401
मातृभोगीणः 555
मातृवत् 574
मातृष्व 754,1071

मातृष्वसेयः 459
मातृष्वस्रीयः 459
मातृसदृशः 162
मातृसुखम् 164
मातृस्थान 630
मातृस्थानी 630
मातृणाम् 1080
मात्यम् 448
मात्रर्थम् 722
मात्रीभूतः 968
मात्रीयति 255,968
मात्रीयति जन्मभुवम् 255
मात्रीयते 968
मात्स्यम् 825
मात्स्यिकः 537
माथुरः 505,507,512
514,515,516
माथुरदे 758
माथुरम् 491
माथुरीभा 757
माथुरीय 757
मादयध्यै 395
मादयिष्णवः 340
(मा) दर्शत 966
मादी 341
माद्भिः 974
माद्यति 945
माद्रकारिः 466
माद्रिणः 831
माद्रीप्रस्थ 491
माधवः 453,550
माधवा 551
माधव्यः 453,550
माधुकम् 535
माधुरी 577
माधूकम् 524
माध्यन्दिन 509
माध्यमकी 496
माध्यमम् 509
माध्वी 833
मानयति 252

मानोज्ञक 579
मानुषः 464
मानुषीम् 693
मानुष्यक 476,830
मापचन् 336
मापचमानः 336
माम् 843,908,912
मां प्रति 141
मामकः 498
मामकी 430
मामकी इति 16
मामकीनः 498
मामथ्यते 261
माम हान 666
मामिका 430,933
मायावान् 600,601
मायिक 600
मायिकः 601
मायी 600,601
मायुः 353
मायूरः 524
मायूरम् 477,528
मायूरिक 537
मारीचः 457
मारीचिक 533
मारुतीः 693
मार्गः 7,380
मार्गशीर्ष 505
मार्गिकः 538
मार्ग्यः 918,937
मार्जारमूषकम् 222
मार्त्तिकः 524
मार्दङ्गिक 541
मार्दङ्गिकपाण० 220
मार्दवम् 576,578
मार्देययु 732
मार्ष्टुम् 918,1027
मालभारि 764
माला 600
मालानाम् 850
मालाप्रस्थ 493

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालाप्रस्थ 730
मालाभिः 837
मालायाः 959
मालायाम् 959,960
मालायै 959
मालावान् 600
मालीभवति 51
मालीयः 6,51,54,492 834
मालीयति 970
माले 840
माले इति 14
माल्लिकः 470
माल्यैः 546
मा वदेः 391
माशब्दिक 532
(मा) शिलक्षः 272
माषकुम्भ 1091
माषवापाणि 1083
माषवापानि 1083
माषवापिणौ 1083
माषवापिनौ 1083
माषवापिन् 1083
माषवापेण 1083
माषवापेन 1083
माषविक 741
माषविकलम् 162
माषीणम् 580
माषोनम् 741
माष्यम् 554,580
माष्वापाणि 1017
मासं कल्याणी 195
मांसकायः 305
मासं गुडधानाः 195
मासजा 745
मासजातः 178
मासजातः 745
मासजाता 193,438
मासतमः 591
मासदेयम् 166
मासं परिच्छेत्तुमा० 160
मासपूर्वः 162
मासपूर्वाय 21
मासप्रणितः 160
मासमधीतोना० 196
मासम् अधीते 195
मासस्य द्विरधीते 196
मासावरः 162
मासि 679
मासिकः 500,568,570
मासिकम् 474,506 568,570, 571
मासीनः 568
मास्मगच्छः 391
मास्म गमः 391
मास्म भवः 391
मास्म भूः 391
मास्यः 568
माहकाः 491,523
माहकीप्र 491
माहाकुलः 460
माहाकुली 460
माहाजनिकम् 555
माहानामिक 571
माहाराज 468
माहाराजि 474
माहिकिक 497
माहिकिग्रा 497
माहिकिन 497
माहिकिप 497
माहिकिह्व 497
माहिषम् 540
माहिषिकः 495
माहेन्द्रम् 473
माह्वार् 246
मितः 971
मितद्रुः 350
मितम्पचा० 313
मित्रद्विट् 320
मित्रधेये 633
मित्रध्रुक् 320
मित्रयुः 347,970
मित्रलँ ह्वा 1054
मित्रवत् 574
मित्रं ह्वाद् 1054
मित्रावरु 754
मित्रीयिता 347
मित्सति 253,976
मित्सते 253,976
मिथ्याकृत्य 137
मिथ्याकृत्वा 137
मिनाति 948
मित्रः 352,876,1030
मिमते 811
मिमार्जिष 253
मिमीते 811,984
मिमृक्षति 253
मिरिकाव 1082
मिलित्वा 65
मिश्रकावणम् 1081
मिश्रयति 259
मिश्रीभूय 638
मीढः 1050
मीढम् 773
मीढ्वः 1046
मीढ्वान् 667
मीमासक० 170
मीमांसकः 481
मीमांसते 251
मीयते 281,798
मुकयी 442
मुकुटेका 726
मुक्तः 789
मुक्तये हरि० 198
मुखकाम 752
मुखतः का 405
मुखतः कृ 405
मुखतीय 496,509
मुखतोभा 405
मुखतोभू 405
मुखरः 598
मुख्यः 625
मुख्यम् 508
मुग् 1026
मुच् 48
मुञ्चति 27,852
मुञ्चन् 852
मुञ्चेषी 764
मुद् 1026
मुण्डयति 259
मुण्डा 442
मुण्डिका 932
मुदित्वा 65
मुद्गचू 738
मुद्गलानी 436
मुद्गसू 738
मुद्गाः 530
मुनिरत्र 694
मुनीवती 714
मुनीवह 775
मुनीशः 11,691
मुने 682
मुमुक्षति 977
मुमुक्षते 977
मुमुषिष 253
मुमुषिषति 57
मुमूर्षति 253,863
मुमोदिष 253
मुषाण 285
मुषित्वा 57
मुष्करः 598
मुष्टामुष्टि 189
मुष्टिन्धमः 312
मुष्टिन्धयः 312
मुष्टिपीड 402
मुष्टिबन्धं 401
मुष्णाति 129,285
मुसलामुस 656
मुहः 801
मुहुश्का 1058
मुहूर्तप्र 725
मुहूर्तसु 715
मुहूर्तसुखम् 161
मुहूर्तस्य 355
मुहूर्तस्य पश्चा 389
मुहूर्तात् ऊर्ध्वं 389
मुहूर्ताद्धि 355
मूः 784
मूढः 773,1050
मूतिः 784
मूत्रकृच्छ्र 716
मूत्रपदेन 716
मूर्क्खः 1095
मूर्खः 1095
मूर्खभ्रातृक 661
मूर्खेण 1080
मूर्च्छा 1095
मूर्छा 1095
मूर्छिता 1039
मूर्त्तः 784,1034
मूर्धनि 820
मूर्धन्यम् 508
मूर्धन्वत्यः 550
मूर्वामयम् 525
मूर्वावणम् 1082
मूर्वावनम् 1082
मूलं प्रतीक्षते 209
मूलकः 503
मूलकपणः 367
मूलकशा 738
मूलकोप 402
मूलकोपदेशं 185
मूलविभुजः 306
मूलवृट् 1026
मूल्यम् 546
मूल्याः 545
मूषिकका 934
मूषिकाबि 399
मूषिकिका 934
मृगद्युवौ 784
मृगनेत्राः 654
मृगपद 759
मृगया 374
मृगशिरा 505
मृगाक्षी 187

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगाविध् 774
मृगेन्द्रगामी 325
मृजा 375
मृडानी 436
मृडित्वा 57
मृणाति 948
मितङ्गमः 314
मृतिः 377
मृत्कुण्ड 738
मृत्तिका 635
मृत्युः 834
मृत्सा 535
मृत्स्ना 635
मृदित्वा 57
मृदुः 434
मृदुता 576,578
मृदुत्वम् 576,578
मृद्मय 526
मृद्याञ्चकार 254
मृद्वङ्गा 439,440
मृद्वङ्गी 439,440
मृद्वी 434
मृन्मय 526
मृषित्वा 64
मृषीष्ट 97
मृषोद्यम् 296
मृष्टः 9,47
मे 998
मे इति 14
मेखलावान् 600
मेखलावी 601
मेखली 600
मेघङ्करः 315
मेघायते 258
मेढ्रम् 351
मेदुरः 345
मेद्यति 949
मेधावान् 601
मेधावी 601
मेधिरः 599
मेध्यम् 553
मेध्याय 548
मेनका 814
मेमीयते 261,798
मेयात् 799
मेरुदु 766
मेरुपु 766
मेलित्वा 65
मेषः 357
मेषशृङ्गः 734
मैत्र 634
मैत्रावरु 926
मैत्री 577
मैत्रेयः 833
मैत्रेयकः 920
मैधावः 830
मैनमर्दयीत् 274
मैनिकः 538
मैमतः 462
मैमतायनि 462
मोक्ता 852
मोक्षते 977
मोक्षे 126
मोक्षे इच्छा 206
मोग्धा 886
मोढा 886
मोदकमय 632
मोदित्वा 65
मोमुद्यते 261
मोमूङ्यते 259
मोमूर्तः 784
मोहिता 886
मौञ्जम् 527
मौदकिकः 542
मौदकिक 632
मौद्गः 524,526,536
मौद्गरिक 532
मौद्गीन 580
मौनिचित्ति 485
मौर्वम् 524,525
मौसुकीय 497
म् 11
म्नायात् 799
म्नेयात् 799
म्रदिमा 576,829
म्रदिष्ठः 829
म्रदीयान् 829
म्रियताम् 97
म्रियते 97,281
म्रिये 969
म्लानः 1030
म्लानिः 372
म्लायात् 799
म्लिष्टम् 876
म्लेयात् 799

य

यं भोजयति 1011
यंयमीति 989,990
यंयम्यते 261,989,990
यः 915
यकः 624
यका 933
यकृन्मेदः 651
यक्रः 679
यक्ष्यामि 101
यच्च भवा 386
यच्छति 946,947
यच्छतु 946
यच्छेत् 946
यजध्यै 395
यजध्वमे 848
यजमानः 337,338
यजुः करोति 1059
यजुष्करोति 1059
यजुष्टमम् 1075
यजुष्टरम् 1075
यजुष्पाशम् 1058
यजुष्षु 1063
यजूंषि 1063
यजेच्चेत् 387
यजेत् 388
यजेय 417
यज्ञः 371
यज्ञदत्तिका 934
यज्ञायज्ञीय 591
यज्ञियः 567
यज्ञोपवीतेन ब्रह्मचारी 201
यज्वना 820
यज्वा 330
यतः 607,757
यतमः 20
यतरः 20,623
यत्करः 310
यत् करोति 1003
यत्कामास्ते जुहुमः 1011
यत् काष्ठं 1011
यत्नः 371
यत्नानाम् 785
यत् प्रकरोति 1012
यत्प्रथ 743
यत् प्रपचति 1012
यत्यम् 292
यत्र 606,608,757
यत्र क्व च ते 1004
यत्रत्यः 489
यत्र भवा 386
यत्र भुङ्क्ते 1003
यत्रस्थो 700
यत्वा 789
यथा 610
यथा अग 698
यथाकारं 399
यथापण्डित 154
यथा प्रपचति 1005
यथामुख 581
यथामुखीन 581
यथायथम् 998
यथावृद्ध 154
यथोपदिष्ट 154
यदयं भु 398
यदा 609,10
यदि करोति 1003
यदि सुरभिम 384
यदीयः 492
यदीयम् 54
यद् दारुणं 1011
यद्यङ् 769
यन्तारा 846
यन्तिः 790
यन्ति 803
यन्तु 803
यमः 366
यमसभीय 575
यमी 435
यम्यम् 292
ययाथ 895,896
ययिथ 896
ययिम 895
ययिव 895
ययिवान् 898
यर्हि 610
यर्लुं लोकम् 1016
यवः 365
यवक्यम् 580
यवक्रियौ 803
यवखदवान् 600
यवखादिक 600
यवनः 467
यवनानी 436
यवपालः 728
यवबुसक 507
यवमान् 1019,1022
यवसुरम् 227
यवसुरा 227
यवाः 530
यवागूं जुहोति 195
यवाग्वाऽग्निहोत्रं० 195
यवाग्वै 109
यवानि 950
यवानी 436
यविष्ठः 618,827
यविष्ठवत् 827
यवीयान् 618,827
यव्यम् 554,580
यशःषु 1051

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशस्करी विद्या 310
यशस्काम्यति 1057
यशस्यते 256
यशस्वती 117
यशस्वान् 601
यशस्वी 601
यशांसि 781
यशायते 256
यशोभगीन 551
यशोभग्यः 551
यष्टिग्रहः 307
यष्टिग्राहं 403
यष्टिग्राहम् 185
यष्टिं ग्राहम् 185
यष्टुम् 1027
यसति 283
यस्कः 240
यस्काः 240
यस्काश्छात्राः 246
यस्मात् 838
यस्मिन् 838
यस्मै 837
यस्मै ददाति 1011
यस्यति 283
यस्याः 959
यस्यै 959
याकृत्कः 937
याखर्वेग पिबति० 214
यागः 6
यागाय गच्छति 199
याचते 128
याचथुः 371
याचयति 130
याचितक 535
याचित्वा 397
याच्ञा 371,869
याच्यम् 941
याजकपु 738
याजुष्कः 936
याज्ञदत्तिः 463
याज्ञिककितवः 170
याज्ञिक्य 523
याज्ञा 1093
यातः 1030
यातव्या 549
याताः 921
याता 792
यातानना 754
याति 103
याति ३ 1044
यातो देवेन 409
याथाकथाच 571
यादः 463
यादायनि 463
यादृक् 769,320
यादृक्ष 769
यादृङ् 858
यादृशः 769,320
यादृशी 425
यानि सन्ति 39
यान्ति 640,798,810
यामकः 929
यामुनः 454,457
यामुन्दायनि 462
यामुन्दायनी 462
याम्यम् 448
यायजीति 989
यायजूकः 346
यायज्यते 261,989
यायत्यते 261
यायात् 799
यायायते 261
यायावरः 39,349
यावकः 527,633
यावक्रीति 481
यावज्जीवं 399
यावतिथः 590
यावत् प्रपचति 1005
यावदमत्र 154
यावदर्थ 154
यावद्भु 354
यावद्वेदं 399
यावनः 478
यावनी 436
यावमतम् 483
यावान् 587,769
याव्यम् 298
यास्कः 450
यास्कायनिः 450
यास्कायनीयाः 450
यासाम् 850
याहि 809
याह्यौक आ 138
यियक्षति 253,987
यियक्षते 59
यियविष 889,988
यियंसति 253
यियावयि 988
यियासति 253
यियासुः 347
युक् 349
युक्त्वाय 849
युक्तारोही 729
युगन्धरः 315
युग्यम् 297
युग्यः 544
युग्योगौ 297
युङ् 319,855
युञ्जः 855
युञ्जौ 855
युतात् 845
युत्वा 873
युधिष्ठि 751
युधिष्ठिर 510
युधिष्ठिरः 1074
युधिष्ठिराः 241
युधिष्ठिरार्जुनौ 192
युयुत्सते 253,1098
युयूषति 253,889
युयोधि 413
युवकयोः 619
युवखलति 174
युवजरती 174
युवजानि 657,756
युवजानिः 38
युवतिः 446
युवपलितः 174
युवम् 909
युववलिनः 174
युवयोः 908,909,911
युवाभ्याम् 907,909
911
युवाम् 843,908,911
युष्मका 619
युष्मत् 844,907,909
910
युष्मदीय 498
युष्मदीयः 492,498
युष्मदीयम् 54
युष्मद्गु 913
युष्मभ्यम् 843,907,
909,910
युष्माकम् 498,844
911
युष्मान् 843,908
युष्माभिः 907
युष्मासु 907
युष्मे 847
युष्मे इति 14
युहि 809
यूका 442
यूकालिक्षम् 222
यूकालिक्षे 224
यूतिः 373
यूथ्यः 508
यूनः 674,819
यूपदारु 68,164
यूपदारु 722
यूपबन्धः 166
यूपाय दारु 198
यूयते 281
यूयम् 843,909,
910,911
यूष्णः 679
ये 839
ये३यजामहे 1041
येन भुङ्क्ते 1011
येषाम् 850
योक्त्रम् 351
योगी 341
योग्यः 572
यो जटाभिः० 206
योतोः 24,396
योत्रम् 351,869
यो ददा 700
योधयति 104
यो भक्तं 355
यो भुङ्क्ते 1011
योयुज्यते 261
योऽयमध्वा 383
योऽयं सँव 384
योयुवति 805
यौ 78
यौगन्धर 495
यौगन्धरक 495
यौगन्धरिः 466
यौगसूत्रि 480
यौगिकः 572
यौजनशति 567
यौजनिकः 567
यौति 950
यौत्रम् 918
यौधेय 627
यौधेयी 467
यौवतम् 475
यौवनम् 475,578,819
यौवनाश्वः 733
यौवनिका 830
यौष्माकः 498
यौष्माकीणः 498
यौ स्तः 39
य्यज्जाग्र 1052

र

रंरमीति 990
रंरम्यते 261,990

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्ताऽशोकः 171
रत्त्वा 788
रक्षस्या 549
रक्षा 374
रक्षोहा 327
रक्ष्णः 371
रङ्त्त्वा 788
रङ्गः 787
रजकः 303,786
रजककु 223
रजकतन्तु 223
रजकी 81,433
रजति 786
रजनम् 786
रजयति 786
रजस् 786
रजस्वला 599
रजिष्ठम् 830
रजिष्ठैः 830
रज्जुच्छिद् 320
रज्जुशारद 716
रज्यति 289
रज्यते 281
रञ्जयति 786
रणः 365
रणः 712
रत्नच्छायम् 226
रत्वा 789,892
रथकट्या 478
रथन्तरम् 315
रथयातः 723
रथवर्त्म 741
रथस्पा 704
रथिकाश्वारो 220
रथिकाऽश्वारोहौ 224
रथिरः 599
रथीः 599
रथीतरः 1021
रथ्यः 544
रथ्यम् 521
रथ्या 478,554
रद्धा 853,885
रधिता 853,885
रधितुम् 853
रन्धनम् 853
रन्धनाय० 164
रन्धयति 853
रभ्यम् 292
रमणीय 727
रमणीयक 578
रमया 957
रमयोः 957
रमाऽपि 11
रमित्वा 892
रमेशः 51
रम्भोरूः 444
रम्यम् 292
रम्याञ्च्छ 1055
रम्याञ्च्श 1055
रम्याञ्छ 1055
रम्याञ् शरीरे 1055
रयिमान् 674
रयिषाट् 321
ररक्षतुः 813
ररङ्कथ 896
ररन्धिव 853
रराजतुः 817
रराजिथ 817
रराजुः 817
रराधतुः 816
रराधिथ 816,896
ररासे 813
रवः 358
रविविधू 698
रवीति 954
रसना 376
रसवान् 596
रससिद्धः 166
रहस्यम् 508
राः 907
राका 933
राकेशः 687
राक्षोऽसुर 515,522
रागः 357,785,787
रागी 341
राङ्कवः 489
राङ्कवकः 489
राङ्कवायण 489
राजकम् 476
राजकीय 496,820
राजकुमार 725
राजकृत्वा 328
राजगवीय 649
राजघः 317
राजतक्षा 650
राजतम् 528
राजत्वम् 115
राजदन्तः 190
राजदन्तिः 464
राजदु 766
राजधानी 379
राजधुरा 644
राजन् 48,780,1018
राजनः 459,831
राजनापि 726
राजनि 780,820
राजनिवा 716
राजनौ 650
राजन्नेव 1056
राजन्यः 459,831
राजन्यक 476,478
830
राजन्वती 1020
राजन्वान् 1020
राजन् सुप 1015
राजपु 766
राजपुत्र 476
राजपुत्रः 738
राजपुरुषः 68,70,179
राजपुरुषः 714
राजप्रत्ये 725
राजब्राह्म 725
राजभिः 1015
राजभोगीनः 555
राजभ्याम् 115,1018
राजयुध्वा 328,423
राजराजस्य 648
राजवत् 575
राजवती 1015
राजवर्चस 645
राजशय 741
राजसख 648
राजसभा 732
राजसात्क 639
राजसात्स 639
राजसूद 738
राजसूयः 296
राजसूयवा 221
राजा 25,681,780
1018
राजा 709
राजा ऋषि 698
राजाधी 629
राजानः 25,780
राजानमुप 94
राजानम् 25,780
राजानौ 25,116,780
राजायते 114
राजासन 741
राजीयति 114
राजीयति राष्ट्रम् 255
राजीवम् 599
राजैषः 687
राज्ञः 820
राज्ञःप्रत्ये 725
राज्ञस्पातु 1061
राज्ञां पूजितः 181,216
352
राज्ञां बुद्धः 181,216
352
राज्ञां मतः 181,216
352
राज्ञि 820
राज्ञी 423
राज्यम् 831
राड् 1027
रातिः 373
रात्रिः 434
रात्रिचरः 309
रात्रिञ्च 766
रात्रिञ्चर 309
रात्रिन्दिव 645
रात्रिमट 766
रात्री 430,434
रात्र्यट 766
रात्र्यतिसृताः 161
राद्धिः 372
राध्यति 124
रान्धसः 455
राप्यम् 298
राभिः 907
राभ्यः 907
राभ्याम् 31,907
रामः 147,380,625,
682
रामकः 929
रामं च लक्ष्मणं० 195
रामम् 693
रामः रावणं० 334
रामलक्ष्मण० 189
रामहतः 242
रामाणाम् 779,1081
रामात् 80,837
रामान् 1091
रामाय 837
रामे 48
रामेण 1081
रामे शासति० 207
रामेषु 1063
रामोऽत्र 694
रामौ 76,682
रामौत्सुक्य 687
रायः 707
रायस्पो 1062
रायौ 907

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रारक्ष्यते 261
रारन्धि 808
रारभ्यते 261
राराज्यते 261
रावणं हत्वा० 207
राष्ट्रम् 10,1097
राष्ट्रहितम् 164
राष्ट्रियः 487,503,505
507
रासु 907
राहुकेत्वो 773
राहुकेत्वो रौ 1050
रिक्तः 713
रिक्तगुरु 722
रिक्थहरः 307
रिणाति 948
रिप्सते 253
रिरंसते 253
रिरंसुः 987
रिरावयि 988
रिषण्यति 971
रिषण्यवः 971
रिष्टीयति 971
रीतिः 375
रुग्निधने 1094
रुङ्निधने 1094
रुचित्वा 65
रुच्यम् 296
रुजा 375
रुजावी 601
रुणद्धि 27,284
रुदतः पुत्रस्य 207
रुदितम् 378
रुदित्वा 57
रुद्राणी 436
रुद्रेभ्यो 697
रुप्यकाणां तिस्रः 188
रुप्यकाणां द्वे० 188
रुमण्वत् 1020
रुरुक्षति 253
रुरुचिषते 253
रुरुत्सति 253
रुरुदिव 869
रुरुदिषति 57,253
रुरुपृषतम् 223
रूरुपृषताः 223
रूरुपृषतौ 224
रुरुशुकाः 223
रूरूषति 253,874
रुरोचिषते 253
रुषः 801
रुषितः 878
रुष्टः 878
रुष्यति 124
रूक्षपेषं 400
रुङ्निधने 1094
रूपधेयम् 633
रूपयति 261
रूपरसौ 221
रूपवद् 756
रूपवान् 596
रूप्यः 601
रूयते 281
रूषरः 485
रेजिथ 817
रेजुः 817
रेडसि 324
रेधुः 816
रेपयति 930,950
रेफः 376
रेफित्वा 64
रेफेण 1081
रेवती 435,504
रेवत्यम् 549
रेवान् 674
रेषिता 886
रेष्टा 887
रैत्वम् 907
रैपाषम् 401
रैभ्याम् 31
रैयति 685
रैवतिकः 461,936
रैवतिकी 523
रोगः 356
रोगः चौरस्य० 212
रोचते 123
रोचनः 300
रोचयते 105
रोचित्वा 65
रोचिष्णुः 339
रोच्यम् 941
रोदसीव 14
रोदिति 902
रोपयति 932
रोमन्थायते गौः 257
रोरुदावा 793
रोरुद्यते 261
रोरुह्यते 261
रोरूयते 666,989
रोषणः 343
रोषिता 886
रोष्टा 886
रोहयति 932
रोहाव 772
रोहिणः 505
रोहिणित्व 764
रोहिणी 432,504
रोहिणीत्व 764
रोहिणीषेणः 1075
रोहिणीसेनः 1075
रोहिणेय 757
रोहितगि 516
रोहिता 432
रोहिते चर्मन् 1018
रोहिष्यै 395
रौक्मः 528
रौणः 484
रौति 954
रौहिणः 505

ल

लँट् 79
लक्षणोरूः 444
लक्ष्मीच्छाया 684
लक्ष्मीतरा 760
लक्ष्म्यै 802
लग्नः 875,1024
1031
लग्नम् 876
लग्नेट् 1027
लग्नेड् नगाः 1095
लग्नेण्नगा 1095
लघिमा 576
लघुः 434
लघुता 576
लघुत्वम् 576
लघ्वी 434
लतर्द्धिः 687
लता 68,70,210
लताऽत्र 691
लब्धाहे 975
लब्धिः 372
लब्धुम् 1029
लब्भ्रिमम् 371
लभते भो 406
लभेय 388
लभ्यम् 292,853
लमकाः 242
लम्भयति 853
लम्भं लम्भ 854
लयः 365
ललाटन्तपः 313
ललाटपु 732
ललाटिका 510
ललाट्यम् 510
ललाट्यम् 713
लवः 359,365
लवकः 304
लवणः 536
लवणं कृ 137
लवणङ्कारं 398
लवणङ्कृ 137
लवणयति० 259
लवणस्य 849
लवणा 536
लवणीय 849
लवनम् 685
लवनीयः 881
लविता 881
लवित्रम् 351
लविषीढ्व 1070
लविषीध्वम् 1070
लव्यम् 298,685
लषणः 343
लषति 283
लष्यति 283
लष्यते 283
लहिकः 622
लाकृतिः 684
लाक्षणिः 457,462
लाक्षणिकः 481
लाक्षणेयः 457
लाक्षण्यः 462
लाक्षिकः 481
लाक्षिकम् 468
लाघवम् 576
लाङ्गलग्रहः 307
लाङ्गला 823
लाङ्गलीषा 689
लादेशः 82
लाप्यम् 298
लाभं लाभ 854
लामकायनाः 242
लालपीति 243,954
लालभ्यते 261
लालाटिक 539
लालामिकः 539
लावकः 685
लावणिकः 540,936
लावणिकी 425
लाव्यम् 298
लिखितम् 63
लिखित्वा 64
लिङ् 1025
लिनाति 948
लिपिकरः 310

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिप्सते 253
लिप्सुः 976
लिबिकरः 310
लिम्पः 301
लिलावयि 988
लिलिक्षति 253,1029
लिलिखिषति 64,253
लिलिप्सति 253
लिलेखिषति 64
लीढः 1050
लीढम् 773
लीलाकमलम् 164
लीलाम्बुजम् 164
लुचित्वा 64
लुञ्चित्वा 64
लुण्टाकः 81
लुनाति 125,948
लुनीहि 809
लुब्धः 891
लुभित्वा 891
लुम्पति 852
लुलव 43
लुलविथ 711
लुलविथ 818,895
लुलाव 43
लुलुभिषति 253
लुलुवतुः 801
लुलुविढ्वे 1070
लुलुविध्वे 1070
लुलुवुः 803,804
लुलूषति 874,987
लुलोभिष 253
लुण्ठाकः 344
लुवः 801
लुवौ 804
लूनः 873,1031
लूनिः 372,1031
लूनीहि 413
लूयते 711
लेक्ष्यति 1029
लेखः 380
लेखाभ्रुम्म 765
लेखाभ्रेयः 824
लेखित्वा 64
लेढि 1029
लेढुम् 1025,1029
लेलिख्यते 261
लेलिह्यते 261
लेष्टुम् 1027
लेहः 302
लोकम् अधोः 194
लोकम् अधोऽधः 194
लोकम् अध्यधि० 194
लोकम्पृ 765
लोकाञ्राशि० 1093
लोकाधिको० 196
लोकान् ईष्टे 211
लोकेऽधिको० 196
लोत० 869
लोब्धा 886
लोभिता 886
लोभित्वा 891
लोमका 764
लोमवान् 597
लोमशः 597
लोलव 44
लोलुप्यते 260,261
लोलुवः 8,243
लोलूयते 261
लोलूयम् 711
लोलूया 374
लोलूयाञ्चक्रे 266
लोलूयिता 793
लोष्टो नु ३ 1043
लोष्ठवत् 574
लोहमय 526
लोहितक 633,684
लोहितगङ्ग 158
लोहितशबलः 174
लोहितसारङ्ग 174
लोहिताक्ष 653
लोहितायति 105,257
लोहितायते 105,257
265
लोहितायस 649
लोहितिका 634
लोहितैत 715
लोहितोद 762
लौकायति 480
लौकिकः 562
लौहम् 526,528
लौहितीक 626
लौहित्यायनी 427
लौहेष 758

व

वंशक 623
वंशावली 775
वः 35,998
वक्तव्यम् 236
वक्ता 236
वक्ति 129
वक्तुम् 236,1024
वक्त्रच्छायाम् 226
वक्षे 24,394
वक्ष्यति 975
वङ्क्यम् 941
वचनज्ये 719
वचित्वा 64
वच्यात् 417
वज्रणखा 440
वज्रादपि० 208
वञ्चना 376
वञ्चयति 100
वञ्चयते 100
वञ्चित्वा 64
वञ्च्यम् 941
वटजः 729
वटिभः 605
वणिज्यम् 577
वण्ट्शे 1054
वण्शेते 1054
वतिः 789
वत्वा 789
वत्सः 869,1096
वत्सतर 623
वत्सतरार्णम् 688
वत्सता 576
वत्सत्वम् 576
वत्सपाल 728
वत्सप्री 824
वत्समु 744
वत्सलः 597
वत्सशालः 505
वत्ससूः 320
वत्सा 427
वत्सिमा 576
वत्स्सः 1096
वथ्सः 1096
वदः 667
वदावद 667
वधः 368,930
वधकः 930
वधकम् 236
वधिः 232
वधिषीष्ट 797
वधीम् 847
वधु 682
वधु (हे) 957
वधूटी 427
वधूदयः 691
वध्यात् 232
वध्यास्ताम् 232
वध्वक्षि 684
वध्वाः 959
वध्वाम् 960
वध्वै 959
वनम् 70,210
वनवासि 753
वनस्प 739
वनस्पती 1047
वनस्याऽनु 156
वना 683
वनात् आरात् 204
वनाद् ग्रामो० 203
वनाद् योजनं 122
वनाद् योजने 122
वनानि 25,33
वनीवञ्चीति 166,989
वनेकशेरुकाः 166
वनेकिंशुका 166
वनेचरः 309
वनेचर 751
वनेबिल्वकाः 166
वनेवास 752
वन्दना 376
वन्दारुः 340
वन्द्यते 281
वन्द्यम् 713
वमथुः 371
वमिति 880
वमी 344
वयं ब्रूमः 75
वयम् 843,909,910
911
वयस्यः 546
वरः 365
वरजः 752
वरणाः 46,47,485
वरतन्त 518
वराकः 81,344
वराकी 81
वराड् 1027
वरालं लग्नम् 1100
वराहदन् 659
वराहदन्त 669
वरिता 882
वरिमा 827
वरिवर्त्ति 992
वरिवस्यति० 258
वरिषीष्ट 60,882
वरिष्ठः 827
वरीता 882
वरीयान् 827
वरीवर्त्ति 992
वरीवृजत् 981

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरीवृतीति 991
वरीवृत्यते 261,991
वरीवृद्ध्य 991
वरीवृधीति 991
वरीवृश्य 991
वरीवृश्यते 261
वरुणानी 436
वरुणिक 622
वरुता 880
वरूता 880
वरूत्री 880
वरेजः 752
वर्चस्याः 550
वर्चस्वान् 601
वर्ढा 678
वर्णका 934
वर्णमात्रेण 175
वर्णयति 262
वर्णवान् 604
वर्णिका 934
वर्णी 604
वर्तिषीष्ट 59
वर्तिष्यते 106,894
वर्त्तका 934
वर्त्तनः 343
वर्त्तनि 705
वर्त्तिका 934
वर्त्तितम् 878
वर्त्तित्वा 65
वर्त्तिष्णुः 339
वर्त्म 353
वर्त्मना 821
वर्त्स्यति 106,894
वर्द्धनः 300
वर्धनः 343
वर्धन्तु 420
वर्धित्वा 61,65
वर्धिष्णुः 339
वर्मणा 1081
वर्या 293
वर्वर्त्ति 992,1024
वर्षजः 752
वर्षभोग्येण 161,1084
वर्षम् 365
वर्षाभूः 324
वर्षाभ्वौ 804
वर्षिष्ठः 828
वर्षिष्ठे अ 696
वर्षीयान् 828
वर्षेजः 752
वर्ष्यम् 297
वलिभः 605
वल्मीकः 1096
ववतुः 232
ववमतुः 817
ववमिथ 817
ववर्थ 897
ववुः 232
ववृते 981
ववृम 875
ववृमहे 875
ववृव 875
ववृवहे 875
ववौ 232,675
वव्रश्च 38,670,981
वव्रश्चुः 663
वशः 365
वशंवदः 82,314
वश्यः 545
वषड् अग्नये 199
वषाभ्वै 110
वष्टः 671
वसतु 389
वसनक्नोपं 400
वसनार्ण 688
वसन्ता 847
वसन्तीह 335
वसव्यः० 552
वसिता वस्त्रम् 343
वसिष्ठाः 241
वसुधित 972
वसुभिर्नो अव्यात् 695
वसुवनिः 312
वस्त्रक्रीती 437
वस्त्रची 737
वस्त्रच्छ 745
वस्त्रच्छन्ना 438
वस्त्रयुगाणि 1084
वस्त्रयुगि 1084
वस्त्रयुगेण 1084
वस्त्रान्त 744
वस्निकः 534,563
वस्से 975
वहः 379
वहतिः 434
वहति 129
वहती 434
वहद्गु 156
वहंलिहः 313
वह्यम् 293
वा 23,79,132
वांशकठि 543
वांशभारिक 563
वांशिकः 563
वाक् 47,68,349 1095,1099
वाकिनका 463
वाकिनिः 463
वाक्क् 1095
वाक्कल 741
वाक्कलहः 162
वाक्छयनम् 1017
वाक्छेते 1101
वाक्त्वच 651
वाक्त्विष 651
वाक्पति 115
वाक्पतिः 718
वाक्पतिः 749
वाक्पत्नी 707
वाक्यकरः 310
वाक्यपदी 515
वाक्यम् 292,298,941
वाक्शेते 1101
वाक्षुः 1062
वाक्षु 1063
वाग् 1024,1099
वागीशः 1029
वाग्मी 602,1102
वाग्घरि 1101
वाग्घसति 30
वाग् नयति 1094
वाग्भिः 115
वाग्भिः 706
वाग्वाद 772
वाग्विप्रु 651
वाग्हरि 1101
वाग् हसति 30
वाङ्नय 1094
वाङ्नयनम् 1017
वाङ्मनसे 645
वाङ्मय 526,1095
वाचः 82
वाचंयमः 314
वाचंयम 765
वाचस्पतिम् 1061
वाचा 81
वाचा 706
वाचाट 603
वाचाल 603
वाचिकः 622
वाचिक 634
वाचे विसर्जनात् 1077
वाचोयु 753
वाच्यति मूकः 255
वाच्यम् 448,941
वाजसनिः 312
वाजसनेयि 518
वाज्रिणः 831
वाञ्छति 388
वाञ्छेत् 388
वाटरम् 521
वाटवोः 81
वाडवः 456
वाडवम् 477
वाडवह 726
वाडवेयः 456
वाडव्यम् 476
वाड्वालि 772
वाणिज्यम् 577
वातकी 603
वातच्छेद्यानि 163
वातण्डी 454
वातण्ड्यः 454
वातण्ड्ययुवतिः 29
वातन्धमः 313
वातन्धयः 313
वातमजः 312
वातमज 764
वातवती 604
वाताय कपिला० 198
वातूलः 476
वातूल 602
वात्सकम् 476
वात्सप्रेय 824
वात्सम् 576
वात्सशालः 505
वात्सी 825
वात्सीब 733
वात्सीयः 492
वात्सोद्धर 516
वात्स्याय 433
वात्स्यौ 76,77
वादयते 105
वादयाञ्च 794
वानरश्वा 650
वानरसे 803
वानस्पत्य 449
वान्तः 876
वापयति 677
वाप्यम् 298
वाम् 998
वामः 929
वामदेव्य 470
वामरथाः 239
वामरथ्यः 239

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामलोच	440	वार्त्तिकिक	511	वासिष्ठः	455	विकिरः	703	विजिग्ये	939
वामोरूः	444	वार्द्धकम्	476,579	वासिष्ठः पिता	238	विकुरुते	91	विजिग्राह	1050
वामोरूभा	756	वार्द्ध्रम्	528	वासिष्ठः पुत्र	238	विकुर्वते	91	विजिघृक्षु	669
वाययति	677,930	वार्द्ध्री	528	वासिष्ठम्	469	विक्रमते	92	विजिघृक्षुः	1025
वायव्यम्	473	वार्धीणसः	1081	वासिष्ठाय	485	विक्रयिकः	534	विजिग्रः	301
वायसवि	480	वार्धुषिक	537	वासिष्ठिक	511	विक्रामति	92	विट्	442
वायुः	238,253	वार्मणः	832	वासिष्ठी	446,511	विक्रीणीते	85	विट्छूद्रा	221
वायुषु	1062,1063	वार्मिकाय	463	वासुः	353	विक्रीता	437	वितत्य	790.
वायू इति	14,698	वार्म्मतेय	516	वासुदेवः	455	विक्षावः	359	वितपते	89
वायो आया	693	वार्यम्	713	वासुदेव	510,517	विक्षिपः	301	वितर्त्स्य	892
वाय्वोः	43	वार्षलः	478	वासुदेव	737	विक्षोब्धोः	396	वितस्तान	978
वारणपु	377	वार्षिकः	481,500	वासुदेवकः	711	विख्ये	395	विति	16
वारत्रम्	556	वार्षिकम्	501	वासुदेवं नम०	199	विगतका	660	वितिष्ठते	87
वारध्र	556	वार्ष्यायणि	463	वासुदेवार्जुनौ	192	विगून	1031	वितिष्ठमा	88
वारयति	120	वावच्यते	261	वास्तव्यः	291	विग्नः	875,1031	वितूस्तथति	259
वारयध्वा	848	वावदीति	243,954	वास्तव्योऽहम्	215	विग्रः	655	वितृदः	396
वाररुच	520	वावद्यते	261	वास्तेयः	625	विघनः	369	वितेनिरे	807
वाराणसीदृश्वा	328	वावन्द्यते	261	वास्तेयम्	508	विघसः	366	वित्तः	411,1033
वाराणसेयः	488	वावप्यते	261	वास्तोष्पती	474	विघ्नः	365		1034
वाराहकम्	485	वावश्यते	671	वास्तोष्पत्य	474	विघ्नितः	586	वित्तिः	373
वाराही	693	वावस्यते	261	वास्रः	470	विचकरुः	965	वित्थ	411
वारि	112,841	वावहिः	348	वास्रयुगिक	571	विचक्षणः	237	विद	411
वारिजः	329	वावह्यते	261	वास्त्वम्	833	विचक्षणः पण्डितः	236	विदतुः	411
वारिणः	855	वावाञ्छ्य	261	वास्त्व्यम्	833	विचति	670	विदथुः	411
वारिणा	855	वाव्यश्यते	982	वाहभ्रड्	324	विचतुर	644	विददरतुः	965
वारिणि	855	वाव्रज्यते	261	वाहयति	130	विचर्चिका	376	विदद्रतुः	965
वारिणी	855	वाशनः	300	वि	132	विचालये	390	विदन्	845
वारिणे	855	वाशिनाय	833	विंशः	589,590,822	विचितः	670,674	विदन्ति	411
वारिणोः	855	वाशिलम्	484	विंशकः	557,822	विचित्रक	719	विदा	375
वारिधिः	372	वाष्पायते	257	विंशतिः	565	विचित्रा जगतः०	216	विदाङ्करोतु	269
वारिपथिक	568	वासः	975	विंशतिकः	557	विचित्राहि	216	विदाङ्कुर्व	269
वारिषेणः	1074	वासगृहम्	164	विंशतितम	590	विचुक्रुशुः	978,980	विदाञ्चकार	268
वारीणि	25,855	वासतेय	547	विंशत्या	822	विचुक्षुभुः	978	विदामक्रन्	270
वारुड	634	वासनम्	558	विंशं शतं	588	विचेतीकरो	688	विदारी	530
वारुडकम्	520	वासन्तिकः	481,501	विकटम्	584	विचेतीभव	638	विदितः	873
वारुडकिः	452	वासन्ती	506	विकत्थी	341	विचेती स्यात्	638	विदित्वा	57
वार्करूप्य	490	वासयते	105	विकपितः	786	विच्छायति	263	विदुः	411
वार्केण्य	627	वासयाम	848	विकरोति	91	विच्यते	281	विदुधवि	895
वार्णवः	495,516	वासवद	481	विकस्तः	880	विजनितोः	396	विदुरः	345
वार्त्तः	597	वासवदत्ता	515	विकाकुत्	660	विजयते	86	विदुषः	819
वार्त्तिकंसू	480	वासवदत्ते	455	विकाषी	341	विजावा	324,790	विदुषिक	760

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदुषिचे 760
विदुषित 760
विदुषिरू 760
विदुषीक 760
विदुषीचे 760
विदुषीत 760
विदुषीरू 760
विदेयम् 288
विदेशः 183
विद्धः 669,779
विद्म 411
विद्मः 411
विद्मा हि 777
विद्यते भो 406
विद्यमानके 440
विद्यया यशः 201
विद्या 373
विद्याचुञ्चु 583
विद्याप्रदः 306
विद्यामदः 367
विद्यालयः 691
विद्युत् 349
विद्युत्वान् 117,1019
विद्योतते 141
विद्व 411
विद्वः 411
विद्वत्कल्प 618
विद्वत्तम 616
विद्वद्देशीय 618
विद्वद्देश्य 618
विद्वद्भ्याम् 1037
विद्वन्म 764
विद्वस्यते 256
विद्वान् 47,781,845, 1037
विद्वायते 256
विद्वार्ल्ँ लिखति 1100
विधमः 301
विधयः 301
विधुन्तुदः 313
विधुरः 346
विधूतः 876
विध्यते 281
विनङ्क्ष्य 852
विनयति 91
विनयन्ते 91
विना 23,584
विनाशकः 342
विनीयः 296
विनेयम् 296
विन्दः 301
विन्दति 852
विन्दुः 347
विन्द्रम् 684
विन्नः 1033
विपक्षः 183
विपत्तिः 372
विपथम् 225
विपन्नः 1030
विपर्शुः 746
विपव्यम् 296
विपश्यः 301
विपाशयति 261
विपिबः 301
विपूयो मुञ्जः 296
विपृच्छम् 395
विप्रकृष्टा 750
विप्रकृष्टादागतः 165
विप्रदर्श 399
विप्रदन्ति 94
विप्रवदन्ते 94
विबुधसख 648
विभाकरः 310
विभाजम् 395
विभाषा श्वेः 26
विभुवम् 805
विभुवे 805
विभूः 350
विभ्राट् 349
विभ्राड् 1027
विभ्वम् 804
विभ्वी 434
विमलाप 644
विमानत्व 579
वियत् 372
वियमः 366
वियूय 795
विरजीकरो 638
विरजीभव 638
विरजी स्या 638
विरमति 103,120
विरमन्ति 103
विरहीकरो 638
विरहीभव 638
विरहीस्या 638
विराट् 320
विरावः 358
विरिब्धः 876
विरौति 950
विलखाः 790
विलगितः 786
विलाता 677
विलापय 931
विलाय 677
विलायय 931
विलालय 931
विलाषी 341
विलास 341
विलिखः 301,396
विलीनय 931
विलीय 677
विलुभितः 891
विलेता 677
विवक्ति 244,986
विवक्षति 253
विवत्सति 253,975
विवधिक 535
विवयिथ 237
विवरिषः 883
विवरिषति 253
विवरिषते 253,883
विवरीष 883
विवरीषते 253
विवर्तिषते 59,65,106, 253
विवर्धिषते 253
विवष्टि 244,986
विवाय 237
विवाहः 357
विविक्षति 253
विविदिवा 899
विविदिष 253
विविदिषति 57
विविद्वा 899
विविशिवा 899
विविशूरा 773
विविश्वा 899
विवृत्सति 106,253 894
विवेकी 341
विवेथ 237
विवेद 268
विव्यतुः 237
विव्यथे 982
विव्ययिथ 898
विव्याच 670
विव्याध 670,674
विव्याय 675
विव्युः 237
विशयः 361
विशशरतुः 965
विशश्रतुः 965
विशसितः 877
विशस्तः 877
विशस्ता 880
विशाखः 46,504
विशाखा नक्षत्र-मिन्द्राग्नी देवता 75
विशाखे 75
विशाङ्कट 584
विशायः 361
विशाल 584
विशाललो 440
विशालाक्ष 653
विशालिक 622
विशीर्णः 863,1038
विश्नः 371,783 1094
विश्नानाम् 785
विश्रयी 344
विश्रामस्थली 164
विश्राम्येत् 388
विश्रावः 359
विश्वजनीनच्छ 684
विश्वजनीनम् 554
विश्वजनीयम् 555
विश्वतस्कः 1061
विश्वतस्करत् 1061
विश्वतो० 324
विश्वथा 626
विश्वदेव 733
विश्वदेव्या 777
विश्वद्र्य 769
विश्वपः 821
विश्वम्भरः 315
विश्वराज् 776
विश्वसृट् 324
विश्वसृड् 1027
विश्वानरः 776
विश्वामित्रः 777
विश्वाराट् 320
विश्वाराड् 776
विश्वाराड्भ्या 776
विश्वेदेवा 661
विश्वौहः 819
विषन्ति 1072
विषपुच्छी 440
विषभुक् 324
विषमम् 1072
विषमरू 513
विषमीयम् 513
विषमेण 200
विषयः 1067
विषष्वाण 1067
विषसाद 1079

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

विषहते 1067
विषितः 1067
विषिषेविषते 1067
विषीव्यति 1067
विषुप्तः 1072
विषूतिः 1072
विषेवते 1067
विष्कन्त 1068
विष्कन्तुम् 1068
विष्कभितुम् 1069
विष्कभ्नाति 1069
विष्किरः 703
विष्टकर्णः 774
विष्टरः 1073
विष्टरम् आसनम् 1073
विष्टारः 360,1073
विष्टौति 1067
विष्ठलम् 1074
विष्ण इति 16
विष्णविति 16
वृष्णिकु 721
विष्णुपुरम् 643
विष्णुश्रुतः 740
विष्णू इमौ 14
विष्णूयति० 255
विष्णो इति 16
विष्णोऽव 693
विष्फालः 675
विष्फुरति 1069
विष्फुलति 1069
विष्यः 546
विष्यन्दते 1068
विष्यात् 1072
विष्वक्से 1075
विष्वग्यु 769
विष्वजते 1067
विष्वणते 1067
विसखाः 322
विसवान् 486
विसारः 357
विसिस्म्युः 978
विसृपः 24,396,1077
विस्कन्त 1068
विस्कन्तुम् 1068
विस्कन्नः 1068
विस्तः 1072
विस्तरः 360,1073
विस्तारः 360,1073
विस्पष्टक 719
विस्पष्टब्रा 719
विस्फार 675
विस्फालः 675
विस्फुरति 1069
विस्फुलति 1069
विस्माप 678
विस्मापयति 100
विस्मापयते 100
विस्माये 678
विस्यन्दते 1068
विस्रब्धः 1077
विस्रम्भी 341
विस्रंसिकायाः 1077
विहगः 314
विहङ्गमः 314
विहङ्गिका 624
विहवः 367
विहिंत्रिम 972
विह्वयते 90
वीकाशः 776
वीक्लेदः 775
वीणादुन्दु० 191
वीणापाणिः 186
वीणी 600
वीतये 373
वीपम् 770
वीमार्गः 380
वीरणकन्था 225
वीरणपुष्प 727
वीरपत्नी 431
वीरपुरुष 171
वीरपुरुषकः 186
वीरमातर 661
वीरम्मन्याः 326
वीरुधः पार० 340
वीर्या 683
वुरीत 864
वुवूर्षति 883
वुवूर्षते 883
वूर्यते 281
वृकगर्त्तीय 496
वृकति 635
वृकप्रेक्षी 729
वृकभयम् 68
वृकाजि 744
वृकाजिनः 509
वृकावलु 740
वृकोदरः 733
वृक्ण 670
वृक्णः 1031,1061
वृक्षः 210
वृक्षक 622
वृक्षत्वम् 792
वृक्षस्फ 1057
वृक्षः फलति 1057
वृक्षम् अभि 141
वृक्षयोः 957
वृक्षवान् 596,1019
वृक्षं वृक्षं 141
वृक्षं वृक्षं प्रति 141
वृक्षश्छादयति 1056
वृक्षस्य उपरि० 204
वृक्षस्य शाखा 211
वृक्षात् पतति 119
वृक्षान् 1091
वृक्षावृश्य 699
वृक्षा स्था 1057
वृक्षाः स्था 1057
वृक्षास्स्था 1057
वृक्षेभ्यः 108
वृक्षैः 836
वृक्षौ अत्र 14
वृजिकः 495
वृजिगार्ह 722
वृढः 773
वृणा 394
वृणाति 948
वृत्तः 878
वृत्ततः 636
वृत्तिवान् 597
वृत्यम् 295
वृत्यः 294
वृत्रं हन्ति 243
वृत्रघ्नः 938
वृत्रयुगिणौ 1084
वृत्रहच्छत्रम् 1015
वृत्रहणौ 1083
वृत्रहभ्याम् 1015
वृत्रहा 327,782
वृत्वाय 849
वृद्धः 876
वृद्धकुमा 731
वृद्धपति 431
वृद्धपत्नी 431
वृद्धा 427
वृद्धोक्षः 645
वृध् 48
वृधि 808
वृध्यम् 295
वृन्दारक 602
वृन्दारका 934
वृन्दारिका 934
वृन्दिष्ठः 828
वृन्दीयान् 828
वृश्चति 670
वृश्च्यते 281
वृषः 712
वृषण्यतः 971
वृषण्यति 971
वृषण्वत् 117
वृषण्वसुः 117
वृषण्वान् 117
वृषदन् 659
वृषदन्त 659
वृषल वृषल 995
वृषलस्य 212,753
वृषली 441,754
वृषलीप 718
वृषलेषु आसीने० 206
वृषल्याः 754
वृषस्यति 849
वृषस्यन्ती 849
वृषाकपायी 431
वृषाश्वे 191
वृषीयति 849,971
वृषीष्ट 883
वृष्टिः 373
वृष्णो अंशु 696
वृष्यम् 297
वेगः 704
वेणु 713
वेणुकीय 496
वेतस्वान् 486
वेत्ति 411
वेत्थ 411
वेत्सि 411
वेदः 380
वेद 411
वेदः 704
वेदना 376
वेदपः 301
वेदपुण्य 741
वेदवित् 320
वेदाध्यायः 305
वेदिषत् 320
वेद्मि 411
वेधाः 782
वेपथुः 371
वेला 390
वेला भोक्तुं 389
वेविजानि 950
वेविश्यते 261
वेवीयते 238,671
वेवेक्ति 984
वेवेष्टि 984
वेव्यते 665

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेशः 356
वेशन्तः 835
वेशोभगीन 551
वेशोभग्यः 551
वेषेण यतिः 201
वेष्टः 380,704
वेष्टुम् 1027
वेष्यः 572
वैंशतिकम् 533
वैकयः 241
वैकर्णः 456
वैकर्णिः 457
वैकर्णेयः 457
वैणिकः 541
वैतण्डिकः 573
वैतनिकः 534
वैतस्तः 455
वैत्रकीय 496
वैदथिनः 830
वैदभृत्य 627
वैदिकः 112
वैदिशम् 483
वैदूर्यः 514
वैदेहः 465
वैदेही 467
वैद्यामाथि 538
वैद्यी 825
वैधूमाग्नी 484
वैनतेयः 82,451,455, 456,834
वैनयिक 634
वैनयिकी 634
वैन्यः 462
वैपाशोमत्स्यः 13
वैभाजित्र 540
वैभुजाग्न 494
वैमनः 831
वैमानिकः 533
वैमुक्तः 591
वैयाकर 726
वैयाकरण० 221
वैयाकरणः 480,921
वैयाकरणख० 170
वैयाकरणपाश 615
वैयाकरणरूप 618
वैयाकरणश्चौरः 170
वैयाघ्रः 470
वैयाघ्रपद्य 38
वैयासकिः 452,921
वैयुष्टम् 571
वैरकारः 311
वैरङ्गिकः 566
वैरायते 258
वैवधिकः 535
वैशन्तः 548
वैशन्ती 548
वैशस्त्रम् 540
वैशाखः 573
वैशाख 506
वैशारदी 577
वैश्या 442
वैश्वधेन 926
वैश्वधैन 926
वैश्वामित्रः 455
वैश्वामित्र 469
वैश्वामित्रि 511
वैष्टापुरेयः 457
वैसारिक 631
वैहीनरिः 920
वोचेम 288
वौ३षट् 1042
व्यजः 379
व्यतिक्रामः 945
व्यतिगच्छः 84
व्यतिघ्नन्ति 84
व्यतिजल्प 85
व्यतिपठ 85
व्यतिपाकः 362
व्यतिपुनते 84
व्यतिभाते 84
व्यतिलुनते 84
व्यतिशेश्य 836
व्यतिसर्प 84
व्यतिहस 85
व्यतिहिंस 84
व्यतिहे 975
व्यत्यपुक्ष 944
व्यत्यरे 798
व्यत्यले 798
व्यथ्यः 296
व्यधः 366
व्यन्तः 746
व्यरंसीत् 103,901
व्यर्णः 877
व्यलिम्पन् 852
व्यवहारस्य साक्षी 207
व्यवहारे साक्षी 207
व्यषहत 1067
व्यषीदत् 1067,1079
व्यषेवत 1067
व्यष्टभ्नात् 1066
व्यष्टौत् 1067
व्यष्वजत 1067
व्यष्वणत् 1067
व्यसहत 1067
व्यसीदत् 1079
व्यसीव्यत् 1067
व्यस्तौत् 1067
व्यस्वजत 1067
व्यहनि 773
व्यह्नि 773
व्याकरणक 624
व्याकरणेव 93
व्याघ्रक 621
व्याघ्रपाद् 658
व्याघ्रवान् 600
व्याघ्रिल 621
व्याघ्री 184
व्याजिघ्रः 301
व्याडिशाला 729
व्याददते 86
व्याददाति 86
व्यादृक् 320
व्याधः 302
व्यानशे 983
व्याभाषकः 342
व्यावक्रोशी 362,630 922
व्यावलेखी 362
व्यावहारि 543
व्यावहासी 362,630
व्युष्टायां० 218
व्यूढोरस्क 186,660
व्यूढोरस्केन 36
व्येमानम् 814
व्योमचरः 309
व्योमन् 846
व्रजः 379
व्रज्या 373
व्रश्चित्वा 891
व्रातीनः 583
व्रीहयः 530
व्रीहिक 600
व्रीहिप्रस्थ 717
व्रीहिभिर्यजेत 1010
व्रीहिमती 775
व्रीहिमय 527
व्रीहिमान् 600
व्रीहियवम् 223
व्रीहियवाः 223
व्रीहियवौ 224
व्रीही 600
व्रैहः 524
व्रैहम् 527
व्रैहेयकम् 580
व्लिनाति 948
व्लेपयति 930,950

श

शंय्य 605
शंय्युः 605
शंवद 308
शंशम्यते 261
शंशय्यते 967
शंशान्तः 782
शंस्थः 324
शंस्थाः 323
शंस्यम् 294
शंस्यम् 713
शंस्ता 880
शकः 467
शकटिः 434
शकटी 434
शकटे आयुक्तो गोः 207
शकन्धुः 689
शका 933
शकृत्करिः 311
शकृत्कारः 311
शकृन्ति 855
शकेयम् 288
शक्तिः 374,434
शक्तिके 996
शक्तिग्रहः 307
शक्ती 434
शक्नुमः 810
शक्नुवः 810
शक्नुवन्ति 801
शक्नोति भोक्तुं 406
शक्नोम्यव 406
शक्यम् 292
शक्रः 679
शक्रगः 307
शखाहणम् 1082
शङ्करः 308
शङ्कव्य 824
शङ्कव्यम् 553
शङ्का 374
शङ्कितुम् 1099
शङ्कुकर्णी 442
शङ्कुलाख 715
शङ्कुलाखण्डः 68,161
शङ्कुष्ठः 1074
शङ्खपुष्पी 442
शङ्खभित्री 437
शङ्खवीणादुन्दु० 191
शतं दा 390

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतं दायी 218
शतकम् 557
शतक्रतवः 958
शतक्रत्वः 958
शततमः 590
शतधनु 657
शतपथिकः 481
शतपदी 658
शतम् 565
शतरुद्रिय 473
शतरुद्री 473
शतस्य दीव्यति 213
शतस्य पणते 213
शतस्य प्रतिदीव्यति 213
शतस्य व्यव० 213
शतात् बद्धः 202
शतिकः 529,561
शतिकम् 557
शतेन बन्धितः 202
शत्यः 529,561
शत्यम् 557
शत्रुंसहः 315
शत्रुघातः 316
शत्रुघ्नान् 938
शत्रुं जयेत् 390
शत्रुञ्जयः 315
शत्रुन्तपः 315
शत्रुहः 316
शद्रुः 345
शनैः 210
शनैर्गङ्ग 158
शनैश्चरः 309
शन्तः 605
शन्तातिः 552
शन्तिः 605
शन्तुः 605
शन्ध्वम् 954
शपति 87
शपते 87,123
शप्यम् 292
शफरीयम् 487
शफोरूः 444
शबरजम्बु 493
शबल 432
शबलगुः 71
शबली 432
शब्दकारः 311
शब्दनः 342
शब्दप्राट् 350
शब्दप्राड् 783,1027
शब्दानाम् आचार्यस्य 216
शब्दानाम् आचार्येण 216
शब्दायते 258
शब्दार्थौ 515
शमः 712
शमः 929
शमंशमम् 806
शमकः 929
शमयिता 797
शमयिष्य 796
शमितः 794,878
शमिता 797
शमित्वा 891
शमिष्ठलम् 1074
शमिष्यते 796
शमी 341
शमीदृष 651
शमीध्वम् 954
शमीरः 623
शमीवान् 1019
शमु उक्त 1056
शम्बः 605
शम्बस्ति 1056
शम्बाकरो 640
शम्भवः 308
शम्भुः 350
शम्भूराज 773
शयते 243
शयनम् 378
शयनाय इच्छति 199
शयानाः भुञ्जते० 337
शयालुः 345
शयितः 62
शयितम् 217,378
शयितवान् 62
शयीत 966
शय्यते 281,967
शय्या 373,1102
शय्योत्था 403
शय्य्या 1102
शरः 365
शरकाण्ड 715
शरकुण्ड 738
शरचापम् 192
शरजः 752
शरण्यः 546
शरदिज 752
शरधिः 372
शरपुच्छी 440
शरमय 526,527
शरवणम् 1081
शरारुः 348
शरावती 775
शरेजः 752
शर्करा 486
शर्करिकः 484,486
शर्करिलः 598
शर्करीयः 486
शर्त्स्यति 894
शर्द्धञ्जह 312
शर्द्धञ्जहामाषाः 312
शर्मणा 820,823
शर्मा 1095
शर्म्मा 1095
शर्वाणी 436
शलभच्छात्रम् 226
शलभोत्थः 306
शलाकां व्यव० 213
शलाकाकाणः 161
शलाकापरि 155
शलालुक 541
शल्कः 869
शशवत्थ 896
शशः क्षुर 1057
शशः त्सरुः 1057
शशरतुः 817
शशरिथ 817
शशसतुः 817
शशसिथ 817
शशासतुः 788
शश्वच्चकार 334
शश्वत्तमः 705
शश्वदकरोत् 334
शस्त्रम् 351,869
शस्त्रेण भेत्ता 215
शस्यते 281
शस्यम् 292,294
शांशयाः 920
शाकटः 544
शाकटिकः 533
शाकपणः 367
शाकपार्थिवः 174
शाकप्रति 154
शाकलक 523
शाकलम् 468
शाकलाः 523
शाकलिक 468
शाकलिका 492
शाकलिकी 492
शाकल्यस्य० 196
शाकुनिकः 537
शाकुन्तल 515
शाकुलिकः 538
शाकृत्कः 937
शाक्तिकः 534
शाक्तीकः 541
शाक्तीक ३ 1044
शाक्तीकी 426
शाख्यः 625
शाङ्कुपथि 568
शाटकाः 23
शाट्यायनि 518
शाण्डिक्यः 81
शाण्डिक्य 516
शातघ्निक 541
शातनः 378
शातपथ 481
शातभिष 505
शातमानम् 558
शातयति 932
शादयति 932
शाद्वलः 486
शाधि 785,788,808
शान्तः 789,878,1099
शान्त्वा 891
शापिण्डीनि 731
शाफरिकः 538
शाबराः 627
शाब्दिकः 537
शामं शा 806
शामिता 797
शामिष्यते 796
शामीलम् 525,528
शामीली 525
शामीवत्य 627
शाययति 104
शायिका 376,377
शारः 358
शारदः 506
शारदकः 503
शारदण्डिः 466
शारदम् 500
शारदिक 500
शारद्वतः 452
शारद्वतायनः 452
शारावः 470
शारिकावणम् 1081
शारिकुक्षः 655
शारीरकी 515
शार्करः 486,598
शार्करकः 486
शार्करम् 626
शार्कराक्ष्या 445
शार्करिकः 486
शार्करिक 533

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्करीधा 491
शार्ङ्गजग्धा 438
शार्ङ्गजग्धी 438
शार्ङ्गधन्वा 657
शार्ङ्गरवी 445,681
शार्ङ्गवेरि 533,535
शार्ङ्गिञ्जय 1093
शालङ्कायनः 452,627
शालपर्णी 442
शालभञ्जि 477
शालाकिकः 532
शालातुरी 516
शालाप्रस्थ 730
शालाबिल 732
शालालुक 541
शालावत्य 627
शालीनः 583
शालीयः 5,45,54,70, 82,492
शालेयम् 580
शाल्मलिकी 497
शाशद्यते 261
शाशय्यते 261
शाष्कुलि 516
शाष्कुलिक 477,540 542
शासति 665,788
शास्ति 129
शास्त्रप्रज्ञः 300
शास्त्रीयः 521
शास्त्रे वदते 93
शिंशयावृक्षः 171
शिंषन्ति 39
शिक्षकः 481
शिक्षति 976
शिक्षते 87
शिक्षयिष 889
शिक्षा 108,113
शिक्षाणो अस्मिन् 1088
शिखावल 599
शिखावलम् 487
शिखावान् 596,600
शिखी 600
शिङ्गा 375
शिण्ढि 39,40
शितिः 432
शितिककु 739
शितिपादः 739
शितिलला 739
शित्योष्ठः 739
शिनिवासु 721
शिरःपेषं 403
शिरसा खल्वाटः 201
शिरस्पदम् 1060
शिरस्यति 679
शिरस्याः 679
शिरीषवणम् 1082
शिरीषवनम् 1082
शिरीषाः 73
शिरोग्रीवम् 220
शिरोधिः 372
शिरोर्तिः 376
शिलवह 763
शिलेयम् 625
शिवकेशवौ 191
शिवच्छाया 683
शिवताति 552
शिवपुर 732
शिवाय नमः 199
शिवायोम् 690
शिवासो अव 695
शिवेहि 690
शिशाङ्किष 253
शिशयिष 97,253
शिशयिषते 58
शिशीके 663
शिशुः 427
शिशुक्रन्दी 515
शिशुः मातुर० 211
शिशृत्सति 894
शिश्ये 966,967
शिश्रावयिष 988
शिश्रियिव 873
शिश्रीषति 889
शिश्वा 958
शिश्वाय 26,672
शिश्वाययि 673
शिश्वियतु 672
शिश्वियु 672
शिष्टः 788,1063
शिष्यः 294,788
शिष्यते 281
शिष्येण सह० 201
शीघ्रायते अश्वः 256
शीतः 671
शीतं 1032
शीतकः 592
शीतभोजी 325
शीतलाच्छाया 684
शीतालु 602
शितिनाः 655
शीतोदक 731
शीतोष्णम् 224
शीतोष्णे० 224
शीधुपः 307
शीधुपी 307
शीनम् 671,1032
शीयताम् 97
शीयते 97,947
शीर्णः 1030
शीर्णिः 1031
शीर्णिणः 372
शीर्यते 281
शीर्षघाती 317
शीर्षच्छेद्यः 566
शीर्षण्यः 679
शीर्ष्णा 679
शीर्ष्णे 679
शीशांसते 251
शुकबकम् 223
शुकबकाः 223
शुक्रियः 472
शुक्लकर्ण 734
शुक्लतमे 753
शुक्लतरे 753
शुक्लता 577
शुक्लत्वम् 577
शुक्लम् 77
शुक्ला 1010
शुक्लिमा 577
शुक्लीकरो 182,637
शुक्लीं करोति 182
शुक्लीकृत्य- 133,134 182
शुक्लीभव 638,970
शुक्ली स्या 638
शुचः 801
शुचित्वा 65
शुचीकरो 968
शुची भव 968
शुची स्यात् 968
शुण्डारः 623
शुद्धदन् 659
शुद्धदन्त 659
शुद्धधियौ 804
शुनः 819
शुनःपुच्छ 754
शुनःशेप 754
शुनस्कर्णः 1060
शुना 709
शुना लेह्यः 163
शुना सीरी 474
शुना सीर्य 474
शुनिन्धयः 312
शुनी 433
शुनोला 754
शुन्यम् 553
शुभंयः 821
शुभंयाः 323
शुभंयावानः 324
शुभम् 605
शुभितम् 287
शुभित्वा 65
शुभ्रदन् 659
शुभ्रदन्त 659
शुवतुः 672
शुशाव 26,672
शुशावयिष 673
शुशुभिष 253
शुशुवुः 672
शुशोभिष 253
शुश्रावयिष 988
शुश्रुम 875
शुश्रुव 875
शुश्रूषते 96,253
शुश्रूषेण्यः 396
शुश्रोथ 874
शुष्कः 712
शुष्कः 1032
शुष्कपेषं 400
शुष्कमु 734
शुष्यद्ध्र 1101
शुष्यद्ह्र 1101
शुष्यन्ति 104
शूद्रकः 620
शूनः 669,875
शून्यम् 553
शूयते 281
शूरमानिभिः 326
शूरसेनी 445,467
शूर्पणखा 440,1081
शूर्पनखा 441
शूर्पनखी 441
शूलाकरो 641
शूल्यम् 471
शृगालग 496
शृङ्खलक 593
शृङ्गारक 602
शृङ्गिणः 600
शृणाति 948
शृणुधी 808
शृणुयात् 903
शृणुयुः 949
शृणोत 848

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृणोति	283	शोभे	847	श्येनी	432	श्रीकुल	763	श्लक्ष्णमुखदे	758
शृतम्	672	शोशूयते	672	श्यैनम्पा	766	श्रीणाम्	110,851	श्लक्ष्णयति०	259
शेकुष्ठः	1074	शोश्रूयते	261	श्रथाय	285	श्रीमद्भी	773	श्लाघते	123
शेताम्	966	शोषयते	104	श्रथित्वा	63	श्रीयते	281	श्लाघा	374
शेते	83,966	शौकम्	475	श्रथ्नीते ग्रन्थः	289	श्रीस्रजम्	651	श्लेषः	302
शेते (कटे)	126	शौक्रेयी	467	श्रद्धा	375	श्रुतिः	372	श्लेष्मघ्न	317
शेते (पर्यङ्के)	126	शौक्ल्यम्	577	श्रद्धालुः	345	श्रुधी	808	श्लोककारः	311
शेयम्	967	शौङ्गः	456	श्रद्धावान्	597	श्रूयते	66,281	श्वः कर्त्ता	1003
शेरते	836	शौङ्गिः	456	श्रन्थना	376	श्रेणिकृता	172	श्वठः	714
शेरे	847	शौचि वृक्षी	447	श्रन्थित्वा	63	श्रेणिकृता	723	श्वनिशम्	227
शेवलिक	622	शौचि वृक्ष्या	447	श्रपिता	672	श्रेणीभूता	968	श्वनिशा	227
शेश्वीयते	672	शौण्ठिकम्	533	श्रमश्चेद	384	श्रेथतुः	816	श्वयथुः	371
शेश्वीयमा	672	शौण्डिकः	513	श्रमी	341	श्रेयः (युद्धात्)		श्वलिडत्र	1029
शैंशपम्	525	शौनकः	453	श्रयिता	873	श्रेयसिक	760	श्वलिड् नयति	1095
शैक्षितः	455	शौनकायनः	453	श्रवः	359	श्रेयसिगो	760	श्वलिण् नयति	1095
शैखण्डाः	823	शौनकिनः	518	श्रवणा	469	श्रेयसिचे	760	श्वलेह्यः	163
शैखावत्य	627	शौन्तिबाहे	459	श्रविष्ठः	504	श्रेयसितम	760	श्वशुरात् जिह्वेति	203
शैथिल्यकरो०	310	शौभ्रेयः	457	श्राणाकंस	727	श्रेयसितर	760	श्वशुरौ	78
शैब्यः	626	शौभ्रेयी	467	श्राणिकः	542	श्रेयसिब्रु	760	श्वशुर्यः	451,459
शैर्षच्छेदिकः	566	शौर्पम्	58	श्राताः	674	श्रेयसिम	760	श्वशृगालम्	222
शैलालम्	519	शौर्पिकम्	558	श्राद्धकरः	310	श्रेयसिरू	760	श्वश्रूः	443
शैलालाः	823	शौल्कमाथि	538	श्राद्धिकः	594	श्रेयसिह	760	श्वश्रूश्वशुरौ	78
शैलालिनः	519	शौल्कशा	512	श्राद्धी	594	श्रेयसीक	760	श्वः श्रेयस	646
शैली	577	शौवनः	823	श्राम्यति	945	श्रेयसीगो	760	श्वसिति	902
शैवः	454,482	शौवम्	879	श्रायः	358	श्रेयसीचे	760	श्वस्तनः	501,502
शैवपुरम्	491	शौवस्तिक	500	श्राययति	263	श्रेयसीतम	760	श्वस्तनम्	490
शैवरूप्य	490	शौवापद	922	श्रायसम्	920	श्रेयसीतर	760	श्वस्त्यः	501
शैशिरम्	501	श्माशानि	543	श्रायात्	799	श्रेयसीबु	760	श्वस्त्यम्	490
शैष्यकः	513	श्यामाकिक	537	श्रावणः	472	श्रेयसीम	760	श्वाकर्णः	778
शोकजः	329	श्यामायनः	457,493	श्रावणिकः	472	श्रेयसीरू	760	श्वाकुन्दः	778
शोकापनुदः	306	श्यामायनि	518	श्राविष्ठीयः	505	श्रेयसीह	760	श्वागणिक	534
शोचनः	343	श्यामेयः	457	श्रितः	873	श्रेयात्	799	श्वागणिकी	534
शोचित्वा	65	श्यालयु	738	श्रितम्	674	श्रेयान्	617,781,854	श्वादंष्ट्रः	778
शोणा	433	श्यावदन्	659,679	श्रियध्यै	395	श्रेष्ठः	617	श्वादंष्ट्रिः	922
शोणी	433	श्यावदन्त	659	श्रियसे	394	श्रोतुमर्हन्ति	406	श्वादन्त	778
शोभनः	300	श्येता	432	श्रियम्म	765	श्रोत्रियः	594	श्वापदः	778
शोभनक	734	श्येनकपोती	515	श्रियाम्	110	श्रो३षट्	1042	श्वापदम्	922
शोभनक	774	श्येनचित्	328	श्रिये	111	श्रौतसूत्रि	480	श्वापुच्छः	778
शोभनम्	378	श्येनपा	766	श्रियै	111	श्रौमत्य	627	श्वाफल्कचै	721
शोभनेयः	455	श्येनम्पाता	480	श्रीः	350	श्लक्ष्णचू	756	श्वाफल्कः पिता	238
शोभित्वा	65	श्येनायते	255,265	श्रीः (हे)	110	श्लक्ष्णमुखजा	758	श्वाफल्कः पुत्र	238

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वायूथिकः 922
श्वावराहः 778
श्वाविद्गर्ती 496
श्वाशुरिः 451
श्वासः 302
श्वेतकुकु 659
श्वेतपादः 734
श्वेतवाः 322,1036
श्वेतवाहौ 323
श्वेतवोभ्याम् 323
श्वेता 432
श्वैतच्छत्रिकः 565
श्वो गन्ता 356
श्वोवसीय 646

ष

षकारीय 680
षट् 18
षट्छरत्रिके 1101
षट् ते 1093,1094
षट्त् सन्तः 1055
षट्सन्तः 1055,1094
षड् 841
षड् आगच्छन्ति 1029
षड्णगर्यः 1094
षड्णवति 1094
षड्धा 772
षड्भि 708
षड्भ्यः 708
षड्षन्तः 1055
षण्डः 353
षण्डीयति 680
षण्णगर्यः 1094
षण्णवतिः 1094
षण्णाम् 708
षण्णाम् 851,1094
षण्मासिक 569
षण्मास्यः 569
षष्टिः 565
षष्टिकाः 570
षष्टिक्यम् 580
षष्टितम 591
षष्टिपथि 481
षष्ठः 589,615,616
षाण्मातुरः 455
षाण्मासिकः 569
षाण्मास्यः 569
षात्वणत्वि 511
षाष्ठः 615, 16
षोडन् 772
षोडश 772
षोडीयति 680
षोढा 772
ष्ठीवति 680,945
ष्ठीवाम 945
ष्वष्कते 680

स

संयच्छते 95,102
संयत् 790,1053
संयमः 366
संयसति 283
संयस्यति 283
संयावः 358
संयुत् 705
संयुत्य 795
संयुनक्ति 99
संराजते 1053
संरावः 358,362
संवत्सरः 1096
संवत्सरजा 438
संवत्सरतम 591
संवत्सरीण 570
संवत्सरीय 570
संवथ्सरः 1096
संवर्मयति 262
संवस्रयति 259
संवित्ते 90
संविदते 836
संविव्य 675
संवीतः 669,674
संव्याययु 930
संशितः 972
संशृणुते 90
संश्यानः 672
संश्रयाय 199
संसनिष्यद 981
संसन्यते 791
संसमि 995
संसर्गी 341
संस्कर्त्ता 700,1047
संस्कर्त्ता 1047
संस्कारजः 329
संस्कृतम् 701
संस्तवः 360
संस्तावः 360
संस्त्यान 671
संस्था 373
संस्थातोः 396
संस्थास्ये 88
संस्रावः 302
संस्वरते 90
संस्वेदयुः 347
संस्स्कर्त्त 1047
संस्स्कर्त्तव्य 1047
संस्स्कर्त्ता 1047
संस्स्कर्त्ता 1047
संस्स्कर्त्ता 1047
संस्स्कर्त्ता 1047
संस्स्कर्त्तु 1047
संस्स्कर्त्ता 700
संहननम् 370
संहारः 380
संहिता 886
संहितामनु 139
संहितामनु 196
संहितोरूः 444
संह्रयते 90
सः 915,916
सकः 624
सका 933
सकृत् 631
सकृल्ल्वा 708
सकृल्ल्वौ 804
सको दे 699
सक्तुः 869
सक्तुधानी 379
सक्तुसिन्ध 925
सक्थ्ना 857
सक्षत्त्रम् 153
सखा 861
सखायः 861
सखायम् 861
सखायौ 861,918
सखिसुतौ 190
सखी 441
सखे 861
सख्यम् 577
सख्या 837
सख्युः 694,837
सख्यौ 960
सगर्दभान् 1009
सगर्दभाँश्च 1009
सगर्भः 768
सगर्भ्यः 548,768
सगोत्रः 768
सग्धिः 39,41,231, 807
सङ्कटम् 584
सङ्कर्षण 721
सङ्कृति 1047
सङ्क्लृप्तम् 1021
सङ्क्षोटः 362
सङ्क्रामति 92
सङ्क्रीडति 87
सङ्क्रीडते 86
सङ्ख्यातरा 647
सङ्ख्याता 648
सङ्गंसीष्ट 60
सङ्गच्छते 89
सङ्गसीष्ट 60
सङ्गिरति 95
सङ्गिरते 95
सङ्गिरमा 863
सङ्गृभाय 286
सङ्ग्रहः 360
सङ्ग्राहः 360
सङ्घः 370
सङ्घतिथः 590
सङ्घातः 370
सङ्घुषि 879
सङ्घुष्टः 879
सचक्रम् 153
सचित्राः 189
स चेद् 1003
सजति 786
सजनय 768
सज्योतिः 768
सञ्चक्ष्याः 236
सञ्चरः 379
सञ्चरते 95
सञ्चस्करिम 875
सञ्चारयः 299
सञ्चीवरयते 259
सञ्च्छ 1055
सञ्च्श 1055
सञ्छ 1055
सञ्जानाति 93
सञ्जानीते 93
सञ्जीवार्म 730
सञ्ज्वारी 341
सञ्ज्ञपितः 794
सञ्ज्ञा 375
सञ्ज्ञावान् 600
सञ्ज्ञी 600
सञ्ज्ञु 657
सञ्शम्भुः 1055
सतां सद्भिः 201
सतिः 791
सतीर्थ्य 548,768
सतृणम् 153
सत्कृत्य 134
सत्त्वम् 1102
सत्त्वमेज 764
सत्पुरुषः 172
सत्यं भोक्ष्यसे 1004

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यं वक्ष्यामि 1004
सत्यङ्का 765
सत्यवादी 325
सत्याः 767
सत्याकरो 642
सत्यापयति 261,262
सत्यायूर 1050
सत्रायते 257
सत्सरः 649
सदनः 649
सदश्मा 649
सदस्कृतम् 1061
सदृक् 320,769
सदृक्षः 769
सदृङ् 858
सदृशः 320,769
सदृशश्वेतः 174
सदेवः 699
सद्यस्कालः 1060
सद्रवः 345
सद्रुः 345
सधमादे 770
सधस्थ 770
सधिष्टव 1076
सध्र्यङ् 770
सध्रीची 770
सनातनः 502
सनाभिः 768
सनामाः 768
सनासिका 440
सनिंसस 900
सनीस्रंसः 243
सनीस्रंसीति 989
सनीस्रस्य 786
सनीस्रस्यते 989
सनुत्यः 548
सन्तत्रसु 978
सन्तनु 809
सन्तमस 645
सन्तापकरं वचः 310
सन्तिः 791
सन्तिष्ठते 87,88
सन्तसः 1055
सन्दावः 358
सन्द्रावः 358,362
सन् द्विजः 336
सन्धिः 371
सन्नच्युतः 1256
सन्नत्स्यामि 1026
सन्नयते 91
सन्यते 281,791
सन् सः 1055
सपत्नी 431
सपत्राकरो 641
सपरीवा 775
सपुत्रः 186,189,767
768
सप्त 18,841
सप्त ऋ 699
सप्त ऋषयः 168
सप्तगङ्ग 157
सप्तगोदा 158
सप्ततिः 565
सप्ततितम 591
सप्तमः 589,615
सप्तर्षयः 168
सप्तर्षिः 7
सप्तर्षिवंश० 170
सप्तर्षी 699
सप्तश्लोकी 427
सप्तसाप्तान्य 565
सप्तानाम् 708
सप्तानाम् 780,851
सबन्धुः 768
सब्रह्म 153,768
स भवान् 393
सभापतिः 431
सभापत्नी 431
सभेयः 547
सभ्यः 547
सम् 132
समक्षम् 151
समगंस्त 60
समगत 60
समजः 238,367
समज्या 238,373
समदन्ता 440
समदन्ती 440,659
समध्वः 646
समनात्सीत् 1026
समन्कौ 1032
सममय 514
सममयी 514
समयः 390
समयः प्रवे० 389
समयो भोक्तुं 389
समरन्त 90
समरूप्य 513,514
समर्णः 877
समर्थो भो 406
समस्थः 306
समाजः 238,367,940
समानपुरुषः 171
समानप्र 768
समानम् 768
समाना 430
समानी 430
समानोद 768,769
समानोदर्य 548
समापम् 770
समावत् 632
समाशशा 727
समाशिलक्षत् 272
समाषः 767
समासमीना 582
समिद्दृष 651
समिधिता 793
समिध्यति 115
समिध्यिता 793
समियात् 967
समीनः 569
समीपम् 33,49,644,
770
समीयम् 513
समीह्यते 967
समुत्तः 1033
समुदानयति 1012
समुदाहृत 723
समुद्गः 940
समुद्रियः 549
समुपच्छा 807
समुषद्भिः 974
समुहूर्त्त 767
समुह्यते 967
समूलकाषं 400
समूलघातं 400
समूलघात 937
समूहति 40
समूहते 90
समूह्यः 299
समृच्छते 89
समेधितः 878
समेन गच्छति 200
सम्पत् 372
सम्पत्तिः 372
सम्पथः 652
सम्पद्ध 1101
सम्पद्ह 1101
सम्पद्हर्षः 1101
सम्पन्ना यवाः 75
सम्पन्नो यवः 75
सम्पर्की 341
सम्पश्यति 90
सम्पश्यन्ते 90
सम्पृच्छते 90
सम्प्रयच्छ 95
सम्प्रवद 94
सम्प्रवदन्ते 94
सम्प्रहर 85
सम्प्रहरन्ते 84
सम्फुल्लः 1033
सम्बन्धि 738
सम्भरति 1026
सम्भाण्डयते 259
सम्भार्या 295
सम्भावयामि 387
सम्भुग्नः 1031
सम्भूतो 740
सम्भृत्याः 295
सम्भ्वी 434
सम्मदः 367
सम्मुखीन 581
सम्यङ् 770
सम्राट् 320,627
1053,1027
सम्राड् इच्छति 1029
सयूथ्यः 548
सरकः 304
सरजसम् 645
सरसिजम् 328
सरसी 847
सरस्वति शुतुद्रि 68
सराजम् 652
सरात्रिः 768
सरित् 1099
सरितः 250
सरिताम् 250
सरिति 82
सरितौ 250
सरिद् 1099
सरीसृजीति 991
सरीसृज्य 261
सरीसृज्यते 991
सरीसृपः 8,243
सरीसृपत 987
सरीसृपी 991
सरीसृप्य 261,991
सरूपः 768
सरोजम् 328,478
सर्पःबिल 732
सर्पिःकरोति 1059
सर्पिर्मधुनी 224
सर्पिःषु 1051
सर्पिषो जानीते 93,211
सर्पिषो ज्ञानम् 211

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पिषो दयते 211
सर्पिषो नाथते 212
सर्पिषोऽपि 143
सर्पिष्करोति 1059
सर्पिष्कल्पम् 1058
सर्पिष्काम्यति 1058
सर्पिष्कुण्डिका 1059
सर्पिष्टमम् 1075
सर्पिष्टरम् 1075
सर्पिष्ट्वम् 1075
सर्पिष्पानम् 1059,1091
सर्पिष्पाशम् 1058
सर्पिस्तर 1075
सर्पीषि 1063
सर्वः 710
सर्वकः 20
सर्वकर्मीण 581
सर्वकृष्णः 730
सर्वके 620
सर्वगः 316
सर्वङ्कषः 315
सर्वचर्मीण 580
सर्वजनाः 168
सर्वजनीनम् 555
सर्वतः 636
सर्वतन्त्रः 481
सर्वतांति 552
सर्वत्र 609
सर्वत्रगः 316
सर्वथा 610
सर्वदा 607
सर्वधुरीण 544
सर्वपत्रीण 581
सर्वपथीन 581
सर्वपाञ्चा 733
सर्वपाञ्चा 923
सर्वपात्रीण 581
सर्वमहान् 180
सर्वराज्ञ 648
सर्वरात्रः 228,647
सर्वरात्रकल्याणी 161
सर्ववेदः 481
सर्वश्वेतः 192
सर्वश्वेतः 730
सर्वसहः 314
सर्वसौव 731
सर्वस्मात् 19,838
सर्वस्मिन् 19,838
सर्वस्मै 19,837
सर्वस्याः 959
सर्वस्यै 959
सर्वाङ्गीण 581
सर्वासाम् 850
सर्वाह्न 648
सर्वीयः 555
सर्वे 19,839
सर्वे 710
सर्वेषाम् 19,850
सल्लग्ने 1100
सवः 365
सवचनः 768
सवने-सवने 1077
सवयाः 768
सवर्णः 768
सवायँ 698
सवार्त्तिकः 481
सविता 885
सवित्रम् 351
सव्येष्ठः 1074
सव्येष्ठाः 1074
सव्येष्ठृ 1074
ससखि 153
ससर्जिथ 898
ससूव 984
ससृम 875
ससृव 875
सस्त्रीक 661
सस्थानः 768
सस्नौ 978
सस्मरतुः 964
सस्मार 964
सस्यकः 592
सस्यमतुः 817
सस्यमिथ 817
सस्यात् 322
सस्रंसे 978
सस्रष्ठ 898
सस्रिः 348
सस्वनतुः 817
सस्वनिथ 817
सस्वरतुः 964
सस्वरिथ 895
सस्वर्थ 895
सस्वार 964
सहकृत्वा 328
सहचरः 309
सहते 680
सह नः 300
सहपुत्रः 189,768
सहपुत्राय 768
सहयुध्वनाम् 328
सहयुध्वा 328,767
सहयुध्वानौ 328
सहरिः 153
सहसाकृ 750
सहस्यः 550
सहस्रतमः 590
सहस्रिय 551
सहस्री 597
सहायता 477
सहायत्व 579
सहित्रम् 351
सहिष्णुः 339,435
सहेते 48
सहेथे 48
सह्यम् 292
सांकाश्यसिद्धः 166
सांयुगीनः 547
सांराविक 631
सांराविण 362
साँवत्सर 501,507
साँवत्सरि 507,568
साँवत्सरिक 500
सांशयिकः 567
सांसर्गवि 480
सांस्थानिक 543
सांहितम् 511
सात्तुकः 542,547
सात्तुकम् 477,936
सात्तुसैन्ध 925
साक्षात्कृत्य 137
साक्षात्कृत्वा 137
साक्षी 595
साखिदत्ते 485
साखेयम् 485
साग्नि 153
साग्निः 767
साङ्कलः 483
साङ्काश्यक 493
साङ्काश्यम् 485
साङ्कूटि 362,830
साङ्कूटिन 631
साङ्ग्रामि 547
साढा 774
साढ्वा 774
सातः 790
सातयः 301
सातिः 373,390,791
सात्यमुग्र्या 447
सात्वतः 823
साधनः 300
साधयति
साधवः 958
साधारण 633
साधिष्ठः 262
साधिष्ठ 618
साधीयान् 618
साधुः 353,434
साधुकारी 325
साधुदायी 325
साधुना 112,960
साधुभिः 836
साधुम् 693
साधुम्मन्यम् 326
साधुया 847
साधुर्देवो मातरः 208
साधुर्भृत्यो राज्ञः 208
साधुलक् 1024
साधू 692
साधूनाम् 779,850
साधो 210,,682
958,960
साधोः 694
साध्वी 434
सान्तानिक 573
सान्तापिकः 572
सान्त्वना 376
सान्धिवेल 501
सान्ध्यम् 501
सान्नाय्यम् 299
सान्निवेशि 537
साप्तः 565
साप्ततिकः 557
साप्तपदीन 583
साब्रह्मचा 823
सामकः 481
सामगः 307
सामनः 820,831
सामनि 820
सामनी 820
सामयिकः 500,634
सामयिकम् 572
सामवायि 539
सामाजिकः 537
सामानग्रा 509
सामानदे 509
सामानि 780
सामानिकम् 509
सामिकृत 629
सामिकृतम् 160
सामिधेन्यः 521
सामिपीतम् 160
सामिभुक्तम् 160
सामुद्रम् 494
सामुद्रिका 494

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक	539	सास्मर्य	261	सिसृक्षूर	773	सुखाऽपेतः	165	सुदृशीकः	735
साम्ना	821	सास्मर्यते	969	सिसेविष	888	सुखायते	258,967	सुदोहनः	382
साम्नि	820	सास्वर्यते	969	सिस्मयिष	901	सुखार्तः	688	सुद्युभिः	699
साम्नी	820	साहदेवः	455	सिस्मायष	254	सुखी	604	सुद्युभ्यः	699
साम्बः	705	साहदेवक	517	सिस्यन्त्स	894	सुखेच्छु	160	सुद्युभ्याम्	699
साम्बकः	517	साहयः	301	सिस्रावयिष	988	सुखेनर्तः	688	सुद्युषु	699
साम्मातुरः	455	साहसिक	536	सिस्वरिष	889	सुखेन वस०	200	सुधर्मा	735
साम्राज्यम्	462	साहस्रः	561,597	सिस्वादयिषति	1064	सुगः	316	सुधाधवलम्	161
सायते	281,791	साहस्रम्	558	सिस्वेदयिषति	1064	सुगण्ट्षष्ठः	1054	सुधामा	323
सायन्तन	502	साहस्री	482	सीत्यम्	546	सुगण्णीशः	1056	सुधितम्	972
सायम्प्रा	823	साहायकम्	579	सीदति	947	सुगण्षष्ठः	1054	सुधियौ	804
सायाहनि	773	साहाय्य	579	सीमन्तः	689	सुगन्धि	657	सुधीवा	323
सायाह्नि	773	साह्वान्	667	सीमा	424	सुगला	440	सुध्यः	804
सारः	357	सिंहगर्ज	401	सीयते	794	सुगातुया	847	सुनयना	440
सारघम्	520	सिंहनर्दी	325	सीव्यति	1038	सुगात्रा	439,440	सुनया	934
सारङ्गज	745	सिंहमु	744	सीव्यते	281	सुगात्री	439,440	सुनयिका	935
सारङ्गलग्धी	193	सिंहाजिन	509	सु	132	सुगुल्फा	439	सुनीथः	740
सारङ्गिक	538	सिंहायते०	256	सुकरः	381	सुग्लः	301	सुनु	28
सारङ्गी	432	सिकतावान्	598	सुकर्मा	735	सुचतुर	644	सुनुति	950
सारमेयः	456	सिकतिल	598	सुकुमारतम	616	सुचन्द्रा	703	सुनुमः	809
सारवम्	833	सिञ्चति	680	सुकृत्	327	सुचर्मा	424	सुनुवः	810
सार्पिष्कः	936	सिद्ध्यः	296	सुकृत	327	सुजघना	440	सुनोत	848
सार्यम्	298	सिध्मलः	597	सुकृतम्	740	सुजङ्घा	440	सुनोति	283,950
सार्वचार्मीण	581	सिध्मवान्	597	सुकृता	438	सुजङ्घी	440	सुन्दरी	433
सार्वजनिकम्	555	सिध्यः	296	सुकेशा	439	सुजम्भा	656	सुन्दरोरूः	444
सार्वजनी	547	सिध्रकावणम्	1081	सुकेशी	439	सुजाते अश्व	695	सुन्मः	809
सार्वभौमः	561,562	सिनः	1031	सुक्रतुः	735	सुज्ञाना	439	सुन्वः	810
सार्वम्	555	सिन्धुकः	504	सुक्रीता	437	सुतङ्गमः	315	सुन्वन्	338
सार्वलौकि	925	सिषक्ति	987	सुक्षेत्रिया	847	सुतसखायौ	190	सुन्वन्ति	805
सार्वलौकिकः	562	सिषत्सति	253	सुखं कर्तुम्	218	सुताँश्च लप्सीष्ठाः	1044	सुपदी	423
सार्वसेन्यः	516	सिषासति	790,890	सुखकारीपुत्री	310	सुतृणम्	749	सुपयाः	735
साल्वः	495	सिषित्स	253	सुखजा	745	सुत्या	373	सुपयाः	782
साल्वकः	495	सिषेच	1062,1063	सुखजाता	193,438	सुत्राम्णे०	323	सुपरिक	622
साल्विका	496	सिषेचयिषति	1064	सुखदुःखम्	224	सुत्वा	330	सुपर्वा	424
साल्वेयः	465	सिषङ्क्षयिषति	1064	सुखदुःखे	224	सुदती	658	सुपाञ्चाल	923
साविषत्	394	सिषेधिष	253	सुखप्रति	154	सुदामतः	520	सुपात्	423
सासद्यते	260,261	सिष्णासति	253	सुखप्रतीक्षः	305	सुदामा	323	सुपानः	381
सासहिः	348	सिसनिष	890	सुखप्राप्तः	723	सुदिनायते	258	सुपार्श्वा	439
सासह्यते	261	सिसिक्षति	253	सुखप्राप्त	159	सुदिना	683	सुपीवा	323
सासायते	791	सिसृक्षति	253,902	सुखाकरो	641	सुदिनाहम्	225	सुपुत्रः	182
सास्नायते	261	सिसृक्षु	1029	सुखापन्नः	723	सुदिवः	655	सुप्तः	669

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तिथा.....
पु०सं०.....
1252

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्तप्रल... 741
सुप्तम् 378
सुप्त्वा 57,61
सुप्यते 83,281
सुप्रजाः 655
सुप्रजावनि 312
सुप्रत्यव 748
सुप्रलम्भः 854
सुप्रातः 655
सुबन्तः 1029
सुबाहुः 735
सुभगङ्करणम् 318
सुभगम्भविष्णुः 318
सुभगम्भावुकः 318
सुभगम्मन्यका 326
सुभगा 440
सुभारतम् 152
सुभाला 440
सुभिक्षम् 152
सुभ्राता 661
सुमगधम् 152
सुमङ्गला 430
सुमङ्गली 430,599
सुमद्रम् 152,248
सुमनायते 256
सुमनीभव 970
सुमुखा 439
सुमेधाः 655
सुम्नयुः 347,970,971
सुम्नयोɜम् 1041
सुम्नायति 971
सुम्नायन्तः 971
सुयवः 745
सुयवक 745
सुयशाः 735
सुयशाः 782
सुयुग् 855
सुर ऋषी 698
सुरभिगन्धि 657
सुरराट् 1027
सुरां सुनोति 338
सुराजा 642
सुराजा 735
सुराज्ञी 430
सुरापः 307
सुरापा 307
सुरापाणम् 1083
सुरापाणाः प्राच्याः 1082
सुरापानम् 1083
सुरापी 30
सुरापीता 438
सुरापीती 438
सुरारिः 690,691
सुराष्ट्रब्र 651
सुलोमा 735
सुवदना 440
सुवर्णालङ्का 187
सुवामहै 950
सुवावहै 950
सुवीरेण 735
सुवीर्यस्य 735
सुवेदनः 382
सुवै 950
सुलभम् 854
सुलाभः 854
सुवर्णपु 733
सुवाचा 706
सुशर्मा 324,869
सुशोफा 439
सुश्चन्द्रः 703
सुश्रियौ 803
सुश्लोकेति 699
सुश्वः 655
सुषमम् 736
सुषमम् 1072
सुषामा ब्राह्मणः 1074
सुषाव 1079
सुषिक्तम् 142
सुषिरम् 598
सुषुप्तः 1072
सुषुप्सति 57,254
सुषुवाणः 330
सुषूतिः 1072
सुष्टुती 846
सुष्टुत्या 846
सुष्वाप 670
सुष्वापयि 982
सुसक्थ 655
सुसक्थि 655
सुसखि 112
सुसिक्तम् 142
सुस्थण्डि 748
सुस्मूर्षते 96,254
सुस्यूष 888
सुस्रावयिष 988
सुस्रुम 875
सुस्रुव 875
सुस्रोथ 874
सुस्वूर्षति 864,889
सुहल 655
सुहलि 655
सुहिरण्यः 735
सुहृच्छू 1101
सुहृद् 660
सुहृदय 761
सुहोता 661
सुह्माः 485
सूतका 934
सूतदुहि 766
सूतपु 766
सूतवे 395
सूतिका 934
सूते 709
सूत्थितः 1018
सूत्रकारः 311
सूत्रग्रहः 307
सूत्राग्राहः 307
सूत्रम् 1097
सूत्रयति 262
सूदिता 343
सूपगन्धि 658
सूपप्रति 154
सूपसदन 382
सूयते 281
सूरी 435
सूर्तः 1034
सूर्यः 296
सूर्यचन्द्र 703
सूर्या 435
सूर्योदयः 7,687
सूषा 735
सृत्वरः 346
सृमरः 345
सृष्टः 678
सेकिमम् 535
सेक्त्रम् 351
सेत्रम् 351
सेदिः 348
सेधनम् 296
सेधयति 676
सेनाचरः 309
सेनानीः 71,320
सेनान्यः 803
सेनान्याम् 960
सेनापति 718
सेमाम्
सेयात् 799
सेरुः 345
सेवामहे 956
सेवावहे 956
सेवित्वा 65
सेषिच्यते 261
सेषीयते 799
सेसिच्यते 1078
सेसिम्यते 671
सेहे 814
सैकतः 598
सैतेयः 457
सैध्रकाव 483
सैनापत्य 448
सैनिकः 539
सैन्धवः 495,504,516
सैन्धुवक्त्र 494
सैन्यः 539
सैरिकः 544
सैरिकम् 522
सैष 700
सैसम् 528
सो अग्निः 696
सो अध्वरः 696
सोढा 773,886, 1025
सोता 885
सोऽत्र 700
सोदर्यः 548,769
सोमजम्भा 656
सोमं पवमानः 218
सोमं पपिः 218
सोमपानाम् 323
सोममय 526
सोमयाजी 326
सोमरक्षिः 312
सोमवान् 505
सोमविक्रयी 328
सोमसुड्डीनः 1093
सोमसुत् 46,327
सोमसुत्वतः 1019
सोमावती 777
सोम्यः 551,552
सोम्यम् 552
सोम्यासः 849
सोऽयम् 696
सोषुप्यते 261,671
सोसूच्यते 257
सोसूत्र्यते 259
सौकर 823
सौकरिकः 538
सौक्ष्म्यम् 577
सौखरात्रि 532
सौखशय 532
सौतङ्गमि 485
सौत्वनः 831,832
सौदामनी 519
सौधातकिः 451
सौपः 510

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौपर्णेयः 455,456
सौपर्णेयी 425
सौपर्वाः 823
सौपिकः 536
सौभागिनेयः 458
सौभागिनेय 925
सौभाग्यम् 577,925
सौमात्रः 455
सौमित्रिः 451,456
सौमेन्द्रः 925
सौमेरवी 514
सौम्यम् 473
सौरी 824
सौरीयः 824
सौवरः 921
सौवर्णः 528
सौवर्णवल 926
सौवर्णवाल 926
सौवश्वः 921
सौवास्तव 484
सौवास्तवी 484
सौवीया 445
सौशमिकन्थम् 225
सौषामः 832
सौसुकीय 497
सौस्नातिक 532
सौहार्दम् 925
सौहार्द्यम् 761,925
सौह्रय्य 761
सौह्याः 466
सौह्यकः 517
सौह्यनाग 926
स्कन्त्वा 787
स्कभितः 880
स्कभ्नाति 285
स्कभ्नोति 285
स्कुनाति 285
स्कुनोति 285
स्कुभ्नाति 285
स्कुभ्नोति 285
स्तः 810
स्तनजाता 437
स्तनन्धयः 312
स्तनन्धयी 425
स्तनयित्नु 794
स्तभान 285
स्तभितः 880
स्तभ्नाति 285
स्तभ्नोति 285
स्तम्बकरि० 311
स्तम्बकारः 311
स्तम्बघनः 369
स्तम्बघ्नः 369
स्तम्बेर 726
स्तम्बेर 752
स्तम्बेरमः 308
स्तरिता 882,884
स्तरिषीष्ट 882
स्तरिषीष्ट 884
स्तरीता 882
स्तर्यः 298
स्तर्यान् 298
स्तवः 365,359
स्तवीति 954
स्तार्षीष्ट 884
स्ताव्यः 298
स्तीर्णः 1030
स्तुतः 9
स्तुतिः 372
स्तुतो हरिः 330
स्तुत्यः 294
स्तुध्वम् 1070
स्तुध्वे 1069
स्तुभ्नाति 285
स्तुभ्नोति 285
स्तूपेशा 751
स्तूयते 281,967
स्तृणाति 948
स्तृषीष्ट 884
स्तेयम् 577
स्तोकं मुञ्चति 205
स्तोकश 635
स्तोकान् 205
स्तोकान्मु 750
स्तोकान्मुक्तः 165
स्तोकेन० 205
स्तोकेन 205
स्तोता 871,949
स्तोत्रम् 351
स्तोमैर्विधेमाग्नाऽइ 1042
स्तौति 950,954
स्थाली 1096
स्त्रितरा 759
स्त्रियः 802
स्त्रियम् 802
स्त्रियम्म 765
स्त्रियाः 111
स्त्रियाम् 111
स्त्रियै 110,111
स्त्रियौ 802
स्त्रीः 802
स्त्रीणाम् 110
स्त्रीतरा 759
स्त्रीता 575
स्त्रीत्वम् 575
स्त्रीपुंसौ 644
स्त्रीम् 802
स्त्रीम्मन्य 765
स्त्रीसभम् 227
स्त्रैणः 450
स्त्रैणम् 449,475,575
स्त्रैणी 426
स्त्र्यगारगः 316
स्त्र्यनुजः 329
स्थण्डिलव 753
स्थण्डिलश 753
स्थण्डिलशायी 326
स्थण्डिलेश 753
स्थलपथि 568
स्थला 433
स्थली 433
स्थवयति 263,827
स्थविरा 427
स्थविष्ठः 262,827
स्थवीयान् 827
स्थाण्डिलः 471
स्थायं स्था 398
स्थालपथ 568
स्थालीपक्वः 166
स्थालीबिली 566
स्थालीबिल्या 566
स्थावरः 349
स्थास्नुः 340
स्थितः 971
स्थीयते 281,799
स्थूलक 628
स्थूलङ्करणम् 318
स्थूलनासि 654
स्थूलम्भविष्णुः 318
स्थूलम्भावुकः 318
स्थूलशृङ्गः 734
स्थूलाक्षि 653
स्थूलोतु 690
स्थूलौतु 690
स्थेयाः 799
स्थेयात् 799
स्थेयान् 827
स्थेष्ठः 827
स्थौल्यम् 577
स्नातः 1030
स्नातकपु 715
स्नातम् 330
स्नातवान् 330
स्नातानुभुक्तः 167
स्नात्वा 397
स्नात्वी 849
स्नानीयम् 377
स्नापनम् 378
स्नायुः 353
स्निग्धक 439
स्निग्धदन्ती 659
स्निद् 1026
स्निध् 1026
स्नुग् 1026
स्नुट् 1026
स्नेग्धा 886
स्नेढा 886
स्नेहिता 886
स्नोग्धा 886
स्नोढा 886
स्नोहिता 886
स्पर्द्धनः 343
स्पर्शः 356
स्पष्टः 878
स्पाशितः 878
स्पृशति 128
स्पृहयति 123
स्पृहयालुः 345
स्फातिः 671
स्फावय 932
स्फावयन् 932
स्फीतः 671
स्फूर्जथुः 371
स्फेयान् 827
स्फेष्ठः 827
स्मरः 329
स्मरति 211
स्मरिषी 884
स्मर्यते 281,969
स्मर्यात् 969
स्मसि 848
स्मारं स्मारं 398
स्मार्यम् 298
स्मृत्वा स्मृत्वा 995
स्मृषीष्ट 884
स्मेरः 346
स्यः 916
स्यन्त्वा 787
स्यन्त्वा स्य 398
स्यन्त्स्यति 894
स्यन्दित्वा 787
स्यू रत्ना 1050
स्येमतुः 817
स्येमिथ 817

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तिथी..... पु०सं०..... 1254 भारती पुस्तकालय
1583
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यमुः 817
स्योनः 783
स्रंसते (हस्तात्) 120
स्रंसित्वा 64
स्रक् 319
स्रग्वान् 601
स्रग्वी 601
स्रङ्मय 526
स्रजयति 262,830
स्रजिष्ठः 618,830
स्रजीयान् 618,830
स्रदिति 691
स्रप्तुम् 678
स्रवः 359
स्रष्टा 678,1027
स्रस्तिः 372
स्रस्यते 282
स्रावयति 104
स्रुचिष्ठः 830
स्रुच्यति 115
स्रुतपयसि 186
स्रूः 784
स्रूतिः 784
स्रोत्यः 548
स्रौघ्नः 503,505,506
507,512
स्रौघ्नम् 514
स्व 839
स्वकर्त्तव्यम् 181
स्वका 935
स्वकीयम् 496
स्वक्षः 642
स्वतवद्भिः 974
स्वतवान् 858
स्वतवाँ पा 1049
स्वदते 123
स्वनः 366
स्वनितम् 876
स्वपन्ति 710
स्वपन्ति 710
स्वपितः 710
स्वपितकि 620
स्वपिति 902
स्वपोषं 401
स्वप्ता 902
स्वप्नः 371
स्वप्नक् 348
स्वप्नया 847
स्वप्नायते 255
स्वप्नेऽपि 387
स्वभुवौ 804
स्वभ्यासम् 152
स्वयङ्कृत 160
स्वयन्धौतौ 160
स्वयम् अह 1010
स्वयम्भुक्तम् 160
स्वयम्भुवौ 804
स्वयं ह 1009
स्वर् 23
स्वरिता 885
स्वरेण जानाति 93
स्वरेण पुत्रं० 211
स्वर्गपतितः 165
स्वर्ग्यम् 561
स्वर्त्ता 885
स्ववद्भिः 974
स्ववान् 600,858
स्वश्वाः 735
स्वसा 424,781
स्वस्तिर्भवतु० 199
स्वस्रीयः 460
स्वागतम् 82
स्वागतिकः 922
स्वागतीकृ 638
स्वाः गावः 22
स्वाढ्यङ्क 381
स्वातिः 504
स्वादुः 353
स्वादुङ्कारं 185,398
स्वादुङ्कारम् 24
स्वाध्वरिकः 922
स्वानः 366
स्वान्तम् 876
स्वापतेय 547
स्वापिशीय 523
स्वाः पुत्राः 22
स्वाप्यते 671
स्वायङ्कृ 160
स्वासृकः 513
स्विका 935
स्विन्नः 62,876,1030
स्विन्नवान् 62
स्वे गावः 22
स्वेनतुः 817
स्वेनिथ 817
स्वे पुत्राः 22
स्वेषामप्यद्० 211
स्वैरम् 688
स्वैरिणी 688

ह

हंस चक्रवाकौ 224
हंसवती 714
ह 23,132
हकारः 376
हतभ्राता 661
हतमाता 661
हतस्वसा 661
हत्वा 789
हत्वाय 849
हननम् 807
हनिष्यति 900
हनिष्यते 796
हन्त करोति 1003
हन्त प्रविश 1008
हन्तवै 711
हन्ता 797
हन्ति 243,789
हयी 442
हर इह 1014,1052
हरति 7,129
हरयिह 1052
हराविति 166
हरासि 394
हरिः 112
हरिगुरुहराः 190
हरिचन्द्र 703
हरिणाक्षी 187
हरिणी 432
हरितजम्भा 656
हरिता 432
हरित्रातः 162
हरिम् 693
हरिम् अलङ् 218
हरिरत्र 1036
हरिं वन्दे 1052
हरिवः 1020,1046
हरि वो 1015
हरिश्चन्द्र 703
हरिषु 1062
हरिषेणः 1074
हरिष्यति 900
हरिसक्थ 1075
हरिहरगुरवः 190
हरिहरौ 190
हरी 692
हरी एतौ 14
हरीणाम् 779
हरीतकी
हरीन् 1091
हरीन्द्रः 691
हरे 210
हरेः 694
हरौ 112
हर्यश्वः 733
हलकी 485
हलयति 259
हलीषा 689
हलेद्विपा 751
हल् 52
हल्यः 546
हवः 368
हविर्दुघः 1025
हविःषु 1063
हविष्यम् 553
हविष्य्य 549
हविष्षु 1063
हवीर्मथीनाम् 312
हव्यवाट् 322
हव्यवाहा३म् 1042
हसः 366
हसनम् 378
हसितम् 378
हस्तः 869
हस्तग्राहं 400,402
हस्तद्वयस 586
हस्तपादम् 189
हस्तवन्ध 752
हस्तवत् 596
हस्तवर्त्तं 400
हस्तवान् 596,604
हस्तहा 741
हस्तिघातः 317
हस्तिघ्नः 317
हस्तिचर्म 651
हस्तिदध्न 586
हस्तिद्वयस 586
हस्तिपाद 658
हस्तिमात्र 586
हस्तिमृ 740
हस्तिवर्चस 645
हस्तिषड्गव 584
हस्ती 604
हस्तेकृत्य 138
हस्तेकृत्वा 138
हस्तेबन्ध 752
हस्तेषुग्रा 402
हस्तै र्ग्राहं 402
हस्त्य 571
हस्त्यश्वर 219
हाटकमयी 528
हाटकम् 528
हात्वा 972
हा देवदत्तम् 195
हानिः 372
हायनः 304

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हायानाः	304	हिनस्ति	785	हृदयरो	761	हे देवते	958	होतापोतारौ	32
हारणा	376	हिमक्तः	520	हृदयशोक	761	हे ३ देवदत्त	1041	होतुः पु	754
हारयति	131	हिमवतस्परि	1061	हृदयालुः	602	हे पचन्	336	होतुरन्ते	754
हारिणिकः	538	हिमश्र	787	हृदयावान्	602	हे पचमान	336	होतृकार	691
हारितः	452	हिमानी	436	हृदयावि	774	हे पपिवन्	1046	होत्रृकार	691
हारितायनः	452	हिमेलु	602	हृदयाविध्	669	हे भगवन्	1046	होत्ल्लका	691
हारिद्रम्	468	हिम्याः	601	हृदयावी	601	हे भवन्	1046	होमवान्	605
हारिद्रवि	518	हिरकुत्	620	हृदयिक	602	हेमन्तः	506	होमी	605
हारिषेण्यः	462	हिरण्मय	833	हृदयी	602	हेमन्तशिशिर	191	हौतृकः	513
हार्दम्	761	हिरण्यक	592,773	हृदय्या	686	हेमन्तशिशिरौ	228	हौत्रम्	540
हार्यम्	298	हिरण्यग	727	हृदा	679	हेमाम्भोज०	344	ह्रुते	123
हार्ष्टेयः	459	हिरण्यय	833	हृदिस्पृ	751	हे माले	957	ह्यकर्मणः ज्यायः	208
हालिकः	532,544	हिरण्ययुः	970	हृद्गोली	516	हे यात्	799	ह्यस्तनः	502
हालिकम्	522	हिरण्यवः	599	हृद्यः	546	हैकुपादः	520	ह्यस्तनम्	490
हासः	366	हिरण्यार्थः	161	हृद्यम्	761	है३देवदत्त	1041	ह्यस्त्यम्	490
हासः	714	हिरण्यार्थी	605	हृद्रोग	761	हैमनम्	502	ह्रसिमा	827
हास्तिकः	533,757	हिरुङ् देवात्	205	हृल्लास	761	हैमन्ताः	506	ह्रसिष्ठः	827
हास्तिकम्	477	हीनः	1031	हृल्लेख	761	हैमन्तिकः	501	ह्रसीयान्	827
हास्तिनपु	732	हीयते	282,799	हृषितानि	879	हैमवतः	548	ह्रियते	282,968
हास्तिनम्	586	हुण्डा	374	हृषीद्वम्	1069	हैमवतम्	483	हीणः	1033
हास्तिनाय	832	हुतम्	683	हृषीष्ट	60	हैमवती	514,519	हीतः	1033
हिंसा	374	हुवे	673	हृष्टानि	879	हैमी	528	ह्रेपयति	930,950
हिंस्रः	346	हूः	784	हे अक्क	957	हैयङ्गवीन	583	ह्रेपयिष्य	930
हितः	972	हूतः	669,779	हे अद्यवन्	1046	होडते	256	ह्वयामि	673
हिताशंसु	160	हूयते	282	हे अम्ब	957	होडायते	256	ह्वर्यते	282,969
हित्वा	972	हूर्छिता	1039	हे गोमन्	1046	होता	339,781	ह्वर्यात्	969
हित्वी	849	हृच्छोकः	761	हेतिः	373	होतापोता	754	ह्वाययति	930

—*—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

मूल्य 1500.00 (सम्पूर्ण + 1-2